

आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन

ADVANCE COPY
present for Consideration
NOT FOR SALE

लेखक

डॉ विरधनाथप्रसाद वर्मा

एन ए हॉटेल (पटना), एन ए राजनीति (भारतभित्ति, पृथ्वी), पी एच डी राजनीति (विज्ञान)

प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, राजनीतिशास्त्र एवं निदेशक, ड स्टीट्यूट ऑफ

पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, पटना विश्वविद्यालय

भूतपूर्व अध्यक्ष, अखिल भारतीय राजनीति विज्ञान महाकाय (1968)



अनुवादक

डॉ सत्यनारायण शुक्ले, एन ए, पी एच डी

अध्यक्ष, राजनीतिशास्त्र विभाग, आगरा कॉलेज, आगरा

प्रथम संस्करण जुलाई 1971
द्वितीय परिशोधित संस्करण मार्च 1975

एव पच्चीस रुपये

। विश्वनाथप्रसाद वर्मा

मैसर्स लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, बुन्देल प्रकाशक संस्थान रोड, आगरा-3 द्वारा प्रकाशित
एव-बन्धनस मिटल, लखनऊ बकीरलाल सेठ्यानी आगरा-3 द्वारा मुद्रित

समर्पण

सहधर्मिणी

श्रीमती प्रमिला वर्मा को

—लेखक

द्वितीय संस्करण की भूमिका

अंग्रेजी संस्करण की प्रीति "वॉलन इन्विजुन वॉलिविलस पॉइंट" का हिन्दी रूपान्तर भी प्रोत्साहित हुआ है, यह देखकर स्वाभाविक आश्चर्य होता है। इस संस्करण में प्रथम किश्तमान मौलिक परिवर्तन किया गया है। आशा है कि नूतन परिशिष्टों का समावेश इस ग्रन्थ की प्रामाणिकता और उपयोगिता को सुदृष्ट करेगा। ये पाँच परिशिष्ट स्वतंत्र रूप से हिन्दी भाषा में ही मिले गये थे और अंग्रेजी संस्करण में सम्मिलित नहीं हैं।

विद्यमान राजनीतिशास्त्र में भारतीय चिन्तकों, मनीषियों, नेताओं और प्राध्यापकों के योगदान को श्रद्धापूर्वक करने वाला यह ग्रन्थ "राजनीति चिन्तामणि" के रूप में इस एकांगिता का परिहार करेगा जो केवल परिचयी आधार की दृष्टि से ही पाठ्यपुस्तक का दर्जन रखती है। व्यापक दुर्लभात्मक सापेक्षता का सर्वांगमूल्य ही इस सम्पूर्ण-काल में प्राण और सम्पत्ति प्रदान करेगा।

राजेन्द्रनगर, पटना }
फरवरी 4, 1975 }

—विराजनाथप्रसाद वर्मा

हिन्दी अनुवाद का प्राक्कथन

प्रस्तुत पुस्तक "मॉडर्न इन्विजन पर्सनिटिवल थॉट" नामक ग्रन्थ के द्वितीय संस्करण का हिन्दी अनुवाद है। अनुवादक है राजकीरिणामय के सुयोग्य विद्वान डॉ. रामनारायण कुरे। अनुवाद की सुयोग्य, पठनीय एवं आभाषित भाषा का इन्होंने बुरा फल दिया है। प्रकाशन-स्थल से दूर रहने के कारण मैं स्वयं, जिसका ध्यान अनुवाद की ओर आकृष्ट था, उसका नहीं प्रदान कर सका हूँ, जिसका मुझे पेट है। सभीछत्रों से आभार है कि यदि अनुवाद में कुछ त्रुटियाँ रह गयी हों तो उनकी ओर रचनात्मक सुझाव देने की कृपा करें। इसके लिए लेखक और अनुवादक दोनों ही साधारी रहेंगे।

27 मार्च, 1971

—विमलनाथप्रसाद शर्मा

विषय-सूची

पृष्ठ

पृष्ठ

भाग 1

भारत में पुनर्जागरण

1	भारत में पुनर्जागरण तथा राष्ट्रवाद	1
2	ब्रह्म समाज	13 ✓
1	✓ रासमोहन राय	13
2	देवि-इनाथ ठाकुर	22
3	वैद्यनाथ शील	24
4	ब्रह्म समाज का वाक्य	30
3	✓ दयानन्द सरस्वती	32 ✓
4	एनी बेसेंट तथा भगवान्दास	46
1	✓ एनी बेसेंट	46 ✓
2	भगवान्दास	58
✓ 5	रघो-इनाथ ठाकुर	63
6	स्वामी विवेकानन्द तथा स्वामी रामलील	89
1	✓ स्वामी विवेकानन्द	89 ✓
2	स्वामी रामलील	102

भाग 2

भारतीय मितवादी तथा अतिवादी

7	✓ सरदारभाई नीरोजी	114 ✓
8	महादेव गोविन्द रानाडे	126 ✓
9	फीरोजशाह मेहता तथा सुरे-इनाथ बनर्जी	144
1	फीरोजशाह मेहता	144
2	सुरे-इनाथ बनर्जी	150
10	✓ मोतीलालनेत्र मोरारजी	160 ✓
11	✓ बाल गंगाधर तिलक	169 ✓
12	✓ विपिनचन्द्र पाल तथा साजबहादुर राम	222 ✓
1	विपिनचन्द्र पाल	222 ✓
2	साजबहादुर राम	229
✓ 13	बी अरविन्द	239

भाग 3

महात्मा मोहनदास करमचन्द गान्धी

14 महात्मा मोहनदास करमचन्द गान्धी	251
-----------------------------------	-----

भाग 4

आधुनिक भारत में धर्म तथा राजनीति

15 हिन्दू पुनर्जागरणवाद तथा राजनीति आधारभूत	269
1 हिन्दू पुनर्जागरणवाद का राजनीतिक चिन्ता	269
2 स्वामी भद्रानन्द	271
3 मदनमोहन मालवीय	276
4 माई परधानन्द	282
5 विनायक दामोदर सावरकर	284
6 वाला हरदयाल	288
7 नेचल पब्लिशिंग इन्डिया	290
8 रामानन्ददास मुन्शी	292
9 कृष्णचन्द्र गुरुवाय	294
10 अखिलभारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस	298
11 सत्यदेव परिजानन	309
16 मुस्लिम राजनीतिक चिन्ता	316
1 सैयद मुहम्मद खान	316
2 मुहम्मद अली जिन्ना	319
3 मुहम्मद अली	323
17 मुहम्मद इकबाल	330

भाग 5

अध्यात्मिक भारतीय राजनीतिक चिन्ता

18 श्रीगीतानन्द नेहरू तथा चिन्तन	346
1 श्रीगीतानन्द नेहरू	346
2 चिन्तन	352
19 अन्धकारवाद नेहरू	361
20 सुभाषचन्द्र बोस	375
21 आनन्दबहादुर साहू	390
22 भारत में समाजवादी चिन्ता	417
1 भारत में समाजवादी आन्दोलन	417
2 नरसिंह	419
3 अन्धकारवाद का चिन्ता	423
4 रामानन्ददास मुन्शी	428
5 भारतीय समाजवाद का आध्यात्मिक चिन्ता	430
23 अन्धकारवाद	432
24 भारत में समाजवादी आन्दोलन तथा चिन्ता	443
25 निष्कर्ष तथा समीक्षा	454

भाग 6

अस्मदकालीन भारतीय राजनीतिक चिन्तन की कुछ समस्याएँ

26	लोकतन्त्र तथा भारतीय सङ्कलित	464
27	भारतीय लोकतन्त्र के सशक्त आधार	470
28	भारतीय समाज के सवैगलमक एकीकरण	475
29	भारतीय लोक प्रशासन के सत्यनिष्ठा	488
30	पञ्चायती राज के कुछ पहलू तथा सर्वोदय	495
31	भारतीय लोकतन्त्र की प्रतिनीतिता के कुछ पहलू	500
32	भारतीय लोकतन्त्र के लिए एक द्वांज	519

परिशिष्ट

1	भारतीय स्वातन्त्र्य आन्दोलन	523
2	महात्मा ज्मानन्द और भारतीय राष्ट्रवाद	531
3	रवीन्द्रनाथ, आरम-स्वातन्त्र्यवाद तथा मानव एकता	544
4	लोकनाथ तिलक	550
5	लिलक का बीडा-पहलू	555
6	बिबेकानन्द का शक्तियोग	566
7	बिबेकानन्द आधुनिक जगत के और-आदि	577
8	बिबेकानन्द का समाजसामन	585
9	महात्मा गांधी का समाज-वचन	593
10	रजिन्द्रनाथ	597
11	जवाहरलाल नेहरू	600
12	भारत के लोकमत तथा नेहरू	604
13	स्वराज्य और राजनीति विज्ञान	614
	सन्दर्भ-ग्रन्थ	617

1

भारत में पुनर्जागरण तथा राष्ट्रवाद

आधुनिक एशिया का प्रबुद्धीकरण, उसका नवजीवन का संचार तथा उसका दृढ़ पुनरुत्थान पिछले दो स्र के विश्व इतिहास की अत्यधिक महत्वपूर्ण घटना है। तुस्तु-तुनिया और बाहिरा से नैनर अलकता, चीन और टोलपी इन सवन हने प्राचीन प्राच्य की आत्मा के मुक्तिकरण का रूप देने का मिश्रता है। सुदूर अतीत में प्राच्य में चीन, भारत, बाबुल तथा मिस्र की सक्तिशाली साम्राज्यों की जन्म दिया था। प्राच्य में ही प्रथम साम्राज्यों तथा विश्व के धर्मों का उदय हुआ था। साम्राज्य के प्रकाश की विराम सत्रप्रथम एशिया में ही प्रसफुटित हुई थी। किंतु जब सोलहवीं शताब्दी में यूरोप के राष्ट्रा ने विज्ञान तथा औद्योगिकी (टेक्नॉलॉजी) का विकास आरम्भ किया तो उस समय के एशिया के लिए यूरोप के समस्त सदा यह सचना अलम्भ्य हो गया। सोलहवीं तथा सत्रहवीं शताब्दियों में यूरोपीय राष्ट्रवाद का उदय हुआ, वही ईशाने पर पश्य का उ-पादन होने लगा और बाणिज्य का अभुलपुष विस्तार हुआ। उस समय के एशिया यूरोपीय साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद का बीजानन बन गया। औद्योगिक शक्ति के आगमन से पारंपार्य दशा की आर्थिक तथा राजनीतिक शक्ति में और भी अधिक सुद्धि हो गयी। सठाहवीं शताब्दी में तथा नवीसवी शताब्दी के प्रारम्भिक काल में दक्षिणादी देशों में सवन आर्थिक अथ पतन, राजनीतिक अवरता¹, सामाजिक गतिहीनता तथा सामुदायिक सदाय के हरन दिखायी देने लगे। विश्व के इतिहास में एशिया की सचना अधील नोटि में होने लगी। भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना व्यवस्थित रूप से दक्षिण के साल प्रासीसी युद्ध (1740-1763), प्लासी की सदाई (जून 23, 1757) तथा बखर के युद्ध (अक्टूबर 23, 1764) और सार सानन द्वारा ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सौशानि अधिकारी को दिने जाने (अप्रैल 1, 1765) के साथ-साथ आरम्भ हुई। अलशाली ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने इस देश में बूनीति, शासनपद्धता तथा उच्य प्रकार के सैनिक सास्त्रालय की सधुष शक्तियों के साथ प्रवेश किया, और इसलिये उसने भारतीय राजनीति में प्रलय मचा की। परिणाम यह हुआ कि धीरे धीरे भारत का अधिपत्य भाव ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रादयिक स्वामित्व के अ-तलत बना गया। कलाइन, कार्ल हेसिटम्ब, बेंगलरी, सीड हेसिटम्ब तथा उसहीकी मुख्य नामन ने जिहोंने साम्राज्यवादी आधिपत्य की स्थापना में इस बाप की सध्यासि किया।

किंतु नवीसवी शताब्दी के मध्य में एशिया का सन तथा आत्मा एन सार पुन निर्दिष्ट रूप से जाग गये हैं। आज एशिया सवनर शक्ति में स्पर्धित है। शिव प्रमुष नेताता तथा महान् विमुक्ति का एशियादी कुम्भकरण के इस सवनर जागरण का ध्ये है उसका सुकषात केन, शिलन, शापी और बमाल दाया का स्वाय विनैपत उच्य तथा अद्भुत है। आज अधिल एशिया में राष्ट्रवाद की शक्ति का उत्तरोत्तर अलवशी हो रही है, और साथ ही सान आर्थिक तथा सामाजिक पुनरुत्थान की सौन भी और सल्य रही है। आधुनिक भारत में नवी राजनीतिक तथा सामाजिक शक्ति उद्धार के साथ उमर रही है। यह निर्दिष्टत सल्य सलिन है कि भारत में आधुनिक युग सारुब-के

1 किंतु नवी नवी राजनीतिक प्रीकरण का उदाहरण भी न। पकिनी भारत में सलने की सति का रूप से सलनशील है। सलिन पकीसत क युद्ध (1763) ने उसकी सारी सारत सलकाया।

जीवन-दर्शन आध्यात्मिकता तथा राष्ट्र प्रेम के ज्वलंत स्रोत हो गया था। अंग्रेज को पुनर्जागरित करने की यह मानवी आत्माएं तथा बहुवारण्य विदेशी सम्प्रदाय की महान् चुनौती के विरुद्ध प्रतिनिधायक रूप में उत्पन्न हुई थी। चूंकि यह सम्प्रदाय राजनीतिक दृष्टि से अल्पसंख्यक प्रजाती और आर्थिक दृष्टि से वसंतापी थी, इसलिए उनके विरुद्ध प्रतिनिधायक का होना और भी अधिक स्वाभाविक था। पश्चिम की आर्थिक सम्प्रदाय तथा भारत की धार्मिक तथा साम्प्रदायिकी संस्कृतियों के बीच इस समय से नया भारत का उदय हुआ।⁵ कुछ सीमा तक पुरानी संस्कृतियाँ सामंती व्यवस्था की मरणाभ्युत्थी आर्थिक विरोधताओं का प्रतिनिधित्व करती थी, और उसने विपरीत ब्रिटिश शक्ति व्यापारिक उत्पादन तथा वाणिज्य पर आधारित पूँजीवादी व्यवस्था की प्रतिनिधि थी।

विदेशी राजनीतिक शक्ति के आघात के विरुद्ध संचालन की व्यवस्था के रूप में देश की प्राचीन संस्कृतियाँ पुनः संघटित तथा संघेष्ट हो उठी तथा अपने अस्तित्व को पुनः आग्रहपूर्वक जतान लगी। प्राचीन ऋषी का नये मानकतावादी तथा संवत्सरवादी दृष्टिकोण के विश्लेषण किया जाने लगा। प्रायः प्राचीन धर्मशास्त्रों के आधुनिक वैज्ञानिक सिद्धांतों का बीच इतना निबालन का भी प्रयत्न किया गया। चूंकि विदेशी साम्राज्यवाद ने अक्सर नूर और विनाशकारी तरीका से काम लिया था, और भारत की पैगूर, मराठा, सिन्ध आदि बड़ी-बड़ी शक्तियाँ पीरे-पीरे भूमिसाल हो गयी थीं अतः देश समकालीन विचारधारा का पंथ गया। ऐसी स्थिति में देशवासियों के सामने धार्मिक तथा आध्यात्मिक सार्वभौम की खोज और कोई चारा नहीं रह गया था। परिणाम यह हुआ कि जिस प्रकार नया युग के इस्लाम तथा हिंदू शक्तियों के पारस्परिक समय की क्रिया ने भक्ति धारा तथा नाटक (1469-1539), गीत (1440-1518) पंचतंत्र, तुलसीदास (1532-1623) और ब्रह्मसंहिता के सम्प्रदायों की जन्म दिया था वैसे ही ब्रिटेन की प्रचण्ड राजनीतिक शक्ति तथा साम्राज्यिक साम्राज्यवाद के विरुद्ध प्रतिनिधायक के रूप में बहुत सनातन, दायना सनातन, आर्य समाज, राजगुरु आदी का उदय हुआ। पारंपारिक शिक्षा के प्रचार में एक ऐसा नया बुद्धिजीवी वर्ग उत्पन्न कर दिया था जिसकी देश के सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन में नहीं कोई जड़ नहीं थी। उनमें से कुछ ने वाणी ईसाईयत की अंगीकार करके सत्तावादी बना, या बुद्धिवाद और सांस्कृतिक धर्म के सामान्य जीवन धर्म के अनुयायी बन गये। किन्तु इस बुद्धिजीवी वर्ग के कुछ लोगों ने प्राचीन धर्मशास्त्रों की धारणा थी और अस्तित्व के आधार में आकर अतिरिक्त रूप से उनका पुनर्गठन किया।

इस पुनर्जागरित नवीन भारत के निर्माण में जिस महान् चालिका ने योग दिया उनमें ब्रह्म संचालन का स्थान अग्रगण्य है। इस संस्था में बंगाल में महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक तथा सामाजिक काम किया गया अनेक प्रकार के चीन दुर्गियों की सेवा-प्रश्रयता की। देश के आम माया में भी बहुत सनातन का प्रभाव पड़ा। राजा राममोहन राय (1772-1833) रवीन्द्रनाथ ठाकुर (1817-1905), तथा केदारचन्द्र सेन (1838-1884) ब्रह्म समाज के मुख्य नेता थे। यह आंदोलन बहुर एन्डरवाद, बौद्धिक हेतुवाद, उपनिषदी के अद्वैतवाद तथा ईसाई भक्तिवाद का समन्वय था। राजा राममोहन राय, उन विद्वानों में से थे जिन्होंने पहले-पहले तुलनात्मक धर्मों का अध्ययन प्रारम्भ किया था, यही कारण था कि वेधय ठाकुर ने उक्त 'मानव-सेवा' के क्षेत्र में कार्य करने वाले एक प्रयत्नित और विमल सहयोगी' कहकर अभिनंदित किया था। राजा 1820 के बाद ने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलनों से परिचित थे, और उक्त उनकी राजनीतिक भूमि की आधारभूत से दार्शनिक महानुभूति थी। ब्रह्म समाज ने सामाजिक गतिहीनता का विरोध किया है और इस संस्था के सिद्ध यह धर्म

5. ये एक पक्ष द्वारा के आधुनिक अतिरिक्त रूप के बहुत निम्न करने का प्रयत्न किया है कि ईसाईयत का स्वतंत्रता, स्वतंत्रता, ईश्वर के विरुद्ध तथा अध्यात्मिक आधुनिकता अति अग्रगण्य का आधुनिक राष्ट्रीय चिन्तन पर प्रभाव पड़ा है। वेधिये के एक पक्षद्वारा *Modern Religious Movements in India*, पृष्ठ 430-444। अग्रगण्य आधुनिकता का कारण है कि पुराने तथा ईसाईयत का जीवन तथा चिन्तन का अंगीकार करने का सफल का तथा देश के मानव का आधुनिक भारतीय चिन्तन का प्रभाव पड़ा है। अतिरिक्त अग्रगण्य *Indian Thought and Its Development*, पृ. 209।

6. ब्रह्म समाज की स्थापना 23 अक्टूबर, 1830 का हुई था। यद्यपि उनका नाम प्रचार का नाम 1828 में ही आरम्भ कर दिया था।

की बात है कि जगदीशचन्द्र बोस, रवीन्द्रनाथ टैगोर, ज्योतिर्नाथ नील और बिलिन्गहम बाल पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा था।

आज समग्र भारत का अर्थ अतिथानी धार्मिक तथा सामाजिक आन्दोलन रहा है। इसकी स्थापना 1875 में हुई थी। इस कमान के संस्थापक स्वामी दयानन्द श्रेष्ठ के अद्वितीय पण्डित, प्रथम श्रेणी के न्यायिक और पारिवर्तनकारी के महान् उपदेष्टा थे। उन्होंने भीमबा की कि सब मनुष्यों को वेदाध्ययन का अन्तर्निहित अधिकार है। यद्यपि आज कमान विमुक्त वैदिक संस्कृति के पुनरुद्धार का समर्थक रहा है, फिर भी उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की, विशेषकर पञ्जाब के महान् नेता की है। उन्होंने उससे भारत की हिन्दू जनता में गहरी जड़ें जमा ली थीं। उसने हिन्दूओं में एक नयी आध्यात्मिक तथा सत्तापूर्ण भावना उत्पन्न की। समग्र गुप्ता का भी उसने समर्थन दिया। इसका तथा स्वामी अज्ञानन्द ने की ए वी नाथिज लाहौर तथा मुहम्मद बापडी की स्थापना उनके पिता के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान किया है। आज कमान ने बड़े नेता तथा साधक राज आधुनिक भारतीय राजनीति की अग्रणी विधुविधा में से से, और अनेक वर्षों तक इनका चिन्तन तथा नीति के साथ पण्डित साहचर्य रहा था।

यूरोप के भारत विद्या विचारदों तथा साधनियों ने भी प्राचीन संस्कृत साहित्य का अध्ययन करके भारतीयों की आत्मविश्वास की भावना के विकास में महत्वपूर्ण योग दिया है। बिलिन्गहम, आन्स, बील्डरु (1765-1837) तथा एच. एच. विलसन महत्वपूर्ण संस्कृत ग्रन्थों के अनुवाद के लिए उत्तरेकामी हैं। गोर्दनहार्बर ने उपनिषद् की ऐतिहासिक रूपों के दोषपूर्ण वैदिक अनुवादों के माध्यम से बड़ा और दृढ़ विचार पर प्रभाव कि सम्पूर्ण विश्व में उपनिषद् का अध्ययन सबसे अधिक लाभदायक तथा अग्रगण्य का प्रयत्न करने वाला और उदात्त बनाने वाला है। रीच, बील्डरु-लिक, वासिल (1800-1876), ई. वॉल्फ (1807-1852) तथा ओल्डेनबर्ग भारत विद्या के प्रकाशक बलित थे।⁷ ई. सेनाट, एच. पाकोपी, हिल्डेब्राइट, आर. पार्से, बर्बर, बुकविन, मोनिवर विलि-यम्स, हैनरी एस. सीवी, मजकानल हिल्डेगे, म्यून्चरलेड आदि की संस्कृत के प्रकाश विद्यान थे। पश्चिम में अनेक प्राध्यापकिका तथा भारत विद्या विचारदों ने भी प्राचीन भारतीय ग्रन्थों का आधा विचार, पुनरात्मक इतिहास तथा भाषा जीवन्त विचार के आधार पर विवेचन करने की सलीप कर लिया किन्तु एडिन्बर्ग, डी. वॉल्फ, बर्बर, बील्डरु आदि विचारकों ने प्राचीन भारत की बड़ी प्रशंसा की। इस देश में उनकी प्रकाशमय टिप्पणियों का प्राचीन पञ्चासनों के महत्व तथा उनके विद्यमान बहुमुख्य नाम के प्रति लोगों की खोज की अधिक दृढ़ बनाने के लिए व्यापक रूप से प्रकाश दिया गया। प्राध्यापक विद्यानों ने संस्कृत के अध्ययन में जो पश्चि दिवलादी उनके पण्डितरूप पुनरात्मक पुराण विद्या तथा पुनरात्मक भाषा विचार नाम के बड़े प्रकाश का काम हुआ। स. अने कुर्कोट, रिचम तथा विलियम ने भारतीय भाषा आदि विचार, कला इतिहास, तथा भारतीय पुराण आदि शास्त्रों की स्थापना के कार्य में नेतृत्व किया। यूरोपीय विद्यानों ने वेदों की प्राचीनता, पुनरात्मक धर्मों⁸ तथा यूरोपीय भाषा आदि विचार के आदि विचार स्थापित सम्प्रदायों में भी पश्चि दिवलादी की और इन विचारों पर एकजो प्रभाव रहे। आर. एल. विच

7. सी. ए. वी. नाथिज का म्पापना का पुनर् प्रकाश इंग्लैण्ड, पुनर् विद्यादी (1864-90) तथा भारत आन्स का नाम की था।

8. बिलिन्गहम ने 1785 में अग्रणी का प्रकाश का अनुवाद किया और बीच ने 1790 में अग्रिष्ठान्त भाषाविद्यन का भाषाविद्यन प्रकाशित किया। बिलिन्गहम आन्स (1746-1794) ने 1784 में ऐतिहासिक लोकाद्वी आन्स जनता की स्थापना की। 1792 में आन्सनाम में एक अग्रिष्ठ विचार स्थापित किया गया। 1821 में बिलिन्गहम आन्स का नाम की थी।

9. बीच हीन ने 1846 में *The Literature and the History of the Vedas* प्रकाशित की। 1852 में बीच और डी. वॉल्फ ने का- विचार में अग्रिष्ठ तथा पुनरात्मक नामों का *Varianbuch* का प्रकाश आन्स किया। बीचगुप्ता ने 1849-75 में भाषा भाषा विचार आन्स का प्रकाश किया।

10. इतिहास नाम के एक अग्रिष्ठ में अग्रिष्ठ नामों का संस्कृत विद्यादी की।

11. भाषा विचारों में प्रकाशित *The Sacred Books of the East* नामक ग्रन्थनाम अग्रिष्ठ विचार का प्रकाश है।

(1824-1891), हर्षप्रसाद शास्त्री, और जी नरहरचर, रमेश दत्त¹² तथा बाबू गंगाधर तिलक ने भी अध्ययन के क्षेत्र में योग दिया।

यूरोपीय भारत विद्या विद्यार्थी के अध्ययन का मुख्य क्षेत्र भाषाओं से सम्बंधित था और उनकी पद्धति वैज्ञानिक थी। इनके विपरीत विद्यासोपेक्षित साक्षात्दी ने, जिनकी स्थापना 1875 के मई-जून-सत्र (1831-1891) और बलरू ओल्काट व की थी, पहले वाली जनता का ध्यान प्राचीन विद्वान के उन बहुमुखी की ओर आकृष्ट किया जिसका सम्बंध सोनोतर जीवन, अथ मनीमय जगत, मनु तथा ब्रह्मोषणरत जीवन की समस्याओं से था।¹³ इससे कुछ लोग के मन में जीवन के उन मानसिक सारा के प्रति उत्कण्ठ आग्रह हुई जिसका बचन प्राचीन हिंदू धर्मशास्त्रों में पाया जाता था। विद्यासोपी ने हिंदू लोग के विचारों और पारम्पर्य का वैज्ञानिक विमर्श की बहावली में व्याख्या करने का भी प्रयास किया। इस विद्योसोपी आन्दोलन के नेताओं में एक सबसे बड़ा नाम श्रीमती एनी बेन्ट का है। जीनकाट और ब्लैकटर्नी पर जोड़ी के आचारवाद का प्रभाव पड़ा था।¹⁴ इनके विपरीत एनी बेन्ट की हिंदू धर्म से बहुरी प्रेरणा मिली थी, और उन्होंने पौराणिक हिंदू धर्म तथा कर्त्तित्व का भी उपस्था नहीं की। उन्होंने 1893 के भारत भूमि पर पदचलन किया। हिंदुओं के धर्म और संस्कृति के प्रति उनकी मजिद वास्तविक, गहन तथा अदभुत थी। उन्होंने हिंदू संस्कृति के हर रूप और पक्ष का अध्ययन किया। 1913 में वे भारतीय राजनीति में कूद पड़ी और उन्होंने अनेक वर्षों तक भारतीय नेताओं के परिचित सम्पर्क में रहकर कार्य किया।

रामकृष्ण परमहंस के प्रमुख गिण्ड स्वामी विवेकानन्द ने एक आम ऐसा आन्दोलन प्रस्थापित किया जिसने हिंदुत्व के व्यापक तथा समग्र रूप का पक्षपोषण किया। सभी स्वीकार करते हैं कि रामकृष्ण की आध्यात्मिक अनुभूति वास्तविक बहुरी और धार्मिक दृष्टि बहुत ही व्यापक थी। बंगाल के आध्यात्मिक तथा वैज्ञानिक पुनर्निर्माण पर उनकी भारी प्रभाव पड़ा है।¹⁵ स्वामी विवेकानन्द बड़े पैमाने पर महान् बला थे। वेदांत के मार्ग में तथा पारम्पर्य वस्तु धर्मों में ही उनकी अदभुत पहचान थी। 1893 के गिण्डा के विश्व धर्म सम्मेलन में उन्होंने जो ऐतिहासिक भूमिका भरी की उससे अमेरिका में और अलग-अलग यूरोप में हिंदुत्व के प्रचार का मार्ग प्रसारित हुआ। यद्यपि वेदांती होने के नाते विवेकानन्द विश्व ब्रह्मण्ड के आरंभ की मानने वाले थे, फिर भी उन्होंने उत्कण्ठ देश मजिद की, और उन्होंने भारतीयों की अस्वतंत्रता, धार्मिक, और सबसे अधिक निर्वीर्यता का उपस्था दिया। यद्यपि अतिशय कार्य करने के कारण उनकी अस्वास्थ्य में ही मरु हो गयी, फिर भी उन्हें बंगाली राष्ट्रवाद का आध्यात्मिक जनक माना जाता है, और यह उचित ही है। बंगाली राष्ट्रवाद का मार्ग तथा बड़े-बड़े-बड़े के रूप में विवेकानन्द की भूमिका की सराहना तात्का आवश्यक रूप तथा सुभाषचन्द्र बोस दोनों ने की है। 1892 में स्वामीजी तिलक के महा अतिथि बनकर ठहर थे, और दोनों ने एक दूसरे के प्रति बहुरी सम्मान तथा प्रेम था।

उत्तर भारत तथा बंगाल प्रांत में पुनर्जागरण का रूप मुख्यतः आध्यात्मिक तथा धार्मिक था। मद्रास में राजनीतिज्ञ पैल्लव आग्रह करने वाली महान् विधुति में और रायचाराय, मुखाराम कुर्नु, देवदास नाइडू तथा जी सुप्रसन्न अम्बर के नाम उल्लेखनीय हैं। विद्योसोपी का भारतीय मुख्य स्थान मद्रास में था। किन्तु पश्चिमी भारत में पुनर्जागरण प्रधानतः सामाजिक तथा वैज्ञानिक

12 रमेशचन्द्र दत्त (1848-1909) 1869 में आई थी एवं की प्रीमोवीरी परीक्षा के सम्बंधित हुए और बंगाली भाषा की। उन्होंने *Economic History of India* (दो खण्डों में) का अतिथि *The Civilisation of Ancient India* (3 खण्डों में) नामक कार्य भी किया। उन्होंने 'राम' महाश्वर और रायचाराय का अनुवाद भी किया। उन्होंने अन्धता में व्यवस्था (1874), महाश्वर जीवन प्रकाश (1877), 'राष्ट्रधर्म जीवन मजिद' (1878) 'बंगाल' (1893) आदि रचनाएं की हैं।

13 प्रीमोवीरी परीक्षा के सम्बंधित तथा बंगाली 'वस्तु' का बीच कुछ पर व्यवहार की हुआ था। जीनकाट (1832-1907) तथा 'गण्डाकी' 1879 में भारत आये। किन्तु इन दोनों बंगाली तथा बहुरी बंगाली बंगाली का बीच बहुरी सम्पर्क नहीं हो सका।

14 1880 में जीनकाट और 'ब्लैकटर्नी' ने भारत में जीनकाट की योजना की थी।

15 बंगाल में राज आरंभण योग ने 1881 में जीनकाट की भाव में जीनकाट काय मजिद मजिद जीनकाट बंगाल की स्थापना की थी।

की बात है कि जगदीशचन्द्र बोस, रवीन्द्रनाथ टैगोर, प्रबोद्धनाथ सील और विपिनचन्द्र पाल पर इनका गहरा प्रभाव पड़ा था।

आम समाज भारत का एक चरित्रवादी दार्शनिक तथा सामाजिक आन्दोलन रहा है। इसकी स्थापना 1875 में हुई थी। इस समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द वैद्यो के जड़ितोय पण्डित, प्रथम श्रेणी के वैवाचिक और धार्मिक एकेडमिस्ट के महान् उपदेष्टा थे। उन्होंने बीपना की कि सन मनुष्यो को वेदाध्ययन का नैतिक अधिकार है। यद्यपि आम समाज विपुल धार्मिक संस्कृति के पुनरुद्धार का समर्थन रहा है, फिर भी उसने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की, विशेषकर प्रभाव में, महान् सेवा की है। उसने उत्तरी भारत की हिन्दू जनता में गहरी जड़ें जमा ली थी। उसने हिन्दुओं में एक नयी आत्मज्ञान तथा सत्य मानना उत्पन्न की। समाज-सुधार का भी उसने समर्थन दिया। स्वयंसेवक समाज स्वामी भद्रानन्द ने भी ए. बी. बालिज आहोरे⁷ तथा मुण्डल कामठी की स्थापना करके शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। आम समाज के बड़े नेता लाला लाजपत राम आधुनिक भारतीय राजनीति की अग्रणी विभूतियां थे वे थे, और अनेक वर्षों तक उनका शिक्षण तथा गोपनीय ने आम धर्मिक ग्राह्यपण रहा था।

युरोप के भारत विद्या विचारको तथा दार्शनिकों ने भी प्राचीन संस्कृत साहित्य का अध्ययन करके भारतीयों की आत्मविश्वास की भावना के विकास में महत्वपूर्ण योग दिया है। बिलिन्स, बाल्क, बोल्लुच (1765-1837) तथा एक एक विद्वान महत्वपूर्ण संस्कृत ग्रन्थों के अनुवाद के लिए उत्तरेखनीय हैं। गार्नेनहायर ने उपनिषद् की ऐतिहासिक दृष्टी से दोषपूर्ण सीटिंग अनुवाद⁸ का अध्ययन से बड़ा और इस विषय पर पढ़ा कि सम्पूर्ण विश्व में उपनिषद् का अध्ययन सबसे अधिक लाभदायक तथा आरम्भ का प्रसन्नता देने वाला और उदात्त बनाने वाला है। रीच, बोल्ड-सिन्ग, लालेन (1800-1876), ई. वनॉक (1807-1852) तथा ओल्डेनबर्ग भारत विद्या के प्रचारक पण्डित थे।⁹ ई. मैनाट, एक मासीरी, हिलेब्राइट, आर. शार्प, वेबर, मुडविग, मोनियर विलि-मन्स, हेनरी एस. पॉली, मैकडोनाल्ड, फ़्लिटने, ब्लूम्फील्ड आदि भी संस्कृत के प्रसारक विद्वान थे। पश्चिम के अनेक प्राध्यापनिका तथा भारत विद्या विचारको ने भी प्राचीन भारतीय ग्रन्थों का भाषा विज्ञान, तुलनात्मक इतिहास तथा भाषा जीवशास्त्र विज्ञान के आधार पर विश्लेषण करने की सलाह कर दिया, किन्तु सावनहायर, स्टीवन्स¹⁰, मैक्स मूलर, रोमरन आदि विचारकों ने प्राचीन भारत की गहरी प्रशंसा की। इस देश में उनकी प्रकाशनात्मक टिप्पणियों का प्राचीन पञ्चसाधना के महत्व तथा उनमें विद्यमान बहुमुख्यता का दृष्टि लोको की बढ़ा को अग्रिम बढ़ बनाने के लिए व्यापक रूप में प्रयोग किया गया। पश्चात्काल विद्वानों ने संस्कृत के अध्ययन में जो रुचि दिखानायी उसके पश्चात्काल तुलनात्मक युरोप विद्या तथा तुलनात्मक भाषा विज्ञान नाम के नये शास्त्रों का जन्म हुआ। न अनेक दुवाद, प्रियम तथा वनिचम ने भारतीय भाषा-साहित्य विज्ञान, वक्ता इतिहास, तथा भारतीय युरोप आदि शास्त्रों की स्थापना का काम में मेलित किया। युरोपीय विद्वानों ने वैद्यो की प्राचीनता तुलनात्मक ग्रन्थों¹¹ तथा यूरोपीय भाषा भाषिका के आदि विज्ञान स्थान में सम्पूर्णतः सम्प्रदाय में भी रुचि दिखानायी थी और इन विषयों पर एकजो प्रारंभ रहे। आर एल. विम

7 डी. ए. बी. बालिज का स्थापना का पुस्तक संग्रहण, युरोप विद्या (1864-90) तथा लाला लाजपत राम की थी।

8 बिलिन्स ने 1785 में अरिनी में लाला का अनुवाद किया और फल में 1790 में बिलिन्स साधुलम्प का भाषांतर प्रकाशित किया। बिलिन्स काय (1746-1794) के 1784 में एलिफाटिक भाषाओं का संग्रह का अन्वयण की। 1792 में भाषाओं में एक महत्वपूर्ण अरिन्स स्थापित किया गया। 1821 में लाला लाजपत राम की भीम भाषा गयी।

9 एलिफाटिक होन के 1846 में *The Language and the History of the Vedas* प्रकाशित था। 1852 में रीच और बोल्ड 'विम' का काम किया। न अग्रिम तथा मुण्डलीनहायरी काय *Edinburgh* का प्रकाशन आरम्भ किया। मैकडोनाल्ड ने 1849-75 में लाला काय गहिर 'एन' का अन्वयण किया।

हिलेब्रिट नाम के एक अरिन्स के युरोपीय अरिन्स का अनुवाद किया था।

वक्ता 11 एनरिक *The Sacred Books of the East* नामक प्रकाशना युरोप पश्चिम का

(1824-1891), हरप्रसाद शास्त्री, आर भी बहादुर, रमेश दत्त¹ तथा दास बगधर तिलक ने भी सम्मेलन के क्षेत्रों में योग दिया।

यूरोपीय भारत विद्या विचारकों के सम्मेलन का मुख्य दोष भाषाओं में सम्मिलित या और कभी कभी वैज्ञानिक भी। इसके विपरीत बियोसोफीयल सोसाइटी ने, जिसकी स्थापना 1875 में महम स्क्वर्ड्फी (1831-1891) और फन्स ओल्फाट ने की थी, पहले वाली जनता का ध्यान प्राचीन चिन्तन से अब बहुमुखी की ओर आकर्षित किया जिनका सम्बन्ध लोकोत्तर जीवन, अथ मनोमय जगत, मनु तथा मर्यादित जीवन की समस्याओं से था।¹² इससे कुछ लोगों के मन में जीवन के उन मानसिक स्तरों के प्रति उत्कण्ठा आरम्भ हुई जिसका वर्णन प्राचीन हिन्दू धर्मशास्त्रों में पाया जाता था। बियोसोफी ने हिन्दू धर्म के विचारों और धारणाओं का वैज्ञानिक विचार की पड़ावनी में व्याख्या करने का भी प्रयत्न किया। इस बियोसोफी का जीवन के नेताओं ने एक सबसे बड़ा नाम श्रीमती एनी बेसेंट का है। ओल्फाट और ब्लैन्टर्न की पर बौद्धों ने आचारवाद का प्रभाव पड़ा था।¹³ इसके विपरीत एनी बेसेंट की हिन्दू धर्म से गहरी प्रेरणा मिली थी, और उन्होंने पौराणिक हिन्दू धर्म तथा भक्ति युगा की भी उपस्था करी थी। उन्होंने 1893 में भारत भूमि पर पदार्पण किया। हिन्दुओं के धर्म और संस्कृति के प्रति उनकी गहरी वास्तविक, बहुत तथा अद्भुत थी। उन्होंने हिन्दू संस्कृति के हर रूप और पक्ष का पमचन किया। 1913 में वे भारतीय राजनीति में बूढ़ पड़ी और उन्होंने अनेक वर्षों तक भारतीय नेताओं के परिष्ठ सम्पर्क में रहकर कार्य किया।

रामकृष्ण परमहंस के प्रमुख शिष्य स्वामी विवेकानन्द ने एक अर्थ ऐसा आन्दोलन चलाया जिसने हिन्दुओं के व्यापक तथा तमय रूप का प्रस्तोषण किया। सभी स्वीकार करते हैं कि रामकृष्ण की आध्यात्मिक अनुभूति अत्यन्त गहरी और घनिष्ठ हृष्टि बहुत ही व्यापक थी। बंगाल के आध्यात्मिक तथा अतिरिक्त पुनर्निर्माण पर उनका गहरी प्रभाव पड़ा है।¹⁴ स्वामी विवेकानन्द गहरे वैशाकी तथा महान वक्ता थे। वैशाख के बाद मय तथा पारचाय दशम दोनों में ही उनकी अद्भुत प्रवृत्ति थी। 1893 में सिकागो के विश्व धर्म सम्मेलन में उन्होंने जो ऐतिहासिक सुमित्रा बधा की उससे अमेरिका में और अगले यूरोप में हिन्दुत्व के प्रचार का नाम प्रस्ताव हुआ। यद्यपि वैशाली होने के नाते विवेकानन्द विश्व सम्प्रदाय के आदर्श की मानने वाले थे, फिर भी उनमें उत्कण्ठ देश भक्ति थी, और उन्होंने भारतीयों की आत्मनिर्भरता, शक्ति, और सबसे अधिक निर्भीकता का उपदेश दिया। यद्यपि अतिरिक्त नाम करने के कारण उनकी भरपाय में ही मनु हो गयी, फिर भी उन्हें बंगाली राष्ट्रवाद का आध्यात्मिक जन्म माना जाता है, और यह उचित ही है। बंगाली राष्ट्रवाद के नामक तथा नदेशवाहक के रूप में विवेकानन्द की भूमिका की सराहना तादाता राजन्य राम तथा सुभाषचन्द्र बोस दोनों ने की है। 1892 में स्वामीजी तिलक ने महा अतिथि बनकर उभरे थे, और दोनों में एक दूसरे के प्रति गहरा सम्मान तथा प्रेम था।

उत्तर भारत तथा मद्रास प्रांत में पुनर्जागरण का रूप मुख्यतः आध्यात्मिक तथा धार्मिक था। मद्रास में राजनीतिक चेतना जाग्रत करने वाली महान् विधुतिपा में और रायवाचाम, सुभाषचन्द्र कुम्ल, रमदास नाइडू तथा जी सुधमय्य अत्यन्त के भाव उत्प्रेरकनीय हैं। बियोसोफी का भारतीय मुख्य स्थान मद्रास में था। किन्तु पश्चिमी भारत में पुनर्जागरण प्रधानतः सामाजिक तथा शक्ति

12 एमकाउट दत्त (1848-1909) 1869 में लार्ड की एम की उल्लिखित परीक्षा में सम्मिलित हुए और पदमल प्राप्त की। उन्होंने *Economic History of India* (दो भागों में) व अतिरिक्त *The Civilization of Ancient India* (3 भागों में) नामक ग्रन्थ का किया। उन्होंने कृष्ण, महाभारत और रामायण का अनुवाद भी किया। उन्होंने बंगला में कनिष्ठता (1874), महाभारत जीवन प्रकाश (1877), 'राजपुत्र जीवन' (1878) 'समाज' (1895) आदि उपचार का किया।

13 बियोसोफीयल सोसाइटी के संस्थापक तथा स्वामी दशम" व और कुछ वर्ष सम्प्रदाय की दशा था। ओल्फाट (1832-1907) तथा "नवंबर 1879 में भारत आया। किन्तु उन्हें बोसों नदेशवा तथा बहुत सम्मानों दया" व आर्थ अर्थवाच सम्भव बहुत ही महान।

14 1880 में ओल्फाट और स्क्वार्ड्फी ने तथा व बौद्ध व पश्चिमी की टीका की थी।

15 बंगाल में राज रायचम नाम व 1861 में श्रीमद्गोपी बाई " ओल्फाट की उपचार गहरी मान्य मान्य की स्थापना की थी।

समाज की उत्पत्ति वाली तथा बराबरा जातियाँ के मुफार के लिए हुई थी, किन्तु बाद में इसने स्पष्टतः ब्राह्मण विराधी विप्लव अपना ली। फिर भी यह कहा जाता है कि पहले से कोल्हापुर मानहानि के अधिनियम के तिलव के लिए वैयक्तिक जमानत की व्यवस्था की थी। पहले की आलोचनाओं के विरुद्ध ही विप्लववादी न प्रसिद्ध निबंधमाला में यह धारणात्मक लेख लिखे थे। महाराष्ट्र के वैयक्तिक तथा सामाजिक जीवन में इससे कहीं अधिक महत्वपूर्ण प्रायः समाज का। 1849 में दाबोदा पाण्डुरंग (1823-1898) ने ब्रह्म समाज की एक शाखा के रूप में परमहंस सभा की स्थापना की थी, किन्तु यह महत्वहीन सिद्ध हुई और यीशु ही विविध हो गयी। 1867 में नेशवन्धर सेन बम्बई श्वेत और प्रायः समाज की स्थापना में सहूल की। श्वेत की बम्बईकर (1837-1927) तथा महादेव गोविंद रानाडे प्रायः समाज के दो बड़े नेता थे। बाद में एन जी चंदावरकर भी उनके साथ समाज में सम्मिलित हो गये। समाज न थड़ा तथा छात्रवृत्त चिंतन के स्थान पर सामाजिक काम की अधिक महत्व दिया। उसकी दिशा सुधारवादी थी, और उन्होंने विधवा विवाह, अंतर्जातीय विवाह तथा अंतर्जातीय शास्त्रज्ञान का समर्थन किया। उसने समाज के अधिकांश हीन तथा वरिष्ठ वर्गों के उद्धार की भी अपने वाक्यधन में सम्मिलित किया। प्रायः समाज पर ईसाईयत के प्रतिक्रियावाद का भी कुछ प्रभाव था। यहाँ तक सामाजिक सम्बन्धों की बात की ब्रह्म समाज की तुलना में उसकी जड़ें हिन्दुत्व में अधिक गहरी थी। रानाडे ने स्वयं उक्त इस बात की बात देकर कहा कि समाज के सदस्यों ने अपने की हिन्दु समाज से वृद्ध करके नया सम्प्रदाय बनाने का कभी इरादा नहीं किया।

उन्नीसवीं शताब्दी के महाराष्ट्र में दाबोदा पाण्डुरंग, बालसाहनी जम्बेकर, नावा सफरखेत, विष्णुदासजी, बम्बई के डा नाथोदाजी और मोराल हरि देवमुख (1823-1892) आदि अनेक महान् व्यक्ति थे जो पूना के 'हितवादी' कहलाते थे। श्वेत की बम्बईकर भारत विद्या विचार के रूप में सम्पूर्ण देश में विस्फोट हो गये और समस्त ने विद्या ने रूप में ही उनका नाम स्मारक में प्रसिद्ध हो गया।¹⁹ सामाजिक मुफार में उनकी गहरी रुचि थी। वे एक मुक्तक रूप में महत्ववादी व्यक्ति थे। किन्तु रानाडे न सबसे अधिक श्रेष्ठता तथा प्रतिष्ठा प्राप्त की। कुछ क्षण में रानाडे की महाराष्ट्र के जागरण का जनक माना जाता है। उनका व्यक्तित्व इतना चरित्रवाली था कि वे बम्बई प्रांत के सर्वोच्च महत्ववादी राजनीतिक नेताओं के रूप में गये। ब्रह्म तक कि नौकरी भी उन्हें अपना गुरु मानते थे। महादेव गोविंद रानाडे ने 1865 में एम ए की उपाधि प्राप्त की और दूसरे वर्ष विधि की उपाधि प्राप्त कर ली। 1871 में वे पूना में अधीन 'मासाधीन' के पद पर नियुक्त हुए और 1893 में उन्हें पदोन्नत करते पूना उच्च 'मासाधन' का 'मासाधीन' नियुक्त कर दिया गया। रानाडे की मेधावर्ति अत्यंत सूक्ष्म तथा गम्भीर थी। उनके 'एलेज ऑन इंडियन इक्वालिटी' (भारतीय अवस्थान पर निबंध) अन्धकार की सूक्ष्म-सूक्ष्म के घटक है। उनका आग्रह था कि भारत की आर्थिक समस्याओं को भारतीय दृष्टिकोण से देखने और समझने का प्रयत्न करना चाहिए। वे एडम स्मिथ, रिक्साडो, मिल आदि के आर्थिक सिद्धांतों को बिना समीक्षा किये ज्यों का त्यों अंगीकार कर लेने के विरुद्ध थे। उनकी 'राष्ट्र और मराठा पावर' (मराठा शक्ति का वर्णन) नामक पुस्तक कल्पि अतृप्त है, फिर भी उसमें उन्होंने मराठा रूप में मूल में निहित राष्ट्रीय भावनाओं का विशिष्ट रूप में विवेचन किया है उसकी देखते हुए उसका विशेष महत्व है। उन्होंने धार्मिक देश विद्या के सम्बन्ध में भी कुछ महत्वपूर्ण निबंध लिखे। उनकी जनक योजना में आवश्यक रुचि थी। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की नींव डालने वाले नेताओं के साथ उनका घनिष्ठ सम्बन्ध था। ब्रिटिश सरकार की सेवा में एक 'आवाधीन' होने ने नाते के कांग्रेस के कार्यप्रभाव में अत्यंत घनिष्ठ गहरी हो सकते थे, किन्तु पदों के पीछे रहकर उन्होंने महत्वपूर्ण काम किया। यही कारण था कि ब्रिटिश सरकार उन पर संदेह करने लगी और उन्हें बम्बई विश्वविद्यालय का उप-कुलपति नहीं नियुक्त नहीं किया गया, यद्यपि वेल्स, मन्डार-

कर आदि को उप कुलचरित्र बना दिया गया था। उन्होंने अनेक सभाओं तथा निगमित सभा की या ही स्वयं स्थापना की या उनकी सम्मतिगत रहे। इनमें औद्योगिक सम्मेलन (द इन्डस्ट्रियल कोन्फरेंस) साप्ताहिक पुस्तकालय (द जनरल लाइब्रेरी), महिला हार्ड स्कूल (द वीमेन हार्ड स्कूल) तथा सबसे महत्वपूर्ण प्रायः समाज और माध्यमिक सभा व।¹⁰ उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के साथ-साथ एक सामाजिक सम्मेलन करने की प्रथा चलाई और स्वयं नियमित रूप से उनके सम्मेलनों में सम्मिलित होते रहे। 1901 में रानाडे का देहाव हो गया। गोपाल कृष्ण गोखले महाराष्ट्र तथा देश के लिए उनकी सबसे बड़ी विरासत थे। रानाडे की मृत्यु के उपरांत तिलक ने जनवरी 1901 में 'वैतरी' में एक लेख लिखा, और उसमें उन्होंने मेधावर्तिक की विद्याभ्यास की हृष्टि से रानाडे की कुलना हमारी और माधवाचार्य से की। तिलक के अनुयायि विभिन्न साधारण की स्थापना के बाद रानाडे पहले नेता के बिना महाराष्ट्र के उचित तरीके से नवी चेतना तथा प्रगति पूर थी। नाना फर्नरीस की प्रति रानाडे ने भी अपनी सम्पूर्ण प्रगति महाराष्ट्र की भूमि और उत्थान में तथा की। यद्यपि उन्होंने स्वयं साप्ताहिक समा की स्थापना नहीं की थी, फिर भी 1871 से, जब यह पुना में 'माधवाचार्य' होकर गये, 1893 तक उसके सभी सम्पादकों ने प्रमुख सुधार का कार्य करते रहे। साप्ताहिक समा के सम्पादन गणेश कामदेव बोधी थे। साप्ताहिक कार्य में अधिक रुचि दिखाने के कारण वे प्रायः 'साप्ताहिक बाबा' के नाम से प्रसिद्ध थे। यद्यपि समा की स्थापना पुना के पतौली सम्पादन की दशा सुधारने के विविध उद्देश्य से की गयी थी, किन्तु बाबातर में यह महाराष्ट्र की अपनी राजनीतिक सम्पादन बन गयी। 1872 में उसने भारतीय समाज की स्वदीय समिति के समक्ष एक प्रतिनिधि लेखने का निगम किया, किन्तु योग्यता विधानविद्ध न हो सकी। 1878-79 के दुष्प्रसिद्ध में रानाडे की प्रथा से समा उनके बीम नेहरू से समा ने महाराष्ट्र की दुखी कुल चेतना के पट्टे को दूर करने के लिए महान् कार्य किया। उनके स्वदीय पत्र यह है कि 1905 के स्वदेशी आन्दोलन से लगभग चौधौं दशक में पहले साप्ताहिक समा में महाराष्ट्र में स्वदेशी का प्रयोग आरम्भ कर दिया था। तिलक स्वयं स्वदेशी के समर्थन समर्थक और प्रयोगकर्ता थे। 1876 में महाराष्ट्र में एक प्रसिद्ध राजनीतिक पत्रिका पटी। कामदेव अवगत पत्रके थे, जो रानाडे की प्रति प्रकाशी और वे, बिनाह का अपना भद्रा कर दिया। उन्होंने कुछ अनुयायी एकत्र कर लिये और उनकी सहाय्य सहायता से विभिन्न सरकार की उपाय करने का निगम प्रभाव किया। पत्रके का बिनाह प्रकाश दिया गया और वे स्वयं निर्वासित कर दिये गये। सर रिचार्ड टम्पस की सरकार को सदैव था कि इस पत्रिका के पीछे रानाडे ही मुख्य शक्ति थे, किन्तु कुछ समय उपरांत सरकार का सदैव दूर हो गया।

विष्णु कृष्ण विमलुनगर (1850-1882) और अनिमल पटवर्गी न आधुनिक युग में राष्ट्रीय भावनाओं की उभाटने में महत्वपूर्ण योग दिया। अनिमल पटवर्गी (1838-1898) भारत के पुनर्जागरण आन्दोलन के एक प्रमुख नामक थे।¹¹ उन्होंने 1872 में 'अनन्दाचार्य' की स्थापना की। 1882 में उन्होंने 1872-75 के सप्तमी बिनाह पर आधारित अपना ऐतिहासिक उपचार 'आनन्द मठ' प्रकाशित किया। श्री अनिमल ने प्रथम में अनिमल एव महान् भूमि चलाया साहित्य तथा समाज भाषा के सभ्य और समाज की राजनीतिक प्रथा के सम्पादन थे। विमलुनगर सरकारी जीवन थे। किन्तु उनके पुरस्कार तथा व्यक्तिगत स्वभाव के कारण सरकारी अधिकारियों में उनकी पट न सकी, और पिछा विभाग की अन्तरी जीवन में समा-पत्र द दिया। यह महान् सेवा के और अपने की 'सप्तमी भाषा का विचारों' कहा गया थे। उनमें महान् हृष्ट तथा आनीकभाषा भाषा हम सभी के लिए बलिष्ठी तथा चरित्रिकस्वी का स्मरण विचारों है। उन्होंने रानाडे, गोपाल हरि देवगुण¹² और सभी समाज की दित भाषा और भाषा में समाज की उत्तम हम विचार,

20 साप्ताहिक समा की स्थापना 'बाबा' बोधी ने की थी।

21 अनिमल के महान् कार्य का है—'पूर्वार्ध' (1864), 'अनन्दाचार्य' (1864), 'अनन्दाचार्य' (1864), 'अनन्दाचार्य' (1864), 'अनन्दाचार्य' (1864) की मा रचना की।

22 गोपाल हरि देवगुण न पटवर्गी न 'साप्ताहिक समा' तथा 'विचार' का प्रकाश की।

यह और मैकॉले का स्वरण हो जाता है। उन्होंने 'काम्येतिहास सग्रह' तथा 'निबन्ध माला' के रूप में अपनी साहित्यिक रचनाएँ प्रस्तुत की। उन्होंने सस्कृत के कविता पर भी आलोचनात्मक निबन्ध लिखे। कभी कभी उन्हें मराठी साहित्य का बहुलपति माना जाता है। उनमें अंग्रेजी शिक्षा के दुष्प्रभावों को समझ लेने की भी दूरदृष्टि थी। उन्होंने वास्तव्य शिक्षा की दुष्प्रभावों 'सिंहनी के रूप' से भी, क्योंकि उनके मतानुसार उससे शक्ति और स्वतन्त्रता की भावनाओं की प्रेरणा मिलती थी। पूर्ण वह महाराष्ट्र की सत्ताओं, परम्पराओं और संस्कृति के सहज प्रेम था, इसलिए उन्होंने परिचय का आशुभकार तथा अविकल रूप से अनुकरण करने पर अतिशय बल देने वाला का विरोध किया, 1880 में जब चिपलूणकर तथा तिलक ने 'यु इंग्लिश स्कूल प्रारम्भ किया तो चिपलूणकर उसके प्रधान अध्यापक बन गये। किन्तु बाद में उन्होंने प्रशासनाध्यक्ष का पद त्याग दिया और एक साधारण शिक्षक के रूप में कार्य करने लगे। उनका मुख्य उद्देश्य जनता की शिक्षित करना था, इसलिए उन्होंने 'नेतारी' तथा 'महात्मा' नामक महाराष्ट्र के दो प्रसिद्ध साप्ताहिक पत्रों की स्थापना में प्रमुख भूमिका निभाई। इन पत्रों के प्रकाशन के लिए उन्होंने आमधुपाय प्रेस स्थापित किया और ललित कलाओं की प्रोत्साहन देने के हेतु चित्रशाला प्रेस स्थापित किया। इस प्रकार स्पष्ट है कि लेखक, पत्रकार, शिक्षक तथा दो प्रेक्षकों के सम्बन्धों के रूप में चिपलूणकर महाराष्ट्र की एक अग्रगण्य महत्ववादी विभूति थे, और उन्होंने महाराष्ट्र की जनता की अज्ञात देश-भक्ति की भावना को जागृत अनुभूति के द्वार पर तालक सदा कर दिया। यह निस्संदेह दश मूल्य है, और महाराष्ट्र में उनका बड़ी स्थान था जो जनता में वसिष्ठचन्द्र पटेलों का।

हिन्दी भाषा तथा साहित्य के विकास में जो आधुनिक भारतीय पुनर्जागरण तथा राष्ट्रवाद के उत्कर्ष में एक आधारभूत तत्व का काम किया है, हिन्दी मूल के विकास में राष्ट्रीयता तथा देश-भक्ति की भावनाओं के संचार में प्रतिपादित वाहन के रूप में योग दिया है। उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ के दुराण के आधार पर 'कैलाशचन्द्र' की रचना करने वाले सत्सुतास, 'नातिकेलापारजान' के रचयिता आदि के सदस्य मिथ, राजा निबन्धनाद (1832-95), नारायण हरिचन्द्र (1850-85), स्वामी दयानन्द सरस्वती जिन्होंने हिन्दी में 'सत्याय प्रकाश' लिखा तथा अन्य अनेक ऐसे लेखक हुए जिन्होंने हिन्दी मूल के विकास में महत्वपूर्ण योग दिया। हरिचन्द्र ने अपनी अनेक रचनाओं में भारत दुष्टता का चित्रण किया।

भारत में विदेशी किन्तु प्रबुद्ध साम्राज्यवाद की राजनीतिक सत्ता की स्थापना के फलस्वरूप परिचय की राजनीतिक सत्ताओं का सुवर्णक हूआ, उदाहरण के लिए, कामकारी परिषद, विधि विषयों का सदन, विधि आयोग, सर्वोच्च न्यायालय इत्यादि। ब्रिटन की पार्लियामेंट भारत की सर्वोच्च सदन तथा अधीनस्थ थी। नियन्त्रणकारी निकायों की भी स्थापना की गयी, जैसे-बोर्ड ऑफ गवर्नर्स (नियन्त्रण परिषद) और आगे चलकर इण्डिया काउन्सिल (1858-1947)। भारतीय राष्ट्रवाद तथा भारतीय राजनीतिक चिन्तन का उदय परिचय की पूर्वोक्त तथा इसी प्रकार की अन्य संस्थाओं के प्रयोग में ही हुआ। भारत के राष्ट्रवादियों की एक भाँति यह थी कि सामन्तिक संस्थाओं में अधिक से अधिक भारतीयों की प्रविष्टि किया जाय, और इसके लिए 1833 के अधिकार पत्र (चाटर एक्ट) की दुर्घटना की गयी। राजी विक्टोरिया की 1858 की पापना में विधि के समस्त सत्ता, प्रिन्सिपल के अनुसार लोकरी, पार्लियामेंट साहित्य तथा पार्लियामेंट स्वतन्त्रता का राज्य की नीति के रूप में प्रतिपादन किया गया। किन्तु निम्न (1876-80) तथा कानून (1899-1905) के अनुसार बापों ने देश में सत्सुतास बनाया उदाहरण दिया और साम्राज्यवाद का दुर्लभ रूप उदाहरण साधन आ गया। मूल इस बात की भाँति उदाहरण देती हैं कि देश में ब्रिटन की तरह की प्रतिनिधि राजनीति संस्थाओं की स्थापना किया जाय। उस समय इंग्लैंड तथा भारत में जो राजनीतिक सम्भाव्य पत्र रहीं भी उनकी दुष्प्रभावों में राजा सम्भाव्य रूप, दादा भाई नौरोजी सुरदास बनर्जी, गोदान इत्यादि मोलने तथा अन्य प्रारम्भिक नेताओं एवं विचारकों के विचारों का उदय हुआ।

23 हिन्दी साहित्य के इतिहास के लिए निम्न ग्रन्थ पठनीय है—विषय-सूची विभाग (4 विभाग) सामान्य-सामान्य रूप 'हिन्दी' भाषा और साहित्य, उदाहरण के लिए 'हिन्दी-साहित्य और एन ई' का *A History of Hindi Literature*

1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना आधुनिक भारत के राष्ट्रवाद तथा स्वतन्त्रता के इतिहास में सबसे महत्वपूर्ण घटना थी। 'कांग्रेस की उत्पत्ति साठ वर्षों की एक विचारपूर्ण योजना के अग के रूप में हुई। यह भारतीय जनता की अपनी वास्तविक इच्छाओं की अभिव्यक्ति के अतिरिक्त करने का अवसर देना चाहता था। उसने अपने विचार भारत सरकार के एक भूतपूर्व सचिव ए. ओ. ह्यूम (1829-1912) के समक्ष रखे, और वही ह्यूम भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का एक प्रमुख संस्थापक बना।²⁴ प्रारम्भिक वर्षों में कांग्रेस वैसा एक वाद विवाद समान थी, जहाँ अठारहवीं शताब्दी के ब्रिटिश राजनीतिक नेताओं की शैली में शानदार भाषण दिये जाते थे।²⁵ किन्तु 1905-1907 में उसका सबसे बड़ा कारण हो गया और वह आंदोलन नौरोजी विपिनवद्र पाण्डे तथा जाल गंगाधर तिलक के नेतृत्व में स्वराज्य अथवा स्वशासन की माँग करने लगे।²⁶ 1907 में सूरज की कूट हुई। तब से कांग्रेस का महत्व पटने लगा और 1908 से 1913 तक उस पर ब्रिटेन की (नरमन्दी) नेताओं का अधिपत्य रहा। 1916 में लखनऊ के अधिवेशन में मितावादिता तथा राष्ट्रवादियों का पुनः मिल हो गया और कांग्रेस पुनः राजनीतिक दृष्टि से सुचारु हो उठी। 1920 में गांधीजी का राजनीतिक उदय हुआ। तब से कांग्रेस की जड़ें देश में गहरी जड़ें लगीं। यद्यपि उसने नेतृत्व तथा वित्तीय शक्ति का श्रोत मुख्यतः मध्य वर्ग ही था, फिर भी वह धीरे धीरे एक जन राजनीतिक शक्ति का आकार प्राप्त करने लगी। प्रारम्भ में सद्भावपूर्ण विचार प्रत्यक्ष राष्ट्रीयता की समस्याओं के पारदर्शक हो केन्द्रित थे, इसलिए उनकी प्रगति भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की वृद्धि में ही सम्मिलित थी।

इंग्लिश तथा फ्रांसीसी, डच आदि कम्पनियाँ जिन्होंने सचहवी तथा अठारहवीं शताब्दियों में ही भारत में व्यापारिक कार्यवाहियाँ आरम्भ कर दी थी, वास्तव में प्रारम्भिक यूरोपीय पूँजीवाद के उदय के साथ ही हम देश में प्रविष्ट हुईं।²⁷ इंग्लिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी भारत के व्यापारिक बसावे में उतरी। कुछ सीमा तक इन्दौर की औद्योगिक शक्ति के समारम्भ की भी बसाव के रूप की सृष्ट और घोषण के अतिरिक्त बल बिता। कम्पनी तथा उसके गुमरास्तों ही मुख्यतः मुद्राशास्त्र, डाका तथा अन्य स्थापना में निर्मित बस्तों के देशी-बाजार के विचारों के लिए उत्तरदायी थे। बाणिज्य तथा पूँजीवाद ने विकास में भारत में एक प्रचंड प्रभावशाली शक्ति का काम किया। परिणामस्वरूप देश के जीवन की कृषिप्रधान आर्थिक बुनियादें, जिन्होंने इन्हें दीपकत्व तक भारत की सामाजिक व्यवस्था को स्थिरता प्रदान कर रखी थी, हिस गयीं। इसके अतिरिक्त नवरा की वृद्धि ने आर्थिक साम-हानि की गणना पर आधारित आधुनिक, आलोचनात्मक और व्यक्तिवादी दृष्टिकोण को प्रोत्साहन दिया। महत्त्व, कलशरक्षा तथा अन्य आधुनिक व्यापार, उद्योग तथा बाणिज्य के अवगामी केन्द्र बन गये।²⁸

भारत में पुनर्जागरण की प्रक्रिया को एक नये चरण तक ले जाने के उद्योग में भी बल तथा प्रोत्साहन

24 सत्ताकारणियों के उद्देश में भारत में राष्ट्रीय नेताओं के उद्धार में बहु-मूल्य योग दिया। 1859 के पहले भारत में समानता की भावनाएँ नहीं थी। भारतीय पत्रकारिता के स्थापना के रूप में वेदाभ्युदय के अतिरिक्तों का महत्वपूर्ण स्थान था। 1818 में 'कलकत्ता दर्शन' नाम का देशी पत्र का उदय महाभारत के अतिरिक्त दिया गया।

25 विपिनवद्र पण्डित *Allen Octavian Hume*

26 1889 में इन्दौर में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की एक ब्रिटिश समिति सत्रों की लगी। 1890 में इंग्लिश नाम की पहिली स्थापित की गयी। उसका अन्ततः 1920 तक चला रहा। महाभारत का-प्रेम के प्रारम्भ होने पर उसका अन्ततः बन्द कर दिया गया।

27 इनके पक्ष के हल में भी कांग्रेस में जनता की कुछ लक्ष्यों का सम्मिलन किया था जैसे—पुनर्निर्माण में बटीय, निर्यात की व्यवस्था इत्यादि। यद्यपि इस समय उसकी कुछ सीमाएँ समान रूप के ही हिता में सम्मिलित रखी थी, जहाँ वेदाभ्यास का महत्वपूर्ण, अन्ततः मुख्य कारण।

28 अठारहवीं शताब्दी में तथा असीसवीं शताब्दी के अन्ततः में इन्दौर और भारत के बीच की सम्बन्ध हुआ उसका सम्बन्ध में भावनाओं का सम्बन्ध। वह कहना है कि वह पञ्चमीय भावनाओं अतिरिक्तों में तथा तथा उद्देश्यवादी ब्रिटिश भावनाओं की प्रतीक के बीच सम्बन्ध था और वह बाणिज्यवादी प्रतीक 'उत्तरावस्था' ऐतिहासिक शक्ति का प्रतीक था। वह अन्ततः एक आधुनिक अभिव्यक्ति का है। उसका पुनः नये नयी भावना का सम्बन्ध।

29 1813 का भारत एक न भारत के साथ व्यापार का गार नहीं अतिरिक्तों के लिए मुक्त हो गया।

मिला। भारत में मुख्य सातवें के आर्थिक पीपल तथा समग्र आर्थिकरक्षक एवं अन्य भूमिकाओं के। सामाजिक व्यवस्था में मुख्य ध्यान के आर्थिक आधार का नाम मिला। किन्तु ब्रिटिश साम्राज्यवाद की स्थापना से तथा व्यापार और वाणिज्य के पूँजीवादी साधारण पर संचालित होने के कारण भारत में एक नये मध्य वर्ग का जन्म हुआ। यह वर्ग निरंतर घनी होता गया। किन्तु हमन घनी होने का कारण व्यापारिक लाभ तथा व्याज था, न कि भू-राजस्व। इन वर्गों का जन्म ही सामाजिक तथा राष्ट्रीय आन्दोलन का वित्तीय उत्तरदायित्व बहुत किया। नगरों के वर्गों का वर्ग ने बहुत समाज, आम समाज तथा भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की उत्पत्तिपूर्वक बन दिया और आज यह समाजवादी तथा साम्यवादी आन्दोलनों का पन्ना देता है। बीमारी काठवादी में भारत में आधुनिक पूँजीवाद का भी विकास हुआ। इस प्रकार हम दाखत है कि व्यापार, वाणिज्य, सहा, मातृकारी तथा उद्योग के जो चल सम्पत्ति उत्पादित हुई उसने सामाजिक तथा राजनीतिक आन्दोलनों के नीति आधार को स्थापित करने में मुख्य योगदान का नाम मिला।

ब्रिटिश साम्राज्यवाद तथा पूँजीवाद के आगमन का सामाजिक जीवन पर भी प्रभाव पड़ा। यही बीमारी बलि से ऐसे बालक बलवानों की शिक्षा में प्रयत्न किया मये जिनका उद्देश्य सिखा की स्थिति की उद्योग तथा विद्यालय पद्धति में कुछ आर्थिक सुधार करना था। बालकवादी, समाजवाद, मातृकारी, विद्यालयवाद, तत्काल तथा पन्ना के समाज सुधार का मुख्यतः समग्र तथा नेतृत्व करने वाले थे। समाज-सुधार के लिए बालक बलवानों के बीच में विदेशी साम्यवाद अस्तित्व की नीति का अनुसरण करना चाहते थे। वे देश के सामाजिक ढाँचे में हस्तक्षेप करने के पक्ष में नहीं थे। अंग्रेजों की सामाजिक अस्तित्व की इस नीति का वा प्रचार के विवेकन किया जा सकता है। कुछ विद्वानों के मतानुसार अंग्रेजों की नीति थी कि भारत में साम्यवादी सामाजिक व्यवस्था को कायम रखना चाहते थे। इस उद्देश्य के राजनीतिक आधारों की नीति मजबूत होती। बलाधिक यह मय था कि अस्तित्ववादी सामाजिक मुक्ति के विदेशी आधारों में राजनीतिक मुक्ति प्राप्त का माग प्रकट होगा। किन्तु यह विचार बहुत प्रतीत होता है। इस समय में तो सत्यता हा सत्यता है कि भारतीय समाज के बलवान बुद्धि तथा जमींदार आदि कुछ तत्काल परम्परागत साम्यवादी दृष्टिकोण के बोधक थे। किन्तु यह बलवान बलि उद्योग होगा कि अंग्रेजों ने स्थानीय समाज दलित वर्गों का उत्थार के लिए बालक इस मय से नहीं बनाये कि उनके उत्थान के ऐसी प्रकट क्षमता उत्पन्न हो जायगी जो अन्त में ब्रिटन के राजनीतिक आधारों की मजबूत कर देगी। अंग्रेजों की नीति का दूसरा विवेकन यह है कि उनकी बलिद्वि मुख्यतः राजनीतिक साम्य तथा आर्थिक लाभ में ही थी। उन्होंने सामाजिक अस्तित्व क्षेत्र की नीति का अनुसरण करने का उद्योग इसलिए कर लिया कि सामाजिक तत्त्वों उनके लिए तत्काल अज्ञानत्व की। यह बलवान भी सम्भव है कि उन्होंने सामाजिक क्षेत्र में उत्पन्न की नीति का अनुसरण इसलिए किया कि वे उन सामाजिक तत्त्वों को अप्रसन्न करने में चाहते थे जिन पर उनके सामाजिक बालक का विपरीत प्रभाव पड़ता। फिर भी यह सत्य है कि भारत में ब्रिटिश धर्म की बुद्धि के साम-साम कुछ अन्त में महत्वपूर्ण सामाजिक बालक का भी निर्माण किया गया।³⁰

आधुनिक भारत के राष्ट्रवादी तथा स्वातंत्र्य आन्दोलन की प्रवृत्ति सम-व्यवस्था रही है। मय वर्ग न सोचा तथा बुद्धिजीवियों का, जिन्होंने आधुनिक भारत की राजनीति में मुख्य भूमिका अदा की है, पीपल प्रधानतः पाश्चात्य राजनीतिक साहित्य में हुआ है। मालवीनी उन प्रमुख विभूतियों में था जिनके आदर तथा शिक्षाओं ने भारतीय तत्त्वों के उत्थान को प्रकटित किया है।³¹ मुरहनायक बलवी, सात सातवें राम तथा बी बी सावरकर ने मालवीनी की जीवन श्रम अंग्रेजों, उर्दू तथा मराठी में लिखी। उनके विचार बाधुव्यवस्था में थे। भारतीय मित्रवादी (नरमद्वी)

30 1843 में एक बलिद्विध धर्म दिया गया जिसने अनुसार साम्य की व्यवस्था करने का नाम मिला। 1856 में ईश्वरवादी विद्यालय के अंग्रेजों का बलिद्विध धर्म बलिद्विध धर्म दिया गया किन्तु विद्यालयों के पुन विद्यालय का प्रभाव प्रकट कर दी। The Age of Consent Act (विद्यालय बालु धर्मविध), 1891 में धर्म विद्यालय मिला।

31 बी बी राम 'Birth of our New Nationalism', *Memoirs of My Life and Times*, खंड 1, पृष्ठ 243-249।

निरन्तर मीडियम, नोमडन, ब्राइट, मिल्, स्पेंसर तथा मोर्ले को उदाहरण दिया करते थे।³² गांधी जी पर साक्षरता, रसिकता, एडवर्ड कार्पेंटर तथा सुनरात का प्रभाव पड़ा था। बंगाल, हैदराबाद तथा मीरत ने कुछ अर्थ में अरबिया तथा इस्लाम को प्रभावित किया है। 1920 के बाद मास्के, सेनिन, मुसीलिनी तथा हिटलर ने भारतीय साम्यवादियों, समाजवादियों तथा फारबह आग के अनुयायियों को प्रेरणा दी है। अमरीकी, फ्रांसीसी तथा रूसी भाषिकों ने भारत के राजनीतिक विचारकों तथा नेताओं के मन और आत्मा के निर्माण में असह्य रूप से योग दिया है।

तथापि भारतीय राष्ट्रवाद तथा स्वातन्त्र्य आन्दोलन का इस डंग से निबन्धन करना नितांत अतिशयोक्तिपूर्ण होगा कि यह पूर्णतः पाश्चात्य आदर्शों तथा पद्धतियों के साथ में हुआ था। रामदास, सिबाजी, बांधीजी मिथिया, रणबीरसिंह तथा 1857 के नेताओं ने देशभक्ति की भावना तथा समर्थ की जो अग्नि प्रज्वलित की थी उसकी भूमिका को कम महत्व देना ऐतिहासिक दृष्टि से गलत होगा। यह सत्य है कि इन महापुरुषों का राष्ट्रवाद कुछ ऐहिक तथा अखिल भारतीय आन्दोलन नहीं था, तथापि उनके आदर्शवाद तथा बीरतापूर्ण बलिदान न देशभक्ति के आदर्श का पोषण किया और इसी की परम्परा विचारणा तथा नेताओं ने अग्नि आग्नय मय प्रदान कर दिया। इसलिए 1885 के बाद के राजनीतिक आन्दोलनों को पहले के ऐतिहासिक समर्थों के पूर्णतः पूर्ण मानना भारी भूल होगी। इतिहास एक गतिशील तथा सुसम्बद्ध प्रवाह है। इसीलिए यद्यपि ब्रिटिश 1818 में बरसात हो गये थे और 1849 में सिक्खों की अंग्रेजों के सामने समर्पण करना पड़ा था, फिर भी देशभक्ति की आ ज्वाला उड़ोने लगायी थी वह राष्ट्र के हृदय में छिपी पड़ी रही और अक्षत रही। अतः यह कहना सत्य है कि 28 दिसम्बर, 1885 के दिन जब अंग्रेजों ने आशीर्वाद से इन्दिरा के शीशुलदास देवपान करदत्त विद्यालय के समा-नवन में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की पहली बैठक हुई तो उस समय राष्ट्र ने सहसा किसी नितांत नये साथ पर चलना आरम्भ नहीं कर दिया। ऐतिहासिक मान सभी कुनीतियों के साथ के द्वारा निरन्तर बदलता रहता है, किन्तु प्रत्यक्ष रचना-रचा के मूल में विद्यमान अविच्छिन्नता की हमें आज स ओम्मत नहीं करना चाहिए।³³ विनैयकर महाराष्ट्र में देवता वासीरान प्रथम द्वारा प्रतिपादित हिंदू पर बादशाही के बादश देश-मन्त्र हुक्मी तथा कामकलाशा की निरन्तर नवीन प्रेरणा देत रहे। इसलिए यह कहना सत्य के अधिक निकट है कि आधुनिक भारतीय राजनीति की गतिशील प्रवृत्तियाँ का गतिशील समन्वय है। पहली प्रवृत्ति देश की पारचात्य हाथों में डालने की है और दूसरी ऐतिहासिक प्रवाह की अविच्छिन्नता को साम्य रखने पर बल देती है।

32 जीन सादर (1811-1889) फ्रांसीसीयों के अधिपत्य का समर्थक था। यह अंग्रेज वर्ग तक जितनी बांधीरान का महत्त्व रहा।

33 फारबह तथा अरबिया न आधुनिक भारतीय सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन पर साक्षरता प्रभाव की बजा फारबह बलवाय है।

2

ब्रह्म समाज

प्रकरण 1

राममोहन राय

1 प्रस्तावना

राजा राममोहन राय (1772-1833)¹ जिन्हें भारतीय इतिहास में, विनैपकर बंगाल में, आधुनिक युग का अग्रदूत माना जाता है, हुपेल (1770-1831) के समकालीन थे, और जब बंगाल की राज्यशांति प्रारम्भ हुई उस समय उनकी आयु 17 वर्ष की थी। उनके पिताजी वैष्णव तथा मानवादी शाक्त भी। राय न पढ़ना के कारणों तथा अरबी का अध्ययन किया था। इस्लामी धर्म पान (तब भीमाका) तथा समाजशास्त्र के अध्ययन के फलस्वरूप उन्होंने हिन्दू धर्म के कुछ अनुष्ठानों के प्रति आलोचनात्मक दृष्टिकोण अपना लिया था। बाराणसी में उन्होंने मकतब के माध्यम से प्राचीन धर्मशास्त्रों का अध्ययन किया। धार्मिक कार्य के लिए उनके मन में बहरी जिज्ञासा थी, और उन्होंने लिखित के माध्यम से धर्म की प्रवृत्तियों का अध्ययन भी आरम्भ किया। उनकी बुद्धि विवेचनात्मक तथा वैज्ञानिक थी, और धर्मों के लोके पाठ्यक्रम थे। जिस पद्धति से उन्होंने धर्मशास्त्र के विचारों का अध्ययन किया उस पर बुद्धिवादी दृष्टिकोण तथा उनके अपने श्रेष्ठ तथा उदात्त व्यक्तिगत भी छाया थी। इसलिए हिन्दू धर्मशास्त्र तथा पराधीनता के अध्ययन से उनके मन में परम्परागत हिन्दुत्व के लिए अधिकतर प्रवृत्तियाँ थीं। अपनी विवेचनात्मक बुद्धिमत्ता तथा सामाजिक हेतुवाद के कारण वे बंगाली पुनर्जागरण के एक प्रवर्धन बन गये। बंगाल का पुनर्जागरण सम्पूर्ण एक सञ्चारिक तथा प्रवृत्ति आधारित था, और उसमें राममोहन राय, देवेन्द्रनाथ ठाकुर, ईश्वरचन्द्र गुप्त (1809-58), मधुसूदन दत्त,² अक्षयकुमार दत्त (1820-86), ईश्वरचन्द्र विद्यासागर (1820-1891), रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, हेमचन्द्र कर्की, बकिमचन्द्र चटर्जी (1838-1894), रवीन्द्रनाथ टैगोर, गोपी अरविन्द तथा अन्य अनेक व्यक्ति सम्मिलित थे। जिन्होंने बंगाली पुनर्जागरण के सबसे पहले अधिवक्ता राजा राममोहन राय थे, और धार्मिक तथा सामाजिक क्षेत्रों के रूप में उनका व्यक्तित्व अत्यन्त विचारों और प्रभाव आधारित था।

1803 में अपने पिता की मृत्यु के उपरांत राममोहन बुद्धिवादी बने। 1809 में उन्हें निरिष्टीकार के पद पर नियुक्त कर दिया गया। किन्तु 1814 में उन्होंने ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सेवा से त्यागपत्र दे दिया। 1815 में वे कलकत्ता पहुँचे और 'आलोचक समाज' की स्थापना की। कलकत्ता में उनका द्वादशवर्षादी सञ्चारिक नेहरूई विचारधारा से सम्पर्क हुआ। 1818 में उन्होंने सती प्रथा

1 राजा राममोहन राय का जन्म 1772 में हुआ था, और 27 जनवरी, 1833 को निधन हो गया। उनकी पत्नी का नाम दत्तिका था।

2 'पिपली के गुप्त' नाम की 1857 में प्रकाशित पुस्तक में कहा गया कि वे तथा राममोहन राय दोनों हिन्दुत्व का हीमवादी थे। (देवेन्द्रनाथ टैगोर की *Autobiography*, पृष्ठ 213)

3 माहर्षि मधुसूदन दत्त का 'वसिष्ठा' (1858) 'विमोक्षक' (1860) तथा 'मन्मथ' (1861) नाम के ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ।

के सम्पूजन के लिए किर्तिमान आदालत आरम्भ किया, और 1829 में तत्कालीन कनर केनरस साहब विनियम पैट्रिज न विनियम 17 के अन्तर्गत सती प्रथा का अन्त्य घोषित कर दिया। इस दृष्टि से 1829 के कय की भारत के सामाजिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण सुपथचिह्नबारी रूप माना जा सकता है। निरन्तर रामसाहब कय के हिन्दू विनियम का गनी की कुलित प्रथा से मुक्त करन के लिए पयसद प्रताकर अन्तर कीति प्राप्त कर ली।¹

1827 में राममोहन न ब्रिटिश इण्डिया यूनीटरियन एसोसिएशन (ब्रिटिश नास्तीय एवं धर्मवादी सभ) की स्थापना की और 20 अगस्त, 1828 का ब्रह्म समाज की नींव डाली। श्रीनधरिन राम से ब्रह्म समाज की उद्घाटन 23 जनवरी, 1830 की हुई।

15 नवम्बर, 1830 का रामसाहज राय ने गृहान द्वारा दस्तावेज बना कर प्रमाण दिया। उक्त समय या बि. वही वरम्परावादी शब्दावली व प्रकार व प्रमाण से सभी विराधी अधिनियम रद्द न कर दिया जाय, इसलिए उनके प्रकार की विधान वरज के लिए वे दस्तावेज पहुँचना चाहते थे। दस्तावेज के विच्छिन्न स्थितियों से उनकी भेद हुई, और बेचम ने मान्यता की तथा म गृहान इन बातों पर कर उनकी स्वीकृत किया। उक्तान वरज प्रमाण व विराधी तथा अन शिष्टा के सम्बन्ध साक्ष्य प्राप्तम से भी सिद्धता करती। अब वह दस्तावेज म य उसी समय प्रथम 'मुपार अधिनियम (रिफ़ौम एक्ट)' पारित हुआ। उक्तान वरज स्वीकृत किया और वही बि. वह उत्तीर्ण, मन्त्रालय तथा अन्तर्गत पर स्वतन्त्रता, 'प्राप्त तथा मान्यता की विजय है।

राममोहन ने सामाजिक सुशिक्षण तथा अत्याचारी ब्रह्म मान्यता की और परम्परावाद का खुलकर विरोध किया।¹ किंतु उनका विवेकात्मक या निःसामाजिक सुधारवाद का अर्थ करने का वह तरीका मुझ्झात का प्रसार करना है। हम प्रकार उनकी तुलना कास के मानवार्थ के सार्वभौमिक विचारों से की जा सकती है। किंतु राममोहन अनेक सामाजिकरूपप्रतिष्ठा की नीति नीतिवादी नहीं थे। उन्होंने नरिष्य इन्डिय प्रत्यक्षता के सिद्धांत का भी अवलोकन किया और नरिष्य अर्थ प्रत्यक्षता के सिद्धांत को स्वीकार किया।

2. राज्य के विज्ञान और सहयोगीमाध्यमिक आधार

राममोहन राम ने मानवशुद्धि से इस सिद्धांत का प्रतिपादन किया कि विश्व में एक सत्य-व्यक्तिमान सत्ता है जो उदार तथा समतावादी है। उन्होंने उपनिषद्वादी व साध्यादिमहा एकरसवाद के तार्किक सिद्धांत को स्वीकार किया, किंतु साथ ही साथ वे एकरसवादी भी थे। ईश्वरत्व की एकरा उनके वचन का केन्द्रीय सिद्धांत था। राममोहन राम का नूतनतमोद की सरस तथा उदात्त नैतिक शिक्षाया सगृही प्रेरणा मिली थी, किंतु उन्होंने विमुक्ति के सिद्धांत को कभी स्वीकार नहीं किया। कुरान के तीर्थीय (ईश्वर की एकरा) की धारणा के प्रभाव के स्वरूप राममोहन ने हिन्दुओं व ब्रह्मसवादी विचारों का संश्लेष किया। परम्परागत प्रतिपुत्रा के साथ

- [illegible]

जिन युक्ति और कुतिल प्रयासों का सम्बन्ध था उन्होंने उनका मन का भारी बोझात पहुँचाया, और वे उन्हें समाज विरोधी मानने लगे। उनके चिन्तन में प्राकृतिक धर्म के साथ भी वैरोध की झिलझिल है। उन्हें अन्धता के अन्तराल में भी विश्वास था। वे साम्प्रदायिकता, अंध-विश्वास तथा सुलिपुत्रा के घोर शत्रु और एकेस्वरवाद के उत्तमोत्तम समर्थक थे। धार्मिक शक्तों के प्रति उनका दृष्टिकोण उदार तथा सहिष्णु था। किन्तु राममोहन की उत्पत्तान की शारीरिकी का अनुचित प्रतिक्रम नहीं मिला था, इसलिए वे एकेस्वरवाद तथा एकत्ववाद का भेद न समझ सके। यदि वे उपनिषदों से बौद्धिक सम्बन्ध चाहते थे तो वे निश्चय ही एकत्ववाद की शिक्षा में अग्रसर हो रहे थे। किन्तु राममोहन के पास वे यह कहा जा सकता है कि उपनिषदों के स्वयं वैयक्तिक परम्परागत तथा निराकार ब्रह्म के भेद की स्पष्ट रूप से व्याख्या नहीं किया है। फिर भी राम ने हिन्दुओं के इस परम्परागत विश्वास का खण्डन नहीं किया कि वेदों की रचना अष्टि की रचना के ही मान हुई थी।

राममोहन की भाँति राममोहन भी इन्द्र की अवलम्बन में विश्वास करते थे, और रामानुज की भाँति उन्होंने इन्द्र की सन्तुष्ट माना। उन्होंने एक संवर्धकत्वान तथा अनन्त नियम के पुत्र शक्ति के अस्तित्व की स्वीकार किया। उन्होंने कहा, "इन्द्र अपने अधिकार के लिए पुत्र अथवा पुत्रों पर अपना ही नियम होता है जिसका कि पुत्र किसी इन्द्र पर। बिना पुत्रों के इन्द्र की रचना ठीक करना असम्भव है।" वेदों की भाँति राम ने सर्वोच्च सत्ता के आदित्य तथा अनन्त गुण के चिन्तन के बहुलत्व की स्वीकार किया। अपनी अधिक परिष्कृत अवस्था में उन्होंने एक पूर्ण आध्यात्मिक सत्त्वति का प्रतिपादन किया जिसका सार के वेदांग में बहुत कुछ साम्य है।

3 राममोहन राम के राजनीतिक विचार

(क) प्रजासत्ताक तथा राजनीतिक स्वतन्त्रता का सिद्धांत—राज, प्रजासत्ताक तथा दीर्घमय केन की भाँति राममोहन ने प्राकृतिक अधिकारों की सत्ता की स्वीकार किया। उन्हें जीवन, स्वतन्त्रता तथा सम्पत्ति धारण करने के प्राकृतिक अधिकारों में ही विश्वास नहीं था, बल्कि उन्होंने व्यक्ति के नैतिक अधिकारों का भी सम्मेलन किया। किन्तु उन्होंने अल्प प्राकृतिक अधिकारों के सिद्धांत की प्रस्ताव भारतीय लोकसमूह के नैतिक के दायरे के अन्तर्गत ही रखा। अल्प अधिकारों तथा स्वतन्त्रता के स्वातन्त्र्यवादी सिद्धांत के समर्थक होत हुए भी उन्होंने आग्रह किया कि राज्य को समाज सुधार तथा बौद्धिक पुनर्निर्माण के लिए कानून बनाने चाहिए। इस प्रकार उन्होंने प्राकृतिक अधिकारों के साथ सामाजिक उपयोगिता तथा मानव कल्याण की धारणा का संयोजन कर दिया।

बोल्लेवर, अतिस्फु तथा क्रांति की भाँति राममोहन का स्वतन्त्रता के आदेश से उत्कट प्रेम था। उन्होंने वैयक्तिक स्वतन्त्रता पर बहुत बल दिया, और निजी आतन्त्र्य में वे प्रायः राष्ट्रीय शक्ति के आदेश की भी पक्षा किया करते थे। स्वतन्त्रता समुच्चय का अनुसंधान था, इसलिए राममोहन वैयक्तिक स्वतन्त्रता के महान् समर्थक थे। किन्तु स्वतन्त्रता राष्ट्र के लिए भी आवश्यक होती है। 12 अगस्त, 1821 को राममोहन ने 'अन्तर्गत जनता' नामक पत्रिका के संपादक के एक परिचय में एक पत्र लिखा और विस्तृत प्रकट किया कि अन्तर्गत जनता यूरोपीय राष्ट्र तथा एशियाई उपनिवेश निश्चय ही अपनी स्वाधीनता प्राप्त कर लेंगे। उन्हें यूरोपियों तथा वैयक्तिकवादियों की स्वतन्त्रता की भाव से सहानुभूति थी। इसलिए वर्ष 1820 में नेपल्स में स्वेच्छाचारी शासन की पुनः स्थापना ही यही ती राममोहन की बहुत कोमल हुआ। जब यह यूरोप का यह था तो भाव में उन्होंने एक भारतीय स्टीमर देखा और कहा कि 'यदि मैं स्वतन्त्र भारतीयों की राष्ट्र के जहाज में इनका या सत्ता की मुझे बड़ी प्रशंसा होती।' कहा जाता है कि वे वास्तव में उस स्टीमर तक गये और फास के भग्ने का अनुभव किया। यद्यपि उस समय फास पुनः स्थापित होनी राजतन्त्र के अन्तर्गत था, फिर भी राम की महान् भारतीय भाँति के स्वतन्त्रता समानता तथा प्रजासत्ताक के आदर्शों का चिन्तन करने का भारी बोझा हुआ था। फास की 1830 की भाँति से उनके हृदय की बड़ी प्रशंसा हुई, और फास दशम में सामान्य के अनुसंधान से

7 आचार्य ब्रह्मसूत्र *The Philosophy of Brahmsutram* (द्वितीयोपम एक बलवी, महान्), पृष्ठ 6-7।

8 राममोहन एक सम्पत्ति व परम्परागत अधिकारों के भी समर्थक थे। व्यक्तिगतता की भाँति उनका विश्वास था कि सरकार की भाँति कि वह अधिकारों की सत्ता प्रदान करे।

राज की विशेष सलाह हुआ। 1821 में जब राजा बर्जिनाद की बिक्री होकर एक समिपान देना पड़ा तो उसने अपना हाथ म उठाते हुए एक सामाजिक नीति दिया।

राममोहन नुनसारक आत्मा की अविषय स्वतंत्रता के मुख्य की मनी नीति समझते थे। वे चाहते थे कि देश की जनता में प्रबल तथा बुद्धिमान आत्मविश्वास जागृत हो। साथ ही साथ उन्होंने अंधविश्वास तथा अंधविषय का पौर विरोध किया। वे अंग्रेज जाति की सराहना किया करते थे, क्योंकि उनका विश्वास था कि अंग्रेज स्वयं ही नागरिक तथा राजनीतिक स्वतंत्रता का समझ नहीं करते, किन्तु वे अपने अधीन देशी के भी स्वतंत्रता, सामाजिक सुख तथा बुद्धिवाद की प्रोत्साहन देते हैं। भारतीय स्वतंत्रता की राममोहन की देन का सुझावन करते हुए विविध पत्र लिखते हैं, "राजा पहले व्यक्ति थे जिन्होंने भारत की राजनीतिक स्वतंत्रता का उद्देश दिया। उनके बीच इस स्वतंत्रता की जो बीज थे, इस बात से उनको गहरा दुःख हुआ। उनके लिए यह सहन करना कठिन था कि विदेशी जाति उनके देश पर आधिपत्य जमा ले। इसीलिए 20 वर्ष से कम की आयु के ही वे देश छोड़कर विदेश की यात्रा करने चले गए। बाद में जब ब्रिटिश जाति की संस्कृति तथा परिचय से उनका पक्ष परिवर्तित हुआ तो उन्हें लगा कि अंग्रेज अधिक बुद्धिमान तथा आचरण में अधिक हल तथा सफल है, इसलिए राजा का भ्रमन उनके पक्ष में हो गया, और वे विश्वास करने लगे कि मध्य अंग्रेजी शासन विदेशी है, फिर भी उसके अन्तर्गत देशवासियों का उद्धार अधिक गीर नीति तथा निष्काम के साथ होता।" किन्तु वे इस विचार का कभी सहन नहीं कर सकते थे कि भारतीय जनता के उद्धार के लिए देश का अन्तर्गत बात एवं ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत रहना आवश्यक है। कि आर्नेस्ट जो इंग्लैंड में राजा का सचिव था वह निश्चय ही यह गया है कि उनकी राय में इंग्लैंड के लिए भारत में अपना सामाजिक तथा मानवतावादी काम पूरा करने के हेतु अधिक से अधिक 40 वर्ष का समय पर्याप्त है। उनका विश्वास था कि इस अवधि में अंग्रेजी शासन भारतीय सभ्यता का आधुनिक विषय संस्कृति में अंग्रेजित करने स्थापित करने तथा देश में देशी लोकतांत्रिक शासन प्रणाली की नींव रखने में सफल हो आसपास जिससे भारत सरकार के अंग्रेज राज्य देशों के स्तर पर पहुँच सके। इंग्लैंड की लोक तथा (इंग्लैंड अंग्रेज कामरा) की प्रथम समिति के समझ उन्होंने जो विस्तृत साधन प्रस्तुत किया उसमें उन्होंने सुधार की यह दिशा इंगित कर दी थी जो इंग्लैंड की भारत में अपना नैतिक काम पूरा करने में सहायता दे सकेगी।"

राममोहन यह भी स्वीकार करते थे कि ब्रिटिश शासन से भारत की महान लाभ हुए हैं। वह माना कि बिना से सम्पन्न अधिकांश में की सामाजिक विज्ञ होया। एक प्रबुद्ध राष्ट्र द्वारा शासित होने तथा उसके सम्पन्न में जाने में होने वाले लोगों की वे मनी नीति समझते थे। उन्होंने पक्षित विचारवाद धर्म के नाम से एक बल निष्ठा जो "आधुनिक मेमोरी" नामक पत्रिका में 15 नवम्बर, 1823 का प्रकाशित हुआ। उसमें उन्होंने लिखा "हम अपनी सम्पूर्ण नीति-मात्रा से अंग्रेज वस्तुओं के साथ-साथ ईश्वर की भारत में अंग्रेजी शासन के शासन के लिए प्राप्त विचार धर्मवाद अंग्रेज किया करते हैं और प्राप्त करते हैं कि वह शासन आज जाने वाली सभ्यता का अन्तर्गत एक सफल रूपपूर्ण काम करता रहे।" यह कुछ आश्चर्य की चीज है कि जिस व्यक्ति का देश के कुछ प्रथम करने वाले लोक आधुनिक भारत का निर्माता मानकर अभिनन्दन करते हैं, और जिसे मूलतः तथा वैज्ञानिक की राजनीतिक स्थापना में कहीं अधिक भी कहीं व्यक्ति भारत में ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत एक कामरा रहे। के लिए प्राप्त करें। इसमें सन्देह नहीं कि राममोहन राज की अपने देश से प्रेम था, वे प्रथमस्थान के सम्पूर्ण विचार और सत्तिशाली साधन सुधारक थे, किन्तु वे सहोदर नहीं थे। भारतीय इतिहास के विचारियों की यह नहीं भूलना चाहिए कि जिस समय मराठे

9 विविध नाम "Ram Mohan as Reconstructor of Indian Life and Society," *Calcutta Municipal Gazette* के प्रकाश 22 1928 के अंग में प्रकाशित तथा *Ram Mohan Ray Birth Centenary Volume* भाग 2 में (पृष्ठ 203-05) पुनर्मुद्रित।

10 *Works of Ram Mohan Ray* (प्रथम भाग, कलकत्ता, 1928) पृष्ठ 1, पृष्ठ 222। यह लेख राममोहन राज का ही था इस प्रमाण के लिए देखिए पृष्ठ 24, भाग, *Ram Mohan Ray* (117 की कलकत्ता, 1933) पृष्ठ 134।

(1818) और निम्न स्थापना के लिए समय कर रहे थे—उनका समय कितना ही स्थानीय तथा सीमित न हो—वही समय वह 'आधुनिक भारत का जनन' प्रदिश शासन के मुक्तता कर रहा था। राममोहन बौद्धिक तथा सामाजिक मुक्ति के समयक के और राजनीतिक स्वतन्त्रता के भी उनका विचार था, किन्तु उन्हें स्वराज का पैमाना नहीं बढ़ा जा सकता। आधुनिक भारत में राजनीतिक स्थापना के आदेश की जगह रोपन वाले वास्तव में कड़वे, चाकेर, लक्ष्मण सिंह आदि महाराष्ट्रीय नेता के विपरीत विचारधारा साजहबी तथा अठारहवीं शताब्दी के स्थापना के लक्षिकों की विचारधारा का अविच्छिन्न प्रवाह थी। भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम पर यूरोप के विचारों और आंदोलनों का भी बम्बीर प्रभाव पड़ा उसका हम कम नुस्कारन नहीं कर रहे हैं। फिर भी यदि हम राजनीतिक स्वतन्त्रता की जगह भारत में बढ़ता चाहें तो वे हमें केवल राजा राममोहन राय की रचनाओं से नहीं मिलेगी, अपितु उनके लिए हमें शिवाजी के साम्राज्य में निहित स्वराज के आदेश की भूमिका को समझना होगा। बालासर में स्वराज की पुरानी धारणा में भारी रूपांतर हो गया, और दादाभाई नौरोजी, विविनचन्द्र पाल तथा चित्तरंजन दास ने अपने लेखों तथा भाषणों द्वारा उसे महत्वपूर्ण विश्कार प्रदान कर दिया। किन्तु जगें नहीं थी। राजा राममोहन राय ने बौद्धिक तथा सामाजिक मुक्ति के जिन आदर्शों को प्रतिपादित किया और लोकप्रिय बनाया उनके महत्व को हम स्वीकार करते हैं, किन्तु हम राजा के उन उत्साही प्रयासों से सहमत नहीं हैं या उन्हें 'राजनीतिक स्थापना का सदैवप्रवाह' मानते हैं।

(ख) प्रेस की स्वतन्त्रता—राममोहन प्रेस की स्वतन्त्रता¹¹ में प्रारम्भिक समयों के थे, और मिलन की बाढ़ उड़ने के निहित अविच्छिन्न की स्वतन्त्रता के सिद्धांत का समर्थन किया। 1823 में राममोहन ने द्वारकादास ठाकुर, सुरजदास घोष, श्रीरामचन्द्र बनर्जी, ब्रह्मचर्यार दयोर तथा ब्रह्मचर्यार दयोर के साथ मिलकर प्रेस की स्वतन्त्रता के लिए सर्वोच्च 'चापलस की एक पात्रिका' केनी। अधिकारों के इस आन्दोलन के पीछे राममोहन का मुख्य हाथ था। जब पात्रिका अस्वीकृत कर दी गयी तो कर्पणदास राधा (जिन् इन कीमिल) के महा अधीन की गयी। अधीन में लक्ष्मण सिंह राधन राजन पर राममोहन ने विचारों का समावेश था। अधीन में कहा गया था, 'जब क्षतिकारी सोच, जो प्रेस की स्वतन्त्रता के इन्तिष्य खलु होता है कि वह उनके आचरण पर अक्षिप अनुष का काम करता है, उससे होने वाले किसी वास्तविक अविच्छिन्न का पता नहीं लगा पाले तो वे सत्कार की इस मुक्तता के दाखने का प्रयत्न करते हैं कि वह किसी सकट के काल में सरकार के विपक्ष समर्थन का साधन बन सकता है। किन्तु यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि असाधारण सकट के समय जिन प्रतिस्पर्धियों की लड़ाने का अविचार दिया जा सकता है, उनका शासितनाल में प्रयोग कभी भी उचित नहीं उद्घासना जा सकता। महाप्रद्विष 'जैसा कि आप जानते हैं, स्वतन्त्र प्रेस ने सत्कार के किसी भाग में कभी नाहित की जगह नहीं दिया है। कारण यह है कि जो स्वतन्त्र अविचारियों के आचरण से उत्पन्न होने वाली विवादात्मकता की सर्वोच्च सरकार के सम्मुख प्रस्तुत कर सकते और उन्हें दूर करना चाहते हैं। यह नाहित की उम्मीदें वाले असाधारण का आधार ही नहीं रह जाता। इसके विपरीत जब प्रेस की स्वतन्त्रता नहीं रही और कलकल्य विवादात्मकता या न अविवेक विचारों का सना और न उन्हें दूर करवाया जा सकत था उस समय सत्कार के सभी भावों में अगति नाहितों हुई हैं और यदि उन्हें सरकार की सत्तम क्षति से रोव भी दिया गया तो जनता सदैव विद्रोह करने के लिए तैयार कभी रही।"

(ग) भारत की 'पात्रिका व्यवस्था—राममोहन जिदेन की साव समी की प्रवर समिति के सम्मुख उस समय उल्लिखित हुए पत्रिका 1833 के अविचार पत्र अविचारिम (चादर एडर) पर विचार हो रहा था।' उन्होंने अनुप्रीय किया कि भारत में सेवा करने वाले पत्रिकापत्रा (मजिस्ट्रेटों) के

11 राममोहन राय ब्रह्मचर्य की थे। उन्होंने 1821 में पत्रिका कीमिल नामक पत्रिका लड़ा जिसका उद्देश्य भारत में भारतीय अविचार सरकार की थी। उन्होंने *Brahmical Magazine* नाम का पत्रिका भी प्रारम्भ की थी।

12 राममोहन राय ने जो कार्य किया वह उनके 'The Judicial and Revenue Systems of India' तथा 'The Indian Peasantry' नाम की लक्षों में पत्रिका में विचार है।

“सायिक तथा प्रशासनिक बलों का गुणा” कर दिया जाय। ये ही योग निश्चित है, “जड़ने नियन्त्रण परिपद (बोर्ड आन्ड मॉड्यूल)” की शायदा पर लाभ तथा ही प्रकर समिति के समक्ष भारत की सायिक तथा राजस्व प्रशासियों के कार्य सम्पादन, देशवासियों के सामान्य परिण तथा दशा और भारत के सम्बन्धित अन्य महत्वपूर्ण मामला पर अपना प्रसिद्ध राय प्रस्तुत किया। उसे जड़ने ‘एन् एन्ड पीजीमन्ड जाम रेवे’ से एक जुट्टीनियम एडमिनिस्ट्रेशन आन्ड इन्डिया’ (भारत की राजस्व तथा सायिक प्रशासियों की एक आस्था) शीघ्र ने अन्तर्गत प्रकाशित भी करवाया। इसमें भारत के प्रशासन के सम्बन्धित कुछ अत्यधिक महत्वपूर्ण समस्याओं का समावेश है। उदाहरण के लिए— “सायिकों का मुभार, देश के “सायिकों का यूरोपीय तथा शीघ्रधार, जूरी प्रता, नावकारी तथा “सायिक पर्वों का गुणनरण, विधि का संहिताकरण, विधि निर्माण के जनता से परामर्श करना, देशी शीघ्रमेता की स्थापना, देशवासियों की अधिर् नीतिर्देश देना, अर्धनिय अधिकाधिकारी की आयु तथा शिक्षा, रैपट की दशा का मुभार तथा उसकी रक्षा के लिए बान्धु की निर्माण तथा स्थायी भूमि प्रवन्ध” ।¹⁸ रामभाइन् अर्धनिय सेवाओं में अधिरिपव अधिका की निपुण्टि के विषय थे। इसलिए उनका मुभाव था कि प्रसिद्धादृष्ट (क्वेन्स्टड) सेवाओं में निपुण्टि के लिए “मुत्तम 22 थप की आयु की सीमा शीघ्र चाहिए। प्रकर समिति के सम्मुख अपने राय में जड़ने इस बात की और जो ध्यान आकृष्ट किया कि “अप-अधिकारियों तथा जनता के बीच संचार का सम्बन्ध कोई एक ऐसी भाषा नहीं थी जिसे दोनों ही बाल तथा समझ सकते, इसी की उचित “नाम करने में भाषा पड़ती थी। इसने अधिरिक्त, “सायिकों की नाववाही की रिपोर्ट प्रकाशित करने के लिए सायिक समचार पत्रों का भी अन्तर्ग था। जड़ने यह भी कहा कि भारत के बीच संचार के रूप में जारी हाथा “नाम के सिद्धांत से मसीभाति परिचित थे। उनकी दृष्टि में जूरी प्रता पचापत से कुछ ही भिन्न थी। उनका मुभाव था कि सेवानियुक्त “सायिक अधिकारियों तथा अपने काम में अथकाज के सेने वाले बलियों की जूरी की वा सत्य गुना या सत्यता है। ये इस पक्ष में थे कि एक भारतीय आन्तराधिक विधि संहिता देवार की आय, और यह ऐसे सिद्धांतों पर आधारित हो जो देश की जनता के विभिन्न वर्गों में आम तौर पर प्रचलित हो और जिन्हें वे रूप स्वीकार कर लें। यह संहिता सरल, सुद्ध तथा स्पष्ट हो। “सायिक प्रशासन की स्थायी भाषा पर लक्ष्य करने के लिए विभिन्न मुभाव देने में जड़ने शासकी और जनता के हितों का ही केवल ध्यान रखा।

रामभाइन् अधिकार के पक्षपोषक थे। 1827 में एक जूरी अधिनियम पारित किया गया था। इस अधिनियम ने “नाम व्यवस्था में वैधता उत्पन्न कर दिया, क्योंकि जब किसी ईसाई पर अधिनियम लगाया जाता तो हिन्दू और मुसलमान जूरी में नहीं बैठ सकते थे। 17 अक्टूबर, 1829 को इस अधिनियम के विषय पार्लामेंट के दोनों सदनों में प्रस्तुत रिपोर्ट आने के लिए एक आर्चिना ईसाई की गयी। उस पर हिन्दुओं तथा मुसलमानों, दोनों में ही हस्ताक्षर मिले। रामभाइन् का इस आर्चना-आलोचन से सम्बन्ध था। जड़ने सायिका के साथ एक पक्ष में “विषय की सिखकर देना और अपने विरोध के आधारों का इस प्रकार स्पष्टीकरण किया, “नियन्त्रण परिपद (बोर्ड आन्ड मॉड्यूल)” के अन्तर्गत अधिका कि “जिन न अपने प्रसिद्ध जूरी विषयक द्वारा देश की सायिक व्यवस्था में धार्मिक वैधता को समाविष्ट करके सामान्य देशवासियों में अन्तर्गत का आधार ही नहीं उत्पन्न कर दिया है, अन्ति राजनीतिक सिद्धांतों के परिचित हर व्यक्ति के हृदय में भारी आधार उत्पन्न कर दी है। इस विषयक के अनुसार हिन्दू और मुसलमान देशवासियों के “सायिक परीक्षण में यूरोपीय तथा देशी दोनों ही प्रकार के ईसाई जूरी सदस्यों के रूप में नाम ले सकते। “हिन्दू ईसाइयों के, जिनमें अन्तर्-परिचित सभी लोग भी समाविष्ट हैं, “नाम परीक्षण में हिन्दू और मुसलमानों को, चाहे वे समाज के किसी भी प्रतिष्ठित सदस्य क्यों न हों, जूरी सदस्यों के रूप में बैठन का अधिकार न होगा। इस प्रकार “सायिक नाममा में हिन्दू और मुसलमान ईसाइयों के अधोग रहने, और ईसाई हिन्दु तथा मुसलमानों की अधोगता के अन्तर्गत से मुक्त होने। विशेषकर हिन्दुओं और मुसलमानों का हिन्दुता

और मुसलमानों के भी मुसद्दों के पट्टाजूरी (काठ जूरी) के बैठने के अधिकार से वंचित करता है। मि. जिन के विरुद्ध जूरी विधेयक का संसद यह है जिसकी हम बहुत शिवायसत कर रहे हैं।¹⁴ उस पत्र में उन्होंने भारत तथा ब्रिटिश साम्राज्य के बीच सम्बन्धों के वास्तविक तथा सम्भावित मामलों के विषय में अपने विचार व्यक्त किये थे। ब्रिटिश पार्लियामेंट के लिए भेजी गयी यह याचिका 3 जून, 1829 को लोक सभा के समक्ष प्रस्तुत की गयी।

(घ) भारत में यूरोपवास्तियों के बसने का प्रश्न—1832 के बिलेन की लोक सभा की प्रवर समिति ने भारत में यूरोपीय लोगों के बसने के प्रश्न पर राममोहन की राय मांगी।¹⁵ 1813 के अधिकार अधिनियम (चाटर एक्ट) ने यूरोपीयों को भारत में भूमि खरीदकर अपना पट्टे पर लेकर बसने के अधिकार से वंचित कर दिया था। इसके विपरीत, राममोहन ने सिफारिश की कि सिमित तथा 'परिवर और पूर्यो वाले' यूरोपीयों को भारत में स्थायी रूप से बसने के लिए प्रोत्साहित किया जाय।¹⁶ 1833 के अधिकार अधिनियम के द्वारा सभी विद्यमान प्रतिबंध हटा दिये गये।

(ङ) मानवतावाद तथा सामंतीय धर्म—स्वतंत्रता तथा अधिकारी के सम्बन्ध होने के नाते राममोहन महान मानवतावादी के और सहयोग, सहिष्णुता तथा सहचर्य से विश्वास करते थे। वे चाहते थे कि परम्परागत धर्मनिराही मनुष्य के मन और आत्मा की बाँधी बना रखा था, खोल दिये जायें और मनुष्य की सहिष्णुता, सहानुभूति तथा बुद्धि पर आधारित समाज का निर्माण करने के लिए स्वतंत्र छोड़ दिया जाय।¹⁷ वे विश्व नागरिकता के प्रतिपादक तथा धार्मिक नीर स्वतंत्रता के समर्थक थे। राममोहन ने तुलनात्मक धर्म के अध्ययन से आरम्भ किया था, किन्तु, बाद में, वे एक सामंतीय धर्म की अत्यन्तता की कल्पना करने लगे। किन्तु सामंतीय धर्म का विचार भी उनके चिन्तन का अन्तिम साधारण रूप नहीं था। बात यह, उन्होंने साम्यवादीय सत्येय की एक आधारभूत योजना विवक्षित की और एक परमेश्वर की आराधना पर आधारित धार्मिक अनुभव की श्रुति पर बल दिया। इस प्रकार उन्होंने नबीर, नानक, साहु, मुफाराम तथा अन्य लोगों के सामाजिक तथा धार्मिक समन्वय की परम्पराओं की जाँच बढाया।

राममोहन ब्राम्हणधर्म ही पुरुष थे, इसलिए वह सामंतीयता में विश्वास था, और वे मानव जाति को एक परिवार तथा विभिन्न राष्ट्रीय और जातियों को उसकी शाखाएँ मानते थे। 1832 के उन्होंने पत्र के परछाया वाली की एक पत्र लिखा और राजनीतिक तथा साम्प्रदायिक विवादों के निपटारे के लिए एक कांग्रेस स्थापित करने का सुझाव दिया। सम्भवतः राममोहन की पवित्र सच (हीली एलायन्स), चतुस्त्वय (क्वाड्रुपल एलायन्स) तथा यूरोपीय सच की जानकारी थी और वे उनके सामन्तवाद की अधिक विस्तार देने की कल्पना किया करते थे। वे महान मानवतावादी तथा सामंतीयतावादी थे और वैदिक धर्म की भाँति सामंतीय सहानुभूति के विज्ञान को मानते थे। वे अपने हृदय से स्वायत्त सहिष्णुता तथा मानव प्रेम के पथ के अनुयायी थे। वे राममोहन के सामंतीयतावाद और मानवतावाद की प्रशंसा किया करता था। एक पत्र में उसने उनका लिखा था

"आपके वाक्यलाप से परिवर्तन मुझे आपकी एक पुस्तक के द्वारा हुआ है। उसकी शक्ति ऐसी है कि यदि उसके साथ एक हिन्दू का नाम न जुड़ा होता तो मैं विश्वस नहीं करता कि यह एक सम्मेलन के विहित और दीक्षित अंग्रेज द्वारा लिखी गयी है।" उसी पत्र में वेमर मिल पुनः 'द हिन्दू आन इन्डिया' (भारत का इतिहास) नामक महान रचना की प्रशंसा करते हुए उसने

14 Ram Mohan Roy Birth Centenary Volume, पृष्ठ 2 व पृष्ठ 33 पर उद्धृत।

15 राममोहन राय, *Remarks on Settlement in India by Europeans* [1813]।

16 डेविड रॉय राय, *The Life of Ramkrishna* पृष्ठ 107। राममोहन राय यह भी चाहते थे कि वे हिन्दू धर्म की भारत के निवास स्थान, अर्थात् उनकी इच्छा थी कि वे वेदांग्रेज के साथ मिलकर एक सम्मेलन के द्वारा भारत के सामन्तवाद के विरुद्ध लड़ें। राममोहन ने भारत में यूरोपवास्तियों के बसने का भी सम्बन्ध किया उनका कारण सामान्य है। ऐसा कहा प्रमाण होता कि समस्त सम्बन्ध उन्हें अपना सामन्तवादी मान्यता के कारण किया था।

17 राममोहन राय ने ईश्वर का अन्तिम स्थिति की श्रुति का आधार पर सामंतीय प्रेम का अन्तिम सामन्त की स्थापना की।

राय ने उनकी बीवी के बारे में कहा "यद्यपि जहाँ तक बीवी का सम्बन्ध है मेरी इच्छा होती है कि मैं हूय ने और ईमानदारी के साथ वह समझा कि वह अपनी बीवी के समानुत्पन्न है।"¹⁸

4 राममोहन राय के शैक्षिक विचार

राममोहन कलात्मिक भाषाओं के प्रभावित व्यक्ति थे, और उनकी अद्वितीय विशिष्टता यह थी कि वे ग्रीक, हीब्रू संस्कृत अरबी और पारसी से परिचित थे। उनकी मेधा उद्युत तथा प्रवृत्ति बहुत मुक्त थी। उ होने उपनिषदों, गुराने टेस्टामेंट तथा गुरान का गूढ़ भाषाओं में अध्ययन किया था। पञ्चम के पुस्तक मुक्त होने तथा अपने ज्ञान की विशिष्टता के कारण वे वास्तव में एक अवभूत विभूति थे। वे इतने दूरदर्शी थे कि उन्होंने आधुनिक जगत् में अग्रणी भाषा के महत्त्व को पहचाने से ही नहीं नाति समझ लिया था। 1816-17 में उन्होंने एक अंग्रेजी स्कूल की स्थापना की। सत्यता में यह पहला अंग्रेजी स्कूल था जिसका मध्य पुस्तक भारतीयों द्वारा ही बहुत किया जाता था। उन्होंने की प्रेरणा में 1822-23 में हिन्दू कालिज की स्थापना हुई। प्रारम्भ में उसका नाम महापाठशाला अथवा एंग्लो इण्डियन कॉलेज था। वे शिक्षा के ग्राम्य सम्प्रदाय के अज्ञान पाश्चात्य सम्प्रदाय में विद्वत्ता करते थे। वे महत्त्व दिया की साहित्यिक धारणियाँ और साक्षात्प्रेषण की पद्धतियाँ की नहीं भाति समझते थे, फिर भी उनकी उत्कृष्ट अभिलाषा थी कि भारत में पाश्चात्य वैज्ञानिक ज्ञान का समावेश हो। 11 दिसम्बर 1823 को उन्होंने शिक्षा के सम्बन्ध में साह एंग्लैंड की जो पत्र लिखा उसमें उन्होंने कहा "यदि ब्रिटिश राष्ट्र को वास्तविक ज्ञान से वंचित रखने का इरादा रखे होता तो यूरोप के मध्ययुगीन अन्धकारियों की शिक्षा पद्धति के स्थान पर केवल के वृद्ध को प्रति स्थित न किया जाता क्योंकि मध्ययुगीन पद्धति अज्ञान की विरक्षाओं का ही कारण रखने का सर्वोत्तम साधन थी। इसी प्रकार यदि ब्रिटिश पैरामेंट की नीति भारत को अज्ञान के अन्धकार में डाले रखने की हो तो उसका लिए संस्कृत शिक्षा प्रणाली सबसे अच्छी प्रणाली सिद्ध होगी। किन्तु सरकार का उद्देश्य वैसी अज्ञान की उत्पत्ति करना है इसलिए वह अधिक प्रबुद्ध तथा उदार शिक्षा प्रणाली का प्रोत्साहन देगी और स्थित प्राकृतिक ज्ञान, रसायन शास्त्र, ज्योतिष रचना शास्त्र तथा अन्य सामाजिक विज्ञानों के पढ़ाने की व्यवस्था करेगी।"¹⁹

5 राममोहन राय के आर्थिक विचार

(क) भारत की राजस्व प्रणाली तथा भारतीय किसान—साह नैनवालिस द्वारा बताया कि स्थापित स्थायी कृषि व्यवस्था में उत्पन्न कुरादश न जो विनाशकारी काम किया था उसे राममोहन नहीं भाति समझते थे। किन्तु राजा के आर्थिक विचारों का इस दम से निबन्ध करना अनुचित होता कि वे या तो पूर्णतः सामंजस्य से प्रभावित थे या उन्नीयमान पूर्वीवाद थे। उन्हें वास्तव में जनता के हिता का ध्यान था। वे उन गरीब किसानों की मुक्ति चाहते थे जो जमींदारों और उनके गुमास्तों की लूट से शिकार थे। किन्तु वे यह भी चाहते थे कि सरकार जमींदारों से अपनी भाँजे कम करे।

(ख) नवी उत्तराधिकार विधि—राज्य राममोहन राय हिन्दू विन्यास का उत्तराधिकार का अधिकार देने के दम में थे। उत्तराधिकार की आधुनिक विधि से सिन्धी के साथ जो अपाय होता था उसकी राममोहन ने कटु आलोचना की। उन्होंने 1822 में एक विद्वत्तापूर्ण लेख लिखा जिसका शीर्षक था "माइल एक्कोचर्नैट अर्नि एन्डेंट राइट्स अथ फीनेन्स एन्डिगिज नू द हिन्दू सा आथ इन हेरिडिंस" (हिन्दू उत्तराधिकार विधि पर आधारित सिन्धी के प्राचीन अधिकारों का आधुनिक अति-उपमा) इस लेख में उन्होंने वास्तविक, नारय, नालायन, विष्णु, ब्रह्मण्य, व्यास आदि विद्वान अथ पालिनी को अवसर दिया और बताया कि प्राचीन धर्मशास्त्रियों के मतानुसार पति द्वारा छोड़ी हुई संपत्ति में स्त्री को अपने पुत्र के समान भाग मिलना था, और पुत्री की एक बीमाई।²⁰

6 निष्कर्ष

(राममोहन अद्भुत व्यक्ति थे। उनकी दूरदर्शिता तथा सत्यता प्रति महान थी। वे एक ऐसी आत्मा थे जिन्होंने अपने को दूसरों के लिए अर्पित कर रखा था। उनके मन में मनुष्य तथा

18 The English Works of Raja Ram Mohan Ray Vol 3, पृष्ठ 327। 1828 में भारत में भारतीय का स्वायत्त अंग्रेजी की संस्थापना भाषा अज्ञान किया गया था।

19 अर्थिक राममोहन राय के हिन्दू विन्यास के अधिकार तथा हिन्दुओं के वैदिक संपत्ति पर अधिकार पर निबन्ध।

ईश्वर के लिए अगाध प्रेम था। वे निर्दोश, सच्चे तथा ईमानदार थे और अपने विश्वासों को दूसरों के समक्ष व्यक्त करते थे। उनमें बुद्धिमान साहस था। उन्हें स्वियों के उद्धार में रुचि थी। आधुनिक भारत में स्वियों ने अपिकारों का समर्थन करने वाले थे सबसे पहले ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने स्वियों की पराधीनता के विरुद्ध विद्रोह किया। वे समाज सुधारक भी थे। उ होन प्रेत की स्वतन्त्रता के लिए सपना किया। स्वित्जरलैण्ड के अध्यक्षानी सितमासी ने उनका नैतिकता तथा धर्म की स्वतन्त्रता के शिक्षण के रूप में अधिगहन किया।²⁰ स्वर्दीय अवेडनाम सोल ने उरी बहुत के साथ उनकी बहु-मुखी उपलब्धियां का सारांश इस प्रकार व्यक्त किया है - " भारतीय सम्प्रदाय व इतिहास में उन्हीं अनेक अर्थ आधारभूत महत्व की चीजें सिखलायी उदाहरण के लिए, राज्य की नीति के क्षेत्र में विपत्ती तथा सामंती राज्यों के बीच मौलिक पुनर्करण,²¹ विधि शासन के क्षेत्र में यह सिद्धांत कि विधि की उत्पत्ति ऋषि के उपादेश व साथ साथ परम्परा तथा आचार से होती है और साथ यह बाद में ऐसे समादेश द्वारा अनुसमयित तथा स्वीकृत कर दी जाती है, और 'वाय तथा राजस्य प्रसादन के क्षेत्र में गाय तथा पशुपत का केन्द्रीय स्थान' तथा भूमि पर राजा का स्वामित्व। किन्तु उन्होंने भारतीय राज्यतन्त्र के इन प्राचीन तथा मध्ययुगीन तत्त्वों को आधुनिक अर्थ तथा उद्देश्य प्रदान किया। उन्होंने इन तत्त्वों का प्रतिनिधि शासन, खुरी द्वारा अभिधीन परीक्षण तथा प्रेस की स्वतन्त्रता के साथ संयोग कर दिया। इसके अतिरिक्त उन्होंने हिन्दुत्व की विवाह, उत्तराधिकार, धार्मिक आराधना, स्वियों की परिचरिता, रानी धन तथा पशुधन धर्म आदि से सम्बन्धित वैयक्तिक विधि में 'गाम तथा कोषिक के अत्यधिक उदार सिद्धांतों का समन्वय करने' उनकी समीक्षित तथा पुनः कर दिया। इन उदार सिद्धांतों का उ होने प्राचीन धर्मशास्त्रों में समर्थन और अनुमोदन बूझ निकाला, और इस प्रकार वे सामंतीय मानवता की पृष्ठभूमि में परिचय तथा पुनः वे सामाजिक सुश्रुती और मायताका के बीच समन्वय स्थापित करने में सफल हुए। किन्तु वे एशिया की भूमि में नये राजतन्त्र के विधि शासन की ही प्रतिरोधित नहीं करना चाहते थे अपितु वे पश्चिम की आधुनिक वैज्ञानिक सम्प्रदाय का भी बीजारोपण करने के पक्ष में थे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने भारत में वास्तविक तथा उपयोगी ज्ञान, विशेषकर विज्ञान तथा उद्योग व विज्ञान के प्रयोग पर आधारित सामाजिक शिक्षा प्रणाली की स्थापना में सहभाग्य री। इसी प्रकार उन्होंने अपने की फिनिशियेंट सम्प्रदाय के समर्थान्त्रियों की इस भ्रांति से दूर रखा कि जपि तथा व्यापारिक निर्माण के बीच तात्त्विक अन्तरविरोध होता है। वे भारतीय सम्प्रदाय के ईश्वरवादी, बुद्धि प्रधान तथा बहुतांश आधार की असुल्य रहने में शक में थे। साथ ही साथ वे यह भी चाहते थे कि भारत की भूमि पर आधुनिक वैज्ञानिक उद्योग खड़े किये जायें जिससे देश की जनता के रहन सहन के स्तर में और उसके साम-साय उससे स्वास्थ्य तथा धनीय मध्य में सुधार हो। और अंत में उन्होंने भारत के प्राचीन राज-मौलिक इतिहास के बारे में मध्ययुगीनी कररी की कि आगे प्रेट प्रिटेन और भारत के सम्बंध औप निवेशिक आधार पर स्थापित हुये। साथ ही यह है कि अपने आदेश को बीधन पूरा करने के लिए वे इस बात का भी स्वागत करने को तैयार थे कि देश के कुछ भागों में अरबाबी और पर कुछ सम्बन्धित की मुरोबीय बसिन्दा भी स्थापित करदी जायें। और अंत में मान्यता में इस सचेतवाहुन में सुश्रु रीया कर रहे हुए एक ऐसे स्वतन्त्र, सतिवासी तथा प्रबुद्ध भारत की बरचना की जो एशिया की जातिवा की सम्म तथा प्रबुद्ध मान्यता, और सुदूर पूर्व तथा सुदूर पश्चिम के बीच सुनहरी बंदी का नाम करेगा। उनकी यह परंपरा मान्य जाति के प्राचीन इतिहास के सम्बंध में जितनी महत्त्व प्राची थी उतनी ही वह भारत के प्राचीन जातियों की प्रतीक भी थी।²²

20 स्वियों की का लेख *Reveries Encyclopediques* (1824) में तथा है।

21 विपत्तयान तथा राजनीतिशास्त्र का पुनर्करण की मायका उदाहरणों परम्परा का जितने राममाह्य व सातमाह्य कर लिया था अंत थी। देशा कोई प्रमाण नहीं है जिससे ज्ञात हो कि उन्होंने मायका की संज्ञित रचना *Spirit of the Laws* का अध्ययन किया था।

22 राममोहय के बचपना की, का उदाहरण हा रण था, पुनर्जीवित करने का समर्थन किया अंत कि यह मान्यता उपरान्त प्राची तथा विशिष्टता हाव में किया।

23 अवेडनाम सोन, Ram Mohan Roy, *The Universal Man, Ram Mohan, Both Centenary Volume*, खण्ड 2, पृष्ठ 108-09।

राममोहन आधुनिक मानव थे, और स्वतन्त्र थे 'ये भारत की पुनर्जागरित आत्मा के प्रतीक थे। जब से भारत में विदेशी निवेश कायम रूप से देश में सामूहिक समन्वय की समस्या पड़ी आयी थी। मानव, वकील, शोधक और व्यापारी समन्वय के प्रतिपादक थे। भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना के साथ-साथ सामूहिक रूप की समस्या के और भी अधिक उच्च रूप धारण कर लिया। राममोहन (1772-1833) तथा रामजीतसिंह (1780-1839) दोनों समन्वयक थे। किन्तु वे भारत में विदेशी शासन के विरुद्ध प्रतिनिधित्व के दो भिन्न स्वरूपा या प्रतिनिधित्व करते थे। अपने दुर्दमनीय स्वभाव के बावजूद रामजीतसिंह बुराई जगत के व्यक्ति थे। उनमें प्राचीन भारतीय पराक्रम अधिवापिन सीमा तक व्यक्त हुआ था। किन्तु राममोहन न अपने युग के सम्मोहक नृत्तिक और आध्यात्मिक तत्वों की मज्जी साँझ समझा।²⁴ उन्होंने पूर्वी भारत में व्याप्त अज्ञान, अधिवास तथा सामाजिक और सामूहिक अंध पठन के विरुद्ध समर्थ किया। उन्होंने ऐसे-ऐसे तथा समाज-सुधार के समन्वय के द्वारा अधिक गहरी एकाग्र स्थापित करने पर काय किया। वे धार्मिक सहिष्णुता तथा सामूहिक परिवर्तन की भावना के आदर्श उदाहरण थे। अतः यद्यपि परम्परावादी क्षेत्रों में उनकी कटु आलोचना की गयी, किन्तु उनका आधुनिक भारत के एक प्रमुख निर्माता तथा भारतीय सम्प्रदाय के विकास की एक बड़ी के रूप में अभिनन्दन किया गया है।

राममोहन राम की प्रतिभा बहुमुखी थी। वे सामन्तवाद के सदैववाद्, स्वतन्त्रता के सभी पक्षों व व्यय तथा उसाही समन्वय और प्रेम की स्वतन्त्रता तथा ईश्वर के अधिपतियों के लिए सामूहिक जादोतन्त्रज्ञां थे। अतः वे भारत में आधुनिक राजनीतिक चिन्तन के विकास के नेता हैं। वे सुधारवाचक धर्म के उदात्त चिन्तक और ईश्वरता पर साहित्य तथा ईश्वरता परमात्मिका के सहायक थे।

- प्रकरण 2 देवेन्द्रनाथ टागोर

महावि देवेन्द्रनाथ टागोर (1817-1905)²⁵ सामाजिक दार्शनिक की अनेका रहस्यवादी अधिक थे। यद्यपि हिंदू धर्मालय में अपनी छहवाँ के बिक्री में उन्होंने लोक, धर्म आदि के अनुसंधानित वस्तु का अध्ययन किया था, फिर भी उनकी आनन्दता रसायन रहस्यवादी चिन्तन की ओर अधिक थी। किन्तु वे कौन्सी, फिरो और विपदर बूझा की शिक्षाया की सराहना करते थे। 1841 में देवेन्द्रनाथ बड़ा समाज में सम्मिलित हुए यहाँ व 1851 में स्थापित 'ब्रिटिश इण्डियन एसोसिएशन' के अधिकारी थे।²⁶

1838 में देवेन्द्रनाथ ने सर्वोच्च तथा निश्चितार सत्ता के सम्बन्धित सार के प्रसार के लिए 'सत्यबोधिनी समा' की²⁷ स्थापना की। यह समा लोक पर एक काय पगती रही और 1859 में उसे बड़ा समाज के साथ संयुक्त कर दिया गया।

यद्यपि देवेन्द्रनाथ बड़ा समाज के नेता थे, किन्तु वे नैसाधिन नहीं थे। वास्तव, नीला और जिनगी की भाँति उनके प्रचारक का उत्साह नहीं था। धार्मिक प्रचार की अनेका उनकी रचि-रचित-गत आत्मा की प्रदीप्त करने में अधिक थी।

देवेन्द्रनाथ ने मीनासा के इस सिद्धांत की स्वीकार करने से इनकार किया कि वेद अपौरुषेय हैं और इसलिए निरोक्षता प्रामाणिक हैं। उनकी थकावत तथा रहस्यवादी आत्मा की वैदिक कय

24 इनका न राममोहन राम के एक बार दुर्दमनीय समन्वयवादी उत्तर जीवन में आलोचना की थी। आलोचना के दौरान उक्त हुआ था कि राम समन्वयवादी चिन्तक थे की बहिष्कृत थे। देखिये नू एन काय *Ram Mohan Ray*, पृष्ठ 334।

25 देवेन्द्रनाथ टागोर का जन्म मई 1817 में हुआ था और 19 जनवरी, 1905 को उनका देहांत हुआ।

26 देवेन्द्रनाथ टागोर *Autobiography* (परिचित एन कनवी, 1914) बड़े की व सदैवनाथ टागोर द्वारा बयुक्ति।

27 समा सदाचार देव ब्रिटिश इण्डियन एसोसिएशन के जन्म कायम थे।

28 तथा एक चिन्तक का भी उदाहरण पगती की विचार काय 'सत्यबोधिनी चिन्तक' का। उक्त समन्वय समाज कुमार दत्त (1820-1886) थे। 1844 में देवेन्द्रनाथ व एक अलोचनी पाठ्यालय की स्थापित की थी।

काष्ठ तथा देव बिद्या से छातीय नहीं मिलता । इसके विपरीत, उपनिषदों की बृहद शिक्षाओं से उनका मन बाह्यवाद से भीतरात हो जाता था । उन पर माण्डूक्य उपनिषद के आरम्भप्रत्यय की सम्बन्धना का गहरा प्रभाव पड़ा ।²⁹ ईशोपनिषद ने प्रतिपादित ब्रह्म की सर्वव्यापकता के सिद्धांत ने भी उन्हें अत्यधिक प्रभावित किया । किन्तु वे उपनिषदों की शिक्षाओं को समग्रतः अंगीकार करने के लिए ईश्वर नहीं थे । उनमें से उन्होंने कुछ ऐसे अर्थ चुन लिये जो उनकी अपनी दृष्टि के अनुकूल थे ।³⁰ उन्होंने अक्षरवाद के लोपप्रिय सिद्धांत को भी स्वीकार नहीं किया । वे विश्व को मात्रा मात्र मानने के लिए तैयार नहीं थे । यही कारण था कि उन्हें संस्कार के विरोध का ईश्वरवाद की कठोरता के समान रामानुज की शिक्षाओं में अधिक आकर्षणता की अनुभूति हुई । उन्होंने मोक्ष के सिद्धांत को भी स्वीकार किया, किन्तु अपने अनुसार मोक्ष का अर्थ था आध्यात्मिक व्यक्तित्व की विवशता, न कि उसका अनात इन्द्र की सम्प्रदाय में विधीन हो जाना ।

राममोहन की भांति देवेन्द्रनाथ को भी बहुदेववादी पक्षों तथा उनके स्वसम्बन्ध से छातीय नहीं मिलता । उन्होंने अपने हृदय तथा अंतःकरण में स्वतः के लिए अति सम्मीर तथा तत्वाज्ञान प्रीति की । वे कठोर एकत्ववादी के और अनात निविवार और अविनाशी परमेश्वर की उपासना का महत्त्व बार-बार समझाया करते थे ।³¹ उनका विश्वास था कि परमेश्वर की आराधना उसकी प्रशंसा करने वाले कर्मों तथा प्रेम के द्वारा ही की जा सकती है । किन्तु आधुनिक की कुछ रचनाओं में अतः-प्रज्ञाभूलक ईश्वरी आस्तिकता की भूलक भी मिलती है । देवेन्द्रनाथ ने ब्रह्म समाज की मुख्य शिक्षाओं की व्याख्या विभिन्न प्रकार से की है

1. आदि में कुछ नहीं था । केवल परब्रह्म की ही सत्ता थी । उसी ने सारे विश्व की सृष्टि की ।

2. केवल यही ईश्वर, सत्य, अनात ज्ञान, शुभ और शक्ति का आधार, चाखत तथा सम्बन्धी एकल तथा अद्वितीय (एकमेवाद्वितीयम्) है ।

3. उसकी आराधना से ही हमें रहस्योक्त तथा परलोक में मुक्ति मिल सकती है ।

4. हमसे प्रेम करना तथा उसका प्रिय करना, यही उसकी आराधना है ।³²

राममोहन की भांति ही कि ब्रह्म समाज का क्षेत्र सामाजिक होना और उसके द्वार समस्त मानव जाति के लिए खुले होंगे । इसके विपरीत देवेन्द्रनाथ अपने युग की सीमाओं की सम्मति थे, इसलिए वे चाहते थे कि वह केवल हिन्दुओं में अपने कामकाज की कैलिष्ठ रखे, यद्यपि उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा था कि सब जातियों और नस्ल के लोग ब्रह्म समाज की शिक्षाओं के अनुसार ईश्वर की उपासना कर सकते हैं । वे जाति प्रथा की कठोरता को फल करने के पक्ष में थे । देवेन्द्रनाथ ने ब्रह्म समाज के ईश्वरी प्रभावों की दूर करने का प्रयत्न करने अपनी राष्ट्रीय मान्यता का परिचय दिया । उन्होंने न के देवतामैत्र के प्रेरणा नहीं ग्रहण की, उनकी प्रेरणा के पीछे ईश, नेत्र, ब्रह्म तथा माण्डूक्य उपनिषद थे । जब वेदव्याख्या केन ने 'ब्रह्म' से प्रत्यक्ष हृदय 'सर्वोत्तम ब्रह्म समाज' की नींव डाली तो देवेन्द्रनाथ ने मुख्य सम्प्रदाय का नाम आदि ब्रह्म समाज रख दिया ।

देवेन्द्रनाथ आधुनिक एक साधनिक तथा रहस्यवादी थे । उनका क्षेत्र चिन्तन था, न कि सामाजिक सेवा । 1857 के स्वतन्त्रता संग्राम के दिनों में वे चिमला की पहाड़ियां में पञ्चागमन थे ।³³ फिर उन्होंने कुछ वर्ष तक ब्रिटिश इन्डियन एसोसिएशन के सचिव के रूप में काम किया । इस संस्था का उद्देश्य भारतीयों की व्यक्तिगत तथा सामाजिक स्वतन्त्रता का परिचय करना था ।

देवेन्द्रनाथ एक महान् आध्यात्मिक मानवतावादी थे, उन्हें मनुष्य से प्रेम था और उन्होंने धर्म, भाविकमन, प्रेम, उदारता तथा प्रेम का उद्देश्य दिया । उनका विश्वास था कि जो निष्ठापूर्वक ईश्वर के नाम की प्रार्थना करता चाहता है और उस दिशा में प्रयत्न करता है उसने सामान्य प्रगति की जमीन-मंदा का द्वार खुल जाता है । किन्तु इसके हस्त अपने सामाजिक उत्तरदायित्वों का परिचय करने की

29. माण्डूक्य उपनिषद, पृष्ठ 7 ।

30. देवेन्द्रनाथ आधुनिक 'ब्रह्म' का 'सामाजिक' ।

31. यही ।

32. *Brahmo Dharma Grastha* का परिचय, *Autobiography* में वर्णन ।

33. *Autobiography*, पृष्ठ 223-47 ।

के सिद्धांतों में पाप तथा कष्ट सहन की धारणाओं का समावेश करना चाहते थे। राममोहन राय तथा दयानंद सरस्वती की भाँति सेन ने मन में भी समान सुधार के लिए ज्वलंत उत्साह था।

11 नवम्बर, 1866 को केवल 28 वर्ष की आयु में केचव ने बलरत्ना रामाय अथवा आदि ब्रह्म समाज से पूर्ण भारतीय ब्रह्म समाज (ब्रह्म समाज आन इन्डिया) की स्थापना की। 25 जनवरी, 1880 को उन्होंने नव विधान की घोषणा की,³⁶ और 15 मार्च, 1881 को नव विधान के संदेशवाहकों को दीक्षित किया गया। जिस प्रकार राममोहन राय के ब्रह्म समाज के विरोध में केचव ने भारतीय ब्रह्म समाज स्थापित किया और नव विधान की घोषणा की वैसे ही केचव की धार्मिक तथा सामाजिक प्रवृत्तियों के विपक्ष 1878 में साधारण ब्रह्म समाज का संघटन किया गया। साधारण शब्द इस बात का प्रतीक था कि समाज के शासन की धर्म सांख्यिक पद्धति का अधिक समतावादी लोकतांत्रिक प्रणाली की ओर रुखमान हो रहा था। पूर्ण होने वाले इस युग में आनंद मोहन बोस, शिवचन्द्र देव, उमेशचन्द्र दत्त, तथा शिवनाथ दास भी प्रमुख व्यक्ति थे।³⁷ इस पूर्णकरण का सामाजिक धारण केचव की पुत्री का पृथक् विहार के महाराष्ट्रा के साथ किया जा रहा था। यह विवाद अत्यंत ही गंभीर था, और उसमें सुनि-पूजा के रूप में कुछ अनुष्ठानों का भी प्रयोग किया गया था। 22 मार्च, 1878 को ब्रह्म समाज के सदस्यों की एक बड़ी संख्या ने केचवचन्द्र के धार्मिक नेतृत्व में अविश्वास प्रकट किया।

1870 में केचवचन्द्र दयानंद जैसे और मार्च 21, 1870 से 7 सितम्बर, 1870 तक ब्रह्मा रहे। ब्रह्मा उन्होंने अपनी कथ्य वस्तुता द्वारा लोगों पर बहुत प्रभाव डाला। विक्टोरिया ने उनसे स्वयं भेंट करके उन्हें अनुग्रहीत किया। दासजी लिखते हैं, “उन्होंने सत्ताधीन प्रमाण वाली ब्लडस्टन के साथ कलिया किया। उन्होंने दो व्याख्यान दिये, एक भारत के प्रति इंग्लैंड के बलरत्नी पर और दूसरा ‘ईसा तथा ईसाइयत’ पर। पुरुषा व्याख्यान सादर शीर्षक की अध्यक्षता में वेमरेंड पासत सदन के मेट्रोपो-लिटन हबरेन्स में हुआ। उसने उन्होंने भारत के आत्म भारतीय दासजी के कुछ दोषों पर प्रकाश डाला, जिससे वहाँ का आत्म-भारतीय समुदाय बहुत व्यथित हुआ। दूसरा व्याख्यान सेंट वेन्स हॉल में 28 अप्रैल को हुआ, उसकी शीर्षका में भूरि भूरि प्रशंसा की। इसमें भी सैन ने ईसा मसीह के श्लेष पर अपने विचार व्यक्त किये और इंग्लैंड के ईसा तथा ईसाई चर्च के ईसा में अंतर मतजाया और कहा कि चर्च के ईसा की तुलना में इंग्लैंड के ईसा बड़ी श्रेष्ठ है।”

केचवचन्द्र का जीवन उत्पन्न आदर्शों तथा धर्म शास्त्रों से अनुप्राणित था। उन्होंने पवित्रता तथा धर्मपरामर्शता का उपदेश दिया। उन्होंने अनाथ के सामाजिक तथा नैतिक पुनरुत्थान को महान् प्रेरणा तथा मति प्रदान की, और रिश्तों के उद्धार में उनका स्थान अग्रगण्य व्यक्तियों में था।

2. केचवचन्द्र के राजनीतिक विचारों का सांख्यिक आधार

केचवचन्द्र धार्मिक क्षेत्र में विद्वान्त करते तथा सब धर्मों के अन्तर्गत तर्का को प्रह्वन करने के लिए तैयार रहते थे। अपने श्लोक संग्रह (1866) में उन्होंने आदर्शित, जैव अवेस्ता तथा कुरान के उद्धरण सम्मिलित किए। केचव पर ईसाइयत का राममोहन से भी अधिक प्रभाव पड़ा,³⁸ राममोहन का नेवल ईसाइयत से एंग्लिकनवाद तथा आचार शास्त्र में प्रभावित किया था, किन्तु केचव ने नव विधान की घोषणा के बाद अपने धर्म साथ में ईसाइयों की उपस्थिति तथा अनु की व्याख्या (सात स सपर) आदि अनुष्ठानों की भी समाविष्ट कर दिया।³⁹

अपने जीवन के अन्तिम दिनों में, सम्भवतः राममोहन परमहंस के प्रभाव के कारण (उनसे

36 नव विधान सभी के समर्थन का चीरण था। केचवचन्द्र सेन के अनाथ में प्रकाशचन्द्र मधुकरदास का बहुलपुत्र समाज था। *The Indian Mirror* इस समाज का साप्ताहिक मुखपत्र था।

37 अपने समय के भी पुण्य, सचिन्द्र बनर्जी और डा. सी. के. रे. बर्लिन की उमम समीक्षा हो गई।

38 केचवचन्द्र सेन का श्लोक संग्रह। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, “Keshav Chandra Sen, Speeches of Surendra Nath Banerjee (1876-84) बिर 2 (एन के साहित्यी एनर बन्वनी कलकत्ता 1891), पृष्ठ 30-36। बनर्जी सेन का उन सचिन्द्रों का मुखपत्र संग्रह में दिखता अवेदी सिद्ध के द्वारा भारत में अवेदी हो चुका था।

39 मजिस्ट्रेट की पत्रिका, *Brahmarishi Keshav Chandra Sen* (मजिस्ट्रेट भारत द्वारा 1926)। केचवचन्द्र के व्याख्यान, “India asks, who is Christ?” “Jesus Christ, and Asia” (1866) और “Am I an Inspired Prophet?” (1879)।

वेदाय की मेंट 1875 में हुई थी), वेदाय ने अपने कुछ ईसाइयत की आर भूताने वाले बुद्धिवादी को ग्मान दिया, और हिन्दु धर्म की आरम्भगत वेदा ही विधिया की आर अधिभ भूत नभ ।⁴⁰

अधय की हैमिस्टन आदि स्टाडिग सम्प्रदाय के नैतिक दायरिता का भी पात्र था । उनका विचार उन जमान सत्त्वनामिका तथा समाजशास्त्रियों के दायन के समान थे जि ह्रीन आदि शक्ति की पारम्भा का प्रतिपादन किया था । वेदाय ईश्वर का मूखनत्वक शक्ति की कर्तृ करने थे,⁴¹ और ईश्वर शक्ति शब्द का प्रयोग किया करते थे ।⁴² उन्होंने ईश्वर की सत्ता के सम्बन्ध में प्रयोगनवादी तत्व की भी स्वीकार किया । उनका कहना था कि विद्वान की शिक्षाइन, उनकी अन्वयनादि की समरूपता, विरतर चल रही अनुसूचन की प्रविषा तथा पद्धति सभी ऐसे लक्षण हैं जो विद्वान के रचयिता की सत्ता का विश्वास दिलाते हैं ।⁴³ उन्होंने देवी इच्छा का वाक्य करने का भी उपदेश दिया ।⁴⁴

3. केदायचन्द्र सेन के सामाजिक विचार

इसलैण्ड से लौटने के बाद केदायचन्द्र सेन ने भारत के सामाजिक तथा नैतिक सुधार के लिए इम्प्रिपन रिफॉर्म एसोसिएशन (भारतीय सुधार सभ) नाम की संस्था स्थापित की । सभ की पाँच प्रकार की वाक्याहिया से सम्बन्धित पाँच धारावाही थी—(1) शरी सुधार, (2) शिक्षा, (3) उत्तरा काहित्य, (4) मद्य विरोध, तथा (5) दान ।

देवे इनाय उपनिषदा के 'सर्व सन्तु इदं ब्रह्म' (सम्पूर्ण विश्व ब्रह्म ही है) के सिद्धांत से ओत-प्रोत थे और आत्मा के प्रदीपन का ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मानत थे किन्तु इसने विपरीत केदाय पर ईसाई सिद्धांतों का अधिभ प्रभाव था । एक सभ में वे लौटकर राममोहन की समान-सुधार की परम्परा से ही फिर पहुँच गये । किन्तु राममोहन अद्वैतधर्म तथा आत्मीयतात्मक प्रवृत्ति के बुद्धिवादी थे, इनके विपरीत केदाय में पहुँची शक्ति मानता थी ।⁴⁵ विद्वान कृष्ण गोस्वामी के सहयोग से उन्होंने नव विधान समाज में अस्थापना के साथ पानों की भी समाविष्ट कर दिया । उनके व्यक्तित्व में रहस्यवाद, भक्ति मानना तथा सामाजिक सुधार और मुक्ति के लिए आधेसमूह उत्साह का सम्बन्ध था ।

केदायचन्द्र सुधारक थे । उन्हें हिन्दु समाज की अव्यवस्था, अथ पतन और अन्धता की देखकर भारी दुःख होता था । उनका विश्वास था कि समाज की इस दुस्सा का उत्तरदायित्व उस पुरोहित वर्ग की कुटिल चालों पर था जो जनता की अज्ञान तथा अन्धविश्वास में डाले रहने के लिए बीच काल से प्रयत्न करता आया था और जिसने अगणित देवी देवताओं के सम्बन्ध में होने का दावा करके अपनी स्थिति को सुदृढ़ बना दिया था । केदाय ने जाति प्रथा की मरुता की और विनयी की अन्ध विद्या का समर्थन किया । उनके निरन्तर प्रयत्नों के कारण ही 1872 का अधिनियम 3, जिसने बहुत समाजी पद्धति के विवाहों को बध मान लिया, पारित हो सका था ।

4. केदायचन्द्र के राजनीतिक विचार

केदायचन्द्र सेन का विश्वास था कि भारत में ब्रिटिश शासन अत्यन्त नग्नरी सामाजिक तथा शक्ति सकट की घड़ी में अवस्थित हुआ था । विदेशी आक्रमणकारियों के आने के साथ साथ भारत के क्षय पतन की भी प्रविषा आरम्भ हो गयी थी यह अविकल्प रूप से चकती आमी थी और वातावरण में थोड़ा निराशा छा गयी थी । सभस मारी सकट का था । अन्ध भारत के राजनीतिक मन्ध पर एक निर्धारक घड़ी में प्रकट हुए, क्योंकि व्यक्तित्व अनेकों की कम तथा आक्रमणवादी सम्बन्धी भूमी के

40. केदायचन्द्र सेन, *Yoga: Objective and Subjective, Brahmagrothopashad* और 'केन्द्री विमेल' । रोग रीता *Life of Ram Krishna* (अनूत वाक्य, आशास, अनुभ सनकाय, 1936) पृष्ठ 268-89 । या की मन्त्री ने अन्ता पुरातन *Krishna Chandra and Ram Krishna* (रॉयलन सेन, उत्तरागत 1931) का इसे मानक के साथ इस मन्त्र का सम्बन्ध किया है कि केदाय पर सम्प्रदाय का प्रभाव था ।

41. केदायचन्द्र सेन की *Jivana: Idea or the Scripture of Life* उनकी सामाजिक वाक्यवा है ।

42. केदायचन्द्र सेन "God Vision in the Nineteenth Century: *Lectures in India*" पृष्ठ 390 । वे इस सम्प्रदायक जाति शक्ति की भी मन्त्री थीक मन्त्रियों में विहित है जिना सकटों के ईश्वर शक्ति का नाम देता है ।

43. *Lectures in India* (1954 का सम्पादन) पृष्ठ 40 ।

44. केदायचन्द्र सेन अनुसूचन अनुसूचन मन्त्र वाक्यवा ।

45. केदायचन्द्र का 'आशास' 'Behold the Light of Heaven in India' (1875) ।

वास्तविक विवेक द्वारा देखा भी बिनाय अनेक बौद्धिक तथा नैतिक उपलब्धियों की भूमिका सिद्ध हुई थी। इसीलिए केदारचन्द ने अपने "इन्क्वैरिटर तथा भारत" शीर्षक व्याख्यान में कहा कि अंग्रेजों के साथ सम्पर्क एक देशी विधान है। उनके पास वे "समाधि भारत के साथ दलपट का सम्पर्क बिधि का विधान था, कोई आवश्यक पटना नहीं थी। यदि हम सच कहें तो वे नीचे देखने का प्रयत्न करें तो हम निश्चय ही स्वयं ईश्वर की विशेषपुण्य तथा बहुमानकारी व्यवस्था ही दृष्टिगत करेंगे। मैं अष्टाध्याय विद्याम करता हूँ कि इस देश की सहायता करने के निमित्त उद्देश्य से ही अंग्रेजों को कहा जाने लगा था। आदेश दिया गया था। वह देशी उद्देश्य अनिवार्य रूप से पूरा किया गया है, वास्तविकता मानवीय भुला और दुःखदार् के जो हम प्रत्यक्ष दिखायी देता है। जैसे ही अंग्रेजों मन की प्रवृत्ति का भारतीय मन से सम्पर्क हुआ जैसे ही एक महान् प्रार्थना बूट पड़ी। देशी समाज ने इस सब हिल गया, भारतीय जीवन के सभी दोष आ-बोधित हो गये मानो किसी रहस्यमयी शक्ति ने उन्हें सब-भर दिया हो। फलस्वरूप राजनीति, बौद्धिक, सामाजिक तथा धार्मिक सभी क्षेत्रों में द्रुत गति से एक के बाद एक अनेक सुधार बिदे गये।"⁴⁶ केदार ने महापुरुष भारत में अंग्रेजों का आगमन ईश्वर के द्वारा के सहाय के बिना देखा भी माना तथा आपत्तिव्यक्त से मुक्त कर दिया था। इसीलिए उन्होंने विवेक के प्रति शक्ति का सम्पर्क किया। अपने "यू किंगडोम" "यूज मेयर" के पहले ही अब मैं केदार ने मनुस्मृति का स्वरूप दिखाने वाली भाषा में पोषण की वि-बोधित प्रभु ईश्वर का प्रतिनिधि होता है, और इसलिये शक्ति तथा अष्टाध्याय का अभिप्राय होता है। उन्होंने कहा कि राजनीति राजनीतिक व्यवस्था ही नहीं है, परन्तु ईश्वर के विरुद्ध पाप है। राज-श्री इतिहास में ईश्वर की सहाय से इनकार करने के समान है। केदार भावुक हो गये हैं, इसलिये कहा वे यह गये कि "हम अपनी सभी की अपनी माता के सहाय से करते हैं।" सम्भवतः केदार की इस धारणा से कि विवेक सम्पर्क के मूल में ईश्वरीय प्रवीजन तथा आदेश है राजा के की प्रसा-वित किया, और राजा से इस विचार की प्रतीति प्राप्त हुई, मोक्ष के आदि ने प्रह्वन कर लिया।

ईश्वर की भाँति केदारचन्द ने यह भी स्वीकार किया कि महापुरुष अपने पुत्र की शक्तियों के प्रतिनिधि होते हैं। वे अपने विचारों को ठीक वास्तविकता में परिवर्तित करने के लिए जीवन धारण करते तथा मरते हैं। वे सब तक सहाय करते गहरी बैठते जब तक कि उनके विचारों विचार वस्तु पर ठीक वास्तविकता का रूप धारण नहीं कर लेते। मनवद्वारा के प्रतिपादित विधुति के व्यव-स्मरण करने वाले सभी में केदार ने महापुरुष को 'सांख्यिक प्रयोग की विशिष्ट रूप से दलीयमान अभिव्यक्ति बतलाया। महापुरुष प्रवृत्ति के अवलोकन की किसी माप को पूरा करने के लिए प्रवृत्त होते हैं और महापुरुष के वास्तव में वैदिक बल की स्पष्ट करते हैं। अपने प्रारम्भिक जीवन में केदार ने इसका तथा वास्तविकता की रचनाओं को कहा था, और सम्भव है कि वे वास्तविकता के अभिव्यक्ति के सिद्धांत से परिचित थे। उन्होंने लिखा "वे (महापुरुष) समाज की सम्पूर्ण की दशा में प्रोत्सा-हते हैं और राष्ट्रीय के जीवन में मोक्ष बिन्दु का नाम करते हैं। उनके जीवन के साथ पहले भा सुन समाप्त होता और क्या कुछ नाम लेता है। बिधि के स्थापित अथवा वे वे अनुष्ठान प्रार्थना की मति आवश्यक मानो की प्रवृत्ति के लिए विशिष्ट विधानों का नाम करते हैं। इसलिये उनका अवलोकन आवश्यक पटना नहीं होता बल्कि एक व्यवस्थित और वास्तविक नियामक का परिणाम हुआ करता है। उनका नाम एक गहरी और दुःखमयी नैतिक आवश्यकता का फल होता है। कहा नहीं और यह नहीं असाधारण परिस्थितियाँ एक महापुरुष की नाम करती हैं सभी उस नाम का दबाव उसे बसात पसोड साता है। ईश्वर के नैतिक वास्तव में समाज की अनुप्राणित होते ही आवश्यक वस्तु की प्रार्थना ही जाती है।"⁴⁷ महापुरुष किसी सामाजिक आवश्यकता की प्रवृत्ति के लिए उचित होता है। वह राष्ट्रीय को प्रार्थना और मुक्ति का स-देग देता है और महापुरुष की विशिष्ट हीनता "किसी एक विचार के लिए जीवन तथा मरना"⁴⁸ हुआ करती है। केदार ने बतलाया कि महापुरुष के

46 कदारचन्द केर, "England in India (जबकी 1870 में दिया गया एक पाठ्य) Lectures in India पृष्ठ 127।

47 Lectures in India पृष्ठ 51।

48 गहरी, पृष्ठ 55।

भार सात्विक चरित्रधर मुम होते हैं—स्वाय का समान, मर्यादा, बुद्धि की मौलिकता तथा अनि मानवीय शक्ति।⁴⁹

वैराग्यवाद की स्वतन्त्रता से जन्मगत प्रेम का और अपने 'जीवन पैद' में उन्होंने स्वतन्त्रता के बीरव का पट्टासूत्र बना दिया है। वे वराधीता की पाप तथा ईश्वर के प्रति अनुत्तम मर्यादा से। उनका कहना था कि स्वतन्त्रता "पैसी ही प्राप्त है जहाँ कि चहुँपे।" 1880 में उन्होंने जिस नव विधान की घोषणा की उसकी उत्पत्ति स्वतन्त्रता की लोच से ही हुई थी। उनका कथन था कि स्वतन्त्रता ही पूर्वाग्रह तथा अज्ञान का प्रतिकार कर सकती है। साम्रा, पाह मनुष्य की ही और चाहे प्राय की हर दशा में पाप है। इसलिए वैराग्य न प्रतिपुत्रा तथा प्रति प्रेम का विरोध किया और ईश्वर को समझावना के विश्वास करने का उपदेश दिया। किन्तु उनका कहना था कि स्वतन्त्रता का अर्थ भयानक, मिथ्यामिमान और स्वेच्छाचार नहीं है। अतः ईश्वर का शक्त होने व चाहे उन्होंने ईश्वर विमरता को पूरा स्वतन्त्रता की शक्ति का प्रमाण स्थापन माना।⁵⁰

वैराग्य सामाजिक स्वतन्त्रता के संदेशदाता के।⁵¹ उनके विचार में वह मुम प्रकृष्टता का मुम था अब समीक्षात्मक बुद्धि की पक्षी की जीवन के सभी लोभों में पाप निजा का रहा था। उनका 'मुनम मर्यादा' का प्रकाशन सम्बन्धित शिक्षा की पारंपरिक प्रदाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कार्य था मर्यादा का।⁵² वे समकालीन मुम की प्रकृष्टि की का समर्थन थे। उन्होंने अपने 'भावी धन रूप' दीपक व्याख्यान में कहा स्वतन्त्रता का प्रेम प्रदान मुम का मुख्य संछाप है। यह बात एकदम स्पष्ट हा कामगी यदि हम अपने की मर्यादा देने की घोषणा की प्रकृष्टि पर ध्यान व निरर्के मर्यादा हुनकर योग कहा करते हैं कि हम उत्पीडकी प्रकृष्टि में रह रहे हैं। स्वतन्त्रता की आवाजा और हर प्रकार की साक्षर के पुरा प्रदान मुम की भावना में इस प्रकृष्टता के साथ व्याख्या है कि उनकी अभिव्यक्ति इस प्रकृष्टता के नाम में ही हो रही है, और इसीलिए यह प्रकृष्टता प्रदानत तथा निरर्थक रूप से स्वतन्त्रता के मुम के रूप में प्रकृष्ट हो नहीं है। स्वतन्त्रता का यह प्रेम चिन्तन तथा साधारण हर क्षेत्र में व्याप्त हो रहा है। राजनीति में मौल ऐसी प्रदान प्रकृष्टता की आवाजा करने लगे हैं जिससे अलग-अलग समाज के हर अर्थ की समुचित और पूरा प्रतिनिधित्व प्राप्त हो। जहाँ तक शिक्षा का सम्बन्ध है, समुपम सम्य विद्वानों में आवाज उठाती जा रही है कि जनता का नाम का प्रकाश की और उनी अज्ञान के अंधार के मुक्त करो। सामाजिक जीवन में परम्परा, कर्म और परिसारी के व सभी की सीढ़ने के लिए अपने हृदय के संघर्ष किया जा रहा है। धर्म के क्षेत्र में आत्मा को आत्म निरर्थक का अधिकार देने की क्षमता इच्छा का प्रभाव प्रदानों के रहा है। स्वतन्त्रता के प्रेम में पुरान सिद्धान्त और मर्यादा के लोभों की आस्था की निरर्थक कर दिया है, और सत्ता के प्रति उनके सम्मान की माहना को भयानक दिया है। जसने मनुष्यों में वह विश्वास प्रदान कर दिया है कि सर्वधिक निर्भीक और स्वतन्त्र अनुष्ठान के काम कोई भीज उन्हें सत्य तक पहुँचने में सहायता नहीं दे सकती।⁵³ स्वतन्त्रता का सही प्रकाशन व्यक्ति तथा राष्ट्र का अनुप्रतिष्ठ कर सकता है। वैराग्य स्वतन्त्रता की समर्थन एक सामाजिक मूल्य मानने के और उनकी मौल थी कि भारत की प्राचीन साम्प्रतिक विरासत की प्रकृष्टता मौलिकता तथा उपरीतितावादी मर्यादावाद से रहित करनी है। अतः इस की वैराग्य का संदेश था "राष्ट्र की प्रकृष्टतावादी अज्ञान की स्वतन्त्रतासूत्र उच्छर तथा प्रकृष्ट होकर उच्छतर जीवन के वरिष्ठ साधकत्व में समाप्त हो जाना चाहिए।"⁵⁴

वैराग्य उन सामाजिक तथा सामाजिक प्रयोगों के परिचित थे जो उस समय यूरोप में किने

49 वैराग्यवाद में, 'Great Men', *Lectures in India* पृष्ठ 55-58।

50 था भी मनुष्यता की प्रकृष्टता *Life and Teaching of Keshab Chandra Sen* में 'जीवन में' के उद्धरणों के अनुसार पृष्ठ 327-66।

51 वैराग्यवाद में की सामाजिक प्रकृष्टता *Young Bengal This is for You*

52 प्रकाशन सम्बन्धित *The Philosophy of Brahmanism*, पृष्ठ 30।

53 वैराग्यवाद में, 'The Future Church' (23 जनवरी, 1869 की दिनांका एक प्रकरण)। *Lectures in India* पृष्ठ 99।

54 *Lectures in India* पृष्ठ 39।

जा रहे थे। कदापि उन्होंने उन बातों का भारत के लिए खुलकर समर्थन नहीं दिया। फिर भी अपने भाषणों में उन्होंने उनका समय-समय पर जो उल्लेख किया उसी से उन बातों के उत्साहपूर्ण स्वागत के लिए धीरे-धीरे भावना उत्पन्न हुई, चाहे उस समय यह कितनी ही धुंधली क्यों न रही हो। अपने 'यूरोप की एशिया का संदेश' शीघ्र-शीघ्र में उन्होंने घोषणा की— "पश्चिम के उन्नत राष्ट्रों में आधुनिक राजनीति की प्रवृत्ति किसी को बहिष्कृत करने की नहीं, बल्कि सबको सम्मिलित करने की है, किसी बल को दब्य करके अवशेषित करने की नहीं बल्कि सम्पूर्ण जनता का प्रतिनिधित्व करने की है। शासन का सर्वोच्च रूप अवधि-व्यवस्था और पूर्ण प्रतिनिधित्व का वर्णन वन क्या है। आप निरंतर महाविचार का विस्तार करते जा रहे हैं। आज आप हजारों को महाविचार में सम्मिलित करते हैं, फल इसीसे हजारों की और अगले दिन इसका साठ को, जब तक कि जनता के निम्नतम और दीनतम अंग सम्मिलित नहीं हो जाते। यदि आपके महा मुखासन का प्रतिबिम्ब भी है, यदि आप वास्तविक राजनीतिक समृद्धि की परवाह करते हैं तो निश्चय ही आप निम्नतम वर्गों की अवहेलना नहीं कर सकते, आप उनकी दरिद्रता के कारण उन्हें मिटा नहीं सकते, उनके अज्ञान के कारण आप उन्हें पुनर्जन्म देने में नहीं हिता सकते। सबन 'यम' के लिए चुनाव ही रहो है— दुबलो तथा दलितहीनो के लिए 'यम', यमिक वर्ग के लिए 'यम'। उस चुनाव का न सुनने का अप होना विनाश की निम्नतम देना।"⁵⁵

केसव का हृदय उबार तथा विद्याल का और वह ईश्वर के सभी प्राणियों के प्रेम का। अपने 'जीवन वेद' में उन्होंने कहा— "मेरा स्वभाव गरीब जाति के लोगों का स्वभाव है। मेरा शरीर गरीब आदमी का शरीर है।"⁵⁶ किन्तु वे यह स्वीकार करने की क्षमता नहीं थे कि सभी लोग मोक्ष के अधिकारी नहीं हो सकते और यम केवल भौतिकियों तथा कुरियों में ही फलता पুষता है। उनके सब विधान के सभी और दरिद्र दोनों का ही सम्मान करने का उपदेश दिया क्या था क्योंकि उनके महागुण ईश्वर भक्तियों के आनाया तथा गरीबों की भौतिकियों में समान रूप में विनाश करता रहता है।

केसवबाद में अपने सार्वभौमिक सार्वभौमिकवाद के अनुरूप राज्य के सम्बन्ध में एक ऐसा सिद्धांत प्रतिपादित किया जो प्रत्यक्षतः के बहुत निवृत्त था। उन्होंने कहा कि राज्य एक बलिष्ठ बाधा तथा विभिन्न प्रकार के असौ की अवयवी एकता है। उसका उद्देश्य एक सार्वभौमिक राज्य की सामयिक-पूर्ण प्राप्ति है। सभी दुलीनों तथा पूनीयवियों और दरिद्र विद्यालियों तथा अधिका के मत से राज्य के अवयवी समस्त का निर्माण होता है। किसी एक मन को बहिष्कृत करने से राज्य प्रभावहीन हो जाता। केसव ने कहा कि 'हरीद्वार साहचर्य की दृष्टि' ही राज्य है। यह राज्य व्यवस्था में पुनर्जन्म, साम्प्रदायिक सकीलता तथा पारस्परिक कषा की नीति के लिए स्थान नहीं हो सकता। किन्तु राज्य के सम्बन्ध में अवयवी, बल्कि सबका प्रत्यक्षतः सिद्धांत के समर्थक होते हुए भी केसव राजनीतिक निरनुत्तमवाद के पक्षनोपक नहीं थे। अन्तरराष्ट्रीय धर्म के आदर्श से वे अनुप्राणित थे, और उन्होंने उच्च स्तर में घोषणा की— "सम्बन्ध जगत् में 'सक्ति का साधुवन' क्या ही आनन्दजनक बात है।"⁵⁷ उनसे अनुसार धर्म की सन्धी भावना की मांग थी कि 'अन्तरराष्ट्रीय धर्म' के वर्णनों का मुहूर्त बनाया जाय।

5 निष्कर्ष

यद्यपि केसव पारिभाषिक रूप में राजनीतिक दार्शनिक नहीं थे, फिर भी उन्होंने अपने भाषणों, प्रवचनों, उपदेशों तथा कथों के द्वारा कपाल की सामाजिक तथा नैतिक मुक्ति में महत्त्वपूर्ण योग दिया। उनकी बुद्धि व्यापक तथा उत्थार थी, इसीलिए उन्होंने सब-सम का पक्ष लिया। उन्होंने अनुभव किया कि अपने अनुसन्धानों द्वारा विज्ञान एकता के आदर्श की स्वीकृति के लिए आधार

55 'Asia's Message to Europe' *Lectures in India* पृष्ठ 307।

56 *Jivan Veda* की 41 प्रवचन *Life and Teaching* पृष्ठ 353।

57 केसवबाद में "Asia's Message to Europe" *Lectures on India* पृष्ठ 306।

58 वही।

59 वही।

तैयार कर रहा है, और सब धार्मिक प्रवृत्तियाँ वा भी यही उद्देश्य है।⁶⁰ य तर्जिया तथा दक्षिण की आत्मा वा समन्वय चाहते थे, क्योंकि उनके विचार में प्रेम तथा सार्थकता वा एव साधनीय धर्म तथा ही पीछित मानवता की मुक्ति दिना संभवता था। उन्होंने भारतीय जीवन में ईसाई मूल्यों की समाविष्ट करने पर बल दिया। वे धार्मिक साधनीयवाद के सचेष्टवाहक थे⁶¹ और सभी धर्मों की देवी स्तुति वा उद्घाटन मानते थे। भारत में वे एव प्रकार के सञ्जातित धार्मिक साधनीयवाद के समर्थक थे जिसमें उन्होंने विभिन्न धर्मों के सर्वोत्तम तत्वों वा सम्मिलित कर लिया था, जैसे उपनिषदों वा ऐतरेयब्राह्मण, इस्लाम वा समता वा आदर्श और ईसाइयत की मनुष्य के पुत्रत्व और ईश्वर के पित्रत्व की भावना। किन्तु आध्यात्मिक अनुभव के परिणाम होने के साथ साथ वे सञ्जातित साधनीयवाद से एक कदम आगे बढ़ गये। उन्होंने कहा, "हमारी भावना यह नहीं है कि हर धर्म में सत्य है, बल्कि हमारे विचार में तो हर धर्म सत्य है।" अपने नव विधान में उन्होंने विभिन्न धर्मों के सर्व ज्ञान और वैश्वसाध्य की ही समाविष्ट गयीं कर लिया बल्कि उनके वास्तविक इतिहास और प्रतीकवाद के भी अधिकांश वा ग्रहण कर लिया। इस प्रकार, वैश्ववाहक ढोंक धार्मिक समन्वय और साथ हीमवाद के सचेष्टवाहक बन गये। उन्होंने प्रतीक रूप से आधारभूत धार्मिक सत्ता की स्वीकृति पर आधारित अयो-याधित अवयवी मानव संघी के आदर्श का भी समर्थन किया।

केसवचन्द्र की उत्कट अभिलाषा थी कि सीमा की धार्मिक भावना को तेजी से छोड़ कर सचेत किया जाय, इसलिए वे अपने व्यापक सुधार के कार्यक्रम को धार्मिक पुनर्जागरण पर आधारित रखना चाहते थे। उन्होंने समाज-सुधार का समर्थन किया और वे स्वतन्त्रता के महान प्रसपीक थे। उन्होंने इन बातों की स्वीकार किया कि राष्ट्रा के विच्छेद के लिए महान प्रयास तथा निष्कार तथा की आवश्यकता होती है।

चित्ररत्नचन्दन के शब्दों में, "वेराव उत्कट राष्ट्रवादी, उत्कट समाज सुधारक और उत्कट ईश्वर भक्त थे।" लासिकता के आदर्शों और धार्मिक साधनीयवाद के मूल होने के साथ-साथ वे स्वतन्त्रता के मूल्य की भी भलीभाँति समझते थे। उन्होंने 1870 के इंग्लैण्ड में अपने भाषणा में अपनी जनता के लिए 'मम की भाग की और अवेला से स्पष्ट शब्दों में यह दिया कि वे भारत के 'वासपायी (हुस्ती) थे। उनके शब्द थे 'भारत तुम्हारे अधिकार में प्रतीक के रूप में है।'⁶² वे भारत की सम्पत्ति वा इगलैण्ड के लिए तथा उसकी मुक्ति और धर्म की मुक्ति के हेतु प्रयोग करने के विरुद्ध थे। उन्होंने अवेला शीताओ की स्मरण दिलाया कि एक ईश्वर है जिसने समस्त दुम्हें अपने पापों का क्षमापन बुलाया पठाया। भारत में ब्रिटिश शासन वा औकिस् केवल "भारत की मलाई और कल्याण का ही करता है। भारत पर मैनेजस्टर की मलाई के लिए अधिकार नहीं रखा जा सकता।"⁶³ अतः कहा जा सकता है कि केसवचन्द्र सेन के विचारों ने भारतीय राष्ट्रवाद के राजनीतिक दर्शन को बल प्रदान किया।

प्रकरण 4

बहु समाज का दाय

बहु समाज कोई राजनीतिक आन्दोलन नहीं था, किन्तु उसके बुद्धिवाद, उसके साधनीयवाद, उसके मानव धर्म के विचार तथा उसके पुन तथा परिष्कार के समन्वय के आदर्श ने सभी 'राष्ट्रीय आन्दोलनों की बौद्धिक नींव तैयार कर दी। बहु समाज धर्मीय व्यक्तिवादी विरोध आन्दोलन वा यह पक्ष की ओर से जाने वाली और बबर बनाने वाली सड़िया के विरुद्ध अव्यक्तित बुद्धि, हृदयसंग्रह अलंकरण के उदय वा सार्थक था। अतः उसकी तुलना यूरोप के बुद्धिवादी जागरण तथा स्वतन्त्र चिन्तन के आन्दोलन से की जा सकती है।

60 1870 में चित्ररत्न की धर्म में कि वे अपने एव भाषण में केसव ने इंग्लैण्ड जाय, लन्दन और इटली तथा अन्य राज्यों में कहा है कि "युद्ध व शासन की तुलना कर दीजिए और सार्थक तथा उद्घाटन वा परिष्कार कीजिए।

61 टी एन कलकानी, *A Prophet of Harmony My Motherland* पृष्ठ 96-103।

62 चित्ररत्न सेन की *Speeches* के संकलन पृष्ठ 212-13।

63 वही।

किन्तु समाज स्वयं हिन्दू समाज में अपनी जड़ें न जमा पाया। उमंग सर धर्मों की अच्छी समझ वाली थीं। वे प्रत्यक्ष करने की नीति अपनायी, उसका दृष्टिकोण बड़ा स्पष्ट-परवाही था। उनमें हिन्दुओं के बहुदलवाद तथा मूलिद्वय की धर्मतापूर्ण मरम्मत की, और उनमें मर्यादा ईसाई विचारों के साथ रिकामों की। इन सब बातों ने उसे बताया कि हिन्दुओं की दृष्टि में एक धर्म की कल्पना करना दिया। हिन्दू समाज से अवलोकन में हमें यह भावना रही है कि धर्मोपदेश का विरोधाभास केवल सभार-धर्माणि तपस्विता तथा मिश्रण की ही होता है न कि पुनरावृत्ति गृहस्था का। इसीलिए राममोहन राय और मेखराज ने हिन्दुओं के हृदय की भावनाओं और अनुभूति का उत्तम प्रभावित न कर सके जिससे कि स्वामन्द, रामकृष्ण और विवेकानन्द ने किया।

ब्रह्म समाज ने स्वामन्द और देव की अनेक अप्रती विभाग, देशभक्त तथा नारा प्रदान किये। विभिन्न-प्रकार का तथा चित्तरत्न दास ने, जो आगे चलकर परम्परावादी हिन्दुओं के अनुयायी बन गये, ब्रह्म समाज से ही बौद्धिक गवीनता की भावना प्राप्त की थी। स्वामन्द माह्न वीर (1846-1905) जो 1898 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष पद पर चुने गये, ब्रह्म समाज के अनुयायी थे। जगदीशचन्द्र बोस, प्रतापचन्द्र मजुमदार, ब्रजिन्द्रनाथ सेन, सरलादेवी चौधुरानी, रामानन्द चटर्जी, कृष्णचन्द्र मिश्र, रवीन्द्रनाथ टैगोर तथा साहू मिश्र को भी ब्रह्म समाज की शिक्षाओं से प्रेरणा मिली थी।⁶⁴ उनमें से कुछ तो आगे चलकर समाज के प्रमुख हो गये,⁶⁵ किन्तु कुछ उसके प्रति भक्ति प्रदर्शित करते रहे। अपने बर्तित्व के द्वारा न विवेकानन्द भी समाज की अठला में जाया करते थे और कुछ समय तक वे सामारण ब्रह्म समाज के सदस्य भी रहे। अतः स्पष्ट है कि पुनर्जागरण तथा बुद्धिवाद के प्रसार में समाज का महत्वपूर्ण योगदान था।⁶⁶

64 'अभिविभागा' व 'लेख' ब्रजिन्द्रनाथ चटर्जी द्वारा रचित ब्रह्म समाज की मुख्य विधुविधा में से।

65 रामानन्द चटर्जीजी (जन्म 1850) की जिन्दगी 1870 में माजीर में देव समाज की स्थापना की था ब्रह्म समाज का विद्यार्थी के प्रभावित हुए थे।

66 विभिन्न-प्रकार का वे अपनी पुस्तक *Beginnings of Freedom Movement in India* में पृष्ठ 32 पर लि है कि विभिन्न-प्रकार चटर्जी के 'बौद्धिक चरित्र' चीन नामक तथा 'अनुभूतिपूर्ण धर्म' ब्रह्म समाज के। यह प्रभाव स्पष्ट दिखायी देता है।

3

दयानन्द सरस्वती

1. प्रस्तावना

स्वामी दयानन्द (1824-1883), 1824 के काठियावाड़ (गुजरात) के मोर्बा नामक नगर में उत्पन्न हुए थे। वे सामनेवी पाशुपत थे। इसीसे वह भी आपु में वे वैवाहिक जीवन के वाचना से बचने के लिए घर छोड़कर भाग गये। 1845 से 1860 तक वे ज्ञान, प्रकाश तथा अमरत्व की खोज में विभिन्न स्थानों में घूमते रहे। 1860 में उन्होंने मथुरा में स्वामी विद्वानन्द सरस्वती के घरवाँ में ईश्वर वाणिनि तथा पञ्चमणि का अध्ययन आरम्भ किया। वहाँ उन्होंने साईं वष तक अध्ययन किया। 1864 में उन्होंने सामाजिक रूप में उपदेश देना आरम्भ कर दिया। 17 नवम्बर, 1869 को उन्होंने बारी में हिन्दू देवस्थान और परम्परावाद के नेताओं से साक्षात्कार किया। 10 अप्रैल, 1875 को बम्बई में प्रथम आर्य समाज की स्थापना की गयी और 1877 में लाहौर में आर्य समाज के सचिवालय की अस्थायी रूप दिया गया। जदपुर में महाशया जनने सिद्ध बन गये। 30 अक्टूबर, 1883 को सम्भवतः विष दिने जाने के कारण उनका शरीरगत हो गया। भारत के कलमान पुनर्जागरण आन्दोलन में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने महती जीवनवाणिनी शक्ति का काम किया है। समाज से वे आचार्य के विशद जन्मशक्ति सफल करने वाले थे (उनका बचन था सत्कार ब्रह्मण तथा आचरिषवात् की श्रुत्या में जनका हुआ है। मैं उस श्रुत्या को छोड़ने तथा दानों की मुक्त करने के लिए आया हूँ)। वे महान विद्रोही थे। उन्होंने धार्मिक अन्तःकरण के क्षेत्र में अपने खीब विज्ञान के सत्तायुक्त परम्परावादी आदेशों के सामने समकथ करने से इनकार कर दिया। और न उन्होंने हिन्दू परम्परावाद के नेताओं के प्रलोभनों तथा कोष के सामने ही समकथ किया। वे ईसाई धर्म की कुरादों की निरन्तर निन्दा करते रहे, यद्यपि जब किसी क्रिश्चि साम्राज्यवाद अपने निजोत्पत्त के शिखर पर था। परमाणु शस्त्र की लीज में वे व्यक्ति की कर्तव्य तथा पवित्र मानते थे, और वे महान नैतिक आदेशवादी थे। वे लक्ष्मी, गृह, सदाचार तथा जितु शस्त्र समझते थे उसके लिए बीरतायुक्त सफल करने वाले थे। उनकी घोषणा की 'मेरा उद्देश्य मन, बचन तथा काम के शस्त्र का अनुसरण करना है।' और इसी को उन्होंने आर्य समाज का बीजा नियम निर्धारित किया "हम सत्य शस्त्र की स्वीकार करने तथा मर्त्य का परिचाय करने के लिए उत्तम रहना चाहिए।" उनका सम्पूर्ण व्यक्तित्व व्यापक वैदिक आदेशवाद से अभिप्रेत था। जिन व्यक्तित्व सामाजिक, वैज्ञानिक और धार्मिक कार्यों की और दक्षानन्द ने अपना ध्यान लगाया उनके लिए लक्ष्य शक्ति तथा साम्य की आवश्यकता थी, और हम देखते हैं कि उन्होंने अपने जीवन के मुख्य काम के लिए अपने को समार करने में चासीस वर्ष लगा दिये। वह वे सत्य शक्ति सन्तुष्ट और हिंदी की अहिंसीय वाचपटुता तथा कुमरणीय और अन्तर्गत केकर भारत के हिन्दू समाज के कुपरीकार के काम में जुट पड़े। ईश्वर शक्ति से अतिशय अपने पवित्र तथा निष्कलक जीवन द्वारा उन्होंने मुखात्मक शक्ति का अद्भुत बगहार प्रकट कर रखा था और उसका प्रयोग उन्होंने देश के उत्थान के लिए किया। वे योगी थे, इसलिए कृतु के आत्म में पूर्णतः मुक्त हो चुके थे। उन्होंने निकटस्थ कृतु के मुखात्मक निष्कलकता तथा ईश्वरप्राप्त की भावना का परिचय दिया उससे प्रकट होता

है कि अपने जीवों पर वे किसी महत्वपूर्ण आदर्श विचारों प्राप्त करते आये थे। महान् धार्मिक मत में वे महावीर हनुमन्ति के रहते थे, और व्याकरण, वक्त्र, घन, हितुओं के पञ्चाङ्गशील तथा समाजशास्त्रीय साहित्य आदि विषयों में उनका वाङ्मय तो गहनवीर के समान ही था, जो हमें सब, रामानुज तथा सायनाचार्य का समरूप दिखाता है।

दयानन्द देशों के प्रशासक दण्डित, उत्कृष्ट न्यायिक तथा समाज सुधारक थे। यद्यपि उन्होंने राजनीतिज्ञ बनने के क्षेत्र में कोई व्यवस्थित रचना नहीं प्रणीत की है, फिर भी वे भारतीय राजनीतिज्ञ सिद्धान्त के इतिहास में स्थान देने के अधिकारी हैं। इसने दो मुख्य कारण हैं। प्रथम, उन्होंने भारत की राजनीतिक स्थापना की नींव रखी थी। उन्होंने हिन्दी के वैदिकवादी विचार, इतिहास तथा विचारों के उद्धार के लिए घन मुख्य प्रस्ताव तथा विचारों पर अत्यन्त प्रभाव डिया—उन सब बातों में भारतीय जनता की नयी शक्ति तथा मन प्रदान किया। सामाजिक चेतना के समर्थन के रूप में उन्होंने आर्थिक तथा सामाजिक दृष्टि से विचारों को प्रेरित करने की पुनर्स्थापना का उपदेश दिया। जिन दिनों ब्रिटिश साम्राज्यवाद भारत में रहता था जहाँ हुआ था, उस समय उन्होंने स्वराज्य का गौरव प्राप्त किया। दूसरे, दयानन्द ने आर्य समाज के रूप में एक शक्तिशाली संस्था की नींव डाली जिसने उत्तर भारत में महत्वपूर्ण शक्ति तथा सामाजिक कार्य किया। अर्य समाज ने देश के स्वतन्त्रता संग्राम के लिए अनन्त प्रेरणा प्रदान की। यद्यपि आज समाज राजनीतिज्ञ संस्था नहीं था, फिर भी अपने देशवर्षों की आकांक्षाओं को पूरा करने और समस्त उत्तर भारत में सामाजिक, शक्ति तथा स्वतन्त्रता का संदेश धर-धर पहुँचाना। इसलिए दयानन्द और आर्य समाज का भारतीय राष्ट्रवाद के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है। रोम रोम विद्यते है " के जनता के महान् उद्धारक थे—अनन्त भारत में राष्ट्रीय चेतना के पुनर्जनन तथा पुनर्जागरण की चेता में सुरत तथा उत्साह काय की प्रेरणा के के सर्वाधिक शक्तिशाली स्रोत थे। चाहे उनकी दृष्टि रही हो अथवा न रही हो,¹ उनके आज समाज ने 1905 के स्वतन्त्र के विद्रोह का मार्ग प्रशस्त किया। वे पुनर्निर्माण तथा राष्ट्रीय पुनर्जागरण के आदर्शिक उदाहरण के रूप में हैं। मुझे ऐसा लगता है कि जब सारा देश को रक्त या तप के अग्नि हो के जिन्होंने जगत्-व्यापक सन्धि रखा थी।² उन्होंने तथा अन्तिमशक्ति के विद्रोह अपने आत्म-व्यक्तित्व तथा विचारों के शक्ति का प्रयोग करते-करते उन्होंने अत्यन्त रूप से भारत की राजनीतिक, आर्थिक शक्ति के शक्तिशाली आन्दोलन के लिए प्रेरणा प्रदान कर दी। यही कारण था कि उनके शब्दावली और साधन रूप में ही शक्ति अपने आत्मों देश की अन्तिमो पर प्रभाव करने काहीन बन गये।³ उनका स्वदेश का प्रेम और जीवन के सभी क्षेत्रों में फैल गया और उनके अन्तर्गत राजनीतिक परिवर्तन हुए। वे वैदिक शिक्षा प्रणाली अर्थात् गुरुकुल प्रणाली की ही पुनर्जागरण करना चाहते थे।

2. दयानन्द के राजनीतिक चिन्तन के दार्शनिक आधार

दयानन्द निर्भीक सदैववाहक तथा अन्तर्बोध के समाज सुधारक होने के साथ साथ राष्ट्रवादों की थे। उनका विश्वास था कि अन्तर्बोध (निर्भीक) समाज की अन्तर्गत अवस्था में आरम्भ उद्धारवादी तथा अन्तर्वादी परम्परा का साक्षात्कार कर सकता है। वे कष्ट तथा स्वयं की शक्ति अन्तर्वादी (अन्तर्वादी) नहीं थे। उन्होंने सिद्धांत कि ईश्वर में अन्तिम और अन्तर्गत आस्था होनी चाहिए और यह अन्तिम जीवन के द्वारा प्राप्त की जा सकती है। परम्परा सदा कोई दार्शनिक अन्तर्गत नहीं है, बल्कि विश्व दृष्टि के द्वारा उसकी अनुभूति तथा वक्त्र किया जा सकता है। इसलिए दयानन्द ने

1 उन्होंने सामाजिक रूप में इसका विचार किया। उन्होंने भारत पर राजनीतिक और पर ब्रिटिश विरोधी होने का दावा किया। विद्रोह विद्रोह सरकार के दयानन्द विचार अन्तर्गत था। अन्तर्गत की अपने अन्तर्गत में सामाजिक रूप में अन्तर्गत था।

2 यही।

3 दयानन्द सरस्वती के विचार तथा विचार अन्तर्वादी रूप में न (अन्तर्गत 4 1857—माघ 31 1930)। 1897 के माघ अन्तर्वादी अन्तिम परमाणु में ही रहे। वे *Indian Sociologist* नामक पत्र के माघ 1905 के अन्तिम विचार तथा माघ अन्तर्गत थे। उन्होंने हिन्दुत्व अन्तिम तथा अन्तर्गत का दावा किया।

4 महा वाक्ता है कि दयानन्द जीवन देशी अन्तर्गत अन्तर्गत थे।

योग पर विरोध व्यक्त किया। वे भक्त तथा आस्तिक और बहुर एवेस्वरवादी थे। कईत वैरागिता न लक्षणान के निगुण और निराकार यद्वा तथा दम्भराजन के अनुग और गानार ईश्वर न जो वेद किया था, उसका इमान्द न स्पष्टत किया। दम्भराज के परमेश्वर न वैरागिता के अनुग तथा ईश्वर का सम्पूर्ण सार तथा उपामियां विद्यमान हैं। दम्भराज तथा रामानुज के अनुसार ईश्वर निगुण यद्वा नहीं है, बलिक बहु सभी अमलमय गुणा का सम्भार है। इसीलिए दम्भराज का उपदेश वा किमलिक मोक्षन की उपलब्धि का लक्ष मान ईश्वर के गुणों का चिन्तन भी है। अपने चरित्र ने इस रहस्यमय यद्वा के कारण वे यूरोपीय दार्शनिकों के अभिप्रायी सुद्धिवाद की तुलना में एक निम्न कोटि में आबद्ध हैं। ज्ञान सीमाका की दृष्टि से दम्भराज न्यायिक दार्शनिकता की भाँति समानवादी हैं। लक्षणान की दृष्टि से वे ईश्वर तथा आत्मा का आध्यात्मिक दृश्य मानते हैं। दम्भराज के अनुसार तीन प्रकार के शास्त्रत दृश्य हैं। ईश्वर, जीव तथा प्रकृति तीन तत्त्व अनादि तथा अनन्त हैं। वे साम्या की भाँति प्रकृति की स्वतन्त्र तथा शास्त्रत मानते थे, किन्तु उनका तब था कि यद्वाय वा व्यवस्थित करने के लिए सृष्टिकर्ता ईश्वर भी आवश्यक है। इस प्रकार वे ईश्वर की सत्ता के यद्वा में ब्रह्माण्ड शास्त्रीय तब की स्वीकार करते थे। उनका यह भी सम्यक था कि विश्व के मूल में अनिर्विहित जो भाव हैतु और उद्देश्य स्पष्ट दिखायी देते हैं वे भी ईश्वरवाद के सिद्धांत की पुष्टि करते हैं। मन्वेद के प्रमाण के आधार पर (समाप्तामल्लमल्ल) दम्भराज भी (अस्तु की भाँति) विव्वास करते थे कि सृष्टि और प्रलय का क्रम चक्रवत् चलता करता है। उन्होंने सामिया (सेपेटिक जालियों) की इस चारणा का सम्बन्ध किया कि ब्रह्माण्ड की एक ही बार सृष्टि हुई है। उनका कहना था एकल सृष्टि का सिद्धान्त वैदिक वेदों का सही कारण नहीं बलराजा, भल यह कार्मिक बुद्धि की सृष्टि नहीं कर सकता। दम्भराज ने वैरागियों के इन सिद्धांतों की अस्वीकार किया जो जीव की ब्रह्म का ही सार अथवा लक्ष्य केवल आस्तिक रूप में निम्न मानते हैं। उनका मत था कि जीव और आत्मा का वेद शास्त्रत है और बुद्धि की अवस्था में भी जीव यद्वा में निम्न रहता है नवीन उनसे 'आंतरिक तथा की भाँति' होती है। वे बुद्धि से आध्यात्मन के सिद्धांत में भी विव्वास करते थे, परलोक शास्त्र सम्भवी चिन्तन की यह उनकी नवी देन थी (उनके भैतवाद का, जिसमें ईश्वर, जीव और प्रकृति तीन की स्वतन्त्र सत्ता की स्वीकार किया जाता है, प्रमथन करना कठिन है। किन्तु उन्होंने सफर के साम्यावाद के सिद्धांत का भी सम्बन्ध किया है उसमें यद्वा यद्वा है। यह बात उल्लेखनीय है कि लक्षक कईतवाद का, जिसकी यूरोपीय में इसकी यद्वा की जाती है (उदाहरण के लिए, गीइलेन हाथ), रामा नुल और बायन ने भी सम्बन्ध किया है। हम देखते हैं कि आधुनिक यूरोपीय तथा अमेरिका में भी हेगेल के प्रथमवाद के विरुद्ध प्रतिनिता यद्वा रही है और यद्वावाद का इल्लापुलक सम्बन्ध किया का रहा है। आधुनिक एकत्ववाद ने भी युगने प्रथमवादी दम्भरी की दृश्य जगत का निवेष्ट करने वाली प्रकृतियों की बल्लिष्ठ करने के प्रयत्न किये आ रहे हैं, और यद्वावाद नतिशील एकत्ववाद पर बल दिया जा रहा है। इन आधुनिक प्रकृतियों का दम्भराज द्वारा निवेष्ट यद्वा साम्यावाद के सम्बन्ध की पुष्टि करने के लिए प्रयोग किया जा सकता है।

दम्भराज पूर्ण वेदवाद के सम्बन्धवादी थे। उन्होंने घोषणा की कि चार वैदिक संहिताएँ अक्षोक्षीय हैं। वे जीवन की समस्याओं का वैदिक सिद्धांतों के आधार पर समाधान करना चाहते थे। उनका सम्यक था कि वेद शास्त्रत, शुद्ध तथा आदि ज्ञान के स्रोत हैं, सृष्टि के प्रारम्भ नहीं यह ज्ञान मौल्य भाँति की प्रदान कर दिया गया था। उनका दावा था कि वैदिक ज्ञान की पुरातन संहिताओं में सम्यक ईश्वर की ही भाँति निहित है, और इसीलिए वेदों में उनकी आत्मा बह्मवत् हल तथा अदिन की।⁵ हम ऐसा समझते हैं कि वैदिक संहिताओं के युग से आज तक सत्ता में वेद का दम्भराज से यद्वा सम्बन्ध अस्तन नहीं हुआ है। 1864 के बाद उन्होंने सत्त पला तथा लुवर की अनुक्त भाँति तथा लक्षक के ज्ञान सपना सम्पूर्ण जीवन में भी वेदों पर अधिष्ठ न दिया। दम्भराज न अलक्षिक रूप से घोषणा की कि वेदों ने आध्यात्मिक लक्षिक ज्ञान तथा यद्वातिक मोक्षिक ज्ञान

5. डॉ. बार्नर *Barnes' Hindu Dharma* इस गुणात न बल्लिष्ठ के स्वीकार किया है कि दम्भराज के वैराग्य में शास्त्रीय साम्या सिद्धि थी।

का रहस्य दोनों का ही समावेश है। मैं दयानन्द ने इस सिद्धांत के सहमत नहीं हूँ कि वेद सम्पूर्ण ज्ञान के सारभार हैं। किन्तु मैं यह मानता हूँ कि वेदों में रहस्यवाद, ज्ञान तथा सामाजिक समष्टि के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण विचार निहित हैं। दयानन्द के अधिक अनुसंधान का सामाजिकता ने सम्बन्ध में बिना शक के कोई मत व्यक्त कर देना कठिन है। अरविन्द भी स्वीकार करते हैं कि वैदिक मान्यता में अतिप्राकृतिक युग रहस्य विद्यमान है। विदेशी सनोधान ने भी माना है कि वेदों में आधुनिक तथा नविक ज्ञान निहित है। शिस्त का मत है कि आधुनिक युग में एकरूपवादी अर्थवाद के आदि सिद्धांतों का उल्लंघन करने में निरतम किया गया है। पूर्वोक्त मत दयानन्द के वेद विमर्श विचारों की सत्यता के खोला है, यद्यपि मैं उनके इस मत के कदापि सहमत नहीं हूँ कि वेदों में वैज्ञानिक ज्ञान सहित समस्त ज्ञान के बीज विद्यमान हैं।

3 दयानन्द का सामाजिक दशन

दयानन्द वैदिक वर्णश्रम धर्म के समर्थक थे किन्तु उन्होंने भारत में व्यवहृत जाति-प्रथा के सम्बंधित आचार्य भी बड़े आलोचना की। जन्म की जाति की कसौटी मानने के मकर कुलपरिणाम हुए थे। इसलिए दयानन्द इस बात में थे कि मनुष्य का जन्म एकही मानसिक प्रवृत्ति की, सुखी तथा कर्मों के अनुसार निर्धारित नियम प्राप्त। परन्तु दयानन्द का यह विचार अतिशारी था।⁶ इसने जन्म पर आधारित भेदभावा की धारणा पर घातक चोट की। इसके विपरीत धर्म के सम्बन्ध में उनकी कसौटी नैतिक नैतिक थी। दयानन्द का मत था कि नैतिक-नैतिक तथा व्यावसायिक कसौटी पर आधारित जन्म का सिद्धांत अनेक सामाजिक तथा व्यावसायिक समस्याओं का समाधान कर सकता है। जन्म धारण करने की कसौटी जन्म नहीं, बल्कि निम्नी विविधता का करने की मानसिक क्षमता है। इस प्रकार भारत के सामाजिक जीवन में दयानन्द का लोकतांत्रिक आदर्शवाद जन्म के समान पर बोधगता की महत्व देने में व्यक्त हुआ। व्यावसायिक स्तरों के आधार पर समस्त सामाजिक व्यवस्था का समर्थन पौरोही और अरविन्द ने भी किया है। यदि जन्म आधारों के सिद्धान्त का अनुसरण किया जाय तो प्रतिस्पर्धा की प्रवृत्ति के अतिरिक्त प्रदत्त पर सुनिश्चित रूप का अनुसंधान प्राप्त हो सकता है, क्योंकि पञ्चाश वर्ष की आयु में लोग आर्थिक विचारधारा में निरत होकर सरल जीवन बिताते लगे हैं और चिन्तन के लग जायेंगे। किन्तु आधुनिक भारत में सामाजिक स्तरीकरण के सिद्धांत के रूप में जन्म व्यवस्था से कोई लाभ हो सकता है, इस बात में मुझे भारी सन्देह है। कारण यह है कि यह व्यवस्था शास्त्रियों पुरानी ऐतिहासिक अनुसरण तथा परम्परावाद से अतिप्रोत्त है। व्यवहार में जन्म वर्णों की भेद होकर जन्म जाति के भेद से भेद से भेद होना कठिन होगा। जन्म यद्यपि मैं दयानन्द के आधुनिक सिद्धांत से सहमत हूँ, किन्तु उनके जन्म सिद्धांत से मेरा सह्य सह्य है।

दयानन्द का विविध और अत्यधिक मत था कि मनुष्य अपने विचारों के अनुसार जीवन और विचारों के चरण में रहता है, किन्तु समाज के सम्बंधित वर्णों के विचार में यह प्रतीत है। यह वेद हम जन्म के आधुनिकताओं तथा परम्पराओं कर्मों के अन्तर्गत स्मरण दिखाता है।⁷ दयानन्द ने जन्म समाज के नये और दशक नियम इस प्रकार निर्धारित किये “प्रत्येक को अपनी ही जाति में संतुष्ट नहीं रहना चाहिए, किन्तु अपनी जाति में अपनी जाति समझनी चाहिए” तथा “प्रत्येक को अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता और विचारों की स्वायत्त में रहना चाहिए जिससे अन्त में यह साथ जीवन कल्याण का परिणाम कर सके, अथवा, दूसरे शब्दों में, सामाजिक हित के परिचयन के लिए जन्म की अनुयायि और विकसित कर सके।”

दयानन्द ने सुखी से सुख नहीं हूँ भारत की आत्मा के अन्तर्गत समाज की प्रवृत्ति की जाड़ी उत्थान प्रदान की। उनके व्यक्तित्व की महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति हमें मनुष्य की विविधता सत्यता तथा सुख की वैश्वीय प्रवृत्ति के आधुनिक आदर्श का पुन स्मरण दिखाती है। प्रवृत्तियों के प्रोत्थन, सौन्दर्य-मय

6 महाराष्ट्र काजी ने लिखा है “जन्मों दयानन्द हमारे लिए निश्चित रूप से सुखदायक समुद्रों का भेद हैं जन्म कल्याण के निम्न कर्मों का अर्थ जीवन के अन्तर्गत है।” (दयानन्द दयानन्द सम्मानन *Dayananda Commemoration Volume*)

7 दयानन्द ने इस सम्बन्ध में जन्म वर्णों का प्रयोग किया है यह है (1) विचारों, तथा (2) विचारों।

तथा सार्वभौमिक संप्रभुता पर बल दिया था, इसने निम्नोक्त प्राचीन भारतीय शक्ति और भी वी शक्ति को बढ़ा दिया, किन्तु साथ ही साथ वे शक्त—मैलिज तथा साम्प्रदायिक स्वयंशासनवादी स्वयंशासी प्रणालि व्यवस्था—वे भी पुनर्जाती वे। वेदों का दृष्टिकोण था कि मनुष्य वी अज्ञाननिहित शक्तियां वा विना उच्चतम साम्प्रदायिक व्यवस्था से अनुशासित होना चाहिए। दयानंद ने प्राचीन ब्रह्म भावना का पुन स्थापित तथा पुनर्जाति करने के लिए अपना श्रम किया। इतिहास इस बात का साक्षी है कि पुरी शक्तिपूजा करने के मतपर दुष्परिणाम होते हैं। किन्तु साथ ही साथ यह भी सत्य है कि पार लीमिटेड साम्प्रदायिक आत्म के अवलोकने विचारों से विज्ञान रत्न के भी प्रभाव साम्प्रदायिक स्वयं राजनीतिक दृष्टि से अविश्वसनीय होते हैं। वीडा तथा वैदिकता का शासनिक शासन प्रभाव साम्प्रदायिक विचारों से देश वी स्वतंत्रता की रक्षा न कर सका। दयानंद ने भारत के प्रदीप्त तथा साम्प्रदायिक दृष्टि को वी अवलोकन प्रस्तुत किया। वे समकालीन भारत वी अवलोकित हो रही साम्प्रदायिक तथा साम्प्रदायिक व्यवस्था के समाप्त पर ब्रह्म संहति वी साम्प्रदायिक तथा शुद्ध भावना वी पुन जीवित करना चाहते थे।

4 दयानंद तथा भारतीय राष्ट्रवाद

दयानंद पारिवारिक अर्थ से राजनीतिक राजनीति नहीं थे। उन्होंने राजनीतिक सिद्धांत के क्षेत्र में किसी प्रभावशाली कार्य की रचना नहीं की है। किन्तु अपनी रचनाओं में और कभी-कभी किसी साहित्यिक के दौरान उन्होंने राजनीतिक विचार व्यक्त किये। उनके 'साम्प्रदायिक प्रकाश' तथा 'श्रद्धावर्धन भाष्य भूमिका' दोनों ही प्रसिद्ध ग्रंथों में एक एक अलग अलग है जिसमें राजनीतिक विचारों की सीमाओं की सीमा है। दयानंद पर मनुस्मृति के राजनीतिक विचारों का बहुत कुछ प्रभाव पड़ा था। उनके साम्प्रदायिक जीवन का (1864-83) में भारत ब्रिटिश साम्राज्यवाद के तहत शासन में था। 1845 में जिस समय उन्होंने घर छोड़ा, पंचायत, सिंध और मध्य भारत के कुछ भाग स्वतंत्र थे, किन्तु 1857 के स्वतंत्रता संग्राम की विफलता के फलस्वरूप अंग्रेजी शासन तब तक बहाल हो गया। इसके अतिरिक्त ईसाई साम्प्रदायिक देश की पुरानी संहति पर प्रहार कर रही थी और ईसाई धर्मप्रचारक अपना काम करता रहे थे। वेदप्रचार जैसे प्रसिद्ध ग्रंथ समाजी और समाज सुधारक पर भी ईसाइयत का प्रभाव था जिसकी अविवक्षित उनके 'नव विधान' में हुई थी। ऐसे समय में दयानंद हिन्दू पुन जागृतावाद के आगमक समय के रूप में प्रकट हुए। 'ऐसा सत्य है कि भाष्य समाज की ईसाइ यत के प्रसार से भय है। इसने ही शत्रुता ही नहीं है कि दयानंद की प्रथम या कभी-कभी के समर्थन से कि किसी विदेशी पक्ष की अनिष्टता कर देने से राष्ट्रीय भावना, जिसका वे पोषण करना चाहते थे, सशक्त या पर आधारित।' उनके पुनर्जागृतावाद के कारण कभी-कभी उन्हें प्रतिनिधित्वाधीन यह शिवा गया है, और मान लिया जाता है कि उनका आग्रहपूर्ण वेदवाद प्रतिक्रियाशील मार्ग था। किन्तु जिस महान शक्ति तथा उत्साह से दयानंद का व्यक्तित्व था या वह निष्क्रियता के समयक्रम से संप्रभु नहीं हो सकता था। वे राजवादी थे, न कि कोई स्वतंत्रतावादी विचारक। और उनके वेदवाद का अर्थपूर्ण देश की शक्ति की अनिवार्यता को अनुप्रेषित करता था। वेदवाद ने 'अज्ञान' हिन्दुत्व के साम्प्रदायिक समयक्रम में। किन्तु जिस राजाधन्य का परिचय दयानंद और साम्प्रदायिक ने दिया वह असंतुष्टता और ईसाइयत इन दो साम्प्रदायिक (साम्प्रदायिक) साम्प्रदायिक समयक्रमों के संश्लेषण रस के विरुद्ध साम्प्रदायिक भावना रखने का एक कारण था। इतिहास के महान आन्दोलन प्रायः अतीतपुर्ण हुआ करते हैं। यूरोप के पुनर्जागृता तथा धर्म सुधार आन्दोलन में कथन अस्तित्व और जाइविंग की ओर देश और सत्य की आति ने मूलतः तथा रोम के स्वतंत्रता से प्रेरणा ली। उसी प्रकार दयानंद का वैदिक आग्रहवाद कम की प्रेरणा देने के लिए था। राजा के विवेकानंद और वा भी की भांति दयानंद भी अनुमत्त करते थे कि वह ने ही भारत की महान विपत्तियों के समय रक्षा की है। भारतीय जनता का सत्य ही इस बात पर बल दिया है कि आधुनिक महान आग्रह प्रभुता की अपरिहार्य सत्य है। इसीलिए अनेक विदेशी प्रभावों और आक्रमणों के बावजूद भारतीय साम्प्रदायिक ने आत

रिक्त ज्योति को जलाते रहने की प्रेरणा दी है। दयानन्द ने वेदा के पुरातन धार्मिक आदर्शवाद की पुनर्जीवित करने का उत्साहपूर्वक समर्थन दिया। निम्न इस प्रकार के आदर्शवाद के लिए वह अपरिहार्य था कि वह पुराने देवी देवताओं को निर्जीव पूजा बन्द करने के लिए आवाज उठाया और परंपरागत जीवन के बजार परिधान में मही हलकीकता का विशेष करता। अतः दयानन्द ने विवेकपूर्ण अर्थविश्लेषणा तथा चरम्परावाद के निरुद्ध बीजानुसूचक संपन्न किया और विवेक एवं सत्य के जीवन की पूजा करने पर बल दिया। वैदिक पुनरुत्थानवाद, मुद्रिवाद तथा समाज सुधारवाद का मूलधारन करते हुए रवीन्द्रनाथ टैगोर लिखते हैं— “आधुनिक भारत के बहुमततम पत्र निर्माता स्वामी दयानन्द सरस्वती ने वेद की पतनानुसूचि से उत्पन्न सभी और परिचायिनी की व्याकुल करने वाली उत्तमनी को शांत करने एक माप बना दिया जिस पर चतकन द्विदू ईश्वरमक्ति और मानवसेवा के सरल तथा निवेकपूर्ण जीवन को प्राप्त कर सकते थे। उन्होंने निम्न दृष्टि से सत्य का दशन करने तथा हृदय सकल्प और साहस के साथ हमारे आदर्शसम्मान तथा सत्यतः बौद्धिक जागरण के लिए काम किया। वे ऐसा बौद्धिक जागरण चाहते थे जो आधुनिक युग की प्रगतिशील भावना के साथ सामंजस्य स्थापित कर सके और साथ ही साथ देश के उस गौरवशाली अतीत के साथ अटूट सम्बन्ध बनाम रख सके जिसमें भारत ने अपने व्यक्तित्व की वाच तथा चिन्तन की स्वतन्त्रता में और आध्यात्मिक साक्षात्कार के निम्न प्रकाश के रूप में व्यक्त किया था।”

दयानन्द भारतीय चरित्र की दुबलताओं की देश के चरित्र के लिए उत्तरदायी मानते थे। अतः उन्होंने उदासीनता, निष्कियता, प्रमाद, आलस्य तथा मायाकरण के स्थान पर दृष्टि की सर्वोन्नता, पराक्रम, उत्साह तथा उत्तरदायित्व की सक्रिय भावना की शिक्षा दी। अपने ‘सत्याथ प्रकाश’ में उन्होंने लिखा है कि भारत के चरित्र के मुख्य कारण है— ‘वारस्वरिक बूढ़ धार्मिक भेद, जीवन में गृहस्था का अभाव, शिक्षा की कमी, बाह्य विवाह जिसमें पुरुष और स्त्री की अपना जीवा-साथी चुनने का अधिकार नहीं होता, इन्द्रियपरायणता, अस्तव्यता तथा अन्य कुटी मानते, वेदाध्ययन की अक्षेयता तथा अन्य कुटीरिया।” कम की एकता के लिए आदर्श का होना आवश्यक है। स्त्री तथा मानव ने कभी कासीसी तथा कभी पार्श्वियों के लिए वाचनिक आधार तथा गृहधूमि तैयार की थी। इसी प्रकार दयानन्द विश्व में वैदिक आर्मा के आदर्श की विजय चाहते थे। उनका कथन था— “जो पक्षपातद्विष्ट है, जो ‘माय तथा सत्यता की शिक्षा देता है, जो मन, बचन तथा कर्म की सत्यता सिखाता है, और सत्य में, या वेदी में निहित ईश्वर की दृष्टि के अनुकूल है, उसी को मैं पन्न कहूँ।” अतः दयानन्द ने व्यक्ति के नैतिक गुणिकरण तथा सामाजिक पुनर्निर्माण की भाव समजता पर बल दिया। वे चाहते थे कि उनका कियाशिल तथा सक्रियशील आत्मपरायणता का कार्य जगत् भारत में तथा सम्पूर्ण विश्व में फैले, उनसे वैदिक पुनर्जीकरण के आदर्श ने भारतीयों के नैतिक तथा सामाजिक पुनरुत्थान पर बल दिया। समवासीन भारतीयों का सामाजिक एकता और नैतिक जीवन के क्षेत्र में जो चरित्र हो रहा था उसे दयानन्द ने कभीमर्षित देख लिया था। उनसे विचार में भारत के राजनीतिक अर्थ चरित्र के मूल में सामाजिक चरित्र का अभाव ही मुख्य था। उन्होंने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया कि भारत के अनेक शासकों की “सामाजिक सत्यता अविश्व सेवक है सामाजिक सत्यार्थ अविश्व अक्षी है और उनमें आत्मोत्थान, आत्मनैतिक द्विष्ट की भावना, साहस, सत्य के प्रति आत्मपरायणता का भाव और देशमक्ति है,” और इसलिए उन्होंने भारतीयों को अपने व्यक्तित्व तथा सामाजिक चरित्र का सुधारने की अतकती प्रेरणा दी। परिणामस्वरूप दयानन्द की योजना में सामाजिक तथा राष्ट्रीय पुनरुद्धार तथा सुविध के लिए चरित्र की शुद्धता अपरिहार्य थी, उसके बिना काम चल ही नहीं सकता था।

दयानन्द अर्थवैदिक निर्जीव थे, और उन्होंने सदैव इस बात पर बल दिया कि मनुष्य को अपने में

9 दयिद वचनारिक्त, *Remarcent India* पृष्ठ 38 “भारत की दु गरा पूरा का दूर चरित्र के लिए तथा सामाजिक दृष्टि से दक्ष का स्वतन्त्रता करने के लिए दयानन्द जानिनी तथा कर्मी का प्रेरणा का मध्य करवा भारत में उन्ने धार्मिक दृष्टि का उत्पन्न करने के लिए का कार्य मज्ज करी के स्थान पर काम अर्थ का उपायना करना पाठक-का उन्ने राजनीतिक दृष्टि के एक करने का लिए वे अर्थ विज्ञान मायम से प्रेरित चिन्तना चाहते थे। का द्विदू समाज में कलन की या अक्षति देखने की विमला है अतः का पुनः अर्थ दयानन्द की ही है।

निर्भीरता का एक नैतिक गुण के रूप में विरासत करता चाहिए। वैभव निर्भीरता, राजनीति का धारण कर लेता है, एक एकीकृतता का भाव है जो जमीन तथा निरद्वन्द्वता का भावना कर सकती है। अतः निर्भीरता ही भारत अधिवास की प्रकृति का आधार है। दमनकारी की भावना का मनुष्य स्वामी का रोमांचप्रिय व्यक्ति नहीं है जो प्रकृति के परमात्म का उपवास करता रहता है, जानना आदेश ऐसा निर्भीर व्यक्ति है जो 'यम तथा मृत्यु की रक्षा के लिए कटिबद्ध रहता है और अन्तःकार के सर्वोच्च प्राप्तिवादी दुर्गों के सामने भी नमस्कार नहीं होता। उनके पास है "वैभव नहीं व्यक्ति मनुष्य कृतज्ञता का अधिपति है जो स्वभाव से भिन्नताशील है, जिससे मन के दूसरा के लिए नहीं ही करपा और सहानुभूति है जैसी कि स्वयं जान लिए, जो ज्ञाता भी है नहीं करता, चाहे वह विद्वान् ही शक्तिशाली क्या न हो, किन्तु दुःख के दुःख दुःखालम्बा व्यक्ति से मन राता है। इसके अतिरिक्त ऐसे मनुष्य की चाहिए कि पमपरामर्श लोगों के परिचाय के लिए अधिपति से अधिपति प्रयत्न कीजें। एक उनके कल्याण का अधिपति करने तथा उनके प्रति सदैव यथायोग्य मानवता करे, चाहे वे अस्वस्थ दुःख तथा भौतिक साधनों के हीन नहीं हो। दूसरी ओर ऐसे मनुष्य की सर्व दुःख का "यम, दमन और निरीय करने का निरंतर प्रयत्न करते रहना चाहिए, चाहे वे विद्वान् न हो किन्तु हीन भूत तथा राजा वाले व्यक्ति ही नहीं न हो। दूसरे शब्दों में, मनुष्य की तथा सामान्य प्रभावों की शक्ति का उद्भूत करके तथा सामान्य व्यक्तिता की शक्ति का उद्भूत करके विद्वत् प्रयत्न करते रहना चाहिए। उनके विद्वान् ही सदैव यम तथा न भ्रमणता करें, अपने मानवीय कल्याण के पालन में उनके चाहे कृत्य का कटुता घट ही क्या न पीना पड़े, किन्तु उनके विचारित नहीं होना चाहिए।" मनुष्यत्व का यह बीजप्रदान आदेश परीक्षा रूप में सामाजिक तथा राजनीतिक सुराही के विरोध का समर्थन बन जाता है।

दमनकारी का स्वतन्त्रता के प्रति तीव्र अनुभाव था, और उनका सम्पूर्ण व्यक्तित्व उसके लिए तैयार किया था। आत्म की मुक्ति की लोभ में ही उन्होंने अपनी विराट का घर छोड़ा था। स्वतन्त्रता के हेतु ही उन्होंने विवाहित जीवन का मार उठाने से इनकार कर दिया था और साधना से लिया था। उनका विश्वास था कि मनुष्य की आत्मा काय करने में स्वतन्त्र है किन्तु कल की शक्ति में वह ईश्वर के अधीन है। दमनकारी मनुष्य के मानस की बौद्धिक स्वतन्त्रता की पाठशाला की और तदन जहाँने सब धर्मों में वैविध्य चाहिए की स्वतन्त्र तथा अधीनता आलोचना की, और इस विषय में उन्होंने बौद्धों के सूत्रवाद तथा वैशालियों के प्रत्यक्षवादी एतत्त्ववाद के साथ भी विचारित नहीं की। बुद्धि दमनकारी का वैदिक कुलधर्मवाद सभी संहिताओं और सम्प्रदायों की बुद्धि के विरुद्ध एक साधुनात्मक सामन था,¹⁰ इसलिए वह राष्ट्रीय स्वतन्त्रता का बसोबस बन गया। स्वामीजी और बौद्ध संहिताओं को साथ रूप में प्रतिष्ठित करने के पक्ष में थे।¹¹ उनके आन्दोलन के साधुत्व का सम्बन्धी सदैव तथा उनके ऐतिहासिक प्रभाव का विश्लेषण करते हुए वेदक ने लिखा है "आज समाज इलाक तथा ईसाई मत के प्रभाव के विरुद्ध प्रतिस्थापित था। आधुनिक रूप में वह सभ्यतात्मक तथा बुद्धिवादी आलोचना का और बाह्य आक्रमणों के प्रभाव के लिए वह एक स्वातंत्र्य साधक था।"¹² सभी-कमी कृत्य आज है कि आज सभी पर दमनकारी ने का आक्रमण किया उसने दुर्भिक्ष तथा भय की भावना निहित की। वह सत्य है कि आधुनिक तथा कुराव की आलोचनात्मक तथा बौद्धिक परीक्षा करने दमनकारी ने इन धर्मों के अनुयायियों की भाविक भावनाओं को डेर पहुँचायी है किन्तु उन्होंने हिन्दुओं तथा बौद्धों के पानिप तथा साधुनात्मक का के सम्बन्ध में भी सभी बौद्धिक पद्धति से साथ लिया। उन्होंने स्वयं लिखा है "वर्तमान में आधुनिक ने उत्पन्न हुआ था और यही अब भी यह रहा है फिर भी मैं एक देश में

10 दमनकारी ने कि साधुनात्मक तथा भय विराट के सामान्य भावना का एक विकास का प्रयत्न करे। 1877 में दमनकारी का भारत सम्प्रदायों का केवल एक रूप की शक्ति में एक अटक हुई किन्तु कोई सम्प्रदाय पाठशाला में निजम गया। 1872 में भी दमनकारी केवल एक सम्प्रदाय के रूप की शक्ति हुई किन्तु दमनकारी के रूप की निरिक्त विचारों के सम्बन्ध में किसी प्रकार का समझौता करने के लिए तैयार नहीं हुए।

11 1882 में दमनकारी की शक्तिशाली तथा सामक एक तरफ की स्वातंत्र्य की विचारों केवल एक तरफ की शक्ति का प्रयत्न किया।

12 दमनकारी ने लिखा - *The Discovery of India*, पृष्ठ 378-79।

प्रचलित धर्मों की अक्षयता का समर्थन नहीं करता, बल्कि उनका पूर्णतः भण्डाशोध करता है। उसी प्रकार मैं अन्य धर्मों तथा उनमें अनुवादियों के साथ व्यवहार करता हूँ। जहाँ तब मनुष्य जाति न उद्धान का सम्बन्ध है मैं विदेशियों के साथ तथा ही आचरण करता हूँ जैसा कि अपने देशवासियों के साथ। सब मनुष्यों के लिए ऐसा ही करना उचित है।¹³ मानसिक स्वतन्त्रता के पक्ष में दयानन्द ने योगदान का मूलपानन करते हुए व्याख्यान लिखते हैं— “संयन्त्री दयानन्द ने हिन्दुओं की आत्मा को उसी प्रकार स्वतन्त्रता प्रदान की जिस प्रकार कृष्ण ने यूरोपीय आत्मा की प्रशान की थी और उन्होंने उस स्वतन्त्रता का निर्माण भीतर से, अर्थात् हिन्दू साहित्य के आधार पर ही किया। दयानन्द उन्नीसवीं शताब्दी के महानुष्ठान भारतीय ही नहीं थे— उन्नीसवीं शताब्दी में एकेश्वरवाद का ऐसा प्रतिष्ठापक शिक्षक, मानव एकता का ऐसा उपदेशक, आध्यात्मिकता के पुनर्वास के विरुद्ध सशय करने वाला ऐसा समस्त योद्धा अचान नहीं था।¹⁴”

दयानन्द ने राजनीति में सक्रिय भाग नहीं लिया, किन्तु भारत के लिए उनके मन में गहरा अनुराग और परवर्त प्रेम था। वे भारत को आर्पित रह गये थे। उनके विचार में यह देश पारसमणि का देश तथा स्वर्णभूमि था। भारत में अशान्ति, स्वतन्त्र, स्वाधीन तथा निम्न शासन के अभाव की देखभाल के बहुत कुछ ही हुआ करते थे। अतः अपनी रचनाओं में उन्होंने देश की राजनीतिक वास्तवता पर गहन प्रकट किया है, और वैदिक मानों के माध्यम से मनी उन्होंने भारत की स्वाधीनता के लिए ईश्वरीय सहायता की प्राप्ति की है।¹⁵ उन्हें प्रायः समाज और राष्ट्र समाज की क्षीण दयानिधि पर रोद था।¹⁶ राष्ट्र समाज के सम्बन्ध में स्वामीजी ने लिखा है— “यद्यपि इन लोगों का अर्थ आर्पण के द्वारा है, उन्होंने उसी का अर्थ समझा है और आज भी जा रहे हैं फिर भी उन्होंने अपने धर्मियों के धर्म का परिष्कार कर दिया है, और उसके स्वरूप पर विदेशी धर्मों की ओर अधिक उन्मुख हैं, वे अपने को विद्वान् मानते हैं किन्तु देशी समुदाय विद्या के ज्ञान से वञ्चित हुए हैं, अपने अधीन के ज्ञान के समर्थ में वे एक नया धर्म स्थापित करने में अक्षयशील बन बैठे हैं।¹⁷” अतः वेल्-टाइन शिरोष जैसे महानुष्ठानिक आलोचक के इस कथन में कुछ सत्यता है— “दयानन्द की शिक्षाओं की मुख्य प्रेरणा हिन्दुत्व का सुधार करने की उन्नीसवीं नहीं है बल्कि कि वह उन विदेशी प्रभावों के विरुद्ध प्रतिरोध के लिए समर्पित करने की है, जो उनके विचार में उसका (हिन्दुत्व का) विराष्ट्रीयकरण कर रहे थे।¹⁸” उन्होंने उल्लेख धर्मों में स्वराज्य का गौरवमान किया है। स्वराज्य के सद्देशवाहक के रूप में उनका स्वान इसी से स्पष्ट है कि उन्होंने गौरवपूर्ण अतीत से प्रेरणा लेकर स्वराज्य का साक्षात्कारी मार्ग बताया। उन्होंने दुर्बलता की परीक्षा की, क्योंकि वह महाराष्ट्र के उस युद्ध के लिए उत्तरदायी था जिसने कारण आधुनिक का अर्थ पतन आरम्भ हुआ। गौरवी, पाण्डवी तथा पाण्डवों का विनाश उनकी पारम्परिक पूर के कारण ही हुआ। दयानन्द उन्नीसवीं शताब्दी के इस प्रसिद्ध मार्ग के अनुयायी थे— “मुद्रासन, पाहे यह किन्तु ही अक्षय धर्मों न ही, स्वराज्य का स्वान नहीं से सत्यता। उन्होंने ‘सत्याग्रह’ शब्द के सृष्टे समुत्पत्ति के लिखा है— “विदेशी शासन प्रजा का पूर्णतः के क्षुब्ध कभी नहीं बना सत्यता, पाहे यह धर्मिक दुर्मार्ग के मुक्त हो, देशवासियों तथा विदेशियों के साथ महावास्तविक ही और दयालु, वास्तववादी तथा वास्तविक ही।¹⁹ दयानन्द के ऐतिहासिक दयान के अनुसार प्राचीन काल में अत्यन्त विषय में आर्षों का चक्रवर्ती राजनीय साम्राज्यवाद बना हुआ था।²⁰ हमारे मुख तथा भूमिगत राष्ट्र के समस्त उन्होंने चक्रवर्ती साम्राज्य²¹ तथा स्वराज्य

13. डी. जयसवाल का *Dayananda Commemorative Volume* में प्रचलित पृष्ठ 162-63।

14. दयानन्द ‘आध्यात्मिक’।

15. 1878 में आर्य समाज तथा शिविवादी-समाजों द्वारा स्थापित राजवादी कथन की वास्तवता पर भा. विचार किया हुआ किन्तु कोई सत्यता न ही सत्य। दोनों सत्यता के बीच 1879-1881 का अर्थ सत्यता एकता थी स्थापित हो गयी थी।

16. *The Light of Truth* (महान् कथन) पृष्ठ 432।

17. दयानन्द का अनुवाद जिस की मुद्रा में नंबर 3000 ई. पू. तक के अर्थ में आर्षों का उद्देश्य भारतीय अधिपत्य का ही था। अर्थ देना में केवल आध्यात्मिक अर्थ ही मिले पाते थे।

18. दयानन्द का अर्थ ही साम्राज्य धर्मिकी आध्यात्मिकता का साम्राज्य का हिन्दू कथन था था, अनुवाद यह ईश्वरीय नियम के अर्थ पर आधारित हुआ और अन्तिम भाग के अर्थ पर अर्थ।

का नारा प्रस्तुत किया। दयानन्द के दारीशास के उपरांत आज समाज में वैदिक सभ्यता की खोज में बल म प्रचार जारी रहा। उसमें वेदा में अनिहित क्षत्रि, मुद्रता, म्पात्रता, तथा क्षात्र निमरता का मदेन विरु लीप्रता और उग्रता ने साध पर पर म रीतमम उससे जनता म अपन अधिपारी में मन्मथ में आमाधन रैतता बाधत हुई। परिणामत मयपि आप समाज राजनीतिक सस्था नहीं था और एव सस्था के रूप में उठा खड़ी साधपात्री के साध अपन का नानिगारी तथा राजडीणसम कायकाहिया में दूर रहा, फिर भी भारतीयों के मन में देशमनिगपुन राष्ट्रवाद की भावना को बाधत करने म जशन अग्रदूत का काम किया। स्वामी अज्ञानन्द (भूतभूतमुयीराम) तथा रामदेव ने अपने 'द आर्य समाज द द एथ डिस्टिक्शन' (आर्य समाज तथा उसने निदक) नामक ग्रंथ में लिखा है— "इसलिए जब आर्य समाज भारतीय भारत का गौरवमान करता है तो उसमें राष्ट्रवाद का पोषण करने वाले सत्यो को उल्लेखता मिलती है और उस समय राष्ट्रवादी का सुकुप्त राष्ट्रीय अहंकार भाव उठता है तथा आकाशार्थ मन्मथनित हा उठती है जिन्हें पानी में निरंतर यह नाम पूरा मात्र पूरा सभा का नि भारत का इतिहास मलत अपमान अप पतन, विदेशिया की वसपीनता तथा बाह्य शोषण की शोचनीय काया है। और हम क्यों करत है भारत की गौरवताका का मत? इसलिए कि भारत ईश्वरप्रदत्त पान के म्पात्रताका का देश है वह पवित्र भूमि है जहाँ बहिन मन्मथ सभुनता हूद और अपन सर्वोत्तम फल प्रस्तुत मिले, यह धर्मधीन है जहाँ वैदिक दान तथा लक्षण विकास के चरमोत्तम की प्राप्त हुए, और यह पवित्रीकृत मनुष्यता है जहाँ ऐसे आदम पुरष निशान करते थे जिन्होंने स्वयं अपने आचरण में वेदी की वैदिक शिक्षाओं की लम्बतम पारमात्री को साक्षात्कार किया। मर देशपवित्र, भी वैदिकमित्री की दामि है एक लम्ब, मरपादायक, पवित्रमित्री, एकीकरण करने वाली, साविदायक, सातोपप्रद तथा स्फुटिदायक वस्तु है।"

दयानन्द ने वैदिक सभ्यता की सर्वोच्चता तथा स्वराज्य का ही उपदेश नहीं दिया, अपितु उन्होंने वेदी भाषाओं के आलोचना की शीलाहन देकर भी राष्ट्रवाद के उत्थान में योग दिया।¹⁹ यद्यपि वे वेदी के प्रकाश पश्चित तथा सभ्यता के विज्ञान एव नाम के मुक्तपात्री थे, फिर भी उन्होंने अपना 'सत्याम प्रकाश' हिन्दी में लिखा। यह दिन भारत के बौद्धिक इतिहास में वस्तु महान का काद वे वेदा का माध्य हिन्दी में लिखने बैठे। वेदा के मित ज्ञान पर अब एक दुरीकृत वग का एका विमल रहा था उसे हिन्दी में उपलब्ध कराकर उन्होंने भारत की राजनीति म एक मद्दतपूरा सक्ति को मुक्त कर दिया, क्योंकि इससे देश के सदागुण वगों के बौद्धिक अग्रमविश्वास की एव नयी भावना बाधत हुई। उनकी मृत्यु के उपरांत उनके शिष्यो ने हिन्दी के माध्यम से ही अपना उपदेश देने का काम जारी रखा। जिस प्रकार युववर्गकरण के समय से इलाकवी, जनन और छात्रीय भाषाओं के विकास से यूरोप में राष्ट्रवाद के उत्थान को उत्तेजना मिली उसी प्रकार दयानन्द तथा उनके शिष्यो की रचनाओं तथा उपदेशों से भारतीय राष्ट्रवाद के विकास में भारी प्रेरणा मिली। दयानन्द का पारम्पर्य ज्ञान की शिक्षा नहीं मिली थी और वे सभ्य विद्वान की लक्षण थे, किन्तु उनके राष्ट्रवाद ने पारम्पर्य शिक्षा प्राप्त भारतीयों की भी प्रभावित किया। और 'भूमि' के श्रुति तथा सचारी थे, इसलिए जनता पर उनका विशेष प्रभाव पड़ा। उन्होंने हिन्दी में उपदेश तथा व्याख्यान मिले, इससे उनकी भाषी भारतीय जनता एक सरलता से पहुँच सके, और जनता की दृष्टि में वे दूसरे प्रकार प्रतीत हुए।

5 दयानन्द का राजनीतिक दशन

(क) प्रबुद्ध राजतन—दयानन्द के राजनीतिक दशन में मनुस्मृति तथा वेदी के विचार का समन्वय देखने को मिलता है। मनुस्मृति से उन्होंने राजतन का सिद्धांत प्रदूष किया। मनु ने सिखाया था कि राजा की पूरात धन के अधीन होता चाहिए। उन्होंने ऐसे विमलवकी एकराट के आदम का समन्वय किया था जो धर्मनिष्ठता तथा मनिया के सहयोग से शासन करता है। मनुस्मृति का यह आदम अलाहकी सलाहकी के पारमिक राजतन के उस आदम से मिलता जुलता है जिसका व्याप

19 कुछ लेखकों का कहना है कि दयानन्द केवलमत्र देश तथा उग्र जनता के विरुद्ध के प्रभाव के कारण 1872 के बाद अपने पारमिक भाषाओं में हिन्दी का अधीन करने लगे थे।

हारिण रूप हमें आम्हिया के जीवज्य द्वितीय तथा एशिया के केंद्ररिष द्वितीय के आचरण में उक्तव्य होता है। वेदा में समाजों तथा राजाज्या के निर्वाचन का उल्लेख है। दयानन्द ने निर्वाचन प्रणाली का समर्थन किया। उनका कथन था कि समा के सदस्यों में जो सर्वाधिक बुद्धिमान तथा चतुर हो उसी को राजा अथवा अध्यक्ष चुन लिया जाय।)

दयानन्द ने वैज्ञानिक तथा तत्त्वज्ञानकीय ज्ञान का शीत स्वीकार किया। वैदिक सभ्यता की यह आद्य भाषणा है कि राजनीतिक सत्ता (राज) की आध्यात्मिक तथा नैतिक सत्ता (ब्रह्म) की सहायता से काम करता चाहिए। इसीलिपि दयानन्द ने नैतिक पुनरुत्थान की प्राथमिकता दी। उनका आग्रह था कि राजनीतिव्यवस्था की नैतिक आधारों से पूर्ण करने की अनुमति कभी नहीं दी जा सकती। उन्होंने सदैव इस बात का अनुरोध किया कि राजनीतिक शासकों को आध्यात्मिक नेताओं के निर्देशन में काम करना चाहिए। अतः यह कहा जा सकता है कि दयानन्द ने धर्मनिरपेक्ष तथा भौतिकवादी भावनाओं पर आधारित राष्ट्रवाद की सदैव ही सचेष्ट की दृष्टि से देखा। चूनि के संस्कृत की प्रसिद्ध मुक्ति 'परौनकाराद्य सता विभूतयः' के मानने वाले थे, इसलिए मानव मत्वाय की भावना के दूर राजनीतिक उद्देश्यों को वे सदैव ही दुरा मानते थे।

(घ) लोकतन्त्र का सिद्धान्त तथा व्यावहारिक रूप—दयानन्द लोकतन्त्रवादी थे। लोकतन्त्र के आदर्श के प्रति उनका अनुमान दो बातों से सिद्ध होता है। प्रथम, जिस समाज की चाहने स्थापना की उसका समर्थन चुनाव पर आधारित था। नीचे से ऊपर राज के वे सभी व्यक्ति चुने जाते थे, जो वसाधिकारियों अथवा किसी परिषद के सदस्यों के रूप में काम करते। निर्वाचन के सिद्धान्त की अपमानता हिन्दू धार्मिक व्यवस्था में एक कानिष्ठकारी कदम था। हिन्दू समाज में ब्राह्मण वर्ग की सत्ता परम्परागत भावनाओं पर आधारित है। कि तु आम समाज में जो एक सामाजिक धार्मिक संस्था की उसकी सत्ता चुनाव पर निर्भर थी। दूसरे, जिस आदर्श राज्यतन्त्र की कल्पना उन्होंने प्रस्तुत की उसकी सरकार के सभी स्वीकृत और विधिवत रूपों के निर्माण के लिए उन्होंने निर्वाचन के लोकतांत्रिक सिद्धान्त को स्वीकार किया। उन्होंने 'अर्थावस्था', 'विद्यावस्था' तथा 'राजावस्था' नामक तीन विभागों के स्थापन तथा काम निश्चित कर दिये। इन विभागों का नियन्त्रण तथा समन्वय के सिद्धान्त का प्रालम्ब करना था। दयानन्द लिखते हैं 'हमका अन्विष्टाव यह है कि एक व्यक्ति की स्वतन्त्र राज्य का अधिकार नहीं देना चाहिए किन्तु राजा की समापति, तदापीन तथा, समापीन राजा, राजा और समा प्रजा के आधीन और प्रजा राजसत्ता के आधीन रहे। जब (अनुष्य) दुष्टाचारों होते हैं तो सब (राज्य) कष्टग्रस्त हो जाता है। महाविद्वानों की विद्यावसाधिकाधीन, धार्मिक विद्वानों की धर्मसमाधिकाधीन, प्रसन्ननीय धार्मिक पुरुषों की राजसत्ता के समस्तह और जो उन समय सर्वोत्तम पुण्यकर्मसमाधियुक्त महान् पुण्य हो उसकी राजसत्ता का पतिक्रम मानकर सब प्रकार से उत्पत्ति करे। तीनों समाजों की सम्मति से राजनीति के उत्तम निदान और नियमों के आधीन सब लोग बरते, सबके हितकारण कामों में सम्मति करें, सर्वहित करने के लिए परस्पर और धर्मयुक्त कामों में अर्थात् जो जो निज के काम है उन-उनमें स्वतन्त्र रहे।'²⁰

(ग) धर्म प्रशासन—दयानन्द ने जिस राजनीतिक व्यवस्था की कल्पना की उसका सार लोकतांत्रिक आदर्शवाद है, यद्यपि कभी-कभी उसका बाहरी ढाँचा राजतन्त्रवादी भी हो सकता है। उनका अनुरोध एक ऐसे विद्याल राज्य का निर्माण करना है जिसकी दुर्वाई राज हो। आदर्शव की बात है कि गांधीजी स भी बहुत दयानन्द न बाधों की राजनीतिक तथा धार्मिक व्यवस्था के पल पर खेद प्रकट किया था और अनुसमृति के आधार पर गांधी की प्रशासनव्यवस्था का सर्वत्र अप्रमत्त के विचार का सम्मन किया था। 'सत्याग्र प्रकाश' में उन्होंने लिखा है "इसलिए यह वा, तीन, पाँच और ती प्रामों के बीच में एक राज्यव्यवस्था रहे निजम समापीन्य सत्त अर्थात् वापकार आदि राजतन्त्रवा की रत्नकर राज्य के सब बाधों को पूर्ण करे। एक एक काम में एक-एक प्रधान पुरष रखे, उही धन प्रामों के ऊपर दूसरा, उही वीत प्रामों के ऊपर वीतप्र, उही सौ प्रामों के ऊपर चौथा, और उही महत्त प्रामों के ऊपर पांचवा पुरष रखे (अर्थात् उस मात्रकत एक प्राम में एक कटवारी, उही दस प्रामों में एक

को पानो में एक बड़ा काना, और उन पाँच पानों में एक सहोदर और दस सहोदरों पर एक । नियत किया जाता है, यह मनु द्वारा प्रतिपादित प्राचीन राज्य पद्धति से लिया गया है) । प्रसार प्रवण करें और आता है कि यह एक एक ग्राम का प्रति ग्राम में निवृत्ति को जो दो रूप में हो उन-उनको गुलामों से दस ग्राम के प्रति को विदित कर दे और वह दस ग्रामाधिपति उसी १ बीस ग्राम के ग्रामों को दस ग्रामों की व्यवस्था स्थिति निवृत्ति करता दे, और बीस ग्रामों का प्रति बीस ग्रामों के व्यवस्था को 'तत्त ग्रामाधिपति को निवृत्ति निवृत्ति कर, दस बीस ग्रामों के सहोदराधिपति अर्थात् हजार ग्रामों के स्वामी को जो दो ग्रामों की व्यवस्था स्थिति को प्रतिदिन कर दें । अर्थात् बीस ग्राम के पाँच अधिपति जो ग्राम के अध्यक्ष का और वे सहोदर-सहोदर के दस अधिपति दस ग्राम के अधिपति को और वह दस सहोदर का अधिपति दस ग्रामों की राजशाही की प्रतिदिन व्यवस्था स्थिति करता करें । और वे दस राजशाही महासहोदरों अर्थात् सातवीं व्यवस्था । राजशाही में सब भूमीय या व्यवस्था करता करें । और प्रत्येक दस-दस सहोदरों ग्रामों पर दो १ प्रति हो, जिनमें से एक राजशाही में अध्यक्षता करें और दूसरा आत्म्य छोड़कर सब ग्रामाधी राजपुरो को ग्रामों की सदा भूमि पर देता रहे ।"²¹

(घ) अहिंसा की निरपेक्षता का समर्थन—महात्मा दयानन्द सहोदराधी तथा सभापति के मनुस्मृति के आधार पर उन्होंने इस बात का पक्ष लिया था कि राजनीति का नामों में वैदी के या अधिपति का नीति अनुसृत होता चाहिए, फिर भी वे राजनीति नहीं थे । उन्होंने निरपेक्ष रूप अहिंसा के सिद्धांत का अनुसरण करने का उपदेश नहीं दिया । उन्होंने अपराधियों को दण्ड देने अनुमति दी । यदि राज्य के अधिकारी किसी डाकू को मारु दण्ड दे दें तो वे उन पर आक्रु नहीं बल्कि कुछ वेद मंत्रों के ईश्वर से 'चाव के सिद्धांत का अनुसरण करने वाला को बचाव करने में सहोदर देने की आज्ञा की गयी है । महात्मा दयानन्द ने 'उचित हिंसा' के सिद्धांत का समर्थन किया । सिद्धांत रूप में निरपेक्ष अहिंसा के आदेश को कभी स्वीकार नहीं किया, किन्तु सचाही होने वाले किसी जीवन में वे अहिंसा के अनुयायी थे । अनेक बार उन्होंने उन दुष्टों की क्षमा कर ली जिन्होंने उन्हें सार्वजनिक पीट पहुँचाने का प्रयत्न किया था । कहा जाता है कि उन्होंने उस व्यक्ति की क्षमा करके, जिसने उन्हें पातक विष खिला दिया था, उच्चतम प्रकार की क्षमाशीलता परिचय दिया । किन्तु दयानन्द सचायवादी थे, इसलिए समझते थे कि निरपेक्ष अहिंसा के आग्रह पर किसी भी प्रकार के राज्यतन्त्र का निर्माण नहीं किया जा सकता ।

(ङ) ईश्वरीय विधि की श्रेष्ठता—दयानन्द ने राष्ट्रीय देशपति का पक्ष पोषण कि किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि अपने निजी जीवन में वे अराजकतावादी थे और ईश्वर के अतिरिक्त अन्य किसी शक्ति की आधीनता स्वीकार नहीं करते थे । किन्तु उन्होंने राज्य का नाश करने व्यवस्था नहीं की । और न उन्होंने साम्प्रदायी सत्ता से पूरा राजनीतिक व्यवस्था का ही स्वीकार देखा । किन्तु सचाही के प्रति अपने व्यक्तिगत जीवन में उन्होंने ईश्वर की ही श्रुति माना । उन इस विश्वास का मनुस्मृति पुरोष के प्राकृतिक विधि सम्प्रदाय को उग्र धारणा के दूर का सामर्थ्य निरूपे अनुसार प्राकृतिक विधि को राज्याध्यक्ष राज्य की शक्ति से ऊँचा माना जाता था । वे ईश्वरीय विधि और राजनीतिक सत्ताधारी की विधि में से किसी एक को पालन करने का विकल्प नहीं ही दयानन्द बिना किसी कल में ईश्वरीय विधि का अनुसरण करने, महात्मा के ईश्वर सामर्थ्य अनुसर को स्वीकार करते थे और उसके प्रति अति को स्पष्ट सर्वोच्च मानते थे । उन शब्द हैं ' और यह समझें कि 'यम प्रजापते प्रजा अजयम्' । हय प्रजापति अर्थात् परमेश्वर की प्रजा और प्रजापति हमारा राज्य, हम उसके निकर अन्वेषण हैं, यह ज्ञापन करने अपनी सृष्टि के हमारा राज्याधिपति करें और हमारे हय से अपने राज्य 'चाव की प्रवृत्ति करने ।"²²

(च) वैदिक सामर्थ्यवाद—दयानन्द भारत में वैदिक संहिता तथा जीवन प्रजापति व अक्षर संहिता प्रकाश करने में विश्वास करता थे । किन्तु उनकी दृष्टि अपने देश के भौतिक

21 मनुस्मृति पर आधारित (7 101-17) । मनुस्मृति के दस अध्यायों का अनुसरण करते समय दयानन्द ने का भी 'मनुस्मृति महासंहिता का आदेश अपनी ओर से पालन किया है ।

22 दयानन्द प्रजापति अध्याय 6 ।

क्षितिज तक ही सीमित नहीं थी। उनका दावा था कि यद्यपि मैंने जापानित में काम लिया है और वही निवास कर रहा हूँ, किन्तु मेरा उद्देश्य मानवमान की मुक्ति करना है। उन्हें किसी का भी बंधन में रहना प्रिय नहीं था। अतः हमें दयानन्द की शिक्षाओं में मानवतावादी साम्यवाद के अन्त भी देखने को मिलता है। उन्होंने लिखा है 'समाज का प्राथमिक उद्देश्य मनुष्य जाति की सारोर्ध्व, साम्प्रदायिक तथा सामाजिक दशा को सुधारकर समस्त विश्व का कल्याण करना है। मैं उस धर्म को स्वीकार करता हूँ जो मानवोप शिष्टाचार पर आधारित है और जिसमें वह सब समाविष्ट है जिसको मनुष्य जाति सत्य समझकर सदैव के मानती आयी है और जिसका वह अपने के सुगो में भी वास्तव करती रहेगी। इसी को मैं धर्म कहता हूँ—सनातन नियमम जिसका विरोधी कोई भी न हो सके। मैं उसी को मानने योग्य मानता हूँ जो सब मनुष्यों के द्वारा और सब सुगो में परिपालन करने योग्य हो।' ('सत्याप प्रकाश')। दयानन्द ने आम समाज के अतिरिक्त परोपकारिणी समाज नामक एक आम संस्था की स्थापना की। उसका प्रथम लेख 'साक्षात्कारियों की एक समिति के द्वारा' में था। उसके तीन मुख्य नाम थे (1) वेदा तथा वेदांगों के ज्ञान का प्रसार करना, (2) विश्व के सब भाषों में पाठ्यपुस्तक लेखना तथा प्रचार वेद स्थापित करना जो लोगो को वैदिक धर्म की शिक्षा दे और सब घर घर पहुँचने तथा अक्षय्य का परिचालन करने का उपदेश दें, और (3) अनाथों तथा दरिद्र भारतवासियों की संरक्षण तथा शिक्षा देना। दयानन्द ने अनुभव किया कि भारतीय समाज के दलित तथा गिरे हुए वर्गों का उद्धार करना सर्वोच्च तथा सामाजिक आवश्यकता का विषय है। किन्तु साथ ही साथ उनकी तीव्र इच्छा थी कि उद्धार में कुछ बहिन धर्म का प्रचार किया जाए। वे विश्व-पुत्र के आदेश के महान समयक थे। किन्तु उनके अन्तर-राष्ट्रवाद में विश्व के राष्ट्रीय के राजनीतिक सत्य की कोई वस्तुता नहीं थी। उनका विश्व-पुत्र एक ऐसी उपदेशक और सदैवाहूक वा रोमांटिक अन्तराष्ट्रवाद था जो उस दिन का स्वप्न देश करता था जब सम्पूर्ण विश्व बहिन शिक्षावादी वा अनुयायी बन जायगा।

6 निष्कर्ष

दयानन्द ने भौतिक जगत की स्वतन्त्र सत्ता पर जो सामाजिक बल दिया उसका महान राष्ट्रीय महत्व है। वे प्रकृति की माया अथवा धार्मिक नहीं मानते। उनके मतानुसार उसकी अपनी वास्तविक सत्ता है। अतः सामाजिक तथा राजनीतिक धर्म और भौतिक समृद्धि का अपना मूल्य और महत्व है। दयानन्द की समाज सुधार तथा पुनः स्थापना के कार्यक्रम की योजना भारत में राष्ट्रीय राजनीतिक प्रगति की योजनाओं में मिल गई। उनके इस सन्देश का भी महान राष्ट्रीय मूल्य है कि सभी को (अज्ञान तथा विश्व मर के लोका को भी) वेदों का ज्ञान प्राप्त करने तथा वेदाध्ययन का समाज अधिकार है। दयानन्द भारतीय राष्ट्र के एक महान निर्माता थे और उनका साधुनिक भारत में एक निर्माता के रूप में सदैव सम्मान दिया जायगा। उन्होंने हिंदुओं में अधिकतम आस्था, नित्य तथा सामाजिक उत्तर-दायित्व की मानना तथा आत्मनिर्वास वृद्धि कर कर दिया था। अनेक देशवासियों के विदेशी अधिपत्य के कारण हिंदू अज्ञान आत्मनिर्वास तथा सामाजिक आदर्शवाद को देखी थी। दयानन्द ने निम्न होकर वैदिक ज्ञान की सर्वोच्चता का जवाब दिया। उस युग में बहिन तथा प्राचीन सभ्यता के ज्ञान के पक्षपोषण में आदर्शमय परिणाम हुए। हिंदुओं ने अपने अधिकारों के विषय में आहूत करना सीख लिया।²³ उन्हें अपने जीवन की अन्तरे के लिए एक नयी दृष्टि तथा नया आदर्श मिल गया। पञ्चायत में दयानन्द का प्रथम प्रभाव पड़ा। वरिष्ठ यह अतिप्रगतिवादी हकीम जिन्होंने पञ्चायत में राष्ट्रवाद के अन्त थे। उत्तर प्रदेश में भी उनका प्रभाव अत्यन्तनीय था। उनकी मारु ने उद्धारवादी जनों आम समाजी अनुयायियों में उनके जीवन के महान साथ की जारी रखा।

दयानन्द ने परोक्ष रूप से भी स्वतन्त्र राजनीतिक जीवन की नींव डाली। उन्होंने धार्मिक निर्माण, नैतिक शिक्षा, मुद्रता तथा बहुधर्म पर निर्णय बल दिया। इन मान्यताओं का उन्होंने स्वयं अपने जीवन में साक्षात् कर लिया था, इसलिये उनकी शिक्षाओं में अज्ञान की वस्तुता का प्रत्यक्षित

23 जे. एम्. ब्रह्माचर्य ने अपनी पुस्तक 'The Government of India' में पृष्ठ 237-39 पर आम समाज का एक साक्षात्कार, संयुक्त, पुनरावृत्त और सदावर्ती कार्यक्रम का धर्म का ज्ञान दिया है।

विषय। समस्त उत्तर भारत में जनता के जीवन तथा विचारों पर दयानन्द के व्यक्तिगत और चरित्र की अमिट छाप पड़ी है।

दयानन्द ने वैदिक स्वराज्य का पुनर्गठन किया। यद्यपि ये देश का स्वतंत्र देशना चाहत थे, किन्तु उस समय के चुनकर ब्रिटिश साम्राज्यवाद की मानना न कर सके। अतः उन्होंने स्वराज्य के सिद्धान्त का प्रतिपादन करने की सलाह कर दिया। वेदा में स्वराज्य की जो धारणा मिलती है उसका अभिप्राय है शांति, समृद्धि, स्वतंत्रता तथा प्रभुत्वा का शासन। ऐसा स्वराज्य धारस्परिक तहकन तथा अवयवी एका की भावना के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता था। स्वराज्य के सिद्धान्त की शिक्षा देकर दयानन्द ने सभी स्वतंत्रता की नींव तैयार कर दी। उन्होंने देश की जनता का एक एक आदेश प्रदान कर दिया जिसने चतुर्दिक से अपने को समझित कर सकते तथा जिसने मातापिता व मित्र के अपनी सम्पूर्ण शक्ति को भी जुटा सकते थे।

दयानन्द के साधनमय जीवन ने सम्पूर्ण में दो मत हैं। एक सम्प्रदाय उन्हें हिन्दू समाज की एका का प्रस्ताव तथा सम्पूर्ण पुनर्निर्माण का विचार और ईसाई प्रभुत्व का विरोधी मानता है। दूसरे सम्प्रदाय का मत है कि वे वैदिक साधनमयवादी थे और विश्व में वैदिक धर्म का प्रस्थापन करना चाहत थे, हिन्दू समाज के जातिगत सामाजिक तथा राजनीतिक स्थायी से उन्हें प्रभावित नहीं था। दयानन्द ने कुछ सामाजिक विषय आज समाज की हिन्दू समुदाय से प्रभावित मानने की तैयारी है। स्वामीजी वैदिक धर्म की पुन स्थापना करना चाहते थे। वे जानते थे कि हिन्दू, हिन्दुओं के बीच में रहते थे, एक हिन्दू समाज के विषय थे, और उनके साथ समाज आन्दोलन की हिन्दुओं ने आधिकारिक सहायता दी थी। इस बात का भी कोई प्रमाण नहीं है कि वे पुनर्निर्माण समाज के राजनीतिक तथा आर्थिक हितों के विरोधी थे। उनका विरोध तो विश्व के समस्त धर्मों की उन शिक्षाओं से था जिन्होंने बुद्धिनिरीधी समस्त में यह वस्तुतः सत्य है कि दयानन्द ने व्यक्तिगत तथा सामाजिक ने जिस शक्ति तथा उत्साह को उत्पन्न किया उनके हिन्दू समाज के आन्दोलन की भारी बल मिला, किन्तु उन्होंने सभी यह नहीं सोचा कि भारत के बसने वाले अन्य सम्प्रदायों के हितों का विरोध करके हिन्दुओं की एकता को मुहक किया जाय।

यह सत्य है कि दयानन्द का आदेश वैसा अतिशय भारतीय राष्ट्रवाद नहीं था वैसा हम उस आज समझते हैं। उन्होंने हिन्दू धर्मधारमों को अपना आधार बनाया और उनका प्रमाण की हिन्दुओं तक ही सीमित था। ऐसे उदाहरण हैं जिनसे सिद्ध होता है कि मुसलमान दयानन्द की शक्त की भावना से वैशेष थे। किन्तु यह भी मानना पड़ेगा कि भारतीय राष्ट्रवाद का प्रमुख साथ हिन्दू राष्ट्रवाद ही रहा है जिसे दयानन्द के जीवन तथा शिक्षाओं से गहरी प्रेरणा मिली थी। राष्ट्रवाद की सर्वेभ मान हुआ करती है कि सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन के साहचर्यमूलक जीवन सुदृढ़ हो। इसलिए यह आवश्यक होता है कि व्यक्ति अपने स्थानीय तथा स्वायत्तमूलक तथा वसा से ऊपर उठना सीखे। अतः यदि मान भी लिया जाय कि दयानन्द हिन्दू समाज के समस्त में तो भी स्वीकार करना पड़ेगा कि उन्होंने भारतीय राष्ट्रवाद को बल दिया क्योंकि यदि हिन्दु, जिनका भारत में भारी बहुमत था, समझित हो जाते तो वे निश्चय ही ब्रिटिश राजनीतिक शक्ति को चुनौती दे सकते थे।¹

दयानन्द ने स्वाधीनता की वैदिक तथा बौद्धिक नींव तैयार की। उन्होंने शायी तथा केन्द्रीय शासन के बीच अलग और अवयवी सम्प्रदायों पर भी बल दिया यह राजनीतिक सिद्धान्त की उनकी एक देन है। उन्होंने स्वराज्य के वैदिक आदेश को पुनर्जीवित किया। किन्तु उनका बहुत वैदिक आधुनिक बुद्धि की स्वीकार्य नहीं हो सकता। वे महान देशभक्त थे। किन्तु सम्पूर्ण प्रमाण न उनका यह मान कि वेदों, मनुस्मृति और महाभारत में वर्णित राजनीतिक आदेश अविश्व तथा पूर्य है, प्राचीन हिन्दू राजनीतिशास्त्र की गहराई तथा व्यापकता के सम्बन्ध में एक अतिप्रतीति है। वेदा विख्यात है कि पवित्र तथा पूर्य दोनों के ज्ञान के आधार पर ही एक सम्बन्धित तथा व्यापक राजनीति शासन की

24 वे एक बार बहुत *Modern Religious Movement in India* में पृष्ठ 358 पर लिखते हैं: 'यह नहीं कि पुनर्गठनवादी और अलग-अलगवादी न सम्पूर्ण दृष्टिकोण में साम्य हैं। यह उल्टा ही सत्य है जिसका पूर्य का अर्थ है कि अलग-अलगवादी का धार्मिक बहुत हिन्दुओं का उन पुनर्गठन का ही प्रकार का भी दयानन्द, रामकृष्ण, जिनकाव व और विभागीयता के अन्तर्गत के अलग-अलग सम्प्रदाय हुआ था।'

रचना करना सम्भव है। अपने उच्च वैश्ववाद के कारण दयानन्द पाश्चात्य सामाजिक तथा राजनीतिक सामानिकों की रचनाओं में उपलब्ध कृत्य के महत्व को न समझ सके।

दयानन्द ने लोकतांत्रिक सिद्धान्त तथा व्यवहार के पक्ष की तीव्र प्रशंसा से बल प्रदान किया है। प्रथम, सामाजिक विचारक के रूप में उन्होंने जर्म के स्थान पर गुप्त, ब्रह्म और स्वामी की जीवन में मनुष्य की स्थिति की बसोटी बना। दूसरे, उन्होंने आज समाज के सङ्कटात्मक क्षणों की प्रतिनिधियों के चुनाव के लोकतांत्रिक सिद्धान्त पर स्थापित किया। तीसरे, उन्होंने अपने आदर्श राज्यतन्त्र के लिए भी निर्वाचन के लोकतांत्रिक सिद्धान्त की स्वीकार किया। अतः पारिव्यापिक क्रम में राजनीतिक सिद्धान्तों न होने पर भी वे भारतीय राजनीति द्वाज के इतिहास में स्थान पाने के अधिकारी हैं। सत्त पास, गुप्त तथा वास्तविक भी राजनीतिक दार्शनिक नहीं थे। किन्तु उन्होंने कुछ ऐसे महा और सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जिन्होंने परम्परा विचार, व्यवहार तथा आन्दोलनों पर गम्भीर प्रभाव डाला, इसलिए उन्हें यूरोपीय राजनीति विचार के इतिहास में श्रावण दिया जाता है। स्वामी दयानन्द ने वैदिक पुनरुद्धार तथा सामाजिक गुप्त के लिए सत्तियाली आन्दोलन ही नहीं प्रारम्भ किया बल्कि उनके द्वारा स्थापित साम्य समाज ने भारतीय राजनीति आन्दोलन को अनेक महान नेता तथा अनुयायी प्रदान किए हैं। उन्होंने धर्मशास्त्रीय तथा सामाजिक विषयों में बुद्धिवाद तथा स्वतन्त्रता का पक्षपोषण किया। यह सत्य है कि उनका बुद्धिवाद मनुष्य की बुद्धि की धर्मशास्त्रों के बाधना से मुक्त मुक्त करने की धोषणा नहीं करता, किन्तु उनकी यह धोषणा कि धार्मिक धार्मिकों में नियम का अधिकार बुद्धि की है न कि अधविश्वासपूर्णक यज्ञों की, एक महत्वपूर्ण अर्थ बदन था। अतः वे भारत में स्वतन्त्रता के एक महान सङ्केतवाहक बन गये। सामाजिक विचार तथा धर्मविद्या में हीन व आदिन वैदिक स्वतन्त्रता का उदय राजनीतिक जीवन की स्वतन्त्रता की नींव बन गया। इसलिए भारत के राजनीतिक द्वाज तथा सङ्कति के इतिहास में दयानन्द की छत्र ही महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त होगा।

एनी बेसेंट तथा भगवान्दास

प्रारम्भ ।

एनी बेसेंट

1 प्रस्तावना

डा एनी बेसेंट (1847-1933) जन्म व मरण का ही और एक समय विद्वान व समाज कार्यिनी व उनकी सफलता थी । आधुनिक भारत व सामिक तथा सामाजिक चिन्तन व उनका महत्वपूर्ण स्थान है । और आधुनिक हिन्दू सामिक पुनर्जागरण व उनकी भूमिका बहुत ही महत्वपूर्ण है । उनके जीवन व कार्यकाव्य का भी एक दौर आया था, हिन्दू धर्म व धर्मनिरपेक्षता (1831-1891) के प्रभाव व व समाजिक न्याय और सामाजिकरी ईश्वर के पितात्व काय मनी । उनकी 'आत्मकथा' का प्रभाव होता है कि अपने प्रारम्भिक जीवन के बहुत सामाजिक दृष्टि से उनका व्यवहार बीमा और स्वयं कीपनी पढी थी, किन्तु बाद में जब व सामिक हो गयी तो उन्होंने इस सामाजिकवाद और धर्मिक प्रारम्भ कर ली । उनका भी सामाजिक तथा सामाजिक व समाज (हम सब) सामाजिक की बीमा उन्होंने कर प्रारम्भ ईश्वरों से ली थी और सामाजिक की प्रारम्भ उन्होंने ईश्वर स्वयंकी से प्रारम्भ की । पिछोलीकीपन सोसाइटी की स्थापना ईश्वरकी और बीमाका व 1875 में की की । उसने 14 वय उपरान्त 10 मई, 1889 को एनी बेसेंट पिछोलीकीपन सोसाइटी की स्थापना कर ली । ईश्वरकी की 1891 में मृत्यु हो गयी । उसके बाद बेसेंट ने अपने को पुनः पिछोलीकी के प्रचार के लिए समर्पित कर दिया । अपनी व्यक्तिगत सामाजिक और हिन्दू के सामाजिक के लिए उत्साह व कारण के बहुत मोनार्थिक मन गयी और कुछ लोगों से का उनका सामाजिक आनन्द तथा ईश्वर पुनः विभूति के रूप में सम्मान होन मया ।

बेसेंट 1893 में 46 वय की आयु में भारत आयी और सामाजिक, सामिक तथा सामाजिक कार्यो के जुट गयी । 1898 में ईश्वर हिन्दू सामाजिक तथा ईश्वर हिन्दू स्वयं की स्थापना के उनका काम रहा । उनका अनुशीलन था कि स्वयं के सामाजिक प्रारम्भ का निमित्तित चारमकन पढाया जाय । 1907 में बीमाका की मृत्यु के बाद के निमाओलीकीपन सोसाइटी की सम्पदा चुन ली गयी । 1914 में उन्होंने अपने सामाजिक के प्रचार के लिए व सामन बीमा (अनपरी 2, 1914) और 'वृ ईश्वर' नामक सामाजिक पढी की स्थापना की । 1917 में उनकी मृत्युकादी से दश में स्वयंका अन्तर्गत फला और उन्होंने जगता का दशका अधिन विद्वान प्रारम्भ कर लिया कि उसी वय कलकत्ता में व भारतीय राष्ट्रीय कार्यो की सम्पदा बना दी गयी । 1925 में उन्होंने अपने भारतीय सामाजिक अधिनियम (सामाजिक व ईश्वर विल) के लिए माओका पढाया । 1925-26 में ईश्वरकी की फाल्गुन व उसका फाल्गुन हुआ ।

बेसेंट जनसामान्यी प्रचारक तथा सामाजिकी लेखिका थी । उन्होंने प्रारम्भ फमसामन तथा सामाजिकी पर अनेक काम लिखे । उनकी 'वृ ईश्वरका बीमाका' (सामाजिक सामाजिक) नामक पुस्तक

- 1 एनी बेसेंट का जन्म 1847 में हुआ था और 20 दिसम्बर 1933 को उनका (मरण) में उनका देहान्त हुआ । 1874 में उनकी फाल्गुन बीमा के मत हुए और के उनकी मृत्युका ईश्वरकी सोसाइटी का प्रारम्भ कर मया ।
- 2 एनी बेसेंट ने 1895 और 1908 में पिछोलीकी के प्रचार काय के लिए सामाजिकी की भी मया की ।

(4) अठ्ठाट्ठिकी (अठ्ठाट्ठिकन) कही जाने वाली चौथी आदि जाति जिसमें टोहरी, बरहली और मंगोन इत्यादि जातियाँ सम्मिलित हैं।

(5) आम नामक पाँचवी आदि जाति जिसकी सब पांच उपजातियाँ हैं (1) भारत के आम,⁸ (2) भूमध्य सागरीय आम (शरब तथा मिसी), (3) ईरानी, (4) कन्नड़ और (5) द्रुटन जातियाँ।⁹

चिचोसोसी के सिद्धांतों के अनुसार दो और आदि जातियाँ हवाई और इस प्रकार ऊपरी जाड़ा जाति हो जायगी। इसके अतिरिक्त आम जाति की दो और उपजातियाँ विकसित होंगी। नवें मध्य एशिया की आम जाति की जन्मभूमि मानली गी।

4 वेनेट के राजनीतिक विचार

(क) स्वतन्त्रता—वेनेट के जीवन तथा विद्याका में स्वतन्त्रता की उत्पत्ति आकाशा स्वयं देखने का मिलती है। उन्हें अन्तःकरण की स्वतन्त्रता की सीख चाहे थी, इसीलिए वे इंग्लैण्ड के पब के ब्राथनी का लोडकर पारस द्वीपों के स्वतन्त्र चिन्तन आन्दोलन (मैरी शॉट मुवमेंट) में सम्मिलित हो गयी थी। उनका यह भी दावा था कि पब के इंग्लैण्ड में थी तभी उन्होंने 1877 के भारत के लिए स्वतन्त्र आन्दोलन (होम रूल मुवमेंट) प्रारम्भ कर दिया था। उनका कथन है “मेरी मान है कि प्रत्येक व्यक्ति को, चाहे उसमें विचार कुछ भी हो अपने स्वतन्त्र चिन्तन के परिणामी का सम्पादन और स्वतन्त्रता के साथ व्यक्त करने का अधिकार हो। और इसके लिए उसे न अपने नागरिक अधिकारों में बाधित होना पड़े, न उसका सामाजिक स्थिति नष्ट हो सार न उसकी पारिवारिक शान्ति भंग हो।

स्वतन्त्रता अमर और शाश्वत है उसकी विजय निश्चित है, वितन्त्र चिन्तना ही हो जाय। और मध्यिम में भी विजय उसी की होगी, यह यह है कि हम, जो उसमें पुनारी हैं, अपने तथा एक दूसरे के प्रति स्वतन्त्रता का आचरण कर लें। किन्तु जिन्हें उसमें प्रेम है उन्हें चाहिए कि जैसे वे उसकी पूजा करते हैं वैसे ही उसके लिए काम भी करें क्योंकि परिश्रम ही स्वतन्त्रता देवी की प्राप्ति है और बलि ही उसका एकमात्र पुजमान है।”¹⁰ जहाँ यद्यपि वेनेट अरबिन्द की भाँति स्वतन्त्रता की आत्मा का शाश्वत रूप मानती थी, फिर भी उनका कहना था कि स्वतन्त्रता एक बहुमूल्य विरासत है और उसे महान उपन तथा अनुशासन से ही प्राप्त किया जा सकता है। वेनेट के अनुसार स्वतन्त्रता स्वेच्छाचार तथा उच्च-चालता से सर्वाधिक दूर है। यह ती तभी उपलब्ध हो सकती है जब मनुष्य अपनी नस्ल और भाषा हिमन शक्तियों का संरक्षण करने काव्यक्रम पुनरा का प्रयत्न करे। जब राष्ट्र क्षेत्र में स्वतन्त्रता प्राप्त करने में पहले आत्मा की आन्तरिक स्वाधीनता आवश्यक है। स्वावहारिक यह भी वाक्यान्वय का समन करने ही स्वतन्त्रता के साक्षात्कार के लिए आवश्यक चरित्र तथा अनुशासन प्राप्त किया जा सकता है। वेनेट लिखती हैं “स्वतन्त्रता एक अतीन्द्रिय देवी है, यह शक्तिशाली प्रेमातु तथा बहादुर है। यह बीजा के बीजार से, चण्ड खल काकनाका के तनों से अथवा पग के प्रति पग की चप्पा के निजी राष्ट्र में अन्तर्हित नहीं हो सकती। स्वतन्त्रता पृथ्वी पर बाह्य जीवन के तब तब बनी अन्तर्हित नहीं होगी जब तक कि वह पहले आन्तर मनुष्या के हृदय में विराजमान नहीं हो जाती, जब तक उच्च प्रवृत्ति वाक्यान्वय एवं प्रचल दृष्टावा की निम्न प्रवृत्ति पर, अपना स्वाय पूरा करने तथा दूसरा को सुखल दातृ की दृष्टा पर, अतिशय स्वाधित नहीं कर लेती। स्वतन्त्र राष्ट्र की स्थापना तभी हो सकती है जब ऐसे स्वतन्त्र व्यक्ति हो जो स्वतन्त्र दुश्मनों और शत्रुता का प्रयोग करने उसका निर्माण करने की क्षमता रखते हो। किन्तु कोई स्वयं अथवा सुख स्वतन्त्र स्वतन्त्र नहीं कहा जा सकता जब तक यह क्षमताओं, दुष्मताओं, मध्यमान अथवा अन्य किसी देश दुश्मन के नाशित्व है जिस पर वह बाध नहीं जा सकता। अन्तर्निष्ठ ही वेदक यह जीवन है जिस पर स्वतन्त्रता का निर्माण किया जा सकता है। जबकि बिना आन्तरिक अस्वतन्त्रता उपलब्ध हो सकती है, स्वतन्त्रता नहीं और महान क्षमताओं में जो भी बलि होगी है उतना मूल्य हम अपना मुग देकर चुकाना पड़ेगा। किन्तु जब स्वतन्त्रता आयेगी तो यह एक

8 एनी वेनेट भारत का मनुष्य आम जाति की मातृभूमि मानती थी।

9 एनी वेनेट *Carleton's Dialects and the Kings* पृ. 20।

10 एनी वेनेट *Carl and Religious Liberty*, 1883।

राष्ट्र के अवधारित होनी जिसके तुर स्त्री और पुरुष न आत्मनिष्ठ और आत्मशासन की छवि दिया है। और केवल सभी राजनीतिक स्वतन्त्रता का निर्माण किया जा सकेगा। पुरुष राजनीतिक स्वतन्त्रता व्यक्ति की स्वतन्त्रता का फल है, न कि भयदालू वास्तविकता की उपज, इसलिए उसका निर्माण वे स्त्री और पुरुष ही कर सकते हैं जो स्वयं स्वाधीन, समान एवं सदाचारी हैं, जिनका अपनी प्रकृति पर शासन है जिन्होंने अपनी प्रकृति की श्रेष्ठतम शक्तों के लिए प्रतिष्ठित कर दिया है।¹¹ स्वतन्त्रता का साक्षात्कार करने के लिए धर्मानुसृत आचरण करना आवश्यक है, और धर्म का आधार सत्य कीविल प्रमाणों तथा परब्रह्म का पारस्परिक सम्बन्ध है। इसलिए बेसेंट ने मनुष्य विपन्न इस धारणा का परिचयन करने की अपील की कि वह स्वभावतः एककी व्यक्ति है और अनेकेपन की दशा में सब प्रकार के अधिपतियों से मुक्त था।¹² 1914 म कांग्रेस के महास अधिवेशन के अवसर पर अपने भाषण में उन्होंने स्वतन्त्रता के सम्पन्न म विच्छेद तथा मिल का उल्लेख किया। 1915 में अम्बेड्कराधिवेशन में उन्होंने 1818 के विनियम 3 को 'पुरानी बोर्दा व्यवस्था का निस्तब्धतापूर्ण पुनर्र्धार मतलामा और उसकी मरम्मत की।

(ख) अधिजाततीय समाजवाद—बेसेंट ने एक समाजवादी के रूप में अपना जीवन आरम्भ किया था।¹³ उन्होंने व्यक्तिवाद की दुष्टतु प्रवृत्ति का विरोध किया और साहचर्यपूर्ण सहयोग का उपदेश दिया। किन्तु उनकी सामूहिक शक्तों के समाज के सहानुभूति नहीं थी, और न वे उस सिद्धान्तवादी समता के आदर्श से सहमत थी जिसका सम्बन्ध प्रायः समाजवाद के साथ जोड़ा जाता है।¹⁴ वे सामाजिक सम्पत्ति पर आधारित ऐसा समाजवाद चाहती थी जिसमें 'व्यक्तिता की योग्यताओं तथा कार्यों का बुद्धिमत्ता से सम्पादित, परस्पर सामयिक तथा आनन्ददायक सामन्तत्व' हो। जनता के समाजवाद के स्थान पर उन्होंने ऐसी व्यवस्था का समर्थन किया जिसमें बड़ीबुद्ध तथा ज्ञान-बुद्ध शक्तों को शासनसत्ता का विपन्न करने का अधिकार हो। अब मनुष्य की समस्या के सम्बन्ध में उनका दृष्टिकोण प्लेटो के समान था। प्लेटो की भांति वे भी चाहती थी कि शासन का अधिकार उन लोगों के हाथों में हो जो नैतिक तथा बौद्धिक दृष्टि से प्रशिक्षित और अनुशासनयुक्त हो। वे समाज के सत्कारविहीन समस्या के हाथों में शासनसत्ता सीकने के विरुद्ध थी। उन्होंने लिखा है "हमें चाहिए कि राज्य को वह ज्ञान प्राप्त दे दें जिसका उसने प्राप्त अभाव हो गया है, और राज्य को इस बातसे बचाने कि वही 'मान्य' निर्वाचकगण आंतरराष्ट्रीय व्यवस्थाओं को न उलट दें, और सम्भवतः हमें बुद्ध ने सचवा कहते की अधिक गहिर समझान की बड़ी में न भ्रोक दें। वे निर्वाचकगण वस्तुतः ऐसे व्यक्ति को चुनने के लिए भयभीत हैं जो उनकी शक्तों, उनकी भावितियों और उनके स्थानीय मामलों की, जिन्हें वे स्वयं नहीं भाँति समझते हैं, देखभाल कर सकें। वे सामान्य सिद्धान्त हैं जिनका परिवर्धन किया जा सकता है और जिन्हें आधुनिक परिस्थितियों में लागू किया जा सकता है। मतदाताओं द्वारा निर्वाचित और सत्ता द्वारा निर्देशित औद्योगिक समाजवाद सभी अक्षय नहीं हो सकता। मनुष्य की भावना के निर्वाचित और ज्ञान द्वारा निर्देशित आर्थिक व्यवस्था में अधिजाततीय समाजवाद¹⁵ सम्पन्न के विकास में एक महत्वपूर्ण उपरति की ओर वे जाने वाला कदम होगा।" किन्तु जो अधिजाततीय बेसेंट के मत में है वह व्यक्तिगततीय अधिजाततीय नहीं है, परन्तु वह ज्ञान और नैतिक बल का अधिजाततीय है जिसमें सामन्त-सत्ता पम्परागत तथा प्रजातन्त्र लोगों के हाथों में होगी।

(ग) प्रातिनिधिक लोकतन्त्र की सीमाएँ—बेसेंट का राजनीति द्वाय प्लेटोवादी था, क्योंकि उन्हें सत्ता के प्रमुख में नहीं बल्कि ज्ञान की स्वयच्छिन्नता में विश्वास था। अब आन्दर और वकील

11 एनी बेसेंट, *The Changing World*, 1909।

12 एनी बेसेंट, *The Future of Indian Politics*, पृष्ठ 277-78।

13 जिन दिनों एनी बेसेंट समाजवाद की वन दिनी उन्होंने *Our Corner* नामक पत्रिका में "The Redistribution of Power in Society" "The Evolution of Society", "Modern Socialism", आदि विषयों पर एक लेखप्रकाश प्रकाशित की थी।

14 एनी बेसेंट, *Lectures on Political Science* पृष्ठ 133।

15 बेसेंट ने 30 जुलाई, 1931 की *New India* में एक लेख प्रकाशित किया। उसमें उन्होंने इस बात का किया कि सभी का 'सामयिक आधार पर पुनर्वितरण किया जाना जिससे समाज के सभी का सुख हो न हो सके'।

यहने के लिए विविष्ट समष्टि की आवश्यकता होती है तो कोई कारण नहीं है कि उस महात्मा के सम्बंध में, जो राष्ट्र के मानसों का प्रभाव करने वाले व्यक्तियों को चुनता है, विशेष दक्षता के सिद्धांत की अवहेलना की जाय ।¹⁶ वे इस बात को मज़ीमाति समझती थी और इसका उन्हें दुःख था कि पश्चिम के अनेक देश बाह्य लौकिकता-जिक दाने की बीज में अराजकता, अज्ञान तथा संपीठ शक्ति का प्रसारण करने हुए थे । अतः उन्होंने लोकतांत्र्य की उस परिपक्वता की आवश्यकता को जिसके अंतर्गत लोकतंत्रियां गिनी जाती हैं,¹⁷ और यह नहीं देखा जाता कि उस लोकतंत्रियों ने है क्या । बल्कि उन्होंने इस बात का भी उल्लेख किया कि पश्चिम के लोकतांत्रिक देशों में 'अधुनिकतावादी वर्ग' का अधिपत्य है ।¹⁸ वे इस पक्ष में थी कि आध्यात्मिक तथा नैतिक ज्ञान को दण्ड प्रारम्भ करने का अधिकार दिया जाय, और बुद्धिमानों को शक्ति के विह्वलन पर असीन किया जाय ।¹⁹ बहुतांश बाद तथा बहुसंख्यकों के अधिपत्य का एक ही परिणाम हो सकता है—शक्ति का पारस्परिक लक्ष्य और संश्लेषित अराजकता तथा गड़बड़ी और कुटिल निकटवर्षियों की विषय । इस सबका एक मात्र उपचार यह है कि बुद्धिमानों को शासन का काम सौंप दिया जाय । जो स्वाधरहित है, शासक शक्ति का परिचय करने के लिए दृढ़ता से कृतशक्त्य हैं और बुद्धिमान हैं जहाँ को शासन का भार अपने ऊपर लेना चाहिए । उनके लिए शासकीय पद स्वाभिमूर्ति का सामन नहीं अपितु सामाजिक सेवा का अवसर होता है । वे मिस्रों हैं—“हमारे सम्मुख के आदर्श को शासन के क्षेत्र में प्रतिष्ठा करने का लक्ष्य है कि शक्ति पर बुद्धिमानों का अधिकार हो, न कि सुखों का, वस्तु अताने का काम उन लोगों के हाथों में हो जो उपयोग की पटिल समस्याओं को समझते हैं, न कि उनके हाथों में जो वेचन दुहलकी की अवस्था अधिक से अधिक नगर की आवश्यकताओं से परिचित हैं । सामाज्य जनों को सुख का अधिकार है, किन्तु उसे वे अपने लिए पारोरिक शक्ति, धनिक हिता और प्रतिस्पर्धा के द्वारा प्राप्त नहीं कर सकते । अतः यह है कि शासन और समझदार लोग सुख प्राप्त के मांग पर उसका पक्ष-प्रदान करें और उस तक पहुँचने में उनकी सहायता करें । अधिकारी की इस समस्या का हल सभी हो सकता है जब अधिक शक्ति स्वार्थी हों के अज्ञान स्थाप रहित हो । यह समस्या क्या है ? हममें से अधिक, जो उसका अध्ययन करता है, उसकी मुल्यमने का प्रयत्न करें । किन्तु आप इसे सब तक हल नहीं कर सकते जब तक आप वर्तमान शासन करने प्रथम शासन न करने की प्रणाली की निरक्षरता और विस्तारता की हृदयगत नहीं कर लेते और इस मादश को स्वीकार नहीं कर लेते कि सर्वोपेक्ष ही शासन करें ।²⁰ शासन की समस्याओं के क्षेत्र में भी विमोक्षोन्मी के सामने क्या बाध है । उस सबका विरोध करो जिसका उद्देश्य जैव की निराकर नीचे के प्रदान करना है, और उस सबकी सहायता करो जो नीचे की उठाकर जैव के प्रदान पहुँचाना चाहता है । ऐसा अवसर पड़ जाये तो कि ज्ञानी तथा सुख पुनो की उस समृद्धि और विप्लवता को जिसे परिश्रम और कष्ट तथा अनेक पीढ़ियों के दीर्घ संधप से अर्जित दिया गया है, अतिशुभ बनने विनाश के एक नेत्र के परिचयित कर दें, जैसा कि अनेक बार पहले हो चुका है । शासन की इस समस्याओं के हल करने में एक महत्व आदर्श भी शक्ति कुटा था ।²¹ किन्तु बीसवीं सताब्दी में भारत तथा एशिया के स्वशासन, अविश्वतवाद तथा मोरतान की ओर प्रगति हुई है अपने राज्य के वैश्विक व नैतिक अविश्वतत्व का आदर्श पुनर्प्राप्त तथा पुन की भावना के प्रतिपूत प्रतीत हो सकता है । सामाज्य मनुष्य की यह समझ देना कठिन होता कि यह अवश्य है । यह अवश्य है कि भारत का विशाल अक्षयमुद्राव क्षेत्र के अक्षय प्रताधिकार का परिधान कर दे । भारतीय राष्ट्रवादियों की ऐसा संवेग कि वैश्विक का विश्वास तथा नैतिक अविश्वतत्व का सिद्धांत विविध

16 21 मई, 1922 की *New India* में बर्लेन का लेख ।

17 *Shall India Live or Die* ? पृष्ठ 112 ।

18 एनी बेसेन्ट, *The Future of Indian Politics*, पृष्ठ 275-78 ।

19 वही पृष्ठ 215 ।

20 एनी बेसेन्ट के 1925 में की राजनीतिक शासक शक्ति का विवरण किया जहाँ “नैतिक अविश्वतत्व” पर आधारित बुद्धिमानों के अविश्वतत्व का प्रतिपादन था ।

21 बेसेन्ट *The Ideals of Theosophy*, 1912 ।

मुक्त। जलवायु, वातावरण, सामाजिक स्थिति आदि सभी प्राकृतिक विशेषताओं को प्रभावित करती हैं और उनके द्वारा चरित्र को भी। प्रत्येक राष्ट्र स्पष्टतः एक व्यक्ति है और उसका अपना विशिष्ट चरित्र है। उसका चरित्र उसके मूल में अन्तर्निहित झलना की प्रकृति पर निर्भर होता है, और निर्भर होता है उसके उस उच्च विकास पर जो उसे समय मानव जाति के एक अंग के रूप में अपना भूमिका अदा करने के योग्य बनाता है। भारत आज भी जीवित है, जब कि वे सब सम्भवतः नष्ट हो चुकी हैं जो बीच सहस्र वर्ष पूर्व उसकी समकालीन थी। इसका कारण यह है कि उसके शरीर में आज भी वही आत्मा निवास करती है जो उस समय करती थी।²⁶ इस प्रकार हम देखते हैं कि वेसेंट के अनुसार राष्ट्र एक व्यक्ति, एक साम्प्रदायिक शक्ति है। हेनेल, अरविन्द तथा विन्निबगन पात्र की भाँति वेसेंट भी राष्ट्र को परब्रह्म की अभिव्यक्ति मानती हैं। उनका मत है कि यदि किसी राष्ट्र की सरकार, भूमि आदि नष्ट हो जाय तो भी अपने धर्म के सहारे वह जीवित रह सकता है, जहाँ कि सहस्रियों के सम्मिश्रण में हुआ।²⁷ जब किसी राष्ट्र के साथ निश्चित भूमि और सरकार का सम्बन्ध हो जाता है तो वह राज्य का रूप धारण कर लेता है।²⁸

वेसेंट यह मानने की तैयार नहीं थी कि भारत को राष्ट्र बनने का पाठ दक्षिण में सिखाया था। वह अतीत में ही एक राष्ट्र था। उसके सम्पूर्ण साहित्य, दखन और कलाओं में जीवन्त राष्ट्रीय भावना की सहृदयी तथा व्यापक तरंग विद्यमान रही है। विश्व में अनेक सम्मताओं का उद्भव हुआ किन्तु कालांतर में वे भूमिसाल हो गयीं। किन्तु भारत अपने राष्ट्रवाद के प्राकृतिक कोशों के प्रति बफादार बना रहा, इसलिए उसकी प्राणशक्ति अक्षुण्ण रही, और वह अपनी सीढ़ी हुई शक्ति को पुनः प्राप्त करने के योग्य बना रहा। यह कहना 'मूलसामूह' तथा 'देहता' है कि भारत में राष्ट्रीयता की भावना का उद्भव विविध शासन का परिणाम है।²⁹ इस कथन में सहर्ष नहीं है कि राष्ट्रत्व नरक की एकता और भाषा की एकता पर निर्भर होता है। राष्ट्रत्व एक साम्प्रदायिक वस्तु है। राष्ट्र की प्राणशक्ति और पुनरुत्थान का द्वार आकाशवाणी की एकता में है, न कि धर्म की एकता में।³⁰ यहाँ एक शिक्षात्मक जन समुदाय उत्कृष्ट सांस्कृतिक उद्देश्य में अनुप्रेरित होता है, यहाँ राष्ट्रीय एकता अभिव्यक्त हो जाती है। वेसेंट लिखती हैं "व्यक्ति की भाँति राष्ट्र को एक ऐसे जटिल शरीर के निर्माण की प्रक्रिया है जिसमें एक श्रेष्ठ प्रकार का जीवन—ईश्वरीय जीवन—निवास करता है। जिस प्रकार आप में से प्रत्येक एक जीवात्मा है जो आपके चरित्र को ढालता, आपकी महत्त्वता की निर्धारित करता तथा आपके विकास को अनुप्राणित करता है, उसी प्रकार राष्ट्र एक जीवात्मा है। राष्ट्र एक उत्कृष्टतम कोटि का व्यक्ति है। राष्ट्र की आत्मा ईश्वर का अंग है, वह सीढ़ी ईश्वर से आती है, और उस अंग में जो विशिष्ट गुण निहित होते हैं वही के अनुरूप उनसे निर्मित राष्ट्र की प्राकृतिक विशेषताएँ हुआ करती हैं। जिस प्रकार कोई दो व्यक्ति एकते नहीं होते, वैसे ही कोई दो राष्ट्र एकते नहीं होते। सब राष्ट्रों की समझना से मानवता का निर्माण होता है—उस मानवता का जो स्वयं ईश्वर का मानवीय प्रतिबिम्ब है। प्रत्येक वा अपना व्यक्तित्व है। भारत के राष्ट्रीय जीवन का वैभव उसका साहित्य, उसका इतिहास, उसका धर्म और विज्ञान है, और ये सब इतने अधिक विकसित इसलिए हैं कि भारत इतना प्राचीन राष्ट्र है। किसी राष्ट्र के प्राकृतिक जीवन में उस राष्ट्र ने घटन स्वरूप व्यक्तित्व की एक मूल में योगदान के लिए धर्म अत्यन्त आवश्यक होता है। भारत सभी हिंदुत्व के धर्म में अन्तर्निहित हुआ था, और जहाँ धर्म ने उससे शरीर की दीप जलन तक उठाया था। धर्म परस्पर बाँधने वाली शक्ति है और धर्म ने मिलने सीप बाल सब भारत की बाँधकर रखा है उसका अर्थ किसी राष्ट्र को नहीं, क्योंकि वह संसार का सबसे पुरातन राष्ट्र है।³¹ वेसेंट का निराशा यह कि भारत की साम्प्रदायिकता ही विश्व का परिचाय करेगी। उनसे अनुसर देख की गयी होतव्यता थी। इस प्रकार, विवेकानन्द और अरविन्द की भाँति वेसेंट का भी निराशा था कि विश्व के लिए भारत का एक साम्प्रदायिक ध्येय—विज्ञान—है।

26 एनी बेसेंट, *Lectures on Political Science*, 1918।

27 वही, पृष्ठ 33।

28 वही, पृष्ठ 69।

29 एनी बेसेंट *Shall India Live or Die?* 1925, पृष्ठ 38।

30 एनी बेसेंट, *New India* 16 अक्टूबर, 1918।

31 21 अक्टूबर 1917 में *New India* में एनी बेसेंट का लेख।

बेसेंट का विश्वास था कि 'धार्मिक' समन्वय राजनीतिक पुनर्रचना के काम में एक प्रतिस्पर्धी शक्ति का काम दे सकता है। यह एकता तथा पारस्परिक निर्भरता का पाठ पढ़ाता है। विश्व के बड़े धर्मों के मानव भेदना के नैतिक विवादात्मक विचारों में जोड़ दिया है और सामूहिक विरासत को समृद्ध किया है। बेसेंट का विश्वास था कि यदि धार्मिक के धार्मिक लोगों का निरिच्छित दिशा में प्रयोग किया जा सके तो भारत विश्व के लिए प्रभावशाली शक्ति का काम कर सकता है। उन्होंने लिखा है, "मेरा हृदय विश्वास है कि धर्म के आधार पर ही सच्ची राष्ट्रीयता का निर्माण किया जा सकता है। यदि प्राचीन दर्शन और धर्मों ने भारतीयों के हृदय में अपने साम्राज्य की पुनः स्थापना न कर ली होती तो मानव कल्याण के साथ-साथ मानव गरिमा का पाठ पढ़ने वाला धर्म का तथा भारत के आत्मसम्मान का ऐसा उत्कृष्ट धर्म न हुआ होता जैसा कि आज हुआ है। जिन गुणों का उल्लेख यह करता है और जो सबसे बड़े इस पवित्र भूमि में विद्यमान हैं, उन्हीं को हमें राष्ट्र निर्माण के लिए आवश्यकता है। क्या हिन्दू धर्म यह नहीं सिखाता कि हमें सम्पूर्ण विश्व में एक परमात्मा के ही दर्शन करने चाहिए? क्या हम यह नहीं जानते कि इस सर्वाधिक पुण्यवान धर्म का केन्द्रीय शक्ति यह है कि परमात्मा अनेक जाति और वर्ग के लोगों में समान रूप से निवास करता है? क्या अस्तित्व के धर्म के हमें राष्ट्रीय एकता की आवश्यकता का और बौद्ध तथा जैन धर्मों के ज्ञान तथा सम्पन्न चिन्तन की आवश्यकता का पाठ नहीं सीखते? क्या इस्लाम हमें सच्चे सौन्दर्य का पाठ नहीं सिखाता—सौन्दर्य का जो हमें सब धर्मों से अधिक महान् पैगम्बर की शिक्षाओं और जीवन के समाविष्ट मिलता है? और क्या हम इन सबमें किसी के साहस का संकोच करने महान् राष्ट्रीय जीवन के गुणों को गुप्त नहीं बना सकते? और क्या हम अनुमति नहीं करते कि ईसाइयत हमें अपनी शिक्षा के रूप में बलिदान का महान् रत्न प्रदान करती है? इस प्रकार इन धर्मों के अनुयायी विश्व के सब धर्मों को एक ही प्रभाव की किरणें समझते हुए भारत की पुनः जीवित को एक राष्ट्र का रूप देने के लिए परस्पर मिलेंगे, न कुछ छुट्टियाँ और न कुछ बहुल्यूल शिमा जानका, जब एक दूसरे से सीखते हुए और परस्पर प्रशंसा तथा सेवा करते हुए राष्ट्र के निर्माण में योग देंगे।"³²

भारत के भविष्य के सम्बन्ध में बेसेंट का आकांक्षित बहुत उज्ज्वल तथा चिरवृत्त था। उनका दृष्टान्त था कि भविष्य में भारत और ब्रिटेन मिलकर एक राष्ट्रमण्डल का निर्माण करेंगे।³³ उन्होंने एक विश्व राष्ट्रमण्डल की भी कल्पना की थी। उनका मानव बंधुत्व के विश्वास था। 1917 के कलकत्ता कांग्रेस के अवसर पर अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने कहा कि "यह देखने के लिए कि भारत स्वतंत्र हो, यह राष्ट्रों के बीच में अपना मतलब जमा कर सके, उसने गुणों और पुण्यों का कल्याण सम्मान हो, यह अपने प्रतिस्पर्धी अस्तित्व के योग्य बने और उसके भी अधिक प्रतिस्पर्धी भविष्य के निर्माण में सक्षम हो—क्या यह आदेश इस योग्य नहीं है कि उसके लिए काम किया जाय, उसके लिए शब्द सहे जाय और उसके लिए जीवन धारण किया जाय तथा मृत्यु का आतिथ्य किया जाय? क्या विश्व में ऐसा भी कोई देश है जिसकी आध्यात्मिकता के लिए हमारे मन में उतना प्रेम जाग्रत होता हो, जिसके साहित्य के लिए इतनी प्रशंसा और गौरव के लिए इतनी श्रद्धा उत्पन्न होती हो जिसकी राष्ट्रीय की इस सौख्यमयी जननी भारत माता के लिए, जिसकी कोशिश के प्रतिस्पर्धी दुर्दैव को आज यूरोप तथा अमेरिका से विश्व का नेतृत्व कर रही है? और क्या ऐसा भी कोई देश है जिसने इतने कष्ट सहे हो जिसने भारत ने सहे हैं, विशेषकर जब वे कुराखों के उसकी सलवार हट गयी और यूरोप तथा एशिया की जातियों ने उनकी सीमाओं की पलायन किया, उसके लोगों को जवाब और उसके राज्यों को मुकुट पहिना कर दिया? वे जीतने आये भी, किन्तु यहाँ रहकर यहाँ के जीवन में घुल मिल गयी। अतः वे, उन विभिन्न जातियों की सभी विशेषताओं में एक राष्ट्र के रूप में स्थापित किया है। इस राष्ट्र में उसने अपने गुण ही विद्यमान नहीं हैं, बल्कि उसने उन गुणों की भी आत्मसात कर लिया है जिन्हें उसने शत्रु अपने साथ लाये थे, और जिन गुणों की लेकर वे अपने में उन्हें घीरे घीरे दूर कर दिया गया है। राष्ट्रों के बीच भारत कूली पर चढ़ाया हुआ राष्ट्र है, किन्तु सहस्रों वर्षों के बाद आज वह पुनर्जीवन की सेवा में जगद, नीरवस्थान्ती और चिर स्थाय होकर उठ खड़ा हुआ है।

32 27 दिसम्बर 1917 की *New India* में बेसेंट का कथन।

33 एनी बेसेंट, *The Future of Indian Politics*, पृष्ठ 314-15।

और शीघ्र ही हम भारत की गर्वीला, आत्मविश्वासी, शक्तिशाली तथा स्वतन्त्र देशों में, बहु धर्म का वैभव और विश्व का प्रकाश तथा परदाय बनेगा।" वेबेड का विश्वास था कि भारत विश्व का आगमनी बनेगा। मुद्र मुद्र से भारत 'वाय, नतव्य, क्षमता तथा सम्पत् स्वयम्प्रा का समर्थक रहा था। वत आवश्यक् है कि वह पहले अपनी होतव्यता को प्राप्त करे और तब मानवता के मन्दिर में अपनी उचित भूमिका अदा करे। वेबेड के अनुसार यही ईश्वर की योजना थी और इसकी पूर्ण करने के लिए महात्मा³⁴ तथा गुरु सोम नाम कर रहे थे।

(इ) बाभूष पर आधारित राष्ट्रमण्डल—राष्ट्रवाद आध्यात्मिक तत्व है। वह नरता की अन्तरात्मा की अभिव्यक्ति है। राष्ट्र ईश्वर का साक्षात् रूप है। किन्तु राष्ट्रवाद केवल एक प्रतिक है, सामाजिक विकास की अवस्था है, न कि उसकी परिचयि। वह पुनरावृत्ति की लम्बी प्रगति हो सकता है जब विश्व-बाभूष का आदर्श पूरा हो जाय। महात्मा, गांधी और अरविन्द की प्रति वेबेड ने की अपनी सम्पूर्ण बाभूषुता का प्रयोग करके राष्ट्र का गुणमान विद्या, किन्तु इसे व्यक्तिगत के विकास की केवल एक अवस्था माना। इससे उन्नततर अवस्था विश्व नागरिकता का राज्य है। वेबेड ने लिखा है "योजना की दूसरी अवस्था सब राष्ट्रों के स्वतन्त्र राष्ट्रमण्डल की स्थापना है, उक्त राष्ट्र मण्डल में भारत का समाज स्वाय और भूमिका होनी। यही कारण है कि अनेक महा भावे और दुर्त्यों की वृद्धि से जाना गया। ब्रिटिश राष्ट्र ही एक ऐसा राष्ट्र है जो अपने द्वीप में अपनी सत्ताओं के नियम में स्वतन्त्र है, यद्यपि अपने द्वीप से बाहर अपने स्वयंसार में वह स्वतन्त्र न गयी है। उसे गुना गया कि वह महा भावे और भारतीय राष्ट्र से मिलकर एक विश्व साम्राज्य की स्थापना करे³⁵ ऐसे साम्राज्य की जो वस्तुतः विश्व राष्ट्रमण्डल हो, शान्ति और प्रेम से शासन करने वाला विश्व सभ हो न कि सन्तुष्टि शासन करने वाला विश्व साम्राज्य। यही आदर्श है जिसने लिए हम सब काम कर रहे हैं। इसी के लिए मनु काम कर रहे हैं और वे अपने श्रेष्ठ पुत्रों से पूर्व तथा पश्चिम की परस्पर सम्बद्ध करने के काम में सहयोग चाहते हैं। उनका उद्देश्य है कि भारत के महान आध्यात्मिक आदर्शों और ब्रिटेन की महान भौतिक और वैज्ञानिक प्रगति की समन्वित करके पूर्व तथा पश्चिम की मावी पीढ़ियों की सहमता के हेतु सामन्तस्वरूप सहयोग के मूर्तों से आवद्ध कर दिया जाय। भारत और ब्रिटेन इस राष्ट्रमण्डल के दो मुख्य घटक होने,³⁶ और वह राष्ट्रमण्डल अविश्व के विश्व राष्ट्रमण्डल का माध्य बनने वाला है। यह छोटे पैमाने पर अन्तरराष्ट्रवाद का आवस है। इस आदर्श की स्थापना के लिए वैयस्वत मनु प्रयत्न कर रहे हैं, यद्यपि इस कार्य में उन्हें अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ रहा है जैसे मनुष्यों की इच्छाओं का पारस्परिक संघर्ष, अज्ञानियों के प्रयत्न और इनसे भी अधिक खतरा नाक अचकार की शक्तियां जो सर्वत्र प्रकाश के बाधुओं का विरोध किया करती हैं।"³⁷

वेबेड का विश्वास था कि इस योजना में ब्रिटेन अपनी भूमिका अदा करेगा और इस प्रकार 'वाय की सर्वोच्चता की रक्षा करेगा। वे लिखती हैं "ब्रिटेन की जो अवसर मिला है वह उसी के लिए है, क्योंकि संसार भर में ऐसे स्वतन्त्र राष्ट्र हैं जो उसी से उत्पन्न हुए हैं और जिन्हें आज सब शासित उपनिवेश (सोमीनिकन) कहते हैं और अब अनेक ऐसे देश हैं जिन्हें उसने उड़ी की जगहों की सहमता के प्राप्त किया है और का आधीन राज्य कहलाते हैं, वे सब एक साथ के रूप में संपर्कित होने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। यदि विश्व में प्रथम बार ऐसा सन्तुष्टिशीली राष्ट्र, अर्थात् कि आज का अविश्व रूप है, शक्ति का आश्रय न लेकर 'वाय करने का प्रयत्न करे, यदि वह राष्ट्र दुर्तता पर अस्वाचार करने के बजाय उनके लिए स्वतन्त्रता के पाठक खोल दे और उन सब राष्ट्रों से जिनसे मिलकर वह साम्राज्य बना है, कहें 'आओ और हमारे साथ मिलकर एक साम्राज्य नदी प्रति' एक स्वतन्त्र राष्ट्रों का राष्ट्रमण्डल बनाइये, तोरी का राष्ट्रमण्डल यही अन्तिम ऐसा राष्ट्रमण्डल

34 एनी वेबेड का विश्वास था कि महात्मा और गुरु सोम जैसी क विचारों की प्रवृत्ति का निर्देशन कर रहे हैं।

35 1808 में एनी वेबेड ने कहा था कि भारत, विश्व नागरिक अवस्था का प्रकाशनी बने विश्व का मन्दिर, विश्व साम्राज्य का केन्द्र बनेगा। उनका विश्वास था कि ब्रिटिश साम्राज्य का केन्द्र उद्देश्य पश्चिम से उत्पन्न बलात्कार पुनः का स्थापित होगा।

36 वेबेड केवल ब्रिटेन का साथ भारत का सम्बन्धों की बजाये अपने के लिए बहुत आभाषित थी, इंग्लैंड अभी अभी उनके आकाश में सोनी में महाप्रदुषा पैदा हो गयी थी।

37 एनी वेबेड, *The Great Plan*, 1920।

जिसने प्रत्येक जाति, प्रत्येक रंग, प्रत्येक नस्ल, प्रत्येक धर्म, परम्परा तथा रीति रिवाज के बीच स्नेहका के सम्मिलित हो, 'तो सोचिये, इस संघका क्या अभिप्राय है। ओह ! यदि ब्रिटेन ऐसा कर सके तो इस महान योजना में उसकी भूमिका पूरी हो जायगी। उसका यही स्थान है, उसके लिए यही अवसर है।' बेसेंट का हृदय विनम्र था कि पूरा तथा परिपूर्ण, एशिया और यूरोप बराबरी की हैसियत के साथ-साथ आगे बढ़ेंगे और मनुष्य जाति की सहायता करेंगे।

बेसेंट के सामाजिकवाद के आदेश का आधार उनका यह सिद्धांत था कि व्यक्ति, समाज, राष्ट्र तथा मानवता, इन सभी प्रकृति व्यवस्थी है। बीधा कि हम पहले सिख आये हैं, बेसेंट व्यापकतम सर्व (परमात्मा) को सर्वव्यापी मानती थी। अपनी इस धारणा का उन्होंने बहुतसारी और हरकत सौंदर के अवसरों के प्रयोग के साथ सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न किया। उन्होंने व्यक्तियों की साथ कक्षाएं निर्धारित थी

- 1 कोपिकीय प्राणी।
- 2 कोपिकीय ऊनका में संपर्कित।
- 3 ऊनका जग में संपर्कित।
- 4 जग शरीरा में संपर्कित।
- 5 शरीर समुदायों में संपर्कित।
- 6 समुदाय राष्ट्रों में संपर्कित।
- 7 राष्ट्र मानवता में संपर्कित।

अपने राजनीति विज्ञान पर पाठ्य (लेक्चर ऑन पोलिटिकल साइंस) में एनी बेसेंट ने धार्मिक व्यक्तियों को आठ प्रयोगों में विभक्त किया (1) सरल कोपिका, (2) भयवर्षी का निर्माण करने वाला कोपिका समूह, (3) मनुष्य की अवस्था तक सरल अवस्था जटिल भयवर्षी, (4) परिवार इनाई वाला मनुष्य समूह, (5) जनजाति का निर्माण करने वाला परिवार समूह, (6) राष्ट्र का निर्माण करने वाला जनजाति समूह, (7) साम्राज्य अवस्था राष्ट्रमण्डल का निर्माण करने वाला राष्ट्र समूह, और (8) मनुष्य जाति का निर्माण करने वाला राष्ट्रमण्डली अवस्था साम्राज्य का समूह। ईश्वर अपने ही प्रत्येक उत्तरोत्तर अवस्था में व्यक्त करता है।

5 गांधीजी के साम्राज्य की घोषणा

1913 से 1919 तक एनी बेसेंट का भारतीय राजनीतिक जीवन भी बढ़ती विभूतियों में स्थान था। सितम्बर 1916 में उन्होंने होम रूल लीग (स्वराज्य संघ) की स्थापना की और स्वराज्य के आदेश को लोकप्रिय बनाने के लिए बहुत प्रचार किया। किन्तु 1919 के बाद वे शकैली बन गयीं। बाल गंगाधर तिलक के साथ उनका कुछ विवाद हो गया। जब गांधीजी का समाग्रह आन्दोलन प्रारम्भ हुआ तो वे भारतीय राजनीति की मुख्य पांख से और भी अधिक दूर हो गयीं, और यह बड़े दुःख की बात है कि जिनका किसी समय इतना अधिक आदर-सम्मान था वह कुछ लोगों के हाथों की हथि से देखा जाने लगा।³⁸ बेसेंट और गांधी दोनों ही बड़े धनानु तथा गम्भीर धार्मिक व्यक्ति थे। राष्ट्रवाद के सम्बन्ध में दोनों का ही दृष्टिकोण धार्मिक था, किन्तु उनके दार्शनिक विचारों के व्यावहारिक रूप बहुत भिन्न थे। बेसेंट का आग्रह था कि भारत और ब्रिटेन का सम्बन्ध मनु के विधान का फल है। व्यापारिक देयमण्डल की दृष्टि थी कि भारत का ब्रिटिश साम्राज्य में साथ गठबन्धन हो। वह मर्चन चाहते स्वराज्य का ओजस्वी भाषा का सम्बन्ध बिना, फिर भी भारतीय राष्ट्रवादी उन्हें हृदय से साम्राज्यवादी समझते थे। गांधीजी को जनता के उद्धार की लहर में स्वाति और लोकप्रियता के सर्वोच्च सिद्धांत पर पहुँचा दिया, क्योंकि उनकी कायप्रवाही से जनता

38 एन एच राय अपनी *Translation of India* नामक पुस्तक में लिखते हैं 'परन्तु एनी बेसेंट धर्म के सम्बन्ध में ही न आग्रह करती बल्कि मनु के विधान की जिनसे उनका सम्बन्ध था अग्रहण समझती थी। वे सर्वे ही ब्रिटिश साम्राज्य की समर्थन करती थी। उनके थे राष्ट्र धर्म (धर्म और वैराग्य) का आधार मानती थी। जब राजनीति निर्माण पर मनुष्य के भारत पुनर्गठन की तो साम्राज्यवादी मनुष्य का न सम्बन्ध की बिना वे उन्हें बचन कर दिया।

के विदेशी साम्राज्यवाद के सामूहिकवादी प्रभावों के विरुद्ध अतिविहिृत सत्तावाद की उभाड़ने और नव शक्ति बनने में अभूतपूर्व सहभागिता मिली। विन्तु बेसैंट ने असहयोग आन्दोलन की अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका की और उसकी शक्तिशाली, अराजकतावादी तथा धृष्ट और हिंसा की उभाड़ने का प्रयास किया। उन्होंने गांधीजी का यह कहकर मजबूत कहाया कि वे असह्य, स्वयंसेवक बाने और रहस्य वाली राजनीतिज्ञ हैं और उनमें समाजवाद का अभाव है। उन्हें इस बात में सन्देह था कि गांधीजी अपने हृदय में पद्मावत, उपवास, उपस्या आदि में विश्वास करते थे। बेसैंट ने देश की भाव-पूर्वक चेतावनी दी कि यदि गांधीवादी प्रणाली की व्यवस्था सदा ही देश पुनः अराजकता के तट पर आ गिरेगा।

उन्होंने गांधीजी के असहयोग आन्दोलन के विरुद्ध तीन आरोप लगाये

(1) शिक्षातन्त्र यह चार्तिवारी है। गांधीजी सरकार को मनु, शक्तिहीन तथा धातन के अयोग्य बना देना चाहते हैं। वे सरकार के सदस्यों की हत्या करने की सलाह गरी देते, इससे यह तथ्य झूठा नहीं पड़ जाता कि वे चार्तिवारी का प्रयत्न कर रहे हैं, क्योंकि बाप सरकार की मजबूतता में मारे अपना शक्तिहीन करके, दोनों का परिणाम एक ही है—अर्थात् आप सरकार की उन्नत देते हैं। शास्त्र में गांधीजी न सरकार के स्वागत् कर और कुछ स्वागत् करने का प्रस्ताव नहीं किया, किन्तु जब वे एक कदम आगे बढ़ गये हैं और जनता से कहते हैं कि "यह अपने मायालय में जाय, व्यवस्था बनाय रखने के लिए अपनी पुतिश का निर्माण करते और न्यायिक उन्नत के लिए कर भी देने लगे।"

(2) डॉ बेसैंट का विचार था कि असहयोग आन्दोलन भारतीयता तथा अर्थों के बीच जातीय वैमनस्य उत्पन्न करता है। यद्यपि इस बात में इसका किमा था रहा है, फिर भी इसका उद्देश्य पारस्परिक धृष्ट उभाड़ना है, और उसके हिंसा का पट पटना अनिवार्य है। "असहयोग शास्त्र तथा जनता के बीच धृष्ट उभाड़ना है और जनता को सरकार का, जिसे गांधीजी दुष्ट तथा क्रूर कहते हैं, धृष्ट बनाता है। इसके अतिरिक्त यह जातीय धना की प्रवर्धन करता है। इसकी लोकप्रियता का कारण यह है कि पञ्जाब में जिनके मरे व्यापारियों के कारण अगणित भारतीयों के मन में सरकार के विरुद्ध जातीय क्रोध है। साम्राज्यीय सरकार ने भारत सरकार की आदेश दिया है कि यह दोषी अधिकारियों के विरुद्ध उचित न्यायवादी करे, किन्तु भारत सरकार ने इस विषय में निष्क्रियता का परिचय दिया है, परिणामतः सरकार के मुखमने से जनता अपने को अहंता अनुभव करती है। लोक असहयोग को अपने क्रोध का प्रदर्शन करने का एक मात्र समयक है, इसलिए उत्पुष्टता के साथ उन्नत सम्मिलित हो जाते हैं। जातीय धृष्ट को उभाड़ना, यदि यह सम्भव हो सके, तात्कालिक दृष्टि से सरकार के प्रति धना से भी अधिक अतृप्तक है। हमारे सामने पार पारधारी मुक्त भानी द्वारा एक निःशस्त्र अस्त्र की हत्या का उदाहरण आ ही पड़ा है। जिन की हत्याओं को विर-पत्ता कर दिया गया है उनका कहना है कि हमने जितना सब गांधी बापों से उल्लेखित होकर यह हत्या की है। यह परिणाम ही पहले से ही दिखायी देता था, और यदि असहयोग का एक शिक्षा के रूप में स्वीकार कर लिया जाय तो यह एक हत्या इस प्रकार की अनेक हत्याओं की पुनरावृत्ति सिद्ध होगी। यह कोई बढ़ावा नहीं है कि हत्यारे बुद्धि परिक के व्यक्ति थे, अर्थात् धर्मियों में ही हिंसा करने वाले मिलते हैं, न कि उन्नत आदर्श वाले व्यक्तियों में। गांधीजी का यह कहना सत्य हो सकता है कि जिस सरकार की वे सत्ता करते हैं उसने विद् उनके मन में धृष्ट नहीं है, केवल 'धर्म का अभाव' है, वे सरकार की शक्तिहीन करे और फिर भी वे धृष्ट से मुक्त रहे, किन्तु या अपने अनुयायी हैं जन्मे न ही जननी जसी सहजशीलता है और न अत्यन्तधर्म।

(3) बेसैंट के मतानुसार गांधीजी का असहयोग आन्दोलन समाजविरोधी शक्ति था। उसका उद्देश्य सामाजिक व्यवस्था के ढांचा को बिना बिना करने समाज की नींव को आधार पर्वताना था। "असहयोग समाज की सुनिश्चिता पर प्रहार करता है, समाज का आधार सहयोग है, और निर-सहयोग के द्वारा ही समाज अस्तित्व नाम गढ़ सकता है। असहयोग हमें पीछे से जानकर अन्त जनता की व्यवस्था में पड़ना देता है, मनुष्यों की परस्पर बांधने वाले धृष्टों की धातन गढ़ कर देता

है। उसकी परिस्थिति अनिवार्य दया और एकतावादी में होगी, जिसका एक ही फल ही सत्यता है—
 दयालुता तथा हमारी मानसिक दया में सुधार की हर योजना का स्वभाव।³⁹

“नू इन्डिया” के 10 जनवरी, 1929 के अंक में प्रकाशित अथर्व वेग में डॉ. बेसेंट ने भारतीय राजनीति पर महारानी गांधी के विचारधारा की प्रभाव का रोना रोया और “अन्धहीन तथा अनि-
 नय अंधा के दुःसाहसपूर्ण तथा भ्रष्टाचार आंदोलनों” की बहू मलिनता की।

6 निष्कर्ष

डॉ. बेसेंट अन्तरराष्ट्रीय स्वाति की एक महान विपुलि थी। उनमें ‘यान तथा सत्य के उद्धार के लिए सत्य करने वाले विद्रोही की आत्मा विराजमान थी। जब वे वास्तव और स्वतन्त्र विचारों की थी तब उनकी आत्मा की प्राचीन एमसासों तथा दयन से धार्मिक मिली। उनमें दुर्दमनीय आदरवाद था, जहाँ गंगाजला, मजदूर आंदोलन, विपरीतों तथा वीरमर्त्य आदि इन्डिया मिल आदि के समर्थन में जो नाम लिये उन सत्य बहू आदरवाद व्यक्त हुआ। 1913 से 1919 तक के भारतीय राजनीति में सविन रहीं और भारत तथा ब्रिटेन में स्वराज्य (होम रूल) के आदेश की लोचनिय मनान के लिए महत्त्वपूर्ण प्रारम्भिक काम किया। 1915 के कांग्रेस के उस सम्मेलन में जो उनका योगदान था जिसने वनस्पत्य अतिवादी (उपदेशी) तथा नितवादी (नरमदशी) पुन परस्पर मिल गये। जब, अष्टमशय आंदोलन प्रारम्भ हुआ तो भारतीय राजनीति में उनका प्रभाव पड़न गया। उन्होंने धर्म, दयन तथा भारतीय राजनीति के विषय में बहुत साहित्य की रचना की जिससे उनकी तीव्र बुद्धि और व्यक्तित्व जान का पता लगता है। जिस समय भारत स्वराज्य तथा होम रूल के लिए सत्य कर रहा था, जब राष्ट्रवाद के विश्व समुचित धर्मिता बहू अधिक प्रचलन की और जब अनेक अधिव्यवस्था भारत के राष्ट्र होने के दावे की ही चुनौती दे रहे थे, उस समय राष्ट्रवाद के सम्बंध में धार्मिक और आध्यात्मिक भाग अन्धकार बेसेंट ने भारतीय राजनीति की साहसीय सेवा की। ‘मनी बुद्ध एनी’ भारत आता के मन्दिर की मंडालु पुनारित की। 1905-1908 के वह वह विरोधी आंदोलन के समय उन्होंने भारत के अतिवादीयों की स्वातन्त्र्य की मान का विरोध किया, किन्तु 1913 में उन्होंने भारत के दश का समर्थन किया। भारत के लिए स्व-राज्य के आदेश की लोचनिय यानि के कारण बेसेंट का भारतीय राष्ट्रवाद के इतिहास में सर्वत्र गौरवपूर्ण स्थान रहेगा। उनका प्रायः इरेलन्ड की सिद्धांत—‘नि राष्ट्र एक आध्यात्मिक सत्ता है—भारताय समान के पुरातनपीवी छदम में बहुत ही उपयुक्त था। वे परिचयी राजनीति की मौलिक-वादी और धर्मनिरपेक्ष प्रकृति का विरुद्ध थी।

बेसेंट ने सम्बन्ध, प्रहिष्णुता तथा सामर्थ्य साधन के आदेशों का उपदेश दिया।⁴⁰ उन्होंने धार्मिक तथा साम्प्रदायिक मतवाद का उन्मूलन करने की प्रेरणा दी। उन्हें पुन तथा पश्चिम के निरुधन में विश्वास था। उन्होंने आध्यात्मिक आधुन के आदेश का प्रतिपादन किया। यानन एवता तथा अन्तराष्ट्रवाद की आधुनिक प्रवृत्तियों के उदय में बेसेंट का विश्व नागरिकता के राष्ट्रमन्त्र का आदेश, और आत्मत्याग, समर्थन और अनन्य सेवा का पाठ सिखाते वाला देशमन्त्र और धर्म के एकीकरण का सिद्धांत राजनीतिक विचार की उनकी महत्त्वपूर्ण देन है।

जबसे ‘राजनीति विज्ञान पर आधम’ में उन्होंने साम्प्रदायी आध्यात्मिक सत्ता के प्रत्यक्षवादी सिद्धांत तथा ब्रुटवृत्ती द्वारा प्रतिपादित अन्धधीन्य की धारणा का समर्थन करने का प्रयत्न किया। वे राज्य की स्वशासितता के हासलादी सिद्धांत की बहू आलोचक थी। अपनी प्रत्यक्षवादी साप-ताहा के प्रति ईमानवादी के कारण तथा दमिष्ठ एमिलवास और धीन का अनुसरण करती हुए उन्होंने स्वीकार किया कि राज्य तथा राष्ट्र का अधिकतम ‘सांख्यिक साध्य’ की सिद्धि में ही है। किन्तु ब्रुट-दली की परम्परा के अनुसार उन्होंने राज्य की बहुमानपीय अवस्था⁴¹ की प्रज्ञा दी। इस प्रकार बेसेंट ने आध्यात्मिक प्रत्यक्षवाद, सांख्यिक धर्म के प्रतीकवादी सिद्धांत तथा सामाजिक अन्धधीन्य की धारणा की एक मूल्य का विरोध किया।

39 एनी बेसेंट, *Builder of New India* पृष्ठ 115-16 पर उद्धृत।

40 देखिए विरोधीपीयन सेवापी द्वारा प्रकाशित *The Universal Text book of Religion and Morals*

41 *Lectures on Political Science*, पृष्ठ 51।

अकरण 2

भगवानुदास

1 प्रस्तावना

डा. भगवानुदास (1869-1959) विमोक्षोन्मिष्ट थे। काशी तथा इलाहाबाद विरम विद्यालयों में उन्हें सम्माननाथ हाउसरेट की उपाधिवा प्रधान की भी और भारत के राष्ट्रपति ने उन्हें 'भारत रत्न' की उपाधि से विभूषित किया था। उन्होंने कम, समाजशास्त्र तथा नीतिशास्त्र पर अनेक ग्रन्थों की रचना की है। उन्होंने अपना सम्पूर्ण दीप जीवन बौद्धिक कार्यों में लगा दिया और इस प्रकार अरस्तू के उस भाष्य को परिचाय किया कि अक्षरवाच का प्रयोग बौद्धिक गुणों के विकास के लिए करना चाहिए। वे हिन्दू पंचमार्गों के सूक्ष्म निरूपणकर्ता थे,⁴² और अनुसूति की परम्परा तथा मार्गों में उनकी गहरी जड़ें थी। वे बेसिंट तथा विवेकानन्द की भाँति निर्मोक्ष पुनरुत्थानवादी थे और उन्होंने हृदय से इस बात का समर्थन किया कि भावी भारत की प्राचीन भारत की आत्मा का तार सुरक्षित रखना चाहिए।

1922 में भगवानुदास ने भारत के लिए 'आध्यात्मिक राजनीतिक स्वराज' की योजना प्रकाश की। उन्होंने अनुशोध किया कि पुनरावृत्ति का अवधारण नहीं होना चाहिए और न विचारका को स्वयं निराकरण के लिए छोड़ा होना चाहिए। निराकरण का काम है कि देशवासियों को सत्य निकालें। निराकरण के लिए छोड़े हुए मार्गों की आयु पालीस वर्ष से अधिक हो और उन्हें पुनरुत्थान जीवन का अनुभव हो। उन्हें बेतक न दिया जाय। उत्तरदायी शासन तथा स्वशासन का तार यह है कि कामपालिका विचारिका के प्रति उत्तरदायी हो।⁴³ 1923 में भगवानुदास और बितरजनदास ने 'स्वराज की योजना' की कल्पना प्रकाश की। उन्होंने कहा था कि भारत के लिए एक सर्वोच्च विचारिका अथवा अखिल भारतीय पंचायत हो। गांधी, गुरु, जिनो और मार्गों की पंचायतें मध्य और निम्न स्तरों पर अखिल भारतीय पंचायत का ही प्रतिकृति हो और उनके अधिकारियों के रूप में काम करें।

2 भगवानुदास के विचारों का तार्किक संश्लेष आधार

भगवानुदास राम परमात्मक विरपेक्ष एकत्ववाद के सिद्धांत की मानने वाले थे। वे परम सत्य के विषय में आध्यात्मिक दृष्टिकोण की स्वीकार करते थे⁴⁴ और उनका परमात्मा अथवा आध्यात्मिक, स्वस्वाधी, पूरा परमात्मा थे विश्वास था। भगवानुदास ने परमात्मा को 'सहम् एतत् न' कहा है। वे लिखते हैं 'यह कहने की अपेक्षा कि 'सहम् अथवा है (जैसा कि हेनल ने कहा है) यह कहना अधिक सरलता से समझ में आने वाला है कि 'सह अथवा नहीं है अथवा नहीं है अथवा कोई विधिष्ट वस्तु नहीं है,' इससे भी अच्छा यह है कि 'सहम् सहम्-ना-अथवा नहीं है,' इससे भी अच्छा यह है कि 'मैं मैं-ना अथवा नहीं है,' इससे भी अच्छा 'मैं मैं ना-अथवा नहीं है'। और अंत में सबसे अच्छा यह है कि 'मैं यह नहीं हूँ। अथवा सत्य के रूप में मैं (हूँ) यह-नहीं' (सहम् + एतत् + न)। फिर किसी बात-संकेत अथवा और लड़ते ईश्वर की सृष्टि नहीं है। और न फिर ईश्वरत्व का स्थापन ही है। इस प्रकार वास्तविकवादी है, निरुत्तर की नीति से फिर वो मार्ग नहीं चलते। निरुत्तरों द्वारा आइसिया अनपेक्षित और 'द सीरीट डीसिप्ल' नामक पन्था में प्रतिपादित विमोक्षोन्मिष्ट के दृष्टान्तशास्त्र का वा दास पर प्रभाव था, इसलिए उनका विश्वास था कि ईश्वर की सत्ता में फिर भी सम्मिलित है। फिर भी भारतीय दृष्टान्त की भाषा में उन्होंने कहा है कि 'सहम् प्रकृति' 'सहम्पराता' से सम्मिलित है।⁴⁵ उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि फिर में एक सामाजिक प्रभाव है, यह पारम्परिक 'परमात्मा का पदार्थ में अथ

42 भगवानुदास *Hindu Religion and Ethics and Sanatan Vaidik Dharma*

43 राम आनंद का अनुसूत दृष्टिकोण के पुनरुत्थान करने में हिन्दू दार्शनिक *The Brahmajala Sutra*, भाग 3, पृष्ठ 71।

44 भगवानुदास, *Contemporary Indian Philosophy* में 'Atma Vidyā or the Science of the Self' अध्याय में।

45 तार्किक संश्लेषण के लिए भगवानुदास कभी-कभी कुछ प्रकृति तथा सत्य वस्तु का प्रयोग करते हैं और आत्मा, परमात्मा तथा सत्य इन तीनों को भी वस्तु का प्रयोग करते हैं।

रोह और उसमें से आरोह⁴⁶ के सिद्धांत पर आधारित है। इसलिए जो कुछ प्रतिष्ठ होता है उसमें ईश्वरीय भावना की विचारविधि हो चुका जाती है। यह भावना अपने की विचार और प्रत्याभूतन की सातवद्ध प्रक्रिया में व्यक्त होती है। दास लिखते हैं “अच्छ म सब परस्परता एवं स्व-स्थापना के अनन्त धारणत क्षमासमूह क्षमीय स्वयच्छ प्रवाह की गति और स्फूर्दन विद्यमान है। उसकी ये स्व परस्परता तथा स्व स्थापना दोनों ही हैं के अभाव की एक अपरहित, समयासीत, प्रसारासीत, धारणा सीत एकरूप चेतना में आच्छ है।”

भगवानदास सवेणसमय साधुवन और गानसिध एकीकरण के समर्थन के। उनके अनुसार बामुक्तता, लोभ और मोहजनित संगम ‘त्रैम सवेण’ की विवृति हैं, और घना, बहुवार तथा ईर्ष्या ‘पपा-सवेण’ के विवृत रूप हैं। इन छद्म साधनिक विवृतिषा की सामाजिक अविम्वक्ति इन्द्रिय-परामयता, धनकरावयता आलसवाद, लैनिजवाद और साआत्म्यवाद के रूप में होती है। दास न बतलावा कि इन सब रोगों की एवमाय विचरता यह है कि यन्मुख अपने में समुचित उदार सवेणों का विचार करे। इस चिन्तिता में उनकी आस्था इसलिए थी कि वे प्राचीन भारत की योग प्रथाओं में निर्धारित मनोवेज्ञानिक तथा नैतिक अनुशासन का स्वीकार करते थे, और दोनों सवेणसमय एकीकरण का विचार है। उनका कहना था कि सामाजिक तथा राजनीतिक समस्याओं के सम्बन्ध में मनोवेज्ञानिक चक्षुषि का प्रयत्न करने वाले मनु थे। उनका यह भी मत था कि समाजशास्त्र तथा राजनीति की छात्रिक मनोविज्ञान पर आधारित होना चाहिए।

3 भगवानदास के समाजशास्त्रीय तथा राजनीतिक विचार

भगवानदास महाभारत में भीष्म⁴⁷ द्वारा प्रतिपादित राजधर्म की शिक्षाओं की पुनर्जीवित करने में विश्वास करते थे। उद्धृष्ट वचनसंख्या में प्रवक्तृता के सामाजिक सतन के सिद्धांत की श्रेष्ठता में भी गहरी आस्था थी। उनका कहना था कि व्यवस्थाओं अवश्यी व्यवसायिक समाजवाद है। वे इस प्राचीन समाजवाद की आधुनिक युरोप के जातिक तथा कृत्रिम समाजवाद के श्रेष्ठ मानते थे। उनके विचार में युरोपीय समाजवाद धनीपावन की क्षमता की उत्पत्ति करता और कृत्रिम समतावाद का समर्थन करता है।⁴⁸ इसके विपरीत प्राचीन व्यवस्था सर्वाथ स्वायत्तवाद और पराधवाद का समर्थन करती है।⁴⁹ भगवानदास ने हिंदू धर्मसतन पर आधारित जिस प्राचीन समाजवाद का प्रतिपादन किया उसका मुख्य सिद्धांत है कि इतिहास की मौखिक धारणा के स्थान पर ‘आध्यात्मिक मौखिकवादी निरचन’ की प्रतिष्ठित विद्या जाय। वे चाहते थे कि व्यवसाय और वसस्तुजन के सामाजिक सिद्धांत हमारे मागदम्य होने चाहिए। उनका आदेश था “व्यापारिक दम से समर्थित स्वाभाविक व्यावसायिक वर्गों का समाज”। ऐसे सामाजिक समुदाय में स्वतंत्रता का अर्थ होता बलव्य का पावन, न कि अधिपारी का उपभोग। वे इस वक्तव्य में कि दम का विनाशक पुरस्कार और अम की क्षेप यस्तुओं का विवरण ‘सामंकिता’ के आधार पर होना चाहिए। इसके विपरीत, आधुनिक साम्यवाद में जातिक साथ की प्रमुखता रहती है। एक अवश्यी सामाजिक दमन व्यक्ति की विविष्टता और सामाजिक एकता दोनों का एक साथ परिपथन का समर्थन करेगा।⁵⁰ भारतीय परम्परा के ‘प्राचीन बाल परीक्षित वैधानिक समाजवाद’ में सम्पत्ति तथा परिवार के निराकरण की कभी अनुमति नहीं थी, उसका निर्यात इन दोनों के शुद्धीकरण में था।⁵¹ भगवानदास का मत था कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, इन चार व्यावसायिक वर्गों की श्रेष्ठियों में संगठित निदा अम, और

46 भगवानदास *Krishna*, पृष्ठ 10।

47 यही पृष्ठ 268।

48 भगवानदास *The Science of Social Organization Ancient vs Modern Scientific Socialism*, बलम 1934।

49 भगवानदास *Social Reconstruction with Special Reference to Indian Problems*, पृष्ठ 58।

50 भगवानदास *World Order and World Religions* पृष्ठ 32। कहान बुद्धिवादी मानववादी व्यक्ति बाल समाजवाद का समर्थन किया है और बल है कि यही व्यवस्था ही आधुनिक योरोप तथा समर्थन राजनीतिक विचारधारणा का उपचार है।

51 भगवानदास *Ancient vs Modern Scientific Socialism*, पृष्ठ 12।

उन व्यक्तियों के अध्यक्ष भारी धर्मों से से ज्ञान और अनुभव के आधार पर निर्वाचित किए गए।⁵² सामाजिक विकास की कल्पना निर्धारित करते हुए वे लिखते हैं "सुदूर अतीत में अत्यन्त अंधकारिणी के प्रदूषित मानव सांस्कृतिक जीवन तथा आदिम साम्यवाद के विकास की प्रक्रिया आरम्भ हुई, उसके उपरान्त वर्तमान के अत्यधिक प्रतिरोधितामूलक, कृषककारी तथा स्वाम्यवादी व्यक्तिवाद का दौर आया। अब इसमें से निकलकर पीछे की ओर मुड़ना और उत्तमतर स्तर पर विचारपूर्ण चेतनामूलक, वैज्ञानिक आधार पर निर्वाचित सहयोगी समाजवाद की स्थापना करना है। आज पश्चिम में विश्व अर्थव्यवस्थात्मक, सभ्यतामूलक और राजनीतिक, इसलिए अनिवार्य अतिरिक्त साम्यवाद का परीक्षण किया जा रहा है, वह समस्या का हल नहीं है, बल्कि समाजवाद स्वाम्यवादी हो, मनोवैज्ञानिक नियमों और धर्मों पर आधारित हो, व्यक्तियों की स्वाभाविक प्रवृत्तियों और व्यवसायों के आधार पर सभ्य वैयक्तिक सामाजिक संगठन का समाजवाद हो जिसमें जीवन निर्वाह के साधनों तथा जीवन के दुर स्थारी का 'पावसगत वितरण हो। यही मानव प्रगति का वांछनीय मार्ग प्रतीत होता है।" अर्थात् मनवानुवाद व्यवस्थास्था की प्राचीन समाजवाद के नाम से पुनर्जीवित करना चाहते थे, किन्तु उन्हें यह निष्कर्ष निम्नलाना अनुचित होगा कि उन्होंने आधुनिक जाति व्यवस्था के अन्तर्गत किये गये अन्वेषों का कभी समर्थन किया। उनका अनुरोध था कि जाति-व्यवस्था की जटिलता को बहुत कुछ छिपित किया जाना चाहिए।⁵³ किन्तु वे व्यक्तिहीनता के स्थान पर व्यावसायिक धर्मों के सम्मेलन के।

डा. मनवानुवाद ने सभी धर्मों की सार्वत्रिक एकता का समर्थन किया, क्योंकि उनका विश्वास था कि सर्वत्र सभी धर्म एक हैं। इस प्रकार वे विश्व धर्म—विषीसौथी तथा अन्तर्राष्ट्रीय सस्कृति—के आदेश के अनुयायी थे।⁵⁴ उनके विचार थे कुछ गहराई में गये हुए राधा की बाह्य अभिव्यक्ति है इसलिए उनके उद्धार के लिए एक वैश्विक दिवस की आवश्यकता है, और यही नियर तथा साम अन्तर्मुख विश्व-व्यवस्था का आधार बन सकता है।⁵⁵ मनवानुवाद एक अन्तर्राष्ट्रीय सस्कृति के समर्थन थे। उनका कहना था कि अन्तर्राष्ट्रीय सस्कृति में सब धर्मों और सस्कृतियों के सामान्य और आधारभूत तत्वों का समावेश होना चाहिए।⁵⁶ अरबिद की भाँति उन्होंने भी वैज्ञानिक तथा विज्ञान के समर्थन की वरपना की थी। उनकी दृष्टि थी कि पूर तथा परिचय का मिलन ही। इसलिए उन्होंने सभी के स्थान पर शांति का प्रतीक किया।⁵⁷ वे स्वामीय धर्मों और साम्प्रदायिक मत धर्मों से गहरता के साथ चिन्ते रहने के भी विरुद्ध थे। राष्ट्र रूप (जो अब मैराथ) राजनीतिक तथा आर्थिक स्तरों पर मानव मधुरता की साक्षात्कार करने का एक प्रयत्न था। मनवानुवाद ने अपने हृदय से इस बात का समर्थन किया कि इस भौतिक राष्ट्रवाद के एक अपरिहार्य दूरक के रूप में एक सब धर्मों के आध्यात्मिक रूप⁵⁸ का भी संकलन किया जाना चाहिए।

सम्प्रदाय के सम्प्रदाय में भी अत्यन्त स्वाइन्डर, भाषी तथा अरबिद की भाँति मनवानुवाद का भी इतिहास वैज्ञानिकवादी था।⁵⁹ वे वैज्ञानिक मान्यताओं की पुनर्जीवित करने के पक्ष में थे। वे लिखते हैं "सम्प्रदाय अपने नाम की सभी साधक कर सकती है जब उसमें सहभावना, सत्त्व प्रेमपूर्ण सत्य प्रहानुसृति, मानवसम, मित्राचार, सहृदय, सहनशीलता और बल्य की उत्कृष्ट भावना व्याप्त हो, जबकि इन धर्मों का इतिव्यवस्थापन, अज्ञान, तथा लोभ, ईर्ष्या तथा स्वाभिमूलक रूप पर आधारित हो। हृदय के पूर्णतः शुद्ध ही उस सभी समाजवाद के सन्तुष्ट की स्थापना कर सकते

52 *Contemporary Indian Philosophy* में मनवानुवाद का उद्धरण पृष्ठ 222।

53 मनवानुवाद, *Social Reconstruction* पृष्ठ 78। मनवानुवाद का विचार था कि भारत का राष्ट्रवाद पूर्णतः स्वकीय हुआ है कि समाज व्यवस्था स्वाभाविक 'मानवतात्मक प्रवृत्तियों पर आधारित न रहकर मनवानुवाद की भाँति हो गयी है। इसलिए उनकी *World Order and World Religion*, पृष्ठ 199।

54 मनवानुवाद *The Essential Unity of All Religions*

55 मनवानुवाद, "World War and Its Only Cure, *World Order and World Religion*

56 मनवानुवाद के अनुसार मानवसमता अन्तर्राष्ट्रीय अन्तरिमतावाद का एक रूप है।

57 मनवानुवाद *The Science of Peace*, पृष्ठ 1943 (जोब उत्तरध)।

58 मनवानुवाद, "Spiritual Purity the Basis of Material Prosperity" *Dayanand Commemorative Volume* (नवंबर 1933) पृष्ठ 73-103।

59 मनवानुवाद *Krishna* पृष्ठ 21।

हैं जिसकी मनुष्य सुख दुःख से वामना करता थावा है। ऐसा समाजवाद एक और कृत्रिम तथा बर्तानु मोने गये साम्यवाद से भिन्न होगा। दूसरी ओर वह उस उत्पीडनकारी व्यक्तिवाद के दुर्गुणा से मुक्त होगा जिसकी व्यक्तिगत हृदयहीन बुद्धीवाद और 'कुर' धैनिकवाद के रूप में होती है और जिसके अन्तर्गत बहुसंख्यक मनुष्य इसलिए कष्ट मोष रहे हैं कि समाज उपर्युक्त अवगुणों से व्याप्त हो गया है। समाजम मनुष्य का हृदय बरास्ता, कष्टानुभूति के धार्मिक संवेग से मोतप्रोत होना चाहिए। सच्चा समाजवाद प्राथिमात्र की एगता की भावना पर ही आधारित किया जा सकता है, जिसका अर्थ है परमात्मा का साक्षात्कार करना।⁶⁰

भगवान्दास व्यक्ति की प्राथमिकता देते हैं, और इसे वे भारतीय परम्परा के अनुकूल मानते हैं।⁶¹ उन्होंने लिखा है "भारत का प्राचीन परम्परागत उत्तर है कि राज्य मनुष्य के लिए है, सरकार की स्थापना जनता अर्थात् समाज द्वारा की जाती है, सरकार का मौलिक काम बानून तथा व्यवस्था कायम रखना है, और राज्यजनित कल्याण का परिष्करण करना उसका सेवा नाम है, और उसका मौलिक कार्य सेवा काम के अयोग होता है।"⁶² राज्य के दो मुख्य काम हैं (1) दुष्ट निवृद्ध, और (2) सिष्ट-समृद्ध। जनियों की सेवी दुष्ट निवृद्ध का मौलिक काम करेगी। शाहमो, क्या और पूरा की अधिक सेनिवां राज्य के सेवा काम का सम्पादन करेगी। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि भगवान्दास की पुनर्रचनाकारी योजना में व्यक्ति को अपना व्यवसाय चुनने का बहुत कम अवसर मिल सकेगा। प्राचीन भारतीय चिन्तन के अनुसार व्यक्ति की साधनिक विचारी के विषय में स्वतन्त्रता थी, किन्तु सामाजिक व्यवस्था के प्रवर्तक आधिपत्य के कारण उसे सामाजिक तथा राजनीतिक मामला में स्वतन्त्रता का प्रयोग करने की बहुत कम सुविधा थी। किन्तु यदि व्यक्ति की प्राथमिकता मिलती है तो वह सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक तरी पर भी मिलनी चाहिए। इस विषय में भगवान्दास के प्राचीन साम्यवाद के पास देने की कुछ भी नहीं है।

भगवान्दास पर धृषी पर ईश्वर के राज्य की अमर्त्यीमी (सत अमरताइन) की धारणा का गम्भीर प्रभाव था। उन्होंने लिखा है "धर्मशास्त्र में धृषी पर ईश्वर के राज्य की बर्णा है। स्पष्ट है कि वह राज्य स्वराज्य ही है जिसमें उच्चतर आत्मा⁶³ शासन करती और कानून बनाती है। उच्चतर आत्मा वह जीवी के निवास करती है जो अर्थ प्राप्तिवा के साथ एकसम्य का अनुभव करते हैं और इसलिए जो स्वामी, बुद्धिमान, परीनकारी तथा अनुभवशी हैं।"⁶⁴ इसी तरह तथ्य में मनुष्य की सभी समस्याओं की मूली निहित है। यदि उच्चतर आत्मा परिवार के विषय में सोचने लगे तो दुर्हस जीवन सुधी होगा। यदि वह आर्थिक क्षेत्र पर शासन करते लगे तो आवश्यकता और आराम की वस्तुओं का वितरण ब्यावहारीक होया, नवीनि धन का समस्त स्वाधपूर्ण उद्देश्य की सिद्धि के लिए नहीं बल्कि अपने को 'वास्तवारी (दुसरी) समझने वाले स्वामिना ने वाध्यम से साधननिक व्यवसाय में लिए किया जायगा। यदि वह राजनीति का निवमन करने लगे तो कोई भी व्यक्ति

60 भगवान्दास, *The Essential Unity of All Religions*, पृष्ठ 550।

61 भगवान्दास, *Ancient or Modern Socialism*, पृष्ठ 59। धर्म का कथन है कि साम्यवादी विरोधन का सबसे बड़ा योग देह है कि उनके व्यवस्तिक जीवन को व्यवस्तिक ढव के विरोधित करने का प्रयास नहीं किया जाता।

62 भगवान्दास, "Indian Culture," *Indian Congress for Cultural Freedom* (कानू, ८ अगस्त १९५१) पृष्ठ 113-19।

63 भगवान्दास ने अनुसार एक सर्वत्र उच्च आत्मा के द्वारा समाज का शासन हो सकता है। इसका अभिप्राय हुआ "सर्वोत्तम, सर्वोच्च बुद्धिमान और सर्वोच्च परीनकारी व्यक्ति।" का शासन। भगवान्दास तथा विनरजन-दास द्वारा रचित *Outline Scheme of Society* में समाजशास्त्र का विषय हुआ परिनिष्ट परीनर सम्पन्न (की वस्तु धैनिक मन्गी, शासन 1930) पृष्ठ 30।

64 यन्त्रुलेयु च जीवामन् ।
मन्त्रुलेयु च जीवामन् ॥
मन्त्रुलेयु च जीवामन् ॥
मन्त्रुलेयु च जीवामन् ॥
मन्त्रुलेयु च जीवामन् ॥

(का आत्मा की सब क्रियाओं में और सब प्राप्ति की आत्मा का देवता है जो सभी मन्त्राव के देवता और जिसका जीवन एक है, वह वास्तविक स्वराज्य की राज्य होता है।)

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

1 प्रस्तावना

कवि, साहित्यिक, शिक्षाशास्त्री, देशभक्त,¹ मानवतावादी तथा आंतरराष्ट्रवादी रवीन्द्रनाथ ठाकुर (1861-1941) भारत की आत्मा के अधिपति थे। एक अव में प्राचीन भारतीय प्रजा के सारतत्त्व के रूप में वे कालिदास, चण्डीदास और तुलसीदास की परम्परा में थे। उनकी भारी तथा तेजसी, दोनों में ही अनेकृत मोहिनी शक्ति थी, और उनकी साहित्यिक प्रतिभा अभिभूत करने वाली थी। अनेक दशकों तक बंगाल में उनकी व्यापक रूप से प्रशंसा होती रही। उन्होंने बंग भाषा की 'ईश्वरीय अनुकम्पा का अवतार' मानकर अभिमानित किया। पश्चिम में उनका भारत के सांस्कृतिक दूत तथा उनके उच्च आदर्शवादी रहस्यवाद के माने हुए वाच्यारम्य व्याख्याता के रूप में अभिमानित किया गया। यदि विदेशातन्त्र अमेरिका के लिए भारत के साहित्यिक साक्ष्यवाहक थे, तो इंदौर बाहरी जगत में उनकी सन्देश की पहुँचाने के लिए संवेगारम्य तथा काव्यारम्य साधन सिद्ध हुए। उनकी रचनाश्रा ने न केवल बंगाल और भारत के साहित्य को, अपितु विश्वसाहित्य की समृद्ध बनाया है। उनकी दोन्नी की परिमार्जित सरलता, वाच्यत्वमान बल्यता तथा वस्तुओं की परछाये की अन्त प्रजा स्पष्ट समता ने उन्हें प्रायः अद्वितीय साहित्यिक स्थान प्रदान किया है। एक आध्यात्मिक कवि के रूप में वे मानवता के सविश्लेषता में और उनकी साहित्यिक रचनाश्रा में हृदय श्रमियों की ही दूर-गामी दृष्टि देखने की मिलती है। सत्यवादी तथा भौतिकवादी जगत के समक्ष उन्होंने धर्म के प्रामाणिक नैतिक तथा आध्यात्मिक सन्देश की अनामृत करने रण दिया है। उनके काव्यगीतों की मोहिनी आराध्य तथा सान्त्वनीय है। अतः उन्हें विश्वनायक माना जाता है।

रवीन्द्रनाथ भारतीय पुनर्जागरण और स्वतन्त्रता के कवि थे, उन्होंने आधुनिक भारत के आदर्शों, इच्छाओं, आकांक्षाओं तथा मान्यताओं की स्पष्टता प्रदान की। उन्हें भारत के अतीत पर धन था। वे बहुत करते थे कि भारत के गङ्गामण्डल में ही उसी की प्रथम रसित अस्फुटिता हुई थी और इसी देश के बूढ़ा तथा वनों में जीवन के खेळतम आदर्शों का निरूपण किया गया था। विरवात राष्ट्रीय 'जन गण मन' की रचना उन्होंने की थी। उन्होंने वनसर जेल के राजनीतिक बन्दिनों और कोठिया का अभिमान किया था। अभिवादात्ता वाच में लिये गये राजसी अन्धकारों ने उनके प्रमुक्त धर्म को प्रज्वलित कर दिया और परिणामतः उन्होंने 27 मई, 1919 को भारत सरकार द्वारा प्रदत्त 'नाइट' की उपाधि को वापस कर दिया। तत्कालीन वाइसराय लार्ड चमसफोर्ड को उन्होंने जो पत्र लिखा, वह राजनीतिक चिन्तन के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण प्रवेश है।

इंदौर की सांस्कृतिक समन्वय तथा आंतरराष्ट्रीय एकता में विश्वास था, और वे आध्यात्मिक राष्ट्रमति की महत्ता लिया करते थे। किन्तु वे भारतीय राष्ट्रवाद के एक धार्मिक नेता भी बन गये थे। अभिमान के बाद उन्होंने बंगाल के साहित्यिक पुनर्जागरण आन्दोलन को बल दिया। यह साहित्यिक पुनर्जागरण 'राजनीतिक' जगत कुल तथा वेतन की धार्मिक गृहधूमि सिद्ध हुआ।

1 स्वदेशी आन्दोलन में विशा म इंदौर राष्ट्रीय के अध्यक्ष में अभिभूत होते-होते गये।

टीमोर की उपप्रेषित तथा स्फुल्लितमान बधिरा और पछ पछ गिरी हुई जाति के पुनर्बुद्धार का नाति स्थित माध्यम का सभी समाजि जाती रचनाका न भारतीय संस्कृति के बन्धन से छेड़न आन समाधिष्ट थे । जाने पीता तथा स देश न माध्यामिक तथा राजनीतिक बन्धनका न प्रेरणादा । इसलिए पछनि उन्हाई बन्धनका के बन्धनका राजनीतिक बुद्ध न मान गही किया, फिर न न भारतीय स्वतन्त्रता के प्रति न रूप न समन पुने जाते थे ।

रवीन्द्रनाथ आधुनिक एशिया की एक मन्त्री विभूति थे । यदि तथा साहित्यकार क रूप न उन्हाई अन्तरराष्ट्रीय भाषाका प्राप्त करली थी, और कुछ सोच उन्हें बगला साहित्य का सट रहन अभिनिर्दिष्ट करत है । किन्तु न यदि और तेजस से भी कुछ अधिक थे । परिचय न वे भाषा न प्रभुता राष्ट्रीय नेता माने जाते थे । शिवा के लोच में उनके प्रयोगों के आच्छेद होकर यूरोप के सट सट विद्वान उननी विद्वत्कारकी थे आ गये । इस प्रकार उन्हाई आधुनिक भारत के एक महान सांस्कृतिक नेता का महत्व और पद प्राप्त कर दिया ।

2. टीमोर के राजनीतिक चिन्तन का सामाजिक आधार

रवीन्द्रनाथ माधुसूय उपनिषद् के 'सत्यम्, विदम् और अहिंसम्' की धारणा के अनुपायी थे । न एवेन्दरवादी भी थे, किन्तु उनन हिन्दू एवेन्दरवादिका की सी बहुरता नहीं थी । उन्हें अपने निज तथा ब्रह्म समाज के वातावरण के जो एवेन्दरवादी आस्था विरासत न मिली थी वह सर्वेश्वरवादी एवेन्दरवाद के तथा के समीप के अधिक कुछ ही नहीं थी । कुछ लोगों में वे सौन्दर्यात्मक अथवा सम एवेन्दरवादी थे, और उन्हाई परमात्मा की उच्चतम अनेकताका के विद्वान था । वे यह न मानते थे कि 'परमात्मा' श्रेष्ठ की श्रुति है । अपनी परवर्ती रचनाओं में उन्हाई परमात्मा को परम पुरुष माना , और परम पुरुष की धारणा में उनकी गहरी आस्था ही रही । इस प्रकार उन्हाई आध्यात्मिक सत् की धारणा न गहरा समुपासन नुष्ट तथा दिया । उन्हाई एक धारणा परम आध्यात्मिक सत्ता की सर्वोन्नता को स्वीकार किया, किन्तु उन पर उपनिषद् की दीवी सम्माननता की धारणा और दीप्ति की समुपा परमात्मा की धारणा का भी प्रभाव था । उनका यह भी एक विद्वान था कि ईश्वर का साक्षात्कार सत् ब्रह्ममूलक प्रत्यक्षानुभूति स ही होता है, और यह प्रत्यक्षानुभूति हेतुविद्या की वागपात्मक तार्किक प्रविद्या और प्रत्यक्षानुभव स्वयंका के परे होती है । सभी को ईश्वर न परम सत् की निराकार, वास्तुहित, स्वरहित निरपेक्ष सत्ता माना है । किन्तु अनेक स्थान पर उन्हाई उल्लेख ऐह साकार साधनीय सत् के रूप न भी उल्लेख किया है जिसकी आवश्यकता की था सजती है और जिससे श्रेष्ठ किया था सजता है,² क्योंकि परम सत् मन और स्थिति है न कि केवल विषय अथवा निर्बैयक्तिक द्रव्य । इस प्रकार आर्योप चिन्तन के अन्य सम्प्रदायों की परीक्षा टीमोर के भी होने एक ही साथ सर्वेश्वरवादी सम्माननता और एवेन्दरवाद की स्वीकृति देखने की मिलती है । वे अहिंस और इतिहास की धारणा आत्मा की असीम वृद्धात्मकता की अभिपक्ति और प्रकटीकरण मानते हैं । उनके विचार न परम आध्यात्मिक विद्व, सत्ता तथा उल्लेख निरंतर सृजनतामकता इन दोनों धारणाओं को एक साथ स्वीकार कर गये थे कोई अन्तर्विरोध नहीं है ।

टीमोर कृष्ण पर दीवी श्रेष्ठ के सदैवसाहक थे । 'वीचार्जि' न उन्हाई ईश्वरीय श्रेष्ठ की स्थापना का मान किया है, और अपने बचुद्धों की आम्बित किया है कि वे इस श्रेष्ठ सागर का स्थापना न करें । श्रेष्ठ न ही परिभाषा का विरोधी है और न उसके बाहर है । वह ही सत्ता की उच्चतम अथ सत्ता है । सर्वानुभव ब्रह्म का श्रेष्ठ के द्वारा ही साक्षात्कार किया जा सकता है । धारणा की नाति टीमोर का भी विद्वान है कि पाप, दुष्कर्म और अविद्या इसलिए होते हैं कि हम ईश्वरीय श्रेष्ठ के रहस्य की पहचानने में सफल नहीं हैं । वैयक्तिक आत्मा तथा विश्वात्मा के बीच विरोध की धारणा

2 रवीन्द्रनाथ ने सभी सभी ईश्वर का समुपा विषय का समुपाकार माना है, किन्तु साथ ही साथ उन्हाई अधिक दुष्कर्म के रूप न माना की सत्ता के भी विचारता है ।

3 सभी *The Religion of Man* नामक पुस्तक न (p. 24) द्वारा लिखत है कि परमात्मा का सम समुपा के 'मान' है यदि मानक विषय का ईश्वर है । ब्रह्म साक्षात्कार का ब्रह्म है कि ईश्वर सम्मान और उल्लेख का बीच श्रेष्ठ विचारता करते हैं सभी दोनों न बीच कोई बाधा ही न है । यहाँ *Indian Thought and Its Development* पृष्ठ 244 ।

मिथ्या अहम ही वाय और दुष्प्रम का कारण है। यदि हम प्रेम की सर्वोपरिता को स्वी
 ११ ले तो आत्मा की सम्पूर्ण व्याप्ति का समन हो जायगा। इस प्रकार प्रेम भावात्मक स्वतन्त्रता
 वह वे जीवों को अहंकार, ईर्ष्या, क्रोध, काम आदि पापवृत्तियों के विरुद्ध चेतावनी देते हैं,
 वायो तथा सत्य छलकते हुए ईश्वरीय प्रेम की अनुवृत्ति से सर्वोत्तुल्य हो उठते हैं। किन्तु
 १२ से उत्पन्नकार कष्ट, वेदना, पीडा और दुःख का भी ईश्वरीय व्यवस्था में स्थान है। वे 'वायवीय
 कार कर' का विधान हैं और वे मनुष्य की आत्मा को शुद्ध और पवित्र करने के लिए होते हैं।

है। इसविशेषित तथा विविधों की भाँति रवीन्द्रनाथ का भी विश्वास था कि ब्रह्माण्ड की प्रक्रिया
 और सत्य के व्यापक है। विश्व परमात्मा की सीमा है। इस प्रकार ईश्वर ने विश्व तथा जीवन की
 उनके अनेक दशा की अनोखार विधा, क्योंकि ईश्वरीय सीमा से क्या निकलने का कोई नैतिक
 परमात्मा नहीं है। सरसगती हुई पक्षिया वेगवती सरिताएँ, तारकीय राशि और मध्याह्न का भूत-

१३ ताप—ये सब ईश्वर की विद्यमानता को प्रकट करते हैं। भौतिक शक्तियों के निर्धारित
 ईश्वी सत्त्वमय में ईश्वरीय शक्ति सर्वाधिक हो रही है। तथापि, यह कहना कल के अधिक निकट होगा
 स्वीकृति तथा उपासकियों के प्राकृतिक नियम की शिवाय विना सम्बन्धन करता है, सृजनारम्भ
 कीचिप ५ सामान्य तथा एका की व्यवस्था करते हैं। ईश्वर के अनुसार विश्व में बुद्धि की उतनी
 सने वास्तव नहीं है। जिसकी कि सृजनारम्भ सकल की, और सम्पूर्ण जगत ईश्वरीय शक्ति की
 जगत के ५ अक्षरों में दिखायी देता है। विश्व का वास्तव तथा निरंतर वृद्धिमान विविधता ईश्वर
 कि शक्ति का सृजनारम्भ का प्रमाण है। जल सृष्टि परमात्मा के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति है।
 आत्मा के महासागर, तृप्त तथा शक्ति, जल तथा पृथ्वी सब कुछ ईश्वरीय आनन्द का विस्फोट है।
 अभिव्यक्ति-शक्ति की दृष्टि में प्रकृति भौतिक तथा जल शक्तियों का या 'जल' संयोजन तथा एकत्री-
 प्रचुरता है। जल अमृत शक्तियों का अव्ययन करन आत्म विज्ञान केवल विश्व के सृजन
 की अति उदात्त नहीं कर सकता। विश्व एक आत्मा और शास्त्र स्वराज्य की अभिव्यक्ति
 आभी सफ इसमें प्रभु का निवास है। इसलिए वेदों की भाँति ईश्वर भी प्रकृति के साथ ही-व्यापक
 इसलिए ज्ञान में भाग हो जाया करते थे। उन्हें बुद्धि की वायु मग्नता में भागी की अनुवृत्ति होती
 करण का वे बना, सरिताया, बहानी तथा पौधों के समुद्र रस से उत्पन्न हो उठते थे। उन्होंने
 रहस्य कलाओं के प्राकृतिक तथा ऐतिहासिक वस्तुओं का निरन्तर अथवा निर्धन नहीं किया बल्कि उन्हें
 है, क्योंकि प्राकृतिक तथा आध्यात्मिक अथ प्रदान किया। उनकी रचनाओं के महान् आनन्द का यही
 आनन्द प्रण है। उनका कहना था कि यह विश्वास कि विश्व में आत्मा है, मानव सत्कृति की पुत्र
 की और-वेदों देन है।^१

अपनी 'रवीन्द्रनाथ सावनीय सामान्य के पवित्र' में उनका ईश्वी सामान्य में विश्वास था। इसका
 एक तथा यह है कि यदि मनुष्य का इस बात की अनुवृत्ति हो जाय कि विश्व में एक-एक सामान्य
 मुख्य का है तो अन्तर्निरीक्षी के उत्पन्न कटुता और अन्तर्निर्देशित बल तथा अन्याय का दामन
 की एक है। उनकी कवितायुक्त आत्मा कुसुमा, अन्वेषण तथा पुष्पा के प्रति विद्रोह किया करती
 १४ वे समझते थे कि सावक आनन्दमय सम्बद्धता ही विश्व की गूढ़ प्रकृति है जिसका दान
 अभिप्राय अभिप्रेतों को ही सचता है जो सजनशील परमात्मा के सत्य तथा शोध का साक्षात्कार
 करी गई होते हैं। बलाकार की दृष्टि वैज्ञानिक तथा लक्ष्यवादीयों की शक्ति तथा प्रावधानिक
 हो सकता है सुधारक रूप में बिज हुआ करती है। ईश्वर को सामान्य की लक्ष्य को व 'विश्ववि-
 यो, क्योंकि'। ये सामान्य की व्यक्तित्व का सार मानते थे। उन्होंने सत्य सामान्य का ही उप-
 ऊन्ही कह। उनका विश्वास था कि ईश्वर के अनुमोदित राज्य तथा मनुष्य में ऐतिहासिक जगत म
 करना था

प्रतिक्रिया

नहीं पर ईश्वर ने दिया है कि सजनशील बुद्धि सृजनारम्भ प्राण की सावक मय का विद्रोह और यह
 प्रस्तावना न करती है—*Personality*, पृष्ठ 54।

देख दिया अन्तर्निरीक्षक का सत्य है कि ईश्वर का 'मनुष्य' में आत्मा का विद्रोह शक्ति का विद्रोह न
 १५ है किन्तु उन पर प्राकृतिक प्राकृतिक विधान का प्रमाण है। देखिये *Indian Thought and its
 Ideology* पृष्ठ 248।

4 नहीं

प्रण

5 जल

विश्व

मुख्य उद्देश्य आनन्द की दृष्टि करता है न कि सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति करना। उन्होंने लिखा है "अनन्त में एक प्रकार का बलवन्तोत्साहक आनन्द निहित है, उसी की प्रेरणा से हम बलवन्ता बनते न आनन्द भित्तता है। बहुलाब्ध की पति की लय हमारे मन में सदैव उत्पन्न करती है और वह सदैव सुननात्मक होता है।"¹⁰ इस प्रकार सुननात्मकता अतिरिक्त शक्ति की सीक्षा से सम्बद्ध है। जब तक मनुष्य की शक्तिमाँ पूर्ण की से निर्वाह-तात्पर्यी प्राप्त करने में व्यय होती रहती है तब तक उसे अपनी अतिरिक्त शक्तियों के उन्मुख प्रयोग के लिए स्वच्छन्दता तथा अवकाश नहीं मिल पाता। किन्तु कुछ स्थितियों में "सुननात्मक आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद इसकी शक्ति बच रहती है कि से सुननात्मक सीक्षा का आनन्द के सन्तुष्ट हैं, और नवीनता की सभी क्षमियाँ इस अतिरिक्त शक्ति के ही सम्बन्धित होती हैं। कला में गहरा आनन्द उत्पन्न होता है, यथोचित कलाकार देश और काल के सांस्कृतिक साधन में से आनन्द की वस्तुएँ निर्वाह लेता है, और वह मनन के साधन आनन्द का प्रवर्धन करने मानता है। अतः कला कोटोपाधि की माँति प्रकृति का बचाव पुनरावन नहीं है, यत्कि वह प्रकृति की आदेश रूप देता तथा अनन्त शोधन की वैमर्शिता प्रदान करता है। सुननात्मक मानवीय बलवन्ता जिन वस्तुओं और पदार्थों का विषय करती उनके भीतर वह पहले स्वयं प्रविष्ट हो जाती है। कला मानव सत्त्व की साक्ष्यमिता पर निर्भर होती है, और 'अतिरिक्त' शक्ति पर आधारित सीधे-बिनाशुक्ति की क्षमता इस बात की सीक्षा है कि कलाश्रुतियाँ आत्मा से प्रकृत होती हैं।

3. ईश्वर का आध्यात्मिक मानवतावाद

ईश्वर मानवतावादी के यथोचित थे प्रेम, सहृदय तथा सहयोग के साधनवाहक थे। यदि हमारे शिष्ट साहित्य के पण्डित होने के नाते से सही-विशाल-रक्षा के प्रति उदासीन थे, और उन्होंने एक सम्पूर्ण मानवता की एक अवस्था समग्र मानकर उसी पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। उन्होंने संचालित मानव की एकता तथा साक्षरत्व का संदेश दिया, और विचार, कल्याण, दुःख, अस्वस्थ तथा एकाकीयन के उस पार संचालित तथा प्रेम का दर्शन किया। उनकी विश्वास था कि मनुष्य का महान् उत्पन्न प्रकृति पर रहा है। उनके मानवतावाद का दीपक आध्यात्मिकता की ओर से हुआ था,¹¹ जिसने यह सिखाया कि मनुष्य की मनन के पदार्थों में सम्बन्धों का प्रवर्धन किया जाना चाहिए। परम धर्म—आत्मामी—मानव स्वतंत्र के निवास करता है। सही-विशाल असीम तथा अनन्त की बहुत-सी-व्यक्ति का माध्यम माय है। परोक्षता की मानवतावादी था, किन्तु उनके मानवतावाद की जड़ें शैक्षिकवाद में थी। इसके विपरीत ईश्वर पुनर्जागरण युग के मानवतावादियों की माँति ईश्वर के विश्वास करते थे, इसलिए मानवीय मानव में भी उनकी अस्तित्व थी।¹² स्थितिगत मनुष्य सही-विशाल-कर्मता के प्रतिष्ठित हैं। मनुष्य ईश्वर का अद्भुत प्रतिरूपण माय है।¹³ मनुष्य का शरीर ईश्वर के सुननात्मक पदार्थों की क्षमतावाला है। ईश्वर की आराधना सीधे-बिनाश के माँति तथा विशाल मनन के निरन्तरों के ही नहीं होती, भूमि ओलकर तथा पत्थर ओलकर भी परमात्मा की पूजा की जा सकती है। परमात्मा मनुष्य तथा बाह्य वस्तु अथवा धर्मों के माध्यम से अपनी अनन्त सञ्चलनीयता को व्यक्त करता है।¹⁴ किन्तु मनुष्य की आत्मा बाह्य वस्तु की वस्तुओं की सुनना से अनन्त की पुनरात्मक दृष्टि से सम्बन्धित अतिरिक्त है। इसीलिए ईश्वर मनुष्य की आत्मा को जीना उठाता चाहते थे।¹⁵ शासन तथा संचालित शक्ति के लय केन्द्र ने मनुष्य की आत्मा को बहुत-सी-बल से मुक्त रखा है।¹⁶

10 रवीन्द्रनाथ टागोर *Grassie Unity* (अभिलेख एन. के., काक 1920) पृष्ठ 10।

11 हिन्दुओं की नर और कलात्मक की पुरानी साधना आध्यात्मिक मानवतावाद के विचारों का प्रतिपादन करती है।

12 ईश्वर सम्बन्ध और उत्पन्न की मानव मन के उत्पन्न का उत्पन्न करने के। *The Religion of Man*, पृष्ठ 112।

13 हम विश्वास की नर दृष्टि का न निहित था के सुनना कीनिए।

14 ईश्वर, *Stray Birds*, पृष्ठ 56 "ईश्वर मनुष्य के द्वारा के जाने ही पुनरी की पति के रूप में वापस जाने की क्षमता करता है।

15 कभी-कभी कहा जाता है कि रवीन्द्रनाथ 'मनुष्य-सीधे मानवतावाद' के प्रवर्धक हैं। अपनी *Religion of Man* नामक पुस्तक में से लिखत है "मनुष्य के असीम अतिरिक्त में विशाल सम्बन्धित है।

16 पदवि ईश्वर आध्यात्मिक सञ्चलता और जीवन सञ्चल में विशाल करते थे, फिर भी उन्होंने सामाजिक तथा अधिनि-क्षमता का विचारों पर बल नहीं दिया। अधिनि-क्षमता का विचारों अधि की सञ्चलनीय क्षमता की अत्यन्त साधना श्रुतिवादा।

जब उसे मानव तथा सौन्दर्य की अनुपमि के द्वारा मुक्त करता है। जब हमें ईश्वर के प्रति अस्तित्व और वास्तविकता की यही चेतना होती तभी हम स्वच्छता तथा क्षमता के नामक नमस्ते। सामाजिक अत्याचारों तथा निष्ठा के देते वाली दासता की विचारणा की मसीहा की ओर होती है। ईश्वर मानव आत्मा की स्वच्छता चाहते थे और वह बौद्धिक तथा नैतिक प्रदीपन पर निराला होकर मनुष्य के अन्तःकरण में सतीत तथा अतीत के बीच की तनाव पैदा करता है, वह इस व इस बात पर है कि उसमें पूर्णत्व की प्राप्ति करने की साक्ष्य तदैव विद्यमान रहती है। ईश्वर ने पुनः की शिखर वल दिया कि नष्टिमाहरीय विरोध तथा अत्यन्ततः तरुणता की ओर कर मनुष्यवर्ग भाषा आत्मा की ही आशा माना जाय। मनुष्य जीवन के साथ हमारा व्यवहार सम्बन्धी तथा प्रकृत तथा से मुक्त होना चाहिए, हम उसे एक अन्तिम अवस्था माना न समझें। मानवतावाद ही हमें 'मुक्ति' का सम्प्रदायिक शहीदता के बना सकता है और यही हमें विचार तथा पुनर्जाति के दान सेहरी कोल सकता है। मनुष्य अन्तिम विविधताओं और बहुमुख्य का साकार रूप है, और हम उसकी गहरी का लेते। तब वही नाम सकते जब तक कि हम निरर्थक सिद्धान्तों और मतवादों की दुनिया से मुक्ति न ले केव

ईश्वर का सत्य के सम्बन्ध में भी मानवतावादी दृष्टिकोण था। मनुष्य के विभिन्न प्रिया परमाणु (परम सत्ता) ही सत्य है। वे मनुष्य को सत्यतः परमाणु की शुद्धतावादी है, की वरिष्ठता मानते थे,¹⁷ क्योंकि उनके मतानुसार मनुष्य की अतिरिक्त शक्ति का मूल आगत के दुर्गम और अतिरिक्त शक्ति ही उसके व्यक्तित्व का सार है। अतः मनुष्य का आन्तरिक जीवन सामाजिक का अन्तिम अवस्था भी है। ईश्वर की बहुमुख्य सम्बन्ध की धर्मभाव की धारणा में अतीत ज्ञान मानवतावाद का बीच उपलब्ध हुआ था—पमभाव सिद्धांत के अनुसार बुद्ध का अस्तित्व की मानव तथा कर्माभूत ज्ञान का मुक्त रूप है। मानव इतिहास में प्रथम बार एक मनुष्य ने अथ बहु ज्ञान की साधारण अभिव्यक्ति अनुभव किया था। किन्तु जिस शक्ति ने बुद्ध का निर्माण किया था (स्वाम्य है, मनुष्य ने विद्यमान होती है। ईश्वर लिखते हैं "सत्य, जिसका साक्ष्यमान सत्ता के साथ" कहा या सत्य मानवीय होता चाहिए, अथवा जिसकी हम मोह सब समझते हैं, कभी सत्य नहीं तक की सकता—कब से कम वैज्ञानिक सत्य तो सत्य कहा ही नहीं जा सकता, क्योंकि उसकी अन्तिम वस्तु प्रकिया द्वारा होती है, और तब की प्रकिया विचार का एक साधन है, और चिन्तन एक बार, एक ओर है। सत्य का बहुमानने की प्रकिया में एक अन्तःकरण सत्य दिखा रहता है। इस सत्य की सत्य मान। साक्ष्यमान मानव मन होता है, और दूसरी ओर व्यक्ति की सीमाओं में बना हुआ वही सत्य सिद्धांत दोनों के बीच समझने की प्रकिया निरंतर बना रहती है और वह हमें विज्ञान, ध्यान तथा कर्तव्य की के क्षेत्रों में दिखायी देती है। कुछ भी हो, यदि कहीं कोई ऐसा सत्य है जिसका मानवता है अति सम्बन्ध नहीं है तो हमारे लिए उसका कतई कोई अस्तित्व नहीं हो सकता। मेरा धर्म मानवीय वैदिक मनुष्य अर्थात् साक्ष्यमान मानव आत्मा तथा मेरे अपने व्यक्तिगत जीवन के बीच था है।¹⁸ सम्बन्ध। मेरी द्विष्ट स्वात्मन्यासा का यही विषय है जिसकी मैंने मानव धर्म का नाम दि की अथ अपनी 'जीवन देवता' कोषक विविधता में ईश्वर ने मानवता है कि 'अन्तः' की भी इस बात समझा है कि अतीत मानव प्राणी अपने साथ ज्ञान तथा शहीदता का साक्षर्य करें।

ऊर्ध्वनि बाधा है

"तुम को मेरे जीवन की अन्तःकरण आत्मा ही,

वया तुम अन्तःकरण ही, मेरे जीवन के प्रभु ?

क्योंकि मैंने तुम्हें अपना उस मुक्त-दुःख से भर दिया अन्तिम कर दिया है

और मेरे हृदय के दुःखों के दुःखों को निषेध से मिल गया,

मैंने रगों और बीजों को सब के साथ-साथ से तुम्हारी सेन के लिए बाहर बुने

और अपनी आकाशवाणी के निषेध होने से

तुम्हारे व्यतीतमान शक्ति के लिए लिखने बनाये।

17 ईश्वर *Shrey Birds* पृष्ठ 51 (मनुष्य के जीवन की अन्तिम शक्ति से अन्तिम सत्य बना)

18 ईश्वर *The Religion of Man* पृष्ठ 233-235। बीच मनुष्य के मनुष्य का सिद्धांत

मैं नदी जानता तुमने मुझे अज्ञात छापी कभी नुहा,

मेरे जीवन के प्रभु !

क्या तुमने मेरे दिनों और मेरी रातों को एकाग्र किया,

मेरे कर्मों और स्वप्नों की अपनी कला की रमसिद्धि के लिए,

और अपने सजीव की मात्ता में विरोध मेरे घरों और मकान के बानी को,

और अपने मुकुट के लिए बटोरा मेरे दण्डितन शब्दों के पुष्पा को ?

मैं देता रहा कि तुम्हारे मेरे मेरे हृदय के अंदर बाँधे की छाँव रहे हैं,

मेरे जीवन के प्रभु,

तुमने साबित है कि तुमने मेरी अमरमर्यादा और मुक्ता का छाया बिचा है ।

कभी-कभी प्रकाश दिन में तुम्हारी छेपा नहीं की और अनेक रातों सुन्दर भूना रहा,

मेरे पुष्प निरूपण के जो छाया में सुरक्षा मेरे और का तुम्हें अतिव नहीं बिने मेरे,

प्राप्त मेरी बीना के बड़े तार

निश्चित पद मेरे तुम्हारे स्वयं के तान पर

और प्राप्त स्वयं बीना का छाया की पट्ट दमन

मेरे छाया की सम्पूर्ण आँखों में आपसकित हो कभी ।"

इस कविता में अत्यन्त धार्मिक सृजनरम्यता का ही जीवन देवता कहा गया, उसे अपने को मनुष्य के सचष्ट निरन्तर प्रकट करते रहने के आनन्द आता है । मनुष्य की अपनी अगणित कला-कृतियों के द्वारा वरम पुण्य की प्रदान करने का प्रयत्न करता है । अतः मानवता की आत्मा में अज्ञात की अभिव्यक्ति ही सबसे बड़ा सत्य है । इस प्रकार सत्य के दो पक्ष पूर्णता की प्राप्ति होते हैं—अगणित कलकृतियों के रूप में परमात्मा की आत्मनिष्कलित, और सजीव का उद्वेग परमात्मा के आनन्द और एकाग्र में मिलित हो जाता ।

रवीन्द्रनाथ माधवीय मानव के सार्वभौमिक है ।¹⁹ के एक अज्ञात सत्ता के अस्तित्व की स्वीकार करते हैं और अज्ञात सृजनरम्यता के साथ उसे एक एक मानते हैं ।²⁰ अज्ञात परम पुण्य सब अपने का अस्तित्व के रूप में प्रकट करता है जो बड़ी सखीय प्रतीत होन लयता है । अतः अपनी सृजनरम्यता के द्वारा परम पुण्य की स्वीकार करना ही मनुष्य का धर्म है । इस सृजनरम्यता की स्वयंसील आत्मनिष्कलित कलकृतियों की विद्वत् के सम्पूर्ण जीवन, रमणीयता, सुख-सुख तथा साहित्य का स्रोत है । इस आत्मा की विद्यमानता के आनन्द का रसास्वादन करना ही स्वाध्यायिक आशी की गरिमा तथा परम धर्म है ।²¹ परमात्मा ही सृजन की प्रतिभा का अभिव्यक्ति देवता है और उसे बोध की स्वीकार करने वाली कलकृतियों के साथ सेवा और कला तथा साहित्य की कृतियों में एक मिलता है । किन्तु एतोर का उच्चतम आकाश आदि दलित के दार्शनिक साक्षात्कार का अभिव्यक्तिपूर्ण सिद्धांत नहीं है । उनका आदर्श लोकतान्त्रिक है, जिसका अभिप्राय है कि मजदूर, किसान तथा बुद्धिमान भी परमात्मा की अनुभूति का निरन्तर साक्षात्कार तथा अनुभव करते रहते हैं क्योंकि ईश्वर धर्मशास्त्रियों की नीरस सांकेतिक कल्पनाओं और शास्त्रियों के बीच प्रकट होने की क्षमता नहीं कर सकता । एतोर के मत के विपक्ष हृदय वाले प्राणियों के लिए स्पष्ट प्रकाश है और उनका सृजनरम्यता जगत् विमलतम मोटि के कर्मों के स्वीकार होता है । भूमि जीवन, सत्य बनाना, निरन्तर आदि भी उनमें ही पवित्र काम हैं जिसका कि परमात्मा का चिन्तन । एतोर पर दरवाजों की तक-तक और प्रकाशों के अज्ञात का प्रमाण नहीं प्रकाश का । के महापुरुष के लिए

19 एतोर की मान्यता स्वयं की आत्मा तथा अविनाशिक दार्शनिक अति मानव की धारणा का बीच कुछ अंतर है । एतोर मनुष्यवत्ता मानव पुष्पों की अधिक कहते हैं । यद्यपि वे अज्ञातीय बोध तथा सामाजिक एकाग्र के सदैवसाहचर्य के लिए भी अपने पुष्पों में एक, साधक और भाति का उन्नत मानते हैं । अविनाश का साहचर्य है कि मनुष्य की मानव कृतियों के भी वे नष्टकर सभी पुष्पों का साक्षात्कार करना चाहते हैं । एतोर के मानवतावाद में मनुष्यमान्यता तथा स्वयं छाया पर अधिक बात है ।

20 पुष्प सृजनरम्यता के साक्षात्कार की बार अनेकदाई है—स्वतंत्र की पुण्य, स्वतंत्र के अन्तर उद्वेग समाज के साथ पूरातम समाज के अन्तर उद्वेग सत्य के साथ स्वतंत्र और सत्य के बारे अज्ञात का चिन्तन होता ।

21 एतोरनाथ ईश्वर, *The Religion of Man* में पुष्प 15 पर लिखते हैं कि मनुष्य का बहुजीवनपूर्ण मरी परमात्मा है । किन्तु बहुजीवनपूर्ण मानवता अन्तर है ।

मानवी की संरक्षणदाहृत या उद्बोधनायुक्त प्रदर्शन देकर समीत होने वाले नहीं थे। उनकी दृष्टि में स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए कुछ करने का साहस ही परम पुरुष के प्रति सबसे बड़ी यत्नावलि है।²² अतः उन्हें उदारता तथा विवेक की उस महानता की खोज थी जो जीवन की सरल वस्तुता में जात मानने से उपलब्ध होती है। वे जनव्यक्ति के छोटे छोटे मन्दिर के पवित्र स्थान में मोक्ष की खोज करना चाहते थे, वे एकाकी तथा समाज के बहिष्कृत व्यक्ति के जबरित शरीर के पवित्रीकरण में ही स्वतन्त्र की पूजा करना चाहते थे।²³

मनुष्य के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में टीगोर की धारणा आध्यात्मिक है। जो व्यक्तित्व के सम्बन्ध में सही दृष्टिकोण अपनाता चाहता है वह व्यक्तिगत विषयक भौतिक तथा मनोवैज्ञानिक धारणाओं को स्वीकार नहीं कर सकता। व्यक्तित्व भौतिक तथा मानसिक शक्तियों का पुनः मापन नहीं है, वह उसने भी परे की वस्तु है। वह एकता का आध्यात्मिक सिद्धांत है। वह एकीकृत रूप का अनुभवशील सिद्धांत है जो मनुष्य के विविध अनुभवा को एक व्यवस्था के रूप में बांधता और बांधकर रखता है। उसी प्रकृति मुख्यतः संवेद्यात्मक तथा निष्कारणक है, न कि बोधार्थक। दूसरे शब्दों में, जानना व्यक्तित्व का मुख्य गुण नहीं है, उसके मुख्य गुण हैं संवेद्य तथा निष्कारणकता सकल की शक्ति। टीगोर का व्यक्तित्व सम्बन्धी सिद्धांत व्यक्तिगत मानव प्राणी की बहुत ऊँच उठा देता है।²⁴ उन्हें सामान्य जनता तथा धारणाओं की असूत्रता से प्रयोजन नहीं है। बल्कि इसके विपरीत उनका उद्देश्य परमात्मा की प्रतिबिम्बित्वरूप व्यक्ति की सुखसाधकता का बोधपरिचयक बोध है। व्यक्तिगत मानव प्राणी सारगर्भ सत्ता हैं और वे अपनी ईश्वरी सत्तासाधकता को व्यक्त करना चाहते हैं। उनकी माधुर्यार्थ, अनुभव तथा विचार पवित्र वस्तु है, राजनीतिक सत्ता पवित्रता का दावा नहीं कर सकती। राजनीतिक सत्ता के ईश्वर का सिद्धांत मिथ्या तथा मूलकायुक्त है।

रबीन्द्रनाथ मनुष्य के अन्तःकरण की पवित्रता को स्वीकार करते हैं। वे नैतिक अन्तःप्रज्ञा वाली थे, उनके अनुसार मानव अन्तःकरण नैतिक काय का आरम्भ तथा वसोई प्रस्तुत करता है। मनसाहन तथा परम्पराएँ नैतिक बाधदण्ड का एकमात्र स्रोत नहीं हैं। सम्भवतः अन्तःकरण के कानून की सर्वोच्चता का सिद्धांत रबीन्द्रनाथ ने अपने निज ईश्वरनाथ ठाकुर के उपदेशों तथा रचनाओं से ग्रहण किया था। अपनी कविताओं तथा गद्यरसक रचनाओं में टीगोर ने मानव अन्तःकरण तथा अनुभवों के महत्त्व को पवित्रता प्रदान की है, और उनका कहना है कि हमारे अनुभवों की तत्कालिक तथा निश्चित वास्तविकता अन्तःप्रज्ञा सत्ता की वास्तविकता का प्रमाण है।

चौदह वम की शिक्षाशा, वेदांती प्रत्ययवाद तथा वैष्णव वम के प्रभाव के फलस्वरूप भारतीय परम्पराओं में भारतीय नैतिकता, विद्युत्कीय उपलब्धता तथा स्थान का बहुत गुणवान किया गया था। अन्तःप्रज्ञा तथा सामाजिक वम के विरुद्ध दार्शनिक विरोध की ही वित्तिका का सार माना गया था। किन्तु रबीन्द्रनाथ ने मनुष्य के संवेद्य की दृष्टि करने की और मानव स्वभाव के चौदशी हमक तथा सामाजिक वम का दमन करने की कभी अनुमति नहीं दी। उन्होंने पक्ष गुणों के अंग्रेज बंधों में और वना के आधमों में बंधकर आत्मा के वैभव को छुने से इनकार किया। वे मनुष्य के समर्पित विकास के यदि वे जिसका अनिच्छा है कि मनुष्य के व्यक्तित्व और शक्तियों का सर्वोत्तम प्रयोगशील तथा जोलपूर्ण विकास हो। वे जीवन को उसने सभी रूपों के सम अतीवसर करता चाहते थे—नैतिक आनन्द, धन, भावना, ज्ञान, शोकपूर्ण घटनाएँ तथा विपन्न परिस्थितियों दमार्थ। वे यह विवेकवृत्ति के विरुद्ध थे जिसका सम्बन्ध उन साधुओं और तपस्वीयों के पक्ष में साथ जोड़ा जाता है जो एकाग्र में ईश्वर वना के आनन्द का चिन्तन किया करते हैं। तपस्वीयों में उनका कहना है 'अपने ध्यान की स्थानवर बाहर निकली और अपने पुष्पों तथा सुगंधित वस्तुओं की एक और खोज दो। क्या शक्ति है यदि तुम्हारे वस्त्र खट जायें कपड़ा भीते ही जायें। उससे मिलो और

22 *The Religion of Man*, पृष्ठ 120।

23 उनका यह कहना है कि सत्य राष्ट्रीय आनन्द है कि वास्तविक स्वतन्त्रता का है—'आत्मा के एकाकीत्व से ही उठता मनुष्य के एकाकीत्व का स्वतन्त्रता'। *The Religion of Man* पृष्ठ 186।

24 रबीन्द्रनाथ टीगोर *First Gathering* 'तुम कल्पना के पुष्प के बीच आराम प्राप्त करो नहीं गुनाहो चाहते'।

उनने साथ-साथ सारे हीनर परिधम बरौ तथा कछीना बहाओ ।²⁵ रबीन्द्रनाथ ने अपने पिता के उदात्त जीवन को देखा था जिन्होंने गृहस्थ होठ हुए भी अपने जीवन में दैवी आनन्द की अनन्तता का साक्षात्कार करने का प्रयत्न किया था । वेदातिथी के सन्ध्यासन्ध के विरुद्ध विद्रोह का भण्डा राममोहन राम ने ही खड़ा कर दिया था । रबीन्द्रनाथ पर बहुत समाज ने प्रत्यक्षवाद (पस्तुनिष्ठावाद) का महदा प्रभाव पड़ा था । इसीलिए उन्होंने सिखाया कि सामाजिक कल्याण की प्राथमिकता दी जानी चाहिए । वैवाचिक चिन्तन, प्रतिपुष्प आराधना तथा स्वनास्निक कथ—इन तीनों का समन्वय करना चाहते थे । उनका कहना था कि जो व्यक्ति समाज ने प्रति अपने कर्तव्य तथा दायित्व की अवहेलना करने छुड़ जीवन का पूज्य प्राप्त करना चाहता है वह सामाजिक साहचर्य तथा एका के आदर्शों के साथ विद्रोह-पात्र करता है ।²⁶ स्वाध तथा बहुर मुद्राधारिता विरोधपूर्ण का दोलन है, उन्हें सामान्य जीवन का आदर्श नहीं माना था सनता । ईश्वर जैसे स्वयं मन्दिरों और मिरजाधरों का है जैसे ही दूरे कूटे परा का भी है ।²⁷ इसीलिए उन्होंने सामाजिक पारम्परिक सहयोग को विशेष महत्व दिया, जिसका अन्तिम-प्राप है कि सहानुभूति का प्रसार ही तादिक वस्तु है । मित्र, परिधम, अन्तर्गत तथा कष्ट हुए व्यक्ति के प्रति कथनापूर्ण सहानुभूति मानवतावादी आचारधारा का भावार्थक सक्षण है । अतः मानवतावादी होने के नाते ईश्वर के परोक्षता के कष्ट के प्रति क्षीण भाव कर लेना उचित नहीं समझा और न उन्होंने कभी ऐसा किया ।

4. ईश्वर का इतिहास दान

(क) इतिहासकी सामाजिक व्याख्या—ईश्वर ने इतिहास की सामाजिक व्याख्या स्वीकार की । उनके अनुसार मनुष्य सामाजिक, संवेदनशील तथा वर्णमण्डल प्राणी है, न कि पानिक वस्तु अथवा राजनीतिक प्राणी । कान्त, कुर्याहम तथा मरिम बाव सदाइन की भांति ईश्वर न भी समाज की ही प्राथमिकता दी । उनका कहना था कि राजनीति समाज का केवल एक विरोधीभूत तथा व्यवसायीकृत पक्ष है । भारत का इतिहास आर्य तथा सामाजिक समन्वय की विर प्रथिया की अमि व्यक्ति है । प्राचीन भारत ने राजनीतिक तथा सामाजिक क्षेत्रों को एक दूसरे से वृक्ष रखा गया था । घर तथा आश्रम मनुष्य की शक्तियों के सञ्चन के दो मुख्य केन्द्र थे । तीस राज्य की सन्तक उपेक्षा करते हुए जीवन विस्तार थे । अपने 'व्यवस्थी समाज' के ईश्वर ने लिखा है "हमारे देश में राजा का भी अपेक्षाकृत स्वतन्त्र हुआ करता था, और नागरिक वास्तव का सार अवस्था पर था । राजा प्रायः कुछ और साधेन न सत्तान रहता था । वह अपना समय राज्यकार्य में व्यय करता अथवा निजी आनन्द प्रमोद थे, इस विषय में वह केवल धर्म के प्रति उत्तरदायी ठहराया जा सकता था । विन्तु जनता की दृष्टि में जनता (जनता का अर्थ) सामाजिक कल्याण राजा के कानों पर गिरता नहीं था ।" ईश्वर का केवल राजनीतिक दायित्व के विवकास नहीं था । ईश्वर की प्राचीन भारत के निम्न लिखित आदर्शों की पुनः स्थापना में ही देश के कल्याण की आशा दिखायी देती थी सरल जीवन, सरल तथा कुछ दृष्टि तथा आध्यात्मिक अन्त के आदेश का अनुसरण । उनका कहना था कि भारतीयों को पहले अपना आन्तरिक सुधार कर लेना चाहिए, तभी उनकी भावी व विदेशी प्रवृत्तियों पर कोई प्रभाव पड़ सकता है । जा देश और जनता अथन घर के कुछ किष्टतम प्रकार ने सामाजिक अन्धकार और अज्ञानाचार करते हैं, उनके पास सामान्यवादियों की उद्घण्टा का विरोध करने के लिए वैतनिक वक्त करण नहीं हो सकता ।

ईश्वर ने सामाजिक एका और मुद्रता पर बल दिया । अपने संवेदनशील कवि हृदय की उस पाथविक वल, कुरता तथा पानिक समर्पित दुष्पता की देखकर भारी आनन्द पहुँचता था जो राज्य का एक सामान्य सक्षण बन गये हैं । फिर भी उन्होंने कभी राज्य का पूज्य उन्मूलन करते थे सिद्धांत की स्वीकार नहीं किया । उन्होंने वैतनिक स्टनर और आदर्शक बर्कूनिन के अराजकतावादी

25 रबीन्द्रनाथ ईश्वर, नीतावलि 11 ।

26 रबीन्द्रनाथ ईश्वर *The Gardener*, पृष्ठ 78. "मैं अपना घर-दार छोड़कर घर की चरम कभी" ।

27 स्वाधनाथ के अनुसार 'विश्वव्यापक' का आचार्यार प्रवृत्ति में ही नहीं बल्कि पवित्रार तथा करना है । तीन सक्ष हैं जिसके द्वारा केला का प्रसार तथा परिधम वस्तु है । (क) वना तथा पवित्रार समाज तथा राजनीति, और (ख) धर्म ।

सिद्धांतों का कभी अनुगमन नहीं किया। किंतु उनका सदैव इस बात पर बल था कि व्यक्ति की अपनी शक्तियों तथा क्षमताओं का विकास करना चाहिए। कुछ पाश्चात्य सामाजिक विचारों की भाँति टीनोर का भी विश्वास था कि राज्य का मुख्य काम नागरिकों का निर्धारण करना नहीं है बल्कि जनता को इस योग्य बनाना है कि वह स्वयं अपनी क्षमताओं को दूर करके में समय ही लें।²⁸ टीनोर अपने कल्याण का समुचित पीछे से पालन करें तो उनकी क्षमता तथा अधिकृत की शक्ति पुनः होती है जबकि उसका अवनयन हो जाता है।

(ख) भारतीय इतिहास का दशन—टीनोर ने भारतीय इतिहास के दशन पर भी विचार प्रकट किये हैं। भारतीय सम्प्रदाय का दृष्टिकोण उत्तर तथा विशाल है क्योंकि उसका ध्यान कर्मों में बाधु की स्वच्छन्दता की ओर हुआ था। आधुनिक भारतीय संस्कृति की सम्प्रदायी मान्यता के प्रति विधि के। उनमें जीवन में जीवित प्राणियों तथा वास्तव प्रकृति के बीच बाधुत्व तथा सामंजस्य की अनुभूति व्याप्त रहती थी। भारतीय संस्कृति ने अपने को सामाजिक सम सम के सिद्धांत तथा व्यवस्था में व्यक्त किया। उसने शासकीय उत्तर-व्यवस्था और उत्पन्न पक्ष की अतिशय महत्व नहीं दिया। उसकी प्रकृति सामाजिक है। इसके विपरीत यूनानी सम्प्रदाय का दृष्टिकोण संपूर्ण था, क्योंकि उसका निर्माण दोषों के चिरे हुए तपस्वी के बीच हुआ था। यूनानी सम्प्रदाय ने राजनीतिक शक्ति का अतिशय महत्व दिया तथा है। भारतीय इतिहास तथा संस्कृति का प्रधान लक्षण है अनेक में एक की ओर कर्षित विविधता में एकता का दशन करना।²⁹ टीनोर लिखते हैं—“भारत सम्प्रदाय के समस्त अनेकता में एकता के आदेश का सुलक्षण बनकर खड़ा हुआ है। विश्व में तथा अपने भीतर ‘एक’ की देखना, अनेक के बीच एक की प्रतिष्ठित करना, ज्ञान के द्वारा उसकी ओर करना, कम द्वारा उसकी स्थापना करना, प्रेम में उसका साक्षात्कार करना और जीवन में उसकी पोषणा करना—यह है जिसे भारत सदा ही और कठिनाईओं का सामना करते हुए, अन्धे और घुंरे दिना में रास्ताभिरा से करता आया है। जब हम उसके इतिहास में इस वैदिक तथा शास्त्रत तत्व की दृष्टि निकालें तो हमारे अतीत की हमारे वर्तमान में पुष्कल करने वाली आर्य पद आययी।³⁰ हमें भारत के सम्पूर्ण इतिहास में सम्प्रदाय की प्रक्रिया की ही ओर करनी है। भारतीय आर्य अपने साथ सरल काव्य की मोहिनी लाये। इन्हीं ने अपनी सन्देशारक तथा कल्पनाशील प्रकृति के द्वारा कर्षित तथा रचनात्मक क्षमताओं के विकास में योग दिया। बौद्ध धर्म ने समीर मेंलिक आदेशवाद का दृष्ट ओर दिया। इस प्रकार भारतीय इतिहास में विभिन्न जातियों की विविध विशेषताओं तथा उनके सांस्कृतिक आदर्शों की अवसुक्ति की प्रक्रिया निरंतर होती चली आयी है। जातीय तथा सांस्कृतिक सम्प्रदाय इस देश की बड़ी समस्या रहा है।³¹ सम्प्रदाय की ओर आर्य आध्यात्मिक सत्ता की स्थापना की प्रतीक है—यह अनित्य प्रकार की विविधता के बीच एकता के चिर प्रयत्न का प्रमाण है।

टीनोर ने भारत की आध्यात्मिक विरासत के अनुसृष्ट मुल्य को स्वीकार किया। उन्होंने जीवन में अध्यात्मिकता में निहित निरापेक्षिकता की प्रवृत्तियों का विरोध किया। भारत में सदैव ही राज्य, शिव तथा सामंजस्य आत्मता की ऊँचा रहता था, जब उसका परित्याग कर देना उपहासास्पद होता।³² भारत की भूमि में पश्चिम की निर्भीक मौलिकवादी आर्थिक सम्प्रदाय का प्रतिरोध करता निरपेक्ष है। किंतु टीनोर ने पाश्चात्य तथा भारतीय संस्कृतियों के सम्प्रदाय के आदेश की भी स्वीकार किया। जनता बहता था कि पश्चिम का वैज्ञानिक अनुसंधान और साहस की मान्यता और सामाजिक

28 उदात्त *The Religion of Man*, पृष्ठ 30 का मतलब है कि सीमाओं की स्थापना के द्वारा अपने को सम्पन्न करना है।

29 'The Message of India's History', *The Purnachakra Quarterly*, Vol. XXII, 1956 में प्रकाशित पृष्ठ 113।

30 टीनोर टीनोर *Nationalism*, पृष्ठ 4-5 “किंतु भारत के द्वारा ही सम्प्रदाय केवल आशीर्वाद रही है, इसलिए हमारा इतिहास कल्पना सांस्कृतिक प्राणिकता का इतिहास रहा है, अतिशय कल्पना आत्मन के विरुद्ध लड़ने का इतिहास नहीं रहा।

31 टीनोर टीनोर *The Religion of Man* पृष्ठ 30 इस क्षमता की केवल आध्यात्मिक है, और इसके प्रति निरापेक्षता रहता ही हुआ है। यह हमारे इतिहास में अतिशय सरल तथा पुनः जीवन में एक में एक होने की ओर ले जाता है।

आत्मवाद खेन्ड आदर्श है, और भारतीय उन्हें सीखा सकते हैं। पश्चिम के बुद्धिवाद और उसकी साहित्यिक तथा कलात्मक उपलब्धियों में भी महान् भयम और भी निहित है। किन्तु पश्चिम के उस भयंकर आर्थिक प्रतियोगिता के उन्माद की ज्यों का त्यों समग्र रूप में जमीनकार कर लेने का कोई बुद्धिमत्ता आधार नहीं है, उसने तो पश्चिम की ही सभ्य, शिक्षा तथा अन्तर्गत शक्तिक रीतारियों का जूनी प्रकाशना बना दिया है।³²

टैमोर का कहना था कि सामाजिक तथा आर्थिक समन्वय ही भारत की हीतव्यता है। वे साधनीय आत्मवाद अथवा आकाशमन् ब्रह्मसत्ता का सन्देश लेकर नहीं आये थे। भारतीय सभ्यता में एकीकरण और समाधोमन की या ऐतिहासिक प्रक्रिया विरामन से पत्ती आयी थी उसकी विषय-वस्तु की टैमोर ने सदातिन पराजय पर बहुत ही स्पष्ट दृष्टि से निर्दिष्ट कर दिया। उन्होंने लिखा है

हे शरीर के हृदय, इस पवित्र तीर्थस्थान में आगत हो जा,

इस भारत भूमि में, विशाल मानवता के इस तट पर।

यहाँ मैं भुजार्थे बहारे खड़ा हूँ इसी मानव का अभिनन्दन करने के लिए,

और आनन्ददायी प्रशस्ति द्वारा उसका पुनर्मान करने के लिए।

इन पहाड़ियों में जो गम्भीर ध्यान में मग्न हैं

इन मैदानों में जो अपने बसन्ततल पर सरिताओं की माताएँ धारण किये हैं,

यहाँ तुम्हें उस भूमि का दयन हीमा भी चिर पवित्र है,

इस भारत भूमि में, विशाल मानवता के इस तट पर।

न जाने कहाँ है और जिसके आह्वान पर,

मनुष्यों की वे कोटि कोटि सरिताएँ,

आनुरता से बीजती हुई आयी हैं अपने को इस महासागर में विलीन करने हेतु।

आम, अनाम, शक्ति और भीमी,

मिथियन, हृण, पठान और घुस सब एक शरीर में घुसमिल गये हैं।

यह पवित्रकी जातिवा ने इसके द्वार खोले हैं, और वे सब अपनी-अपनी घँट लेकर आयी हैं

वे दैवी और पार्थिवी, एक करेगी और एक होगी, वे खीटकर नहीं आयेंगी।

इस भारत भूमि में विशाल मानवता के इस तट पर।

आओ आम, अनाम हिंदू, मुसलमान सब आओ

हे पारसियों, हे ईसाइयों आओ, सब के सब आओ।

आओ ब्राह्मणों, सब मनुष्यों की मातृ पकड़कर अपने हृदय की पवित्र करली।

हुम सब आओ जो बलन और चुम्बन करते थे, अश्वत्थान सब धो डालो।

आओ, मा के अभिषेक में सम्मिलित हो आओ, इसके पवित्र कमण्डल को मर दो

जस जल से जो सबके स्पर्श से पवित्र हो चुका है,

इस भारत भूमि में, विशाल मानवता के इस तट पर।

(ग) प्राच्य तथा पारमात्य सभ्यता का दायन—रवीन्द्रनाथ टैमोर ने अनुवाद सभ्यता का सार मानवता का प्रेम है, न कि भीतिव्य शक्ति का भयम। अपने आरम्भिक दिना में वे पश्चिम तथा ईसाइयत में प्रभावित हुए थे।³³ उनका मानस विषाद, उदार तथा व्यापक था। वे एक ऐसी मानवीय मानवतावादी सभ्यता का विकास चाहते थे जिसे भीतिव्य, हिंसाओं मर्दियों और ईसाइयत ने अपने अपने पौरुषदान से समृद्ध किया हो। वे यह भी मानते थे कि पश्चिम व विमान ने धर्म जड़ति के नियमों पर आधिपत्य स्थापित कर लिया है इसलिए उनमें मनुष्य की मुक्त करने की शक्ति

32. टैमोर ने ऐतिहासिक प्रवृत्ति व वैदिक नियम का समन्वय किया। पश्चिमी राष्ट्रीय व वैदिक धर्मों के प्रति जो पक्षेष्ट की अनुक्ति का रही है उस पर उन्हें बल हुआ था। इसलिए प्रथम विश्व युद्ध की वे सन्तानिक युद्ध कहा करते थे।

33. अपने आरम्भिक जीवन में टैमोर ने लिखा था "धर्म का बीज कदा भी पल रहा है, हृण चाहिए कि अपना धर्म का हृण धर्मक उसकी जमीन से खला हो और नाम के धर्म पर अपना आरम्भ कर दें। नाम हमारे सम्बन्ध का भी गह्वर है उस युद्ध करना हमारा कर्तव्य है।"

विद्यमान है। पाश्चात्य मानवता की सृष्टनात्मक प्रवृत्तियों तथा पश्चिम की संस्कृति में विद्यमान रिकटावाद, बुद्धिवाद, मानवतावाद तथा अनुसम्बाध की भी प्रचण्ड भावना देखने को मिलती है उसका टीपोर पर बहुत प्रभाव पड़ा था। इसके विपरीत पश्चिमी मानव की असीम साम्राज्यवादी उन्नता और हिंसात्मक झूलता ने टीपोर की साम्प्रदायिक संवेदनशीलता तथा मानवता की विशेष जागरूकता को घटाया था। अपनी अस्सीवी जन्मश्रांति के अवसर पर एक भाषण में उन्होंने कहा था "एक दिन मैंने अफेंको को यौवन की शक्ति से पूछा, जबरन हमें भी सहायता करने के लिए सदाब जगत एक स्वयं राष्ट्र के रूप में देखा था, किन्तु आज मैं देख रहा हूँ कि वे समय से बढ़ते ही बढ़ रहे हैं और उस सहानुभूति के दुष्प्रभाव से जलजित हैं जिन्होंने प्रचण्ड रूप से उनके राष्ट्र की समृद्धि और फलदायी को लूट लिया है। अब हमारे लिए अपने मन में सम्मत्ता के उल्लंघन की प्रति सम्मान का भाव बनाये रखना सम्भव नहीं है जो शक्ति के अल पर धारण करने में विश्वास करता था जिसे स्वतंत्रता में शक्ति भी आस्था नहीं है। अफेंका ने हमें अपनी सम्मत्ता की सर्वोत्तम उपलब्धि का से पश्चित रखकर और हमारे साथ मानवीय सम्बन्ध स्थापित न करने हमारी प्रवृत्ति के सब मार्गों को प्रभावपूर्ण बन्द कर दिया है।" पश्चिम के साम्राज्यवादियों ने पूर्वी देशों की जनता को दुष्प्रभावित बना दिया था और उनकी बुद्धि को कुण्ठित कर दिया था, इसके अतिरिक्त उनकी नीति में साम्प्रदायिक सामन्तस्यकारी शक्ति का निताण अभाव था। टीपोर ने इस सबके लिए भी पश्चिमी राष्ट्रों की कटु आलोचना की। अंत में, जब उनकी अंतमा तीव्र वेदना से पीड़ित हो उठी तो उन्होंने सहायता के लिए पूछ के उन शक्तियों की ही धारण की जिन्होंने अपना-पार, सब तथा सृष्टि के रक्षण पर स्वतंत्रता, शक्ति, प्रकाश तथा अमरत्व का स्वप्न देखा था। उनकी दृष्टि में भारत पूव के लोगों की प्रेम, सी-वन, सत्य तथा पवित्रता की इस आकाशा का प्रतिबिम्बि था।

टीपोर ने अनुसार पूव के नैतिक तथा साम्प्रदायिक दृष्टान्त में नैतिक का संदेश निहित था। इसके विपरीत पश्चिम के साम्राज्यवादी परजीवी आत्तुओं की शक्ति पश्चिमा तथा मस्किता की शक्तियों का रक्त बूझ रहे थे और इससे विपरीत राष्ट्रों का ही नैतिक अधःपतन हो रहा था। कारण यह यह होगा कि परलोक और साम्प्रदायिकता का संदेशवाहक भारत और ईसाई धर्मों पर निर्भर करने वाला पश्चिम—वे दोनों परस्पर मिले और नैतिक के सम्बन्ध स्थापित कर आने बड़े।³⁴ केवल इसी प्रकार अमर आत्मा की सब सत्ताएँ परस्पर साम्प्रदायिकता के आतिथ्य में आबद्ध हो सकती हैं।³⁵

5 टीपोर के राजनीतिक चिन्तन के साम्प्रदायिकतावादी आधार

टीपोर इस सीमा तक सम्राज्यवादी थे कि वे राज्य की तुलना में समाज की अधिक प्राथमिकता देते थे। इसलिए समाज की निवेद्यात्मक आलोचना के अलावा उन्होंने रचनात्मक सामाजिक प्रयत्नों पर बल दिया। वे समाज को साम्प्रदायिक अवस्था मानते थे। मनुष्य में दो प्रकार की जन्मजात प्रवृत्तियाँ हैं। उसमें अपने सुख और अपने उत्थान की इच्छाएँ होती हैं। उनकी पूर्ति आत्मकेन्द्रित, आधिष्ठान तथा धार्मिक क्रियाकलाप से होती है। किन्तु मनुष्य में सामूहिक कल्याण और सामाजिक उत्थान की इच्छाएँ भी अंतर्निहित होती हैं। शक्ति के परिदृश्य के लिए आवश्यक उत्थान की प्रवृत्ति मुख्य अर्थों में सभी शक्तियों में अंतर्निहित हुआ करती है। इस प्रकार मनुष्य में दो प्रकार की इच्छाएँ पायी जाती हैं। टीपोर लिखते हैं "हमारा एक बृहत्तर शरीर भी है, वह समाज शरीर है। समाज एक अवस्था है, उसके अर्थों के रूप में हमारी अपनी वैयक्तिक इच्छाएँ होती हैं। हम अपना जीवन तथा स्वतंत्रता चाहते हैं। हम दूसरों की अपेक्षा प्राप्ति अधिक करना चाहते हैं और देना कम चाहते हैं। वही छिमा मजरी तथा भयानक भी वह है। किन्तु हमारे अंदर एक अर्थ इच्छा भी है, वह हमारे सामाजिक उत्थान की गहराई में दबिमा रहती है। यह सम्पूर्ण समाज के कल्याण की इच्छा है। वह उत्थानविषय तथा वैयक्तिक शोभाओं की धीरे जाती है और अन्त में वह जा खरी होती है।"³⁶ सामाजिक उत्थान में बुद्धि की जागरूकता अत्यंत होती है और यह आवश्यकता के आधार पर अलग

34 अपनी पुस्तक *Nationalism* में टीपोर ने लिखा है कि नैतिक का अर्थ आत्मा आत्मा की शक्ति का पूव है।

35 एम.एस.एस. *The Religion of Man* पृष्ठ 134-35 'अन्तर्गत जनता की सत्य धर्म ही उनकी सत्ता है।

36 टीपोर *The Problem of Self, Sadhana* पृष्ठ 83।

जीवित जनी रहती है। मनुष्य की नस्ल तथा सो-दमनिक चेतना का मूल समाज न ही होता है। अतः समाज एवं ऐसा उत्पन्न है जो मनुष्य की अपने अहं से ऊपर उठने में सहायता देता है। समाज मनुष्य के लिए स्वाभाविक है और उसकी सामाजिक प्रवृत्तियों की तुष्टि करता है, क्योंकि वह अन्तरर्धमस्तिव सम्बन्धी का एक मुख्य तत्वा-वस्था है। टीवीर लिखते हैं "समाज का अपने से बाहर कोई प्रयोजन नहीं है। वह स्वयं अपने में साम्य है। वह मनुष्य की सामाजिकता की स्वतः और स्वच्छन्द प्रति-रूपित है। यह मानवीय सम्बन्ध का स्वाभाविक निमग्न है, जिससे मनुष्य बारम्बार सहयोग के जीवन के आदर्शों का विचार कर सके। उसका राजनीतिक पक्ष भी है, किन्तु यह केवल एक विशेष प्रयोजन के लिए है। यह आत्म परीक्षण के लिए है। यह वैयक्तिक शक्ति का पक्ष है, मानवीय आदर्शों का नहीं। और प्रारम्भिक वास्तव में उसका समाज में धूमक स्थापना था, तथा वह पेशेवर सेवा का सीमित था।" 37 समाज एवं जीवन अवयवी है और वास्तव में यह अपनी आधारभूत प्रवृत्तियों को विकसित कर लेता है और एवं अथ न ही उसकी 'साम्यता' बन जाती है। अतः समाज ईश्वर की प्रति-रूपित है। 38 उसका उद्देश्य मनुष्य को उसकी ईश्वरी प्रकृति का स्मरण कराना है, साथ ही साथ वह आह्वान करता है कि मनुष्य अपने भौतिक जीवन तथा विस्तृत सहायकता की स्मरण करे। सामाजिक आदान प्रदान के विस्तृत जीवन में मनुष्य अभिभूतकारी एकता के रहस्य का अनुभव करता है। 39 मनुष्य की इस प्रकार के आकाशवाणी का अन्तर और सुविधा मनुष्य के समाज में ही उपलब्ध हो सकती है। वह उसकी सांस्कृतिक तुष्टि है, और उसके द्वारा उसका सामाजिक स्थिति सर्व तथा सीधे में अपने को प्राप्त कर सकता है। यदि समाज न केवल अपनी उपयोगिता को ही व्यक्त किया होता, तो वह एक अन्तरे 'अर्थ' की प्रति-रूपित तथा अर्थ बन जाता। किन्तु, अब तक वह अर्थ नहीं हो जाता जब तक वह अपने सांस्कृतिक व्यवस्था द्वारा सर्व का संदेश देता रहता है, वह सर्व ही उसकी आत्मा है और उस आत्मा का अपना स्थिति होता है। सामाजिक आदान प्रदान के इस विस्तृत जीवन में मनुष्य की एकता के रहस्य की अनुभूति होती है, जहाँ कि सगीत में। उस एकता की अनुभूति से ही मनुष्य की ईश्वर का मान हुआ। इसलिए हर एक मानवीय ईश्वर की प्रार्थना को लेकर प्रारम्भ हुआ। 40

रबीन्द्रनाथ की समाज के सामाजिक सिद्धांत में भी विश्वास था। वे समाज की स्वयं के सामाजिक स्तरों में विभक्त और संगठित करने की प्रक्रिया के विरुद्ध थे, क्योंकि उनके विचार में इस प्रकार का स्तरीकरण सामाजिक अत्याचारों को स्थापित प्रदान करता है। वे अपने समय में प्रचलित सामाजिक नस्लिकता की नकल और अन्यथा की मतेमार्ति समझते थे। पाश्चात्य साम्यता के आकाश के लिए कार्य पुरातन मुख्य अपदम्ब हो रहे थे। ऐसी निराशा तथा उद्विग्नता की कैला में टीवीर ने लिखा कि व्यक्ति समूह, साथ ही समुदाय के जीवन में भागीदार बनकर ही अपने जीवन के प्रयोजन को पूरा कर सकता है। टीवीर ने समाज के प्रति सामाजिक तथा स्थितिवादी दृष्टिकोण का परिष्कार करना पर बल दिया और लिखा कि सामाजिक जाया सर्वत अवयवी है। किन्तु सामाजिक अवयवी एक जीवन समष्टि तभी बन सकता है जब समाज के सदस्य बारम्बार स्वतन्त्रता के सुनो में बसे हों और सब अंगों और बलों के साथ साम्यता का व्यवहार करें। इस प्रकार टीवीर प्रत्येक मनुष्य के स्थितिवादी का सांस्कृतिक परिवेश एवं प्रयोजनपूर्ण सामाजिक पारस्परिकता और समूह तथा साहचर्यपूर्ण जीवन की सामाजिक अन्तरनिष्ठता की तुष्टि में देखना चाहते थे।

टीवीर अपने समय के परजीवी आर्थिक बलों के विरोधी थे। यद्यपि उनका नाम स्वयं एक जमींदार परिवार में हुआ था, किन्तु उस पक्ष की वैयक्तिकता के सम्बन्ध में उनका भ्रम दूर हो गया था और उसमें उनकी आस्था जाती रही थी। जमींदार लोग पाश्चात्य साम्राज्यवाद और पूँजीवाद के हिता के शरणागत थे, जहाँ उन सामरिकता तथा देशमन्त्र के गुण का निराला समाज या उनके कारण किसी समय साम्राज्य का सूर्य और और प्रसिद्धता का बौद्धिक मान्य आता था। उनका उद्देश्य

37 *Manuśāhita*, पृष्ठ 9।

38 टीवीर *The Religion of Man* पृष्ठ 143। किसी कारणवश मनुष्य के अनुभव किया है कि (समाज) की वह व्यक्ति मान्यता समाज के ईश्वरीय है।

39 *Creative Unity*, पृष्ठ 21-22।

धन-सम्पन्न या न कि सामाजिक सेवा तथा 'दाय'। दौंगोर का विश्वास था कि नये समाज के निर्माण के लिए नेतृत्व न तो साहूकारों और उद्योगपतियों के मिल सकेगा और न जमींदारों से, वह तो बुद्धिजीवी मध्यमवर्ग के ही उपलब्ध होगा। अपनी साहित्यिक रचनाओं में उन्होंने ब्रह्मा के जमींदार वर्ग की शिथिलता तथा निर्जीविता का दिव्यरूपन कराया है और बुद्धिजीवी मध्यमवर्ग में विश्वास प्रकट किया है।

आरम्भ में जाति-व्यवस्था व्यवस्थापित सामाजिक संरचना के सिद्धांत पर आधारित सामाजिक ढेल मिश्राप का माध्यम थी। जब दिनों वह भारतीय भाषों तथा देशज जनता को भारतीयता श्रुतों को दूर करने का साधन सिद्ध हुई। किंतु वास्तविक विप्लव की प्रतीति आरम्भ हो गयी। ब्राह्मण, जिनका मतस्य दत्तान, सत्कृति, वरा और धर्म की रक्षा करना था, एकाधिकारी पुरोहित वर्ग बन गए और सूरी पर अत्याचार करने लगे। इस प्रकार सामाजिक परत-वर्त की प्रक्रिया आरम्भ हुई जिसे मनुस्मृत्य की मायका कुत्तन दी, और जिन वर्गों के हाथों में दत्तित थी उनको वैधुतुय पोषित कर दिया। वर्तमान जाति प्रथा एक जट निष्प्राण व्यवस्था है जो व्यक्ति को कुत्तन देती है। यह अनुसरता तथा निष्क्रियता को भी जन्म देती है और कलिनीकता तथा अमिकम मायका को दबा देती है। सर राजादे और आगरकर की माति रबीन्द्रनाथ ने भी बतलाया कि राजनीतिक स्वातन्त्रता के उपमा की अवसात सामाजिक उदारवाद तथा मुक्ति के द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है। वे जाति प्रथा के हानिकारक परिणामों के पुनत विषय थे। उन्होंने लिखा है "उदाहरण के लिए, मातृ म जाति का विचार सन्धि का विचार है। यदि हम किसी ऐसे व्यक्ति के मितों को इस सन्धि के विचार के प्रभाव में है तो हम पायेंगे कि अब वह एक बुद्ध व्यक्ति नहीं है, उसका अंत करना मानव प्राणियों के मूल्य की आकने में पुनत पावत नहीं है। यह सम्पूर्ण समाज की मानता की व्यवत करने का एक मनुवाचिक निष्क्रिय माध्यम है। यह स्पष्ट है कि जाति का विचार सुवचारमक नहीं है, वह केवल सत्पातमक है। वह किसी जातिक व्यवस्था के द्वारा व्यक्तिमी के पारस्परिक सम्बन्धों में सामनेत विवताने का प्रयत्न करता है। वह व्यक्ति के निवेधारक पक्ष मर्षित उसकी पुनकता की मद्दुन होता है। वह व्यक्ति के निहित निहित सत्य की आपात पहुँचाता है।" अपनी 'जातान सत्पातम' शीषक कविता में उन्होंने ब्रह्मानुगत अपिकारों के विषय उपदेश दिया और इस बात का समर्थन किया कि समाज के निम्नतम वर्गों की शिक्षा की समान सुविधाएँ दी जानी चाहिए। उन्होंने बहिष्करण के उस निष्पूर नियम की परतता की भी अवमनीय और कटिबद्ध सत्ताम का सक्षान है। उनका कहना था कि जाति प्रथा ब्रह्मानुक्त के नियम को अतिप्राय मद्दुन देती है और उत्पत्तिकर (मृष्टेदान) तथा सामाजिक उत्तरता के नियम की अवहेलना करती है। इसलिए उन्होंने जाति प्रथा के उन्मूलन का समर्थन किया। असुरक्षता की विवृत प्रथा ने उनके कवि हृदय की सम्पूर्ण व्यथा को मुखरित कर दिया। उन्होंने लिखा है

लो मेरी आत्माहीन या ' जिनको तुमने अवमानित किया है वे तुम्हें भीवे
पसीदवार अपने ही स्तर पर पटक देंगे।

जिनको तुमने मानवता के अधिकारों से वंचित किया है वे तुम्हें पसीद
कर अपनी ही विपत्ति में डे आनेगे।

अतिदिन मनुष्य के सत्य से वंचकर तुमने मनुष्य में निहित
वैश्वत या अवमान किया है।

इसलिए तुम पर स्वयं का पाप बसा है और तुम्हें बुद्धि के द्वार पर
विषय हाकर हर निरी के साथ जोवन करता पडा है।

तुम नहीं देख पा रही हो कि तुम्हारे द्वार पर क्या हुआ

मातु का दूत तुम्हारी जाति के अज्ञान को अधिमात कर रहा है।

यदि तुमने सामने आसिमत या अपना बाहु और अपने को अज्ञान की मोरी शीखार में बंध
कर लिया तो तुम्हें उस मातु का आसिमत करना पड़ेगा जो तुम सबको एक समान
कर देती।

जब 1932 में ऐंग्लो मैगडोनेलह ने साम्प्रदायिक नियम की घोषणा की तो टैगोर ने अपने देशवासियों को सलाह दी कि वे उसकी अपेक्षा अपने और अपनी सारी शक्तियों को विवेकपूर्ण साम्प्रदायिक और बगल मेंदमन का सम्मेलन करने में केन्द्रित कर दें। इस प्रकार उनका विश्वास था कि यदि बुद्धिजीवी अपनी शक्तियों को सही दिशा में जुटा दें तो देश की प्रचलित सामाजिक बुराइयों को दूर किया जा सकता है।

6 टैगोर के राजनीतिक विचार

(क) अधिकारों का सिद्धांत—टैगोर अधिकारों का संदेश देने आये थे।⁴¹ किन्तु उनके विचार में अधिकार किसी व्यक्ति की अपनी निजी सम्पत्ति नहीं है, वे सामाजिक कल्याण की वृद्धि में निष्काम योगदान देने से ही उत्पन्न होते हैं। उन्होंने लिखा है “सच्ची मानव प्रगति कल्याणवृत्ति के क्षेत्र के विस्तार के साथ ही होती है। हमारे सम्पूर्ण कर्म, धर्म, विज्ञान, कला और धर्म हमें इस बात में सहायता देते हैं कि हम अपनी चेतना के सक्षम को अधिक उत्तम तथा विद्यालय क्षेत्रों की ओर विस्तृत करें। मनुष्य बहुतर स्थान पर कब्जा करने अधिकारों को अतिवृद्ध नहीं करता और न बाह्य आचरण के द्वारा, उसके अधिकारों का क्षेत्र उत्तम ही विस्तृत होता है जिसका निष्कर्ष एक वास्तविक है, और उसकी वास्तविकता उसकी चेतना के प्रसार के साथ जाती है।”⁴² यदि मनुष्य अपने पक्षे ईश्वर के शक्तिमयों के साथ अपनी एकाता का साक्षात्कार कर लेता है तो उसे अपने दावों के लिए युद्ध नहीं करना पड़ता बल्कि ‘महात्मा का शास्त्र अधिकार’ ही उसकी स्थिति का आधार बन जाता है। टैगोर ने उन लोगों की भावना की जो जातीय अहंकार और राष्ट्रवाद के प्रतीकपूर्ण होकर मानव गरिमा का अपमान करते हैं, उन्होंने ईश्वर के नैतिक आदेशों का पक्ष लिया, क्योंकि उनका विश्वास था कि वे निरपेक्ष ही साम्यता, ‘सत्य तथा सत्य-पक्ष’ की रक्षा करेंगे। यदि लोग, भोगवृत्तियों की लालसा और निरंकुश शक्ति निरंतर चलती होती आय तो फिर ईश्वर भी गीन होकर नहीं बैठ सकता।

विश्वकाय के प्रति टैगोर ने भी इस बात की आवश्यकता पर बल दिया कि अधिकारों की शक्ति के लिए व्यक्ति तथा समूह दोनों की ही शक्ति का अलग करना चाहिए। वास्तविकता में अमान को स्वीकार कर लेने से मनुष्य के हृदय में विराजमान दैवी प्रकाश की प्रतीति क्षीय हो जाती है। ऐसी वृद्धि का अर्थ होता है अज्ञान और अंधाधुन के सामने समर्पण करना। दौलत मानव आत्मा में सत्य निवासगत है। इसलिए टैगोर हृदय से चाहते थे कि भारत के दलित तथा अक्षिण लोग अपने पुनरुद्धार के लिए नैतिक शक्ति का अलग करें, और निरंकुश सत्ता तथा साम्राज्यवादी शक्ति के अहंकार के सामने झुकने से इनकार कर दें। वे समीक्षा के पक्षपाती थे और इसलिए चाहते थे कि किसान अपने अधिकारों के सम्बन्ध में सचेत हो।⁴³ 1904 में ‘पक्षधन’ में प्रकाशित अपने ‘एकदेशी समाज’ छोपक लेख में उन्होंने गांधी के पुनरुत्थान का समर्थन किया। उनका सुझाव था कि छोटे के दावों की मदद करने के लिए सत्य तथा पुनर्जाति की योजना बनाये। वे चाहते थे कि जमीन और गाँवों में प्राचीन प्रतिनिधि समाजों की साधारण होती जायें। उन्होंने कुलीन वर्गों का समर्थन किया और धार्मिक जनता को सलाह दी कि वह अपने में अविश्वसनीय शक्ति तथा सहयोग की भावना का विकास करें। 1908 में भारत या तीव्र सम्मेलन के अवसर पर अपने सम्प्रदायिक भाषण में उन्होंने कहा “देश की शक्तिशाली होना चाहिए जिससे किसी को उस पर अत्याचार करने का प्रयत्न नहीं हो सके। क्या जमींदार दुकानदार हैं जो अपने मुख्य लाभ का ही हिस्सा लगाते रहें? उनका बलाबुल निर्दोषाधिकार दान देना है यदि वे अपने इस अधिकार का प्रयोग नहीं करते तो उनकी दौलत-सूची शक्ति भी उनके हाथ से निकल जायगी।” इस प्रकार हम देखते हैं कि टैगोर के अनुसार जमींदारी

41 रबीन्द्रनाथ टैगोर ने *The Call of Truth* नामक पुस्तक में लिखा है “मनुष्य की अपने अधिकारों के सम्बन्ध में सोच नहीं सकती है उसे चाहिए कि वह अपने लिए उनका सत्य समझ कर। न शक्ति विचार के अधिकार की आधारभूत जाती है।

42 *Sadhana* 1932: 18-19।

43 1904 में अज्ञान हृदय समर्थन में उन्होंने इस बात पर बल दिया कि समाज का पुनर्निर्माण किसान और मजूरी के आधार पर किया जाय।

का काम रैमन के कल्याण की व्यवस्था करना था न कि उसका उत्पीड़न करना। मनुष्य के लिए अपने अधिकारों को प्राप्त करने का एक ही मान है—रचनात्मक काम में सलग रहना और उसे उत्पन्न वस्तुओं की सहायता⁴⁴ तथा पीरबद्धक व्यवस्थापन करना। यह मान सम्या और नज़िह है, इसे सदेह नहीं। इसलिए समाज सभी तरीक़ों से अव्यक्ति विज्ञा की भी बाँध करता है। हमीर न जलें देशवासियों को यह भी समझ दी कि वे ह्यूड्ड हॉल के सहनारी साम्राज्यवादियों के उन उद्योगों की शोकार न करें जिन्हें वे अभी नयी हमारे सामने कज़्ज़ी और घणा के साथ फेंक दिया वर है, बल्कि उन्हें चाहिए कि अपनी मुख्य शक्ति की नींव बाँधें।

सर वेदद अहमदशा की दृष्टि हमीर की भी इस बात का दुख था कि भारत में अज़्ज़ी शासक यागिन का और उसके वैयक्तिक पुट की नयी की, शासका और शासिता के बीच न ता उदारतुन आदान प्रदान का और न सामाजिक सहानुभूति के सम्बन्ध थे। यद्यपि भारत के सुगत शासन में वरक वीय थे, फिर भी उसके अत्यन्त धासक वय तथा वज़ा के बीच सामाजिक सम्बन्धों की विकसित करने का प्रयत्न किया गया था। किन्तु अज़्ज़ी ने अपने तथा भारतीय जनता के बीच सदय दूरी बनने रखने का प्रयत्न किया था। इसका कारण कुछ तो उनका मन था, किन्तु उनका आत्मिक अहंकार और अमद व्यवहार भी इसके लिए उत्तरदायी थे। रबीन्द्रनाथ की संवेदनशील आत्मा ने इस स्थिति के विरुद्ध विद्रोह किया, और इंग्लैण्ड के वैयक्तिक सम्बन्धों के दूध शासन के प्रति जारी रोग व्यक्त किया। यही कारण था कि वे भारत के राजनीतिक स्वतन्त्रता में अधिकार के समर्थक थे। उन्होंने इस बात की बड़ी तीव्रता से साथ व्यक्त किया कि राजनीतिक स्वाधीनता के अभाव में जनता का नैतिक वर क्षीय होता है और आत्मा सङ्कुचित हो जाती है। केवल आत्मनिष्ठय मानवता के अधिकारों की रक्षा का सचता है। अतः हमीर ने भारत के आत्मनिष्ठय के अधिकार का समर्थन किया। 1922 में 'वनाशी पत्रिका' में प्रकाशित अपने एक पत्र में उन्होंने अहिंसा की दृष्टि में आत्मा प्रकट की, किन्तु वरत वर रखी कि वह स्वतः प्रयुक्त हो। 1923 में उन्होंने कहा कि जिन्हें परिवाद में आम्पा है उन्हें उनके प्रवेश करने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए। किन्तु उन्हें विस्तरजन बात तथा मोरीक्षात मैहक के इन विचारों के सहानुभूति नहीं थी कि स्वराज्य दल के सदस्यों को परिवादों ने 1919 के भारत सङ्घ अधिनियम का विरुद्ध-भिन करने के उद्देश्य से ही जाना चाहिए। 1930 में उन्होंने महारमा कापी के मोरमैज सम्मेलन में भाग लेने के विचार का समर्थन किया।

(ख) स्वतन्त्रता का सिद्धान्त—हमीर ने स्वीकार किया कि प्रकृति तथा इतिहास के मानव कला और विपत्तिकार के विषय बाध करते हैं। मनुष्य समाज के बाधनों में वीया होता है। किन्तु वर एक और वरतु जनत पराधीनता का क्षेत्र है जो दूसरी ओर आध्यात्मिक जनत में मनुष्य स्वतन्त्रता और स्वतन्त्रता की भी उपलब्ध कर सकता है। यह स्वतन्त्र आध्यात्मिक जनत सृजनत्मक बाहुल्य का साधक है।⁴⁵ आत्मा की शक्तियों से प्रसूत यह अतिरिक्त सज्जनत्मकता ही स्वाधीनता का सात है, और अज़्ज़ी उन्हें आध्यात्मिक है। अतः हमीर के अनुसार मनुष्य के विरुद्ध आध्यात्मिकता के बाधनों का मोहकन स्वतन्त्रता के जनत में प्रवेश करना सम्भव है।

स्वतन्त्रता तथा स्वाधीनता के सिद्धान्त के प्रतिपादक होने के नाते⁴⁶ हमीर ने चिन्तन और कला की स्वतन्त्रता तथा अतः कारण की स्वतन्त्रता का समर्थन किया। उनकी संवेदनशील कवि आत्मा ने

44. अज़्ज़ी राजनीतिक रचनाओं में आध्यात्मिक काल में हमीर नेतृत्व के सिद्धान्त में विमर्श करते हैं। 'वनाशी समाज' में उन्होंने लिखा है 'वनाशीय जनत यह है कि हम किसी दल 'वनाशी' का नेता बना लें और उसे अपना प्रतिनिधि मानकर उसमें मनुष्यिक शक्ति हो जाय। उसका मानव की स्वीकार करने के हमारे मार्ग समाज की किसी दलदल की रेश नहीं बहूँकी वीरिनि यह स्वतन्त्रता का ही प्रतीक होता। 'वनाशी' मोरमैज के कुछ समर्थक हमारे के इस नेतृत्व सिद्धान्त की बुरा खोजें। जब वय वय में भी वज़ा (साथ) का गुणवत्ता किया गया है। किन्तु अपनी नज़्ज़ी रचनाओं में हमीर सम्भवतः समाज के सिद्धान्त का स्वीकार करने के लिए जवान नहीं होत।

45. रबीन्द्रनाथ हमीर *Love a Gift and Greeting* पृष्ठ 91 'मेरी दृष्टि में अहम् मानों वर विचारन काल वीय ही सचता है अतः वय के वली।

46. वैयक्तिक मनुष्यत्व तथा सच शीघ्रक वलिनाय। वज़्ज़ी इच्छाओं वय मोरमैज तथा वर हमीर ने सामान्यजनिक तथा अनुपलब्धताओं की सज्जनता का है और सचाय तथा सामाजिक सृजन शीघ्र में ही स्वतन्त्रता की वीर की है।

सभी रूपों में व्यक्ति के केन्द्रीकरण के विरुद्ध विद्रोह किया। उन्हें मानव आत्मा की स्वतन्त्रता तथा स्वायत्तता से प्रेम था। उनके अनुसार व्यक्तिगत अधिकारों और सत्तीय सामाजिक पथों के कुप्रभाव का सामना करने की एकमात्र औपनि स्वतन्त्रता है। केवल वही मृत्यु, सत्यता और वाचनों के विरुद्ध खड़े होने की शक्ति प्रदान कर सकती है।⁴⁷ अतः उन्होंने हम सब, राज्य अर्थात् उन सब संश्लिष्ट संस्थाओं के दावों के विरुद्ध विद्रोह किया जो व्यक्ति की शक्तियों को कुचल देती है। राज्य का अस्तित्व इसलिए है कि यह व्यक्ति के हितों की रक्षा करे, व्यक्ति राज्य के लिए नहीं है। इस प्रकार टैगोर ने वास्तवता तथा आधुनिकता के विरुद्ध मानव आत्मा की नैतिक तथा आध्यात्मिक स्वतन्त्रता को पवित्र माना।⁴⁸

विशेषतः द तथा अरविन्द की चालि टैगोर की स्वतन्त्रता के आध्यात्मिक सिद्धांत को मानते थे। उनके अनुसार आत्म साक्षात्कार के द्वारा आत्मा की प्रदीप्त गरभा ही स्वतन्त्रता का सार है। भारतवर्ष में सामंतीयता की प्राप्ति ही स्वतन्त्रता है। इसलिए मेरा स्वतन्त्रता एक पहुँचने का सही मार्ग है। अलगभाव तथा पथभ्रम से किन के अन्ततः का साक्ष्यमेल विपन्न जाता है। सद्गानुसृष्टिगुण सद्बोध, करुणा तथा विश्वासमूलक मेल विनाश के मनुष्य की शक्तियों का विकास होता और उसके परिणाम स्वरूप स्वतन्त्रता का अवदान उपलब्ध होता है। अहंकार का जीवन पृथक्करण तथा नीरसता का जीवन है, वही निश्चय ही स्वतन्त्रता का जीवन नहीं बढ़ा था सचता। सद्गानुसृष्टि तथा समझदारों की भावना से ही आध्यात्मिक एकता की अतनिहित शक्तियों का प्रसफुटन होता है। स्वतन्त्रता की उपलब्धि के दो ही साधन हैं—सब प्राणियों की व्यापक अन्तरनिष्पन्नता को समझ लेना और परमात्मा की साक्षरत सृजनप्रसन्नता का विनाश नाश से साक्षात्कार कर लेना। "गीताशक्ति" में टैगोर लिखते हैं

बड़ा मन ने निश्चयता है और अस्तक ऊंचा है,
बड़ी पात्र पर प्रतिबन्ध नहीं है,
बड़ी समस्त सत्तीय धरेलु दीवारों से विच्छिन्न होकर खण्ड खण्ड नहीं हुआ है,
बहु। शक्तियों का निस्तारण केवल सत्य के सहारे खोज में होता है,
बहु। अन्तः प्रथम रूपता के अतिगहन के लिए भुजार्ण पराजिता है,
बहु। दुष्टि की निम्न जलधारा निर्विघ्न देव के मूके भरसफल की सिकता में क्षुब्ध नहीं हो गयी है,
बहु। सुम मन की निरन्तर विस्तीर्ण होने वाले चिन्तन और कर्म की ओर प्रेरित करते हो,
है परमविता ! उस स्वतन्त्रता के दिग्दर्शन में मेरा देश जाग्रत हो।⁴⁹

ईश्वरत्व के प्रारम्भिक दासताओं, एकल तथा उदारवादिशों की चालि टैगोर ने की राजनीतिक शक्ति की विनाशकारी सीमा की चरकना की। वे व्यक्तिगत का सर्वशक्ति कर आये थे, न कि आधिपत्य का। उनका दृष्ट विश्वास था कि परमात्मा का साक्षरत विषय शक्ति के डेकेदारों को अवश्य ही मोक्षा दिकावया। शक्ति एक साक्षरत सद्गानुसृष्टि है। शक्ति का पारमार्थिकता तथा विश्व के विरुद्ध उसका प्रयोग किया जाता है, योग ही अन्त हो जाते हैं और इसके स्वतः ईश्वर के शोध की निश्चय निश्चिता है। ईश्वर अवस्था दिव्य माता का सहस्र हृद्य निदक्य ही सर्वविध शक्ति तथा सृजनशील सद्गुणों के डेकेदारों की पुत्र में मिलता देखा।⁵⁰ आत्मा पीछियों के आसुरों की पुकार को अवश्य ही सुनती है। टैगोर ने लिखा है "शक्ति की शक्तिशालियों के आत्मन्या के विरुद्ध ही सुरक्षित नहीं

47 रवीन्द्रनाथ टैगोर, "गीताशक्ति", 28। "अतः वा सद्गानुसृष्टि का सार निश्चय है "मेरे जाने की ओर स्वतन्त्रता प्राप्त करने में क्षमता नहीं हूँ, मैं उसे सहृदयी समझ में भी नहीं रखे।

48 अपने लेख "Society and State" में टैगोर ने लिखा है कि भारत में सत्य समता का प्रयोग किया और इसलिए सत्यवादीय का अवश्य अधिक बल दिया गया। दुष्टता का राजनीतिक स्वतन्त्रता की शक्ति सत्यवादीय का नाश है, इससे निरन्तर भारत में स्वतन्त्रता की उच्च स्थान प्रदान किया गया है।

49 गीताशक्ति 35।

50 रवीन्द्रनाथ टैगोर, "The Mother's Prayer" *The Fugitive*, पृष्ठ 95-110। वही पर टैगोर ने दुष्टता की चालि पुत्र के अवश्य का मन में चित्रित किया है। दुष्टता का सार है, "केवल कुछ व्यापक का स्वयं तथा करते हैं स्वतन्त्रता उनका वरदा नहीं करती, किन्तु की शक्ति करने के लिए उत्पन्न हुए हैं वे निश्चय तत्त्व निश्चयशील शक्ति का प्रयोग करते हैं। पृष्ठ 99। टैगोर स्वयं एक दृष्टिशील का अवश्य करते हैं और शक्ति प्रयोगों की सत्यवादीय का उत्पन्न देते हैं।

बनाता है, दुश्मता से भी उलझी रहना पड़ती होगी। दुश्मता से मुक्तवर्ती ने ही इन बात का यह अपना सम्बुलन तो देते। राष्ट्रियतावादी से लिए दुश्मता उलझा ही बड़ा खतरा है जिस काजू हाथी के लिए। वे शक्ति से सहानुभूति नहीं होते क्योंकि वे प्रतिरोध नहीं करते हैं, वे भी और बर्बर होते हैं। जिन लोगो को दुश्मता के विरुद्ध विरुद्ध व्यक्ति का प्रयोग करने का ज्ञाती है वे ज्ञान यह भूल जाते हैं कि ऐसा करने के एक ऐसी अदृश्य शक्ति को ज्ञान के रहे दिन उनकी शक्ति की चरमचर पर देनी। पदस्थिता से गुरु रोष की नीति सम्बुलन निम्न से प्रचण्ड सहानुभूति मिलती है। बाबु का इतनी कतमी और सारहीन होगी है, ऐ उपस्थान पर देती है जिनका कोई प्रतिरोध नहीं कर सकता। इतिहास ने इस बात की क कर दिया है, और कतमान समय में तिरस्कार मानवता के विरोध से उत्पन्न हुकान से मजदूर ने एक हो रहे हैं।⁵¹ जिन सम्प्रदायों ने हृदयहीनता का आचरण किया और दुश्मता को दास बनाकर रखा कथका मान्य मूल्य और परिभा के संस्कार सिद्धान्त को अवहेल्य ज्ञान में अपनी मूर्खता का रूप के अपने आचरण का अविश्वस्य मूल्य चुकाना पड़ा। एक नीति जो सम्प्रदायों को धासित करता है। प्रेम और 'चाप ही ऐतिहासिक दीपदीपन के एक कारण है, उही का अनुपमन करने सम्प्रदायों दीपदान तक भीवित रह सकती है।

टैगोर ने भारत के ध्यातव्य सामाजिक तथा सांस्कृतिक विचार के आदर्श को स्वीक उहू में जो कीरोजवाह और पोषण के आदर्शों से सहानुभूति की और न के सिवाय के बाहर के। निरवधारियों की भूल यह भी कि उनकी जहाँ देश की सांस्कृतिक परम्पराओं में गहरी अतिवर्धियों की नीति में दोष यह था कि उहीने केवल राजनीतिक कार्यवाही की पद्धति व एवितवा वैधित्य कर दी, और देश की निर्जीव कर देने वाली सामाजिक कुपेक्षिता और कठिना ध्यान नहीं दिया। टैगोर के विचार में सामाजिक प्रगुदता और सांस्कृतिक अविधि का ही पोषण करना आवश्यक था। इसके लिए सांघाजिक तथा नवित्य पुनर्जागरण की क की, अर्थात् मुरपा तथा निर्देशक सिद्धान्तों की अधिन गहराई के साथ आत्मज्ञान करना। भारत को पुनः करना, दोनों ही अपरिहार्य थे।

टैगोर भारत तथा एशिया की राजनीतिक स्वतंत्रता के समर्थक थे। उहीने भारत स्वराज्य का वाक्यपुत्रा के साथ पक्षपोषण किया। उहू ऐसी सम्भावना रखती थी कि देश के नैतिक और नैतिक प्रभाव जैसेका तथा प्रेड सिस्टेन अपनी राजनीतिक हितस्थता क खनेगा। यह धार्य था कि सिस्टेन के लोकतन्त्र वातावरणों के परीक्षण, प्रयोगों, सपनों जो बाद प्रगति कर पाया था। उसने एक महान साहसिक कार्य में अग्रगता की जो भूमिका की उसका उसे जारी मूल्य चुकाना पड़ा था। किन्तु भारत भी उस माग पर चलता आ सकता था। यह सिस्टेन की सफलताओं और विफलताओं से बहुत कुछ सीख सकता पर ही देश के राजनीतिक रोमों की एवमान अधिधि थी। 1916 में टैगोर ने टोमो विरक्ति अपने माध्य के बीच, भारत और सिंध्या (काईदेश) की स्वतंत्रता की आवश्यकता कर। था। 1919 में उहीने भारत के सरकारी आइसराय लाइ चम्पाकोट की अतिपात्रालय माग हत्याकाण्ड के विरुद्ध एक बयन लिखा था। उसने उहीने कहा "धजात के कुछ स्मानीय र दखन करने के लिए सरकार ने जो वाक्यांशिका की हैं उनकी राखती उरता में हमारे मन रक्षापुष्क मनमोद दिया है और हमें स्पष्ट कर दिया है कि अनेकों की प्रजा के रूप में स्थिति अत्यधिक निवधता और असाह्यता की है। हमारा विश्वास है कि अन्तर्गत जन दम्भ दिया गया है और जिस दंग के दिया गया है वह जहाँ अन्तराज के अनुपात में इतना मजदूर शासन के प्राचीन अद्वय अर्थात् इतिहास में उत्पन्न होता अथ उदाहरण निम्न।

51 *Creative Unity* पृष्ठ 127।

52 रैडिय टैगोर *Asiaticism* पृष्ठ 122। इन अपनी वर्तमान विनयता के अपनी सामाजिक कर्म दंग का सभी समय भी नहीं देसते। इन सोचते हैं कि इसका कारण भारत की बाबु पर अन्तर्गतों के दंग करना है। बाबु इन अपने ऐतिहासिक प्रभाव के नहीं माना था और दास कर देना चाहते हैं क कार्यवाही के दक्षिण के लाल से कर्म उत्पन्न करना चाहते हैं।

है, कुछ विशिष्ट अवस्था का होकर जब हम यह सोचते हैं कि जिस जनता के साथ यह व्यवहार किया गया वह नि:शस्त्र और साधनहीन थी और जिस शक्ति ने यह सब कुछ किया उसने पाल मानव-सहृदय के लिए अत्यधिक भयंकर और सख्त व्यवहार है, तो हमें इसका के साथ बहना पड़ता है कि इस दुरात्म की कोई राजनीतिक आवश्यकता नहीं थी, और ऐतिहासिक और भी कम था। यद्यपि सरकार ने सभी समाचार पत्रों तथा सभार साधना की गति बोलकर चुप कर दिया है, फिर भी पत्रों के हमारे भाषणों की जो अपमान और पातशाह भोगनी पड़ी है उनका बोला-बहुत विवरण छापोपी के उस पद में के दूरवर प्राप्त के बोले-बोले में पहुँचा है। उसका हमारी सम्पूर्ण जनता के हृदय में प्रीति की जो वेदना उत्पन्न हुई है उसकी हमारे नासनों में उपेक्षा कर दी है, सम्भवतः के सपन की इस बात पर सफाई दे रहे हैं कि उन्होंने जनता की अपमान-साक्षात् सच सिद्धा किया है। इस प्रस्ताव और हृदयहीनता की अनेक भाष्य भारतीय (इंग्लैंड इन्विजन्स) समाचार पत्रों ने प्रकाश की है और वे वास्तविकता की इस सीमा तक पहुँच गये हैं कि उन्होंने हमारी भावनाओं का उपहास किया है। किन्तु सत्ताधारियों ने उनकी इस पूर मर्यादा पर कोई प्रतिपत्ति नहीं लक्षित है, जबकि उही सत्ताधारियों ने वेदना की दूर चित्तद्रष्ट की ओर प्रीति की प्रतीतिगत करने वाले पत्र पत्रिकाओं के नियम की दूर अनिवार्यता की किन्तुतापूर्ण आवश्यकता के साथ चुनल डाला है। हम यह देख रहे हैं कि हमारी प्राथमार्थ व्यवस्था हुई है और प्रतिपत्ति के आवेक्ष में हमारी सरकार की राजनीति-नैतिक दृष्टि की अपा कर दिया है। यदि सरकार चाहती तो वह अपनी भौतिक शक्ति तथा परम्परागत के अनुपम सत्ता के उदारता का परिचय दे सकती थी। ऐसी स्थिति में मैं अपने देश के लिए कम से कम यही कर सकता हूँ कि अपने करीब देशवासियों के विरोध की स्पष्ट कर दूँ और उसने जो भी परिणाम हूँ कि अपने ऊपर से मुँ, मेरे देशवासियों स्वयं आप तक अपनी आपाज नहीं पहुँचा सकते, क्योंकि आत्म की वेदना ने उन्हें सहसा भूत कर दिया है। यह समय का पत्र है जब हमारे सम्मान के पद अपमान और निरस्कार की इस असम्यक्त घृष्टभूमि में हमारी सत्ता की ओर भी अधिक स्पष्ट कर रहे हैं। और यहाँ तक धैर्य सम्भव है मैं सब विशिष्ट उपाधिका से वंचित होकर अपने उन देशवासियों की पक्ष में खड़ा होना चाहता हूँ जो अपनी समाहित अविचलता के कारण उच्च अधीनस्थ की सहन करने के लिए विषय विवेक का लक्ष्य हैं जो मानव प्रीति के लिए सबका अनुचित है।⁵³ 1932 में जब अंग्रेज भारतीय कांग्रेस द्वारा संचालित सविनय अवज्ञा आन्दोलन महात्मा गांधी के नेतृत्व में पूरे ओर के साथ चल रहा था, उस समय टैगोर ने इस बात का समर्थन किया कि भारतीय जनता ने सून दावों को स्वीकार कर लिया जाय और भारत की स्वाधीनता का सार सुरक्षित प्रदान कर दिया जाय। उन्हें विदित तथा भारत के बीच सहयोग⁵⁴ में विश्वास था, किन्तु वे चाहते थे कि यह सहयोग सभी ओर विश्वास पर आधारित होना चाहिए। इसका अर्थ था कि भारतीय जनता का समानता तथा आत्मनिर्भरता का अधिकार स्वीकार कर लिया जाय।⁵⁵

टैगोर के राजनीति दायन की एक महत्वपूर्ण देन उनका स्वतन्त्रता का सिद्धांत है। उन्होंने स्वतन्त्रता का पुनर्दान किया और पैम, पवित्रता, वन्दना तथा सृजनसम्बन्धता का संदेश दिया तथा सब प्रकार के प्रतिपत्ति और सैनिक नियन्त्रण का विरोध किया। उनकी दृष्टि के स्वतन्त्रता का अर्थ पुनर्लब्धता की स्वाधीनता नहीं है, बल्कि पुनर् प्राथमिक सम्बन्धों का सानन्तुल्य सामंजस्य ही स्वतन्त्रता है। उन्होंने मनुष्यता तथा प्रभावशाली शक्तों के मनुष्य की स्वतन्त्रता तथा वैयक्तिकता की प्रकाश की है। वे उन मानव भौतिकवादी सम्मेलन के ओर धन्य थे जो व्यक्ति की सुचेयता तथा समष्टि के समन्वय आदर्शों की पैदी पर बल देना चाहते हैं। स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में इन प्रकार का आग्रह हमारे मंगल की नींव की सुरक्ष कर सकता है।

53 टैगोर का जन्म दायन की पत्र पद 1932।

54 का सारनाथदास का यह पत्र निराधार है कि टैगोर को स्वतन्त्रता की सहाय और जनता के सम्मान के नि:शस्त्रिय बुद्धिमान तथा समर्थ पत्रिका का सम्मान प्राप्त है। का सारनाथदास ने का Rabindra Nath Tagore: His Religious Social and Political Ideals (प्रकाशनी अपनता 1932) में पृष्ठ 32 पर टैगोर के सत्य की सुलभ शक्ति के विषय तथा भारत के के की है। किन्तु उनकी यह सुलभ अनुचित है।

(ब) राष्ट्रवाद की समाप्तीकथा—रवीन्द्र ने हृदय में भारत के लिए गहरा, हार्दिक तथा उत्साह प्रेम था। उन्हें अपनी जन्मभूमि से, अपने पुरुषों की शक्ति तथा सृष्टिविधिविनी अनुपम से, गहरा अनुराग था। 1905-06 में उनकी देशभक्तिपूर्ण भाषी सम्पूर्ण बंगाल में व्याप्त हो गई। उन्होंने भारत माता की 'विषम मोहिनी'⁵⁵ कहकर अभिनिर्दिष्ट किया। किन्तु उनकी तबेदनीय आत्मा की तर्कनिगारी तथा अराजकतावादी भावों से सहानुभूति नहीं हो सकती थी। 1907 में थाव टैमोर ने अपने को साहित्यिक तथा सैद्धांतिक बाधों तक ही सीमित रखा। यदायदा उन्होंने उन नीतिक समस्याओं पर भी अपने विचार व्यक्त किये किन्तु राजनीति में सक्रिय भाग लेना बंद कर दिया। अपनी गहरी देशभक्ति के बावजूद वे उस 'अर्धपक्षित' राजनीतिक राष्ट्रवाद की अनीकार न कर सके जिसका स्वरूप यूरोप तथा जापान में देखने को मिलता था।

टैमोर को मनुष्य के आध्यात्मिक साहचर्य में विश्वास था। उन्होंने 'मानव शक्ति के स्रुत सप' की कल्पना की थी। इसलिए वे राष्ट्रीय राज्य के आदेशों का पालन करने के लिए तैयार नहीं थे। राष्ट्रवाद पूरकत्व का पोषण करता है और आकाशम उड़ता विष की सम्मता के लिए एक छतरा है। राष्ट्रीय अनुहार सकोष कल्पना तथा आध्यात्मिक तबेदनीयता के अभाव का परिणाम है। वह चांसिटी की दम्पत और सम्मति को महत्व न देकर साम्राज्यवाद तथा उग्र राष्ट्रवाद को जन्म देता है। साम्राज्यवादी शक्ति की मदीयमता के परिणामस्वरूप उपनिवेशी प्रकृत न बरता के चपकर हृत्त किये जाते हैं। इसीलिए टैमोर जनता के पक्षपर थे, न कि राष्ट्र के। उन्हें भारत की जनता की आत्मा के दुःखद्वार के विश्वास था। भारत एक अनर आध्यात्मिक शक्ति का बीर है। किन्तु वे राष्ट्र को देवता मानकर पूजने के विरुद्ध थे। वे समझते थे कि राष्ट्रवाद का घम तबेदनीय हूर कने पाती शीघ्रि की साति उत्तरनाक है। वह मनुष्य की चिन्तन की शक्तियों की कुण्ठित कर देता है, और उसे उन सत्ताधारियों का विनाश वाग बना देता है जो हूरत्त उपनिवेशों के लाभ बढोम्ने के उद्देश से उत्पादन की दैत्याकार अवस्था की रचना करते हैं। समर्पित राष्ट्रवाद मनुष्य की आध्यात्मिक तबेदन शक्ति पर दुपारपात कर देता है। परिणामतः वह जीवन के वास्तविक सदैव्य अर्थात् प्रेम, सैद्धांत स्वतन्त्रता और आध्यात्मिक सामर्य के महान आदर्शों के प्रविशका ही जाता है। राष्ट्रवाद आधुनिक पूरुषवादी साम्राज्यवादी राज्यो का मुद्रपोष है। वे राज्य मनुष्यों की तबेदन शक्तियों की शीघ्र और कुण्ठित कर देते हैं जिससे वे स्वेच्छा से शासन पर्वों द्वारा रथे हुए मुडों में अपने आपकी भीरने के लिए उत्तर रहे। जब टैमोर ने राष्ट्र-पूजा के स्वाद पर ईश्वरीय राज्य की नागरिकता के घम का उपदेश दिया। उन्होंने राष्ट्रवाद की समर्पित सामुदायिकता और शक्तिशाली शालुपता बरखाबा और उसकी अस्मिता की। और इसीलिए उन्होंने सामाजिक मानवतावाद की शक्तियों को उच्छुत करने के लिए प्रचार किया। उनका कहना था कि अतन्त्रिहित मानवीय शक्तियों के वाचन लोडना आवश्यक है।⁵⁶

टैमोर ने सामाजिक सामर्यवाद और उग्र विषयलोचुपता भी, जिते परिवर्तन के देशों में अपना घम बना रखा था, पोर दिया की। पारम्पर्य राष्ट्री के आह्व राष्ट्रनीतिक सम्मार्थ विनवाकपात, चमकर ईर्ष्या तथा रोकथामक मन पर आधारित थे, और प्रेम का स्थान ल देह तथा अस्म उत्तरों ने घे दिया था। 1919 में जब पकाय हायाबाग पर विवाद चल रहा था, उस समय ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने जिस हृदमहीनता का परिचय दिया उससे टैमोर की आत्मा को भारी वेदना हुई। अपनी इस वेदना की व्यक्त करते हुए उन्होंने ही एक एड्डुज की एक पत्र में लिखा था "उन्होंने यंकर पुराण की निजकतापूषक क्षमा कर दिया है। उनके भाषनों से यह बात स्पष्ट है और उनके समारोपपत्रों में भी इस बात की प्रतिष्ठा निरती है। उनका यह रवैया पहिल और गवाह है। आज्ञा मानवीय शासन के सचरात हृदारी की अममानवक निरति है उसकी अनुभूति पिछले पकाय

55 विनवाक पात्र ने "Sir Rahundranath Tagore" *Indian Nationalism* में पृष्ठ 18-19 पर लिखा है कि अन्त में विचारक के उपरान्त उसी उत्तर का विचार टैमोर ने ही दिया था। टैमोर ने ही 1906 में अन्त का पकाय विनवाक पात्र की पक्षीयों का अधिकार करने का प्रस्ताव किया था।

56 अपने लेख 'निगर निगर' में टैमोर ने लिखा है कि आधुनिक निगर के द्वारा राष्ट्रवाद के सम्मार्थ बहाना पर विषय अन्त की जो कबली है।

अथवा उससे भी अधिक क्यों से विस्त्रुतिविमल अधिक कटु होती जाती है। फिर भी हमें एन' वाट से सावधाना भी, हमें विश्वास था कि अंग्रेज जाति 'सामर्थ्य' है, उसकी आत्मा को शक्ति के विप की भावक भावा ने डूबित नहीं कर दिया है, क्योंकि इसकी भावा उस अधीन देश में ही उपलब्ध हो सकती थी जहाँ की जनता का पुनरावृत्त कर उसे पुनः असहाय बना दिया गया हो। किन्तु विप हमारी प्रत्याशा से कहीं अधिक गहरा चोट गया था और ब्रिटिश राष्ट्र के मर्मों को पर धाकपूर्ण कर चुका है।" टैमोर ने पश्चिमी जातियों की साहसी प्रवृत्ति और यथार्थिक उत्प्रेक्षा की सराहना की थी और वे पश्चिम के स्वतन्त्रता, विधि तथा नायकुसलता के आदर्शों के भी प्रशंसक थे। वह तर्क है कि पश्चिम ने सामाजिक और नागरिक दायित्व तथा चेतना का अधिक जैसा आदर्श प्रस्तुत किया था। किन्तु पश्चिम ने राष्ट्रवाद के नाम पर जिस सशस्त्र सुदरेपन का आचरण किया जा रहा था, उसकी टैमोर ने कटु आलोचना की थी। पश्चिम की साम्राज्यवादी शक्तियों की मानवमूर्खी सम्प्रदाय को एशिया तथा अफ्रीका के राष्ट्रों का रक्त चूस रही थी, विश्व के लिए एक भारी खतरा थी। उसकी राजसी क्रूरता तथा रक्तस्त्रिधाम प्रेत की-सी मुठ की साधना ने उसकी नैतिक चेतना का भ्रष्ट कर दिया था, और इसलिए वह पुन के लिए बचकर खतरा बन गयी थी।" टैमोर लिखते हैं "राजनीतिक सम्प्रदाय जिसका उद्भव यूरोप की आदमा से हुआ और जिसने ऊपर विश्व की वाहुल्य से उगने वाले शरत्तवार की भाँति पदाचार्य कर रखा है, बहुश्रुति की प्रवृत्ति पर आधारित है। जब इस सम्प्रदाय का उत्कर्ष हुआ और उठने विश्व के महाद्वीपों की निरक्षरों के लिए अपने भूखे जबड़े खोले जाते रहने की संसार में बुद्ध और मुहम्मद होती थी, राजतन्त्रों का परिचय होता था और फलस्वरूप विपदाएँ आती थी। किन्तु ऐसी भयावह और असाध्य सौलुभता का हनन, राष्ट्र द्वारा राष्ट्र का ऐसा समय नष्टन धृष्टी के बड़े-बड़े लक्ष्यों की काट काटकर घसीटा बनाने की ऐसी विशालकाय मशीनों, और ऐसी मजदूर ईर्ष्याओं—उदात्तों दातों और बड़ी भावी एक दूसरे के मर्मों की फाड़ खाने के लिए उद्यत ईर्ष्याओं—का नया नाच कभी नहीं देखा गया था। यह 'राजनीतिक' सम्प्रदाय वैज्ञानिक है, मानवीय नहीं। नैतिक आदर्शों का सामाजिक रूप से इस प्रकार जो उन्मूलन किया जा रहा है उसकी समाज के हर व्यक्ति पर प्रतिक्रिया होती है, उससे भीरे पीर दीवलय उत्पन्न होता है जो विद्यायी नहीं देता। और अंत में मानव स्वभाव की सभी शक्ति की-की के प्रति हृदयहीन अविश्वास का भाव उत्पन्न होता है जो सदिता जाने का कच्चा सक्षम है। किन्तु शक्ति ने मनमधुवी प्रत्याशा व सम्प्रदायों और लोग की हूटी चूटी मशीनों की पुन खरा कर देना ईश्वर की भी सामर्थ्य से परे है, क्योंकि वे जीवन के लिए नहीं थी, वे सम्पूर्ण जीवन का ही नियंत्रण करने वाली थी। वे उस विद्रोह के सम्भाव्योपे हैं जिसने अपने की अन्तर्गत से टकराकर चरनाचूर कर लिया।" टैमोर ने अनुभव किया कि शरत्तवार राष्ट्रों के राजनीतिक आचरण पर अब कसौ और बन के आदर्शवाद का प्रभाव शेष नहीं रह गया था। उन्होंने अपनी मनुष्यता की विज्ञान की चेष्टी पर अविश्वास कर दिया था, और राजनीतिक क्षमता की शोच में अपनी सामाजिक क्षमता शक्ति का परिचय कर दिया था। इसीलिए वे पुन के राष्ट्रों पर दासता लादने के अस्वत थे। अतः शरत्तवार राष्ट्रवाद सामाजिक सहाय्य और साम्प्रदायिक आदर्शवाद के किसी सिद्धांत का प्रतिनिधित्व नहीं करता। यह केवल एक राजनीतिक सपना है जिसका उद्भव अथ राष्ट्रों का आधिपत्य घोषण करता है। टैमोर ने चेतनाकी की कि यह 'राजनीतिक' सम्प्रदाय जो एशिया और अफ्रीका से बहुत चित लाभ उठोरन में अस्वत है, भीरे भीरे विपदा में गडू की ओर लुढ़कती जा रही है।

टैमोर ने 'राजनीतिक' के असहयोग आन्दोलन की आलोचना की थी। उन्हें मन था कि हमने ऐसे स्वामीय, शोच तथा सीमित हृदयों की उत्पत्ति होती जा विश्वराज्यीय सामन्तीमवाद का विरोधी है, जबकि सामन्तीमवाद भारतीय इतिहास की मुख्य धारा रही है। 1921-22 में उन्होंने विदेशी बरानी को अलावे के नाममात्र का विरोध किया, क्योंकि उनका विश्वास था कि यह जन भूधन पर भयावह उत्पन्न करता है।

57 टैमोर शरत्तवार समाज की बहुल्य व लिए सभी शक्ति पाठ्य प्राप्त था। द्रविड Nationalism, पृष्ठ

58 रवीन्द्रनाथ टैमोर Nationalism पृष्ठ 59-61।

(घ) सोवियत साम्यवाद पर टपोर के विचार—टपोर ने 1930 के दशक में ही कम्युनिज्म के अन्तर्गत साम्यवाद देने में अपना सौविधसम सच भी बताया था। 1901 के उन्होंने अपने शिक्षा सम्बन्धी प्रयोग आरम्भ कर दिये थे। हैन्सरेडियस की भाँति उनका भी विश्वास था कि शिक्षा समाज के पुनर्निर्माण का एक सार्वभौमिक साधन है। इसलिए यद्यपि उन्होंने स्वयं की अधिनायकी भूमिका की आलोचना की फिर भी वे उसकी सैद्धांतिक पुनर्निर्माण की विचारधारा तथा प्रयोगशालाओं के विषय में बड़े आशावादी थे। स्वयं ने उन्होंने केवल सांस्कृतिक, सांस्कृतिक तथा शैक्षणिक समस्याओं पर ध्यान दिया,⁵⁹ और राजनीति का स्वयं नहीं किया। उनके विचार और दारण 'रसिदार पत्र' में सज्जीत हैं। उसमें उन्होंने लिखा था 'विद्यते यथा मे स्वयं मे एक अध्यात्मिक का सुदृढ धारण देता है। किन्तु अपने को स्थायी बनाने के लिए उसने जल का माँग नहीं किया है, अर्थात् उसने जनता के मन को अज्ञान और धार्मिक अध्यात्मवाद द्वारा बंध में रखने तथा बन्धन की पीढ़ी के द्वारा उसके पुनरुत्थन को रोक करने की नीति नहीं अपनायी है। मेरा यह विश्वास नहीं है कि स्वयं के वर्तमान धारणा में दार्शनिकता का उष्ण निष्क्रिय है, किन्तु साथ ही साथ शिक्षा का प्रसार असाधारण उत्साह के साथ किया जा रहा है। पारस यह है कि यहाँ व्यक्तिगत रूप से स्वयं के सार्वभौमिकता के साथ स्वयं के लोक का अन्वेषण है। यहाँ इस बात का सुदृढनीय सफल विश्वास है कि जनता की एक विशिष्ट आर्थिक सिद्धांत में समस्या उत्पन्न कर दी जाय और नस्ल, रंग और धर्म आदि के भेदभाव के बिना हर व्यक्ति को अनुभव बना दिया जाय। अभी यह कहने का समय नहीं है कि स्वयं का आर्थिक सिद्धांत उचित है अथवा नहीं। किन्तु यह निश्चयपूर्ण बात है कि यहाँ की जनता ने इतनी निर्भीकता से और इतने विचारों के साथ स्वयं के अन्वेषण करी नहीं किया था। उन्होंने आरम्भ में ही उस प्रबल लोभ का बहिष्कार कर दिया जो इस आर्थिक सिद्धांत की नीति में धारण देता। 'युक्ति यहाँ एक के बाद एक प्रयोग किये जा रहे हैं, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि अन्तिम रूप क्या होगा। किन्तु यह निश्चित है कि जिस शिक्षा का रक्षास्वाधन करी जनता इतनी स्वतंत्रता और प्रभुता के साथ कर रही है उसने कितना ही अपनी मान्यता की उत्पत्ति और प्रतिष्ठा प्रदान की है।'

करी दार्शनिक एडोल्फ की भाँति टपोर ने भी स्वीकार किया कि आधुनिक पूँजीवाद की दोगध, विषमता और तपस की प्रवृत्ति ही साम्यवाद की वृद्धि के लिए अनुकूल उत्तरदायी हैं। किन्तु वह जानता था कि स्वयं में स्वतंत्र दार्शनिकता तथा कुछ सहयोग के सिद्धांतों की विजय होगी। उन्होंने लिखा था "सोवियतसम के बाद आधुनिक समाज की इस अन्तर्नीय वृद्धि में होगा है। यह उस रूपान की तरह है जो अनुभवगत में उदात्त रूप होने पर अपनी पूँजी प्रवृत्ति के साथ विपरीत करी दार्शनिक रूप से पारो और से भवता है। यह अस्वाभाविक भाँति इसलिए कहती है कि मानव समाज अपना मानवत्व खो बैठा है। युक्ति समाज के प्रति व्यक्ति की धृष्टता यह थी, इसलिए व्यक्ति की समष्टि के साथ पराधीन करने की इस आत्मघाती यात्रा का प्रारम्भ हुआ है। यह उसी प्रकार है जैसे वह पराधीनपुत्री के स्वयं होने पर अनुकूल विस्तारने लगती है कि समुद्र ही द्वारा एकमात्र विद्य है। इस सार्वभौमिक मानव की अस्तित्विक अवृत्ति का पता लग जाने पर ही वह तट पर पुनः लौट जाने के लिए आतुर होता है। अनुकूल स्वयं के लिए व्यक्ति विशेष समष्टि की अस्वाभाविकता की नवी स्वीकार नहीं कर सकता। समाज में विद्यमान लोभ के यहाँ का जीवन है, उनका निरुद्ध करना है किन्तु यदि व्यक्तिगत स्वयं के लिए बहिष्कार कर दिया गया तो फिर समाज का परिणाम क्या होगा? यह अस्पष्ट नहीं है कि इस युग में दार्शनिकवाद ही उपचार ही, किन्तु उत्तरी उपचार वास्तविक नहीं हो सकता। मेरी प्रार्थना है कि हमारे यहाँ के स्वयं के उत्पादन तथा निम्नस्तर में सहयोग के सिद्धांत की विजय हो, यद्यपि यह सहयोगिता की इच्छा और स्वयं की अन्वेषण न करके अनुकूल के स्वयं की यात्रा देता है। अनुकूल के स्वयं में अनुकूल करी सभी युद्ध समाप्त नहीं होगा।"

टपोर ने सम्प्रति के विषय में सार्वभौमिक सिद्धांत की नवी स्वीकार नहीं किया। निम्न-वर्ग

59 अप्रैल 1930 के स्वीडिश के अन्तर्गत में लिखा की थी कि अनुकूल अवृत्ति की नवी अन्वेषण किया द्वारा स्वयं की यात्रा देता है। उत्तरी न हुआ था कि स्वयं में लिखा की दार्शनिकता की अनुकूल व्यक्ति की स्वीकार, महास्वयं की आधुनिक विचारधारा तथा दार्शनिक अन्तर्गत की लिए लिखते है।

के सम्पत्ति ने केन्द्रीकरण के विनाशकारी परिणामों से बचीबाचि परिचित थे। फिर भी हेगेल तथा ग्रीन की भाँति ठाकुर ने स्वीकार किया कि सम्पत्ति मानव व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति का माध्यम है। उसके रूप में हमारी रूचि, परधनता तथा रचनात्मक शक्तियाँ साकार होती हैं। किन्तु ठाकुर चाहते थे कि सम्पत्ति मनुष्य में अतन्त्रिहित साधनमय ब्रह्म की अभिव्यक्ति बने न कि हमारी लोभुपलाभुषण सद्बुद्धि की। अतः उन्होंने मनोवैज्ञानिक तथा सौन्दर्यात्मक आधार पर निजी सम्पत्ति का समर्थन किया, परिणामस्वरूप वे सम्पत्ति के समाधीकरण की अनुमति नहीं दे सकते हैं। उनका सुझाव था कि अधिको को सहयोगमूलक प्रयत्नों से द्वारा अपनी दया को कुशलरता चाहिए। उन्होंने राज्य पर आत्यधिक निर्भर होने के विचार का उपहास किया। फिर भी जहाँ तक पूँजी के से होकर और धन के असमान वितरण के विघटनकारी और भ्रष्टकारी प्रभावों का विरोध करने का सम्भव था, वे निजी समाजवादी से पीछे नहीं थे।

(इ) फासीवाद—मई 1926 में रवीन्द्रनाथ ने इटली के लिए प्रस्थान किया। जब तक वे वहाँ रहे तब तक मुसोलिनी के राज्यन्याय का उन पर प्रभाव पड़ा। इटली के नेताओं ने नारतीय कवि का भारी आतिथ्य उत्सव किया। इटली में उन्होंने जदार प्रत्यक्षवादी नव-हेगेलवादी दार्शनिक कोषे से भी भेंट की। उन्होंने मुसोलिनी तथा उसके उत्साहपूर्ण आतिथ्य की सराहना की, किन्तु उन्होंने फासीवाद के राजनीतिक तथा आर्थिक दृष्टान्तों की न तो स्वीकार किया और न कभी उसके प्रशंसक भी। इस विषय में उन्होंने 'मैग्नेशटर गावियन' की कुछ पत्र लिखकर अपना दृष्टिकोण स्पष्ट कर दिया था।

(घ) अन्तरराष्ट्रवाद—ठाकुर अन्तरराष्ट्रवादी थे। जब विश्व में राष्ट्रीय अधिकारों के लिए निरन्तर संघर्ष चल रहा था उस समय उन्होंने राष्ट्रीय की पारम्परिक धैर्य तथा एकता का समर्थन किया। उन्होंने चेतावनी दी कि यदि राष्ट्रीय बहुकार की इस बड़ोई हुई प्रतिस्पर्धा का अन्त न किया गया तो यह मनुष्य जाति के लिए आत्मघाती सिद्ध होगी। अतः आवश्यक है कि मानव धर्म की मानव एकता के रूप में अभिव्यक्ति हो। किन्तु अरविन्द की भाँति वे भी मानव जाति की मानव एकता से सातुष्ट नहीं हो सकते थे। वे विश्व की मनुष्य की भावना का मन्दिर समझते थे, न कि राजनीतिक शक्ति का मन्दार। अतः उन्होंने सब जातियों के वास्तविक हार्दिक मिलन के आदेश को स्वीकार किया। उनका कहना था कि राष्ट्रीय के वर्गीकरण का मुक्त तथा अव्यय विकास ही सच्ची साधनमयता का माध्यम आधार बन सकता है। 25 मई 1930 को बीकानेर में अपने भाषण में उन्होंने कहा 'हमें यह विश्वास बनाने चाहिये कि हमारी आध्यात्मिक एकता के आदेश का फल वस्तुतः है, यद्यपि हम उसे शक्ति के किसी तक से सिद्ध नहीं कर सकते। हम अपने आचरण द्वारा घोषणा करें कि यह आदेश हमें साक्षालार करने के लिए पहले से ही दिया जा चुका है। यह बोल ही है जैसे कोई गीत जिसे हम गानते हैं, केवल उसे श्रोत्र सेना और गाना शेष रह जाता है, अपना जैसे प्राप्त की वेना जो आ चुकी है, हमें केवल बड़े बड़ाकर और लिखविद्या श्रोतकर उसका स्थापन करना है।' राष्ट्रीय की बंध कीचारी को स्पष्ट किया जाना है और जातीय समन्वय तथा सामूहिक सहयोग की जीव शाली जानी है। उन सब तत्वा का अनुमन किया जाना है जो जातियों के बीच अवरोध उत्पन्न करते हैं, और उनके स्थान पर अन्तरनिमग्नता तथा भावुत्व की भावना को प्रतिष्ठित करना है। यदि हम गहराई में जाकर देखें तो समस्त वास्तव में इन्डियानीय मानवता की अभिव्यक्ति है। अपने विवादा के निष्कार के लिए उत्सव का सहारा लेना मानव बुद्धि की शक्तियों के दिशाविभाजन की स्वीकार कर लेना है अतः आवश्यकता आध्यात्मिक भावनाओं के उत्पन्न की है, सभी मानव जाति का एक सम्मेलन हो लेना। यह सभी सम्मेलन है जब जल और हिलक पथ के आश्रय मानून के स्थान पर अन्तरराष्ट्रीय विधि तथा सामूहिक सुरक्षा के मानव की स्थापना हो। हमें सदैव, भव, अविधवा, आनुवंशिक तथा राष्ट्रीय स्वयंभरता से उत्तर उत्तर सहभाषना, राष्ट्रीय धैर्य, शक्तियों और शक्तियों के हार्दिक मेलमिलन की अपने आचरण में समाविष्ट करना चाहिए। शक्तिव बलु उदारता तथा सहयोग की भावना है। बीकानेर के विश्वभारती विश्वविद्यालय की स्थापना पूर्व तथा पश्चिम के बीच सांस्कृतिक सम्मेलन तथा सहयोग की प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से की गयी थी। वहीं तथा सदैववाहक के रूप में ठाकुर ने मनुष्य, धर्म तथा मानवता के भारतीय आदर्शों का सदैव दिया। इस प्रकार वे चाहते थे कि सगठन, काम कुशलता, घोषण और आकाशवादी के स्थान पर

मानाजिन सहयोग, अन्तरराष्ट्रीय व्यापारिकता तथा आध्यात्मिक आदर्शवाद की प्रतिष्ठा है।⁶⁰

7. हमीर तथा गांधी

रवीन्द्रनाथ ठाकुर और मोहनदास करमचन्द गांधी आधुनिक भारतीय चिन्तन की दो बड़ी विभूति हूँ हैं। दोनों की ही भारतीय राष्ट्रीयता की प्रेरणा मिली थी। किन्तु हमीर की उपनिषद् तथा कबीर की रचनाओं में दक्षिणार्धित सर्वोपरतादी सम्बन्धकता के सिद्धान्त ने अति अनुमानित विधा था, जब कि गांधी आध्यात्मिक स्वतन्त्रता होने पर भी सीता और पुनर्जीवित के आश्रितता में विश्वास करते थे। हमीर तथा गांधी दोनों की नैतिक तथा आध्यात्मिक शक्तियों की सम्बन्धता में आस्था थी, और दोनों ने हिंस्र, अन्न तथा क्षोषण की कठिनाई की। भारतीय राज्यतन्त्र तथा व्यवस्था के सम्बन्ध में दोनों ने प्रधानतः कृषि-मार्ग का ही समर्थन किया। अतः हमीर उक्त औद्योगिक-वाद के विरुद्ध थे जिसका प्रतीक कर्मचारी की महानगरी थी, और उनकी आस्था की शक्तिपूर्व में दहाती वातावरण में आरम्भिता की अनुभूति होती थी। गांधीजी ने सादी तथा कृषिप्रधान राज्य व्यवस्था का आदेश दिया।⁶¹

किन्तु जीवन तथा सत्कृति के दान के सम्बन्ध में उन दोनों में अन्तर्समीची अन्तर भी है। हमीर यह थे, अतः जीवन के सम्बन्ध में उनका दृष्टिकोण सौन्दर्यमय था। उन्हें मानवत्व की मूर्तता पराकाष्ठा से प्रेरणा मिली थी। उन्होंने वास्तव्य वास्तव्य तथा सत्कृति के जीवनशायी तत्वों की अन्वेषण कर लिया। उन्हें शैवसिद्ध, ब्रह्मसूत्र और वेदों की आराधना के साथ आरम्भिकता का अनुभव होता था। गांधी नैतिक मुद्राधारवादी थे। वे प्रायः वास्तव्य-सम्मतता की रितता, दायित्व, अन्वेषण-विशेषता तथा कृषिवाद के विरुद्ध उन्नत करते थे। दक्षिणार्धित के सम्मतता की जो समाशोचकता की थी उससे वे सहमत थे। गांधीजी की अन्तर्गत हमीर की वास्तव्य-सम्मतता के मूलों में अधिक सहानुभूति थी। गांधीजी दक्षिणार्धित के जीवन की आदर्श मानते थे। ईसा मसीह तथा राजा रामदास की भाँति गांधीजी की विश्वास था कि दक्षिणार्धित ईश्वरीय राज्य में प्रवेश करने का वास्तव्य है। हमीर ने भी कभी कभी प्रेरणा के क्षणों में भारत की भूत भिड़ो तथा गाँवों की कच्ची भिड़ो की ओपनिषा के पीत बाद, किन्तु कवि तथा नाटककार के रूप में वे अनुपम जीवन के सभी पक्षों के सन्तुलित विकास में विश्वास करते थे। वे सामाजिक व्यवस्था के रूप में कुछ भाषा में एवं की स्वीकार करने के पक्ष में थे।⁶² हमीर तथा गांधी दोनों ने ही आध्यात्मिक मानकतावादी दृष्टिकोण को महत्व दिया। किन्तु, यदि गांधी ने 'राज्य के लिए दायित्व' की भाँति जीवन भर कष्ट सहने का आदेश दिया, तो हमीर सहनशीलता तथा मित्राचार पर आधारित सकल जीवन के पक्षधारी थे।⁶³

8. निष्कर्ष

रवीन्द्रनाथ हमीर एक क्षात्रशील विभूति थे। उनकी प्रतिष्ठा अनुभूती, समन्वयक तथा मौलिक थी। सम्भवतः उन पर ईसाहोम की ईश्वर के पिता की धारणा का प्रभाव था, और आध्यात्मिक दिनों में उन्हें सीता, सीता तथा वास्तविक से प्रेरणा मिली थी। किन्तु उनकी औद्योगिक समाशोचकता तथा समेकितक गठन की अन्तः उपनिषद्, दक्षिणार्धित के उत्तुंग वास्तव्य, ईश्वरीय के समान, कबीर की शक्तिपूर्ण कविताओं और ब्रह्म समाज के वातावरण में थी। समस्त रूप से देखने पर हमीर कभी भी मौलिकता और राजनीतिक उपनिषद्वादी के लेखक नहीं हैं। वे महान् देशभक्त थे। इन सब विरोधी आलोचना के दिनों में उनकी भाषाओं में जो प्रभाव उल्लेख, और बाद में वे राष्ट्रीय कवि के रूप में पुनः जाने लगे। उन्होंने समाज सुधार, स्वदेशी तथा राष्ट्रीय एकता और सुखता का समन्वयक किया। वे

60. हमीर, *The Religion of Man*, पृष्ठ 17 : "सर्वार्थ में हमारे प्रत्यक्ष ज्ञान में वे वास्तव्य आस्था मिलती पायी है।"

61. अथवा 'The Call of Truth' तथा 'The Striving for Swaraj' भाँति देखें तो हमीर ने गांधीजी के अनुभूतीय वास्तव्य और कबीर की उपनिषद् का ही सीधे का सीधे प्रभाव लिया।

62. हमीर, *The Religion of Man* पृष्ठ 179 : "यदि हमारे को जानता है जो दक्षिणार्धित के आध्यात्मिक मूलों का प्रभाव करते हैं, तो हमें सीता का आदेश देते हैं। वे वास्तव्य नहीं पर हमें कि दक्षिणार्धित में की रीति का ही ज्ञान है, किन्तु वास्तव्य वास्तव्य का प्रभाव किन्तु वास्तव्य का प्रभाव है।"

63. हमीर का समन्वयकता की हीन वातावरण आदर्श है (1) मानवत्व (2) अन्न तथा क्षोषण का वास्तव्यवादी विचार और (3) अन्तः की विविधता पर आधारित।

राजनीतिज्ञ नहीं थे, बल्कि 'राजनीतिज्ञ' तद्देशवाहक थे जिन्होंने एंग्ला, सामन्तत्व, शांति तथा सहयोग का उपदेश दिया।

टैमोर ने आधुनिक भारत को विश्व एंग्लो-वन-स्पीडिटी का दशन दिया है। उन्होंने नैतिकता को परम्पराओं तथा घमशास्त्रीय विचारों से मुक्त करने का प्रयत्न किया है। उनके दशन के अनुसार शांति धर्म के प्रति पक्ष नैतिक आचरण का फल नहीं है, उसका आधार ईश्वरीय सामन्तत्व और प्रेम की पहुँच है। अपनी अज्ञ प्रज्ञात्मक सिद्धियों और जीवन की अनुभूतियों के आधार पर उन्होंने विश्व के सम्बन्ध में एक नैतिक दशन का विकास किया है जिसकी अतिरिक्त पुष्टि उपनिषदों से होती है। इस प्रकार उन्होंने समाज सुधार, भावनात्मक पुष्टि, परीक्षाएँ तथा परीक्षणों के कार्यों का समन्वय करने वाले दार्शनिक आदर्शवाद का निरूपण किया। इसलिये टैमोर के दशन से मनुष्य के शौनिक विचार मन्त्रापी को नैतिक महत्त्व मिलता है।

टैमोर का राजनीति दशन गम्भीर आध्यात्मिक मानवतावाद से प्रभुत्व है। वह ईश्वरवादी-वाद, वाद के विषय विप्लवावाद (पोस्टेक्लिज्म) और बुद्धिवाद के स्थान पर मानव प्राणी के, जो परम शाश्वत सृजनशक्तता की प्रतिविम्बा है, सत्यतात्मक प्रयोगों और कृतप्रयत्न आह्लाद को अधिक महत्त्व देता है। उन्होंने धर्म की सत्ताओं की, राष्ट्रवाद का लक्ष्य किया और सहयोग तथा आत्मत्व पर आधारित अवश्यी सामाजिक जीवन पर बल दिया, इस सबका शीत आधारभूत मानवतावाद ही है। एक प्रकार के सनायी और इन्हीं से विक्षिप्त और परितप्त जगत् को टैमोर ने मानव प्रेम का संदेश दिया है।

किन्तु टैमोर के राजनीति दशन में कुछ कमजोरियाँ भी हैं। उनका इतिहास की सामाजिक व्याख्या में निरवधान है। होबहाउस, एडवर्ड, मकाइवर प्रभृति आधुनिक समाजशास्त्रियों ने भी सामाजिक आन्दोलन की ही अधिक महत्त्व दिया है। किन्तु राजनीतिक दल की पून मानना की उचित नहीं प्रतीत होता। यह सत्य है कि भूक राजनीति का सम्बन्ध आधिपत्य से रहा है, इसलिये टैमोर को राजनीतिक दल सुवास्य दिखायी दिया। किन्तु, जसा कि पैल और बीच ने बताया था, राजनीतिक दल मानव इतिहास में एक आवश्यक कुराई रहा है। वह सतत विद्यमान रहने वाला दल है। भारतीय इतिहास के मध्य युग में तथा आधुनिक युग के प्रारम्भ में लोगों के लिए राजबन्दी के भाव के उत्थार-वर्धन की विज्ञा न करते हुए अपने दावा के जीवन विज्ञान सम्भव था। किन्तु जीवनान्तिक व्यवस्था के अन्तर्गत तथा औद्योगिक प्रगति के सन्तन में राजनीतिक दल भारतीय जीवन में दिन प्रतिदिन अधिक सन्निकटानी होता जा रहा है।

रहस्यवादी कवि तथा स्वच्छन्दता के पुजारी होने के नाते टैमोर ने आधुनिक राष्ट्रवाद की चर प्रकृति को निमजसतुवन नम कर दिया। किन्तु उनकी आलोचना उनकी वाच्यतात्मक विश्व दृष्टियों की शीतक है, वह राष्ट्रवाद के दशन तथा समाजशास्त्र के साथ 'चाप नहीं बनती'। राष्ट्रवाद को सर्वत्र साम्राज्यवादी सुटेरेन, समस्त लोकसत्ता तथा अचराम से अभिन्न मानना उचित नहीं है। जसाका उल्लेख पक्ष भी है। उसने मनुष्य को सामन्ती व्यवस्था के बाधनों से मुक्त किया है। उसने मानव की विरुद्ध साम्राज्यवाद के अत्याचारों से मुक्ति प्रदान की है। इसके अतिरिक्त वह सर्वनात्मक उदासीकरण का भी साधन बन सकता है। वह मनुष्य की व्यक्ति, जनजाति तथा स्थान की सीमाओं से ऊपर उठने के योग्य बनाता है। राष्ट्र के विभिन्न, बहुपरी तथा बहुमुखी विकास के बिना विश्वसाम्यवाद तथा साम्यवाद के आदेश भी योग्य तथा कार्यात्मक हैं। अतः मैं यह अनुमय विवे किता नहीं रह सकता कि टैमोर ने राष्ट्रवाद को बेतदा करने वाला तथा अतलान किता सत्ताकर अतिराजनीति की है।

नवी कभी यह भी कहा जाता है कि टैमोर ने व्यक्तिवाद तथा समाज की अवश्यी धारणा के बीच अतिविरोध है। रवीन्द्रनाथ ने व्यक्ति के अन्त्य मूल्य का बहुत कुचपात्र किया है। वे 'साधना' में लिखते हैं "मैं निरुपेक्ष अन्तर्प हूँ, मैं हूँ, मैं अतिनीय हूँ। सम्पूर्ण विश्व का भार भी मेरे इस व्यक्तित्व को कुचल नहीं सकता।" यह कथन एक प्रकार के अतिस्ववादी दम के व्यक्तित्ववाद का प्रकटन करता है। यह कवि के महरे मानवतावाद के सम्मुख है। किन्तु मानवतावादी व्यक्तित्ववाद का समन्वय करने के साधनाम टैमोर ने कहा कि विश्व सदैव आत्मा के लिए परिहार, सन्धान तथा

द्वारा भी अथवा साक्षात्कार करना सम्भव है। उनकी यह प्रत्याशना सामाजिक व्यवस्था की अवस्था धारणा से निरपेक्ष है और कुछ अंग से चिपटे तथा हुनैत की प्रत्याशना से सहज है, किन्तु इसका उनके उस सम्बोधित नीति और सी-दरमिन् व्यवस्था के साथ अतिविराध है जिसका प्रतिपादन करने अपनी रचनाओं में निरन्तर किया है।

राजनीति के सम्बन्ध में टमोर का भाव नैतिक था। उन्होंने साम्राज्यवादी उद्गमता की कथर अनिम्यसिद्धता का तथा नरतगत अवयामकता की कटु निन्दा की। वे नीतिविविधता काचन तथा के हर रूप में विरोधी थे। उन्होंने राजनीति काच के सामयविविधता तथा अवसरवादिका क रूप मुख्य भावने के द्वारा विना। समुच्च की आत्मा कथरा गयी है, वही इस युग का सबसे अधिक मुक्त वाता वाप है। विज्ञान की शक्ति द्वारा उपचार करने में अक्षम सिद्ध हुई है। इसलिए टमोर ने नैतिक मूल्यों की पुन स्थापना का समर्थन किया। उनका कहना था कि लम्बे हृदय से 'आप, दुष्टता, स्वतन्त्रता आदि गुणों के अनुसार आचरण से ही राष्ट्र शक्तिमान् बन सकेंगे। नैतिक शिक्षा की अवहेलना के दुष्परिणाम अतः में अधिन उद्गता के साम पायी के ही स्तिर पर पड़ते हैं। इतिहास नैतिक नियमों की शिमाविति है, इसलिए नैतिक मूल्यों की उपेक्षा करने के अर्थित तथा समूह दोनों की शान्ति रित शक्ति की आभात पहुँचाता है। अतः टमोर ने विदेशी साम्राज्यवादियों तथा भारतीय अराजकता वादियों को नैतिक नियम की अवहेलना करने के विरुद्ध सम्मोद तथा वाचस्पतापुण शब्दों के प्रेक्षणी दी। इस प्रकार प्लेटो, अर तथा पार्सी की शक्ति टमोर ने भी यह मानने से इनकार किया कि राजनीति अनैतिकता का क्षेत्र है। वे स्पेदकपुण, कथावाच्यी कथाकार थे, इसलिए उन्होंने राष्ट्रीय अनुहार और लेखी कथारले की प्रवृत्ति के स्थान पर शान्ति, सी-दम तथा अक्षमविधाय के उत्पन्न समता समक अमक का गौरवपात किया।

स्वामी विवेकानन्द तथा स्वामी रामतीर्थ

प्रकरण 1

स्वामी विवेकानन्द

1 प्रस्तावना

स्वामी विवेकानन्द (1863-1902)¹ एक आध्यात्मवादी और महान जनजागरण विभूति थे, भारत के नैतिक तथा सामाजिक पुनरुद्धार के लिए उन्होंने एक अनुप्रेरित कार्यकर्ता के रूप में अपना सम्पूर्ण जीवन लगा दिया। यदि राममोहन, केशवब्रह्म सेन और चौखले का विश्वास था कि इंग्लैण्ड का भारत में एक विशेष ध्येय है, तो दयानन्द और वाणी की माता विवेकानन्द की आस्था थी कि भारत का पश्चिम के लिए एक विशिष्ट सन्देश है। अपने आध्यात्मिक तथा वास्तविक विकास के दौरान उन्होंने सद्गुरु सद्गुरु आस्था का परिचाय करने समग्रवादी अनीश्वरवाद को अंगीकार कर लिया, और कहा जाता है कि बाद में उन्होंने निविरतप समाधि की अवस्था में पहुँचकर परब्रह्म का साक्षात्कार कर लिया—निविरतप समाधि एक प्रकार की परा येतना की अवस्था मानी जाती है। वे कार्टे के बाद का आधुनिक पाश्चात्य चिन्तन इन्द्रायक तत्त्व धारण तथा आनन्दारम के सूर्यम प्रज्ञा की समाधान करने में सहा हुआ है। भारत में भी इस प्रकार के विचारक तथा समीची हुए थे, नव्य समाधिक हमने सबसे बड़े मनुष्य हैं। किन्तु भारत में दशम का अर्थ है मध्य का साक्षात् दशम, इसलिए इस देश में कोई व्यक्ति तब तक वास्तविक होने का दावा नहीं कर सकता था जब तक कि उसने अपने सिद्धांतों के मध्य का आन्तरिक तथा अंतःप्रसारण साक्षात्कार न कर लिया हो। इन्द्रायक सद्गुरु (हृदय अगत) के क्षेत्र में अनुसंधान करना विज्ञान का नाम है, किन्तु वास्तविक की दृष्टि उसने अतन्त्रिहित वास्तविकता की ध्वज चलाई है। स्वामी विवेकानन्द वास्तविक मध्य के हमी अर्थ में वास्तविक थे। अपनी गहरी निराशा के कारण ही वे अपना जीवन उस सत्य के अनुसार बिता सके जिसका उन्होंने दशम कर लिया था। कभी-कभी वे धार्मिक और पम्मीर साक्षाती के रूप में आकर धार्मिकवादी और उदात्तवादी वैज्ञान्य माध का प्रकार करने लगते थे। किन्तु वे सदा वास्तविक मध्य चह्मपतयम अनुभूतिओं में भग्न नहीं रहते थे। उनमें स्वभाव में प्रह्ला-साक्षात्कार की गहरी आवास्था दिखायी देती थी, किन्तु साथ ही साथ उनमें मन में वाचिका, दुःखितों तथा पीड़ितों के उद्धार के लिए जबलत उत्साह भी विद्यमान था। वे महान देवमातृ थे, इसलिए देश की अपीयति की देशकर के साथ बहुत दुःखी हुआ करते थे और कभी-कभी उनकी रचना होती थी कि एक मुक्तिमजक के उत्साह और निष्पुरुष के नश्य करे तथा समाज की पुनरुद्धार पर नव्य की तरह हट पड़ें। उन्होंने इस बात का समर्थन किया कि धार्मिक प्रथा व नियमों की अतिरिक्तता को

1 विवेकानन्द का जन्मदिन काय नोटेशन पर दत्त था। उनका जन्म 9 जनवरी 1863 का हुआ था और 4 जुलाई, 1902 का उनका देहान्त हुआ। सितम्बर 1893 में उन्होंने विवाहों का विषय एक-आधेक में किन्तु हमें बड़ी बहुतों के साथ सम्पर्क किया जिसके फलस्वरूप सद्गुरु विचारक में उनका धार्मिक रूप गयी। उन्होंने का पश्चिम की माता की। समय बार में जुलाई 1893 के अर्द्ध 1897 तक पश्चिमी देशों में गये, किन्तु हमारी उनकी माता मालिनी की—कमल जुलाई 1899 का निधन 1900 तक 1900 में वे देशों में अर्द्ध-म में परिचित हुए और अर्द्ध बार विचारक विचारक व अतिरिक्तपुत्र मातृ किया।

सुधार बनाया जाय । जीवन भर उनकी मानसिक वस्तुता रहोईन वागानिनी की थी रही, किन्तु उन्होंने पतितो, पाषण्डो, दलितो तथा दारिद्र के भारे हुओ की तथा सुधारने के लिए पन्तुड़ का कभी परिचयाम नहीं किया ।

विश्वेकानन्द वेदांत सम्प्रदाय के उत्तरजानी थे । वे आधुनिक युग में वेदांत दशन के एक महान् निवचनकर्ता हुए हैं । वे इस काल के प्रथम महान् हिन्दू थे जिन्होंने हिन्दू धर्म और धर्म के शास्त्रीय प्रचार के स्वप्न का तुरा करने का निरन्तर प्रयत्न किया । वे इस अर्थ में राजनीतिक दाय निभ नहीं थे जिसने हम हूँअ, काली, चीन अथवा बोसार्ने को समस्त हैं , क्योंकि उन्होंने इन बातों की भांति राजनीतिक चिन्तन का कोई सम्प्रदाय कायम नहीं किया । उन्होंने राजनीति धर्म के आधारभूत प्रत्ययो का निरूपणवाचक अध्ययन नहीं किया और न उन्होंने राजनीतिक प्रविष्ट तथा व्यवहार की प्रेरक वस्तुओं की महारह में बैठने का प्रयत्न किया । किन्तु आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में उनका स्थान है । इसके दो कारण हैं प्रथम, उनकी शिक्षा तथा व्यक्तित्व का बंगाल के राष्ट्रवादी आन्दोलन पर गहरा प्रभाव पड़ा । वे महान् देशभक्त थे और मातृभूमि के लिए उनके मन में अजलत प्रेम था । वे देश की एकता का स्वप्न देखा करते थे । उनकी और आत्मा सदैव स्वतन्त्रता के लिए साक्षरित रहती थी । यद्यपि प्रभावशाली वे आध्यात्मिक स्वतन्त्रता की भारणा का ही सन्देश दिया, किन्तु उनके इस सन्देश का अनिश्चित परिणाम यह हुआ कि राजनीतिक आदि धर्म प्रचार की स्वतन्त्रता के विचार भी लोकप्रिय हुए । अंगार के अनेक साहित्यकारों तथा राष्ट्रवादियों ने उनकी 'सामाजी का बीज' कीमत कविता से स्वतन्त्रता के पूर्ण तथा पवित्रता का वाड सीखा । इस कविता में विश्वेकानन्द ने उन्मुख स्वर में स्वतन्त्रता का गुन मान किया है

अपनी बेहिमी की सोड जाय । जग बेहिमी की जिहोने तुम्हे बाधकर दास रखा है ।

ब दीर्घमान होने की ही, अपना कासी निम्नकोटि की पाहु की ,

प्रेम, धृता, धुन, भयूँ—ईश्वर के सभी अंगालो को सोड जाय ।

तू समस्त ते बि दास दास है, उसे प्रेमपूर्वक पुष्कररा जाय, अथवा कीरा ते बीटा जाय बूँ स्वतन्त्र नहीं है,

क्योंकि बेहिमा होने की ही सभी न ही, बाधने के लिए कम गनकूत नहीं होती, इसलिए है वीर सामाजी । जह उठार फेंक और बोस—'ओम् तत् सत् ओम्' ।

× × × ×
तू कहा कूट रहा है ? तुम्हे बहु स्वतन्त्रता न मज् सोड दे सकता है और न कह ।
अथ ते तू कूट रहा है सभी और मदरी मे ।

तेरा अपना ही ही हाथ है जो उस रज्जु की पकड़े हुए है जो तुम्हे पलीट रहा है ।
इसलिए तू विहाय करता छोड दे ।

रज्जु की हाथ से जाने दे, हे वीर सामाजी । और बोस—'ओम् तत् सत् ओम्' ।

विश्वेकानन्द ने वसपौष का सन्देश दिया । राजनीतिक जीवन में इस सन्देश का भी पूर्ण भिन्न अर्थ अग्राया गया । जार्जे की पीरिया ने इसका अर्थ यह समझा कि मातृभूमि की निष्ठावा साप्ताहिक तथा राजनीतिक सेवा भी वसपौष का उदाहरण है । विश्वेकानन्द ने स्पष्ट रूप से ब्रिटिश साम्राज्यवाद के नैतिक आधार को धुलीसी गढ़ी दी । किन्तु उनका समूह जीवन और व्यक्तित्व भारतीय जीवन के प्रति प्रेम और सम्मान का बोध उदाहरण था, इसलिए अमरता अर्थ से वे विदेशी

2 देखिए एन एन राय *Indian in Transition*, पृ 193 "विश्वेकानन्द का राष्ट्रवादी सामाजिक साम्राज्य था" था । उन्होंने सत्य भाग का प्रति किया कि बहुत काल के आध्यात्मिक अर्थ (विचार) से विहाय रहे । उनके दशन के आधार पर जाने बाधकर उन सत्य बुद्धिजीवी के परम्परागत राष्ट्रवाद का निर्माण हुआ जो अर्थ सभी के सम्मान विच्छेद कर पुनः ब और जिहोने अर्थ की पुनः समुदाय का रूप में स्थापित किया तथा ब्रिटिश साम्राज्य का उन्नाह करके के लिए फिदा और आतंक का गणन किया । आध्यात्मिक अर्थों के द्वारा फिर भी विचार करके न इस सामाजिक स्वतन्त्रता न उस सत्य बुद्धिजीवी में भी नहीं वेदना कायम करने जिसकी अपनी आधिकारिक विधि में जह उदाहरण कर रहा था ।

3 *Complete Works* वि० 4, पृ 327-30 ।

उनका राजनीति द्वाक उनकी तीन रचनाओं में सन्निहित है 'पौनर्ध्वी के आधीन तक व्यापार,' 'भूम तथा पश्चिम' और 'आधुनिक भारत' ।

विवेकानन्द ने द्वाक या सार ब्रह्म अथवा सच्चिदानन्द की धारणा है । ब्रह्म का अर्थ है परम सत् और सच्चिदानन्द में अविरोध है परम सत् ब्रह्म, ज्ञान तथा मानन्द । सत्, चित और मानन्द ब्रह्म के गुण नहीं हैं, वे स्वयं ब्रह्म हैं । वे तीन भूतक बस्तुएँ अथवा सत्ताएँ नहीं हैं, ब्रह्म में वे तीन होते हुए भी एक हैं । ब्रह्म परम सत् (सर्वोन्नत सत्ता) और परम ज्ञान है । यह आध्यात्मिक अनुभूतियों के रूप में ही अपने की व्यक्त करता है । विवेकानन्द ने जिन वेदांत के ब्रह्म की स्वीकार किया वह न तो हेबेल का स्मृत परम्परा है, न आध्यात्मिक या धर्म और न योगाचार्य का अलम्बिमान । अथवा अलम्बोध के रूप में कुछ साम्य है । किन्तु दोनों में अंतर यह है कि अलम्बोध ने सत्ता की रहस्यपूर्ण अनुभूति पर बल नहीं दिया है ।

स्वामी विवेकानन्द भाषा के सिद्धांत की स्वीकार करते हैं । जब उनके अनुसार सत्, प्रसर तथा कार्य-कारण नियम की सामंजस्य रूप व्यक्त एक ही नीति है । अपने 'आधीन' में उन्होंने भाषावाद का अनुद्धित तथा अलम्बोध भाषा में सम्पन्न किया है । उनका कहना है कि भाषा कोई सिद्धांत नहीं है, बल्कि सत्य है ।⁷ किन्तु अनेक आलोचक भाषा के सिद्धांत की अंतर्गत द्वाक का सबसे दुष्प्रभाव बता सकते हैं । कुछ एक और विचार के आधार पर भाषा के सिद्धांत का समर्थन करना अवश्यमय प्रतीत होता है । विवेकानन्द ने भाषा के सिद्धांत का जो समर्थन किया वह भी बहुत कुछ वाक्प्रयोग पर आधारित है । उनका कहना है "अनेक सत्ता की वना, इस ज्ञान का उत्तर देना अवश्यमय है क्योंकि इसमें अलम्बोध है ।"⁸ उन्होंने भाषा का जो समर्थन किया उसमें साहित्यिक साधनाओं की भरपूर है, किन्तु यह विचार की अलम्बोधिकता सिद्ध करने के लिए पर्याप्त नहीं है । व्यक्तिगत गुण और विचार की दृष्टि से विश्व भाषा है, सममरीचिकता है, किन्तु व्यक्तिता की गुण के अलम्बोध विचार की प्रतीति निरंतर जारी रहती है ।

परम ज्ञान की अवस्था में परम सत् का जित रूप में द्वाक होता है, वही ब्रह्म है । धार्मिक आराधना के स्तर पर वही सत् ईश्वर है । विवेकानन्द ने लिखा है "ब्रह्म द्वाक में सम्पूर्ण विश्व एक ही सत्ता है, उसी की ब्रह्म कहते हैं । वही सत्ता जब विश्व के मूल में प्रकट होती है तो उसी को ईश्वर कहा जाता है । वही सत्ता जब इस सत्ता विश्व अर्थात् सारी के मूल में प्रकट होती है तो आत्मा वह जाती है । साधनात्मक मार्ग की प्रकृति के साधनात्मक विचारों के परे है वही ईश्वर—परमेश्वर—है । ईश्वर इस सृष्टि का कर्ता, धर्मा तथा हर्ता है । वह इस विश्व तथा इसकी हीनता का धर्मिक शासन और अधिपति है ।⁹ विवेकानन्द तथा रामकृष्ण पर धार्मिक समर्थन का भी प्रभाव था । सत्य के दो ब्रह्मानन्द की मूलभूत धर्म धर्म का भी ईश्वरीय मानते हैं और उसे परम सत्ता, अलम्बोध, कहते हैं ।¹⁰

विवेकानन्द के अनुसार जीव संसार ब्रह्म ही है । कुछ अर्थ में विवेकानन्द पर सत्य द्वाक का भी प्रभाव था । जीवों की अनेकता का सिद्धांत उन्होंने भाष्य में लिखा, किन्तु सत्य अलम्बोध की दृष्टि उनका विश्वास है कि अलम्बोध सत् जीव ब्रह्म ही है । भौतिक तथा मानविक रूपों में जीव हुए आत्मा की जीव कहते हैं । विवेकानन्द का एक विचार था कि सत्य की सत्ता स्वभाव

7 स्वामी विवेकानन्द, "Maha and Illusion" *The Complete Works of Swami Vivekananda* (सत्यजीव मेमोरियल संस्करण, भाग 2, 1943), पृ. 97 ।

8 "The Absolute and Manifestation," *The Complete Works of Swami Vivekananda*, भाग 2, पृ. 132 ।

9 रामकृष्ण तथा विवेकानन्द दोनों का ही ब्रह्म का कि सत्, सच्चिदानन्द और अज्ञान के सिद्धांत परस्पर विरोधी धार्मिक धर्म नहीं हैं, वे ही संसार के आध्यात्मिक प्रकृति के भौतिक अर्थ में हैं । वे विभिन्न स्तरों के जीव हैं, न कि विशेष रूप से सत्ता का ।

10 रामकृष्ण सत्, सच्चिदानन्द, अज्ञान या कि सत्ता के अलम्बोध विवेकानन्द के सिद्धांत का सबसे सभी स्तरों और विचारों की सभी स्तरों में समर्थन समर्थन किया । वे यह नहीं चाहते थे कि किसी एक अवस्था की स्वीकार कर लिया जाए और वे ही हीन लिखें । व्यक्तिगत रूप से बहुत अलम्बोध होने हुए भी उन्होंने हमें यह बात पर बल दिया कि हिन्दुओं के सभी अनुसंधान धर्मों का समर्थन किया जाना ।

गुड़ तथा घुम है। चिन्तु प्रकृति के सत्त्व से उसमें विकार उत्पन्न हो जाते हैं। विवेकानन्द की ईशा इसी की इस धारणा पर सारी आश्रय होता था कि आत्मा स्वभावतः पानी है। ये आत्मा की पानी मानने की ही महान् वाप मानते थे। उन्होंने कहा कि मनुष्य के कर्मा से जो प्रभाव और प्रवृत्ति (सत्त्व) उत्पन्न होती है उसका समझ ही उसका चरित्र है। इस प्रकार मनुष्य का कर्म ही उसका चरित्र है। मनुष्य स्वयं अपने साम्य का निर्माता है, इसलिए यदि आन्तरिक और बाह्य प्रकृति को नियंत्रित करने का सतत प्रयत्न किया जाय तो मनुष्य अवश्य ही ईश्वरत्व की प्राप्ति कर सकता है।¹¹ उनका कहना था कि सृष्टि में मनुष्य उच्चतम प्राणी है, क्योंकि केवल यही स्वतन्त्रता प्राप्त करने योग्य है।¹²

विवेकानन्द कलिल की भारत के बुद्धिवादी दलन का जन्य मानते थे। उनका यह भी विश्वास था कि पुरानी दलन के विनाश पर साम्य का प्रभाव था। उन्होंने गुना का अर्थ शक्तिता लगाया है, और इस प्रकार साम्य की कुछ अर्थों में वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की है। उन्होंने परमाणवीय सिद्धांत का इस आधार पर खण्डन किया कि यदि बिना आवार के परमाणुओं की अलग गुना नष्ट दिया जाय तो भी वे विरल का निर्माण नहीं कर सकते।¹³ उन्होंने सिद्धा है 'परमाणु का विद्युत-चुम्बकीय ऊर्जा में विखण्डन होना वेदांत के इस दावे का समर्थन करता है कि ब्रह्माण्ड का आधार सूक्ष्म ऊर्जा है न कि अगणित परमाणु। अन्तर्गत शक्ति की शक्ति (उदाहरण के लिए एकलव्य) महा की विज्ञान वेदांत के दावे की पुष्टि करता है।'¹⁴ बलान्त वैज्ञानिक तथा हाइड्रोजन एटम के विद्युत चुम्बकीय ऊर्जा के सिद्धांत का अनेक प्रकार से निरूपण किया गया है। ब्रह्माण्डिक भौतिकवादी विरल में निरन्तर गति की धारणा की पुष्टि करने के लिए इस सिद्धांत का प्रयोग करते हैं। इससे विपरीत विवेकानन्द का विश्वास था कि इस सिद्धांत के वेदांत की उक्त प्रभावता की पुष्टि होती है कि विरल में एकलव्य सन्ध्यायी ऊर्जा ही प्रधान है।¹⁵

3 विवेकानन्द के विज्ञान में इतिहास दलन

स्वामी विवेकानन्द न इतिहास का कोई सुसंरचित सिद्धांत प्रतिपादित नहीं किया। चिन्तु इस विषय में उनके कुछ स्पष्ट विचार हैं जिन्हें एकत्र करके एक सूत्र में बांधा जा सकता है। यद्यपि वे रहस्यवादी और वेदांती के तथा ब्रह्म की परम सत् मानते थे, फिर भी उन्होंने विरल के विज्ञान के सम्बन्ध में कुछ विचार विमल किया है। उनकी धारणा की कि विरल का इतिहास चार सिद्धांतों की अभिव्यक्ति है जिनका प्रवृत्त रूप हमें ब्रह्माण्ड, शक्ति, वैद्य और सूत्र, इन चार सामाजिक कर्मा में मिलता है। आध्यात्मिक सिद्धांत भारतीय इतिहास में विष्णुभूत बुद्ध, रोमन प्रसार तथा साम्राज्यवाद का इतिहास सनिक (अविष) तथा वा लोतक था, प्रिडिशा वाणिज्यवादी अभिजातता का युग वैद्य तथा के साक्षात् उत्पन्न का प्रतिनिधित्व करता है,¹⁶ और अमेरिकी लोकतांत्र्य अभिव्य

11 विवेकानन्द का यह था कि बहुत दलन के अनुसार आत्मा का विनाश नहीं होता, केवल प्रकृति का विनाश होता है। *The Complete Works of Swami Vivekananda*, वि. 5, पृष्ठ 208-09।

12 'The Atman: Its Bondage and Freedom' *The Complete Works of Swami Vivekananda*, भाग 2 पृष्ठ 258।

13 'The Atman' *The Complete Works of Swami Vivekananda*, भाग 2, पृ. 240-41।

14 विवेकानन्द ने विरल रूप के वेदांत तथा विज्ञान का सम्बन्ध स्पष्ट किया



15 विवेकानन्द के अनुसार भारतीय दलन के दलन तथा कार्यो और महान् बुद्ध का शक्ति की ब्रह्म शीला के प्रतिनिधि थे।

के मूढत्व का प्रतिनिधि है।¹⁶ ब्रिक्कानन्द का विचार था कि युव साम्राज्य कष्ट गहन के साथ था अतीत है और अविश्व कथ तथा युव के सिद्धांत का प्रतिनिधि है।¹⁷

ब्रिक्कानन्द मंगोल जाति की शक्ति तथा शक्ति की प्रशंसा किया करते थे। उनके धर्म है "साधारण मनुष्य जाति की मदिरा है। यह हर रक्त की शक्ति तथा धर्म प्रदान करता है।"¹⁸ उनका यह दृष्टिकोण एक चीन के मत के विरुद्ध है जो बौद्धकाय अथवा बौद्धिक जाति की सर्वोच्चता का प्रतिपादन करते हैं। उन्होंने चमेकथा को इस बात का श्रेय दिया है कि यह राजनीतिक एकांक आदेश का पोषक था। उनका कहना है कि सिकन्दर, चमेकथा और सेपोलियन विश्व के एकीकरण के धावक से अनुप्राणित थे।¹⁹ ब्रिक्कानन्द ने अपनी चीन तथा जापान की यात्राओं के दौरान अनेक महिलाओं के साथ बिचे अहा उन्होंने पुरानी बंका सिंधि से संस्कृत की अनेक पाठ्यलिपियाँ देखीं। उन्होंने जापानी महिला देते जिनकी दीवारों पर पुराने चीनका अक्षरों में संस्कृत के शब्द उल्लिखित थे। इससे उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि मध्य युग में चीन तथा जापान के बीच बलिष्ठ आदान प्रदान रहा होगा।²⁰ उन्हें वैदिक तथा रोमन ईश्वरीय कमकायों के बीच साम्य दिखायी दिया।²¹ उनका विश्वास था कि रोमन ईश्वरीय के अनुष्ठान बौद्ध धर्म के द्वारा वैदिक धर्म के लिये गये होगे—और बौद्ध धर्म हिंदु धर्म की ही एक शाखा था।

ब्रिक्कानन्द का विश्वास था कि ईसा मसीह ऐतिहासिक व्यक्ति थे। किन्तु वे ईसा मसीह को स्पष्ट व्यक्तित्व की ईश्वरीय अवतार मानते थे। उनके मतानुसार यह भी सम्भव है कि सिकन्दरों ने भारतीय तथा सिन्धी धर्मों का सम्मिश्रण हुआ हो, और फिर उन्होंने ईसाइयत के विकास को प्रभावित किया हो।²²

ब्रिक्कानन्द के अनुसार वेदांत सम्प्रदायों एवं चिन्तकशील दार्शनिकों का दृष्टनमान नहीं था, बल्कि सम्प्रदाय के विकास में भी उसका महत्वपूर्ण योग था। उन्होंने माना कि भारतीय चिन्तन ने पाश्चात्योरस, मुसलमान, ईसाई और बौद्धीय आध्यात्मिकता आदि नव सत्तावादियों को भी प्रभावित किया था। मध्ययुग में भारतीय चिन्तन का स्वन में प्रवेश हुआ। मूर लोग ने स्वन पर प्रभाव डाला, और अरबी के विज्ञान ने यूरोपीय संस्कृति के निर्माण में काम दिया।²³ आधुनिक युग में भारतीय विचारधारा यूरोप की, विशेषकर जर्मनी को प्रभावित कर रही है।

ब्रिक्कानन्द का विश्वास था कि प्राचीन भारत में ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों के बीच द्वन्द्वपूर्ण संघर्ष चला था। ब्राह्मण इस पक्ष में थे कि संस्कृति के क्षेत्र में भी मानक, प्राथमिक और अन्तर्गत मूल्य हैं। उन्होंने अमीकार किया था। वे अपने को परम्परागत तथा सविश्व संस्कृति का संरक्षक मानते थे। अतः वे पुरातनवादी ऐतिहासिक दृष्टिकोण के प्रतिनिधि थे और क्षत्रियों, परम्परावादी, परिश्रमियों तथा आचरण के सहायक आदर्शों के समर्थक थे। इसके विपरीत क्षत्रिय लोग उपजायवादी के पोषक थे। वे राष्ट्र की उदीयमान वापनवादी संस्कृतियों के प्रतिनिधि थे, और अपने विचारों में निर्रोही तथा मानुक थे। राज और कृषि का भी सम्भव क्षत्रिय अधिजात रूप है था। युद्ध में क्षत्रियों के निर्रोह का समर्थन किया। इसके विपरीत कुम्हार, शूकर तथा शम्भानुज ने पुरोहित धर्म की शक्ति की युद्ध स्थापना करने का प्रयत्न किया किन्तु उस काम में वे असफल रहे।²⁴ वेरा भी विचार है कि भारत में ऐतिहासिक परिवर्तनों और स्थापना के मूल में भी द्वन्द्वपूर्ण

16 *The Life of Swami Vivekananda*, Part 2, पृष्ठ 685।

17 वही पृष्ठ 790।

18 वही पृष्ठ 838।

19 वही पृष्ठ 705।

20 वही, भाग 1, पृष्ठ 352।

21 वही, भाग 2, पृष्ठ 710।

22 वही पृष्ठ 547।

23 वही पृष्ठ 838।

24 वही पृष्ठ 631।

25 वही, पृष्ठ 687।

26 *Modern India* 'The Complete Works of Swami Vivekananda', भाग 4, पृष्ठ 380।

प्रशिक्षण वैधान की मिलती है उसके पीछे ब्राह्मण तथा क्षत्रियों की पारस्परिक सामाजिक शत्रुता तथा समय सम्भवतः प्रेरक तत्व थे। इस प्रकार भारतीय इतिहास की व्याख्या करना कुछ सीमा तक समीचीन प्रतीत हो सकता है। किन्तु सम्पूर्ण प्राचीन भारतीय इतिहास के अध्ययन की केवल इसी एक तत्व ने आधार पर व्याख्या करना अनुपयुक्त होगा। आधुनिक सामाजिक विज्ञान ने हमें सिखाया है कि सामाजिक विकास और परिवर्तनों के भूत में अनेक तत्व कार्य किया करते हैं, अतः भारत के इतिहास को समुचित रूप से समझने में सिर्फ हमें राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक आदि अनेक तत्वों का अध्ययन तथा विश्लेषण करना पड़ेगा।

हेगेल की भाँति विवेकानन्द की भी राष्ट्र के धर्म में विश्वास था।²⁷ उनका विचार था कि भारतीय सभ्यता की नींव धार्मिक है इसलिए पश्चिम के लिए उसका विशेष ध्येय, संदेश है।²⁸ पश्चिम के लोग भौतिक, धार्मिक तथा व्यावहारिक सत्त्वों और सफलताओं में आसक्तता में अधिक ध्यस्त हैं। इसलिए पश्चिमी सभ्यता में उन सम्मोह धार्मिक सूत्रों को समाधिष्ट करना आवश्यक है जिसका प्रोपन और समर्थन पूर्व में अधिकांश मुनियों ने किया है। विवेकानन्द ने भविष्यवाणी की थी कि अंततोगत्वा भारतीय विचारधारा इत्येवम् को विजय कर लेगी।²⁹

विवेकानन्द का कथन था कि भारत की प्रतिभा प्रथमतः तथा प्रमुखतः दर्शन तथा धर्म में व्यक्त हुई है। भारतीय सभ्यता के नेताओं का प्रभाव उद्देश्य उन धारणाओं का साक्षात्कार करना रहा है जिनका प्रतिपादन धर्मग्रन्थों में किया गया है। अपने आर्थिक उदम के क्षयों में वे कहा करते थे कि पश्चिम के समुद्र की भीतिवाद ने जिस दमदम में कंठा दिया उससे उसका उद्धार करने के लिए वेदाद्य के साम्प्रदायवाद की आवश्यकता है। किन्तु उन्होंने देश-देशांतरों का पटन करके आ अनुभव प्राप्त किया था उसके कारण वे विज्ञान के महत्त्व की भी समीक्षा समझते थे।³⁰ अतः वे इस बात में थे कि चिन्तन के भारतीय आदर्श और ब्राह्मण्डिक पर आधारित स्थापित करने के पारचाय आदर्श के बीच ऐक्य स्थापित किया जाय।³¹

विवेकानन्द ने नवमोह के धार्मिक इतिहास को चार युगों में विभक्त किया (1) अग्नि तथा मातृ-भूजा, (2) बौद्ध धर्म—सूक्तिकता इस युग की कला की सबसे बड़ी विशेषता थी, (3) यून बुजा के रूप में हिन्दू धर्म, और (4) इस्लाम।³²

4 विवेकानन्द का समाज दर्शन

विवेकानन्द की प्राचीन भारत की जन व्यवस्था में सत्कार हुए सामाजिक सामयस्य तथा सम्बन्ध के आदर्श व प्रेरणा मिली थी।³³ इसलिए उनकी दृष्टिक दृष्टता थी कि जाति-वर्ण की उपासना खराबा काम। तब भी बात यह नहीं है कि समाज पर नीरस प्रभावता की कोई व्यवस्था प्रोप की जाय, आवश्यकता इस बात की है कि हर व्यक्ति को अपने ब्राह्मण वा पर प्राप्त करने में सहायता दी जाय।³⁴ किन्तु उन्होंने पुरोहित कर्म की बहू शब्दों में लिखा की, क्योंकि उससे सामाजिक व्यवस्था को कायम रखने में सहायता मिलती थी, और जनता को उल्लास होती थी।³⁵ इसलिए पश्चि

27 *The Life of Swami Vivekananda* Part 1, पृष्ठ 294।

28 "India's Mission," *Sunday Times*, मध्य 1896 *The Complete Works of Swami Vivekananda* Part 5 पृष्ठ 111 (मासिकी सम्पादन संस्करण, 1936), पृष्ठ 118-24।

29 *The Complete Works of Swami Vivekananda* Part 5 पृष्ठ 120-21। "एक बार यून भारत की विषय की विषय करते हैं। —" उसे पश्चिम की सामाजिक विषय करती है।

30 *The Complete Works of Swami Vivekananda* Part 1, पृष्ठ 294।

31 वही, पृष्ठ 5, पृष्ठ 157।

32 *The Life of Swami Vivekananda* Part 2, पृष्ठ 701।

33 एक बार स्वामी विवेकानन्द ने कहा था कि हम व्यवस्था एक प्रकार का सामयस्य है। उन्होंने कहा 'सामय न सामाजिक सामयवाद विषय है और वह बहुत अनेक सामाजिक व्यवस्था' व प्रभाव के सामाजिक है इस विषय में पुरोहितादी सामाजिक दृष्टि के व्यक्तिवादी हैं किन्तु सामाजिक विषय व्यवस्था है अनेक सामाजिक सामयवाद कहा जा सकता है। इस प्रकार भारत की सामाजिक सामाजिक है और के व्यक्तिवादी विषय न सामय है और पुरोहि की सामाजिक व्यक्तिवादी है तथा न सामयवादी विषय व परिधिष्ट है।

34 *The Complete Works of Swami Vivekananda*, Part 5, पृष्ठ 144।

35 *The Life of Swami Vivekananda* Part 2 पृष्ठ 353।

विवेकानन्द भारत की सामाजिक महानता के स्पष्टवादी प्रचारक थे, किन्तु साथ ही साथ वे प्रचलित सामाजिक अनुदारता के विरुद्ध विष्वक्करी नीति की प्रति समर्थ किया।

विवेकानन्द ने परम्परावादी दार्शनियों ने पुरातन अधिपत्यवाद के सिद्धान्त का अन्वयन किए यह सिद्धान्त यूरोप अर्थात् देश की बहुसरपक जनता की वैदिक ज्ञान के क्षम से व्यक्ति कक्षा करके ने भी इस खोजतन्त्र विरोधी मतवाद को स्वीकार किया था। किन्तु विवेकानन्द ने निर्भीक आध्यात्मिक समता के आदेश का पक्षपोषण किया। उनका कथन था कि सभी मनुष्य समान हैं, सभी को आध्यात्मिक अनुभूति तथा परम ज्ञान का अधिकार है। उनका लौकिक आध्यात्म वास्तव में एक जातिकारी आदेश था। उपनिषदों तक ने किसी न किसी रूप में अधिकारवाद का रूप किया है, जो एक प्रकार से आध्यात्मिक अविभाज्यता का पक्षपोषण है। किन्तु विवेकानन्द यह नि परम सत्य का बिना किसी शर्त के व्यापक प्रचार किया था। उन्होंने कहा है "इस प्रकार जनता को सबसे बड़ा वर्णन दोगे, उसने मरने को छोड़ने और सम्पूर्ण राष्ट्र का उद्धार करोगे।

विवेकानन्द ने अस्पृश्यता की भत्तना की। उन्होंने रमोईयर और पतौली-कडई के विरुद्ध पत्र का पक्षीय उठाया। इसकी अपेक्षा वे चाहते थे कि भारत साक्षात्कार, भारत विद्रु और न संघर्ष की धार्मिक भावना प्राप्त की जाए।

आधुनिक विश्व ने विभिन्न समूहों तथा वर्गों के अधिकारों के समर्थकों के बीच निरस्यता फैल रहा है। कमलरूप समाज धीरे धीरे अधिकारों के परस्पर-विरोधी सिद्धान्तों की राफ के लिए युद्ध का अज्ञान जनता जा रहा है। किन्तु विवेकानन्द ने कलियों की महत्व दिया। चाहते थे कि सभी व्यक्ति और समूह अपने कल्यों और दावियों के पालन में ईमानदार हों। मा द्वापी का मोरव इस बात में नहीं है कि वह अपने तथा अपने अधिकारों के लिए आग्रह करें, छ गरिमा इस बात में है कि वह लोकपीम धुन की सिद्धि के हेतु अपना हस्तान कर दे।³⁶ इसी पक्षि स्वामी विवेकानन्द स्वयं किन्तु और समायी थे, किन्तु उन्होंने निष्काम भाव से अपना कर्त करने वाले गुरुत्व को सर्वोच्च स्थान दिया।³⁷

सामाजिक परिवर्तनों के विषय में अस्तु की नीति विवेकानन्द की भिन्नता में विद्वान्त क थे।³⁸ सामाजिक परिवर्तिया ह्मन् की आत्म परिवर्तन की व्यवस्था का परिणाम हुआ कली है किन्तु यदि परिवर्तिया स्थायी रूप से कामच रहे तो समाज के अग्र पटल का रूप उपस्थित हो जा है। लेकिन पुराने सामाजिक नियमों की ह्मने वा तरीका यह नहीं है कि उन्हें हिमा द्वारा नष्ट कि जाय। यही हम यह है कि जिन कारणों ने उन नियमों और परिवर्तनों की नाम दिया था ह्मन् धीरे धीरे उन्मूलन किया जाय। इस प्रकार विशिष्ट सामाजिक परिवर्तिया स्वतः किन्तु ही जाईनी केवल उनकी भत्तना और निरा करने से अनावश्यक सामाजिक उत्था और समुद्र उत्था होती है जो पाल कुछ नहीं होता।³⁹ हिंदू समाज अपनी जीवन शक्ति बनाये रखने में इसीलिए समत हुआ था। हमने परिवर्तन की सामर्थ्य की।⁴⁰ यदाकदा यह अवधानक हो गया था,⁴¹ किन्तु उसका पुनिया रवीन नहीं था कि जिन शक्तियों के साथ सम्पर्क हो उनके सर्वोच्च तत्वा से आत्मसात कर लिया जाय

36 'The Evils of Adhikarvada' *The Complete Works of Swami Vivekananda* Part 5 पृष्ठ 190-92।

37 *The Life of Swami Vivekananda*, Part 2, पृष्ठ 58।

38 बी पी वर्मा, "Vivekananda and Marx as Sociologists," *The Vedanta Kesari* Part 45, जनवरी 1939, पृष्ठ 374-81।

39 विवेकानन्द *Karma Yoga*, भाग 2 'Each in Great in His Own Place,' *The Complete Works of Swami Vivekananda* (नयागरी कर्मात्मक संस्करण भाग 1, 1940) पृष्ठ 34-49।

40 बी पी वर्मा, *The Spirit of Indian Nationalism*, पृष्ठ 40 'जिन सभी कारणों का सम्पर्क किन्तु स्वामी विवेकानन्द ने कार्य जात है उनके अर्थ न कारण पुराने सामाजिक नियमों की उत्था रानी की धीरे धीरे और भात शक्ति काय करता जायी है।

41 *The Life of Swami Vivekananda* Part 2 पृष्ठ 752।

42 यही पृष्ठ 790।

43 बी पी वर्मा, "Vivekananda the Hero Prophet of the Modern World," *Patan College Magazine*, जनवर 1946 पृष्ठ 7-15।

उसके दीपजीवी होने का रहस्य उसकी परिचायन की उदार तथा रचनात्मक समता ही थी।⁴⁴ अतः विवेकानन्द ने उस क्रांतिकारी परिचयन की अपेक्षा अवश्य ही कम से और भीमे सुधार का समर्थन किया।⁴⁵ उन्होंने सामाजिक जीवन के यूरोप का अनुकरण करने की बहू आलोचना की। उन्होंने लिखा है "हमें अपनी प्रकृति के अनुसार ही मिलित होना चाहिए। विदेशियों ने जो जीवन प्रणाली हमारे ऊपर थाम दी है उसके अनुसार चलने का प्रयत्न करना व्यर्थ है। ऐसा करना असम्भव भी है। परमात्मा की धर्मभाव है कि वह अशक्त है, हमें बौद्ध मरौकवर आम रास्ते की आकृति का नहीं बनाया जा सकता। मैं अर्थ-जातिवादी की समस्याओं की विद्या नहीं करता, वे उनसे लिए अच्छी हैं, किन्तु हमारे लिए अच्छी नहीं हैं। उनकी विद्याएँ, उनकी समस्याएँ तथा परम्पराएँ भिन्न हैं और उन सबके अनुसार ही उनकी वर्तमान जीवन प्रणाली है। हमारी अपनी परम्पराएँ हैं और हमारा नवीन के नाम हमारे पास है, इसलिए स्वभावतः हम अपनी ही प्रकृति का अनुकरण कर सकते हैं, अपनी ही लकीर पर चल सकते हैं, और हम बड़ी करते। हम पाश्चात्य नहीं बन सकते, इसलिए पश्चिम का अनुकरण करना निरर्थक है। यदि मान भी लिया जाय कि आप पश्चिम की नकल कर सकते हैं, तो आप उसी क्षण मर जायेंगे, आपमें जीवन बीज नहीं रह जायगा। एक शरिता का उस समय उद्घाटन हुआ, जब बाल का भी प्रारम्भ नहीं हुआ था और मानव इतिहास के करोड़ों युगों की पार करती हुई पहुँची थी। अभी है, क्या आप उस शरिता की पकड़कर उसके उद्घाटन हिमालय के किसी हिमनद की ओर मोड़ देना चाहते हैं? याहें वह भी सम्भव हो सके, किन्तु आपके लिए अपना यूरोपीयकरण करना असम्भव है। जब आप देखते हैं कि यूरोपवासियों के लिए अपनी कुछ धार्मिकी पुजारी संस्कृति की छोड़ देना सम्भव नहीं है तो फिर आप अपनी धर्मिकी जगजगी पुरानी अवमर्यादी हुई संस्कृति का परिष्कार बँस कर सकते हैं? यह नहीं हो सकता। अतः भारत का यूरोपीयकरण करना असम्भव तथा मूलतापुन काम है।"⁴⁶

5 विवेकानन्द का राजनीति दशन

हेगेल की नति विवेकानन्द का भी विश्वास था कि प्रत्येक राष्ट्र का जीवन किसी एक प्रमुख तत्व की अभिव्यक्ति है। उदाहरण के लिए, घम भारत के इतिहास में महत्त्वपूर्ण निमात्मक सिद्धांत रहा है। विवेकानन्द लिखते हैं "जिस प्रकार सरीसृप में एक प्रमुख स्वर होता है वैसे ही हर राष्ट्र के जीवन में एक प्रधान तत्व हुआ करता है, आप सब तत्व उसी में केन्द्रित होते हैं। प्रत्येक राष्ट्र का अपना तत्व है, आप सब वस्तुएँ चीन होती हैं। भारत का तत्व घम है। समाज सुधार तथा अन्य सब कुछ चीन हैं।"⁴⁷ इसलिए उन्होंने राष्ट्रवाद के एक धार्मिक सिद्धांत की नींव का निर्माण करने के लिए काम किया। यदि चलकर उसी सिद्धांत का विविनन्द पात्र तथा अर्थव्यवस्था के समर्थन और पक्ष-पोषण किया। विवेकानन्द ने राष्ट्रवाद के धार्मिक सिद्धांत का प्रतिपादन इसलिए किया कि वे समझते थे कि क्षात्रे चलकर घम ही भारत के राष्ट्रीय जीवन का मेरुस्थल बनेगा।⁴⁸ उनका कहना था कि राष्ट्र की मावी महत्त्वता का निर्माण उसके अतीत की महत्ता की नींव पर ही किया जा सकता है। अतीत की उपस्था करता राष्ट्र के जीवन का ही निषेध करने के समान है। उसका अर्थ तो बाल्य में उसके अस्तित्व की ही अस्वीकार करना है। इसलिए भारतीय राष्ट्रवाद का निर्वाच अतीत की ऐतिहासिक विरासत की सुदृढ नींव पर ही करना हीया। विवेकानन्द कहा करते थे कि अतीत में भारत की सनातन-तम प्रतिमा की अभिव्यक्ति मुखरत घम के योग में ही हुई थी। घम ने भारत में एकता तथा स्थिरता की बनावे रखने के लिए एक जगजगज बलि का नाम दिया था, यहाँ तक कि जब नवी राजनीति

44 विवेकानन्द का कथन "(भारत की) आधुनिक व्यवस्था अतः सर्वोपरि पात्र का प्रतिनिध तत्व है।

"Modern India" The Complete Works of Swami Vivekananda, भाग 4, पृष्ठ 413।

45 यही भाग 1, पृष्ठ 294।

46 स्वामी विवेकानन्द On India and Her Problems, पृष्ठ 102-03।

47 The Complete Works of Swami Vivekananda (आधुनिकी कैपीटलियम सारान्त, भाग 1 1936), पृष्ठ 140।

48 यही, पृष्ठ 534

सत्ता विभिन्न और दुर्बल हो गयी तो धर्म ने उसकी भी पुनः स्थापना में योग दिया। इसलिए विवेकानन्द ने घोषणा की कि राष्ट्रीय जीवन का पवित्र आधारों के आधार पर संगठन किया जाना चाहिए।⁴⁹ उनके विचार में आध्यात्मिकता अथवा धर्म का अर्थ सरलतः धर्म का साक्षात्कार करना था, साधन नित्यवादी, धर्मसंपी द्वारा प्रतिपादित आधार संहिताओं और पुरानी रूढ़ियों को धर्म नहीं समझा चाहिए। वे कहा करते थे कि धर्म ही निरंतर भारतीय जीवन का आधार रहा है, इसलिए सभी मुसलमान धर्म के आधार में ही बिने जाने चाहिए सभी देश की बहुसंख्य जनता उन्हें असीम आदर प्रशस्ती।⁵⁰ अतः राष्ट्रवाद का आध्यात्मिक अथवा धार्मिक सिद्धांत राजनीतिक चिन्तन को विवेकानन्द की प्रत्येक महत्वपूर्ण देन माना जा सकता है।⁵¹ बनिम की भाँति विवेकानन्द की भारत माता को एक साधन देवी मानते थे, और उसकी देवीप्रमाण प्रतिमा की वस्त्रों और स्वरूप से उनकी आत्मा समझा सकते थे। वह धारणा कि भारत देवी माता की हृदयस्थ विभूति है, यहाँ के राष्ट्रवादियों और आत्मवादियों की रचनाओं तथा भाषणों में आधारभूत धारणा रही है।

राजनीतिक सिद्धांत का विवेकानन्द की दूसरी महत्वपूर्ण देन उनकी स्वतन्त्रता की धारणा है। उनका स्वतन्त्रता विषयक सिद्धांत बहुत व्यापक था। उनका कहना था कि सम्पूर्ण विश्व अपनी आंतरिक शक्ति के द्वारा सार्वभौम स्वतन्त्रता की ही ओर बढ़ रहा है।⁵² वे स्वतन्त्रता के प्रकाश की बुद्धि की एकमात्र शक्त मानते थे।⁵³ उनके शब्द हैं “धार्मिक, मानविक तथा आध्यात्मिक स्वतन्त्रता की ओर अग्रसर होना तथा दूसरों को उसकी ओर अग्रसर होने में सहायता देना अनुरूप का सबसे बड़ा धर्म है। जो सामाजिक नियम हम स्वतन्त्रता के विकास में बाधा डालते हैं वे हानिकारक हैं, और उन्हें पीछे नष्ट करने के लिए अग्रसर करना चाहिए। जब सम्प्राप्ति की प्रेरणाएँ दिसा जाय तब उनके द्वारा अनुसृत स्वतन्त्रता के मार्ग पर जाने बढ़ता है।⁵⁴ विवेकानन्द आध्यात्मिक स्वतन्त्रता अथवा धर्म के अर्थों की ओर प्रतीति से मुक्ति के ही समर्थक नहीं थे, बल्कि वे अनुसृत के लिए नीतिक अथवा बाह्य स्वतन्त्रता की चाहते थे। वे अनुसृत के प्राकृतिक अधिकारों के सिद्धांत को मानते थे। उनका कथन है “स्वतन्त्रता का निरूपण ही यह अर्थ नहीं है कि यदि मैं और आप किसी की सम्पत्ति की हानि पहुँचाएँ, बुद्धि और धर्म का प्रयोग अपनी हानिपूर्वक करने दिया जाय और हम दूसरों को कोई हानि न पहुँचाएँ, और समाज के सभी सदस्यों को धर्म, सिद्धांत तथा धर्म प्राप्त करने का समान अधिकार हो।⁵⁵ विवेकानन्द के मतानुसार स्वतन्त्रता उपनिषदों का मुख्य सिद्धांत था, उपनिषद्कारी ने धार्मिक, मानविक एवं आध्यात्मिक आदि स्वतन्त्रता के सभी पक्षों का उद्धार समझन किया था। विवेकानन्द को यह भी आशा थी कि जिस स्वतन्त्रता का उद्घाटन अमेरिका में 4 जुलाई, 1776 को हुआ था वह किसी दिन सम्पूर्ण विश्व में प्रतिष्ठित हो जायगी। अपनी “बारजुलाई के प्रति” शीर्षक कविता में उन्होंने लिखा है

सुमनो कीर्तिता अधिनादन, है प्रकाश के प्रभु।

आज सुन्धारों नय स्वागत,

है दिवाकर। आज तुम स्वतन्त्रता के विषय को प्रवीण कर रहे हो।

×

×

×

है प्रभो! जबकि अनवरतम् धर्म पर निरंतर बढ़ते जाओ।

49 विवेकानन्द ने कहा था कि सत्ता प्राकृतिक ईश्वरत्व की अभिव्यक्ति हुआ करती है।

50 *The Life of Swami Vivekananda* भाग 2, पृष्ठ 698।

51 विवेकानन्द देशज की शक्ति तथा शक्ति की बुद्धिमत्ता व्याख्या करते थे। उनकी धारणा थी कि देशज सामाजिक शक्ति के भी अग्रणी हैं। वह धर्म या सभी नीतिक संधियों के अन्तर्गत अनुसृत के देशजों को मार्ग प्रदान करता है। वह सिद्धांत धर्म की शक्ति देता है। वह सभी पक्षों और धर्म के बीच सामंजस्य स्थापित करता करता है। जब देशज सामाजिक तथा राजनीतिक मुद्दोंपर के उद्घाटन की बुद्धि में सहजता हो जाती है।

52 विवेकानन्द ने कहा था एक “सामान्य न कहा था “यह निरवस्था है” स्वतन्त्रता में हमारा उद्घाटन है, और स्वतन्त्रता पर ही यह अवलम्बित है।

53 विवेकानन्द, “स्वतन्त्रता आध्यात्मिक शक्ति की उन्नति का है।

54 *The Life of Swami Vivekananda* भाग 2 पृष्ठ 753।

55 वही, पृष्ठ 752।

जब तक कि तुम्हारे सम्पादक का प्रकाश विद्युत घर में न फैल जाय,
जब तक हर देश प्रकाश को प्रतिबिम्बित न करने लगे,
जब तक कि तुम्हें और स्त्रियाँ मस्तक ऊँचा करके,
अन्तरीक्षियों को दृढ़ हूँ न देख लें,
और जब तक कि भौवन के साहसाद में जनका जीवन नया न हो जाय ।

[illegible]

द
मे
द
और
लगा
काए

- 56 विन्सेन्टी वायमयवाहिकों में एक एकल छिद्र है जो एक ही छिद्र के रूप में कार्य करता है। यह वायुमय वाहक में एक ही छिद्र के रूप में कार्य करता है। इसी कारण से, यह वायुमय वाहक में एक ही छिद्र के रूप में कार्य करता है।
मिशन 2, पृष्ठ 726।
57 यही, पृष्ठ 407।
58 एक बार एक वायुमय वाहक में एकल छिद्र है जो एक ही छिद्र के रूप में कार्य करता है। यह वायुमय वाहक में एक ही छिद्र के रूप में कार्य करता है। इसी कारण से, यह वायुमय वाहक में एक ही छिद्र के रूप में कार्य करता है।
मिशन 2, पृष्ठ 726।
59 *The Life of Louis Pasteur*, 1894, 2, पृष्ठ 407।

देना वास्तव में एक महान राजनीतिक महत्व का संदेश देने के समान है, क्योंकि 'मनुष्य निर्माण' के सुसूचित संदेश का स्रोत राष्ट्रीय अभिप्राय है। विवेकानन्द ने नियमिता के सिद्धांत की वास्तविक वेगल के आधार पर उचित दृष्टांश है। उन्होंने बार-बार इस बात को दुहराया कि आत्मा ही परम सत् है और इसलिए वह सभी प्रकार के सामाजिक प्रयोगों और कुराओं से परे है। उनकी बुद्धिमत्ता आत्मा को मनुष्य की आत्मा पर खींचे गये सभी प्रकार के प्रतिक्रियाओं से बचा थी। इसलिए वे भारतीय जनता को आत्मा के अपार बल और शक्ति की शिक्षा देना चाहते थे। उनका कहना था कि आत्मा का सहायक सिद्ध के समान है। वे चाहते थे कि मनुष्य में भी सिद्ध की भी मानना का विकास हो। उन्होंने कहा कि हिंदुत्व को आत्मिक बनना है। इस प्रकार विवेकानन्द ने चरित्र निर्माण के लिए वेदांत की शिक्षा का प्रयोग किया। अथर्व वेदों तथा वेदांत का सार है। नीला का आधिकारी संदेश की मुख्य तथा शक्ति की ही महत्व देता है। विवेकानन्द ने कहा 'राष्ट्र की शक्ति शिक्षा के द्वारा ही मिल सकती है।'⁶⁰ उनके विचार में शक्ति के संदेश का अोजसुन समर्थन करना राष्ट्रीय पुनर्निर्माण का सबसे अच्छा मांग था। आत्मबल के आधार पर नियम होकर सदा होना अत्याचार तथा उत्पीड़न का सर्वोत्तम प्रतीकार था।⁶¹ उन्होंने उस समय भारत में प्रचलित अत्याचारपूर्ण राजनीतिक तथा धार्मिक व्यवस्था की आलोचना करने की नकारात्मक नीति नहीं अपनायी, बरिष्ठ शक्ति के बल पर मांगत्मक बल दिया। अगस्त 1898 में उन्होंने 'जागत भारत के प्रति' शीघ्रक कविता में लिखा

एक बार पुन जाग। यह तुम्हारी मृत्यु नहीं की, यह तो केवल निद्रा की सुप्ति तबनीयत देने के लिए और तुम्हारे कमजोरियों की विश्राम देने हेतु बिस्ते में गये हस्त की देखने का साहस कर लें। विश्व तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है। हे सत्य ! तुम्हारे लिए मृत्यु नहीं है। तुम अपना चलना जारी रखो, तुम्हारे कदम दृढ़ते बीजक हो कि उनसे सत्य के फलारे नीचे सभी हुई धूल का भी आतिथ्यम विश्राम भय न हो। किन्तु वे दृढ़, अद्विग्न, मान-दम, वीरतापूर्ण तथा स्वतन्त्र हों। अपने बाले, निरंतर आगे बढ़ता जा। बोल, एक बार पुन बोल अपने मांगोसौज्य सम्य।

×

×

×

×

और फिर बख्ता आरम्भ कर दे, अपनी उस आत्मश्रुति के अहा वेदाभ्यासित हिन तुम्हें आशीर्वाद देती है और तुमने शक्ति का संचार करती है जिससे कि तुम अपने विश्रामकारी नाम कर लो। आकाश तथा तुम्हारे स्वर को अपने आदरित सचीत के साथ एकलव कर दे, और देवदार की छाया तुम्हें अनन्त शक्ति प्रदान करे।

और इन सबसे अधिक हिमात्म्य की पुत्री उमा की बीजक और पवित्र है, वाता को सचन शक्ति और जीवन के रूप में व्याप्त है, जो सार काय करती है, जो एन से बिरल की रचना करती है, जिसकी अनुकम्पा के सत्य के द्वार खुल जाते हैं और सबसे एक के दृष्ट होने लगते हैं, यह उमा तुम्हें अथक शक्ति प्रदान करे—और अनन्त प्रेम ही अथक शक्ति है। राष्ट्र व्यक्तियों के ही बनता है। इसलिए विवेकानन्द का अनुदीर्घ था कि सब व्यक्तियों की अपने में मुख्यत्व, मानव गरिमा तथा सम्मान की भावना आदि श्रेष्ठ गुणों का विकास करना चाहिए।

चिन्तु इन वैयक्तिक गुणों की पूर्ति अपने परीक्षी के प्रति प्रेम की मांगत्मक भावना से होनी चाहिए। नि स्वाध सेवा की गम्भीर भावना के बिना राष्ट्रीय एका और धातुत्व की बात करना बारी अभाव है। आवश्यकता इस बात की है कि व्यक्ति अपने यह का देख और राष्ट्र की आत्मा के साथ साहाय्य कर दे। विवेकानन्द का मांग परिचय में उन समाजशास्त्रियों की तुलना में अधिक रचनात्मक है जो वेगल राष्ट्रवाद के सामाजिक पक्ष की अधिक महत्व देते हैं। उन्होंने व्यक्तिवादी तथा सामाजिक दृष्टिकोणों का समन्वय करने का प्रयत्न किया है, किन्तु साथ ही साथ व्यक्तियों के नैतिक विकास के साथ उनका अधिक लगाव है। यह सत्य है कि राष्ट्र एक समुदाय है। चिन्तु हम राष्ट्र की अथक

60 बही, 7 796।

61 विवेकानन्द का आशय 'My Plan of Campaign' लगभग अब प्रयोग में है अधिनात्मिकता की होता है। जीवन के समय अपने मनु पुन देन देती है स्वर्ग यह ईश्वर के प्राप्त होता है। पुन और ही जीवन समर्पितभाव होता है।

प्रगति का निताता ही मुनभाव यमी न करें, वास्तव में व्यक्ति ही राष्ट्रीय इति में गटक होते हैं, इस लिए जब तक व्यक्ति स्वयं, नैतिक तथा दयालु नहीं होते जब तक राष्ट्र भी महानता तथा समझि की आशा करना व्यथ है। अतीत में भारत ने राष्ट्रीय जीवन का निर्माण समाजसेवा तथा व्यक्ति की मुक्ति के आदर्शों की नींव पर किया क्या था। इन श्रेष्ठ आदर्शों को पुन प्रतिष्ठित करना और व्यक्ति-धाली बनाना है।⁶² इसलिए सेवा तथा स्वयं की भारतीय राष्ट्र ने पुनःद्वार का तार्किक आधार बनाना आवश्यक है।⁶³ इस प्रकार विवेकानन्द इस बात में थे कि राष्ट्रीय एकता और सुदृढता का आधार नैतिक हो। उन्होंने उल्लेखित शब्दों में भारतीयों को सतवाचा "हे बीर" निर्मित करो, माहस धारण करो, इस बात पर बल करो कि तुम भारतीय ही और यह के साथ घोषणा करो, 'मैं भारतीय हूँ और प्रवेश भारतीय मेरा भाई है।' बाली, 'गामहीन भारतीय, दरिद्र तथा अविचल भारतीय, ग्राहण भारतीय, अज्ञ भारतीय, मेरा भाई है।' तुम भी अपनी वामर में एक लौहारी बांध कर यह के साथ उच्च स्वर में घोषणा करो, 'भारतीय मेरा भाई है, भारतीय मेरा जीवन है भारत के देशी देवता मेरे ईश्वर हैं, भारतीय समाज मेरे वास्तविकता का वास्तव है, मेरे जीवन का आनन्द उद्यान है, पवित्र स्वयं, और मेरी बुद्धावस्था भी बाधकारी है।' धरे बाधु बाली, 'भारत की भूमि मेरा परम स्वयं है, भारत का वास्तव मेरा वास्तव है', और दिन रात जमी और प्राणना करो, 'हे बीरईश्वर, हे प्रयत्नशीली, मुझे पुनःप्रयत्न प्रदान करो। हे व्यक्ति की ना, मेरे दीव्यत्व को हूर लो, मेरी चौरपहीनता को हूर लो—और मुझे वतुष्य बना दो।'⁶⁴

विवेकानन्द प्रभावित मिष्ट, धर्मोन्देश्य तथा सचामी के विस्तु उनके हृदय में जनता के लिए प्रभाव प्रिय था।⁶⁵ वे जनता की दया देखकर सबकुछ रोया करते थे।⁶⁶ अपने उपदेशों तथा लेखों के द्वारा वे जनता की आकांक्षाओं तथा तीव्र वेदनाओं को वाणी देना चाहते थे। जनता कहना था कि दरिद्री की दया सुधारने के लिए उन्हें शिक्षा तथा धन का साधन देना आवश्यक है। उनके शब्द हैं "राष्ट्र के रूप में हम अपना व्यक्तिगत खो बैठे हैं, और यही इस देश में सब दुष्कर्मों की जड़ है। हमें देश को जलना छोड़ा हुआ व्यक्तिगत वापस देना है, और जनता का उत्थान करना है। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, सभी ने उसकी अपने पैरों के पुचसा है। विस्तु अब उनके उद्धार की शक्ति की पीठर से ही आनी चाहिए, धर्मात्त वरम्भराविष्ट हिन्दू समाज में। प्रत्येक देश में जो कुपदमा देखने की विमती हैं वे धन के कारण नहीं हैं, बलिक धर्महीन के कारण हैं। इसलिए धन धन का नहीं है, वस्तुओं का है।"⁶⁷ अतः विवेकानन्द ने पुकार लगायी कि जनता का उत्थान निम्न बिना राजनीतिक मुनतीकरण सम्भव नहीं है।⁶⁸ जब जनता दुःखी और विपदाओं में पड़ी कराह रही हो और घोर गैराध्य में डूबी हुई हो ऐसे समय में निजी मुक्ति की बात सोचना निरर्थक है।⁶⁹ उन्होंने उस समय की भारतीय राष्ट्रीय वादेय की भी आलोचना की, क्योंकि उनकी निगाह में यह जनता की दया सुधारने के लिए कोई आवाहन और उपनाहन काय नहीं कर रही थी। एक बार अमिनीकुमार बस ने एक मंड के उनसे पूछा "किन्तु क्या आपकी जो कुछ बाँधेन कर रही है उसमें विश्वास नहीं है?" विवेकानन्द ने उत्तर दिया "नहीं, मुझे विश्वास नहीं है। विस्तु निश्चय ही न कुछ से कुछ अच्छा है और सोते हुए राष्ट्र की अगामि के लिए उसे सब ओर से प्रकाश लाना अच्छा है। क्या आप मुझे यकता सचते हैं कि काहेत जनता के लिए क्या करती आयी है?" क्या आपका विचार है कि केवल कुछ

62 *The Life of Swami Vivekananda*, वोल 2, पृष्ठ 713।

63 यही, पृष्ठ 306।

64 बाँधे विवेकानन्द "विश्व में एक ही ईश्वर है, एक ही देश ईश्वर है जिसमें मुझे आस्था है। वह ईश्वर सब आत्माओं के बीच तथा दूरिद भल है। विवेकानन्द ने ही भारत की राष्ट्रवादात्मक की धारणा प्रदान की।

65 एक बार विवेकानन्द ने कहा था "धनवान् पण्डित कि राष्ट्र कीर्णियों में रहता है।"

66 *The Life of Swami Vivekananda*, वोल 1 पृष्ठ 306-07।

67 एक बार विवेकानन्द ने श्रोतृत्व की भी "तुम सब लोग को बीच और दूरिद हो जो पतिष्ठ और पदवतिष्ठ हो, बाली! जब तक जनता उद्वार नहीं होता जब तक महान् प्रारंभ माता का कभी उद्वार नहीं हो सकता।

68 "Our Duty to the Masses," *The Complete Works of Swami Vivekananda*, वोल 4, पृष्ठ 107-09।

प्रस्ताव पास करने से स्वतन्त्रता मिल जायगी ? ऐसा उससे विश्वास नहीं है । तब तो पहले जल्ला को जगाना होगा । उसे भरपेट जीवन मिलने दीजिए, फिर वह अपना सड़ार स्वर कर लेगी । यदि कांग्रेस उसके लिए कुछ करती है तो मेरी सहानुभूति कांग्रेस के साथ है ।¹⁴

6 निष्कर्ष

स्वतन्त्रता की प्राप्ति के उपरांत भारतीय राष्ट्रवाद के आधारभूत तत्वों के सम्बन्ध का महत्व बहुत बढ़ गया है । विवेकानन्द की रचनाओं तथा भाषणों ने भारत के राष्ट्रवाद की भक्ति नींव को शिष्टांगत तथा व्यवहार योग्य हो दृष्टि से सुदृढ़ बनाने में महत्वपूर्ण योग दिया है । उन्होंने सम्पूर्ण देश पर भी प्रभाव डाला है । जिस समय राष्ट्र उदात्तता, सिद्धिमत्ता और निराशा में डूबा हुआ था, उस समय विवेकानन्द ने शक्ति तथा विमर्शता के संदेश की गवना की । उन्होंने लोगों को शक्तिशाली बनने की प्रेरणा दी । शक्ति ही विवेकानन्द की भारतीय राष्ट्र की नवीयता है । जब भारत का बौद्धिक धर्म पश्चिम का अनुकरण करने में व्यस्त था, उस समय उन्होंने निर्भीकतापूर्वक घोषणा की कि पश्चिम को भारत से बहुत कुछ सीखना है । विवेकानन्द की रचनाओं तथा उनके संदेश का ध्यान में रखे बिना भारतीय राष्ट्रवादी आन्दोलन के जन्म तथा विकास को सौर 1904 तथा 1907 के बीच राजनीतिक साहित्य के स्वर में भी परिवर्तन हुआ उसे समझना सम्भव नहीं है ।

विवेकानन्द का मत था कि भारत में हठ और स्थायी राष्ट्रवाद का निर्माण धर्म के आधार पर ही किया जा सकता है । किन्तु उन पर पश्चादी सकीयता अथवा साम्प्रदायिकता का आरोप नहीं लगाया जा सकता । उनकी दृष्टि में नैतिक तथा आध्यात्मिक प्रगति के पारस्परिक विमर्श ही धर्म है । उन्होंने अपनी निर्भीक दृष्टि द्वारा पहले से ही देखा लिया था कि सूत का बँटवारा करने में सामान्यार्थिक राष्ट्रवाद स्वामी नहीं हो सकता । राष्ट्र के अर्थव्यवस्था विकास के लिए आवश्यक है कि लोगों में उद्यम, बहुचम, श्रम, त्याग तथा निरह के गुण विद्यमान हों । विवेकानन्द की भी साधनीय सहिष्णुता तथा व्यक्ति किसी धार्मिक पक्ष अथवा सम्प्रदाय के बिकट आस्थाधार की अनुमति नहीं दे सकता था । उन्हें व्यक्तिगत विकास में विवशता था, वे इस पक्ष में नहीं थे कि किसी पर धार्मिक विश्वास अथवा सामाजिक परिचायिका बलान्ध धोती जायें । मत्र विवेकानन्द द्वारा प्रतिपादित राष्ट्रवाद का धार्मिक आधार अस्विक और विविधता पक्ष की राष्ट्रवादी धारणा के समतुल्य था ।

विवेकानन्द साधनीयवाद के समर्थक थे । उनके लिए देशभक्ति एक सुदृढ़ और पवित्र आदेश था, किन्तु उन्होंने अनुपम के देवत्व का भी संदेश दिया । उनके संदेश के महान प्रभाव का पूरी दृष्टि का । उनका कथन था कि धर्म, रम, श्रम आदि के गुण में वास्तविक मानव अन्तर्निहित है । टीपोर की मूर्ति विवेकानन्द की भी साधनीय मानव में विद्यमान था । उनके अनुसार साधनीय राष्ट्रवाद का साक्षात्कार करने के लिए साधनानुसंग की समीचीन चयना आवश्यक थी । जिस गुण में विश्व सधनवाद, नाशवान और नीतिभवाद से पीडित था उस समय अद्वैत वेदांती के रूप में विवेकानन्द ने साधनीय धार्मिक भावना की सुनर्मीवित करने का संदेश दिया । उनकी दृष्टि में भारत का जागरण तथा सुक्ति साधनीय श्रम तथा अनुसंग के साक्षात्कार की एक सीढ़ी थी ।

प्रकरण 2

स्वामी रामसीध

1 प्रस्तावना

स्वामी रामसीध (1873-1906) आधुनिक युग में वेदांत दर्शन के एक अस्विक महत्व वाली प्रतिपादन हुए हैं । पञ्जाब में एक ब्राह्मण परिवार में उनका जन्म हुआ था । उनका परिवार अपने ही गौस्वामी भुक्तसीधाल का बंजर मानता था । रामसीध अत्यंत परिश्रम विद्यार्थी थे, किन्तु अपने लक्ष्य शक्तिमानवीय परिश्रम के फलस्वरूप वे साहूजी के श्रीमन् विरिचयन बालिव में भक्ति के प्रार्थनार के पद पर पहुँच गये । वे बलित के वास्तवी विद्यार्थी थे । वे उर्दू तथा फारसी के भी विद्वान् थे और इन भाषाओं में कविता बर लेखत थे । वे दृष्टि में महान् भाव थे । विवेकानन्द की प्रेरणा से

गणित के प्राचार्य बीरसायी लीकराम ने सांसारिक बंधन और स्नेह का परिचय कर दिया और स्वामी रामलील ने काम से सम्पत्ती के दहन धारण कर लिये। उन्होंने ज्ञानम तथा अमेरिका में लगभग तीन वर्ष (1902-1904) तक व्याख्यान दिये। वे नि स्वाध्याय, परम वैराग्य तथा अपरिग्रह के वेदांगी आदर्श के जीवन्त प्रतिमान उदाहरण थे। समुक्त राज्य अमेरिका में उनका एक दूसरे ईसा मसीह के रूप में अभिनन्दन किया गया। उनके शिष्यों तथा प्रयासकों का विश्वास था कि उन्होंने गानमुक्त का परम पद प्राप्त कर लिया था। वे निम्न प्रकृति के सभी प्रसीमनों से मुक्त हो चुके थे, और उनके शिष्यों की दृष्टि में वे चणकद्वीपों के प्रतिपादित विमुखासीत के आदर्श के मूल रूप थे। कहा जाता है कि वे माया के सभी प्रसीमनों और सीमाओं को पार कर चुके थे। वे वेदा त में वर्णित ईश्वर चैतन्य के अतिरिक्त की साक्षात् मूर्ति थे। विन्तु कम्पीर छात्रों के साथ साथ रामलील ने अपने देश के पुनरुद्धार की उत्कण्ठ और ज्वलन्त भावना थी। भारत लौटने पर उन्होंने उत्तर प्रदेश में अनेक नगरों में उपदेश दिया और कहा कि वेदात का माग ही राष्ट्रीय मुक्ति का एकमात्र माग है। 1906 में दीपावली के दिन वे देहरी के निकट गया में दूख बसे, और इस प्रकार उनके जीवन का दुःख अन्त हुआ।⁷⁰

रामलील कवि, गणितज्ञ, रहस्यवादी, वेदांगी और सदेसवाहक थे। उन्हें गणित के आधार पर वेदात की प्रत्याभवाओं को सिद्ध करने में आनन्द आता था। विवेकानन्द तथा अरविन्द की भांति रामलील का भी मत था कि वेदात में दर्शन, धर्म तथा विज्ञान का समावेश है, और उल्लेख सिद्धांतों की व्याख्यान अनुभव के आधार पर सत्य सिद्ध किया जा सकता है। रवीन्द्रनाथ की भांति रामलील की भी प्रकृति से गहरा अनुराग था। उन्हें हिमालय के उत्तम श्रृंगों, तथा की चपनती हुई चरम घाटों और उत्तर भारत के पर्वी एवं नुकी की समृति में असीम आनन्द की अनुभूति होती थी। उनकी आत्मा राजनीति के कुचक्र और परिणतकों से अधिकधिक दूर थी। राजनीति ज्ञान के प्रतीक जैसे विधि के सम्प्रदाय, राजनीतिक दार्शनिक के सिद्धांत, प्रभुत्व के स्तर आदि के उनकी आत्मा निराश अवस्थित थी। उन्हें केवल एक ही पक्ष में प्रयोजन था—आध्यात्मिक सत्ता की प्रभूत वास्तविकता। फिर भी मैंने रामलील को आधुनिक भारतीय राजनीति का चिन्तन के इतिहास में समाविष्ट कर लिया है। इसके दो कारण हैं। प्रथम वरवि रामलील राजनीतिक विचारक और कामकर्मी नहीं थे, फिर भी उनके हृदय में मातृभूमि के लिए उत्कण्ठ प्रेम तथा उत्साह था। अपनी सबसे प्रारम्भिक रचना 'अस्तित्व' में जो उन्होंने भारत की दास मनोवृत्ति के स्वतन्त्र करने की बात कही है।⁷¹ अमेरिका में प्रवास के दौरान भी उन्होंने अपने देशवर्तिक के उद्धार वाक्य किये और कहा उन्होंने 'भारतीयों की ओर से अमरीकियों से असीम' क्षीपक एक मुक्ति का प्रस्तावित की। स्वदेश लौटने पर भी वे देशवर्तिक का यह सदेश सतत सुनाते रहे।⁷² दूसरे एक समय या जब पञ्जाब, उत्तरप्रदेश और बिहार की हिन्दोवापी तरल पीछे के मत पर रामलील का गम्भीर प्रभाव था। 'नन्द धर्म', 'प्रह्लादधर्म' आदि पर उनके व्याख्यानो ने तरणों की बहुत प्रभावित किया। उनकी नि स्वाध्याय, उनके समाधारण ज्ञान तथा पुन्यवीर आत्मकर्म ने विद्यार्थी वर्ग की बहुत प्रेरणा दी। उन्होंने देशवर्तिक की अनेक उत्प्रेरित कविताएँ लिखी। अपनी एवं कविता में उन्होंने लिखा है

"ईश्वर हमारे प्राचीन भारत की आशीर्वाद की,

70 स्वामी रामलील के जीवन की जानकारी के लिए रामलील कल्याणेश्वर लील द्वारा प्रकाशित निम्न ग्रन्थों का अध्ययन कीजिए। नाचयन स्वामी 'स्वामी रामलील ज्ञानम का जीवन चरित्र', पृष्ठ 652, ज्ञानम तथा *Sri Ramana: His Life and Legacy*, मार्च 1936, पृष्ठ 720 दूरबीन, *The Story of Swami Rama*, मार्च 1935, पृष्ठ 291।

71 दूरबीन *The Story of Swami Rama*, पृष्ठ 225।

72 रामलील 'An Appeal to the Americans on behalf of India,' *In Woods of God Realization* विन् 7, पृष्ठ 119-87।

73 रामलील ने पालिक दर्शन, वेदात की विविध व्याख्या तथा औद्योगिक चलाओं के अध्ययन के लिए जीवन समाप्त कर का एक उत्तम अवधि करने का विचार किया था। वेदात *In Woods of God Realization*, विन् 7, पृष्ठ 69। इसके साथ ही कि देश की जनजातीय समाजिक और आर्थिक समस्याओं के उचित राष्ट्रीय वा दृष्टिकोण प्रकाशनीय था।

प्राचीन भारत, एक समय का नीरवस्थानी भारत,
सागर द्वीपी से समुद्र तक,
कस्मीर से बंगालुमारी तक,
सबन धूप धाति का साम्राज्य हो,
ईश्वर हमारे भारत को आशीर्वाद दो ।
उसकी सब आत्माएँ प्रेम वचन में बँधें,
और वे अपने वतन्धों का समुचित पालन करें
साक्षर सत्य के ज्ञान से भर दो उन्हें,
और उनके पुष्प नित नूतन होकर चमकें,
देश तुम्हारे वरद हस्त की प्राप्ति करा करता है,
उसकी मुन्नी एक बार पुन
सबसे राष्ट्रीय भावना उर्वेल दो
उसका वश सागर तट से सागर तट तक फैले,
ईश्वर एक बार पवित्रधारी भारत की आशीर्वाद दो ।⁷⁴

उस समय जब देश ब्रिटिश साम्राज्यवाद के जवाबों और अत्याचारों के विरुद्ध सत्य की अग्नि परीक्षा में होकर गुजर रहा था, रामलील के जीवन की साधुता, पवित्रता, विद्वता तथा सत्य के राजनीतिक कार्यक्रमों की भी बहरी प्रेरणा थी। इसलिए यद्यपि रामलील ने सम्भवतः देश कुछ नहीं दिया है किन्तु सभी अब में राजनीति दर्शन की नीति में रखा जा सके, फिर भी राष्ट्रीय राष्ट्रवाद के नैतिक तथा राजनैतिक खोली की विवेचना करते समय उनके सम्बन्ध में विचार करना आवश्यक है।

2 रामलील के राजनीतिक विचारों का साधुनिक आधार

विवेकानन्द की भाँति रामलील भी अद्वैत सम्प्रदाय के वैद्यकी थे।⁷⁵ जबकि विवेकानन्द सत्य जीवन के अन्तिम दिन तक आस्तिक भक्तिमार्गी हिन्दू धर्म के अनुष्ठानों और समुदाय का पालन करते रहे, रामलील परम सत्य के ध्यान और चिन्तन में ही पूज्य माने रहते थे। उनके मन्त्रमाला आत्मा की कस्मीर, निरवत, नील धाति में दूबे रहने की अवकाश साधना रहती थी। इसी निमित्त की उपनिषद में सभी वाची निवर्तते ब्रह्मा है। उसकी विद्याओं का प्रमाण सत्य है मानव मानव तथा अनुसन्धानों परब्रह्म की आत्म्यात्मिक एकता, और इसी की जाहोने बार बार पुनरागत। उनके अनुसार वद्वत ध्यान का उच्चतम सिद्धांत है कि एक अदि आत्म्यात्मिक सत्ता ही एकमात्र सत्य है। उनके विचार में वैश्वत न ही वचन और किष्टे का आत्मसत्त प्रत्ययवाद है और न लोको तथा वत का वस्तुगत प्रत्ययवाद। रामलील ने हेनैल और रीमिग ने निरपेक्ष प्रत्ययवाद का भी उत्तेजित किया है। किन्तु हेनैल ने निरपेक्ष सत्य (साम्बन्धी आत्मा) की योद्धा प्रकृति को महत्व दिया है। यही विपरीत रामलील के अनुसार परम सत् सत्य चित और मानव है।⁷⁶

रामलील ने ह्यूम के सत्यवाद का खण्डन किया, उनका विचार था कि मनुष्य ज्ञान अतः वरुण की निस्तम्भता में परम सत् का साक्षात्कार कर सकता है। वे यह भी मानते हैं कि सत्य ब्रह्म एक सार वस्तु है, उसका अस्तित्व है और उसका अस्तित्व सार परम सत्य है। वरब्रह्म ही मनुष्य के हृदय में निरावस्थान है। इसलिए मानव वच की ईश्वरीय दिशा की ओर प्रेरित करता है। विवेकानन्द की भाँति रामलील ने भी सिखाया कि मनुष्य की सत्ता का स्वरूप देवी है, योद्धा ज्ञानन भाँति सभी आत्म्यात्मिक धाति का प्रतिरूपन है, उसी की प्रकृति है।⁷⁷ उन्होंने सामाजिक

74 रामलील के सत्य की आत्मता का हिन्दू धर्म रामलील सम्बन्धित नील सत्यवाद द्वारा प्रमाणित *In Woods of God Realization or the Complete Works of Swami Ramkrishna*, का सम्बन्धित किया है। इस लेख में अन्तर्गत सम्बन्ध का उल्लेख सम्बन्धी न गया है।

75 'Idealism and Realism Reconciled,' *In Woods of God Realization*, Part 6, पृष्ठ 1-46।

76 रामलील कोशक वरत है कि मनुष्य का सत्य अतीत न विचार हुआ है और उनमें केवल एक सत्य के ही सत्य विचार है। *In Woods of God Realization* Part 3, पृष्ठ 53-76।

वासनाओं, प्रलोभनों और भोगों के चिपटे रहने की प्रवृत्ति की मरम्मत की। बुद्ध की नीति रामलीय का विरसास था कि मोह अथवा कृपा ही संसार के सब दुःखों की जड़ है। इसलिए उन्होंने संन्यास (त्याग) की ही सारथेय्य माना।

एक वैदानी होने के नाते रामलीय मानते हैं कि विनय प्रतीति मात्र है, उसका वास्तविक अस्तित्व नहीं है, उसका वैयक्तिक आभास होता है। इसलिए जबवा हार्दिक आग्रह था कि मनुष्य को सामाजिक नय तथा वासनाओं पर नियंत्रण प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। बुद्ध आचरण के द्वारा मनुष्य ईश्वरी शक्ति उपलब्ध कर सकता है, और उसी की कृपाशक्ति कीजल का आभार बनाया जा सकता है। बुद्धता ही सभी जगह का भाव है। सभी सभी रामलीय परमात्मा की 'राम' कहकर पुकारते थे, और 'राम' का अर्थ है विनय व सम्यक् करने वाली शक्ति। उन्होंने यह भी पापना की कि वेदा परम सत्य के साथ सादरार्थ्य ही बुद्धा है। रामलीय की मनुष्य की आत्मा के ईश्वरत्व में अस्ति आस्था थी, और उनका आत्म विश्वास इतना अत्यन्त था कि वे समझते थे कि मैंने उपलब्ध आध्यात्मिक अनुभूतियों को उपलब्ध कर लिया है। उनकी इस अतिरिक्त आत्मपरकता ने उनके अन्तर्गत प्रकृतियों को अग्रसर कर दिया था, जिससे वे एक पुरस्तिह उनमें से एक थे।

ईश्वर चेतना प्राप्त करने के लिए परम वैराग्य की आवश्यकता होती है। धर्म का आचरण यही शक्ति कर सकता है जिसकी आत्मा सबल हो और जिसने इन्द्रियों के प्रलोभनों पर विनय प्राप्त कर ली हो। परमात्मा का सत्य इन्द्रियों के सम्मुख सुखा के चरित्रवादी का ही फल है। मनुष्य की बाह्य व्यापार में अपनी शक्तियों का अव्यय नहीं करना चाहिए। सम्पूर्ण शक्ति की शक्ति के प्रत्यक्ष में वेष्टित कर देना होगा। रामलीय ने शब्द सभी को आत्म उनमें तथा वास्तविक सभी शक्ति और शक्ति के रहस्य की पहचानने की प्रेरणा दी। उनका आग्रह था कि हम अपने मन के सभी सुख प्रेरणा सभी की ईश्वर की शक्ति में बिना देना चाहिए।

3. रामलीय का सामाजिक दशन

(क) आधुनिक सम्प्रदाय की अवलोकना—रामलीय की आत्मा सर्वत्र सावधान चेतना (पर-ब्रह्म) के लिए उत्तम करती थी। उनकी आत्मा सवेगात्मक तथा कायप्रधान थी। वह हिमात्म के एकान्त में प्रेम था। वे सब स वासी रह। इसलिए वे आधुनिक सम्प्रदाय के आलोचन थे। वह आधुनिक सम्प्रदाय में तीन मुख्य दोष दिखायी देते थे।⁷⁷ वे कहते हैं कि कृत्रिमता आधुनिक युग का सबसे बड़ा अविचार है। कलमान सम्प्रदाय में जाता की प्रयत्न करने तथा भीड़ का सम्मानपान करने पर अधिक धन दिया जाता है। बाह्य नाम और रूप का अधिक आग्रह किया जाता है। आध्यात्मिक विधि के प्रमुखसम्प्रदाय प्रत्यक्ष की उपेक्षा की जाती है, बहुसंख्यक लोग दूसरों की राय की कृपा पर जीते हैं तथा सब प्रकार की कृत्रिमता की मोहिमों में पते रहते हैं। अपनी 'सम्प्रदाय' कोयन शक्ति में रामलीय ने लिखा है

“तुम दासों की रीति की तुष्ट करने, ज्ञान के दासों और सम्मानित भूतों की प्रयत्न करने के लिए कुनय करते हो। तुम अनुकरण पर आधारित कर्तव्यों का पालन करते हो और परम्परागत तथा कृत्रिम कला में छोड़े दोड़ते हो।”⁷⁸

रामलीय के अनुसार आधुनिक सम्प्रदाय की दूसरी तुलना धनलोभुषता है।⁷⁹ सम्प्रति की वासना ने कभीभूत होकर बीच दिन रात द्वाप ऊपर दोड़ते हैं। अतः रामलीय लिखते हैं

“तुम्हारे आध्यात्मिक स्वार्थों में तुम्हारे प्रेम पर विजय पा ली है, सामाजिक धन वैभव ईश्वरत्व पर आक्रमण कर रहा है, तुम न ईश्वर के लिए स्वयंज हों, न रीति के लिए, न प्रेम करने के लिए स्वयंज हो और न धर्म के लिए।”⁸⁰

77 “Civilization”, In *pyonds of God Realization* वि० 5, पृष्ठ 124-34।

78 सभी रामलीय की “To Civilization” कोयन शक्ति।

79 In *pyonds of God Realization* वि० 5 पृष्ठ 127-36।

80 रामलीय की शक्ति “To the So called Civilized”

आधुनिक सम्प्रदाय में यह भी लालसा या ही शयन धामन है, उसी के मायाकारी भाग्य हीम इधर-उधर नाचते फिरते हैं, साथ समय अपनी सम्प्रति के दास बन गये हैं। विवेक शत्रुओं की उन्मादपूर्ण आवाजाय में जीवन के वास्तव सत्य सचीत के आनन्द की लगभग बहिष्कृत वर पति है, और जीवन गिरस उठावना और उठावों का प्रयत्नमयय यम क्या है। इसलिये भारतीय सत्य के कि अब 'चिन्ता और सत्य' की मृग्यु की पक्षी कवता आवश्यक है, क्योंकि "अधुनिक यम्यु दु की वनाता है।"

आधुनिक सम्प्रदाय की तीसरी दुवसता जनता के खेती हुई मानसिक बीमारियाँ हैं। मानव सभी राष्ट्र ईर्ष्या और मय के प्रस्त हैं। राष्ट्रीय का आग्रह है कि मनुष्य को अपनी सब शय भी आवर्तें छोड़ देनी चाहिये। उनका हृदय अनुरोध है कि आधुनिक सम्प्रदाय के मिताचार और मय दारी का समावेश किया जाय। धीरिजवादी अधिदवालों और वाणिज्यवादी वाद्यों की दुज का अन्त सभी ही सचता है अब जीवन के आध्यात्मिक दिया में मोहा जाय। जनता की सम्प्रतिपर ज्योति ही पीडा, ईर्ष्या, दीवख, मृग्यु तथा अह्वार के सम्प्रदायी साम्राज्य का अन्त कर लगी है।

(क) राजनीतिक शक्ति के स्रोत के रूप में धर्म का महत्व—राष्ट्रीय की आत्मा व प्राणी भारत के गौरव और महत्ता की पुनर्जीवित करने की आवाजाय स्वागत थी। वे कहा करते थे कि अब प्राचीन भारतीय अथवा जीवन प्रथ, साम्प्रदाय और निर्जीवता आदि वैदानी आदर्शों के मृग्यु वल स्थिति करते थे सब देश स्वतन्त्र था। मिस्री, अनुर और मीड आदि प्राचिनी भारतीय सौनाओं पर अधिकार इसलिये नहीं कर पायी कि उस युव में भारतीय अपना जीवन वास्तविक यम के मृग्यु शार बिताते थे। देश के राजनीतिक अध पतन का मुख्य कारण यह था कि सौरी ने आह्वार, हवाम, वैदी आदि सच्चे धार्मिक आदर्शों की उल्लेख कर दी थी। अपने एक सत्यत कोकसो ज्ञान में राष्ट्रीय ने कहा था "एक समय था जब हिन्दी की सौव बड़े शक्तिशाली थे किन्तु वे शारत का आक्रमण करने और उसकी जीतने में असफल रहे, मिस्री की उरकय के शिखर पर वे किन्तु वे ही भारत की अपने अधीन न कर सके। एक समय ईरान की सम्प्रतिज्ञान था किन्तु उसका शारत की और शत्रुतापूर्ण दृष्टि है देखने का भी साहस नहीं हुआ। रोमन सौरी का मृग्यु सत्यत मृग्यु विवेक में सहृदयता था और उस समय सब विदित समस्त पुष्पी पर उनका अधिपत्य था। किन्तु रोमन साम्राटी की भारत को अपने अधीन करने का साहस नहीं हुआ। यूनानियों का यम सत्य हुआ तो वे शताब्दिया सब भारत पर कुदृष्टि नहीं दाख सके। फिर सिक्खर नाम का एक व्यक्ति हुआ जिसे मसरी से सिक्खर महान कहा जाता है, भारत आने से पहले उसने, जितना जगत उसे ज्ञात था, उस सत्यको विवेक कर लिया था। उस शक्तिशाली सिक्खर को ईरानियों की सम्पून केन मिल गयी थी और मिस्र की सेनाएँ भी उसके वश में थी। वहीं सिक्खर भारत में प्रवेश करता है और वीरय नाम के छोटे से भारतीय राजा से उसकी मुठभेड ही जाती है और यह यमयी ही जाता है। इस भारतीय राजा ने सिक्खर महान को नीचा दिखा दिया, और उसकी सब सेनाओं को वापस लौटना पडा। सभी सेनाएँ परास्त हुई और सिक्खर महान पीछे पीछे पर वापस हुआ। यह सब कैसे हुआ ? जब हिन्दी भारत की जनता में वैदात का प्रचार था। क्या युद्धे इसका प्रभाव चाहिये ? यदि प्रभाव चाहिये ही तो उस समय के यूनानी भारत का जो विवरण छोड़ गये हैं उसे पढ़ो, उस समय के सिक्खर ने सभी यूनानियों ने भारत के सम्प्रय में जो कुछ लिखा है उसे इति हास में पढ़ो। उस सबसे पुम्हें पता लग जायगा कि उस समय जनता में स्वाधहारिक वैदात का प्रचार था और देश शक्तिशाली था। सिक्खर महान को वापस जाता पडा था। फिर एक समय आया जब महामुख गजनी नामक एक साधारण मुन्दरे ने सबहु बार भारत को लूटा, सबहु बार वह भारत से, जितना यम मिस्र सका, शूटवार से गया। उस दिना की कवता का विवरण पढ़ो, पुम्हें पता सवेगा कि जनता का यम वैदात में विविक्तुल उलटा था। वैदात का प्रचार था, किन्तु केन कुछ पुने हुए सौरी में। जनता ने उसका परिचाय कर दिया था, और इसलिये भारत का यम पतन हुआ।"

रामतीर्थ का कहना था कि भारत का पतन धर्म के कारण नहीं, बल्कि राष्ट्र के अभाव के कारण हुआ था। इसीलिए उन्होंने वेदाङ्ग की सत्ता की पुनर्जीवित करने का उद्देश्य के साथ सम्मेलन किया। उनकी इच्छा थी कि वेदाङ्ग की राष्ट्रीय जीवन का आधार बनाया जाय। उनके विचार में व्यक्ति को तथा समूहों दोनों की सम्पत्ति साथ आधारभूत सिद्धान्तों का अनुसरण करने पर निर्भर होती है। निमग्नता, उदम, आत्म-त्याग, आत्म विस्मरण, सामग्रीय प्रेम, प्रसन्नता और सामाजिकता।⁸²

(म) जनसत्ता की समस्या का नैतिक हल—रामतीर्थ इस अर्थ में आधुनिक समाजवादी और समाज-सुधारक थे कि वे देश की सच्ची हुई जनसत्ता से चिन्तित थे। उन्होंने जनसत्ता की समस्या का नैतिक हल प्रस्तुत किया। उन्होंने भारत के राजा की सलाह दी कि यदि देश की सत्ताओं से बनाना है तो प्रजापद का पालन करो। देश की उदीयमान जीवन की रामतीर्थ ने इन शब्दों में कथन-पर कथनारा 'गुडता। गुडता। गुडता' शब्दों द्वारा प्राप्त करनी है।⁸³ उनका कहना था कि यदि देश के लोगों ने श्रेष्ठ आदर्शों का अनुसरण न किया और न 'सलाह' मानी तो प्रजापति के निम्न निरूपण ही अपना काम करने और देश का नाम निम्नता ही आकरा। रामतीर्थ ने बड़े आस्था से कहा कि यदि भारतवासी अपने जीवन में गहन नैतिक और आध्यात्मिक आदर्शों का पालन नहीं करते तो प्रजापति गुड होकर उनका सम्मान कर देगी।⁸⁴ इस प्रकार रामतीर्थ ने वेदाङ्ग के आध्यात्मिक प्रत्यक्षवाद की इस दृष्टि से व्याख्या की कि यह देश के लिए प्राणदायिनी शक्ति का सन्देश बन गया। उनका आग्रह था कि सभीगुण की सभी क्षमता और उनके उत्पन्न वाधाओं पर विजय प्राप्त की जाय, और श्रमा, निष्पत्ति तथा आत्मसत्ता का सकल परिधान किया जाय। उनका विश्वास था कि प्रजापद के पालन से ही देश अपनी पुरातन महत्ता और गौरव की पुनः प्राप्ति कर सकेगा। उन्होंने गुडता के साथ घोषणा की कि यदि प्राचीन वैदिक और औपनिषदिक आदर्शों के आदर्शों की रक्षा करनी है यदि गन्तव्य की दृष्टि पर ईश्वरीय राज्य स्थापित करना है अर्थात् यदि नैतिक और आध्यात्मिक अनुभूतियों का नैतिक आधार तैयार करना है, तो व्यक्तिगत गुडता तथा स्वच्छता से काम आरम्भ करना होगा। ईश्वर चेतना के आकाशिका की आभरण के उच्चतम स्तर पर पहुँच कर सभी दिग्गज तथा प्राकृतिक वातावरणों इच्छाओं तथा अनुहार का परिवर्तन करना होगा। स्पष्ट है कि रामतीर्थ का यह उच्च सन्देश पीछे से व्यक्ति के लिए ही था। देश की सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओं के हल के लिए उन्होंने आत्मसत्ता का अधिक नरम माध्यम निर्धारित किया। उन्होंने कहा कि देश के जीवित लोगों को देखते हुए आवश्यक है कि उनके मानों की सत्ता बननी चाहिए। समान तथा राष्ट्र के उत्थान के लिए व्यक्तियों की क्षमता का परिदृश्य करना होगा। रामतीर्थ का विश्वास था कि जो जीवन जीवन तथा शक्ति का गौरवान्वित करते हैं वे अपने को अनिमित्त घातनीयता से उत्पन्न अनिष्टता सम्मान से अपने के लिए स्वेच्छा से अपने उत्तर समय का अनुभव मनाने में समर्थ होते। उन्होंने लिखा है 'एक समय का जब भारत के आत्म उपनिवेशियों के लिए अधिक सत्ता एक अर्थान थी। किन्तु वे दिन अब चले चले हैं, परिस्थितियाँ एकदम विपरीत हो गयी हैं, और अब जनसत्ता देश के मानों की देखते हुए कहीं अधिक बढ़ गयी है। अतः बड़ा परिवार अनिष्टता बन गया है। हमें देश से उस पतन आदेश का उन्मूलन कर देना चाहिए जो हमारे बीच काल से हम सिखाया आया है। विवाह करो, अज्ञानपूर्वक समाधान अपनी समस्या बनाओ, बालता में जीवन बिताओ और उसी में मरो।' 'नवयुवकों, इस सबकी बच करो। भारत के भविष्य के लिए उत्तरदायी रहो, इसे बच करो। मैं नैतिकता के नाम पर, भारत के नाम पर, मुझसे लिए और मुझसे बचाव के लिए आग्रह करता हूँ कि इन अमानतापूर्ण विवाहों को बच करो। इससे जनता का चरित्र गुड होगा, और जनसत्ता की समस्या भी कुछ सीमा तक हल होगी।'⁸⁵ रामतीर्थ ने सिखाया कि भारत के नवयुवकों को वेदाङ्ग के उन आदर्शों के आधार

82 रामतीर्थ का 'संस्कृत' The Secret of Success पुरातन रूप The Story of Swami Rama म पृष्ठ 123-30 पर उद्धृत।

83 रामतीर्थ 'The Problem of India,' In *Feeds of God-Revelation* पृष्ठ 7, पृष्ठ 28-37।

84 वही पृष्ठ 32-34। रामतीर्थ का कहना था कि येन सब ध्यान के पतन के पुनः म जनसत्ता की ही समस्या थी। वही पृष्ठ 29।

पर अपने चरित्र का निर्माण करना चाहिए जो युद्धका क्षमता सक्ति का उपदेश देते हैं। उन्होंने यह बना दी कि यदि भारत में युद्ध कायम का जीवन बिताने के लिए तैयार नहीं हैं तो उन्हें बलिदान विनाश का सामना करना पड़ेगा। युद्धका व्यक्तिगत तथा राष्ट्रीय सक्ति का आधार है। यदि युद्ध जीवन का प्राप्त धोरण का परिचयना किया जाय तो विद्वत् भी आश्चर्य हमारे सामने प्रस्तुत करे है य सत्य प्रकटनाचूर हो जायेगी। युद्धकाय के पालन से ही युद्धकाय के विकास के लिए भारत चरित्र का निर्माण हो सकता है।

सामाजिक स्तर पर राष्ट्रीय का वैधानिक निष्पत्तिका का संदेश देती था, प्रति देश का ईश्वर की सेवा के लिए निष्ठावान बन का उपदेश था। राष्ट्रीय के अनुभव किया कि हम अपने देश में नैतिक मूल्यों को समाधिष्ट करने ही देश का विरासत तथा भावित के समर्थन से बचा सके हैं।

4 राष्ट्रीय का राजनीतिक दाय

(क) गतिशील अन्त्यात्मिक राष्ट्रवाद का सिद्धान्त—1893 में दादाभाई नौरोजी, ये उस पथ भारतीय राष्ट्रीय राष्ट्रवाद के सम्पदा थे, साहोदर गये। उनके आग्रह के उत्तर में वे मध्य उत्तर प्रदेश में गये। उस समय भारतीय विचारार्थ थे, उन्हें उन उत्थापकों के स्वयं देश के अवसर मिला था। किन्तु वे अपने अध्यक्षता में इस मन के कि उन पर समाज और राष्ट्रीय कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अपने एक पत्र में उन्होंने लिखा "25 दिसम्बर, 1893। काय विचार सत्य के सहित दादाभाई नौरोजी 3 बने ही सारी के आये। नगर निवासियों ने उनका हार्दिक स्वागत किया। लोगों के अतीव उत्साह था। कांग्रेस वाली ने ही मानो उन्हें बहुत और विचार का पत्र दे दिया था। नगर में विभिन्न स्थानों पर मनुष्यो मेहताओं बनायी गयी थी। युद्ध न हमारे शीम सम्मिलित है। वे सब बड़े प्रभाव हैं, उनकी प्रभावता उनकी पद रही है। किन्तु युद्धका कोई प्रभाव नहीं पड़ा है। वह सब हर्षोल्लास निमित्त है ? मैं अपनी इस मन स्थिति के लिए सत्य का आभारी हूँ।" 1893 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन के भी सम्मिलित हुए किन्तु बल्लभों के आत्मकारिक भावों का उन पर प्रभाव नहीं पड़ा। उन्होंने लिखा है "मैं केवल काल में आये हुए कलश और व्यापारिकता के भाषण सुनने के लिए गया था जिससे उनकी सत्यता का सम्बन्ध में स्पष्ट अपनी राय बना सकूँ। उस दिन मैंने ईश्वर की प्रभाव दिया कि मैं बल्लभ की भाँति दादाभाई का स्वागत करने के सोचने आगत में नहीं वह गया, और भाव में बहुत ही कांग्रेसी बल्लभ के आत्मकारिक भावों ने मुझे कोई आनन्द प्रभाव प्रेरणा नहीं मिली, वे सब सोचते हैं।" किन्तु इस सबके वह अनुमान नहीं लगाता चाहिए कि भारतीय के देशभक्ति का उत्साह नहीं था। केवल इतना ही कहा जा सकता है कि वह उत्तर प्रभाव, विचारों और उत्तरों में आगत नहीं जाता था। विचारार्थ तथा सम्पदा के रूप में वे कठिन तथा सत्य परिचय के विचार करते थे। उनमें देशभक्ति की भावना की वह निश्चित है। 21 अक्टूबर, 1895 को उन्होंने निवासियों के अपने एक पत्र में लिखा था "मैंने देशभक्ति पर भी भाषण दिया।"

जिन दिनों भारतीय अमेरिका में (1902-1904) उपदेश कर रहे थे उन्हें दिया किर्ण के राजनीतिक सम्पदा के सम्पदा रखने वाले कुछ भारतीयों ने उनके भारत के लिए कुछ करने का आग्रह किया। उनमें से एक महाशय भी जो जोशी थे जो तीन कामिसनों में भारतीय के सर्व के रूप में काम कर रहे थे किन्तु भारतीय ने विचार सम्पदा का किसी सक्रिय सम्पदन नहीं किया। फिर भी उपदेश कीटने पर वे देश के नैतिक सुधारकाय की कामकायों पर सामान्य और पर प्रभाव करते रहे। एक अवसर पर उन्होंने कहा "यम बीच की सम्पदा समाधि में लीन हो गया था, और उसी निश्चित सम्पदा की अवस्था में सकल उत्पन्न हुआ "भारत स्वतन्त्र हो—भारत स्वतन्त्र

85 प्रसिद्ध की पुस्तक *The story of Swami Rama* पृष्ठ 69-70 पर उपर।

86 वही पृष्ठ 70।

87 वही, पृष्ठ 74।

88 शक्ति राष्ट्रीय की *'An Appeal to Americans,' God Realization* पृष्ठ 7, पृष्ठ 127।

होना ।' सभी राजनीतिक वादकर्त्ता राम के उद्धारणा के रूप में काम करेगे, वे मेरे हृत्पथ तथा पथ हैं । राम उन सभी पीढ़े हैं ।"⁸⁸

रामतीथ कुछ राष्ट्रवाद में विश्वास करते थे । एक बार अपने प्रेरणा के क्षण में उन्होंने लिखा था "भारतभूमि मेरा घरीर है । न्यायकुमारी मेरे वर हैं और हिमालय मेरा शिर । मेरे देश में मेरा महती है, और मेरा शिर महापुरुष तथा शिशु का उदय है । विध्यापल की शूल-लार् मेरी कटि की मेखला है । बोलमन्दल मेरी आधी और मनोहार मेरी दावी टांग है । मैं सम्पूर्ण भारत हूँ, पूरुष तथा पश्चिम मेरी भुजाएँ हैं, और मैं उन्हें मानवता का आभिनन करने के लिए सीधी रेखा में पसारते हुए हूँ । मेरा प्रेम सावधोम है । हाँ ! हाँ ! यह है मेरे शरीर की मुद्रा । यह मेरा हृत्पथ अनन्त अन्तरिक्ष में टबटनी लगाये देखा रहा है, शिशु मेरी अन्तरालना सबसे आत्मा है । जब मैं चलता हूँ तो मुझे लगता है कि भारत चल रहा है । जब मैं खोलता हूँ तो मुझे लगता है कि भारत खोल रहा है । जब मैं निश्वास लेता हूँ तो मुझे लगता है कि भारत निश्वास ले रहा है । मैं भारत हूँ । मैं चल रहा हूँ । मैं घिर रहा हूँ । देशभक्ति की यही उत्कलन अनुभूति है, और यही व्यावहारिक वेदांत है ।"⁸⁹ उनका राष्ट्रवाद राजनीतिक तथा आर्थिक विचारों पर आधारित नहीं था, देश के सभी निवासियों के साथ आध्यात्मिक एकाता की भावना ही उसका आधार थी । वेदांती सत्यज्ञान की भावना से प्रेरित होकर एक बार उन्होंने कहा था "सम्पूर्ण भारत उसके प्रवेश पुन में पिन्दीभूत है ।"⁹⁰ उनके विचार में भारतीय राष्ट्रवाद के विकास के लिए धार्मिक पथों की सक्रिय करने वाली सकीयता और वट्टता का अन्त करना अति आवश्यक था, उन्होंने परम्परावाद की मानना की और कदम के चलने चलने की कामना की । राष्ट्रवाद के सम्बन्ध में विवेकानन्द की राति उनका ही दृष्टिकोण धार्मिक था । उनका विश्वास था कि व्यावहारिक वेदांत हृद तथा जीवनदायक राष्ट्रीय राति का आधार बन सकता है । वे कहा करते थे कि सच्ची, वास्तविक आध्यात्मिकता ही वेदांत का हार है, और वेदांत उसी के सहारे भारत एक राष्ट्र के रूप में समृद्ध हो सकता है । रामतीथ ने कूटे न्याय, मोटे मतवादी और औपचारिक अनुष्ठानों का लम्बा विषा और वेदांत के सच्चे धर्म का समर्थन किया । उनके विचार में धर्म की प्रभावशाली सामाजिक राति के द्वारा ही भारत की जनता का उत्थान हो सकता था । उनकी दृष्टि में उस समय की भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस इस प्रचलित सामाजिक राति के अति पर्मन्त ध्यान नहीं दे रही थी । उन्होंने लिखा " भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस अपना सामाजिक तथा राजनीतिक सुधार का उद्देश्य लेकर चलने वाली अन्य कोई संस्था जनता की दलित्त्व प्रभावित नहीं कर सकती, दलित्त्व उसकी आत्मा का प्रेरित नहीं कर सकती कि वह उस जनता के साथ धर्म के साथ से ही नहीं पहुँचती । ऐसी स्थिति में देश में सब प्रकार का सुधारधान का वेदांत में शिक्षाशा से अधिक प्रभावकारी अन्य कोई तरीका नहीं हो सकता । कारण यह है कि वेदांत में राजनीतिक, पारिवारिक, शैक्षिक तथा शक्ति स्थापना और प्रेम का समावेश है, उसके अन्तर्गत स्वतन्त्रता और शांति, शक्ति तथा धर्म, गुरुत्व तथा प्रेम का सामयिक है, और यह सब कुछ धर्म के नाम पर ।"⁹¹

रामतीथ राष्ट्रीयता की किमोदीन मानना के पक्षीयक थे ।⁹² उनका कहना था कि राष्ट्रीयता की किमोदीन भावना की उत्पन्न करने का अतिप्रथम है कि भारत माता के साथ सवेसात्मक आदान प्रदान किया जाय, और भारत माता का जय है देश के में अवस्थित निवासी जो विभिन्न पथों और पथों के अनुयायी हैं । अपनी एक कविता में उन्होंने भारतवासियों से मानुषतापूर्ण अनीन की है

"बाहे हूँ धूरे टुकड़े खाने परे

हम भारत के लिए अपना बलिदान कर देने ।

88 दलित्त्व की पुस्तक *The Story of Swami Ram* पृ 269 पर उद्धृत ।

90 रामतीथ, "The Future of India, In *Words of God Realization* शिर 2, पृ 60 ।

91 नही, पृ 12 ।

92 In *Words of God Realization*, शिर 7, पृ 162 ।

93 नही, पृ 12 ।

चाहे हमें मुझे अपने कपाने पढ़ें,
हम भारत के दीवार की रक्षा करेंगे ।
चाहे हमें जीवन भर लड़ना पड़े ,
हम भारत के लिए अपने प्राण दे देंगे ।
हम जाँती के फटे का आनिमन करेंगे, किन्तु हम
(भारत की उन्नति के मार्ग के) बाँटों को धराकर भंग कर देंगे ।
चाहे हमें हर द्वार पर दुश्मन सामोरे पड़े,
हम आनन्द को हृदय में स्थान देंगे ।
चाहे हमें सब सामंतिन बापन छोड़ने पड़े,
हम अपने हृदयों का एवं आत्मा से साक्षात्कर्म कर देंगे,
तुम सदैव इन्द्रिय विषयों के विमुक्त रहेंगे,
हम सब पाप का नाश कर देंगे ।

राष्ट्रीय भारत माता की आराध्य देवी के रूप में स्तुति दिया करते थे । उन्हें उसकी सभी वि-
धियों से प्रेम था । वे चाहते थे कि दरिद्र, भूखे हिन्दुस्तानी, हिंदू की मारामर वा साक्षात् बलि-
द्वय समझा जाय ।⁹⁴ वे दरिद्रों की पवित्र देवी विभूति मानते थे । उनकी इच्छा थी कि भारतीय
“आत्मियों के बड़े-बड़े विचारों को विचारित करें” और उस वक्त भेदों की राष्ट्रीय भावना को जगाने
कर दें ।⁹⁵ उनकी विचार था कि राष्ट्रीय एकता और सुदृढ़ता की भावना की जागरूक करने के लिए
स्त्रियाँ, बालक, तथा अमीरों को शिक्षित करना आवश्यक है । राष्ट्रवाद की भावना है कि “सब
में प्रेम और एकता उत्पन्न हो ।”⁹⁶ भारतीय ने व्यक्ति-वर्गों की शिक्षा को महत्व दिया, इसके बाद
राष्ट्रनीतिक पराधर्मवाद का परिचय मिलता है ।⁹⁷ इसके अतिरिक्त वे जोधित देवी मायावी की एकता⁹⁸
तथा “राष्ट्रीय त्योहारों” की एकता के भी समर्थक थे ।

राष्ट्रीय ने समाज के निम्ने हुए तथा दलित वर्गों के उद्धार की आवश्यकता की ओर भी
देशवासियों का ध्यान आकृष्ट किया । उन्होंने ‘अन-के-अभिजातजन’ के आदेश का अतिरिक्त
किया ।⁹⁹ उनकी विचार था कि सम्पूर्ण जातीय धर्म की एक ही वस्तु अर्थात् पूजा कर छोड़ देना
सही है कि देश में होता आया था, अस्वाभाविक था । प्रत्येक व्यक्ति को अधिकारमूलक साथ ही
परिचित करने की भावना की वृद्धि करनी चाहिए, किन्तु साथ ही साथ जातीय परिवर्तन का
अभ्यास चलाना भी आवश्यक है । अतः भारतीय का उपदेश था “समाज की भावना का परिवर्तन
के द्वारा वे समर्थक किया जाना चाहिए ।”¹⁰⁰

(ज) राष्ट्रवाद से सर्वोपनिषद् की ओर—महान् देशभक्त होने पर भी भारतीय बहुत
साधनवादी थे । वे किसी एक देश अथवा धर्म के बंधन रहने के लिए तैयार नहीं थे । उनका
तर्क था कि मैं केवल भारतीय अथवा हिंदू नहीं हूँ, मैं अमरीकी और ईसाई भी हूँ । केवल भारत
ही सत्य है, अतः मानवकृत सभी अन्तर तथा भेदभाव महत्वहीन हैं । इस उच्च बहुवर्गीयता की भावना
की दृष्टि से हर व्यक्ति बड़ी आध्यात्मिक करता है । यद्यपि वे सर्वज्ञान तथा आध्यात्मिक सत्यता
वस्तु के आधार पर भारतीय ने मानव आधुनिक का संदेश दिया । उन्होंने कहा “समाज में निराल
कर्म है, विश्व में निराला दुःख और वेदना है, उस सबका समाधान करने पर ही कि तुम मानव
आधुनिक के अतिरिक्त प्रत्येक की ओर सभी एकता के इस सबसे पवित्र धर्म, सबसे पवित्र सत्य, सभी

94 पृष्ठ ५ 12 ।

95 पृष्ठ ५ 13 ।

96 प्रस्तावित कृत The Story of Swami Rama पृ 239 पर उपर्युक्त ।

97 In Woods of God Realization Part 5 पृ 159 ।

98 पृष्ठ ५ 110 ।

99 पृष्ठ ५ 109 ।

100 पृष्ठ ५ 19 ।

101 पृष्ठ ।

के धन का उपलक्षण करने का प्रयत्न किया है।¹¹³ किंतु रामतीर्थ का विश्वास था कि साधव-
बन्धुत्व के लिए आवश्यक है कि पहले राष्ट्र का विकास हो। राष्ट्रीय एकता ईश्वर के साथ
सावर्भौम एकता की दिशा में पहला चरण है। अतः रामतीर्थ ने कहा "समुच्च को ईश्वर के साथ
जपनी एकता की अनुभूति तब तक नहीं हो सकती जब तक सम्पूर्ण राष्ट्र के साथ एकता की भावना
उसकी रग रग में सर्पित नहीं होमे जाती।"¹¹⁴

(ग) स्वतन्त्रता तथा व्यक्तिवाद का सिद्धान्त—राजनीति स्वतन्त्रता के लक्ष्य प्रेमी थे। उन्होंने तार्किक तथा समाजशास्त्रीय दोनों ही स्तरों पर स्वतन्त्रता का समर्थन दिया। तार्किक दृष्टिकोण से मानना स्वतन्त्र है, “बहु स्वयं स्वतन्त्रता है।”¹⁰⁰ उन्होंने कहा “विज्ञान का अर्थ है स्वतन्त्रता, स्वाधीनता।”¹⁰¹ वे स्वतन्त्रता को मनुष्य का नैतिक अधिकार तथा उसकी आन्तरिक प्रकृति मानते थे। अपनी एक कविता में उन्होंने लिखा है

मेरी दृष्टि में हर कोई स्वभाव है।

मुझे बचन, सीमा कबवा दीव नही दिखायी देता ।

तथा अन्य मन्त्र सन्तः ।

मैं तुम की रसक सदा देख रहा हूँ।

एक बार रामलील ने हेनरेल के सम्मुख ये स्वतन्त्रता की परिभाषा की। उन्होंने कहा "स्वतन्त्रता की शब्दी अनुभूति ही वास्तविक स्वतन्त्रता है।"¹⁰⁸ स्वतन्त्रता का अर्थ धारण इसी नियमों की क्रियाविवृति से भूति नहीं है। तत्काल अर्थ यह नहीं है कि मनुष्य सीमित स्वामीय बहु के लोग-विश्वास में जीवित रहता है। इसके विपरीत स्वतन्त्रता अभिप्राय है राजनीति शास्त्र के नियमों तथा जाहज़ों का वास्तविक करना। इसलिए रामलील ने परामर्श कि स्वतन्त्रता तथा जाहज़ा-नियमों में अन्तर्विरोध नहीं है। शास्त्र के नियमों अथवा ईश्वरीय विधान की स्वेच्छा से स्वीकार करना ही स्वातन्त्र्य है।

रामदीप की हथ्था भी कि वेराठ की धाखाओं का सज्ज स्वागतिक बन दिया जाय । वेराठ का अनुमताधीन विषयो एक ही सीमित रचना उचित नहीं है । पवित्र वन में वेराठ का वापसीयित करना आवश्यक है । यह सभी सम्भव है जब स्वतन्त्रता और इच्छा ने जादुई का विषय भर न सज्ज किया जाय । इसलिए रामदीप विनय है "अन्तिक" का वेराठ का अर्थ है पुनः सोराठ, समस्त, शास्त्र सत्ता ने मार का सज्ज रीति, सज्ज का विषय मानना का पवित्र, सब विवेकाधिकारों की रीति देना, वेराठ ने मन्त्र का रीतिमान रीति और हीराकारन सजाय के सज्जका सजाय ।" ११७

समाजशास्त्रीय स्तर पर राष्ट्रीय विचार की स्वतंत्रता तथा 'जन' की स्वतंत्रता के समर्थक थे।¹³ उन्होंने कहा, "प्रत्येक व्यक्ति का स्वतः स्वतंत्रता दिवस है।" जिसमें वह समाज के अपने अनुकूल विचारों को व्यक्त करेगा।" स्वतंत्रता का अर्थ है हमें राष्ट्रीय का अनुकूल या नि:विषयी पक्ष, मतवाद अपना वैयक्तिक के प्रति नहीं ले स्वतंत्रता का, जो कि जमा का है, प्राप्त होता है। जहाँ भी समाज का "हमें के सदस्यों की प्रति मत" का अर्थ है समाज और न सुनकारी स्वतंत्रता का अर्थ है समाज।¹⁴ दूसरी बात है कुछ समाज के प्रति हमें विचार के बीच अपना कुछ मत है। उनका न हमारे के प्रति है। वे हमारे के विचारों में ईशान्वत का नहीं प्रति प्रति है समाज का।¹⁵

102 स्वामी साहसी, "The Brotherhood of Man," *In Word of God*, vol. 1, pp. 290.

103 स्वाधीनतादि, "National Dances" by Lord of G. D. ...
104

104 In Woods of God *By George Peckham*

106 In Woods of G-L-R. Early, from 4 - 10/4/11
107 Water, near T. Co. V. 10/4/11

108 In Hand of God.

108 In Hand of God, *Confessions*, from 6, p. 70.
109
110

110

राजनीय इस पक्ष में थे कि सत्ता की शक्तता की जाँच में तिए बुद्धि की कमी से यह लेना चाहिए। जयका कहना था कि राज्य का आधार जयकी अपनी शक्ति है, यह बहुतसा सही स्थिति पर निर्भर नहीं होता। जय स्ट्रुट विल की मॉडि राजनीय में भी मतमता कि "यका सत्य का प्रमाण नहीं होता।"¹¹¹

राजनीय एवं महान वेदाती थे, किन्तु वे पुराने धर्मशास्त्रा के मतवाद से नहीं बंधे थे। जल वेदाय के विषय में जयर जब की अंतिम प्रमाण स्वीकार नहीं किया। जलका मान्य पाकिस्तान तथा मुक्त चिन्तन की सत्ता की पुन स्थापना की जाय।¹¹² संसुत विद्या के धार्मिक प्रत्येक उक्त सत्य नहीं होता था। उक्त सत्य मास्तीका म संसुत धार्मिक की हर बात की प्रमाण को प्रवृत्ति पायी जाती थी। राजनीय न इस प्रवृत्ति का मसील उठाया और स्वतन्त्र विद्या का समर्थन किया।¹¹³

वेदाती होने के नाते राजनीय व्यक्तिवादी थे। वे चाहते थे कि सभी लोग को सत्ता की स्वतन्त्र चेतना की अनुभूति हो। इसलिये उन्होंने कहा "सम्पूर्ण समाज, सब राष्ट्रा तथा अन्य जल बहुत के आधारम से अपने व्यक्तिव की रक्षा करो।"¹¹⁴ वे इस बात से सहमत थे कि वेदाय का समाजवाद दोनों ही सम्पत्ति के मोह का परिणाम करने का उपदेश देते हैं। जलका विचार था कि समाजवाद के समता, धार्मिक और जेग के आधारों की दास आधार प्रदान करने के तिए वेदाय का आत्म समता सामाजिक द्वाय की शरणा की स्वीकृति आवश्यक है। इसलिये उक्तल अपने जल समाजवाद के दास का निरूपण किया।¹¹⁵ किन्तु सत्य ही सत्य वे सदैव साम्यारिक व्यक्तिव के शाकास्त्र की आवश्यकता पर बल देते रहे। जलका यथय है "सबप्रथम जहा तक समाज का नाम का सम्बन्ध है, मैं उसे व्यक्तिवाद कहना ही पसन्द करता हूँ। समाजवाद' जल सत्य के प्रमुख के विचार का प्रधानता देता है, किन्तु राम के मत में सत्य की सही भावना यह है कि जल विद्या के मुकाबले के व्यक्ति को सर्वोच्चता प्रदान की जाय।"¹¹⁶

(घ) ईश्वरीय विधान का सिद्धान्त—राजनीय का विश्वास था कि विश्व एक नैतिक की भा नायिक कासन (एतस्य का अक्षरस्य प्रमाण) के अधीन है। वे यह भी मानते थे कि नैतिक सत्ता साम्यारिक नियम अदल तथा पिष्टुर रूप के नाते करते हैं, जलके उच्चकोटि की प्रमाण पायी जाती है जलका उक्त थोड़ी निष्फल नहीं कर सकता। इसलिये जो भी व्यक्ति, समूह जल राज्य जलका उत्तमय करता है वह विश्वास की प्राप्त होता है। कोई भी एकता न साम्यारिक नियम का सहज अधिकमन नहीं कर सकता। सरकार भी इस दली नियम से बंधी हुई है। राजनीय विश्वास है 'वे सरकार भी अपने विचार का बाय उपार करती है जलके तथाकथित समूह विद्या के दली नियम के अनुकूल नहीं होते। धादसाय की भाति व्यक्तिगत अधिकारी का भीय पाते, जलकी अपना जलकी अपना समन्ता, परिवर्त की आचना का अनुभव करना, यह कहना कि जल न मुझे यह दिना है—इस सब से जल अपने ईश्वरीय कानून का उत्तमय होता है जलके अनुकूल मनुष्य का द्वासाय हक (अधिकार) हक (इश्वर) है, और जेय प्रत्येक बहुत अनुचित है। यदि हम कोई इस नियम की स्वीकार नहीं करता तो कम से कम सच्चाती का तो इसे अपने जीवन में उठाया ही चाहिए।"¹¹⁷

111 जल।

112 *In Woods of God Realization* जल 5, पृष्ठ 87-89।

113 जलके, *The Present Needs of India In Woods of God Realization* जल 1, पृष्ठ 35।

114 जलका दास *The Story of Rama* म न 237 पर जल।

115 जलकी राजनीय *Vedanta and Socialism In Woods of God Realization* जल 6, पृष्ठ 137।

116 जल, पृष्ठ 167।

117 जलकी राजनीय 'The Law of Life Eternal In Woods of God Realization (जल कासन) जल 3 पृष्ठ 13।

5 निष्कर्ष

स्वामी रामतीथ वेदान्त के महान शिक्षण तथा भूवि थे। यद्यपि वे राजनीति दशम की पारिभाषिक पदावली में प्रशिक्षित नहीं थे, किन्तु परिषद तथा युव के आशयित साहित्य पर, विशेषकर प्रथमवादी सम्प्रदाय के साहित्य पर, उनका अच्छा अधिकार था। उनका विचार था कि यदि वेदानी प्रत्यक्षवाद का सामाजिक तथा राजनीतिक दृष्टि से निवचन किया जाय तो उसका अर्थ होता है कि मनुष्य अपने लक्षित अहं की वृद्धि इच्छाओं तथा मोक्ष के निष्पत्ति होने की प्रवृत्ति का दमन करें और उत्तरोत्तर सामाजिक चेतना (ब्रह्म) की ओर उठता जाय। रामतीथ ने राष्ट्रवाद का जो स्वरूप प्रस्तुत किया वह भी सामाजिक चेतना (ब्रह्म) की ओर प्रवृत्ति की एक अवस्था है। उन्होंने भारत माता की सवित्र आराधना करने का उपदेश दिया और वक्तव्यादि उसकी आराधना का एकमात्र साधन उसकी सभी सत्ताओं की पवित्रता का साक्षात्कार है। रामतीथ की यह धारणा कि राष्ट्रवाद देशवासीधो के साथ सादात्म्य की सवित्र भावना है, राजनीतिक चिन्तन में एक उत्तमेशनीय और अद्वैत बोधदान है। राष्ट्रवाद का हीनहवीं पक्षधरी के परिचयी यूरोप में उदय हुआ था। उस समय अपने देश के व्यापार और वाणिज्य को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से इटली के पोप के मुखबले के अपने राजा का गौरवगाय करता ही राष्ट्रवाद का सार था। केवल फ्रांसीसी जाति के समय से राष्ट्रवाद के हीनतम का पुट दिया जाने लगा है। लेकिन उसके बाद भी उसका रूप अमूल्य तथा सर्वव्यापक हो बना रहा। किन्तु रामतीथ की दृष्टि में देशवासियों के प्रति हार्दिक प्रेम का पथ ही सच्चा राष्ट्रवाद है। इसीलिए उन्होंने राष्ट्रवाद की सवित्र धारणा का लक्ष्यन किया। परिषद के सम्पूर्ण राजनीतिक साहित्य में इस धारणा के समानांतर विचार नहीं देखने को नहीं मिलता। यद्यपि रामतीथ ने अपने इस प्रथम की सविस्तार व्याख्या नहीं की है, किन्तु वह कथन ही महत्वपूर्ण है, क्योंकि वह वेदान्त की उस व्याख्या से कोसों दूर है जो ब्रह्माण्ड की वास्तविकता की सर्वोत्कार करती तथा माया के सिद्धांत को स्वीकार करती है। रामतीथ का सवित्र आध्यात्मिक राष्ट्रवाद का आदर्श अधिक व्यापक सामाजिक वास्तव के आदर्श का समर्थन है, न कि उसका विरोधी।

भारत लोकतन्त्र तथा सामाजिक आर्थिक व्यवस्था के महान आदर्श के माग पर चल रहा है। इन आदर्शों का वास्तविक रूप देने के लिए आवश्यक है कि जनता नैतिक उत्साह से अनुप्राणित हो। नैतिक पुनर्जागरण के बिना देशवासियों की राजनीतिक तथा आर्थिक मुक्ति असम्भव है। देश के ऐतिहासिक विकास की इस महत्वपूर्ण तथा लक्ष्यजनक अवस्था में रामतीथ के उपदेश तथा माया राजनीतिक उद्देश्य की शिक्षा में सहायक हो सकते हैं। उनके मुख्यों के परिषद तथा नैतिक भावना की वल मिल सकता है। वे स्वतन्त्रता, समता, 'आय तथा निर्विकलता की मांगताओं की शक्ति प्रदान कर सकते हैं। अतः स्वामी रामतीथ की 'इन चुनक आय गौड रिप्लाइडेशन' पुस्तक ने आठ सप्ताहों में सहायक रचनाएँ औपचारिक एवं पारिभाषिक अर्थ में राजनीतिक न होने हुए भी नैतिकता-उत्तम औद्योगिक राजनीति दशम का आधार बन सकती है।

7

दादाभाई नौरोजी

1 प्रस्तावना

‘भारत के महापुरुष’ नाम से विख्यात दादाभाई नौरोजी (1824-1927) भारतीय राष्ट्रवाद के एक अग्रणी जनक थे। उनका जन्म 4 दिसम्बर, 1825 को हुजरा का और 30 जून, 1914 को उनकी इहलौका समाप्त हुई। उन्होंने अपने जीवन में विविध प्रकार के अनुभव प्राप्त किए। उन पर ‘दासता उद्धार’ का लोगन के अग्रणी वा विचारक, डॉक्टर कलाकमल तथा अग्रणी पत्रिका प्रकाशक का था। 1853 में उन्होंने कुछ अन्य सदस्यों के सहयोग में बम्बई लघु (सीमा स्वीकृत) की स्थापना की। 1854 में वे एडिंकटन कॉलेज बम्बई में पणित तथा प्राध्यापक के प्रोफेसर नियुक्त हुए। 1867 में उन्होंने तथा उनके कुछ मित्रों ने मिलकर लंदन में ईस्ट एशिया एसोसिएशन की स्थापना की और 1869 में उसकी बम्बई शाखा की नींव रखी। 1873 में दादाभाई ने भारतीय वित्त की पत्रिका प्रकाशक शक्ति के समक्ष साक्ष्य दिया। 1874 में उन्होंने रेलों के बीजान पद पर काम किया।¹ 1875 में वे बम्बई नगर महापौराधिका के सदस्य बने। 1885 में उन्हें बम्बई भारतीय विद्यालय परिषद का सदस्य नामांकित किया गया। अपने महान व्यक्तित्व तथा सेवा के फलस्वरूप 1892 में वे भारत के नगर का प्रतिनिधित्व करने के लिए वेस्टीन निचले निर्वाचित क्षेत्र के इंडिया लाक सभा (हाउस ऑफ कॉमन्स) के सदस्य चुने गये। वे 1892 से 1895 तक इंडिया सभा के सदस्य रहे। इंग्लैंड में अपने दीर्घ प्रयास के दौरान उन्होंने ग्लेडस्टोन, बर्नार्ड, साइड और ह्यूज आदि के साथ-साथ संबंध स्थापित की। दादाभाई तथा भारत के लोग अंग्रेजों के फलस्वरूप अंग्रेज सभा में एक प्रस्ताव पारित किया गया जिसमें सिद्धान्त की सभी बिंदुओं की सामाजिकी केन्द्रों के लिए इच्छा तथा भारत में साथ साथ परीक्षाएँ ली जायें। 1897 में दादाभाई भारतीय सभा के वेस्टी लाक के समक्ष उपस्थित हुए और आरोप की क्लेश शक्ति प्रस्तुत की। उन्होंने इस बात पर ध्यान दिया कि 1857 के विद्रोह की दृष्टि का व्यवस्था अंग्रेजी-भारत के सम्बन्धों और विचारों सहित सोमाउत युद्ध का सम्पूर्ण व्यवस्था भारत के व्यवस्था दिया गया था। उन्होंने अविश्वस्य अपने तथा महान साहस के साथ सम्भव साधन तथा भारत के पुनरुद्धार के लिए अथवा प्रयत्न किया। सभी वर्षों में भारतीयों ने उन्हें अपनी सहायता की और उनका आदर किया। वे आन्दोलन की शक्ति के और भारतीय वर्ग के प्रेरक साधन के प्रतिनिधि थे। उन्हें भारतीय जनता का वित्त का अग्रणी माना जा सकता है। उनकी उपलब्धियाँ अंग्रेजों, लोगों की अधिनायकता विवेचना और सम्पूर्ण ब्रिटिश दृष्टिकोण के युक्त हैं। दादाभाई ने राज्य के सम्पूर्ण अर्थशास्त्र, व्यवसायी, प्रशासन, विज्ञान सभा के सदस्य और लोक शास्त्रीय राष्ट्रीय कार्य के सम्पादन के रूप में काम की सेवा की। जीवन के इन सभी क्षेत्रों में उन्होंने सम्पूर्ण सामाजिक, अनुशासक दायित्व और विचारों ईशान्वरी का औरवर्णन साहस प्रस्तुत किया। वे सम्पूर्ण भारतीय राष्ट्रवाद के प्रथम-अग्रणी थे।

1. नाम की पत्रिका *Daadabhai Naoroji: The Grand Old Man of India* (नारायण चं. 1939) में विचार साधकन सक्ति (old एन. एन. 1939)।

बादायार्द का भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में सम्मेलन का प्रमुख स्थान था । वे तीन बार कांग्रेस में भागलेख चुके गये, 1886 में कलकत्ता में, 1893 में लाहौर में और 1906 में बनारस में । 1906 में बनारस में अधिवेशन में उन्होंने अध्यक्षीय भाषण में घोषणा की कि भारत के राज नीतिगत प्रवर्तनी का उद्देश्य 'स्वराज' है । स्पष्ट है कि उनके विचारों में धीरे-धीरे परिवर्तन हो गया था और वे उदारवाद से उग्रवाद की ओर बढ़ गये थे । ब्रिटिश राजनीतिज्ञों की 'आत्मनिष्ठा और ईमानदारी के सम्बंध में उन्हें प्रारम्भ में जो कुछ भय था वह दूर हो गया था और वे अतिवाद की ओर झुकने लगे थे ।

भारत के सांस्कृतिक जीवन में बादायार्द का समय अभी दशम्वी तक विविष्ट स्थान था । वे भारत में भारतीयता शिक्षा की एक सर्वोपेक्ष उपज थे । अनेक क्षेत्रों में वे नीतिगत विचारों तथा पथ-प्रवेष्टक थे । यद्यपि सामाजिक तथा आर्थिक दृष्टि के क्षेत्र में उनका अध्ययन सम्मिलित नहीं था और न उनमें वैयक्तिक, दृष्टि विमल अथवा टी एच सीन की सी नीतिगतता थी, किन्तु यह भी नहीं भूलना चाहिए कि उस समय तक भारत में उत्पन्न, सम्पत्ति, धनी, राष्ट्रीय भाव, राजनीतिक दायित्व आदि समस्याओं के सम्बंध में व्यवस्थित चिन्तन का निष्ठात अभाव था । उस समय के भारत में सबसे अधिक बादायार्द ने आर्थिक दृष्टि पर अपनी 'पावर्टी एंड मैन डिस्ट्रिब्यूशन इन इण्डिया' नामक प्रामाणिक पुस्तक निखार निर्वाण संवर्धित नृमण्डल का परिचय दिया । इस दृष्टिकोण में बादायार्द के सीधे पथ से भी अधिक दाल के आयुष्य, वस्तुओं और पत्तों का समूह है । यद्यपि इसमें पुनरावृत्ति बहुत है और सम्पूर्ण विषयवस्तु को एक सूत्र में निरीक्षित करने की संवर्धित व्यवस्था का अभाव है, फिर भी उसमें ऐसे व्यक्ति की सरसनिष्ठा अलगवर्ती है जिसने भारत के आर्थिक उद्धार के लिए दीर्घकाल तक अक्षि और अक्षर काय करने सम्मान और प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली थी ।

2 बादायार्द नीरोजी का आर्थिक दृष्टिकोण

बादायार्द ने भारतीय राष्ट्रवाद के आर्थिक आधारों के सिद्धांत का निर्माण किया । उन्होंने बलवत्या कि भारतीय अर्थव्यवस्था भारी 'विषम' (देस के पन का बाहुर जाना) का शिवाङ्क है । भारत के आर्थिक शासकों के विषम के परिणामस्वरूप अन्तः का भयङ्कर और विशाल पैमाने पर शोषण हो रहा है । देस का निरंतर वरदा हुआ शोषण हृदय बिहारेण हरम है । इस प्रकार बादायार्द ने भारतीयों की देस की भयङ्कर दरिद्रता के प्रति अर्थों खोल ली । उन्होंने देसवासियों की आर्थिक निगम, दुर्बलता, गद्दाधारियों और भुखण्डों के विनाशकारी परिणामों के प्रति संवेत कर दिया । बादायार्द का पावर्टी एंड मैन डिस्ट्रिब्यूशन इन इण्डिया जिसमें उन्होंने 'निगम' सिद्धांत का प्रतिपादन किया है, भारतीय अर्थशास्त्र तथा भारतीय राष्ट्रवाद के क्षेत्र में एक श्रेष्ठ सामाजिक ग्रन्थ है । भारतीय विद्वत् की समस्याओं के सम्बंध में आर्थिकों की पद्धतियों की लागू करने के मामले में बादायार्द ने पथ-प्रवेष्टक का काम किया । उन्होंने सामाजिक पद्धति की अपनता । उन्हें ऐसे विचारों और आर्थिकारिण अर्थशास्त्रों में रुचि नहीं की जिनका स्पूल अन्त से कोई सम्बन्ध न हो और न उन्हें सामाजिकारिणों से हो देस था , वे सदैव ग्योरा, तथा और आर्थिकों के धुरी रहते थे । उन्होंने भारत के आर्थिक विनाश की परिवर्तन और अनुमान के आधार पर प्रवृत्त करने का प्रवर्तन नहीं किया, उन्होंने अपनी प्रस्तावनाओं की सीधे लक्ष्यों पर आधारित किया । इस प्रकार वे अनुमानित पद्धति का अनुसरण करने वाले अर्थशास्त्रों में, न कि अर्थशास्त्रीय शासकों । उन्होंने भारत की आम आवाजदारिण राजनीति तथा आर्थिक समस्याओं के विवेचन में भी वस्तुगत प्रवर्तनी का प्रयोग किया ।

बादायार्द ने ब्रिटिश शासकों की 'अर्थव्यवस्था' विरोधी तथा आर्थिक नीति पर केंद्र प्रवृत्त किया । उन्होंने अर्थों की नीति की अर्थव्यवस्था दृष्टिपूर्व बलवत्या कि उन्होंने देस पर सामाजिक आर्थिक का भारी दाग लाद रखा था, और यह शोक भारतवर्ष में विदेशी साम्राज्यवाद द्वारा धोखा गया

2 बादायार्द नीरोजी *Poverty and Un-British Rule in India* (जयन्, 1901) , बादायार्द नीरोजी, *Speeches and Writings* (बी ए नेशनल एजुकेशनल सोसायटी, 1917) , बादायार्द नीरोजी, *Essays Speeches, Addresses and Writings*, बी एन नासिब द्वारा सम्पादित (जयपटन डिस्ट्रिब्यूशन कम्पनी 1887) ।

राजनीतिक शोक था। अंग्रेजों ने भारत के शासन के लिए इच्छाशून्य तथा भारत दोनों ही स्तरों ने एक भारी भरकम प्रशासकीय ढाँचे का निर्माण किया था, इन ढाँचे का व्यव भी भारत पर एक भारी शक्ति बोका था। इस प्रकार देशवासी अपने प्राकृतिक अधिकाराज तथा जीविता के मापका व जीत का हित नये थे। दादाभाई के अन्तर्गत नि देश के जीवन रक्त की ही मुखा देने वाली प्रमुख शक्ति अन्तर्गत दु सदासी और हृदय विचारक हृदय है। इसलिए देश की आर्थिक समृद्धि के अन्वयन में एकमात्र माय यह है कि देश के साधनों के इस विनाशकारी नियम को रोजा जाय। दादाभाई लिखा "जब तक इस शासन नियम की समुचित रूप से नहीं रोजा जाता और नाजवाबिया का अपने देश के पुन अपने प्राकृतिक अधिकारों का उपयोग नहीं करने दिया जाता जब तक इस देश के नीतिक उद्धार की कोई आशा नहीं है।"³ राजनीतिक तथा आर्थिक सिद्धांत की दृष्टि से यह शासन की बात है कि दादाभाई ने आर्थिक शोक के भारतीयों के प्राकृतिक अधिकारों की पुन स्थापना कीमत की। इस प्रकार हम देखते हैं कि जो समस्या नागरिक शासन (मिश्रित गवर्नमेंट) का एक केवल और स्वाधीनता की घोषणा के अन्तर्गत के सामने की उड़ी समस्या से दादाभाई चिंतित थे। उनी सभी अन्तर्गत के नये दशा में भारत के राजनीतिक तथा आर्थिक साहित्य के प्राकृतिक अंशों की धारणा के अन्तर्गत के यह बात सिद्ध होती है कि यद्यपि यूरोप में छूम, वाइना और अन्य के इस धारणा की बहुत आलोचना भक्तिक चरित्रों की थी, फिर भी भारत में इसे मात्र समझा जाता था।

उस समय के अंग्रेज अधिकांशों प्रायः यह तक दिया करते थे कि आर्थिक आवश्यकता के लिए निर्यात मुद्रात भारत के धन के निर्यात तथा अन्तर्गत दरिद्रता के लिए जिम्मेदार है। दादाभाई इस बात का खण्डन किया। उन्होंने कहा कि इस देश के धन का निर्यात आर्थिक निर्यात के प्राकृतिक रूप से कार्य करने के कारण नहीं होता, बल्कि उन नियमों में जानबूझकर हस्तक्षेप करने का कारण होता है। उन्होंने लिखा "प्रायः जनसमस्यातिरेक का भिन्न पिटा तक किया जाता है। वे नहीं हैं, और इतना सब कहते हैं कि विदेश द्वारा स्थापित शासन से जनसमस्या में वृद्धि हुई है किमुतिल द्वारा देश के धन की लूट का भी विनाश हुआ है उसे वे भूल जाते हैं। उनका कहना है कि आर्थिक नियम निर्यातापूरक कार्य करते हैं, किमुत वे भूल गये कि भारत में आर्थिक निर्यात का प्राकृतिक की शासन नाम की कोई वस्तु नहीं है। भारत का विनाश आर्थिक निर्यात के निर्यातापूरक रूप करने के कारण नहीं हो रहा है। उसके विनाश का मुख्य कारण निर्यात की शूर तथा विचारपूर्ण नीति है। भारत के शासकों का भारत में ही निर्यातापूरक अवस्थान किया जाता है और हमने अतिरिक्त का साधनों की निर्यातापूरक मुद्राशोषक इच्छाशून्य के जाया जाता है। संक्षेप में, भारत का रक्त मुखा का रहा है और इस प्रकार आर्थिक निर्यात की निर्यातापूरक विफल किया जा रहा है। वस्तुतः व ली चीजें ही देश के विनाश के लिए उत्तरदायी हैं। जब शेष आपका है तो देशीय प्रकृति के लिए देश क्यों मरते हैं ? प्राकृतिक तथा आर्थिक निर्यात का पुनर्स्थापन से तथा धायपूरक भाव करने कीजिए तो भारत दूसरा इच्छाशून्य बन जायगा और सब इच्छाशून्य को स्वयं आज के कई मुना साम होता।"⁴

दादाभाई नौरोजी ने अपनी 'निर्गम' की पीठिका की सिद्ध करने के लिए आकरने मुद्रा और उस विषय पर प्रमुख नेताओं और विचारकों की रचनाओं से अनेक उद्धरण किये। उनका कहना था कि सुदूर इच्छाशून्य से भारत का शासन बहुत मार्थीया बर रहा है और उसके परिणामस्वरूप देश की बहुत संपन्नता हुई है। आर्थिक साधनों के निर्यात के कारण देश में पूँजी का संचय नहीं हो पाया, और देश की दरिद्रता निरंतर बढ़ती जा रही है।⁵ भारत इसलिए गरीब हो रहा है कि प्रतिवर्ष तीन बार करोड़ों पीठ की सस्या में उसका रक्त भूसा जा रहा है। अपने 'निर्गम' सिद्धांत में दादाभाई ने भारी एकम का उल्लेख किया की विभिन्न स्तरों के देश के बाहर जा रही थी

3 दादाभाई नौरोजी का समीप, "The Moral Poverty of India and Native Thought on the Present British Indian Policy," *Poverty and Un-British Rule in India*, पृ 203।

4 *Poverty and Un-British Rule in India* पृ 16।

5 दादाभाई नौरोजी की रचना के अनुसार 19वीं सदी के अन्त में और अन्त में दशकों में अतिवर्ष भारत में प्रतिवर्ष आर्थिक क्षय 20 व की।

- (1) ब्रिटिश अधिकारियों की वेशर्षे ।
- (2) भारत में ब्रिटिश पूँजी के खर्च के लिए इंग्लैण्ड के मुद्रा विभाज की भुगतान ।
- (3) भारत सरकार का इंग्लैण्ड में व्यय ।
- (4) भारत में स्थित ब्रिटिश व्यावसायिक बर्षों द्वारा अपनी कमाई में से स्वदेश भेजी गयी रकमें ।

दादाभाई ने लिखा “इस ‘निगम’ में दो रकमें सम्मिलित हैं प्रथम, यूरोपीय अधिकारियों की धनल की रकम जिसे वे इंग्लैण्ड भेजते हैं, और उसकी इंग्लैण्ड तथा भारत में आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इसलिये व व्यय की जाने वाली रकम, वेशर्षे तथा वेतन जिनका इंग्लैण्ड में भुगतान किया जाता है, और इंग्लैण्ड तथा भारत में सरकारी खर्च, और दूसरी, और सरकारी यूरोपीय लोगों द्वारा भेजी गयी इसी प्रकार की रकमें । चूंकि इस ‘निगम’ के कारण भारत में पूँजी का संचय नहीं हो पाता, इसलिए जिस धन को अंग्रेज लोग यहां ले जाते हैं उसे वही के रूप में भारत में वापस ले आते हैं और इस प्रकार व्यापार तथा प्रमुख उद्योगों पर अपना एकाधिकार स्थापित कर लेते हैं । और इसके द्वारा वे भारत का और अधिक शोषण करते तथा और अधिक धन देश से बाहर ले जाते हैं । अतः में, सरकारों की तरफ धन का नियम ही घायी बुराईयों की जड़ है ।” विलीयम ह्यूटि से यह निगम एक विनाशकारी प्रक्रिया थी । देश वरिष्ठ हो रहा था क्योंकि उसने क्षीण आर्थिक साधनों पर उस विदेशी नौकरशाही का भारी खर्च लाद दिया गया था, जिसे विलासिता तथा तबक मजदूर के जीवन की आवश्यकताएं ही भारी खर्च लाद दिया गया था, और जनता पर ऐसी अर्थनीति थोपी गयी थी जिसके कारण वदेशिक व्यापार देशवासियों के हितों के प्रतिकूल बढ़ता था । इस निगम ने अर्थव्यवस्था को भयंकर स्थिति लापट कर दी थी—देश में धन और साधन विद्यमान थे, और उसी के साथ साथ जनता आर्थिक दृष्टि से और वरिष्ठ में लौटी हुई थी । उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में निगम लगभग तीस लाख पौंड का था, किन्तु बाद में वही बढ़कर तीस करोड़ पौंड तक पहुँच गया था । इसके कारण जनता की अर्पणों की क्षति लगभग दूगुना लक्ष्य हो गयी थी । यदि आर्थिक प्रक्रिया सामान्यतः पर चलती रहती तो धन देश में बना रहता और उसके पूँजी का संचय होता । किन्तु निगम ने लाभ और बचत का पूँजीकरण करना अशुभव बन दिया था ।

आर्थिक निगम के अतिरिक्त दादाभाई ने ‘वैयक्तिक निगम’ का भी उल्लेख किया । देश में अनेक अधिकारियों की नौकरी देने का खर्च बहुत था कि उसी ही खर्च में भारतीय लोग नौकरियों से बर्चित रह जाते थे, इसके अतिरिक्त वे न धन बना सकते थे और न उसे पूँजी के रूप में प्रयुक्त कर सकते थे । अंग्रेज समझते थे कि भारत ही एक अधीन देश है और हमारे द्वारा शासित होने के लिए है । वे इसे अपना घर भी नहीं बनाया चाहते थे । इसलिए वे अपने सवा जाल में भी उपासनीय तथा व्यावसायिक अनुभव अर्जित कर लेते थे वह भी उनके जाने के साथ साथ देश से चला जाता था । दादाभाई ने लिखा “भारतीयों को डिप्टी-मजिस्ट्रेट, अतिरिक्त कमिशनर अथवा इन्वेस्टिगरेटर और चिब्रिटा विभागों में इन्टी स्टरी के अधीनस्थ पदों से उन्नीसवीं शताब्दी नहीं दी जाती । परिणाम यह होता है कि जब राजनीति प्रशासन विभाग, अथवा वैधानिक तथा ब्रिटिश व्यवसाय का अनुभव रखने वाले अधिकारी अपने पदों से निवृत्त होकर चले जाते हैं तो उनके साथ सरक्ष्मणों का ज्ञान और अनुभव भी इंग्लैण्ड भी चला जाता है ।” यह अनुभव का चला जाना एक प्रकार का वैयक्तिक निगम था । अंग्रेजों से पहले के आक्रमणकारियों के वसिल में देश वैयक्तिक निगम का विकास नहीं था । दश में जिन वस्तुओं का उत्पादन होता था और जो अनुभव अर्जित किया जाता था वह दश में ही बना रहता था । किन्तु अंग्रेजों की आर्थिक तथा वैयक्तिक निगम की विनाशकारी नीति से देश का जीवन-

6 *Poverty and Un-British Rule in India* नौरोजीयन बर्षों का भी विचार था कि इंग्लैण्ड में भारत में पुरा खर्च (home charges) के नाम पर भी धन जाता है जल तथा व्यापारिक निगम का भारत धन की बर्षों में वृद्धि हुई । *Speeches and Writings of Surendra Nath Banerjee* (जी ए नैशन एण्ड क, पन्ना) पृ 297 ।

7 वही, पृ 36-37 ।

उनके अमेरिकी अधिकाधिकारी सपथवा रिटेल की वजहों की सुरक्षा का भारतवासियों के सत्त्व के साथ कोई अथवा साधन हो सकता है तो वे अपने की पीछा दे रहे हैं। उनका अर्थ तब किता हो कि शांति सभी न हो, भारत में उनके शासन की सुरक्षा प्राप्त भारतवासियों के सत्त्व पर ही मिले है। पाश्चात्य बल से एक साम्राज्य का निर्माण किया जा सकता है, किन्तु पाश्चात्य बल का परिणाम नहीं कर सकता, केवल दैविज बल, 'याम तथा यम उसकी रक्षा करने में समर्थ हो सके है।'¹⁶ अतः यह आवश्यक है कि अरब देशों की संस्था पुनः सकल और पारस्परिक विश्वास से राजनीतिक शक्ति का आधार बनाया जाय। किन्तु यदि इंग्लैण्ड ने उत्तरेका की नीति का अनुसरण किया तो यह अनिवार्यता साम्राज्य के विघटन का कारण सिद्ध होवे।¹⁷

दादाभाई अपने विचारों में इतने सच्चे और निष्पक्ष थे कि उन्होंने स्वीकार किया कि भारत के शासन के अनेक लाभ हुए हैं। उनका कहना था कि 'ब्रिटेन की उन्नत मानवतावादी सम्प्रदाय' ने भारत को बहुत कुछ दिया है,¹⁸ और पारस्परिक शिक्षा, प्रशिक्षित प्रशासकीय अधिकारी तथा रेलवे आदि यांत्रिक उद्योगों ने भी देश को लाभ पहुँचाया है। किन्तु उन्होंने विद्वान प्रताप प्रसादी के दोषों के सम्बन्ध में भी अपने विचार निर्भीकतापूर्वक व्यक्त किये। उन्होंने कहा है "वर्तमान शासन प्रणाली भारतवासियों के लिए विनाशकारी तथा निरक्षर है, और इनके लिए आत्मघाती तथा उनके राष्ट्रीय चरित्र, आदर्शों तथा परम्पराओं के प्रतिरुद्ध है। इसके विपरीत, यदि सच्चे अर्थ में इतनी भी मात्रा अपनाया जाय तो उससे ब्रिटेन तथा भारत दोनों को ही लाभ होना।"¹⁹ दादाभाई ने पेशवाजी की निरक्षर तथा स्वेच्छाकारी शासन अधिक समर्थक नहीं सकता, क्योंकि इसी शासन प्रणाली विनाशवादी तथा विनाश की धार से जा रही है।²⁰ यह एक 'दूर स्वाभ' है, और इसके आधुनिक परिवर्तन की आवश्यकता है।²¹ उनका कहना था कि "ब्रिटिश शासन विदेशी तथा प्रजापीडक का भारी बोझ" ही बना रहा तो "असमय तक वह सम्भारणी है।" 2 मई, 1867 को दादाभाई ने ईस्ट इण्डिया एसोसिएशन सदन की एक बैठक में 'भारत के प्रति इंग्लैण्ड के कर्तव्य' शीर्षक एक लेख पढ़ा। उसमें उन्होंने बतलाया कि यदि अंग्रेजों की शक्ति अक्षय्य भारतवासियों और एक लाख ब्रिटिश अधिकारियों के बीच संचित हुआ तो उस परिणाम स्पष्ट है, चाहे वे शक्ति विपरीत ही घटित होती सभी न हो। यह हो सकता है कि किसी राज्य को अनेक बार हार खाती पड़े किन्तु उसकी क्षमता को नहीं कुचला जा सकता। शासकीय शासनवादी के इस बयान को बारबार दुहराते हुए सकते न थे कि "असमय तक वह सम्भारणी या भी नाश कर देगा।" उनका कहना था कि निरक्षर शासन के कुशल और आकाशवात सच बात नहीं रह सकते। किन्तु दादाभाई को विश्वास था कि मन की लचीलता और अस्माय ब्रिटिश राज्य के चरित्र के पारस्परिक लाभ नहीं है।

दादाभाई स्वीकार करते थे कि ब्रिटिश शासन ने भारत को लाभ बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका भरी है। उन्हें आशा थी कि इंग्लैण्ड शीघ्र ही अनुभव कर लेगा कि कलही हुई आर्थिक लेन-देन की सम्भावना न नीति समुचित दृष्टि की ही परिणामक नहीं है, अतः उससे शासन का निष्कर्ष भी सचरे ने बीच विद्यमान है। वे चाहते थे कि भारत के आर्थिक लाभों का भारी हिस्सा सुरक्षित बच गया जाय। उनका विश्वास था कि जैसे ही नियम बन हुआ जैसे ही भारत में ब्रिटिश शासन के स्थापित ने लिए अनुभव परिस्थिति उत्पन्न हो जायगी। 13 सितम्बर, 1880 को उन्होंने भारत के राज्य अवर सचिव लुई मासेट को एक पत्र में लिखा "ब्रिटिश तथा विनाशकारी भारतवासियों का इस विश्वास है कि दूसरी पर अथवा सब राष्ट्रों की सुचना में केवल ब्रिटेन ही देश उन्हें

16 *Poverty and Un-British Rule in India*, p. 300-01.

17 *Speeches and Writings*, p. 165.

18 अपने ब्रिटिश मित्रों दादाभाई कीर्तनी की रचना "Sir M. E. Grant Duff on India," *Speeches and Writings*, p. 371.

19 *Poverty and Un-British Rule in India* p. 4, *Speeches and Writings*, p. 236.

20 *Speeches and Writings*, p. 236.

21 वही p. 247.

है जो नयी विधी भी स्थिति में आवश्यक नहीं थी। स्थिति के साथ न अग्रसर करेगा, न उसको दाब बनायेगा, न उसका अग्रसर करेगा और न उसे धरिद बनायेगा, और यदि उसे विधायक हो जाय कि अन्ततः उसने किसी की शक्ति पहुँचा दी है तो वह सुरक्षित और विश्व सन्तुष्ट के तथा हर उचित मूल्य चुकाकर उस शक्ति को पूरा कर देगा। इसी विश्वास के कारण विचारवान् भारतवासी ब्रिटिश शासन के पक्ष में मत बने हुए हैं। वे जानते हैं कि भारत का वास्तविक पुनरुद्धार, उसकी सम्पत्ता तथा नीतिगत, नैतिक और राजनीतिक प्रगति ब्रिटिश शासन के दीर्घकाल तक कायम रहने पर ही निवार है। अंग्रेज शक्ति ने पश्चिम में उच्चवर्गीय की सम्पत्ता, उलट स्वातन्त्र्य प्रेम, तथा आत्मा की श्रेष्ठता आदि गुणों का सुन्दर समन्वय है। ऐसी शक्ति एक बड़े राष्ट्र की पैरी तले कुचल नहीं सकती, बल्कि वह निरन्तर ही उसे उठाते में पक्ष की सहायता से प्रेरित होकर काम करेगी। ब्रिटेन के कुछ महान्तम व्यक्तियों ने उसकी इस सहायता को अनेक बार व्यक्त किया है। अंग्रेजों के सामने भारत में जो महान्तम कार्य है उसके समान्तर दूसरा उदाहरण विश्व के इतिहास में मिलना दुर्लभ है। समार में ऐसा कोई राष्ट्र नहीं हुआ है जिसने ब्रिटेन के रूप में अंग्रेजों की शक्ति शासितों के कल्याण की अथवा कल्याण समझा हो अथवा अपने कल्याण की लीज इच्छा की अनुभूति की हो। और यदि वस्तुमान नियम उद्घट कर दिया जाय, और देश के कल्याण (विधिविधान) के काम में देशवासियों के प्रतिनिधियों की अपनी राज व्यक्त करने का अवसर दे दिया जाय तो भारतवासी आका के साथ ब्रिटिश शासन के अंतगत ऐसे प्रविष्ट की कल्याण कर सकते हैं जो अपने इतिहास के महान्तम तथा सबसे गौरववासी युग को भी लजित कर देगा।”

भारत की राजनीतिक आशाओं का पूरा होना इंग्लैण्ड के नैतिक पुनर्जागरण पर निवार था। दादाभाई की इच्छा और आशा थी कि इंग्लैण्ड ने भारत को जो वचन दिये थे और जो प्रतिभाई की थी वह वह ईमानदारी, सम्मान तथा कल्याणनिष्ठा के साथ पूरा करेगा। वे कहा करते थे कि भारत और इंग्लैण्ड के सम्बन्धों को कम, “याग तथा उदारता के आधार पर स्थापित करना होगा। उनका विश्वास था कि यदि पुरोक्त वचन पूरे कर दिये जायें तो भारत की सब समस्याएँ हल हो जायेंगी। उनकी हासिक इच्छा थी कि 1833 के अधिकार अधिनियम तथा 1858 की घोषणा²² में जिन बातों का ऐलान किया गया था वह पूरा किया जाय। वह आशा थी कि इन लक्ष्य अपनी “याग, उदारता तथा स्वतन्त्रता की मान्यता की रक्षा करेगा। भारत की दरिद्रता तथा कम पठन इन वक्तव्यों की पूरा न करने के ही परिणाम थे। दादाभाई का इस विश्वास था कि ब्रिटेन ऐसे राजनीतिक अवसर उत्पन्न करेगा जो अतीत के ब्रिटिश शासकों द्वारा दिये गये वक्तव्यों का पालन करेंगे और इस प्रकार मान्यता के प्रति ब्रिटेन के प्रेम को पूरा करेंगे।”²³ 1858 की घोषणा में ऐलान किया गया था कि भारत सरकार इन चार सिद्धांतों का पालन करेगी—आर्थिक सहिष्णुता, स्वतन्त्रता, नौकरियाँ योग्यतानुसार, और विधि के समक्ष समानता। उससे इस बात पर भी शक दिया गया था कि भारत में उत्तमोत्तम को प्रोत्साहन दिया जायगा, सामाजिक उपशोभिता के कार्यों में रुचि होगी, और लोक कल्याण सामाजिक कल्याण के विषय चलाया जायगा। दादाभाई इस घोषणा को भारत का महान्तम अधिकार पत्र समझते थे।

नविकृता तथा सर्वोपार्थक्य विधि दोनों की माँग थी कि इंग्लैण्ड भारत पर भारतवासियों के कल्याण के लिए ही शासन करे। इसका अर्थ था कि भारत में फैली हुई विध्वंसता, गिरीय कष्टों तथा विनाश का अन्त किया जाय। ब्रिटेन के लोकतन्त्र का उत्तरदायित्व था कि स्थिति में सुधार करे और भारत के राजनीतिक तथा आर्थिक कष्टों को कम करे। बार बार वह श्रुत अंग्रेजों के काम नहीं चलता था कि इंग्लैण्ड ने भारत में कानून व्यवस्था तथा शक्ति की स्थापना की थी। दादाभाई का कहना था कि ब्रिटिश शासन को भारत में लिए “बरदान” और इंग्लैण्ड के लिए “लाभ तथा भय”

22 वह वह दादाभाई नौरोजी की पुस्तक *Poverty and Un-British Rule in India* में उद्धृत है। पृष्ठ 201-02।

23 दादाभाई नौरोजी “Replies to Questions put to the Public Service Commission”, *Speeches and Writings* पृ 146।

24 *Poverty and Un-British Rule in India* पृ 208।

का साधन बनाने का एकमात्र उपाय यह है कि "भारत की उनसे (अंग्रेजों के) नियन्त्रण तथा निर्भरता अलग होकर अंग्रेजों प्रशासन स्वयं प्रशासन दिया जाय।"²⁵ दादाभाई ने इंग्लैण्ड की सीमा तथा मरिनी कला से घेरकरा की कि देश में तब तक वस्त्राचारकारी तथा खपकी वित्त व्यवस्था काम नही हो सकती जब तक 'विदेशी आधिपत्य की सुराई' की चम नरने उचित सीमाओं में बंध नही रिक्त गत, यद्यपि 'विदेशी शासन की सुराई' से सब, बुद्धि तथा श्रेष्ठगार सीमा की हानि होती है। इनके के साधन साधना के अनुपात से नही अधिक सब एक होता है, प्रशासनिक अनुभव का हल हल है, यद्यपि विदेशी कर्मचारी सेवा से निकुल होने पर देश खोकर चले जाते हैं, और पूर्ण कर्मचारी पक्ष पर अंग्रेजों का एकाधिकार था, इसलिये उसी अनुपात में भारतवासियों की सेवा की का शान बनना पड़ता है।²⁶ जब तक भारतवासियों की शान सेवाओं में समुचित स्थान नही दिया गत तब तक उनकी साधनसम्पन्नता, अधिव्यय की उक्ति तथा महत्वपूर्ण कल्याण के फलन बल से क्षमता का विकास नही हो सकता था। इसलिये दादाभाई ने भारत के लोगों की उच्च वर्ग के कर्मचारी की नीति का विरोध किया।

साक्षात्कार से प्रशासनिक सुराई का उपाय होती है और वितीय हानि होती है। सीमा में भारत के साधन कामकी का जो अपायपूर्ण विषय हुआ था उससे परिष्कार बड़े समय पर हु। उससे जारी रहने का अर्थ होता था न्यूनतर देश की सूट और विनाश करना, और उससे देशवासियों की जीवन शक्ति का भारी हानि होना अनिवार्य था। भारत के लोगों के श्रेष्ठनीय दुखों का सब करना आवश्यक था, अथवा पय था कि देश की दशा और की अधिक विनाश जायगी। इनके की रिक्त यह भी आशा थी कि राजनीतिक शक्ति के बल पर बिने गये साधन और विषय की इस शक्ति से विदेशी प्रशासकों की शक्ति शक्ति की भी आपत पहुँचेगा। निरनुप्राण शासन राजनीतिक शक्ति को धारण करने वालों की शक्ति सत्वेदन शक्ति की सीमा और बुद्धि करने उन्हें छूट कर वेता है। निरनुप्राण शासकों की उपनिवेशी जनता के साथ पय, महानगर तथा अन्धकार से मुक्त व्यवहार करने की आशा पड़ जाती थी। अतः कर था कि जब वे सीटवर इसलिये पहुँचने का करने देते राजनीतिक जीवन में सामाजिक उच्छ्रिता के सीमासम्बन्धी तब की क्षमशक्ति कर देने। एषा अधिव्ययों की पूर्वावृत्ति का परिचय देते हुए दादाभाई ने चेतावनी दी "इसलिये ने सबशक्ति सरकार के लिए की श्रेष्ठनीय समय बिने है जबका इतिहास बहुत ही गौरवपूर्ण है। किन्तु की इसलिये अब भारत में देते अंग्रेजों का एषा कर विचार कर रहा है की निरनुप्राण शासन में प्रशिक्षित एवं सम्पन्न है, बिने असहिष्णुता, अन्धकार तथा निरनुप्राण शासन की भी श्रेष्ठनीय शक्ति के दुख का करते या रहे हैं और किन्तु, इसके अतिरिक्त, श्रेष्ठनीयता के शानपद का भी प्रशिक्षण मिल रहा है। क्या यह सम्भव है कि अब में अंग्रेज अधिवारों निरनुप्राण की आपतें और अधिव्यय लेकर लगे पापन पापों से वे इंग्लैण्ड के परिषद और सस्थाओं को प्रभावित नही करेंगे? भारत में सब करने वाले अंग्रेज भारतवासियों की उठाने के उपाय स्वयं शक्ति होकर एषिया की निरनुप्राण के सब तब पहुँच रहे हैं। क्या यह उस निपति का शेत है जो समय जाने पर उन्हें दिखाता देता चाहती है कि उन्होंने भारत में की सुराई किया है उसका नया पल हुआ है? अभी इसलिये पर इतिहास 'अप पल की अधिक प्रभाव नही पड़ा है। किन्तु यदि समय रहते उससे उस सुप्रभाव की करने के न रोना की उसकी जनता की उत्तेजित कर रहा है तो आवश्यक नही होगा कि प्रकृति साथ उस आपरण का बदला में से की उठाने भारत में किया है।"²⁷ इस प्रकार दादाभाई ने निरनुप्राण शासन का की शक्ति सुराई को स्पष्ट करते नही राजनीतिक सूक्ष्मता का परिचय दिया।

अन्ततः तथा की एषा शक्ति की शक्ति दादाभाई ने अनुरोध किया कि राजनीतिक शक्ति का आधार जनता का श्रेष्ठ, इच्छा तथा भावना ही होती चाहिए। किन्तु बिने ने भारत की जनता का की श्रेष्ठ शक्ति तथा रही से। प्रथम उससे जनता का श्रेष्ठ कर दिया था अन्ततः उसकी शक्ति

25 यही, पृष्ठ 219।

26 दादाभाई की *Speeches and Writings* पृ. 134-35 (हाजिरा यात्रा का समय में 14 अगस्त, 1894 की दिन पड़ा था)।

27 *Poverty and Un-British Rule in India*, पृ. 214-15।

शक्ति की स्वतन्त्रता छीन ली थी, और दूसरे उसे निरस्त कर दिया था। इस 'मुह बन्द करने और निरस्त करने' की दुहरे प्रतिपक्ष की नीति से स्पष्ट था कि ब्रिटेन की शक्ति जनता की शक्ति पर आधारित नहीं थी। इसलिए दादाभाई का आग्रह था कि जनता के शायीय पर ही राजनीतिक सत्ता की नींव रखी जानी चाहिए, और जनता को संतुष्ट करने का एकमात्र उपाय उसका विश्वास प्राप्त करना था।

4 दादाभाई नौरोजी का समाजवाद के प्रति भ्रम

दादाभाई ने बुद्धि की दृष्टी सीधेता और दूरदर्शिता थी कि उन्होंने अंतरराष्ट्रीय समाजवाद की पक्षी हुई आर्थिक तथा राजनीतिक शक्ति की शक्तीमाति समझ लिया था। उन्होंने ब्रिटेन के समाजवादियों का सहयोग प्राप्त करने का प्रयत्न किया और हिंदुस्तान सनका पॉलिश विन का तथा उनके उसे सहानुभूति की थी। 1904 के 14 अपरल के 20 अपरल तक एम्सटर्डम में अंतरराष्ट्रीय समाजवादी काङ्ग्रेस हुई। दादाभाई उसमें सम्मिलित हुए। कांग्रेस में उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध रक्त घुसने तथा निरस्त का आरोप दुहराया जिसे वे अनेक वर्षों से लगाते आये थे। हॉल-बॉन हाउन हॉल में हुई एक सभा में उन्होंने एक प्रस्ताव रखा जिसमें भाव की शक्ती कि बहार नर में बड़ों के लिए पेशा की व्यवस्था की जाय। 'अमिका के अधिवार' की ओर एक पुस्तिका में उन्होंने औद्योगिक आनुष्ठान के 'आवालय स्थापित करने का समयन किया। उन्होंने इस दावे का भी हादिक समयन किया कि अम की एक प्रवर्त की सम्पत्ति है।

5 दादाभाई नौरोजी के राजनीतिक विचारों में परिवर्तन

अपने सावजनिक जीवन के शारम्भिक वर्षों में दादाभाई हृदय के विश्वास करते थे कि अंग्रेजी शासन ने भारत को अनेक नियामकों दी हैं। उनको सच्ची आशा थी कि अंग्रेज भारत के साथ यह समझकर व्यवहार करेंगे कि यह उनके सुख की हुई एवं पवित्र परोहर है। इनकी ही जनता तथा विचारकों की भारतीय दृष्टिकोण से व्यवहार करने के लिए उन्होंने ब्रिटिश शासन के लिए चुनाव तथा और कठिन समय के बाद लोक सभा में स्थान प्राप्त करने में सफल हुए। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के 1886 के अधिवेशन में उन्होंने अपने सम्प्रदाय भाषण में ब्रिटिश शासन के प्रति भारतवासियों की 'पूरा शक्ति' की घोषणा की। 1893 में लाहौर में कांग्रेस के नवे अधिवेशन के अवसर पर भी उन्होंने अपने सम्प्रदाय भाषण में ब्रिटेन के प्रति भारत की शक्ति का पैमाना दिया। उन्होंने कहा 'हमारी इच्छा है कि ब्रिटेन के साथ हमारा सम्बन्ध में भविष्य में दीर्घकाल तक कायम रहे जिससे विश्व के राष्ट्रों के बीच हमारा देश नीतिक तथा राजनीतिक दृष्टि से उच्च स्थान प्राप्त कर सके। हमें समाजशास्त्र रूप से तथा नर विन्नेदायी के साथ अपनी दरिद्रता की विकसित करने में आनन्द नहीं मिलता है। यदि हम ब्रिटिश शासन के शत्रु होते तो हमारे लिए सबसे अच्छा मार्ग यह होता कि हम चिल्लाते नहीं बल्कि चीन रहते और जो हाथ हो रही है उसे हम तक होने देते जब तक कि उसकी परिणति महान सकट में न हो जाती, जसा कि इन परिस्थितियों में होना अनिवार्य है। किन्तु हम इस प्रकार का सकट नहीं चाहते, इसलिए हम अपनी तथा शासकों, दोनों की शक्तिर चिल्लाते हैं।'²⁸ दादाभाई ने भारतवासियों को समझ दी कि उन्हें अपने जीवन में ब्रिटेन के प्रति शक्ति तथा देशप्रेम दोनों का विवेकपूर्ण सामंजस्य करना चाहिए। किन्तु वह ब्रिटिश शासकों से बारबार निराशा हुई इसलिए अंत में वे इस विषय पर पहुँचे कि स्वराज्य का अधिवार प्राप्त किये बिना भारत राष्ट्रीय महानता की उपलब्ध नहीं कर सकता।

1906 में कांग्रेस के सनका अधिवेशन के अवसर पर दादाभाई ने भारतीय जनता के तीन महत्वपूर्ण अधिवारों पर बल दिया। पहला अधिवार था कि लोक सेवाओं में भारतवासियों की अधिकाधिक छात्रा में नियुक्त किया जाय और सम्पूर्ण विभागीय प्रशासन उनके हाथ में दीया दिया जाय। दूसरा अधिवार था कि भारतीयों की अधिकाधिक प्रतिनिधित्व दिया जाय जिससे वे स्वशासी उपनिवेशों के समूह पर अपने बड़ा भी विधान समार्ष स्थापित कर सकें। तीसरा अधिवार था कि

28 नर की मसानी *Dadabhai Naoroji* पृ 430-31।

29 दादाभाई नौरोजी का 1893 की लाहौर कांग्रेस में दिया गया सामंजस्य भाषण।

ब्रिटेन तथा भारत के बीच द्वितीय सम्बंध 'वापसगत' हो। उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय राजनैतिक लीनबुची कायम निर्धारित किया।

“(1) जिस प्रकार ब्रिटेन की सभी सेवाओं, विभागों तथा स्पीरों से सम्बंधित प्रशासन जैसे देश के निवासियों के हाथों में है, उसी प्रकार हमारा दावा है कि भारत की सभी सेवाओं, विभागों और स्पीरों का प्रशासन स्वयं भारतवासियों के हाथों में होना चाहिए। यह केवल अधिकार की बात नहीं है, और न भविष्य लोगों की आकांक्षाओं की बात है, यह अधिकार तथा जितनी भी आकांक्षाओं की दृष्टि से भी इस बात का सहूर्य है। इस सबसे अधिक यह एक निरपेक्ष आवश्यक है, उस महान अन्याय आर्थिक गुराई का एकमात्र उपचार है जो वर्तमान नियम तथा दृष्टि का आधारभूत कारण है। यह उपचार भारतीय जनता के भौतिक, बौद्धिक, राजनीतिक, सामाजिक, औद्योगिक तथा हर सम्भव प्रवृत्ति और कल्याण के लिए निश्चित आवश्यक है।

(2) ऐसा कि ब्रिटेन तथा उनके उपनिवेशों से कर लगाने, वस्तुन बनान तथा करों से व्यय करने का अधिकार उन देशों की जनता के प्रतिनिधियों के हाथों में है, वैसे ही अधिकार भारत की जनता को मिलना चाहिए।

(3) इसलिये तथा भारत के बीच द्वितीय सम्बंध 'वापसगत' हो तथा सत्ता के बाहर पर कायम ब्रिटेन जायें। इसका अर्थ है कि किसी अर्थनिक, सैनिक अथवा नाविक विभाग के रूप में लिए भारत जितना धन जुटा सके उसी में अनुपात में उस व्यय से वेतनों, वेतनों, उपनिवेशों की के रूप में होने वाले लाभ में भारतवासियों को साम्राज्य के सम्भीदार के रूप में भाग मिलना चाहिए। भारत साम्राज्य का सम्भीदार है, यह घोषणा सर्वत्र की जाती रही है। हम किसी प्रकार कायम नहीं चाहते हैं। हम केवल 'वाप' चाहते हैं। ब्रिटिश नागरिकों के रूप में हमारे को अधिकार है उनका हम न अधिक वर्गीकरण करना चाहते हैं और न सन्निहार उनका विवरण देना चाहते हैं। उन सबको एक समूह में व्यक्त किया जा सकता है—‘स्वराज’, जसा कि हमसब अपना समझते हैं। निवेद्या में प्रचलित है।¹⁰⁰ दादाभाई ने विश्वास था कि अंग्रेज शासक अपने जीवन काट वही बात में सम्मानपूर्ण स्वराज स्थापित करने की दिशा में मदद करायेंगे। उन्होंने भारतवासियों को समझा दी कि वे पार्लियामेंटों तथा समानों द्वारा आन्दोलन चलाने में भाग पर दृष्टता से बने रहें। भारतीय पार्लियामेंट का सैनिक विकास है। दादाभाई ने स्पष्ट रूप से यह दिना था कि भारत में ब्रिटिश प्रशासन के आधारभूत सिद्धांत मनुष्य हैं अतः वे चाहते थे कि कांग्रेस उनके विरुद्ध आन्दोलन हो। किन्तु उन्होंने अनुभव कर लिया था कि भारत के लिए एकमात्र उपचार स्वराज है।

संज्ञातिन आधार पर दादाभाई को नम्रान की भाँति अनेक वर्षों तक गुप्त व्यापार के समर्थक रहे थे। किन्तु भारत में जैसी हुई अराजकता अस्थिरता, निराशा तथा दुःखों ने दादाभाई के विचारों में परिवर्तन कर दिया था और वे स्वदेशी का समर्थन करने लगे थे। किन्तु फिर भी उन्हें विश्वास था कि अंग्रेज राजनीतिकों ने मन तथा हृदय में स्वतन्त्रता की सभी दुखनी जनना प्रवृत्ति गुप्त भाग लेंगे। एक की भाँति यह भी ब्रिटिश जनता की पुरातन तथा अमरगत ईमानदारी में कायदा बनी रही। यह भाँता की कि भारत इसलिये का अधीन देश होकर नहीं रहने, बल्कि एक दिन वह अपने अक्षरदार सम्भीदार तथा सहयोगी का पद प्राप्त कर लेगा। उस समय वे उन्होंने भारतवासियों की समझ दी कि वे निराश न हो और एक शब्द ‘अस्थिरता’ को तब स्मरण करें।

प्रथम विश्व युद्ध के दौरान दादाभाई ने देशवासियों से अंग्रेजों का भाग देने की समझ दी। दुर्भाग्य की बात थी कि मॉटेयु की उत्तरदायी शासन सम्बंधी घोषणा (20 अप्रैल, 1917) के को बहीने पहले ही भारत के अधिकारों के लिए आजीवन समर्थ करने वाले उस महान नेता की पहलीया समाप्त हो गयी। 1906 के सत्रका कांग्रेस के अवसर पर अपने अन्तर्मुख भाषण में दादाभाई ने आशा व्यक्त की थी कि अंग्रेजों के अंत करण की विजय होगी और भारत की ‘अस्थिरता’ का नाम से नाम समय में उत्तरदायी स्वराज’ प्रदान कर दिया जायगा।

6 निष्कर्ष

दादाभाई नौरोजी आधुनिक भारतीय इतिहास की एक पराक्रमी विभूति थे। वे महान गुरु तथा नेता थे। वे एक ऐसे अवधारक थे जिन्हें लोकप्रिय वैदेशिक व्यापार तथा राष्ट्रीय आय की समस्याओं की गहरी समझ थी। वे उच्चकोटि के सामाजिक तथा राजनीतिक विचारक थे। यद्यपि अवधारणीय सिद्धांत प्रयत्न के रूप में उन्हें रिकार्डों, मिल और मानव के समन्वय स्थान नहीं दिया जा सकता किन्तु उनके अभिप्रायी व्यक्तित्व तथा उच्च नैतिक चरित्र ने उनके तत्कालीन भारतीय अवधारक और राजनीति विद्वानों के विचारों का बहुत लोकप्रिय बना दिया था। इस प्रकार उनका 'निष्कर्ष' का सिद्धांत भारतीय सामाजिक तथा आर्थिक चिन्तन में उत्तमा हो विस्तारित बन गया था जिसने कि भारत के 'शोषण' और 'यम कर्म' के सिद्धांत मान्यतावादी तथा समाजवादी क्षेत्रों में बन गये हैं।

दादाभाई का विश्वास था कि राजनीतिज्ञ प्रगति के लिए शिक्षा का प्रसार बहुत आवश्यक है। शिक्षा के द्वारा केवल व्यक्ति की आत्मा ही ज्ञान से प्रदीप्त नहीं होती, वह लोगों के मन में अधिकारी की चेतना भी उत्पन्न करती है। उन्हें विश्वास था कि शिक्षा के प्रसार और प्रशासनिक अनुभव के संचय से स्वराज की ओर प्रगति की गति तीव्र होगी। इसलिए उन्होंने 'निष्कर्ष' अर्थात् सामाजिक शिक्षा तथा हर प्रकार की निष्पक्ष शिक्षा' की भाव की।

दादाभाई के भारतीय सामाजिक विद्वानों की दो मुख्य योगदान हैं। प्रथम, उन्होंने भारतीय राजनीति की आर्थिक व्याख्या प्रस्तुत की।³¹ दूसरे, अवधारणीय-अनुसंधान के क्षेत्र में वैज्ञानिक वस्तुगत पद्धति का अनुसरण किया। जब उनकी पद्धति अवधारणीय थी न कि तथैवात्मक तथा व्यापक। उन्होंने भारतीय जनता को देश के समस्याओं के निदान के प्रति प्रेरित किया। इस प्रकार भारतीय अवधारक के क्षेत्र में वे प्रमुख विद्वान बन गये।

दूसरे, दादाभाई ने अपनी भारतीय अवधारक तथा राजनीति सम्बन्धी रचनाओं में 'अधिकार' की धारणा को महत्व दिया।³² जननीयता कायदा के छठे तथा आठवें धाराओं में उन्होंने 'प्राकृतिक अधिकार' की धारणा का उल्लेख किया। 1906 में पार्लियामेंट बिलों के अन्तर्गत पर अपने अवधारणीय भाषन में उन्होंने भारतीयों के लिए दो प्रकार के अधिकारों के आधार पर ब्रिटिश नागरिकता का दावा किया। (1) जनसिद्ध अधिकार, तथा (2) प्रतिस्पर्धात्मक अधिकार। उनकी मान्य थी कि भारतीयों की दो अधिकार सुरक्षा के दिये जायें (1) लोक सेवाओं में लोकप्रियता, तथा (2) प्रतिनिधित्व। उन्होंने इस बात पर सदैव जोर दिया कि भारतीयों की ब्रिटिश नागरिकता है, और इसलिए वे ब्रिटिश नागरिकता के सम्बन्ध सब अधिकारों और विशेषाधिकारों के हकदार हैं।

राजनीति के सम्बन्ध में दादाभाई की पद्धति नैतिक थी। उनका व्यक्तिगत जीवन अत्यधिक परिश्रम का जीवन था। अपने राजनीतिज्ञ वाचनकारों में भी उन्होंने ब्रिटिश नैतिक उत्साह के साथ कहा। भारत के प्रति उनकी भावना सम्मोहित तथा हार्दिक थी, और राजनीतिज्ञ क्षेत्र में उन्होंने अत्यन्त चर्चित तथा अत्यन्त-समय से कुछ सम्पन्न की भावना से जाग किया। वे बुद्ध, सम्मोहित तथा अविचल वैधर्मिक के शास्त्र अवधारक थे। उन्होंने राजनीतिक आन्दोलन का मार्ग इसलिए अपनाया कि वे उसे भारत की आर्थिक तथा सामाजिक दून स्थापना तथा प्रगति के लिए सर्वाधिक उत्तमस्थानी काय प्रणाली मानते थे। उनका विश्वास था कि भारत की भाषा, धर्म तथा होनहार केवल स्वराज्य पर निर्भर है। देश के उद्धार के लिए उनके महान् कार्यों ने गोपाल का प्रभावित किया। इस प्रकार भारतीय राष्ट्रवाद ने इस अद्भुत विद्वान् ने अपने जीवन तथा कर्म की परिधीकृत सत्यता के द्वारा राजनीति के नैतिकीकरण की धारणा को चर्चित प्रदान की।

31 इस सम्बन्ध में किसी तथा भार की दृष्टि का कुछ भी महत्वपूर्ण है। मध्य हिन्दी *Prosperous British India* (वैभवपूर्ण भारत *Early History of British India India in the Victorian Age, Farmers in India England and India*)

32 दादाभाई ने बंगाल बिलों की शर्तों के तहत कुछ लोगों की भाषा किया था जबकि उन्होंने कहा था कि भारतीयों को अधिकारों की प्राप्ति करें और उनका उपयोग करें जो उनके जनसिद्ध अधिकारों के और ब्रिटिश सम्बन्ध में अत्यन्त महान् भार-भार कर्म के दूकें थे। देखिये *Speeches and Writings*, p. 671।

ब्रिटेन तथा भारत के बीच द्वितीय सम्बंध 'यापनगत' हो। उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की ओरमुखी कार्यक्रम निर्धारित किया।

"(1) जिस प्रकार ब्रिटेन की सभी सेवाओं, विभागों तथा स्वीयर से सम्बन्धित प्रशासन देश के निवासियों के हाथों में है, उसी प्रकार हमारा दावा है कि भारत की सभी सेवाओं, विभागों और स्वीयर का प्रशासन स्वयं भारतवासियों के हाथों में होना चाहिए। यह केवल अधिकारहीन नहीं है, और न विहित लोगों की आकांक्षाओं की बात है, यद्यपि अधिकार तथा नीतियों के आकांक्षाओं की दृष्टि से भी इस बात का महत्व है। इस सबसे अधिक यह एक निरपेक्ष वास्तविकता है, उस महान अविवाह आर्थिक मुद्दाई का एकमात्र उपचार है जो वर्तमान विपन्न तथा दक्षिण का आधारभूत कारण है। यह उपचार भारतीय जनता के भौतिक, बौद्धिक, राजनीतिक, सामाजिक और आधुनिक तथा हर सम्भव प्रगति और कल्याण के लिए निश्चित आवश्यक है।

(2) जैसा कि ब्रिटेन तथा उनके उपनिवेशों में कर लगाने, वामन बनाने तथा करों को व्यय करने का अधिकार उन देशों की जनता के प्रतिनिधियों के हाथों में है, वैसे ही अधिकार भारत की जनता को मिलना चाहिए।

(3) इसलिये तथा भारत के बीच द्वितीय सम्बंध 'यापनगत' हो तथा समझ के अन्तर्गत कार्यक्रम बिये जायें। इसका अर्थ है कि किसी अंतर्गत, वैयक्तिक अथवा नाविक विकास के लिये भारत विपन्नता पर पुनर्जात होने वाली के अनुपगत में उस व्यय से वैयक्तों, वैयक्तों, उपनिवेशों के रूप में होने वाले लाभ के भारतवासियों को साम्राज्य के शासीदार के रूप में प्राप्त किया जाये। भारत साम्राज्य का शासीदार है, यह धोखा सदैव की जाती रही है। हम किसी प्रकार समझ नहीं चाहते हैं। हम केवल 'यापन' चाहते हैं। ब्रिटिश नागरिकों के रूप में हमारा जो अधिकार है उनका हम न अधिक बर्तीकरण करना चाहते हैं और न अधिकार उनका विवरण देना चाहते हैं। उन सभी एक शब्द में व्यक्त किया जा सकता है—'स्वराज', जैसा कि इसलिये अथवा उनके निवेशों में प्रचलित है।" दादाभाई की विश्वास था कि अंग्रेज शासक अपने जीवन का समय ही बात में सम्मानपूर्ण स्वराज स्थापित करने की विद्या में व्यय करवायेंगे। उन्होंने भारतवासियों को समझाया कि वे वास्तविकता तथा समझों द्वारा आलोचना करने के बाद पर दृढ़ता से खड़े रहें। कांग्रेस का धार्मिक बल का वैयक्तिक विकास है। दादाभाई ने स्वयं रूप से यह दिया था कि भारत में निम्न प्रशासन के आधारभूत सिद्धांत अनुचित हैं, अतः वे चाहते थे कि कांग्रेस उनके विरुद्ध आन्दोलन करे। किन्तु उन्होंने अनुभव कर लिया था कि भारत के लिए एकमात्र उपचार स्वराज है।

सैद्धांतिक आधार पर दादाभाई की वांछना की प्राप्ति अनेक वर्षों तक मुक्त भारत के सम्भव रहे थे। किन्तु भारत ने जैसी हुई अवांछित अवस्था, निराशा तथा दुःख के कारणों के विचारों में परिणत कर दिया था और वे स्वदेशी का सम्बन्ध करने लगे थे। किन्तु फिर भी वे विश्वास था कि अंग्रेज राजनीतिज्ञों के मन तथा हृदय में स्वतन्त्रता की सभी पुरानी मान्यताओं प्रगति पुनः जाग उठेगी। यक भी प्राप्ति उन्हें थी ब्रिटिश जनता की पुरातन तथा अपमानित ईश्वरता में आस्था यानी रही। उन्हें आशा थी कि भारत इसलिये का अधीन देश होकर नहीं रहेगा, बल्कि एक दिन वह अपने वफादार शासीदार तथा सहयोगी का रूप प्राप्त कर लेगा। उस समय ही उन्होंने भारतवासियों को समझाया कि वे निराश न हों और एक शब्द 'असमर्थता' को स्वीकार न करें।

प्रथम विश्व युद्ध के दौरान दादाभाई ने देशवासियों से अंग्रेजों का साम देने की अपील की। दुर्भाग्य की बात थी कि बीटिंग्ग की उत्तरदायी सामन सम्बंधी घोषणा (20 अगस्त, 1917) के दो महीने पहले ही भारत के अधिकारों के लिए आन्दोलन प्रारम्भ करने वाले उस महान् नेताओं की बहुमती समाप्त हो गयी। 1906 में कलकत्ता कांग्रेस के अवसर पर अपने आन्तरिक भारत का दादाभाई ने आशा व्यक्त की थी कि अंग्रेजों ने अंतःकरण की विजय होगी और भारत को 'अपना सम्बन्ध' बन से बंध समय में उत्तरदायी स्वराज प्रदान कर दिया जायेगा।

रानाडे की भारतीय उदारवाद के दायन का आध्यात्मिक जन्म माना जाता है। उनका हादिस विश्वास था कि स्मिथ और रिचार्डों के उदारवाद की पद्धति सम्बन्धी मान्यताओं तथा सामाजिक नियमों से सरोक्षण करने की आवश्यकता है। उनसे कुछ अणुघातकीय विद्यागत माहयस और जेम्स मिल की अथवा बीट्रिक्स मिल के विचारों से अधिन साम्य रखते हैं।

महाराष्ट्र के इतिहास की सामाजिक तथा धार्मिक व्याख्या पर रानाडे के विचारों की गहरी छाप है। रानाडे मराठा इतिहास के सत्त अक्षरालेख और टोडरमों ह। रखते थे। उनका विश्वास था कि अलीत से मराठा राष्ट्र की सम्पूर्ण सामाजिक तथा धार्मिक छाया के प्राण का छक्ति मिली थी। उन्होंने अपनी 'राइन काय द मराठा चाकर' (मराठा छक्ति का उदय) नामक अणुय पुस्तिक में मराठा इतिहास की प्रवृत्ति तथा सामाजिक-धार्मिक राजवतन पर अणुय विचार व्यक्त किये हैं।

2. रानाडे के चिन्तन के दार्शनिक आधार

रानाडे पर महाराष्ट्र के सत्तो तथा ईसाई धर्माच। के आरिक्त विचारों का प्रभाव पड़ा था। किन्तु उन पर ईसाईयत का प्रभाव इतना स्पष्ट नहीं था जितना कि राममाहा और वेणकचन्द्र पर था। रानाडे का वेणकचन्द्र से सम्बन्ध था। जब वेणकचन्द्र ने मार्च 1867 में प्रामाण्य समाज की स्थापना की तो आर। जी. मन्डारकर के साथ रानाडे भी उसने सदस्य बन गये।¹

रानाडे आरिक्त से और उन्हें ईश्वर की अनुकम्पा में सम्मोहित आस्था थी।² वास्तव में रानाडे का भी कथन था कि अत करने के अतिरिक्त नियम ईश्वर के अस्तित्व का सिद्ध करत है।³ सत्ता की ईश्वर की अनुकृति तथा दण्ड हुआ करता है, इससे भी ईश्वर की सत्ता तथा अनुकम्पा प्रमाणित होती है। रानाडे धार्मिक व्यक्ति थे और उनकी धार्मिकता गहरी सम्मोहित थी। उन्हें धर्म की भी विश्वास था की आस्था थी। वे व्यक्ति तथा समाज दोनों के ही लिए धर्म के महत्त्व की बतलाते थे। उन्होंने लिखा है "तब बाप और दण्ड में दबकूत की दृष्टि, धर्म की प्रेरणा, धर्मोपदेशन की वास्तवता, धार्मिक की प्रण अथवा धर्मिणी का आध्यात्मिक सेवन की मार्ग प्रण मिली है उनकी दृष्टि, उनकी प्रेरणा, उनकी वास्तवता, उपा। प्रण और उपा। प्रण में दबी होत है ईश्वर का विनय प्रण हुआ करता है। और न परद विनयिनी को जो दण्ड अनुभव करती और उपदण देनी है, वे तब तब विनय प्रण का उपदण और

महादेव गोविन्द रानाडे

1 प्रस्तावना

महादेव गोविन्द रानाडे (1842-1901) एक विरघात विचिन्नेता, व्यवसायी, इतिहासकार, समाज सुधारक तथा शिक्षाविद थे। अत आधुनिक महाराष्ट्र में जो अद्भुत विद्रुतियाँ उत्पन्न की हैं उनमें उनका उच्च स्थान है। उनका जन्म 18 जनवरी, 1842 को नासिक न हुआ वा, और 16 जनवरी, 1901 में बम्बई में उन्होंने शरीर त्याग किया। 1862 में रानाडे 'हनुमान' नामक एक भागल मराठी साप्ताहिक के सम्पादक नियुक्त हुए। 1868 में वे बम्बई के एमनिलस कॉलेज में अंग्रेजी तथा इतिहास के प्रोफेसर नियुक्त किये गये। 1871 में बम्बई सरकार ने उन्हें 'यावाबीश' बना दिया। उनकी महान प्रेरणा के 1884 में ईकन एन्कैपान सोसाइटी की स्थापना हुई। 1885 में रानाडे को बम्बई विधान परिषद का एक अतिरिक्त सदस्य नियुक्त किया गया। जब वे ही बैठक की शुरुआत में बम्बई के उच्च 'यावालय' में 'यावाबीश' का स्थान रिक्त हुआ तो रानाडे को परोपेत करके उस पद पर नियुक्त कर दिया गया। 1870 में बी.पी. बोरी ने जिस पुना साधनिक समा की स्थापना की थी उसकी रानाडे लगभग 25 वर्ष तक निर्देशन तथा प्रशासनिक प्रवृत्ति करते रहे। अपनी प्रवृत्ति विचारधारा के कारण वे 'महाराष्ट्र के मुकदाम' कहलाते थे।¹ पहले उन महान व्यक्तियों में वे भी प्रचलन रूप में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का निर्देशन तथा प्रवर्धन किया करते थे। बम्बई में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन में भी बहुसर सदस्य समित्वित हुए उनमें रानाडे भी थे।² ए. बी. छत्रुम तक उन्हें अपना राजनीतिक गुरु मानते थे।

रानाडे के सामाजिक तथा राजनीतिक दायन में अनेक पारायों का विधान था। पुना राम, कुमरीदास, सत अमरदास तथा दीपरी प्रथम की याति रानाडे को भी इसतर के आनन्द अनित्य तथा असीम अनुकम्पा में अहित आत्मा थी। इतिहास में इतिहास की आध्यात्मिक व्याख्या में विश्वास करते थे। उनकी दृष्टि में इतिहास के सम्बोधन आध्यात्मिक ईश्वरीय आत्मा तथा अर्थस की अभिव्यक्ति होते हैं। समाज की प्रवृत्ति के सम्बन्ध में रानाडे की भारतीय व्यवस्था की और उनका स्वतन्त्रता विषयक सिद्धांत बहुत व्यापक था। उन्होंने धार्मिक अहिंसा और सदा जिन सत्त्वता का, तथा विषयों की पराधीनता के अनुकूलन का समर्थन किया। मनुष्य का जीवन स भूषण रहकर राजनीतिक स्वतन्त्रता का आनन्द उही में सजता। इसलिए रानाडे न स्यात्र, साहित्य, धर्म, राजनीति सभी क्षेत्रों में पुनर्जागरण का समर्थन किया।

1 महात्मा रानाडे रानाडे के जीवन तथा इतिहास में निम्न लेखों का भी मानकर *A Sketch of the Life and Works of the Late Mr. Justice M. G. Ranade*, बी.पी. रानाडे 'नासिक (जाने 8) तथा एक बार बारक हुए 'रानाडे का जीवन चरित (मराठी में)। एक जो रानाडे, *Essays on Indian Economics* (वी.पी. रानाडे) (बी. ए. अर्थस एन. ए. मद्रास, 1906) महाराष्ट्र की राजनीति *Run of the Maratha Power* (गुजरात गुज. न. बम्बई, 1900), एक जो रानाडे *Philosophy of Indian Thought*। रानाडे न *Quarterly Journal of the Saranyanika Sabha* नामक पत्रिका उत्पन्न की और अक्टूबर 17 वर्षों में उसके सम्पादन में निहाई वर्ष तक गिरी।

2 James Mellock, *M. G. Ranade*, पृष्ठ 111।

रानाडे की भारतीय उदारवाद में दर्शन या आध्यात्मिक जनक माना जाता है। उनका दार्शनिक विश्वास था कि समय और रिक्तताओं में उदारवाद की प्रवृत्ति सम्बन्धी भाष्यताओं तथा सामाजिक नियमों में संशोधन करने की आवश्यकता है। उनमें कुछ अस्पष्टास्फीय विद्वान्ता माहत्स और जेम्स मिल की अपेक्षा कीर्तित लिख के विचारों से अधिक साम्य रखते हैं।

महाराष्ट्र के इतिहास की सामाजिक तथा धार्मिक व्याख्या पर रानाडे ने विचारों की बहुरी स्थाप है। रानाडे मराठा इतिहास में सत्त अस्पष्टाइन और टाइनकी हो सकते थे। उनका विश्वास था कि अतीत में मराठा राष्ट्र की दम्भीर सामाजिक तथा धार्मिक लक्ष्य से प्राण या शक्ति मिली थी। उन्होंने अपनी 'राइन बाय द मराठा पावर' (मराठा सक्ति वा उदय) नामक अणुण पुस्तक में मराठा इतिहास की प्रवृत्ति तथा सामाजिक-आर्थिक राज्यतन्त्र पर अपने विचार व्यक्त किये हैं।

2 रानाडे के चिन्तन के दार्शनिक आधार

रानाडे पर महाराष्ट्र के सत्तो तथा ईसाई वैश्वकी के आस्तित्व विचारों का प्रभाव पड़ा था। किन्तु उन पर ईसाइयत का प्रभाव इतना स्पष्ट कभी नहीं था जितना कि राममोहन और केशवचन्द्र पर था। रानाडे का केशवचन्द्र से सम्बन्ध था। जब केशवचन्द्र ने मार्च 1867 में प्राथमा समाज की स्थापना की तो आर भी मज्जदारकर के साथ रानाडे भी उनके सदस्य बन गये।³

रानाडे आस्तिक से और उन्हें ईश्वर की अनुकम्पा में दम्भीर आस्था थी।⁴ वाण्ट की भाँति रानाडे का भी कथन था कि अन्त करण के दैतिक नियम ईश्वर के अस्तित्व की सिद्ध करते हैं।⁵ सोमो की ईश्वर की अनुभूति तथा दर्शन हुआ करता है, इससे भी ईश्वर की सत्ता तथा अनुपम्मा प्रमाणित होती है। रानाडे धार्मिक व्यक्ति से और उनकी धार्मिकता बड़ी दम्भीर थी। उन्हें धर्म-सत्ता की सिद्धाओं में भी आस्था थी। वे व्यक्ति तथा समाज दोनों के ही लिए धर्म के महत्व को स्वीकार करते थे। उन्होंने लिखा है "धर्म कर्तों और देशों में देवदूत की दृष्टि कवि की प्रेरणा, महान् धर्मोद्देशक की वाचस्पृहा, दार्शनिक की प्रज्ञा अथवा अविद्याओं का आत्मोत्थन लेकर जो बरद आत्मार्थ जान लेती हैं उनकी दृष्टि, उनकी प्रेरणा, उनकी वाचस्पृहा, उनकी प्रज्ञा और उनका दूरदर्श वास्तव में ईश्वरी होते हैं। ईश्वर का विशेष प्रभाव हुआ करते हैं। और वे बरद विद्वत्ताओं को कुछ देखती, जो कुछ अनुभव करती और उददेश्य देती हैं, वह सब एक विशेष प्रकार का उच्चतर और अधिक सच्चा ईश्वरी प्रभाव, ईश्वरीय ज्ञान अथवा इतहास है, और इतहास शब्द का यही एक स्वीकार्य सत्य है। पुस्तकों में लिख ईश्वरीय ज्ञान अथवा इतहास का उल्लेख मिलता है वह चिन्तन मात्र है, और चूँकि वह स्वभाव से ही असत्य की तथा स्वामीय होता है इसलिए उसका दृष्ट्य की सापेक्ष तथा असत्यता हुआ करता है।⁶ रानाडे ने स्वीकार किया कि ईश्वर की सक्ति तथा अन्त करण के धुड़ी करण से परिच का ठीस मीक का निर्माण होता है। उनका विश्वास था कि अन्त करण के आदेशानुसार आचरण करने से मानव हृदय पवित्र होता है। उनका कहना था कि भारत का राष्ट्रीय मानस नाशिकता से शाश्वत नहीं हो सकता। इस देश में यौद्ध धर्म स्वामी प्रभाव में जमा सका, यह इस बात का अकट्य प्रमाण है।⁷ चूँकि रानाडे की ईश्वर के शक्तिक्रिमान्ता प्रभाव में विश्वास था, इसलिए

3 प्राथमा समाज की स्थापना 1867 में बम्बई में आचार्य पाण्डुरंग के नेतृत्व में हुई थी। दादीबा उमा पाण्डुरंग पाण्डुरंग, जो ए मीक की दम करते एन एन परम्पराई आदि अथ-आदि की उपाय सम्पादित हो गये थे। 1870 में आर की मज्जदारकर तथा एन जी रानाडे की उमरी सदस्य बन गये। बाद में बरदर न-दावरकर भी अन्त सम्मिलित हो गये।

4 रानाडे ने लिखा था "जान सत्य मनुष्य को कुछ है वह इसलिए है कि उसे एक दूय दूय में अन्त मानस तथा अन्त के अन्तर्गत में विश्वास रहा है, और बरद के महान् विचारों की स्थिति कुछ की हो, अनुपम्मा मनुष्यी का उद्धार इस विश्वास में प्राप्त हो रहा करता है।" (Note on Professor Selby's Published Notes of Lectures on Butler's Analogy and Sermons *Sarvaganta Sabha Journal* 1882)।

5 एन जी रानाडे के 'A Theist's Confession of Faith' (1872) पर विचार तथा आचार्य, "Review of Dadoba Pandurang's Reflections on the works of Swedenborg (1879) तथा "Philosophy of Indian Theism" (1896)।

6 एन जी रानाडे, "A Theist's Confession of Faith"

7 *Miscellaneous Writings of Mr G Ranade* पृष्ठ 69।

उन्होंने इस सत्य को भी स्वीकार किया कि इतिहास में ईश्वरीय शक्ति कार्य करती है। इस प्रकार इतिहास ईश्वरीय इच्छा की अभिव्यक्ति है। स्टाइक पाश्चान्तिनों की भांति रानाडे को बाह्य शक्ति के विभाजकत्व में भी ईश्वर की शक्ता का प्रमाण दिखायी दिया। उनके मतानुसार मानव आत्मा और परब्रह्म एक ही नहीं हैं, बल्कि इस अर्थ में उनका दृष्टिकोण अति अद्वैतवादी वैदिकियों से भिन्न है। विद्वानों तथा साहित्यिकों के विपरीत रानाडे मानव शक्तियों को कुछ शक्ता में स्थापित तथा स्वतन्त्र इच्छा के मुक्त मानते हैं।

महाराष्ट्र के राजा तथा तुलसीदास की भांति रानाडे को भी विश्वास था कि प्रायः नव्य जीवन स्फुटि प्रदान करने की शक्ति होती है। उनका हृदय गम्भीर भक्ति से ओतप्रोत था और व उदारता तथा मानव प्रेम के साक्षात् अन्तार में थे। वे तुलसीदास की कविताओं से प्रेरित हो उठते थे और उनके अन्तर्गत का प्रथम भावक पाठ किया करते थे। साची (हेमेटिक) धर्मों में ईश्वर की अनुभवातीत नवीनता के शक्ति को अधिक महत्त्व दिया गया है, इससे विपरीत हिन्दु धर्म सर्वव्यापी सन्तुष्टता का उपदेश देता है। अद्वैत अन्तर्गत अन्तर्भाव है कि व्यक्ति का मनोमय बहु तथा अज्ञान में अज्ञान सामर्थ्य आत्मा दोनों एक ही हैं। इस प्रकार भारत में धर्म आन्तरिक अन्तर्भाव अनुभूति तथा ध्यान की वस्तु है। रानाडे पर भी भक्ति आन्दोलन का प्रभाव था। उन्होंने अस्तिता पर अपने ध्यानधर्मों में इस धारणा में विश्वास प्रकट किया है कि ईश्वर एक सन्तुष्टता शक्ति है। भारत की धार्मिक विचारधाराओं को समझने में उन्हें भावपूर्ण धर्म में विशेष प्रेरणा मिली थी। उन्होंने लिखा है 'ईश्वर के मुख्यतः उज्ज्वल पक्ष का प्रेमपूर्वक ध्यान तथा चिन्तन करना हमारे राष्ट्र की आत्माविधि प्रवृत्ति रही है। सभी जातियों का दृष्टिकोण इसी भिन्न है। उनके यहाँ पुरस्च ईश्वर की अमोक्षादक अभिव्यक्ति का ध्यान करने पर अधिक धन दिया गया है। उनका यही विश्वास है कि ईश्वर की शक्ता का केवल दूर से धृष्टता से आभास मिल सकता है, वह धर्म के अन्तर्गत के लिए बलोर दण्ड देता है, वह ऐसा आभासीय है जो दण्ड अधिक देता है, दुष्टता कम, और जब पुरस्कार देता है जब भी अपने आराधन को अन्तर्गत रखता है जिससे वह बौद्धा रहे। किन्तु हमारे यहाँ ईश्वर का आभासीय, दण्डवत्ता तथा शासक की अन्तर्गतता मिला जाता, यहाँ तथा भिन्न अधिक माना गया है। हमारे राजा तथा अधिपति ने आदर्शपूर्णक बहुत है कि उन्होंने अपने ईश्वर का दर्शन किया है, उन्होंने उसकी बाधी सुनी है, उससे मान्य करते हैं, उससे बातचीत की है और आदान प्रदान किया है। योगी तथा वैदिकी केवल अपने जाग्रत स्वप्नों की अवस्था में ईश्वर के साथ एक होने की बात कहते हैं, किन्तु रामदेव, तुलसीदास, एकनाथ तथा ध्यानदेव इस प्रकार के दूर के तथा कठिन चिन्तन के साक्ष्य नहीं थे जो उनके पौरुष जीवन के प्रत्येक क्षण विद्यमान नहीं रह सकते थे। वे ईश्वर के साथ प्रतिदिन और प्रतिक्षण रहते तथा उनके साथ आदान प्रदान करते थे, और वे बहुत करते थे कि हमसे उन्हें जो आनन्दमिलता है वह हमें भी तथा वैदिकी की सभी उपलब्धियों से भिन्न है। ईसाई धर्मों में सम्पूर्ण प्रेम ईश्वरवासीय के जीवन और धर्म के अनुभूति केन्द्र है, किन्तु हम देश में आराधन प्रतिदिन अपने हृदय में ईश्वर की विद्यमानता का अनुभव करता है और अपनी उस गम्भीर अनुभूति पर अपना सम्पूर्ण प्रेम अन्तर्गत है और उनका बहु प्रेरणार्थक योग, मान्य और स्पष्ट द्वारा होने वाली अनुभूति के भी अधिक आभासीय और विश्वास के योग होता है। राजा का यही गौरव है और इसे हमारी जनता में उच्च तथा भिन्न सभी के लोगों में, निर्यात और पुरुषों में जीवन की आरम्भ तथा अन्त्य निधि के रूप में स्थापित रखा है।¹⁰ किन्तु निष्ठावान आर्तिता होकर ही भी रानाडे ने अन्तर्गतता को, जो मानवतत्त्व धर्म की सर्वप्रमुख धारणा है स्वीकार नहीं किया। वे भीष्ट अर्थात् परमात्म्य और ईश्वर सादृश्य के आदर्श को मानते थे। उनके अनुसार ईश्वर के गुणधर्म सत्य ही जनता में नहीं है। इन्द्रियों की आनन्दता तथा मानसिक विचारों में ऊँच उठता और उसमें परमेश्वर ईश्वर के अन्तर्गतता के रहता ही भिन्न है। आन्तरिक आत्मा विमल अनुभूति योग का धार है। यज्ञ, भक्ति, प्रार्थना, ईश्वर तथा उसकी अनुभूति में विश्वास और मान्य भांति न प्रति प्रेम योग के साथ है। अनुभूति इस धर्म में अन्तर्गतता ही प्रारम्भ

के योगस्वर मोक्ष का आनन्द उठा सकता है। ऐसा प्रतीत होता है कि रानाडे की दृष्टि में आध्यात्मिक व्यक्तित्व की पूर्णता ही मोक्ष है। रानाडे के अनुसार मानव आत्मा तथा ईश्वर एक ही नहीं हैं। वह ईश्वर पर निर्भर है, बिना कुछ अंश के स्वतन्त्र भी है।⁹

3 समाज सुधार का दाय

रानाडे समाज सुधार के समर्थक थे। वे विपदाओं के पुनर्विवाह के वश में थे, और 1866 में जो विधवा विवाह सभ स्थापित किया गया था उसके सदस्य थे। वे समर्थते थे कि राजनीतिक मुक्ति के लिए भी सामाजिक प्रगति आवश्यक है।¹⁰ जब दवाबन्द सरस्वती 1875 में पूना गये तो रानाडे ने उन्हें हार्दिक सहयोग दिया, क्योंकि स्वाधीनता भी धार्मिक तथा सामाजिक सुधारों के कट्टर समर्थक थे। मुनि ने बम्बई सरकार के अंतर्गत 'साधारणीक' के और स्वभाव के विचारों की थे, इसलिए उनका दृष्टिकोण समतल था। वे मामलों का निपटारा करने के लिए अंत तक समर्थ करना पसंद नहीं करते थे। वे समाज सुधार चाहते थे, बिना उसने लिए बिरोध करने अथवा अतिवादी बनने के समर्थक नहीं थे। 1895 में पूना में इस बात पर सभी दोरमुल सभाया गया कि सामाजिक सम्मेलन कांग्रेस के अधिवेशन के लिए तैयार बिचे गये पत्रों में होना चाहिए अथवा नहीं।¹¹ तिलक तथा महात्मा और विरोध पर पूना का अतिवादी गुट इस बात पर तुल्य हुए थे कि वे सामाजिक सम्मेलन के लिए कांग्रेस के बहाल का प्रयोग नहीं करने देंगे, चाहे सम्मेलन कांग्रेस के अधिवेशन के समान होने पर अंतिम दिन ही क्यों न किया जाय। इस प्रश्न की लेकर मारी तुमाल लडा किया गया किन्तु अंत में रानाडे पूना के अतिवादीयों की समझौता के सामने झुक गये। पूना कांग्रेस के मनोनीत अध्यक्ष सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने रानाडे की बुद्धिमत्ता तथा समर्थ की धुरि धुरि प्रशंसा की।

हेनेल, कामत तथा रॉयलर की दृष्टि रानाडे भी समाज की एक अतिम अवस्था मानते थे। उनका विचार था कि राजनीति तथा समाज सुधार की एक दूसरे से पूषक नहीं किया जा सकता। सिन्धी पर विरोधपूर्ण तथा भ्रष्टाचार दृष्टियों की धोकर उनका समर्थ करना उनके साम अमंजता का व्यवहार ही नहीं था, बल्कि इसके मारहीन समाज विरोधियों की मुखा का पाष भी बना हुआ था। किन्तु यदि सामाजिक न्यायकलाप के द्वारा राष्ट्र के जीवन को दृष्टि प्रदान की जाती तो इसका अर्थ सौरी वे भी प्रमत्त पटना अनिवार्य था। राजनीतिक अधिकारी तथा विरोधाधिकारों की प्राप्ति के लिए बुद्धि और 'चाय पर आधारित समाज व्यवस्था की आवश्यकता थी।' अतः रानाडे का मान्य था कि राष्ट्र की उसकी कुछ कुबचाओं से मुक्त करने के लिए सरकार समाज का सुधार करना आवश्यक है। उनका कहना था कि सभी समाज के अधिकार पचित क्यों की उन्नति तथा पुनः स्थापना से देश को राजनीतिक क्षेत्र में भी दल मिलेगा। उन्होंने कहा: "चाहे राजनीति का क्षेत्र ही और चाहे समाज पक्ष धार्मिक, उत्तरादन अथवा ही दय वा चाहे साहित्य ही और चाहे विज्ञान, कला, मुद्र अथवा जाति—प्रत्येक क्षेत्र में मनुष्य को वैयक्तिक तथा सामूहिक रूप से अपनी क्षमताओं का विकास करना है तभी वह चाय में जाने वाली अतिवादी पर नियंत्रण प्राप्त कर सकता है। यदि वह कुछ समय के लिए चिर जाता है तो उसे अपनी सम्पूर्ण धारीरिक, बौद्धिक तथा नैतिक शक्ति लगाकर पुनः उठना पड़ेगा। यदि अंत क्षेत्रों में ही कि मनुष्य अपनी क्षमता के किसी एक तत्व का सेवा अथवा उसकी की उपेक्षा करके विकास कर सकता है तो कदाचित् चाय भ्रम की गर्मी से प्रकाश को ओर मुलाय से दीप्य तथा सुगंध की भी पूषक कर सकते हैं। किन्तु वास्तविकता यह है कि यदि राज-

9 एक ही रानाडे, 'उप पर व्याख्यान' (गच्छी)।

10 एक एक एक, *Index to Transactions*, पृष्ठ 177 'रानाडे तथा उनके साथियों की वैयक्तिक आतिवादी की बर्गीय के पुनर्जीवित किन्तुओं और सामाजिक परिवर्तनों के दृष्टिकोण प्रकाश की समर्थ के और उनके विपक्ष उन्होंने निर्भीकतापूर्वक कुछ की योजना कर दी थी। उनका विचार था कि अनेकों की दृष्टि एक समर्थक अति की सामाजिक व्यवस्था पर आधारित है अतः उसे सब तक नहीं हिताना जा सकता जब तक भारत के जीवन प्रगतिशील विचारों से आशीर्वाद नहीं हो सकते।

11 रानाडे ने सामाजिक सम्मेलन आयोजन की मांग समीची थी। उन्होंने ही कांग्रेस के अधिवेशन के साथ साथ सामाजिक सम्मेलन करने की योजना प्रस्तुत की थी। अध्यक्ष 'सामाजिक सम्मेलन 1887 में प्रकाश में हुआ।

12 *Indian Social Reform*, भाग 2, पृष्ठ 127।

नीतिक अधिकारों के क्षेत्र में आप निम्न स्तर पर हैं, तो आप अच्छी समाज-व्यवस्था की स्थापना नहीं कर सकते, और न आप राजनीतिक अधिकारों का उपयोग करने में सक्षम हो सकते हैं, यदि आपको समान व्यवस्था विधिक तथा सामाजिक नहीं है।¹³ आपको इस व्यवस्था में नहीं हो सकती, यदि आपके सामाजिक सम्बन्ध दोषपूर्ण हैं। यदि आपके पानिक आयु निम्न होते हैं तथा बिदे हुए हैं तो आपको सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक क्षेत्रों में भी सफलता नहीं मिल सकती। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों की यह पारस्परिक नियंत्रण आवश्यक पड़ना नहीं अनिवार्य का नियम है। समाज क्षीर के सहाय है। यदि आपके क्षीर ने आन्तरिक व्यवस्था में सक्षम होने आपके हान तथा पान स्वस्थ और सन्तुष्ट नहीं हो सकते। जो नियम मानव क्षीर पर लागू होते हैं, वही उस सामुदायिक मानवता के नियम में लागू है जिसे हम समाज व्यवस्था राज्य कहते हैं। यह दृष्टिकोण गलत है जो राजनीतिक व्यवस्थाओं की सामाजिक और आर्थिक प्रयोग में नृपक करता है। कोई व्यक्ति किसी एक क्षेत्र में अपने कृत्यों का चालन नहीं कर सकता, यदि वह नान तथा अपने कृत्यों की व्यवस्था करता है।¹⁴ रानाडे ने अनुसार समाज-सुधार राष्ट्रीय परिवर्तन की दृष्टि और सुदृढीकरण का एक साधन था। इसीलिए उन्होंने सामाजिक विकास के परिचयन को प्रारम्भ दिया। वे चाहते थे कि यदि भारत में सामाजिक विकास राजनीतिक उत्थिति से पहले नहीं हो सके तो कम से कम उसके साथ साथ अवश्य चलना चाहिए। इसीलिए रानाडे ने बचन, सद्गुण विकास की प्रकृति, सत्ता, विचारों की सद्गुण तथा मानववाद के स्थापन पर स्वतन्त्रता, धर्मता, बुद्धि की प्रगति तथा मानव गरिमा की भावना को प्रतिष्ठित करने की आवश्यकता पर अधिक बल दिया। इतिहास के विचारों होने के माते रानाडे ने यह देख लेने की अन्तर्दृष्टि की कि अनेकित सामाजिक परिवर्तन घन परिवर्तन अपना पाति के द्वारा नहीं लाया जा सकता, उसके लिए आवश्यक है कि नये विचारों तथा भावों की धीरे धीरे प्रगति किया जाय और सम्बन्धों से उन्हें प्रभावित किया जाय। इसीलिए समाज की प्रकृति व्यवस्था है और सामाजिक सम्बन्धों का सामाजिक सम्बन्धों से अनुप्राणित होना चाहिए—इन को विचारों से प्रेरित होकर रानाडे ने देशवासियों के बचन के लिए आवश्यक कार्यक्रम का सम्पन्न किया। इस प्रकार रानाडे तथा के टी हेमन द्वारा ही सामाजिक विकास तथा सुधार के सम्बन्ध में अवश्य और इतिहासवादी दृष्टिकोण को स्वीकार करते थे। रानाडे हिन्दू समाज के पान आधारभूत दोषों का उन्मूलन करने के पक्ष में थे

- (1) बाह्य जगत् से सम्पर्क न रखने की प्रकृति,
- (2) अलंकरण की प्रकृति न सुनने और बाह्य सत्ता के समक्ष समर्पण करने की प्रकृति,
- (3) सामाजिक अशौच तथा सामाजिक दूरी और अन्तर्गत अशुद्धता को बनाये रखना,
- (4) सुराद्वयों की स्थायी रूप से बनाये रखने के प्रयत्नों को निरन्तर भाव से गहन कर लेना,
- (5) जीवन के ऐहिक (भौतिक) क्षेत्र में श्रेष्ठता प्राप्त करने की अभिलाषा।

जो सद्गुण मिले की भाँति रानाडे विचारों की पराधीनता तथा अन्तर्गत सामाजिक दुर्गुणों से निरुद्ध थे। उन्होंने स्वीकार किया कि देश की सुवर्णता तथा अशौच के मूल में सामाजिक पान ही मुख्य थे। इसीलिए उनकी दृष्टि में सामाजिक उद्धार का राजनीतिक सुवर्णता से अपरि सम्बन्ध था। 1897 में अमरावती में सामाजिक सम्मेलन में उन्होंने कहा था 'वे सामाजिक रीतियाँ और विचार सदा हैं जिन्होंने पिछले तीन हजार वर्षों में हमारे पान की प्रति को जीवित किया है। ये विचार क्षेत्र में इस प्रकार हैं 'सुवर्णता की भावना, अलंकरण की भावना की भावना बाह्य सत्ता के समक्ष समर्पण करना, सुराद्वयों तथा विचारों के बीच अन्तर्गत सम्बन्धों का आधार पर सामाजिक केर देवता, सुराद्वयों तथा सामाजिक की निरन्तर रूप से सद्गुण कर लेना, और ऐहिक बचन के प्रति सामाजिक अशौचता की अन्तर्गत सामाजिक की सीमाओं तक पहुँच गयी है। हमारी अन्तर्गत सामाजिक व्यवस्था के मूल में ये मुख्य विचार रहे हैं। इनका सामाजिक परिवर्तन वर्तमान प्रति

13. एम. एन. राय रानाडे की दृष्टिकोण की प्रस्ताव करते हुए (*India in Transition*, पृष्ठ 183) लिखते हैं कि उनकी वे सामाजिक एक व्यवस्था की दृष्टिकोण के अन्तर्गत सुधार थी। फिर भी यह स्वीकार करती है कि रानाडे अन्तर्गत नीतिक तथा सामाजिक सत्ताओं का प्रतिष्ठित थे।

14. श्री बाई विचारों *Indian Social Reform* भाग 2, पृष्ठ 127-28।

सारिक व्यवस्था है जिसने अतन्त्र स्त्री कुल में अधीन है और नीची जाति में; उंची जातियों के अधीन है। यह बुराई इस सीमा तक पहुँच गयी है कि समुच्च मानवता के प्रति स्वाभाविक सम्मान की भावना से परिचित हो गया है।¹⁵ रानाडे ने इस भावना की भी चुनौती दी कि परिष्कृत मध्ययुगीन धर्म शास्त्रों की आधुनिक रूप में सामाजिक आन्दरण का नियन्त्रण करने का अधिकार है। उनका मानस यथन मुक्त हो चुका था, इसलिए वे बीचघटीय परिघटितियों से चिन्ते रहने से लिए तैयार नहीं थे। यही कारण था कि वे जाति व्यवस्था की दृष्टिलता को तब क्षमता चाहते थे, और विधवा विवाह तथा बालकी के लिए विवाह की आयु को बढ़ाने में पक्ष में थे। सामाजिक अधोगति को रोकने में लिए उन्होंने सामाजिक मामलों में बुद्धि के प्रयोग पर बल दिया। सामाजिक बुराईयों के उन्मूलन के लिए शाहसपूर्ण प्रयत्न तथा सकलपुनर्गठन सहनशीलता की आवश्यकता थी सामाजिक दृष्टियों के व्यापारों के सामने निर्विघ्नता से समर्थन करने से काम नहीं चलता था। साथ ही साथ यह भी आवश्यक था कि समाज सुधार का बीड़ा उठाने वाला स्वयं अपने परिवार का सुधार करे। उसे अपने परिवार तथा गाँव की नये सचि में राजगार था।

रानाडे के विचार में सामाजिक परिवर्तन का अधिक अच्छा माध्यम यह था कि जनता को समझाया जाय कि जिसे परिवर्तन माला चलता है उसका वेदो, स्मृतियों आदि प्राचीन समझों में ही विधान है। स्वामी दयानन्द तथा अर जी बख्शरकर ने यही माध्यम अपनाया था। किन्तु धार्मिक दृष्टि की अनुशासित के नाम पर अपील करने के अतिरिक्त रानाडे यह भी चाहते थे कि लोगों की प्रेरित किया जाय कि वे ज्ञान विवाह और संध्याय का परिष्कार करने तथा विधवा विवाह और स्त्री-शिक्षा को प्रोत्साहन देने के सम्बन्ध में प्रतिज्ञा करें और स्वयं सँ, उन्हें इस प्रकार की प्रतिज्ञा और स्वयं की पवित्रता तथा सम्भरता में निश्चय था। किन्तु उनका कहना था कि यदि इतिहास और परम्परा के नाम पर समझने से और लोगों के अन्तःकरण से हार्दिक अन्वीक्षण करने से आवश्यक परिणाम न मिलते तो राज्य के साम्यकारी आदेश से समर्पित कानून का भी सहारा लिया जा सकता है।¹⁶ इस प्रकार रानाडे ने स्त्रीवाद किया कि आवश्यक सामाजिक परिवर्तन होने के लिए शास्त्रों की मान्यता (सामाजिकता) तथा अन्तःकरण, दोनों के ही नाम पर अपील करना आवश्यक था। किन्तु वे सामाजिक परिवर्तनों के लिए राज्य की मस्तीन का प्रयोग करने के भी विरुद्ध नहीं थे। परम्परा-वादी दल, जिसने नेता लिख के, रानाडे की समाज सुधार की नीति की अन्वीक्षण करता था। जनकी आलोचना के उत्तर में रानाडे ने कहा कि समाज सुधारक किसी नितात नहीं कमजा विदेशी बानु का प्रचार नहीं कर रहे हैं, बल्कि वे अन्वीक्षण की और लौटने का ही समर्थन करते हैं।¹⁷ रानाडे ने बलवत्या कि हिन्दू समाज की सामाजिक अनुदारता तथा परम्परानिष्ठता उस समय युग की अधोगति का परिणाम थी जब देश की विदेशी जातिशे के अतिक्रमण तथा अन्तर आक्रमण का शिकार होता गया था। किन्तु प्राचीन ज्ञान में देश की परिघटितियों तथा रीति रिवाज में स्थिति की स्वतन्त्रता तथा स्वच्छन्दता की प्रमुखता की जाती थी। यही कारण था कि उस युग में देश में उत्तम नीम राजनीतिक प्रवृत्ति थी। भारतीयों ने अन्वीक्षण से आधा तक सांस्कृतिक अन्विष्टीकरण के क्षेत्र में जो विकास करीक्षण जिये थे इस बात के संकेत थे। किन्तु निम्नलिखित एक हजार वर्ष में मध्य-युगीन राजनीतिक पराक्रमशून्यता शोक तथा प्रतिवन्धी ने देश की सामाजिक प्रवृत्ति को कुचल दिया था। इसलिए समाज सुधार की समस्याओं के सम्बन्ध में प्रबुद्ध विवेक से काम लेना आवश्यक था। रानाडे का निश्चय था कि जिस नीति का समाज-सुधारक प्रचार कर रहे थे वह वास्तव में उस सुदूर अन्वीक्षण की और लौटने की नीति की जब देश की सामाजिक परम्पराई अधिक बुद्धिशून्य थी। किन्तु रानाडे चाहते थे कि समाज सुधारकों की साक्षरता और समय से काम लेना चाहिए और अन्वीक्षण का समर्पित सम्मान करना चाहिए।

15 की गई निम्नलिखित *Indian Social Reform*, पृष्ठ 91।

16 रानाडे का भाषण, *Indian Social Reform* (की गई निम्नलिखित द्वारा सम्पादित) भाग 2, पृष्ठ 25।

17 रानाडे के विरुद्ध और निरन्तरित पर एक निम्नलिखित विवाह और उत्तर प्राचीन भारतीय सामाजिक व्यवस्था में अन्वीक्षण की विवेचना की। इस अतिरिक्त संक्षिप्त समाज रूप *The Sutra and Smritis Dicta on the subject of Hindu Marriage* *Saraswat Sabha Journal* (1889) एक जो रानाडे का लेख 'Vedic Authorities for Widow Marriage'।

छोस सवयन प्राप्त था। मराठों का इतिहास वास्तव में सभी भारतीय राष्ट्रीयता के निर्माण का इतिहास है। यद्यपि मराठों की नीति उसनी भाषा में छोस राजनीतिक एकता की जगह न दे सभी निम्नो कि हमें पहचानी यूरोप के देशों में देखने की मिलती है, फिर भी हमने कोई स देह नहीं है कि उसका रूप वास्तविक रूप में राष्ट्रीय था।²² रानाडे लिखते हैं "उसकी नींव जनता के हृदयों में बोधी और गहरी रखी जा चुकी थी। यमाल, वनदिक, बज्र और हैदराबाद की सूबेदारिया के विपरीत मराठा शक्ति का उदय इसलिये हुआ था कि महाराष्ट्र में उस वस्तु का प्रारम्भ हो चुका था जिसे हम राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया कहते हैं। यह किसी व्यक्तिगत साहसी के सफल उद्योग का परिणाम नहीं था। यह उस समस्त जनता का विप्लव था जो भाषा, मूल, धर्म तथा साहित्य के सामान्य सम्बन्ध से इच्छानुसंग परस्पर बँधी हुई थी, और जो सामान्य स्वतंत्र राजनीतिक जीवन के द्वारा अपनी एकता की और भी अधिक सुदृढ़ करना चाहती थी। भारत में विदेशी मुसलमान आक्रमणों के विनाशकारी युग के बाद यह अपने इन का पहला प्रयोग था।"²³ अतः मराठा का इतिहास न तो कोई उपद्रव की श्रुतता है और न सुदृष्टि की प्रवृत्ति का पलीकृत रूप है, जैसा कि कुछ दुर्भावपूर्ण इतिहासकारों ने शिष्ट करने का प्रयत्न किया है, बल्कि उसका नैतिक महत्त्व है, और यह देश के राष्ट्रीय एकीकरण की प्रक्रिया में एक महान् घटना थी।

(3) मराठों की शक्ति का उदय केवल एक राजनीतिक घटना नहीं थी। पहले पहले प्रचण्ड सामाजिक तथा धार्मिक आन्दोलन हो चुका था और उनके साथ साथ ही रहा था। उसने नागरिक अधिकारों की आकांक्षाओं की तीव्र निष्ठा, और उनके सामान्य सवयन के फलस्वरूप कला, साहित्य, राजनीति तथा धर्म के क्षेत्रों में सत्यनात्मक प्रक्रिया काट पड़ी। यह सांस्कृतिक उदय युवक तथा युवनिर्माण परम्परागत ब्राह्मणवाद का पुनरुत्थान नहीं था, बल्कि उसकी अपनी तीन महत्वपूर्ण विशेषताएँ थी। प्रथम, मराठा उसका स्वरूप परम्परा विरोधी था और उसका नेतृत्व शारंगधर,²⁴ नामदेव,²⁵ एकनाथ,²⁶ तुकाराम,²⁷ रामदास,²⁸ जयरामस्वामी और वामन पंडित²⁹ सरीखे महान् धार्मिक नेताओं ने किया। रामदास ने राष्ट्रीय स्वतंत्रता का रूप निर्धारित किया और अधिवादन की एक नयी प्रणाली प्रारम्भ की। दूसरे, यह आन्दोलन एकलव्य सैन्य एकीकरण और कृषा के निकोलास के आन्दोलनों की भाँति पारिवर्षिक और सार्विक नहीं था, बल्कि उसका रूप पञ्चोदय के जीवन, असीसी के कॉमिंस और देरेसा तथा बोहो के आन्दोलन के सहज यद्वाचनिक तथा भक्तिमार्गी था। महाराष्ट्र के सारा एकेकरवादी के, किन्तु सुनिश्चित नहीं थे। तीसरे, इस आन्दोलन ने अश्वत सामाजिक तथा नागरिक स्वतंत्रता का समर्थन किया और अन्तर्निमरता तथा सहिष्णुता का उपदेश दिया। महाराष्ट्र के सारा और देहहोते ने मुहूर्त सामाजिक व्यवस्था के निर्माण में जो योग दिया उसको रानाडे बहुत महत्वपूर्ण मानते थे।³⁰ रानाडे लिखते हैं " जो आन्दोलन

22 एन एन एन ने मराठों के उदय की व्याख्या की "वाक्या अत्रुत थी है (India as Transition, पृष्ठ 152-55)। अन्तर्गत कहता है कि मराठा की शक्ति देवी सावतणर की शक्ति थी। अन्तर्गत सावतणर परम्परा के कारण मराठा स्वतंत्रता भारत की एक राष्ट्र के रूप में सशक्ति करने में सफल रहा, और उसने विगत होकर मध्यकालीन अंग्रेज साम्राज्यवाद का रूप के किया।

23 *Rise of the Maratha Power*, पृष्ठ 67।

24 शारंगधर (1275-1300) ने मराठों पर अपनी "शारंगधरी" नामक टीका [290] में प्रकाश करनी और 1300 में उनका देशावसान हो गया। उन्होंने "अन्तर्गत" और "होतव्य" की भी रचना की थी।

25 शारंगधर की-होती मराठी में हुए थे (1270-1350)। वे दार्जी का अवलोकन करते थे। उन्होंने महाराष्ट्र तथा पञ्जाब में उपदेश दिये।

26 एकनाथ (अथवा 1533-1599) "अन्तर्गती" नामक टीका [290] में प्रकाश करनी और 1608 में उनका देशावसान हो गया। उन्होंने "अन्तर्गत" और "होतव्य" की भी रचना की थी।

27 तुकाराम (1608-1649)। सशक्त ने तुकाराम के अन्तर्गत का सम्पूर्ण अवलोकन किया था।

28 रामदास (1605-1681) विनासी के प्रसिद्ध हुए थे। उन्होंने "वाक्या", "वाक्या", "अन्तर्गत", "अन्तर्गत" और "अन्तर्गत" की भी रचना की थी।

29 वामन पंडित का 1695 में देशावसान हुआ। उन्होंने मराठों पर "अन्तर्गत" नामक टीका लिखी थी। उन्होंने "अन्तर्गत" और "अन्तर्गत" की भी रचना की थी।

30 जिस अन्तर्गत विनासी की रामदास के देशावसान के कारण विनासी की प्रसारित अन्तर्गत अन्तर्गत प्रथम में अन्तर्गती के देशावसान की थी।

ध्यानदेय के प्रारम्भ हुआ वह आध्यात्मिक युवा के विचारों की अविरत धारा के रूप में निरन्तर घाताघाती के अन्त तक चलेला रहा। उसने हम हमारी मान्यताओं में बहुमुखी साहित्य प्रणय किया। उसने जातीय घुमसुम की पुरानी भावना की बढोढ़ता का काम करने में काम किया। उसने पुनः उठाने आध्यात्मिक शक्ति तथा सामाजिक महत्त्व की स्थिति पर प्रतिष्ठित विचार और महत्त्व आह्वान के समकक्ष स्थान प्रदान कर दिया। उसने पारिवारिक सम्बन्धों की पवित्रता प्रणय की और स्थिरता की स्थिति की जैसा उठाया। उसने राष्ट्र की अधिष्ठित दमामु दमामा, और साथ ही उसने उसमें पारस्परिक साहित्यता के आधार पर एक मूल में बसे रहने की प्रवृत्ति की उत्तेजित किया। उसमें मुसलमानों के साथ केवल मित्रता की योजना सुनायी और अन्त में उसने सामाजिक की निर्यात। उसने धार्मिक पूजापाठ, अनुष्ठान, तीर्थयात्रा, व्रत उपवास, विद्वत्ता तथा ध्यान चिन्तन के मूलों का काम किया, और ग्राम तथा शहर के द्वारा आराधना करने की शक्ति उठराया। उसने बहुदलीयता की शक्ति को काम किया। इन सब तरीकों के उसने राष्ट्र का चिन्तन तथा काम की समता के स्तर की सामान्य स्तर पर जैसा उठाया, और उसे विदेशी आधिपत्य के स्थान पर समुक्त दली शक्ति का पुनः स्थापना के रूप में नेतृत्व करने के लिए तैयार किया, भारत के अन्त किसी राष्ट्र की इन प्रकार तैयार नहीं किया गया था। महाराष्ट्र के काम की ये मुख्य विशेषताएँ प्रतीत होती हैं। सन सन दास न जब विशाखा के युव की अपन विचार के परम्परागत पर चलने और उनके काम का प्रचार करने की सलाह की तो उस समय उनकी दृष्टि में वही काम था—साहित्य, उदार सम्पीठन का के आध्यात्मिक और फिर भी पुराने विचारों के विरुद्ध नहीं।³¹ राजादे ने बतलाया कि महाराष्ट्र के सत्ता और आचार्यों का प्रभाव वैसा ही था वैसा कि पारम्परिक इतिहास पर यूरोपीय पत्र सुधार के वैराग्य का पता था। पश्चिमी यूरोप में सुधार, वास्तव, समकक्ष, विचारों और बोल बाल के बीच की सत्ता के विरुद्ध समुच्च के अन्त करण की स्थापना तथा पवित्रता का समकक्ष किया था। महाराष्ट्र के समता ने भी स्वेच्छाकारी पुरोहित का के विरुद्ध विद्रोह किया और मानव शक्ती की सर्वोच्चता का समकक्ष किया। उन्होंने एक ऐसे आन्दोलन की अन्त दिया जो सत्ता स्थापना की शक्ति का आन्दोलन बन गया। सत्ता ने धार्मिक अनुष्ठानों, पुनारीपण, जातीय बहुकार तथा समकक्ष भाषा की सर्वोच्चता के स्थान पर समकक्ष आराधना, सामाजिक समकक्षता, ईश्वरीय राज्य के सबके लिए समान प्रवेश का समकक्ष किया, और लोकवादा के विचारों की शक्ति प्रदान की। इनके राजादे की समीर सुनसुन का परिचय निर्यात है कि उन्होंने महाराष्ट्र के समता और उपदेशों के सामाजिक तथा राजनीतिक सिद्धांत की विशेषता की।

यद्यपि राजादे की पराजिता इतिहास की व्याख्या को समकक्षीकृति नहीं मिली है, फिर भी मानना पड़ेगा कि उसने कीड़े समीर चिन्तन तथा राजनीतिक शक्ति के वैश्विक आधार की स्थापना करने का सच्चा प्रयत्न किया हुआ है।³²

5 राजादे का आत्मिक दाय

(क) सामकक्ष (सामकक्षीकृत) सम्प्रदाय की पद्धति तथा भाषाशास्त्री की आलोचना— राजादे ने इस प्रकार का विरोध किया कि अन्तर्गत के नियम अपरिचितकारी होते हैं, और उन्होंने अन्तर्गत की समकक्षों के सम्बन्ध में पश्चिमी, सामकक्षीकृत तथा सामकक्ष पद्धति का समकक्ष किया। उन्हूँ समय, भाषाशास्त्र, विचारों, वैयक्तिक और अन्तर्गत के आत्मिक चिन्तन का समकक्ष प्रणय था। अन्तर्गत विचार या विचार समय, विचारों और अन्तर्गत विचार के समकक्ष विचारों की सत्ता की परिस्थितिनी में आहू नहीं किया का समकक्ष है। यद्यपि वह समय भारतीय समकक्षता नहीं और के सुधार रहा था जिसने अन्तर्गत की समकक्षी के अन्तर्गत समकक्ष या विचार के समकक्ष की सुधारता पता

31 *Rise of the Maratha Power* पृष्ठ 171-72।

32 राजादे का दावा महत्त्वपूर्ण बात प्रमाण है "Introduction to the Peshwa's Ransode" पृष्ठ 330-80।

था, फिर भी दोनों में महत्वपूर्ण अंतर था,³³ और किसी भी आर्थिक व्यवस्था में उसकी स्थान में रचना आवश्यक था। विपणन, रिफाईनों और ड्रेमिंग स्टोख्स मिल की पद्धति कार्परेटिव और उद्यमनवादात्मक थी। यह प्रतीति रूप में ऐतिहासिक तथा अनुकूल नहीं थी। ब्रिटिश अध्यापकत्वों का संस्थापक सम्प्रदाय (क्यासीकल सम्प्रदाय) आर्थिक मानव की परिस्वरणतात्मक धारणा पर आधारित है। इस धारणा के अनुसार मनुष्य के अधिकारों तथा भाव स्वाध तथा प्रतिस्पर्धा से संचालित होते हैं। व्यक्ति परमाणु के समान स्वतंत्र और असम्बद्ध है और यह सम्पत्ति का उत्पादन करने अधिकारिक माना में अपना स्थान पूरा करता है। यही अपने स्वार्थों के सम्बन्ध में सबसे अच्छा नियम कर सकता है। सम्पापक तथा प्रकृतिवादी (नियमोबेद) सम्प्रदायों के अध्यापकत्वों ने राजनीय प्रश्न तथा हस्तक्षेप की उक्त नीति की आलोचना की जिसका समर्थन यूरोप के राष्ट्रियवादियों और वादेरवादियों ने दिया था। सम्पापक सम्प्रदाय मान्यता में प्रतीतिधर्मों तथा धर्मियों की स्वतन्त्रता का समर्थन था। उनका कहना था कि प्रतीति तथा धर्म दोनों ही जहाँ अधिक साम की भाषा हो कहा जा सकते हैं। साम और मजदूरी दोनों में एक सामान्य स्तर प्राप्त करने की सामाजिक प्रकृति हुआ करती है। इसी प्रकार माँ और बुद्धि के बीच स्वाभाविक रूप से धारस्वरिण सम्बन्ध (तान्त्रिक) होता रहता है। इसीलिए इन सम्प्रदाय के अध्यापक राजनीय हस्तक्षेप के विरुद्ध थे और उसे व्यक्ति के प्राकृतिक अधिकारों का अनुचित अधिकरण मानते हैं। मालवन् ने अपनी रचनाओं में 'मजदूरी के सौहार्द नियम' का समर्थन किया था और यह भी उल्लेख था कि जलसत्ता की बुद्धि गुणीतर श्रेणी की दर (2, 4, 8, 16, 32) है और भौतिक सामग्री की वृद्धि समानतर (2, 4, 6, 8, 10) श्रेणी की दर से हुआ करती है, इसलिए उन दोनों की बुद्धि के अनुपात में भारी अंतर पता जाता है। रानाडे ने भारतीय सर्वेक्षण पर अपना भाषन देवन कांसिज पुता में 1892 में दिया।³⁴ यह वह समय था जब सम्पापक सम्प्रदाय की धारणाओं और विचारों की आलोचना पार विचार सम्प्रदाय कर रहे थे—जमनी में बनकर, शमील, रोसेर और कमील आदि अध्यापकत्वों का ऐतिहासिक सम्प्रदाय, आदिवासी के बीच और बौद्ध धारण का सीमांत उपयोक्तृता का सम्प्रदाय, मानसवादी तथा समाजवादी सम्प्रदाय, और टी एच हॉन का प्रत्यक्षवादी सम्प्रदाय। रानाडे पर आपसत कान्त की विष्णुात्मक (बौद्धिक) पद्धति, एडम स्मिथ के रोमांटिक विचारों तथा प्रीट्रिड लिस्ट के सर-सापवाद का प्रभाव था। उन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि सम्पापक सम्प्रदाय की पद्धति तथा सिद्धांत एक शीघ्र से गुरु है, विशेषकर भारतीय परिस्थितियों के सम्बन्ध में। अध्यापक के सम्बन्ध में के समानवादीय पद्धति की अधिक अच्छा समझते थे। उनका कहना था कि अध्यापक एक सामाजिक धारण है, इसलिए उक्त अध्यापक ऐतिहासिक पद्धति से निम्न जाना चाहिए। भौतिक विज्ञानों के सम्बन्ध में जिस तात्विक, विश्लेषणात्मक और प्रागनुभविक पद्धति का विचार किया गया है वह अध्यापक के लिए उपयुक्त नहीं है। विभिन्न आर्थिक व्यवस्थाओं के विचार का अध्ययन करने ही ऐसे विषय निर्धारित किये जा सकते हैं जो सामाजिक दृष्टि से उपयुक्त हो। सामाजिक अपरिहतकधीन नियम तो केवल भौतिक विज्ञानों में देखने को मिल सकते हैं। जमनी के ऐतिहासिक सम्प्रदाय ने अध्यापकत्व विचार के बीच में अवस्थित 'साधनोपेक्षा तथा साधनवाद' की धारणा के विरुद्ध की विरोध किया था, उसी रानाडे की सहानुभूति थी।³⁵ जहाँ कि पहले कहा जा चुका है, सम्पापक सम्प्रदाय के अध्यापकत्वों ने 'आर्थिक मानव' की परिस्वरणता करती थी, और वही के आर्थिक दृष्टि को सर्वोपरि माना था, इसके विपरीत रानाडे ने साधनविन कल्याण की प्रधानता की। अध्यापक की प्रविष्टा सफल विचार करती रहती है, इसलिए यदि सम्पापक सम्प्रदाय की प्रस्थापनाएँ कुछ अंशों में समाज के स्थिर रहनुओं पर बाध भी हो सकती थी, तो भी के रूप

33 जमन अध्यापकत्वों की नीति रानाडे ने भी आर्थिक व्यवस्थाओं की सामाजिक परिस्थितियों का अनुपात समझने का प्रयत्न किया। जहाँ के जमन विद्वानों की सामाजिक आर्थिक मानव की धारणा के समर्थन के और ब्रिटिश अध्यापक सम्प्रदाय के अध्यापकत्वों के विपरीत दृष्टिकोण के उल्लेख नहीं थे।

34 रानाडे ने यह भाषण 1892 में देवन कांसिज पुता में दिया था। भारतीय आर्थिक विद्वानों के दृष्टिकोण में यह बहुत ही महत्वपूर्ण माना जाता है।

35 *Essays in Indian Economy*, पृष्ठ 22।

राज के नित्यीन पहचानों की प्रवृत्तियों की प्रकट करने में असमर्थ थी। राजाके पर जिन वष शासितियों के रोमांचित सम्प्रदाय था, जिसके नेता एडम मुत्तर और श्रीकृष्ण लिस्ट थे, विशेष प्रभाव था। उन्होंने लिखा है "इस विषय के प्रतिपादन में जो मताग्रह दिखायी देता है उसकी जड़ व साधारण (सम्भावक सम्प्रदाय की) ही है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि वे किसी भी विद्यमान समाज के सम्बन्ध में समझदार सरस नहीं हैं। जहाँ तक व साधारण समाज की किसी विशेष अवस्था के सम्बन्ध में समझदार सरस है वहाँ तक वे उस अवस्था की अनिवार्यतम आवश्यकता की कही व्याख्या मानी जा सकती है। निम्न वे उसकी यथार्थतम उन्नति अथवा विराम के सम्बन्ध में कोई मुलायम नहीं वे करती। चूँकि वे साधारण जन्तु समाजों के सम्बन्ध में भी निरन्तर सरस नहीं हैं, अतः स्पष्ट है कि हमारे जैसे समाजों के विषय में तो वे एकदम निरर्थक हैं। हमारे समाज में व्यक्तिगत समुच्च आर्थिक मानव से एकदम उलटा है। समाज में व्यक्ति की स्थिति निर्धारित करने में स्वयं उसकी अपना परिवार तथा जाति अधिक पालिकासी होते हैं। मन की इच्छा के रूप में स्वायत्तता नितान्त अभाव नहीं है, निम्न यह जीवन का एकमात्र अवस्था प्रमाण उद्घोष नहीं है। मन का जीवन ही एकमात्र आदश नहीं है। लोगों में न तो मुक्त तथा असीम प्रतिस्पर्धा की इच्छा है और न उसके लिए स्वाभाविक समझ। कुछ पूर्वनिर्धारित समूहों के भीतर अवश्य पीछे-बहुत प्रतियोगिता देखने की मिलती है। प्रतिस्पर्धा की अवस्था स्वयं तथा राजकीय नियन्त्रण का अधिक महत्त्व है, और इसी प्रकार समिति की सुनता में प्रतिस्पर्धा (हेमिस्पर्धा) का अधिक निर्धारक प्रभाव है। नपुंसक चलायमान है और न यम, और न पुत्रीपत्तियों तथा अधिकों में इत्यादि साहस तथा बुद्धि है कि वे सरलता से स्थान परिवर्तन कर सकें। बचकूरी तथा लाल मिश्रित होते हैं, परिस्थितियों के अनुसार जीवन नमनीयता अथवा परिवर्तन की प्रवृत्ति नहीं होती। इस प्रकार के समाज में वे प्रवृत्तियाँ जिन्हें स्वयंनिष्ठ मान लिया गया है, विविध ही नहीं हैं, बल्कि बाह्यतः व के अपनी सही दिशा के गटक जाती हैं। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, संवर्धित अर्थतन्त्र की सम्पूर्ण व्यवस्था के इस परिवर्तनकारक स्वरूप की निम्न, वेत्त तथा अवधारण के बाद आचार्यों ने 'सुनर्गतिक स्पष्टता' की बार किया है। जाय जानते हैं कि अवधारण व की सिद्धांत साधारणतः राष्ट्र्य सुल्लों व पण्य जाते हैं उन्हें वह देश में ही चुनौती दी जा रही है वहाँ अवस्था वन तथा उन्नततम विपत्ति हुआ था। नहीं नहीं, वह अवधारण व्यावहारिक जीवन में हमारा पथ प्रदान कर सकता है, इसमें भी वदेह व्यक्त किया जा रहा है।³⁶ अवधारण सम्प्रदाय द्वारा प्रतिपादित अवधारण के निम्न आर्थिक नियमों की आलोचना में राजाके पर हैमिस्पर्धा तथा फेरी की रचनाओं और निम्न अवधारणों सिद्धांतों के विचारों का प्रभाव था। रिक्टरों, मालवत, सासार सोनियर, जेम्स लिट, टॉरेंट और मैककुलिक का अधिक वस्तु नित्य पताग्रह पर आधारित था। जॉन स्टुअर्ट मिल, केम्स, केजहॉट, जेम्सी और जीबार्थ ने उनकी पद्धति तथा नियमों के विरुद्ध विरोध किया। जॉर्जस बॉम्ब का विचारक समाजशास्त्र की इसी प्रकार सम्भावक सम्प्रदाय की उपपन्नकारक पद्धति के विरुद्ध प्रिया की।³⁷ इसके अतिरिक्त इसकी वे काइओमा और सुकीचिको ने भी सम्भावक सम्प्रदाय के विरुद्ध विरोध आरम्भ किया, उन्होंने सभ्यता के राजनीय नियमन का समर्थन किया, और अवधारण के विचार के सम्बन्ध में सावधानतावादी दृष्टिकोण का पक्ष पोषण किया।

राजाके न विविध सम्भावित अवधारण की पद्धति तथा शासित्व नियमों की ही चुनौती नहीं दी, बल्कि उन्होंने यह भी यतनाया कि उसी सिद्धांत भारत में लागू किये जाने के योग्य नहीं है।³⁸ उन्होंने भारत की आर्थिक नीतियों का उद्घोषन करने के लिए सार्वजनिक उपानों की अन माने का समर्थन किया। उन्होंने अनुरोध किया कि अपेक्षित आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सरकार का आवश्यक सामग्री करनी चाहिए। वे यह मानते थे कि किसी समाज के सम्भावित तथा एति

36 एम बी राजाके, 'Indian Political Economy,' *Essays in Indian Economics*, पृष्ठ 10-12।

37 राजाके, *Essays in Indian Economics* पृष्ठ 18-19।

38 अनुसन्धान की नीति सुल्लता के सम्बन्ध में अपने विचारों की पूर्ति व लिए राजाके ने एक सार की रचना *A Modern Reconstruction* तथा अन्य अन्य सार की *A Study in Indian Administration* की भी रचना की है।

हासिक आदर और समान व्यवस्था के औद्योगिक एवं दूसरे की प्रभावित किया करते हैं। वे देश में विविधतापूर्ण व्यवस्था का विकास चाहते थे। रानाडे का यह भी अनुरोध था कि विदेशियों को भारत में अपनी पुँजी लगाने के लिए प्रेरित किया जाय। देश के औद्योगिकरण की भाँति बढ़ाने के लिए देशी तथा विदेशी दोनों ही प्रकार के पूँजीपतियों को प्रोत्साहित किया जाय। वे इस बात में भी थे कि बाहर के मोह आकर देश में नरों और देश के लोग बाहर जाकर अपने उपनिवेश बनायें।³⁹ उन्होंने इस बात का समर्थन किया कि अपनी जनसंख्या वाले द्वीप क्षेत्रों के लोग नये क्षेत्रों में जानकर रहें। उनका कहना था कि इससे आर्थिक तथा नैतिक दोनों ही प्रकार का कल्याण होगा। वे आन्तरिक तथा बाह्य दोनों ही प्रकार के प्रयत्न (स्थानांतरण, देशांतरण) के पक्ष में थे। वे चाहते थे कि सरकार औद्योगिक विकास के लिए साहसपूर्ण नीति प्रारम्भ करे। आर्थिक जीवन में राजकीय व्यस्तता की नीति के विरुद्ध उन्होंने जो तर्क प्रस्तुत किए उनकी पुष्टि के लिए उन्होंने कभी बार कोटर तथा मोल्नेयर की आर्थिक सामर्थ्य का उल्लेख किया। रानाडे ने उग्र स्वतंत्रता के भाव का विरोध किया और कहा कि राज्य का सम्पत्ति के पुनर्वितरण का काम भी करना चाहिए। उन्होंने सरकार की धुरासत्य सम्बन्धी नीति में परिवर्तन माने का भी समर्थन किया। इस प्रकार हम देखते हैं कि रानाडे का आर्थिक दृष्टिकोण, सिक्का, रिवाजों तथा संस्कार के विचारों के विवेक पर आधारित है। किन्तु साथ ही साथ वे समाजवादी नीति का अनुयायी भी नहीं थे। उह मानस तथा कर्तृत्वों के उग्र विचारों से सहजपुष्टि नहीं थी। वे पूँजीवादी आधार पर देश का विकास चाहते थे।

(ख) भारत की दरिद्रता के लिए उत्तरदायी तत्व—रानाडे ने भारत की ग़रीबी तथा पीर दरिद्रता के सम्बन्ध में गम्भीर चिन्तन किया। वे प्रसिद्ध नियम 'सिद्धांत के परिचित के जिसे बाबासाई नौरोजी ने अपनी पुस्तक 'पाँचवीं एंड अन डिस्टिन्क्शन इन इन्डिया' में प्रतिपादित किया था। किन्तु वे स्वयं बाबासाई के दृष्टिकोण के सहमत नहीं थे। 1890 में पूना में हुए प्रथम औद्योगिक सम्मेलन में उन्होंने कहा था "कुछ लोग सीकते हैं कि जब तक हम इंग्लैण्ड की भाँती चल रहे रहेंगे तब हमारे आर्थिक विकास का सम्भव नहीं करोंड जाता है, तब तक हमारे दुर्भाग्य का अंत नहीं होगा और न हम अपने पाँचों पर खड़े हो सकेंगे। किन्तु इस प्रकार का दृष्टिकोण अस्वाभाव्य न तो 'वास्तविक है और न बुद्धिमत्। इस बात का एक अर्थ तो उस घन का व्यापक है जो हमें उपहार दिया जाता है अपना हमारे देश के उद्योग-धंधों में लगाया जाता है। जब हम विकसित करने के बजाय इस बात के लिए सामग्री होना चाहिए कि एक ऐसा साहसिक है जो व्यापक की कम दर पर हमारी आवश्यकताएँ पूरी कर देता है। दूसरा अर्थ उस सामान का सुख है जो हमें दिया जाता है और जहाँ हम स्वयं अपने नहीं नहीं बना सकते। ऐसे राष्ट्र बहुत हैं जिस प्रशासन, प्रतिरक्षा, तथा रक्षा के सुलभ के लिए आवश्यक बलवादा जाता है। यद्यपि इस विचारों का आधार है कि यह सब आवश्यक नहीं है, किन्तु ऐसे यह नहीं भूलना चाहिए कि ग्रेटन के सम्बन्धी के कारण हम अपने के एकाधिकार द्वारा सम्भव करना ही कर चीन से समूल कर लेते हैं। इसलिए मैं नहीं चाहता कि आप इस तरह के प्रश्न को लेकर निरर्थक विवाद में पड़ें और अपनी रतिता का उपयोग करें। अच्छा हो कि आप इस प्रश्न को अपने राजनीतिज्ञों के लिए छोड़ दें।"⁴⁰

रानाडे के अनुसार भारत की दरिद्रता के उह मुख्य कारण थे (1) घन उत्पादन के एकमात्र साधन के रूप में भूमि पर निर्भर रहना एक बड़ी कमी थी। उस समय भूमि के पुनर्वितरण के सिद्धांत को अधिक महत्व दिया जाता था, रानाडे ने उसका विरोध किया और उत्पादन की पुष्टि तथा औद्योगिक विकास पर बल दिया। उन्होंने अल्प भूमिधारण विधेयक की सुझाव के भूमि विधान के तुलना की और कहा था कि बाल विधेयक सिद्धांत की दृष्टि से अयोग्य था। (2) नये उद्योगों के, निर्यातकों को, जगहों के लिए पुँजी का अभाव अब आधारभूत बर्तनाई थी। (3) लघु की कुलनी व्यवस्था (4) कुछ क्षेत्रों में जनसंख्यावितरण, (5) साक्षर की प्रकृति तथा औद्योगिक उद्योगों की माँगों की कमी, और (6) परम्परागत सामाजिक व्यवस्था तथा नैतिकता

39 उनके निबन्ध "Indian Foreign Emigration" (1893) में रानाडे ने इस बात का समर्थन किया कि विदेशी लोग आकर भारत में रहें।

40 एम जी रानाडे *Essays in Indian Economy*, पृष्ठ 200।

अपक्ष की माँग—इन दोनो के बीच अग्रामजस्य भारत की दरिद्रता के अथ महत्त्वपूर्ण सारण थे । राजादे का विचार था कि देश का आर्थिक बन्धन लघी हो सवेगा जबकि उद्योग, व्यापार तथा कृषि, तीनों का एक मास विकास बिधा जाय ।

(ग) धूमि अधिग्रहण—भारत की दरिद्रता का एक प्रमुख कारण यह था कि देश अल्प रूप से धूमि पर नियंत्रण था, और धूमि की स्थिति अनिश्चित थी । किसानों की दशा अत्यन्त भयानक थी । वे भूमि के बोझ से कुचले जा रहे थे, और सामान्य उद्योग समुचित पूँजी के अभाव में गल्लेप्राय हो चुके थे । सरकार भूराजस्व बढ़ाती जा रही थी, इससे किसानों में घोर निराशा का असलीय व्याप्त था । इसलिए राजादे चाहते थे कि देश का धूम के दलदल से उद्धार करने के लिए कानून बनाये जायें और भूराजस्व व्यवस्था का उत्तम सुधार किया जाय ।⁴¹ उन्होंने इस बात का भी अनुरोध किया कि स्ट्रिक्चरलैण्ड, ह्यरी, फ्रांस, बेल्जियम और इटली के नमून पर सामान्य साहसिक व्यवस्था का पुनः समीक्षा किया जाय ।⁴²

(घ) औद्योगीकरण—राजादे अग्रज नीति के बहुत आलोचक थे और उनका आग्रह था कि 'औद्योगीकरण करो अपना गल्ले हो जाओ,' इसलिए उन्होंने अनुरोध किया कि औद्योगीकरण के मामले में राज्य की बहुत बरती चाहिए । वे इस बात में थे कि सरकार लोहा, कोयला, रास्ते, बाँध, बाँकर तथा देश के उद्योगों के विकास के लिए निजी उद्यम चलाने वाला की भूमिका नहीं करे पर ध्यान दे । उन्होंने इसका भी समर्थन किया कि सामान्य उद्योगों में भी पूँजी लगायी जाए । वे चाहते थे कि सरकार जमा देनी तथा बिना देना के निर्माण में सहामुखा दे । 1890 में उन्होंने पूना के औद्योगिक सम्मेलन में 'वेदरलैण्ड इन्डिया एण्ड द नरथर सिस्टम' दीर्घ विचार पत्र ।⁴³ उन्होंने सुझाव दिया "वर्तमान प्रणाली के स्थान पर इस प्रकार की व्यवस्था का जन्म—सरकार जिले और नगर में जमा धन को नगरपालिकाओं और जिला परिषदों अथवा जिला सहकारी बैंकों को उधार दे दे । इन सरकारी को इस बात का अधिकार दे दिया जाय कि वे इस धन में वे पांच अथवा छह प्रतिशत व्याज की दर पर ऐसे चर्मक तथा वीथी निजी व्यक्तियों को धन दे सकें, जिनमें सबसे लाभ उठाने की योग्यता हो । इस योजना का कार्यक्षेत्र करने से सरकार के पास धन अथवा पांच करोड़ का कोष प्रया हो जायगा, और उसमें प्रतिव्यय वृद्धि होगी, प्रायगी । वह धन ऐसे उद्योगों के लिए प्रयुक्त हो सकेगा जिसमें वर्तमान योजनाओं की तुलना में पर्याप्त की कमी अधिक लाभ होगा । प्रत्येक जिले के पास अपने हाथों का अपने धन से बिबाध करने के लिए कोष होगा, और यदि जिले अपने लक्ष्य के लिए निजी यन्त्र योजना की कार्यक्षेत्र करने के लिए निरकर कार्य कर सकते हैं । यदि इन परिषदों की क्षमता में वृद्धि कर दी जाय तो सरकार की क्षमता होगी की योजना नहीं रहनी । परिषदें धन का प्रयोग करके बहुत लाभ उठा सकेंगी और इस प्रकार वे जनता को स्थायी करी के मोह से मुक्ति दे सकेंगी । यह कहने की आवश्यकता नहीं कि सरकारी अथवा अधिकारियों के द्वारा इस उधार के धन के विवरण पर उचित निगरान रहेगी । यदि संपूर्ण योजना की विवेकपूर्ण निर्देशित और संचालित किया जाय तो कुछ ही वर्षों में देश का विकास हो सकता है । सरकार अपनी आवश्यकता का सामान्य इन उत्पादन संस्थानों के परीक्षक इस योजना में और भी अधिक सहामुखा दे सकती है ।"⁴⁴ अपनी औद्योगीकरण की योजना में राजादे पहले प्रमुख उद्योगों की रचना चाहते थे । वे उन क्षेत्रों में की औद्योगिक विकास के समर्थक थे जिसके लिए देश के पास विधेय साधन और सुविधाएँ थी । नये उद्योगों के परिचयन के सम्बन्ध में उनके

41. अन्वेषण की पुस्तक के विषय "The Agrarian Problem and its Solution" (1875), "The Law of Land Sale in British India" (1880), 'Land Law Reforms and Agricultural Banks'—*Sarvagant Sabha Journal* में प्रकाशित । उनके विषय 'The Organization of Rural Credit' (1891) का सम्पादन कीजिए ।

42. पत्र "The Organization of Rural Credit" *Sarvagant Sabha Journal* (1891) *Frugs in Indian Economist*, पृष्ठ 43-69 ।

43. 1890 में औद्योगिक सम्मेलन की बुलावे में राजादे की प्रमुख धूमिका थी ।

44. पत्र का पता दे *Frugs in Indian Economist* पृष्ठ 193-94 ।

विचार बहुत ही महत्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं, वर्तमान मध्यम-जीव सरकार के विचार भी लगभग वैसे ही हैं। रानाडे ने इसकी दूरदृष्टि भी कि उन्होंने जमीनसिद्धि समझ लिया था कि यदि देश का औद्योगिककरण न हुआ तो इस विनाशकारी प्रतिस्पर्धा के अन्त में उसका भीविष्ट रहना असम्भव हो जायगा।⁴⁵

6 रानाडे का राजनीतिक चिन्तन

होना, जोसामने तथा केदारधर सेन की भाँति रानाडे का भी विश्वास था कि इतिहास के ईश्वरीय शक्ति काम करती है। इसलिये वह ईश्वरीय आदेश या आस्था थी। वे किसी मानवीय शक्ति को ईश्वर के आदेश के ऊँचा मानने के लिये तैयार नहीं थे। भारतीय इतिहास ने उत्तरी पञ्चम में भी उन्हें ईश्वी इच्छा तथा विवेक की कार्यक्षमि बलि दिखानी देनी थी। उनका हृदय विरासत था कि भारत अवश्य ही उन्नति करेगा। 1893 में लाहौर के सामाजिक सम्मेलन में उन्होंने कहा था "मुझे अपने धर्म के दो सिद्धांतों में पूर्ण विश्वास है, हमारा यह देश सर्वत्र अथ में ईश्वर का बना हुआ देश है, हमारी इस जाति का परित्राण विधि के विधान में है। यह सब विरासत नहीं था कि ईश्वर ने इस प्राचीन जातिवृत्त पर अपने सर्वोत्कृष्ट प्रभावों की वर्षा की थी।"⁴⁶ इतिहास में हमें उसका हार्थ स्पष्ट दिखानी देता है। अथ सब जातियों की तुलना में हमें एक ऐसी सम्मता एवं ऐसी धार्मिक तथा सामाजिक व्यवस्था उत्तराधिकार में मिली है जिसे समय के विद्यालय सब पर अपने आप अपना स्वतन्त्र विकास करने का अवसर दिया गया है। इस देश में कभी कोई जाति नहीं हुई, किन्तु फिर भी पुरानी स्थिति ने अपने आपकी परिपासन की भीमी प्रक्रिया के द्वारा स्वतः सुधार लिया है।"⁴⁷ देश पर अनेक आक्रमण हुए। उनका सामाजिक परिणाम विनाशकारी हुआ, किन्तु अन्ततोगत्वा उन सबका फल यह हुआ कि संस्कृति की विभिन्न पारलौकिक नियुक्त कयी और जीवन में राजनीतिक तथा प्रशासनिक काम बच स्थापित हो गया। किन्तु रानाडे भारतीय जीवन के बोधा के भीकदु भावोन्मुख थे। उन्होंने स्वीकार किया कि भारतवासियों ने जीवन के लौकिक क्षेत्रों में, विज्ञान तथा प्राविधि में और नगर प्रशासन तथा नागरिक कुशा में पर्याप्त क्षेप्यता का परिचय नहीं दिया था। अतः योजनियेनी की भाँति रानाडे ने भी राजनीतिक तथा नागरिक कुशा के विकास पर धन दिया।⁴⁸ सामाजिक तथा नागरिक चेतना की यह शिक्षा भारत के चिन्तन के साथ सम्पन्न हो रही उपलब्ध हो सकती थी। इसलिये उन्होंने बतलाया कि भारत में ब्रिटिश शासन के पीछे ईश्वर का सुख्य उद्देश्य एक देश की राजनीतिक शिक्षा देना है।⁴⁹ अपने देश के प्रति सम्भीर सेन के वाक्यजुद रानाडे यह मानते थे कि ब्रिटिश शासन के भारत की अनेक निषाकर्त उपलब्ध हुई हैं।⁵⁰ वे भारत में ब्रिटिश शासन की कृपानु ईश्वर के विधान का ही एक अथ मानते थे। उनका विचार था कि इसलिये ब्रिटिश शासन ने अन्तगत वर्गवर्ग प्रविष्टा की अस्मिन्प्रति के लिये कम पुन्यारुध थी, और वेवर्गित महत्वा-वासाओं की पुष्टि के लिये धीव भी सीमित था, किन्तु बहुहरषण अवकाश के लिये सम्भावनाएँ अधिन थी और देश का लघिव्य महान था, अतः यह भी कि उपलब्ध अवसर और सुविधाया का सदुपयोग किया जाय और लोग हृदय से राष्ट्रीय पुनर्निर्माण और सामाजिक उद्धार के लिये जाय करें। रानाडे के इस विचार को बाद में फीरोजशाह मेहता और मोरारजी प्रसाद मोक्षले ने दुहराया।

45 रानाडे "Iron Industry, Pioneer Attempts", *Essays in Indian Economics* पृष्ठ 170-92। इस विचार में रानाडे ने जाहद किया कि अब कोई नवीन प्रकार का उद्योग घोषा जाय ता वह समय की महानता और निश्चयन सबस विधाना पाहिए।

46 रानाडे की भावना में अन्ततः के महान धर्म था। एक बार उन्होंने कहा था "यदि हम कहें तो भी अन्तः अन्त में सामाजिक विच्छेद नहीं कर सकते। और यदि हमारे लिये सम्भव विच्छेद करवा सकते हैं। यह तो भी हमें देना नहीं करना चाहिए। किन्तु के पुनर्युत्थानवादी नष्ट था। उनका विश्वास था कि यदि लोग विच्छेदपूर्ण धर्म में कल्याण के लिये जाय करें तो राज्य का लघिव्य अन्तः अन्तः अन्तः अन्तः हो जायगा।

47 रानाडे की पुनर्निर्माण पुनर्निर्माण पृष्ठ 118।

48 देश अधिपत्य *Discussions* के परिभाषेनी के हैं न कि *Praxis* के परिभाषक न।

49 रानाडे के एक भाव का सम्भव किता था कि भारतगत राज्यवादिता तथा विभिन्न उपाय अथ न जाय अधिन विचार का सम्भव स्थापित किया जाय चाहिए।

50 रानाडे एवरीनद्वय वीरिण पुनर्निर्माण के नये के उन समय उन्होंने एक विचार किया था किमें कहेंगे क्या। भारत की तुलना में ब्रिटिश शासन की विद्या थी थी। किन्तु बाद में अन्तः विचारों में परिवर्तन आ गया था।

राज्य की प्रकृति के सम्बन्ध में राजाड़े ने प्रत्यक्षवादी तथा व्यक्तिवादी प्रकृतियों का समर्थन किया। वे निम्न प्रतिस्पर्धा के, जो पूँजीवादी अन्तर्गत का आधार है, बहुत शत्रु थे। वे राज्य की अन्तर्गामी प्रकृति में विश्वास करते थे, इसलिए जयन विचारकों के आदर्शों से उन्हें सहानुभूति थी। 1896 में पत्रवृत्ता के 'सामाजिक सम्मेलन' में उन्होंने सचरण पिण्ड और हैबैल भी-भी भाषणों को व्यक्त करते हुए कहा "आतिरेकार राज्य का अतिरिक्त इसलिए है कि यह अपने कल्याण का, उनके प्रत्येक योग्यता गुण का विरासत करने, अधिक श्रेष्ठ, सुखी, समृद्ध तथा पूरा बनाए।" 51 विपु उनका कहना था कि यह महान उद्देश्य सब सब बुरा नहीं ही सकता जब तक 'राजनीतिक समाज' सब सदस्य अपनी मुक्ति के लिए अधिनायित ईमानदारी तथा सचाई के साथ प्रयत्न नहीं करते। अतः आवश्यक है कि व्यक्तियों की वृद्धि की मुक्त किया जाय, उन्हें नतस्थानन के सार का उत्तर ज्ञान और उनकी सभी शक्तियों का पूरा विरासत किया जाना। 52 अपने इन सामाजिक दृष्टिकोणों के कारण ही राजाड़े वैयक्तिकताओं में मिला थे। राज्य के लोगों के सम्बन्ध में राजाड़े के अन्तर्गत दृष्टिकोण का परिचय इस बात से मिलता है कि उन्होंने औद्योगीकरण, उपनिवेश, आर्थिक जीवन के निम्नलिखित संकटन, समाज सुधार तथा उद्योगों के संरक्षण के क्षेत्र में राज्य के अविश्वस का समर्थन किया। इस प्रकार यद्यपि भारत की व्यावहारिक राजनीतिक समस्याओं के सम्बन्ध में राजाड़े की विचारधारा अन्तर्वादी थी, किन्तु उनका राज्य-संसार जयन प्रत्यक्षवादी और शीघ्रता सिद्ध में अधिक निष्पक्ष था।

स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में राजाड़े का दृष्टिकोण अत्यंत 'वांछित' था। उनके अनुसार स्वतन्त्रता का अर्थ निम्नलिखित अर्थों का अभाव नहीं है, बल्कि उसका अर्थ है कानून की व्यवस्था का अभाव का अभाव। उसका निश्चय ही यह अर्थ है कि कानून की अन्तर्गत की शक्ति दूसरा घर निम्न में रहना पड़े, और सत्ता तथा शक्ति को धारण करने वाला के अनुचित व्यवहार के उसकी रक्षा की जान। इस प्रकार राजाड़े का दृष्टिकोण औद्योगिक तथा समाजवादीयों के मिलता-जुलता है। उन्होंने फ्रांसीसी वैयक्तिकता के इस मत की स्वीकार किया कि स्वतन्त्रता केवल निम्नलिखित का अभाव नहीं है, बल्कि यह हर प्रकार के अर्थ की छद्मता की वृद्धि करने का सामाजिक प्रयत्न है। 53 1893 में उन्होंने कहा था "स्वतन्त्रता का अर्थप्रणय है कानून बनाना, कर लगाना, दण्ड देना, तथा अति कार्यों की निपट कराना। स्वतन्त्र तथा परतन्त्र देश में वास्तविक अन्तर यह है कि नहीं दण्ड देने के पहले उसके सम्बन्ध में कानून बना लिया गया हो, कर लगाने से पहले अनुमति के भी नहीं है और कानून बनाने के पहले मत के लिये गये हो, नहीं देना स्वतन्त्र है।" 54 राजाड़े के अनुसार शक्ति के अभाव तथा सामाजिक अभाव प्रचाली की स्वीकार करके ही किसी देश में स्वतन्त्रता की स्थापना की जा सकती है। 'वास्तविकता होने के नाते उनका अनुभव था कि 'सामाजिक स्वतन्त्र देश का आधारभूत है। उन्होंने विकेंद्रिकता का भी समर्थन किया और देश में एकपक्षता की दृष्टि हुई प्रकृति की आलोचना की। 55 विपु उन्होंने स्वतन्त्रता के व्यक्तिवादी और व्यक्ति दृष्टिकोण के साथ राज्य के लोगों की सामाजिक धारणा का समर्थन किया। वे चाहते थे कि राज्य शिक्षा का परिचय करे, और समाज सुधार तथा सांस्कृतिक पुनर्निर्माण की शिक्षा के प्रभावकारी बनने उद्योग।

भारत भारतीय मौकरीयों की साम्राज्यवादी उद्देश्यता तथा समर्थन से भारतीयों की शैक्षणिक आकांक्षा को मारी उस बहुत ही थी। भारत में ब्रिटिश शासन का अहंकार, दण्ड, वीरता तथा विरक्तता की भावना का जो प्रभाव किया करता था उसका राजाड़े ने विरोध किया। वे उन्हें

51 राजाड़े ने किया था 'सांस्कृतिक रूप में राज्य अपने कर्तव्य आर्थिकों की शक्ति, विवेक तथा और उत्तम में प्रतिनिधित्व करता है।

52 *Indian Social Reform* भाग 2 पृष्ठ 79।

53 राजाड़े, *Essays on Indian Economics*, पृष्ठ 18।

54 केशव बल्लभ शास्त्री *Mahadeo Govind Ranade: Patriot and Social Servant* (एशियाटिक सोसायटी 1926) में उद्धृत पृष्ठ 115।

55 हाल की भारतीय स्वतन्त्रता की भावना पर एक ही चर्चा के का कारण (1884), "Local Self Government in England and India" *Essays on Indian Economics* पृष्ठ 231-61।

कोमो नो जातीय अहंकार और आकाशवादी की नीति को नहीं समझ पाते थे जो फिल्टन की 'एरो-पैथेटिका', मॉडकिन की 'पौलिटिकल थिस्टिंग' (राजनीतिक 'थाय') और मिल की 'लिबर्टी' की दुहाई दिया करते थे। अतः उन्होंने लिखा है "देश की जनता का यह शिक्षित वर्ग जिसका अपना स्वतंत्र प्रेम और समुदाय है तथा जिसे देश की बहुधरम जनता की सहज सहानुभूति प्राप्त है, भारतीय उदारवाद का प्रतिनिधि है। इस वर्ग का विरोध करने के लिए अधिकारी वर्ग की प्रयत्न शक्ति का संगठित होकर यकी हुई है, इन अधिकारियों को महा रहने वाले अपने गैर सरकारी देशवासियों के गुट का समर्थन तो प्राप्त है ही, साथ ही साथ उनके मातृदेश के निर्दिष्ट स्वार्थों की दुर्भिन्या और शक्ति की उनकी सहायता और समर्थन के लिए सर्वत्र उत्तर रहती है। इस समय भारत में उदारवाद और अनुदारवाद भी दो शक्तियाँ बन कर रही हैं। यह दुर्भिन्या और घणा सभी विनयी जातियाँ का स्वाभाविक तथा प्राकृत अंगण है। भारत में पहले वाले ब्रिटिश लोगों ने अपने को जैसी जाति की विशिष्ट स्थिति प्रदान कर रखी है, और वे शक्ति तथा विशेषाधिकारों के लिए बीच-पुकार करते हैं तथा विविध एवं अधीन जनता से घृणा करते हैं।¹⁴ उनकी ही बीच पुकार और घणा सभी विनयी जातियों से देखने को मिलती है। अतः उनके इस व्यवहार के रूप में वास्तव में इतिहास अपनी पुनरावृत्ति कर रहा है।" रानडे भारत के लोक प्रशासन में सुधार करना चाहते थे। उनकी इच्छा थी कि उसकी मुरादों को दूर कर दिया जाय। वे अनुभव करते थे कि कोई प्रशासन व्यवस्था फलदायकारी और सुदृढ़ तभी हो सकती है जब वह व्यावहारिक रूप में सहानुभूति, उदारता तथा समताचार के आधारों पर आधारित हो। जातीय अहंकार तथा व्यक्तिगत गुणानुवाद के प्रशासन व्यवस्था की दृष्टा के लिए खतरा उत्पन्न हो जाता है। ईमानदारी तथा दृढ़ता के साथ व्यवस्था पर दृढ़ रहने से ही प्रशासनिक क्षमता का नैतिक आधार कायम किया जा सकता है। यह भी आवश्यक है कि कुछ सांख्यिक शिक्षाओं को हटाने का विचार जाय और फिर उनका दृढ़ता के साथ तथा दूर परिस्थिति में पालन किया जाय।

विवेकानन्द की भांति रानडे ने भी भारत के लिए उद्यमशक्ति शक्तियों की वरचना की थी। वह विश्वास था कि भारतवासियों की धार्मिक तथा मानसिक शक्तियों को प्रकाश की सीमा तक विकसित किया जा सकता है। उनके अनुसार देश में पुनरुद्धार और नवीनीकरण का यही एकमात्र तरीका था। 1896 में कलकत्ता के सामाजिक सम्मेलन में उन्होंने भारत के भविष्य का मोरचमूल विश्व प्रस्तुत किया था। उन्होंने कहा था "व धनशुक्त पुनरुत्थान, उत्साहपूर्ण आशा, व्यवस्था से कभी विमुख न होने वाला विश्वास, सबने साथ संयोजित व्यवहार करने वाली 'साय' की भावना, निराल बुद्धि तथा पूरा विकसित शक्तियाँ—इन सब गुणों की धारण करके नवीनीकृत भारत विश्व के राष्ट्रों के बीच अपना उचित स्थान प्राप्त कर लेगा और अपनी परिस्थितियों तथा अपनी होतक्यता का स्वाधी होगा। यही सत्य है कहा हमें पहुँचना है—यही वह भूमि है जिसे निश्चित ने हमें देन का वचन दिया है। भुम्हीं हैं वे जो इसकी दूरदर्शिता से देख रहे हैं, उनसे भी अधिक भुम्हीं वे हैं जिन्हें उसके लिए काम करने तथा काम हाथ करने का अवसर मिला है, और उन सबसे अधिक भुम्हीं वे होंगे जो उसकी अपनी आत्मा से देखने के लिए और उस चकित भूमि पर चलने के लिए ओजित रहेंगे।"¹⁵ रानडे का कहना था कि इस स्वयं की साक्षात्कृत करने के लिए आवश्यक है कि अपने अधिकारों को पुनः प्राप्त करने के लिए अध्ययन के साथ समय दिया जाय। इस महान काम के लिए इस बात की आवश्यकता है कि भारतीय जनता के चरित्र का उद्धार हो।¹⁶

7 निष्कर्ष

रानडे का मानस एक विश्वकोप की भांति मान का समार था, और भारतीय इतिहास, समाज तथा राजनीति की समस्याओं में उनकी गहरी पैठ थी और उनकी उन्होंने आलोचनात्मक

56 भारत की मराठी पुस्तक 'मानवृत्ति रानडे' (पृष्ठ 360) के कैप्टन नरस की पुनर्लिखित प्रतिलिपि पृष्ठ 117-118 पर प्रकाशित।

57 रोचाल इन्स पेपर्स में भी अपने 1905 के वक्तव्य कलिन के वक्तव्योपचार में अपनी अनुमान पर दृढ़ प्रकाशित किया था।

58 एन बी रानडे *The Telang School of Thought* (1893)।

दृष्टि से देखा जा। वे उस महापुरुषों के थे जिन्होंने भारत में राष्ट्रीय चेतना उत्पन्न की। वे तत्कालीन मामलों में प्रमुख नीति का अनुसरण करना चाहते थे। अपनी बुद्धि मौलिक थी। उसी 'एसेज इन इण्डियन इक्विनोक्सिअल' तथा 'राइज ऑफ मराठा पावर' पुस्तकें भारतीय सामाजिक विज्ञानों के सन्दर्भ में उनके सम्बोधित विचार तथा संवेदनशीलता की परिचायक हैं।

एक अग्रगण्यता के रूप में रानाडे ने निजी तौर पर विचार सम्प्रदाय की स्थापना नहीं की। संवैधानिक रूप में उन्हें रिकार्डों अपना याचना की पोटि में नहीं रखा जा सकता। वे उस समय हुए जब औद्योगिक प्रगतिवाद भारत में अपनी जड़ें जमा रहा था। परिस्थितियाँ इतनी परिपक्व और जटिल नहीं थी कि दम्मीर मौलिक चिन्तन सम्भव हो सकता। अतः भारत के अग्र गुरु शास्त्री सामाजिक तथा राजनीतिक विचारणा की मूर्ति रानाडे का महत्व इस बात में है कि उन्होंने राष्ट्रवादी सामाजिक विज्ञानों की पारम्परिक और प्रस्थापनाओं का मूल्यांकन किया और बहुकरणात्मक कि वह भारत की परिस्थितियाँ में वहाँ तक और किन्तु रूप में लागू किया जा सकता है। उन्होंने भारतीय अवस्था के विश्लेषण के लिए किन्हीं मुख्यमूल्य और परस्पर सम्बद्ध अग्रगण्यता विज्ञानों का निरूपण नहीं किया। फिर भी उन्होंने भारतीय दृष्टि में सुधार तथा भारतीय शैली के विचार के लिए महत्वपूर्ण सुझाव दिए। तत्कालीन भारतीय नेताओं में उनकी प्रमुख स्थिति तथा उनके अग्र चरित्र के कारण उनके विचारों का व्यापक रूप से प्रचार हुआ। उन पर 'बाबा की इति प्रणाली' का प्रभाव का और वे राष्ट्रवादी अग्रगण्यता के विचारमय, ऐतिहासिक, रोमांटिक और सम्प्रदायी के विचारों से परिचित थे। वे देश के आर्थिक सुधार के सम्बन्ध में बहुत उत्साह के साथ चाहते थे कि भारत के साथ 'याव किया जाय'। किन्तु उनके मर्यादित सुझावों की अधिक कठोरता और राष्ट्रीय विकास आधुनिक की विचार योजना मान लेना एक दूर की कल्पना है। किन्तु भारतीय अग्रगण्यता के क्षेत्र में रानाडे की एक अग्रगण्यता के रूप में अग्रगण्यता मिलना चाहिए। राणा माई मोरोजी ने भारत की इच्छा के लिए उत्तरदायी तर्कों की खोज करने में विज्ञानों का नेतृत्व किया, योजनाओं का लोकवित्त की समस्याओं पर अधिकार का और रमेशचन्द्र दत्त ने भारत का आधुनिक इतिहास लिखकर स्मरणीय रूप दिया। किन्तु अग्रगण्यतापूर्ण दृष्टिकोण की गहराई की दृष्टि से रानाडे पूर्वोक्त तीनों ही विज्ञानों से श्रेष्ठ थे। उनकी रचनाओं में हम दृष्टि की अधिक परिष्कृतता देखते भी मिलती है।

यह स्पष्ट है कि समय की गति और देश में उस आतिशायी आन्दोलन की दृष्टि के साथ साथ रानाडे ने राजनीतिक विचारों द्वारा एक नये। किन्तु इसके अलावा उस सन्दर्भ में महत्व कम नहीं हो जाता जिसमें वे मगल विषय थे। अतिवादियों तथा उग्रवादियों ने रानाडे के इस विचार का मशहूर उदाहरण एक पंथ बना दिया था कि अनेकों का भारत में आना ईश्वरीय विधान का अंग है। किन्तु इस प्रकार के धर्मनिरपेक्ष विचारों का पालन, सत्त अग्रगण्यता, योगी महान, होल आदि एक सामाजिक की रचनाओं में भी मिलते हैं जिसका विश्वास था कि इतिहास किसी व्यक्ति द्वारा लिखा जाता है और जिस की योजना तथा घटनाओं का प्रयोजन वेता प्रतीत होता है अथवा अविनियमित है। रानाडे ईश्वर-भक्त थे, इसलिए वह ऐतिहासिक घटनाओं के मूल में ईश्वर का हाथ दिखायी देता था। इसलिए उसने समझते थे कि यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि उसका दृष्टिकोण आध्यात्मिक निश्चितिकार के दृष्टान्त से होता था। रानाडे को ऐसा विश्वास था कि विश्व तथा भारत के इतिहास में ईश्वर का हाथ काम कर रहा है। उन्होंने यह भी अनुभव किया कि भारत का ऐतिहासिक विकास विभिन्न समाज-व्यवस्थाओं तथा कस्बियों के सर्वोत्तम तथा की उत्तरोत्तर आत्मसाक्षात् करने की प्रक्रिया है। रानाडे ने भारत के राष्ट्रीय तथा सामाजिक विकास के लक्ष्य में विश्वास की सम्बोधित तथा सम्भव और नष्ट की भावना का कुं जोड़ दिया। इस बात का देश के तरंग कल्पनाओं के मानस तथा हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा।

रानाडे ने जीवन के हर क्षेत्र में स्वतन्त्रता पर भी बल दिया वह राजनीतिक चिन्तन का एक उत्तम योगदान है। अथवा विश्वास था कि स्वतन्त्रता एक अग्रगण्यता है। मौलिक तथा सामाजिक स्वतन्त्रतावाद एक अग्रगण्यता के अग्रगण्यता की स्थापना होता आवश्यक है। इस प्रकार रानाडे

स्वतन्त्रता के सभी पक्षों और कक्षों के समर्थक थे, और चाहते थे कि जीवन के सभी क्षेत्रों में स्वतन्त्रता प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाना चाहिए ।

रानाडे एक आधुनिक व्यक्ति थे और अपनी मेधा विज्ञान तथा व्यापक थी । वे ऐसे गुरु थे जिन्होंने सामाजिक भुक्ति, आर्थिक प्रगति, सांस्कृतिक विकास तथा राष्ट्रीय एकता का उपदेश दिया । एक संदेशवाहक के रूप में उन्होंने आत्म त्याग तथा सतत सम्पन्नता का संदेश दिया है । उन्होंने राष्ट्र के भौतिक तथा वैज्ञानिक वर्चस्व के आदेश का विमुक्त बजाया । वे चाहते थे कि पूरे के मूल्यों तथा मान्यताओं और पवित्रता की राजनीतिक तथा आर्थिक विचारधारा का समर्थन किया जाय । भारतीय इतिहास तथा राजनीति ने रानाडे देशभक्ति के संदेशवाहक के और उन्होंने स्वतन्त्रता, सामाजिक प्रगति तथा वैयक्तिक चरित्र की पुन स्थापना का उपदेश दिया । इस प्रकार वे सदातः भारतीय राष्ट्रवाद के गुरु थे ।

फीरोजशाह मेहता तथा सुरेन्द्रनाथ बनर्जी

प्रकरण I फीरोजशाह मेहता

1 प्रस्तावना

शर फीरोजशाह मेहता (1845-1915) बम्बई के निवा मुमुट के राजा कहलले से । उनका जन 4 अगस्त, 1845 की हुआ था, और नवम्बर 1915 में उनका शरीरघात हुआ । 1864 में उन्होंने बम्बई के एलिफेन्टन कॉलेज में स्नातक की उपाधि प्राप्त की । 1868 में उन्हें सिविल इन के बैरिस्टर की उपाधि प्रदान की गयी । उन्होंने 1867 में ही अपना सांख्यिकी बीसन प्रारम्भ कर दिया था । जब वे लन्दन में विद्यार्थी के उसी समय दादाभाई नौरोजी के प्रभाव में आ गये । वे उस बृद्ध नेता की दूरदर्शिता, निष्ठा, अथक सम्पत्तिसंग्रह तथा उदार नीतिज्ञता के बड़े प्रभाव में । वे दादाभाई का आधुनिक युग का महानायक समझीये नेता तथा नैतिक एवं राजनीतिक कथम परामर्शता का सूतकप मानते थे । दादाभाई से फीरोजशाह ने यह सीखा कि लोक प्रशासन के दृष्ट में आर्थिक छाया का विशेष महत्व होता है । 1872 में वे बम्बई नगर महापालिका के सदस्य बन गये और तीन बार उसके समाप्ति चुने गये । बम्बई महापालिका में उन्होंने जल निष्कास, प्राथमिक शिक्षा, निम्नलिखित की सुविधा पुलिस सम्बन्धी व्यवस्था निर्धारण, जल की वृद्धि आदि समस्याओं की ओर विशेष ध्यान दिया । उन्होंने इनके विवेक आलोचन में प्रमुख भाग लिया । दादाभाई तथा राजाजी ने साथ मिलकर उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना की । 1885 में उन्होंने फैलन तथा बहुहीन रैमवली के साथ-साथ बीम्बे प्रेसीडेन्सी एसीसिवेशन की नींव डाली । यह काम राजनीतिक विषयों पर अपनी उच्च अदक्ष किया करती थी । वे विभिन्न साहित्य के प्रकाशक पत्रों में, और उन्होंने वर्षों, बम्बई महापालिका के सदस्य तथा बम्बई विश्वविद्यालय की सीनेट के सदस्य के रूप में विशेष गति प्राप्त की ।

1886 में साठ री ने उन्हें बम्बई विधान परिषद का सदस्य नियुक्त किया । 1892 में उन्हें परिषद में लिए निर्वाचित कर लिया गया । वे 5 दश वर्ष तक बम्बई विधान परिषद के सदस्य रहे । परिषद में फीरोजशाह ने विधायी विवरण, कृषकों की सहायता, आपात मुक्त, पुलिस अधिनियम संशोधन, सचान्त्र उद्यम अधिनियम आदि विषयों पर अपने विचार स्वतन्त्रतापूर्वक तथा श्रेष्ठतम भाषा में व्यक्त किये । भारतीय विज्ञान के शिष्ट सीमांत युद्धों, यह सैनिक व्यवस्था के अग्रगण्य विवरण, सैनिक व्यवस्था में वृद्धि तथा विभिन्न सशस्त्र मण्डलों से जो सफल उपजन हो गया था उसकी ओर ध्यान आकृष्ट किया । तीन वर्ष (1894-1897) तक फीरोजशाह भारतीय विधान परिषद (इन्डियन लेजिस्लेटिव कोल्लिज) के सदस्य रहे । वे अपनी बीजपुत्र तथा मुहम्मद यमूना और निमयता के लिए प्रसिद्ध थे । वे नैयामिक, बहू तथा मुख्य व्यवस्था के आधार और प्रगती राजनीतिज्ञ थे ।

फीरोजशाह का व्यक्तिगत व्यवसाय था, उन्होंने अनेक वर्षों तक कांग्रेस पर अपना नियन्त्रण

1 फीरोजशाह मेहता का जीवन सन् 1901 में 'द फिरोजशाह मेहता' विज्ञापन द्वारा सम्पादित *Sketch and History of Sir Ferozshah Mehta* (संस्करण द्वि, बम्बई, 1905) ।

रहा। 1890 में वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सम्भाषित थे। 1892 में पुनः वे जो भारतीय सम्मेलन हुआ उसमें भी वे सम्भाषित थे। 1889 तथा 1904 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापन समिति के सम्भाषित रहे। 1904 में लम्बई में अपने भाषण में उन्होंने हम बात का दुहराया कि ब्रिटेन ने क्षाप्त भारत का सम्बन्ध ईश्वरीय विधान का परिधान था। 1907 में दूरत की चूट के अवसर पर फीरोजशाह मेहता तथा मोहंते मितवादी (नरम दली) क्षिपिर ने प्रमुख कहा थे। यह वहीं के अन्तिम का परिधान था कि कांग्रेस का स्थान नागपुर की छोटकर सूरत रहा गया था। फीरोजशाह 1910 में भी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सम्भाषित चुने गये थे, किन्तु उन्होंने किसी अप्रत्याशित कारण से अपना भाषण दे दिया था।

2 मेहता की इतिहास की व्याख्या

रानाडे की भांति फीरोजशाह जो विश्वास करते थे कि इतिहास की प्रविष्टा ईश्वर द्वारा रचित होती है। अतः उनकी भावना थी कि उन्मुख्य अथवा प्रकाश की अन्तिम विषय निश्चित है और अहिंसक अन्त तक अंधेरे के नरक में बसा रहना।¹ उनके अनुसार यह बात ईश्वरीय परमात्मन से कम नहीं थी कि ब्रिटिश शासन के माध्यम से भारत में स्वतन्त्रता तथा वैयक्तिक गरिमा की आस्था तथा वैज्ञानिक सम्प्रदाय के आदर्श का प्रवेश हुआ था। उनका कहना था कि यदि भारत-वासी ईश्वरीय के राजनीतिक इतिहास के अनुभवों की समझें और उनके अनुसार आचरण करें तो उन्हें धीरे-धीरे सारभूत लाभ प्राप्त हो सकते हैं। 1904 में लम्बई में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापन समिति के सम्भाषित के रूप में उन्होंने अपने भाषण में कहा : ' मैं आपका समझा करने जैसे एक निष्ठावान तथा अहिंसक राष्ट्रपति के विश्वास की सस्वीकृति प्रस्तुत कर रहा हूँ। मैं अपने स्वर्गीय मित्र महादेव गोविंद रानाडे की भांति एक तथा सार्वभौमिक हूँ। मेरा विश्वास है कि ईश्वर मनुष्य के माध्यम से मानव जीवन का निर्देशन तथा संचालन करता है। इसे आप धर्म के नामों का भाष्यवाद कह सकते हैं, किन्तु यह भाष्यवाद अहिंसक है, निश्चित नहीं यह भाष्यवाद मानता है कि मसीह की मानवीय पहिना को अपना निर्धारित रूप प्राप्त करने के लिए प्रेरणा देना चाहिए। मेरी दीनता मुझे उस निराशा से बचाती है जिससे निवारण जब जैसे अहिंसक उपायों से प्राप्त हो जाता करते हैं जो हानि में निराशा का संदेश देने लगे हैं। मुझे बलि के इस धर्मो से सबंध आता और आश्चर्य मिलती है 'मैंने इस संसार का निर्माण नहीं किया है, जिसने इसे बनाया है नहीं इसका संचालन करना।' उन्नी बलि के इस उपदेश से मुझे पीरदा भी मिलती है ' मेरा काम है बहुरा विश्वास है, और उसमें भी पूरी आस्था है जो बात का किसी धर्म सर्वेसर्वा के लिए निश्चय करता है।' आस्था और पीरदा की यह पहचान ही मेरी अहिंसक भांति का आधार है। निश्चित की भांति मैं ईश्वर की इच्छा की उसके द्वारा प्रदत्त ज्ञान में नहीं इच्छा, बल्कि उसकी आज्ञा में अपने विधान में करता हूँ, और उसकी (मानवत्व की) भांति में परमात्मन के पुनः ज्ञान में ईश्वर की इच्छा का स्थान करता हूँ। अतः रानाडे की तरह मैं ब्रिटिश शासन को ईश्वर का आदेशपालक विचार मानता हूँ। विश्व के दूसरे छोर पर स्थित एक छाटा-छा छोटा एक दूरस्थ और अज्ञान में अविश्वसित मित्र महाद्वीप पर आधिपत्य स्थापित करने इस बात की ईश्वर की इच्छा की भावना में मानना प्रेरणा होती।' रानाडे, मेहता तथा मोहंते की यह धारणा कि इतिहास की भांति में ईश्वरीय नियम कार्य करते हैं जैसे तथा हेमेल के विचारों के समान हैं। हम प्रकार हम समझें हैं कि भारतीय विचार-वादी एक ओर तो बुद्धि, विज्ञान, ज्ञान, सर्वमान्यवाद तथा गिनना में विश्वास करते हैं और एक प्रकार विचार और मोहंते के अलगावकारी हैं, किन्तु दूसरी ओर वह ज्ञान में ब्रिटिश शासन के पीछे ईश्वर का हाथ दिखाती बात है, और इस तरह वे मान अन्तर्मान, योग और योग्यता की भांति इतिहास की ईश्वरीय व्याख्या में विश्वास करने हैं।

उदाहरणों के साथ फीरोजशाह ने स्वोक्त किन्ता कि इतिहास में निरंतर बुद्धिमान प्रगति की अहिंसक दली का संचालन है। उनका विश्वास था कि "मसीह पुनः और गया ६००" में

2 *Speeches and Writings of Sir Feroz Shah Mehta* p. 280.

3 वही, पृ. 513.

विस्तीर्ण होने वाली प्रगति का नियम⁴ बार्मे करता है। इस प्रकार दुर्गों और कौशलों तथा फासीय और जमान प्रवृत्तीकरण के दार्शनिकों की भक्ति मेहता भी भी प्रगति की धारणा में साम्या था। उनका कहना था कि मनुष्य। तथा सत्ताओं के पारस्परिक सुधार तथा पूनर्जा के लिए निचे दिये दरी क्षणों की श्रुतता के परिणामस्वरूप ही प्रगति हुआ करती है। नवम्बर 1892 में गुता में हुए बार्मे सम्मेलन राष्ट्रीय सम्मेलन के अवसर पर अपने भाषण में मेहता ने कहा "मेरी समझ में यह पुरानी हीनू कहावत दोषपूर्ण है कि 'जो बात हो चुकी है, वही बात भविष्य में होगी।' इतिहास की कभी पुनरावृत्ति नहीं होती, उसके साथ हमलिय मूल्यवान है कि वे हमारा उन परीक्षणों के सम्बंध में प्रबोधन करते हैं जिनके बिना मानव प्रगति सम्भव नहीं हो सकती, किन्तु यदि हम अपना ज्ञान यह कल्पना करने के लिए बरहे लग कि जो कुछ खलीय में हो चुका है उसकी भविष्य में पुनरावृत्ति होगी, तो वे हमें मार्ग भ्रष्ट कर देते।"⁵ फीरोजशाह की इतिहास की प्रक्रिया के प्रतिरोध निम्न में विश्वास था। वे यह स्वीकार नहीं करते थे कि भारतीय लोगों का सृजनत्मक गुण समाप्त हो चुका है, अथवा यह दुखी पर एक प्यार का बोध है। बुराये निम्नवादिहों की भांति मेहता का भी विश्वास था कि देश की आधुनिक सम्प्रदाय के पुनर्जा की अपेक्षा करने के लिए बीरे बीरे तबारा निम्न जाना चाहिए। उन्होंने अपनी दूरदृष्टि में देख लिया था कि भारत की "राजनीतिक प्रगति के बिना विकास की सम्भवतम सम्भावनाएँ"⁶ विद्यमान हैं।

3 फीरोजशाह मेहता के राजनीतिक विचार

ही एक चीज तथा दायामार्ग नीरोजी की भांति फीरोजशाह मेहता का भी सिद्धांत था कि राजनीतिक चर्चा जनता के सकारण, इच्छाओं, आदर्शों, श्रेष्ठ तथा सामाजिकी में प्रवृत्त होने चाहिए। राजनीतिक चर्चा की अधिवाहक कक्षों उपयोगों का प्रयोग करके मुहज नहीं जाना जा सकता उसे छात्र विवेक, बुद्धिमत्ता तथा सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार के ही बल मिलता है।⁷ राजनीतिक चर्चा की पक्षपातपूर्ण बुद्धिमत्ता, निराधार तथा मार्गभ्रष्ट करने वाले दुष्भावों और "उनके (बात वालक अधिकारियों के) का तथा दिव्यजित्त दोषों के"⁸ मुक्त करना होता। यह एक सामान्य धारणा है कि चर्चा सचिक बल पर आधारित होती है। किन्तु समाजशास्त्र सिद्धांत है कि समाज का सत्य तथा जनता के नैतिक और सामाजिक आदर्शों के प्रति सहानुभूति ही चर्चा का वास्तविक आधार है। चर्चा की कोई भी व्यवस्था सामाजिक बलप्राप्त का परिवर्धन करने की इच्छा और क्षमा के बिना अपने को स्थापित प्रदान नहीं कर सकती। इतलेश मेराजनीतिज्ञों का एक सम्प्रदाय था जिनकी धारणा थी कि भारत की जनता के बल पर बिजय किया गया था और चर्चा की नीति के द्वारा ही उस पर अधिकार स्थापन रखा जा सकता था। उनके मत का समर्थन करते हुए मेहता ने कहा "इस देश के शासन के सम्बंध में जो चीज चर्चा के सिद्धांत का उपयोग देते हैं उन्हें हमलिय में निम्न जेम्स जैसा पक्ष और लाट सातकवरी जैसा कुछ निम्नलिखित समर्थन मिल गया है। वे लोग "जब पराजयता की नीति को एक प्रकार की दुःख साधुता कहकर समझें उठाते हैं, और ऐसा नहीं है कि वे बिना दुःख के उस नीति की अनुमोदित करते तथा अपनाते हैं जिसका साधारण भी राष्ट्र में अपनी मनोरमक सेही में इस प्रकार व्यवसा किया है "कृति भारत की ईसा के सभी दल कोही की बात करके विजय निमा गया है, इसलिए जब इतना बिलम्ब हो चुका है कि उस पर अधिकार स्थापन करने के लिए पक्ष पर दिये गये प्रबोध के सिद्धांतों का अनुसरण करने की बात नहीं कोही था करती।"⁹ किन्तु फीरोजशाह आधुनिक भारतीय इतिहास की इस व्याख्या की स्वीकार

4 फीरोजशाह मेहता का 1890 की जनताता पारिषद में सम्मेलन भाषण।

5 *Speeches and Writings of Ferozeshah Mehta* पृष्ठ 295।

6 वही, पृष्ठ 327।

7 वही, पृष्ठ 321।

8 वही, पृष्ठ 408।

9 वही, पृष्ठ 406।

10 *Speeches and Writings of the Hon. ble Sir Ferozeshah Mehta* (दोसरा भाग द्वारा संपादित) (दोसरा भाग द्वारा संपादित) (दोसरा भाग द्वारा संपादित), (1905), पृष्ठ 163।

नहीं करते थे। वे यह मानने की तैयार नहीं थे कि भारत में ब्रिटिश शासन शक्ति के बल पर कायम किया गया था। उनके अनुसार देश में ब्रिटिश शक्ति की जड़ें अधिक गहरी थी। शक्ति का सारक्षण नैतिक सिद्धांतों की अवहेलना करके नहीं किया जा सकता था। मेहता ने कहा "जब अंग्रेज लोग भारतीय इतिहास की व्याख्या इस रूप से करते हैं तो वास्तव में वे अपने साथ 'शाम' नहीं करते। यह सही है कि इस इतिहास के अनेक पृष्ठ धूलों तथा अपराधों से कलंकित हैं। किंतु इनलैण्ड में भारत की केवल तलवार के बल पर नहीं भीठा है। उसकी विजय का अधिकांश श्रेय उसके नैतिक तथा बौद्धिक गुणों की है। इन गुणों से विजय के बाद में ही उसका बल प्रदर्शन नहीं किया है, बल्कि उन्होंने विजय के हानिकारक प्रभावों को दूर करने में भी महत्वपूर्ण योग दिया है।"¹¹

फीरोजशाह ने बताया कि अंग्रेज भारत में जिस शक्ति की नीति का प्रयोग कर रहे थे उसके तीन घातक परिणाम हो सकते थे।¹² प्रथम, उससे इंग्लैंड पर भारी बोझ और दबाव पड़ेगा। इंग्लैंड को एक और फास की प्रतिस्पर्धा तथा सघर्षों का सामना करना पड़ रहा था। यदि यह इन शक्तियों के साथ किसी उसका में फँस गया तो पशुबल द्वारा शासित भारत उसके लिए भारी बोझ सिद्ध होगा। दूसरे, निमित्त निरनुपला का बदला अवश्य ही लेती है। भारत के निरनुपला शासक स्वेच्छाचारिता, बहुकार तथा उस पक्षपात की माननाओं से मोतमोत थे, वे इंग्लैंड की राजनीतिक व्यवस्था में राजनीतिज्ञ तथा सामाजिक दृष्टि से हानिकारक तत्व सिद्ध होगे। सामाजिक बहुकार के व्यापारण में रहने के कारण अंग्रेज अधिकारियों का सिर फिर गया है और वे शक्ति के नये में बुर हैं, वे जब शीटकर स्वदेश आर्ये ही प्रिटेन में समाज पर अवश्य ही दूषित प्रभाव डालेंगे।¹³ तीसरे, शक्ति की नीति की कार्यान्वित करने के लिए विनाश सेना रखनी पड़ेगी, उसके देश दखि होगा और उसका पुनराव गट होगा। जो घन भारी सेना के रखन पर व्यय होता था, यदि उसे देश के विकास के लिए प्रयुक्त किया जाता तो उसके इंग्लैंड तथा भारत दोनों की ही भारी लाभ हो सकता था।

फीरोजशाह का अंग्रेज शक्ति की संस्कृति और राजनीतिज्ञता के आधारभूत सिद्धांतों तथा सूत्रों में गहरी आस्था थी। जिस समय दादाभाई नौरोजी ब्रिटिश पार्लियमेंट के लिए चुने गये उस अवसर पर फीरोजशाह ने कहा "आज भारत का एक निवासी उस सभा में प्रवेश कर रहा है जहाँ से किसी समय बल, फौज और वीरीय ने अपनी अमर श्रीमंती बसंत शक्ति के द्वारा इस देश के शासन के सम्बन्ध में 'सावधान्यगता' की नीति का समर्थन किया था, जहाँ खड़े होकर मकानों के घुपलों निन्तु सदैवशाह की ही दृष्टि से उस दिन के जय-काज का दखन दिया था जब हमें राजनीतिज्ञ मताधिकार उपलब्ध होता और जहाँ से जादर, कॉमिंस और वैंडर्बोर्ग न बरोओ पूर विदेशी जनता के बल में अपनी आकांक्ष सुनाई की थी।"¹⁴ यदि इन अवसर पर हम कुछ मासुरता में यह जाँचें और इस रूप में देखकर कुछ सदैव और बढ़ा से विचारमग्न हो जायें तो हम लाभ दिया जाय, क्योंकि आखिर हमारा भी योग्य ब्रिटिश इतिहास की महानतम परम्पराओं में हुआ है।" मेहता समझते थे कि इंग्लैंड के राजनीतिज्ञ नैतिक तथा राजनीतिज्ञ कव्यव्यवस्था के उच्च आदर्शों से अनुप्राणित थे। इसलिए उनका विश्वास था कि इंग्लैंड भारत के साथ अवश्य ही 'शाम' करेगा। 1890 की कलकत्ता कांग्रेस में अवसर पर अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने कहा था "मुझे इंग्लिश संस्कृति तथा इंग्लिश सम्मता के जीवन तथा शक्तिगामी सिद्धांतों में असीम आस्था है। हो सकता है कि नयी-नयी स्थिति अपकारक तथा निराशाजनक दिखायी दे। आत्म-भारतीयों का विरोध अवसर तथा अक्षिप्त है। किंतु मुझे आत्म भारतीयता में भी असीम विश्वास है, मुझे अपनी उच्च और श्रेष्ठ प्रकृति में आस्था है और अंत में सभी की विजय होगी जो पहले अनन्य सामाजिक, ब्रिटिश तथा गौरवपूर्ण अवसरों पर हा चुकी है। जब परमात्मा ने अपने

11. वही, पृष्ठ 164।

12. वही।

13. वही, पृष्ठ 357।

14. दादाभाई नौरोजी का भाषण, 23, 1892 की निम्न सभा फीरोजशाह शहंवा का भाषण।

पूरा नियन्त्रण होना चाहिए किन्तु उनका अर्थ यह था कि विकासो के द्वारा मेरी कुछ शक्ति छोड़ दी जान जिसमें वे अनुमति कर लें कि वे स्वयं अपने घर नियन्त्रण सत्ता रहे हैं, न कि बाहर बाहर की सत्ता। वे सब प्रकार के नियन्त्रण में मुक्त स्वाधीनता के सम्मिलन नहीं थे, कि तुल्य ही सत्ता उनका कहना था कि स्वाधीनता निवासों की कुछ शक्ति तथा उत्तरदायित्व सम्मिलन देना होगा। भारतीय मन्त्रालय में स्वाधीनता निवासों के निर्वाचित सदस्य अपने का निष्ठा-तत्त्व प्रतिहीन अनुमति करत थे, यही बात वास्तव में ध्वनितियुक्त प्रमाणन की अन्तर्गतजनक स्थिति के लिए उत्तरदायी थी। अतः इस बात की आवश्यकता थी कि स्वाधीनता प्राप्त की व्यवस्था इस रूप की हो जिसमें स्वाधीनता प्रति नियंत्रण की सम्पूर्ण सत्तादेवारी हो। बीरोजगह मेहता की यह भी राय थी कि कायकारी नाम किसी परिपक्व अथवा उप-समिति की अपेक्षा किसी एक ही अधिकारी के सुपुत्र जिसे कार्य।¹⁸

शिक्षा की सुविधाओं का प्रकार भारतीय मित्रवादियों के राजनीतिक दृष्टि का एक प्रमुख विचार था। वे शिक्षा का जनजातजन जीवन की बुनी मानते थे। उनका कहना था कि मानस की बुद्धि नागरिक की अनुमति सम्पत्ति है। बीरोजगह तथा शिक्षा के प्रकार के पक्ष में थे। उदारवादी होने के नाते वे बुद्धिवाद तथा प्रगतिवाद में पक्ष न थे। उन्होंने बौद्धिक तथा शैक्षिक क्षेत्रों के प्रकार की शिक्षा का समर्थन किया। उनका कहना था कि इतिहास तथा मानव शास्त्र वैज्ञानिकता की आवश्यकता है।¹⁹ उन्होंने कहा "हमारे मांसे नहीं है कि बुद्धिवाद तथा शिक्षित जनता देश के शासन के विकास का सबसे अच्छा माध्यम है। यूरोपीय महाद्वीप में यह विचार बहुत लोकप्रिय हो गया है। इस विचार का पहले बहुत काशीकी प्रगति के राजनीतिज्ञों ने प्रारम्भ किया था। जिस समय के यूरोप के समयमें सभी सुदृढचारियों की बुद्धिहीन रहे थे और उनके शैक्षिक सुदृढ के विपक्ष अपनी सेवाएं भाग रहे थे उस समय भी उन्होंने इस विचार की कार्यान्वित करने का प्रयत्न किया। यद्यपि बीरोज रोडियाविषय की योजनाएं कुछ समय के लिए विफल रही, फिर भी उस से फाँस, जर्मनी, रूसी, स्विट्जरलैंड आदि देशों में विपत्तियाँ और बहिष्कारों के समय न भी अपनी सामाजिक शिक्षा की व्यवस्था की सीधे राजनीति प्रमाणन, प्रयत्न और महाद्वीप के अन्तर्गत पुनर्निर्माण करने के कुछ उदाहरण नहीं दया है।"²⁰ मेहता का विश्वास था कि भारतीय जीवन में सामाजिक तथा बंधनित शक्ति और सत्ताधारी के अन्तर्गत आदर्शों को केवल शिक्षा के माध्यम से ही प्रविष्ट किया जा सकता था।²¹ किन्तु उनकी बौद्धिक प्रेरणा का मुख्य स्रोत वास्तविक सभ्यता की। वे सभ्यता काया के परिचित नहीं थे। इसलिए उन्होंने 'कमर्से की शिक्षा प्रणाली' नामक एक निबंध में सभ्यता काया और साहित्य की अन्तर्गतता की ओर कहा कि "अन्तर्गतता सभ्यता की सम्पत्ति में अनुपम पुनर्धार के वर्तमानों की व्यापार में रखते हुए के निरपेक्ष तथा हाथिकारण है।"²²

4 निष्कर्ष

अपने युग के नेताओं में बीरोजगह मेहता का अत्यन्त उच्च स्थान था। वे क्षत्रियजी विचारधारा तथा अन्तर्गत और निर्भीक देशवासी थे। अपने राजनीतिक विचारों में वे भावनाओं की अन्तर्गत व्यावहारिक दृष्टिकोण से अधिक प्रभावित होते थे। उन्हें विदित सम्पत्ति के मूल्यों न आश्चर्य थी। उनका यह भी विश्वास था कि अन्तर्गतता भारत की अन्तर्गत और प्रगतिशीलता निर्धारित है। किन्तु वे विदित साम्राज्य की स्थायी बनाने में पक्ष में थे, और उसके प्रति हाथिकार, प्रगति तथा मित्राणुक्त भावित उनके राजनीतिक विचारों की आधारभूत धारणा थी। उन्होंने 'धर्म तथा अन्तर्गतता' पर बल दिया। अतिवादी, उन्मत्तवादी तथा समाजवादी विचारों के विपक्ष में साथ साथ मेहता के विचारों का केवल ऐतिहासिक महत्व रहे गया है। फिर भी यह मानना पड़ेगा कि उदारवादी विचारों का निर्भीकतापूर्ण सम्मिलन करने उन्होंने स्वाधीनता निवासों के लिए स्वाधीनता सामाजिक शिक्षा, बुद्धिवाद, स्वाधीनता तथा प्रगति के आदर्शों को फलाने में महत्वपूर्ण योग दिया है। इस प्रकार

18 *Speeches and Writings of Pherozshah Mehta* पृष्ठ 256।

19 वही, पृष्ठ 77।

20 वही, पृष्ठ 49।

21 वही पृष्ठ 267।

22 वही पृष्ठ 7।

विधान के अनुसार भारत की इमर्जेन्स के अन्तर्गत में सुधार किया गया था तो मुझे अनुभव हो ए है कि उस समय उसने समझ भी पुराने इमरजेंसिया की भाँति यह व्यवस्था रखा गया होगा "देशों में यह मुद्दा यह बरदान दिया है, किन्तु यह अभिधात भी है, यदि तुमने अपने प्रभु ईश्वर के आदेशों का पालन किया जब तो यह मुद्दारे लिए एक बरदान सिद्ध होना, किन्तु यदि तुमने अपने प्रभु ईश्वर के आदेशों का पालन न किया और अन्य ऐसे देवताओं के पीछे ढोके जिन्हें तुम नहीं मानते हो तो यह मुद्दारे लिए एक अभिधात होना।" इमर्जेन्स के जीवन और समाज की कौन नैतिक, सामाजिक, बौद्धिक, राजनीतिक तथा अन्य बहुत सारी चीजों को धीरे धीरे किन्तु हता के साथ उस विकल्प का स्वीकार करने की आवश्यकता कर रही है जिससे इमर्जेन्स और भारत का सम्बन्ध स्वयं उनका लिए तथा विश्व की अर्थात् पीछियों के लिए बरदान सिद्ध होगा। हमारी कांग्रेस देव यह चाहती है कि हमें भी उन नियमों का पालन करना चाहिए जिनका इमर्जेन्स को निम्न उक्तनी ही विधिगत है जिसका उस अनन्त सत्ता का अस्तित्व जो घट और 'घात' का सम्बन्ध है। किन्तु अनेकी साम्राज्य की श्रेष्ठता और सर्वोच्चता को स्वीकार करते हुए भी मेहता उस अनेकी और आत्म भारतीयता की व्यापारिक सामो के लिए की गयी विचारों का मशीन उक्तनी के नहीं थी।¹⁵

यद्यपि श्रीरोजसाहू देवमन्त्र थे, किन्तु उन्होंने कभी भारतीय स्वतन्त्रता के आदर्श का स्वरूप नहीं दिया। वे कांग्रेस के सर्वोच्चता तथा राष्ट्रीय स्वयं की अनेकी रखना चाहते थे, किन्तु साथ साथ यह भी चाहते थे कि यह स्वयं अनेकी की सत्ता बनी रहे। उनके विचार स्पष्ट, तथा एक नीतिक आदर्श समस्त तथा सीमित थे। उनका विश्वास था कि राजनीति की समस्त कार्यवाही और उचितता से हल नहीं की जा सकती थी, उनकी हल करने के लिए बकादार दित तथा निम्न बुद्धि की आवश्यकता थी। उन्हें ब्रिटिश साम्राज्य ने प्रति प्रति तथा ब्रिटिश साम्राज्य के स्थापित में विश्वास था। उन्हें इमर्जेन्स की आवश्यकता तथा महानुक्ति में भी आस्था थी। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सम्बन्ध अभिव्यक्त की स्वतन्त्र सचिपि के अन्तर्गत के रूप में श्रीरोजसाहू ने ब्रिटिश साम्राज्य के स्थापित में अपना हृद विश्वास तथा आस्था व्यक्त की थी।¹⁶ उन्हें वेद विज्ञान के साम्राज्य की सुरक्षा और स्थापित के सम्बन्ध में हार्दिक विश्वास रहती थी, क्योंकि उनकी समस्त भारतीय जनता के वर्तमान, बुद्धि, समृद्धि तथा सुशासन की नींव यह साम्राज्य ही था। उन्हें यह भी विश्वास था कि भारतीय बुद्धिजीवियों की हार्दिक तथा विनीत मान्यता के कारण स्वयं अनेकी शासन प्रविष्टा नीति का परिणाम करने, बुद्धि तथा 'घात' की नीति पर चरम अन्त आरम्भ कर देंगे। वह आशा थी कि किसी दिन बगलि का यह स्वयं निदेश ही पुरा होगा कि भारतीय भी योग्यता नागरिकता के सुख और सुविधाओं का उपयोग करें। आज स्वतन्त्र भारत ने आशावरण में के विचार सम्भवतः विविध मामूल पड़े, किन्तु उन्हें उन परिस्थितियों के सामने से गुजर नहीं जाने चाहिए जिसमें वे व्यक्त किए गए थे। यह मेहता का दोष नहीं था, बलित उन परिस्थितियों की सीमा थी। उन दिनों ब्रिटिश साम्राज्यवाद की प्रतिष्ठाओं व्यवस्था देव के हता से नहीं हुई थी, अतः उस समय स्वतन्त्रता के आदर्श का प्रतिपादन करना भारी जोखिम का कारण हो सकता था।

भारत के निर्याती नेता के जीवन के विरुद्ध थे और बुद्धिमान स्वामीय स्वतन्त्रता का तर्क बन करते थे। सनाडे, श्रीरोजसाहू तथा सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने स्वामीय विचारों की सचिपि का प्रसार करने पर रत दिया। श्रीरोजसाहू की स्वामीय स्वतन्त्रता की अनेकी में गहरी रुचि थी। स्वामीय विचारों पर निष्पक्ष ने सम्बन्ध में उक्तनी जैन स्टुडेंट मिल तथा हरवट स्पेंसर के विचारों की उपलब्धि किया। उक्तनी महा ' इस विषय में महान्तम बुद्धि और स्टुडेंट मिल तथा हरवट स्पेंसर दत्ता का ही मत है कि स्मूनिफिकेशन विचारों के कारण स्वतन्त्रता पर का साम्राज्य निष्पक्ष हो, या अन्तरिम, दत्ता अन्तरिम की निष्पक्षता सचिपि नहीं है।'¹⁷ मेहता चाहते थे कि स्वामीय विचारों पर गुण

15 *Speeches and Writings of Sir Pherozshah Mehta* पृष्ठ 455।

16 वही, पृष्ठ 812।

17 अनेकी विचारों तथा वे अनेकी विचारों का निष्पक्ष व निष्पक्ष अन्तरिम व अन्तरिम पर 13 जनवरी, 1901 की तिथि तथा श्रीरोजसाहू दत्ता का अन्तरिम, *Speeches and Writings of Pherozshah Mehta*, पृष्ठ 637।

पूरा नियंत्रण होना चाहिए किन्तु उनका आग्रह था कि निकासों के हाथों में भी कुछ शक्ति छोड़ दी जाय जिससे वे अनुभव कर सकें कि वे स्वयं अपने पर नियंत्रण लगा रहे हैं, न कि बौद्ध बाह्य की शक्त। वे सब प्रकार के नियंत्रण से मुक्त स्वाधीनता के समर्थक नहीं थे, किन्तु साथ ही साथ उनका कहना था कि स्वाधीन निकासों की कुछ शक्ति तथा उत्तरदायित्व अवश्य देना होता। भारतीय कपरा में स्वाधीन निकासों के निर्वाचित सदस्य अपने का नितात गतिहीन अनुभव करते थे, नहीं बात वास्तव में म्युनिसिपल प्रशासन की असहोपजन्य स्थिति के लिए उत्तरदायी थे। यह इस बात की आवश्यकता थी कि स्वाधीन शासन की व्यवस्था इस सब की हो जिसमें स्वाधीन प्रतिनिधियों की संश्लेष सामर्थ्यारी हो। फीरोजशाह मेहता की यह भी राय थी कि कर्मकारी नाम किसी परिपक्व अथवा उप-समिति की अपेक्षा निम्नी एक ही अधिकारी के सुपुत्र किन्ने जार्न।¹⁸

शिक्षा की सुविधा का प्रसार भारतीय विचारधारा के राजनीतिक दर्शन का एक प्रमुख विचार था। वे शिक्षा की सार्वजनिक जीवन की नयी मानते थे। उनका कहना था कि मानस की मुक्ति नागरिक की अपूर्व सम्पत्ति है। फीरोजशाह लोक शिक्षा के प्रसार के पक्ष में थे। उदारवादी होने के नाते वे बुद्धिवाद तथा प्रगतिवाद के पक्ष में थे। उन्होंने बौद्धिक तथा नैतिक दोनों प्रकार की शिक्षा का समर्थन किया। उनका कहना था कि इतिहास तथा मानव शास्त्र नैतिकता की आवश्यकता है।¹⁹ उन्होंने कहा “इसमें शक नहीं है कि बुद्धिमान तथा शिक्षित जनता देश के संपन्नता के विकास का सबसे अच्छा माध्यम है। यूरोपीय महाद्वीप में यह विकास बहुत लोकप्रिय हो गया है। इस विचार की पहले पहल का सीरी बार्थ के राजनीति में प्रारम्भ किया था। जिस समय वे यूरोप के समय सारी मुद्राधारियों को चुनौती दे रहे थे और उनके वैदिक मुद्रा के विरुद्ध अपनी विचारों का पक्ष रखे थे उस समय भी उन्होंने इस विचार की कार्रवाई करने का प्रयास किया। यद्यपि कौन्सिल रोमनिस्म की योजनाएँ कुछ समय के लिए विफल रही, फिर भी तब से का ल, जर्मनी, इटली, स्विट्जरलैण्ड आदि देशों में विपत्तियों और कठिनाइयों के समय में भी अपनी सामाजिक शिक्षा की व्यवस्था को सीधे राजनीय प्रशासन, प्रत्यक्ष और महाद्वीप के सार्वजनिक पुनर्निर्माण करने में कुछ उठा नहीं रखा है।”²⁰ मेहता का विश्वास था कि भारतीय जीवन में सामाजिक तथा कर्म-कृत धर्मिक और कर्मकारी के उच्च आदर्शों की केवल शिक्षा के माध्यम से ही प्रकट किया जा सकता था।²¹ किन्तु उनकी बौद्धिक प्रेरणा का मुख्य स्रोत पारम्परिक सभ्यता थी। वे सभ्यता का परिचित नहीं थे। इसलिए उन्होंने “अम्बई की शिक्षा प्रणाली” नामक एक निबंध में सभ्यता का और साहित्य की आलोचना की और कहा कि “उन्नीसवीं शताब्दी की सभ्यता के अनुक्रम पुनरुद्धार के उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए वे निरर्थक तथा हानिकारक है।”²²

4 निष्कर्ष

अपने पुत्र के नेतृत्व में फीरोजशाह मेहता का अन्ततः उच्च स्थान था। वे राष्ट्रवादी विचारधारा तथा उत्कृष्ट और निर्भीक देशभक्त थे। अपने राजनीतिक विचारों में वे भावनात्मक अपेक्षा व्यावहारिक दृष्टिकोण से अधिक प्रभावित होते थे। यह ब्रिटिश सभ्यता के युद्धों में आसपास थी। उनका यह भी विश्वास था कि अन्ततः सत्ता राज्य की उत्पत्ति और प्रगतिवाद निश्चित है। किन्तु वे ब्रिटिश साम्राज्य की स्थायी बनाने के पक्ष में थे, और उनके प्रति हार्डिन, प्रगति तथा विचारधारा भक्ति अपने राजनीतिक विचार की आधारभूत धारणा थी। उन्होंने ‘पंच तथा अन्ध-धर्म’ पर बात किया। अतिवादी, उग्रवादी तथा समाजवादी विचारों के विकास के साथ साथ महान्त न विचारों का केवल ऐतिहासिक महत्त्व रह गया है। फिर भी यह मानना पड़ेगा कि उदारवादी विचारों का निर्भीकतापूर्वक समर्थन करते उन्होंने स्वाधीन निकासों के लिए स्वायत्तता, सामाजिक शिक्षा, बुद्धिवाद, स्वतन्त्रता तथा प्रगति के आदर्शों की कल्पना में महाप्रयत्न योग किया है। इस प्रकार

18. *Speeches and Writings of Ferozshah Mehta*, पृष्ठ 256।

19. वही, पृष्ठ 77।

20. वही, पृष्ठ 49।

21. वही पृष्ठ 267।

22. वही पृष्ठ 7।

उन्होंने ऐसे तरण, उदीयमान तथा आशावान देश के प्रवासा का काम किया वहाँ प्रबुद्ध तथा विविध शीशो को पूर्णोपति वर तथा हिन्दमध्य वनों की आकाशवाणी के विवचनकर्ता के रूप में कार्य करता था।

प्रकरण 2

सुरेन्द्रनाथ बनर्जी

1 प्रस्तावना

सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी (1848-1925) को सभी-सभी भारत का एक बड़ा नेता है। उनकी आध्यात्म शक्तिशाली तथा ओजस्वी भी और अपनी वस्तुत्व शक्ति के द्वारा वे शीताश्री से सम्बन्धित इतिहास और प्रभावित कर सकते थे।²² उनका जन्म 1848 में कलकत्ता में हुआ था, और 4 अगस्त, 1925 को उनका देहांत हुआ। उनके पिता बाबू दुर्गानराम बनर्जी हाटटी रहते थे। सुरेन्द्रनाथ ने 1868 में स्नातक की उपाधि प्राप्त की। 1868 में लन्दन गये और वहाँ फ्रीकींगी कॉलेज में गैस्टराइटूर तथा हेनरी बोर्न नामक आचार्यों के निर्देशन में अध्ययन किया। 1869 में वे इण्डियन सिविल सर्विस की प्रतिस्पर्धी परीक्षा में बैठे तथा सफल हुए, और 1871 में सिविल के सहायक दफ्ताधिकारी (असिस्टेंट मजिस्ट्रेट) नियुक्त किये गये। किन्तु ब्रिटिश साम्राज्यकारी नीति शाही ने उन्हें वाई सी एस के सदस्य की हैसियत से समुक्त दफ्ताधिकारी (आइड मजिस्ट्रेट) के रूप में सम्मानपूर्वक कार्य नहीं करने दिया। 1873 में उनके विरुद्ध कुछ सारोप एवं तिर गये और जीव आयोग ने उन्हें अपराधी ठहराया। इसलिए उनकी पचास रुपया मासिक की पेंशन लेकर नौकरी से अवसृति कर दिया गया। इंग्लैण्ड के ओकसफ़ के सामने अपने मामले की परकी करने के लिए सुरेन्द्रनाथ इंग्लैण्ड गये, किन्तु वहाँ भी उन्हें 'गाम नहीं मिला। इण्डियन सिविल सर्विस के रिहाज जाने के बाद वे 1876 में मेट्रोपोलिटन इन्स्टीट्यूशन नाम की संस्था में अधीशी के प्रोफसर नियुक्त हुए। 1881 में वे भी चर्च कॉलेज नामक एक अर्च शिष्टा संस्था के सम्पादन कर्मचारी में नियुक्त हुए। 1882 में उन्होंने अपना एक निजी स्कूल खोल लिया जो बीरे बीरे उनकी करण एवं कॉलेज बन गया, और लॉड रिचम के नाम पर उसका नामकरण किया गया। एक बीरवाणी संस्था के निर्माण का ध्ये केवल बनर्जी को था।

सुरेन्द्रनाथ ने अपना राजनीतिक कामकाज उन्नीसवीं सताब्दी के आखिरी दशक में प्रारम्भ किया। 26 जुलाई, 1876 को उन्होंने आनन्दमोहन बोस (1846-1905) और निरानाम दास की सहयोग से कलकत्ता में इण्डियन एसोसियेशन की स्थापना की। भारत में प्रतिनिधि शासन का आरम्भ करने के लिए आन्दोलन करना इस संस्था का एक प्रमुख उद्देश्य था। इस प्रकार भारत में स्वराज के लिए भी धीन आरम्भ हुई उसमें सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने अग्रगता तथा पद-अग्रवक का काम किया। सरकारीय भारत सचिव लार्ड सांसवरी ने इण्डियन सिविल सर्विस परीक्षा के लिए अधिकतम आनु लेईश से घटाकर उन्नीस कर दी थी। इसके विरुद्ध धन्य बनर्जी ओकसफ़ लवारे वाले के लिए सुरेन्द्रनाथ ने उत्तर भारत का दौरा किया। अद्वैत वय तक वे टाटसू की बनर्जी (1844-1906) द्वारा संस्थापित 'वयाली' नामक वय के सम्पादन रहे। इसलट विधेयक के मामल में 'वयाली' ने आनन्द भारतीय बीरवाणी की निर्भीकतापूर्ण आशीर्वाद की। 1883 में 'आनन्द' की आनन्दानि के आरपी में उन्हें भी महीने के शाराकाल का दण्ड दिया गया। शाराकार से मुग्ने के बाद उन्होंने उत्तर भारत का पुन दौरा किया। बिल्का 'विजय यात्रा' के रूप में स्थापन किया गया। 1876 में य कलकत्ता महासमितिया के उदाय पुन गये और लईश वय तक (1899 तक) उस वय पर वाम करता रहे। 1890 में सुरेन्द्रनाथ नाथस के प्रतिनिधिसदस्य के सदस्य के रूप में आर एक मुधीनवर, एडले गॉटन और एवन बीरवेकियन लूम के साथ भारत में शासन सुधार

22 सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, *A Nation in Making, Speeches and Writings of Hare Surenendranath Banerjee* (या ए नैशन इन मकिंग, शर्च, प्रथम शासन) *Speeches by Babu Surenendranath Banerjee* (1876-84) शायक शायक द्वारा सम्पादन *Part 1 और 2* द्वितीय शासन (एन के लईश एन बनर्जी बनर्जी 1891), *Speeches by Babu Surenendranath Banerjee* (1886-90) शायक आनन्द विहार द्वारा सम्पादन (ए एन पिता बनर्जी, 1890)।

पक्ष में लोकमत तैयार करने के उद्देश्य से इंग्लैण्ड का दौरा करने गये।²⁴ 1897 में सुरेन्द्रनाथ ने वेल्सी सामोय के समक्ष साक्ष्य दिया था। 1894, 1896, 1898 तथा 1900 में वे बंगाल विधान परिषद के सदस्य चुने गये। उन्होंने 1910 में सांस्कृतिकीय प्रेश सम्मेलन में भी भारत का प्रतिनिधित्व किया।

राष्ट्रिय के प्रारम्भिक वर्षों में सुरेन्द्रनाथ उसके स्वप्न में। वे 1895 में पूना तथा 1902 में अहमदाबाद में कांग्रेस के अध्यक्ष थे। यद्यपि वे ब्रिटिशवादी गुट के थे, किंतु बंग-भंग के मामले में ब्रिटिश गौरववादी ने जो नीति और कार्यशैली अपनायी उससे उनका पैर टूट गया, अतः उस विषय में उन्होंने राष्ट्रवादियों के साथ मिलकर कार्य किया।

1918 की जुलाई में सम्मेलन के कांग्रेस का विशेष अधिवेशन हुआ। उस अवसर पर ब्रिटिश वादी गुट कांग्रेस से भूषक हो गया। उसी वर्ष नवम्बर में उस गुट ने अपना अलग सम्मेलन किया और सुरेन्द्रनाथ की उसका समाप्तिचना बना। इंग्लैण्ड की पार्टीमट की जिस समुक्त प्रवर समिति ने 1919 के भारत शासन विधेयक पर विचार विमर्श किया उससे समक्ष सुरेन्द्रनाथ ने साक्ष्य दिया। बाद में जब 1919 का भारत शासन अधिनियम पास हो गया तो उन्होंने उसका समर्थन किया। अधिनियम के साथ होने पर वे बंगाल विधान परिषद के सदस्य चुने गये और बंगाल सरकार में मंत्री नियुक्त हुए।

2 सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के राजनीतिक विचार

सुरेन्द्रनाथ की जीवक मर्सीनी (मैजिनी) (1805-1872) के जीवन से प्रेरणा मिली थी। मर्सीनी का मतत्व बलिदान उसके हृदय की लक्ष्मी तथा प्रतापवान चरित्र सम्पन्न ही आदर्शिक प्रेरणादायक है। वह आत्म विद्रोह तथा आत्म-विमर्शता की विशेष महत्व देता था। बनर्जी की कान्ता थी कि उनके देशवासियों इन्हीं के लक्ष्य देता तथा मुक्तिदाता की श्रेष्ठ तथा उदात्त देशभक्ति, दुःख और कष्टों को सहने की अपार शक्ति तथा विज्ञान बहुश्रुति आदि गुणों की सीखें और पालन करें। उन्होंने स्वयं मर्सीनी के जीवन से दो महत्वपूर्ण उपदेश ग्रहण किये। प्रथम, ब्रिटिश तथा आध्यात्मिक पुनरुत्थान ही राजनीतिक उन्नति का आधार बन सकता है। इसलिए सदाचार आवश्यक है, क्योंकि प्रत्येक महान् कार्य को पूरा करने के लिए वह आवश्यक होता है कि शासना की सदाचार के द्वारा पवित्र किया जाय, और देश के लिए दुःखों, कष्टों तथा सताचा की भयपूर्ण सहन किया जाय। दूसरे, यह आवश्यक था कि देशवासियों के हृदयों में राष्ट्रियता की मजबूत भावना और अनुभूति व्याप्त हो। उनके अनुसार विद्रोहवादी एकता की यह मानसिक अनुभूति राष्ट्रियता की वास्तविक प्रवृत्ति को अपेक्षित बात थी।²⁵

सुरेन्द्रनाथ ने इंग्लैण्ड के राजनीति दशान की उत्तरवादी शिक्षा को हृदयगत किया था। भारत में विद्याध्ययन करते समय उन्होंने मन, संकल्प, चित्त, स्पेसर की रचनाओं की प्थानपूर्वक पढ़ा था। यही कारण है कि उनके भाषणों और लेखों में नैतिक आदर्शवाद के दशान और उत्तरवादी स्थितिवाद की स्पष्ट छाप दिखायी देती है। इंग्लैण्ड में विद्यार्थी जीवन के दौरान उन्होंने बुद्धि, स्वातंत्र्य तथा लोकतन्त्र के आदर्शों का महत्व कभी-कभी समझ लिया था। वे एक के परिपालनवाद और रोमांटिकवाद तथा श्रमिक, पिछ और सीरी-वन²⁶ की भाषणदाता और लोडरों वस्तुत्व की प्रशंसा किया करते थे। यह उन्हें विरोध रूप से पसंद था और उसे वे 'ईश्वर द्वारा नियुक्त—स्वयं प्रवृत्ति के हाथों रचा हुआ—अनुसारवादी' कहा करते थे। निम्न उनका यह की विचारों था कि मन की अनुसारवाद दशान तथा देशभक्ति से उत्प्रेरित था, उसके मूल में कोई स्वयं की भावना नहीं थी। मन ने विद्रोह के लक्ष्यवादी की अपने मन में प्रतिनिधित्व के आदेशात्मक सिद्धांत का जो पण्डन

24 लालबहादुर शास्त्री प्रथम भारतीय राजनीतिज्ञ देता थे जो राजनीतिज्ञ श्रेष्ठ की लक्ष्य और 1884 में इंग्लैण्ड गये।

25 *Speeches by Babu Surendranath Banerjee* (1873-1884) सम्पन्न चरित्त द्वारा सम्पादित (एन के लाइको एण्ड बन्सनी, बनारस), विद्रो 1 तथा 2, वि 1, पृष्ठ 1-24।

26 *Speeches* (1886-90) पृ 131।

विद्या का उन्नति बननी महामुक्त के और प्रायः उसने इस पक्ष को उन्नत किया करते थे।²⁷ वे इस तार करते थे कि इससे पहले के इतिहास की महान शिक्षा स्वतन्त्रता की प्राप्ति थी। सचमुचे में उन्होंने भी प्यूरिटन चार्च तथा रक्तहीन चार्च सर्वोच्चानिष्ठ स्वतन्त्रता की स्थापना के भाव में महानुभव व्यक्तार्थों की। मिल्टन, मिडली, हैरिस्टन, लॉय आदि अनेक लोगका न अपनी रचनाओं में स्वतन्त्रता की निशानों की अन्तर पर दिया था। इस चौरवर्ग की सविमानवाद के बीच का भारत में जो भी रोपण करना आवश्यक था। भारत में स्वतन्त्रता मुफ्त की आवश्यकता की महामुक्त, अन्तिम और भीस के भी स्वीकार किया था। अन्तःपुरे इत्यादि का कहना था कि यदि वह अन्तिम रूप में आये तो भारतवासियों को सर्वोच्च ह्रास और के विरुद्ध के उन्नत होत।²⁸

पुरे इत्यादि की मानव स्वभाव की श्रेष्ठता में विद्वान् था। इस प्रमाण के रूप में वह करते थे कि बर्मास में पश्चिम सम्प्रदाय की पश्चिम प्रभावों के विरुद्ध प्रतिनिधियों के रूप में मानव का उदय हुआ। वे लिखते हैं—“मानव स्वभाव के एक ही ही तत्व विद्वान् है, जब हम अपने के शत्रु के शिर के अन्त निरने लगे हैं तो वह हमें अपनी चेतावनी मरी बुझार में लहता एक देता है—‘यस तुम नहीं एक जानीये, इसमें अपने नहीं बसाये।’ मानव स्वभाव अपनी गरिमा का राज जिस प्रतिष्ठा के बीच है उसकी रक्षा करने में वह सदैव सज्ज होता है। मानव स्वभाव बहुत ही सज्जता है, अपवित्र और दुषित हो सकता है, किन्तु उसकी देवी प्रतिष्ठा सभी मन्द छन्द नहीं बीज सकती, सभी मिटावी नहीं जा सकती।”²⁹ जब कोई व्यक्ति कष्ट और नीतिरक्षा के मिटानों का अन्तिमपक्ष करने लगता है तो उसने स्वभाव की अन्तर्गत नित्य प्रवृत्ति और उदात्तता उसके मा में बाधा बनकर नहीं हो जाती है।

पुरे इत्यादि की भारत के प्राचीन चौरव तथा विज्ञान, कला, साहित्य और उन्नत के साथ में जहाँकी मानदार उपलब्धियों के प्रति महान् अनुपम था।³⁰ वे भारतीय, व्यास, बुद्ध, शार, पश्चिम और पश्चिम के महान् धर्मशास्त्र पर सब विचार करते थे।³¹ उनकी कहा करते थे कि भारत की अन्तर्मुख और पूर्व की पश्चिम भूमि है। देश के तरफ के नैतिक पुनरुद्धार का सबसे बड़ा कारण यह है कि भारतीय समाज में निहित श्रेष्ठ आदर्शवाद की हानिकारक विद्या आय। भारत का इतिहास हमें आत्म-विकास के लक्ष्योत्तर आदर्श का उपदेश देता है। उसने प्रकट होता है कि निष्ठा, उन्नतता और उत्पीड़न पर सदैव ईश्वरीय उत्साह की विजय होती जाती है। पुरे इत्यादि लिखते हैं—“हमें चाहिए कि अपने पुनर्जा के चरणों में बैठें और प्राचीन भारत के अन्तिमपक्ष का सत्य करें। इन दिनों जब सरकार में दमनक चल रहा है, राजनीतिक जीवन निष्ठा और पवित्रता ही नहीं है और जबकि अन्तिम इत्यादि विचारधारा और अन्तर्गत विचारों में रहा है, इस प्रकार का अन्तर्गत अन्तर्मुख ही बहुत आश्चर्यमय होगा। इसमें कोई नहीं कि प्राचीन भारत के इतिहास में मानवी बहुत पुनर्जा, वर्तमान की दृष्टि में निरपेक्ष तथा उपहासपूर्ण प्रतीत होगा और कम पर भारतीय होंगे अन्तर्मुखी, किन्तु इस प्रकार की अनुभूति में आधुनिक अन्तिमपक्ष नहीं होगा चाहिए। अपने पुनर्जा की उपलब्धियों को अन्तर्मुख समझने का प्रयत्न कीजिए। दूसरे पक्षों में कि आप अपने उन पुनर्जा की जाँची और इतिहास का अन्तर्मुख पर रहे हैं जिसकी खातिर आज आपकी याद किया जाता है और जिसने अन्तर्मुखी के अन्तर्मुख विद्वान की आपने कल्याण के अन्तर्मुख तथा अन्तिम पक्ष रखते हैं। यदि आप अपने पुनर्जा की ही अन्तिम उन्नतता प्राप्त नहीं कर सकते तो कम से कम उनकी नैतिक श्रेष्ठता का ही अनुकरण कर ही सकते हैं। नैतिक महानता का भाव में तो इतना समझ है और न

27 1895 में पुनर्जा कायम में पुरे इत्यादि उनकी का अन्तर्मुखी पालन।

28 एनडीए में एक सभा में दिया गया पुरे इत्यादि उनकी का व्याख्यान। देखिये *Speeches by Baba Saheb Nath Senaryal* (1886-1890), राज कोषाचार निहार द्वारा सम्पादित (एन के मिश्रा, बनारस, 1890), पृ 162-63।

29 पुरे इत्यादि उनकी का 15 जुलाई 1876 की वक्तव्य में लिखीं इन की एक वक्तव्य में ‘अन्तर्मुख पर दिया गया व्याख्यान। देखिये *Speeches*, पृ 54।

30 *Speeches* (1876-84), भाग 1 पृ 24।

31 एनडीए 2, पृ 90।

ज्ञाना कितलवा। देश के नैतिक पुनरुत्थान पर ही उसका धार्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक पुनरुद्धार निर्भर है।³² उनका कहना था कि उदासीनता, निष्पक्षता और असहयोगी बर बिना प्राप्त करना आवश्यक है। अतः देश के गौरव तथा श्रेष्ठता पर अदापूर्वक दृष्टि सथाकर और प्रतीक तथा प्रबुद्ध मस्तिष्क पर अपनी आधारों केन्द्रित करके सचिव जीवन पिछाना और देशभक्ति के कदमों का पालन करना—वही देश के सुखों का पवित्र साधन है। भारत की महानता का निर्माण केवल नैतिक उत्थान की नींव पर ही किया जा सकता है। इस प्रकार सुरेन्द्रनाथ न नागरिक तथा राम नीतिक कल्पना को नैतिक जीवन की आवश्यकता माना। वे कहा करते थे कि यदि भारत की उन्नति है और अन्य जातियों ने भी अपना उचित स्थान प्राप्त करना है तो आवश्यक है कि हम साठ-पिठा के आजाकारी करें, और अपने के आत्म-रक्षण सत्यता, प्रज्ञाधर्म, स्वभाव की सौम्यता, मोरता आदि गुणों का विकास करें, इन्हीं गुणों का सम्मिश्रण तथा महाभारत में विनम्र किया गया है और व ही आधुनिक भारतवासियों के जीवन में साक्षात्कृत मिले मने थे तथा कि मुआन प्याग और एरिखन के साक्ष्य से प्रमाणित होता है। सुरेन्द्रनाथ नैतिक ऐश्वर्य, शत्रु की भी पवित्रता, देवहूती का हा छसाह, श्रेष्ठ तथा शीरतापूर्ण सहनशक्ति और सम्पीर करणशुक्त तथा असीम प्रेम आदि उन गुणों का अदापूर्वक उत्प्रेरक किया करते थे जो भारतवासियों के महान आध्यात्मिक पुण्य युद्ध के चरित्र में साक्षात्कृत हुए थे, और साथ ही साथ उन्होंने अनेक गुणों में सदैव इस बात का अनुरोध किया कि यदि भारतवासी राजनीतिक उदासीनता, सदाप और अथ पतन से मुक्ति पाना चाहते हैं तो उन्हें इन गुणों का अनुकरण करना चाहिए। इस प्रकार विवेकानन्द, ना भी शीर अरविन्द की नाति सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने भी इस बात पर बल दिया कि नैतिक पुनर्जागरण ही हमारी राजनीतिक मुक्ति का एकमात्र मार्ग है।

सुरेन्द्रनाथ ने स्वीकार किया कि अन्धधर्मिता का नैतिक आदर्शवाद राजनीति को पवित्र करता है तथा उन्नत बनाता है। वे मानते थे कि जनता की आवाज ईश्वर की आवाज है, इसलिए सामान देशवासियों के प्रेम और शक्ति पर आधारित होना चाहिए, और यह सभी सम्भव है जब राजनीतिक उत्तरदायित्व न जनता की सामा हो। विश्वास से विश्वास और शरीरता उत्पन्न होता है। इसलिए यदि ब्रिटिश शासक भारतीयवासियों का अधिपत्य करते हैं तो हमसे उनकी कार्यता प्रकट होती है। सामान्यी लक्ष्य भी है किन्तु ऐसा न ही कि वह विह्वल होकर घातित जनता की राजनीतिक मायालामा के प्रति सचेतदुक्त घातता का रूप धारण करते। बनर्जी ने लिखा है "यस समय का नैतिक ईमानदारी पर आधारित राजनीति ही एक ऐसी चीज है जिसकी इस देश की सबसे अधिक आवश्यकता है। अन्य नैतिक उद्देश्य के पूरा राजनीति शक्ति के लिए पुच्छ झीना भवती का रूप धारण कर लेती है जिसमें मनुष्य जाति को कोई आनन्द नहीं आ सकता। स्वराज (होम रूल) आन्दोलन का उदाहरण इसके सामने है। उसमें से जो मोहकन के व्यक्तित्व को, उनकी पदवी नैतिक ईमानदारी को और आदर्शवाद के देश भक्तों के सम्पीर उदाहृ को नुकस कर दीजिए तो वह केवल शक्ति के लिए अपनीच सचय रह जाता है जिसमें मान्यता के अधिक सम्पीर दिलों को दुला दिया गया है। दूसरा उदाहरण अमरीकन की महानता के सस्थापक पितामहि फादर का है उन्होंने इस जीवन की त्याग दिया जिसमें उनके अ त करण के विपक्षता का प्रतिदान होता था, और उन्होंने अनेका विदेश न रहवा पक्षद किया। वे उत्पत्ति करके राजनीतिज्ञ बन गये और उन्होंने विश्व इतिहास की श्रेष्ठतम सरकार तथा सर्वाधिक स्वतंत्र जाति की स्थापना की।"³³ फिरोज तथा बक की नाति सुरेन्द्रनाथ ने भी इस बात पर बल दिया कि राजनीतिक शक्ति का आधार नैतिक होना चाहिए। वे नैतिकताप्रेमी की इस धारणा के आलोचक थे कि राज्य की उन्नति होती है और यह आचरण का सर्वाधिक स्वीकृत मानदण्ड प्रस्तुत करती है। 1895 की पूना कांग्रेस में अपने

32. फिरोजशाह बनर्जी का 24 जून, 1876 की वक्तव्य न बन न स एसीविदेस का की काविन बरन में *The Study of Indian History* पर दिया गया भाषण, *Speeches*, पृष्ठ 46।

33. *Ram Mohan Roy Centenary Commemoration Volume* भाग 2 (2 वास्तविकता लीड बरताता 1935) पृष्ठ 196। यह वक्तव्य सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने उस भाषण में किया था कि जो उन्होंने वक्तव्य न राजनीतिज्ञ राम बनर्जीन कीटि में 27 सितम्बर, 1888 को दिया था।

अध्यक्षीय माध्यम में उद्घोषित कहा। "मे नैतिक विचार की अग्रतम स्थान देना चाहता हूँ। जो बात नैतिक दृष्टि से उचित नहीं ठहरायेगी या सम्झती वह राजनीतिक दृष्टि से भी लाजप्रद नहीं हो सकती। नैतिकता से शून्य राजनीति को किसी भी अर्थ में राजनीति नहीं कहा जा सकता, वह वास्तविक प्रकार का सम्बन्ध है। यह एक क्षण के लिए भी नहीं मान लेना चाहिए कि इन अवसरमय वाक्यों में (जहाँ बितराल पर किये गये आक्रमण से अभिप्राय है) जिनके साथ ऐसा व्यवहार किया गया है और जिन्हें शास्त्र तथा तदर्थक बनाये रखने के लिए दिया गया बचन केवल भ्रम करने के लिए दिया गया था, संवेदना का इतना अभाव है कि वे यह भी मानती कि नैतिक उत्तरदायित्व का स्वयं सम्बन्धकारी होता है। वे अपने साथ किये गये अनुचित व्यवहार और अपमान को अनुभव करेंगे, वे अन्धकार के सम्यक् में लौट विचार करेंगी तथा मुझसे रहूँगी और, जैसा कि कार्लोस ने कहा है, अपना 'अन्तर्द्वि' स्वास्त्र के साथ बदला देने से' नहीं नहीं चूकता।"³⁴

भारतीय मित्रवादिपक्ष के राजनीति दमक पर एक मुख्य तत्व यह था कि वे राजनीतिक दृष्टि के नैतिक आधार में विश्वास करते थे। वे कम प्रयोग तथा हिंसा के विरोध थे। उन्होंने जन प्रेम की भावना को कदापि छोड़े के एक संपूर्णतः प्रजासत्ता मानते थे। उनका कहना था कि जन प्रेम से जो बाध उत्पन्न तथा बढ़ते होते हैं उन्हें हरने में अनेक दमक लग जाते हैं। इसलिए उन्होंने भीतिक दल पर आधारित शासन के स्थान पर नैतिक शक्तियों के साम्राज्य का सम्मेलन किया। वे स्वीडिशन के इस कथन से सहमत थे कि "जनता में विश्वास ही उत्तरदायक है, हाँ, वह विश्वास न विश्व का मुक्त अवश्य होना चाहिए।" इसलिए वे निरंतर इसी बात पर बल दिया करते थे कि शास्त्र मरणात् स्वतन्त्रता, 'पाप तथा दवाभुता के आदर्शों से अनुप्राणित होनी चाहिए। गुरु-इत्यादि सभी रोम के इतिहास का उल्लेख किया करते थे। रोम एक अपेक्षाकृत स्वामी साम्राज्य का निर्माण करने में इसलिये सफल हो सका था कि उसने साम्राज्यिक विधि, विवरणमय तथा शासन के आदर्शों पर चलने का प्रयत्न किया था। कभी-कभी कथन था "जो सरकार स्थापित चाहती है उसे जनता के मन से प्राप्त होने वाली सुरक्षा से वंचित नहीं रहना चाहिए, और इस प्रकार की सुरक्षा सभी व्यवस्थाओं को सख्ती है जब जनता के वे अधिकार तथा विवेकाधिकार समान रहते ही स्वीकार कर लिये जायें कि ईश्वर ने स्वयं अपने हाथों से सत्ता है और इसलिए जिन्हें कोई मानवीय शक्ति पावे वह बितनी ही उच्च तथा सम्मानित पदों में हो, चीन नहीं सकती। मकहूमिका के महात्मा विद्या (सिकन्दर) ने अपने विशाल साम्राज्य के गर्वित आशे को जब सीरी की कृतज्ञता की नींव पर स्थापित करने का प्रयत्न किया था जिसकी सेनाओं को उसका परास्त कर दिया था और जिनके प्रेमी को उसने छोड़ दिया था। जिस समय ईरानी साम्राज्य सिकन्दर के चरणों में मोड़ रहा था और जिस समय दारिद्र्य अपने चरम तथा देश की छोड़कर धरणी की भाँति मारा मारा फिर रहा था उस समय उसने (सिकन्दर ने) उन मनुष्यों के सामने समर्पण नहीं किया जो महात्मा विद्या के उन अवसर पर स्वाभाविक थी, उसने उसने अपने भवे प्रजापति की सम्भावना तथा देश की शान्ति का प्रयत्न किया। इसी प्रकार रामन लोग कभी-कभी जातिओं की सम्भावना तथा विश्वास की बद्ध करते थे, और इसे प्राप्त करने के लिए उन्होंने हर सम्भव उपाय किया। विद्या इतिहास के अनादिमाने विद्वानों की सर्वेसह अनुविद्यता नीति रही है कि 'सांख्यिक विद्वानों तथा वास्तु आकर्मियों से उत्पन्न रहता है कि अनेक दीवार बनायी जाय, और इनके लिए उन्होंने विभिन्न जनता से अपने प्रति उत्साहपूर्ण उत्तमता तथा प्रेम बाध प्राप्त करना ही सर्वोत्तम उपाय समझा है। भारत के अन्तर्गत शासन में भी इस प्रकार की सम्भीर भावना धीरे-धीरे उत्पन्न हो रही है।"³⁵ किसी कामना है कि वह भावना दिन प्रति दिन बढ़ती होती जाय और वह भारत सरकार की नीति पर सत्तापति प्रभाव डालने से जिससे विदेश पूर्व में अपना प्रेम की सुरक्षा कर लें और भारत अविद्या, अनाथ तथा अधविद्या के अन्तर्गत के मुक्त होकर और नवजीवन प्राप्त करेंगे एक बार पुनः विद्या के

34. *Speeches and Writings*, p. 44.

35. गुरु-इत्यादि के बहुमताचार की नीति में अपने अध्यधीन माध्यम में अपनी नीति तथा उपनिषद् की दर्शित भावना की कि उद्दिष्ट भारतीय माध्यम प्रकाशन में सम्माननीय तरीकों को अपनाते पर बल दिया था।

राष्ट्रो के बीच अपना सम्बन्ध अर्थात् बर सने।³⁶ बनर्जी का कहना था कि लोकमत की उपेक्षा शासक तथा शासितो के सम्बन्ध सम्बन्ध के लिए पात्रक होती है। लोकमत सरकार से भी अधिक उच्च प्राथमिकता है। वह सरकार का ऐसा स्वामी है जिसका प्रतिरोध नहीं किया जा सकता। वह एक ऐसी शक्ति है जो भौतिक शक्तियों के अतिरिक्त सरकार से अधिक उच्च, श्रेष्ठ तथा शुद्ध है। बिना या इतिहास इस बात का साक्ष्य है कि अहिंसात्मकता लोकमत से अधिक उच्च, श्रेष्ठ तथा शुद्ध है। बिना या इतिहास इस बात का साक्ष्य है कि अहिंसात्मकता लोकमत से अधिक उच्च, श्रेष्ठ तथा शुद्ध है। बिना या इतिहास इस बात का साक्ष्य है कि अहिंसात्मकता लोकमत से अधिक उच्च, श्रेष्ठ तथा शुद्ध है।

अपने राजनीतिक जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में राजादे तथा फीरोज़शाह बेहता की भाँति गुरेङनाथ बनर्जी का भी विश्वास था कि ब्रिटेन के साथ भारत का सम्बन्ध एक ईश्वरीय विधान का पत्र है। उन्होंने घोषणा की कि मैं "ब्रिटिश साम्राज्य की ईश्वरीय" मानता हूँ, "इतिहास के वैभव का एक विधान" सम्मत्ता हूँ।³⁷ के 1858 की चरित्र को भारत की विजय की प्रशंसा, और अपने राजनीतिक चरित्र का आदेश मानते थे। उन्होंने कहा था कि भारत में इंग्लैंड का जो ध्येय है वह तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—“(1) उन युवाओं का उद्धार करना जिनसे भारत की सम्मान प्राप्त है। (2) भारतवासियों में ऐसे चरित्र का निर्माण करना जिनसे ज्ञान वृद्धि, यश तथा आत्मनिर्भरता के युवा का विकास हो सके। (3) भारत में स्वशासन की कला का गुरु पान करना।”³⁸ बनर्जी का कहना था कि ब्रिटिश साम्राज्य के परिणाम के प्रतिक्रियात्मक राजनीतिक भावों और भारत के प्राचीन आदर्शवाद के बीच सम्बन्ध स्थापित कर दिया है। उन्होंने 1895 में युवा बर्ग के अवसर पर अपने सम्बन्धी भाषण में कहा—“हमें महसूस करने की आवश्यकता है कि भारत के विकास के लिए सत्य नाम बरते रहने की प्रेरणा देता है। इसके अतिरिक्त यह है कि सत्यत्व में स्वयं मुक्त होने वाला है। हमारे तथा हमारी मान्यता के साथ में स्वयंमुक्त का विधान है। हमें प्रतीत होता है कि यदि हमारे साथ में इस प्रकार की स्वतन्त्रता का अवलोकन करना नहीं है तो कि ब्रिटिश साम्राज्य की सम्बन्ध उपलब्ध है तो वह हमारे परभाव करने वाले उन लोगों की सम्बन्ध ही विरासत में उपलब्ध होने की हवा का नाम लेने तथा कार्य करेंगे। इसी विचारों की वजह हम नाम कर रहे हैं। विचारों ही वह बरतते हैं जिससे परभाव आन्दोलन का मत तथा इच्छा मिलती है। इसका अन्तिम यह भी है कि हमें ब्रिटिश साम्राज्य के प्रतिक्रियात्मक स्वभाव में विचारों है। हम अपनी मान्यता तथा मान्यता की मान्यता के लिए जो श्रेष्ठतम विरासत छोड़ सकते हैं वह परिणामित अधिकारी की विरासत ही हो सकती है, ऐसे अधिकारों की विरासत को मुक्त हुई जनता के उत्साह तथा शक्ति द्वारा रक्षित हो। हम एक दूसरे में विरासत तथा ब्रिटिश साम्राज्य में अधिक शक्ति के साथ इस प्रकार कार्य करना चाहिए जिससे हम अपना श्रेष्ठ 'मूलतम समय' में प्राप्त कर लें। सभी शक्ति का ध्येय प्राप्त होगा। यह ध्येय भारत के ब्रिटिश साम्राज्य का उद्धार करने का ध्येय नहीं होगा। उसको प्राप्त करने का सर्वोत्तम उपाय यह है कि ब्रिटिश साम्राज्य के आधार की अधिक विस्तृत विचार जाय, उसकी मान्यता को उदार तथा स्वभाव की उदात्त बनाया जाय और जो राष्ट्र के प्रेम की अग्रिमतात्मकता लोक पर आधारित किया जाय।”³⁹ हमारा लक्ष्य ब्रिटेन के सम्बन्ध विवेचित करना नहीं है। हमारा उद्देश्य है कि जिस ब्रिटिश साम्राज्य ने सच उत्तर के समक्ष स्पष्ट प्रभावों के आदर्श प्रस्तुत किये हैं उनके साथ हमारा एकीकरण हो, हम उनके अन्तिम अंग के सहित उत्तरे

36 *Speeches* पृष्ठ 100-01।

37 *Speeches of Surendranath Banerjee (1886-90)*, पृष्ठ 19।

38 *Speeches (1876-84)* Part 2, पृष्ठ 49।

39 'उत्तमता बनर्जी का कथन' में 28 अक्टूबर, 1877 का कलकत्ता स्थानीय एंग्लो-इण्डियन के 'Eng-land and India' विषय पर दिया गया भाषण—इसके *Speeches*, पृष्ठ 68।

40 आदर्शवाद शक्ति में अपने अन्तर्गत भाषण में गुरेङनाथ बनर्जी ने कहा था कि भारत का राष्ट्रीय जीवन का एक ईश्वरीय ध्येय है कि वह "हमारे देश के पूर्णत्व के लिए उत्तम भारत के ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना के लिए कार्य करे।

शास्य स्थायी रूप से सम्बद्ध हो। किन्तु स्थायित्व का अर्थ है मेल मिश्रण, एकीकरण तथा सनातन अधिकार। किन्तु ब्रिटेन तथा भारत ने सम्प्रदाय को किसी भी प्रकार के सैनिक विरुद्धवाद के आधार पर स्थायी नहीं बनाया जा सकता। स्थायित्व तथा संतिव विरुद्धवाद के बीच कोई मेल नहीं हो सकती। सैनिक विरुद्धवाद को अस्वास्थ्य सन्ध्या की प्राप्ति या अस्वास्थ्य शासन हुआ करता है। इसलिए से हमारी अपील है कि वह भारत में अपने शासन के स्वरूप को धीरे धीरे परिवर्तित करे, उसकी उदार बनाने, उसकी नींव को बदले और उसे देश तथा जनता में जिस नव शासन का विकास हुआ है उसके अनुपम बनाये जिससे समय पूरा होने पर भारत स्वतन्त्र राज्यों के समूह परिषद में अपना योग्य स्थान प्राप्त कर सके। ये सब अन्ततः राज्य सिद्धि से उत्पन्न हुए हैं, उनका स्वरूप ब्रिटिश होना और उनकी संस्थाएँ ब्रिटिश बन गयीं। ये राज्य इसलिए कल्प स्थायी तथा अविशेष एकता के अर्थ में संघर्ष प्रसन्न होय और वे मातृदेश इसलिए क लिए सौख्य तथा मानव जाति के लिए सम्मान का कारण सिद्ध होये। सभी इसलिए दूध में अन्न महान अर्थ को पूरा कर सके।⁴¹ यन्हीं वहाँ करते थे कि सम्प्रदाय का प्रसार पूरा से परिचय को आरंभ हुआ है। परिचय को अपना अर्थ धुकाता है। वह अर्थ केवल सैनिक प्रभाव का प्रसार करके नहीं चुकाया जा सकता, उसकी चुनने के लिए भारतीय जनता की राजनीतिक मताधिकार प्रदान करना आवश्यक है। इसलिए के राष्ट्रीय चरित्र की विशेषताएँ हैं—“साधुनिक शासन, यन्हीं रता में विहित संस्था, तथा उदारतापूर्ण अर्थ में प्रतिष्ठित शासन।” इसलिए के राजनीति दृष्टि तथा सर्वोपयोगि इतिहास में राजनीतिक सत्य तथा स्वतन्त्रता के आदर्श निहित हैं। वह साधुनिक है कि इसलिए की स्वतन्त्र संस्थाओं की अर्थ मान्यता की भारत की भूमि में भी प्रतिस्थापित किया जाना। किन्तु यन्हीं ब्रिटन के साथ भारत के सम्बन्धों के अर्थ में होते हुए भी शासन करने वाला नीकरवादी के कुचक्रों का महाप्रयोग करने से कभी नहीं बूके। उन्होंने मात्र काल द्वारा प्रतिनिधित्व नहीं साधुनिकवाद के आदर्श की निर्भीकतापूर्वक नकारा की। उन्होंने अर्थ अर्थ का दृष्टा और आदर्शपूर्ण विरोध किया, इसलिए वे कि “सर्वोपर नाति” यन्हीं (समय न करने वाले यन्हीं) कहनाये। किन्तु यन्हीं वह समझ लेने की कर्पात्त बुद्धिमत्ता थी कि भारत में ब्रिटिश शासन की नीति का विरोध करने तथा ब्रिटिश सम्प्रदाय तथा संस्कृति की राजनीतिक विरासत को स्वीकार करने के बीच कोई असमति नहीं है।

सुरेन्द्रनाथ भारतीय एकता तथा एकता के उन्नाही साधुनिकवाद के।⁴² उनका विचार था कि राष्ट्रीय एकता ही अन्ततः आजाद तथा सत्य के अर्थ तक पहुँचने का एकमात्र साधन है। भारतीयताओं को ईश्वर के समक्ष इस बात की क्षमता मिली है और यन्हीं देना है कि वे अपनी सत्य विनिश्चिताओं और भेदों की भुलाकर एक सामान्य सत्य पर एकत्र होकर और मिलकर कार्य करें। 1911 में सुरेन्द्रनाथ ने एक हिन्दू मुसलमान सम्मेलन में भाग लिया। उस सम्मेलन में मात्र बौद्ध, वैदिक, हज्जत इमाम, रहीमखुल्ला तथा बिना भी उपस्थित थे, और उनका उद्देश्य था कि भारत के दो बड़े सम्प्रदायों—हिन्दुओं तथा मुसलमानों—के बीच एकता स्थापित की जान। सुरेन्द्र नाथ ने अपने राजनीतिक जीवन के आरम्भ में ही राष्ट्रीय एकता को सार्वजनिक मूल्यपूर्ण मानता था। उन्होंने कहा “मेरी एकमात्र चारणा और एक विचार है कि हर राष्ट्र की प्रगति के इतिहास में एक ऐसा समय आता है जब अन्तर्गत हर नागरिक के सम्म अ वे कहा जा सकता है कि उसका सत्यपूर्ण अन्तर्गत निमित्त अर्थ है जिसकी उसे पूरा करना है। भारत के लिए ऐसा समय आ गया है। ईश्वर ने आदेश जारी कर दिया है कि हर भारतीय को अपना कर्तव्य पूरा करना चाहिए, अथवा वह ईश्वर की दृष्टि में दण्ड का भागी सिद्ध होगा। इसलिए के गौरवपूर्ण इतिहास में इसी प्रकार के उत्तमता वाली का एक समय आया था जब ईश्वर न अपना देश की भुक्ति के लिए अपना जीवन दाँव पर लगा दिया था, जब अन्तर्गत सिद्धि के देश की भुक्ति अन्तर्गामी से मुक्त कराने

41 *Speeches and Writings of Surendranath Banerjee*, selected by himself (वी ए नेशनल एजुकेशनल सोसायटी) पृष्ठ 97-99।

42 “An Appeal to the Mohammedan Community,” *Speeches* (1896-97), पृष्ठ 82-91।

के लिए अपना शिर अस्त्राद की पटिया पर रख दिया था, जब विद्युत की प्रतिक्रिया के प्रति अपना कठमय धारण करने के लिए अपने ईश्वरी कर्तव्यों की ओरकर आपराधिक 'वाकालन' में राजशाहिया के रूप में प्रस्तुत होने में नहीं हिचकते थे। हमारे लिए सचमुच यह आवश्यक नहीं है कि अपनी विचारधारा को दूर करने के लिए हिंसा का माय बनना। जो धर्मिक और सुविचारों का देश को अधिक बढोर उपायो द्वारा उपलब्ध हो पाती है वे हम सर्वसाधारण तरीकों से ही प्राप्त हो सकती हैं। किन्तु हमारे तरीके धार्मिक हो, फिर भी दूर भारतवासी को बढोर कठमय का धारण करना पड़ेगा। और जो उस कठमय की अवलोकना करता है वह ईश्वर तथा मनुष्य की गिराह में देशीहीन उद्धारवा लागता।⁴³ बनर्जी कहा करते थे कि भारत की एकता, जिसे प्राप्त करना एक लालच और अपरिहार्य आवश्यकता है, केवल बौद्धिक आधार पर स्थापित नहीं की जा सकती, उसके लिए उच्च संवेगात्मक नीति की आवश्यकता है। भारत को भी मरीवाली और मरीवाली जैसे बलि-यानी देशमानी की जरूरत है। प्राचीन भारत में मानक देश में भारतीय एकता का उपदेश दिया था। अब इस समय देश की प्रगति के लिए आवश्यक है कि हम सब मिलकर एक स्वर से उस देशता का पुनर्जागृ करें जो हमारे देश के भाव्य का अधिपत्य है। एकता ही देश के पुनरुद्धार का राजमार्ग है। गुरुदत्तनाथ महाकवि दाते की प्रस्ताव किया करते थे जिसने इस्ती के एकीकरण के काम में काम दिया था, और इसी प्रकार वे उन जमान अवस्थाओं का उल्लेख करते थे जिन्होंने जमान की एकता के काम की आगे बढ़ाया था।⁴⁴

दादाभाई नोरोजी, राजादे तथा मुरेन्द्रनाथ और गोपाल कृष्ण गोखले भारत की बढ़ती हुई दरिद्रता के सम्बन्ध में चूकत सचेत थे। वे भारतीयता समझते थे कि इससे राष्ट्रीय जीवन का जीत पूरा रहा था। पुना कांग्रेस में मुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने भारत के नीतिक अर्थपन्न की रोकने के लिए पांच सूची कार्यक्रम की रूपरेखा प्रस्तुत की (1) पुराने उद्योगों का पुनरुद्धार और नये उद्योगों की स्थापना, (2) भूमि कर निर्धारण में समय से काम लिया जाय और कर एक तन्वी अवधि के लिए निर्दिष्ट कर दिया जाय जिससे किसानों की आगे दिन के आर्थिक उत्प्रेषण से मुक्ति मिल सके, (3) जन शक्ति में छूट दी जाय जिससे गरीब जनता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, (4) उपभुक्त राजनीति निम्नो के द्वारा देश के धन का 'नियम' तथा वृद्धिशील वृद्ध की जाय, और (5) राष्ट्रीय विदेशी शासन रूप के स्थापन पर भारलभाजिया की उत्तरीयता अधिकाधिक निपुणता की जाय।

राजनीति की जड़ें आर्थिक व्यवस्था में होती हैं, इस बात पर मित्रवादिमो ने सदा बल दिया था। भारत की विनाशकारी मरीवाली का उसकी सामाजिक राजनीतिक दशा पर जो भयंकर प्रभाव पड़ रहा था, उसे दादाभाई, राजादे और मुरेन्द्रनाथ भारतीयता समझते थे। मुरेन्द्रनाथ का अनुरोध था कि भारतीय उद्योगों का संरक्षण किया जाय और उन्हें जनत करने का प्रयत्न किया जाय। उन्होंने कहा था "जिसी जाति की आर्थिक दशा का उसकी राजनीतिक प्रगति पर बहुत प्रभाव पड़ता है।"⁴⁵ उन्होंने जॉन माइल के इस मत का उल्लेख किया कि किसी देश की शासन-व्यवस्था तथा उसकी जनता की सामाजिक दशा के पीछे उस देश की वित्तीय स्थिति प्रमुख तत्व का काम किया करती है। यही कारण था कि उन्होंने स्वदेशी आन्दोलन का समर्थन किया। उनमें विचार में वह केवल राजनीतिक और आर्थिक आन्दोलन नहीं था, अपितु राष्ट्र की शक्तियों का उन्मुख करने का एक नीतिक तथा सामाजिक काम था। उन्होंने कहा "स्वदेशी आन्दोलन दुनिया, महाभारती तथा पश्चिमा से होने वाली अर्थ विपदाओं से हमारी रक्षा करेगा। यदि आज आप स्वदेशी का बल से मेरा है तो समझते कि आपकी औद्योगिक और राजनीतिक शक्ति की गहरी मोर पोटी नीच लपार हो गयी है। जीवन के सभी क्षेत्रों में स्वदेशी चलिए। अपने विचारों, कार्यों तथा भावों और आवश्यकताओं में भी स्वदेशी का बल लीजिए। पश्चिमा तथा आत्म-व्यथितान से पुराने जीवन का पुन-निर्माण कीजिए।" उस प्राचीन युग के आदर्शों की पुन स्थापना कीजिए जब भविष्य ईश्वर का

43 मुरेन्द्रनाथ बनर्जी का वक्तव्य के गुरुदत्तनाथ कृष्णदत्तनाथ की उद्धरण में भाग 16, 1878 की "Indian Unnity" विषय पर दिया गया भाषण—देखिए *Speeches and Writings*, पृ. 228-29।

44 *Speeches (1876-84)* विभाग 2, पृ. 50।

45 पुन कांग्रेस में दिया गया भारतीयता भाषण (1895)।

गुप्तानुवाद और मनुष्य का कल्याण करते थे। समस्त एशिया नवजीवन से स्पर्धित हो रहा है। प्राचीन से सूर्य उदित हो चुका है। जापान उद्योगमान युग का अभिवादन कर चुका है।⁴⁶ अब यह लुप्त मज्जाप्ला के तेल के साथ भारत के गहनमण्डल से मुजरेगा। स्वदेशी का अभिप्राय यह नहीं है कि हम विदेशी आदर्शों अथवा विदेशी विद्या, कला और उद्योगों का बहुष्कार करें। उक्तता तत्पर है कि हम उन सब चीजों को अपनी राष्ट्रीय व्यवस्था में आत्मसात् करें, उन्हें राष्ट्रीय स्वरूप दें, और राष्ट्रीय जीवन में प्रतिष्ठित करें। यह है मेरी स्वदेशी की धारणा।⁴⁷ बनर्जी का कहना था कि स्वदेशी की राष्ट्र के बहुमुखी कामकाज का नेत्र बनना है। यह एक ऐसा उद्यम है जिसने जनता का तत्काल भारी सहयोग मिल सकता है। इसके मूल में सच्चे देशप्रेम की उन्नति है, और पूजा किसी के लिए नहीं है। सुरेन्द्रनाथ की चर्चा में आस्था थी। अपनी पुस्तक 'ए नव इन मेथिन'⁴⁸ में उन्होंने बतलाया कि सबसे अधिक आवश्यकता शक्ति अवित्त करने की है। वे हिंसात्मक आचरणों की निन्दा किया करते थे। उनकी दृष्टि थी कि विद्यार्थीयम मन विरोधी होने में भाग ले, किन्तु वे धर्म और हिंसा के प्रयोग की कमी अनुमति देने के लिए तैयार नहीं थे। वे हिंसात्मक प्रवृत्तियों की नहीं उम्माड़ना चाहते थे, उन्होंने सर्वत्र समान और नियमन से मान लेने की सलाह दी। उन्हें विकास की प्रक्रिया में विश्वास था। वे अराजकवादी दम के प्रवर्तकों के पक्ष में नहीं थे।

सुरेन्द्रनाथ का मन तथा हृदय भारत के श्रेष्ठ तथा गौरवमय भविष्य की कल्पना से प्रभावित थे। उन्हें प्राचीन भारत के ऋषियों, दार्शनिकों तथा कुलधारमक विचारों की महान उत्तमियों पर विश्वास था। उनका विश्वास था कि भारत के स्वतन्त्र होने पर ही इस मूल्यवान विरासत की मान्यता की मुक्ति के लिए विश्व के समक्ष खड़ा जा सकता है। वे कहा करते थे कि यह काम बहुत बारी है और इसे पूरा करने के लिए हठ तथा अहिंसक व्यवस्थाओं और दीर्घकालिक प्रयत्नों की आवश्यकता है। सभी देश का पुनर्र्धार तथा वर्तमान सम्भव हो सकता है। बनर्जी ने बारम्बार इस बात पर बल दिया कि राजनीतिक अधिकार राष्ट्र की नीतिगत प्रवृत्ति में सहामक होना हैं,⁴⁹ और नतीजा अधिकार है अर्थात् राजनीतिक मुक्ति नहीं प्राप्त कर सकती। राजनीतिक सत्ताधिनार मनुष्य का जन्मनिष्ठ अधिकार हो है ही, साथ ही यह मनुष्य की श्रेष्ठ प्रवृत्ति के प्रति श्रद्धा का प्रतीक भी है। सुरेन्द्रनाथ लिखते हैं "राजनीतिक होनता के नीतिगत अर्थ पतन होता है। सभी का दो कभी नतानि, कुछ समय का दालीरिज और महापुरुषों की जन्म नहीं है कल्पना था। हम स्वयंसेवक बन लिए चाहते हैं कि हम अपनी राजनीतिक होनता का बलक को सकें, विश्व के राष्ट्रों के बीच अपना महत्त्व ज्ञात कर सकें और कुप्राप्त ईश्वर में जो महान होतन्वता हमारे लिए निश्चित कर रही है उसको पूरा कर सकें। हम बलक अपनी स्वायत्तिका के लिए स्वराज नहीं चाहते, बलिक सत्य मान्यता के परमाणु के लिए उसकी प्रति कर रहे हैं। सृष्टि की प्रगति केला में जाहूनी और कालिनी के तट पर अहिंसक आचरण न जित न जो का मान्य किया है शिशु मान्यता का ईश्वर आदर्श की ओर अग्रसर होने में अग्रम प्रयास के सूचक है। हम मान्य आति के आध्यात्मिक गुण थे। हमारे अतीत इतिहास में धुमने प्रयासाल के आरम्भ होता है। उन दिना जब विश्व व्यवस्था के अन्तर्गत में दूपा हुआ था, हम मनुष्य आति के सब प्रयत्न तथा गिरक थे। क्या हमारा ध्येय पूरा हो चुका है? नहीं, उसे विफल कर दिया क्या है, वह पूरा नहीं हुआ है। उसे पूरा करना है। उस पूरा किया जाना चाहिए ताकि हम सुरेण का पार नीतिगतवाद के उद्धार कर सकें और उस उस मुक्ति सत्तुति से क्या सबे बिलक इस समय उस महादीप के रणक्षेत्रों की मुक्तता के अन्तर्गत में पाठ रखा है। हमारा यह विविधित्व ध्येय है कि 'ए' बार हम पुन विश्व के आध्यात्मिक सब प्रयास करें। किन्तु हम उस ध्येय की उक्त तक पूरा नहीं कर सकते जब तक कि हम स्वयं मुक्त न हो जाय, तब

46 'मोन्टगुमरी बलर्जी' ने 1902 में 'महानगरा' बलिम में अपने आध्यात्मिक भाषण में कहा था कि भारत का भविष्य 'ए' नव है।

47 सुरेन्द्रनाथ बनर्जी का 'फिक्चर' 1906 में 'Swadesham' विचार पर दिया गया मान्य। देखिए *Speeches and Writings*, पृ. 289-300।

48 'महानगरा' बनर्जी का 1902 की 'महानगरा' बलिम में दिया गया आध्यात्मिक भाषण।

स्वतन्त्रता न प्राप्त कर लें। उस महान ध्येय को पूरा करने के लिए स्वतन्त्रता अपरिहार्य साधन समझा है।⁴⁹ इसीलिए बनर्जी कहते हैं कि स्वराज का आन्दोलन केवल राजनीतिक नहीं है, बल्कि यह एक धार्मिक तथा नैतिक ध्येय है। स्वराज मनुष्य की क्षमताओं के विकास और परिष्कार की संयोजक पाठशाळा है।⁵⁰ स्वराज ईश्वरी इच्छा है। साम्राज्यवाद स्वैच्छाकारी शासन को नष्ट देता है। किन्तु स्वैच्छाकारी निरभ्रपात्र किसी राष्ट्र के जीवन में केवल अस्थायी और हो सकती है। स्वराज राष्ट्रीय पुनर्निर्माण का आवश्यक आधार है। "प्रत्येक राष्ट्र को अपने भाग्य का निर्धारण होना चाहिए—यही मनुष्यसिद्धांत का आदेश है जिसे प्रकृति ने स्वयं अपने हाथ से और स्वयं अपनी साक्षर पुस्तक में अंकित किया है।"⁵¹ 1916 में सुरेन्द्रनाथ ने उस "उद्देश के स्फुटित्व" पर हस्ताक्षर किये थे जिसे भारतीय विप्लव सभा के 19 सदस्यों ने तैयार किया था और जिसने इसी सरकार की नींव की कमी की जो भारतीय जनता की स्वीकार हो और उसके प्रति उत्तरदायी हो। सुरेन्द्रनाथ ने विप्लव को मार्क्सवादी सोशलिज्म के पाठ्य पुस्तिकाओं से बनाने के सम्मेलन में भारत के ध्येय (विप्लव) का जिस धोखेपूर्ण ढंग से उल्लेख किया उसके विवेचन में का तथा 'पन्देबातरम्' और 'कर्मयोगिन्' के विनों के अर्थविद् का स्मरण हो आता है। उन्होंने जिन उल्लाह और उग्रता के साथ प्राचीन भारतवासियों की उत्तमगुणों का यथोक्त किया वह हमें दशान्वित और विदेशानन्द का स्मरण दिलाता है। यह स्पष्टि हमें साक्षात् ईश्वरीय और फीरोजशाह मेहता के सेवा और स्वाध्याय के नहीं मिलती। भारतीय नित्याची नताशा में केवल रानादे महाकथा प्राचीन भारत के गौरव का उत्तरदायी किया करते थे।

3 निष्कर्ष

यह सुरेन्द्रनाथ राजनीतिक नता के रूप में सक्रिय थे उस समय राष्ट्रीय आन्दोलन धीरे-धीरे बन रहा था। उस दौर में उन्होंने निरंतर स्वतन्त्रता और प्रगति का समर्थन किया।⁵² किन्तु धीरे-धीरे उनके विचारों में परिवर्तन आने लगा। अपने पूना कांग्रेस के अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने राजाज और फीरोज मेहता की नीति इस विचार का अनुयायी होने की घोषणा की कि भारत में ब्रिटिश साम्राज्य इतिहास की ईश्वरीय रचना का एक तत्व है। किन्तु फीरोजशाह ने 1910 के वनपाठ कांग्रेस के नाम से अपना सम्मेलन खोड दिया, इसके विपरीत सुरेन्द्रनाथ प्रथम उल्लाह तथा बलि के साथ राष्ट्र की सेवा करते रहे, और ऐतिहासिक सत्यनन्द कांग्रेस में उन्होंने स्वराज विप्लव प्रस्ताव स्वयं प्रस्तुत किया। उनके जीवन के प्रारम्भिक काल में वह नया विरोधी आन्दोलन के विना में, विशेषकर बारीकास समीक्षण में विदेशी शासक ने उन्हें दबाने तथा अवमानित करने का भी प्रयत्न किया। किन्तु वे झुकने के लिए तैयार नहीं हुए। बनर्जी सर्वेसर्वकारिक प्रणाली के समर्थक रहे। साम्यवादी सिद्धांतों के सम्म में उन्होंने सर्व सम्पीरता, समर्थ और स्वयंनिष्ठा पर बल दिया। 1918 में बनर्जी की विशेष कांग्रेस के समय से वे देश की कलती हुई राजनीतिक वातावरण के साथ सहानुभूति न दिखा सके। अपने स्वभाव तथा शिक्षा दृष्टि से वे समिधानवादी थे, न कि अतिवादी। किन्तु उन्होंने राजा, जनकार, लेखक और सांस्कृतिक नेता के रूप में देश की जो सेवा की उसके कारण वे आधुनिक बंगाल तथा आधुनिक भारतीय राष्ट्र के निर्माताओं में सर्वप्रथम स्थान देने के अधिकारी हैं। राजनीतिक विचारक के रूप में उन्होंने भारत के लिए स्वराज तथा सर्वकारिक प्रणाली का समर्थन किया। उनका सर्वेसर्वकारि रहा कि राजनीति में उच्च नैतिक सिद्धांतों का ही अनुसरण करना चाहिए, इस दृष्टि में उनकी तुलना सिनेरो, वन और ग्लाइसन के की जा सकती है, और इस तुलना में वे इनमें से किसी से कम नहीं रहते।

49 *Speeches and Writings of Surendranath Banerjee* (1916 की संस्करण कांग्रेस में स्वराज के आन्दोलन की प्रस्तुत करने समय दिया गया भाषण) पृष्ठ 140-41।

50 *Speeches* (1876-84), वि. 2, पृष्ठ 89।

51 1886 का वनपाठ कांग्रेस में किया गया सुरेन्द्रनाथ बनर्जी का 'वाक्य'।

52 नवमान प्रणाली के द्वितीय चरण में विविध प्रकार के सिद्धांतों का बल में लिया जा कि केवल सुरेन्द्रनाथ ही ऐसे "बलि" हैं जो नैतिक आन्दोलन को होने का उचित रास्ता बता सकते हैं। (*Jadun Nath Lal*, पृष्ठ 77)। उनका यह भी सिद्धांत था कि दक्षिण एशियाई समाज का इतिहासिक विकास के ब्रिटिश इतिहास एशियाई समाज की सामाजिक तथा जीवन प्रतीतिशी एशियाई समाज तथा समाज की महान्वयता का प्रमाण में अधिक राष्ट्रीय है। पृष्ठ, पृष्ठ 94।

10

गोपाल कृष्ण गोखले

1 प्रस्तावना

गोपाल कृष्ण गोखले (1866-1915) भारत के सर्वाधिक सम्मानित राजनीतिज्ञ न थे। कोल्हापुर में 1866 की 9 मई को उनका जन्म हुआ था, और वृत्ता में 1915 की 19 फरवरी को उन्होंने शरीर त्याग दिया। उन्होंने 1884 में एलफिंस्टन कॉलेज में स्नातक की उपाधि प्राप्त की थी। 1886 में वे केमन एन्क्वेशन सोसाइटी के सदस्य बने। उन्होंने वृत्ता के फर्ग्युसन कॉलेज में इतिहास तथा अध्यात्म के अध्यापन पद पर नियुक्त किया गया। उन्होंने अनेक वर्षों तक साप्ताहिक तथा की पत्रिका का सम्पादन किया। चार वर्ष तक वे 'सुधारक' के सम्पादन रहे। 1904 में वह की आई ई की उपाधि से विभूषित किया गया। उन्होंने 1897, 1905, 1906, 1908, 1912, 1913 और 1914 में कुछ मिशनरों साथ बार इंग्लैण्ड की यात्रा की। उनके मान्यक व्यक्तित्व के कारण ब्रिटेन के नेताओं पर उनका बड़ा प्रभाव पड़ा। उनकी देशप्रेमिता निराला निर्भीक थी। अपनी आत्मा की व्यथिता, गम्भीर सद्व्यवस्था तथा मातृभूमि की सेवा की दृष्टि साधना के कारण वे भारत में तथा विदेशों में अनेक लोगो की प्रशंसा के पात्र बन गये थे। वे इतिहास तथा अध्यात्म के पंडित थे। उन्होंने एक की प्रसिद्ध पुस्तक 'विश्लेषण' का नाम र 'विश्लेषण' की यही उत्कृष्टता के साथ हृदयगत किया था। 1902 में वे भारतीय लेक्चरिंग कॉलेज में सदस्य नियुक्त हुए और जीवन के अन्तिम समय तक उस पद पर बने रहे। उनके बन्धु सम्बन्धी भाषण तथा की अधिनाशपूर्ण व्याख्या तथा व्यापारभूत निर्देशक शिक्षाओं की दृष्टि से उत्कृष्टतापूर्ण हैं। वे भारतीय अध्यात्म के गुरु पंडित थे। अपने अध्ययन में उन्होंने गुरु विश्लेषण तथा व्यापक समन्वय की प्रतिष्ठा जुटा दी।

गोखले राजनीति में पण्डित थे। 1887 से 1901 तक उन्होंने वृत्ता को गुरु मानकर उन निर्देशन में अध्ययन तथा कार्य किया। गोखले पर श्रीराजराज ने कहा था की भारी प्रभाव था। वे कहा करते थे "श्रीराजराज ने बिना उचित काम करने की अपेक्षा में उनके साथ मिशनर अनुचित कार्य करना भी पसन्द नहीं किया।" 1897 में वे केसी आर्यो के समक्ष साक्ष्य देने के लिए दण्डित गये। केसी आर्यो का मुख्य प्रश्न पर विचार करने के लिए नियुक्त किया गया था (1) क्या भारत पर कोई ऐसा विदेशी भार है जिसे 'मान की दृष्टि से दण्डित की पहल करना चाहिए' और (2) भारतीय विज्ञ की समीक्षा। 1908 में गोखले ने इतिहासक विनेटोविलेन आर्यो के समक्ष साक्ष्य दिया।

1905 में गोखले इस प्रतिनिधि मण्डल के सदस्य हुए और इंग्लैण्ड में जो ब्रिटिश राजनीतिज्ञों को यह समझाने-बुझाने के लिए गया था कि जब तक सम्बन्धी अधिविज्ञान न बनाया जाय। किन्तु उनकी अनुपस्थिति तथा हृदयग्राही व्यवस्था का भी ब्रिटिश नराम्रा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। गोपाल 1889 की बर्लिन में सम्मिलित हुए। वे इस राष्ट्रीय सम्मेलन में एक अग्रणी नेता थे। वे 1905 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सम्मेलन में। 1907 की शुरुआत की पृष्ठ में अपने हृदय की भारी व्यापक दर्शाया।

दुर्भाग्य की बात यह थी कि वे 1916 में सम्पादित कांग्रेस की एकता को देखने के लिए नीतिगत न रहे। फिर भी वे निष्ठावादियों तथा अतिवादियों के बीच समझौता कराने के बड़े इच्छुक थे।

1907 में अपने बजट भाषण में गोखले ने अनुरोध किया कि देश में नि:शुल्क प्राथमिक शिक्षा प्रारम्भ की जाय। 1911 में उन्होंने भारतीय लेजिस्लेटिव कौंसिल में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के लिए एक विधेयक प्रस्तुत किया, विपक्षी ब्रिटिश सरकार के कवरदस्ता विरोध के कारण विधेयक पारित न हो सका, और 1912 में यह पारित हो गया। विधेयक का उद्देश्य था कि यदि कोई नगरपालिका चाहे तो सरकार की दूध अनुमति से अपने अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था कर सके। 1912 में सितम्बर में इम्प्लिमेंटेशन की अध्यक्षता में भारतीय नौकरी सेवा (इम्प्लियमेंट सिविल सर्विस) के सम्बन्ध में एक छाह्री आयोग (राजल कमीशन) नियुक्त किया गया। भारतीय लोक सेवाओं की विविध समस्याओं तथा वायव्यवासी के सम्बन्ध में जांच करना और रिपोर्ट देना उस आयोग का मुख्य काम था। गोपाल कृष्ण गोखले उस आयोग के सदस्य में और, जैसा कि उनका स्वभाव था, उसके सदस्य के रूप में उन्होंने बड़े परिश्रम तथा निष्ठा के साथ काम किया। गोखले की धृष्टि के छह मास उपरांत इम्प्लिमेंटेशन आयोग ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी।

गोखले की गांधीजी अपना राजनीतिज्ञ मुह¹ मानते थे, और गोखले के मन में गांधीजी के लिए बहुत स्नेह तथा सम्मान था। 1910 तथा 1912 में गोखले ने इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल में भारत के करावब्द भारतीय धर्मियों की सहभागिता के लिए प्रस्ताव रखे। 1912 में वे गांधीजी के निमन्त्रण पर दक्षिण अफ्रीका गये और वहाँ भारतीयों के मामलों का निपटारा कराने में महत्वपूर्ण योग दिया। 1913 में उन्होंने दक्षिणी अफ्रीका के सत्याग्रह आन्दोलन के सहायतापत्र चलाए हुए किया। गोखले ने शक्ति से अधिक परिश्रम किया जिसके परिणामस्वरूप 1915 की फरवरी में 49 वर्ष की अवधिपश्च अवस्था में उनका घरीराज हो गया। उनकी मृत्यु के उपरांत उनका मुकुट श्रीनिवास शास्त्री ने सिर पर रखा गया।

2 गोखले के राजनीतिक विचार

गोखले ने राजनीति के आपदग्रस्त मान की एक दम्भीर पेशी के रूप में अपनाया। वे रचनात्मक राजनीतिज्ञ के नाम के लिए आदर्शिक मान थे। उन्होंने अपने सत्य-अविदान तथा त्याग के जीवन के द्वारा सिद्ध कर दिया कि राष्ट्रमेवा उच्च भाव्य के लिए आदर्शिकी का ही एक प्रकार है। गोखले तथा रामजी गोदी की दृष्टि में मुख्य काम यह था कि समुच्च की नैतिक, बौद्धिक तथा घरीरिय गोमलताओं और प्रतिभा का विकास तथा परिवर्धन करने उसे मुक्ति प्रदान की जाय। इस विचार आशय की साक्षात्कृत करने के लिए वह आवश्यक था कि अपने को जनता का श्रेयक मानने वाले लोग अपनी शक्तियाँ की समुचित रूप में तथा समर्थन की भावना से इस काम में जुटा दें। गोखले का कहना था कि वह सभी सम्भव हो सकता है जब सामाजिक उत्तम तथा राजनीतिक काम की पवित्र राष्ट्रीय सेवा का मान सम्मान जाय। कष्ट सहन तथा हार्दिक सत्ता-भाव और जीवन की सरलता से विना "सम्प्राप्य एक जीवित शक्ति नहीं बन सकता।" जहाँ तक राजनीतिक राजनीति का सम्बन्ध था, गोखले मिलवादी थे और सर्वपक्षिक आन्दोलन में विनम्र करते थे। यहि प्रकार की उच्च कामप्रवादी उन्हें पसन्द नहीं थी। वह की चाँति गोखले सामाजिकी की नीति, यीमे विचार और बुद्धिमत्त प्रगति में विश्वास करते थे। वे अतिवादी उपपा तथा सामाजिक समाद के माटकीय विस्फोट के विरुद्ध थे।

गोखले की ब्रिटिश उपारवाद में बहरी शारपा थी। उन्हें अंग्रेज जाति की शाररायता में विश्वास था। दादाभाई की भाँति वे सर्वैव भाषा किया करते थे कि उपारवाद में एक नव उग की राजनीतिपाय का उदय होगा और भारत के साथ साथ किया जायगा। अपन 1902 के बजट

1. कुछ लोगों का कहना है कि गोखले ने गांधीजी को भारतीय राजनीति में निष्ठावान प्रगरीय का प्रयोग करने के विरुद्ध चेतावनी दी थी—की लिपिल *India Old and New*, पृष्ठ 297। उन्होंने 1915 में गांधीजी से यह भी कहा था कि एक वर्ष तक भारतीय राजनीति के चरनाचर की देखी और राजनीतिक सावधानता में सावधान लो।

भाषण में उन्होंने कहा "आयशासिका इस बात की है कि हमें अनुमन करने दिया जाए कि हमारी सरकार विदेशी हाथ हुए भी भावना से राष्ट्रीय है, वह भारतीय जनता के बन्धन की संयोजित तथा अन्य सब बातों की उसकी मुक्तता के विम्वरणादि का मानती है, वह विदेशों में भारतवासियों के साथ विषये में अपमानजनक व्यवहार से उसकी मुक्त होती है जिसकी कि अनेकों के साथ विषय वृत्त्यवहार से, और वह वृत्त्यवहार से हर उपाय से भारतीय जनता के भारत में तथा भारत के बाहर नैतिक तथा भौतिक बन्धन का परिचयन करने का प्रयत्न करती है। जो राजनीति भारतीय जनता के हृदय में इस प्रकार की भावनाएँ उत्पन्न कर सकेगा वह इस देश की महान तथा औरवपुत्र सेवा करगा और भारतीय जनता के हृदय में अवन लिए स्थायी स्थान प्राप्त कर लेगा। यही नहीं, उसके काम का महान इसमें भी अधिक होगा। वह आभासवाद की सही भावना की दृष्टि से अपने देश की भी महान सेवा करेगा। थोड़ा प्रकार का साम्राज्यवाद यह है जो साम्राज्य में सम्मिलित सभी व्यक्तिता और जातिता की अपनी विद्यामयी तथा सम्मान जाति का समान रूप से उपमान करने देता है। यह साम्राज्यवाद सही है जो यह मानता है कि सम्पूर्ण विश्व एक जाति के लिए ही बनाया गया है और अनेक जातिता उस एक जाति की धरमनीयताओं के रूप में सेवा करने के लिए बनायी गयी हैं।¹ योशने को विस्मय था कि अनेक शासकों ने उच्च प्रकार की कल्याण का उदय होया जिससे वे शिक्षित भारतवासियों के मन में व्याप्त भावनाओं को उपरक सवेंगे और उनकी बद्ध कर सवेंगे। वे कहा करते थे कि इस मनीयताविधि विधि से काम करत ही ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न की जा सकती हैं कि अनेक तथा भारतवासी लोग अपने हितों की एकत्रण समझने लगे। योशने ने हेरु के गमों में योशने स्वराज के महान मादेशवादक थे। भारत जाति की नीकरताही है जिस कुलित और किम्बदायी और हृदय की फुलता के साथ जनता की इच्छा की अवेक्षण करके शासन का विनाशन कर दिया था उसने लिए योशने ने उसकी कृत्तमता की। उन्होंने नीकरताही की कठोरता तथा उपरीजन की मोति का विरोध किया। नीकरताही से उनका आग्रह था कि उसे अधिकाधिक "सुधीयता" के साथ कार्य करने की सतृप्त नहीं होना चाहिए, बलित उसे इस रूप से शासन करना चाहिए जिससे भारतवासी दक्षिण के उच्चतरमादों के अनुसार अपने देश का शासन करने के योग्य बन सकें। जितना शासन के अक्षमता ही की निरंतर वसती हुई दक्षिणता का वक्षर योशने बहुत दुःखी होते थे। भारत का प्रशासन विदेशियों के हाथ में होने के कारण अधिकाधिक लचीला था, योशने ने इसकी भी कृत्तमता की।

यद्यपि योशने ब्रिटेन की अधीनतर जाति की सर्वोच्चता की स्वीकार करते थे और मानते थे कि ब्रिटेन के शासन से देश को अनेक लाभ हुए हैं, फिर भी उनका मन तथा दृष्टि भारत के औरवपुत्र अधिव्य के बालचिन इसी से प्रदीपा थे। अपने 1903 के वृत्त भाषण में उन्होंने कहा "ब्रिटेन की अनुमन से अधिव्य का भारत ऐसा नहीं होया जिसमें जनता की समृद्धि निरंतर वसती जाए, जनता की आशाएँ युमित हों और लोग में अधीनतरवपुत्र अक्षमता का भाव हो, बलित अधिव्य के भारत में उपयोग का विनाश हुआ, लोग की दक्षिणता कायल होगी, समृद्धि बढ़ेगी, और मन तथा मुक्त युक्ति के साथना का अधिव्य व्यापक रूप से वितरण होगा। मुझे अनेक दशकतियों की अक्षमता तथा मनुह्य म विदवात है, और मैं समझता हूँ इन विषय में उनकी दक्षिणता तथा मन क्षीय है। विपु इस प्रकार का अधिव्य केवल अधीनतर जाति की अनुमन छत्रछाया में ही लक्ष्यारुण दिया जा सकता है, उसका छोकर अन्य किसी स्थिति में नहीं, और न जितना ताज के अक्षिणता अन्य किसी विषयवादी क्षता के अक्षमता उसका (अधिव्य का) ही दिया जा सकता है।" योशने की शक्तता थी कि दक्षिण भारत व म मनुह्य की

2 योशने ने जातिगत जातिगत और कृत्तमता का म कहा था—*Speeches and Writings*, पृष्ठ 66।

3 भारत का अधीनतर अधिव्य अधिव्य अधिव्य में 26 के *Speeches of Mr G. K. Gokhale* (भा २ म 3 45), अधिव्य पृष्ठ 36 37।

4 यही, पृष्ठ 88।

वृद्धि हो, और इसलिए वे पारस्परिक सम्बन्धों की भावना की वृद्धि की बड़ी कद करत थे । वे ऐसी व्यापक योजना के निर्माण में सहृदयता देने के दृष्टिकोण से विशाल देश की नज़र तथा नीतिगत समझ की पुन स्थापना की जा सके । उनका कहना था कि इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम यह होगा कि 1833 के अधिकार अधिनियम तथा 1858 की घोषणा⁵ में समाप्त व्यवहार का आ बचन दिया गया था उसका परिपालन किया जाय । यदि उस प्रतिज्ञा का उल्लंघन किया गया तो भारत की राजनैतिक का एक आधार विस्तृत हो जायगा । बिस्म के शब्दों के बीच सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त करना ही भारत ही होलाक्यता है, और इसलिय के लिए भारत की बात यही होनी कि वह इस सत्य की प्राप्ति में उसकी सहृदयता रहे । मोरले ने कहा कि यदि भारतवासियों को उत्तरदायित्व के पदा में दक्षिण रखा गया तो इससे उनके व्यक्तित्व का विकास होगा और उनका नैतिक स्तर गिरगा । इसीलिए मोरले का आग्रह था कि भारतवासियों को शासन में अधिकाधिक सामा दिया जाय । उन्होंने बीकरसाही के शब्दों में शक्ति को केन्द्रित करने की नीति की आलोचना की । उन्हें ब्रिटिश राजनीतिशा की सम्भावनाओं में इसका अधिक हार्दिक विरोध था कि जब दादाभाई नौरोजी की भी आस्था बिच गयी तब भी वे ब्रिटिश राजनीतिशा का बरोसा करते रहे । यही कारण था कि उन्होंने 1909 के इण्डियन कीं कल एक्ट का हदय में सम्मन किया ।

मोक्ष ने सत्वासीन समस्याओं के सम्बन्ध में जो मान अपनाया उसने मूल में दो मुख्य भाग-
 बार्ण्य भी। राजा के प्रति उसका भी विश्वास था कि भारत में ब्रिटिश साम्राज्य ईश्वरीय विधान
 की योजना का ही एक अंग है और उसका उद्देश्य भारत की जारी साम पहुँचाना है। दूसरे, वे ब्रिटिश
 परिधान और त्याग के द्वारा राष्ट्रवाद की एक नींव स्थापित करना चाहते थे। वे राष्ट्रीय एकता की
 विनोद महत्त्व देते थे। इसलिए वह हमें स्वीकार किया कि राष्ट्रीय विद्रोह के लिए भारतीय जनता
 की सामाजिक क्षमता में वृद्धि करना और उसके नैतिक चरित्र का उत्थान करना परमावश्यक है।
 उन्होंने कहा: "जिस समय मैं हम सत्ता में उसका वास्तविक नैतिक महत्त्व वर्तमान सत्ताओं का उस
 विशिष्ट पुनर्जागरण अथवा पुनर्जागरण में नहीं है जिसे प्राप्त करने में हम सफल हो सके, उसका अन्तही
 महत्त्व हम क्षति में है जो हमें अपने जीवन के समाप्ति अंग के रूप में उपलब्ध हो सकेगी। जनता का
 सम्पूर्ण जीवन उससे नहीं अधिक व्यापक और गम्भीर है जिसे कुछ राजनीतिक सम्पूर्ण सम्पत्ति कर
 पाता है। यदि हमारे उपाय जैसे होने चाहिए वैसे ही तो अन्तर्जागरण भी जनता के इस जीवन की
 समझ बनाने में सहायक हो सकती है।" मोक्ष ने अपने वैयक्तिक पर आधारित राष्ट्रीय एकीकरण
 का नाम की समाप्ति रूप देना चाहते थे। इस उद्देश्य से उन्होंने 1905 की 12 जनवरी सम्बोधन
 इण्डिया सोसायटी की स्थापना की। सोसायटी के स्थापक का जीवन बम्बई, पश्चिम तथा दुर्गो
 का जीवन था। सोसायटी के सविधान से इस जीवन का गम्भीर और स्पष्ट आदर्शवाद प्रकट होता
 है। वे एकीकरण, क्षतिग्रस्त तथा अभिनिरीक्षित भारत के आदर्श की बात रूप देना चाहते थे, और
 उसका विश्वास था कि ऐसा भारत त्याग, धर्म और अन्तर्जागरण के आधार पर ही निमित्त बिना
 हो सकता है। सोसायटी के सविधान की प्रस्तावना में लिखा हुआ है "सम्बोधन आदि इण्डिया आना
 की स्थापना परिस्थिति की इन आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर कृति करने के लिए की गयी
 है। इसने सदस्य कि समाज स्वीकार करते हैं कि ब्रिटेन के साथ भारत का सम्बन्ध अनेक ईश्वरीय
 विधान का परिणाम है और भारत के सम्मान के लिए है। ब्रिटेन के उपनिवेश के रूप का सम्मान
 उनका लक्ष्य है। वे मानते हैं कि यह लक्ष्य सभी के निष्ठा तथा धर्म से प्राप्त होना चाहिए और अन्तः
 रूपरूप के बिना प्राप्त नहीं किया जा सकता। जनता की अनिच्छा यह है कि सभी समाज
 में एकता की आगे और सम्मान में सभी प्रति अंग के साथ जुट जाय जिसका मूल धार्मिक भाव
 नियत है। राजनीतिक जीवन का आध्यात्मिक रूप देना आवश्यक है। आवश्यकता है अन्तः
 में पुनर्जागरण अपने अर्थ की ओर अग्रसर होता है। उनमें ऐसी जनता सम्पत्ति होगी चाहिए कि
 सामाजिक व निज बलिदान के पर आधार हो उसे रूप का अनुभव हो। उनका हृदय इसका निर्भीक

⁵ *Speeches and Writings*, para. 546.

हो कि कठिनाई अथवा संकट उसे अपने लक्ष्य से विमुख और विचलित न कर सके, और दूसरे के उद्देश्य में उसकी ऐसी गहरी आस्था हो कि संसार की कोई शक्ति उसे डिगा न सके। और जब मैं उसे अन्तःपूर्वक उस आन्द की चाह होनी चाहिए जो अपने की मातृभूमि की सेवा में बलि देने में उपलब्ध होता है। सर्वोत्तम जब इच्छिया सोचाइती ऐसे लोगों को प्रशिक्षित करेगी जो पालिक मानस से देश के काम में समर्पण होने के लिए तैयार होंगे, और सर्वव्यापक तरीकों से भारतीय जनता के राष्ट्रीय हितों का परिचयन करने का प्रयत्न करेगी। इसके सदस्य मुख्यतः इन बातों की प्रति लिए परिश्रम और प्रयत्न करेंगे (1) उपदेश तथा उदाहरण के द्वारा देशवासियों में मातृभूमि के प्रति गम्भीर तथा उत्कट प्रेम उत्पन्न करना जिससे वे सेवा और त्याग के द्वारा अपने जीवन की सफल बनाने की कामना करें, (2) राजनीतिक शिक्षा तथा राजनीतिक आन्दोलन के काम की समीक्षा करना और देश के सामाजिक जीवन की वश प्रदान करना, (3) विभिन्न सम्प्रदायों के बीच प्रेम पूर्ण संवादना तथा सहयोग के सम्बन्ध बढ़ाना, (4) वैश्विक आन्दोलनों, विशेषकर एबी विद्रोह, निम्नो हुए वर्गों की शिक्षा तथा औद्योगिक और वैज्ञानिक शिक्षा के आन्दोलनों की सहायता देना और (5) दमित जातियों का उद्धार।⁷

गोखले ने स्वदेशी आन्दोलन का समयन किया। उसके लिए स्वदेशी का अर्थ या देश के लिए उच्चकोटि का गम्भीर तथा व्यापक प्रेम। उन्होंने 1905 में बाराचसी कांग्रेस में कहा "स्वदेशी का आन्दोलन आर्थिक होने के साथ ही साथ देशभक्ति का भी आन्दोलन है। जिन अल्पजनों आसों में मनुष्य जाति के हृदय की कड़ी भी स्पर्शित किया है उनमें स्वदेशी का महत्वपूर्ण स्थान है। मातृभूमि के प्रति मूर्ति उत्पन्न स्वदेशी के आदेश का सार है। उसका प्रभाव इतना गम्भीर और उत्कट होता है कि उसकी कल्पना में ही हृदय पुलकित होने लगता है और उसके वास्तविक स्पर्श में मनुष्य अपने मनुष्य स्मृतिस्त्रय में उत्तर उठकर अनौपमिक आनन्द के लोक में विचरन करने लगता है। स्वदेशी आन्दोलन की जिस अर्थ में हम समझते हैं उसका एक पक्ष ऐसा है जिसकी सामान्य जनता भी हृदय काम कर सकती है। वह उसे देश के सम्बन्ध में सोचने की प्रेरणा देता है, उसे देश के लिए सेवा में कुछ त्याग करने के विचार का आसो बसाता है, उसमें देश के आर्थिक विकास के प्रति जीव उत्कट करता, और उसे राष्ट्रीय हित के लिए परस्पर सहयोग करने का पाठ पढ़ाता है। किन्तु आन्दोलन का मौलिक पक्ष आर्थिक है। मैं यह स्वीकार करता हूँ कि बड़े पैमाने पर आत्म-त्याग की प्रतिष्ठा (विदेशी वस्तुओं के त्याग की प्रतिष्ठा—अनु) कर लेने से हमारा एक महत्वपूर्ण उद्देश्य निश्चय ही प्राप्य, क्योंकि देश में उत्पादित वस्तुओं की खपत उत्पन्न हो सकेगी, और जब उनकी खपत दुर्लभ हो अधिक होगी तो उनके उत्पादन की उद्यम-समस्या प्रोत्साहन मिलता रहेगा। किन्तु आर्थिक क्षेत्र में कठिनाईयां इतनी अधिक हैं कि उन पर विचार करने के लिए सभी उपलब्ध साधनों के सहयोग की आवश्यकता है।" इस प्रकार हम देखते हैं कि गोखले की स्वदेशी की पारम्परिक बहुत व्यापक थी। जानते की मूर्ति उनका भी विचार था कि देश में मुख्य समस्या उत्पादन की थी और उसके लिए पूँजी तथा साहसिकता की आवश्यकता थी। भारत में इन चीजों की कमी थी इसलिए जो कोई इन चीजों में योग देता वह सचमुच स्वदेशी के लिए काम कर रहा था। जहाँ तक पूँजी वर्गों का सम्बन्ध था मुक्त व्यापार का बड़े से बड़ा समर्थन भी देश में उनके उत्पादन को प्रोत्साहन देने पर आधारित नहीं कर सकता था, क्योंकि श्रमी वर्ग के उत्पादन के लिए भारत में सही धन और बख्श का माहुर्य था। किन्तु स्वदेशी के समर्थन होते हुए भी गोखले ने महिषानर ने उस अर्थ के प्रयोग की अनुमति नहीं दी।⁸

बाराचसी कांग्रेस में गोखले ने भी यहाँ प्रस्तुत की और उन्हें साक्षात्कार करने के लिए दुरज

7 अर्धवे सोचने का "Elevation of Depressed Class" सीरीज भाषण, *Speeches and Writings* पृष्ठ 740-47।

8 सोचन की शुरु के काम की ए सीनियरस आसों ने सर्वोत्तम जब इच्छिया सीताइती का कार्य सीनियरस बताया।

9 *Speeches and Writings*, पृष्ठ 795।

10 यही, पृष्ठ 819।

कृष्ण गोखले ने ब्रिटेन-डीकरण की आवश्यकता को स्वीकार किया। वे ऐसी व्यवस्था के पक्ष में थे जिससे लोकशाही पर उत्कृष्ट नियंत्रण लगाया जा सके।¹² उनका कहना था कि प्रांतीय विधेयों का तभी सफल हो सकता है जब प्रांतीय परिषदों के आकार में वृद्धि हो और उन्हें प्रांतीय स्तर पर विवाद करने का अधिकार दे दिया जाए। उन्होंने इस बात की आवश्यक सिफारिश की कि विभागीयों की प्रशासन के मामलों में सहाह देने के लिए विभागीय परिषदों का निर्माण किया जाए। हॉल्डहाउस ब्रिटेन-डीकरण आयोग के समक्ष साक्ष्य देते समय गोखले ने तीन बातों की विशेष रूप से आवश्यकता बतायी— (1) निम्नस्तर पर कार्य प्रभावित, (2) माध्यमिक स्तर पर विभागीय परिषदें, और (3) विश्व स्तर पर पुनर्गठित विभागीय परिषदें।

भारत में अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार से जो भयानक समस्याएँ उत्पन्न हुई थी उनके मोक्ष मार्गों की परिचित थे। अंग्रेजी शिक्षा के कारण बीच स्तर-जता तथा स्वतंत्र स्थापना के मध्य के सम्बन्ध में अधिक अंतर पैदा हो गये थे।¹³ सरकार नवी प्रतिस्पर्धियों का सामना करने के माध्यम से व्यवस्था नहीं, इस बात की आवश्यकता के लिए गोखले ने कुछ बसोडिया प्रस्तुत की। 1911 में उन्होंने कहा "सरकार प्रतियोगिता है व्यवस्था नहीं, और वह निरंतर प्रतियोगिता है व्यवस्था नहीं, इस बात की आवश्यकता के लिए मैं पार प्रसार की प्रतीक्षा का सुझाव देता हूँ। पड़ती परीक्षा यह है कि वह बहुलरूप में व्यवस्था की वैदिक और भौतिक उत्पत्ति के लिए क्या क्या उपाय करती है। इन उपायों में मैं उन साधनों को नहीं चिन्ता की ब्रिटिश सरकार ने भारत में अपनाये हैं, क्योंकि वे साधन जो उसके अस्तित्व के लिए ही आवश्यक थे, मगर उन्हें व्यवस्था की साम हूँ, इस कारण के लिए, वेदसाधनों का निर्माण तथा डाक टार व्यवस्था की स्थापना इत्यादि। व्यवस्था की वैदिक तथा भौतिक उत्पत्ति के साधनों से मेरा अभिप्राय यह है कि सरकार ने शिक्षा के लिए क्या किया है और मछाई कृषि की उत्पत्ति आदि के लिए क्या किया है। दूसरी परीक्षा यह है कि सरकार स्थानीय मामलों के प्रशासन अर्थात् नगरपालिकाओं और स्थानीय परिषदों में होने वाला सामा देने के लिए क्या क्या उपाय करती है। तैरी तीसरी परीक्षा यह होती कि सरकार हमें परिषदों अर्थात् उन विचारक मन्त्रियों में जहाँ नीति निर्धारित होती है, क्या स्थान देती है। और बात यह है वह देखना है कि सरकारी नीतियों में भारतीयताओं को क्या स्थान मिलता है।"¹⁴

अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में गोखले ने पीरोडियाहू मेहता तथा आभासा की सलाह से भारत की संवैधानिक प्रगति के लिए एक योजना तैयार की। उनकी योजना इस रूप की थी कि कुछ वर्ष के अन्दर देश में एक प्रसार का सच स्थापित किया जा सके। फिलहाल (1914-15 में) वे भारतीय शासन में सर्वोच्च स्तर पर वे सुसंयोजित को स्वीकार करने को तैयार थे। गोखले की योजना में मुसलमानों तथा अन्य अल्पसंख्यकों को पूर्ण तथा प्रत्यक्ष प्रतिनिधित्व देने की आवश्यकता को स्वीकार किया गया था। वे आभासा के इस सुझाव से सहमत नहीं थे कि प्रांतीय का राष्ट्रीय आधार पर पुनर्गठित किया जाए।¹⁵

3 गोखले के आर्थिक विचार

गोखले को भारत की औद्योगिक तथा कृषि सम्बन्धी समस्याओं के विषय में भारी चिन्ता थी। परिषदों ने मुद्रास्तर, पूँजीवादी व्यवस्था तथा एक अविभाजित देश की आवश्यकताओं तथा सामाजिक-आर्थिक सुधारों के बीच संबंधों से उत्पन्न आर्थिक समस्याओं को समझ सके ही मुद्रा हथि उनमें थी।¹⁶ उनका आग्रह था कि भारत सरकार ने आय तथा व्यय के बीच अधिक समुचित

12. पृष्ठ 724।

13. पृष्ठ 674।

14. एनो डेवोट ने 1917 की समस्तता विलेन में लिखे गये आत्म-निर्भरता पर टिप्पणी।

15. आभासा, *India in Transition*, पृष्ठ 44-45।

16. भारत में 9 मार्च, 1911 का इंग्लैंडियन मेजिस्ट्रियल कोडिफिकेशन में "चीनी वर आयात कर" पर एक प्रस्ताव दिया। उसमें उन्होंने इस बात का समर्थन किया कि भारत का यह है कि मुद्रा आधार की कोडिफिकेशन के साथ विश्व व्यवस्था का प्रभाव पड़े। उन्होंने कोडिफिकेशन का आर्थिक विज्ञान का अनुमान किया। उन्होंने कहा "मुद्रा व्यवस्थाओं की सिद्धि के साथ व्यवस्था पर व्यवस्था है कि जब भारत में कोई भी व्यवस्था को कोडिफिकेशन

हृष्य मोक्षले ने विकेंद्रीकरण की आवश्यकता को स्वीकार किया। वे ऐसी व्यवस्था के पक्ष में थे जिससे नौकरशाही पर तत्काल नियन्त्रण लगाया जा सके।¹² उनका कहना था कि प्रांतीय विपरीतकरण सभी सफल हो सकता है जब प्रांतीय परिषदों के अधिकार में वृद्धि हो और वह प्रांतीय स्तर पर विवाद करने का अधिकार दे दिया जाय। उन्होंने इस बात की आवश्यकता सिफारिश की कि जिम्मापक्षी को प्रशासन के मामलों में सलाह देने के लिए जिम्मा परिषदों का निर्माण किया जाय। हार्डिंग्सन विकेंद्रीकरण आयोग के समस्त सदस्य देखे समय मोक्षले ने तीन बातों का विशेष रूप से आवश्यकता बताया (1) निम्नस्तर पर राज्य प्रशासन, (2) माध्यमिक स्तर पर जिम्मा परिषदें, और (3) सिविल पर पुनर्गठित विधान परिषदें।

भारत में अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार से जो अमरक समझाई उठ सही हुई थी उनमें मोक्षले मजबूतता परिचित थे। अंग्रेजी शिक्षा के कारण लोग स्वतंत्रता तथा स्वातंत्र्य संस्थाओं के मूल के सम्बन्ध में अधिक जागरूक हो गये थे।¹³ सरकार सभी परिस्थितियों का सामना करने के पक्ष में अवस्था नहीं, इस बात की जांच करने के लिए मोक्षले ने कुछ बहोलिए प्रस्तुत की। 1911 में उन्होंने कहा "सरकार प्रगतिशील है अवस्था नहीं, और वह निरंतर प्रगतिशील है सचवा नहीं, इस बात की जांच करने के लिए मैं बार प्रचार की परीक्षा का सुझाव देता हूँ। पहली परीक्षा यह है कि यह बहुसंख्यक जनता की नैतिक और भौतिक उन्नति के लिए क्या-क्या उपाय करती है। इस उपायों में मैं उन साधनों को नहीं गिनता जो ब्रिटिश सरकार ने भारत में अपनाये हैं, क्योंकि वे सामान्य ही उन्नति के लिए ही आवश्यक थे, यद्यपि उनके जनता को लाभ हुआ है, उन द्वारा वे लिए, रचनाओं का निर्माण तथा काम-काज व्यवस्था की स्थापना इत्यादि। जनता की नैतिक तथा भौतिक उन्नति के साधनों के द्वारा अधिप्राय यह है कि सरकार ने शिक्षा के लिए क्या किया है और सलाहें दृष्टि की उन्नति आदि के लिए क्या किया है। दूसरी परीक्षा यह है कि सरकार स्थानीय मामलों के प्रशासन कर्षित नगरपालिकाओं और स्थानीय परिषदों में होने बड़ा काम देने के लिए क्या क्या उपाय करती है। तैरी तीसरी परीक्षा यह होगी कि सरकार हमें परिषदों सभी उच्च विचारक समानों में जहाँ नीति निर्धारित होती है, क्या स्थान देती है। और अंत में हम यह देखना है कि सरकारी अधिकारियों में जागरूकताओं की क्या स्थान मिलता है।"¹⁴

अपने जीवन के अंतिम वर्षों में मोक्षले ने कीरोजसाह मेहता तथा भागाला की सलाह से भारत की सर्वमानिक प्रगति के लिए एक योजना तैयार की। उनकी योजना इस रूप की थी कि कुछ वर्ष के अंदर देश में एक प्रकार का सभ स्थापित किया जा सके। विमलहास (1914-15 में) ने भारतीय शासन में स्वतंत्र जनरल के हस्तक्षेप की स्वीकार करने की तैयार थे। मोक्षले की योजना में मुक्तजनता तथा अन्य अवयवसम्पत्तों की पुनर्स्थापना तथा प्रत्यक्ष प्रतिनिधित्व देने की आवश्यकता का स्वीकार किया गया था। वे भागाला के इस सुझाव से सहमत नहीं थे कि प्रांतीय या जतीय आधार पर पुनर्गठन किया जाय।¹⁵

3 मोक्षले के आर्थिक विचार

मोक्षले की भारत की औद्योगिक तथा दृष्टि-सम्बन्धी समस्याओं के विषय में जारी चिन्ता थी। पहिलम में मुद्रापूर्व बुनीबादी संयोजन तथा एक अधिनियमित देश की आवश्यकताओं तथा सामाजिक-आर्थिक मूल्यों के बीच सम्बन्ध का उत्पन्न आर्थिक समस्याओं का समर्थन की पुनर्स्थापना थी।¹⁶ उनका आग्रह था कि भारत सरकार के अंतर्गत तथा व्यय के बीच अधिनियम

12 बही, पृष्ठ 724।

13 बही, पृष्ठ 674।

14 एम। डेवला 1917 की सम्बन्धता बीजक में दिए गये सम्बन्धीय आधार में उद्धृत।

15 भागाला *India in Transition* पृष्ठ 44-45।

16 मोक्षले ने 9 मार्च, 1911 को इंग्लैंडियन एजिनेसियल कॉन्फ्रेंस में बोली पर भाषाण कर, वह एक सभ्यता विचार। उसमें उन्होंने इस बात का समर्थन किया कि भारत का अर्थिक विकास प्रांतीय या क्षेत्रीय स्तर पर किया जाना चाहिए। उन्होंने कहा कि अर्थिक विकास के लिए आवश्यक है कि भारत में एक सभ्यता का स्थापना हो। उन्होंने कहा कि भारत में एक सभ्यता का स्थापना हो। उन्होंने कहा कि भारत में एक सभ्यता का स्थापना हो।

समझ (बैठ विधान) स्थापित किया जाय। वे इस पक्ष से थे कि आर्य का अधिक 'आयोचित' दण है वितरण किया जाय। वे चाहते थे कि सरकार भूमि सम्हाली करो वो कम करके कृषकों की दशा सुधारने का प्रयत्न कर। वे जनता की बदली हुई चीनता को देखकर बहुत दुःखी हुआ करते थे। इसलिए उन्होंने कृषक जनता को राहत पहुँचाने का समझ किया। जबका मुझसे था कि भारतीय वर्गीयों के माधनों का विनिवारण इस दण से किया जाय जिससे जनकी समझ में सुझि हो। वे सरकार की बिना नीति को ऐसी दिया देने के पक्ष से थे जिससे विभिन्न मध्य वन के लोगों की अपित रोजगार मिले और उत्पादन बढ़े। उन्होंने नमक कर घटाने का आग्रहपूर्वक समझन किया। अपने 1904 के बजट माधन में उन्होंने नमक कर में आठ आने की और कटौती करने की सिफारिश की। अपने 1907 के बजट माधन में उन्होंने नमक कर को पुनः समाप्त करने का प्रस्ताव रखा। 1903 और 1904 के बजट माधनों में उन्होंने सुखी साल पर उत्पादन शुल्क समाप्त करने का अनुरोध किया था। भारतीय रेलमार्गों पर होने वाले भारी व्यय का भी उन्होंने विरोध किया। उन्होंने आयरन के लिए बर घोष्य आर्य की सोचा बहाल का समझन किया। जब भारत में स्वयं मुद्रा का प्रचलन आरम्भ किया गया तो भारतीय मुद्रा का मिट्टिया मुद्रा (पीन्ड) में परिवर्तित करने के उद्देश्य से एक स्वयंमान कोष (गोल्ड स्टैंडर्ड फण्ड) स्थापित किया गया था। 1907 के बजट माधन में गोपले ने इस कोष के संचय का विरोध किया।¹⁷ गोपले इस पक्ष से थे कि भारत के मजदूर लक्ष्यों को सरक्षण देने की आवश्यकता की जाय।¹⁸

1000 1000

सौवाल कृष्ण बोससे इतिहास के जानकारी तथा अध्ययन के आभाव थे। दादाभाई नौरोजी की मर्ति उन्हें भी राजनीति के अधिक आचारों के अध्ययन के दृष्टि थी। तिलक, पाल, सरदार साहि अतिवादी नेताओं की शक्ति का मुख्य कारण यह था कि उन्होंने भारत के विज्ञान साहित्य तथा पत्रिका साहित्य का गम्भीर अध्ययन किया था। इसलिए वे मजबूती तथा महामारण को उद्भव किया करते थे। इनके विपरीत दादाभाई, रानावे तथा बोसने ने अध्ययन का विरलेपनात्मक रूप में अध्ययन किया था। अतिवादी प्राचीन भारत की साहित्यिक उन्नतियों का गुणगान किया करते थे। अतिवादी मीडरटन, बॉम्बेन, थिन¹⁰ आदि सुस्थापक अध्ययनियों की मर्मा के बात किया करते थे। यदि इन मानाधिकृत तथा भुक्त अना ने अतिवादीतमूल भाषा का प्रयोग

[illegible]

17. पोम्बे के अनुसार 1906 में सम्पन्न सभा विधि (पोम्बे रिजल्ट कन्फ) एक बरीद बीग सादा स्त्रिय के

18 *Speaker and Hearings*, 503 803

19. शीतल ने 1907 में एम्प्लीफाइंग सेमिनारटिव कोरिजस में बहुत बड़ा साधन देना शुरू किया था। इस दृष्टिकोण का उल्लेख किया था कि आचार्य कायस रसुले में कायस अथवा कायसालाह शक्ति में सुधारों में आचार्य अति महत्वपूर्ण होना है। (*Speeches and Writings*, ईसा मन्वत् 123)।

कृष्ण बोसले ने बिने-टीकरण की आवश्यकता को स्वीकार किया। वे ऐसी व्यवस्था के पक्ष में थे जिसमें गौहरग्राही पर शासन नियन्त्रण लगाया जा सके।¹² उनका कहना था कि प्रांतीय बिने-टीकरण सभी सफल हो सकता है जब प्रांतीय परिषदों के अधिकार में कृत्रिम हो और उन्हें प्रांतीय बजट पर विवाद करने का अधिकार दे दिया जाय। उन्होंने इस बात की आवश्यकता विकसित की कि जिताधीशों को प्रशासन के मामलों में एकाग्र देने के लिए विस्तृत परिषदों का निर्माण किया जाय। हर्जियाउस बिने-टीकरण आपोस के समक्ष साक्ष्य देते समय बोसले ने तीन बातों का विशेष रूप से आवश्यक बताया (1) नियन्त्रण पर गौर पश्चात्, (2) माध्यमिक स्तर पर जिता परिषदें, और (3) शिक्षण पर पुनर्गठित विधान परिषदें।

भारत में अंग्रेजी शिक्षा के प्रकार से भी सरकार समस्याएँ उठ खड़ी हुई थीं। उनसे मोसले जमीनालि परिचित थे। अंग्रेजी शिक्षा के कारण लोग स्वतन्त्रता तथा स्वातन्त्रतावादियों के कृष्ण के सम्बन्ध में अधिक वादग्रस्त हो गये थे।¹³ सरकार नयी परिस्थितियों का सामना करने में बाध्य थी क्योंकि नहीं, इस बात की जांच करने के लिए बोसले ने कुछ कमीटियाँ प्रस्तुत कीं। 1911 में उन्होंने कहा "सरकार प्रगतिशील है अथवा नहीं, और वह निरंतर प्रगतिशील है अथवा नहीं, इस बात की जांच करने के लिए मैं चार प्रकार की परीक्षा का सुझाव देता हूँ। पहली परीक्षा यह है कि यह बहुसंख्यक जनता की नैतिक और भौतिक उन्नति के लिए क्या क्या उपाय करती है। इन उपायों में मैं उन साधनों को नहीं गिनता जो ब्रिटिश सरकार ने भारत में अपनाये हैं, क्योंकि वे सम्पन्न ही रहने अस्तित्व के लिए ही आवश्यक थे, यद्यपि उनके अन्तर्गत भी सामान्य है, उदाहरण के लिए, रेलमार्गों का निर्माण तथा डाक-घर व्यवस्था भी स्थापना इत्यादि। जनता की नैतिक तथा भौतिक उन्नति के साधनों में मेरा अभिप्राय यह है कि सरकार ने शिक्षा के लिए क्या किया है और सफाई, कृषि की उन्नति आदि के लिए क्या किया है। दूसरी परीक्षा यह है कि सरकार स्थानीय मामलों के प्रशासन अर्थात् नगरपालिकाओं और स्थानीय परिषदों में हमें क्या सामना देने के लिए क्या क्या उपाय करती है। तैरी तीसरी परीक्षा यह होगी कि सरकार हमें परिषदों अर्थात् उन विचारक समायो में क्या नीति निर्धारित होती है, क्या स्थापन देती है। और बात में हमें यह देखना है कि सरकारी नौकरियों में भारतीयों को क्या स्थान मिलता है।¹⁴

अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में बोसले ने बीरोजग्राह्य मेहुता तथा मायाजी की सलाह से भारत की सामयिक प्रगति के लिए एक मान्यता तैयार की। उनकी योजना इस रूप की थी कि कुछ वर्ष के अन्दर देश में एक प्रकार का सप स्थापित किया जा सके। कित्हाउ (1914-15 के) में भारतीय शासन में नवम्बर जनरल के हस्तक्षेप को स्वीकार करने की तैयारी के। बोसले की योजना में सुसज्जितों तथा अन्य अल्पसंख्यकों की धुक्क तथा प्रत्यक्ष प्रतिनिधित्व देने की आवश्यकता को स्वीकार किया गया था। वे आभासी के इस सुझाव से सहमत नहीं थे कि भारत का राष्ट्रीय आधार पर पुनर्गठन किया जाय।¹⁵

3. मोसले के आर्थिक विचार

बोसले की भारत की औद्योगिक तथा कृषि-सम्बन्धी समस्याओं के विषय में भारी चिन्ता थी। पश्चिम के मुद्रापुरक पुनोद्धारों अन्तर्गत तथा एक अधिकविकसित देश की आवश्यकताओं तथा सामाजिक आर्थिक मुद्दों के बीच समय से उत्पन्न आर्थिक समस्याओं को समझ लेने की श्रम दृष्टि उनसे थी।¹⁶ उनका आग्रह था कि भारत सरकार के आर्थिक तथा अन्य के बीच अधिक वास्तविक

12. यही पृष्ठ 724।

13. यही पृष्ठ 674।

14. एनी बेवेल्स के 1917 की पत्रिका भारत में हिन्दू पद अल्पसंख्यक शासन में प्रस्तुत।

15. मायाजी, *India as Transition* पृष्ठ 44-45।

16. मोसले ने 9 मार्च, 1911 को इंग्लैंड में बिजनेसमैन कॉन्फ्रेंस में बोसले पर साक्ष्य कर कर एक भाषण किया। उसमें उन्होंने इस बात का उल्लेख किया कि राज्य की वास्तविक कि मुक्त व्यापार को अधिक न लाभ दिया क्योंकि सभी का लाभ नहीं। उन्होंने बोसले के आर्थिक विचारों का अनुवीक्षण किया। उन्होंने कहा

"मध्यम अल्पसंख्यकाधीन विचार के एक रूप में यह मानना है कि जब भारत सदा की ही एक स्वतन्त्र अर्थी

समयन (बैठ विधान) स्थापित किया जाय। वे इस पक्ष में थे कि आय का अधिक उपयोगित इस क्षेत्र में वितरण किया जाय। वे चाहते थे कि सरकार भूमि सम्बन्धी कदमों को कम करके कृषकों की दशा सुधारने का प्रयत्न करे। वे जनता की बढ़ती हुई चीनता को देखकर बहुत दुःखी हुआ करते थे। इसलिए उन्होंने कृषक जनता को राहत पहुँचाने का समयन किया। उनका सुझाव था कि भारतीय उद्योगों के साधनों का विनिर्माण इस क्षेत्र में किया जाय जिससे उनकी क्षमता में वृद्धि हो। वे सरकार की वित्त नीति को ऐसी दिशा देने के पक्ष में थे जिससे शिक्षित मध्य वर्ग के लोगों को अधिक रोजगार मिले और उत्पादन बढ़े। उन्होंने नमक कर घटाने का आवश्यक समयन किया। अपने 1904 के बजट भाषण में उन्होंने नमक कर में माछ जाने की और कटौती करने की सिफारिश की। अपने 1907 के बजट भाषण में उन्होंने नमक कर की पूर्णतः समाप्ति करने का प्रस्ताव रखा। 1903 और 1904 के बजट भाषणों में उन्होंने सूखी साल पर उत्पादन शुल्क समाप्त करने का अनुरोध किया था। भारतीय रसमापों पर होने वाले भारी व्यय का भी उन्होंने विरोध किया। उन्होंने आदर के लिए कर योग्य आय की सीमा बढ़ाने का समयन किया। जब भारत में स्वतन्त्र मुद्रा का प्रचलन आरम्भ किया गया तो भारतीय मुद्रा को ब्रिटिश मुद्रा (पौण्ड) में परिवर्तित करने के उद्देश्य से एक स्वतन्त्रता कोष (गेल्ड स्टैंडर्ड फण्ड) स्थापित किया गया था। 1907 के बजट भाषण में गोखले ने इस कोष के समय का विरोध किया।¹⁷ गोखले इस पक्ष में थे कि भारत के गवर्नर जनरल को सरकार देने की व्यवस्था की जाय।¹⁸

4 निष्कर्ष

गोपाल कृष्ण गोखले इतिहास के जादूकार तथा अवधारण के आचार्य थे। दादाभाई नौरोजी की भाँति उन्हें भी राजनीति में अर्थिक आधारों के अध्ययन में रुचि थी। मित्तल, पास, अर्थिक आदि अतिवादी मतों की शक्ति का मुख्य कारण यह था कि उन्होंने भारत के विद्यमान सांख्यिक तथा आर्थिक साहित्य का दम्यार अध्ययन किया था। इसलिए वे समकालीन तथा महाभारत की उद्घुष्ट किया करते थे। इसके विपरीत दादाभाई, रानडे तथा गोखले ने अवधारण का विश्लेषणात्मक दृष्टि से अध्ययन किया था। अतिवादी प्राचीन भारत की सांस्कृतिक उपलब्धियों का सुधारण किया करते थे। मित्तलवादी गैडरटन कास्टन, मिल्स¹⁹ आदि संस्थापक अवधारणियों की भाँति वे साक्ष्य किया करते थे। यदि हम सामाजिकता तथा कुछ अन्तों में अतिउत्थानपूर्ण भाँति का प्रयोग

किया तो फिर के बीच साक्ष्य है कि उनका क्या परिणाम होता है। उनका कहना है कि ऐसा कोई देश की ओर निकट दृष्टि से विचार होता है, जिसके उत्पादन में उन्हीं मुख्यतः व हैं और जो अतिउत्थानकारीक वन पर निर्भर करता है, ऐसी देश के साथ सामाजिक अतिउत्थान में बीच साक्ष्य है जो चाय तथा मसालों का प्रसार करते हैं और उत्पादन में अतिउत्थान आर्थिक अनुपयोग के साथ साक्ष्य है जो बहुत प्रसार करते हैं कि भारतीय उद्योगों का विकास हो जाता है और सब को फिर उन्हीं का ही प्रसार प्राप्त करता है। कुछ समय के लिए यह पूर्णतः अतिउत्थान बन जाता है। निम्न यह कहना है कि उनके बाद समय का प्रभाव आरम्भ होता है। जब ऐसी स्थिति आता है तो राज्य की शक्ति कि सरकार अपने आन और सरकार का अधिकार प्रसार द्वारा उन उद्योगों का परिचालन कर जो परिचालन करने में योग्य हैं जिससे देश में अतिउत्थान प्रयोगों की सहायता के पुनः प्रयोगों का प्रसार हो सके और अन्तर्गतता समग्र विचार को अतिउत्थान में समन्ततापूर्ण प्रसार हो सके। जीवन जमा कि मैं आज साक्ष्य आज यह पुनः है कि मैं मैं मैं प्रसारण में दूसरी साक्ष्य अतिउत्थान होती तो मैं प्रसार के साथ इस साक्ष्य का अध्ययन करता कि भारत सरकार निर्णय की सहायता पर चल। निम्न स्थिति को देखते हुए यह गोपाल एक सामाजिकिक नहीं प्रयोग होता, इसलिए इन कारणों कि स्थिति नहीं है जो अतिउत्थान कर ही और अन्तः अतिउत्थान का प्रसार का प्रसार करें। अतिउत्थान वन के साथ विचार है कि इस समय हम सरकार के साधन करें कि यह उद्योगों का अन्तर्गत ही सहायता में विचारों कि यह उन विद्यमान का उपयोग किने किया है करते हैं जो कि आज देश का प्रसारण पर लाते हैं। मेरा अतिउत्थान पुनः व्यापार का विचारों में है। *Speeches and Writings*, किन् 1, पृष्ठ 335।

17 गोखले ने अनुसार 1906 में संशोधित रूप में मिल (संशोधित रूप में) एक बरौट बीच साक्ष्य अतिउत्थान के आधारों में।

18 *Speeches and Writings*, पृष्ठ 803।

19 गोखले ने 1907 में इंग्लिशमें सेमिनारमें गोखले में बजट पर भाषण दस हज़ार के दस इतिहास का अतिउत्थान किया था कि अतिउत्थान राज्य रखने में बहुत अन्तः साक्ष्य साक्ष्य साक्ष्य में सुधारने में 'मौलिक' अतिउत्थान प्रसारण होता है। (*Speeches and Writings*, किन् 1, पृष्ठ 123)।

करें तो कह सकते हैं कि मित्रवादियों की चर्चा का छोट उन्हा अध्यात्म का गान तथा अति-वादियों ने प्रभाव का मुद्रण कारण उन्हा दण्ड तथा घन सम्बन्धी पाण्डित्य था ।

यद्यपि मोरले की विवेक इति चित्त तथा आध की समस्याओं में थी, किन्तु राजनीति के क्षेत्र में वे नीतिवत्ता का माग अपनाने के पक्ष में थे । स्वभाव से वे आध्यात्मवादी थे, आदर्शवाद में उनका विश्वास था और वे उच्च नीतिवत् स्तर पर रहते थे । साधुजनिक मता के रूप में उनका धर्म राजनीति की आध्यात्मिक रूप देना था, यही आदर्श आगे चलकर गांधीजी ने अपनाया । मोरले सद्गुरुत्व की प्राप्ति के लिए अनर्गल तरीकों का प्रयोग करने के पक्ष में नहीं थे । उन्हें मानव प्रकृति की स्पष्टता में विश्वास था । विदेश के राजनीतिकों तथा साधुजनिक नेताओं को उनसे स्नेह था । वे स्वीकार करते थे कि उनके एवं अध्यात्मिक आचरण नेता के गुण थे । उनकी तुलना मैकडॉल्ल तथा आरिक्मस से की जाती थी । मोरले मोरले के भी विचारप्रधान बन गये थे, यद्यपि मोरले की उनकी राजनीतिक प्रवृत्ति की वक्त-सम्बन्धी योग्यता में सन्देह था । अपने आत्मसाधन, वास्तविकतावादी, तथा उद्गुरुत्व जीवन के द्वारा मोरले ने राजनीतिक समस्याओं तथा साधुजनिक उत्तरदायित्व के क्षेत्र में नीतिवत् माग की प्रेरणाहर्न दिया ।²⁰ किन्तु आदर्शवादी होते हुए भी मोरले एंटीवादी अथवा यूटोपियवादी (वास्तविक) आदर्शवादी नहीं थे । वे जाती, समय तथा समझौते के तरीकों को ही अच्छा समझते थे । गांधीजी की नीति उनका आदर्श था कि विरोधियों के साथ भी अविनाश योग्य तथा बहोर गतिवत्ता का व्यवहार किया जाना चाहिए । अपने भावना और वाचों के द्वारा उन्होंने सभी रूप उपयोग का समर्थन नहीं किया । वे सदैव आदर्शवाद तथा परिस्थितियों की प्रभाववादी मार्गों के बीच समन्वय करने के इच्छुक रहते थे । यही कारण था कि वे सर्वव्यापक आदर्शवाद की पद्धतियों पर सदैव दृष्टि रखते । उनकी मारवा की असीम चर्चितों में आस्था थी, और इस बात की उन्होंने स्पष्ट धारणा में योग्यता की थी । वे मारवाचर्चितों की राजनीतिक आकांक्षाओं को सीमित करने के पक्ष में नहीं थे ।²¹ किन्तु समय की आवश्यकताओं के साथ प्रभाववादी समझौता करने की भावना से उन्होंने मोरले निम्नी सुधारों को स्वीकार करने का समर्थन किया, और इसी भावना से उन्होंने नीतिवत्तों के मारवाचर्चित पर विचार करने के लिए निपुण विवेक के इतिवृत्त आदर्श के हृदय के रूप में कार्य करता स्वीकार कर लिया था । इस प्रकार हर्न मारवाचर्चित राज नीतिक विचार में मोरले के योगदान को दो सूचों में व्यक्त कर सकते हैं (1) वे राजनीति में नैतिक मूल्यों की समाविष्ट करने के पक्ष में थे, (2) राजनीतिक प्रवृत्तियों के रूप में उन्होंने निताचार, बुद्धि तथा समझौते का समर्थन किया ।

20 मोरले *Recollections* पृष्ठ 171 286 320, सभी निम्न, *Jawahar Marley and Memo*

21 भाषण, *Speeches and Writings*, पृष्ठ 780 ।

1 प्रस्तावना

अपने भारतीय रूप के सामाजिक जीवन में (1880-1920) बीसमास बाल गंगाधर तिलक ने अपनी शक्तियों का विविध प्रकार के कार्यों के लिए प्रयोग किया।¹ एक शिक्षाशास्त्री के रूप में उन्होंने पूना 'गुरु इंग्लिश स्कूल, डेकन एन्वयेसन सोसाइटी तथा फर्मुशन गार्लिस' की स्थापना में महत्वपूर्ण योग दिया। स्वदेशी आन्दोलन के दिनों में समय विद्यालय स्थापित करने में उनका प्रमुख हाथ था। पूना के मदनमोहन सम्प्रदायी कार्यों में वे महान समन्वय थे। 1894 में जब सरकार ने श्री एच. बामंड पर आपराधिक मुद्दों का बलावर उद्घरण देने की घमनी सी तो लिख कर उनकी सहायता के लिए दौड़ पड़े। 1889 में जब बालधर कोंकण के विपक्ष नामसलदारी का पक्ष लेने वाला बौद्ध नहीं था, उस समय वे उनकी रक्षा के लिए पहुँच गये। यदि वही आर्थिक अभाव होता विरोधी होता तो वे तुरन्त उसने विपक्ष लपके करने के लिए तैयार हो जाते थे। 1896 के दुमिख के दिनों में उन्होंने जनता की अपनी अधिकारी के विषय में जागरूक करने के लिए महाकुतूब नाम दिया। उन्होंने सराफत लालाह के साथ स्वदेशी का समर्थन किया। कांग्रेस के मध्य में उन्होंने स्थायी प्रबंध, वित्तीय विनियोजन आदि अनेक आर्थिक विषयों पर प्रस्ताव प्रस्तुत किये। एक राजनीतिक नेता के रूप में उन्होंने कांग्रेस के फायदालाप में महाकुतूब भूमिका अदा की। अपने कैसरी तथा बराला नामक दो पत्रों तथा विद्यापीठ और कण्ठलि सराफों के द्वारा उन्होंने जनता में देशभक्ति की भावना फैलाने की तथा उसके अपने राजनीतिक अधिकारों के लिए लपके करने की प्रवृत्ति उत्पन्न की। 1916 में स्थापित उनकी हीन कल बीन में देश की स्वराज के लिए लपार किया। अपनी इंग्लिश की भाषा के दौरान (1918-1919) उन्होंने भारत के राष्ट्रवादी आन्दोलन तथा लिखित लेखन कार्यों के बीच बीचोबीच सम्बंध स्थापित करने में महत्वपूर्ण योग दिया। इस प्रकार हम देखते हैं कि तिलक का जीवन विविध प्रकार के शक्तिशालि कार्यों की बहानी है। वे शक्तिशाली व्यक्ति तथा नेता थे और जिस किसी काम में उन्होंने अपनी शक्ति लगायी उस पर अपना गम्भीर प्रभाव छोड़ा। वे अपने सहकर्मियों की तुलना में महानता के बड़ी अधिक ऊँचे दिखार पर पहुँच गये थे। महाकुतूब के लोकजीवन में और 1915 के उपराल सम्पूर्ण भारत में उनका स्थान प्रमुख था। उनकी सेवा बड़ी मुश्किल थी। वे सरकार की योजनाओं तथा कुटिल पालों की बलीभारि समझते थे और उनका उन्होंने बिना द्विचिन्तापूर्वक के मन्दाकीन किया। वे श्रद्धा, महाभारत, गीता तथा बाट और गीत के रस में प्रभाव पवित थे। भारतीय इतिहास तथा व्यवसाय का भी उन्हें अच्छा भाव था। विन्तु जीवन में उनकी सबसे बड़ी पत्नी उनका नीति'परिच था। उनकी धानी में बहुत कर देनेवाला बीन और कटुता नहीं थी, विन्तु अत्यन्त नेताओं की तुलना में उनका स्वस्थित इतना ऊँचा था कि उनके सामने वे सब नीचे गवते थे। उहू अपने पिता के वैयक्तिक गरिमा तथा भावना सम्मान की कण्ठ भावना उपराधिवार में किसी थी। उनके मन में अपनी तथा देश की स्वतन्त्रता की अनवरत उत्पत्ता थी। मय उन्हें छू तक नहीं गया था। विपदाईं उन्हें शान्तिनित नहीं कर सकती

1. बाल गंगाधर तिलक का जन्म 23 जुलाई, 1856 को हुआ था और 1 अगस्त, 1920 को उनका देहांत हुआ।

भी, अतिरिक्त विषम परिस्थितियों में उनका गुरुत्व और भी अधिक देखीयमान होने लगता था। भयंकर और विनाशकारी विपदाओं के दुःखान्ध में दुःखनीय साहस तथा दुःख आशावाद उनके चरित्र का स्वरूप था। सख्त धार्मिक तथा मानसिक परिष्कृत, अनेक कष्टों तथा बीभत्सनीय कारावास के कारण उनका शरीर दुबल हो गया था, किन्तु उन क्षीय शरीर में बलवत् कठोर आत्मा विशालमान की ओर किसी साकारित धार्मिक प्रेम से समग्र मुक्त नहीं करती थी। उन्हें आत्मा में अमरत्व में हृदय विश्वास था। कभी-कभी कहा जाता है कि उनके स्वभाव में सहायता तथा दुःखदृष्टि का गुण था। किन्तु उनके व्यक्तित्व में जो महाकाव्य सहाय्यी भयंकर दिवाली देती थी वह वास्तव में उनके अपने सिद्धांतों में प्रतिबिम्बित थी। उनके चरित्र में हमें जो हठता, आत्मरक्षण की अथवा मानस, पैम्बर का सा संसाध, और स्पष्ट राजनीतिक उत्साह देखने को मिलता है उसका गुण शीघ्र उनकी नैतिक तथा आध्यात्मिक विराट के विषयों के अतिरिक्त आत्मा की। जनम उद्देश्य की हठता, इच्छा-धार्मिक की अनपनीयता कटुता के सहित हृदयमय तथा कष्टों को अनीवार करने की आत्मरक्षण सत्वरता आदि जो अनेक गुण थे उन सबके मूल में उनकी अपने जीवन के क्षेत्र के प्रति अतिरिक्त शक्ति थी। अपने जीवन-काल में जिन विविध संधियों और विवादों में उन्हें संलग्न पड़ा उन समय उनकी सदैव बड़ा सहायक उनका अपना निर्दोष तथा निराशय वैयक्तिक चरित्र था। उन्होंने अपने जीवन के चालीस वर्ष बिना किसी निश्चिंत काम की आशंका के देव की सेवा में अर्पित कर दिये। एक जगहाही क्षणिक की शक्ति उन्होंने जीवत तथा चर्चितानी भारतीय राष्ट्रीयवाद की नींव का निर्माण करने के लिए सख्त प्रयत्न किया। समय के दौरान जब भारी कष्टों और क्लेशों का प्रकोप हुआ तो कभी-कभी ऐसा लगता कि इनके योग हृदयकार कालकर कुछ क्षेप के साथ लड़े हुए था परन्तु अभी भी वे, किन्तु जिसका बहाराय सुनिश्चित की शक्ति अनेक ही स्वाधीनता के सम वर आने सख्त रहे। उन्हें जीवन में हमने अतिरिक्त कष्टों, क्लेशों और संघर्षों का सामना करना पड़ा था कि यदि उनके स्वभाव में बहुतों और निराशा या आशंका को आशय की बात न होती। सरकार के प्रतिशोध की आशंका के उन्हें संघर्षपूर्ण तथा कष्ट दण्ड दिये। उन्हें अनेक भारी स्थितियों में ख खीनते रहे और स्वयं की भीषण सहन पड़ा। किन्तु इस सबके बावजूद उन्हें कभी शारीरिक जीवन में संघर्ष नहीं हुआ, और न के कभी निराशावाद से अभिभूत होकर बौद्धिक संतर्पणी ही रहे। प्राचीन युग के महान व्यक्तियों की शक्ति उन्होंने सब कुछ आत्मरक्षणक अभिचलता के साथ सहन कर लिया। कभी कभी कहा जाता है कि जिसके अंदर ही बहोर थे। इस अब में वे संघर्षपूर्ण बहोर में कि अपने सिद्धांतों के सम्बंध में वे कभी किसी से संघर्षित करने के लिए तैयार नहीं थे, किन्तु उनका हृदय बहुत ही शीघ्र तथा दयालु था।

महाराष्ट्र विभक्त का वायस्विक या 1^म पक्ष यह था कि महाराष्ट्र में देशप्रेम का बीज बिनाशपूर्वक है ही जो बिना था, किन्तु उस प्रदेश में वास्तविकता तथा गुरुत्वपूर्ण राष्ट्रवाद के लक्ष्य-पक्ष वास्तव में मिलकर ही थे। 'केमरी' के वाक्य में उन्होंने सर्वप्रथम 'जातीय वर्ग' तक आक्रामक अधिकारी, राजनीतिक स्वतंत्रता और 'मान' का संदेश पर पर पहुँचाया। उन्होंने महाराष्ट्र की जनता को सर्वोच्च और सामुदायिक स्वातंत्र्य का मुख्य लक्ष्य बताया। 1897 में प्लेन की महामारी ने बीरान विभक्त में अपने जीवन को ओलिव में डालकर बुना के लीनों को सेवा की। अगर न उनकी उपस्थिति के ही विचारों को ऐसी सार्वजनिक मिलती थी मानो कोई देवदूत उनकी महामाता के लिए वापस हो। कर्मचारी तथा शिक्षा की लक्ष्यो ने महाराष्ट्र की जनता में एक अर्थोपचार की देशप्रेम की मानना प्राप्त की, उनके नवजीवन का संचार किया और अपने राजनीतिक अधिकारी के सफल की शक्ति उत्पन्न की। शिक्षा की वास्तविक स्वतंत्र्य कहलाता था। जिसने उसी स्वतंत्र्य की मानता को पुनर्जीवित किया। महाराष्ट्र के इतिहास में जिसने एक प्रचण्ड शक्ति में, स्वतंत्र्य के अग्रिम में वे अनेक चरण के लक्ष्य थे। 'केमरी' का महाराष्ट्र की राजनीति पर लोभ नहीं है भी अधिक तक आधिकार रहा। महाराष्ट्र की जनता जिसने के नवतम तथा उनके संदेश की क्षीमाति समझती थी। अन्तः जीवन के लिए ही उनका अर्थ अर्थोपचार बनान था। महाराष्ट्र के विवादी जिसने को

एक सत्रेय सौदा तथा भारत के ब्रिटिश शासन का दुर्घण घानु मानते थे। 1882 में तिलक की कोल्हा-पुर मानहानि के मुकद्दमे में और 1897-98 में जब परलगावे दमे राजद्रोह के प्रथम आरोप में कारा काम का दण्ड दिया गया। 1908 से 1914 तक छह वर्ष के लिए उन्हें साठसे की जेल में रखा गया। इस सबने उन्हें जनता का प्रेमपात्र बना दिया था। तिलक को महाराष्ट्र के इतिहास में केव्ढ तम अमर विभूति के रूप में स्मरण किया जायगा।

शारम्भ में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में तिलक ने एक आन्दोलनकारी का काम किया। वे चाहते थे कि कांग्रेस की जड़े जनता के जीवन में स्थाप्य हों। 1905 से वे नये दल के बाने हुए नेता बन गये। बवाल तथा महाराष्ट्र में राजनीति के नये सम्प्रदाय की रचना उनकी महत्वपूर्ण उपलब्धि थी। जब अन्ध नेता ब्रिटेन की सहानुभूति और समर्थन की मांगत कर रहे थे, उस समय तिलक ने स्वातन्त्र्य और स्वतन्त्रता का पाठ पढाया। उन्होंने कांग्रेस में अतिवादी राष्ट्रवाद की भावनाओं की प्रविष्ट किया। उस समय तब कांग्रेस मुख्यतः मध्य वर्ग का संगठन थी। तिलक ने निम्न वर्ग वर्ग की और कुछ हद तक साधारण जनता की भी कांग्रेस में लाने का प्रयत्न किया। 1916 से 1920 तक उन्होंने हानि रक्त लीक का प्रचार करके कांग्रेस के काम की आगे बढ़ाया। अगस्त 1920 में उन्होंने कांग्रेस लाकडवीय दल की स्थापना की। इस दल के द्वारा वे कांग्रेस में निर्धारित रूप से चुनाव प्रचार की पद्धति की समाविष्ट करना चाहते थे। 1917 से 27 नवम्बर के दिन उन्होंने बिरली में मीटिंग्स में बैठ की। 1918 में वे स्वसम्पत्ति से कांग्रेस के अध्यक्ष चुन लिये गये। किन्तु उन दिनों में वेलेस्टाइन डिवाल³ के साथ मुकद्दमे में लगे हुए थे, और उस स्थिति में उन्हें इंग्लैड जाना था। अतः वे अध्यक्ष पद की स्वीकार न कर सके। 1916 की सत्रसत्र कांग्रेस से 1919 की अमृतसर कांग्रेस तक वे कांग्रेस के महानायक नेता थे। सभी लोग इस आशा में थे कि वे बिरली बसबासा कांग्रेस के 30 सितम्बर 1920 में होने वाली थी, अध्यक्ष पद पर आसीन हों, किन्तु इसी अपरिषद्वाक्यता में वे इस संसार से चले गये। तिलक ने स्वयंभूत कांग्रेस का स्थापत्य कर दिया, और उसे एक मुदत नीकरवादी विरोधी मार्ग में परिवर्तित कर दिया।

तिलक का स्थान भारतीय राष्ट्र के महत्तम विचारवादी में है। इस रूप में उन्होंने अन्ध नीति प्राप्त की है। 1896-97 में ही वे स्वराज्य की उक्त करने लगे थे, और 1907 में ही उन्होंने हानि रक्त का उल्लेख किया। वे हिन्दी की भारत की राष्ट्रभाषा मानते थे। कांग्रेस लोकतन्त्रीय दल के घोषणा पत्र में उन्होंने ऐलानों के राष्ट्रीयकरण के सिद्धांत की स्वीकार किया और राज नीति की घट निरपेक्षा के आधार पर सारा करने के आदेश की मांगता दी। उन्होंने भारतीय श्रमिक आन्दोलन में राजनीतिज्ञ महान की स्वीकार करके बुद्धिवादी तथा दूरदर्शिता का परिचय दिया। उन्होंने जनता की स्वाधीनता की भावना से उत्प्रेरित किया और उसे अपनी शक्ति की पद्धताने के लिए अलगाया। वे राष्ट्र की स्वाधीन जीवन की आकांक्षा के मुख्य थे। उनमें बाद स्वराज्य के आदेश को साक्षात्कृत करना पड़े से समय भी बाल थी। जब अतिवृत्त होन मौन थे, अन्ध विदेशी शासन की विषमता की प्रकाश कर रहे थे उस समय तिलक ने एन पगम्बर के रूप में देश की राष्ट्रीय होतन्त्रता का आदेश बुलाया। उन्होंने जनता की जगता और उसने उन्हें अपना उद्धारक और जनता साधनार समझा। यही कारण था कि उनके जीवन में अन्तिम दिनों में महाराष्ट्र के लोग ही उन्हें लगभग देवता समझकर पूजते लगे थे। राष्ट्र की सेवा के लिए उन्होंने अन्ध काम किया, और वे देश के सत्यत एव अन्धवी अन्ध बन गये थे। उन्होंने अपनी गडोर उद्देश्यपरायणता तथा दृढ स्वतन्त्र की जनता की जगता तथा उसे राष्ट्रीयता के लक्षि में लाने में काम में लगा दिया। इस काम में उन्हें अपनाय तथा बम्बई सरकार द्वारा दी गयी बाधवार की घातानाओं की महान परता पडा। अन्त परिणतल के कारण वे प्लासी के मुदत के बाद भारत में ब्रिटिश शासन के सर्वाधिक दुस्मातल घानु सिद्ध हुए। वे केवल एव आन्दोलनकारी नहीं थे, वे एव राजनयन भी थे, और उनके जीवन का सबसे बडा काम यह था कि उन्होंने पालिवादी भारतीय राष्ट्र की नींव का निर्माण

3 तिलक वेलेस्टाइन डिवाल के विरुद्ध मानहानि का मुकद्दमा लार गये थे। बिरली में अपनी पुस्तक *The Indian Unrest* में तिलक की अशान्य करने का उल्लेख किया था।

निया । जिसके एक महान राजनीतिज्ञ भी थे, व्यापक, उत्साहपूर्ण, गूढ़ तथा उत्कृष्ट कोटि की देश-भक्ति उनके चरित्र का मुख्य तत्व थी । भारतीयताओं में देशभक्ति की भावना केवल ज्ञान-व्यापक तत्व के जीवन का मुख्य तत्व था । निरुद्ध वे केवल आकाशिक राष्ट्रवाद के स-देशवाहक नहीं थे । वे एक महान नेता भी थे । उन्होंने अपने विचारों की छोट-काज के रूप में साक्षात्कृत करने का भी प्रयत्न किया । इसलिए केवल एक राजनीतिज्ञ बुद्धिवादी नहीं बने रहते, बल्कि वे राज्यकोटि के व्यवहारकुशल राजमन्त्र भी थे । राजमन्त्र के रूप में वे व्यवहारकुशल, दूरदर्शी तथा बुद्धिमान थे । राजनीतिक जीवन की वास्तविकता भी उन्हें अच्छी परख थी । वह वे सभी सदस्यों के लिए उनकी निरपेक्ष बात थी कि बहुसंख्यकों के नियम का हस्ता के साथ पालन किया जाय । इस प्रकार वे एक महान नीरस-वादी थे । तथा तथा देशक के रूप में जिसके भी सफलता सम्बन्धी सम्भावनाओं के सम्बन्धित प्रभाव और भाषा की तदनुकूल तथा आकषण पर निर्भर नहीं थी । वे सीधी सादी, स्पष्ट, गंभीर तथा सकल भाषा का प्रयोग करते थे और यही उनकी सफलता का रहस्य था । जिसके के कुछ आलोचकों ने उ-ह-जनीत-क (उत्तेजक भाषणा द्वारा जनता की कुक्षित भावनाओं को उभारने वाला) कहा है । किन्तु जनोत्तेजक में सर्वोत्तम तथा आत्मव्यक्ति भाषा द्वारा प्रभाव वास्तव की भी प्रवृत्ति होती है उसके जिसके निरुद्ध अन्तर्गत थे । उनके भाषण तथा रचनाएँ गंभीर तथा सकल हैं, और वे इस बात की घोषणा हैं कि उ-ह-चर्चित की भी जिसके मिली भी वस्तुतः वह पर महान प्रभाव था । जिसके के कभी कुक्षित भावनाओं की उभारने का प्रयत्न नहीं किया, वे सर्व सम्बन्धित गंभीर तथा सकल भाषा का सहारा दिया करते थे । उनके हृदय में जनता के लिए सच्चा प्रेम था, और इसलिए वे हर व्यक्ति से हर समय मिलने के लिए तैयार रहते थे । अतः स्पष्ट है कि वे जनोत्तेजक नहीं थे । वे लोकतन्त्रवादियों के निरुद्ध थे और उ-ह-जनीत अपने देशवासियों से प्रेम किया और उन्हें राजनीतिक स्वतन्त्रता का हृदय समझाया । उनकी राजनीतिक कल्पना स्पष्ट थी और उसे साक्षात्कृत करने के लिए उ-ह-जनीत व्यक्तिगत भाव से कार्य किया, इसलिए वे आत्म-भारतीय नीरसवादी के लिए सर्वसे बड़ा खतरा बन गये थे । नेता के रूप में उनके विशिष्ट वैयक्तिक भाव था कि जिसने उन्हें सर्वसे अधिकारी मुख्य बना दिया था । यहाँ तक कि निरुद्ध परियोजना करने तथा मातृभूमि के लिए और स्पष्ट सहने के कारण उनका व्यक्तिगत एक विशेष प्रकार की समीक्षा और भीन से देशीयमान होने लगा था । इसलिए भारतीय युवाओं के मन में उनके लिए महान सम्मान तथा प्रशंसा की भावना थी, उनके "भाषा" तथा अन्तर्गत पान्थिय ने उनके व्यक्तिगत भाव था की और भी अधिक परिभाषा प्रदान कर दी थी । उनमें प्रवृत्ति निरुद्ध केतना थी । अपने व्यैश्य की शक्ति के लिए उ-ह-जनीत कभी भी अनुचित उपायों के प्रयोग की अनुमति नहीं दी । 1918 में उ-ह-जनीत सम्मेलन में हुए कांग्रेस के विशेष अधिवेशन का अध्यक्ष होता सम्मेलन भर दिया । इस प्रकार जिसके अनेक हृदय से एक अद्भुत विभूति है । उनकी समिति अनेक पत्रिकाओं तथा भारतवासियों की तथा विश्व भर के स्वतन्त्रता प्रेमियों की अनुप्राणित करती रहेगी । स्वतन्त्र के महासन्तान के रूप में उ-ह-जनीत देश की महान भावना "स्वतन्त्र भारतवासियों का अन्तर्गत अधिकार है ।" भारत में राजनीतिक चेतना उत्पन्न करने तथा उसकी मुक्ति के काम में जिसके का योगदान बहुत भारी है । अपने अन्तर्गत ज्ञान तथा कार्य के द्वारा उ-ह-जनीत देश में प्रचलित असन्तोष की आला प्रवृत्ति निरुद्ध कर दी, और पक्षिवादी साक्षात्कृत नीरसवादी के रूप में निरुद्ध सम्पन्न मने सम्पन्न किया तथा निरुद्ध है । लोकभाषा जिसके और महान भाषा आधुनिक भारत की भी महानतम राजनीतिक विभूति है । और जनता उन दोनों की ही पुत्रा है । किन्तु यदि या भी मुझे ईसा, लोकलोक, गूरी, सम्पूर्ण तथा भारतीय इतिहास के अन्तर्गत का स्मरण दिलाते हैं तो जिसके का नाम सुनकर मुझे मृता, सुन्दर, प्रवृत्ति, निरुद्ध, दमनक और निरुद्ध का स्मरण हो जाता है ।

एक प्रवृत्ति पक्षिवादी तथा भारतीय साहित्य की विभूति के रूप में भी जिसके की कीर्ति अन्तर्गत है । उ-ह-जनीत में एक लोकपूर्ण तथा सम्पन्न कल्पना का निर्माण किया । उनकी कुछ महान् पुण साहित्यिक रचनाएँ "मेरी" के अन्तर्गत प्रकाशित हुई । स्मरण, महानतम तथा निरुद्ध की अन्तर्गत पर उनके निरुद्ध का ज्ञान भी महान है । भारत निरुद्ध-विनाश के रूप में उ-ह-जनीत की अन्तर्गत का नाम प्रयत्न किया । द-भारत, "द-भारत" होने इन द-भारत और अधिक दोनों

लाजी एवम् वैधान् ज्योतिष' । जबकि बादशाह भारत विद्या विद्यारथियों की निधि ईसवी पूर्व द्वितीय सहस्राब्दी में निश्चित कर रहे थे उस समय तिलक ने एक नया मत प्रतिपादित किया । ज्योतिष सम्बन्धी जानकारी के आधार पर उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि वेदों के कुछ भाग 4500 ई. पू. के अथवा उससे भी पुराने हैं । अपने अनुसंधान के लिए कुछो बड़ गीता के इस श्लोक में मिली "वासाना वागशीर्षोऽहममृता मुमुषानर" (जहेंनी वे मैं, वागशीर्ष और मृत्युओं में वसत हूँ) । तिलक और झिंठने ही ऐसे भारत विद्या-विद्यारथ हुए हैं जिन्होंने वेदों की ऐतिहासिक प्राचीनता का जिनय करने के लिए ज्योतिष सम्बन्धी जानकारी का प्रयोग किया है । अर्थात् अधिकतर प्राचीन विद्वान् उनसे सहमत नहीं हैं, किन्तु कुछ भारतीय विद्वानों को तिलक के "उद्धारपत्र" में प्रतिपादित मत में सन्तुष्ट प्रतीत होता है । 'द आकटिक होम' अथवाकुल बड़ा कार्य है । इसमें तिलक ने तुलनात्मक भाषा विज्ञान, इतिहास तथा धर्म के आधार से सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि आय जालि का आदि देश उत्तरी क्षुद्र प्रदेश था । जबकि आर्यों के आदिनिवास स्थान के सम्बन्ध में इतने मत हैं—मध्य एशिया, दक्षिणी रुम, कर्पेनियन पर्वतमाला, सिन्धु, कीकेश—उस समय एक विद्वान् उत्तरी क्षुद्र प्रदेश का पक्ष ले, यह सम्भव नहीं ही मनोरंजन बात है । दुर्भाग्यवश तिलक के निष्कर्षों के भू-वैज्ञानिक आधार कुछ हित्त कये हैं, और उनके मत को समान्यतः स्वीकार नहीं किया जाता । फिर भी ये दोनों ग्रन्थ विद्या की अनेक शाखाओं में उनके पान्थित्व के लिए स्मारक हैं । इनके उनकी वैधा की नीतिवता प्रकट होती है । साथ ही हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि वे अनुसंधान कारावास के अपरिहार्य अवकाश के समय में लिखे गये थे । इसलिए एक प्राच्य विद्या-विद्यारथ के रूप में तिलक के सम्बन्ध में हमारा मत यह है कि यद्यपि उनके निष्कर्ष आधुनिक वैदिक पान्थित्व की कसौटी पर खरे नहीं उतरते, फिर भी इनके उनका पान्थित्व महान नहीं पड़ता ।

सामाजिक तथा राजनीतिक दार्शनिक के रूप में तिलक की उपलब्धियां नहीं अधिक ठीक और स्पष्टी हैं । भारत की रेल में उन्होंने गीता पर जो भाष्य ('गीता रहस्य') लिखा वह गीता की व्याख्या मात्र नहीं है, बल्कि इनके होने प्राच्य तथा बादशाह नीतिविद्यार्थी तथा उत्तराश्वनीय सिद्धांतों का निर्भीकतानु समन्वय भी देखने को मिलता है । इससे शकर के सन्तुष्टतादी इष्टि-कीर्त्य का अन्तर्गत किया गया है । इसमें तिलक ने अतिसाय है कि आध्यात्मिक स्वतन्त्रता का सार इसमें नहीं है कि मनुष्य एकत्ववास करे, अपने व्यक्तित्व का नाश करे और समाज के प्रति अपने कर्तव्यों की भूल जाय । तिलक के अनुसार गीता का उपदेश है कि व्यक्ति की स्वतन्त्रता और निस्वार्थ भाव से अपने कर्तव्यों का पालन करना चाहिए । अपने कर्मयोग के इस सन्देश में तिलक ने मनुर्वेद तथा गण उपनिषदों में प्रतिपादित कर्म के सिद्धांत का सामाजिक आदर्शवाद, लोकतांत्रिक नीतिवता, तथा शक्तिशालि मानवतावाद की आधुनिक भावना के साथ समन्वय करने का प्रयत्न किया है । तिलक की इष्टि में कर्मयोग जीवन, नीतिवता तथा धर्म का साक्षात्पथ तथा समुचित दृष्टन है । यह मुक्तवाद तथा इष्टिमानुभववाद के सिद्धांतों की स्वीकार नहीं करता । यह अतः आदर्शवाद के भी पार पहुँचता जाता है और कष्ट तथा धीन द्वारा प्रतिपादित नीतिवता के सिद्धांतों की भी पीछे छोड़ देता है । कर्मयोग का सन्देश हमें अपने सामाजिक तथा राजनीतिक कर्तव्यों का पालन करने का सार्वभूत साहस प्रदान करता है । निष्काम कर्म करने से हममें आत्मविश्वास की दृष्टती पैकित हो जाती है कि हम यह की अनुपूर्ति से भी उत्तर उठ सकते हैं, और इस प्रकार हमारे लिए परमात्मा के साम आध्यात्मिक एकत्वम् स्थापित करना सम्भव हो सकता है ।

मेरा मत है कि तिलक की बहुता भारतीय राष्ट्रवाद, मनुष्य के पान्थित्व तथा मर्यादी साहित्य तक ही सीमित नहीं है । यह साथ है कि इन सभी दोषों में उनकी उपलब्धियां अत्यधिक महान हैं । किन्तु मनुष्य तिलक के जीवन और व्यक्तित्व के सम्पूर्ण चित्र के लिए एक सदस्य निहित है । 1908 में तिलक ने पैगम्बर के से आत्मविश्वास और उत्साह के साथ घोषणा की थी कि इस विश्व की होतकता का नियमन और संचालन की नीतिवता शक्तिशालि मर्यादी है । जब मैं उनकी उन समय की लिह की-की मूर्ति की कल्पना करता हूँ तो मुझे उस समय के सुखदाता का स्वरूप ही आता है जब ऐसे में उन पर सुखदाता पड़ रहा था । अन्तर्गत की शक्तिशालि किरण शक्ति साहस और सूर्य के साथ समय करना—यही तिलक के जीवन का सन्देश है । उनका यह सन्देश सम्पूर्ण विश्व में स्वतन्त्रता,

साथ तथा समय के लिए समर्थ करने वालों को मुझे तक घेरना और समर्थि देना रहना। राजनीतिक जीवन में तिनक भारतीय राष्ट्रवाद के मोक्ष थे। उनका बहुसंख्यकों की ही मेधा, मोक्ष की-सी राजनीतिज्ञता और बुद्धिगति का सा महिमा बल था। साथ ही, उनकी आध्यात्मिक अनुभूति का साथ ही था। उन्हें ईश्वर तथा उसकी अनुभूति से गहरी आस्था थी। साथ ही अपने जीवन काल में वे कुछ समय के लिए अतीत्यरक्षणी हो गये थे (यद्यपि ईश्वर भारी सदैव है), किन्तु जीवन के अनुभवों के जगता यह विश्वास हृदय कर दिया कि विश्व ईश्वर के वैश्विक शासन द्वारा ही नियंत्रित और संचालित होता है। मैं लिख भी एक महान् आध्यात्मिक विभूति मानता हूँ और इसके कई कारण हैं। उनका आध्यात्मिक जीवन आज तथा सब प्रकार की दुर्घटनाओं और दुःखों से मुक्त था। उनके व्यक्तित्व में हम मानसिक सचपों और अन्तर्विरोधों के उत्पन्न गहरी वेदना के कोई चिह्न देखने को नहीं मिलते, और न वे किसी सदैवस्थित विधोष से ही ग्रस्त हुए। अविचल वृत्तपर और अन्ध-कोटि का आत्मविश्वास उनके चरित्र के मुख्य अंग थे, किन्तु समय के साथ-साथ ईश्वरीय अनुभूति में उनकी आस्था गहरी गयी और यह विश्वास दृढ़ होता गया कि यह विश्व सच्चिदानन्द और हमारा ईश्वर के विधान से ही नियमित और संचालित होता है। 1 जून, 1947 को एक ब्राह्मण समा में भाषण देते हुए गांधीजी ने कहा था कि “मैंने आत्मज्ञान का मुख्य तिलक महाशय से सीखा है। जहाँ तक मैं लिख के व्यक्तित्व को मानक मानता हूँ वे सत्यदर्शीता के समर्थ हैं चित्तवृत्त और विपुलशील थे। ज्ञान की सामग्री आज देखकर भी वे पुनः अभिचलित रहे। अपनी चेतना के अंतर्गत सत्ता में उन्होंने सत्यदर्शीता के स्वरूपीय दर्शन का एकधारण किया था। साथ ही आध्यात्मिक अज्ञान हमने वाला व्यक्ति ही ऐसा कर सकता था। उन्होंने सत्यदर्शीता पर एक समर साध्य किया है। किन्तु आध्यात्मिक भक्ति के अंतर्गत उनका कुछ जीवन सीता का समर्थ भी बड़ा साध्य था। एक अंग में उनका कमजोर का सदैव नया नहीं है। भारत में उनका प्रचार अधिक पुन से ही चला आया था। राम, जनक और लक्ष्मण उनके महान् प्रेरक थे। किन्तु दीपनाथ से ऐसा उसे भूल चुका था। लोकमान्य तिलक ने भारतीयता तथा ब्राह्मण नीतिशास्त्र और तत्त्वज्ञान का समर्थ करने उसे सदैव का नये अंग से निकलने और आस्था की। उन्होंने कमजोर के दर्शन के साथ अपनी सत्यता तथा मान का समर्थ करने उसे एक नया अंग प्रदान कर दिया। कमजोर के सदैव में मान और मन का समर्थ करने का प्रयत्न किया गया है। आधुनिक जगत राष्ट्रवाद अतीत्यरक्षक तथा बल नीति के रोषों से ग्रस्त है। आधुनिक युग के बुद्धिवादी भी कमजोर प्रगति का सदैव देता है। यह जीवन तथा बल के प्रति गहरी आस्था उत्पन्न करता है और जो अत्यन्त महान् शक्ति, सत्य और प्रविष्टा की वा अभ्यवस्था पुन प्रतीत होता है उसे अंग और प्रयत्न प्रदान करता है। कमजोर का सदैव हम तिलक के जीवन के रहस्य से भी अवगत कर देता है। वे महान् सचिन्त थे, और बलवर्धन विद्वत् एवं सहज रूप से सीता का उनसे क्या कोई विद्वान नहीं हुआ है। किन्तु वे गौरी शक्तिरक्षणी गौरीयक नहीं थे। वे महान् भक्ति थे। उनके जीवन में हमें आध्यात्मिक राजनीति तथा साधनिक दृष्टि, दोनों का समर्थ देखने को मिलता है। इसीलिए उन्हें राजनीतिज्ञ कर अभिचलित करेंगे। उन्होंने आधुनिक जगत की स्वयंसेवक तथा कमजोर के ही गुरु, उत्प्रेरक तथा उत्साह करने वाले मान लिए हैं।

2 तिलक के सत्यशास्त्रीय तथा धार्मिक विचार

तिलक का अर्द्ध दर्शन वे विश्वास था। परब्रह्म का जिस स्वरूप का अन्वेषण वे भारतीय मूल में उत्प्रेरक है और जिसका वैदिक धर्म, उपनिषद्, ब्रह्मसूत्रों तथा सत्यदर्शीता में विचार विवेक किया गया है वह तिलक को बहुत आनन्द प्रदान करता था। किन्तु धार्मिक भक्ति के लिए वे वैदिक ईश्वर की मारता को स्वीकार करते थे। 1901 में उन्होंने कमजोरता में हिंदू धर्म पर एक भाषण में कहा “धार्मिक दृष्टि के अंग में ईश्वर तथा मारता के स्वरूप का ज्ञान तथा अनुभव द्वारा सीता की प्रगति के समर्थ अभिचलित है, और यही धर्म का सही अंग है।” जिसकी चेतना कम विचलित है उनके लिए तिलक धार्मिक प्रगति की महान् शक्ति स्वीकार करता है। एक प्रगति

तथा इनकी धार्मिक उपयोगिता की उपनिषदों, बादरायण तथा शंकर ने भी माना है। लोकमाय का अवतार में भी विद्याया या और वे कृष्ण की ईश्वर का अवतार मानते थे। उन्होंने अपनी अमर कृति 'गीता रहस्य' कृष्ण की ही व्यक्ति की है। वे महान् वास्तविक थे किन्तु धार्मिक जीवन में वे भक्ति के बाह्यत्व की स्वीकार करते थे। उन्होंने धार्मिक कर्मकाण्ड का विरोध नहीं किया। वे यह भी मानते थे कि धार्मिक कर्मकाण्ड बदल सकते हैं और बदलते हैं। किन्तु उनका कहना था कि जब तक वह शीघ्रचरित्र रूप में बदला नहीं जाता तब तक उनका पालन किया जाना चाहिए। वे मानती हैं कि वे और अपने धर्म पर उन्हें धर्म था। किन्तु उन्होंने हिंदू धर्म की न तो परम्परागत रीति से स्वीकार किया और न कीरे बौद्धिक एक व्यक्ति के आधार पर। वे श्रुतियों और योगियों द्वारा साक्षात्कृत रहस्यात्मक अनुभूतियों की भी स्वीकार करते थे। किन्तु उनकी धारणा थी कि गृहस्थ जीवन की धारण करने वाला कर्मयोगी भी मोक्षदायी परम ज्ञान को प्राप्त कर सकता है।

लोकमाय के मन में हिंदुत्व की बड़ी विप्लव धारणा थी। एक भाषण में उन्होंने कहा था "सनातन धर्म धर्म इस बात का संकेत है कि हमारा धर्म अति प्राचीन है—उत्तम ही प्राचीन विद्वानों कि स्वयं मान्य जाति। वैदिक धर्म प्रारम्भ से ही अंग जाति का धर्म था। हिंदू धर्म अनेक जगों से संयोजित है, वे अंग एक ही बड़े धर्म के पैरों और पैरियों की भांति परस्पर आवद्ध और समुच्च हैं। यदि हम इस विचार की व्यापक में रहें और सब धर्मों को एकीकृत करने का प्रयत्न करें तो हम उनकी एक महान् शक्ति के रूप में समझ कर सकते हैं। धर्म राष्ट्रीयता का एक तत्व है। धर्म का धार्मिक अंग है धर्म, और वह प्रति पाशु में व्युत्पन्न हुआ है। धर्म का अर्थ है धारण करना, वास्तविक वास्तविक रखना। किन्तु वास्तविक रखना है? अहम्मा की ईश्वर से, और मनुष्य की मनुष्य से। धर्म से अभिप्राय है ईश्वर तथा मनुष्य के प्रति हमारा वक्तव्य। हिंदू धर्म में भक्ति तथा सामाजिक दोनों ही प्रकार के बंधन की व्यवस्था है। वैदिक युग में भारत देश अपने में पूरा था। वह एक महान् राष्ट्र के रूप में समझित था। जब वह एतद् विद्वत् भिन्न हो चुकी है, और यही हमारी समस्या का कारण है। अब इस एकता की पुनः स्थापना करना राष्ट्र के नेताओं का पुनीत कर्तव्य है। इस स्थान का हिंदू भी उत्तम ही हिंदू है जिसका कि यज्ञात्त अथवा यन्त्राई था। गीता, रामायण और महाभारत के पठन पाठन से सम्पूर्ण देश में एतद् विचार उत्पन्न होते हैं। वेदा, गीता तथा रामायण के प्रति भक्ति—यथा वह हम सबकी सामान्य विरासत नहीं है? यदि हम विभिन्न सम्प्रदायों के साधारण भेदों की भूल जायें और अपनी समस्त विरासत की मूलभूत समझें तो ईश्वर की कृपा से हम गीता ही विभिन्न सम्प्रदायों की शक्तिशाली हिंदू राष्ट्र के रूप में समझित करने में सफल हो जायेंगे। यही हर हिंदू की महत्वाकांक्षा होनी चाहिए।"

तिलक मानते थे कि आधुनिक विज्ञान प्राचीन हिंदुत्व के ज्ञान की प्रमाणित कर रहा है। 3 जनवरी, 1908 को भारत धर्म महासम्मेलन में भाषण करते हुए उन्होंने कहा था कि वैदिकों की मनोवैज्ञानिक शोध संसार में अद्वितीय ब्रह्म के अनुसंधान तथा ओमीगर्गर्सन के विचार हिंदू धर्म के आधारभूत सिद्धांतों की पुष्टि कर रहे हैं। "आधुनिक विज्ञान कुलतम के सिद्धांत को मने ही न मानता ही किन्तु धर्म में सिद्धांत की अवस्था स्वीकार करता है। वेदांत और योग की आधुनिक विज्ञान द्वारा पूर्णतः पुष्टि हो चुकी है, और इन दोनों का उद्देश्य आध्यात्मिक एकता प्रदान करना है।" तिलक का विश्वास था कि हिंदुत्व दुर्दमनीय आध्यात्मिक वास्तव्य देता है। गणपद्-गीता ने इस विचार का उत्प्रेषण करते हुए कि मानव इतिहास की सर्वप्रधान धार्मिकताओं में ईश्वर अवतार होता है, जिसने कहा "जिसने हिंदू धर्म की ईश्वर अथवा निरी धर्म में ऐसा वक्तव्य-वादी बंधन नहीं दिया क्या है कि ईश्वर जिसकी बार हमें अवलोकनता होती है उसकी ही बार हमारे पास आता है।"

तिलक ने हिंदू की बड़ी ही सम्पन्न परिभाषा की है। "जन्मे मतमनुवार हिंदू वह है जो वेदा की सामाजिकता की स्वीकार करता है। हिंदू वेदा, स्मृतियाँ तथा पुराणों के आदेशानुसार आचरण

करता है। लीबर्ट या वॉल्टे से कि हिन्दुओं के विभिन्न सम्प्रदाय एक प्रतिष्ठासी राष्ट्र के रूप में समरूपित हों। उन्होंने एकता पर बल दिया और कहा "ऐसा प्रयत्न करना चाहिए जिससे हिन्दु धर्म की गरिमा एवं प्रभाव, एकीकृत तथा वैश्वीय शक्ति के रूप में एवं ही भारत में बड़े।" उनकी इच्छा थी कि हिन्दु उपदेशक सम्पूर्ण विश्व की सनातन धर्म का उपदेश दें। उनका विश्वास था कि आधुनिक विज्ञान की भौतिक उपलब्धियाँ केवल भ्रम उत्पन्न कर रही हैं। वे ज्ञान आधियों के जीवन धर्म के शासनगत कार्य का स्थान नहीं ले सकती।

3 तिलक के शैक्षिक विचार तथा कार्यकलाप

जनता की शैक्षिक जागृति किसी राष्ट्र के उन्नयन की सबसे महत्वपूर्ण प्रणाली है। यूरोप में आसीसी शक्ति से पहले भारत की जनता का शैक्षिक जागरण हो चुका था। इसीलिए विदो, बालेयर और कर्तो की उस महान् पराजितकारी आन्दोलन का असरित कहा जाता है। किसी भी कहा करता था कि लोकतन्त्र की सफलता के लिए शिक्षा अत्यन्त आवश्यक है। आधुनिक भारत में राष्ट्र-भाई के उदय और उत्थान में राष्ट्रवादी आधार पर समरूपित और संचालित शिक्षा संस्थाओं का महत्वपूर्ण योग रहा है। विपलुकर, आगरकर और तिलक महाराष्ट्र के नये शैक्षिक आन्दोलन के अग्रदूत थे। लाला लाजपत राम तथा हसराम ने सी ए की शालिख साहोब की स्थापना में बहुत और नेतृत्व किया। स्वामी अज्ञानन्द ने वैदिक ग्रन्थों के आधार पर गुरुकुल कायमी की स्थापना की। स्वदेशी आन्दोलन के दौरान (1905-1910) अनेक नयी शिक्षा संस्थाएँ स्थापित की गयीं। जब अठ्ठवीस आन्दोलन प्रारम्भ हुआ तो गांधीजी के नेतृत्व में अनेक विद्यापीठ स्थापित किये गये। हैनोर का शान्तिविदेशन समन्वयात्मक राजनीयवाद के आधार पर स्थापित किया गया था। भारतीय पुनर्जीवन तथा राष्ट्रवाद के उदय में इन शिक्षा संस्थाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। जब तिलक पूना में विश्वविद्यालय की परीक्षा की शर्तियाँ कर रहे थे तभी समय उन्होंने एक गैर-सरकारी स्कूल स्थापित करने की निश्चित योजना बना ली थी। इस स्कूल के शिक्षक आत्म त्याग की शैली ही मानना थे अनुदेशित थे जहाँ कि प्रायः अनुदेश वादियों की शिक्षा संस्थाओं में देखने की मिलती है। तिलक और आगरकर 'भारतीय अनुदेश बनना चाहते थे। 2 जनवरी, 1880 को पूना के 'नू दानिश स्कूल की निश्चित स्थापना कर दी गयी। इस शैक्षिक योजना में विपलुकर और तिलक का मुख्य योगदान था।

'नू दानिश स्कूल नये सिद्धांतों और आदर्शों से अनुप्राणित था, जो उस समय की प्रमुख शिक्षा संस्थाओं के सिद्धांतों और आदर्शों से भिन्न थे। तिलक के दो मुख्य उद्देश्य थे। उनका तथा विपलुकर और आगरकर का विचार था कि शिक्षा सही होनी चाहिए और शिक्षा उस आदर्श यात्र से अनुदेशित हो जो देश के प्राचीन इतिहास में पाया जाता था। वैदिक और शैविक-वैदिक युगों के गुरु और आधार धर्म तथा शैक्षिक समृद्धि के लिए विरप्राप्त नहीं थे, उनकी श्रेष्ठि मुख्यतः उनकी शिक्षा, साधनिक तथा कल्याणकारीयता के कारण थी। राष्ट्रभूति के पुनर्धार के लिए उस पुरातन आदर्श की अवधारण करना आवश्यक है। तिलक का दूसरा उद्देश्य शिक्षा का प्रसार करना था। उनके विचार में देश के राजनीतिक जागरण तथा प्रगति के लिए शैक्षिक सुविधाओं का प्रसार आवश्यक था। इसलिए उनकी दृष्टि में शिक्षा के प्रसार का सबसे अधिक महत्व था। स्वदेशी आन्दोलन के दिनों (1905-1910) में वे शिक्षा के राष्ट्रवादी पहलु पर बल देने लगे थे। किन्तु किसी सत्ताधी के नये शक्ति या विपलुकर, आगरकर तथा तिलक ने शिक्षा के उत्तरोत्तर प्रसार पर अधिक बल दिया था और यह प्रसार उत्तरीय राजनीतिक स्वतन्त्रता के अन्तर्गत ही सम्भव हो सकता था। इसलिए उक्त शैक्षिक नेताओं की इस सत्ताधी के शैक्षिक सुविधाओं की वृद्धि के लिए राजनीतिक अनुदान की स्वीकार किया। यह अन्तर्धनीय है कि तिलक तथा अज्ञानन्द दोनों ने शिक्षा

के रूप में ही अपना सांख्यिक जीवन प्रारम्भ किया था। जिन्तु अज्ञान-द वेदों में प्रतिपादित ब्रह्म-चर्य के आदर्शों से प्रभावित थे, जबकि लिलन ने भारतीय आदर्शों तथा पारम्पर्य कायप्रचाली और संस्थाओं के सम्मन्ध को महत्व दिया। शिक्षक इस हद तक पुनरुत्थानवादी नहीं थे कि आधुनिक युग में प्राचीन आदर्शों और सिद्धांतों को समझत अस्वीकार करने की सम्भावना को स्वीकार कर लेते। वे जीवन भर यह चाहते रहे कि राजनीतिक उद्योग और प्रगतिवाद की भावनाओं को उत्पन्न करने में अंग्रेजी शिक्षा का मूल्य है। होम कम (स्वराज्य) आन्दोलन के दिनों में जब वे देश का दौरा कर रहे थे उस समय भी उन्होंने स्पष्ट रूप से और बिना संकोच के स्वीकार किया कि अंग्रेजी शिक्षा ने देश के राजनीतिक आन्दोलन में महत्वपूर्ण योग दिया था। इस दृष्टि से उनकी भावना प्राचीनी से निज थी। महात्माजी ने, विशेषकर अपनी 'हिंद स्वराज्य' नामक पुस्तिका में पारम्पर्य सम्प्रदाय की अत्यधिक स्वाभाविक आलोचना की थी। महात्माजी आन्दोलन के दिनों में प्राचीनी ने अंग्रेजी शिक्षा की प्रशंसा नहीं की। शिक्षक की भावना तथा विचार अधिक यथार्थवादी थे। वेदों तथा हिंदू धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों के प्रभाव पर प्रभावित होते हुए भी उन्होंने स्वीकार किया कि भारत के राजनीतिक विकास में अंग्रेजी शिक्षा महत्वपूर्ण योग दे सकती है। यही कारण था कि अपना सांख्यिक जीवन प्रारम्भ करने के बाद लगभग एक दशक तक लिलन 'अध्यापक' का काम करते रहे। जिन्तु जब वे विद्यार्थियों को पढ़ाया करते थे, उन्होंने विनो 'अज्ञता के लिए शिक्षा' की एक व्यापक योजना बना ली थी, और इसीलिए शिक्षक होने के साथ साथ उन्होंने पत्रकार का काम भी प्रारम्भ कर दिया।

डेकन एजुकेशन सोसाइटी की स्थापना में लिलन ने नेतृत्व किया। अबारिया के अनुसार सोसाइटी की स्थापना में रानाडे की प्रेरणा तथा आध्यात्मिक नेतृत्व की भूमिका रही। 24 अप्रैल, 1884 को डेकन एजुकेशन सोसाइटी की विधिवत नींव डाली गयी। 1884 में बीपाल कृष्ण गोखले ने अध्यापक के रूप में पूर्ण 'नू इन्सिच स्कूल' में प्रवेश किया और सोसाइटी के सदस्य बन गये। 1885 से वे कार्मुथन कॉलेज में भी पढ़ाने लगे। यह स्वरूप करके प्रगतिवादी होती है कि बीपाल कृष्ण गोखले, जिन्हें गाँधीजी अपना राजनीतिक गुरु मानते थे, लिलन ने व्यक्तिगत की मोहिनी के कारण ही व्यक्तिगत स्थापन करके शिक्षा कायों की ओर आकृष्ट हुए थे। यह सत्य है कि समय के साथ साथ गोखले पर आपत्तक और रानाडे का, विशेषकर रानाडे का, प्रभाव अधिक गहरा होता गया, फिर भी यह मानना पड़ेगा कि गोखले की सांख्यिक जीवन की ओर उन्मुख करने का योग बहुत कुछ लिलन को ही था। डेकन एजुकेशन सोसाइटी ने अपने सदस्यों के साथ-साथ आन्दोलन के उच्च आदर्श रखे। 1885 की 2 जनवरी का फम्मुशन कॉलेज की स्थापना हुई। पूर्ण 'नू स्कूल' के प्रारम्भ में ही लिलन तथा उनके सहकर्मियों का उद्देश्य उच्च शिक्षा की स्वदेशी रूप प्रदान करना था। इसने लिए आत्मशिक्षा के आदर्श का अनुसरण करना और सम्पूर्ण क्षति को शिक्षा के कार्यों में केन्द्रित करना आवश्यक था। 1890 के अपने प्रसिद्ध स्वागत में लिलन ने अपने दैविक जीवन के तीन वाक्यवादी का उल्लेख किया था। 1880 से 1882 तक निर्माण का काल था। 1883 से 1885 तक संगठन का काल था। इन दोनों कालों में सदस्यों ने अपने की सोसाइटी के आदर्शों से आग्रह रखा। 1885 से 1890 तक वन से वन शिक्षा की दृष्टि है, तीव्रता काय था। इस काल के निपटन के बीच अकुरुित हुए और इसलिए 1890 के 4 अक्टूबर को लिलन ने अपना स्वागत द दिया।

लिलन तथा सुरेन्द्रनाथ बनर्जी दोनों ही चाहते थे कि विद्यार्थी स्वदेशी आन्दोलन में सक्रिय-विश्व हो। भारत सरकार ने आन्दोलन की पुष्टि करने के उद्देश्य से 6 अप्रैल, 1907 को 'रिपले करक्यूलेर' नामक एक गयी फिटली जारी की। जिन्तु सरकार ने दमन का विरोध ही अधिक गहरा किया उठना ही राष्ट्रीय शिक्षा का आन्दोलन यथार्थ और महाराष्ट्र में और प्रचलता गया। रामकृष्णारी पाण्डे गुरुदास बनर्जी तथा अरविन्द घोष ने अज्ञान के नये राजवादी गतिविधियों में प्रमुख भूमिका ली। लिलन की दक्षता और सरक्षण में सामग्रीय में भी समय विद्यालय स्थापित किया गया। महाराष्ट्र विद्या प्रसारण मण्डल ने पश्चिमी भारत के पश्चिमी काली मापी शिक्षा में 'चान' एवम् करना प्रारम्भ कर दिया। रानाडे दयानुध, लिलन, जार एम रीच, मा बीकापुरकर आदि तथा

अब सरकार ने बड़ा एजन्ड कराने का काम में बहुत उत्तिक लागवादी । समस्त विद्यालय विद्यालयों के कुछ नाम भी राजशाही समस्त व नाम पर स्थापित किया गया था, जिनमें राष्ट्रीय विद्या ने क्षेत्र में ऐसा महत्वपूर्ण काम किया जिससे अब सोचा भी नाम करना की प्रेरणा और विद्या प्राप्त हुई । 1910 में सरकार ने अपना दमन कर दिया । रोड, पब्लिक प्राइम तथा अब अनेक विद्यालयों के विषय की इस बात के लिए आलोचना की है कि उन्होंने विद्यालयों की राजनीतिक आन्दोलन में सम्मिलित होने के लिए प्रोत्साहित किया । जिससे यह सभी नहीं चाहते थे कि विद्यार्थी अपने तथा कार्यवाही को छोड़ दें । किन्तु उनका आग्रह था कि युनि राष्ट्रीय युक्ति का पब्लिक नाम प्रारम्भ हो गया है, अब आवश्यक है कि युवकों के उत्साह को भी मातृभूमि की सेवा में सम्मिलित कर दिया जाय ।

1908 की 27 फरवरी की घोषणापत्र में का देशभूषण की सम्प्रदाय में हुई एवं तथा में जिसमें ने राष्ट्रीय विद्या पर नामक दिया । उन्होंने कहा कि महाराष्ट्र के राष्ट्रीय विद्या का आन्दोलन समस्त राजशाही में प्रारम्भ किया था । उन महान् आशय के कारण ही विषय जनता के विद्या का प्रसार करने के लिए महाराष्ट्र के जन कहे । जिसमें ने उन समय प्रचलित अंग्रेजी विद्या प्रणाली की बहुत आलोचना की क्योंकि उसने अत्यन्त धार्मिक विद्या की युक्त जैसा की सभी की । “अंग्रेजों की विद्या प्रणाली के अन्तर्गत बीस वर्ष तक करने के बाद मनुष्य की धार्मिक विद्या के लिए कोई दूसरा द्वार छल्लाना पड़ता है । जो नाम अपने पूरे विद्यालय में मन में यह विचार जन्म लेते हैं कि यह कोई आश्चर्य है उसमें जनता की कोई माया हो नहीं रहे जाही ।” जिसमें ने बाकी महान् स्थापन के भी राष्ट्रीय विद्या पर एवं नामक दिया । उन्होंने जनता का वि राष्ट्रीय विद्या प्रणाली का निर्माण करने के लिए बार बार अग्रिम हैं । धार्मिक निर्माण के लिए धार्मिक विद्या को उन्होंने सहायता महान् दिया । उन्होंने कहा “केवल धार्मिक विद्या धार्मिक का निर्माण करने के लिए पर्याप्त नहीं है । धार्मिक विद्या आवश्यक है क्योंकि सभी विद्या की और आदर्शों का अध्ययन हमें प्राप्त करनी के दूर रखता है । हम हमें सचमुचमें परमात्मा के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान कराता है । इसका धर्म जनता है कि अपने सभी के मनुष्य जैसा एवं बन करता है । अब हम अपने सभी के देवता बन सकते हैं, तो अपने सभी के हम पुरोपकारियों की प्रति प्रतिमान और विद्यालय बना नहीं बन सकते ? कुछ सोचा का बहुत है कि हम के मगरे उत्पन्न होते हैं । किन्तु मैं कहता हूँ ‘‘हम में भगवान् करना नहीं विद्या है ?’’ यदि सरकार ने कोई ऐसा कार्य है जो अब धार्मिक विद्यालयों के प्रति सहिष्णुता का उपदेश देता है और नाम ही नाम अपने सभी पर हट रहना लिखा है, तो यह केवल हिन्दुओं का धर्म है । इन सभी के हिन्दुओं को हिन्दु धर्म की और मुसलमानों की इस्लाम की विद्या की ज्ञानों । और बहुत यह भी लिखा जा सकता कि मनुष्य को दूसरे सभी के जेदों की तुलना और ज्ञान करना चाहिये ।” जिसमें ने औद्योगिक विद्या देने पर भी और दिया । इसके अतिरिक्त उन्होंने कहा कि विद्या सम्प्रदाय के राजनीतिक विद्या भी की जानी चाहिये, नहीं तो जनता के अपने अधिकांश और जनता के प्रति आहुति उत्पन्न नहीं होगी । जिसमें ने सोचना की कि यदि अब चाहते हैं कि विद्यार्थी पढ़ने हुए की आत्मज्ञान कर सकें तो विदेशी भाषा के अध्ययन का काम हम करना होना, नहीं तो वे जो कुछ पढ़ें उसे बिना समझ रखते रहेंगे, और के अधिकांश बुद्धिमानों से अधिक कुछ न बन सकेंगे । जिसमें ने समय विद्यालय में लिए पाठ पाठ हमारा एकत्र करने के हेतु 1908 में महाराष्ट्र का दौरा प्रारम्भ कर दिया था, और इस काम में उन्हें आपी सफलता मिली । 1907 1908 में उन्होंने राष्ट्रीय विद्या पर अनेक भाषण दिये । 14 सितम्बर, 1907 का शोराधम केन्द्र नामके के माधवराव बरवा में एवं भाषण दिया । जिसमें ने उस समय की सम्प्रदाय की और कहा कि महाराष्ट्र के विद्यालयों में राजशाही नीयों की और जरा ही दक्ष की युक्तों जैसी नामी चाहिये ।

4 जिसमें के समाज-सुधार सम्प्रदाय विद्यालय

(क) सामाजिक सुधार तथा राजनीतिक स्वतन्त्रता—धार्मिक की बुद्धिवादी वैज्ञानिक और नैतिक मान्यता तथा भारत की धार्मिक, पुरातनत्वों की और परम्परागत महान्ति के बीच समस्त के कारण समाज सुधार की समस्या सभी महत्वपूर्ण हो सभी की । भारत में अनेक आन्दोलन का उदय हुआ जिन्होंने सामाजिक परिवर्तन और स्वातन्त्र्य का समर्थन किया । इनमें के बहुत समाज और

[illegible]

इसनी ही महत्वपूर्ण एक बात समझा यह थी कि राजनीतिक आन्दोलन सरकार द्वारा सामाजिक के बीच क्या सम्भाव्य हो। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की राजनीतिक आन्दोलन एकदम निज था समझी जाने लगी थी। 1885 की कांग्रेस के अध्यक्ष जेम्स सी बर्नार्ड ने अनुसार कांग्रेस का एक उद्देश्य "वर्तमान समय के अस्थायित्व अधिक महत्वपूर्ण और तात्कालिक सामाजिक प्रश्नों पर नज़र के निश्चित वर्गों के विचारों की पुन विवेचना करने के उद्देश्य के लिए विचारों का अधिकृत सत्रा तैयार करना" थी था। विन्स्टन चर्चिल की पुन विवेचना करने के उद्देश्य के द्वितीय अधिवेशन में बार्नाबार्ड की ओरनी ने स्पष्ट घोषणा की "राष्ट्रीय कांग्रेस को चाहिए कि वह अपने ही उद्देश्य के अन्तर्गत ही प्रश्नों के अन्तर्गत सत्रा तैयार करना" राष्ट्र प्रत्यक्ष रूप से सम्मिलित हो सके, समाज सुधार की समस्याओं तथा अन्य वास्तविक प्रश्नों का बंध सम्मेलन के लिए छोड़ देना चाहिए।" जिस भी सामाजिक तथा राजनीतिक समस्याओं का एक माध्यम मिलाने के विरुद्ध थे। उनका कहना था कि राजनीतिक प्रवृत्ति तात्कालिक आवश्यकता की धोरण है, सामाजिक प्रश्नों पर धीरे धीरे विचार दिया जा सकता है और सामाजिक सुधार तब तक सारे जा सकते हैं। जिसके ने 'जैमिनी' में अनेक लेख लिखकर अपने समाज सुधार के लिए सामाजिक आर्थिक के वास्तविक प्रश्नों के अन्तर्गत ही समाज सुधार के लिए सामाजिक सुधार तब तक सारे जा सकते हैं।

[illegible]

तिलक सुधारकों की इस चिन्तनशीलता के चाँसे में वहाँ आये कि समाज सुधार राजनीतिक प्रवृत्ति की मूल धारा है। सुधारका का आग्रह था कि राजनीतिक चरित्र ने उस समय की उपेक्षा करने के लिए आवश्यक है कि उससे पहले हिन्दुओं की सामाजिक आवश्यकता में सुधार कर लिया जाय। तिलक ने इस प्रस्तावना का विरोध किया कि अनेक शासकों ने राजनीतिक अधिकार प्राप्त करने के लिए पहले समाज का सुधार कर लेना आवश्यक है। उन्होंने उस समय के आपराजिक वातावरण किया। आधुनिकतावादी न समाज सुधार की उन सभी योजनाओं की उपेक्षा नहीं कर लिया था बल्कि भारतीय सुधारक समूहों को यह भी, कि तु राजनीतिक दृष्टि से उनका देश एक ही अघोषित की अवस्था में था हुआ था। 1898-99 में तिलक ने लका और बड़दा की यात्रा की। उन्होंने देखा कि उन देशों में भारत से कहीं अधिक सामाजिक स्थिति है, किन्तु राजनीतिक क्षेत्र में वे फिर भी पिछड़े हुए थे। इन यात्राओं के द्वारा तिलक ने इस तक का निष्कर्ष निकाला कि समाज सुधार राजनीतिक प्रवृत्ति और मुक्ति की अपेक्षा में मूल्यवान् है। वे इन विचारों पर मई-जून 1900 और 1901 के दूर रहे कि राजनीतिक अधिकार प्राथमिक तथा निरपेक्ष महत्व की वस्तु है, और अधिकाधिक राजनीतिक अधिकारों का प्राप्ति करना भारत की सर्वोच्च आवश्यकता है। सामाजिक समस्याओं को उसमें बाद मुलभूतता का प्रभाव है। अपने जीवन के परवर्ती काल में तिलक देश की समस्याओं में समाहित व्यक्तियों के बीच एक विशाल के निष्कर्ष का बोध करने लगे थे। उन्होंने कहा कि मैं अपनी समस्त राजनीतिक अधिकारों के प्रश्न को हल करने में खुश रहूँ। कुछ बाद लोगों की चाहिए कि वे दक्षिण अफ्रीका के सामाजिक सुधार के काम की अपने हाथों में ले लें। इस सब पर विचार करते हुए वह कहना चलत हुआ कि तिलक सामाजिक सुधार का विरोध में और पुराने पंथों और मतवालों के अनुसार समर्थन थे।⁶ अपने लेखों और भाषणों में उन्होंने बार-बार इस बात को स्पष्ट किया है कि वे समाज सुधार के विरोध नहीं थे। तिलक ने राजनीतिक मुक्ति को राष्ट्र की सर्वोच्च आवश्यकता बताया और इस बात का प्रभाव दे दिया कि समय राष्ट्र की दक्षिण का निर्माण करने की दुरवस्था थी। सुधारकों और आधुनिकवादियों की सुधार-वादावादी चिन्तना ही आवश्यक क्यों न होनी, समाज में एक शासन के राष्ट्र की एकाग्रता के लक्ष्य होने का भारी बोध था। राष्ट्र का जीवन एक अविच्छिन्न ऐतिहासिक और आधुनिक प्रवाह है। तिलक का कहना था कि इस प्रवाह की दिशा स्पष्ट करना उचित नहीं है, इस समय आवश्यक है कि इसकी ओर अधिक ध्यान दिया जाय। वे राष्ट्र के जीवन की उत्पत्ति करने के लिए निष्ठा से सोचना चाहते थे किशासक मंत्र में राजनीतिक व्यवस्थित करने के निष्कर्ष की विचार की करते। मत यह समझना मूल है कि तिलक की राजनीतिक आधार सिद्धि एक एकीकरण के लक्ष्य की आधार सिद्धि थी, और इस लिए उन्होंने पटुता के साथ उत्तम आधुनिक राजनीतिक चिन्तन और सामाजिक प्रतिस्पर्धा के लक्ष्य की स्थापना की स्थापना की। इस मत की ओर अधिक ध्यान देने वाला तिलक का महान् धनुष पर वैरोलान्त विरोध था। उनकी पुस्तक 'द इन्डियन अवरोल' (भारतीय अवरोल) में प्रकाशन के समय से इस मत की भारतीय राष्ट्रवाद के एक अनेक विद्वानों ने दुहराया है जिनमें आलोचनात्मक दृष्टिकोण का अभाव है। यदि हम भारतीय देश के राष्ट्रवाद के इतिहास का अध्ययन करें तो हमें पता चलेगा कि राष्ट्रवाद का निर्माण सर्वोपरि आधुनिक बुद्धि के आधार पर नहीं किया जा सकता, बल्कि इसके लिए सर्वोपरि अभाव की आवश्यकता होती है। और यह एकता लक्ष्य सम्भव हो सकती है जब कि लोग ऐतिहासिक विचारों, लक्ष्य विचारों और परम्पराओं की साधुता स्मृति के लक्ष्य के अनुसार आग्रह हो। इसलिए समाज की विविधता साधुता और मूल्यों का राष्ट्रवाद के आधार का निर्माण करने में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। ऐतज से भी राष्ट्र की एक प्रवृत्ति अथवा चरित्र माना है। राष्ट्र के प्रवृत्ति के लक्ष्य पर अग्रसर होने के दौरान उसकी साधुता अधिष्ठाता की वापस करना आवश्यक है। तिलक हिन्दू समाज की समस्त नैतिक तथा आध्यात्मिक

6. यह सब बातें वे अपनी पुस्तक *India as Theatrical* में पृष्ठ 186 पर की विवृतिपूर्ण रूप में बताते हैं। यह निष्कर्ष प्रतीत होता है। 'जब तिलक ने सोचना की कि भारतीय राष्ट्रवाद का मूल अर्थ नहीं ही समाज और समाज आधार समाज हिन्दू धर्म होता बल्कि ही अभाव राष्ट्रवाद की प्रवृत्ति के लक्ष्य में प्रवृत्ति के लक्ष्य में प्रवृत्ति का प्रभाव ही था।

लोक मान्यताओं का परिचय देना चाहते थे। किन्तु आज ही आज उनका यह भी विषय है कि राजनीतिक अधिकारों को प्राप्त करने के लिए सामाजिक स्वायत्तता की आवश्यकता नहीं रहती या सकती। इसीलिए हिन्दू धर्म के शास्त्रों के अनुसार लोक भारतीय राष्ट्रवाद के महारथी बन गये। वे राजनीतिक अधिकार चाहते थे क्योंकि वे समझते थे कि उनको प्राप्त करने ही राष्ट्र के बहुमुखी विकास के लिए अनुचित आलोचना का निर्माण किया जा सकता था।⁷ इसी बीच के यह भी चाहते थे कि उपदेश और उदाहरण के द्वारा राष्ट्र की चेतना को सामाजिक परिवर्तन प्रोत्साहित करने के लिए प्रेरित किया जाय।

समाज सुधार के प्रति तिलक के रवैये थे एक महत्वपूर्ण तत्व यह था कि वे सामाजिक एवं धार्मिक विषयों के लोकोपदेश के हस्तक्षेप के विरुद्ध थे। उनका कहना था कि जब कोई सामाजिक कानून बनाया जाएगा तो उसे लागू करना पड़ेगा और उसकी अनुमति के सम्बन्ध में उठने वाले विवादों का निपट करने की आवश्यकता होगी। इसके अतिरिक्त धर्म और सामाजिक की शक्ति का प्रसार होगा। तिलक लोकशाही की शक्ति के क्षेत्र का विस्तार करने के विरुद्ध थे। वे इस पक्ष में नहीं थे कि लोकशाही का इस क्षेत्र में आवश्यक और हस्तक्षेप ही को इस समय तक आवश्यक तथा हस्तक्षेप से मुक्त रहना पड़ा था। उनका कहना था कि एक मिनट सम्पत्ति के सुखों को जानने वाले विदेशी शासकों को सामाजिक विषयों में कानून बनाने और लागू करने का अधिकार नहीं देना चाहिए क्योंकि वे विषय समस्त हिन्दू जनता की भावनाओं और चेतना के अंतर्गत हैं। विदेशी लोकशाही की अवधारणा सदाताम विचारों के अन्तर्गत आती है और उसे प्रत्यक्ष होकर भारत की सामाजिक स्थिति का विचारपूर्वक करने का अवसर देना मुश्किल नहीं है। तिलक को यह अनुमान था कि हिन्दू लोग लोकशाही के समक्ष खड़े होने के सामाजिक कानून बनाने की आवश्यकता करते और इस प्रकार दूसरों को दिखाते कि हिन्दू इतने प्रतिभाशाली हैं कि वे अपनी सामाजिक समस्याओं को भी नहीं भूल सकते हैं।⁸ तिलक का कहना था कि इस प्रकार की भावना शक्ति से स्वयं की नैतिक तथा चार्मिक नीति बनाने वाली है। उल्लेख करना कि भारतवासियों में राजनीतिक योग्यता है, और अतीत में उन्होंने महान् सफलताओं का प्रदर्शन किया है। इससे समाज सुधार को जबरन से आगे बढ़ाने का कोई अर्थ नहीं है। यदि देश स्वतन्त्र होता और सरकार जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों की होती तो तिलक का दृष्टिकोण दूसरा होता। अतः तिलक ने लोकशाही द्वारा सामाजिक कानून बनाने का जो उपाय विरोध किया उसके मूल में वही देशभक्ति की भावना ही थी। वह कहना किताब अलग है कि वे एक जनोन्मुख नेता की भाँति अपना महान् हृदय देना चाहते थे और इसीलिए उन्होंने हिन्दू जनता को जगाने के लिए उनके देशी देशवासियों, मलबाड़ी, धार्मिक मान्यताओं और सामाजिक पूर्वार्थों का उपयोग किया।

यह सत्य है कि तिलक को समाज सुधारकों का उपाय पसन्द नहीं था। सुधारकों ने पाश्चात्य शिक्षा पायी थी, इसलिए वे हिन्दू समाज में पाश्चात्य सामाजिक विचारों को प्रविष्ट करना चाहते थे। हिन्दुओं की धर्मसहिष्णुता और धर्मों का वे समान उपाय करते थे। सामाजिक दृष्टि से तिलक का भी विश्वास था कि समय के परिवर्तन ने साथ साथ धर्मशास्त्रों की व्याख्या के परिवर्तन होना आवश्यकता है। यही नहीं, वे यह भी जानते थे कि आवश्यकता पड़ने पर नये सामाजिक कानून भी बनाने पड़ेंगे। किन्तु उनका कहना था कि जब तक बहुसंख्यक जनता धर्मशास्त्रों के उपदेशों को मानती है तब तक उनके विचारों और धर्मशास्त्रों का उपाय करना अनुचित है। भारतीय दृष्टिकोण की विशेषता यह है कि समाज सुधारकों का भी ये। मानक और कबीर आध्यात्मिक व्यक्ति थे।

7 एक एक धर्म के तिलक ने राजनीतिक धर्म की आवश्यकता व्यक्त की है। "तिलक" के विचारों की व्याख्या नीति का प्रतिनिधित्व विरोध किया और जनता अलग राष्ट्रवाद का सिद्धान्त देन के समक्ष रखा। उनके सिद्धान्त का अर्थ था कि भारतीय जनता का राष्ट्रवाद एक ऐसा धर्म है जिस अतिरिक्त पड़ने के ही पुनः बन चुका है और उनका अनुमान था कि अधिकतर किसी प्रकार के राजनीतिक सामाजिक अथवा धार्मिक विचारों की पुनः पुनः अवधारणा नहीं है। तिलक ने पुनः देखा कि वे भी वह पुनरीति ही होती है भारत विरुद्ध धर्म धर्म का अन्तर्गत धर्म उनके अनुचित धर्म ही थे।

8 1955 में पुनः भी नये नये धर्म हृदय आलोचना पर आधारित।

विन्तु आधुनिक स्वरूपित मुपारक अधिन के अधिक बुद्धिवादी ही थे और उनमें से कुछ को तो रोकर-पाड़ी का कुपापाप करने और उनके अनुग्रह को दया में समझे-मूलन में भी लगीन नहीं था। ऐसे लोगों को हिन्दुओं की उन सामाजिक महिमाओं के सम्बन्ध में विचार बन का गलित अधिकार नहीं था जिनका हिन्दुओं की दृष्टि से एक के सम्बन्ध था। समाज सुधार के सम्बन्ध में इन सुधारकों की धारणाएँ धर्मनिरपेक्ष थीं और धर्मधर्म जीवन प्रणाली पर आधारित थीं। सामाजिक क्षेत्र में इनका दृष्टिकोण धर्मनिरपेक्ष था इसलिए सामाजिक तथा नीतिगत मामलों में उन्हें राजनीतिक सत्ता के नियंत्रण से विरक्त था। इनमें विपरीत विचार धुराधर्मियों की तथा इतिहासवादी थे, इसलिए उनका विश्वास था कि सामाजिक बेधना या विनाश धीरे धीरे हुआ करता है। वे सामाजिक परिवर्तनों की आवश्यकता को स्वीकार करते थे, विन्तु उनकी धारणा थी कि ऐसे परिवर्तन इन कल्प नित्य तथा आध्यात्मिक चरित्र के लोगों के नेतृत्व में किये जाने चाहिए जो हिन्दू जीवन प्रणाली के पुन रूप ही, ऐसे बुद्धिवादियों का परिचय करने का कोई अधिकार नहीं है जो समाधारकों द्वारा नवमान सत्ता के विरुद्ध विषय उपलब्ध करते हैं, अतः स्पष्ट है कि समाज-सुधार के सम्बन्ध में जितना कि दृष्टिकोण उनके धार्मिक सामाजिक तथा राजनीतिक दृष्टान्त पर आधारित था।

(ख) जिसका सत्ता आधारकर—आधारकर पुनितवादी थे। वे समाज-सुधार के उग्र तथा उन्माही समूह थे। एक बार 'मुपारक' में उन्होंने अपने सामाजिक दृष्टान्त की व्याख्या इस प्रकार की थी—“हमें सभी प्रकार की प्रयोग-आरम्भ करने का स्वतन्त्रा ही अधिकार है जितना प्राचीन अधिवा को था, हम पर ईश्वर का उत्तर ही अनुग्रह है जितना प्राचीन आत्माओं पर था, हममें सम्पूर्ण और अस्मरक के बीच फेद करने की इति अधिक नहीं तो कम से कम उनकी ही योग्यता अवसर है जिसकी उन्नत थी, दलित वर्गों की तथा देशकर हमारे दुःख करने भी अधिक करना से प्रवृत्त हो उठते हैं, विश्व के सम्बन्ध में हमारा मान उनसे कम नहीं, अधिक है, इसलिए हम उनके द्वारा निर्दिष्ट उद्देश्य जिनको वा पालन करीये किहू हम अपने लिए कल्याणकारी समझते हैं, और जो हमारी समझ में हासि-वारक हैं उनमें स्वातंत्र्य पर हम दूसरे नियमों की स्वीकृति करेंगे। इसी माग पर चलकर हम सुधार का काम करना चाहिए। एक क्षण के मत की दूसरे से विरुद्ध उद्घोष करने और सबसे बीच काम काम स्थापित करने का प्रयत्न व्यर्थ है।” आधारकर सामाजिक आधारक के समर्थन में, इसलिए उन्होंने जगतिनील और उदार सामाजिक विचार का पक्षपात किया। उनके सामाजिक सिद्धांत जगतिनील थे, और राजा राममोहन राय की भांति उनमें मन में भी उत्पत्तीन हिन्दू समाज की सामाजिक दुरावस्था का उन्मूलन करने की उत्कट आकांक्षा थी। वे अतः विचार तथा बुद्धि विचार के विरुद्ध थे। उनका राजनीतिक सिद्धांत था कि राज्य की सामाजिक जीवन की उन्नति के लिए सक्रिय प्रयत्न करना चाहिए। उनका दृष्टिकोण फ्रेडो के उन विचारों से मिलता जुलता है जिनका निरूपण उनमें 'रिपब्लिक' (भोक्तव्य) तथा 'सर्व' (कानून) में किया है। फ्रेडो चाहता था कि राज्य की विचार तथा उद्दिष्टय समस्याओं के सम्बन्ध में कानून बनाये चाहिए। आधारकर की दृष्टि में सार्वजनिक समस्या सामाजिक दुरावस्था के उन्मूलन की थी, अतः उन्हें विदेशी राज्य में द्वारा सामाजिक तथा वैवाहिक जीवन के नियंत्रण के लिए कानून बनाने आन के कोई हानि नहीं दिखायी देती थी। 'कसरी' जिनमें एक व्यक्ति का कम नहीं था। इसलिए यद्यपि आधारकर ने 1887 तक 'कसरी' का कायमार्त समाप्त, फिर भी वे उसे अपने मुपारवादी सामाजिक विचारों के प्रचार का साधन न बना रहे। अतः एक प्रकार का समझौता कर लिया गया। निदयत किया गया कि यदि आधारकर उस सामाजिक मुपारों के समर्थन में कोई लेन लिये तो वे उसे एक पुष्प सङ्ग्रह में अपने हस्ताक्षर सहित प्रकाशित करें अथवा उसे समाज की एक 'सम्प्रदाय लेन' के अन्तर्गत प्राप्त हैं। किन्तु जसा कि कालांतर में सिद्ध हो गया, यह समझौता अधिक समय तक चल न सका।

जितना धुराधर्मियों की मजबूती के समय में। वे समाज सुधार के पुन विरोधी नहीं थे किन्तु जिस रूप में सामाजिक सुधारों का समर्थन किया जा रहा था उसका उद्देश्य विरोध किया। उन्हें धार्मिक के विनाश था, और वे स्वीकार करते थे कि समस्त एक जगत्पुनर्वादी की दृष्टि है जो विवेक और सत्य बुद्धि से युक्त था। इसलिए वे नहीं चाहते थे कि धर्मों के साथ सम्बन्ध और धीमा मुपारी का व्यवहार किया जाय। विन्तु साथ ही साथ वे यह भी मानते थे कि देश भर के अनुसार धर्मों

में परिचलन और सञ्चोपन की निष्ठा या सतता है। इस सम्बन्ध में दमोदरेशु का उदाहरण उत्तेजनीय है। दमोदरेशु ने विवाह की प्रथा आरम्भ की थी। तिलक वहीं चाहते थे कि विदेशी मूल्यवर्धक राजनीतिक तथा सामाजिक व्यवस्था अधीन जनता के सामाजिक तथा धार्मिक मामलों में बिना नवीन प्रथाओं और परिपाटियों का सम्मेलन करे। यदि वे हुंजस के उस राजनीतिक सिद्धांत से परिचित होते या धमकाव पर राजस्व के निवर्तन का समझा करता है तो वे अवश्य ही जनता को प्रेरित करते। तिलक का कहना था कि समाज-सुधार की सही प्रवृत्ति यह नहीं है कि वह विदेशियों द्वारा जनता से प्राप्त ज्ञान, सही तरीका यह है कि जनता की धीरे-धीरे प्रबुद्ध किया जाय जिससे जनता सुचारुता अधीनकार करने की सामाजिक चेतना का विकास हो सके। तिलक और आगरकर ने बीच-बीच में के दिना से ही एक सूक्ष्म विवाद चलता आया था। विषय यह था कि समाज सुधार तथा राजनीतिक सुक्ति, इन दोनों में से प्राथमिकता किसकी हो जाय। आगरकर चाहते थे कि जनता में उत्थान सामाजिक जागृति उत्पन्न की जाय। जनता कहना था कि यदि सामाजिक जीवन में सुद्धि-लाभ या समाज में ही जाय तो फिर राजनीतिक समस्याएँ उत्पन्न उत्पन्न नहीं पैदा करेंगी। इससे विचरीत तिलक का हृदय विद्रोह था कि देश की आचारभूत आवश्यकता विदेशी नीति-पद्धति के द्वारा काट-गूलन करना है, और यदि यह सम्भव न हो सके तो उस दराज की वचन तो अवश्य ही करना हीया। एक बार भारत की आत्मा के स्वभाव ही जाने पर देश के विचारों स्वतन्त्रताओं के वातावरण में सामाजिक परिचलन की सम्भावना के विषय में समुचित विचार कर लेंगे। इसलिए तिलक को इसमें कोई शोषण नहीं दिखायी देता था कि एक भिन्न सम्प्रदाय और सन्नद्धि ने लोगों को हिन्दुओं की सामाजिक विविधता के सम्बन्ध में विचार करने के लिए आमंत्रित किया जाय। निम्न तिलक और आगरकर ने से कोई भी सम्मेलन के लिए संसार नहीं था। दोनों ही ओजस्वी व्यक्ति थे, अतः उनकी मानसिक रचना की देखते हुए उनके बीच सम्बन्ध विच्छेद अविनाश था।

तिलक तथा आगरकर का एक मतभेद समय के साथ साथ अधिक गम्भीर होता गया। 'केसरी' के सम्बन्ध अनेक कारण आगरकर के उस सामाजिक दृष्टान्त के समुत्पन्न हो सके। पल्लववत् तिलक तथा आगरकर के बीच सार्ध अधिक पौष्टी होती रही। कुछ राजनीतिक घटनाओं ने मतभेद को और तीव्र कर दिया, उदाहरण के लिए, रत्नबाबाई का मामला। उन दिनों 'केसरी' के अकादमिक विचारों में हमें तिलक तथा राजादे के नेतृत्व में कार्य करने वाली सामाजिक सुधारकों की मण्डली के बीच घटती हुई घटका का परिचय मिलता है। 1885 की 9 जून को 'केसरी' में राजादे के विरुद्ध एक भावपूर्ण बहुर और व्यंग्यपूर्ण लेख छपा। अतः, मतभेद बढ़ने के कारण आगरकर ने अक्टूबर 1887 में 'केसरी' से अपना सम्बन्ध तोड़ लिया। उस समय, तिलक से वासुदेवराज वेल्कर और एक-एक गोखले 'केसरी' और 'मराठा' के स्वामी बन गये। 1887 से तिलक को 'केसरी' का सम्पादन प्रोत्साहित कर दिया गया। 'केसरी' के सम्बन्ध तोड़ने के पश्चात् आगरकर ने अक्टूबर 1888 में 'सुधारक' नाम का अपना अलग पत्र प्रकाशित करना आरम्भ कर दिया। यह पत्र अंग्रेजी तथा मराठी दोनों भाषाओं में प्रकाशित होता था। गोखले कुछ गोखले कुछ समय तक उसके अंग्रेजी अंक के सम्पादक रहे थे। गोखले तथा आगरकर ने पत्र के प्रकाशन के प्रथम वर्ष के केवल बार-बार प्रतिमास वार्षिकिकी स्वीकार करने राजनीति तथा पत्रकारिता के क्षेत्र में त्याग का उच्च आदर्श प्रस्तुत किया। 'सुधारक' के आरम्भ होने के समय से 'केसरी' तथा 'सुधारक' दोनों के बीच आलोचना तथा तूटू मैत्री का रूप आरम्भ हुआ। एक बार 'सुधारक' ने तिलक पर प्रच्छन्न प्रहार किया। उसने उन नेताओं की असतता की जो अपना नेतृत्व कायम करने के उद्देश्य से जनता के लोगों का उद्घाटन करने से इच्छा थे। 'सुधारक' ने कहा कि ऐसे नेता जनता की बौद्धिक विकास की ओर ले जाते हैं। पीमेल हार्ड स्कूल, पुना के पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में मतभेद 'केसरी' और 'सुधारक' के बीच विवाद का एक प्रसिद्ध कारण था। तिलक का विचार था कि लड़कियों की शिक्षा हो ही जानी चाहिए, निम्न के यह कारणों सम्प्रदाय के रूप में अपने के विरुद्ध थे।

(ग) 1891 का सम्प्रति सामु अर्थविवेक—19 जनवरी, 1891 को कलकत्ता में इन्हीं विषय से मिन्स्टेरियल कॉमिटी ने 'सम्प्रति सामु विवेक' विधिवत प्रस्तुत किया गया। विवेक के सम्बन्ध में कहा गया था कि उसका उद्देश्य स्वीकृति की सामु बहाल कर देना है।

अतः स्पष्ट था कि सरकार के सामनायी भी समान सुधार योजना की केवल पहली बात को विचारण किया था। रमेदापट्ट मिसर ने विधेयक का इतर विरोध किया। विन्तु बादराय खाट संसदासत्र ने स्पष्ट किया कि प्रस्तावित विधेयक राजी विमोचिका की 1838 की घोषणा के विरुद्ध नहीं है। 20 जनवरी को 'नेसरी' में एक लेख प्रकाशित हुआ। उसमें कहा गया कि प्रस्तावित विधेयक से हिन्दुओं के धार्मिक रीति रिवाज में अवरोध ही उत्पन्न होगा। और इसी आधार पर जनता को विधेयक का विरोध करने के लिए प्रोत्साहित किया गया। समकालीन महोने लव 'नेसरी' विधेयक के विरुद्ध टिप्पणियाँ और लेख छापता रहा। यद्यपि तिलक के विरोध के बावजूद विधेयक पारित हो गया विन्तु ने उसके बाद भी जनता विरोध करते रहे। मई 1891 में गोविन्द राय तिलक के समाचारिका में पूना में जोधा सम्मेलन हुआ। सम्मेलन के तिलक ने कहा कि शीघ्रतः विधेयक के विरुद्ध है। तिलक के रविवे का कुछ विरोध भी हुआ, फिर भी प्रांतीय सम्मेलन में एक प्रस्ताव पारित किया विन्तुमें कहा गया कि सरकार ने शीघ्रतः की और संशोधित प्लान न देकर मारी भूल की है। तिलक की इस प्रस्ताव के पारित होने से ही सतीत नहीं हुआ। उन्होंने ब्रिटिश पार्लियामेंट में कुछ कामवाही करने का भी विचार किया। उनकी इच्छा थी कि एक विधेयक पार्लियामेंट में प्रस्तुत किया जाय। विन्तु उत्तरांतर राजनीतिज्ञ सत्ता से अवगत करने भारत सरकार के साथ की रद्द करवाना सम्भव न हो सका। यद्यपि तिलक की विधेयक को रद्द करवाने में सफलता नहीं मिली, फिर भी वे सरकार तथा समान सुधारका की मजदूरी का विरोध करने वाला के नेता बन गये।

विन्तु तिलक की केवल परम्परावाद का महान समर्थक समझा जा सकता नहीं है। दिसम्बर 1890 में बलसत्ता के बहुप सामाजिक सम्मेलन में और एक मुपोलनर में एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया जिसमें बाल विवाह का अन्त और वदस्क विवाह का समर्थन किया गया। तिलक ने प्रस्ताव का समर्थन किया, विन्तु सत्तुत के विद्वान होने के बाले उन्होंने जाग्रद किया कि प्रस्ताव के शास्त्र का भी अवगत हुआला दिया गया है उसे निरास दिया जाय। 1891 में नागपुर में भी एक कार्य में समाचारिका में हुए पौर्ण्वे सामाजिक सम्मेलन में भी तिलक सम्मिलित हुए। उसमें विधवा विवाह के समर्थन में एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया और जनता से अपील की गयी कि वह इस विषय में सरकार की सहायता करे। तिलक ने एक सशोधन प्रस्तुत किया कि विधवा विवाह आंदोलन के समर्थक केवल विवाह-समारोह न सम्मिलित होकर ही सतीत न कर सें, बल्कि वह अपनी समन्वित दिशाले के लिए ब्याहिक योजना में भी आम सेवा चाहिए। विन्तु मुधारकी के लिए वह कठिन परीक्षा थी, इसलिए उसमें से बच निकलने के लिए उन्होंने प्रस्ताव में 'आंदोलन की सहायता के लिए' 'व्यासमन्त्र' शब्द और सुदस्य दिये। नागपुर सामाजिक सम्मेलन की विषय समिति की बैठक में तिलक की उपस्थिति तीव्र विवाद का कारण बन गयी। तिलक ने अनेक श्रुती के ग्रन्थ लेकर राजादे को यह स्वीकार करने पर विवश किया कि विषय समिति की रचना में कुछ अनिमित्तताएँ हुई हैं। तिलक साहसी व्यक्ति थे इसलिए वह मुधारकी में देखा कि वे मजदूरी करने वाले प्रत्येक पुरुष रहे हैं जो उन्होंने तिलक की सम्मेलन से निरास देने की भी धमकी दी। समान सुधार में सम्मर्थन में तिलक के रविवे की स्पष्ट करने के लिए यह जाने की भी घटनाओं का उल्लेख कर देता अनुस-मुक्त न होगा। 1914 में शास्त्री ने मजस विधान परिषद में विवाह की आयु की बढ़ाने के लिए एक विधेयक प्रस्तुत किया। तिलक ने नेसरी में उसकी कटु आलोचना करी। 1918 में विद्वत भाई पटेल ने इन्पिरियल कोसिल में हिन्दु विवाह विधेयक प्रस्तुत किया। तिलक ने इस विधेयक का भी विरोध किया विन्तु उन्होंने 'भारत' की एक पत्र लिखकर स्पष्ट कर दिया कि मैं सामाजिक तथा धार्मिक आधार पर विधेयक का विरोध नहीं कर रहा हूँ। मैं इसके विरुद्ध इसलिए ही इससे उत्तराधिकार के धार्मिक कामन में हस्तक्षेप होगा।

(घ) तिलक तथा राम बाही की घटना—4 अक्टूबर, 1890 का दिन पूना के सामाजिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण दिन बन गया, क्योंकि उस दिन तिलक, राजादे तथा कोलले अनेक जननीय व्यक्तियों ने एक ईकाई मिशनरी के घर पर बाल भी की। परम्परावादी लोगों की दृष्टि में यह एक अन्धकार सामाजिक अवस्था था अतः इस विषय को लेकर अकराधाय के धार्मिक 'पापलव' में एक

इस की अग्रहमति प्रकट की, और कुछ समय के लिए ऐसा लगा कि ईसाई बनाने की प्रक्रिया समाप्त कर दी गयी है। 'वेसरी' समाचारों के द्वारा जो सन्देश की दृष्टि से देशता भाषा था, किन्तु राजादे और मन्दाकर का विचार था कि शिक्षा के लिए ईसाइयों से भी अनुदान लेने में कोई हानि नहीं है, बल्कि अनुदान न लेने का कोई उचित आधार नहीं है। राजादे तथा मन्दाकर सम्प्रदाय के मुख्याध्यापिका के विरुद्ध 'वेसरी' के बड़े ही बड़े सम्दा का प्रयोग किया, और शीघ्र ही मित्र हो गया कि 'वेसरी' का रवैया सभसा उचित था। समाचारों का एक था कि मुझे ईसाइयों से सहानुभूति इस लिए नहीं पड़ रही है कि हिन्दू धर्म के प्रति बोजबाओ के लिए कोई विरोधी सहानुभूति देने के लिए राजी नहीं होते। 13 अगस्त, 1893 को दो वर्ष के पले आगे इस विवाद का अन्त हो गया। राजादे तथा मन्दाकर ने शारदा सदन की परामर्श समिति से त्यागपत्र दे दिया।

शारदा सदन विवाद ने निर्भान्त रूप से मित्र कर दिया कि शिक्षक हिन्दू विचारों की वैयक्तिक-आध्यात्मिक प्रलोचना से ईसाई बनाने के विरुद्ध थे। वे शारदा सदन सभा के विरोधी नहीं थे, बल्कि यह भी कि वह अपने की नीतिक विषयों की शिक्षा देने तक सीमित रहे। सितम्बर 1889 से ही समाचारों के निम्नलिखित द्वारा के सम्बन्ध में प्रकट थे। वे न तो स्वी शिक्षा के विरुद्ध थे और न विपक्ष उद्धार के। किन्तु वे यह सहन नहीं कर सकते थे कि ईसाई लोग कुशल तरीकों से लोगों की भर्मांतरित करने का प्रयत्न कर रहे थे। 'वेसरी' को समाचारों के यह प्रचार सम्बन्धी अन्तर्गत से सहानुभूति नहीं थी। वही कारण था कि कभी-कभी अपने सम्बन्ध मुख्याध्यापिका पर कटु व्यंग्यात्मक प्रहार किया, क्योंकि उसकी दृष्टि में वे समाचारों की योजनाओं से सहानुभूति दे रहे थे। किन्तु इस विवाद में शिक्षक का रवैया सैदा नहीं था बल्कि कि किसी परम्परावादी मतानुसार और पुरातनवादी का होता है। उनकी भावना शुद्ध राष्ट्रीय थी। उनका यह विचार सभसा उचित था कि धर्म-परिवर्तन का सम्बन्ध सम्पूर्ण भावनात्मक कक्षा पर है, इसलिए मुख्य सामाजिक स्वरों के लिए धर्म बदलना सभसा अनुचित है। यद्यपि समाचारों के सम्बन्धों और विशेषकर उनके ईसाई नीतिनी केवल सैनिकीय ने शिक्षक को एक अनौपचारिक मता बलवादा है किन्तु वास्तव में इस समस्त विवाद में शिक्षक की राष्ट्रीय भावनाओं का परिचय मिलता है।

शिक्षक और समाज-मुख्याध्यापिका के बीच मतभेद 1886 और 1887 से ही पता भाषा था, शारदा सदन विवाद के अंत और गहरा कर दिया। सितम्बर का एक था कि जब एक बार यह प्रकट हो गया था कि शारदा सदन के मूल में लोगों की ईसाई बनाने की योजना थी तो राजादे और मन्दाकर को चाहिए था कि उस सभा से सम्बन्ध विच्छेद कर लेते और समाचारों की योजनाओं का सभा कोष करते। समाचारों के द्वारा जो कटु विवाद चला उठने लगा खुदों के वैयक्तिक को रोक कर दिया। फिर भी राजादे और मन्दाकर के त्यागपत्र से दो उद्देश्य पूरे हुए। प्रथम, शारदा सदन के सम्बन्धों के द्वारा के सम्बन्ध में शिक्षक की जो सकारात्मक भी उनकी पुष्टि हो गयी। द्वितीय, त्यागपत्र ने निर्दिष्ट रूप से मित्र कर दिया कि राजादे और मन्दाकर अधिक से अधिक समाज-मुख्याध्यापिका से और उनकी सहानुभूति ब्यापक थी, किन्तु वे हिन्दू विरोधी नहीं थे। वे हिन्दुओं को ईसाई बनाने की कुचाला को सहन नहीं कर सकते थे।

(घ) शिक्षक का सामाजिक दशन—अनेक व्यक्तियों ने इस बात पर श्रेष्ठ प्रकट किया है कि शिक्षक सम्प्रदाय के चिन्तन में राजनीतिक अविषय और सामाजिक परम्परावाद के बीच गहरा अन्तर था। वेलेटाइल सिरोल इस दृष्टिकोण का प्रतिपादक था, और तब से अनेक व्यक्तियों की दृष्टिकोण से यह स्पष्ट है कि शिक्षक पाश्चात्य आधार पर सामाजिक परिवर्तन आने के विरुद्ध थे। किन्तु वे हर प्रकार के सामाजिक परिवर्तन के विरुद्ध नहीं थे। वे राष्ट्रवादी थे इसलिए उन्होंने राजनीतिक भूमिका को प्राथमिकता दी। उनका विचार था कि नीतिवादी के विरुद्ध सत्ता सम्पन्न बनाने के लिए आवश्यक है कि जनता की धार्मिक तथा सामाजिक एकता अक्षुण्ण रही जाय। अपनी सूक्ष्म दृष्टि से उन्होंने देखा कि शिक्षा का कि समाज-मुख्याध्यापिका से सामाजिक परिवर्तन की प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित मिलता है, और इस बात को जब समय के अनुकूल समझते थे। उनका कहना था कि केवल सामाजिक प्रवृत्ति राजनीतिक भूमिका की बरोटी नहीं है। 1899 में उन्होंने कहा कि जो कुछ देखा था अपने अपने दृष्टिकोण की पुष्टि कर दी थी। वहाँ से सामा-

इतिहास में जब नयी पारम्परिकवादी धर्मविश्वास, नभकाम्यी अनुष्ठानों और पुरोहित वर्ग का प्रभाव बढ़ा है तभी सरलता और गुणार की प्रवृत्तियाँ भी प्रबल हुई हैं। हम देखते हैं कि भारतीय इतिहास के विभिन्न युगों में बुद्ध, महावीर, नबीर, मानव, राममार्ग और ब्रह्मचर्य ने सामाजिक तथा धार्मिक जीवन की सरल प्रणालियों का उद्देश्य दिया। राजनीतिक संस्थाओं ने भारत में विभिन्न सुधार आन्दोलनों का उदय हुआ। किन्तु गुणार आन्दोलनों में नयी तथा अनीसी चीजों ने महान भाव-व्यक्तिगत दिशाने की प्रवृत्ति ली है। इससे गुणारी धार्मिक व्यवस्थाओं में अन्त की पुनः प्रतिष्ठित करने की प्रवृत्ति प्रवृत्ति का उदय होता है। अन्त में बहुत समाज आन्दोलन ने अपने सम्बन्ध परम्परागत सामाजिक-धार्मिक व्यवस्था के लिये किया। इसलिए राममार्ग, विवेकानन्द और अरविन्द ने व्यापक राजनीतिक दृष्टि धर्म के द्वारा वा समर्थन किया। अन्त में अन्त समाज के वैदवाद और सामाजिक गुणारवाद के विरुद्ध भारतीय ने कृष्णमूर्ति का उद्देश्य दिया और वैदवाद की विद्याओं का प्रचार किया। महात्मा ने भी राजाई, लैला और आधुनिक जैसे समाज-गुणारवाद की पुरोनीकरण की प्रवृत्तियों के विरुद्ध तिलक ने परम्परागत सामाजिक-धार्मिक व्यवस्था का प्रत्यक्ष किया।

5 तिलक का राजनीतिक दशन

(क) तिलक के राजनीतिक दशन के आधार—पर्वत राजनीति दशन का अर्थ आदर्शवादी समाज का काल्पनिक चित्र प्रस्तुत करना हो, तो इस अर्थ में तिलक ने राजनीतिक दृष्टि के गुण समाज का कोई चित्र हमारे समक्ष नहीं रखा है। उन्होंने प्लेटो, अरस्तु और सिक्रेटी की भाँति सर्वोत्तम राज्य के लक्षणों और सम्भावनाओं का विवेचन नहीं किया है। उन्होंने हेगेल और बीकायने की भाँति आत्मात्मक दृष्टि से गुण राज्य की योजना की रचना नहीं की है। भारत की राजनीतिक मुक्ति उनके जीवन की मुख्य समस्या थी, इसलिए उनके विचारों और दृष्टिकोण में महान प्रभाव का एक देश के को मिलता है। किन्तु वे भविष्यवाणी और दृष्टि की भाँति के प्रभाववादी नहीं थे। उन्होंने नयी राजनीतिक व्यवस्था का समर्थन नहीं किया। वे प्राचीन संस्कृत दान के अर्थों में दृष्टि के इसलिए उनके राजनीतिक चिन्तन में हम भारतीय दशन की गुण प्रमुख धारणाओं और आधुनिक युरोप के राष्ट्रवादी और लोकतांत्रिक विचारों का सम्बन्ध देखने को मिलता है।

तिलक के राजनीतिक विचारों पर उनकी प्रमुख तत्त्वशास्त्रीय धारणाओं का प्रभाव है। वे वैदवादी थे। उनके अनुसार वैदवाद के अद्वैतवादी तत्त्वशास्त्र में प्राकृतिक अधिपत्य की 'राजनीतिक' धारणा निहित है। चूँकि परमात्मा ही परम सत्य है और चूँकि सत्य महान् उसी परमात्मा के अर्थ है, इसलिए उन सबसे बड़ी स्वतंत्र आध्यात्मिक शक्ति अन्तर्निहित है जो परमात्मा में पायी जाती है। इसलिए तिलक ने अद्वैतवाद से स्वतंत्रता की धारणा की सर्वोत्तमता का सिद्धांत का।⁹ स्वतंत्रता ही होम सत्य (स्वराज्य) आन्दोलन का प्रान्त थी। स्वतंत्रता की ईश्वरीय भावना कभी वास्तव की प्राप्ति नहीं होती। स्वतंत्रता ही व्यक्तिगत आत्मा का जीवन है और व्यक्तिगत आत्मा ईश्वर से निम्न नहीं है बल्कि वह स्वयं ईश्वर है। वह स्वतंत्रता एक ऐसा सिद्धांत है जिसका कभी विनाश नहीं हो सकता।¹⁰ इस प्रकार तिलक के अनुसार स्वतंत्रता एक ईश्वरीय गुण है। और सृजनात्मकता की स्वायत्त शक्ति की ही स्वतंत्रता नहीं हो सकती है। बिना स्वतंत्रता के किसी भी प्रकार का नैतिक और आध्यात्मिक जीवन सम्भव नहीं है। विदेशी आक्रान्त्यवाद राष्ट्र की आत्मा का ही हान कर देता है, इसलिए तिलक ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध लड़ने किया। इस प्रकार हम देखते हैं कि तिलक ने राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए जो सहाय चलाया उसके आधार आधुनिक थे।

तिलक के राष्ट्रवाद पर भी भारतीय राष्ट्रवाद स्वतंत्रता और अन्तर्निष्ठता के सिद्धांतों का प्रभाव पड़ा था। 1908 में उन्होंने अपने राजनीतिक के मुकद्दमे के सम्बन्ध में आत्मालाप में जो प्रविष्टि व्यक्त किया उसमें उन्होंने नाना संकट मिल की राष्ट्र की परिचापन की स्वीकार करते हुए उद्भव

9 तिलक, नीला दशन (द्वितीय संस्करण) गुण 399।

10 *Speeches and Writings of Tilak* (जी. ए. नरेन एन. कलसी, गजान) गुण 354।

गिया।¹¹ 1919 में उन्होंने विलसन के राष्ट्रीय आत्मनिर्णय के सिद्धांत की स्वीकार किया और माँग की कि उसको भारत के सम्बन्ध में भी लागू किया जाय।¹² अठ तिलक का राष्ट्रवाद दशम शताब्दी की परम्परा-पद्धति के वैदिक-होम आदर्श और मत्सीदी, ब्रह्म, शिव और विष्णु की पारंपार्य धारणा का समन्वय था। इस समन्वय की उन्होंने 'स्वराज्य' शब्द के द्वारा व्यक्त किया। स्वराज्य एक बहिर्गम शब्द है जिसका अर्थान् महात्माजी ने सिवाजी के राज्यतन्त्र के लिए किया जाता था।

यूनि तिलक का दृष्टिकोण आध्यात्मिक था इसलिए वे स्वराज्य को मनुष्य का अधिकार ही नहीं, बल्कि धर्म भी मानते थे।¹³ उन्होंने स्वराज्य का नैतिक तथा आध्यात्मिक अर्थ भी बतलाया। राजनीतिक दृष्टि से स्वराज्य का अर्थ राष्ट्रीय स्व शासन है। नैतिक दृष्टि से इसका अर्थ आत्मनिष्ठता की बुद्धि का अर्थ करता है, जो स्वयं के जीवन के लिए उत्तरदायी है। इसका आध्यात्मिक अर्थ भी है। इस दृष्टि से उसका अर्थ है आंतरिक आध्यात्मिक स्वतन्त्रता और ध्यान-ध्यान आनन्द की प्राप्ति। स्वराज्य का आध्यात्मिक अर्थ तिलक ने इन शब्दों में व्यक्त किया—“अपने में निहित और अपने पर विचार जीवन ही स्वराज्य है। स्वराज्य परलोक में है और इस लोक में भी है। दिन श्रुति-धर्म ने स्वयं के नियम का प्रतिपादन किया उन्होंने अर्थ में मन की राह पशु, कर्माणि अर्थात् स्वराज्य का उपयोग कर रही थी और उस स्वराज्य की रक्षा का भार क्षत्रिय राजाओं पर था। मेरा विश्वास है और मेरी प्रत्याज्ञा है कि जिन लोगों ने इस संसार में स्वराज्य का उपयोग नहीं किया है वे परलोक में भी स्वराज्य के अधिकारी नहीं हो सकते।”¹⁴ बड़ी चारण था कि तिलक राजनीतिक तथा आध्यात्मिक दोनों ही प्रकार की स्वतन्त्रता चाहते थे।

(ख) राष्ट्रवाद तथा पुनर्जागरणवाद—तिलक का राष्ट्रवाद कुछ अन्तः में पुनर्जागरणवादी था। वे राष्ट्र का आध्यात्मिक शक्ति और बलिष्ठता उत्पन्न करने के लिए वैदिक तथा गीता के सन्देश का अन्तर्गत के समर्थन रखना चाहते थे। उनका विचार था कि प्राचीन भारतीय संस्कृति के सम्पादनकारी और जीवनशक्ति परम्पराओं की पुनर्स्थापना करना अत्यन्त आवश्यक है। उन्होंने कहा—“सच्चा राष्ट्रवादी पुरानी नीति पर ही निर्माण करता चाहता है। जो सुधार पुरातन के प्रति घोर अक्षय्यता की भावना पर आधारित है उसे सच्चा राष्ट्रवादी स्वीकार नहीं करता। हम अपनी सत्ताओं की अवधिगत के अन्त में नहीं जानना चाहते, सामाजिक तथा राजनीतिक सुधार के नाम पर हम उनका अराष्ट्रीयकरण नहीं करना चाहते।”¹⁵ इसलिए तिलक ने समझाया कि मैंने सिवाजी और गणपति सत्ताओं की प्रतीक्षा इसलिए किया है कि उनके द्वारा वर्तमान घटनाओं और आन्दोलनों का ऐतिहासिक परम्पराओं के साथ सम्बन्ध जोड़ा जा सके।¹⁶

राष्ट्रवाद तत्काल एक मानसिक और आध्यात्मिक प्रयत्न है। यह उस पुरानी गणपति (कबीला परतों) की सम्पूर्ण भावनाओं का आधुनिक संस्करण है जो हम प्रागैतिहासिक और प्राचीन युगों के देखते आते हैं। लोग म मंत्र और अनुष्ठान की जो भावना अपने कबीले, वर्ण, पीछे, सिद्धिदाता और उस के प्रति जो हमें वे समर्थन पुनर् के विकसित होकर राष्ट्रमूर्ति का रूप ले लिया है। यह सत्य है कि राष्ट्रवाद हमी परतला है जब एकता की भावना को उत्पन्न करने वाले वस्तुतः एक विद्यमान होते हैं। स्वसामाज्य द्वारा बीसों जाने वाली एक भाषा, किसी एक ही वास्तविक अथवा काल्पनिक शक्ति से सब की उत्पत्ति का विश्वास, एक ही भूमि पर निवास और एक सामान्य धर्म—ये कुछ बहुत ही महत्वपूर्ण वस्तुतः सत्य हैं जिनके राष्ट्रवाद की भावना उत्पन्न होती है।

11 *India's Trial* (1908) पृष्ठ 138।

12 तिलक का विचार और मनोभावों की 1919 में लिखा गया पत्र। यह पत्र 'मराठा' में प्रकाशित हुआ था।

13 तिलक का 1916 की भाषण के अन्तर्गत अन्तर्भाव के लिए क्या भाषण *Speeches* पृष्ठ 256।

14 श्री श्री तिलक, *"Karmayoga and Swaraj Speeches and Writings of Tilak"*, पृष्ठ 276-80।

15 तिलक का 13 दिसम्बर 1919 की मराठा की लिखा गया पत्र।

16 हम हम हम में अपनी पुस्तक *India as Translated* में पृष्ठ 14 पर, यह पुराना भावनावादी दृष्टिकोण महात्माजी की पुनर् की है कि परम्परावादी भारतीय राष्ट्रवाद पर प्रतिस्था की परम्परागत गतिधारा का प्रतिफल था।

विशु मनाया मनोवैधानिक एवं प्रधान हुआ करता है। यह अवश्य है कि ऐतिहासिक परम्पराओं की विचारों पर अवधारित भारतीय एका की भावना विद्यमान हो। भारत में आनिगत और भारतीय विविक्तताओं के सम्बन्ध राष्ट्रवाद का एक महत्त्वपूर्ण आधार महत्त्वपूर्ण रहा है। भारतीय संस्कृति की विविक्तता के सतत और अविच्छिन्न प्रवाह ने देश में इस आधारभूत मानसिक एका की उत्पत्ति करने में महान् भाग दिया है। श्रीलाल द्विवेदी ने राष्ट्रवाद की साम्प्रदायिक तत्त्व माना है। राष्ट्रवाद विभिन्न साम्राज्यवाद के विरुद्ध आर्थिक रूप से स्वायत्त आत्मनिर्धारित जीवन की राजनीतिक आवश्यकता का ही प्रतीक नहीं है, बल्कि उसने संस्कृति की आस्था के विनाश का भी विशेष रूप से परिणाम निम्नता है। भारत में धर्ममन्त्र, विवेकानन्द, दिनकर, अरविन्द विचित्रानन्द पाल और गांधी ने राष्ट्रवाद के इस साम्प्रदायिक तत्त्व का महत्त्व दिया है।¹⁷ इससे विपरीत आरामाई-गोरेजी, श्रीलाल द्विवेदी, मन्ना और रामने ने राष्ट्रवाद की एक निरपेक्ष धारणा का प्रोत्साहन दिया है। यद्यपि राष्ट्रवाद तत्त्वतः एकता के आर्थिक और साम्प्रदायिक जीवन की मनोवैधानिक अनुभूति पर आधारित हुआ है, किन्तु उनके लिए असुल तत्त्व की भी आवश्यकता होती है। उसमें और समारोह राष्ट्रवाद के शीतलतम तत्त्व है। एक और वे उनमें सम्मिलित होने वाली वे शान्त एका के प्रयोगों को प्रभावित है और दूसरी ओर उनमें एकता की आवश्यकता का एक और उत्तेजना मिलती है। बुद्धिमान नेता इन आवश्यकताओं का सुव्यवस्थित चिन्तन के रूप में व्यक्तित्व का ही निष्कर्षित कर सकते हैं। अतः, राष्ट्रवाद, स्वतंत्रता दिवस समारोह, तथा उत्तम सम्मेलन महत्त्वपूर्ण की शीतलतम रूप दत्त है। इस प्रकार का प्रतीक प्रयोग सामाजिक जीवन की मूर्तता और आवश्यकताओं की पूर्ति में कूट रहने में नहीं अधिक प्रयत्नशील है। प्रतीक प्रयोग साम्प्रदायिक विकास का प्रतीक है, क्योंकि उत्तम प्रकट होता है कि मनुष्य को प्रतीक जीवन से उत्तर उठ रहा है और राष्ट्र की किसी व्यक्ति-व्यक्ति सत्ता के अन्तर्गत और आकाश का अनुभव कर सकता है। प्रतीक की प्रकृति और उसकी शीतल साहसिक का महत्त्व नहीं है। कुछ प्रतीक मनुष्य और शीतलतम साधन का मूर्त मूर्त रूप सकते हैं, किन्तु सामाजिक महत्त्व इस बात का है कि एकतामान की प्रकृति करने की कितनी शक्ति है। एक नेता के लिये विश्व महापुरुष के अपने अनुपमिषा का एक व्यक्तित्वी समझ ज्ञात करता चाहते थे, और इसके लिए उन्होंने जनता की आर्थिक और ऐतिहासिक परम्पराओं का प्रतीकतम रूप देने का प्रयास किया। यद्यपि और विवादी उत्तम महापुरुष के व्यक्तित्व मानवमानसिक राष्ट्रवाद के प्रतीक थे, अर्थात् पतञ्जल कुछ ज्ञात में वे भारत के बीच भाषा में भी प्रतीक रूप में प्रयुक्त हुए थे।

गणपति उत्तम प्राचीन काल से चला आया था,¹⁸ और महापुरुष में वह एक परम्परागत समारोह माना जाता है। पिछले कुछ वर्ष महापुरुष के राज प्रमुख और सरकार इस उत्सव के लिए धन दिया करते थे। निरन्तर और उनके साक्षिणी की बुद्धिमानों इस बात में भी कि जो उत्तम व्यक्ति-गण रूप से मनाना जाता था उसे उन्होंने सामाजिक समारोह का रूप दे दिया। उत्तम सामाजिक रूप राष्ट्रवाद के प्रयोगों को अधिक हटकर खड़ा था, यद्यपि एक सामान्य धार्मिक उत्सव में सम्मिलित होने से जनता की भावना की प्रेरणादायक मिलता था। यह स्पष्ट है कि सम्राट् भारत ने हिन्दू धर्म के दशा के बाद ही गणपति उत्सव की सामाजिक रूप दिया गया था। निरन्तर तब उनके नाम कोही आदि साक्षिणी के बीच किसी विचार विनिर्माण के उपरांत इस उत्सव की सामाजिक बनाने का विचार उत्पन्न हुआ। हिन्दू धर्म के लोगों ने स्पष्ट कर दिया था कि हिन्दू की जनता की नीचे की मुहूर्त करता निम्न आवश्यक था और यद्यपि उत्सव इस कार्य के विनाश रूप में संशुद्ध हो सकता था। आकाश तथा महापुरुष सभी उत्सव में सम्मिलित होने थे। सामाजिक गणेश उत्सव का विचार भारतीय

17 एक एक रूप में इस बात की अविश्वसनीय आवश्यकता अनुभव की है। *India in Transition* में कुछ 188 वर्ष में लिखा है। सामाजिक रूप में परम्परागत राष्ट्रवाद अन्तर्गत का नेता, काले तथा अराष्ट्रीय बुद्धिमानों का अवकाश के विरुद्ध प्रतिक्रिया की शक्तियों का प्रतिकूल था। निरन्तर 1857 के बाद के रूप में विचारित हुआ था कि ज्ञानी काली उत्तम परम्परागत राष्ट्रवाद के राजनीतिक विचारों के रूप में रहने का विचार है।

18 मनुष्यमान रूप में।

राज्या में फैलने लगा और 1896-97 तक यह सम्पूर्ण महाराष्ट्र में मनाया जाने लगा। अतः इस उत्सव का पुनरुद्धार करने और उसकी नये ढंग से व्याख्या करने का योग्य तिलक को ही है। इस प्रकार एक राजनीतिक आन्दोलन में कुप्रिय विचार ने एक नागरिक धर्म का रूप धारण कर लिया। गणपति उत्सव को प्रारम्भ करके तिलक ने राष्ट्रीय भावनाओं को जनता तक पहुँचाने का प्रयत्न किया। उन दिनों भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस 'भूतार्थिक' तौर पर एक पश्चिमाङ्ग आन्दोलन थी। उसकी कार्य प्रणाली वादचार्य थी, और उसमें नेता स्वतन्त्रता और व्यक्तिवाद के समर्थन में एक, मिल और स्पेसर के विचारों को उद्धृत किया करते थे। किन्तु गणपति उत्सव जनता में राष्ट्रवादी भावनाओं को जगाने की दिशा में एक बड़ा ही सफल प्रयोग था, और इस दृष्टि से उसने महाराष्ट्र की जनता की मानसिक दशा को अनेक दशकों तक प्रभावित किया।

यह प्रकार भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नाम के लिए एक यूरोपवासी जिम्मेदार या वैधे ही शिवाजी की समाधि के जीर्णोद्धार की प्रेरणा भी यूरोपवासियों से ही मिली। 1885 में अनेक समाचारपत्र शिवाजी की रामचन्द्र विगत समाधि के पुनर्निर्माण की आवश्यकता पर बल देते आये थे। कुछ उच्च सरकारी अधिकारी समाधि को देखने गये और उन्होंने शिवाजी की कि उन्नत जीर्णोद्धार होना चाहिए। साह सी ने भी और दिया कि समाज का भ्रमावस्था से उद्धार किया जाय। 23 अप्रैल, 1895 को 'केसरी' ने एक लेख प्रकाशित हुआ जिसमें महाराष्ट्र की जनता से शिवाजी के ऐतिहासिक नाम के सम्मान की राय करने की अपील की गयी। तिलक शिवाजी की पीता के अर्थ में एक 'विभूति' मानते थे। ऐसी गुरुनात्मक शक्ति के सम्पन्न व्यक्ति ही विभूति हैं। 1900 में तिलक राजद्रोह में अपराध में प्रथम बारवादाद दण्ड की भोगने के बाद मुक्त हुए। जहाँ वह उन्होंने रामचन्द्र के शिवाजी उत्सव मनाया। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में शिवाजी उत्सव बनाम और व्यापक तक फैल गया। महात्मा गान्धे देखकर ने कलकत्ता में शिवाजी उत्सव का आयोजन करने में सहित थी, और मोतीलाल पोष तथा विठ्ठलबाद पाल ने उनका समर्थन किया। 1906 में तिलक के कलकत्ता पहुँचने से पहले बड़ा शिवाजी उत्सव वादचार्य ढंग से मनाया जाता था, मना जुलाई वाली थी और माघ के दिने जाते थे। किन्तु जून 1906 में तिलक के बड़ा पहुँचने के बाद उत्सव को हिंदू पद्धति से मनाने की प्रक्रिया आरम्भ हुई। जोर कि एक मनायी की पूजा होती थी, और मध्य में रामदास स्वामी की प्रतिमा भी रखी जाती थी।

21 अप्रैल, 1896 के 'केसरी' में तिलक के एक व्याख्यान की रिपोर्ट छपी। व्याख्यान में तिलक ने कहा था कि शिवाजी उत्सव में निम्नी प्रकार की राजद्रोहात्मक भावना नहीं है। उन्होंने यह भी बतलाया कि शिवाजी उत्सव मनाया प्रत्येक हिंदू का कर्तव्य है। 1 सितम्बर, 1896 को 'केसरी' में तिलक का राष्ट्रीय उत्सवों की आवश्यकता पर एक अर्थ लेख प्रकाशित हुआ। उसमें ओलिम्पिया और पियमा के उत्सवों के ऐतिहासिक उदाहरणों पर उल्लेख किया गया। लेखक ने प्राचीन भारत के यज्ञों की भी चर्चा की और बतलाया कि राजधर्म और अन्वेषण यज्ञों में बड़ी रायदा में और एकत्र हुआ करते थे। 8 सितम्बर का तिलक ने 'केसरी' में एक अर्थ लेख लिखकर उन समान सुधारकों की वीर्यवता और वृषवत् की नीति की आलोचना की जो अपने को जनता से अलग रखते थे। उन्होंने बतलाया कि राष्ट्रीय उत्सव अधिशित जनता तथा शिक्षित लोग के बीच भाईचारे के सम्बन्ध स्थापित करने की आवश्यक देते हैं। सामूहिक समारोहों से शिक्षित वर्ग की नयी स्मृति मिलती है और जनता में आपसी फैलती है तथा उत्सव दृष्टिकान उदार होता है। उन्होंने कहा तक यह दिया कि यदि राजाई बहुत उत्पन्नस्थीय घिटाता के चिन्तन में तत्परीन रहना छोड़कर जनता में फैलने मिलने लगे और वनेर, शिवाजी तथा रामदास के उत्सवों में सम्मिलित होने लगे तो वे अधिक ऐश्वर्यवान् दिखाना देंगे। 1898 के बाद तिलक ने अनेक लेखों और मापका में शिवाजी उत्सव की समाजशास्त्रीय विवेचना की। उत्सव के सम्बन्ध में उनके मन में बड़ी चरित्र पारदर्शी थी। वे अनुभव करते थे कि भावी पीढ़ियाँ का यह परम कृत्य है कि वे अपने वृषदा और वीर पुरावों की प्रशानति अर्पित करें, और यह पुष्टय कि इससे नया वात होता वैधे ही उपहासास्पद है जैसा कि कितरी के आद के सम्बन्ध में भला करता। 9 अप्रैल, 1901 को तिलक ने 'केसरी' में एक लेख प्रकाशित करके शिवाजी उत्सव के सम्बन्ध में एक अर्थ महत्वपूर्ण पहलु पर और दिया। उन्होंने

कलाया वि कायेस या-वेकन वा उदयेस मुक्त विनिष्ट अधिपत्यो वा तत्काल शास्य करना है, जबकि शिवाजी उत्तम एक स्फूर्तिदायक बीजधि भी होती है जिससे साम्राज्य तथा राजनीतिन जीवन की नींव सुदृढ़ होती है। तिलक व अनुत्तर राष्ट्रवाद काई हरम्यान स्कुल वस्तु नहीं है, वह तो एक मानना एक प्रत्यय है और इन मानना का ज्ञापन करने व दस के महापुरुषों की ऐतिहासिक स्मृतिमें सह-वृत्त बन देती है। शिवाजी ने मन में सोचसकह भी सावधानी थी, उन्होंने कभी स्पानीय स्वार्थी अपना सामान के किसी वग विशेष के द्वेष की दृष्टि में नहीं साधा। इसलिए उनकी उप-निधिया की ध्यान में रखते हुए उन्हें विभूति और ईश्वर का अवतार मानना अधिपत्योक्ति नहीं है। सामान कुधारका की दृष्टि में शिवाजी की अवतार मानना एक यही नींजी जनता का उत्तेजित करने वाली बात थी। किन्तु तिलक साहसी तथा निर्भीक व्यक्ति थे, और उनका मन में भी सत्य हाता वह कहने में हिचकते नहीं थे। वह सत्य है कि शिवाजी उत्तम का प्रचार करने की मानना के पूरा में तिलक का अवस्थित राजनीतिक दशन था। उनका यह विचार उचित ही था कि भारतीय राष्ट्रवाद के पोषण के लिए यह पर्याप्त नहीं है कि अधिपत्य के उद्धारकारी केसका के सिद्धांतों की बौद्धिक रूप में अधिपत्य कर जिका ज्ञान, बलि उसकी पुष्ट करने के लिए भारतीय जनता के सदैव और भाव-नाओं का प्रत्यक्षित करना हाया। इसीलिए व अनुभव करते थे कि शिवाजी की स्मृतिता से साम-रत जनता की राष्ट्रवादी मानवता की स्फूर्ति मिलेगी। शिवाजी अपनाव तथा उपोहन के विरुद्ध जनता के रोष और प्रसिद्ध के इतीक थे। तिलक व इस आरोप का कि शिवाजी उत्तम मुसलिय विराधी है, अनज-सार लपटन करने का प्रयत्न किया। उन्होंने कभी सावधानी से और बल देकर समझाया कि वे शिवाजी की विनिष्ट वाय-मजाली का प्रयोग नहीं करना चाहता और न उसका पुनरुद्धान करना ही मरत उद्देश्य है, वे तो केवल उनकी आधारभूत भावना की पुनर्जीवित करने का इच्छत हैं। शिवाजी प्रतिराध की मानना के प्रतीक थे। ममहूवी राजाजी में उन्होंने मुक्तमाना के इसलिए मुक्त किया कि वे उत्तीक थे। आज मुक्तमानों से सजने का कोई प्रयत्न नहीं है। वय-अव-विराधी आचालन के दिनों में तिलक ने हिंदुओं और मुसलमान दोनों से ही कहा कि तुम्ह-उस नीकरसाही के विरुद्ध अपने अधिपत्य की रक्षा करनी चाहिए, या अपने उद्भव तथा आकाचार-पूज कालों की हर आलाचना का मुक्त देना चाहती है।

किन्तु तिलक की उनके आज पुनर्मजानवादी होने के कारण कोरा हिंदू राष्ट्रवादी मानना रुचित नहीं है। व्यक्तिगत रूप से उन्हें हिंदू धर्म तथा संस्कृति पर भारी पड़ था। राजनीतिन सता होने के नाते वे हिंदुओं के उचित द्वेष की रक्षा करना चाहते थे, और किसी प्रकार की मानसता और समर्थन का अनुमान करने के लिए तैयार नहीं थे। किन्तु यह कहना मजत है कि वे बोरे हिंदू राष्ट्रवादी थे और मुसलमानों के विरुद्ध थे। जनसिद्धि का कहना है कि वे हिंदुओं की मुसलिम-विरोधी सजने की मानना व प्रतिनिधि थे।¹⁹ अर्धे इतिहासकार रमिल प्राशन लिखता है 'मुसलिम बोध भारतीय राष्ट्रीय कायेस का ज्ञापन की और आचालन' की भी कलावि तिलक की अपरिपक्वता में पुनरुद्भव की बिह मानना की कल मिला था वह स्वस्थान की स्वस्थान से और भी अधि-सीध हो गयी थी।²⁰ विराट लिखता है कि तिलक के अति परम्परावादी होने के कारण पुन-सावजनिक समा के सदस्यों ने उन सस्था में स्वागत के दिया था। काय बल के तिलक और अधिप-की सीधी लड़का है। उनका कहना है कि इन दोनों ने राष्ट्रीय आचरण का हिंदू पुनरुद्धानवाद के साथ एकात्म स्थापित कर दिया था इसलिए मुसलिम जनता राष्ट्रीय आचालन में पुन-हो गयी।²¹ किन्तु व सभी प्रस्तावनाएँ अधूरी हैं और तिलक के राजनीतिक विचारों तथा कालों की कलन व्याख्या है। बिना इन व जगारी और हसन इत्यादि ने तिलक की राष्ट्रवादी माननाओं और समर्थनों की प्रसिद्धि की साधना की है, नतीज-उनकी बुद्धिमत्पुन सहाह और नरम नीति के कारण ही। 1916 का सधनरुद्ध समर्थिता सम्पादित हो गया था। यीकत अती तथा हमरत मुहनी तिलक को अपना राज-

19 जगन्निवा, *Emergent India* पृष्ठ 121।

20 रमिल प्राशन, *A History of India*, पृष्ठ 599।

21 अर-वाचन *India Today* पृ 383।

नीतिक गुण मानते थे। गोपबन्धनी ने लिखा है "वे पुनः सौम्य वार बहना चाहता हूँ कि मुहम्मद अली और मैं तिलक की पार्टी के थे और साज भी है।"²² हज़ारत मुहानी का कथन है "उस अस्मायु में ही मैंने तिलक को अपने लिए आदर्श नेता मान लिया था। उन दिनों मुझे भारत के सबसे बड़े सभी राजनीतिक नेताओं के विचारों तथा योग्यता का अनुपादन करने का पर्याप्त अवसर मिला था। उस विभीषण तथा सूक्ष्म ज्ञानवादी के अस्पाद पर और बिना किसी प्रतिवाद के जब के मैं कह सकता हूँ कि मैंने तिलक को हर दृष्टि से प्रत्येक अन्य नेता से श्रेष्ठ माना। जब मैं यह घोषणा कर रहा हूँ कि तिलक के जीवन भर मैं नीतिक तथा व्यावहारिक दृष्टि से उनका अन्धा-नुयायी बसा रहा, तो इसके कोई भी उनके प्रति मेरे प्रेम का अनुमान लगा सकता है।"²³ इसके अतिरिक्त तिलक ने बतल दिया था कि यदि बहुसंख्यक मुसलमान मेरा साथ द तो मैं खिलाफत आन्दोलन का समर्थन करने को तैयार हूँ। तिलक ने अली बागुआ की मुक्ति के लिए कांग्रेस ने प्रस्ताव को स्वयं प्रस्तुत किया था। यदि तिलक मुसलिम विरोधी दृष्टि तो वे बड़े मुसलमान नेताओं के विश्वासपात्र क्यों नहीं बन सकते थे। इसलिए कहा जा सकता है कि मजलिम स्पलिजल बीरन में तिलक को हिंदुत्व के प्रति सम्भीरतम श्रद्धा की किन्तु राजनीतिक नेता के रूप में उनकी नीति व्यापक थी और राष्ट्रीय स्वाधीनता प्राप्त करना उनका मुख्य उद्देश्य था।

यह सत्य है कि तिलक भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन को हिंदुत्व के सख्त सांस्कृतिक और धार्मिक पुनर्गठन के द्वारा बल प्रदान करना चाहते थे। किन्तु राष्ट्रवाद के सम्बन्ध में वे आधिक्य नहीं की भी स्वीकार करते थे।²⁴ दादाभाई नौरोजी ने भारतीय अधिकांश के 'निगम सिद्धांत' की विमर्श कर दिया था। तिलक तथा लोकनेता दोनों ने ही स्वीकार किया कि विदेशी साम्राज्यवाद के कारण भारत के आर्थिक क्षयना का भारी 'निगम' हुआ है। 1897 में रानी विक्टोरिया की हारिक जयंती के अवसर पर तिलक ने 'केसरी' में तीन लेख लिखे। 22 जून के लेख में उन्होंने लिखा कि ब्रिटिश शासन के अंतर्गत भारतीय छोटी-छोटी वस्तुओं का ह्रास हुआ है। उनका कथन था कि विदेशी पूंजीपतियों ने भारत में जो निमित्त औद्योगिक उत्पादन स्थापित किये हैं और जो धन लगाया है उस सबसे समृद्धि का केवल अंश उत्पन्न हुआ है। उन्होंने दादाभाई नौरोजी द्वारा बैलूची आयोग²⁵ के समक्ष दिये गए साक्ष्य का उल्लेख किया। अपने साक्ष्य में दादाभाई ने कहा था कि ब्रिटन के साम्राज्यवादी आधिकार्य के अंतर्गत भारत का आर्थिक विनाश हो गया है। 1907 में उन्होंने नैपियन के साथ संवादा में भी भारत के आर्थिक 'निगम' का उल्लेख किया।²⁶ उन्होंने स्वदेशी आन्दोलन के आर्थिक पक्ष को भी महत्व दिया, इससे स्पष्ट है कि वे भारतीय राष्ट्रवाद के आर्थिक आधार के प्रति भी संवेदित थे। भारत में स्वदेशी आन्दोलन के आध्यात्मिक तथा राजनीतिक स्वरूप भारत कर लिया। यह वास्तविक देश की राजनीतिक मुक्ति के लिए राष्ट्र की राजियों को उन्मुक्त करने का आन्दोलन बन गया। किन्तु आर्थिक दृष्टि से यह देश के प्रारम्भिक पूंजीवाद की बद्धि और विस्तार का आन्दोलन था। गोपबन्धनी ने कहा कि अपने अर्थव्यवस्था में बड़ी मायका ने साथ स्पष्ट किया था कि स्वदेशी आन्दोलन वैश्वस्तिकमूलक आन्दोलन है और उसका उद्देश्य पूंजी, साधन और क्षमता का अविनाशक उपयोग करने के उत्पादन को बढ़ाना है। इसलिये वे भारत पर मुक्त व्यापार की नीति को बलपूर्वक घोषित किया था। उसकी इस स्वायत्त आर्थिक नीति के प्रस्तावना देना के लिये उन्होंने तभी से स्पष्ट हो गये थे, और एकमात्र इति ही अन्तता की ओरिका का साधन यह कभी थी। तिलक तथा बन्धनी अतिवादियों के नेतृत्व में जिस स्वदेशी आन्दोलन का विचार हुआ यह वास्तव में प्रारम्भिक

22 एम बी बाल (सम्पादक) *Reminiscences of Tilak*, पृष्ठ 2 पृष्ठ 576।

23 नही जिय 3 पृष्ठ 36-37।

24 एम एन राम के इस कथन में सत्य का अधिक अंश उनीत नहीं होता "निगम व अर्थिक और शिक्षा में राष्ट्रवाद के किम सिद्धांत की अतिव्यक्ति हुई उससे एक सामाजिक विचार की उत्पत्ति की तथा की कि राष्ट्र निगम व राजनीतिक राष्ट्रवाद आर्थिक नाश का बिना बाधक नहीं रह सकता।" (*Indian in Transition* पृष्ठ 135)।

25 *Waller Commission Report* 2 खण्ड में।

26 एम वसन्त बेविस *The New Spirit of India* (जून 1908)।

विन टिलक आन्दोलन का प्रतिरूप था। टिलक ने स्वतंत्र विचारों तथा देश की राजनीतिक शक्ति विदेशी सरकार के हाथों में है तब तक देशी लोगों को सरकार में भाग नहीं देना चाहिए, किन्तु जनता स्वयं पहल करके सरकार की भावना को प्रोत्साहन दे सकती है। जनवरी 1907 में इसाहाबाद में उन्होंने एक भाषण में कहा कि हम विदेशी शक्तों का बहिष्कार करने वाले देश का सरकार में भाग नहीं देना चाहते हैं। उन्होंने कहा कि ब्रिटिश सरकार ने देश की शक्ति तथा कुछ भय में स्वतंत्रता प्रदान की है, किन्तु यदि राष्ट्र की जीवित रहना है तो उसे और भी आगे प्रगति करनी होगी। उनका कहना था कि देश की स्वाधीनता नौकरशाही की सेवा में उपस्थित होने तथा उसके पास सुविधाएँ तथा विदेशीय अधिकारों के भय से प्राप्त नहीं हो सकती, उसे तो जनता के सामूहिक प्रयत्नों के द्वारा ही उपलब्ध किया जा सकता है। इसलिए उन्होंने जनता को 1906 में बनारस अधिवेशन में शामिल स्वदेशी, बहिष्कार और राष्ट्रीय शिक्षा से सम्बंधित प्रस्तावों को व्यावहारिक रूप देने में लिए प्रेरित किया।

हम पहले लिख आये हैं कि लक्ष्मणसमीप विचारों में टिलक अद्वैत वेदांती थे। उनकी वेदांत-भाषाएँ कि स्वतंत्रता अनुभव की वैसी प्रकृति है और स्वयंसेवक आन्दोलन आत्म-मायावाद है, अपने वेदांती विचारों की सीमाएँ हैं। उनका मानना था कि विश्वास की उनके वेदांत दर्शन में ही प्रमुख था। उन्होंने एक प्रकार से राष्ट्रवाद के आदेश तथा भावनाएँ एकता के वेदांती सिद्धांत के बीच समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया। एक भाषण में उन्होंने कहा था “यदि वेदांत का आदेश राष्ट्रवाद के आदेश से ऊँचा है इसलिए पहले आदेश के दूसरे स्वरूपों में रूप में सम्मिलित है। दोनों के बीच समन्वय स्थापित करना आवश्यक नहीं है यदि आप साम्य स्थापित करना चाहते हैं। एक में दूसरे वाली प्रकार सम्मिलित है जैसे हवा में पानी की सम्मिलित है। दोनों आदेशों में पारस्परिक समन्वय है और दोनों के लिए भाव-स्वायत्त और आत्म-निष्ठ की अपेक्षा है। इसने अतिरिक्त दोनों के लिए एक ऐसी मर्यादों की भावना की अपेक्षा है जो अनुभव को स्वयं की अवधारणा करने ऐसे व्यक्तियों और आदेशों के लिए कार्य करने के लिए प्रेरित करती है जिनमें स्वायत्त की शक्ति की भाव नहीं आती। यह मानना मानव जाति के लिए श्रेष्ठ की ओर ईश्वर के समक्ष सब अनुष्ठा की समानता की भावना है। वेदांत तथा राष्ट्रवाद दोनों के आदेश इसी भावना से सम्बंधित होते हैं।”²⁷ लक्ष्मण सिन्हा ने ‘विन टिलक’ नामक पुस्तक में आदेश इसी भावना से सम्बंधित करते हैं। वेदांत के दोनो व्यक्तियों के बीच एक पारस्परिक सम्बन्ध प्रस्तुत किया है।²⁸ किन्तु सिन्हा को व्याख्या समीचीन नहीं है। बारम्बार स्पष्ट है। लक्ष्मण सिन्हा महान देशप्रेम और उनके राष्ट्रवादों के किन्तु ‘गीता दर्शन’ में उन्होंने स्पष्ट रूप से लिखा है कि देशप्रेम विवेकमय ने भाव में केवल एक भाग है। उन्होंने प्रसिद्ध शब्दों में लिखा है कि देशप्रेम (उदार चरित्रात्मक अनुभव बुद्धिमत्ता) की जो उपपत्ति किया है जिसका अर्थ है कि उदार चरित्र वाले व्यक्तियों के लिए कार्य करने की प्रेरणा है।²⁹

(ग) भारतीय अधिवासी राष्ट्रवाद के आधार—आत्म-निष्ठता का भावनावाद था। यह

ब्रिटिश साम्राज्य की शक्ति और प्रतिष्ठा का बौद्धिक प्रसार करने का स्वयं सेवा करता था।

किन्तु जनता को जनता के राष्ट्रवादी आन्दोलन को प्रेरित करने में कार्य दिया। उसने अनेक रूप में विचारों का सामन्य मनोर भाव में ऐसे नये राष्ट्रवादी दल की नींव रखी जिनमें राजनीतिक आदेश अधिवासी थे। यह अधिवासी था कि टिलक का मन की प्रभावशाली नीति के कदु आत्मी-

27 *Speeches of Tilak* (विन टिलक वेदांती) पृष्ठ 15-16 की ओर केन्दर द्वारा “Real Basis of Tilak's Nationalism” नामक *Madras* मार्च 3 1931।

28 लक्ष्मण सिन्हा की पुस्तक *Nationalism* (लक्ष्मण, 1933)। दो टिलक का बीच सम्बन्ध “Education for Life in the Nation” शीर्षक अध्याय में दिया गया है।

29 आत्म-निष्ठता टिलक, गीता दर्शन (द्वितीय) पृष्ठ 398।

थन बन गये। उन्होंने 'बेसरी' के एक सेवानिवृत्त प्रवर्तित करने वजन की नीति की मसला की। 15 मार्च, 1904 को उन्होंने 'बेसरी' के सरकार की नयी शिक्षा-नीति सेव सिद्धा। उनका विचार था कि नयी शिक्षा नीति से देश की शिक्षा के विकास में बाधा पड़ेगी। 5 अप्रैल, 1904 को 'बेसरी' के एक अन्य वरिष्ठ प्रवर्तित किया जिसमें उन्होंने कहा कि वजन मोक्ष, अल्पवस्थापी लता चतुर है किन्तु वह अपनी सम्पूर्ण बुद्धिमत्ता तथा बुद्धिनीति का भारतीयतासिवा की दमता वा स्थायी बनाने के उद्देश्य के लिए प्रयोग कर रहा है। उन्होंने उस क्षेत्र में स्पष्ट घोषणा की कि वजन के विश्वविद्यालयों तथा महाविद्यालयों (कॉलेजों) पर बड़ीतर नियन्त्रण स्थापित करने का प्रयत्न किया है। 21 फरवरी, 1905 को तिलक के वजन के उन आरोपों की सीसी आलोचना की जो उसने अपने वीरतात भाषण में भारतीयतासिवा के विरुद्ध लगाये थे। वजन 'वामबुद्धिमत्ता' के आरोप का पुनारी था, इस कारण वह अनेक ऐसे वाक्य कर बीठा जिन्होंने उसे जनता में अग्रिम बना दिया। बंगाल का विभाजन उसकी मैनिफेस्टोसिवाई बुद्धि नीति का सबसे बड़ा उदाहरण था। विभाजन का उद्देश्य आठ करोड़ के अधिकांश बंगाली जनता की एकाता और कमसम्पत्ता का नाश करना था। वजन की महात्मनी बुद्धि-जीविकी का घर होने के कारण राजनीतिक उच्छाद का नेत्र बनती आरही थी। साम्राज्यवाद के हित व इस प्रभाव को सीमित करना आवश्यक था। साम्प्रदायिकता को उभाड़ना 'राजनीतिक' उच्छाद की बद्धि की रोकने का एवमात्र तरीका था। पूर्वी बंगाल का प्रांत प्रभावत मुक्तितम प्रांत था, इसलिए ब्रिटिश साम्राज्यवादिषी को आशा थी कि रोष बंगाल के प्रति उसका रवमा ही सदैव संयुक्तपूर्ण रहेगा। इसीलिए वजन के बंगाल व विभाजन का सरलत विषय। 3 दिसम्बर, 1903 को भारत सरकार का वह प्रस्ताव प्रवर्तित हुआ जिसमें घोषणा की गयी कि सरकार चटगाव की सम्पूर्ण कमिन्तरी तथा डाका और मेचनसिंह के जिला का आन्धान के मिला देने के प्रस पर विचार कर रही है। 20 जुलाई, 1905 को बंगाल के प्रस्तावित विभाजन का समाचार सरकारी पत्र में प्रवर्तित हुआ और 6 अक्टूबर, 1905 को विभाजन की घोषणा कायमित कर दी गयी। दिसम्बर 1903 से अक्टूबर 1905 तक बंगाल व दो हजार से अधिकांश सचिवनिष सभाई हुई जिनमें जनता के ज्ञान के विभाजन के विरुद्ध विरोध प्रकट किया। 18 नवम्बर, 1905 को वजन दुर्लभ के लिए रवाना हो गया। उसने तथा किचनर के बीच की विवाद चलता आया था उसने भारत वह बाइल-छम पद से पहले ही त्यागपत्र दे चुका था, किन्तु उसका आग्रह था कि मेर भारत छोड़ने के पूव ही विभाजन की योजना ठोस रूप में कायमीकृत कर दी जाय।

ऊपर से देखने में बंगाल का विभाजन प्रशासनीय सुविधा के लिए प्रदेश का पुनर्वितरण मान प्रतीत होता था। किन्तु उसने विरुद्ध तिलक, पाल, सराजिद और सुरेन्द्रनाथ बनर्जी व मेतल के जो आन्दोलन चल पड़ा उसने राष्ट्रीय मुक्ति समय का रूप धारण कर लिया। 1857 के स्वतन्त्रता संग्राम की भाँति वह नव विरोधी आन्दोलन को जो जिन को सरवालीन राजनीतिक चटनाओं के परिवेष्टन व समझने का प्रयत्न करना समीचीन होता। जिस प्रकार 1857 का सङ्घाम 1848 की यूरोपीय गार्ज, 1856 के बाइमिषा युद्ध और इसी के एकीकरण आन्दोलन से प्रभावित था, उसी तरह वजन-मन विरोधी समय पर उस एतिमाई 'राजनीतिक' चेतना की तीव्रता का प्रभाव था जो चीन के शीकार विद्रोह, रूस पर जापान की विजय तथा तुर्की और ईरान के राष्ट्रीय आन्दोलन के नव व भक्त हुई थी। तिलक की अन्तराष्ट्रीय राजनीति का अग्रदा जान था। 1895 से ही उन्होंने 1894-95 के चीन-जापान युद्ध पर लिखी गये हुए 'बेसरी' में लिखा था कि जापान की स्थिति उस गार्ज की प्रतीक है जो समस्त एशिया में फैलने जा रही है। उन्होंने कमिन्तकापी की थी कि चीन की पराजय उस विशाल देश में 'राजनीतिक' जागृति की प्रोत्साहन देगी। 'बेसरी' में अनेक लेख तिलकर तिलक ने स्पष्टतः स्वीकार किया कि इस पर जापान की विजय से एशियाकी मुक्ति का बड़ी प्रेरणा मिली थी। जापान की आरम्भकालिक विजय ने एशियाई होनता के मिथ्या विरोध का महा-प्रोत्साहन कर दिया था। चीन ने समुक्त राज्य अधीका की आग्रहात्मक नीति के विरुद्ध वा बहिष्कार आन्दोलन छेड़ रखा था जससे भी भारतीय जनता को प्रेरणा प्राप्त हुई थी।

1899 और 1904 के बीच तिलक की सक्रिय राजनीतिक आन्दोलन चलाने का अवसर व मिला लता गयी कि उक्त समय कावेस से उनके अनुयायिका की सरता बन थी। ५०

रिक्त के तर्क महाराष्ट्र के सुवर्धन में बुरी तरह उत्तरे हुए थे। वरन्धन विरोधी आन्दोलन के उन्हें तीव्र राजनीतिक अवयव बनाने का मनबाड़ा अवसर मिल गया। सब विचारों के राष्ट्रीय दल के अधिकृत भारतीय सार के नेता बन गए। यह उनकी महान् धूमधूम का ही परिणाम था कि एक शब्द विचार सुवर्धन के विरुद्ध आन्दोलन पीछे ही राष्ट्रीय सचटन का अधिकृत भारतीय आन्दोलन बन गया। उनको प्रवक्तो के फलस्वरूप बंगाल महासमूह और अन्तर्गत पञ्चम राजनीतिक शक्त के रूप में जोड़ दिया। तिनका, साता मानवत सार, विचारान्तर पाल और अन्तर्गत सार आदि नेताओं के व्यक्तित्व तथा वाचनत्व में विभाजन विरोधी आन्दोलन को एक दिरे हुए राष्ट्र के पुनरुद्धार के सम मुक्त में परिचित कर दिया। नौकरशाही के दमन और दबाव के जो तरीके अवयव के राष्ट्रीय आन्दोलन के सहायक और सार्वजनिक बन गये। इस अवसर पर तिनका की राजनीतिक प्रतिभा का अनावरण हुआ। उन्होंने विभाजन विरोधी आन्दोलन को स्वयंसेवक आन्दोलन में बदलने का प्रयत्न किया। इस स्वयंसेवक आन्दोलन के चार तरीके थे—स्वदेशी, बहिष्कार, राष्ट्रीय शिक्षा तथा निम्नलिखित प्रतिरोध। कभी कभी नव दल के सिद्धांतवादी के बहिष्कार और निम्नलिखित प्रतिरोध को एक ही बात समझा। यदि यह मान लिया जाय तो अतिवादी दल (नव दल) के केवल तीन तरीके थे। 1905 और 1909 के बीच अनेक आन्दोलन उठ खड़े हुए। उदाहरण के लिए, राष्ट्रीय शिक्षा, सार्वजनिक, दलितोद्धार तथा 'अर्थे भारतम्', 'राष्ट्रमता' आदि राष्ट्रीय कथों की स्थापना के आन्दोलन। स्वयंसेवक और स्वदेशी के आन्दोलन का उद्देश्य वास्तव में काम की अनुपुष्टि करना था। कांग्रेस ने अन्तर्गत की अधिकृत बात एक ही सीमित रहता था, स्वदेशी आन्दोलन के नेताओं ने निम्न मध्ये वय तथा साधारण जनता को भी किसी न किसी प्रकार की राजनीतिक और आर्थिक कार्यवाही में सम्मिलित करने का प्रयत्न किया। इस प्रकार तिनका ने तथा बंगाल और महासमूह के काम करने वाले साधिका ने राजनीति की अन्तर्गत कार्यवाही को बदलने का प्रयत्न किया। स्वदेशी बहिष्कार आन्दोलन जनता के स्वायत्तता के अधिकार को रक्षा करने का प्रयत्न था, इसलिए उन्हें राजनीतिक हस्तगत के विभिन्न तरीका का प्रयोग किया गया, जैसे सावजनिक जुलूस, बड़ी-बड़ी मार्चजनिक सभाएँ, हड़तालें, घरों का हत्यादि। आगे चलकर भारतीय नेताओं ने अपने राजनीतिक आन्दोलन में इस सब तरीकों का प्रयोग किया। स्वदेशी बहिष्कार आन्दोलन इस नौकरशाहिक सिद्धांत की रक्षा करने का समर्थित प्रयत्न था कि सामक्य को सारवाधिका के बहुमत की सम्मेलन और अतिव्ययन नहीं करना चाहिए। विभाजन एक बार अन्तर्गत और जारी हुआ था। उनके विरुद्ध का आन्दोलन उठ गया हुआ उसका इसे समाज-सामन्तीय दृष्टिकोण से समझने का प्रयत्न करना चाहिए, और यह सभी सम्भव है जब इस विरुद्धी सार्वजनिक का सार्वजनिक और अपने देशों में हुए आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद के जन्म और उत्थान की ध्वनि के रहे। भारतीय पुनीवाद का उत्थन ही रहा था। कलकत्ता तथा बम्बई के पुनीवादियों ने स्वदेशी आन्दोलन को इसलिए विरोधी समर्थता दी कि यह भारत के सभी सम्मुखों के सम में उठ प्रचार बन रहा था। किन्तु भारत में राष्ट्रवाद का विकास केवल पुनीवाद के उत्थन का परिणाम नहीं था। भारतीय राष्ट्रवाद का अन्तर्गतित्व तथा आर्थिक सार भी था। विरोधपर बंगाल में सार और अन्तर्गत ने उद्देश्य में राष्ट्रवाद को पार्ष्णिक रूप दे दिया था। अन्तर्गत राष्ट्रवाद को एक सार्वजनिक वय मानते थे। उनका कहना था कि ईश्वर हम सब का नेता और सभी दूसरी कार्यकारी शक्ति है। उन समय देश में ऐसी चेतना भी जाग्रत हुई कि विश्व के लिए भारतवर्ष का एक आध्यात्मिक प्रिय (मित्र) है। बंगाल के नेताओं ने इस चेतना का विशेष रूप से व्यक्त किया। किन्तु तिनका ने आन्दोलन के राजनीतिक पक्ष को अधिक महत्व दिया। उनका कहना था कि नौकरशाहिक के विरुद्ध ऐसा सार्वजनिक आन्दोलन समर्थित किया जाय कि यह अपना अधिकार करने पर विवश हो जाय। जिस तरह राष्ट्रीय वय में विभाजन विरोधी आन्दोलन बनाया उसका सार्वजनिक और हड़ताल करने का मुख्य उद्योग तिनका को ही था।

तिनका अतिवादी थे और उनको अतिवादी बनाने के लिए अनेक उद्योग उन्हेदार थे। स्वयंसेवक से वे उन्हाही थे और सुवर्धन की अन्तर्गत तथा अन्तर्गत मानना का उत्थन प्रयत्न था। उन्हें समय तथा सार्वजनिक विचार के प्रतीक सिद्धांतों एवं अन्य मराठा पुनीवाद के जीवन और सार्वजनिक कथों के प्रेरणा मिली थी। नौकरशाही के का दमनकारी तरीके अन्तर्गत से उत्थन अन्तर्गत सामान के अन्तर्गत

ने उनका भ्रम दूर हो गया था। इस बात ने भी उनके अतिवादी विचारों को प्रभावित किया। किंतु अतिवादी होते हुए भी वे आंदोलन के विधिक तरीका में विश्वास करते थे। वे स्वयं दो बार बम्बई विधान परिषद के सदस्य चुने गये थे। तीसरी बार चुनाव खड़े वा भी उनका विचार था। 1920 में उन्होंने चुनाव खड़े के लिए कांग्रेस डेमोक्रेटिक पार्टी की स्थापना की। यद्यपि तिलक विद्यमान विधि-व्यवस्था की पर्यावासा को स्वीकार करते थे, किंतु वे ब्रिटिश सरकार के कानून के मुक्त क्षेत्र को राष्ट्रीय आंदोलन को लीज करने के लिए प्रयुक्त करा जा चाहते थे। उनाने, फीरोजशाह मेहता और मोरारजे मारवाड के ब्रिटिश शासन की ईश्वरीय विधान का एक अंग एक मान बड़े थे,²⁰ किंतु तिलक को विश्वास था कि राष्ट्रीय स्वतंत्रता देश की अधिकार्यता है। 1909 में एक मास में गान्धे ने निरिन्ध प्रतिलोप वा समर्थन किया।²¹ फिर भी तिलक और मोरारजे ने मान मित्र थे। बाहे उन दोनों ने कभी-कभी समान कथा वा प्रयोग किया हो और बाहे समान राजनीतिक जहेसा में विश्वास किया हो, फिर भी उनकी राजनीतिक कथप्रणालियों में आधारभूत अंतर था। तिलक ने 1896 में दुमिंत में, 1905-1908 के आंदोलन और होय कल के दिनों में भी बाप दिने उनका जहेस्य जनता की संगठित तथा साधुहिक बाय की शिक्षा देना था। भी जनता निर्जीव और परा-शापी हो गयी थी उसने के प्रकल कमजोरता और दड आसह की भावना फुल देना चाहते थे। उन्होंने 1896 में सनातनन्दी आंदोलन का समर्थन किया, राष्ट्रीय शिक्षा पर बल दिया, मदिरा की बिक्री रोकने के लिए धरना देने की उचित इहाराय और स्वदेशी तथा महिणार का पक्ष पोषण किया, इस सबसे स्पष्ट है कि वे राष्ट्रीय आंदोलन को भारतीय जनता की संगठित और समुक्त बाबबाही पर आधारित करना चाहते थे। तिलक के राजनीतिक नेता के रूप में प्रमुखता प्राप्त करने से पहले भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन पाश्चात्य रूप के बौद्धिक बादविवाद लय ही सीमित था। इसके विपरीत उन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन का भारतीयकरण करने का सचेस दिया। इसलिए उनकी राजनीतिक कथप्रणालिया भारतीय जनता की ऐतिहासिक विरासत में बहुत कुछ अनुप्रेरित थी। उन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन का साधनिक समर्थन भी प्राचीन भारतीय आदर्शों के आधार पर किया। कुछ महत्वशायी मिलबादी (नरम दबी) नेताओं की बैबल कक, मलीनी, स्वेतर आदि से बौद्धिक धेरता बिकी थी, किंतु तिलक ने इनके अतिरिक्त सिबाही, लाना कउनबील और सगवद्गीता स भी धेरता थी। तिलक ने राष्ट्रीय आंदोलन की नीति वा भारतीयकरण करने का भी प्रयत्न किया उसने भारत लाला बाबबल राम इनके समर्थक बन गये। बने अनेक विषया में लालाजी मोरारजे से सम्बाधित थे। देश के लिए मह दुर्मिन्म की बात को कि तिलक और मोरारजे अपने काबलताय में परस्पर सद्बोध न कर लने। बीना बिपपावन बाह्यन थे और बीना की बौद्धिक प्रतिभा तथा बरिब असाधारण बौडि के थे। दोनों देशभक्त तथा पुषत स्वाबाधित थे। गान्धे इशरीय और भारत के पाश्चात्य सम्बाधो को बनावे रखने के पक्ष में थे, इसने विपरीत तिलक ने स्वराज्य के आकाश को अधिकल रूप से अगीकार कर लिया था और वे बोरे प्रजातन्त्रीय परिस्थता के सानुष्ट होने वाले गही थे। मोरारजे बादविवाद न बहुत ही कुशल और बजे हुए थे और बिषयकर विषय ललाबा के कथा में शोताश को मुक्त नर दिया करते थे। तिलक लोकविष जला में और साधारण जनता ने हृदय पर उनके भाषनों का महुरा प्रभाव पड़ता था। 1888 के बाद तिलक और गान्धे विचारो तथा कार्यो में एक दूसरे से वृक्त हो गये और बित्र मार्गो पर पक्ष दिख। इस समय ती हम बैबल चलना कर गलत है कि यदि वे दो महान राजनीतिक वरम्पर मिलकर बाय नर सलत ती देन वा बिलना सीबाय हाय। तिलक ने मोरारजे की भी सद्भावनि अलि की उसने इनके हृदय की उदारता और बिागतता का बरिबय बिलता है। 23 नवम्बरी, 1915 का तिवा न मोरारजे की बाय पर एक लेग लिखा। उसमें उन्होंने गान्धे की देशभक्ति की पूरिपूरि प्रशमा की। किंतु भारतीय राष्ट्रीयवाद के कर्बर्ती इतिहास ने मित्र नर दिया कि तिलक की कथप्रणाली ही अविन प्रभावकारी थी। अतिवादिता में स्वदेशी के आधिग सिद्धांत और बिदेशी वस्तुला न महिणार का समर्थन करने स्पष्ट नर दिया कि अतिवादी राष्ट्रीयवाद जदीकमान मध्य रूप के दिया वा प्रनिमितित करता था।

20 फीरोजशाह मेहता का 1904 की बम्बई बायल की स्वागत बनिधि न समर्थन क रूप में दिया गया था

31 *The Life of Purbakishan Patel* में पृष्ठ 199 पर उद्धृत।

यदि आपमें अधिक प्रतिरोध की शक्ति नहीं है, तो क्या आपका आत्मसाधन और आत्मसमर्पण की इतनी शक्ति नहीं है कि आप विदेशी सरकार को अपने ऊपर शासन करने में सहायता न दें ? यही बहिष्कार है, और जब हम कहते हैं कि बहिष्कार राजनीतिक अन्त है तो हमारा नहीं अभिप्राय है। हम उन्हीं राजस्व संग्रह करने और 'गांथि' स्थापित रखने में सहायता नहीं देंगे। हम उन्हीं ऐसी सहायता नहीं देंगे जिससे वे सीमाश्रय के पार अथवा भारत के बाहर भारतीय सैनिकों और धन से कुछ कर सकें। हम उन्हीं न्याय या नाम बान बखान में सहायता नहीं देंगे। हमारे अपने 'आत्मसमर्पण' और जब समय आया तो हम कर भी नहीं देंगे। क्या आप अपने समुक्त प्रकटा से यह सब कुछ कर सकते हैं ? यदि आप न ऐसा करने की शक्ति है तो अपने वो बल से ही स्वतंत्र समझिये। इस समय यहाँ जिन राजस्वों में आपका हिस्सा है उनमें से कुछ न बहा कि जा आपकी रोटी की छोड़कर पूरी के पीछे बीछता है यह आपकी तो भी हमारी बीछता है। किन्तु मेरा कहना है कि हम पूरी रोटी चाहिए और वह भी अभी सुरक्षित। किन्तु यदि मुझे पूरी रोटी नहीं मिल सकती, तो मैं यह न समझिये कि मुझमें धीरज नहीं है। जो आपकी रोटी के मुझे देने उसे मैं से लूना और रोप के लिए प्रयत्न करता रहूँगा। यही वह विचारधारा और राजनीति है जिसके लिए आप अपने को प्रशिक्षित करें। हमने बड़े साधनेय में आपका वह अवसर नहीं उठाया है। यह बुद्धिपूर्वक साधनेय है।"

जिन राजनीतिक मामलों में यह कहकर नहीं है कि वे बनी समझौता करने की तैयारी हो न होकर अथवा दूर स्थिति में दुराग्रह कर रहे रहते। उनकी भावना थी कि जो कुछ मिले उसे ले लो और रोप के लिए संपर्क करते रहो। उनकी राजनीतिक राजनीति का यही सार था। अतः स्वतंत्र सम्मेलन की शरणा देकर भी प्रमुख विचारधारा थी, और स्वदेशी तथा बहिष्कार स्वावलम्बन के व्यावहारिक रूप थे। किन्तु बहिष्कार का अर्थ निष्क्रिय और गतिहीन भाविक बहिष्कार नहीं था, वह तो वास्तव में निष्क्रिय प्रतिरोध का पर्यायवाची शब्द था। तिलक ने कहा "यदि आप की माँगें अत्यन्त बड़ा की जायें तो क्या आप इस प्रकार सन्तुष्ट करने के लिए तैयार हैं ? यदि आप तैयार हैं तो निश्चय मानिये कि आपकी माँगें अत्यन्त नहीं की जायेंगी। किन्तु यदि आप तैयार नहीं हैं, तो हमारे अधिक निश्चित और कुछ नहीं है कि आपकी माँगें नहीं मानी जायेंगी और बनी नहीं मानी जायेंगी। हमारा वास्तविक बहिष्कार नहीं है और न हमें बहिष्कार की आवश्यकता ही है। हमारे पास अधिक शक्तिशाली बहिष्कार है अर्थात् बहिष्कार का राजनीतिक बहिष्कार।" स्पष्ट है कि तिलक नहीं निष्क्रिय राजनीतिक चेतना को प्रतिष्ठापित कर रहे थे, ऐसी चेतना जिसकी अभिव्यक्ति सत्य और बल सहन न होनी थी। तिलक ने कहा कि आपकी अपने राजनीतिक दृष्टि की अभिव्यक्ति से उनकी कुछ अधिक उम्र से।" तिलक ने अपने लेखों अथवा भाषणों में राजनीतिक रूप से बनी ब्रिटेन के साथ राजनीतिक सम्बन्धों का पुनर्स्थापना करने की बात नहीं की। किन्तु पाल और अरविन्द ने समय-समय पर पूरा स्वराज्य का आदेश प्रस्तुत किया। विनिमय पाल ने लिखा था "वे (मिलवादी) भारत की सरकार की लोकप्रिय बनाना चाहते हैं, किन्तु उनका उद्देश्य यह नहीं है कि सरकार किसी भी अर्थ में ब्रिटेन के साथ से निष्पक्ष भाव, इसके विपरीत हम उसे तथा उस वर्धागत ब्रिटेन ने निष्पक्ष से पूरा स्वतंत्र बनाना चाहते हैं।" स्वतंत्रता कांग्रेस भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में एक महत्वपूर्ण चरित्र थी। तिलक ने कहा "कांग्रेस ने प्रस्तुत निश्चय कर लिया है कि स्वराज्य अथवा स्वावलम्बन हीका उद्देश्य है, और राष्ट्र को यह उद्देश्य अत्यन्त-कला और धीरे धीरे प्राप्त करना है, और यह भी निश्चय कर लिया है कि राष्ट्र अपनी शिवायता को दूर करने के अलावा अपनी राजनीतिक आकांक्षाओं की सफलता के लिए साविधानि आन्दोलन के रूप में प्राप्ति और सफलता की पद्धति को जारी रख सकता है, किन्तु अपने वास्तविक उद्देश्य की प्राप्ति के हेतु उसे अपने प्रसंग पर ही निर्भर रहना होगा। राष्ट्रीय कांग्रेस ने स्वदेशी, बहिष्कार

32 एक एक राज ने *India an Transition* के पृष्ठ 195 पर लिखा है कि अधिकांशों की नीति के तीन मुख्य कारण थे (क) अत्यधिक भारतीय प्रतिकार का सीमा किन्तु बुद्धिमान विकास (ख) बेकार युवकों का अत्यन्त, और (ग) उच्च दूरताओं की अत्यन्त निम्न स्तरों के लिए जन मन के उत्तर प्रत्यक्ष ही गया था।

और राष्ट्रीय शिक्षा के रूप में हमें तीन शक्तियाँ ही हमियार में दिये हैं और इनके द्वारा हमें स्वराज स्थापित करना है।

स्पष्ट है कि 1904 और विशेषकर 1905 से तिलक के नेतृत्व में एक नया राष्ट्रीय दल उभर खड़ा हुआ था। उसने स्वदेशी, बहिष्कार और राष्ट्रीय शिक्षा के द्वारा राष्ट्रीय मुक्ति को प्राप्त करना अपना राजनीतिक उद्देश्य बना लिया था। किन्तु मित्रवादियों की पुरानी पार्टी की असी मी विश्वास था कि ब्रिटिश राजनीतिज्ञों के 'साथ तथा स्पष्ट' जल में प्रेम की पुनर्जीवित किया जा सकता है। और कांग्रेस इसी पुरानी पार्टी में नियोजन में थी। केवल आदासाई ने सम्माननीय व्यक्तित्व के कारण 1906 में दोना दला में बीच खुली फूट पड़ने से बच गयी। किन्तु 1907 के प्रारम्भ से ही स्पष्ट होने लगा था कि बलवत्ता का समझौता केवल बाह्य और शक्तिशाली था, एक ऊपरी सीपापेरी था, वास्तव में वह दोनों पक्षों के बीच अवश्य ही एक गहन भेदभाव नहीं करता था। वास्तव में समझौते में एक आपण दिया और उसमें उन्होंने बलवत्ता में पारित बहिष्कार सम्बन्धी प्रस्ताव के महत्त्व का कम करने का प्रयत्न किया। उन्होंने कहा कि बहिष्कार का आवात्मिक तत्त्व स्वदेशी में निहित है, साथ ही साथ बहिष्कार में मुझे कुछ पुस्तक और प्रतिरोधमान्य मानना दिशाही देती है। उनका एक था कि भारत की वर्तमान औद्योगिक स्थिति में ब्रिटिश वस्तुओं का पूर्ण बहिष्कार सम्भव ही नहीं है और इसलिए 'जिस प्रस्ताव की हम कार्यान्वित नहीं कर सकते उसकी बात करते हम अपने को लज्जासाध्य बना देते हैं। 4 जनवरी, 1907 को एक आपण में भारत की राष्ट्रीय आकाशवाणी का उल्लेख करत हुए मोरले ने कहा कि मुझे यह लगकर प्रसन्नता है कि जिसे नया दल कहा जाता है उसमें एक नया—धी तिलक—ने अपने मन के हृत्त में एक अंक में कहा है कि बड़े लिए काम करने की औपनिवेशिक स्वशासन का आदेश पर्याप्त है। 1907 के प्रारम्भिक महान म तिलक और मोरले बलवत्ता में पारित विभिन्न प्रस्तावों के अभिप्राय तथा निहितार्थ में सम्मेलन में निरंतर विवादग्रस्त रहे। तिलक ने कहा 'हमारा विश्वास है कि राजनीति में परीपकार जल्दी कोई चीज नहीं होती। इतिहास में इस बात का कोई उदाहरण नहीं है कि एक राष्ट्र ने दूसरे पर जल्दी बिना लाल की आकाशवाणी के शासन किया हो। हम सार सीरी में विश्वास हैं, और आ कुछ व दाशनिज के रूप में कहते हैं जो भी हम आकाशिक मानते हैं। मुझे सम्प्रदाय का विचार है कि राजनीति की दाशनिज सिद्धांतों के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है किन्तु हमारा विश्वास है कि व दोना पुनर्त विजय वस्तु हैं, और उन्हें परस्पर मिलाना पड़ित नहीं है। मुझका सम्प्रदाय सोचता है कि एक साथ सम्मेलन में नियोजित प्राप्त की जा सकती है। श्री मोरले की ह्मा में विश्वास है। मैं कहता हूँ वह सब होने तथा कुछ करने की कहत है। वे निम्नलिखित प्रतिरोध का एक सविधानिय अर्थ में रूप में स्वीकार करते हैं। वे मानते हैं कि वहाँ की भीतरप्राप्ति पूर है और इनका का भीतरप्राप्त उदात्त है। उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि अब हम के हमारे प्रदान पर्याप्त रूप में सफल नहीं हुए हैं। उन्होंने भीषित किया है कि स्थिति वास्तव है। इन सब बातों में वे नये दल के साथ हैं। किन्तु अब काम करने का प्रान उल्लेख है जो वे कहत है 'मिर विज, हम भीषी-भी प्रतीक्षा करने चाहिए। परदार की अवकाश करने में कोई लाभ नहीं होगा। यह हम कुछ देगी। अब हमका निष्कर्ष यह है कि सहायिक हृत्त में भी आशय नये दल के है किन्तु आकाशवाणी में वे पुरान दल के अनुयायी हैं।

'साम्प्रदायिक आदर्शन पर के अर्थ में सम्मेलन में भी तिलक तथा मोरले में पार्टी मतभेद था। मोरले का कहना था कि भारत का राजनीतिक आदर्शन साम्प्रदायिक होना चाहिए। किन्तु तिलक ने बलवत्ता कि भारत में मूल विधि में अर्थ में साम्प्रदायिक लाल की वस्तु नहीं है, जल्दी कि साम्प्रदायिक सम्प्रदाय पति दला में देखने का विवर्ती है। 1858 की भीषण गहरी अर्थ में सविधान नहीं है फिर प्रस्ताव की अर्थ में उल्लेख किया जा चुका है। उन्होंने विवाद में कहा कि भारत में दल विधान की स्वीकार और कोई सविधान नहीं है। उनका कहना था कि भारत का राजनीतिक आदर्शन सही और पर विधि नहीं है। उनका विश्वास कि भीषणप्राप्ति की वस्तु ही है मन में विधि के उत्तर प्रदान में प्रतिनिधित्व होती है और विधान विधि-अर्थवादी उत्तर प्रभावित हान वाली जलता की सम्प्रति के बिना वस्तुओं का वस्तु है। इसलिए तिलक ने समझाया कि 'साथ, बलिष्ठा और

इतिहास ही राजनीतिक आन्दोलन में हमारा पथ प्रदर्शन कर सकते हैं। किन्तु तिलक के राजनीतिक काम और नीति में एक बात सबसे महत्वपूर्ण थी। वे कभी कालून नहीं ठोकना चाहते थे। वे विद्यमान विधि व्यवस्था की समीक्षा के भीतर रहकर ही आन्दोलन चलाना चाहते थे। उन्हीं विधि की अतिवृत्ति का सूक्ष्म ज्ञान था, इसलिए वे विधि की सीमाओं के अन्दर ही राजनीतिक प्रचार का काम चला सकते थे, वे सीमार्थ विपरीत ही समझी नमा न होती। किन्तु उनका कहना था कि सरकार को चाहिए कि सामयिक व्यवहार के सिद्धान्त पर डटी रहे और अपनी बदलायी हुई सनन और मन की सीज के अनुसार विधि में संशोधन न करे। किन्तु यद्यपि तिलक विद्यमान विधि व्यवस्था की परीक्षाओं को स्वीकार करते थे, फिर भी उनका तथा गोल्ले का आधारभूत अन्तर था। तिलक विद्यमान विधि की व्याख्या इस रूप में करना चाहते थे कि अतिवाधियों का राजनीतिक आन्दोलन चलाया जा सके। इसने विपरीत वाले विद्यमान विधि का ध्यान करने में समर्थक थे। तिलक तो इस पक्ष में भी थे कि अतिवाधियों का विस्तार किया जाय और सरकार ने साथ सहानुभूति करना बन्द कर दिया जाय। किन्तु गोल्ले इन आदर्शों का कभी समर्थन नहीं कर सकते थे। उन्होंने तो सर्वप्रथम आधुनिकता की सीमाओं के समर्थन की प्रस्तावना में जिनके के साथ सम्बंध की ईश्वरीय विधान के अन्त में स्वीकार कर लिया था। तिलक स्वराज्य के आदर्श के पुजारी थे और मोरारजी को सदैव देश का साथ समर्थक रहे।

(घ) तिलक तथा अरविन्द का राजनीतिक चिन्तन—तिलक अरविन्द की महान् बौद्धिक प्रतिभा की स्वीकार करते थे। राष्ट्रवादियों ने अरविन्द के नेतृत्व की स्वीकार किया और 1907 में उन्हें अनेक राष्ट्रवादी सम्मेलनों का समन्वयक बनाया। अरविन्द तिलक की असाधारण बुद्धि के सम्बन्ध और महान् राष्ट्रवादी नेता मानते थे। सूरत की बूट का का विवरण अतिवाधियों में प्रस्तुत किया उस पर हस्ताक्षर करने वाला थे तिलक और अरविन्द के नाम अग्रस्थ थे। जनवरी 1908 में अरविन्द ने अपने योगी गुरु रामे के साथ पूना की यात्रा की। तिलक के निवास-स्थान सम्बन्धित यात्रा में उन्होंने एक भाषण किया। उन्होंने उन्होंने बनायी 'राष्ट्रवाद के आध्यात्मिक आधारों का इतिहास बतलाया। 19 जनवरी को अरविन्द ने बम्बई की एक विज्ञापन समाज 'राष्ट्रवाद के आध्यात्मिक स्तंभ' शीर्षक विषय पर भाषण किया। बरोसा, वासिष्ठ, अमरावती और कादम्बू में भी अपने भाषण हुए। 29 जनवरी, 1908 को उन्होंने 'वन्देमातरम' का मध्य सम्मान। निम्न जन्म शायियों और गीतों, विशेषकर रामदेव और मुनि के साथ तथा व उपस्थित थे। अरविन्द के चरित्र तथा व्यक्तित्व के सम्बन्ध में तिलक की धारणा बहुत अच्छी थी। *होमर का जन्म* के शिलो में तिलक ने अरविन्द और लाला लाजपत राय की अनुपस्थिति पर *जन्म के जन्म* शिलो (जन्म दिना सत्ताजी अमरीका में थे)।

के स्वशासनका और धर्मनिरपेक्षता का प्रतिरोध है। महात्माजी ने राष्ट्रीय और सामाजिक समझौते तथा जनता के अधिकारों का प्राधान्य है।³³ राजा प्रताप की वे आधुनिक विरोधपूर्ण अवधि और विचार के सहायक दृष्टिकोण में व्यक्त होती है।

राष्ट्रवाद की धारणा के सम्बन्ध में तिलक ने परोक्षतापूर्ण ढंग का अधिक महत्व दिया और कहा कि कोई जनतावादी नहीं राष्ट्रवाद मानता है जब उसने जनता में परस्पर सम्बन्ध होने की चेष्टना व्यक्त हो।³⁴ किन्तु अरविन्द और राजा ने राष्ट्र की आध्यात्मिक और धार्मिक धारणा पर अधिक ध्यान दिया। अरविन्द राष्ट्रवाद को धृष्ट और सार्वजनिक धर्म मानते थे। तिलक का कहना था कि स्वराज्य देश की विदेशी लोकशाही के प्रभुत्व से मुक्त करने के लिए आवश्यक है। किन्तु अरविन्द की धारणा की कि भारत की राजनीतिक मुक्ति विदेश के आध्यात्मिक परिवर्तन के लिए आवश्यक है। अरविन्द ने राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा की धारणा कभी प्रसार की। उनका विद्वत्ता था कि भारत का उत्कर्ष इसलिए होने का रहा है कि वह जनता में धर्म का दीर्घ सारे विश्वास में फैला रहे।

तिलक के मन में भारत की स्वातंत्र्यता के लिए उत्पन्न प्रेरणा, किन्तु अपने राजनीतिक वाक्यमय में के सदैव ब्रिटिश प्रभुत्व का अत्यन्त स्वराज्य के उद्देश्य को देखकर था। तिलक ने स्वराज्य के लिए समग्र किताबें अर्थात् ब्रह्मसंहिता के प्रतिपादित स्वातंत्र्यता की भावना रखी है।³⁵ तिलक समाजवादी राजनीतिज्ञ थे, इसलिए उन्होंने स्वराज्य अथवा स्वातंत्र्य के आदेश का समर्थन किया।³⁶ किन्तु स्वदेशी आन्दोलन के दिनांक का वह और अरविन्द स्वातंत्र्यता की बातें किया करते थे। (जैसे बलराम दास साधुजीय सत्य के पक्षधर उक्त गद्य)। अरविन्द ने घोषणा की कि विदेशी साम्राज्यवाद को भारत पर एक निम्न कोटि की सम्पत्ति को बना कर अधिकार नहीं है। तिलक ने इस विषय में सावधानी से काम लिया। जनता का धर्म में उन्होंने कहा “एक आदेश के रूप में स्वातंत्र्यता कभी अच्छी चीज है किन्तु उसने फिर आप जानते हैं कि तिलक ने सदैव ब्रह्मसंहिता को देखते। उसने लिए प्रयत्न करने का अर्थ होता “भारत का विप्लव मुक्त बनाया।”³⁷ यद्यपि तिलक ने अपने भाषनों और लेखों में स्वातंत्र्यता धर्म का सदैव परिहार किया और स्वराज्य प्राप्त के ही राष्ट्रवाद रहे फिर भी ब्रिटिश सरकार को भी ब्रह्मसंहिता जानती थी कि वे उसने अपने बड़े राजनीतिक धर्म थे। ब्रिटिश सरकार को पता था कि भारत में एक ऐसा व्यक्ति है जिसे कोई प्रयोग नहीं अपना अनुभव अपने स्व निर्धारित मार्ग से प्राप्त नहीं कर सकते। और दुर्भाग्यपूर्ण तिलक अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक ब्रिटिश साम्राज्य के सबसे बड़े विरोधी रहे।

बलराम के अतिवादियों तथा तिलक दोनों ने निम्नलिखित प्रतिरोध के विद्वान्त की स्वीकार किया। तिलक के अनुसार स्वदेशी तथा बहिष्कार निम्नलिखित प्रतिरोध की मुख्य माध्यमता थी।³⁸ किन्तु अरविन्द निम्नलिखित प्रतिरोध की दृष्टि में अधिक व्यापक धारणा मानते थे। उनका कहना था कि निम्नलिखित प्रतिरोध अस्मात्मानुसार जानूँ अथवा अस्मात्मानुसार आदेश पर आत्मिक प्रतिरोध अथवा अर्थ प्रयत्न है। इसलिए अरविन्द स्वदेशी के प्रचार और बहिष्कार की वैधता से ही साबुत नहीं थे, उन्होंने अस्मात्मानुसार जानूँ और आदेशों का विरोध करने का भी आग्रह किया।³⁹

(३) क्या तिलक अतिवादियों थे?—जीनोवा सातवरी के आधुनिक पक्षों की भारतीय असाति एक अतिवृत्त तथा अतिवादी आन्दोलन था। यदि हम मानकर चलें कि वह राष्ट्रवाद का आन्दोलन था और उसका उद्देश्य देशवासियों के मुक्त प्रभुत्व को पुनः प्राप्त करना था तो हम उसी मातृभूमि प्रकृति की कड़ी समझ सकते हैं।

33 अरविन्द, *Renasant India*, पृष्ठ 131।

34 जन की केसर *Life and Times of Tilak* पृष्ठ 486-87।

35 *Tilak's Writings in the Kesari* 3 भाग 4 (पृष्ठ 3), पृष्ठ 248-49।

36 जीनोवा सातवरी के तिलक की मृत्यु की 17वां बरती पर जिन्हें बड़े अर्थ साधन में कहा था कि तिलक ने पुनः स्वराज्य का लक्ष्य दिया था। सातवरी का वह भाषण 6 अक्टूबर, 1937 के बरती में प्रकाशित हुआ था।

37 *Reminiscences* भाग 1, पृष्ठ 483।

38 केसर में 1906 में प्रकाशित तिलक का भाषण।

39 जीनोवा, *The Doctrines of the Indian Renaissance*

भारत के राष्ट्रीय उन्माद की यह व्याख्या निम्नलिखित असत्य एवं उलझे दृष्टिकोण की वीथिका है कि यह काल के कुछ भाग, महाराष्ट्र तथा पश्चात् तक सीमित था और उसका संचालन कुछ शक्तिशाली हिन्दू अनुदारवादियों ने हाथों में था। वास्तव में यह भारत की जनता का अपनी राजनीतिक अवस्था के शासनात्मक के लिए कष्टपूर्ण और पीसा प्रयत्न था। भारतीय पूँजीवाद का उदय और उसकी भारतीय बाजारों को विदेशी औद्योगिक केन्द्रों की प्रतिस्पर्धा से मुक्त करने की स्वाभाविक इच्छा भी देश में अशांति के उठने का कारण थी। दयानन्द, विवेकानन्द, तिलक, बाल और अरविन्द के आध्यात्मिक तथा धार्मिक उपदेशों ने भारत की आध्यात्मिक आत्मा को पुनर्जीवित करने और विषय में उसकी प्रमुखता स्थापित करने की तीव्र उत्प्रेक्षा उत्पन्न कर दी थी। इस प्रकार भारतीय अशांति के मूल में राजनीतिक, आर्थिक तथा धार्मिक कारण थे। उस पर जापान की विजय ने भी एशिया को बहुत प्रभावित किया था। यद्यपि कुछ पश्चिमी यूरोप की सम्पत्ता या अमिन्न अब नहीं था और नास्तिक आदि की कपोलकल्प के समर्थन उस एशियाई तथा अरब सम्प्रदायों ने, फिर भी प्रान्त के लोग उसे यूरोपीय देश समझते थे, और इसीलिए जनन के क्षय में, "उस विजय (जापान की दस पर) की प्रतिफलित प्रान्त की दूरस्थानी दीर्घाशा में मेघचक्र के सदृश्य सुनायी दी।" 1903 के बाद तिलक तथा उनके बराबरी सहयोगियों के नेतृत्व में भारत में उस तथा शक्तिशाली राष्ट्रवाद का विकास होने लगा। इस दल का विचार था कि पुनरुत्थानशील भारत की मानवशास्त्री की सन्तुष्ट करने में सम्भव में सरकार की नीति आवश्यकता से अधिक लापरवाही की और निषेधात्मक है। विदेश में उदारवादियों के हाथों में शक्ति ने आ जाने से कुछ आशा बँधी थी, किन्तु वीथी ही स्पष्ट हो गया कि साम्राज्यवादी नीतिवादी अपने अपने देश नीति के माग से किञ्चित् भी छिने के लिए तयार नहीं है। मित्र की समनकारी नीति जनन की स्वेच्छाकारी तथा सन्तुष्ट नीति का एकमात्र अन्तर्निष्ठ सिद्ध हुई। सहायता नीतिवादी धीरे धीरे अधिकाधिक दूर होती गयी, और उसने देश के लोकमत का दुकानों की अपनी तीव्र इच्छा का वीथी ही परिचय दे दिया, जो सम्भव बहुत ही दृढ़ कर सिद्ध हुआ। दयानन्द के विचारों विरोधी आन्दोलन का प्रतीकार करने के लिए उसने अनेक समनकारी उपमा का सहारा लिया, उदाहरण के लिए पत्र की उत्पत्ति, वापकारी आदेशों द्वारा समुदायों और समाजों का दमन, बिना मुकद्दमा चलाने निर्वासित करना, गहरा व गुरावा ईश्वर तथा धार्मिक पुनित की सेवा, तथा छात्रों पर अनिवार्य चलाना, इत्यादि। भारीमान सम्मेलन की आय करना अमिन व चलाना सिद्ध हुआ। जिन नीतियों निम्नो सुधारों का इलाका हिंदीय बीटा गया था उन्होंने भारतवादिता को स्थापित व वाई कारिण्य अथ प्रदान नहीं किया। जित्त की अन्तर्निष्ठ शक्ति देश की जनता की हस्ताक्षरित नहीं की गयी। अतः राजनीतिक अशांति बढ़ती ही गयी। तिलक व अन्य पत्र 'मराठा' तथा 'विजय' के द्वारा जनता की मदती हुई अशांति को राष्ट्र निर्माण व सम्मानकारी माग में निवेशित करने का प्रयत्न किया।

किन्तु शक्ति ने मद में पूर नीतिवादी ने तिलक और गुरुदत्ता की सलाह पर वाई पत्र नहीं दिया। 1908 में अनेक समनकारी अधिनियम पारित विषय थे। विन्डोव पदार्थ अधिनियम पास किया गया। प्रेस पर निषेध लगाये वा दृढ़ कल्प के माग प्रयत्न किया गया। 1835 के भारत संवत्सक के प्रेस पर से सभी नियम तथा दृढ़ दिव के, यद्यपि उस समय पादचार्य शिक्षा के प्रसार के लिए ऐसा करना आवश्यक था। 1857 में वेनिम का प्रेस एक्ट पारित किया गया। उसने नकार नियम लगाये, किन्तु यह एक अस्वादी वामन था और वेनत एवं वप तब जादू रहा। तिलक का अनिवार्य प्रेस एक्ट देशी भाषाओं के समाचारों की स्वतन्त्रता का संकेत करने के उद्देश्य से पारित किया गया था। इस अधिनियम की इनसेन्स व नी आलोचना की गयी और 1882 में रिपन ने उसे निरस्त कर दिया। 1908 के भारतीय समाचारण (अपराधालोकन) अधिनियम पारित किया गया। इस अधिनियम द्वारा प्रदत्त नहीं गलिया व अपार पर सरकार ने 'मुक्त' नामक समाचारण बंद करवा दिया। इस अधिनियम की सम्मोक्षा करत हुए 9 जून के 'विजय' में 'य उदाय स्थायी नहीं है' निषेध लेख प्रकाशित हुआ। उसका अर्थ था "इस सप्ताह से भारत सरकार ने पुनः जन की नीति अस्मत्त कर दी है। हर वर्ष अथवा दस वर्ष या दस दस व दस बारह सरकार व गरीब पर सरकार ही जाता है। वस्तुमान समय भी इसी प्रकार का है। साठ नीतों के भारतवादि

दिखावसी रखते थे, किन्तु इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि तिलक ने साबरमर का राजकारणी और आत्मवादी नाम की प्रेरणा दी थी।

कुछ लोग का कहना है कि तिलक का राजकारणी होना इस बात के प्रमाणित होता है कि 1903 में नेपाल में हुस्मियारा का श्री कारखाना खोला गया था उसने तिलक का हृद्य था। 1901 की वलकला कांग्रेस के बाद बलबला में रहने वाली भारतीय भाषा के प्रसिद्ध एवं महाराष्ट्री महिला ने तिलक और बसु बाबा जोशी से नेपाल जाने की प्रार्थना की। साबरमर वहा गये और अपना नाम कुम्हारवा मद्र रख दिया। योजना यह थी कि नेपाल में हुस्मियारा का एक कारखाना खोला जाय। साबरमर ने किसी व्यवसाय के कहने परावर्तित कारखाने सम्बन्धी कामकाज आरम्भ कर दिया। किन्तु अंत में योजना स्थगित देनी पड़ी, क्योंकि कोल्हापुर के दानु जोशी ने कोल्हापुर महाराज की योजना का रहस्य बतला दिया था। साबरमर नेपाल के महाराजा की सहायता के परस्परत्व अब गये।⁵¹ इस घटना से केवल नहीं सिद्ध होता है कि तिलक नेपाल में हुस्मियारा का एक कारखाना खोला चाहता था, किन्तु इससे यह अनिवार्य निष्कर्ष नहीं निकलता कि उनके मन में सीधे सीतापुत्री के प्रारम्भ में अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध जाति खड़ी करने की योजना थी। हाँ वे एक समयों में अवसर 1953 और फरवरी 1954 में 'नेवरी' में एक लेखनात्मक प्रकाशित की। उसमें उन्होंने सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि सीतापुत्र देश के राजकारणी युवकों के लिए और शिक्षक थे। उनका कहना है कि तिलक ने कुछ प्रमुखता की शक्ति प्रसाद करने की भी सलाह दी थी। यह बात है कि साबरमर के इन लेखों से तिलक के व्यक्तित्व के कुछ ऐसे पहलुओं पर प्रकाश पड़ता है जिन्हें सम्बन्ध में पहले हवाई जानकारी अपनी अच्छी नहीं थी। किन्तु उनसे सलाह और निष्कर्षात्मक प्रमाण नहीं मिलता कि तिलक स्वयं राजकारणी थे। वह अपने समय के महान राजनीतिक नेता और उदात्त व्यक्तित्व थे, इसलिए देशप्रेमी युवक उनसे प्रेरणा की अपेक्षा करते थे। किन्तु पूरा ने साबरमर की एक मद्र का मत है कि 1908 तक तिलक का राजकारणिकता से परिचित सम्बन्ध था और उन्होंने उनकी प्रेरणा दी थी।⁵² उसका कहना है कि तिलक ने अपने मापका और लेखों में राजकारणी कामकाजियों और नीतियों का उल्लेख नहीं किया, किन्तु वे साबरमर तथा बसु काका जैसे अपने विश्वासपात्रों से ही अपनी प्रेरणा करते थे।

तिलक कहा करते थे कि सरकार में तीन प्रकार के मनुष्य होते हैं। जिसमें साबरमर युव की प्रधानता होती है वे आध्यात्मिक तथा नैतिक चिन्तन में समर्थ रहना पसंद करते हैं, और अपने साबरमर जीवन में अपने साबरमर की शिक्षा और प्रेरणा देते हैं। राजकारण तथा की प्रधानता वाले व्यक्ति राजनीतिक आन्दोलन और प्रचार के काम में जुट जाते हैं। जिसमें साबरमर युव प्रमुख होता है वे हिंसात्मक कामकाजियों का मान अपनाने हैं। किन्तु तिलक ने साबरमर व्यक्तियों की राजकारणी और हिंसात्मक कामकाजियों का हतोत्प्रेक्षित किया। 1906 में वे हिंसात्मक उत्पत्ति के सम्बन्ध में नासिक गये और कहा कहा "मैंने उन्हें सलाह दी कि अपने कामकाज की साबरमर आन्दोलन अपना शिक्षा के काम तक सीमित रखें और अनुचित माय पर मत पड़ें।"⁵³ 1907 में पूना में हिंसात्मक उत्पत्ति के तिलक ने कहा कि राष्ट्रीय दम की युद्ध चाहता है वह एक अब में जाति उत्पत्ति हो सकता है। उसका विश्वास है कि भारत के शासन के सम्बन्ध में गौरववादी या भी शिक्षात्मक है एक युद्ध बल दिया जाय। यह समय है कि जाति उत्पत्ति होनी चाहिए। किन्तु यह समझना मुश्किल होती कि यदि उत्पत्ति नहीं होना तो कलकत्ता की कल भी नहीं बहने पड़े। आपकी जाति उत्पत्ति होगी चाहिए किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि आपको कल न देने पर आपका कल न जाना पड़े।⁵⁴ इससे स्पष्ट है कि तिलक के मन में सशस्त्र विद्रोह अपना जाति का विचार नहीं था।

तिलक ने भारतीय राष्ट्रवाद की नींव का निर्माण किया और अज्ञात तथा राजकीय की

51. नेपाल की बहुत निर्माण सामा (पुस्तक) में सम्बन्ध में तिलक साबरमर के लिए देशप्रेमी साबरमर का सलाह निकली की शिक्षा तिलक तथा देशप्रेमी साबरमर युव बाबा जोशी का सलाह जीवन चरित।

52. का की पुर्न में 2 जनवरी, 1953, 4 जनवरी, 1953 और 23 फरवरी 1954 के फरवरी में प्रकाशित मध्य।

53. का की पुर्न मद्र में एक युवक का साबरमर की एक कल तिलक और उनके अपने विचार प्रकाश करने।

54. *Tilak or Ghosh* साबरमर युवकियों के साथ प्रकाशित, पृष्ठ 130-31 तथा पृष्ठ 179।

प्रस्तुत कर दिया जाय। इसमें अतिरिक्त विवरण था। वे कि भारत में राजनीतिक गतिशील स्वराज्य के लिए संघर्षित प्रयास में क्या की जायें। 1916 का यह भारतीय दृष्टिकोण में महत्वपूर्ण था, क्योंकि तिला और देशमंद दोनों ने अपनी-अपनी होम सीम प्रारम्भ कर दी थी। सीमा ही बात थीमें इसकी सीमावर्ति बन गयी कि सरकार का बख़्तर समाजवादी तर्कों अवनता पर। मुझ में भारत का आ विचार हुआ उम्मा उम्मा प्रतीति कम की बुद्धि हुआ नहीं, और इस नम्र नम्र में राष्ट्रीय आकांक्षा को आर्गन रूप में अर्पित महात्मता की। मुगलशासन में ही राष्ट्रीय भावना की बुद्धि हुआ नहीं। क्योंकि विद्रोह कुरी व विद्रोह बुद्ध कर रहा था, इसलिए वे विद्रोह में अग्रसर थे। मर 1915 में अली क़चुआ को उन्मुख कर दिया गया था, इसमें मुगलशासन और भी बुद्धि हुआ। तिला ने 1916 में स्वराज्य (होम रूल) आकांक्षा प्रारम्भ किया, यह तथ्य उम्मा राजनीति महात्मता की प्रामाण्य की प्रमाण है।

स्वराज्य आकांक्षा अर्थात् 1916 में औद्योगिक रूप में प्रारम्भ किया गया। अर्थात् 27, 28 और 29 की फैलवादी में बम्बई प्रांतीय सम्मेलन हुआ। का प्रतीति की सम्मेलन में सम्मिलित थे क्योंकि महात्माजी काकाकाके न उनमें सम्मेलन में अतिरिक्त हुआ की प्रमाण की थी। तिला की प्रामाण्य पर का प्रतीति में सम्मेलन का प्रतिनिधि बनना स्वीकार कर दिया, यद्यपि वे हृदय रूप सीम में सम्मिलित नहीं हुए।

देशवर्ष के सम्मेलन में तिला ने मुझ तथा राजनीति पर भारप्रमुख आपन दिया। उम्मा इस भारतीय का सीमावर्ति प्रमाण में सम्मिलित किया कि भारतवासी मुझ में की गयी सेवाका के प्रारम्भ पर अर्थात् अतिरिक्त की नम्र कर रहे थे। उनका कहा था कि भारतवासियों की यदि मुझ में बहुत पहने की हैं। उम्मा तिला ने अर्थात् अधिनियम (आत्म रक्षा) का निरूपण करने की प्रमाण की। किन्तु साथ ही साथ यह भी कहा कि यदि सरकार मुझ में सीमावर्ति एका करने के विद्रोह हा ता मुझ में उन्मुख यह किया जा सकता है। उम्मा कारण की कि राज्यवादियों ने विद्रोह प्रारम्भ के स्थान पर किसी अन्य विदेशी शक्ति की हस्तगत स्थापित करने की कभी कल्पना नहीं की। उम्मा कहा "इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि कलकत्ता प्रशासन व्यवस्था की अनेक कमियाँ के कारण देश में बहुत कुछ अन्तर्गत तथा अन्तर्गत प्रतीति हुई है। किन्तु इस अवस्थिति में हमारी गति प्रतीति होना में साथ नहीं पड़नी चाहिए। नीतिवादी शक्ति स्थापन के लिए समारम्भ है, इसका मुख्य कारण उनका यह है कि वह अपनी अतिरिक्त गति दिखेगी। किन्तु मुझ में हमारी प्रमाण के हमारी स्थिति के सम्मेलन में उन्मुख की प्रमाण की जायें सीमा की है और उम्मा विचारों दिला दिया है कि नीतिवादी की सरकारें कुशल विचारों हैं। अब उनमें सम्मेलन किया होता कि भारतवासियों के सम्मेलन में नीतिवादी का अतिरिक्त उन्मुख अनेक स्थान के कारण था। अब बुद्धि विद्रोह नीतिवादी की भारत की प्रतीति का जान हा गया है, इसलिये विद्रोह प्रतीति के अधिनियम के द्वारा अपनी सीमा की स्वीकार प्रमाण के लिए प्रमाण जानन का यही समय सबसे अधिक उपयुक्त है। मेरी राय में हमारी राजनीति तथा कलकत्ता मुझ में सीमा यही सम्मेलन है। उम्मा प्रमाण का प्रमाण की कि वे उम्मा इस बात से प्रमाण लेना चाहिए कि कुशल और रोम के विचार का कारण भारत के अति शक्ति की प्रमाण की। उम्मा कहा कि वे प्रमाण की विद्रोह में सम्मेलन विचारों के लिए कभी अतिरिक्त यही किया और न कभी विद्रोह प्रमाण का उन्मुख देश का ही सम्मेलन किया है। किन्तु उम्मा और देश प्रमाण की कि हर व्यक्ति को अपने अधिनियम की प्रमाण के लिए अधिनियम तर्कों से सम्मेलन करना चाहिए। यद्यपि वे विद्रोह के साथ राजनीतिक सम्मेलन का विचार नहीं करना चाहते थे, किन्तु उनका प्रमाण की कि कलकत्ता समय सम्मिलित उन्मुख है अब भारतवासियों की अपनी सीमा के लिए अनुरोध करना चाहिए। अपने प्रमाण के अन्त में उम्मा तिला ने प्रमाण की कि इस विचारवादी अनेक अधिनियम की सम्मेलन कर दिया जाय, इस एक विचारों से ही प्रमाण की गयी प्रमाण प्रमाण है।

28 अर्थात्, 1916 की नीतिवादी अतिरिक्त की सम्मेलन में बम्बई, महाराष्ट्र और तथा प्रमाण के लिए एक प्रमाण हुआ एक सीमा की स्थापना की गयी। तिला ने सीमा का उन्मुख प्रमाण प्रमाण और उम्मा अवस्था पर स्वराज्य (होम रूल) का अब और बहुत अधिक प्रमाण प्रमाण के सम्मेलन में।

सर आइज़क बट न 'होम रूल' कानून का आविष्कार किया था। आयरलैण्ड के होम रूल एक्टि-
एशन की पहली बैठक दिसम्बर में 1876 में हुई और उसमें जेम्स कैमेलन के साथ वापरलैण्ड के वैधानिक
सम्बन्धों का विरोध किया गया। तिलक ने 1908 में अपने अधिनियम मापन में और 1914 में
मराठा' की शिष्टि गये एवं पत्र में स्वराज्य (होम रूल) का उल्लेख किया था। गांधीजी ने 1909
में 'इण्डियन होम रूल' (हिंद स्वराज्य) नामक एक पुस्तिका लिखी थी। होम रूल तीन शरम्भ करने
से पहले तिलक ने कांग्रेस के समस्त प्रस्ताव रखा कि एक प्रतिनिधि मण्डल इंग्लैण्ड भेजा जाय, जिन्हु
में प्रस्ताव स्वीकृत हो सके। होम रूल तीन स्थापित करने तिलक ने अपनी उलट देशभक्ति प्रमाणित
कर दी और सरकार के उन निष्ठुओं को आपाधा पर पायी कर दिया जो समझते थे कि वे सत्य
राजनीति से सम्बन्धित थे और अधिक पुरातन तथा सर्वसाधारणीय कार्योन्मुखी की छात्र में अपना
समय लगा दिये। होम रूल नाम ही महत्वपूर्ण था। वह इस बात का चोटक था कि तिलक पर
आयरलैण्ड के राजनीतिक आंदोलन और नागरिकों का प्रभाव था। 1916 में आयरलैण्ड में जो
ईस्टर रिबेलिऑन हुआ उसने भारतीय नेताओं का ध्यान उस देश की ओर विशेष रूप से आकृष्ट किया।
1905-1908 में तिलक ने स्वराज्य स्वदेशी बहिष्कार, राष्ट्रीय शिक्षा और निष्क्रिय प्रतिरोध का
पंचमूली कार्यक्रम जनता के समक्ष प्रस्तुत किया था (बनौ बनी बहिष्कार और निष्क्रिय प्रतिरोध की
एक ही मानक उसे बहुमुखी कार्यक्रम भी कहा जाता था)। जिन्हु 1916 से तिलक ने वैधानिक
रूल पर अपनी धारणा को स्वीकार कर लिया था। होम रूल का प्रभाव था कि तिलक ने वैधानिक
समस्या में अपने निरवधारिता को सन्तुष्ट करने के लिए तिलक ने प्रतिरोध करने के विचार का सम-
र्थन किया। फिर भी उन्हें एक पूर्ण समर्थन प्राप्त करना पड़ा क्योंकि अपने 1906 और 1907 के
समय में तिलक ने ब्रिटिश राजनीतिज्ञों और ब्रिटिश मजदूरों का समर्थन किया था। तिलक ने
बन नही किया था, जिन्हु मुझ के कारण परिवर्तित हुई परिस्थितियों में उन्होंने अपनी नीति में समायोजन
कर लिया। तिलक को होम रूल की शिक्षा साम्राज्य का अन्तर्गत स्वराज्य चाहती थी और यह
ब्रिटिश पार्लियामेंट के वैधानिक अधिनियम के द्वारा ही सम्भव हो सकता था। लोग को इच्छा थी कि
भारत की राजनीतिक माया के आधार पर पार्लियामेंट में एक विधेयक प्रस्तुत किया जाय और
मई 1916 में तिलक जिता सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिए अहमदनगर गए और वहाँ
ब्रिटिश शासन एक्टिओन के लाक्षणिकता में भाग्य दिया। उन्होंने कहा कि 'मैं प्रस्ताव के अन्तिम
बुद्धिमानता पर विचार करने चाहता हूँ। हम ब्रिटिश पार्लियामेंट का समर्थन एवं विधेयक प्रस्तुत
करना चाहते हैं जिसमें वे सब परिवर्तन सम्मिलित हों जिनकी माँग हम कर रहे हैं।' उन्हें यह बहुत
गुरा लगा कि उन विधेयक स्वतंत्रता के अधिष्ठाता का उद्देश्य करने और नागरिकों का साथ
बालका पीता व्यवहार किया जाय। उन्होंने जनता को समझाया कि मुझ में एक जो स्वयं अन्तर
दिया उचित काम उठाना अत्यंत आवश्यक है। उन्होंने श्रुति की-नी बानी में पाषाण की 'बाई
चाणू तब तक धरतीपाली और स्वयं नहीं हो। उन्होंने कहा कि हमें स्वतंत्रता नहीं है।

31 मई 1916 को तिलक ने अहमदनगर में स्वराज्य पर बहुत भाव दिया। उनमें
उन्होंने कहा कि 'यदि अन्तः साम्राज्यवादी नीतिपाली का शासन स्थापन में विन्नी है, तो
भीतरे स्थापन में विन्नी है उन्हें विन्नी शासन में सम्मिलित हो और वे बाई अन्तर्गत है। विन्नी में
तिलक का भी वैधानिक विधेयक नहीं था। उनका कहना था कि विन्नीयों का सम्बन्ध तो हिन्दू है,
दण्डित धर्म की धरती भारत के स्वतंत्रता के लिए जाना जाता था। जिन्हु हिन्दू धर्म का अन्तर्गत
का राजा अपने बलवत्ता का धारण करता है और अपने बलवत्ता का सम्बन्ध रूप में धारण करता
का राजा अपने स्वयं का ही ध्यान रखता है और अपने बलवत्ता का सम्बन्ध रूप में धारण करता
है विन्नी है। बलवत्ता का धारण करना अधिक तथा राजनीतिक दृष्टि में अन्तर्गत है। पर
कार का बलवत्ता ही माया का धारण बलवत्ता है। सामन की धरती पर प्रभाव प्राप्त
अन्तर्गतता ही सम्मति में प्राप्त हो जा सकती है जिन्हु हम जानते हैं कि वह अन्तर्गतता है।

संगे। तिलक स्वीकार करते थे कि ब्रिटिश सरकार ने भारत में कुछ अच्छे भी काम किए हैं, किंतु उनका कहना था कि अंगरेजों के उत्थान और उन्नति के लिए अभी बहुत कुछ करना है। यदि कोई सरकार इसलिए कुछ होती है कि उसे उसके बचपनो का स्वरूप दिखाना जाता है तो उसका स्वभाव उचित नहीं रहा जा सकता। तिलक ने आग्रह किया कि विधोविधान के अर्थात् अधिकारी वगैरह से बिना छुटकारा आवश्यक है। उन्होंने कहा "हम इस हस्ताक्षर करने वाले विधोविधान की आवश्यकता नहीं है।" यह आवश्यक है कि अंगरेजों की स्वराज्य दिमाग जगाने के लिए अपने आंतरिक नाममात्र का प्रबंध स्वयं कर लें। स्वराज्य का अब सम्राट के शासन का अनुकरण करना और किसी देशी रियासत का शासन कायम करना नहीं है। एक धार्मिक उदाहरण देते हुए तिलक ने कहा कि हमें मंदिर के देवताओं की नहीं इज्जत है, केवल पुजारियों की बदलना है। सम्राट अपनी घाटी तथा बाकी प्रजा के बीच भेदभाव नहीं करते, इसलिए नीतरका ही पुजारियों की बदलने से उनका अहित नहीं होता। स्वराज्य का अब यह नहीं है कि अंग्रेज सरकार के स्थान पर जर्मन सरकार की स्थापना कर दिया जाय। स्वराज्य से अभिप्राय केवल यह है कि भारत के आंतरिक मामला का संचालन और प्रबंध भारतीयों के हाथों हो। हम ब्रिटेन के राजा-सम्राट की जगह रखने में विवश रहते हैं। तिलक ने जोरदार शब्दों में घोषणा की कि स्वराज्य के बिना भारत का भविष्य अंधकार में है।

1 जून, 1916 को तिलक ने अहमदनगर में स्वराज्य पर दूसरा भाषण दिया। उन्होंने श्रोताओं से आग्रह किया कि तुम अपने सभी मानसोचित प्राकृतिक अधिकारों को प्राप्त करना चाहिए। वे यह भी चाहते थे कि भारतीयों को ब्रिटिश-नागरिकता के सभी अधिकार प्रदान किये जायें। तिलक की स्वराज्य योजना में राजा-सम्राट के लिए स्थान था। यदि राष्ट्र के निर्वाहीरत्न और धर्म की रक्षण है तो स्वराज्य अनिवार्य है। ब्रिटिश साम्राज्य के राजनीतिक विकासक्रम से स्पष्ट है कि हमलोग अपने साम्राज्य की इकाइयों की स्वायत्तता प्रदान करने पर विवश होना, किंतु भारतीयों को परिचित के नाम उठाने के लिए तैयार रहना चाहिए। तिलक ने चेतावनी दी कि नीतरकाही हमारी बात में सुनने के लिए कुलतकल्य है। उन्होंने स्पष्ट किया कि नीतरकाही के अन्तर्गत मतभेद से शेरार पुनर्निर्माण के सिपाही तथा वास्तविक अंग्रेजी शासन सम्मिलित है। उनका आग्रह था कि भारतीयों को इज्जत और राष्ट्र के नाम स्वराज्य के अधिकारों की मांग करनी चाहिए, और अपने अधिकारों पर सन्तुष्ट आग्रह करना चाहिए। उन्होंने बतलाया कि स्वराज्य का अर्थ उन अधिकारों को प्राप्त करना है जो देशी रियासतों की उपलब्ध हैं, अर्थात् केवल इतना होगा कि स्वराज्य के अन्तर्गत वस्तुतः राजाओं के स्थान पर निर्वाचित अध्यक्ष होगा। परराष्ट्र नीति पर हमलोग का नियंत्रण रहेगा। तिलक सन्तुष्ट यह नहीं चाहते थे कि अपनी आकर हमलोग का स्थान केने। अपने इस प्रसिद्ध भाषण में तिलक ने प्राचीन के आधार पर वर्तमान की समीक्षा की थी स्वीकार किया। "भारत कहाँ देश है। यदि अब कोई भी उसे मादामा के आधार पर विचारित कर लेगा।" तिलक की कल्पना थी कि स्वराज्य के अन्तर्गत देश का राजनीतिक शासन संचालित होगा। उन्होंने अमेरिका की कांग्रेस (विधानसभा) का उदाहरण दिया और कहा कि भारत सरकार की भी चाहिए कि अपने हमारे के सभी प्रकार की अधिकारों को और एक साम्राज्यीय परिवर्तन के द्वारा उनका प्रयोग करें। उनका कहना था कि यदि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस स्वराज्य के मागने को अपने हाथ में ले और उसके लिए एक लीग की स्थापना करे तो स्वराज्य का समर्थन करने वाली देश की सभी लीगों उसी में मिली हुई जायेंगी। उन्होंने बतलाया कि कांग्रेस का अधिवेशन वगैरह के एक बार होता है इसलिए वह वषर भर प्रचार का काम नहीं करता सकती। इसीलिए हम एक लीग नाम के शुभक संगठन की स्थापना की गयी है।

8 सप्टेंबर, 1917 को तिलक ने इलाहाबाद में होय कम लीग के प्रारम्भ में स्वराज्य पर एक अन्तर्भाषण दिया और महामोहन मालवीय के शब्दों में अपना अर्थ व्यक्त किया। तिलक ने उन शब्दों का धार्मिक विवेचन किया जो लीग की स्थापना के लिए उत्तरदायी थे। अपने भाषण में उन्होंने स्थिति पर प्रतिक्रिया की धारणा की भी शमीक्षा की। उन्होंने कहा कि अंगरेजों का शासन नहीं कर सकती जो 'आप तथा अहित' के विषय हैं। उसे कानून के नाम और हानि पर विचार करना है, और यदि हानि अहित दिखायी देती है तो उसके लिए अपनी प्रतिवद्धता की मांग के अनुसार भाग

आने लिया कि वह आवश्यक है कि भारत को आत्म नियंत्रण का अधिकार दिया जाय जिससे वह विश्व शांति को बनाये रखने में योग दे सके। उदाहरणार्थी राजनीतिज्ञता तथा सत्य और 'सम के सिद्धांत' की भाव है कि भारत को आंतरिक मामलों में स्वायत्तता प्रदान की जाय। आत्मनियंत्रण का अधिकार भारतवासियों का अर्पणित अधिकार है। जिन लोगों को आत्मशास सम्प्रदाय में विश्वास-वीर्य मिली है और जो उनकी उत्कृष्टता में विश्वास करते हैं वे भारत की समस्याओं को हल नहीं कर सकते। भारत की समस्याएँ भारतवासियों के इरादों से हल की जा सकती हैं। स्मृतिवत् में लिख ने इस आशय का प्रकट किया कि आत्मशासिणी में प्रजासत्ताकी व्यवस्था का अभाव है। उन्होंने राजनीति तथा संस्कृति के क्षेत्रों में भारत की समस्याओं का जोखनी भावना में उल्लेख किया। उन्होंने बताया कि केवल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ही भारत की राजनीतिक स्वतंत्रता के योग्य नहीं मानती अतिसु सुगमता के मजदूर इस में भी अपने नाटियम सम्मेलन में इस बात को स्वीकार कर लिया है। लिख ने लिखा कि प्रत्यक्ष नोटफंड सुधार योजना असाध्योपयुक्त है और भारतवासियों को उसी भारी निराशा हुई है। उन्होंने स्पष्ट किया कि जब तक केन्द्रीय सरकार सत्तावादी और वैर विमोक्षक नहीं रहती है तब तक प्रांतीय प्रशासन की उदार नहीं बनाया जा सकता। उन्होंने इस बात का भी उल्लेख किया कि भारतवासी इंग्लिश बोलित की समाप्त करने की माँग करते आने में। उन्होंने बोलित आर स्टेट के रूप में एक नागरिकता विभाग की स्थापना के प्रस्ताव के प्रति घोर विरोध प्रकट किया। उन्होंने लिखा कि इस प्रस्ताव की स्वरुप अवज्ञानिक और अस्वाभाविक है, क्योंकि बहुसं-कारी विचारों को इच्छित रूप में विमोक्ष करने का एक प्रयत्न है। लिख ने स्वीकार किया कि मैं ब्रिटेन में सम्बंध तोड़ने की कल्पना नहीं कर रहा हूँ और इसलिए इस बात से सहमत हूँ कि कुछ तथा शांति वैदिक भावों, सेवा तथा नीतिना की भारतवासियों के विश्वास में न होना चाहिये। किन्तु उनका आपह था कि योग्यता प्राप्त भारतवासियों को सेवा तथा नीतिना के उच्च स्तर पर पहुँचने का समान अधिकार हो।

स्मृतिवत् के अंतिम अंश में लिख ने शांति सम्मेलन में दी बातों की घोषणा करने की औरतार अनीत की। अथम भारत का राष्ट्र तथा (वीर्य काय भावना) में प्रतिनिधित्व के वे सब अधिकार उपलब्ध होंगे जो ब्रिटेन के स्वयंसी उपनिषत्तों का वे दिने रूप हैं। दूसरे, यह घोषणा कर दी जाय कि आत्मशासी अपना शासन स्वयं करने में योग्य है और आत्म नियंत्रण का सिद्धांत भारत में सम्बंध में भी लागू किया जाय जिससे कि भारतवासी भोक्तृतािक इन की शासन प्रणाली स्थापित कर सकें। लिख ने लिखा कि इस प्रकार की घोषणा से भारतीयों भारतवासियों के हृदय में उत्साह और उत्तमता की भावना उत्पन्न होगी।

(ज) कांग्रेस लोकशासिक दल का घोषणापत्र—लिख ने अनुत्तर कांग्रेस में सभादी सह-पात्र के जिस सिद्धांत की स्थापना की उसका अर्थ यह था कि 1919 के सुधार अधिनियम (रिफॉर्म एक्ट) को अपमानित किया जायगा, किन्तु स्वयंसे के लिए मध्य अधिक सीख दिया जायगा। सम्बंध में एक भाषण में उन्होंने कहा "अधिकारी घोषणा कर दें कि वे हमारे साथ जिस प्रकार सहयोग करने को तयार हैं, इस उद्देश्य विरुद्ध विरोध है कि यदि वे हमारे साथ सहयोग करें तो हम भी उन्हें पूर्ण सहयोग देने को तैयार हैं। सहयोग अनिवार्य होगा है।" अधिनियम के कुछ कम सुधारों का अपमानित करने के विरुद्ध वे, किन्तु लिख ने चुनाव की शक्ति और मध्यमम का मंचन किया। मार्च 1920 में अपनी निम्न भाषा के दौरान उन्होंने घोषणा की थी कि मैं आपसी चुनाव करने के लिए एक दल का निर्माण करने जा रहा हूँ। 29 अप्रैल की भाषण औरताधिक दल का घोषणापत्र जारी कर दिया गया। विचार दिया गया कि कांग्रेस लोकशासिक दल विधान परिषदी तथा विधान सभा में स्थापना के लिए अपने प्रत्याक्षियों को भेजा करती। लिख का विचार था कि चुनाव के लिए यह प्रकार का संविधान के अनुरूप है इसलिए सरकार किसी राज्यादी कायगर्त का दमिल नहीं कर सकती। लिख की मुक्ति थी कि सब चीजों के आवश्यक सुधार अधिनियम के रूप में कम राजनीतिक आंदोलन को कक्षा प्रदान कर दी है। कांग्रेस लोकशासिक दल केवल चुनाव करने के लिए स्थापित किया गया था और उसकी वास्तविकता सम्बंधी शासन नीति थी। लिख उस दल के अध्यक्ष थे। वे चाहते थे कि बड़ी संख्या में राज्यादी संघर्ष विरुद्धता के

लिए चुन लार्में और वे अतिनिष्ठता की अपसौलना का मण्डादोड वरे और अखिल व्यापन लना मन्ताअननन मणारा के लिए आदोचन करें ।

जगता वि वाङ्मय साहित्यादिषु इतरेषु नामेभ्यो स्पष्टं वा, उत्तमे चापचापस्य मे वाग्देव तथा सोमनाभ मे आत्मा प्रकटं की गयी थी । उत्तम स्वीकार किया गया कि लालन व का लक्ष्यांकित चरम ने लिए शिक्षा वा विज्ञान तथा मनाधिनार वा प्रसार आवश्यक है । उसने धार्मिक सहिष्णुता के सिद्धांत को भी स्वीकार किया । “यह इत मुसलमानों के इस दावे वा मन्यन करता है कि शिक्षापरत की समस्या को मुसलमानों के मतवादी और बिस्वादी तथा कुरान के सिद्धान्तों के अनुसार हल किया जाय ।” घोषाचार्य ने राष्ट्र सभ के निमाग वा स्वागत किया गया । उसने 1919 के भारत सरकार अधिनियम (यवनदेवष्ट आच इण्डिया एक्ट) को अपमान, असंतोषजनक और विरागजनन बतलाया । यह भी कहा गया कि इसने दाता का दूर करने के लिए आवश्यक है कि ब्रिटिश मजदूर इन को सहायता के पालविष्ट मे एक नया अधिनियम पारित किया जाय । इस दल ने शिक्षित चरम, आन्दोलन करने तथा मजदूर करने की क्षमता थी । “मौलाना सुधार अधिनियम के बिनाही सारता है इस बीमा लव यह दल उसे पुन उत्तरदायी सामन प्रदान करने की प्रक्रिया को सीध बरने के लक्ष्य मे न्यायीवल करने वा समार । इस लक्ष्य के लिए इत लक्ष्यान और साविधानिक आन्दोलन व स भी थी जलता भी इच्छा वा पूरा करने वा समायिक सामकारी और उत्तम मार्ग जल पड़ेया उसी को बिना हिचकिचाहट के अपनाया ।” घोषणा के सामानिक तथा धार्मिक माग के सिद्धांतों को भी स्वीकार किया । उसने मजदूर दल कि मजदूर के लिए उचित मजदूरी तथा उचित काम के फन्टी की व्यवस्था की जायगी और पूजीपतियों तथा मजदूर के बीच स्वाधीनित सम्बन्ध स्थापित करने वा प्रयत्न किया जायगा । उसने रतमाधी के राष्ट्रीयकरण का समर्थन किया । उत्तम कहा गया कि भारतीय अधिकांशियों के मजदूर के एक सामरिक सेवा का निर्माण करना आवश्यक है । उसने आपा के आधार पर प्रालो वा पुनसंयोजन करने का समर्थन किया ।

कार्जुम सातसातनिक दल के घोषणापत्र में स्पष्ट है कि नितल व राजनीतिक सवाचता की गहरी सुमजुक थी और के कोरे जलदवाकादी स्याती पीछे डोकाने वाले और सपनदारी नहीं थे। सतसलत का सतकीता, सवराज्य से सतर्फी धत कार्जुम कीव योजनल वल सतसव ललल कार्जुम लोक-सातनिक दल वल घोषणापत्र, इन सबने प्रमातलल होला है कि नलतल व अतन मगल की सतसवापी को सतसवाकादी सतलकीष से दलने-सतसलत की प्रतललल थी।

‘शास्त्रम आद्य इतिव्या’ के इस आशय के वाक्यमय कि वाक्येय लोकताई एक दल का घोषणापत्र का तो लोकतांत्रिक या और न प्रवर्तित्वपूर्ण, हमारे पास इसका पर्वणत प्रमाण है कि तिनक महान सावक-उपायी है। वाकीली ने कहा था कि लोकतांत्रिक ने मिहारा तथा व्यवहार के प्रति तिनक की मक्ति एकदम अत्यवयवयव है। चूकि तिनक ने वाक्येय लोकताई एक दल का घोषणापत्र अपने हुता-धर से जारी कर दिया था, इसलिये कुछ लोगो ने उन पर निरुपेक्षता का आरोप लगाया है। किन्तु यहूतन कर्मवीर व अधिकतर राष्ट्रवादी नेताओं की सहायता तो थी। उन्होंने केवल समय बचाने की दृष्टि से घोषणापत्र अपने हस्ताक्षर से जारी कर दिया था। इसने अतिरिक्त के कलवत्ता के विरुद्ध अधिकार के समक्ष घोषणापत्र को प्रस्तुत करना चाहते थे, किन्तु पूरा नियति व समय के पहले यह समार में उलट गया।

तिलक बलिष्ठता में प्रवेश करने में वायव्यम की सजीवता पर चुके थे। उनका विचार था कि अनेक दृष्टि से अल्पवर्षा होने पर भी सुधार अधिनियम देश में राजनीतिक आघोषण की सफलता का संकेत है, यह सफलता जिसकी ही सीमित क्या न हो। यही कारण था कि वे जो कुछ दिया गया था उस तैल तथा रोष के लिए सक्षम करने की रीति थी। इसलिए कहा जाता है कि सभादी सहायता का सिद्धांत तथा कार्यय सौकराधिक कर्म की स्थापना से प्रकट होता है कि मसीही के रूप में तिलक की भूमिका सहाय्य ही चुकी थी और वाक्य के रूप में उनका नाम स्मरण ही गया था। विविध चर्चा प्राप्त सभादी सहायता के विरुद्ध थे। अखिलेश्वर व लालूच मूल में 'महानी' (विष्णुविष्णु) का मंत्र 'जगत्समी' (रम्यामिजित) सहायता और 'जगत्समी सहायता का अतिशय उनकी शक्ति में रही था। वे अखिलेश्वर के साथ ही सभादी सहायता के विरोधी रहे, क्योंकि वे उस सहायता

की नीति मानते थे। एम. वी. ब्रजकर १ जून तथा जुलाई के महीने में 'विस्मयी' में श्लोक लेख लिख कर बाल की भावनाओं का उत्तर दिया और 'समाधी' पत्र में सामयिकता स्पष्ट की। किन्तु 1922 में बाल ने स्वयं राष्ट्रीय की अग्रणीय की नीति के विरुद्ध तिलक की सहायी राष्ट्रिय की नीति की पुनर्नीति करने का समर्थन किया।

कांग्रेस लोकतांत्रिक नैतिक दल के घोषणापत्र के प्रभावित होने के कुछ ही महीने के भीतर तिलक का दल त ही बना, और देश की यह दिग्गम का अनुसार १ मिला कि सहायी राष्ट्रिय ने सिद्धांत का जनक उसकी शासन तथा राज्यप्रणाली का निम्न प्रकार विधान करता है। तिलक की दृष्टि में व्यवस्था त उसकी नीति का क्या प्रभाव पड़ा है, इसकी मोतीमाल नेहरू ने अपनी मनीषा की है। 1922-23 में राष्ट्रीय मेल में थे, और राष्ट्रीय आन्दोलन का नाम बलवान आवश्यक था। मोतीमाल लिखते हैं 'इस मार्गदर्शक की दृष्टि की निर्धारित करने के लिए लोकमान्य की विचारों से अधिक निर्धारक निर्देशन अथवा कहा मिल सकता था? इस निर्देशन की स्वीकार किया गया और इस प्रकार स्वराज्य पार्टी का जन्म हुआ। स्वराज्य पार्टी ने कहा कि, जो असाध्य समुद्र के बीच अपनी जाना के दौरान वृक्षाव के जेट में चल रहा था, लोकमान्य द्वारा निर्धारित अधिक सुपरिचित मान पर मोड़ दिया। यह कहना सचमुच सत्य है कि स्वराज्य पार्टी महारामा द्वारा निर्मित वृक्षाव ने अंतर लोकमान्य द्वारा निर्धारित मान पर चल रही है। स्वराज्य पार्टी महारामा तथा लोकमान्य दोनों के चरमों में बैठकर एक व्यापकद्वारित राजनीति की उनके आदर्शों में अनुमानित करने के लिए सत्यवादीयक कार्य कर रही है, और इसके के नीचे एका हीने की विपुल करने की धीरे के साथ प्रतीक्षा कर रही है।' एनी बेसेन्ट लिखती है कि 'सहायी राष्ट्रिय' का की रचना 1919 में अमृतसर में की गयी थी, और पुनर्निर्मित विधानाओं में वरारवाहियों में उसे विभाजित किया किन्तु उसे देखने के लिए जीवित नहीं रहे। मई 1920 में होम रूल लीग की चौकी बननीय बनायी गयी। कुछ आलोचना का आरोप था कि इससे एक जलन तिलक निरवधारी ही रहे थे, किन्तु माला कीने पर पुन अतिवादी बन पन म। तिलक ने इस आरोप का खण्डन किया और कहा कि इसलिये मैं दिल्ली कांग्रेस के प्रस्तावों से बँधा हुआ था अतः मुझे कांग्रेस द्वारा निर्दिष्ट हस्तियों का ही समर्थन करना था। मैं राष्ट्रीय कांग्रेस के आदेशों का अतिरिक्त नहीं कर सकता था।

(अ) तिलक तथा राष्ट्रीय के राजनीतिक चिन्तन में अंतर—तिलक राजनीति में सहाय-वादी थे, जबकि उन्होंने मरिमावेली और द्वाधरूने की नीति यह कभी नहीं लिखाया कि कति के द्वारा सब कुछ सम्पादित किया जा सकता है। वे राजनीतिक क्षेत्र में इस दृष्टि के खन करना चाहते थे कि उनके विरोधी कभी उनके बाजी न मार पायें। किन्तु यह कहना सत्य कहा है कि उन्होंने राजनीति में एक बगल के प्रयोग की अनुमति दी थी। वे राजनीति का क्षेत्र तो देखते किन्तु लोकतांत्रिक तरीके के क्षेत्र थे। उनका कहना था कि हर प्रकार की विवक्ति और अतिविरोधा के कुछ इस जनत में नैतिकता के आधारकृत सिद्धांतों पर उनके मुँह से प्रयोग नहीं किया जा सकता। अतः शासन में निर्धारित महान् समय के सम्बंध में समझौता करना आवश्यक हो जाता है। किन्तु राजनीतिक सहायवाद के समर्थक होते हुए भी तिलक के विपुल चल राजनीति के सिद्धांत की सभी स्वीकार नहीं किया। जनवरी 1920 में उन्होंने 'यह इतिहास' को एक पत्र लिखकर स्पष्ट किया कि देश अधिकांश यह कभी नहीं है कि राजनीति में सब कुछ 'साधोचित' है, यद्यपि मेरा विश्वास है कि 'समय' में प्रतिपादित मुँह में इस विज्ञान की कि गुणा की देश द्वारा नीतिना चाहिए अथवा व्यवहार नहीं किया जा सकता। अतः तिलक के सम्बंध में हमारा विचार है कि वे न तो युरोपियाई दल के आदर्शवादी थे और न हस्त तथा विस्माक की नीति सहायवादी थे। वास्तव में इन अधि-वादी सम्प्रदायों में से किसी के अनुयायी नहीं थे। उन्हें इन सम्प्रदायों असाध्य आकर्षित सहाय-वाद का अनुयायी यह सकते हैं। उन्होंने नैतिक तथा कृतनीति के प्रयोग का समर्थन नहीं किया किन्तु यदि उनका विरोधी दल शासन की अस्वास्थ्य का खन म वे इनके प्रयोग का पुरा नहीं मानते थे। वे सहाय राज्यात के राजनीतिक सिद्धांत की स्वीकार करने के और साथ उसका क्षेत्रित किया करते थे। मई 1915 में तिलक ने गिराजी के महान् आस्थाद्वारक मुँह का 'राष्ट्रीय' के रचयिता राजद्वार न बनती समाराह का समर्थितित किया। पूरा के मानवद्वार विष्णु मंदिर में सहा

विशेष उद्देश्य प्राप्त करने का उपाय दिया गया उसमें अपने इस मतमें भी निरोध था उल्लेख किया गया था । स्पष्ट है कि निम्न के निरक्षण में न अहिंसा न सिद्धांत में कभी विचलन नहीं गया । वे सर्वत्र कहा करते थे कि किसी राज्य की वैधिव्यता काय बाह्य परिणाम में नहीं आती जाती चाहिए, बल्कि यह संगत चाहिए कि जहाँ का उद्देश्य और मूल्य क्या है । निम्न न बाह्य और मूल्य-बोधन न भीतर का कि बाह्य कार्यों की व्यवहारिक वैधिव्यता की तुलना में उद्देश्य की वैधिव्यता आधुनिक दृष्टि में अधिक स्पष्ट है । इसलिए उनका तर्क था कि यदि मनुष्य वैधिव्यता अन्तः में ऊपर उठे और उसका मूल्यमापन से प्रेरित हो तो वह वांछित रूप में सफल है या साधारण व्यक्ति को सामान्य वैधिव्यता के विषय में नहीं । समझने और स्पष्ट विचार साधारणजन के आचरण के नियम के लिए होते हैं । जो मनुष्य वह भी वास्तविकता से ऊपर उठ चुके हैं और व्यक्तिगत जीवन की तुल्य चिन्ताओं से मुक्त हो चुके हैं वे इन नियमों और विनियमों से परे हवा करते हैं । हंगल न भी कहा है कि विषय ऐतिहासिक व्यक्ति ईसाइयत के नियमों के बोध नहीं होता । नीचे का भी मत है कि अहिंसक व्यवहार के वैधिव्यता से ऊपर होता है । निम्न के राजनीति आधारभूत के अनुसार सिवाही कि स्वयं व्यक्ति के और अपने देश की मुक्ति के लिए कार्य कर रहे थे । यद्यपि निम्न के मूल्यबोधन की उच्च वैधिव्यता का उद्देश्य दिया कि वह वैधिव्यता साधारणजन के समझने के समझने कि वे अपने जीवन में राजनीतिक हवा या समझने कर रहे हैं । यह अर्थ उल्लेखनीय है कि निम्न इस प्रकार सिवाही के कार्यों का वैधिव्यता अधिपति सिद्ध करने सिद्धि अधिपतिवादी की राजनीतिक हवा के लिए आधुनिक आधार तैयार कर रहे थे । निम्न का सावधानीपूर्वक समझने यह वैधिव्यता के लिए है जिसमें गांधीजी ने उद्देश्य दिया और अनुभव किया । अपने राजनीतिक विचार तथा आचरण में निम्न का महात्मात्मा तथा हिंदू धर्म की बीच वैधिव्यता के प्रेरणा मिली थी । गांधीजी पर इसका प्रभाव था । निम्न के अनुसार इस अनुभव प्राप्त थे ऐसे अवसर आते हैं जब मनुष्य की अहिंसा तथा वैधिव्यता न सिद्धांत में विचलित होना पड़ता है । गांधीजी का विश्वास था कि अहिंसा वा सिद्धांत आधुनिक और अविश्वसनीय है । निम्न के अनुसार अहिंसा अधिक के अधिक नीति के रूप में अपेक्षार की जा सकती है, जबकि गांधीजी के अनुसार वह निर-पेक्ष आकांक्षी नहीं है ।

तिलक और गांधी ने राजनीतिक पद्धति के सम्बन्ध में भी मतभेद था। तिलक की विधि का सूत्रम ज्ञान था, इसलिए वे बहुत करते थे कि मैं विधि की मर्यादा के भीतर स्वराज्य का आन्दोलन चला सकता हूँ। उन्होंने कभी अर्थव्यवस्था की अनुमति नहीं दी। 4 जुलाई, 1899 के 'बन्दरी' के प्रकाशित अपने प्रसिद्ध लेख में उन्होंने कहा "हम (अहिंसविद्या और मित्रवादिता) के दो बौद्धिक भी आने अहिंसविद्या को मानने में आनन्द का लहरे अथवा उत्तम अतिशय करने का कभी स्वप्न नहीं देखता।" 1907 में उन्होंने सचमुच मित्रवादिता के साविधानिक आन्दोलन के विचार का मंगोल चक्रावर्त, क्योंकि वे विरोधपूर्ण कहते थे कि आरत में दण्ड विधान ही एवमात्र सविधान है। हमारे महा आचार्यवृत्त प्रवृत्ति का कोई सविधानिक प्रयोग नहीं है। फिर भी मानना पड़ेगा कि यद्यपि तिलक के साविधानिक आन्दोलन का उपहास किया, किन्तु उन्होंने कानून बनाने की लत नहीं छोड़ी। 1907 और 1908 में निर्मित प्रतिकार के विरुद्ध विद्रोह का प्रकार दिया गया उसी भी तिलक का अहिंसविद्या केवल स्वयंकी और विलिखित थे थे। यद्यपि अहिंसविद्या में बातलाया कि निर्दोष विद्रोह में अनुचित कानून अथवा अनुचित व्यवस्था का अतिशय करने का काम भी अहिंसविद्या है, किन्तु तिलक ने इस विद्रोह को स्पष्ट रूप से कभी स्वीकार नहीं किया।

विष्णु का धीमी के रक्षकवर विधा कि यदि कानून किसी व्यक्ति के अंतःकरण के अधिकृत हो तो उसका विरोध करने का उसका अधिकार और अधिकार अधिकार है। समाज में एक मनुष्य किडन हो इस कायदा पर आधारित है कि मनुष्य को स्थापित विधि और समाज के सुव्यवस्था में व्यवस्था, अंतःकरण अथवा ईश्वर के कानून का मनुष्य को समझ और पालन करना चाहिए। दण्डविधि में कापीसी के अंतर्गत विधि की एक कानून की सीमा की सीमा ही की जो उनके अंतर्गत अधिकारों की अधिकार में समाज में लिए बनाये गये हैं। अंतर्गत की सीमा ही के अंतर्गत की सीमा-

प्रणाली को पूरा रूप से विवर्जित किया और विभिन्न अवसर पर सक्रिय अन्धका आन्दोलन चलाया।

तिलक तथा या की दम्पती का ही हिन्दू धर्म की उदात्त विधाभा में गहरी आस्था थी। अपने जीवन तथा वापसवान में तिलक परम्परावादी सनातन हिन्दू धर्म में अधिक निरुद्ध थे। फिर भी धारवाय सम्प्रदाय की जो अन्तःप्राय साधीजी में की यह तिलक की आलोचना के मुकामले में गहरी अधिक उब है। अपनी मुक्तिवा 'हिन्दु-स्वराज' में साधीजी ने पश्चिमी सम्प्रदाय के मूल्यों और सम्प्रदाय की तीव्र आलोचना की है। तिलक ने भी अपनी विद्या के कुछ दावा की जिन्दा की है, किन्तु उन्होंने स्वीकार किया कि अपनी विद्या में दस में राष्ट्रीय चेतना की जायज करने में याय दिया है। साधीजी ने पश्चिमी सम्प्रदाय की आधारभूत मान्यताओं की चुनौती दी थी। उन्होंने तिलक में प्रभावित धारवाय विद्या प्रणाली की अवगत बहुत दाना में आस्था की। तिलक की प्रति नायक के प्रभाव के रूपों तथा कायप्रणालियाँ से उलट अनुराग था। महारमाजी का पश्चिमी साक तिलक को प्रति स स रार्द मोह नहीं था। के वहाँ बरत में नि नैतिक विद्या का प्रमुख राजनीतिक सता के रही उच्च समुद्र है। उनका विचार था कि अन्तः एक व्यक्ति, यदि बट नैतिक दृष्टि से पूरा हो, जनता की इच्छा का एक बड़ी सत्ता में अधिक लम्बी तरह प्रक्रियाधिक कर सकता है। समय दृष्टि से देतन पर स्पष्ट है कि तिलक व मुन्नायने में साधीजी पश्चिमी सम्प्रदाय के अधिक बट्टर विरोधी थे। 'अभ्युदाय' की धारणा का निरूपण साधीजी ने किया था किन्तु उनका सामान्य विचार बहुत घुसका था। भारतीय राष्ट्रीय वायस द्वारा नियुक्त की गयी सक्रिय अन्धका जाँच समिति ने बताया कि अध्यापक की धारणा का बीज हम तिलक तथा मोरले के अधिक सामान्य विचार में बनाया जाये के अवसर पर अपने अध्यापीय मापन में बय मन का उत्प्रेक्ष करते हुए कहा था कि यदि विशासन रह नहीं किया गया हो जनता व हित में हम बीबलवादी के साथ हार प्रचार के सहयोग का विचारजित नहीं पड़ेगी। तिलक ने जनवरी 1907 में बतवत्ता में कथे दल के सिद्धांत को मापन दिया जहाँ उन्होंने सरकार व साथ अध्यापक व सिद्धांत का निरूपण किया, जिसमें कर न देने का सापेक्ष भी सम्मिलित था। 1909 के अपने एक मापन में मोरले ने विविध प्रतिपाद के सिद्धांत की व्याख्या की। अरविंद घोष की विविध प्रतिरोध क समर्थक थे, और उन्होंने सहिष्कार का नैतिक दृष्टि से उचित ठहराया।

तिलक साधीजी के अध्यापक आन्दोलन के नियामक रूप को देखने के लिए जीवित नहीं रहे। किन्तु साधीजी तिलक के जीवन बाल में ही दक्षिणी अमेरिका और और चम्पारन में सत्याग्रह का सफल सफलतापूर्वक चला चुके थे। अगस्त 1919 में रोड एक्ट का विरुद्ध सत्याग्रह के समय तिलक इंग्लैण्ड में थे। 16 मार्च 1918 को तिलक ने अधिविचारार्थ मोरले द्वारा सचाली में उचित साधीजी की बीबी की प्रारंभन दिया। जहाँ तिलक व साधीजी मोरले के साथ ही महत्वपूर्ण है, यद्यपि उनको सामंसीय रूप से सामर्थी बत किए जाने व सम्पन्न व सदैव ही होता है। मुक्ति साधीजी का अहिंसा और अवधान पर अत्यधिक आग्रह था, इसलिए बहुत समय तक तिलक उन्हें दैनिक समन्ते रहे।

मुक्ति विविध सरकार द्वारा के विरुद्ध लड़ रही थी इसलिए उन्होंने तथा भारतीय मुक्तयोजना के बीच कुछ के प्रारम्भ में ही समुदाय बड़ रही थी। मिय राष्ट्रीय ने मुक्ति के विरुद्ध अरब मोरले की सहायता देने का वकन दे दिया था इसलिए मुक्तियोजना वकन के हित निज होने का भय उत्पन्न हो गया था। मुक्त के दौरान अनेक समन्तीय विषय का युव व विनये लूशन मन्त्रालय ने समन्तीय और साहसिकचित समन्तीय मुक्त था। साधीजी ने भारतीय मुक्तयोजना का पक्ष लिया। अक्टूबर 1919 में हिन्दुभा तथा मुक्तयोजना का एक समुदाय सम्मेलन हुआ। साधीजी का जो निमन्त्रण भेजा गया उस पर हर्षीय अवगत था और भावक अती व हस्ताक्षर थे। इसल मुहमदी और यज्जान द भी सम्मेलन में उपस्थित थे। इसल मुहमदी ने लक्ष्मी साह के सहिष्कार का सुभाष दिया। साधीजी इस सुभाष व विरुद्ध के कि मुक्तयोजना मोरले ब व कर व और उसका करने में हिन्दु वितापन का समय बन करे। उनका बहना था कि भारत में रहने वाले विभिन्न सम्प्रदायों की साहसिक सहायता साधक होनी चाहिए वरता चुराते की मायका से टी रनी सहायता का विशेष मूल्य नहीं है। इस

सम्मेलन में प्रथम बार गांधीजी ने 'असहयोग' शब्द का प्रयोग किया। जनवरी 1920 में हिन्दू तथा मुसलमान नेताओं का एक और सम्मेलन हुआ और उसी के बाद मुसलमानों की भाषा के सम्बन्ध में वादों-विवादों के बाद एक प्रतिनिधिमण्डल भेजा गया। सीक्रेटरीजी ने लिखा है कि जिसका इस सम्मेलन में उपस्थित था। 10 मार्च की कलकत्ता में खिलफत सम्मेलन हुआ और उसमें असहयोग की नीति अपनाते का निश्चय किया गया। 24 मई, 1920 का सैवीज की गर्थ सम्मेलन हुई। लार्ड क्रॉय ने कहा था "मैं हम तुम्हें का एशिया सादर और प्रेम के उन प्रसिद्ध शब्दों से बर्णित करते हैं कि 'एक मुझ सब रहे हैं जो जातीय दृष्टि से प्रभावित नहीं हैं।' किन्तु सैवीज की गर्थ से इस प्रतिज्ञा का खण्डन होता था क्योंकि तुम्हें को प्रेम, आर्मीनिया और रूसों से बर्णित कर दिया गया था। शक्ति तथा तुम्हें से हीनकर हैवान के सुलतान का है विवेक नहीं है। इस प्रश्न का लेकर भारतीय मुसलमानों में बड़ा असहयोग फैला, और गांधीजी उनकी सहायता के लिए बल बढ़ा दिए। अब निराशा का प्रश्न भारतीय मुसलमानों में भारी हलचल उत्पन्न कर रहा था उसी समय 28 मई 1920 की हम्प्टर समिति की रिपोर्ट प्रकाशित हुई। उससे भारत के राजनीतिक दृष्टि से सफल सभी का सरकार के बंदू बिरौती हो गये। गांधीजी ने कहा कि रिपोर्ट में अधिकांशिका के दूर दूर तक हस्त की उचित ठहराने का आनन्द-नन्दन प्रत्यक्ष किया गया है। भारत के ब्रिटिश शासक तथा इंग्लैण्ड के श्रेष्ठों के बीच जो सहज सहानुभूति विद्यमान थी उसकी उल्टी कटु आलोचना की। रिपोर्ट में स्पष्ट था कि वैशाखिक और मकर पटनाका के साथ में भी ब्रिटिश साम्राज्यवादी तथा उनके समर्थक भारतीय श्रेष्ठता और अहंकार की आकांक्षा से ऊपर नहीं उठ सकते थे। 28 मई का सम्मेलन में खिलफत समिति की बैठक हुई जिसमें असहयोग का निश्चय किया गया। 30 और 31 मई का कांग्रेसमें में अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की बैठक हुई। सम्ये विवाद के अन्तर्गत निश्चय किया गया कि असहयोग के प्रश्न का हल करने के लिए कांग्रेस का एक विनियम अधिवेशन बुलाया जाय। खिलफतवाद तथा रबीन्द्रनाथ टैगोर चाहते थे कि बलकला कवरेज के विवेक अधिवेशन का सम्मानित किया करें। किन्तु तिलक आत्म-वाणी को ये ही अर्थ चाहते यह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया और साक्षात् सम्मेलन राय का नाम प्रस्तावित किया। उन्होंने कहा कि यदि मैंने सम्मानित किया तो फिर मैं विवाद में सम्मिलित नहीं हो सकूँगा। किन्तु यदि मैं सम्मानित नहीं करता तो गांधीजी के मुँह और बलकला के राष्ट्रवादियों के बीच समझौता करने का प्रयास करूँगा। अतः भारी दबाव के बावजूद तिलक ने शपथग्रहीत करने से इनकार कर दिया और साक्षात्की के साथ का सुझाव दिया।

9 जून 1920 की इलाहाबाद में अधिवेशन भारतीय खिलफत समिति की बैठक हुई। जिसका आर्म्बित किया गया किन्तु ये बैठक में सम्मिलित नहीं हुए। उन्होंने निम्नलिखित शब्द भेजे 'भारत के मुसलमान जो भी सहसम्मति से निश्चय करने के प्रयास में तथा मेरा दल सम्मेलन करेगा।' उनका निश्चय था कि खिलफत के प्रश्न का सम्बन्ध मुसलमानों का है इसलिए उन्हें ही इस विषय में सहज करनी चाहिए और हिन्दुओं की चाहिए कि साथ में उनके साथ सम्मिलित हो जायें। सम्मेलन का कहना है कि इलाहाबाद में हुई खिलफत समिति की बैठक में तिलक इसलिए सम्मिलित नहीं हुए कि वे राष्ट्रीय नीति में प्रस्ताव कर निश्चय करने के लिए कांग्रेस की छोड़कर जाय किसी बैठक के साथ नहीं बैठना चाहते थे। इलाहाबाद में 9 जून की खिलफत सम्मेलन की भी बैठक हुई उसमें एक वाचनायी समिति नियुक्त की गयी। गांधीजी उस समिति के सदस्य थे। असहयोग की नीति सहसम्मति से स्वीकार करती गयी।

30 जून की इलाहाबाद में निराशा समिति की बैठक हुई जिसमें निश्चय किया गया कि वादों-विवादों को एक महीने का मारिज देने के बाद असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया जाय। वादों-विवादों को मारिज दे दिया गया, और 1 अगस्त से असहयोग प्रारम्भ करने का लक्ष्य हुआ। जून के अन्त में किसी समय पीनसजली पूना के तिलक से मिले। उन दोनों की अन्तर्धीन बैठक 15 मिनट थी। सीक्रेटरीजी का भय था कि कुछ लोग तिलक और गांधीजी के बीच समझौता करी देना कर का प्रयास करेंगे। किन्तु वादों-विवाद में सीक्रेटरीजी की आकांक्षा दिवा कि मैं और गांधी मिलकर काम करेंगे। तिलक ने सीक्रेटरीजी से यह भी कहा कि कुछ मुसलमानों को असहयोग की अस्वीकार नहीं है मुझे

प्रापना कर रहे हैं कि मैं उनका नेताव कहूँ, किन्तु मैं उनी बापपम को अनीकार करूँगा तिलक
 सब मुसलमानों को तबोय हो। जुलाई के आठ म तोरभाय रम्भीर रूप से बीमार हो गये, उस
 समय में दम्नई म सरकार यह नामक अपने श्रिय होटल में ठहरे हुए थे। वे भोपना कर धुने थे कि
 बापेल लोकतापिक दल आशमा पुनाय लडेगा। चौकल अली ने लोकभाय की विस्वास दिताने
 कि मैं हिन्दु राष्ट्रवादियों से पुनाय न लडने को तबो यह सनडा हूँ जब मुसलमान नी एता करने
 का तयार हो। अत तिलक ने अनुसार पहला बदन यह था कि मुसलमान कोमिला के पुनाय म न
 लडे हा, तबो हिन्दु उनका साथ दे सनत 4। तिलक ने गांधीजी से सावद यह भी कहा था कि
 यदि राष्ट्रवादी कोमिला म न तय हो दूसरे लोग आयेने, और इस प्रकार कोमिलो का देश के विरुद्ध
 प्रयोग किया जा सकेगा। 'अपनिपत रूप से मरा विस्वास है कि कोमिला म जाना ही अच्छा है, और
 जब आवश्यक हो तो बापा दासी बाय और उसी प्रकार जय आचरण हो तो सहयोग किया जाय।

1920 तथा 1925 के बीच यह विवाद चला करता था कि असहयोग में सम्मथ में तिलक
 के क्या विचार थे। इस विवाद के समाधान का सावद एक ही तरीका है। यह यह है कि तिलक
 ने अपनी मृत्यु से पहले गांधीजी से जो कुछ कहा था उसके सम्मथ म गांधीजी के बचन भी ही
 प्रमाण मान लिया जाय। गांधीजी लिखत है 'उत्तर भारत की जाना के लिए बम्बई से प्रस्थान
 करन से पहले मैं बीवला जीवत अली के साथ सरकार यह न उनसे बात गया। जब हन बाबा से
 बापल लीडे तो मुया कि लोकभाय रम्भीर रूप से साथ सरकार यह न उनसे बात गया। जब हन बाबा से
 इससे अधिक और कुछ नहीं था। हमारी बोई बातचीत नहीं हुई। मैं उन्हें प्रमाण करने क्या,
 करना चाहता हूँ, क्योंकि यह इस अवसर के अनुकूल है। हिन्दुना और मुसलमानों के सम्मथ म
 उनसे बीवला की ओर मुड़कर रहा गांधी का जो कुछ पुनाय होना उस पर मैं हस्ताक्षर कर दूँगा
 क्योंकि इस विषय म मुझे उस पर पूरा विस्वास है। असहयोग के सम्मथ म उन्होंने जो कुछ मुझे
 पहले कहा था वही दुहरा दिया मुझे बापपम बहुत कुछ पता है किन्तु इसन देश हमारा
 साथ देना, इस बात म मुझे सवेह है। कारण यह है कि असहयोग जवता के सामने आध्यात्म का
 प्रस्ताव प्रस्तुत करता है। मैं ऐसा बोई बाप नहीं करूँगा जिससे आध्यात्म की प्रगति में बाधा पड़े।
 मैं तुम्हारी सफलता की कामना करता हूँ, और यदि जवता तुम्हारी बात सुनने को तैयार हो जाय
 तो मैं उलाह के साथ तुम्हारा समर्थन करूँगा। 23 जुलाई 1921 की गांधीजी ने 'यन इन्डिया
 म विस्वास की घोषणा दीएक एक लेख लिखा मैं स्वर्णम लोकभाय का अनुयायी होने का दावा
 नहीं कर सकता। करोडा देसवासिया की भाति मैं भी उनके पुनर्जीव तबल देसवासित और सबसे
 अधिक उनके ईशतिज जीवन की पवित्रता तथा गद्दान त्याग की कल्पना को सबसे अधिक सम्मोहित
 के महापुरया मे से ही ऐत से जिन्होंने अपने देसवासियों को कल्पना की सबसे अधिक सम्मोहित
 किया। उन्होंने हमारी आत्मा म स्वतन्त्र की भावना पूर दी। विद्यमान सामन प्रचाली के दावा
 को तिलक से अधिक अच्छी तरह और निजी में यही समझा। मरा बहुत विनम्र दावा है कि मैं
 उनसे सदैव को देसवासिता तक उतनी ही अच्छी तरह पहुँचाने का प्रयास कर रहा हूँ जितनी
 पदति तिलक की पदति नहीं है। और यही कारण है कि मरा राष्ट्र ने कुछ नजाना के सम्मथ
 म मुझे जब भी बर्जियाँ का सामना करना पड़ रहा है। किन्तु मैं हृदय से जानता हूँ कि तिलक
 का मरी पदति म अविस्वास नहीं था। मुझे उनका विस्वासापन होने का लोकभाय प्राप्त था। और
 अपनी मृत्यु से ठीक एक सप्ताह पहले उन्होंने मरा अनक मित्र के समक्ष अंतिम बात यह कर दी कि
 तुम्हारा नाम बहुत उत्तम है। तब यह है कि जनता की उस अवधान का लिए गांधी किया जा सके।
 किन्तु उन्होंने यह भी कहा कि मेरी अपनी सज्जाई है।'

लोकभाय तिलक आधुनिक भारतीय इतिहास की एक विभूति थे। वे प्रकाण्ड पण्डित भी
 थे। ईदिक तथा सामाजिक साथ के क्षेत्र म चिरस्थायी रचनका के द्वारा उन्होंने भारत का आधुनिक
 तथा सांस्कृतिक इतिहास म यत और गीति प्राप्ता करली है। उनका भारत का राजनीतिक इतिहास

म ही नहीं बल्कि इस देश के पुनर्जागरण के इतिहास में भी विरसपायी स्थान रहा। तिलक में पाण्डित्य तथा राजनीतिक नेतृत्व दोनों का समन्वय था, इस कारण भारतीय इतिहास में उनका विशिष्ट स्थान है। उनका राजनीति समाजवाद की सम्मीर और वैनी मूलभूत तथा विद्यालय बोद्धि आदर्शवाद का सम्मिश्रण था। राजनीतिक जीवन की उन्नत-गुणत, विद्याका और उदार चराच के बीच के कुछ वैदिक मन्त्रों का अथ कुछ निरालसे के चर्चित का अनुसरण करते थे। उनसे यह बोद्धि अविवक्षित थी जिससे कारण समुच्च का बीच एकाग्रता में आनन्द आता है। यह पुनर्जागरण की बात थी कि देश की राजनीतिगत दशागत में कारण उन्हें वाराणसी के अन्तर्गत जीवन में ही अपने साहित्यिक कार्यकाल के लिए समय मिल गया।

उनके पाण्डित्य का क्षेत्र बहुत व्यापक था। उन्होंने अनेक विषयों पर अधिकार कर लिया था। ज्योतिष, गणित, विधि, धर्म तथा धर्म में उनकी गति असीम थी। उन्हें बहिन सहिताश्री, हिन्दू धर्म तथा हिन्दू धर्मशास्त्र का पूरक, सम्मीर तथा मूल्य प्राप्त था। उनका वैज्ञानिक अनुसंधान के निष्कर्षों में भी कुछ परिवर्तन था। तिलक का पाण्डित्य व्यापकता तथा सम्मीरता दोनों की दृष्टि से अद्भुत का और उनका दृष्टिकोण बुद्धिवादी तथा आलोचनात्मक था। किन्तु उनके मन में हिन्दू धर्मशास्त्रों के लिए गहरी आस्था थी। 'पैता रहस्य' से पता चलता है कि वे दृष्ट्य तथा धर्मशास्त्रीय दोनों का ही विशेष आदर करते थे। फिर भी उन्हें यह कहने में तत्परी नहीं हुआ कि धर्म शास्त्रों का आदि निवास स्थान उत्तरी भू-प्रदेश था। यदि उनका दृष्टिकोण सही पर दृष्ट्यवादी होता तो वे भारत के बाहर के प्रदेश को भारतीय संस्कृति के अन्तर्गत का का आदि देश न मानते। उनका कवि-मूल्यम बलवत्तात्मकता का भी पुष्ट था। पीता के अन्तर्गत दोनों में दृष्ट्य ने कहा है कि 'मैं महीना में मासिक और शत्रुता में अन्तर्गत हूँ' इसमें वे वेदा की प्राचीनता के सम्बन्ध में ज्योतिष का कुछ कुछ निवृत्तता बलवत्तात्मक मूलभूत बलें व्यक्ति का ही काम था। किन्तु इस बलवत्तात्मक दृष्टि के साथ-साथ तिलक ने समुच्च के लिए विद्या का भी बीच उन्नतता की पावी पायी थी। उनके वैदिक धर्म शास्त्रों में जो अर्थात् पाठ-संरचना करते रहे हैं उन्हें देखकर हम उनके बोद्धि परिवर्तन पर आश्चर्य होने लगता है।

तिलक के अनुसंधानों का कुछ राजनीतिक प्रभाव भी पड़ा। उनके शास्त्रों से पता चलता है कि उन्हें भारत की आध्यात्मिक विरासत की जीवनशक्ति की गहरी आस्था थी। उन्हें भारत की प्राचीन बोद्धि उन्नतियों पर धन था। साथ ही साथ उन्हें इस बात में भी अग्रिम विश्वास था कि गणित के लिए देश में अवशिष्ट शक्तियाँ विहित हैं।

उन्होंने राजनीतिक विद्यालय पर एक विशद प्रथम निष्कर्ष की घोषणा बनायी थी। अपने दर्शन सम्बन्धी ज्ञान और राजनीति की दृष्टि-आय एवं दृष्टिकोणता की गहरी समझ के कारण वे राजनीति के सैद्धांतिक आधारों का विशद विवेचन करने में सर्वथा योग्य थे, किन्तु वे अपनी घोषणाओं को मान्य नहीं कर पाये। उनके मन में भारत का नई शास्त्रों से इतिहास लिखने की भी घोषणा थी, किन्तु राजनीतिक कार्यकाल में उसके रहने तथा अन्तर्गत मूल्यों के कारण अपनी यह घोषणाओं को पूरी न हो सकी।

एक राजनीतिक नेता के रूप में तिलक ने 'कमरी' तथा 'भारत' के द्वारा अपने राष्ट्रीय आदर्श दिया। उनकी लेखनी में शक्ति तथा शोक था। वे जो कुछ लिखते थे उसे सारा महानिष्ठ सम्मत्ता था, और 1906 से तो उनकी बात समुच्च देश सम्मत्ता तथा था। इस पत्र के द्वारा उन्होंने अपने मनो और अनुभावों की एक सुदृढ रचना समार करनी की विश्वासी मंत्र प्राप्त कर लिया था। उन्हें तीन बार कलकत्ता का का उन्नत किया उन्नत से अपने दृष्ट्यमित्रों के श्रम बन गये थे। जब उन्हें राजकीय के अन्तर्गत में प्रथम बार कैद बनाया गया तो 1897 के अन्तर्गत के अधिवेशन में सभा उचित ही कहा गया था कि 'एक राष्ट्र आधुनिक रहा है।' समुच्च तथा आधुनिकता के देश के मन में उन्होंने अपने को दिखाते से सदा दूर रखा, और साथ ही मान्यता तथा सर्वो की उन्नत और उन्नत करने का भी अन्तर्गत नहीं किया। उनकी अधिवर्तन निष्ठा, निष्ठा अथर्व वप्राय तथा पुनर्जागरण बलवत्तात्मकता के दृष्ट्य को सम्मोहित करने तथा विशिष्ट जोड़गाड़ी के मन का सम्मोहित कर देने के लिए प्रयत्न थे। दुर्भाग्य तिलक की केवल अपने व्यक्तित्व की शक्ति का कारण

प्रकरण I

विपिनचन्द्र पाल

1 प्रस्तावना

श्री विपिनचन्द्र पाल (1858-1932) उल्लेखन वक्ता निर्मोक्त देशभक्त, अनुप्रेरित शिक्षा-शास्त्री, पत्रकार तथा नेता थे। वे भारत के संसद, साइमन्ट, स्वायत्तम्बी तथा प्रबन्ध राष्ट्रवाद के पैगम्बर के रूप में प्रसिद्ध हुए।¹ वे बंगाली राष्ट्रवाद के ही नेता नहीं थे अस्तित्व उन्होंने भारतीय राष्ट्रवाद तथा उससे विभाज्य वा सामाजिक विनिर्माण भी किया। उन्होंने कटन में एन हार्ड स्कूल के प्रधानाध्यापक के रूप में अपना जीवन आरम्भ किया। उन्होंने सिविल्ट न एन हार्ड स्कूल स्थापित किया और बीच बीच तक उसकी सेवा की। बाद में वे कुछ समय लख बनारस में एन हार्ड स्कूल के प्रधान अध्यापक रहे। कुछ वर्ष तक उन्होंने बतकता के नगर मुसलमानों में मुस्तराध्याय के पद पर भी काम किया। उनका जीवन उस युग में बीता जब बंगाल में बौद्धिक, साहित्यिक तथा नीतिक पुनर्जागरण की प्रथम-पुष्प मयी हुई थी, विपिनचन्द्र सुरेन्द्रनाथ बनर्जी तथा विनयकृष्ण गोस्वामी की शिक्षाभा का जब वह प्रभाव बढ़ा था। 1876 में सिविलियन बाली में उन्हें बड़ा समाज की दीक्षा दी। बड़ा समाज में बौद्धिक सुक्ति के शिक्ष आदीनन्द का समारम्भ किया था उससे विपिनचन्द्र पाल आह्वानित तथा अनुप्राणित हुए थे, अथर्वि वाले पत्रकार के हिन्दुत्व के परम्परागत पथ, दान तथा धर्मविद्या के अनुयायी बन गये। अपने परवर्ती जीवन में पाल ने वैष्णव धर्म को अंगीकार कर लिया। वैष्णव सम्प्रदाय में उनकी आस्था कितनी गहरी थी वह उनकी पुस्तक 'श्रीकृष्ण' से स्पष्ट हो जाता है। उनका कहना था कि बड़ा हमारी बाह्य ब्रह्माण्ड की अनुभूतियों का समन्वय है, परमात्मा हमारी आन्तरिक अनुभूतिया का समन्वय है, बिना समन्वय यह कुछ निरर्थक रहने है किन्तु बड़ा तथा परमात्मा दोनों अपनी पूरता और जागरूकता को प्राप्त होते हैं। उनका विश्वास था कि हिन्दू देवता सृष्टि की उत्कृष्टतम कृति के प्राणी हैं और उन्हें इन्द्रियोत्तर अस्तित्व के द्वारा देखा जा सकता है।² अपने श्रवणों जीवन में पाल ने शान्त तथा के आध्यात्मिक महत्व को समझने का भी प्रयत्न किया। अपनी 'द सोल ऑफ इण्डिया' (भारत की आत्मा) नामक पुस्तक में उन्होंने बतलाया कि श्रीकृष्ण भारत की आत्मा हैं।³ वे श्रीकृष्ण को 'आध्यात्म-अनुप्रेरित तथा सांस्कृतिक दृष्टि के बहुमुख सच का प्रकटक मानते थे।

पाल ने प्रथम बार 1887 में बंगाल में कांग्रेस के अधिवेशन में भाग लिया और 'अथर्व विनिर्माण' को रद्द करने के प्रस्ताव के समर्थन में अनुप्रेरित भाषण किया। 1900 में उन्होंने इंग्लैंड

1 विपिनचन्द्र पाल का जन्म 7 अक्टूबर, 1858 को हुआ था।

2 विपिनचन्द्र पाल *Sri Krishna* (द्वितीय एन कम्पनी प्रकाश) पृष्ठ 163-66।

3 श्री श्री पाल *The Spirit of Indian Nationalism*, पृष्ठ 24-25।

4 श्री श्री पाल *The Soul of India* पृष्ठ 124।

और अमेरिका की यात्रा की। अगस्त 1901 में उन्होंने अपना "नू इन्डिया" नामक पुन आरम्भ किया। बंगाल के विभाजन ने उनकी समेकित नीति का सदैव बने सने। स्वदेशी आन्दोलन के दिनों में उन्होंने स्वा-
यत्ता का ही नहीं बल्कि विविध विमान-यन के पुन स्थापना का समर्थन किया। अरविन्द घोष के साथ साथ वाल ने पुनर्जागरण बंगाल के स्वदेशवादक का काम किया। वे जब राष्ट्रवाद के अतिवादी बन के नेता थे।⁵ अरविन्द ने 1909 में अपने उत्तरदाता के प्रसिद्ध भाषण में वाल के बारे में कहा था
"जब मैं आपा लो मैं अपना नहीं था, राष्ट्रवाद के एक सपना बने स्वदेशवादक मेरे पास बैठे हुए थे। मेरे निवृत्त वाल विचारमाल में जो कारणों की उस एकांत चौकड़ी से निवृत्तवार आये थे वहाँ ईश्वर ने उन्हें इच्छित नेत्र दिया था कि उसकी नीरवता और निरालम्पता में वे उस सदैव की भूल सने जो उन्हें इस देश को देता है।" वाल ने सम्पूर्ण पूर्वी तथा दक्षिणी भारत की यात्रा की और उत्तरांचल के साथ स्वराज्य तथा स्वदेशी के प्रतिपादनी मन का उपदेश दिया। उन्होंने 1907 में मद्रास में 2 से 9 मई तक स्वराज्य तथा स्वदेशी के प्रतिपादनी मन का उपदेश दिया। उन्होंने 1907 में वाल पर राजद्रोह का अभिमेन लगाया गया था वाल से उनके विरुद्ध कहाही देने को कहा गया। किन्तु उन्होंने इनकार कर दिया। इसलिए उन्हें 10 डिसेम्बर 1907 को बिरसातर बरक पहुँचे जलनता की प्रेसीडेंसी जेल में और बाद में बन्धन ने केन्द्रीय कारागार में बंद कर दिया गया। 9 मार्च 1908 को वाल मुक्त कर दिये गये। अगस्त 1908 में वे दूसरी बार इंग्लैंड गये। वहाँ के तीन वर्ष तक रहे और विभिन्न पत्रिकाओं तथा भारतीय राष्ट्रवाद पर काम किये। कुछ समय तक वहाँ उन्होंने स्वराज्य नामक एक पुन की प्रकाशित किया। वे अपने जीवन के अन्तराल में (भारतीय राष्ट्र-वाद) तथा 'वैतनिकी एण्ड एम्पायर' (राष्ट्रीयता तथा साम्राज्य) उनकी सञ्चारिक पुनपुन की परिचायक है। वेल्सदान विरोध ने भी 'विनिमयद वाल की नीतिक प्रति तथा उच्च प्रति' की प्रस्ता की है।

2. वाल का इतिहास ब्रह्म

वाल के राजनीति दशन का आधार यह सिद्धांत था कि इतिहास ईश्वर द्वारा निर्वात तथा सञ्चारित होता है। वहाँ 'ब्रह्माण्ड के विकास का विभाजन श्रवण' है।⁶ वाल के अनुसार इतिहास विभिन्न, उद्देश्यहीन और असम्बद्ध घटनाओं का समष्टि मात्र नहीं है। बरतुत यह ईश्वरीय प्रयोजन की अभिव्यक्ति है। इतिहास में एक व्यापक प्रयोजन और सर्वोच्च उद्देश्य निहित है। किन्तु राष्ट्रीय नेतृत्व के लिए आपा की बड़ी आवश्यकता होती है।⁷ वाल के इस मत से यह ही सहमत न हो, का इतिहास भी एक श्रेष्ठ उद्देश्य की अभिव्यक्ति है—यह उद्देश्य है स्वायत्तता की शोध तथा धर्म की प्रतिष्ठा। भारतीय इतिहास ने तनी ऐतिहासिक आत्मानता और कष्ट-तरा का सांस्कृतिक महत्त्व और गम्भीर प्रयोजन यह छटा है कि 'एक जाति के रूप में हम अपनी निधिबिहित होतव्यता का साक्षात्कार कर।' साथ जनजातियों से लेकर मुखिय विचारधारा तक तनी अनिया और वास्तविक तथा वाल, मन, प्रभावसिद्ध, सराज-मात्रक तथा बेट सिद्ध के साम्राज्यवादी धारण आदि सबकी राजनीतिक कार्यवाहियों के मूल में इसी उद्देश्य की अभिव्यक्ति देखने की मिलती है। वाल ने डाविस

5 New India का प्रकाशन 1901 के आरम्भ हुआ था और डिसेम्बर 1907 में उसका प्रकाशन बन्द हो गया।
6 एन एन राय India in Transition पुक 197, 1907 में विनिमयद वाल ने राष्ट्रवादी कार्यक्रम निम्न प्रकार के निरूपित किया
(क) राष्ट्रीय विद्या का प्रतिष्ठान
(ख) राष्ट्रीय हस्त लेखन की शक्ति,
(ग) भारतीय उद्योगों का विकास,
(घ) ऐसी राजनीतिक व्यवस्था कायम करना जो सबको अपने घर बसने की आवश्यकता बने हो सके।
नो सी राय, The Spirit of Indian Nationalism, पुक 39।
नहीं पुक 22-23।

के विवाहवादा,⁹ स्पेसर के अनीश्वरवाद और ह्यूम के सत्यवाद का गठन किया और इस बहिस तथा पौराणिक सिद्धांत का अर्थ दे दिया कि इतिहास परब्रह्म की सीमा अथवा विवास-स्थान है। अपनी 'द सोल ऑफ इण्डिया' (भारत की आत्मा) तथा 'श्रीकृष्ण' नामक पुस्तिका में पाल ने पौराण्य की कि कृष्ण भारत की आत्मा है। कृष्ण के जीवन में ही हम इतिहास तथा विवास का प्रयोजन बुझा है। ये भारतीय मान्यता के वास्तव रूप थे। सर्वोच्च आचार्य एक दार्शनिक कृष्ण राष्ट्र निर्माण के रहस्यो तथा सामाजिकयुग और समाजवादी आदर्शवाद के प्रतिनिधि है। मोक्षार्थ की शक्ति पाल का भी बचन है कि सामाजिक तथा नागरिक संस्थाएँ "मानव से माध्यम से ईश्वर की उत्तरोत्तर अभिव्यक्ति और साक्षात्कार का साधन माध्यम हैं। वास्तव मनुष्य की आत्मा के प्रतिबिम्ब हैं।" ईश्वर ने मनुष्य की अपने ही अनुरूप उत्पत्ति एक सम्भव स्वतंत्र और मुक्त संस्था है, जहाँ मनुष्य उसे प्राप्त कर पाएँ और पाएँ म जबद्वार रहेगा।¹⁰ अतः सामाजिक तथा नागरिक मुक्ति के लिए निष्पक्ष प्रतिरोध के द्वारा जितने के प्रयत्न की माया पर विचार करना आवश्यक है।

मध्ययुगीन दार्शनिक आदर्श की वास्तविक से, आध्यात्मिक का मौलिक से और व्यक्ति की उसके वातावरण से मुक्त करने चाहते तथा सोचते थे। पाल ने इस प्रवृत्ति का अंग बन लिया। वे इन बातों में थे कि मनोवैज्ञान और सामाजिक के साथ साथ बहुमुखी और विविध की समान महत्व दिया जाना चाहिए।¹¹ राजनीतिक दार्शनिक के रूप में पाल ने वैदिक सभ्यता के 22 अप्रैल, 1905 को प्रकाशित नागरिक स्वाधीनता तथा धर्मिक युष्मा पौराण्य पाल की आलोचना की। उन्होंने सार्वजनिक के व्यक्तिवादी विचारों का विरोध इसलिए किया कि वे व्यक्ति का नैतिक हृदय के उसके देश की सामाजिक तथा नागरिक संस्थाओं से स्वतंत्र मानते थे। पाल ने भारत के पुराने सामाजिक तथा राजनीतिक दर्शन की आलोचना किया, क्योंकि उस दर्शन के अनुसार व्यक्ति सामाजिक तथा नागरिक दायित्व का निर्देश करके नहीं, बल्कि स्वच्छ के और प्रयत्नवादी समान के प्रति अपने कर्तव्यों को पूरा करने की पूर्णता को प्राप्त हो सकता है।¹²

3 पाल का राष्ट्रवाद का सिद्धांत

समाज तथा राष्ट्र की अवयवी धारणा में अनेक भारतीय दार्शनिकों तथा विचारकों की प्रभावित किया है। पाल भी राष्ट्र के अवयवी सिद्धांत की स्वीकार करते थे। उनका कहना था कि राष्ट्र मानव सभ्यता के उत्पन्न नहीं है। वह कृष्ण व्यक्तित्व का कृत्रिम अंग नहीं है। वह एक अवयवी है और अवयवी बुद्धि तथा नैतिक बचन से अनुप्राणित है। राष्ट्र मनुष्यों का ही आवेष्टित तथा विशिष्ट स्वरूप है। वह विराट् पुरुष का वास्तविक रूप है। इसलिए पाल ने माना कि अपने बहुतराजू के लिए स्थापित करना व्यक्ति का परम कर्तव्य है। आध्यात्मिक तथा नैतिक अवयवी के रूप में राष्ट्र अपने अन्तः ऐतिहासिक स्थितियों तथा बाह्य उद्देश्यों की विरुद्धाधी अभिव्यक्ति के व्यक्त करता है।¹³ 6 जुलाई, 1906 को प्रकाशित 'बड़े मातृभूमि' शीर्षक लेख में पाल ने कहा "जिन व्यक्तियों के मेल से राष्ट्र बनता है उनका परस्पर तथा शिष्टाचार के से अवयव और अंग हैं उनके साथ उनका सम्बन्ध अवयवी होता है। जो व्यक्ति के गुण मात्र हैं, राष्ट्र एक अवयवी है और व्यक्ति उसके अंग हैं। अंग अपने उद्देश्यों की पूर्णता स्वयं अपने में प्राप्त नहीं कर सकते, जिस अवयवी से उनका सम्बन्ध है उनके राष्ट्रपति जीवन में ही उनके उद्देश्यों की पूर्णता निहित होती है। अंग अवयवी की होता कर दीजिये—अंग स्वतः लट्ट हो जायेंगे और जान बूझ कर बंद कर देंगे। अंग अंगों की विज्ञान कर दीजिये तो अवयवी लट्ट हो जायेंगे और जान बूझ कर बंद कर देंगे। तब अवयवी अंगों से पहले का होता है। अंग विच्छिन्न होते हैं, बदलते हैं, किन्तु अवयवी फिर भी

9 की भी पाल *Sri Krishna* पृष्ठ 46।

10 की भी पाल *The Spirit of Indian Nationalism* पृष्ठ 39।

11 की भी पाल ने *Nationality and Empire* नामक अपनी पुस्तक में पृष्ठ 27 पर हिंदू समाजवाद तथा समाज न समाजवाद के अंतर स्पष्ट किया है।

12 विनयकृष्ण पाल ने *The Contribution of Islam to Indian Nationalism* शीर्षक लेख में पाल का कि भारतीय राष्ट्रवाद का विचार कृष्ण नाथिय के उत्पन्न के साथ विकसित हुआ। शीर्षक *Life and Utterances of B. C. Pal* पृष्ठ 138-52।

को ही बही बना रहता है। व्यक्ति चम्प तेले है, व्यक्ति चरते है, किन्तु राष्ट्र तदैव जीवित रहता है।¹³

पात ने आध्यात्मिक राष्ट्रवाद का भी समर्थन किया।¹⁴ वे केवल राजनीतिक अधिकारों की प्राप्ति के सिद्धान्त के मानने वाले नहीं थे। उन्होंने व्यवस्था सिद्धान्त की परिवार, जनजाति तथा राष्ट्र तीनों पर लागू किया। उनका कहना था कि देश के एक प्रकार की आध्यात्मिक जगुति ही रही है, "उसकी बीजा आध्यात्मिक व्यवस्था राजनीतिक आंदोलन मानना उसे पुण्य कलत समझना है।" किन्तु पात ने कहा कि राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन की आध्यात्मिक व्याख्या का अर्थ यह नहीं है कि मनुष्य दार्शनिकों की भाँति आदर्शवाद तथा चिन्तन में लसीन रहे। आध्यात्मिक राष्ट्रवाद को अनुसार परम्परावाद के समकक्ष मान लेना उचित नहीं है। पात व्यवस्थापकों भी थे। उन्होंने राजनीति की तुलना शस्त्ररत्न के क्षेत्र के की।¹⁵ बही कारण था कि उन्होंने समस्याओं का कोई सुनिश्चित और बना-बनाया हल प्रस्तुत नहीं किया और स्पष्ट घोषणा की कि राष्ट्रवादियों का वास्तविक विरोध गौरवशाली की बातों और अवधारणाओं पर निर्भर करेगा। भारत के नये राष्ट्रवाद की धार्मिक प्रकृति पर इस प्रकार पात जनता को दो धार्मिक सिद्धान्त समझाने चाहते थे। प्रथम, सब चीजों का मूलधारण स्वयं जीवन को ध्यान में रखकर करना।¹⁶ "बहु (धर्म) सम्बन्धवस्था, राजनीति बना, नैतिकता और मन का मूलधारण समर्थ की ध्याने में रखकर करता है।" नैतिक की आध्यात्मिक के पुनर्-करता हिन्दुत्व के प्रतिबल है। आध्यात्मिकता को सब चीजों का मूलधारण मानने के राजनीति राष्ट्रवादों के सुधार धर्म का अर्थ बन जाती है, मासविद्या का ही एक प्रकार का ही होती है।¹⁷ अतः राष्ट्रवाद की धार्मिक प्रकृति को स्वीकार करने से भारत की राष्ट्रीय ध्येयता का पुन तथा व्यापक प्रकार और विस्तार होगा, और इस बहु शास्त्रीय मानव जीवन के विषय में प्रभावकारी योग दे सकेगी। द्वितीय, अपने में नैतिक गुणों का विकास करना। इसका अन्विष्ट है कि ध्याने तथा उदात्तता के लिए अच्छों से प्राप्त करने की अपेक्षा अपने को बलिष्ठ बनाना और अपने मन और आत्मा की क्षमता के प्रदीप्त करना।¹⁸ पात कहा करते थे कि समय के विना राष्ट्रवाद की सेवा नहीं की जा सकती। इस प्रकार की राष्ट्रवाद धर्म की जड़ों से पोषण प्राप्त करता है वह स्वाधीन सिद्ध होता है। यहाँ कारण रचना होगा कि राष्ट्र की आध्यात्मिक प्रकृति की इस धारणा का पात की अपेक्षा अरविन्द की रचनाओं में अधिक विस्तार के विवेचन किया गया है।

पात तथा अरविन्द भारत को नया जीवन तथा नयी शक्ति प्रदान करना चाहते थे। अपने धर्म "यु हिन्दुत्व" के पात ने "योगिक राष्ट्रवाद"¹⁹ की धारणा का प्रतिपादन इन शब्दों में किया था "मह नमा भारत हिन्दु नहीं है, यद्यपि हिन्दु इसके मूल तथा प्रमुख भगवत् हैं, यह मुसलिम भी नहीं है, यद्यपि उनकी इसकी महत्वपूर्ण देन है, और न यह ब्रिटिश है यद्यपि इस समय वे इसके राजनीतिक स्वामी हैं—कल्पि यह सब मूलधारण तथा विविध प्रकार की सामग्री से बना है जो विषय की नील कटी सम्प्रदायों ने उसे उसने विकास की क्षमता अवस्थाओं से प्रदान की है और जिसका प्रतिनिधित्व वरमान भारतीय समाज के तीन बड़े वर्ग करते हैं।"²⁰

पात ने स्वदेशी के दिना में देशभक्ति की नयी शक्ति कायदा का प्रारम्भ किया। उन्होंने

13 श्री सी पात, *Our Krishna* पृष्ठ 3 "जातिओं का नहीं राष्ट्रीय के भी अन्तर्गत होती है।"

14 श्री सी पात, *Strength and Energy*, पृष्ठ 208।

15 श्री सी पात ने अपनी प्रमुख *Introduction to the Study of Hindutva* पृष्ठ 65-80 पर धार्मिक विचारों की तीन अवस्थाओं का विवरण किया है। (1) अनुप्राणन, (2) विचारमग्न तथा कल्पनात्मक अवस्था अवधारण। उन्होंने कहा कि नवीन-धार्मिक तथा वैज्ञानिक मूलधारण पद्धतियों द्वारा अनुप्राणन करने से पता चलता है कि धर्म मनुष्य का "पर (मन से विपर्यय) के साथ सम्बन्ध स्थापित करने का अन्तर्गत है। (यही पृष्ठ 174-185)।

16 श्री सी पात, *The Spirit of Indian Nationalism*, पृष्ठ 47।

17 यही, पृष्ठ 33।

18 श्री सी पात, *Responsible Government* पृष्ठ 12-13।

19 श्री सी पात का कहना था कि यह व्यापक राष्ट्र हीन—*Life and Utterances of B. C. Pal*, पृष्ठ 151।

आधुनिक अधिकांशों ने सिद्धांत का समर्थन किया। उनके अनुसार प्राकृतिक अधिकार के मूल मानव अधिकार हैं जो प्रत्येक व्यक्ति में जन्म से ही निहित हैं। इन अधिकारों का आश्रय स्वयं ईश्वर को प्रप्तम्य हुआ है। ये मूल प्राकृतिक अधिकार कानूनात्मक अधिकार नहीं हैं और न इनकी किसी ने सृष्टि की है, बल्कि वे ऐसे "अधिकार हैं जिन्होंने सरकारों को जन्म दिया है।"²⁰ बाल ने उस समय देश में प्रचलित विजातीय तथा मूलनिहीन शिक्षा प्रणाली की सत्ताओं को और शिक्षक तथा अध्यापकों की शक्ति राष्ट्रीय शिक्षा का समर्थन किया। उन्होंने "बड़े काउंटर" नामक तथाचारपत्र की स्थापना की और उसने द्वारा स्वराज्य के मूल अथवा ईश्वरीय मान्यता का उद्घोष किया। शिक्षक तथा अध्यापकों की शक्ति बाल ने शिक्षा मांगने की प्रवृत्ति की निरा की और कहा "काई सुधार, सामाजिक, राजनीतिक अथवा आर्थिक, ऐसा नहीं हो सकता जो काउंटर से प्राप्त किया जा सके। अपना अधिकार आपनो सने-सने स्वयं अर्जित करना है।" वे भारतीय जातों की विचार चाहते थे। उन्होंने बहिष्कार की पारवा को एक व्यापक राजनीतिक अथ प्रयत्न करने का प्रयत्न किया। वे यह नहीं चाहते थे कि बहिष्कार को कोरी आर्थिक लाभकारी तक सीमित रखा जाय। इनकी इच्छा थी कि राष्ट्रीय शिक्षा स्वदेशी तथा बहिष्कार के इन तरीकों की भारत के राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन के प्रचार की गति प्रदान करने के लिए प्रयुक्त किया जाय। ब्रिटिश नीतिज्ञातृ तथा साम्राज्यवादी इस राजनीतिक स्वदेशी के आंदोलन के कट्टर शत्रु थे। बहिष्कार के अर्थ के सम्बन्ध में बाल तथा मदनमोहन मालवीय ने गहरा मतभेद का जो 1906 की ऐतिहासिक कलकत्ता कांग्रेस में प्रकट हो गया। बाल ने इसका वे घोषणा की "भारत में राजनीति को अस्तित्व से, राजनीति को औद्योगिक प्रगति से युक्त करना असम्भव है। स्वदेशी का राजनीति से सम्बन्ध जोड़ना आवश्यक है, और जब स्वदेशी का राजनीति से सम्बन्ध जुड़ जाता है तो वह बहिष्कार का रूप ले लेता है, और यह बहिष्कार विविध प्रतिरोध का मांदोलन है।" अधिवादी सम्प्रदाय के नेता तथा विचारक के रूप में बाल ने स्वातंत्र्यसंग्राम, आत्म-साहाय्य और आत्म नियंत्रण का समर्थन किया।

1918 में बाल शिक्षक के साथ होम रुल मीग के प्रतिनिधिमण्डल के एक सदस्य बनकर इंग्लैंड गये। 1919 की अधुनतर कांग्रेस ने उन्होंने शिक्षक के "समाधी सहयोग" (रेसिस्टिब को अपरेशन) के बारे में हृदय से समर्थन नहीं किया। उन्होंने पांथोनी के असहयोग आंदोलन का विशेष किया और 1922 में कहा कि भारत को 'समाधी सहयोग' की नीति को अपनाता चाहिए। वे महिमात्मक शक्ति के भी विरुद्ध थे, यह समाज का निरुद्ध अतीत और वर्तमान में साथ सम्बन्ध विच्छेद कर देती है।²¹

4. बाल का राजनीतिक दशन

बाल ने 'देवी लोकतन्त्र' के आदेश का प्रतिपादन किया। एक बार उन्होंने बताया कि इस आदेश का प्रयत्न बर्तमान का है।²² उनका कहना था कि स्वराज भारतीय जनता का स्वराज्य होना चाहिए। इस आदेश की पूर्ति के लिए आवश्यक है कि 'अधुनक राज्य भारत की स्थापना की जाय। सभी भारतीय जनता की राष्ट्रीय प्रतिष्ठा की राजनीतिक जीवन के वर्णमाला की मांग में प्रयुक्त किया जा सकेगा। यदि भारतीय स्वतन्त्रता का देश के ऐतिहासिक आदर्शों के साथ सामंजस्य स्थापित करता है तो वह देवी लोकतन्त्र को सामाजिक करके ही किया जा सकता है। उन्होंने कहा "स्वराज्य के लिए आदेश ने अपने को हमारे समक्ष व्यक्त किया है वह असुद्ध देवी लोकतन्त्र का ही आदेश है। लोकतन्त्र का यह आदेश इंग्लैंड और अमेरिका में प्रचलित संघर्षपूर्ण, शैक्षिकवादी आध्यात्मिक तथा धर्म मोलाना से नहीं अधिक अस्पष्ट है। एक इसी भी उद्देश्य सन्देश है। समुच्च देवता है, और भारतीय लोकतन्त्र भी समाजता प्रत्येक व्यक्ति में निहित देवी प्रकृति, देवी सम्प्रदायवादी और देवी होतव्यता की समानता है, वह व्यक्ति चाह हिन्दू हो और चाहे मुसलमान, बौद्ध अथवा ईसाई। अतीत में भारतीयवादी की, वे हिन्दू हो अथवा बुद्धमार्ग, इसी प्रकार की शिक्षा-दीक्षा मिली है, और

20 की भी बाल *Life and Utterances*, पृष्ठ 27-28।

21 की भी बाल *Savarny* पृष्ठ 16।

22 की भी बाल, *Memoirs of My Life and Times*, विवर 1, पृष्ठ 355 और 357।

हिंदुओं के चरित्र में तथा सामान्यतः सभी जातजातियों के चरित्र में साम्यविरता की प्रधानता देखने की मिलती है। इस सम्बन्ध ही परिणाम है कि हमें एक ऐसे लोकतांत्रिक आदर्श की अभिव्यक्ति को देखने या स्वीकृत्य अवधारण प्रसन्न हुआ है जो यूरोपीय मान्यता की सामान्य चेतना के समझ अन्तर्गत हुए आदर्श से बड़ी अधिक श्रेष्ठ है।²³ पाल ने कहा कि दैवी लोचनता का आदर्श की पर्ये हम जीवन की सदा के बेदाहो आदर्श में देखने की मिलती है। मध्यमश्रीला के अनुसार सभी जातियों में सभी आत्मा विद्यमान है, इसलिये विषयक यही निष्कर्ष है कि सभी मनुष्य समान, आदर प्रदिया और अधिकारा के अधिकारी है। दैवी लोकतांत्रिक का यह आदर्श 'एक व्यक्ति, एक मत' के यार्थिक मूल को साम्यविरता का प्रयत्न करने अधिक प्रतिष्ठा की बना सकता है, और इस देश की जनता के हृदय पर इसका प्रभाव की चरकाल पड़ेगा।

1911 में पाल ने 'साम्राज्यीय मूल का आदर्श प्रस्तुत किया। उनका कहना था कि इस राष्ट्रीय साम्राज्यवाद के भारत के साथ एक स्वतंत्र तथा समान साम्राज्य के साथ व्यवहार किया जाना चाहिए, एक बराबरी देश के साथ नहीं। एक अर्थ में राष्ट्रीय साम्राज्य का रूप राजनीतिक की अपेक्षा सामाजिक अधिक होगा। वेद विद्वान, आचार्य, विद्वान, मारवा तथा उपनिषद् इस साम्राज्य के मूल्य होते। उनमें से प्रत्येक भारतीय मूल्यों में मूल स्वयंसेवा होता, वेदक प्रयत्न और पाल के लिए सब मिलकर काम करने। साम्राज्य अवश्य सभी सम्बन्धों में आधार पर समर्थित होगा। उनके अनुसार हमारा सामान्य उत्तरा ही होगा जिसका कि विद्वान अर्थवा ब्रह्मा का।²⁴ पाल की यह योजना उनकी अदभुत दूरदर्शिता की परिचायक है। उन्होंने साम्राज्यीय मूल की योजना रोडस और मिलकर के उस आदर्श के विरुद्ध प्रस्तुत की थी जिसके अनुसार केवल स्वतः राष्ट्र ही साम्राज्य के सदस्य बन सकते थे।²⁵

पाल ने आदर्श से पाल का बहुत सम्बन्धमय अनुपात का।²⁶ के कहा करते थे कि हिंदु हम अनेक धर्मों का मूल है। विश्व के राजनीतिक विचार में भारत का यह निर्धारण काम है कि यह "मानव जाति के साम्यवाद मूल की स्थलता में प्रेरित करें।"²⁷ उन्होंने इस प्रकार की दूर करने का प्रयत्न किया कि भारतीय राष्ट्रवाद और ब्रिटिश साम्राज्यवाद का सम्बन्ध स्पष्ट नहीं हो सता।²⁸ इस प्रकार हम देखते हैं कि पाल के विचारों में धीरे-धीरे राष्ट्रीय परिवर्तन हो गया था। स्वदेशी के विरुद्ध के भारतीय राष्ट्रवाद के उस सम्बन्धमय के। हिंदु स्वतंत्र के लोचने पर और विदेशीकरण 1909 के मुबारक अधिनियम के माध्यम से के उपरांत पाल बहुत सारे थे कि पृथक्पृथक् प्रमुखसम्पन्न स्वाधीनता "एक राष्ट्रता और आत्मशासी आदर्श" होना। परिवार, व्यवसाय, मूल और राष्ट्र अन्तर्गत प्रतिष्ठानिक मूल तथा सामाजिक सम्बन्ध का उद्देश्य पुरा कर चुके है। इसलिये साम्य जाति के राजनीतिक विचार के लिए राष्ट्र ने ऊपर उठना आवश्यक है। 1910 के उपरांत पाल ने अपनी रचनाओं में सम्बन्ध साम्राज्यीय सम्बन्ध की आवश्यकता पर बल दिया। पाल ने स्वीकार किया कि विद्यमान साम्राज्यीय व्यवस्था में अनेक दोष और कमियाँ हैं। हिंदु में अवश्य सामाजिक सम्बन्ध पर आधारित सम्बन्ध तथा निरन्तर बुद्धिमान सम्बन्ध के आदर्श के उस सम्बन्ध और प्रधानता है। उनकी दृष्टि में उनका कहना था कि इस समय साम्य जाति की वैश्व एकात्मिक महत्व की कमी है। सभी साम्यवाद मान्यता का स्वयं आधार किया जा सता है। राष्ट्रीय साम्राज्य की स्थापना मान्यता मान्यता के लिए बुद्धिवादी का काम होनी। इस प्रकार हम देखते हैं कि अपने मूल के

23 की भी नाम *Life and Utterances* पृष्ठ 95-96।

24 की भी नाम, *Responsible Government* पृष्ठ 26।

25 की भी नाम अपनी पुस्तक *Responsible Government* के पृष्ठ 41 पर लिखते हैं कि साम्राज्यीय मूल का सम्बन्ध मात्र राष्ट्रिय के सम्बन्ध 25-1911 के देशक में लिखित था।

26 की भी नाम *Discourse* पृष्ठ 9 पर लिखते हैं कि सम्बन्ध का सम्बन्ध राष्ट्रीय साम्यवाद का अनुपात सदा था।

27 की भी नाम *Nationality and Empire* पृष्ठ 115।

28 यही, पृष्ठ 312।

29 पाल का जुलाई 1913 का भाषण यही, पृष्ठ 342।

(3) भारत में अधिक अनिच्छित साम पर कर ¹⁰ प्राप्त कर आयाह का कि अनिच्छित साम को अधिक-बाय रूप से सामाजिक क्षेत्र में पहुँचाया जाय। इसमें सन्देह नहीं कि राज्य द्वारा अनिच्छित साम को हटाने का यह प्रस्ताव बहुत उच्च था। इससे भारत के अधिक विभाग में जब पूर्वी तथा औद्योगिक सहस्र के कारण को निरूपण या यह आशय रूप से दूर किया जा सकता था।

6 निष्कर्ष

विनिबन्धन दाल अन्तर्गत परिच्छेद तथा परिपक्व विचारक थे। उन्होंने हिन्दू दर्शन तथा धर्म-विद्या का गम्भीर अध्ययन किया था। उन्होंने पश्चिम की जो कई बार यात्रा की उसमें उनकी राजनीतिक चिन्तन की शक्ति बहुत प्रकाश हो गयी थी। उन्होंने उच्च राज्यवाद के अधिवादी समर्थन के रूप में अपना राजनीतिक जीवन आरम्भ किया। उनका राज्यवाद ऐतिहासिक परम्परा तथा भारत के सामाजिक आदर्शों पर आधारित था। उन्होंने अनुकरणीय राज्यवाद की पुरानी प्रवृत्ति का मोक्षपात सिद्ध करने का प्रयत्न किया। उनका कहना था कि भारत ने राज्यवादी आन्दोलन की यह प्रवृत्ति के रूप में अपना स्वरूप ले लेनी चाहिए। किन्तु धीरे धीरे उनके विचारों में रूपान्तर हो गया। आरम्भ में वे अधिवादी राज्यवाद के समर्थन थे, किन्तु बाद में वे गान्धायीय रूप में समर्थन देने लगे। जब गान्धीवाद का उदय हुआ और असहयोग तथा सविनय अवज्ञा की काय प्रथाओं में समाविष्ट की सभी तो प्राप्त का गान्धीय राजनीतिक जीवन की प्रवृत्ति का सम्पूर्ण दृष्टि मिला। 1923 में उन्होंने सिमला के सम्पादी सहयोग के आदेश को स्वीकार करने का समर्थन किया। वे राजनीति में उदारवादी नहीं हैं। किन्तु धीरे धीरे अधिक राजनीतिक जीवन में विरोधित हो गये। उनके 1920-1932 के काल में राज्यवादी विचारों में जोय तथा शक्ति का अभाव है। किन्तु उन्होंने 1905 के 1909 तक के स्वदेशी के विरोध के देश को गतिवादी नेता प्रदान किया। उसके लिए उन्हें सर्वोच्च सम्मान प्राप्त हुआ। उस युग में वे अपने राजनीतिक जीवन के उच्चतम स्तर पर पहुँच चुके थे। उन दिनों उन्होंने भारतीय राज्यवाद के दमन का अधिवादी विचार और एक सन्देहात्मक तथा दबावपूर्ण का काम किया। अधिक राजनीतिक नेता के रूप में वे अधिक-बाय नहीं सिद्ध हुए किन्तु वे स्वदेशी तथा स्वराज के सिद्धांतकार का रूप में सर्व प्रसिद्ध हुए।

विनिबन्धन दाल ने अनुसूचित देशवासि पवित्र मानते हैं किन्तु नहीं पर्वत नहीं है। यह मानवता में ही मानव की प्राप्त हो सकती है, ¹¹ क्योंकि मानवता मनुष्य में निहित ईश्वर की प्रकृत अभिव्यक्ति है। ¹² भारत का राजनीतिक सम्बन्ध इन अनुसूचित धर्मों में अभिव्यक्ति है। 'धर्म है व्यक्ति का मानव प्राप्त जीवन। धर्म है राज्य का जीवन का व्यक्ति के जीवन में सुख और अधिक ईश्वरीय है और जिसमें व्यक्ति अपनी उच्चतम प्रकृत की प्राप्त होता है, और धर्म है, आत्मज्ञान धर्म है मानवता का मानवीय जीवन जिसमें राष्ट्रीय जीवन तथा आकाशाई प्रकाश प्राप्त करते तथा फलान्ति होती है।' ¹³ दाल मानव धर्म को अधिकतम सम्पन्नता का अधिकतम प्रकाश मानते हैं। उनका विचार था कि मानवता मनुष्य में विज्ञान में विज्ञान प्रकाश है। मानवता अर्थात् मानवीय मानवता उच्चतम प्रकाश मानवता, 'मन' तथा राज्य में अभिव्यक्ति है।

प्रकरण 2

साला राजपक्ष राज

1 प्रस्तावना

यह निश्चित है कि साला राजपक्ष राज (1865-1928) राजनीतिज्ञ के बाद प्रकाश में महत्त्वपूर्ण व्यक्ति थे। स्वाधीनता के सैनिकों की शक्ति में उनका उच्च स्थान है, ¹⁴ वे राष्ट्रीय और

37 वही, पृष्ठ 236-37।

38 एक बार दाल ने यूरोपीय राष्ट्रीय के सम्बन्ध के आदेश का, 'वीर मानवता' कहकर, यही उक्तता का—*Life and Utrance of B. C. Pal* पृष्ठ 111।

39 विनिबन्धन दाल ने राज्यवाद के लक्ष्य के लक्ष्य के लक्ष्य का लक्ष्य की थी, उनका कथन है कि राज्य तथा मानवता दोनों ही ईश्वरीय हैं।

40 16 अक्टूबर, 1906 के अने पत्रों में प्रकाशित।

41 साला राजपक्ष राज की मानवता हिन्दी में (मानवता का लक्ष्य लक्ष्य), 'विनिबन्धन दाल' तथा, -
साला राजपक्ष राज' (मानवता का लक्ष्य, अक्टूबर 1928) का लक्ष्य लक्ष्य, 'विनिबन्धन दाल मानवता

थे। पहले राष्ट्रवादी, समाज-सुधारक तथा स्वाधीनता के निर्माण मोड़ के रूप में वे सम्मूह देश की प्रशंसा तथा प्रेम के साथ बन गये थे। उसका नाम 28 जनवरी, 1865 को मुम्बई में प्रिन्स मे स्थापित भारतीय में हुआ था, और 7 नवम्बर, 1928 को अपना शरीर छोड़ गया। 1883 में उन्होंने जयराय में बंगाल आरम्भ की, और बाद में वे दिल्ली में आकर बंगाल बन गए। 1892 में उन्होंने लाहौर में वहीं नाम आरम्भ किया। बहुत समय पहले उन्होंने बंगाल में बंगाल के पहले में उच्च स्थान प्राप्त कर लिया। वे आज समाज में भी नाम करते जो जिसने उनसे नि स्वाध्याय, निर्यात और सेवा के रूपों का विचार किया।⁴² लाला लालदास तथा पण्डित मुकुन्द बिहारी के सम्पर्क में आने से उनमें देशभक्ति की भावना का उदय हुआ और वह दिन प्रति दिन बढ़ती होती गयी।⁴³ डी ए की कॉलेज लाहौर (जून 1, 1886 में स्थापित) की विद्यार्थियों में उनका प्रमुख स्थान था। 1880 अथवा 1881 में उन्होंने गुरुद्वारा बनर्जी के एक भाषण में मस्ती में देश के सम्बन्ध में कहा। उसका उल्लेख मन पर अंकित प्रभाव पड़ा। आगे चलकर उन्होंने 'लाहौर एंड टीबिन्स आर भारतीय' (भारतीयों का जीवन तथा विचार) नामक एक बड़ी पुस्तक पढ़ी। उन्होंने स्वयं भारतीयों की 'इण्डियन आर देन' (मनुष्य के कर्तव्य) नामक पुस्तक का उद्धरण किया। 1893 में लालाजी ने उन्हें में भारतीयों की एक बीवनी मिली। 1892-93 में उन्होंने गैरीबाल्डी की भी बीवनी मिली और उसे प्रभावित करवाया। 1897 में मुम्बई में दिनी में उन्होंने बंगाल के लोगों की बड़ी सेवा की।⁴⁴ 1901 में उन्होंने लाल बंगाल द्वारा निरुक्त मुम्बई भारतीय के सम्पर्क कराही की।

लाजपत राय के पिता मुन्शी रामाकृष्ण प्रारम्भ में ईश्वर अहमदशाही के प्रभाव में किन्तु बाद में जब समय के विचार बदल गये और वे मुस्लिम साम्राज्यवादियों की ओर मुड़ने लगे तो मुन्शीजी की भारी निषेधा हुई और उन्होंने 'नोहिन्दू' नामक पत्र में ईश्वर के विरुद्ध एक गुना पत्र प्रकाशित किया। 1877 में रामाकृष्ण स्वामी काला-द के प्रभाव में आये। लाजपत राय ने ईश्वर अहमदशाही की 'द कॉलेज आर इ इण्डिया' (मन के कारण) पुस्तक पढ़ी थी। वे उनको 'सोशल रिफार्मर' तथा 'असोसिएट इण्डियन एंड एंड' नामक पत्रिकाओं की भी पढा करते थे। उन्होंने महाभारत का वे कुछ पत्र प्रकाशित किये और उनमें ईश्वर के विचारों की प्रभावकारी दृष्टि से भारतीयता की। ईश्वर अहमदशाही की लिये बड़े इन 'सुने पत्रों' की तुलना 'अविषय के पत्रों से की गयी है। अतः इन पत्रों के प्रकाशन के समय-समय भारतीयों में राजनीति में प्रवेश किया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना में तीन वर्ष बाद भी 1888 में वे उसमें सम्मिलित हो गये। पहले-पहले उन्होंने 1888 में इलाहाबाद में कांग्रेस के मन पर प्रभाव बिपा और उन्हें में भाग लिया। उसमें उन्होंने बहुत सारा औद्योगिक मामलों पर अनुचित विचार करने की आवश्यकता पर बल दिया। उस कांग्रेस में उन्होंने प्रतिनिधियों में 'हर ईश्वर अहमदशाही की गुना पत्र की प्रतियाँ वितरित कीं।

1905 में अखिल भारतीय कांग्रेस ने उन्हें ब्रिटिश लोकमत के समक्ष भारतीयों की शक्ति और विचारों की प्रस्तुत करने के उद्देश्य से हमला करने का। वे लोकते के साथ कांग्रेस प्रतिनिधिमण्डल के अध्यक्ष बनकर गये। प्रतिनिधिमण्डल का उद्देश्य ब्रिटिश नेताओं को इस बात के लिए राजी करना था कि वे नए मन की योजना का कार्यान्वित न किया जाय। किन्तु शक्तिशाली साम्राज्य के समक्षी नेता एक बलवर्धित राष्ट्र के प्रतिनिधियों के समक्षी-मुखा की ओर प्यान देने को ईश्वर नहीं थे। हमला के लाजपत राय अमेरिका की शक्तिशाली भाषा के लिए चले गये। वे केवल तीन सप्ताह तक अमेरिका में रहे। 1905 में कांग्रेस में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन हुआ। उस अवसर पर कांग्रेस ने दो गुट हो गये। एक में अधिवेशन के अध्यक्ष मोरारजी कृष्ण गोखले के अनुयायी थे और दूसरे में लोकमान्य तिलक के अतिवादी दल के सम्पर्क। लाजपत राय ने इन दोनों गुटों में बीच समझौतापत्र व्यवस्था की।

42. लाला लाजपत राय द्वारा उद्धृत वे विभिन्न बंगाल का जीवन चरित्र (1898)।

43. लाला लाजपत राय ने अमेरी में पण्डित मुकुन्द का जीवन चरित्र लिखा था। उसका नाम है *Life of Pandit Guradatta*।

44. लाजपत राय ने 1899 के मुम्बई में सम्मेलन के छद्म 1905 के मुकुन्द का बंगाल में महाभारत का विचार था।

1907 में तात्काली को सरकार अखिलसिद्ध⁴⁵ के साथ 1818 के विनियम 3 के अन्तर्गत निर्वासित करने का फैसला किया गया। सरकार का यह पात्र मध्य अनुचित था। इससे मूल में उस अन्तर्गत भारतीय नौकरशाही की समझ थी⁴⁶ जो इसमें के प्रतिनिधित्वकारी तरीका से काम लेने पर तुरन्त हुई थी। किन्तु इसमें भारतीयों को एक अहीन वय और प्रदान कर दिया। वे राष्ट्रीय और वे स्वयं व विस्मृत हो गये। सितम्बर 1907 को उन्हें रिहा कर दिया गया। उनकी पीठों के बाद राष्ट्रीयवादिता के नये रूप ने उन्हें कांग्रेस के आगामी सम्मेलन अधिवेशन (बाद में अधिवेशन का स्थान अखिलार गुरुत कर दिया गया) का अध्यक्ष बनाना चाहा। किन्तु जब तात्काली ने ऐसा कि प्रतिनिधित्वकारी विरोध करने का उन्होंने अपना नाम वापस ले लिया। 1913 में उन्होंने दक्षिण अफ्रीका के सम्मेलन के लिए पत्राचार से पत्र एकाग्र किया। उन्होंने वास्तव में तात्काली दुःसाध और भारतीय ह्वार समझा देखा हुआ था।

1914 में सावजन राय लार्ड के एक प्रतिनिधिमण्डल ने सदस्य के रूप में भूषेन्द्रनाथ भट्ट तथा बिना के साथ इंग्लैण्ड गये। नवम्बर 1914 में वे इंग्लैण्ड में अमेरिका गये गये। वहाँ उन्होंने पाँच वर्ष बिताये, बीच में छह महीने के लिए वे वापस भी गये। 16 अक्टूबर, 1916 को उन्होंने अमेरिका में इतिहास होन मूल पीग की स्थापना की। 1917 में लीग की शार में 'युव इतिहास' ब्रिक्का प्रारम्भ की गयी।⁴⁷ अमेरिका में तात्काली ने भारतीय मजदूर मध्य की भी स्थापना की। अमेरिका में रहकर उन्होंने 'युव इतिहास'⁴⁸ (1916) तथा 'इंग्लैण्ड डेट टु इतिहास' (इंग्लैण्ड पर भारत का पात्र) नामक दो पुस्तक लिखी। उन्होंने 1919 में 'द पोलीटिकल पत्रकार और इतिहास' (भारत का राजनीतिक अधिवेशन) नामक पुस्तक भी लिखी। इन पुस्तकों के अतिरिक्त उन्होंने 'द फाइट कर कर्म' (दुष्टता के लिए लड़ाई), 'ए वॉर टु युव इतिहास' (युव भारत का आह्वान), 'एन ओपिन लैटर टु लॉन्ग जार्ज' (लॉन्ग जार्ज के नाम से भेजा पत्र) और 'पैन्थ लिटरैचरल क्लब इतिहास' (भारत के लिए आत्मनिर्वास) आदि कई पुस्तकें भी लिखी। अपनी विराट्ता का तात्काली तथा पत्रकारिता सम्बन्धी कार्यवाहियों के द्वारा तात्काली ने अमेरिका में भारत के लिए सीधे प्रचार जारी रखा। उन्होंने द युनाइटेड स्टेट्स आफ अमेरिका ए हिट्टन इम्प्रेशन एण्ड ए स्टडी' (संयुक्त राज्य अमेरिका एवं हिट्टन का मत और अध्ययन) (1916) नामक पुस्तक भी रचना की। इसमें उन्होंने नौवीं शताब्दी की रचना, अफ्रीकी शिक्षा प्रणाली तथा अमेरिका में भारतीयों की स्थिति आदि समझाया था विवेचन किया।⁴⁹

1920 में तात्काली सावजन राय ने वास्तव में वापस के विरोध अधिवेशन का सम्मानित किया। उसी अधिवेशन में अखिलभारत पर प्रस्ताव पत्र किया गया।⁵⁰ के साहित्यिक कार्यप्रणाली तथा उदारवादी आन्दोलन के निर्माण रह चुके थे, यद्यपि 1907 के बाद वे राष्ट्रीयता की रण में स्वयं, स्वयं, अहिंसा तथा राष्ट्रीय शिक्षा की चार मीलों का सम्मान कर लगे हुए थे। तिलक की मूर्ति उन्हें भी भारतीयों की अखिलभारत प्रणाली तथा कानून की अधिष्ठाता मण्डल में सहानुभूति नहीं थी।⁵¹ अखिलभारत आन्दोलन के दिनों में तात्काली ने लोकशासन विचारों की स्फुटि में निरन्तर मूल

45. तात्काली अखिलसिद्ध ने भारत का नामक एक पत्रिका का सम्पादन का की। वहाँ वे एक भाषा में भारतीयों का सम्मान दिया करते थे।

46. भारत विचार परिषद में अखिलभारत अधिवेशन के वास्तव में वे एक पत्राचार में अपनी का रीति में एक वहाँ गया। 1907 में तात्काली का अखिलभारत में गये का हुआ। 'युव' नामक पत्र के माध्यम से अखिलभारत पर और सम्मान का वहाँ दिया गया था।

47. भारत 'युव इतिहास' नाम पत्रिका द्वारा सम्पादित युव नामी नामक पत्रिका के अनुवाद कर रखा गया था।

48. सावजन राय *Young India* (दूरक, 1917) प्रिन्टिग संस्करण। दुःसाध में वे भी वास्तव में द्वारा लिखित पुस्तक की है।

49. तात्काली सावजन राय *The United States of America* (भारत नामी, नवम्बर 1916)।

50. तात्काली सावजन राय भारतीय विचार परिषद में अखिलभारत अखिलभारत तथा साहित्यिक आन्दोलन के बीच दुष्टता में गये थे।

51. यद्यपि सावजन राय का पुस्तक *India's Will to Freedom* का अतिरिक्त (लोक सावजन, भारत, 1921)।

[illegible][illegible]

34

है। बिदेस के आधिपत्य का अंत करना और भारतीयों तथा अल्पसंख्यकों के अधिकारों का रक्षण करना अति आवश्यक है।

विश्वी, दादाभाई नौरोजी और रमेशदास दास की कठिनी सज्जनता हम में भी भारत के राष्ट्र-पिता के रूप में स्वीकार की जानी चाहिए। उन्होंने भारतीयों को अंग्रेजों के साम्राज्य के प्रति अविरोध का दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। उन्होंने उन कुटिल शक्तों को भी समझाया कि भारत में अहिंसक आधिपत्य के प्रसारण का प्रयास नहीं किया जा सकता था। उन्होंने उन कुटिल शक्तों को भी समझाया कि भारत में अहिंसक आधिपत्य के प्रसारण का प्रयास नहीं किया जा सकता था। उन्होंने उन कुटिल शक्तों को भी समझाया कि भारत में अहिंसक आधिपत्य के प्रसारण का प्रयास नहीं किया जा सकता था।

राज्य की जन अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देने के लिए, लोक सेवाओं का बहिष्कार रद्द कर दिया गया।¹²⁸ 1920 में कलकत्ता कांग्रेस में उन्होंने अपने सम्पूर्ण जीवन में जनता की शक्ति, शक्ति तथा सामाजिक कल्याण की सही भावना और उनके कोटि पर दिया।¹²⁹ वे चाहते थे कि देशवासियों में जातीयता को दूर करने के लिए एकता का प्रयत्न किया जाए। उन्होंने स्पष्ट भाषा में कहा कि सामाजिक भेदभाव को दूर करने के लिए एकता का प्रयत्न करना चाहिए। उन्होंने स्पष्ट भाषा में कहा कि सामाजिक भेदभाव को दूर करने के लिए एकता का प्रयत्न करना चाहिए। उन्होंने स्पष्ट भाषा में कहा कि सामाजिक भेदभाव को दूर करने के लिए एकता का प्रयत्न करना चाहिए।

3. राजपूत राय लया समाजवादी
1920 को

56 भारत का, England's Debt to India ₹ 339 करोड़ 327 करोड़ 327 करोड़ 327 करोड़

56 Worcester, England's Dairy 327 38 India, 7
India (v)

56	सायमल राय,	Unhappy India, १ 327 ।
57	महो, १ 327 ।	to Young India (नवेन युव १ 147 ।
58	सायमल राय,	The Gold Education in India १ 20 ।
59	सायमल राय,	National Education of India १ 36 37 ।

57
58
59

The Call to Young India 4
National Education in India 7 201
Political Future of India 7 36 37

58	भाजपा पत्र,	National Education	35 31
59	भाजपा पत्र	The Political Future of India	
60	भाजपा पत्र,	India's Wall to Freedom, 7	

60. 1971-72, 1972-73, 1973-74, 1974-75, 1975-76, 1976-77, 1977-78, 1978-79, 1979-80, 1980-81, 1981-82, 1982-83, 1983-84, 1984-85, 1985-86, 1986-87, 1987-88, 1988-89, 1989-90, 1990-91, 1991-92, 1992-93, 1993-94, 1994-95, 1995-96, 1996-97, 1997-98, 1998-99, 1999-00, 2000-01, 2001-02, 2002-03, 2003-04, 2004-05, 2005-06, 2006-07, 2007-08, 2008-09, 2009-10, 2010-11, 2011-12, 2012-13, 2013-14, 2014-15, 2015-16, 2016-17, 2017-18, 2018-19, 2019-20, 2020-21, 2021-22, 2022-23, 2023-24, 2024-25, 2025-26, 2026-27, 2027-28, 2028-29, 2029-30, 2030-31, 2031-32, 2032-33, 2033-34, 2034-35, 2035-36, 2036-37, 2037-38, 2038-39, 2039-40, 2040-41, 2041-42, 2042-43, 2043-44, 2044-45, 2045-46, 2046-47, 2047-48, 2048-49, 2049-50, 2050-51, 2051-52, 2052-53, 2053-54, 2054-55, 2055-56, 2056-57, 2057-58, 2058-59, 2059-60, 2060-61, 2061-62, 2062-63, 2063-64, 2064-65, 2065-66, 2066-67, 2067-68, 2068-69, 2069-70, 2070-71, 2071-72, 2072-73, 2073-74, 2074-75, 2075-76, 2076-77, 2077-78, 2078-79, 2079-80, 2080-81, 2081-82, 2082-83, 2083-84, 2084-85, 2085-86, 2086-87, 2087-88, 2088-89, 2089-90, 2090-91, 2091-92, 2092-93, 2093-94, 2094-95, 2095-96, 2096-97, 2097-98, 2098-99, 2099-00, 2100-01, 2101-02, 2102-03, 2103-04, 2104-05, 2105-06, 2106-07, 2107-08, 2108-09, 2109-10, 2110-11, 2111-12, 2112-13, 2113-14, 2114-15, 2115-16, 2116-17, 2117-18, 2118-19, 2119-20, 2120-21, 2121-22, 2122-23, 2123-24, 2124-25, 2125-26, 2126-27, 2127-28, 2128-29, 2129-30, 2130-31, 2131-32, 2132-33, 2133-34, 2134-35, 2135-36, 2136-37, 2137-38, 2138-39, 2139-40, 2140-41, 2141-42, 2142-43, 2143-44, 2144-45, 2145-46, 2146-47, 2147-48, 2148-49, 2149-50, 2150-51, 2151-52, 2152-53, 2153-54, 2154-55, 2155-56, 2156-57, 2157-58, 2158-59, 2159-60, 2160-61, 2161-62, 2162-63, 2163-64, 2164-65, 2165-66, 2166-67, 2167-68, 2168-69, 2169-70, 2170-71, 2171-72, 2172-73, 2173-74, 2174-75, 2175-76, 2176-77, 2177-78, 2178-79, 2179-80, 2180-81, 2181-82, 2182-83, 2183-84, 2184-85, 2185-86, 2186-87, 2187-88, 2188-89, 2189-90, 2190-91, 2191-92, 2192-93, 2193-94, 2194-95, 2195-96, 2196-97, 2197-98, 2198-99, 2199-00, 2200-01, 2201-02, 2202-03, 2203-04, 2204-05, 2205-06, 2206-07, 2207-08, 2208-09, 2209-10, 2210-11, 2211-12, 2212-13, 2213-14, 2214-15, 2215-16, 2216-17, 2217-18, 2218-19, 2219-20, 2220-21, 2221-22, 2222-23, 2223-24, 2224-25, 2225-26, 2226-27, 2227-28, 2228-29, 2229-30, 2230-31, 2231-32, 2232-33, 2233-34, 2234-35, 2235-36, 2236-37, 2237-38, 2238-39, 2239-40, 2240-41, 2241-42, 2242-43, 2243-44, 2244-45, 2245-46, 2246-47, 2247-48, 2248-49, 2249-50, 2250-51, 2251-52, 2252-53, 2253-54, 2254-55, 2255-56, 2256-57, 2257-58, 2258-59, 2259-60, 2260-61, 2261-62, 2262-63, 2263-64, 2264-65, 2265-66, 2266-67, 2267-68, 2268-69, 2269-70, 2270-71, 2271-72, 2272-73, 2273-74, 2274-75, 2275-76, 2276-77, 2277-78, 2278-79, 2279-80, 2280-81, 2281-82, 2282-83, 2283-84, 2284-85, 2285-86, 2286-87, 2287-88, 2288-89, 2289-90, 2290-91, 2291-92, 2292-93, 2293-94, 2294-95, 2295-96, 2296-97, 2297-98, 2298-99, 2299-00, 2300-01, 2301-02, 2302-03, 2303-04, 2304-05, 2305-06, 2306-07, 2307-08, 2308-09, 2309-10, 2310-11, 2311-12, 2312-13, 2313-14, 2314-15, 2315-16, 2316-17, 2317-18, 2318-19, 2319-20, 2320-21, 2321-22, 2322-23, 2323-24, 2324-25, 2325-26, 2326-27, 2327-28, 2328-29, 2329-30, 2330-31, 2331-32, 2332-33, 2333-34, 2334-35, 2335-36, 2336-37, 2337-38, 2338-39, 2339-40, 2340-41, 2341-42, 2342-43, 2343-44, 2344-45, 2345-46, 2346-47, 2347-48, 2348-49, 2349-50, 2350-51, 2351-52, 2352-53, 2353-54, 2354-55, 2355-56, 2356-57, 2357-58, 2358-59, 2359-60, 2360-61, 2361-62, 2362-63, 2363-64, 2364-65, 2365-66, 2366-67, 2367-68, 2368-69, 2369-70, 2370-71, 2371-72, 2372-73, 2373-74, 2374-75, 2375-76, 2376-77, 2377-78, 2378-79, 2379-80, 2380-81, 2381-82, 2382-83, 2383-84, 2384-85, 2385-86, 2386-87, 2387-88, 2388-89, 2389-90, 2390-91, 2391-92, 2392-93, 2393-94, 2394-95, 2395-96, 2396-97, 2397-98, 2398-99, 2399-00, 2400-01, 2401-02, 2402-03, 2403-04, 2404-05, 2405-06, 2406-07, 2407-08, 2408-09, 2409-10, 2410-11, 2411-12, 2412-13, 2413-14, 2414-15, 2415-16, 2416-17, 2417-18, 2418-19, 2419-20, 2420-21, 2421-22, 2422-23, 2423-24, 2424-25, 2425

61
62
63

गलत शक्ति तथा जीवन देने वाले है उनका परिवर्तन अवश्य ही किया जाय । किन्तु वे ऐसे धन के प्रभ में वे जो पूर्णतः घर और वर्तमान परिस्थितियों में सम्मानपूर्ण जीवन वा आधार बन सकें । इस लिए उन्होंने भारतीयों को प्रेरणा दी कि वे अपने को वर्तमान सभ्यता और वर्तमान संस्कृति में सुसज्जित करने का प्रयत्न करें । उन्होंने इण्डियन को विस्तृत करने का सुभाव दिया और इस बात का समर्थन किया कि हिन्दू धर्म का भारतीय राष्ट्रवाद के बहुतरास धर्म के साथ सामंजस्य स्थापित किया जाय ।⁷¹ धन के चाहते थे कि साथ समाज "पुरातनवाद से निर्मित गतिशीलता" की नीति को अपनावे⁷² और इस प्रकार उन्नति के मार्ग पर अग्रसर हो । आत्मसम्मानही होने के नाते साम्राज्य का प्राचीन भारत की परम्पराओं तथा ऐतिहासिक साक्ष्यों से प्रेम का । इसलिए वे अंग्रेज से सत्ता सम्पन्न राह लेना बहुत नहीं कर सकते थे । उन्होंने कहा "धन की जीवन से निष्ठापित करना बहुत ही अदरक्षण है ।"⁷³ वे चाहते थे कि जिस पुरातन सुस्था पर सभी की महत्व और उपदेयता है उन्हें अवश्य बनाये रखा जाय । वे स्वीकार करते थे कि आधुनिक सभ्यता ने आचार्य तथा ज्ञानार्थ देने वाली व्यक्तियों का निन्दा करने में चमत्कार कर दिखाया है किन्तु उनका विचार था कि वेदों के विश्वव्यापी तथा समानतावादी आदर्श "आधुनिक सभ्यता के आदर्शों की अवस्था गलत के अधिक निश्चय है ।"⁷⁴ साम्राज्य की अनुप्राण धर्म का प्रयोग केवल नैतिक उन्नति तथा व्यापारिक लाभ की प्राप्ति नहीं है अस्तित्व सामाजिक विकास में बाध देना भी उनका काम है । आत्मसम्मानही होने के नाते वे शक्ति प्रथा के अन्त्य के विरुद्ध थे और ऐसे सङ्घर्ष का विनाश चाहते थे जो मनुष्य का सर्वोपरि धर्म के उद्घाटन करने में सहायक हो सके ।

पश्चिम में, विशेषकर अमेरिका में, बीच काल तक रहने के कारण साम्राज्य का इण्डियन व्यापक हो गया था, अतः उन्हें कोई हिन्दू पुनरुत्थानवादी मानना निराश्रय अनुचित है । उनका कहना था कि बहुत नारद तथा आचर्य के सामाजिक धर्म को सर्वत्र बनाये रखना बुद्धिमत् नहीं है ।⁷⁵ उन्हें विश्वास था कि पूरव तथा पश्चिम के बीच मत-विवाद अवश्य होगा । किन्तु वे तीव्र एकपक्षीय के प्रशंसक नहीं थे । कश्मिर के लोग शिक्षण की मांगोचना करने हुए साम्राज्य के कहा कि पश्चिम आदर्शों केवल मानवशो, व्यवहार के सामाजिक रूपों तथा राजात्मक तरीका के क्षेत्र में पश्चिम की अवस्था पूरव में नहीं अधिक प्रगति देने में भी मिलती है । किन्तु वे चाहते थे कि पूरव पश्चिम की "आचार्य मानना की कुछ अन्तर्गत म" अन्तर्गत करे और उसकी सीमा उपलब्धता की आवश्यक करे ।⁷⁶ वे पश्चिम की कुछ सामाजिक तथा राजनीतिक समस्याओं के पूर्णतः की जाती भाति समझते थे और पश्चिम को लोकतांत्रिक दृष्टि की राजनीतिक समस्याओं की प्रशंसा किया करते थे । उन पर जर्मनी कीने तथा बहुत रात के शिक्षावादी विचारों का भी कुछ प्रभाव पड़ा था ।⁷⁷ उन्हें पश्चिम के कुछ सामाजिक विचारों तथा वहाँ चल रहे लोकतांत्रिक प्रयोगों में भी आस्था थी । वे स्वीकार करते थे कि 'एक भारत' पर इवनेश के इतिहास और साहित्य तथा पश्चिम के जीवन में पाँहिष्ठ प्रगतिवादी विचारों एवं आदर्शों का प्रभाव पड़ा है ।⁷⁸ 1907 में मुम्बई में आयोजित अखिल भारतीय स्वदेशी सम्मेलन के अवसर पर भाषण देते हुए साम्राज्य ने कहा था "स्वदेशी की मानना जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में व्याप्त होनी चाहिए, किन्तु रात यह है कि प्रगति की वास्तव रखने और सङ्घर्ष की प्राप्ति करने के लिए पश्चिम के भी कुछ सीखना पड़े जैसे सीखने में उन्हें सज्जा का अनुभव नहीं होना चाहिए । सीखे सीखने के कोई लाभ नहीं है । यदि राष्ट्र का

71 सामान्य धर्म, *The Arya Samaj* (औद्योगिक चीन एवं अमेरिका, 1915), पृष्ठ 282-83 ।

72 वही पृष्ठ 279 ।

73 सामान्य धर्म, *India's Way to Freedom* । पृष्ठ 77 ।

74 सामान्य धर्म "Some Observations on Civilization" *The United States of America* पृष्ठ 334-43 ।

75 सामान्य धर्म (हिन्दी) पृष्ठ 433-94 ।

76 सामान्य धर्म, *The Evolution of Japan and Other Peoples* पृष्ठ 96 ।

77 सामान्य धर्म, *The Problem of National Education in India* (गुरु एवं गुरु अन्वित 1909), पृष्ठ 178-79 ।

78 सामान्य सामान्य धर्म, *England's Debt to India* (दुर्गा, 1917), पृष्ठ 338 ।

हित होता हो वो भीसे होता था सका है। नया ऐसा करना अतमहात्मा के सहज होता। आधुनिक परिस्थितियों में उन्हें राष्ट्रीयता के लिए आधुनिक ढंग में सज्ज करना भीसना चाहिए, और उन्हें उन इतिहास का प्रयोग करने का प्रयत्न करना चाहिए जिसका उनके विपक्ष मेंयोग किया गया था। ११

साक्षात्की आधुनिक नीकराष्ट्री की सज्ज तथा ज्ञानेयो के सामने समपन करने के लिए तैयार नहीं थे। वे इस ढंग में राज के भी समथक थे कि हर व्यक्ति और समुह की उत्तका देव विषा जाना चाहिए। वे उत्तिथ एका तथा सहयोग के विभाज करती थे। 1927 की प्रस्ताव राशे में उन्होंने सोना सम्प्रदायी की एका के प्रस्ताव का समपन किया, किन्तु वे यह भी नहीं सहन कर सकते थे कि हिंदुका के हितों को किसी प्रकार की जोशिम मूर्धवायी काम। भारतीय राष्ट्रीय काशिम के नेता साक्षात्की के विचार से सहमत नहीं थे। 1921 में मोतला सीपी ने हिंदुका पर को समकर कयाचार किने और मुसलाम अनुसर, सहारनपुर तथा मोहाट में भी हिंदु कुक-लिय देने हुए जस अधान-न, मातवीय तथा सामान्य राज की भारी चिन्ता हुई। काशिम मुसलमाना को रिकामते देने के पक्ष में थी, क्योंकि देश में वे अनुसरण थे। किन्तु देश में अनुसरण होती हुए भी पचास में मुसलमानों को स्थिति बहुत दह थी। साक्षात्की पचास की विविध राजनीतिक तथा साम्प्रदायिक स्थिति से प्रभावित हुए किना न रह सके। इसलिए कुछ समय के लिए साक्षात्की का हिंदू महासमा के भी सम्बन्ध रहा। किन्तु वे अभी सम्प्रदायकारी नहीं हुए और न उन्होंने कभी ऐस किसी काम का समपन किया जिससे स्वराज के बन में बाधा पकती। 1925 में साक्षात्की कलकत्ता अधिवेशन में हिंदू महासमा के सम्मेलन थे। उन्होंने समा का कार्यक्रम तथा नीति इस प्रकार निश्चित की

- (1) समुदाय देश में हिंदू समाधी का समपन करना।
- (2) जिन हिंदुका की साम्प्रदायिक दवा के कारण महापता की आवश्यकता रहे उन्हें महापता देना।
- (3) जिन हिंदुका को अनुसरण मुसलमान बना लिया गया था उन्हें पुन हिंदू धर्म में परिवर्तित करना।
- (4) हिंदू कुकल और कुकलिया के लिए अघातों का समपन करना।
- (5) सेवा समितियों का समपन करना।
- (6) हिंदी को लोकजिन बनाना।
- (7) हिंदू परिवारों के सधको और प्रतिपालना के प्रथमा करना कि वे लोगों को परिवारों में समान बनाये जमा होने तथा सामाजिक और धार्मिक मामला पर विचार विनिमय करने की अनुका दे दे।
- (8) हिंदू त्योहारों का दह दम में मनाया कि हिंदुका के विविध अनुका के बीच धार्मिकों की पामनाया का विकास हो सके।
- (9) मुसलमाना तथा ईसाइयों के साथ सम्मानना बढ़ाना।
- (10) सभी राजनीतिक विचारों में हिंदुका के साम्प्रदायिक हितों का प्रतिनिधित्व करना।
- (11) हिंदू कुकल का औद्योगिक समपन प्रथमा के लिए प्रस्तावित करना।
- (12) हिंदू दंपतों तथा घर-दर-दवा के बीच सममाना उत्पन्न करना।
- (13) हिंदू निषका की दवा सुधारना। १२

अक्टूबर 1928 में सामान्य राज में इलाका में समुदाय जात हिंदू महासमा के सम्मेलन की अध्यक्षता की। अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने नेहरू रिपोर्ट का समपन किया और हिंदुका को उने असीकार करने की सलाह दी। इस रिपोर्ट में औपनिवेशिक स्वराज की भारत का उद्देश्य

79 The Indian National Builders पान 1 (पचास दस वर्षों की सज्ज) कवीर समपन पृ 341-42,
80 का पान A Review of the History and Work of the Hindu Mahasabha and the Hindu
Sangathan Movement (समपन देन प्रेस, 1952) का समपन की Party Politics in India
में अनुका पृष्ठ 166।

तथा सामाजिक जीवन के पुनर्निर्माण का ठोस राजनीतिक दलन है। गांधीदेदी के द्वारा त्रिकोण में चहुँपे हुए चारों की रचना की 'द मनुस्क्रिप्ट विथाउट', 'एडोज भाव व नीति', 'द सिन्धुमिल नव योग', 'आश्रित' इत्यादि। उनके द्वारा त्रिकोण चलाता है कि वे पूरे के धार्मिक शास्त्रों तथा पवित्र के उत्पत्ति के दोनों में गलीगली परिचित है।

2. श्री अरविन्द का उत्पत्ति

आधुनिक स्तर पर अरविन्द के भारत के नवजातवादी अंतर्जातीय अनुभवों की प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष के मोनोवादी मोनोवादी की परंपरा विरोधी प्रवृत्तियों का समन्वय किया है। स्वयं उनका यही दावा है। यद्यपि अरविन्द तथा राजनीतिक विचारों के क्षेत्र में 'माग्यो' की उत्पत्तिपूर्ण अर्थपूर्ण महापुरुष है किन्तु भारतीय अतिरिक्त की उत्पत्ति अतिरिक्त के भारतीय जीवन के बुद्ध की विचारों के रूप में हुई है। अपने परमार्थ भाव में भारतीय आध्यात्मिकता पश्चिम जीवन की आस्था की प्रतिभा के अनुरूप रचनात्मक न कर सकी, इसलिए उसने लोग के समार को विचारों की प्रवृत्ति प्राप्त की और आधुनिक जगत की धर्ममग्नता पर अतिरिक्त उस देश प्रभावशालि की दुर्घटन का विचार। परिणाम यह हुआ कि जीवन के गुड मोनोवादी लोगों के भारत समार के धर्म देश के साथ प्रतिस्पर्धा में सफल न हो सका। आध्यात्म के दृष्टन का विचार हुआ और निर्वाण का उद्देश्य दिया जाने लगा। इसलिए यद्यपि उत्पत्तिवादी दलन की प्रभावशालि का आधार रहस्यमय अनुभवों का अवाटक साध्य माना जाता है, फिर भी इस दलन की अंतर्जातीय बनने का ऐतिहासिक परिणाम यह हुआ कि आध्यात्मिक और राजनीतिक जीवन का समन्वय के गत में बंद गया। उत्पत्तिवादी दलन के अनुचित होने के कारण विभिन्न के चिन्तन में, पुनर्जात के वादवादी, अती आदि की विचारधाराओं में, अतीरिक्त और अतीरिक्त के नव-मोनोवादी के और एकहात तथा अतीरिक्त के विचारों में मिलते हैं, किन्तु इस प्रकार के प्रत्यक्ष का सबसे अधिक विचार भारत में ही हुआ। इसके विपरीत, यूरोप मोनोवादी का गत रहा है, यद्यपि प्रचीन भारत के वादवादी समन्वय में भी गुड मोनोवादी प्रवृत्तियाँ देखने की मिल जाती हैं। यूरोप के अनेक मोनोवादी विचारक हुए हैं। डेमोक्रीटस, एपीकुरस, ह्यूम्स, सा मैथी, डिवो, ह्यूम्स, हेनरीजिमस, माथ, टेंगिन्स, बुचर, नील्स, डैमिन्स, डैमिन्स आदि कुछ उल्लेखनीय नाम हैं। इनके वादवादी कि अनेक वैज्ञानिकों का दृष्टन के विचारक रहा है, वैज्ञानिक पद्धति के पूरे विकास में पश्चिम में और मोनोवादी और मोनोवादी को प्रोत्साहन दिया है। सब वादवादी वादवादी की विचार और समान का अरविन्द आधार पर समन्वित करने के उद्देश्य की सीधों की नहीं है। इस प्रकार के वैज्ञानिक बुद्धिवाद ने मनुष्य के आधुनिक तथा सामाजिक विकास के दलन में अनुत्पत्ति बद्ध की, अंतर्जातीय तथा समाजवाद के आदर्शों की मोनोवादी जगत्, मानवतावाद तथा परीक्षणवाद को प्रोत्साहन दिया सामाजिक आदर्शवाद का विस्तार किया और सामाज्य और न मनुष्य की मनुष्यत्व की अति की विचारों का। फिर भी इनके परमस्वरूप आत्मा के जीवन का नियंत्रण ही हुआ। मोनोवादी तथा विचारमय मनोविज्ञान न आत्मा की आधुनिक प्रवृत्तियों का ही परिणाम माना। ऐसे वादवादी में सभी जीवन को साधारणतः करता सम्मम नहीं था। यही कारण है कि यूरोपीय सम्मता एक दूसरे का नील (जिस में वह अति-माई था) अथवा एक अन्य सत आधुनिक की जगत् नहीं व सभी है। अरविन्द का विचार था कि भारत तथा यूरोप दोनों ही अति की ओर चले हैं। उनको आशा थी कि भारतीय आध्यात्मवाद और यूरोपीय मोनोवादी तथा मोनोवादी के बीच अनुत्पत्ति स्थापित किया जा सकता है, और वह एक ऐसे दलन की सृष्टि करे ही सम्मम ही सक्ता है जिसमें पदार्थ (बुद्ध, इन्द्र) तथा आत्मा दोनों के महत्व का स्वीकार किया जाय। अपने आधुनिक चारों के चहुँपे हुए प्रकार के सामन्तत्व का प्रयत्न किया। इनके अनुसार परम एक आध्यात्मिक तत्व है। वह वेबल अधिपत, अत्यंत, अधिपत अनुभवों की ओर अतिरिक्त की ओर चला नहीं है, अतिरिक्त अत्यंत अतिरिक्त तथा अत्यंत (अत्यंत) के बीच विद्यमान रहते हैं, अतः विविधता भी उत्पत्ति ही आधुनिक है जिसकी वि एकता। वादवादी जगत् आधुनिक जगत् की आधुनिक सृष्टि है, वह परमत्व की अतीरिक्त सृष्टि नहीं है और न ही नव-अवस्था विचार अतिरिक्त है। इसलिए पदार्थ अथवा जीवन न स्वयं दावा या नियंत्रण करना उचित नहीं है। जगत् की आधुनिकता अत्यंत ही है। अत्यंत के विचारों के अनु आत्मा अतीरिक्त

3 श्री अरविन्द का इतिहास तथा सङ्ग्रहित दशम
राजनीतिक सामाजिक के रूप में अरविन्द ने इतिहास में आध्यात्मिक नियमितता के सिद्धांत को स्वीकार किया है। उनका कहना था कि इतिहास की ऊपर से निश्चयोजन और प्राथमिकताओं की बर्णित पुनराविष्कार है। अरविन्द का ईश्वर की शक्ति ही नाम कर रही है। इतिहास को वे नविक पुनराविष्कार है। अरविन्द का भी परमात्मा की विषयगत शक्ति या प्रतीक मानते हैं। उनके अनुसार वाणी का ऐतिहासिक विचारणा ही इतिहास है। अपने इस तर्क की पुष्टि में उन्होंने ऐतिहासिक उदाहरण प्रस्तुत किए—बंगाल का राष्ट्रवाद तथा बांग्ला की प्रति प्रतिपत्ति की शक्ति उदाहरण दी थी भारतीय राष्ट्रवाद के मूल में ईश्वर है और वही आधारभूत शक्तियाँ लेता है। उन्होंने बताया कि लिखित अधिकांशी भारतीय जनता का जो दाय, उत्पी-

The Life Divine Part I पृष्ठ 30 ।
अनुवाद, The Reign of Religion in Contemporary Pa-
207) जीवन समाप्त ।

3 The Life Divine प्र. 1 पृष्ठ 30।
4 राजाधामन, The Reign of Raja

1920) अविनय ब्रह्मचारी ।

उन और अस्मान कर रहे हैं यह भी ईश्वरीय योजना का ही अंग है। ईश्वर भारतीयों को आत्म-निष्ठा की शिक्षा देने के लिए स्वयं इस तरीका का प्रयोग कर रहा है। फ्रांस की शक्ति भी ईश्वर की इच्छा का ही परिणाम थी। जब तक क्रान्ति के नेताओं—मिराबो, दाँते, रोबिन्सन्, मैनीनिस्न आदि—ने अपने कार्यक्रमों में फ्रांसीसी की इच्छा (युग की आत्मा) को व्यक्त किया वह तक उसने उन्हें सफल करने दिया। किन्तु जैसे ही वे महानगर में प्रेषित होकर अपनी बहुधावाक्तावादी की पुष्टि से अंग अंग बँटते ही उसने उन्हें इतिहास के घब से उखाड़ फेंक दिया। इस प्रकार का दूसरी 'समवाद' (दूसरी 'साथ का सिद्धांत') 'समकक्षीयता के विचारों तथा असम प्रत्यक्षवाद के सम्बन्ध का प्रतीक है। इसी को हेमल ने इतिहास का नैतिकत्व कहा है, इसी रूप में वह उल्टा (इतिहास की) बुद्धिमत्ता और सर्वोच्चता मानता है। मोल ने अनुसार महापुरुष ईश्वर का उपकरण होता है। वह आत्मनिष्ठ नहीं रहता, बल्कि ईश्वरीय कर्म का निमित्तवाहक हुआ करता है। ईश्वर का लक्ष्य स्फूर्त हो जाने पर मनुष्य ईश्वर की इच्छानुसार आध्यात्मिक कर्म (विव्य कर्म) करने लगता है। हेमल ने कहा था कि विरह इतिहास के सिकन्दर, नीलर, मैनीनिस्न आदि महापुरुषों ने अकेल कर्म ही ईश्वरी योजना को सफलकृत किया, और अपने कामकाज के द्वारा धार्मिक इतिहास में विश्वात्मा की कर्मिक अभिव्यक्ति में योग दिया।⁵

अरविंद का विश्वास था कि मानव मनुष्यों और सम्प्रदायों का विकास चरकचर होता है। उनके इस दृष्टि पर फ्रांस मार्क्स के प्रकार-सिद्धांत का प्रभाव था। जैसे ही प्राचीन वैज्ञानिक तथा पुराणों में भी चरकचर का सिद्धांत देखने को मिलता है। गिरोपीस की राय ने ऐतिहासिक की आत्मा राजनीतिक आधार पर भी थी। इसके विपरीत मार्क्स के मनुष्यों के एक ही सिद्धांत प्रकटित किया। राय ने इतिहास की अन्तर्भाव पर बल दिया, इसके विपरीत मार्क्स ने जीवन के विकास की महत्वपूर्ण माना।⁶ उसने अपनी ने राजनीतिक विकास की नींव अवस्था-विकासवादी मार्क्स के अपनी का प्रतीकवाचक युग प्रत्यक्षवाचक आरम्भिक मध्य युग परम्परागत परम्परी मध्य युग, पुनर्जागरण से लेकर प्रभुत्वपूर्ण युग का व्यक्तिवादी युग और रोमानवाद से आरम्भ होने वाला आत्मनिष्ठावादी युग। मार्क्स के अनुसार जयन इतिहास के के बीच मनोवैज्ञानिक युग है। अरविंद ने मार्क्स के प्रकार सिद्धांत को भारत पर लागू किया। स्वयं मार्क्स की कहा करता था कि मेरी योजना सर्वोच्च तौर पर लागू की जा सकती है। अपनी पुस्तक 'द ह्यूमन माइन्ड' में अरविंद ने वैदिक युग की भारतीय इतिहास का प्रतीकवाचक युग बताया है।⁷ 'युग की के प्रकाश' आत्मनिष्ठ सत्य मानते हैं और शक्ति की परम्परागत सामाजिक रूप। आत्मनिष्ठ सम्मत के प्रभाव के कारण युग में भी व्यक्तिवाद का युग आत्मा और अपने साथ बुद्धि तथा स्वतंत्रता का संदेश माना। किन्तु अरविंद का विश्वास था कि पूर्वी जगत में यौद्धिक युग लम्बा नहीं चल सकता क्योंकि आत्मनिष्ठता युग के परम्परागत आत्मनिष्ठावाद की ही विशेष होती। मार्क्स ने जयन का आत्मनिष्ठ सत्य का युग कहा है। अरविंद का कहना था कि आत्मनिष्ठावादी युग के स्थापन पर आध्यात्मिक युग आना चाहिए, वह युग में मानव आत्मा (जो ईश्वर का ही अवतार माना है) की सम्पूर्ण शक्तिपूर्ण मानव विकास का परम्परागत करेगी। इस प्रकार हम देखते हैं कि मार्क्स का सम्पूर्ण दृष्टि अन्तर्भाव मानवमानिक था, इसके विपरीत अरविंद का दृष्टि मनोवैज्ञानिक तथा आध्यात्मिक है।

आधुनिक सामाजिक चिन्तन तथा दृष्टि में सम्प्रदाय और मनुष्य के बीच अन्तर्भाव में

5 हेम, *The Philosophy of History* (द्वितीय पुस्तक, दूसरा, 1944), पृष्ठ 30-31।

6 जी. वी. ह्यू, *History and Historians in the Nineteenth Century* (मोनोक्लोन द्वितीय पुस्तक, 1938), पृष्ठ 588।

7 हेमल की राय, *On the Veda* (संस्कृत, 1956) पृष्ठ 183।

⁸ 'यह सत्य का प्रभाव है कि वह एक ही जगह मिलती नहीं है—अपनी प्रतीकवाचक की मनुष्य तथा कई प्रकार की शक्ति विचारों को भी महत्वपूर्ण है। अन्तर्भाव पर अतिरिक्त था। अन्तर्भाव का, राजनीति तथा अन्तर्भाव के साथ अन्तर्भाव की परम्परागत अभिव्यक्ति की भी अन्तर्भाव का है कि वह एक ही विचार के साथ अन्तर्भाव युक्त सत्य का है।

4 राष्ट्रवाद तथा मानव एकता का सिद्धांत
भारत छोड़ने में पहले अरबिंद 1892 में लखनऊ
एक गुप्त सचरव में छात्रों को भाग लेने के लिए
लखनऊ से पठाई थी।

8. बोपीलास दीनोबोधो के कबरी बनेर चपलाओ में इन काल की लीकार बिचा है ।
9. बहाल पुन *Afian Currents of Modern Thought* (ले बिचार कबदिन सन्ध 1913)
पृष्ठ 283 86 ।
10. ओलास लेकर *The Decline of the West* (दुगध, 1926-1928) कि-1, पृ- 31 41 कि-
2 पृष्ठ 33 38 ।
बिरोध बरीए, *The Meaning of History* (सन्ध 1949) पृष्ठ 207 21 ।

8. मोहोपायन मंत्रिपरिषद् ने अपनी कनेन कक्षाओं में इन कक्षाओं की कक्षाओं में
9. कक्षाओं में *African Currents of Modern Thought* की कक्षाओं में
10. कक्षाओं में *The Decline of the West* की कक्षाओं में

9 सहायक कुवेन
रुप 283 86

2 गुरु 33 38

4. पृष्ठ 33-38
विशेषतः बर्ताने,

... The Blessing of History (मरण 1949) पृष्ठ 207 21

सिद्धांतवादी तथा वाचाल नहीं ही वह, मैं पुनः बत देकर चाहता हूँ कि हमारा प्रयत्न तथा सभी पवित्र कर्तव्य साधारण जनता का उत्थान करना और उसे ज्ञान देना है। हमारे बीच अनेक ऐसे महापुरुष हैं जिनकी भाव प्रगाथी गलत नहीं ही हो, किन्तु उनमें निष्ठा तथा विचार की स्पष्टता है। वे तीन सर्वोच्च वनगढ़ स्वार्थों के उद्घाटन से सचेत हुए हैं, वहां और वेतन के लिए भ्रमण करते हैं, ऐसे परीपक्व के वाचो में सम्मन है जो स्वयं में प्रशसनीय तथा करने योग्य है किन्तु उनकी उदारता का क्षेत्र सर्वोच्च है और उनके राष्ट्र के हितों का संवर्धन नहीं होता। मैं ऐसे महापुरुषों का आवाहन करता हूँ कि वे अपने परिश्रम और शक्ति को पूर्णतः वाचों से हटाकर उन व्यापक कार्यों में लगावे जिनसे देश की सत्ता और उत्पीड़ित जनता की राहत मिल सके।¹² अरविन्द का विचार था कि भारत का पुनर्जागरण तथा राष्ट्रीय महत्ता साधारण जनता की शक्तियों की उद्घाटन ही प्राप्त की जा सकती है। अपने मन की दृष्टि करने के लिए उन्होंने अक्सर केल्सवुथीनीज और रोम के टाइबेरियस वैनस के उदाहरण दिये। इन उदाहरणों से सिद्ध होता है कि यदि जनता अपने प्रति दिये गये पुरातन अभ्यासों के सम्बंध में सचेत हो जाय तो उसमें महान शक्ति का संचार हो सकता है। जनता कहना था कि कांग्रेस के नेता सामाजिक तथा राजनीतिक विचार के अवसरों निम्नो से पूर्णतः अनभिज्ञ हैं।¹³ सत्य अरविन्द के इस उक्त विचारों से मित्रवादी नेताओं ने आध्यात्मिक युद्ध राजाई बहुत उद्दिग्न होने लगे थे।

अरविन्द अतिवादी (उग्रवादी—वरमदनीय) राष्ट्रवादियों के उक्त नये दम के समर्थक थे जिन्होंने नेता लिंक, पाल बरबर्डी, सायमल राय¹⁴ वापर्स, किदम्बरन चित्तई तथा एन सी वेंकटर थे। उन्होंने इन मित्रवादियों की कार्यप्रणाली की मालमा की जो ब्रिटिश शासन को भारत के ही वर्णाय के लिए ईश्वरीय विधान मानते थे। उनका कहना था कि देश में उत्साह और जनता से स्पर्धित हो रहा है इसलिए जनता की उस विचारात् और निश्चिन्ता का अन्त करने का समय आ गया है जो विदेशी साम्राज्यवादी कुशासन के कारण उत्पन्न हो गयी है। मित्रवादी अपने मतलब की नींव को सुदृढ़ करना चाहते थे, इसलिए नये राजनीतिक उच्चाट से वे पक्षपात नत। इसलिए भारत की पूर के उत्तरात अरविन्द ने मित्रवादियों की आलोचना की। उन्होंने लिखा "किर की वह (मित्रवादी) उसके विरुद्ध संचय करता है, पक्षम उ रचना है और छान-बपट करता है वह मूठे विचार लड़े करने और भ्रान्त बल्य देकर, सुख कुशासा तथा दमन प्रवचना के द्वारा और सीमा की दुरिस्त तथा बर्नीय प्रवृत्ति का उच्चाटकर कुछ समय के लिए अपने को जीवित बनाये रखने का प्रयत्न करता है। वह सीमा की सीरता की उमाप्ता है और उसकी बुद्धिमानी कहता है, वह भारत-अविश्रमण सिताता है और उसे राजनीतिक पुरुषाई मानता है, वह राष्ट्र के प्रति अविश्वास उत्पन्न करता है और उसे मित्रवादी का नाम देता है। देश में राष्ट्रवाद के कारण जो महान शक्ति उत्पन्न हो रही है उसका योग वह स्वयं केना चाहता है। जिन पाला का वह प्रयोग करता है वे कृन्तेकिन को पाले हैं, जिस सुख दुरिस्तता का वह महाराज नेता है उसकी मसीनी नतिन ओष (मामु) के साथ निचा जिमा करता था जिस पूरता का वह प्रयोग करता है उसमें बर्नी किसी राष्ट्र का उत्थान नहीं हुआ है और जिन राजनीतिक जिज्ञासा को वह उत्पलता का साधन मानता है वे शक्ति के साथ प्रयत्न सम्पक से ही भक्तपूर होकर पूर में मिल जाते हैं। इस दुरिस्तता के प्रेरित होकर और राष्ट्र की दृष्टि में अपनी प्रतिष्ठा की पुन स्पर्धित करने की आशा से किन्तु साथ ही साथ अपने को नीकरशाही के साथ स भवने के उद्देश्य से उसने वापस की धिन मित्र कर दिया है। अब वह उस वापस की मिटो और मेहता की हार्दिक इच्छा से अनुकूल जानना चाहता है और उस पर ऐसे सिद्धांत पौर दवा चाहता है जिनमें उसे स्वयं विचारता नहीं है और एता सविधान तार देना चाहता है जो उस सब आदर्शों को भूटाता है जिन पर उसने जीवन के राजनीतिक वास्तवताएं आधारित रहे हैं।"¹⁵

12 *Indu Prabash* 4 7-नवम्बर 1893।

13 उन समय अरविन्द ने कथित की "भारतीय जनशुद्धी का-देव" कहकर उसका समर्थन उक्त। (अरविन्द, *Baskin Chandra Chatterjee*, पृष्ठ 46)।

14 सायमल राय का स्थान मित्रवादी तथा अविश्रमण का साथ नहीं था।

15 *Bande Matram* मजम 19 1908।

किया।¹⁹ यहूदी धर्म के नेताओं तथा शिक्षकों की भाँति अरविन्द ने भी बंगालिया अथवा भारतीयों को "पुनी हुई जाति" बतलाया और कहा कि उनका उद्देश्य भारत की राजनीतिक सुक्ति के ईश्वरीय आवय को प्राप्त करना है। किन्तु अरविन्द की यह धारणा कि भारत एक मौलौतिक प्रदेश नहीं, बल्कि जाति है, वास्तव में भारत की ही उल्लेख है। अन्तिम में, जिन्हें अरविन्द खुद गुरु करते थे, अपनी रचनाओं के द्वारा इस धारणा को बहुत तीव्रतया बढाया। चूँकि अरविन्द ने स्पष्ट बाद का रूप आध्यात्मिक था,²⁰ इसलिए उन्होंने नेताओं तथा अनुयायियों दोनों के लिए नैतिक शिक्षा को बहुत आवश्यक बतलाया। उन्होंने लिखा "हमारे नेताओं तथा अनुयायियों दोनों के लिए आवश्यक है कि वे अधिक यहूदी साधना करें, ईश्वरी गुरु तथा हमारे आदर्शों के माध्यम के साथ अधिक प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित करें, अपनी आत्मा का उत्थान करें और विचारों तथा भावों में अधिक तेजस्वी और प्रचण्ड शक्ति का परिष्कार दें। हमारे अनुमन में हम बार-बार लिखाया है कि इन गुरुश्यासिनों के-से नैतिकता का रूप तथा अद्वितीय उत्साह के निजम प्राप्त नहीं कर सकते। चारुवाचियों। केवल भारत की आध्यात्मिकता भारत की सम्पदा, तपस्या, ज्ञान और शक्ति ही हमें स्वाधीन तथा महान बना सकती है। पूज्य की इन चीजों के लिए हम अनेकों के 'विमोचन', 'फिलॉसफी', 'स्टुडेंस' आदि समानाधिकार सम्पदा का प्रयोग करते हैं। किन्तु ये शब्द मूल रूप की सती-भाँति व्यक्त नहीं करते। तपस्या विमोचन के कुछ अधिक है। तपस्य, परिश्रम और सहार की ईश्वरी शक्तियों को आध्यात्मिक साधना के द्वारा अपने में साधारणतया करना ही तपस्या है। ज्ञान फिलॉसफी से बड़ी शीघ्र है। जिसे प्राचीन यूनिया ने इच्छित नहीं है उसके द्वारा प्राप्त प्रत्यक्ष अनुभूति ही ज्ञान है। शक्ति स्टुडेंस से बड़ी वस्तु है। नखों की शक्ति प्रदान करने वाली सार्वभौम ऊर्जा जब व्यक्ति के अवतरित होती है तो वही शक्ति बहलाती है। भारत के उत्थान में पूज्य की ही निजम होनी चाहिए। योगी की राजनीतिक नेता के पीछे सदा होना चाहिए अपना अपने को राजनीतिक नेता के रूप में व्यक्त करना चाहिए। राजप्राप्त की विराट् की साथ एक ही शरीर में नाम सेवा है। सतीश्वरी की कायूर में निहित होना है। बुद्धि की आत्मा के और शक्ति की वृद्धता से वृद्ध करने के शरीरीय भाँति की निजम तब ही हो सके, किन्तु इन शरीरीय शक्ति के द्वारा निजम प्राप्त नहीं कर सकते।"²¹ अतः अरविन्द राजनीतिक जीवन को आध्यात्मिकता की ओर वक्रानुवर्तित करना चाहते थे। उन्होंने तो यहाँ तक कह दिया कि प्राचीन हिन्दुओं के वेद, उपनिषद् गीता योग और तप (साधन) आदि धर्म-धर्मों में उस आध्यात्मिक विवेक का रहस्य विद्यमान है जो मानव जाति की सुक्ति के लिए आवश्यक है। उनका कहना था कि भारत शक्तिशाली और सार्वभौम राष्ट्र बनने के लिए अपना उत्थान नहीं कर रहा है, वह तो इसलिए उठ रहा है कि उसका आध्यात्मिक आधार मानव जाति को उत्थान हो सके और उसके सहारे वह वृद्धता, समता और 'एकता के जीवन की ओर प्रगति कर सके।

अरविन्द का राष्ट्रवाद सारीय तथा बहुसाधुय नहीं था, बल्कि उत्तम रूप विवराज्यवादी था। वे कहा करते थे कि राष्ट्रवाद मानव के सामाजिक तथा राजनीतिक विकास के लिए आवश्यक है। अस्तोत्रवा एव विवराज्य के द्वारा मानव की एका स्थापित होनी चाहिए। और इस अर्थ में प्राप्ति के लिए आध्यात्मिक जीवन का निर्माण मानव धर्म तथा आदर्शों एवम् की भावना के द्वारा ही निजम हो सकता है। अरविन्द लिखते हैं " विवराज्य की वर्तमान परिस्थितियों विवरी

19 राजप्राप्त, *The Heart of Aryans* पृ 128 " अरविन्द योग विवरी प्राप्ति उत्थान आत्मिकता के जीवन है, और जिन्होंने अस्तोत्रवा के अर्थवत् अस्तोत्रवा में धर्म का अनुवर्तित धर्म के लिए आत्म विवरी की शक्ति के अर्थवत् प्राप्त किया।

20 वे वेदों अस्तोत्रवा *The Awakening of India* पृ 182 " अरविन्द धर्म न अपने हिन्दुओं और उस राष्ट्रवाद का जीवन सम्पन्न करते हैं किन्तु वे उन्हीं लिखते हैं कि अस्तुत को उत्थान के विधान का पुनर्प्राप्त है और वह सभी सम्पन्न हो सकती है जब वह यहाँ करने की पुनर्प्राप्त और करने की राष्ट्र का द्वारा ही पुनर्प्राप्त का सम्पन्न है। अस्तोत्रवा अस्तोत्रवा के विधान और अस्तुत के अर्थवत् अस्तोत्रवा की सम्पन्न करने की सम्पन्न वृद्धता का अस्तोत्रवा वही अस्तोत्रवा सम्पन्न है।

21 भी अरविन्द, *The Ideal of the Karmayogin* पृ 17-18।

ही निच और स्यात्सह सम्भावनाका से पूरा क्या न हो, किन्तु उनमें ऐसी कोई चीज नहीं है जिससे हम अपना यह सब बदलना पड़े कि किसी न किसी प्रकार का विश्वस्य आपस्य तथा अनिवाद्य है। प्रकृति की आत्मात्मा, परिस्थितियों की बाधना, तथा मानवजाति के वतमान और भविष्य की सम्भवताओं से उसे अनिवाद्य बना दिया है। हमने जो सामान्य लिख्य निराले हैं वे उसा के स्वा रहने, हा, उसकी प्रकृतियों और सम्भाव्य रूप, वैकल्पिक पद्धतियों और कर्मिक विकास के सम्भाव्य में विचार-विमल किया जा सकता है। अन्तिम परिणाम एक विश्व राज्य की स्थापना ही होता चाहिए। उस विश्व राज्य का सर्वोत्तम रूप स्वतन्त्र राष्ट्र का ऐसा सब होना जिसके अन्तर्गत हर प्रकार की पराधीनता, सब पर अधारित असमानता तथा दासता का विलोप हो जायगा। उसमें कुछ राष्ट्रों का स्वाभाविक प्रभाव दूसरों से अधिक हो सकता है किन्तु सबकी प्राप्ति स्थान होगी। यदि एक परिस्थि का निर्माण किया जाय तो विश्व राज्य के इकाई राष्ट्रों का सबसे अधिक स्वतन्त्रता उपलब्ध हो सकेगी, किन्तु उससे विप्लवकारी तथा विवेकीकरण की प्रवृत्तियों के बनने के लिए बहुत अधिक अनवर मिल सकता है। जब सब व्यवस्था ही सबसे अधिक वांछनी होगी। अब सब चीजें घटनाक्रम पर नियंत्र करेगी अथवा उन्हें सामान्य समझने के द्वारा निर्दिष्ट किया जा सकता है अथवा नविय्य में देश विचार और आवश्यकताएँ उत्पन्न होगी उनको ध्यान में रखकर उनसे सम्भव में निष्पन्न कर लिया जायगा। इस प्रकार के विश्व सभ के जीवित रहने अथवा स्थायी होने की सबसे अधिक सम्भावना होगी। २२

5 श्री अरविन्द का राजनीति दशन

वेदम के उपनिषद्वाक्य के विशद प्रतिनिध आधुनिक भारतीय राजनीति दशन की एक यही विशेषता है। "अधिकतम सत्त्वा का अधिकतम कल्याण" के स्थान पर विवेकानन्द, तिलक अरविन्द और गांधी ने "सबसे कल्याण" समीक्ष पीता के "सबभूतहित" के वाक्य का प्रतिपादन किया है। भारतीय विचारका की दृष्टि में वेदम का अधिक गम्भीर दृष्टिक तथा स्वाभूतत्व है। उसमें अन्तर्मन्यकी के हिता की सर्वश्रेष्ठता होती है। बुद्धि अन्य साथ साम्यात्मिक तथा ही है, इस लिए मनुष्य की चाहिए कि अपने व्यक्तिगत तथा राजनीतिक जीवन में सभी प्राप्ति के कल्याण की सहायक बनने का प्रयत्न करे। सुख तथा सत्य की अपेक्षा सब प्राप्ति के कल्याण की वैशिष्ट्य की सर्वोच्च बलवर्ती मानना चाहिए। विवेकानन्द तिलक गांधी तथा अरविन्द ने उपनिषद्वाक्य का अर्थ ही है उसका आधार प्रत्यक्षवादी तथा साम्यात्मिक नीतिधारण तथा सत्य-कारण है। किन्तु हमारे पास इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि ही एक हीन का, जिसने साम्राज्य की सर्वश्रेष्ठतावादी प्रत्यक्षवादी विचारधारण की ओर से वेदम के विशद सप्रथम व्यक्त स्थित रूप से विरोध प्रकट किया था, जिसका की दोहरा लय किसी भारतीय महा पर कोई प्रमाण पडा था।

अरविन्द आधुनिक पुनीवाद के आलोचक थे। अपने प्रारम्भिक जीवन में उन्होंने दासनाई औरोतो की गति भारत के विदेशी शासना के विरुध तथा साम्राज्यवादी शासन की निन्हा की थी। आधुनिक पुनीवाद में ज़ोरदार सभ्य तथा उद्योगमण्डला की बहि की जो प्रवृत्तियाँ दशने की नितानी हैं उनकी अरविन्द ने आलोचना की। दूसरी ओर साम्राज्यवाद के सम्भव में उनका विचार था कि उसमें सव्यवस्थित निरुत्तुल राज्य का विकास होता है। अरविन्द हीन में राज्य के बायो के प्रसार से ज़ोरदार की बहि होती है और उससे अनिवाद्यत सत्तामूलक विचक्षण और विमल की प्रोत्साहन मिलता है। साम्राज्यवाद की इस प्रकार की आलोचना मरुत वर, मनुष्य पात्र मान-जन तथा मोक्षिता हेतु न की थी है। अरविन्द की इस आधारा पर साम्राज्य की आलोचना बरती है। किन्तु व्यवहार में साम्राज्य का जो रूप देशों की नितता है उसने आलोचना हीन हुए

22 श्री बर्लिन, *The Ideal of Human Unity*, पृष्ठ 399-400।
 23 श्री एच सी, *Prolegomena to Ethics* (द प्रोलेगोमेना टु एथिक्स 1906) पृष्ठ 398-406।
 24 बाल म्नातन तिलक का दास दास पर हीन के *Prolegomena to Ethics* का प्रमाण है।

भी उन्होंने समाजवाद के आदेश की आधारभूत सिद्धांत के रूप में स्वीकार कर लिया।²⁵ उनका विश्वास था कि समाजवाद का सबसे लिए सम्मान अवसर तथा 'सुलतम सामाजिक' तथा आर्थिक सुविधाएँ भारतीय जनता को उद्देश्य सामाजिक व्यवस्था का बहुत ही प्रशंसनीय आदेश है।²⁶ अरविन्द ने समाजवादी आदेश का इस प्रकार की समझना किया उससे स्पष्ट है कि उन पर वास्तविक राजनीतिक विचारधाराओं का प्रभाव था।

अरविन्द भारतीय आध्यात्मिक स्वतन्त्रता के आदेश को स्वीकार करते हैं। मनुष्य प्रकृति की मौलिक आवश्यकता से सभी मुक्ति या सकता है जब वह अपने को मानवतात्मीय आध्यात्मिक सक्ति का अधिकारी मान मानकर काम करने लगे। ब्रह्मात्मकीय तथा ब्रह्मात्मकीय चेतना को प्राप्त करने आध्यात्मिक स्वतन्त्रता को प्राप्त करने की यह धारणा प्राचीन वेदांत में मिलती है। किन्तु अरविन्द ने स्वीकार किया कि भारत में पश्चिम में सामाजिक तथा राजनीतिक स्वतन्त्रता का आदेश मौला है,²⁷ यद्यपि ईश्वर तथा अरविन्द बोधा का ही विश्वास था कि यदि मनुष्य आध्यात्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त कर लेता है तो उसे सामाजिक तथा राजनीतिक स्वतन्त्रता स्वतः उपलब्ध हो जाती है।²⁸ अरविन्द ने अनुसार अपने जीवन में नियमों का पालन करना ही स्वतन्त्रता है। और यदि मनुष्य का वास्तविक आत्म स्वभाव बाह्य व्यक्तित्व नहीं बल्कि स्वयं परमात्मा है, इसलिए ईश्वरीय नियमों का पालन तथा अपने जीवन के नियमों का पालन दोनों एक ही बात है। स्वतन्त्रता की इस धारणा में सभी तथा जगत्पूजिता के विचारों का समावेश देखने का मिलता है। सभी के अनुसार, 'स्वयं अपने द्वारा निर्धारित नियमों का पालन करना'²⁹ ही स्वतन्त्रता है। वास्तविक राजनीतिक चिन्तन में आजादचलन की स्वतन्त्रता का अर्थ प्रदान करने की परम्परा सभी से आरम्भ हुई, और अपने मत कर शासन में इस धारणा का अधिक मुख्यव्यवस्थापन इन में प्रतिपादन किया।³⁰ अरविन्द ने यह परिभाषा कि अपने जीवन के नियमों का पालन करना ही स्वतन्त्रता है निरवयव ही वास्तविक प्रभाव की संकेत है। किन्तु उन्होंने पश्चिम में इस विचार का पीछा के स्वयं के शब्दों में प्रयोग किया। बोधा के अनुसार मनुष्य को चाहिए कि अपने को वही कामों तथा वस्तुओं तक सीमित रखे जो उसके सामाजिक तथा मानसिक जीवन के अनुकूल हो। और यदि वह इन वस्तुओं का निष्ठावान साथ और आध्यात्मिक प्रवृत्ति से पालन करता है तो वास्तविकता उसे परमात्मा का साक्षात्कार ही जाता है। अरविन्द ने यह सामान्य प्रवृत्ति भी कि जब वे पश्चिम के किसी आदेश का समर्थन करते तो उसे भारतीय आध्यात्मिकता के अनुसार स्थापित कर देते। इसलिए उन्होंने आध्यात्मिकता सम्बन्धित आदेश का समर्थन किया। इस प्रकार से व्यक्ति तथा समष्टि के दोनों के बीच सामंजस्य स्थापित हो जाता है। यही कारण था कि वे आध्यात्मिकता अराजकवाद के समर्थक थे। किन्तु उनका यह दृष्टि कोण पश्चिम के राष्ट्रीय अराजकवाद की मूल प्रस्तावनाओं में अधिक उल्टा है, क्योंकि अराजकवाद में किसी कोई चीज नहीं है जिससे सरकार की आवश्यकारी सत्ता का उद्गमन हो जाने पर मनुष्य की वास्तविक आध्यात्मिक नियमों की सतिता सम्मुख हो सके।

अरविन्द का विश्वास था कि मानव विज्ञान की वर्तमान अवस्था के प्रति सन्देह ने सामाजिक तथा राजनीतिक अराजकता उत्पन्न कर सभी है उसका निवारण सभी हो सकता है जब आध्यात्मिक समाज की स्थापना कर ली जाय। केवल आर्थिक क्षेत्र में नवीनीकरण करने और औद्योगिक मनुष्य को

25 अरविन्द ने 13 नवम्बर को 'दुर्गु उद्धार' में एक लेख लिखकर कहा था कि समाजवाद का विकास औद्योगिक तथा कृषकवाद की ओर होना चाहिए।

26 या अरविन्द *The Ideal of Human Unity* (बी अरविन्द साधन, पारिषदी 1950), पृष्ठ 28।

27 या अरविन्द *Speeches* (बी अरविन्द साधन, पारिषदी 1950), पृष्ठ 115-17।

28 एबीज्जास ईश्वर, *The Religion of Man* (जय एडन एण्ड अरविन्द 1931) पृष्ठ 188।

29 सभी, *The Social Contract* (एबीज्जास ईश्वर के एक ईश्वर एण्ड अरविन्द, 1913), पृष्ठ 16।

30 बीज्जास *The Philosophical Theory of the State* (एबीज्जास एण्ड अरविन्द साधन 1910) पृष्ठ 174-48। इस विचार का कुछ स्रोतों का उल्लेख हम दोनों के *Lectures on the Science of the State* (एबीज्जास एण्ड अरविन्द साधन 1914) पृष्ठ 114 'वैयर्थ्य' कथन के साथ में हुआ है।

सोक्राटिक अधिभार और सम्मान देकर सामुदायिक वह भी बलि को नहीं रोका जा सकता। साम्यवादी इस का समर्थन या व्यापक आर्थिक विधोक्त निरुत्पत्तावाद को जन्म देता है। मानवतावाद तथा मानवसंस्थावाद से भी समस्या का अन्तिम हल नहीं हो सकता, क्योंकि अपूर्ण मनुष्य के आधार पर कुछ समाज का निर्माण नहीं किया जा सकता। कुछ शारी अथवा समाज-सांस्कृतिक नैतिकता भी समस्या का अन्तिम हल नहीं हो सकती क्योंकि ऐसी नैतिकता प्रस-कृत-सापेक्ष होती है, यह परम धर्म को व्यक्त नहीं कर सकती। यद्यपि हम मनुष्य की आध्यात्मिक प्रकृति को महत्व देता है किन्तु यह भी समझि कि अतिशय कृपातर करने में असमर्थ होता है, क्योंकि अपने अस्वास्थ्य विश्वास के दौरान वह वचनमूलक औपचारिक तथा कट्टरतावादी बन जाता है। अतः ऐसा समाज से तबकी बहुत तथा सुदूर जीवन विज्ञान के ज्वलन्त आध्यात्मिकता पर आधारित होना और आध्यात्मिकता समाज के आवेग से भी सतर्क नहीं था। व चाहत के बिना अतिमानव का, जो अन्तर्गत होना चाहिए। मनुष्य की चाहिए कि वह अपना विश्वास बरक मानव से अतिमानव की ओर बढ़कर हो। इस तरह एक अने प्रकार के प्राणिम की चाहि उपन होनी जो मनुष्य से उत्तरी के प्रत्यक्ष सम्प्राप्ति इस प्रकार का आध्यात्मिक कृपातर हो विश्वास व बतमान स्पष्ट का निष्कर्ष कर सकता है। मनुष्य पर अतिमानविक सक्ति के जन्म के लिए प्रकृति प्रत्यक्ष-वेदना से पीडित विचार का समिधन देखने की शक्ति है। नीले के सवप्रथम अतिमानव म (गुणवर्धन) की धारणा का नामक सक्ति समन तथा अतिशक्तिव प्राणी है, इसके विपरीत अरविन्द का अतिमानव ऐसा कृपातरित व्यक्ति है जो अपने जीवन में उत्तमतर दैवी सक्ति तथा मानव की अनिव्यक्ति करता है। इस प्रकार यद्यपि अरविन्द ने अतिमानव' नाम नीले से ग्रहण किया किन्तु उसे उन्होंने आध्यात्मिक तथा वैज्ञानिक रूप से निरपेक्ष दैवी मूल्य की चेतना तथा सक्ति पर बन दिया। उनका कहना था कि सामाजिक तथा राजनीतिक सहह टकराव, अन्तरिक्ष तथा सत्य सभी सम्पन्न हो सकते हैं जब मानव म एकाग्र की चेतना प्राप्त हो, ऐसी चेतना प्रातपरिक सहयोग, सामन्तत्व तथा एकता का सम्पन्न करेगी। समझि तथा व्यक्ति के जीवन क्षात्रेण ही सम्पत्तों एकी चेतना के उचित होन पर हल हो सकती है जो मनुष्य को आतापेयी कि अनुभवशील, ब्रह्मण्डीय तथा अर्थात् सत्य मनुष्य के साथ केवल छिन्नकाद करता है।" इस प्रकार अरविन्द ने मानव प्राणी के अनुभवशील परम सत्ता का रूप माना और हेतव की प्रति स्वीकार किया कि राष्ट्र की भी जाना होती है।

- भी अरविन्द का भारतीय राष्ट्र के निर्माता म उच्च स्थान है। वे तोरमाव सिलक व 'राजनीतिव सहयोगी थे। उनका समय महानुपुन प्रथम व ताहक डिवाइज, एखर आन व पीता, 'सावित्री' आदि है। वे महान योगी, अधि तथा मानव आदि स प्रेम करने वाले थे। उनकी साध-निर्वा प्रता उद्यमठ थी। उन्होंने ही 1907 और 1909 में भारत के लिए कुछ स्वराज्य का नाम प्रस्तुत किया था।³¹ 1907-1908 में पून स्वराज्य का सम्पन्न करना सामुदायिक और विदेशीय दूर-
³¹ नीले *Thus Spoke Zarathustra* (एन.एन.एन.एन. 1938) पृष्ठ 5।
³² नीले *Der Hille zur Macht Versuch zur Umwertung aller Werte* (महान मानव की शक्ति 14 15)।
³³ विदेशीय नामा-सूची, *The Political Philosophy of Sri Aurobindo* (एन.एन.एन. 1938) पृष्ठ 5।

दर्शिता का काम था। उनका विश्वास था कि भारत का पुनरुद्धार अनिवार्य है। उन्होंने मानव एकता का भी उपदेश दिया और सिखाया कि यदि मानव स्वभाव का आध्यात्मिक पुनर्निर्माण न किया गया तो हमारी सभ्यता का विनाश अवश्यम्भावी है।

राष्ट्रवादी नेता तथा समाज ने स्वदेशी आन्दोलन के उद्देश्यवाहक के रूप में अरविन्द न उल्लेखित तथा उदात्त देशभक्ति का उपदेश दिया।

मध्यमगीम राष्ट्रवाद की याँज न आत्मिक चारणा के साथ उन्होंने वंसी ही शब्दा और चर्चित की भावना का समर्थन कर दिया वंसी कि किसी पवित्र वस्तु के लिए हुआ करती है। वे भारतीय राष्ट्र को परमेश्वर की अविच्छिन्न मानते थे और पश्चिम की श्रेष्ठता को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे। विवेकानन्द तथा सुभाषचन्द्र बोस ने राष्ट्र-भाव जहाँ पुनर्जागरण समाज की उत्साहपूर्ण तथा आशावादी भावना को उत्प्रेरित करने काया कहा था समता है।

अरविन्द का तत्त्वशास्त्र, उनकी इतिहास तथा संस्कृति दृष्टान्त, उनकी राष्ट्रवाद, स्वतंत्रता तथा आध्यात्मिकता समष्टिवाद की चारणाएँ पुन तथा पश्चिम के विचार का समर्थन है। उन्होंने बारम्बार आत्मा की शक्ति का उल्लेख किया और बताया कि जहाँ के द्वारा सामाजिक, राजनीतिक अथवा सांस्कृतिक स्तर पर स्थायी समाधान किया जा सकता है। अरविन्द ने एक विचार आधुनिक राजनीतिक वैज्ञानिकों को विचित्र करने और यह सम्भव नहीं है कि अधिक लोग उनकी ओर आकर्षित हो सकें। तथापि यह मानना पड़ेगा कि कुछ शब्दात्मक स्तर पर अरविन्द ने पूर्ण तथा पश्चिम के राजनीतिक विचारों को समर्थित करने का समर्थक प्रमाण दिया। अस्तौमत्ता सभी राजनीतिक दार्शनिक कुछ अंश में आत्मा की अवस्था करता है। कुछ नीतिवादी की नींदों, कुछ इतिहास और हेतु प्रतिनिधितावादी प्रतीत होते हैं, जबकि आध्यात्मवादी की मरिमावेसी और हीम उच्च और दिष्टते जान सकते हैं। आत्मा की शक्ति का विश्वास रखने वाला के लिए अरविन्द के राजनीतिक दृष्टान्त में सम्पूर्ण संदेह निहित है। अनुभववादी राजनीतिक दृष्टान्तिका के लिए भी उन्होंने पुन की आध्यात्मिक अनुभूतियों तथा पश्चिम के शब्दात्मक सामाजिकता के बीच सामंजस्य स्थापित करने की समस्या के समक्ष रखा ही प्रस्तुत कर ही की है। इसलिए इस समय जब पश्चिम तथा पूर्व बीचा के विचारचान लोग बीचा जगता का यौद्धिक परम्पराओं के बीच अधिक सामंजस्य और मेलविलाप की क्षमता कर रहे हैं, अरविन्द एवं महान यौद्धिक तथा आध्यात्मिक शक्ति का काम दे सकते हैं।³⁴

34. वी. कान "Politics and Ideology" नामक विचार के संग्रह, को०, वेणुल तथा बीड विचारों के सम्पादन का संग्रह किया है। यह संग्रह जून 1951 में *Columbia Review* में प्रकाशित हुआ था।

14

महात्मा मोहनदास करमचन्द गान्धी

1 प्रस्तावना

महात्मा गांधी (1869-1948) भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के दौरान के दौरान नैतिकता तथा सामंतीय रूप से चित्रित करने वाले व्यक्ति नहीं थे। वे एक अनुपम चिंतक तथा सदैववाहक थे। वे न तो क्षमता और न ही शक्ति के लिए लड़ते थे। उन्होंने अपनी सम्पूर्ण जीवन समाजवाद तथा समाज के सम्बन्ध में अपनी अत्यन्त विप्लवपूर्ण अनुभूतियों को उद्घाटन के रूप में व्यक्त किया है। उनकी 1908 में लखनऊ की सम्पूर्ण सम्मेलनों में हुए विचारों की एकता स्वयं की विशेषता है, और उनके अन्तर्विरोध प्रकट हैं। उनकी आत्मकथा में कहीं-कहीं वादविवाद की प्रतीति मिलती है, यह सामंतीय की आत्मकथा की तुलना में बहुत अधिक स्पष्ट है, किन्तु उसमें हमारे ही आत्मकथा की भाँति मन की आत्मा में होने वाली घटनाओं का विवरण नहीं है। महात्मा गांधी के लक्ष्य अपने ही विचारों का मार्मिक संश्लेष और उस रूप में अपने लोगों को प्रेरित करने का है। दक्षिण अफ्रीका तथा भारत की राजनीति उनकी प्रयोगशाला की विषय बनने के साथ-साथ अहिंसा सम्बन्धी सिद्धांतों का परीक्षण किया। गांधीजी के सत्य की सत्यता पर बल देना आवश्यक है। इस युग में एक साक्षर सभ्यता के प्रतिगाती बाल्य अवस्था में भारतीय व्यवस्था की पूर्ण रूप से प्रकट किया है, गांधीजी भारतीय समाज का सदैव रहे हैं। आधुनिक भारत के राजनीतिक अन्तर्गत समाज, समाज और समाज के इस सिद्धांत के निष्कर्षों का रहे हैं कि जीवन सामंतीय नियमों के अनुसार चलाने की प्रवृत्ति पर विचार प्राकृतिक और आवश्यक है। वहीं भारत है कि आधुनिक युद्धवादी व विद्रोह प्रारम्भ में गांधीजी के उस सत्य को अस्वीकार करना कठिन हो जाता है, क्योंकि उनका सदैव सत्यवाद, सौदा, स्वयंसेवा और ईश्वर का इस प्रकार का भाव है कि अन्त में जीवन सत्य की ही होती है, न कि सबसे अधिक सत्यवादी की। इस युग में अन्तर्गत समाजवाद आत्म, मोक्षमार्ग की प्रवृत्ति तथा समाज की सत्यता पर पूर्ण रूप से, गांधीजी द्वारा प्रतिपादित सत्य और समाजवाद अहिंसा का सदैव ही प्रचारण करने वाला है। किन्तु गांधीजी का यह दृष्टिकोण पर कुछ प्रभाव पड़ा है कि आधुनिक समाजवाद, महात्मा और समाज का समाजवाद, समाज और समाज का अनुपम करने वाला है। गांधीजी द्वारा अपने और समाज है कि राजनीति की समाजवाद के समाज में आत्मवाद और ईश्वर का समाज बना।

1893 से 1914 तक गांधीजी नैतिक अहिंसा में अत्यन्त समाजवाद के लिए बहुत काम किया। उन्होंने वहीं के भारतीयों की दृष्टि सुधारण के लिए काम करने में, किन्तु उन्होंने सत्य सत्य और सत्यवादी नहीं था। उन्होंने इस सम्बन्ध में सत्य की दृष्टि के लिए सत्य किया कि सत्य सत्य समाज तथा समाज है। उनके इसी सत्य का कारण ही एक समाज, जो इस समाज की समाज का समाज है, दक्षिण अफ्रीका में समाज के समाज में उनके समाज का समाज है।

1915 से 1948 तक गांधीजी नैतिक अहिंसा में अत्यन्त समाजवाद के लिए काम किया। वे देश के सुविधाओं में भी कुछ अधिक थे। उन्होंने अपने समाज के समाज में समाज समाज समाज, समाज और समाज के समाज है, किन्तु उनकी समाज समाज समाज समाज का समाज

दिखाते हैं ही सीमित नहीं है। उनका यह आग्रह कि राजनीति में भी समुच्च को पवित्र तरीका है ही ग्राह्य लेना चाहिये, हर युग के श्रेष्ठ मानव को आकाङ्क्षा का निरूपण करता है। वे अपने व अथवा आजीव तरोह लाग करने चाहते थे, इस बात की उन्हें कोई परवाह नहीं थी। उन्होंने कहा “मैं बालम्बर और स्टीवेंसन की यात्रा का हूँ जो बमबर व अथवा बडिमाइया के सामन की आकांक्षा करने करते थे।” वे सत्य पर सत्य हट रहे, और उन्होंने मानव जाति के पूज्यतावादी स्वभाव को अपने तथा समाज के जीवन में आकार करने का निरंतर तथा हठ स्वरूप में सत्य प्रकट किया। इसीलिए उनका विश्व के इतिहास में ऐसा अविनाश योग्य है जिस सर्वोप विचार का नाम देनाक और सति का चुनाव राजनीति में सभी हृदयमय ही नहीं कर सकते।

महत्वा गांधी आकांक्षा की नीरवता का ध्वज करते थे, समाचारपत्रों, रडियो तथा बीबीसी विश्वपुराण की ओर उन्होंने सभी ध्यान नहीं दिया। उनका मूल आदर्श स्वतंत्रता बनना तथा व्यवसायिकता बुद्धि प्राप्त करना था। उन्होंने आकांक्षा की एही यात्रा तथा स्थिति का ऐसा एकत्र उपलब्ध कर लिया था जैसा बाद-से पाय पुराण के ज्ञान में हुआ करता है। उनकी समग्र जीवन में, जो युग निरक्षरता और ईमानदारी के कालों के समुच्च था, सत्य आध्यात्मिक एकात्मता थी। इसी कारण वे एक वैश्वर—संदेशवाहक—बन गये। सर्वोपलब्ध विज्ञान का—चाहे उसे स्थिति पर लागू किया जाय और चाहे इतिहास पर—महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष यह है कि विश्व में दुःख तथा समग्र का वास्तविक कारण स्थिति का विचारण है। विश्व पर वे अनिष्ट दुःखी, विभुषण तथा योगात्मि के उन्मत्त लोगों के लिए गांधीजी का संदेश था कि राजनीति, अहिंसक और आध्यात्मिक जीवन का साक्षात्कार करने लगेगा की स्वतंत्रता तथा स्थिति का ज्ञान सामान्य प्राप्त करना ही इन सब रोगों का एकमात्र उपचार है। गांधीजी का जीवन अवधारणा तथा मानव जाति के अन्तर्गत मानवों के इस महान् कार्य की अभिव्यक्ति है, पुष्टिकरण है, कि कार्य का एक सत्य सत्य के पक्ष में भी अधिपति स्थिति होती है। उन्होंने कहा था “मैं अनेक बार यह चुका हूँ कि यदि एक भी सच्चा समाग्रही हो तो वह पर्याप्त है। मैं ऐसा ही सच्चा कार्यवाही बनना का प्रयत्न कर रहा हूँ।” इस आध्यात्मिक दृष्टिकोण में विश्वास रखने के कारण ही उन्होंने अनेक बार ऐसे पक्ष का समर्थन किया जिसके सम्बन्ध में बहुसंख्यकों को सफलता की बहुत कम सम्भावना दिखायी देती थी। उन्होंने अनेक ही अवसरों की जो यात्रा की वह इस बात की महान् परिचायक है कि उन्हें अपने आध्यात्मिक धर्म में अगाध आस्था थी। सत्य तथा अहिंसा के प्रति गांधीजी की प्रति आस्थाबल्य थी। उनकी आत्म-चरितचाल की मान्यता इसी स्वतंत्र होती है कि उन्होंने अन्त के नीतिवादी तथा विहार के सभी से प्रभावित धर्मों की अनेक ही यात्रा की।

2 सत्यवादीय आत्मसमर्थन

ईश्वर अथवा एक सत्यवादी आधारभूत आध्यात्मिक सत्य में विश्वास गांधीवाद का मूल सत्य है। ईश्वर “सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त एक जीवन्त शक्ति” है और उसे अधिकतम सत्य, सत्य अथवा वैश्व सत्य कहा जा सकता है। यह “सत्य विद्वान्, सत्यज्ञानसमन्वित जीवन शक्ति है जो विश्व की जगत् सत्य स्थिति में आनन्दित है।” एक मूल आध्यात्मिक सत्य में विश्वास गांधीजी को अपने आध्यात्मिक आकांक्षा में, विशेषकर अपनी समग्रतात्मक सत्य से विराजित में किया था। सत्यात्मता की स्वतंत्रता, बुद्ध के जीवन, मोक्षा और रामचन्द्र माई के सम्पर्क में उनकी भक्ति आकांक्षा की अधिपति सम्भीर और हठ बना दिया था। अत्यन्त-जीव दृष्टि के गांधीजी प्रत्यक्षवादी थे किन्तु वे सत्य के सम्प्रदाय के अनुयायी नहीं थे। वे निष्पक्ष सत्य के उपासक नहीं थे। उन्हें ऐसे दयालु ईश्वर में विश्वास था जो सत्य की प्रत्यक्षा सुनता है। उन्होंने लिखा है “मुझे एक भी ऐसा उदाहरण प्राप्त नहीं है जब अन्तिम सत्य उसने (ईश्वर ने) मुझे अवग्रह अवस्था में छोड़ दिया था।” गांधीजी के विचार प्रसार के ईश्वरवादी आत्मसमर्थन के विचारों में मिलत-जुलते हैं।

गांधीजी का कहना है कि आध्यात्मिक सत्य का साक्षात्कार तभीकें बहुत अवस्था प्रत्यक्षत्मक शोध के द्वारा नहीं किया जा सकता। उसके साथ आध्यात्मिक अनुभूति, बुद्धि, पवित्र तथा सत्य पूज्य जीवन और अपने संदेशों तथा वाणी में अहिंसा के आदर्श का साक्षात्कार करने की आवश्यकता है। अन्तिमता में शोध बुद्धि बहुत ही शुद्ध सिद्ध होती है। बुद्धि के परे पहुँचने वाला विश्वास ही हमारा

एकमात्र सारनहार है।¹ अतः गांधी ने विचार्य न हूँ केसाही आध्यात्मिक सर्वमान्य तथा जगत, बौद्ध और ईसायी की अहिंसामूलक नृतिवृत्ता का समन्वय देयन की कितना है। यद्यपि अहिंसा का आदर्श हूँ उपनिषदा, बौद्ध-दशम तथा बौद्धा न कितना है किन्तु जगत तथा बौद्ध धर्मों न उसकी अत्यधिक महत्त्व दिया है। अनुभव स ही दान का प्रारम्भ होता है, और गांधीजी का दान का कि मरा जीवन कितना ही अधिग अनुमानमय होता तथा कितना ही में सत्य के अधिग निरुद्ध पहुँचता गया। गांधीजी ने विचार्य न उस स्थितिवाद का पुट है, क्योंकि उन्होंने सत्य की वैयक्तिक अनुभूति की बहुत पवित्र और महत्त्वपूर्ण माना है। विषय के महानुभव रहस्यवादियों तथा धर्मशास्त्रियों न अपने निजी अनुभवों के आधार पर कुछ सारवत्त दूषण तथा वास्तविक सत्य की प्रभावित किया है। किन्तु गांधीजी ने बौद्धिक तर्कों तथा प्रयोगात्मक निरीक्षण की अवहचना नहीं की। उन्होंने सच्चा वैज्ञानिक होने का दावा किया। उनका कहना था कि मैं सत्य का सम्बन्ध न निरन्तर प्रयोग करता रहता हूँ और बार-बार निरीक्षण करने अपनी प्रत्याभवाओं की अधिग तनसगत बनाता रहता हूँ। किन्तु अवयव की इस वैज्ञानिक तथा बौद्धिक प्रभावित का प्रयोग वैयक्त सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन के सम्बन्ध न ही किया जा सकता था। आधारभूत सत्य न उसकी सम्पत्ति तर्कों पर बाध निरीक्षण से नहीं बलिक आध्यात्मिक साक्षात्कार तथा आत प्रज्ञा से उत्पन्न हुई थी। प्रत्यक्ष गांधीजी के जीवन का सार की। वे कहा करते थे कि मैं बिना मोहन के रह सकता हूँ किन्तु बिना प्रत्यक्ष के नहीं रह सकता। प्रत्यक्ष आत्म की उत्कट साक्षात्ता की अधिग्यक्ति है। प्रत्यक्ष परमात्मा का प्रतिबिम्ब अधिगवादन करने की प्रभावी है। साक्षात्कार के लिए ईश्वर के समकालिकाल ऐश्वर्य तथा दयालुता में विद्वान्त करना आवश्यक है। इस प्रकार के विद्वान्त से साक्षात्कार की पुष्पों की यही न यही साक्षात्कार के सुखान्ते न बुद्धनीय आध्यात्मिक मत विचलता है। "ईश्वर ही साक्षात्कार का एकमात्र सत्य है।" शिव मनुष्य की वह जीवन विद्वान्त होता है कि ईश्वर का अनुभव रहता है वह विषय ही जाता है।

गांधीजी का कोई इतिहास दशन नहीं था। किन्तु यदि हम उनके पञ्चम विचार के रूप विचार्य न इतिहास दशन के रूप न पञ्चम करना चाहें तो हम देखें कि न पञ्चमविषय निमित्तवाद न विद्वान्त करते थे। उन्होंने कहा था "उसकी इच्छा के बिना कुछ नहीं हो सकता और उसकी इच्छा की अधिग्यक्ति सारवत्त अपरिचलनशील नियम न होती है और वह नियम ही वह (ईश्वर) है।" अपरिचलनमान तथा जीवन नियम ही ईश्वर है। अनेक-अनेक अधिगवा के अपनी सम्पत्ति के द्वारा मनुष्य जाति के सम्पत्ति उत्पन्न नियम की अवलोक प्रस्तुत की है। गांधीजी कहा करते थे कि मरा मरणाद विद्वान्त है कि ईश्वर की अनुभूति न बिना एक पला भी नहीं दिन सकता।² अधिग पञ्चमविषय निमित्तवाद का पञ्चमविषय पर पहुँचा दिया जाय तो उसकी परिचलित निमित्तवाद के दशन न हो सकती है। गांधीजी का विद्वान्त था कि अधिगम कम न ईश्वर अपना सत्य ही सत्य तथा सम्पत्तिमान्यमान करता है, इसलिए विषय की सम्पत्ति तथा पञ्चमविषय का नहीं निवारण है। किन्तु गांधीजी का निमित्तवाद मनुष्य की अधिगम आत्मता का ही सीमित था। उनमें विद्वान्त द्वारा सभी आत्मवाद का रूप नहीं लिया, किन्तु वे सीता का उस पञ्चमविषयवाद तथा पुराणवाद के समन्वय थे। उनका सम्पूर्ण जीवन अधिगवात कम का जीवन था। उनका सभी रूप एक आध्यात्मिक सत्य की रूपगत से अनुभावित थे। यही कारण था कि उन्होंने सामाजिक कामकाजों, पत्रकार, राजनीतिक नेता तथा नैतिक सत्या-वाहक के रूप न जो विभिन्न नाम किने उनमें जून न एक जन्म प्रभावित निहित था। इस प्रकार गांधीजी के जीवन न हूँ ईश्वर की सर्वोच्चता तथा अवलोकन रूप पर आधार—हम को साक्षी का सत्यस्य दण्ड है।

3 नृतिग निरपेक्षतावाद

गांधीजी सर्वसाधारण सत्य न प्रत्यक्षवाद की स्वीकार करते न इसलिए नैतिक दूषणों की सर्वोच्चता तथा सर्वोच्च न उनका विद्वान्त था। सर्वोच्च दशन का आधार सत्य की पुष्पता का निवारण है। इसका अर्थव्य है कि मानव प्राणियों तथा पशुओं के प्रति निरपेक्षता के विरुद्ध निरन्तर

1 गांधीजी कहा करते थे कि हूँ यदि ईश्वर का दशन का रहा जानता। ईश्वर की पुष्पता सामाजिक दण्ड के ही साक्षी का सत्य है और उस दण्ड का प्रत्यक्ष करने न लिए सभी सत्यता की आवश्यकता होती है।

समर्थ बनाया जाय । इन सिद्धांत का मूल बजुर्वेद के इन शब्द में है 'ईशावास्यसिद्दं सर्व'—सम्पूर्ण विश्व मे ईश्वर व्याप्त है । गांधीजी का कथन है कि मैंने सभ समाजवाद और यही तर्क कि साम्यवाद भी निहित है ।¹ प्रथमवादी प्रधान अतिवादात्मक शासकत्व मूल तथा 'माम' के मूल्य का उपदेश देता है । यह सिद्धांत है कि साम्यमूल प्रेम जीवन का जन्मदायक नियम है । यह विमो एव कम अथवा राष्ट्र के बलवान स मातृष्ट नहीं हो पाता, बल्कि यह सभी प्राणियों की मुक्ति तथा बलवान का समर्थन करता है ।

गांधीजी के नैतिक निरपेक्षावाद का बीच वेद की उक्त धारणा मे विद्यमान है जिसे 'सत्य' कहते हैं । सत्य का सिद्धांत बलवान है कि कुछ ऐसे उद्घाष्टीय तथा नैतिक अन्वेषण हैं जो मनुष्य तथा ईश्वरजी दोनों पर शासन करते हैं । कुछ को भी नैतिक अन्वेषण के अस्तित्व मे विश्वास था । हिंदू धार्मिक पंथजिन मे भी स्वीकार किया है कि नैतिकता की प्रमुख धारणाएँ (पंच धर्म और पंच नियम) देश-काल की आवश्यकता के पर हैं । गांधीजी इन अनुभूतियों को स्वीकार करते हैं ।² उनका स्वयं के जीवन के अनुभव में भी नैतिक मूल्य की स्पष्टता के उनका विद्वान्त पक्का कर दिया था ।

गांधीजी का कहना था कि इतिहास अहिंसा की स्पष्टता की उत्तरदातर मुक्ति कर रहा है । उन्होंने लिखा है 'मेरा हृद विश्वास है कि मनुष्य स्वभावतः ऊँचा उठ रहा है ।'³ अहिंसा धर्म के सामने समर्थन करने का तर्क नहीं है और न अपनी दुर्बलता को छिपाने का ढाँच अहिंसा है । यह उस और अलगा की हृद शक्ति की परिचयक है जो किसी अकेल प्राणी को इसलिए बन्ध नहीं पहुँचाता कि हर प्राणी स्वयं अलगा है और स्वयं अपने साथ एक एक है । यह सर्वोच्च नैतिक तथा आध्यात्मिक शक्ति की प्रतीक है । 'अहिंसा के लिए अनिवार्य है कि हमने जो सबसे दुर्बल और अति कम है उनके भी अपिवादा की यही आवश्यकता के साथ रक्षा की जाय ।' धर्म का शासनात्मक करने की आवश्यकता रखने वाला हमने हेतु हर प्रकार के बन्ध नहीं देता है ।⁴ अहिंसा का अर्थ अलगा प्रेम और अलगा प्रेम का अनिवार्य है कष्ट-सहन की अलगा शक्त । गांधीजी कहा करते थे कि सत्य और अहिंसा का निरपेक्ष रूप से अस्वीकार करना आवश्यक है । "अहिंसा मेरे धर्म का सिद्धांत है । और यही धर्म धर्म का अंतिम सिद्धांत भी है । सत्याग्रही का अनिवार्य कथन है कि यह अहिंसा के द्वारा सत्य का शासनात्मक करने का प्रयत्न कर । ईसा मसीह और हरिश्चन्द्र इस प्रकार के 'कुछ कष्ट-सहन के निमित्त के उदाहरण थे । ब्रह्माचार्य सत्याग्रही का दूसरा महान उदाहरण है । अहिंसा की दुर्बलता का अलगा मानना उचित नहीं है । ऐसा मानने से तो उस महान आदेश में निरपेक्ष अलगा है । अहिंसा सबसे प्रबल शक्ति है । यह सबसे दुर्बल प्रकार की शक्ति भी है । वास्तविक अहिंसा प्रबल शक्ति है और सर्वाधिक शक्तिशाली शासन के विरुद्ध भी उसका प्रयोग किया जा सकता है ।

4 इतिहास मे धर्म का स्थान

यूनि गांधीजी सत्य और अहिंसा में विश्वास करते थे, इसलिए उन्होंने स्वीकार किया कि धर्म की इतिहास में अलगात्मक भूमिका रही है । अपने अनुसार धर्म का अर्थ यह विश्वास है कि विश्व व्यवस्थित रूप में नैतिक नियमों के अनुसार शासित हो रहा है । इसलिए उन्होंने अकेलविवाद से सम्बन्ध हिंसा और अनीयवस्था का सम्बन्ध किया ।⁵ मैं अपने को हिंदू कहते थे, किन्तु मेरे सभी सत्य दाववादी नहीं थे । वे कुछ और सम्बन्ध की शक्ति सम्बन्ध, तथा अनुष्ठान, रीति आदि की सीमाओं से परे थे । उन्होंने हिंदू धर्म के नैतिक तथा आध्यात्मिक सार को ग्रहण किया । उनका कहना था कि सद्धी, ईसाई इस्लाम शरकी आदि धर्मों का भी सार यही है जो हिंदू धर्म का । सत्य की अनिवार्यता यही ही हिंदू धर्म का मूल तत्व है । आत्मा के रूप में मनुष्य के नैतिक मूल ही धर्म है । नैतिक आधार के निष्पत्ति होत ही मनुष्य की सर्वप्रथम भी विमुक्त ही जाती है । 'धर्म धर्म समाप्त नैतिक नियमों पर आधारित है । मेरा नैतिक धर्म उन नियमों से बना है जो विश्व भर के

2. *Myra* जनवरी 2 1937 ।

3. का बीबी का पत्रिका में एक पृष्ठ में अलगा विचार था कि अहिंसा के समर्थन कर सकता हो जाता है—
अहिंसाविवाद का अर्थ नहीं बलवान ।

4. धर्म के का *Non Violence in Peace and War*, पृष्ठ 1 पृष्ठ 425 ।

5. यही पृष्ठ 38 ।

मनुष्य को एवमा ने तूब न बाधते है ।' यम से ही उनके जीवन तथा बापों का प्रति और प्रेरणा मिलती थी । पापीवी बहा करते थे कि मैं धार्मिक दस अथ म हूँ कि मुझे मोक्ष की कामना है । सिन्तु पापीवी के लिए मोक्ष का अर्थ वास्तव नहीं था । जयरा अथ यह नहीं था कि मनुष्य समाज का मानक नाति ने प्रति अपने वात्स्या की अवहलता करें ।

पापीवी के अनुसार सच्ची धार्मिक प्रवृत्ति का अर्थ है कि —

अनोकार कर व और जगदाह ने साथ जयरा वात्स्या ।

विश्वास था कि यदि कल्याण करने में सफल हो जाय तो वह स्वर्ग प्राप्त करेगा ।

[illegible]

गाम्भीर्य के अनुसार हम कह सकते हैं कि मुठभेड़ का कारण नहीं है, बल्कि यह एक भाव-
विक संक्रिया है। सामाजिक व्यवस्था है। मनुष्य का अस्तित्व समाज, जिसे गाम्भीर्य प्रभावित राज-
समय समाज को कहा करते हैं। धन पर आधारित होता है। किन्तु इस समय का विश्व साम्राज्य-
विषय बहुत कम तक ही समाज को देखा जाता नहीं है। इसका अर्थ है ईश्वर या किमता भी धन
स्वातंत्र्य नहीं। इसका अर्थ है कि समाज के सदस्य ईश्वर के विषय का अध्ययन भी धन
के साथ चलाने हैं। जब समाज भी वैश्व व्यवस्था का इस प्रकार अस्तित्व परीक्षण हो जायगा
तो उसके अस्तित्व पर हमें और अनेक अर्थव्यवस्था तथा समाज का अस्तित्व परीक्षण हो जायगा
ले लिये है। स्वतंत्र व्यवस्था का अर्थ है समाज के अस्तित्व पर परीक्षण हो जायगा।
समाजशास्त्री अर्थ है समाज का अस्तित्व पर परीक्षण हो जायगा।
गाम्भीर्य का अर्थ है समाज का अस्तित्व पर परीक्षण हो जायगा।
और यदि वह नहीं समाज हो सके तो उसके समाज का अस्तित्व पर परीक्षण हो जायगा।

साथीकी न आधुनिक सम्प्रदाय के आधार पर ही चुनी गयी है। आधुनिक समाजवाद सम्प्रदाय की बुनियादी औद्योगिक क्रांति, कम निरक्षरता, आधारभूत सेवा साधुता व साथीकी का पूरा स्वास्ती बनाए रखने का प्रयास करता है कि व्यक्ति और समाज को समायोजित करे, किन्तु इसमें अहिंसा का भाव दर्शित नहीं किया गया है।

6. सापेक्षी कला का मत है कि कला की सीमा का निर्धारण समय-समय पर बदलता है, किन्तु वह हमेशा समाज के प्रति प्रतिबन्धित रहता है।

थी। पश्चिम की औद्योगिक सम्पत्ता दुबल राष्ट्रों के क्षोभ पर आधारित है। उसका जटिल मौलिक जीवन उच्च प्रकार के विचार के प्रतिबल है। इसलिए यह आवश्यक था मनुष्य की सहायता। मनुष्य को, संस्कृत और मनुष्य की मौलिक शांति की शक्ति की ओर लौटने का रास्ता दिना और बताता था कि लक्ष्मी सम्पत्ता और-सामग्री का समय परना नहीं है, जानबूझकर और स्वयं से अपनी आवश्यकताओं का पत्र करता ही साम्यवाद सम्पत्ता है। स्पष्टतः के भी पहले शांति की परिचयी सम्पत्ता के और विचारों की परिचयी शांति की शक्ति है, और इसलिए व पहा करने के कि अहिंसा शांति सम्पत्ता का समुचित करने के लिए एक व्यवस्था (टीनिंग) का नाम कर सकते हैं।

शांति की राजनीति, समाजशास्त्र तथा अर्थशास्त्र की आधारभूतता की ओर उभरते चले के पक्ष में थे। उनका कहना था कि कार्य और अहिंसा की समाजवाद के रूप में प्रतिष्ठान होगा चाहिए, क्योंकि 'अहिंसा की पहली शक्ति यह है कि कार्य तथा जीवन के हर क्षेत्र में 'प्राप्त का स्थापना की कार्य।' विचार समाजवाद का शांतिवाद सिद्धांत हिता के शांतिवाद के उत्पन्न हुआ है। अहिंसा ही समाज शांतिवाद होने का एकमात्र कारण है।'

शांति की के लिए युद्धों का विरुद्ध समय दिया उनमें आतिवाद (नस्लवाद), साम्राज्यवाद, सम्प्रदायवाद तथा अनुपमता शुरू थी। दक्षिण अफ्रीका के उद्देश्य शांति की शांति के विरुद्ध समय चलता था। भारत में एक समाज-मुक्ति के रूप में उन्होंने सामाजिक शांति, अर्थशास्त्र तथा शांतिवाद का दौर विचार दिया। उनमें अनुसार यह सम्भव नहीं है कि कोई व्यक्ति शांति रूप से अहिंसा हो और फिर भी सामाजिक शांति के विरुद्ध विद्रोह न कर। उन्होंने भारत के दक्षिण दिग्गज सभी की शक्ति के लिए जो पत्रपत्र चलता उससे स्पष्ट है कि सामाजिक शांति के भारत के शांति उनका विचार संग्रह था। किंतु उनका पहला नाम भारत के शांतिवाद आदिन तथा राजनीति शांतिवाद का शक्ति करता था। उन्होंने विचार शांतिवाद की महत्ता इसलिए की कि उसने भारत शांति तथा राजनीति चलने के पक्ष में आ गया था।

शांति की का उद्देश्य था कि मनुष्य को दिखाया तथा विचारित कर शांतिवाद करने वाले जीवन को शांतिवाद करना चाहिए। भारत की आधुनिक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए उन्होंने शांतिवाद का बीड़ा उठाया। उन्होंने शांतिवाद जीवन की एकता तथा मुक्तिवाद की मुक्तिवाद करने के लिए कार्य प्रस्तुत किया। शांतिवाद शांति के विचार तथा शांतिवाद की शक्ति उनका हृदय इच्छित हो उठता था।' के अनुसार करने के कि विचार शांतिवाद के शांतिवाद के अस्तित्व के ही लिए कार्य उल्लेख कर दिया है। शांतिवाद के देश कि भारत शांति में चलता है। इसलिए उनका 'शांति की शक्ति' का कार्य न हो शांतिवाद का और न प्रतिनिधित्व। शांतिवादियों का ने स्वीकार किया है कि शांतिवाद शांतिवाद की शांति शांतिवाद करने आवश्यक है। पश्चिम में भी विचार शांतिवाद के शांति की शक्ति की महत्ता की शक्ति है। पश्चिम के कुछ शांतिवादियों की शांति शांतिवाद का भी विचार था कि शांतिवाद शांतिवाद के शांतिवाद और शांतिवाद होने के शांतिवाद की शांति शांतिवाद और शांतिवाद शांतिवाद। शांतिवाद ने शांतिवाद शांतिवाद के शांतिवाद की शांतिवाद की।' उन्होंने इस शांतिवाद सिद्धांत का प्रतिपादन किया कि 'मुक्ति

7 'Socialism and Satyagraha' *Haryan* पुस्तक 20 1947; शांतिवाद का एक विचार था कि शांतिवाद शांति की राजनीतिक शक्ति तथा शांति सभी शांतिवाद का कार्य कर सकता है। उनका कहना था कि शांतिवादियों का शांतिवाद शांति की शक्ति के पक्ष में था।

8 अक्टूबर 13 1921 के *Young India* में का शांतिवाद शांति के शांतिवाद और शांतिवाद का शांतिवाद करने का कार्य था कि 'यह एक शांतिवाद की शक्ति है जो शांतिवाद की शांतिवाद के पक्ष में था।' है।

9 *Young India* मार्च 19, 1931। शांतिवाद की यह शांतिवाद शांतिवाद का कि शांतिवाद के शांतिवाद शांतिवाद की शांतिवाद शांतिवाद शांतिवाद का शांतिवाद शांतिवाद है।

आयोग अधोगो के प्रति जाया रहता अनुमान था। उन्हें डर था कि भारत नहीं आधुनिक बची बूझ और औद्योगीकृत राष्ट्र बन ही जाय, और यदि ऐसा हुआ तो भारतीयों तथा राष्ट्री, जिन्हें वे अहिंसा का प्रतीक मानते थे, कुछतः विनष्ट हो जायेंगे।

गांधीजी वैदिक अथ म स्वतंत्रतादी थे, न कि आधुनिक अथ में। वे लोगों का सम्बन्ध बनाने के लिए निराला प्रकार के सब प्रयोग का सम्पन्न करने के लिए तैयार नहीं थे। उन्होंने व्यक्ति की गरिमा तथा अपने अन्तःकरण की सम्माननीयता को विशेष महत्व दिया। गांधीजी के वैदिक धर्म का आधार यह व्यक्ति है जो वैदिक साधना से अपने चरित्र का उत्थान करने का प्रयत्न करता है। उन्होंने कर्त्तव्य, मानदण्ड, शिक्षण, नेतृत्व आदि अपने समस्त धर्म के अंतर्गत शिक्षा का सम्पन्न किया और अंततः यह कि नहीं सब सामाजिक तथा आर्थिक सुधारों का एक साथ अंग है। यह मान्य करने की स्वतंत्रतादी प्रवृत्ति नहीं सुधारों का अंग है। इसलिए उन्होंने "धर्म के विवेकपूर्ण निरूपण तथा सामाजिक 'आय' का सम्पन्न किया। धर्म मनुष्य को सम्पन्न करने के लिए सभी प्राणिजों में व्याप्त है, और इसलिए उन्हें धर्म का परिष्कार करने में बहुत करने चाहिए जिससे सब मनुष्य को सुख और मानव उत्थान हो सके। गांधीजी का कहना था कि ईश्वर उन लोगों का मित्र नहीं है जो दूसरों का धर्म हटाना चाहते हैं। धर्म की विस्था मनुष्य को किसी न किसी रूप में घोषण करने के लिए विवश करता है।¹² यदि मनुष्य उन वस्तुओं का संयुक्तानुभव समझ करके तथा उन पर एकाधिकार कायम करने की प्रवृत्ति को त्याग दे जिसकी दूसरों की भी आवश्यकता है तो दूसरे में उत्थान की स्थापना ही संभव है और यदि अज्ञान का हनन करने वाली प्रवृत्ति तथा अन्तःकरण आवश्यकता का परिष्कार कर दिया जाय तो विनाश के साधन का स्वतः हीय ही जायगा। इसका अर्थ होता है कि जब अन्तःकरण अन्तःकरण के अन्तःकरण पर भारतीय अन्तःकरण की स्थापना करना। गांधीजी ने आधुनिक सम्मानवाद के आदर्श की भी स्वीकार किया और कहा कि स्वतंत्रता सब तक प्राप्त नहीं हो सकती जब तक कि सम्मान के अन्तःकरण तथा निम्नतम वर्गों की भी जीवन की वे सब साधन सुविधाएं उपलब्ध नहीं हो जाती जो अन्तःकरण का ही प्राप्त है। गांधीजी ने सम्मानवाद के अन्तःकरण विनाश, धर्म तथा अहिंसा मानिक तथा मोक्ष सबके साथ सम्मान वर्तक विनाश करना। किन्तु गांधीजी के अनुसार इस प्रकार के सम्मानवाद की स्थापना किसी संघर्ष के द्वारा राजनीतिक शक्ति पर अधिकार करने नहीं की जा सकती। यह निश्चित आवश्यक है कि सम्मानवाद अन्तःकरण, अहिंसा तथा मुक्त हृदय में हो। वे अन्तःकरण परिवर्तन का करते हैं। इसलिए गांधीजी ने अपनी राजनीतिक योजना के व्यक्ति के सुदीर्घ पर लम्बे अधिक ध्यान दिया। जिस आधुनिक सम्मानवाद की स्थापना गांधीजी करना चाहते थे उसका अन्तःकरण व्यक्ति के वैदिक उत्थान से ही हो सकता है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि गांधीजी राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक व्यवस्था के महत्व को नहीं समझते थे। उनका जीवन इस बात का महत्वपूर्ण अंग है कि एक व्यक्ति अन्तःकरण ही अधिक अन्तःकरण तथा अहिंसा सामान्य को पुनर्जीव दे सकता था। किन्तु गांधीजी व्यवस्था में परिवर्तन करना ही अपना लक्ष्य मानते थे। वे मनुष्य के स्वभाव तथा आचरण में परिवर्तन करना आवश्यक मानते थे। उनका शिक्षण था कि जब वे साथ सहयोग नहीं होना चाहिए, किन्तु साथ में पूजा करना को अधिक नहीं है। इस बात को हृदयमन करना है कि ईश्वर पौर, जाह्न तथा पूजा में ही व्याप्त है। मुक्त की अहिंसा गांधीजी का भी विचार था कि धर्म की सहयोगी तथा सहायक में परिवर्तित करना है। जिस प्रकार अस्तु में कहा है कि मनुष्य को वैदिक शक्तियों को उदात्त बनाना आवश्यक है, और बाह्य संघर्ष के अन्तःकरण परिवर्तन पर अधिक संरोध नहीं करना चाहिए इस प्रकार गांधीजी वैदिक विदित शासन का तथा आत्म गौरव की नीतिओं और सामंता द्वारा किये जा रहे सम्मान के घोषण का ही अन्त नहीं करना चाहते थे बल्कि वे घोषण की इच्छा का ही उत्थान करने के पक्ष में थे। वे मनुष्य का मानविक गुण उदात्त करना आवश्यक समझते थे, क्योंकि उनका विश्वास था कि मनुष्य की प्रवृत्ति में अन्तःकरण ही गुण के ही अन्त विद्यमान रहता है। यही कारण था कि द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान वे-तीव्रता से

कि यदि वृद्धी सन्निव बहिष्ता का माग बनाने लो जयन्ती के कठोर से कठोर हृदय भी पिघल सकते हैं।

पाथीजी का अन्तर्ग्रह ऐसा समझ की स्थापना करना या जो पारस्परिक सन्निव श्रेय एव साम कल्प पर आधारित हो। उन्होंने वर्णाश्रम पर आधारित समाज व्यवस्था को स्वीकार किया। किन्तु वे वर्णों के बीच भेदभाव तथा श्रेष्ठ-नीच की मान्यता के लिए तैयार नहीं थे। उन्होंने वर्णाश्रम का सम्पन्न तथा पुण्यजनकारी की दृष्टि से बड़ी विषा को स्वभावतः परम्परागत सामाजिक व्यवस्था का पक्ष ले लिए अपने जीवन के नियन्त्रण के सम्बन्ध में विचारणाशी दृष्टिकोण अपनाया। निन्ती लिए जातिकारी नाम अपनाया और अपने आचरण की आधारभूत प्रणाली की उत्पत्ति देना सम्भव नहीं है। पाथीजी अपने सुधारक थे, किन्तु वे केवल नवीनता तथा प्रतीक्षण का मान्य लेने के लिए सामाजिक ढांचे में तोड़ मरोड़ करना अच्छा नहीं समझते थे। वे यह विश्वास चाहते थे कि कुछ सामाजिक समस्याएँ जो देश के ऐतिहासिक विकास में लम्बत सर्वत्र व्याप्त रही हैं शास्त्र में बुद्धिसंगत हैं।

पाथीजी ने पुत्रीवाद की आलोचना इसलिए की कि यह बहिष्ता के सिद्धांत का निर्वेध बरतना है। किन्तु वे पुत्रीवाद का अन्तर्ग्रहण उन्मुख बनने के पक्ष में नहीं थे। उन्होंने समाज नियंत्रण के मातृकारी सिद्धांत का समर्थन किया। इसका अर्थ यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी प्राकृतिक आवश्यकताओं की पूर्ण करने के लिए वर्गीय सामग्री मिलनी चाहिए। धन का लक्ष्य और स्वयं का परिवर्द्ध नहीं होना चाहिए। धनी शोषा को समाज के अस्तित्व के लिए अपने धन का स्वातन्त्र्यी बन जाना चाहिए। यदि वे स्वेच्छा से 'शासक' बनने से इनकार करे तो शासक का पदोन्नत किया जा सकता है।

6 राजनीति बतन

मोक्ष के प्रति पाथीजी की राजनीति का आध्यात्मिकरण करना चाहते थे। मोक्ष के भी इस बाध पर बत दिया कि राजनीति में नैतिक गुणों की समाविष्टि करना आवश्यक है। पाथीजी धर्म की राजनीति के प्रति पाथीजी का अनुग्रह मोक्ष के लक्ष्य अधिक गहरा और व्यापक था। पाथीजी धर्म को राजनीति के प्रतिष्ठा करना चाहते थे। धर्म के लिए मोक्ष का एकमात्र माग यह है कि मैं देश तथा मानव जाति की सेवा के लिए निरंतर परिश्रम करूँ। मैं हर जीवित प्राणी के साथ अपना एकत्व स्थापित करना चाहता हूँ। अतः धर्म के लिए मेरी देखभाल आवश्यक है तथा अनुशासनीयता मेरी धारणा का प्रतीक रहना चाहता हूँ। अतः धर्म के लिए मेरी देखभाल आवश्यक है कि मेरे लिए धर्म से प्राप्त राजनीति बड़ी लोक की मान्य की एक मूल्य है। इस प्रकार स्पष्ट है कि मेरे लिए धर्म से प्राप्त राजनीति बड़ी ही सख्त है। राजनीति धर्म के अधीन है। धर्म से प्राप्त राजनीति धर्म अनुशासनीय है, क्योंकि उसमें शासन स्थापित करना चाहते हैं। धर्म का अन्विष्टा है ईश्वर के द्वारा एकता स्थापन करना। वह एक प्रवर्धन धर्म है। इसलिए राजनीति में धर्म को समाविष्टि करने का अर्थ या 'धर्म तथा धर्म की ओर उत्तरीतर प्रवर्धन करना, क्योंकि धार्मिक व्यक्ति किसी भी प्रकार के उत्पीड़न तथा शोषण को सहन नहीं कर सकते।

पाथीजी ने पारंपरिक लोकतांत्रिक राजनीति को बड़े नरमग की, क्योंकि उत्तम तीन अन्तः-विरोध थे।¹⁴ उसके अन्तर्ग्रह पुत्रीवाद का अन्तिम प्रसार हुआ जिसने अन्तर्ग्रहण मुख्य व्यक्ति का बटनर शोषण किया गया। कुछ लोकतांत्रिक राज्यों ने जो जातीयवादी तरीके भी अपना लिए।¹⁵ 'लोकतांत्रिक' का जो व्यावहारिक रूप हम आज देखने को मिलता है वह कुछ जातीयवाद अथवा जातीयवाद है। अधिक से अधिक यह साम्राज्यवाद की जातीयवादी तथा जातीयवादी प्रवृत्ति का विनाश का कारण है।¹⁶ पाथीजी ने स्पष्ट घोषणा की कि विदेश में भारत की लोकतांत्रिक तरीका से

14 *Harvey* पृष्ठ 18, 1940;
15 *ही*।

नहीं थीता था। उन्होंने दक्षिण अफ्रीका तथा अमेरिका के दक्षिणी भागों में प्रचलित जातीय भेदवाद की नीति की आलोचना की। उनका कहना था कि वेबल अहिंसा के द्वारा सच्चे लोकतन्त्र की स्थापना की जा सकती है। राजनीति में लोकतन्त्र का अर्थ है कि विरोधियों के साथ युक्त सम्पर्क व्यवहार किया जाय।¹⁶ आर्थिक क्षेत्र में लोकतन्त्र का अभिप्राय है कि सबसे दुबल व्यक्ति को भी वे ही सुविधाएँ मिलनी चाहिए जो सबसे पतिष्ठायी को उपलब्ध हों।¹⁷ लोकतन्त्र तथा हिंसा के बीच मेल नहीं हो सकता। वे चाहते थे कि भारत विभक्त होकर 'सच्चे लोकतन्त्र' का रूप प्राप्त करे।¹⁸ वे महासभादी के, इसलिए उन्होंने यह सुझावियाँ स्वप्न नहीं देखा कि मजिस्ट्रेट न भारत से बल का परिष्कार कर देता और पूरा अहिंसा को अपना लेता। किन्तु वे चाहते थे कि हिंसा के बिना और नमिक रूप से सच्चे लोकतन्त्र को प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाय। धर्म का विवेकीकरण उनके लोकतांत्रिक सिद्धांत का मुख्य तत्व था। उन्होंने भारत में सच्चे लोकतन्त्र को संस्थापित करने के लिए कुछ चरित्र निर्दिष्ट की थी।¹⁹ वे इस बात को मुख्य अनुचित और असौकराज्य मानते थे कि व्यक्ति कानून को अपने हाथों में ले।²⁰

गांधीजी के सर्वोदय की जड़े प्राचीन भारतीय दर्शन में थी। उन्हें वेदांत की इस धारणा से कि सभी प्राणियों में आत्माविरज एका है और भीता तथा बुद्ध के सम्भूतहित के आदेश से प्रेरणा मिली थी। सर्वोदय का व्यापक आदर्शवाद सर्व के बहुसम्पन्नवाद, मानव मुष्कीकृत के वन और जातीय संघर्ष के सिद्धांतों तथा वेदों के 'अधिकतम सहसा पर अधिकतम सुख' के आदेश के विरुद्ध है। एक दृष्टि के प्लेटो और गांधी में बहुत साम्य है। प्लेटो ने अपनी 'रिपब्लिक' में काल्पनिक आदर्शवाद का प्रतिपादन किया है, किन्तु 'लॉज' तथा 'रैट्यूसम' में रहने मानव स्वभाव तथा सामाजिक व्यवस्था की महासभादी आवश्यकताओं का स्थान रखा है। इसी प्रकार गांधीजी का एक महासभादी सिद्धांत का जो भारत की स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए दुरात तथा निरक्ष मजिस्ट्रेट के साथ विरोध करने के लिए था। इसके अतिरिक्त एक आदर्शवादी सिद्धांत भी है जिसका उद्देश्य मानव स्वभाव का आदर्श स्थापित करना तथा मानव जाति के सम्पूर्ण जीवन में नैतिक मान्य प्रभावों को अधिक पूरा रूप से स्थापित करना था। गांधीजी राज्य की हिंसा तथा धर्म का समन्वित रूप मानते थे। अहिंसा के पुनर्जी होने के माते उन्हें राज्य के साम्यकारी स्वरूप से दूना की। वहका विश्वास था कि समराज्य (आदेश राज्य अथवा पृथ्वी पर ईश्वरीय राज्य) के जन्म की नैतिक धर्म का प्रमुख होता और हिंसा की व्यवस्था के रूप में राज्य का विकास ही असंभव। किन्तु वे राज्य की धर्म की उत्पत्ति समझा करने के वक्त में नहीं थे। यद्यपि अन्तिम उद्देश्य नैतिक तथा सामाजिक अराजकवाद है, किन्तु सामाजिक व्यवस्था राज्य की अधिप्राधिक पुनर्जा की और से जाता है। गांधीजी ने 'यंग इण्डिया' (9 मार्च, 1922) में एक लेख निकलकर स्वराज्य तथा भारत समाज का भेद समझाया। आदेश समाज में ऐतदाय्य अराजक, मजिस्ट्रेट, सेना, पोस्टल, वायुन और 'सामाज्य नहीं होते। किन्तु उन्हें बल देकर बहुत नि स्वराज्य में वे पैसे के प्रकार की चीजे रहनी। स्वराज्य में कानून तथा 'पारलामेंट' का काम जनता की स्वतन्त्रता की रक्षा करना होगा, वे और चाहते थे कि हाथों में उत्पीड़न का काम नहीं होने। राज्य के प्रति गांधीजी की शत्रुता के कुछ कारणों का अनुमान लगाया जा सकता है— (क) दक्षिण अफ्रीका की सरकार द्वारा असह्य जुनू लोगों पर जिसे नये अत्याचार, (ख) दक्षिण अफ्रीका के महाब्रह्म आंदोलन के दौरान समरथ का विनाशपूर्ण, (ग) ब्रिटिश साम्राज्यवादी धर्मियों द्वारा भारत में किये गये अत्याचार। यह निष्पक्ष निवेदन समझा उपयुक्त होता कि उत्तम अनुभवों के कारण गांधीजी किसी निरिष्ट सरकार की नहीं रहित

16 *Young India* अगस्त 12 1920।

17 *Haryan* मई 18, 1940।

18 वही।

19 (क) पर्वत इलाक का समरथ, (ख) सामाज्यीयों का निरक्ष (ग) दलितों के व द्वारा सामाज्य विना, (ग) अनुप्रायता का उपपन्न, (घ) सामाज्यिक वेतनात्म, (च) अहिंसा का अहिंसक समरथ।

20 *Haryan* सितम्बर 21, 1947।

मानास तोर पर राज्य की पूरी व्यवस्था को ही अनुशासन भाव से देखने लगे थे। किन्तु उन्होंने राज्य की मशीन को तत्काल नष्ट करने की कल्पना नहीं की, उनका विचार था कि राजनीति में अहिंसा का अधिनाशित प्रयोग करने से शास्यकारी राज्य स्वतः समाप्त हो जाएगा। उनका विश्वास था कि मसिष्प में भारतीय सन्निह लोक सेवा का एक धारण कर लेंगे और उनका प्रयोग आक्रमण के लिए नहीं शक्ति प्रतिरक्षा के लिए किया जाएगा।

गांधीजी का सत्याग्रह दशन संस के सर्वोच्च आदेश से उत्पन्न हुआ है। यदि सत्य ही परम सत्य है तो उसके दुबारी वा चुनौती कतव्य है कि सत्य की कसौटी तथा उसके आधारों को रखा करे। ईश्वर ही परम सत्य और परम सत्य है, अतः ईश्वर सत्य के लिए आनन्दक है कि वह पूर्णतः विश्रुत और स्वाधारहित हो। उसने नैतिक तथा साम्यात्मिक गुणों के लिए सत्य करने का अन्त्य कलन तथा साहस होगा चाहिए। उसी वह अपनी सच्ची नैतिक मान्यता पर प्रमाण दे सकता है।

सत्य प्रकाश के अभाव, उत्पीडन और धोषण के विरुद्ध सुदृढतम आत्मनस का प्रयोग ही सत्याग्रह है। कष्ट सहन तथा विश्वास आत्मनस के गुण हैं। 'लेनस्वी डीन' के सक्रिय अहिंसात्मक प्रतिरोध का हृदय पर सरकार प्रभाव होता है। वह विरोधी को जोशिम न नहीं डालना चाहता, बलिक वह उसे अपनी निर्दोषता की प्रमाण धर्म से अभिपूत कर देना चाहता है। सत्याग्रह अथवा हृदय परिवर्तन के शिक्मकारी तरीके सरकार तथा सामाजिक अत्याचारियों एवं परम्परावाद के नेताओं, सभी के विरुद्ध प्रयोग किया जा सकता है।

सत्याग्रह मनुष्य का अमरिद्ध अधिकार है।²¹ वह पवित्र अधिकार ही नहीं अपितु पवित्र कतव्य भी है। यदि सरकार अन्याय वा प्रतिनिधित्व नहीं करती और बेईमानी तथा आतंकवाद का सम्पन करने लगी है तो उसकी अवज्ञा करना आवश्यक हो जाता है। किन्तु जो अपने अधिकारों को रक्षा करना चाहता है उसे सब प्रकार के कष्ट सहने के लिए तैयार रहना चाहिए। यदि हैमकन तथा आद टेलर ने कष्ट सहन की शक्तता न होती तो वे विद्रोह का भन्ना कभी नहीं उठा सकते थे।²²

इस प्रसंग में गांधी ने पुरो की शिक्षाओं का भी उल्लेख किया।²³ किन्तु उनका कहना था कि पुरो अहिंसा का पून सम्पक नहीं था। शायद वह सरकारी कानूनों की अवज्ञा की राज्यस सम्बन्धी कानूनों तक ही सीमित रहना चाहता था। उसने कर देने से इनकार किया। किन्तु गांधीजी द्वारा प्रतिपादित सत्याग्रह का सिद्धांत अधिक व्यापक तथा सामाजीय गहृत्व का है। परिवार से लेकर राज्य तक मनुष्य को बड़ा बड़ा अन्वय तथा अन्वय का सामना करना पड़े बड़ा वह सत्याग्रह का प्रयोग कर सकता है। गांधीजी को सत्य अपने पारिवारिक जीवन में सत्याग्रह के गुण मधुर अनुभव हुए थे, उनका उन्होंने अपनी आत्मकथा में उल्लेख किया है।²⁴ वे बड़ा करते थे कि अहिंसा की अनमाता परिवार की पाठशाळा में सीखी जाती है और फिर उसका प्रयोग राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तरों पर भी किया जा सकता है। इस सत्याग्री के तृतीय दशन ने उपरांत विश्व में भी कुछ और उपन हुए हैं उनसे सम्बन्ध में गांधीजी की इच्छा थी कि इतिवर्तिता, सन 'पैकोस्लीवाकिया', चीन और बोलेण्ड की जनता को आत्मनसकारियों का अहिंसकतन इस से प्रतिपाद करना चाहिए था।

सत्याग्रह की विभिन्न अन्वाधिया ह। अनन्त सत्याग्रह का एक रूप हो सकता है, किन्तु उसका प्रयोग उन सीधों के विरुद्ध ही करना चाहिए जिनसे पविष्ट मसिष्प प्रेम-सम्बन्ध हो। स्पेन्डा के देश छोडकर भगा जाना सत्याग्रह का अन्त्य रूप हो सकता है। "अत्याचार एवं प्रचार की गहृमापरी है, इसलिए जब कर हो कि उसके हमारे अन्तर प्रेम अथवा दीपक उत्पन्न होने जाता है तो हम उस स्थान की ही छोडकर भगा जाना चाहिए।" गांधीजी ने द्विचरत कर की सम्पन किया। "एवराडन" (बाइबिल का एक अधः) में इजराइलिया ने सीकनानुषन भाग निगलने का उल्लेख है। रस न खूबीतोर मोच भाग निगले थे, वे भी अहिंसा ने अनुवासी के ('हरिजन' जनवरी 6, 1940)।

21 *Young India*, जनवरी 5 1922।

22 ग्री बुलाई 16 1920।

23 एम. गांधी, *Satyagraha*, गुप 3 तथा गुप 115।

24 एम. गांधी की *Autobiography*, भाग 4, अध्याय 19।

साधोजी 'पर कूट' नीति की सलाह देना शुरू नहीं करते थे। उन्होंने कुछ समयवाहिया का सम्पन नहीं किया। उसका कहना था कि कुछ समयवाहियाँ चाहें स्वातन्त्रता के 'आन्दोलन' समय का अंग हों और चाहें वे सदा तथा अहिंसा पर आधारित हों, फिर भी समयवाहियों के लिए वे उचित होते हैं।

साधोजी ने जिस सलाह दे की कल्पना की वह सामाजिक तथा राजनीतिक विपठन का गुण नहीं था। सलाहवाही नहीं हो सकता है जिसमें पहले स्वेच्छा से बुद्धिमानी के साथ और स्वतः राज्य के बान्सी की कायल किया हो। साधोजी विमते हैं "सलाहवाही समाज के बान्सी की बुद्धिमानी से और अपनी स्वातन्त्र्य इच्छा से चलाना चाहता है, यद्यपि वह ऐसा करना अपना पवित्र कर्तव्य समझता है। जब इस प्रकार मनुष्य समाज के बान्सी का ईमानवादी से पालन कर लेता है तभी वह वह नियम करने की स्थिति में हो सकता है कि जीवनका बान्सी अच्छा और स्वाधीन है और जीवनका अन्तर्मुख तथा अनुचित। तभी उस कुछ बान्सी की सुनिश्चित परिस्थितियों में सन्तुष्ट अवस्था बनना का अधिकार प्राप्त हो सकता है।"¹⁹ महत्त्व साधो अपने की स्वभाव से बान्सी का चलन करने वाला मानते थे। जब मनुष्य राज्य के आधारित तथा वैयक्तिक बान्सी का चलन करने अनुत्तम मान ले तभी उसमें सन्तुष्ट प्रतिरोध की क्षमता उत्पन्न हो सकती है। सरकार के बान्सी का प्रतिरोध करने समय सलाहवाही का इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि सामाजिक व्यवस्था जिस जिस न होना चाहे।

साधोजी ने सलाहवाही के लिए वैयक्तिक अनुज्ञान के कठोर नियम निर्धारित किये। उसे ईश्वर के अदल विरक्त होना चाहिए, अथवा वह अपने शरीर के साथ लक्ष्य प्राप्त करने के लिए अधिकारिता द्वारा बिदे रूप आधारवादी की शक्तिपूर्वक सहन नहीं कर लेगा। उस मन तथा मन की आत्मा नहीं जानी चाहिए। उसे सलाहवाही अपने के नेता के आदेश का पालन करना चाहिए। उसका कर्तव्य है कि अपने शरीर का हृदय और शक्ति बान्सी द्वारा सन्तुष्ट करने का प्रयत्न करे। उसे चाहिए कि सहायक का चलने करे, पूरक निर्माण तथा हृदय सन्तुष्ट हो। उसने लिए सलाहवाही है कि जीवन हो, अपने उद्देश्य में लक्ष्य निष्ठा रखता हो और जोय मयका अथ किसी मनोविकार के बन्धन होकर अपने कर्तव्य साथ से विचलित न हो। सलाहवाही का प्रयोग कभी किसी साथ के लिए नहीं किया जा सकता। वह का 'मैंम की जिम्मे' है, इसलिए उसका उद्देश्य हृदय की सन्तुष्ट करना होता है, न कि अन्तर्वादी के मन उत्पन्न करना। अब सलाहवाही का आधार कमलिन मुड़ी करना है। इस प्रकार साधोजी ने परिण की बुद्धता की राजनीतिक शक्ति की बन्धी बतलाकर राजनीतिक चिन्तन की महत्वपूर्ण योग दिया है। उनके अनुसार स्वायत्त तथा धर्म का सम्बोधन करने के लिए कुछ साधना का प्रयोग करना आवश्यक है। प्लेटो ने भी राज्य के उत्पत्ति के लिए शारीरिक शिक्षा तथा शक्ति और लक्ष्यपूर्ण की शिक्षा का विधान किया था। किन्तु साधोजी ने प्रत्यक्ष पर धन दिया और इस प्रकार प्लेटो से भी अगे बढ़ गये। वह स्पष्ट है कि साधोजी शिक्षा तथा धन की कठोर शैक्षिक शिक्षा की महत्व नहीं देते। यहाँ तक सलाहवाही की शैक्षिक शिक्षा का सम्बन्ध है न मध्यमशिक्षा तथा उपरीष्ठत राज्याध्य से सम्बन्ध हो सकते। सलाहवाही के लिए शैक्षिक की आवश्यकता नहीं है, उसका हृदय मनुष्य होना चाहिए, और वह अच्छा तथा कष्ट-सहन में ही उन लक्ष्य हो सकता है।

सलाहवाही के अर्थ का अर्थ है। पक्षी के साथ आशुलीय करना उसका एक नाम रूप है। सरकार के बान्सी की सन्तुष्ट अवस्था सलाहवाही का कठोर तथा आत्मनिष्ठ प्रकार है। साधोजी के अनुसार सन्तुष्ट अवस्था की धारणा में सन्तुष्ट का अर्थ है वैयक्तिक, अनुज्ञान, विद्वत्ता तथा अहिंसा। सन्तुष्ट अवस्था वैयक्तिक तथा आधुनिक दोनों प्रकार की हो सकती है। अन्तः का स्वतः वैयक्तिक रूप ही साधु हित अवस्था है। प्रारम्भ में अवस्था की सलाहवाही का कठोर प्रतिरोध देने की आवश्यकता होती है। धीरे-धीरे वह इस कला की सीख सकती है। साधोजी का कहना है कि कुछ सन्तुष्ट अवस्था जिसमें अन्तर्गत राज्य के वैयक्तिक कानून का उत्पन्न किया जाता है, आवश्यक शक्तिशाली आचार्य बन सकती है। वह 'सलाहवाही विद्वत् से भी अधिक अन्तर्गत' सिद्ध हो सकती है। जब विद्वत्ता और विद्वत् अवस्था विद्वत् वैयक्तिक पर स्वेच्छा से और जिस प्रतिरोध एवं प्रतिरोध के अभाव तथा

आत्माचार को सह सेठी है तो उससे जिस प्रकार शक्ति का प्रादुर्भाव होता है उसकी सम्भावनाया वा अनुमान भी अमान्य नहीं है । विरुद्ध राज्य के कुशलों की शोकमत के समक्ष उभारकर रखने से बड़े से बड़े आत्माचारी शासन का अन्त निश्चित हो जाता है ।

गांधीजी की आत्मा की श्रेष्ठता में विश्वास था । वे कभी ऐसे किसी कानून के सामने सम-पन्न करने की अनुमति नहीं दे सकते थे जो मनुष्य की नैतिक गरिमा के प्रतिबुल होता । आत्मा अथवा अन्त करण की आवाज सर्वोपरि है । यदि राज्य के कानून तथा आदेश मनुष्य की जल्परत कल्प की भावना से टकराते हो तो उनका प्रतिरोध करना आवश्यक है । यह बहुत सही नहीं है कि गांधीजी औद्योगिक शासन प्रणाली के अन्तगत सत्याग्रह की अनुमति नहीं देते ।²⁶ गांधीजी की सखीय लोकतन्त्र के रूपों से विशेष लगाव नहीं था । उनका दृष्टिकोण लोक से विज्ञ था । वे लोक की भाति सखद द्वारा स्वयं बहुतरफरी की दृष्टि की श्रेष्ठता की स्वयंनिष्ठ नहीं मानते थे । उनकी दृष्टि में सत्य के नियमों के अनुसार जीवन बिताना आधारभूत समस्या थी । भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में अनेक ऐसे अवसर आये जब गांधीजी ने कहा कि यदि मैं अकेला रह गया तो भी अनुचित कानून अथवा व्यवस्था का विरोध करूँगा, क्योंकि "पाप से असहयोग करना पवित्र कल्प है ।"²⁷ इस प्रकार सत्याग्रह की नैतिकता सत्त्वामुक्त जीवनतन्त्र की नैतिकता की पर्यायवाची नहीं है । सत्याग्रह का उच्चतम सम्मिलित होने वाला की समस्या से कोई सम्बन्ध नहीं है ।²⁸ लोकतन्त्र हर प्रकार के अविरोधों पूर्वाग्रहों तथा दुन्दुभ विचारों और आवाधाओं से प्रभावित हो सकता है । विरु सत्य का पुनारी इन सब बाधा की स्वीकार नहीं करेगा । उसे केवल चार-पाच पक्ष में एक बार विधानाधी के सदस्यों में परिवर्तन करने का तोष नहीं हो सकता । वह लोकमत की बदलत वा अवस्थ प्रसन्न करेगा । गांधीजी की शिक्षाओं के अनुसार सत्याग्रह वह शाश्वत कानून है जो आत्मा की अविज सने वाली हर वस्तु का विरोध करता है । सत्य तथा अन्त वरध का अनुयायी पुनः अकेला होने पर भी प्रतिनिधि विधानाय के उन कानूना का विरोध करेगा जो आत्मा के नियमों के विरुद्ध हैं । सत्त्वा सत्याग्रही सत्य की वास्ति हर अतिशय उठाने के लिए तैयार रहेगा । गांधीजी लिखते हैं "निर भी ऐसी आवाज आ सकती है जिसकी मनुष्य अवहेलना नहीं कर सकता, उस कुछ भी कीमत क्यों न चुकानी पड़े । मैं स्पष्ट देख रहा हूँ कि ऐसा समय भी आ सकता है जब दुर्भ राज्य के हर कानून की अवना करनी पड़े, चाहे उसके पत्रकल्प रक्षकत अवसरवादी क्या न हो जाय । यदि उस आवाज की अवहेलना करने का अर्थ ईश्वर की अव्योकार करना हो तो अविज्य अवस्था तब अवस्थाव्य कल्प हो जाता है ।"²⁹

गांधीजी का सत्याग्रह सम्बन्धी दशन तथा सफलशासन प्रतिरोध के निष्ठात का आध्यात्मो-द्वस रूप है । पश्चिमी राजनीतिक विज्ञान में प्रतिरोध का समथन विज्ञा गया है । कुछ पारिविज्य-वादी दार्शनिकों ने राजहला का भी अनुमोदन किया । "जिसकी बीया तिराजोन" नामक कथ में उन राजाओं का प्रतिरोध करने का समथन किया गया है जो प्रजा की अन्तरात्मा के विरुद्ध पाप करते हैं । अंत कालियन ने जिम्न श्रेणी के अधिवास्तिवा की राजा का प्रतिरोध करने का अधिवास्ति दिया । यूरो सविनय अवस्था का महान मन्थन था । स्वदेशी आन्दोलन के दिना में विनय, अविज्य तथा अतिवादी सम्प्रदाय में निश्चिज प्रतिरोध का मन्थन किया । सभी-वर्गी भ्रमण मान किया जाता है कि गांधीजी का सत्याग्रह श्वेतर लोपा के निश्चिज प्रतिरोध का ही एक रूप था । विरु उन राजा के बीच महत्वपूर्ण अन्तर है । मन्थनय, सत्याग्रह एक कतिमान गति है कदापि उमम अचानक के विरुद्ध मन्थन के रूप में कम पर दस दिया गया है । निश्चिज प्रतिरोध में मनु के विरुद्ध आनरिज हिंसा की अनुचित नहीं माना जाता, विरु सत्याग्रह में मन का निरन्तर गुड रूप रत्ना आवामन है । सत्याग्रह में आन्तरिक गुडता पर दस है । निश्चिज प्रतिरोध का प्रयान केवल राज नीतिन स्तर पर किया आ सकता है । सत्याग्रह का प्रयान हम पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक

26 देखने के भी समकालीन 'गांधी विचार शोध' (हिन्दी), पृष्ठ 70 ।

27 एक के गांधी *Satyagraha* पृष्ठ 347 ।

28 *Young India* काल 4 1921 ।

29 *Indian Gentry Tyranny*

आदि सभी साने कर कर मजने हैं। वास्तव इत अथ म निम्निय प्रतिरोध से खेप है नि उनम भाष्यारिक्त तथा नैतिक उद्देश्य की ही यन्त्रिय साध्य माना जाना है और तत्वावही की अधिक भासा तथा शास्त्रना ईश्वर ही है। वा पीजी वा सावाग्रह 1906-1908 मे प्रतिपादित निम्निय प्रतिरोध से नही अधिर व्यापक है। लिखक और अरविन्द मे नैतिक आधार पर हिता वा समान नहीं निवा। किन्तु वा पीजी निरलख अहिंसा कर चल देते थे। 1906 1908 वा निम्निय प्रतिरोध केवल एक राजनीतिक वासप्रणाली वा और उसका क्षेत्र सीमित था। सभी कमी उसना अथ केवल स्वदेशी तथा अहिंसक वा और कभी कभी उसका प्रसार करने नामायुक्त कानूना तथा व्यवहारों की भी सबसे अत्यन्त सम्मिश्रित कर लिया जाता था। गांधीजी का सावाग्रह जीवन तथा राज नीति का दशन है और उसके अत्यन्त प्रबन्ध साधुनिक कामवाही के द्वारा विरुद्ध सरकार की सम्पूर्ण व्यवस्था की छिन्न भिन्न करने की कल्पना की जाती है।

यह सत्य है नि गांधीजी तथा ब्रिटिश उदारवादियों मे विचारो मे कुछ साम्य है, विशेषकर इस रूप मे कि राज्य के कर्मक्षेत्र के सम्पादन मे दोनो वा दृष्टिकोण समुदायुक्त है। किन्तु इस विचारपात्रों भिन्न परम्पराओं से उत्पन्न हुई हैं। राज्य का विरोध करने मे गांधीजी किसी भी ब्रिटिश उदारवादी से कहीं अधिक उग्र तथा बटु थे। ब्रिटिश उदारवादियों का बौद्धिक वाचक जेम्स लॉक तथा अरस्तु की दार्शनिक परम्पराओं मे दुआ था, इसलिए वे स्वभावतः राज्य के चलने बटुर विरोधी नहीं हो सकते थे बिलने नि गांधीजी थे। गांधीजी उत्पन्न एक नैतिक सन्देशवाहक थे जिन्होंने धर्म, कर्म तथा हिता के द्वार सम्बन्धित रूप मे विरुद्ध प्रतिरोध की स्पष्ट घोषणा कर रखी थी। गांधीजी कर एक और तो प्राचीन भारत क वाचनितिया तथा विस्तृती की परम्परागत व्यक्तित्ववादी मानक का प्रभाव देशन की निश्चया है, और दूसरी ओर उस पर यूरो के व्यक्तिवाद और लालिशम के राज्य विरोधवाद का स्पष्ट प्रभाव है। गांधीजी नैतिक अर्थ करण मे महान समर्थक थे। गांधीजी और बीन के विचारो मे कुछ समानताएँ है। उदाहरण मे भिन्न, दोनो ही एक आधारभूत आध्यात्मिक अनुभवा की सत्ता मे विश्वास करते थे, दोनो ही मानक स्वभाव की दुआता का आवश्यक मानते थे और दोनो ही कुछ परिस्थितियों मे राज्य क प्रति प्रतिरोध की उचित समर्थन थे। किन्तु इस समान ताओ मे अन्तर यह है यह नहीं भूलना चाहिए कि अक्समोड के प्रोवेसर की तथा अन्तर्योग आन्दा लन (1920-22), नवम् सन्वाग्रह (1930 1931) और 'भारत छोडो आन्दोलन के शक्तिवादी नेता की वाचनाना के बीच सम्बन्धित धेद है। यद्यपि बीन ने इस बात का सीमित रूप मे समर्थन किया नि 'वाचनमन्त्र प्रतिरोध व्यक्ति का अधिकार ही नहीं बलम्प है, फिर भी यह सुधारवादी ही बना रहा तथा सुजीवाद और सम्पत्ति के असमान वितरण का समर्थन करता रहा, क्योंकि वह सम भला कि समुदाय के व्यक्तित्व के विकास की आवश्यकताएँ भिन्न प्रकार की हुआ करती है। इसने विरोध गांधीजी मे किसीही की आरम्भ की, और बिले व शरण वा मान समर्थन से उस पर मे अकेले ही माने बढ़ते गये।

गांधीजी का आग्रह था नि राजनीति का आधार यथ होना चाहिए। राष्ट्रीय उन्मोदिका के इस प्रसिद्ध सिद्धांत की सभी स्वीकारा गई किन्ता नि यथ व्यक्ति वा निजी मामला है और इस लिए उसकी राजनीति के उसका कोई सम्पादन नहीं हुआ चाहिए। निजी जीवन तथा सामाजिक जीवन के बीच इस प्रकार का वृत्तव्य गांधीजी की मूल मानका के प्रतिफल है। गांधीजी के अनु सार समुदाय ने अत्यन्त तथा वास्तु जीवन ने बीच एकता होनी चाहिए। किन्तु यद्यपि गांधीजी राजनीति मे धार्मिक आधार वा सुदृढ बनाता चाहते थे, फिर भी वे किसी समुदाय अथवा सम्प्रदाय विशेष अधिकार देना नहीं कर सकते थे, और न वे किसी समुदाय के विरुद्ध भेदभाव का वर्तन करने की अनुमति दे सकते थे। उन्होंने नैतिक धर्म के सिद्धांत का प्रतिपादन किया। य इस बात ने निदरूप ही विरुद्ध थे नि राज्य समुदायों की किसी पाप अथवा मतवाद का यत्न होने के लिए वाध्य करे और इस प्रकार उक्त धार्मिक बनाती केपटा करे। इसलिए वे चाहते थे नि 'राज्य निदरूप ही धर्म निरलख हुवा चाहिए।'¹⁰ उन्होंने धार्मिक क्षेत्र मे यथ प्रयोग के सिद्धांत का स्पष्ट

रूप से स्वरूप दिया। यह विचार करने उचित है कि ये राज्य द्वारा स्थापित अपना महामुक्त प्राप्त शिक्षा संस्थाओं में सभी धर्मों में विद्यमान आधारभूत नैतिक उपदेशों की शिक्षा दिया जाना स्वीकार कर लेते।

गांधीजी का राष्ट्रवाद के आदर्श के राज्य महारा अनुसार था। किंतु ये अंतरराष्ट्रवादी भी थे। उनका कहना था कि अंतरराष्ट्रवाद के आदर्श को स्वीकार करने से पहले उन देशों को अपने अधिकार का निष्पक्ष करने के लिए राजनीतिक स्वाधीनता मिलनी चाहिए जो सामंती आधिपत्य और औपनिवेशिक पराधीनता के अंतर्गत बड़े राष्ट्र बोल रहे हैं। वे राष्ट्रवाद को अंतरराष्ट्रवाद की एक अवस्था मानते थे। उनका कहना था कि जो एक अंतरराष्ट्रीय संघ स्थापित करना चाहते हैं अपनी स्वतंत्र दृष्टि से ऐसा करें, और इसका अर्थ है कि पहले वह राष्ट्रीय प्रमुख उपलब्ध होना चाहिए। किंतु उनके अनुसार राष्ट्रवाद राजनीतिक विनाश की परम अवस्था नहीं हो सकती। यह साम्य नहीं है, एक बीच की अवस्था है। अतः गांधीजी तथा अरविंद जी प्रति गांधीजी ने स्वीकार किया कि राष्ट्रवाद अंतरराष्ट्रवाद के माग में एक आवश्यक कदम है। यद्यपि गांधीजी विश्व संघ के आदर्श पर मुग्ध नहीं थे, फिर भी वे इसे स्वीकार करने के लिए तैयार थे, यत यह भी कि उनका निर्माण तात्पर्य अहिंसा के आधार पर होना चाहिए। वे इस बात में सहमत थे कि जब तक अहिंसा में विश्वास राष्ट्रीय के पारस्परिक सम्बंधों में प्रतिस्पर्धी तत्व का काम नहीं करने लगता तब तक 'अवस्था का अर्थ रखने के लिए एक विश्व दुर्लभ वन की स्थापना की जा सकती है।'

7 स्वातंत्र्य संग्राम

गांधीजी नैतिक तथा आध्यात्मिक स्वातंत्र्य के आदर्शों के महरे मन्त्र थे ही, साथ ही साथ उनके हृदय में राजनीतिक स्वातंत्र्य की भी उत्कट भावना थी। उनके लिए स्वातंत्र्य सत्य का ही अर्थ है, और सत्य ईश्वर है। इसलिए स्वातंत्र्य एक पवित्र वस्तु बन जाती है। उनका विश्वास था कि राजनीतिक स्वातंत्र्य अर्थात् स्वराज तीव्र संघर्ष और कष्ट सहन के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। यह सोचना निराधार है कि वह एक मंत्र के रूप में मिल जायगा। गांधीजी ने 'राज-सत्ति में हस्तक्षेप' नामक एक लेख लिखा, उनके उन्होंने कहा कि ब्रिटिश सरकार के प्रति असंतोष महजाना भारतवासियों का धर्म है। उन्होंने महरी मनोवैज्ञानिक मूल के साथ साम्राज्यवादी देशों को चेतावनी दी कि दूसरों पर आधिपत्य अर्थात् रखने से बड़े राष्ट्र का नैतिक चरित्र जोखिम में पड़ जायगा। गांधीजी ने तिलक द्वारा दिये गये इस भाष को स्वीकार किया कि स्वातंत्र्य भारतवासियों का अविनाशिक अधिकार है। उन्होंने कहा, 'मेरी निगाह में लोकमत की अज्ञात करने वाला हर शासक विदेशी है।' उनका कहना था कि भारतवासियों स्वातंत्र्य के हृदय में इसलिए है कि उनके लिए उन्होंने अगणित कष्ट भोगे हैं। गांधीजी के स्वराज का अर्थ था करोड़ों दलित तथा धूम्र करने वाले लोगों के हितों का समर्थन करना। उनका कहना था कि यमिष को हर समयदायक धर्म के लिए समुचित पारिवारिक शिक्षा चाहिए। किंतु जब तक यह आदर्श पूरा न किया जा सके तब तक धर्मिक को इतना पारिवारिक अवश्य दिया जाय जिससे वह अपने तथा अपने परिवार के लिए भोजन और वस्त्र जुटा सके। सरकार का कर्तव्य है कि यह काम से बच इसका सबसे लिए सुनिश्चित करें। 'जो सरकार दलता भी नहीं कर सकती वह सरकार नहीं है। वह अराजकता है। ऐसे राज्य का शांतिपूर्ण प्रतिरोध किया जाना चाहिए।'³¹

गांधीजी ने राष्ट्रीय स्वाधीनता के अर्थ में भी स्वातंत्र्य का अनुसूचक समर्थन दिया। उन्होंने भारत को साम्राज्यवादी अर्थना के मुक्त करने के लिए अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया। उन्होंने कहा "मैं यह करना भी नहीं करता कि कोई राष्ट्र बाहर के किसी कभी सरकार के द्वारा अपने को उचित रूप में पालित कर सकता है, पुण्यी महान्नी का बीजा अपने सुन्दर सामो मार के पक्ष लगाकर भी मार की तरह चलने में असमर्थ रहा।' गांधीजी ने वैयक्तिक स्वातंत्र्य तथा नागरिक स्वातंत्र्य का भी समर्थन किया। उन्होंने घोषणा की 'अधिकांश के शरीर को पवित्र मानना चाहिए। उसे केवल गिरफ्तार करने अथवा शिक्षा को रोकने के लिए ही छुड़ा जा सकता है।'³² उन्होंने गांधी तथा लेखनी भी स्वातंत्र्य का भी समर्थन किया। इस स्वातंत्र्य को वे स्वराज की

31 *Margan*, जन 9 1946।

32 *Young India*, जन 24, 1930।

नीय मानते थे। 1940 में जब भारत की उसकी इच्छा के विरुद्ध यूरोपीय युद्ध में भाग दिया गया तो उन्होंने आपह्न किया कि युद्ध के दौरान की बाधों की स्वतन्त्रता होनी चाहिए।

गांधीजी ने यह सिद्धांत सभी स्वीकार नहीं किया कि अन्यायी करना अपना उद्देश्य नहीं स्वतन्त्रता है। उनका कहना था कि समाज के लिए अन्तर्मार्ग बनना ही स्वतन्त्रता का कर्म है। उच्चतम सत्य का अर्थ है अन्तर्मार्ग बनना या उपयोग करने की इच्छा, चाहे अपने लिए हिंसा का ही सहारा बना न लेता रहे। उनकी दृष्टि में नैतिक स्वतन्त्रता का अर्थ यह नहीं था कि मनुष्य अपने वैयक्तिक अर्थ के साथ ही अहंकारपूर्वक स्थापित करने का प्रयत्न करे, बल्कि आध्यात्मिक सत्य के साथ आत्मसत्य स्थापित करना ही नैतिक स्वतन्त्रता है। दूसरे शब्दों में, परस्पर आत्मा का साक्षात्कार करने के लिए इन्द्रियों और वात्सल्य की भौतिक भाँसा पर विजय प्राप्त करना ही स्वतन्त्रता है। इसलिए उन्होंने अपने आश्रम में महासत्य (एकसत्य सत्यी प्रतिष्ठा) का पड़ोसता से पालन करने पर बल दिया। प्रतिभाओं की निरुपस्थिति दुर्घटना नैतिक सत्य का हथकड़ी बनने का उपाय था। गांधीजी के लिए स्वतन्त्रता एक समझ बन गई थी। सामान्यता की दृष्टि से मुक्ति के रूप में नैतिक स्वतन्त्रता, विदेशी शासन तथा शासन के संपत्ति से मुक्ति के रूप में राष्ट्रीय स्वतन्त्रता और भौतिक सत्य सत्य के साक्षात्कार के रूप में आध्यात्मिक स्वतन्त्रता, यही स्वतन्त्रता के ही विभिन्न रूप थे। इन सत्य का जीवन इस विश्वास से ओतप्रोत था कि एक उच्च आध्यात्मिक सत्य सत्य विद्यमान है, उसने लिए मात्र, सोचनता और सत्यता के साथ सत्यता करना सत्य अनुचित था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गांधीजी का कहना सत्य यह था कि स्वतन्त्रता एक समझ बन गई है। आध्यात्मिक सत्यज्ञान और सत्य में स्वतन्त्रता के विभिन्न रूपों का पृथक् करने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। इसीलिए परिचय में हमें दृष्टान्तीय आध्यात्मिकता के विरुद्ध मानव आत्मा की आध्यात्मिक स्वतन्त्रता के सिद्धांत, इच्छा तथा काम की स्वतन्त्रता के समीक्षात्मक सिद्धांत और सत्य की राजनीतिक स्वतन्त्रता तथा सामाजिक सत्य के बीच समझ स्थापित करने के लिए प्रयत्न करना चाहते हैं। किन्तु गांधीजी का इन्द्रिकीय अविनयवादी था। उनके अनुसार स्वतन्त्रता विश्वास की एक प्रतिष्ठा है जिसका उद्देश्य यह होना है कि सामान्यतया नैतिक उद्देश्यों और कार्यों की समुचित व्यवस्था बना ही सकती है। जो व्यक्ति अपनी वात्सल्य से मुक्त हो जाता है वह वह बहुत बड़ी कर सकता कि उसके चरित्रिका का सामाजिक तथा आर्थिक जीवन का साथ, क्योंकि वह आत्मा है कि के उसी की आत्मा है। गांधीजी के अनुसार हर प्रकार का युद्ध असाध्य युद्ध है, फिर भी स्वतन्त्रता की आत्माशा रचने वाले को आवश्यककारी तथा अपना संचालन करने वाले के बीच भेद करना चाहिए और संचालन करने वाले की संपादनार्थ्य नैतिक सत्यता बननी चाहिए। वे किसी विशेष समाज अपना राष्ट्र के सामिक तथा और सत्य के सत्य की स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे, वे ही समुदाय मानव जाति का नैतिक सभी जीवन प्रतिष्ठों का भाई पार की सत्य मानव से आश्रयन करने के इच्छुक थे। गांधीजी ने अपने जीवन के सत्य के इस सत्य की समर्थित और साक्षात्कार किया कि नैतिक सत्य को परमसत्य की प्रयोजनार्थ्य ही जाती है वह सत्य और दुष्ट के ही ऊपर नहीं उठ जाता, बल्कि वह सत्य को परस्पर पृथक् करने वाले भेदभाव को धूल बना है, और नैतिक जीवन की साथ और सत्य के आध्यात्मिक निर्धारण की सत्य की ही बनता है। स्वतन्त्रता सत्यसत्य और आध्यात्मिक की मानव ने गांधीजी के राजनीतिक सत्य में ऐसा महान मानवीय पुट बना दिया है जिससे हमें सत्य तथा सत्य के प्रत्यक्षता में ही स्वतन्त्रता नहीं होता।

8 निष्कर्ष

गांधीजी सत्य तथा नैतिक सत्यकारी थे। उनका विश्वास था कि हिंसा सामाजिक सत्यता को बाधक नहीं मानते थे किन्तु अन्तर्गत है। अन्तर्गत सामाजिक सत्यता के सत्य में सत्य का सत्य है। उन्होंने आध्यात्मिक सत्यता के नैतिक सत्यताओं की उपायकर सत्य दिया और मानव जीवन के सत्य सत्य तथा नैतिक सत्यता की प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया। उनका सत्य विश्वास था कि हिंसा मानव जाति का सत्यता के लिए सत्य में सत्य देखी। उनका विश्वास था कि हमारी सत्यताओं का सत्यता सत्यता सत्य है, नहीं नहीं, बल्कि बाधक सत्यता का सत्य एकमात्र सत्य है। गांधीजी नैतिक सत्यकारी थे। और सत्यता उनके सत्य सत्यता का सत्यता सत्यता सत्यता

का बूट भी देखने को मिलता था। उनके जल हुए खद वसिष्ठान ने उपरांत जिसने सम्पूर्ण मानव जाति को भाषनाओं और नबेरा को सम्मीर आपात पहुँचाया था, आज सोन पुन उनके स्मृतिस्थ में विहित महत्वपूर्ण विचारों के विरल भी आशोक्षित करने वाले परिणामों तथा गुरुत्व में गये सिरे में विलम्बशी देखे लगे हैं।”

गांधीवाद पारंपार्य अथ में सुम्पवसिष्ठ और सुप्रतिपादित राजनीतिज्ञ दशन नहीं है। उसने गुरु तत्विक प्रजाती और वैज्ञानिक बदलि का अनुसरण नहीं किया गया है, जैसा कि प्रत्यक्षवादी किया करते हैं। राजनीतिक सिद्धांत और सामाजिक दशन का विचार्यी यह अनुभव विवे विना नहीं रह सकता कि गांधीजी की रचनाओं में विषय सामांयीतुत सिद्धांतों का अभाव है। गांधीजी ने कुछ अनुभवजनित सवेतजीर सुभाषण प्रस्तुत कर दिये हैं। उनके पास समाजशास्त्रीय, अर्थशास्त्रीय और राजनीतिक विचारों तथा सिद्धांतों की धारणीय रूप से व्याख्या करने के लिए समय नहीं था, न उनमें ऐसा करने की दायनिक योग्यता ही थी। फिर भी गांधीवाद का महत्व है, क्योंकि उसमें हमें नैतिक, सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं के सम्बंध में पहली सुभसुम देखने को मिलती है। गांधीजी की रचनाओं में जो सुभाव और योगनार्थ निहित हैं उन्हें लेकर गांधीवादी राजनीति दशन की पुन रचना भी जा सकती है। हमें ऐसे राजनीति दशन का मूल सधन में आ आयागा, यदि हम गांधीजी की सिद्धांतों की तुलना प्लेटो के विचारों के करें। दोनों का ही इतिहास विषमव हृष्टिकोण आम्हारमवादी है। दोनों यह मानकर चलते हैं कि स्वतंत्रता आंतरिक मुक्तिकरण के द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है। नतिवता का सम्बंध बाह्य विषयों के परिवर्तन से नहीं है, उसका आधार मान होना चाहिए। दोनों ने ही कति-राजनीति की जातगा की है, और दोनों ही लोक-साधिक बहुसंख्यावाद से समर्पित हैं। यह सत्य है कि अधिजाततावादी प्लेटो के मुकाबले में गांधीजी अधिक मानकतावादी हैं। प्लेटो में प्रतिप्रशासक मुक्तों का अनुसमभन किया था, किन्तु गांधीजी निरपेक्षत जातिवादी थे। दोनों ही इस बात से सहमत हैं कि मानव जाति की समस्याओं के दूष-भूत समाधान के लिए मनुष्य की कलनाम चेतना में आतुर परिवर्तन करना होता। गांधीवाद में एक अभाव यह है कि उसके प्रवर्तन में राजनीतिक सिद्धांत पर कोई महान व्यवस्थित दृष नहीं दिया, किन्तु उसने शास्दार जीवन में इस अभाव की कही अधिक पुति कर दी है।

महत्मा गांधी ने पुन की कलता न अपनी आभसुधि के प्रति जातुति उत्पन्न करने के लिए जो काम किया उसका सुत्यानन माधी इतिहासकार करेंगे। यह कहा जा सकता है कि गांधीजी ने गीता तथा बौद्ध धर्म की सिद्धांतों और धुरी, रसिकन और लललतले के विचारों का जो सम्मिधन किया है उसमें हमें पुन तथा परिवर्तन का सामूहिक समभव देखने को मिलता है। अथ एक इतिहासकार विरल भी प्रपति के सम्बंध में टीलसी³³ सिद्धांत को मानते आया है, क्योंकि वे परिवर्तनी अलत को ही सम्मता का नेत्र चालते हैं। विरल-सम्मता की धारणा में ‘गोपनिनी’³⁴ जाति सभी हो सकती है जब मनुष्य गांधीजी की सिद्धांतों का अधिकारिक अनुसरण करने लगे और सम्म मानवता के लिए आया की यही दृष्टमात्र करण है। नैतिक सामाजिकवाद के आदर्श को साक्षात्कृत करने का प्रयत्न करने गांधीजी ने एक नव पुन के आगमन का सदेश दिया। मनीषिया ने ‘जागिक राज्य’, ‘अधिक राज्य और ‘सांस्कृतिक राज्य’ को बतसा की है। गांधीजी ने राजनीति न नतिन’ सुत्या को सम्मिधित करने पर मल देकर इस परम्परा को विस्तृत किया है, और राजनीतिक चिन्तन को उनकी यह महत्वपूर्ण देन है। उन्होंने अपने जीवन की परिवीहीत करने अपनी सिद्धांतों की सम्मीरणा को प्रदक्षित किया, ऐसा काम सभी दश विपरी चिन्तनगत विचारन न नहीं किया है।

गांधीजी ने आधिक समस्याओं की मानव कामनगतन का दूपन विभाष नहीं माना। वे नैतिक, सत्य तथा धर्मप्रसमन जीवन की ही मुख्य मानति में इसलिए उन्होंने रसिकन और लललतले की जाति आधिक समस्याओं के विषय में मनीषयाधिक हृष्टिकोण अपनाया। न सत्य अहिंसा तथा अवरिषह के आधारभूत सिद्धांतों पर निरपेक्षत दृष्ट यह और उर्ही का अथागमनीय विचार की

33 टीलसी पुन्नी की विरल का नेत्र मानव था। (अनु.)

34 गोपनिनय में दूध की विरल का नेत्र मानव। (अनु.)

बसोटी बनाया। फिर भी गांधीजी के विचारों में हम स्पष्ट कृपावाद के दायन होत हैं। वे नीति को भारतीय आर्थिक संरक्षण का केन्द्र मानते थे। उन्होंने बड़े पैमाने पर राष्ट्रीयकरण, पुनर्जागरण, गरीबों की वृद्धि तथा धर्म बचाने वाले बापू का जो विचार किया उसमें मूल में नीतिपरक मान्यता की प्रतिबिम्बिता नहीं थी। उन्होंने मुद्दम दृष्टि से यह देखा कि भारत की जनसंख्या लोकतांत्रिक बन रही है और देश के साधन सीमित हैं, ऐसी स्थिति में देश की मनुष्य मानव शक्ति को काम में लाने का एकमात्र उपाय बापू उसीका उपाय पायी जो बल देता है। गांधीजी के आर्थिक सिद्धांत का वह रूप हमारी नीति स्पष्ट करता है कि उन्होंने बसोटी, आंतरिक तथा बाहरी सख्त आदि सभी को समान महत्त्व देने में आस्था का प्रदर्शन किया। उन्होंने बसोटी हुई बसोटी का बहुत विचार किया। वे इस बात के बड़े दृष्टिकोण थे कि बसोटी हुई विपणन तथा सेवा विभाजन पर आधारित जप-व्यवस्था में सेवा को दूर किया जाए, इसीलिए सरकारी के पुनर्जागरण सिद्धांत को उन्होंने अधिक व्यापक रूप में प्रयोग करने पर बल दिया। गांधीजी ने इस विचार का जो प्रकटन किया कि यदि लाभ सरकारी (इंस्टीट्यूट) के सिद्धांत को दृष्टि से स्वीकार न करें तो राज्य का हस्तक्षेप करना चाहिए।

बापू ने जिन दृष्टिकोणों को विचारवादी दायन का निर्माण करने के दृष्टिकोण तथा पुनर्जागरण और लोकतांत्रिक नीतिवाद के आधार पर किया था। आधुनिक विचार तथा दायन दृष्टिकोण की स्वीकार नहीं करते। लोकतांत्रिक तथा जनतांत्रिक मान्यता के सिद्धांत में दृष्टिकोणों का ही बलवान पुनर्जागरण नीति की नीति का भाग है। बापू ने शास्त्रवाद, एलिजबेथ के निरंतर विचार के सिद्धांत और दृष्टिकोण के अवधारणा दर्शन में लोकतांत्रिक दायन के इस नीतिवाद का संचयन कर दिया है जिस पर दृष्टिकोण नीतिवाद आधारित था। इनके विचारों में गांधीजी का दायन तथा नीति के सिद्धांत पर आधारित है। इसका बीच हम मनुष्य के मिलता है। बसोटी दायन का कि गांधीवाद का आधार है, हमें मिलता है कि जनता का ही दायन और जनता का ही आधारित मुख्य संचयन है। शास्त्र तथा गांधी दोनों ही आधुनिक इतिहास तथा विचार के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण हैं। गांधीजी सामाजिक प्रत्यक्षवादी हैं और शास्त्र वैज्ञानिक नीतिवादी। गांधी की आस्था तथा आधुनिकता का मूल्य में विश्वास है, शास्त्र दृष्टिकोण बुद्धिवादी है। गांधीजी का मान्यतावाद है, और शास्त्र नीति, बसोटी दायन नीति में विश्वास करता है। गांधीजी नैतिक निरर्थकतावादी हैं। किन्तु इन आधारभूत विचारों के बावजूद दोनों में आधुनिकता का सम्बन्ध है। गांधी तथा शास्त्र दोनों ही शास्त्रवाद सम्बन्ध के विरोधी हैं। गांधीजी की दृष्टि में पश्चिम शास्त्रवाद का प्रतीक था, और शास्त्र उसे पूर्यवाद के समस्त मान्यता था। शास्त्र तथा गांधी दोनों का ही मुख्य संचयन से उत्तर देने तथा नीति मान्यता नीति के लिए स्वतंत्रता और 'नाम की स्वीकार्यता करने के महान् जागृकों का संचयन संचयन किया।

गांधीवाद और राजनीतिक सिद्धांत नहीं है, यह एक सचेतनी है। यह एक जीवन दायन है। मानव जीवन में शक्ति ही मूलमान्यता की प्रधान बसोटी है, किन्तु गांधीजी कष्ट-महान् के सिद्धांत पर आधारित जीवन को सर्वोपरि मानते हैं। गांधीजी का स्वयं अधिस्तानक मान्य है। ऐसा मान्य हमें स्थापित हो सकता है जब हम पहले नैतिक और आधुनिकता दृष्टिकोण अंगीकार करें। गांधीजी का दृष्टिकोण उन अवधारणाओं के मुताबिक है जो अधिक व्यापक है जो अपने-अपने सीमित बसोटी की सर्वोपरिता सिद्ध करने में सक्षम रहते हैं। उन्होंने शक्ति, नैतिकता, सत्यता, जन शक्ति तथा सब धर्मों के प्रति सदा पर अधिक बल दिया। उनकी शिक्षाओं की इस व्यापकता के कारण ही गांधीवाद समाजवाद और लोकतांत्रिक नीति का आधार बन जाता है। गांधीजी ने सर्व, अधिस्तान, कष्टवाद और सामाजिक 'नाम का शक्ति बलवान नीति की पुनर्जागरण बुद्धिमान की मान्यता सिद्ध कर दी है। यदि सम्बन्ध के सम्बन्ध की योजना है तो हमें उनकी शिक्षाओं की ओर ध्यान देना होगा। यह सत्य है कि 1946-47 में बंगाल विद्रोह और पश्चिम में बंगाल के शास्त्रवाद के विचारों के महान् संचयन के लिए हमें गांधीजी की शिक्षाओं को हमें सच अंगीकार नहीं किया था। भारतीयता का नीति के सम्बन्ध में विचार है। किन्तु उन्होंने और की अधिस्तान को नहीं अपनाया था। शास्त्रवाद हमें कि शास्त्रवादी गांधीजी की शिक्षाओं का अनुकरण करने में असमर्थ रहे, निराशा का कोई कारण नहीं है। गांधीजी की मनुष्य की व्यापकता में अनेक विचार था। शास्त्रवाद अवधारणा के बसोटी होने पर मनुष्य संचयन करने का प्रयत्न करना, बसोटी सम्बन्धों का विशाल सामाजिक उत्तर और सम्बन्ध विचार है।

ADVANCE COPY
 Meant for Consideration
 NOT FOR SALE

15

हिन्दू पुनरुत्थानवाद तथा दार्शनिक आदर्शवाद

प्रकरण ।

हिन्दू पुनरुत्थानवाद का राजनीतिक चिन्तन

भारत में उनीसवीं तथा बीसवीं शताब्दियों में गुजरात, देशज, धार्मिक संस्कृति तथा पश्चिम की नयी आशाओं, वैज्ञानिक तथा धार्मिकवादी सम्प्रदायों की बीच की संघर्ष हुआ इसने पुनरुत्थानवाद की नींव पाने का काम किया।¹ वेद, उपनिषद्, मध्वसूक्त आदि प्राचीन ग्रन्थों के अध्ययन पर बल दिया गया, और नयी नयी यह भी विख्यात प्रवृत्ति बनी कि प्राचीन भारत की आध्यात्मिक शिक्षाओं की विवेक की मीतिज्ञान, दृष्टिकोण, विचारों तथा व्यवहारों के दलदल से बाहर निकाली जा सकती हैं।

हिन्दू पुनरुत्थानवाद तथा दार्शनिक आदर्शवाद मुख्यतः दो रूपों में व्यक्त हुआ है। इसकी पहली अभिव्यक्ति यह थी कि देश के अनेक पहलु हैं—सांस्कृतिक, सामाजिक, लैंगिक और धर्मों का प्रादुर्भाव हुआ। इसी भ्रष्टाचार, मन्दमोहन मानवीय, परमात्म, साधक, मुक्ति, ईश्वर और तथा समाज-प्रभाव धर्मों ने हिन्दू समाज के राजनीतिक तथा सामाजिक हिंसा का सुलभ ममथन किया है। साथ समाज, सामाजिक विचार, भारत पर महाभारत, हिन्दू समाज, अखिल भारतीय बुद्धि समाज तथा राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने हिन्दू के अर्थों तथा भाषाओं की सुदृढ़ करने का प्रयत्न किया है। हिन्दुओं की धार्मिक दृष्टि से सबल बनाने के लिए अनेक अखाद्य दल बोलें बने। आधुनिक का साथ और दल है। इसी प्रकार अनेक वैयक्तिक संगठन तथा वैयक्तिक प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित किये गये जिनमें हिन्दुत्वान् राष्ट्रीय दल, नाटिक व मन्त्रालय वैयक्तिक विद्यालय, हिन्दू राष्ट्र दल, नाट्य राष्ट्रीय राष्ट्रिय संघ, बंगाल का हिन्दू धर्मिक संघ तथा महाभारतीय वैयक्तिकीय संघ विलेज विलेज संस्कारनीय हैं। इन नेताओं तथा संगठनों के वाक्यत्व में मुक्त तत्व यह रहा है कि हिन्दुओं में धार्मिक परिवर्तनता सामाजिक एकता तथा राष्ट्रीय एकता की भावना धारण करने का प्रयत्न किया है।

हिन्दू पुनरुत्थानवाद और दार्शनिक आदर्शवाद की अभिव्यक्ति का दूसरा रूप यह है कि देश में अनेक शक्तिशाली विद्वानों और आचार्यों का प्रादुर्भाव हुआ जिन्होंने बहुत से योग्य-धर्मों के द्वारा प्राचीन हिन्दुओं की उपलब्धियों में विश्वास हटा दिया है, और इस प्रकार उन धर्मों को बहुत कुछ लालच और आधुनिकीय प्रभाव दिया है जो कुछ शक्तिशाली के राजनीतिक दल का सकारण रहे हैं। इस प्रयोग में भारत की साधक, इन्द्रावत आर्य पण्डित मुख्यतः अनेकनाम धर्म, वैयक्तिक, सुरक्षा-साधक दल मुन्ना बिन्दुमोहरी सरदार ने ही महाभारत समाज विद्युत्तानन्द, प्रयत्ननाम लक्ष्मण, 1

- 1 हिन्दू पुनरुत्थानवाद की प्रथम सबसे अधिक बलावस्था पर उपलब्ध व दल की शक्ति की। 1886 में दीन दयालु सार्व ने भारत का आधुनिकता की शक्ति का दल की उपलब्धी प्रचार काय किया। उन्होंने प्रचार बलावस्था में प्रतिनिधि बनाया की उपलब्धि किया। उनका कुछ बहुत साथ समाज का विरोध करना था।
- 2 भारत पर महाभारत की शक्ति 1902 में प्रचुर में हुई थी। इसी शक्ति व दल संगठन में प्रचुर मिला है। (वे दल व शक्ति शक्ति के लिए शक्ति व 1)
- 3 हिन्दू पुनरुत्थानवाद की शक्ति प्रभाव में 1907 में की गयी थी। इसका व शक्ति दल के यह शक्तिशाली बन गयी।
- 4 बुद्धि सामाजिक शक्तिशाली शक्ति व शक्ति दल व प्रभाव में प्रचुर किया गया।

विद्युशेखर महापात्र, रमन महर्षि, नारायण स्वामी⁵ और स्वपत्नी राधाकृष्णन के नाम अधिक उल्लेखनीय हैं। अनेक लेखकों ने हिन्दुओं के धार्मिक तथा राजनीतिक चिन्तन तथा वास्तव्य राजनीतिक और तत्त्वशास्त्रीय सम्प्रदायों का तुलनात्मक अध्ययन किया है, और इस प्रकार प्राचीन हिन्दु चिन्तन की अद्भुत उपलब्धियों का महत्व सिद्ध करते हैं हिन्दु जनता के बौद्धिक वास्तविकताओं को बत दिया है। हिन्दी, बंगाली, मराठी तथा तमिल के कुछ लेखकों ने खुलकर हिन्दुओं की खोजता का समर्थन किया है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी (1864-1938), ज्योत्स्नाकि ह्याप्पाय, स्वीट नाम डैमोर, राधाकृष्णन चटर्जी, सुप्रसन्न भारती तथा अन्य लेखकों ने अपनी रचनाओं के द्वारा अतीत की विरासत की स्थितियों की पुनर्जीवित करने का प्रयत्न किया है। रमन स्वामी, मात्सरानन्द, विद्युद्धानन्द परमहंस, स्वाध्यायनरय महाश्वी और समर्थन प्रसाद 'स्वपत्नी' आदि अनेक महान् सामाजिक, धार्मिक और सत्ता की न हिन्दु जीवन की परिवर्तन पर बल दिया है। मात्सरानन्द, विद्युद्धानन्द, रमन स्वामी, रमन स्वामी आदि संस्कृत के अनेक आचार्यों ने संस्कृत साहित्य की परम्पराओं को अत्यन्त रचने का प्रयत्न किया है।

हिन्दु पुनरुत्थानवाद तथा धार्मिक आदर्शवाद ने सब व्याख्याताओं के विचार तथा सिद्धांत प्रभावित नहीं हैं। उदाहरण के लिए, हैन्देवार तथा के सी महापात्र और हैन्देवार तथा एम. एन. दास गुप्ता के विचारों में भारी अन्तर देखने की विलम्बता है। किन्तु मैंने उन सबका एक साथ उल्लेख इसलिए किया है कि उनके सामाजिक-राजनीतिक सिद्धांतों तथा संकटन सम्बंधी विचारों के अन्तर होने के बावजूद वे सब हिन्दु आध्यात्मवाद तथा नीतिशास्त्र के आधारभूत सिद्धांतों के व्याख्याता हैं। उदाहरण के लिए, उन सबकी नीति के प्रतिपादित कथनों के सिद्धांत के विरुद्ध है। वे सब हिन्दुओं के आध्यात्मिक विरुद्धवाद के परम रूप की स्वीकार करते हैं। उनमें से कोई भी आधुनिक सामाजिक सिद्धांतों के आधार पर हिन्दु समाज व्यवस्था में उन्नति करने के सुझाव नहीं देता। प्राचीन हिन्दुओं के आधारभूत आध्यात्मिक दर्शन के प्रति यह अनुरक्ति ही वास्तव में हिन्दु राष्ट्र के व्याख्याताओं तथा देशालेखन के आधुनिक विचारकर्त्ताओं के विचारों की समानता तथा एकरा के साथ की और सम्बन्धित है। मुझे यह दुःखाने की आवश्यकता नहीं है कि मैंने अज्ञानन्द, मात्सरानन्द, परमहंस, दासगुरु, हरिश्चन्द्र, के सी महापात्र, राधाकृष्णन, हैन्देवार और स्वाध्यायनरय मुक्तियों के राजनीतिक आदर्शों का एक साथ विवेचन इसलिए किया है कि वे हिन्दुओं के आध्यात्मिक तथा नीतिगत सूत्रों की उपदेष्टा का समर्थन करने में एकमत हैं। मात्सरानन्द आदि कुछ ही हमारे सम्पादक हैं। हम वाद, विरोध, धीमेता एवं हेलन के विचारों की समीक्षा अथवा प्रत्यक्षवाद के प्रकरण के अन्तर्गत समर्थन करते हैं, क्योंकि वे सभी आदर्शों की समीक्षा स्वीकार करते हैं, किन्तु हमका अब यह नहीं है कि वे सब समान समाज में गढ़िया की स्थिति के सम्बन्ध में एकमत हैं। इसलिए किसी आलोचना की यह देखकर क्षुब्ध नहीं हूँ कि मात्सरानन्द, राधाकृष्णन और हैन्देवार के विचारों की समीक्षा 'हिन्दु पुनरुत्थानवाद तथा धार्मिक आदर्शवाद' की एक एका व्याख्या के अन्तर्गत की गयी है।

हिन्दु पुनरुत्थानवाद के चार आधारभूत राजनीतिक विचार हैं

(1) अतीत की मान्यता के लिए आधुनिकतापूर्ण उत्तरदायित्व हिन्दु विचारधारा के व्याख्याताओं का प्रमुख सिद्धांत है। आधुनिक वास्तव्य सम्बन्धों की व्यक्तित्वों आलोचनात्मक, सुदृष्टिवादी तथा नीतिवादी प्रवृत्तियों के विपरीत हिन्दु पुनरुत्थानवादी परम्परागत, समर्थनवादी तथा साहसिक गुणवत्ता इतिहास के विरुद्ध बल है।⁶ वे प्राचीन मान्यताओं का पुनर्जीवित करना चाहते हैं और कभी-कभी उनकी विचारों की वैज्ञानिक व्याख्या की प्रयत्न करते हैं। वे विचारों के विरुद्ध नहीं हैं।

5 नारायण स्वामी (1865-1948) नाम संसार का एक महान् नेता तथा बड़े विचार के।

6 नाम 'राज्य नीति', जिसकी रचना 1948 में हुई थी, सबसे अधिक परम्परावादी ग्रन्थ है। किन्तु हमारा संशोधन ग्रन्थ यह है कि 1957 के चुनाव में उसे भीतरतः के एक ही रचना प्राप्त न हो सका। राज्य की विचार धारणा में उसे कोई रचना मिल गई न।

वे प्राकृतिक विज्ञानों का बीच पुराने पथशास्त्रों से दूर निकालने या प्रयत्न करते हैं। वे प्रगति के विरोध नहीं हैं, किंतु उनका विचार है कि वास्तविक राष्ट्रीय प्रगति धार्मिक शिक्षाओं का विरोध करके नहीं। अतः उन शिक्षाओं का अधिक हलका से ध्यान देने की आवश्यकता है। हिंदू पुनरुत्थानवाद ने कुछ राष्ट्रीय आलोचनाओं में अपने व्यापारिकों पर प्रतिक्रियावादी, पुरातनवादी, प्रगतिविरोधी, और परम्परावादी तथा सुधारविरोधी होने का आरोप लगाया है।

(2) हिंदू पुनरुत्थानवादियों के राष्ट्रवाद के सिद्धांत की विशेषता उनका यह विश्वास है कि देश की राजनीतिक तथा आर्थिक नीति हिंदू धर्म के अनुकूल होनी चाहिए। जो अन्य सम्प्रदाय बहुसंख्यक समाज की विचारधारा को स्वीकार नहीं करते उन्हें अल्पसंख्यकों की प्रातिनिधित्व (हेमिनिटी) प्रदान की जाती चाहिए। किंतु किसी वय को अधिमायता अथवा अधिप्रतिनिधित्व न दिया जाय। इस प्रकार हिंदू पुनरुत्थानवादियों की दृष्टि में राष्ट्रवाद हिंदुत्व की सांस्कृतिक प्रमुखता को स्थापित करने का एक साधन है, इसलिए सभी-वर्गों के अपनी राजनीति तथा सामंजस्य और धर्मराज्य की स्थापना में व्यस्त करते हैं।

(3) पुनरुत्थानवादी राष्ट्रवाद का आर्थिक निहितार्थ बहुसंख्यक का सिद्धांत है। हिंदू पुनरुत्थानवादी समाजवाद तथा साम्यवाद के सिद्धांतों के विरोधी हैं। वे आर्थिक क्षेत्र में राज्य के हस्तक्षेप की धारणा का समर्थन नहीं करते। किंतु वे स्वयं मुक्त की भाँति इसमें पूर्ण विश्वास करते हैं कि राज्य की आर्थिक दृष्टि से सहाय्य होना चाहिए। चूंकि हिंदू पुनरुत्थानवादियों में सम्पत्ति के प्रभु पर आलोचनात्मक तथा नास्तिकारी दृष्टिकोण अपनाए की अनिवार्य चीज पड़ती है इसलिए कुछ राष्ट्रवादियों को उनकी यह भ्रष्टता करने का अवसर मिल जाता है कि वे निहित आर्थिक स्वार्थों के समर्थक तथा प्रतिस्पर्धावादी हैं।⁷ हिंदू समाज विज्ञान तथा मनोविज्ञान है, उसके सदस्यों के आर्थिक स्तर परस्पर बहुत भिन्न हैं, इसलिए जो सम्पुल हिंदू समाज के हितों का समर्थन करता है वह सम्पत्ति के सम्बंध में उस दृष्टिकोण नहीं अपना सकता।

(4) समाजशास्त्र के क्षेत्र में हिंदू पुनरुत्थानवादी हिंदू धर्मशास्त्रों पर आधारित दृष्टिकोण जीवन-मूल्यों का समर्थन करते हैं। कुछ विचारकों ने स्वीकार किया है कि जाति प्रथा के विनाशकारी परिणाम हुए हैं। किंतु हिंदू पुनरुत्थानवाद के व्याख्याताओं में ऐसा कोई नहीं है जो उस समाजशास्त्रीय आलोचनात्मक समाज का समर्थन करे। आधुनिक भारत के राजनीतिक विज्ञान में औद्योगिक प्रवृत्तिका निरंतर बढ़ रही है। इस प्रश्न के क्षेत्रीयगत अन्वयानवादी जाति व्यवस्था तथा जीवन-सांख्यिक समाजवादी विचारधारा की मान्यतावादी वैधिका के बीच जो उस तथा आधारभूत विरोध है, वह स्पष्ट हो जाता है।

प्रकरण 2

स्वामी अज्ञानन्द

1 प्रस्तावना

स्वामी अज्ञानन्द ने एक आत्मकथाओं के रूप में अपना सार्वजनिक जीवन आरम्भ किया था।⁸ उनका जन्म वर्ष 1913 (1856 ई.) में कालगुन कृष्ण मधीराजी के दिन पल्लवर जिले में हुआ था और 23 दिसम्बर, 1926 को उनकी मौत मारकर हुआ करती थी। वे अल्पविन निष्ठा-ज्ञान, ईशानन्द तथा सतिप्रदान स्वयं से, वे आत्मज्ञान में एक ऐसा व्यक्ति के रूप में आने सिलेगी विशेषता की निर्भीकता तथा सति का दृष्टिकोण के द्वारा। वे स्वयंवादी, उदार तथा सत्यवादी थे। वे सत्य सत्य तथा आत्मज्ञान की मान्यता के मूलभूत थे। आत्मज्ञान में वे समाहित महाराम

7 किंतु 1952 का आम चुनावों के अवसर पर अपनी चुनाव घोषणा में भारतीय जनता के भूमि की शिक्षाओं के जीवन तथा विना सुधारों के अर्थशास्त्रों का अनुभव करने का समर्थन किया।

8 स्वामी अज्ञानन्द 'जगतेश्वर माता का दृष्टिकोण' (स्वामीजी की हिन्दी में अर्थशास्त्र आध्यात्म) आध्यात्मिक जीवनमूल्यों के 1924 आत्मज्ञानशास्त्र 'स्वामी अज्ञानन्द' (विजयपुरम कलकत्ता, 1933) स्वामी अज्ञानन्द 'Jande Congress' (स्वामीजी के अर्थशास्त्र The Liberator में अर्थ 1926 में 28 अक्टूबर, 1926) एक प्रकाशित लघु का उपर, कर्क, नीतिशास्त्र नीतिशास्त्र, 1946।

गुट के साथ थे, इस गुट का दृष्टिकोण अधिक पुरातनवादी था और वह सुधारवादी 'गुलमस्त' मण्डली के विरुद्ध था। 1892 में बंगाल के आत्मसमाज ने गुट पट गयी। 'गुलमस्त' दल भारतीय शिक्षा का समर्थक था और जीवन के मामलों में अधिक स्वतन्त्रता का पक्षपाती था। इस दल के प्रमुख नेता हजराज तथा ताला सैयदस थे। 'महात्मा' मण्डली मुसलमान शिक्षा की वैदिक व्यवस्था के पक्ष में थी, और बहुत निराश्रितवादी थी। इसने नेता मुसीराम के जो शब्द में अज्ञान-द के नाम से विख्यात हुए।

1902 में समाज चलाने वाले थे पहले मुसीराम ने हरद्वार के मिश्र बागरी में मुसलमानों एक शिक्षा-संस्था की स्थापना की जिसका उद्देश्य वैदिक ज्ञानप्रसारण की शिक्षा देना था। उन्होंने सोचा कि तब तक मुसलमानों के धर्म-विश्वास तथा प्रथा-व्यवस्था के रूप में क्या किया। 13 अक्टूबर, 1917 को महात्मा मुसीराम ने स. रास बारणसी में समाज और अपना नाम अज्ञान-द रख दिया। तबप्रायः उन्होंने समाज-सेवा का तथा आत्मसमाज की ओर से धार्मिक प्रचार का काम आरम्भ कर दिया। आज चलकर उन्होंने विद्यालय बनाने पर हिन्दू समाज का भी काम किया।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक दशक में उन्हें विविध शासनों के सदस्यों में विख्यात था। 1912 में जब लॉर्ड हार्डिंग ने दिल्ली में प्रवेश किया तो उस समय उनके कहने पर आम सार्वजनिक सभा में उनके स्वागत की व्यवस्था की। अज्ञान-द की कांग्रेस के अधिवेशन में भी सम्मिलित हुआ करते थे। 1907 की सूरज की पूट से उनकी गहरा दुःख हुआ। जब महात्मा गांधी ने रौलट विधेयक के विरुद्ध सत्याग्रह आरम्भ किया तो वे उसमें सम्मिलित हो गये। 30 मार्च, 1919 को उन्होंने एक ऐसा बीरता का वाच किया जिससे देश आनन्दमग्नित रह गया। रौलट विधेयक के विरुद्ध प्रदर्शन करने वाले निरक्षर लोगों पर गुराखा वैदिक नीतियों की ओर ध्यान देने के लिए उद्यत थे, उस समय अज्ञान-द ने उनके सामने अपना योग्य योग्य दिया। 4 अक्टूबर, 1919 को उन्होंने दिल्ली की आमा मस्जिद में हिन्दू-मुसलमान एकता पर भाषण दिया और उस अवसर पर वैदिक नवी के उद्घरण किये।

1919 में अज्ञान-द ने असहकर वादों की स्वायत्त समिति के स्थापना के रूप में हिन्दी में एक उत्प्रेरित वाचन दिया और इस बात पर आग्रह किया कि राजनीतिक कामवादी का आधार नैतिक होना चाहिए। उन्होंने देश की मुक्ति के लिए पारिवारिक परिवर्तन को आवश्यक बताया। उन्होंने हिन्दू समाज के दलित वर्गों के उद्धार का भी ध्यानही समर्थन किया।

अज्ञान-द ने महात्मा गांधी द्वारा प्रारम्भ किये गये असहयोग आन्दोलन का भी समर्थन किया। 25 सितम्बर, 1920 को उन्होंने बंगाल आम प्रतिनिधि सभा के अध्यक्ष को एक पत्र लिखा और उसमें असहयोग की आवश्यकता पर बत दिया। उन्होंने कहा कि असहयोग देश के जीवन और गरम का प्रश्न है। सितम्बर 1920 में उन्होंने दिल्ली में दलितोंद्वारा सभा की स्थापना की। 1922 में वे कांग्रेस से वृत्त हो गये। उन्होंने लिखा था "मेरा मत है कि व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा की पुनर्स्थापना दिया जाय, और यदि हम सामूहिक सविनय अवज्ञा आन्दोलन को सुरक्षित तथा इस तरह पर आरम्भ नहीं कर सकते कि एवं बार आरम्भ कर देंगे तब उसे कांग्रेस समर्थन के बाहर होने वाली शिक्षा से बढ़ते किसी भी स्मिति में बाध नहीं किया जायगा तो हम सामूहिक सविनय अवज्ञा का विचार ही छोड़ देना चाहिए। इसके अतिरिक्त मेरी धारणा है कि अपने रचनात्मक कार्य करने की शक्ति बनाने के लिए कांग्रेसियों की भीतर सत्यता का जीवन से अत्यन्त जुनून परिलक्षित हो प्रवेश करना चाहिए, और मेरी राय में कांग्रेस के कार्यकर्ताओं के लिए परिलक्षित हो प्रवेश करने का एक अतिरिक्त कारण यह भी है कि इन्हींमें से अज्ञान-द ने हमें जो चुनौती दी है हम उसका उत्तर भी देना है—अज्ञान-द ने कहा है कि 'बहुत कुछ इस बात पर निर्भर होगा कि आत्मा की शुद्धता के किस प्रकार के प्रतिनिधि चुने जायें हैं।' इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए मेरे लिए कांग्रेस की कार्यकारिणी में बना रहना वैदिक दृष्टि से उचित नहीं है। अतः मैं अपने 12 मार्च के त्यागपत्र को पुनरावृत्ति है और कांग्रेस के सभी पक्ष से वृत्त होता हूँ।"

9 अज्ञान-द का *The Liberator* में प्रकाशित Congress Enquiry Committee' नामक पत्र, *Inside Congress*, पृष्ठ 193।

सितम्बर 1922 में अखिल-दली को उनके इस माध्यम के कारण कारागार में डाल दिया गया जो उन्होंने गुप्त का नाम सत्याग्रह के अन्तर्गत पर अमृतसर में दिया था। चार महीने कारागार से छूट कर दिया गया।

उन्होंने बुद्धि तथा हिंदू सभ्यता के लिए दार्शनिकी या आंदोलन आरम्भ कर दिया। बुद्धि आंदोलन जरीसमी घलासमी के अखिल दलन म पञ्चम के आरम्भ किया गया था। लेखराम तथा अखिल-द 1896 से ही बुद्धि आंदोलन में काम करते आये थे। 1913 में अखिल भारतीय बुद्धि सभा का संविधान सम्मेलन कराची में हुआ। महात्मा म मोक्षमाता द्वारा बिदे गये अत्याचार के कारण हिंदुओं में भारी घबराहट थी। 13 फरवरी, 1923 का आचार्य म हिंदू बुद्धि सभा की स्थापना की गयी। दिल्ली के अखिल भारतीय हिंदू बुद्धि सभा का वैदिक वापसीय संस्थापित किया गया। 'बुद्धि समाचार' नामक एक मासिक पत्रिका भी प्रकाशित की गयी। अखिल-द बुद्धि आंदोलन के प्रमुख साधक हैं। वे सभ्यता के द्वारा निर्जीव हिंदू समाज में नैतिक तथा साम्प्रदायिक उन्नति पुरु देना चाहते थे। वे बहुत करते थे कि दलितोद्धार ईश्वर की सत्ता के प्रति 'घाम करने का नैतिक माग है। इसलिए उनकी हिंदू सभ्यता की योजना में दलितोद्धार के काम का प्रमुख स्थान था। स्वामीजी लगभग तीन वर्ष तक हिंदू महासभा में उपस्थित रहे। 1923 में पारासमी में हिंदू महासभा का सम्मेलन उनके प्रयत्नों के कारण बहुत सफल रहा। 1926 में जब महात्मा के पुनराग के लिए अपने सम्मेलनकारों को अलग करने का निश्चय किया तो स्वामीजी ने उसकी सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया। वे इस पक्ष में नहीं थे कि मुसलमानों की साम्प्रदायिक राज्यनीति का मुकाबला करने के लिए हिंदुओं को भी साम्प्रदायिक नीति का सहारा लेना चाहिए। अपने अतिरिक्त महात्मा के सहायकी नेता समाज सुधार के नाम में स्वामीजी का साथ देने के लिए तैयार नहीं थे। हिंदू बुद्धि आंदोलन के कारण मुसलमानों का पक्षीय बन अखिल-द का पक्षी हो गया। परिणामस्वरूप रसीद नामक एक मुसलमान ने पिछली में स्वामीजी के बीन म गोली मार दी, और बुद्ध अखिल-दली का लक्ष्य प्रभावित हो गया।

महात्मा गांधी के चरित्र में अखिल-दली बीन के बीन के 1²² के निर्माण के मूलक और सत्य तथा 'घाम के दुर्दलीय सनारी थे। वे शूरवीर का साहाय्य भवता थे। उनमें पसमाडा जसा उन्नति तथा सदेवकाहक जसा भाविक देखने की मिलता था, उनका धारीय आचार अति विज्ञान था और उनमें निजी जोशिय उन्नति की अपरिचित क्षमता थी। इस सबके कारण वे अद्भुत सम्मान और अद्भुत के पात्र बन गये थे। 'देवी वैदिकोत्तर दलितोद्धार आयोग का सदस्य बनकर आया था और 1913-14 में भारत में ही था। उनसे 'दली बीनिक' के अखिल-द के सम्प्रदाय मिला था "एक विज्ञान तथा प्रत्येक जाति का व्यक्ति विज्ञानी पात्रका अखिल-द लेखक और प्रभावकारी है, हमारी मिलने जाता है। आधुनिक बीन की वाई बिचकार ईश्वर का बिच समाने के लिए हम सबके के रूप में इस व्यक्ति का स्थापन करेंगे, और सम्प्रदायिक रति के बिचकार को उत्तम गन्त पीटर की आहति के दान हमें—बचाने वह बहुत (पीटर) से लाने सम्मान और प्रभावकारी दान करता है।"

अखिल-द परम साधकिय बीनकी लेखन थे। उनकी वक्त्याप माग का पवित्र' नामक साधकिया हिंदी गद्य का एक मोक्षकर्म है। उनकी बुद्धि अपर रचनाएँ 'स्वामी अखिल-द के पक्षीय-देग' नाम का हिंदी में बीन बिदा म प्रकाशित हो चुकी हैं। वे 'सद्म प्रचार' नामक एक मासिक हिंदी पत्रिका का सम्पादन किया करते थे। उनका प्रभाव बढ़ते उर्दू में और फिर हिंदी में हुआ। उन्होंने हिंदी साप्ताहिक 'अद्भुत' की भी स्थापना की। 3 अप्रैल, 1923 का हिन्दी 'अद्भुत' तथा उर्दू लज की स्थापना हुई। इसका भी मुख्य स्रोत अखिल-दली की ही था। उन्होंने हिंदू सभ्यता के काम की सहाय्य देन, हिंदू समाज के दलित कर्मी का उद्धार करने तथा स्वराज के लिए एक नैतिक दान प्रदान करने के उद्देश्य से। अप्रैल, 1926 की 'पिछली' नामक अर्धेकी साप्ताहिक की भी स्थापना की।

1922 23 में गांधीजी ने अनुयायियों तथा स्वराज पार्टी के नेताओं के बीच तीव्र विवाद चल रहा था। गांधीजी के अनुयायी अतिरिक्तन के सम्मेलन में, और स्वराज पार्टी परिषदों में प्रवेश करने के पक्ष में थी। अखिलानन्द ने इस विवाद में कोई योग नहीं दिया। उनके राजनीतिक विचार उनके उस तत्त्वज्ञान के प्रकट होते हैं जो उन्होंने 14 अगस्त, 1922 को कांग्रेस सत्रियत्र अवज्ञा आच सन्धि के समक्ष दिया था " " के यह नहीं चाहते थे कि रचनात्मक कार्यक्रम को केवल इसलिए किया जाता कि या तो उससे कांग्रेस को सत्रियत्र अवज्ञा आचोदन बनाने में सहायता मिल सके। वे रचनात्मक कार्यक्रम को स्वतंत्र रूप से नियंत्रित करने के पक्ष में थे। उन्हें पूरा विश्वास था कि यदि कांग्रेस भी सत्रियत्र अवज्ञा या आचोदन त्याग दिया जाए, और फिर भी रचनात्मक कार्यक्रम को विरोध और उत्साह के साथ चलाने में सक्षम हो सके तो देश को स्वराज उपलब्ध हो सकता है।" हिंदू मुसलमान एकता का उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा कि उपर से देखने पर कोई भगवा नहीं प्रतीत होता कि तु मैंने सभी जातों में देखा है कि हिंदू तथा मुसलमान दोनों के ही मन में एक दूसरे के बारे में गहरी लोभ है। एक कारण यह जान पड़ता है कि मुसलमान और सिख परस्पर सन्धि है, इसके विपरीत हिंदुओं का एक समाज के रूप में कोई संगठन नहीं है। उनके विचार में एक उपाय यह था कि हिंदू नेता अपने समाज का संगठन करें और मुसलमान नेता कोरी खिलाफत पर और न देकर स्वराज की प्राप्ति को अधिक महत्व दें। यदि सत्रियत्र अवज्ञा आचोदन बनाया जाए तो यह एक साथ सभी को भी आरम्भ किया जाय। किन्तु ऐसा करने से पहले कांग्रेस को इस बात की स्पष्ट रूप से घोषणा कर देनी चाहिए कि यदि कांग्रेस संगठन के बाहर किसी व्यक्ति अथवा समूह ने हिंसा की तो उसका उत्तरदायित्व कांग्रेस पर नहीं होगा। कांग्रेस की चाहिए कि सत्रियत्र अवज्ञा आचोदन को एक बार आरम्भ करने फिर किसी भी स्थिति में बंद न करें। सामान्य स्थिति का उत्पन्न करने के लिए स्वाधीनता ने कहा कि असहयोग आचोदन में राष्ट्र में आवश्यकता के अनुसार वापस कर दी है और देश का भी स्वाधीनता का काम पूरा कर दिया है। भारतीय प्रजापति ने देश में व्याप्त उत्साह को गह-गह कर दिया है। किसी प्रजापति सुमुख आत्मा को वापस करने में असफल रहा है। उनका सुभाव था कि यदि रचनात्मक कार्यक्रम में विरोध उत्पन्न किया जा सके तो परिषदों के द्वार खटखटाने की कोई आवश्यकता नहीं और आचोदन इतना प्रभावकारी हो जायगा कि नीच-प्याही भीड़ ही घरे में घट जायगी और निर्धायक युद्ध आरम्भ हो जायगा।¹⁴

स्वामीजी अपने इस विश्वास पर दृढ़ रहे कि सबसे बड़ी आवश्यकता देश का सशक्त तथा सामाजिक पुनर्रचना है। जनता को अनुशासन तथा रचनात्मक काम के द्वारा सँवार करना है। केवल आत्मसमन के द्वारा देश की सेवा के लिए आवश्यक शक्ति उत्पन्न की जा सकती है। उन्होंने लिखा था “व्यक्तिगत रूप से मैं न तो परिषदा में प्रवेश करने के पक्ष में हूँ और न सशस्त्र व्यवस्था प्रारम्भ करने की शोषी पध्दती का समर्थन करता हूँ। मेरा यह विश्वास अविनाशनीय है कि स्वराज प्राप्त करने के लिए रचनात्मक काम ही शक्तिशाली अस्त्र है।”¹² रचनात्मक काम के सम्बन्ध में स्वामीजी का दृष्टिकोण व्यापक था। उन्होंने स्वराज्य की प्राप्ति के लिए चार सूत्री कार्यक्रम निर्धारित किया

“(1) हिंदुओं, मुसलमानों, सिक्खों, ईसाइयों आदि को एक ही मंच पर एकत्र करके और एक मंच पर बसाकर साथ-साथ उनके प्राथमिक मताधिकारों को निश्चिन्त करारों की एकता की स्थापना करना।

(2) देश में बनी हुई कानूनी की लोकप्रिय बनाना ।

(3) हिन्दुस्तानी का राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतीय स्थापन करना ।

(4) वर्तमान सरकारी विधेयवित्तदायी वित्त प्रणाली से पुष्कल और स्वतंत्र एवं राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली का विकास करना ।²⁰

14 वर्षी, तपः, १५० ९२

1941

16 गद्दी पृष्ठ 97। इस बीजना की कपरेखा यद्वागद ने एक समापना में आतुन का वा वा आ आहारे 2।
मल्लाना प्रविष्टि के उपरु हाथे पर लिखा था।

आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्ता

अज्ञान के अन्धधुन्धली प्रभावों की ओरकाहने देने वाली पारम्पर्य विद्या की बहु मात्रा बना की थी। उनकी विद्या बीजना में अन्धकार तथा विद्यापी सोना की ही अपना जीवन बहकावे के वैदिक आस्था के अनुसार जानना पड़ता।

सच्चायी होने के नाते स्वामीजी की सब प्राविद्या में ब्रह्मण की नामना थी। मत सम्पुन मानव जाति के ब्रह्मण का समर्थन करना उनमें लिए आवश्यक था। किन्तु समय की परिवर्तितता को देखते हुए उनका विचार था कि राष्ट्रधुम्नि के प्रति नति सामन्तीन भावना की प्राप्ति की पूर्ण आवश्यक मत है। उनका बहुना था कि मुसलमान तथा इस्लामधुनकवाद के उपरते हुए प्यार की देखने के लिए भारत की आध्यात्मिक शक्ति को पुनर्जीवित करना आवश्यक है।¹⁷

3 विचार

मानवीय तथा मानवत राज की नति अज्ञान की बहु नहीं चाहते थे कि हिन्दुता के उचित हिता की ओरित म शासक काय। वे निम्न राष्ट्रवादी थे, किन्तु म समने लिए 'काय चाहते थे और मुसलमानों की अनुचित रूप व सत्पुन करने के पक्ष म नहीं थे। वे किसी भी अथ म सम्प्रदायवादी नहीं थे। राष्ट्र के लिए उनकी सबसे बड़ी निराशय की विद्या के वैदिक आस्था की पुनर्जीवित कर और हिन्दुता की द्वाता के लिए प्रयत्न करना। उनके मन म देश न बनने वाले विभिन्न सम्प्रदाय के उचित सामाजिक तथा राजनीतिक हिता की शक्ति के विस्तार कोई दुर्भाव नहीं था।

'वैदिक स्वराज्य' का आदर्श अज्ञान की राजनीतिक विद्या का मुख्य तत्व था।¹⁸ मार बीज ब्रह्मण की अनुसरण करत हुए उन्होंने बताया कि आदर्श भारतवर्ष ही आत्मिक स्वराज्य है। इसी भारत म वैदिक ब्रह्मणधुनिक के पुनरुद्धार की राष्ट्रीय परिभाषण की आधार-विद्या माननी थे। उनका बहुना था कि भारत में अपने-अपने अधिवासी की नाम करने के लिए की तीव्र सघर्ष चल रहा है उनके स्थान पर स्वराज्य का आदर्श हम अपने-अपने सम्प्रदाय का निष्ठापूर्वक पालन करना सिखाता है। अज्ञान तथा सच्चायी सोना में ही अधिवासी की भवेता कतमों की अधिक महत्व दिया है। व्यक्तिगत शक्ति का मुनीकरण तथा शक्ति कर्तों का उद्धार भारत के लिए स्व-राज्य का द्वार होता।

प्रकरण 3

मदनमोहन मालवीय

1 अज्ञानता

शक्ति मदनमोहन मालवीय (1861-1946) आधुनिक भारत की एक सर्वाधिक महान् शक्तियों की एक शक्ति थे। वे एक महान् ब्रह्मण थे और सर्वत्र हिन्दी तथा अंग्रेजी दोनों ही भाषाओं म समान अधिकार के साथ बात सकते थे। वे एक महान् सामाजिक तथा राजनीतिक नेता थे। उन्होंने बताया कि हिन्दु विधिविद्यालय की स्थापना की। उनके अज्ञापरम स्वतंत्रता का आधुनिक भारत की राजनीति, समाज, विद्या तथा संस्कृति पर गहरा प्रभाव पड़ा है। मदनमोहन मालवीय का जन्म 23 दिसम्बर 1861 को हुआ था और 12 नवम्बर 1946 को उनका देहावसान हुआ। 1884 म उन्होंने बी. ए. की उपाधि प्राप्त की। कुछ वर्षों तक उन्होंने हिन्दुस्तान हिन्दी दलिक का सम्पादन किया। कुछ समय तक वे व इण्डियन प्रैक्चिसर पत्र के भी सम्पादक रहे थे। उन्होंने का सम्पादन किया। कुछ म हिन्दु समाज नामक शक्ति की स्थापना हुई। उनके राजनीतिक भावनों में हम जानेअनूय तथा समा श्रुति करने की अद्भुत शक्ति देखने की मिलती है। उन्होंने अपने आत्मिक स्वतंत्रता के द्वार भारतीय राष्ट्रवाद के विकास म महत्वपूर्ण योग दिया। महान्ता सच्चायी उन्हें लगता था सच्चायी तथा भारतीय मुक्ति लक्ष्य म योग्य तापी और सहयोगी बनने व तथा उसी रूप म उनका आदर्श करते

17 अंग्रेजों ने अज्ञानता द्वारा नाम 1920 में इस्लामिक पक्षा नामक आधुनिक पक्ष का अर्थ।
18 1921 की महान्ताकार कावेर के रूप अज्ञानता के अर्थ। अज्ञानता की अज्ञानता कावेर पर 'शक्ति' का नाम पर आधुनिक दिने।

थे। मालवीयजी के व्यक्तित्व ने गहरी निष्ठा, आत्मत्याग तथा सरलता विद्यमान थी, जिसके कारण वे महान् प्रेम तथा श्रद्धा के केंद्र बन गये थे।

मालवीयजी भारतीय राष्ट्रीय परिषद्¹⁹ के सबसे प्रारम्भिक नेताओं में थे, उस संस्था के साथ उनका सम्बन्ध 1886 से ही पचास बरसों का था। तत्कालीन उनकी गणना फीरोजशाह और मौलवी की संरक्षणी में की जाती थी, यद्यपि उन्हें स्वतंत्र के विचारों से भी सहानुभूति थी। वे 1909 में लाहौर तथा 1918 में दिल्ली कांग्रेस के सम्पादक चुने गये थे।

1902 में भारतीय प्राचीन विधान परिषद के सदस्य चुने गये। वहाँ उन्होंने वास्तविक विधायक, जलदायक तथा बुद्धिमत् भूमि स्वामित्व परिवर्तन विधेयक पर महत्वपूर्ण भाषण किये। 1910 में वे साम्प्रदायिक विधान परिषद (इम्पीरियल लेजिस्लेटिव काउंसिल) के सदस्य चुने गये और 1920 तक उसके सदस्य बने रहे। उन्होंने मौलवी के प्रारम्भिक शिक्षा विधेयक का जवाब देते हुए सम्बोधन किया। 1916 में उन्होंने 'उत्तम के स्मृतिपत्र' पर हस्ताक्षर किये। 1924 में उन्होंने भारतीय विधान सभा में एक स्वतंत्र कांग्रेसजन के रूप में प्रवेश किया। 1927 में वे विधान सभा के राष्ट्रीय दल (नेशनलिस्ट पार्टी) के सम्पादक बने।

यद्यपि मालवीय वरमन्दाबादी हिंदू थे, फिर भी देश के औद्योगिक विकास में उनकी विशेष रुचि थी। वे उन नेताओं में थे जिन्होंने 1905 में आरम्भ में भारतीय औद्योगिक सम्मेलन तथा समस्त प्राचीन औद्योगिक सम्मेलन का और 1907 में इलाहाबाद में समस्त प्राचीन औद्योगिक एवं की बैठक का आयोजन किया था। वे 1907 के वार्षिक सम्मेलन में अध्यक्ष थे। उन्होंने प्रवास शुरू करने की प्रारम्भ करने में भी आर्थिक योग दिया था।

1920 की जनता कांग्रेस में मालवीय न विधिवत् भाग, बल्कि वेस्ट तथा विवरण सभा के साथ मिलकर प्राचीन के अग्रणी आन्दोलन के अध्यक्ष का विरोध किया। 1921 में मालवीयजी वेस्ट तथा अन्य लोगों के साथ एक निष्पक्षक के सदस्य के रूप में वाइसराय के मिल और अग्रणी आन्दोलन से उत्पन्न समस्याओं का आचरण के लिए वाचपीन की। उनके गहन पर 10 जनवरी, 1922 को बम्बई में एक सार्वजनिक सम्मेलन हुआ। 1930 में प्राचीन द्वारा प्रारम्भ किये गये नमक सत्याग्रह के सम्बन्ध में उन्हें निरस्त कर दिया गया। 1931 में द्वितीय मोहन-मैल सम्मेलन में भाग लेने के लिए वे लखन गये। वे अक्टूबर 1932 की दिल्ली कांग्रेस के प्रमुख सम्पादक के निम्न दिल्ली में प्रवेश करने ही उन्हें निरस्त कर दिया गया। 1932 में उन्होंने इलाहाबाद में अखिल भारतीय एका सम्मेलन का सम्पादक किया। 1934 में एम. एल. एल. एल. के साथ मिलकर वेस्ट ईस्टीनल के सम्मेलनिक विषय का विचार किया। यद्यपि वृद्धावस्था के द्वारा वयस वृद्ध परिवर्तन कर दिया गया था, फिर भी उनके देश की अनेक साम्प्रदायिक निर्वाचन-क्षेत्रों में विभाजित कर दिया, और हिंदुओं के साथ भारी अपमान किया। 1934 में जनता के राष्ट्रीय दल के सम्मेलन में मालवीयजी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा कि साम्प्रदायिक विषय न अंतर्जातिक प्रगति के स्थान पर साम्प्रदायिक निरुत्साह की स्थापना कर दी है।

मालवीयजी जनता के महत्त्व के, जिसकी बैठक जनवरी 1906 में इलाहाबाद में हुई थी, प्रमुख नेता थे। वे हिंदू महासभा के प्रमुख नेताओं तथा सदस्यों में थे। उन्होंने हिंदुओं की एका, साम्प्रदायिक समुदाय, पारिवारिक बुद्धि तथा सहकारी व्यवस्था पर बल दिया। उन्होंने उत्तर भारत में हिंदू समाज की सुदृढ़ता तथा पुनः स्थापना के लिए भारी काम किया था। बनारस हिंदू विश्वविद्यालय उनकी सबसे राष्ट्रीय सेवाओं का विरसायी स्मारक है। उसने मुल में भी प्राचीन हिंदू धर्मशास्त्रों के अध्ययन की कोशिश करने की भावना विद्यमान थी।

2. मालवीयजी का इतिहास समय

मालवीयजी यद्यपि हिंदू आदिता थे। उन पर भाषण के प्रतिभूतक भावना का सम्पूर्ण

19 *Speeches and Writings of Pandit Madan Mohan Malaviya* (पंडित, जी. ए. बनारस एम. ए. 1919) *The Hon. Pandit Madan Mohan Malaviya His Life and Speeches*, द्वितीय संस्करण (पंडित, वी. ए. बनारस)।

भारतीयों की स्वतन्त्रता तथा सामाजिक न्यायप्रणाली में विश्वास था। उन्होंने निम्नलिखित स्वीकार किया कि "निश्चित भारतीयताओं द्वारा स्वराज्य की ओर भाग था जो सही की वही अनेकों साहित्य तथा विद्वानों के जीवनानुभव दान का प्रथम परिणाम थी।" 1887 की कांग्रेस में माधव देवे हुए उन्होंने कहा था "जब हम वही भाग करते हैं कि राज्य की परिपक्वता में जनता के प्रतिनिधि कार्य तो हम केवल उसी चीज की भाग बन रहे हैं जिन सुरों की नहीं, अर्थात् अमेरिका, आस्ट्रेलिया तथा जर्मनी सम्पूर्ण जनता के एक स्वर के किसी देश के सुशासन के लिए अत्यन्त आवश्यक घोषित किया है, क्योंकि जहाँ जनता के प्रतिनिधियों की प्रशिक्षण में भाग लेने दिया जाता है वही जनता की भावस्थिति, दृष्टिकोण, आवश्यकताओं और विचारों को उचित रूप से प्रस्तुत किया जा सकता है, यही देश के समाज और पूरा किया जा सकता है। प्रशासन के उद्देश्य विरुद्ध हो उदार एवं न्यायप्रणाली नहीं है। फिर भी परिपक्वता में भारतीय प्रतिनिधियों का होना अत्यन्त आवश्यक है। भारतीयों अनेक प्रशासकों की इस बात का स्मरण दिलाना चाहते थे कि भारत में उनके वक्तव्य और उद्देश्य का सम्बन्ध था। 1891 की कांग्रेस में अविज्ञान में उन्होंने कहा था "हम अनेकों से जा कि हमारे धर्म-आचार्य हैं वह अर्थात् करते हैं कि वे इस देश के प्रशासन की युक्ति, भाव तथा सामाजिक सम्बन्धों में अनुकूल बनाई, उन स्पष्ट विचारों के अनुरूप कार्य करें जिन पर वह सदैव चल रहा है और जिनके कारण वे सत्ता में इस उच्च स्थिति को प्राप्त करते हैं एकल हुए हैं।" भारतीयों ने 1919 में भारतीय विधान परिषद में रोलट विधेयक की वार्डन करने के विरुद्ध भी ऐतिहासिक भावना दिखा उन्हीं स्पष्ट है कि वे वैयक्तिक स्वतन्त्रता में उलट सम्पन्न और पोषण थे।

सिक्खों की भाँति भारतीयों की उस सम्पूर्ण और व्यापक राजनीतिक हस्तक्षेप से गंभीरता से अवगत थे जो स्वतन्त्रता युद्ध के उपरान्त समस्त एशिया में उत्पन्न हो गयी थी। उन्होंने ब्रिटिश सरकार पर इस बात के लिए जोर लगाया कि वह समय की गति को समझे और उसके स्वयं को। उन्होंने कहा "इस देश की सरकार तथा जनता दोनों ही इसी में हैं कि सरकार इस बात को समझ ले कि समय बदल गया है और जनता के मन पर एक नयी भावना में आधिपत्य जमा दिया है। ज्ञान में, जो कुछ रूप लहते हैं अनेक चीजों में भारत से भी अधिक विद्वान् हुआ था, अब विश्व के राष्ट्रीय के बीच प्रमुख स्थान प्राप्त कर लिया है। चीन-भी अपना प्रभाव और निष्पक्षता स्थापन कर उठ बैठा है। ईरान अपनी दीर्घ विद्या के आनन्द में। नया भारतीयताओं के लिए उन अधिकारों और अधिकारों की भाग बनना मान है जिनका उपयोग ब्रिटिश साम्राज्य के बीच भाग में करने वाले हमारे साथी प्रभावित कर रहे हैं? यदि यह वास्तविक है तो क्या इसकी वजहों की या सफलता है कि उनको आकाशवाणी उनकी युक्तिगत भाषा को उद्घाटनपूर्वक स्वीकार कि वे क्या राष्ट्र की या सत्ता की? " कलकत्ता में अपने और उभरते हुए लोकमत को सही दिशा में मोड़ने के लिए आवश्यक है कि आन्दोलन तथा जनता की परिपक्वता में भारतीय प्रतिनिधियों को समुचित स्थान दिया जाय। भारतीयताओं के अधिकारों की रक्षा करना दो कारणों से अनिवार्य है। प्रथम, सनी विक्टोरिया की घोषणा में इन अधिकारों का उल्लंघन किया गया था। द्वितीय, भारतीयों इस 'भारती की सत्ता' होने के नाते इन अधिकारों के हकदार हैं। 1907-1910 में भारतीयों की दावावाई नीयों की इस बात से सहमत थे कि स्वराज्य ही उन युवाओं की दूर करने का मुख्य उपाय है जिनके विचार भारतीयता की दीर्घकाल से बने हुए हैं।

भारतीयों ने स्वदेशी आन्दोलन का समर्थन किया। 1906 के कलकत्ता में अपने एक भाषण में उन्होंने कहा था "मैं इसकी (स्वदेशी की) अपने देशवासियों के प्रति अपने भावनात्मक तथा ही एक अर्थ समझता हूँ। मैं इसी भावना भाँति का मन और हम सबके विचारों में मानता हूँ, मान्य भाँति के धर्म की भाव है कि आप यथासामर्थ्य स्वदेशी आन्दोलन में बढ़ावा दें। अपने जिले

25 भारतीयता में विश्व तथा भारतीयता का भाषण (1909)।

26 *Life and Speeches*, पृष्ठ 107।

27 भारतीयता में कुछ लोगों का उद्घाटन देने का उद्घाटन किया। अपने मन की पुष्टि करने के लिए उन्होंने सनी विक्टोरिया, विमर्श तथा स्वयं के विचारों की कलकत्ता में उद्घाटन किया। देखिये *Life and Speeches* पृष्ठ 414-25।

देशवासी द्वारा निर्मित यवन की गरीबी में मुझे रोना पड़ा है और अभी भी लग रहा है कि मैं अभी जीता रहूँगे मेरे लिए यम में यम एक और जीवन प्राप्त करने में सहायता दे रहा है। हो सता है कि भूत विपत्ति बाहरी देश के आपात हो निम्न ज्ञान बढ़ने अपना जो क्षम सगाना है जन्म में सामन या आपा, विहाई अपना कोई सग अपसव मिल जायगा जिससे यह अपना और अपने आपों का पैर नर सनेगा। अब आप देता रहूँगे कि आपने आत्मगत सौम इतना बन्द माया रहे हैं, देश का मन भारी रागि में बाहर जा रहा है, भाषा की आप इतनी कम और साधन इतने कम हैं, मैं नहीँगा कि प्रत्येक प्रकार मायताओं वाले व्यक्ति का यह पामित बतस्य है कि यह नहीं बड़ा के देश में निर्मित वस्तुओं मिल लन यह बिहारी भीनों की तुलना में तरजीह देकर भारतीय समाज को बचाया दे चाहे दया करने में उसे कुछ खान भी बरदा पड़े।²⁸ आत्मवीर्य की बहना या नि स्वदेशी आन्दोलन को बन्द प्रदान करना भारतीयता का पामित बतस्य है। पुनि इगलैण्ड ने तुल्य व्यापार के सिद्धांत का अभीचार कर दिया है इसलिए उस भारतीय उद्योग की सहायता दन के लिए राजी नहीं किया जा सकता। स्वदेशी ही देश के आर्थिक सन्तुष्ट के विकास का एवमा साधन है। हमने दून में दुर्भावना अपना चुना नहीं है और न हमने किसी प्रकार का राजनीतिक विरोध है। देश की वरिष्ठता का कम करने तथा दमकासिया की रोजगार और भाजन देन के लिए स्वदेशी को अभीचार करना भारतीयता का पामित बतस्य है।

मातृवीर्य ने राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के लिए एक व्यापक सिद्धांत का प्रतिपादन किया। उनका बहना या नि देश के नैतिक, शैक्षिक और आर्थिक साधनों का परिचयन करने के लिए राजनीतिक सुधार के आन्दोलन के अतिरिक्त भाषा में लोक-व्यापन और लोक-सेवा की भावना उत्पन्न करने में नितात आवश्यक है। उनका विचार था कि देश के विकास के लिए धार्मिक तथा औद्योगिक बाध-कलाप भी जरूरी हैं।²⁹ उन्होंने औद्योगिक आर्थीय (1916-18) के लिए जो स्मरणपत्र तैयार किया था उसमें उन्होंने इस बात पर बल दिया था कि देश में वसोचित आधार पर उद्योगों का विकास किया जाय। उनका विश्वास था कि उद्योगों के लिए आवश्यक पूंजी प्रयत्न करने पर देश में ही एकत्र की जा सकती है। आत्मवीर्य ने धार्मिक विनाश के नाशों पर भी बल दिया। वे चाहते थे कि देश में राजनीतिक पुनर्निर्माण और प्रगति के लिए धार्मिक जल्दाह और समन्वय की भावना से बाध करना आवश्यक है। गुरु गोविन्दसिंह ने जिस मजिद भावना से अपना बाध किया और अपने अनुतापियों के बाध सहायता का जो व्यवहार किया उससे मातृवीर्य की बहुत प्रभावित थे।³⁰ 1908 में लखनऊ में हुए द्वितीय उत्तर प्रदेशीय सम्मेलन में अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने कहा था "ई आपने हार्दिक आग्रह करता हूँ कि जाय ऐसे सन्तानों का निर्माण करें जो बच नर राजनीतिक बाध बचाते रहूँ और सार्वजनिक हित की समझाओं पर योग्यता का निर्धारण करने का प्रयत्न करते रहूँ। कम सफाई, शिक्षा तथा औद्योगिक विकास के लिए सन्तान बनायें और ऐसी सम्भावों का निर्माण करें जो सहायरी आन्दोलन, पब्लिशय और धार्मिक शिक्षा को प्रोत्साहन दें। अन्त में, मैं आपसे यह स्मरण रखने की आग्रह करता हूँ कि जवता की वास्तविक शून्य केवल भौतिक साधन न ही प्राप्त नहीं हो सकता, और वे सभी भौतिक साधन जो प्राप्त करने योग्य हैं मनुष्य के अति उन साधन कल्याण का ध्यान करते उपलब्ध किए जा सकते हैं जो यम न हमारे लिए निर्धारित किए हैं। यदि हम धार्मिक सत्य की मानता से प्रेरित हानर बाध नहीं करते तो हम जो भी काम करने उसमें हमारी क्षमि स्वामी नहीं होती।"³¹ आत्मवीर्य ने प्रार्थितिक शिक्षा को भी व्यापकक बतसाया।

मातृवीर्य की ईश्वर की सम्बोधनता से निश्वास का और इसी आधार पर उन्होंने भावह किया कि भारत में सचन सन्त-वला सहायनता तथा "बाध के सिद्धांतों का अनुसरण किया जाय।

28 *Life and Speeches* पृष्ठ 414-50।

29 देखिए, भारतीय औद्योगिक आर्थीय (हृदयभा भाषण 1911) की रिपोर्ट पर मातृवीर्य की टिप्पणी (हृदयभा की व. कलेसन पृष्ठ बनवले, 1918) पृष्ठ 369-493।

30 *Life and Speeches* पृष्ठ 621-23।

31 वही पृष्ठ 148-49।

चाहिए। 1918 में दिल्ली कांग्रेस के अपने अल्पसंख्यक भाषण में उन्होंने कहा था "मेरा निवेदन है कि आप अपनी पूरी शक्ति के साथ इस बात की मान करने का संकल्प लें कि आपने देश में आपको भी अपने विचारों की वे ही सुविधाएँ उपलब्ध होनी चाहिए जो इंग्लैण्ड में अपने को मिली हुई हैं। यदि आप इतना संकल्प करने और अपनी जनता में स्वतंत्रता, समानता तथा आतुरता के सिद्धांतों को फैलाने का प्रयास करें तथा हर भाई को, चाहे उसकी स्थिति कितनी ही अधिकतर और विपन्न क्यों न हो, यह अनुग्रह करने दें कि उसमें भी वही ईश्वरीय प्रकाश की विराम विद्यमान है जो उच्च से उच्च स्थिति के व्यक्ति में विद्यमान है और यदि आप हर भाई को इस बात की अनुभूति करा दें कि उसे भी अपने राष्ट्रीय प्रजासत्ता के समान ही व्यवहार पाने का अधिकार है तो निश्चय सम्पन्न है कि आपने अपने सौभाग्य का नियम स्वयं कर लिया है, और जिनके हाथों में आज देश की शक्ति है वे आपकी उचित मांगों का विरोध करने में कभी सफल नहीं होयें।"

महावीर आत्मनिषेध के सिद्धांत को मानते थे। 1918 की दिल्ली कांग्रेस में अपने अल्पसंख्यक भाषण में उन्होंने यह आशा व्यक्त की थी कि आत्मनिषेध का सिद्धांत भारत के लिए भी लागू किया जायगा। उन्होंने कहा "हैंने यह जानकर प्रसन्नता है कि इंग्लैण्ड और भारत की सरकारों ने सीरिया तथा मेसोपोटामिया के सम्बंध में इन सिद्धांतों की लागू करना स्वीकार कर लिया है। इससे हमारी यह आशा दृढ़ हो गयी है कि ईदु भारत के लिए भी लागू किया जायगा। जब मैं इस नगर में, जो हिंदू तथा मुसलमान दोनों ही युगों में भारत की राजधानी रहा था, सब छोड़कर सोचता हूँ तो मेरा हृदय अल्पसंख्यक दुःख और सम्बन्ध से भर जाता है। हिंदुत्व में लज्जन पार होकर यथेष्ट इस विशाल साम्राज्य पर शासन किया था और मुसलमान भी वही भी यथेष्ट एक शासन करते रहे। किंतु उनकी शासन हम अपनी प्राचीन स्थिति से इतने गिर गये हैं कि हमें अपनी सीमित स्वराज की सीमाओं की विज्ञापन के लिए भी विचार करना पड़ रहा है। किंतु इस समय जिस सीमा के द्वारा मैं देश के शासन की बागडोर है वे इतने अधिक हैं कि यदि मेरे पास समय होता तो मैं अवश्य ही यज्ञताता कि जिनके के अपने से पहले हमारे लोगों में—हिंदू तथा मुसलमान दोनों में—विचरती क्षमता थी।" महावीरजी का आग्रह था कि हमें हमारा 'स्वराज का आत्मनिषेध अधिकार' आत्मनिषेध के सिद्धांत की लागू करने के लिए ही प्रदान किया जाय। उनका कहना था कि अल्पसंख्यक सम्बंधों की 'मायोचित व्यवस्था' को कायम रखने का यही एकमात्र उपाय है। भारत की अधिकार है कि वह बिना किसी बाहरी दबाव अपना हस्तक्षेप के अपने राजनीतिक जीवन की अपनी हृदयानुसार चलाये। तभी वह अपनी 'ईश्वर प्रदत्त प्रकृति' का सारास्फुट कर सकता है और अपनी होतव्यता को ज्ञान कर सकता है। उसने बुद्ध ने विज्ञान बुद्ध में 'राज तथा स्वतंत्रता के सिद्धांतों की रक्षा के लिए अपना एक कहाया था। इन सब सभी से भारत की इस 'मायोचित मान की पुष्टि होती है कि उसके राजनीतिक भाग्य का नियम करने के लिए राष्ट्रीय आत्मनिषेध के सिद्धांत की दुरत आवश्यकता किया जाय।

महावीर उस सीमा-व्यवस्था नहीं थे। वे यह नहीं चाहते थे कि राजनीतिक क्षेत्र में जनता सामुहिक रूप से उग्र रहें। अपने बाहरी कांग्रेस के अल्पसंख्यक भाषण में उन्होंने यह तथा अहिंसक की पारणायों के आधार पर सत्तकपादियों तथा हिंसात्मक राष्ट्रवादियों की मत्तता की। उनकी मानना भी वेदवैद और वेदशास्त्र के रहस्य थी, वे उन सब और कर्मकांडी विचारों से रहस्य नहीं थे जो चाहते थे कि जनता को व्यापक रूप से राजनीति में भाग लेना चाहिए।

महावीर की भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के उन वर्षों के सद्गुणधृति नहीं थी जो समाजवाद की ओर उन्मुख थे। उनका सम्बंध उस गुट से था जो अहिंसक मान्यता में साथ विचारों के सिद्धांत की मानकर चलता था। वे हिंदू समाज की आपस में समाजिक संबंधों का बोझ-बहुल हेरफेर के साथ चलाये रखने के पक्ष में थे।

4 निष्कर्ष

पण्डित महावीर अपने समय के एक प्रतिष्ठित सामाजिक नेता थे।¹² वे सुदिमान राज-

नीतिज्ञ तथा प्रवाण्ड विद्वान् थे। वे अपनी जीवन के अन्तिम क्षण तक भारत की महानता के स्वप्न के लिए अथक परिश्रम करते रहे। उन्हें हिन्दू सम्प्रदाय तथा संस्कृति के शाश्वत मूल्यों में विश्वास था, और उनका यह विश्वास ही उनके जीवन तथा कार्य पद्धति का मुख्य आधार था। वे ईश्वर भोक्त थे और धर्म में प्रति उनमें मन में अमर्याद प्रेम था। किन्तु सांस्कृतिक पुरातनवाद के साथ साथ उनका हृदय बहुत उदार था, और अपने विरोधियों का प्रेम तथा खड़ा प्राप्त करने की उनमें अचमूत क्षमता थी। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में, प्रांतीय सम्मेलनों में तथा उत्तरप्रदेशीय विधान परिषद और सांजायमीय विधान परिषद में उनकी भूमिका बहुत ही प्रभावशाली थी। जब भारतीय राजनीति में गांधीजी की सत्याग्रह-प्रणाली का प्रादुर्भाव हुआ तो समय की महत्वपूर्ण शक्तियों का साथ प्राप्तियों की वा सम्पर्क टूट गया। फिर भी वे सम्पूर्ण का साथ करते रहे। उन्होंने तीव्रता से अपनी कड़ी उग्र भावना के सहानुभूति की और न उनकी मुसलमानों के प्रति रिश्तापन की नीति से। उनके प्रसिद्ध साप्ताहिक पत्रिका में 1946 का यह वक्तव्य अतिशय ही निष्ठम उन्होंने हिन्दुओं को देश की भयंकर रूप के विशुद्ध शास्त्राधिकारिक विधि में एक होने के लिए प्रेरित किया था।

भारतीय राजनीतिक विचारों के इतिहास में भारतीयों का मुख्य योगदान उनका आत्मिक राष्ट्रवाद का सिद्धांत है। स्टायन, हार्डेनबुच, वेले और फिर से की नीति भारतीयों की संस्कृति की राष्ट्रवाद का आधार मानते थे। प्राचीन भारत की सांस्कृतिक उपलब्धियों के लिए उनके मन में गहरी खड़ा थी, साथ ही साथ वह देश की भावी प्रगति और सुखसामर्थ्य शक्तियों में भी विश्वास था। वे शुद्ध नीतिप्रवादी अथवा ऐतिहासिक राष्ट्रवाद का समर्थन नहीं कर सकते थे। वे हिन्दू संस्कृति पर आधारित राष्ट्रवाद के सिद्धांत को मानते थे, किन्तु साथ ही साथ वे देश के अन्य सम्प्रदायों के प्रति निरपेक्ष उदार तथा "पार्ष्वीकृत व्यवहार करने के पक्ष में थे।

प्रकरण 4

भाई परमानन्द

भाई परमानन्द पंजाब के निवासी थे। उन्होंने लार्डर के सी ए की कॉलेज में अध्यापन कार्य किया और जाला हारराज के आदर्शवाद से उन्हें गहरी प्रेरणा मिली।³³ वे धार्मिक उपदेश देने के उद्देश्य से दक्षिण अफ्रीका गये थे, वही उनकी गांधीजी से मेल हुई। उन दिनों का उत्तेज करते हुए गांधीजी ने 'यंग इंडिया' में लिखा था "मेरे मन पर इस बात की गहरी छाप पड़ी कि यह एक सत्यप्रधान तथा उदार व्यक्ति है।"³⁴ दक्षिण अफ्रीका में भाई परमानन्द हमेशा रहे। वहाँ उनका समाज की कल्याण से सम्पर्क हुआ जो उस समय यूरोप में भारतीय जाति कार्य में के नेता तथा प्रेरणादायक थे, और वर्गों का वह पर गहरा प्रभाव पड़ा। उन्होंने हिन्दी तथा उर्दू के कुछ पुस्तकें भी लिखीं। उन्होंने एक यूरोप का इतिहास भी लिखा। 1915 में उन्हें निर्वासित करके अरुमन भेज दिया गया, 1920 में दो मास की भूख हड़ताल के उपरांत उन्हें मुक्त कर दिया गया।³⁵ स्वदेश लौटने पर वे हिन्दू महासभा में सम्मिलित हो गये। वे कुछ समय तक भारतीय विधान सभा के सदस्य भी रहे।

परमानन्द अच्छे वक्ता थे। अपने भाषणों में वे सर्वत्र हिन्दू संस्कृति की श्रेष्ठता की प्रशंसा किया करते थे। उन्होंने लिखा था "हिन्दू सभ्यता का सबसे पुराना राष्ट्र है। उनके समग्र विश्व के प्राचीनतम वंश हैं। आधुनिक यूरोपीय राष्ट्र प्राचीन हिन्दुओं अथवा अरबों के ही वंशज हैं। प्राचीन काल में सभी बड़े राष्ट्र अपनी सम्प्रदाय तथा विशिष्ट राष्ट्रीय चरित्र का हो गये हैं। किन्तु विश्व के प्रारम्भ से हमारा ही राष्ट्र केवल ऐसा है जो इस विषय में अक्षय्य सिद्ध हुआ है,

नामक देश में लिखा था "मेरे लिए देश का महानता गांधी तथा भारतीयों की महानता में निहित है। मैं उनके निष्ठा केन और उनकी विरोधी खड़ा करता हूँ अपनी किसी अथवा आधुनिक जीवन में किसी की नहीं करता।

33 जाला हारराज (19 अक्टूबर, 1864—15 सितम्बर, 1933) जिनका जन्म में नामित सिन्ध के गढ़ान्क जन्मस्थान था। वे पंजाब की संसदीय नेता भी थे।

34 एन क गांधी, 'Bhai Paramananda', *Young India* सितम्बर 19, 1919।

35 भाई परमानन्द, *Story of My Life*

बलवति वह अब भी जीवित है। नि सन्देह किसी राष्ट्रमन्त्री क्षति से अवका किसी अब मरुतु ने होने नष्ट होने से बचा लिया है। पालतार्, सामूहिक हत्याएँ, मक्कर तसहार तथा रेतगत, मयावह कुछ—हमने क्या क्या सहन नहीं किया है ? और फिर भी हम जीवित है।³⁶

परमानन्द हिन्दू राष्ट्रवाद के समर्थक थे। उनका कहना था कि बहुसंख्य होने के नाते हिन्दुओं का कर्तव्य है कि वे अपने को सामाजिक तथा नैतिक सुधारों से मुक्त करे और स्वराज प्राप्त करने में भी कष्ट और बाधनाएँ सामने आये उन्हें मुरज आपात की क्षम अपने ऊपर ले। उन्होंने हिन्दुओं की अतिशय व्यक्तिवादी भावना की भावना की बजाय सबसे मुख्य और अह्वार-भूलक प्रशिक्षणार्थी का अनुमान होता है। उन्होंने बतलाया कि समय की अवधारणा का यह है कि हम सब और संगठन की भावना का विकास करें। वे हिन्दुओं की एकाता से काम को सकीप साम्प्रदायिकता मानन के लिए तैयार नहीं थे। उन्होंने लिखा था "जो भावना किसी राष्ट्र की एकाता के मूल में अधिष्ठान का नाम करती है वह उसका निश्चित राष्ट्रीय चरित्र है। किन्तु हमारे सामने प्रश्न बहुत ही भिन्न है। यदि राष्ट्रवाद की भावना है ही नहीं अथवा मर चुकी है तो उसे उत्पन्न कैसे किया जाय ? इसके अतिरिक्त आदर्श तथा बाह्य रीति ही प्रकार की कुछ ऐसी शक्तिवा होती हैं जो इस भावना के विकास में बाधा डालती है और उसे पालत नहीं होने देती। सामाजिक यह बात उन राष्ट्रा के सम्बंध में खरिताव होती है जो अपनी स्वाधीनता की जो बैठते हैं। सीधी की कसाह दी जाती है कि वे एक दूसरे के प्रति प्रेम तथा सहानुभूति का व्यवहार करें, किन्तु सब निरपेक्ष सिद्ध होता है। इससे विपरीत सब मनुष्य की मनुष्य से और पार्सी की पार्सी से प्रेम करने वाली पारस्परिक ईर्ष्या और भिड़ैय के अतिरिक्त और कुछ दृष्टिकोण नहीं होता। राजनीति का एक गम्भीर सत्य है, जिसे लोग आरम्भ में समझ नहीं पाते, और न उसका कही मूलमन्त्र कर पाते हैं। सत्य यह है कि पूर्वीय परिस्थितियों में महान नेता ही ऐसी क्षति देता है जो परस्पर विरोधी सत्तों की बस में कर सकता और अपने राष्ट्रवाद की नींव डाल सकता है, अतः अपने आदेशों का पालन करना और उनका अनुममन करना आवश्यक है।³⁷ सबप्रथम सम्पूर्ण राष्ट्र की एक व्यक्ति के आदेशों का पालन करना सीखना चाहिए। यह अनुशासन, आचारपालन तथा सम्मान सब प्रकार की मुख्य बातनामा और विपदों की क्षतियों की मरमसात कर देता है। इनके बिनाय ही राष्ट्रवाद के विकास के लिए नयी भूमि तैयार हो जाती है। यूरोप में इतिहास से प्रमाणित होता है कि राष्ट्रीय महानता के समय में एक ऐसा समय आता है जब कोई क्षतिग्रामी व्यक्ति अथवा राज्य अपने आनर पारी उत्तरदायित्व अपने कर्मे पर ले लेता है।"³⁸

भाई परमानन्द हिन्दू संगठन के समर्थक थे। वे लिखते हैं "हिन्दुओं को संगठित करने के लिए विभिन्न स्तरों पर हिन्दू समार्य स्थापित की जानी चाहिए। हिन्दुओं में प्रचलित सुधारों का, अर्थात् उन कुरीतियों का जो उन्हें दुर्बल बनाती हैं, उन्मूलन किया जाय। शारीरिक व्यायाम में अधिक उत्थान की जाय और युवकों की ऐसे व्यवसाय अपनाय के लिए प्रोत्साहित किया जाय जिनसे भविष्य तथा शरीर दोनों का विकास हो। हिन्दुओं को चाहिए कि वे अपने उन भाइयों के साथ समानता का व्यवहार करें जिनकी समान में निम्न स्थिति है। और सबसे अधिक महत्व की बात यह है कि वे हृदय से शुद्धि-आन्दोलन आरम्भ करें जिससे हिन्दुओं का अन्तर्गत में परिवर्तित होना रोका जा सके। वे पोलतार् हिन्दुओं को संगठित करने अर्थात् संगठन के द्वारा ही सफल बनायी जा सकती हैं।"³⁹ भाई परमानन्द जमशेदजी थे, किन्तु वे समाज की एक सामंजस्य व्यवस्था प्रेषण पथ के रूप में संगठित करने में निश्चय थे। वे चाहते थे कि साथ समान भी हिन्दू संगठन का नाम अपने हमों में ले।

रेमो बीनडोवट्ट के साम्प्रदायिक निष्पक्ष की पीषणा से हिन्दू समाज में उत्था-मुक्त मय

36 *Hindu Sangathan* (संगठन—पावन द्वारा हिंदी में अनुदित, मद्रास में प्रकाशित, मद्रास, 1936)।

37 सम्भवतः परमानन्द अतिशयोक्ति अतिशयोक्तता का समर्थक थे।

38 *Hindu Sangathan*, पृष्ठ 233-34।

39 *Hindu Sangathan*, पृष्ठ 190-91।

गयी। हिंदू महासभा की बहुत विशुद्ध हुई और अपने लिए यह स्थापना की गई। माई वरमा 17 नवंबर 1933 के अजमेर अधिवेशन का सम्पादकत्व किया। उन्होंने कहा "मेरा मत बन रहा है कि हिंदू विदेश के साथ स्वच्छता या सहयोग करेंगे, यदि जब भारत की राजनीतिक समस्याएं उनकी उन्नति और उत्थरण के लिए की गयीं हों।" माई वरमा ने कहा कि हिंदू महासभा के लिए यह एक बड़ा काम है। 15 नवंबर, 1937 को लिख हिंदू समाज में अपने अधिपति माई वरमा ने कहा "मुसलिम अधिपति का मत हिंदू की परमा निम्न निम्न अपनी जाति व हिंदी की रक्षा करने के लिए स्वच्छता है, किन्तु भारतीय अधिपति का मत के मुसलमानों के प्रति सम्मान के वाक्य की विचारित करने के लिए प्रतिज्ञा है, और इसलिए व मुसलमानों की सभी सम्पूर्ण हीन सभी सम्मान के भूत की कुछ करने के लिए स्वच्छता रखते हैं। हर निम्न सम्मान जानता है कि मुसलिम समाज के हिंदू यदि अपने हिंदू की रक्षा करना चाहते हैं और प्रतिष्ठा तथा आत्मसम्मान के साथ जीवित रहना चाहते हैं तो उन्हें हिंदू दल के अर्थ के नीचे सम्मान होना पड़ेगा।"

प्रकरण 5

विनायक दामोदर सावरकर

1. प्रस्तावना

विनायक दामोदर सावरकर (जन्म 28 मई, 1883) एक राष्ट्रवादी तथा बौद्ध धार्मिक और आत्मवादी थे। बीसवीं शताब्दी के आरम्भिक दशक में उन्होंने राष्ट्रिय राजनीतिक मामलों के द्वारा अनेक क्रांति प्राप्त कर ली।⁴⁰ उन्होंने 1906 से 1910 तक इंग्लैण्ड में अध्ययन किया और साथ ही साथ धार्मिकी वाक्यवाचक में भी सम्मिलित रहे। उन्हें यूरोप में भारतीय धार्मिकियों के नेता दामोदर कृष्ण वर्मा द्वारा प्रदत्त एक छात्रवृत्ति मिल गयी थी। किन्तु वे सावरकर की निराशा करते हुए दामोदर को एक पत्र लिख दिया था। इंग्लैण्ड में सावरकर की धीमे धीमे समा, समा दूरवास, सम्मान धीमे धीमे आदि अन्य धार्मिकियों से भेंट हुई। उन्हें पचास वर्ष के आरम्भ में एक वैदिक अध्ययन भेज दिया गया था, जहाँ उन्होंने अनेक वर्ष बिताये। 1923 में उन्हें अनेक से सावरकर रक्षाधिर की वेत में बंध कर दिया गया था।⁴¹ 10 मई, 1937 को उन्हें वास्तव में मुक्त कर दिया गया। तब से तब तक के जीवन के स्वच्छता दल में सम्मिलित हो गये और तब से हिंदू महासभा की सदस्यता भी बनाने की। वे महासभा की अपने धार्मिकी उन्नति तथा सुदमनीय स्वच्छता के अनुशासित कर देना चाहते थे।

सावरकर की हिंदू की सांस्कृतिक तथा धार्मिक उपस्थितियों पर बड़ा पत्र था। अपनी पुस्तक 'हिंदूत्व' में उन्होंने कहा कि हिंदू चिन्तन के "आत्म की प्रकृति के सम्मान में मानव चिन्तन की सम्मानताओं की ही नि गेप कर दिया है।"

2. सावरकर की भारतीय इतिहास की समस्या

अपनी 'हिंदू-वन्द-वादवादी' नामक पुस्तक में सावरकर ने भारतीय चिन्तन के उन्नति की राष्ट्रवादी समस्या की है।⁴² उन्होंने लिखा है कि मुसलमान विजय, आक्रमण, युद्ध तथा धनीय अन्त हिंस्रता की नीति का अनुसरण कर रहे थे। उनकी उन्नति की रोकने तथा देश की रक्षा करने के लिए ही महासभा ने राजनीतिक चिन्तन की सम्मानतापूर्वक प्रारम्भ किया था, और उनमें लिए देश

40. डॉ. डी. सावरकर, *My Transpositions for Life* (राष्ट्रियता व जीवन के काल में लिखित)। इसके अतिरिक्त वेचिते जीवन और द्वारा रचित *Savarkar and His Times* (वर्ष 77 मार्च 1950) तथा दस वर्ष के द्वारा रचित *The Marathi Biography of Savarkar*

41. दस के सभी 'Savarkar Brothers Young India', मई 26 1920।

42. डॉ. डी. सावरकर *Hindu Pad Padaksh* (बाहीर, सम्मान दस वर्ष)।

करना स्वाभाविक भी था।⁴³ सावरकर का कहना है कि बरादे हथकथन तथा बुद्धिहीनता से भी अधिन उत्पन्नोक्ति के आदेशवाद से अनुमानित थे।⁴⁴ उन्होंने सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि बरादे का राजनीतिज्ञ कला का सिद्धांत स्वयं और स्वयं के आदर्शों से अनुप्रेरित था। सावरकर ने बरादे राज्यतंत्र के औपचारिक कला की भी कुछ निराशा है।⁴⁵

(सावरकर उन चेतना में थे जिन्होंने सबसे पहले इस मत का प्रतिपादन किया था कि 1857 का तथान्वित सिपाही विद्रोह वास्तव में भारतीय स्वतंत्रता का प्रथम प्रयास था।) उनके मन में उस समय के बोद्धांधी के लिए अतिरिक्त धृष्टता और प्रज्ञा की आवश्यकता थी।⁴⁶

3 सावरकर का हिंदूत्व का सिद्धांत

सावरकर निरपेक्ष अधिष्ठा के पक्ष में कटु आलोचना के और उसे मित्रादि का पक्ष मानते थे। उनका कहना था कि सत्ता और देवदत्ता की दुनिया में सबकुछ हिंदू की अपमान की आवश्यकता नहीं रहती। हिंदू अन्तर्विरोध और भ्रष्टाचार से परित्रुप्त इस जगत में 'साम्राज्य की सभी हिंदू सभ्यता उत्थित है।'⁴⁷ यदि सत्तुष्ट, निष्का समग्रता में सुवर्णन किया गया है, आ आर्य और ईश्वर का राज्य मूर्खों पर साधारणतः ही आज तो उस समय हिंदू की भूमित अपराध और धोर पार अपराध ही मानना चाहिए। हिंदू "जब तब ईश्वरीय गुण नहीं आ जाता, जब तब निश्चयतः सत्त भविष्य की भविष्य और ईश्वर-अनुप्रेरित महारक्षा की भविष्यवाणियों तक ही सीमित रहता है, जब तब मनुष्य का मन पापमय तथा आध्यात्म उत्थिता का क्षमन करने में सत्ता हुआ है तब तब विद्रोह, उत्पन्न और प्रतिक्रिया की कुछ क्षमन नहीं रहता या सत्ता है।"⁴⁸ (इसलिए सावरकर उन चेतना और महापुरुष के नामों का उचित रहस्य है जिन्होंने 'साम के रक्षण हिंदू का माय अपनाना है। उन्होंने कहा है "इसलिए ब्रह्म की सत्ता पर धर्म है। इसलिए सिपाही का बचनका पुनित है। इसलिए दृष्टी की नाटिकों का उत्पन्न निष्पन्न पक्ष का माय है। इसलिए भारत प्रपक्ष का शिरोधार्य 'साम्राज्य काय है और विविध देश का माय ईश्वरीय है।"⁴⁹)

सावरकर ने हिंदू राज्य की सामूहिक तथा अवस्था एका की स्वीकार किया। वे हिंदू पुनरुत्थान के आदेश के मत में और हिंदूत्व की सामूहिक अर्थव्यवस्था में विश्वास करते थे। उन्होंने हिंदू समाज के वैदिक तथा सामाजिक पुनरुत्थान पर बल दिया। उन्होंने कहा "यदि हिंदूत्व मूलभूतगत मोक्ष की समस्याओं में तथा ईश्वर और विद्वत् सम्बंधी पारम्परिकों में व्यक्त है तो उसे रहने दो।" हिंदू पक्ष तक वैदिक और वैदिक जीवन का सम्बंध है, हिंदू समाज काव्य, सामाज्य इतिहास, सामाज्य भाषा, सामाज्य देश और सामाज्य पक्ष के द्वारा परस्पर आश्रय होने के कारण एक राज्य है। हिंदूओं का सामूहिक विनाश तभी हो सकता है जब उनके हितों और उनके उत्तरदायित्वों का एकीकरण हो जाय। अतः आवश्यकता इस बात की है कि हिंदूओं में व्याप्त पुनरुत्थान की आवश्यकता के स्थान पर अपने सामूहिक और सामुदायिक भावना का विकास हो।

(सावरकर का हिंदूत्व 1923 में प्रकाशित हुआ था।) वह आधुनिक हिंदू राजनीतिक विचारधारा की प्रसिद्ध पुस्तक है। इस पुस्तक में उन्होंने हिंदू की निम्नलिखित परिभाषा की है

आधिपत्य - हिंदू - पक्ष का मत भारतभूमिका

हिंदू पुनरुत्थान या वे हिंदुविधि समुह।

43 एन. एन. राय के अपनी पुस्तक *India in Transition* पृष्ठ 151, 52 पर बरादे की सत्ता के उत्थान की सामूहिक आस्था अनुप्राण की है। उनका कथन है कि बरादे 'राज्य' और सिपाही का उत्थान पुनर्जी के राज्य सामंजस्य का विद्रोह वैसी उत्पन्नता का बचने का प्रयत्न था।

44 *Hindu Pad Padshahi*, पृष्ठ 230।

45 वही पृष्ठ 208।

46 डॉ. डी. सावरकर, *The Indian War of Independence of 1857*

47 डॉ. डी. सावरकर का बरादे नाटक 'साम्राज्य प्रपक्ष'।

48 डॉ. डी. सावरकर *The War of Indian Independence of 1857*, पृष्ठ 273।

49 वही पृष्ठ 274।

50 डॉ. डी. सावरकर, *Hindutva*, द्वितीय संस्करण (पुना, 924, प्रकाशित 1942)।

[हिन्दू यह है जो सिन्धु नदी से समुद्र तक सम्पूर्ण भारतवर्ष को अपनी सितकृमि और वृष भूमि मानता है।]

हिन्दुत्व अथवा हिन्दू होने में तीन सभाष है। राष्ट्र अथवा प्रादेशिक एता पहला तत्व है। हिन्दू यह है जिसने मन में सिन्धु से ब्रह्मपुत्र तक और हिमालय से बंगालुमारी तक के समस्त भौगोलिक प्रदेश के प्रति अनुराग है। जाति अथवा रक्त सम्बन्ध दूसरा तत्व है। हिन्दू यह है जिसकी धर्मनिष्ठा में वह लीला का रक्त बहता है जिनका कुल स्रोत स्पष्टतः ब्रह्म सत्सत्सिधय के हिमालय प्रदेश में बसने वाली जाति थी। यह कोई जातिगत (मस्तरगत) स्पष्टता का सिद्धांत नहीं है। इसमें केवल इस तथ्य पर ध्यान दिया गया है कि शास्त्राध्याय के ऐतिहासिक जीवन के परिणामस्वरूप हिन्दुओं में ऐसी जातिगत विशेषताएँ विकसित हो गयी हैं जो अपनी, चीनीकी अथवा इथियोपियानों से भिन्न हैं। सावरकर लिखते हैं—“यद्यपि वे कोई ऐसा जनसमुदाय नहीं हैं जिनका वृषक जाति के रूप में मान्यता प्राप्त करने का दावा हिन्दुओं और यहूदियों के दावे से अधिक मान्यता हो। किसी हिन्दू से विवाह करने वाला हिन्दू अपनी जाति से अलग हो सकता है, किन्तु उसका हिन्दुत्व नहीं खोता या समाप्त। कोई हिन्दू किसी भी वैज्ञानिक, दार्शनिक अथवा सामाजिक व्यवस्था में विश्वास कर और उससे यह व्यवस्था छोड़े बहुत धार्मिक हो अथवा धर्म विरोधी, किन्तु वह यदि निर्विवाद रूप से देखा है और उसका स्थापक कोई हिन्दू है तो वह व्यक्ति अपने वंश अथवा सम्बन्ध से भले ही अलग हो जाय किन्तु उसे हिन्दुत्व—हिन्दूपन—में विलीन नहीं किया जा सकता। क्योंकि हिन्दुत्व की निर्धारित करने वाला सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व हिन्दू रक्त है। अतः वे सब लोग जो सिन्धु नदी से समुद्र तक बँते हुए भूखण्ड की अपनी सितकृमि मानते तथा उसमें डूब करते हैं और परिणामतः जिन्होंने उस जाति का रक्त विरक्तता में प्राप्त किया है जो सम्मिश्रण और रसांतरण की प्रक्रिया द्वारा प्राचीन सत्सत्सिधय के निवासियों से विकसित हुई है—उन सब लोगों के विषय में कहा जा सकता है कि उनमें हिन्दुत्व के दो सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व विद्यमान हैं।”¹ हिन्दू होने की तीसरी बड़ीसी संस्कृति है। जिस व्यक्ति को हिन्दू सम्प्रदाय और संस्कृति पर शक है वह हिन्दू है। हिन्दू संस्कृति उपलब्धियों और अक्षयलक्ष्यों की सामान्य स्मृतियों, सामान्य अक्षयलक्ष्य, साहित्यिक तथा विधिक रचनाओं और सामान्य अनुष्ठानों (कोहरी तथा सामुदायिक अभिव्यक्ति के अब मान्यता में स्थित हुई हैं। इसलिए जो लोग हिन्दू धर्म की त्यागकर मुसलमान और ईसाई बन गये हैं वे हिन्दू होने का दावा नहीं कर सकते क्योंकि वे हिन्दू संस्कृति की अंगीकार नहीं करते। इस प्रकार हिन्दुत्व के तीन अंग हैं—राष्ट्र, जाति तथा संस्कृति। सावरकर के अनुसार हिन्दुत्व की धारणा हिन्दुवाद (हिन्दुइज्म) की धारणा से अधिक व्यापक है। हिन्दुवाद हिन्दुओं की धर्मविश्वास तथा धार्मिक अनुष्ठानों का कोशक है। हिन्दुत्व में हिन्दुओं के धार्मिक निष्ठाकाय को सम्मिलित है ही, किन्तु वह उनसे भी परे की वस्तु है। जीवन के सामाजिक, नैतिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि सभी पहलु हिन्दुत्व में अंतर्गत हो जाते हैं। हिन्दुत्व वस्तुतः एक व्यवस्थी सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था का कोशक है और इस व्यवस्था की एकता प्रदान करने वाले तीन मुख्य तत्व हैं—भूमि, रक्त-सम्बन्ध तथा संस्कृति।

सावरकर की हिन्दुत्व कर्षात हिन्दू एतत्ता में वृष विस्मय है। उनका कहना है कि इस प्रतिबोधितामूलक जगत में कहा जनाय और जाति के लिए वषय जीवन के अनधिकृत्य तत्व बन हुए हैं, राष्ट्र का संघटन जीवित रहने का एकमात्र साधन है। सावरकर ने जिस हिन्दुत्व की धारणा की है वह केवल व्यवस्थी सामाजिक राजनीतिक एतत्ता की धारणा नहीं है बल्कि उसमें राष्ट्रवाद के मुख्य तत्व भी सम्मिलित हैं। यह एक वाचनम भी है। उसमें हिन्दुओं की एक दूसरे से वृषक करने वाली सभी दीवार ध्वस्त करनी हैं। सावरकर इस पक्ष में वे कि हिन्दुओं की सभी जातियाँ और उपजातियाँ में वास्तविक विवाह सम्बन्ध हो। वे जैनियाँ, सिक्ख, आर्यसामाजिक तथा ब्रह्मसमाजियों को भी हिन्दू समझना का अब मान्यता में। उन्होंने लिखा है—“हिन्दू राष्ट्र का संघटित करना और प्रतिपादी करना, किसी अहिन्दू चाई की बलि सत्ता में किसी

का भी, सब उन १ मताओं पर सब वि अपनी भूमि और जाति की "सामाजिक और सांस्कृतिक आत्मरक्षा का दायर १ उठ गया हो, तथा उन लोगों के प्रयत्नों को अनन्वय बना देना या देना के साथ विफलताएं करती पाएंगे।" अथवा उसे उन आ-पीतन के आक्रमण का शिकार बनाया जाएगा है जिसका उद्देश्य विदेशों के गणराज्य अथवा राज्यों तथा भी संपर्कित करना है और या आन मन महाद्विज के दूसरे में भी या विना सफल कर रहे हैं।" शासकत्व की सुप्रीमस्य की नीति में विस्वास नहीं था। उनकी हृदय आस्था थी कि परमाणु युगमाना के सहाय के बिना भी प्राप्त किया जा सकता है। उद्देश्य सुलभताओं से संपन्न रूप से बहुत "हिंदू अपनी राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिए अमान्यमान्य सफल करने रहने। यदि तुम साथ दत्त हो तो तुम से मिलकर सफल करेंगे, यदि तुम साथ नहीं दत्त तो तुम्हारे बिना ही सफल रहेंगे और यदि तुम विरोध करेंगे तो उस विरोध के फलस्वरूप तुम्हें जारी रहेंगे। शासकत्व हमारी है कि दत्त के लिए विरुद्ध स्वयं की उत्पत्ति आवश्यकता है।

साधनरत वा बहुता या नि हिन्दुत्व तथा राष्ट्रवाद के बीच परस्पर विरोध नहीं है। उल्टी विषय है। "हिन्दू" नाम भारतीयता हुए बिना अपना नाम साधन नहीं कर पाता। हिन्दुता के लिए हिन्दुताता विस्तृति तथा शुष्कभूमि है, इसलिए हिन्दुताता व विपक्ष उनका क्षेत्र असीम है। यही कारण है कि विविध धर्मों के पुत्र व उत्तर पौत्र व विपक्ष को राष्ट्रीय धर्म बन रहा है। जलम उल्टी की प्रभावता है। अहमदाबाद की भूमि के यहाँ हनुमन् विराट की दम तन्त्र की प्रति नई है।

गाबरकर या हिन्दुत्व कोई राजीब पथ नहीं है। यह मुझिवादी तथा कर्णभिन है। यह मानवतावाद तथा मानवीमवाद व भी विरुद्ध नहीं है। गाबरकर 7 सुवाराण के इस वाक्य को उद्धृत किया है "मेरा देश 'मनुष्य विषय हो मेरा देश है।" "द पन्थ" के सम्पादन साह द अलकैड का गाबरकर न किया था "मेरा विचारा है कि यमनि मानव जाति की सम्प्रदाय और मनुष्यवाद व द्वारा अर्थात् बड़े-बड़े राष्ट्रीय समुदाय के द्वारा अपने लक्ष्य की और अक्षर होना है, किन्तु वह लक्ष्य सम्प्रदाय नहीं हो सकता। अर्थात् लक्ष्य हो मानवतावाद है, उससे 'नून अथवा अधिन पुत्र नहीं। मनुष्य राजकीय विचार तथा राजा का आदेश मानव राज्य हाता चाहिए। पृथ्वी हमारी जन्मभूमि है, मानव जाति हमारा राज्य है और संप्रसारण तथा वलम्बा की समानता पर आधारित मानव सरकार हमारा अर्थात् 'राज्य' लक्ष्य होना चाहिए।"

सन्तानों में आरम्भिक वर्षों में छात्र-छात्राओं का प्राथमिक-शैक्षणिक एवं नैतिक आत्मविकास एवं जाति-
वादी के रूप में ही नहीं बल्कि एक बहुराष्ट्रिय दृष्टिकोण के रूप में भी हुआ था। इसीलिए
यद्यपि उनके हृदय में देश के लिए अगाध प्रेम था, फिर भी वे शीघ्र ही हिन्दू राष्ट्रवाद के ही
द्वेषी रहे। 1956 में स्वयं संसद के समय भारत में निर्राश्रितों की समस्या को उसका विरोध करते
छात्र-छात्राओं ने राजनीतिक क्षेत्र में एक सनसनी उत्पन्न कर दी थी। उनका कहना था कि पश्चिमी
एशिया के राज्यों में भारत की अरबों पायों की भी अति उपेक्षा नहीं होती।

सावरकर की मुक्ति बहुत ही कुशाग्र थी। उनके इतनी दूरदर्शिता थी कि 1857 के तत्कालीन सिपाही विद्रोह में राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम ने का बीज बो डाला जो बाद में सचोत्तम बनकर निकला था। अन्त में सावरकर स्वयं ने भी अपनी कुशाग्र 'जग इतिहास' में इस महान् विप्लव के राजनीतिक तथा राष्ट्रीय स्वरूप में सम्बोधन में इसी प्रकार का मत प्रकट किया है। देश के स्वाधीन होने के उपरांत भारतीय इतिहास की व्याख्या में सम्बोधन में नये सिद्धांत तथा क्रांतिवाद अपनाये जा रहे हैं और सावरकर की यह आज तक प्रसन्नता हुई होगी कि इतिहासवादा का एक सन्तत रूप 1857 के आन्दोलन की व्याख्या में सम्बोधन में भीर भीरे काही के इतिहासवादी की ओर आता था रहा है।

साधारणतः न हिन्दुत्व तथा हिन्दुवाद में आ भेद किया है वह राजनीतिगत सिद्धांत की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। हिन्दुवाद का सम्बन्ध मुख्यतः धर्म तथा धर्मविद्या से है। हिन्दुत्व एक राज-

नीतिगत धारणा है और उसमें अत्यन्त व्यापकता है। 'सैनिक', 'आर्थिक', 'राजनीतिक' और 'सांस्कृतिक' सभी पहलुओं का जल है। शासक-र 'ने' का भेद किया है जहाँ की मुख्यता का मैं मानना हूँ, किन्तु जहाँ की यह धारणा कि हिन्दू एक 'सामर्थ्य' शक्ति⁵³ है, ऐतिहासिक बमोटी पर गरी नही उतरी। भारतीय सामर्थ्य का सिद्धांत आर्थिक चिन्तन की ऐसी धारणा है जिसका गीतमाला बहुत बहुत सत्य है। पुनः है। शासक-र 'ने' हिन्दू की परिभाषा करने में विशेष ध्यान देने का परिणाम दिया है, किन्तु जहाँ इस बात पर गमोच्छात का विचार नहीं किया कि अपने मध्य विनिमित्त दत्त में हिन्दू का जीवनान्वित सिद्धांत तथा व्यवहार के साथ क्या सम्बन्ध होता चाहिए।

प्रकरण 6

साला हुरदमाल

साला हुरदमाल (1884-1938) नाज़िकारी राष्ट्रवाद के एक प्रमुख प्रवक्ता थे। 'रक्त विद्रोहविद्यालय'⁵⁴ में उन्होंने ज्ञान के रूप में अत्यन्त प्रतिभा का परिचय दिया, और फिर 1905 में भारत सरकार की एक छात्रवृत्ति प्राप्त करने अतिशय के लिए रवाना हो गए। यहाँ उन्होंने सेंट जॉन्स कॉलेज में प्रवेश लिया। इससे पहले में उन्होंने वे दसवीं कक्षा वर्षों के प्रभाव में आए।

इसलक्ष्य में साला हुरदमाल विरोधी सत्त्विति के सम्बन्ध में जाने के कारण हिन्दू धर्म के उक्त सम्बन्ध बन गये। उनका विचार था कि भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद की नीति अराष्ट्रीयकरण की नीति है, इसलिए उसने विद्रोह उन्होंने खुले आम विद्रोह का मन्त्रा उठाया। 1907 में वे स्वदेश छोड़, और कुछ समय बाद वापस चले गये। जुलाई 1908 में उन्होंने भारत की सेवा के लिए स्थापन किया। उस समय वे हिन्दू समाजियों का एक ऐसा मन्त्रा बसाया चाहते थे जो हिन्दू की श्रेष्ठता का प्रतिपादन कर सके।

यूरोप तथा अमेरिका में उन्होंने साला हुरदमाल के भारत की स्वाधीनता के लिए नाज़िकारी कामकाज़ का संगठन किया। 1911 में वे सेंट जॉन्स को छोड़ गए। वे देश की स्वाधीनता के लिए हिंसा का सम्बन्ध करने लगे। उन्होंने कमीनोविया के गदर पार्टी⁵⁵ की स्थापना की और उसके प्रमुख नेता बन गये। कुछ समय के लिए उन्होंने स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय में प्राध्यापक का भी काम किया। 1914 में जब उन्हें अमेरिका से निष्काशित करने की धमकी दी गयी तो वे श्वित्जरलण्ड चले गए। कुछ शरण लेने पर वे बर्लिन की भारतीय समिति में सम्मिलित हो गये। 1915 से 1917 तक वे बर्लिन स्थित भारतीय स्वाधीनता समिति में प्रमुख थे। कुछ के दौरान उन्होंने अपना समय अपनी तथा दूसरी में बिताया।⁵⁶ किन्तु बीमार हो उनकी के सम्बन्ध में उनका भ्रम दूर हो गया। फरवरी 1916 से नवम्बर 1917 तक उन्हें जर्मन सरकार के प्रतिबंध के अन्तर्गत रहना पड़ा। 1918 में वे स्वीडन चले गये। 20 फरवरी, 1919 को उन्होंने जर्मन सरकार से अपने सभी सम्बन्ध तोड़ लिये। उन्हें भारतीय जाति में जो आशा थी वह भी विराधार सिद्ध हुई। वह 1920 में अपने विचारों में बड़ा परिवर्तन आ गया, और वे इस बात का सम्बन्ध करने लगे कि भारतीयों की ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत क्या रहना चाहिए। बाद में वे इसलक्ष्य चले गये और अपना समय बौद्धिक कामकाज़ में बिताया। मध्य अमेरिका में उनकी मृत्यु हुई।

साला हुरदमाल की साधुधर्म के प्रति प्रभाव चरित थी, और देश की मुक्ति के लिए उन्होंने नाज़िकारी कामकाज़ की सम्बन्ध किया। किन्तु यूरोप में दीर्घकाल तक रहने तथा अपनी और भारतीय नाज़िकारियों के सम्बन्ध में उनका जो भ्रम था उसने दूर हो जाने के कारण उनके विचार बदल गये। इसलिए आज में वे इस बात का सम्बन्ध करने लगे कि भारत को फ्रीडम के साथ अपने सम्बन्ध बनाये रखना चाहिए।

53. श्री जी. शास्त्रकार, *Hindutva* पृष्ठ 111।

54. हुरदमाल ने 1903 में अलेक्सी विमथ के एक ए. बी. पी.एस. प्रथम श्रेणी के पास की थी। इसने वह उन्होंने विद्यालय में ही एक ए. बी. एस. की उपाधि प्राप्त करनी।

55. एन्कीविट्ज़ *The Gadar Heroes* (न्यूयॉर्क: सेन्ट्रल एन्कीविट्ज़ हाउस 1845)।

56. साला हुरदमाल, *Forty four Months in Germany and Turkey* (न्यूयॉर्क, एन. डब्ल्यू. एन. कम्प., 1920)।

यूरोप में रहकर सान्ता हरदयाल पाश्चात्य विज्ञानों के महत्व का समर्थन करते बने। उन्होंने लिखा: " आज के वेद सत्यमन्त्रास्त्र, बौद्धिबी, वैदिकी, मनोविज्ञान तथा समाजशास्त्र, ये बीच साधारणभूत विज्ञान हैं, और ज्योतिष, सूत्रास्त्र, द्रविड्यास्त्र, अथवास्त्र, राजनीति आदि इन विज्ञानों के अन्त और उपाग हैं। पश्चिम आज की सत्ताका ओर विज्ञानों की सम्मर्थन है। सभी ओर इसके दखन करो। अपनी कार्यप्रणाली में प्राचीन जड़ियों के चरम चिह्नों पर चलने का प्रयत्न मत करो, बल्कि जलिय के प्रगित के नये वाद्यों का प्रतिपादन करो।"⁵⁷ उन्होंने लिखा था कि पाश्चात्य विद्या का प्रसार सबसे व्याप्त अष्टहिन्दुता का अर्थ कर देना और उस काम को दुरा कर दिखानेवा जिसने लिख अक्षर ने अपने समय के इतना प्रयत्न किया था।⁵⁸ राजा राममोहन राय का स्मरण दिलाने वाली चीनी के हरदयाल ने लिखा था "इस सम्मर्थनका का उद्योग अर्थ नहीं हो सकता जब तक हमारे मुक्त और पुनर्निर्माण सही सही हिन्दू और मुसलिय धर्मविद्या और समाजशास्त्र के गढ़े वातावरण से निःसर करिष्ठ तथा विदेवा के निरुद्ध बौद्धिक परिवर्ष में रहने तथा निरुद्ध करने नहीं सकते। यूरोपीय विचार का अन्वयन भारत के लिए एक अर्थव्यवस्था औपनि का काम करेगा। वह हमारी आनन्दति की धीन करने वाले प्रवाद, प्रसन्न, निराशा और अकुशलता के विषय का वास्तव प्रतिकारण है। भारत की आधुनिक विचार के योग्य गैराध्य की उत्पन्न करेगा, निःपु वह सभी हा लैगा जब उसकी सत्तामें पाश्चात्य विद्या का आनन्दगत करेगा। जब तक हमारे सभी सम व्यक्ति प्राचीन जड़ों के सङ्कुचित एक मूल जगत में रहने में ही सन्तुष्ट हैं तो एक आधुनिक भारत में महान विचारक कैसे उत्पन्न हो सकते हैं? यूरोप की रहा है। भारत अथमरा है। सभी, हम यूरोप का अमृत लेना भारत की पूरा प्राणवर्ति पुन प्रदान करदे। 'मते दुरूपन न मुक्ति'।"

राष्ट्र के पुनर्जीवन की समस्या अनेक दशकों से बहुत ही महत्वपूर्ण रही है। विवेकानन्द और रामलील की भांति हरदयाल ने भी भारतीय चरित्र के सुधार की आवश्यकता पर बल दिया। उन्होंने कहा कि यदि राष्ट्र बरैलू तथा आर्थिक मामलों में अष्ट है तो हम देश को महान बनाने की आशा नहीं कर सकते। यदि भारत महान राष्ट्रों के सम्बन्ध स्वान प्राप्त करना चाहता है तो देश-वासियों की सत्यन्यासता, आत्मत्याग, सामाजिक मेतजोल तथा चारस्मरिण आत्ममेत का सबब सीखना पड़ेगा। चरित्र का पतन ही वास्तव में राष्ट्र के चरणच क लिए उत्तरदायी है। जिस राष्ट्र के सदस्य स्वार्थी, कामर तथा प्रमादी हैं वह जीवन के सषय में अथ राष्ट्र का सफलतापूर्वक पुनरुत्थान नहीं कर सकता। राष्ट्र के समग्र अवस्था जीवन के हर क्षेत्र में नहीं घेतना का सचार करता है। सान्ता हरदयाल ने अकुप्रेरिष्ठ शब्दों में लिखा था "कोरे राजनीतिक आदर्शन के अथवा राजनीतिक सूत्रों का आपन करने से किसी राष्ट्र को महान नहीं बनावा या सत्ता, क्योंकि राजनीति किसी राष्ट्र के जीवन का केवल एक अंग है। राजनीतिक आपवाही पत है, नैतिकता मूल है। राजनीति का नाम डारा हम राष्ट्र की नैतिक शक्ति का महान उद्देश्य के लिए प्रयोग कर सकते हैं। निःपु वह नैतिक शक्ति अथ विभिन्न शक्तों से उत्पन्न होती है। राजनीति स्वयं कोई रचनात्मक शक्त नहीं है, राजनीति नैतिकता पर निर्भर होती है, और नैतिक कुशलता का प्रसार राष्ट्रीय जीवन के अर्थ क्षेत्रों में भी आवश्यक है। अत नैतिकता राष्ट्र की आत्मा होती है, और व्यापार राजनीति, साहित्य तथा साहित्यिक जीवन समस्त शरीर है। नैतिकता समाज की साधुहिक दृष्टि की विविध अति-व्यक्तिता को समर्थन प्रदान करती है। यदि हमने नैतिकता से शुभ राजनीति की महत्व दिया तो समस्त नीतिवत् नि हम जात्यष्ट को समर्थन द्याने में पीछे बीट रहे हैं। उन्वकोटि की नैतिकता से विहीन राजनीति एक दिशावा मान है, और जिस राजनीति का दैनिक जीवन मुक्त नहीं है व अन्तरे हुए पीछल के बाजा और सन्तकवाते हुए सन्तीरो के अतिरिक्त कुछ नहीं है। राजनीति राष्ट्र के कम का एक अंग है, और नैतिकता उसका समग्र जीवन है।"⁵⁹ सान्ता हरदयाल की राजनीतिक विद्याओं में हमारा नैतिक तथा सामाजिक जीवन को नैतिक बनाने पर जो बल दिया गया है वही वास्तविकी के राजनीतिक दान की मुख्य विषय वस्तु है।

57 *Writings of Lala Har Dayal* (आत्मनै, स्वयं व जीवन दाज, 1920), पृष्ठ 138

58 वही पृष्ठ 151।

59 वही, पृष्ठ 24-25।

1925 में साक्षात् हुरदयाल ने अपने राजनीतिक दृष्टान्तों का भी योगदान दिया।⁶⁰ वे लिखते हैं "मेरी योगदान यह है कि हिन्दू जाति, हिन्दुस्तान तथा पञ्जाब का अविच्छेद्य इतना भार सम्भाल रहा है (1) हिन्दू सभ्यता, (2) हिन्दू राज, (3) मुसलमानों की मुक्ति, और (4) अल्पसंख्यकों तथा सीमांत प्रदेशों की विजय तथा मुक्ति। जब तक हिन्दू जाति इन भारों का पूरा बोझ नहीं उठाएगी तब तक हमारी सत्ताओं के लिए और हमारी सत्ताओं की सत्ताओं के लिए सब कुछ खत्म हो जाएगा और हिन्दू जाति की सुरक्षा अशुभ हो जाएगी। हिन्दू जाति का इतिहास एक है और उसका सम्पूर्ण एकता है। किन्तु मुसलमान और ईसाई हिन्दुओं से बहुत दूर हैं, क्योंकि उनके पास विश्वास है और वे ईरानी, अरबी तथा यूरपीय सभ्यताओं से प्रेरित हैं। अतः जिस प्रकार इन अपनी भाषाओं से विजातीय पदार्थ विनाश कर रहे हैं वैसे ही हम इन की धर्मों की मुक्ति करनी है। अल्पसंख्यकों तथा सीमांत क्षेत्रों में पञ्जाब प्रदेश प्राचीन भारत में भारत ने ही अब वे किन्तु अब वे इस्लाम के आधिपत्य में हैं। जिस प्रकार ईरान में हिन्दू धर्म प्रचलित है उसी प्रकार अल्पसंख्यकों और सीमांत प्रदेशों में हिन्दू सभ्यताई होगी यदि अल्पसंख्यकों को स्वतंत्रता प्रदान करने का निर्णय होना, क्योंकि यहाँ की जातियाँ सदैव मुस्लिम और यूरपीय हुमा करती हैं। यदि वे हमारी अनुमान जाती है तो मादिराह और जमाकराह का मुक्त आरम्भ हो जायेगा। यद्यपि समय में अल्पसंख्यकों को सीमांत क्षेत्रों में रहने हैं, किन्तु यह स्थिति सदैव नहीं बनी रहेगी। यदि हिन्दू अपनी रक्षा करना चाहते हैं तो उन्हें अल्पसंख्यकों तथा सीमांत प्रदेशों का जीवन ही बना और सब यहाँ की जातियों का समन्वय बनाना होगा।"

साक्षात् हुरदयाल यन्मौर आन्दोलन, भारतीय स्वाधीनता के निर्वाह सम्बन्ध तथा अल्पसंख्यकों के सम्बन्ध में। वे हिन्दू तथा बौद्ध धर्म के प्रकाश प्रकाशित थे। प्रकाश तथा निर्वाह के सम्बन्ध उनके जीवन की एक प्रवृत्ति थी। उनकी ईमानदारी, सत्यनिष्ठा और सदाशयता निर्विवाद है। भारत की महानता का सामना करते हुए उनके जीवन की सर्वोच्च भावना थी। कभी कभी ऐसा लगता था कि साक्षात् हुरदयाल के विचारों में भारी परिवर्तन हो गया है। प्रारम्भ में वे बहिष्कारी सम्प्रदाय के कटु आलोचक थे, बाद में वे उसी प्रवृत्ति बन गये। इतिहास ने यन्मौर विद्रोह से वे जाति के सम्बन्ध ही गये। किन्तु हिन्दुओं ने तथा भारत ने राजनीतिक द्वितीय के प्रति उनकी प्रति सत्य निष्कलक रही। उनके पश्चात् की-सी दूरदर्शिता थी और वे सदैव देश के पक्ष का समर्थन करते रहे। इसी रूप में उनका सर्व सम्मान किया जायगा।

प्रकरण 7

केदारधर शिरोमणी हैडगेवार

1. प्रस्तावना

श्री केदारधर शिरोमणी हैडगेवार (1890-1940) राजनीतिक उन्मुखता नहीं थे, किन्तु उनके अत्यन्त सभ्यता भाव तथा प्रकाश भावनिष्ठा थी।⁶¹ 1910 में वे मेसोपोटामिया की जाति बल्लारों के विद्रोह के विचारों से और एक एक की जाति के लिए लड़ाई कर रहे थे। उसी समय से वे भारत की राजनीतिक स्थिति का विवेचन करने लगे थे। उन दिनों उनका सम्बन्ध अहिंसावादी इतना था। अतः समय में उनका सम्पूर्ण दृष्टिकोण अहिंसा और अहिंसा के लिए था। 1922 में वे एक निष्पक्ष पर पहुँचे कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के लक्ष्यों में मुसलमानों की और उनकी अधिक मुक्ति का रही है कि उसकी नीति के हिन्दू सभा के लिए अहिंसा अहिंसा ही गया है। इसलिए 1925 में विजयवासी के दिन उन्होंने राष्ट्रीय स्वतंत्रता के रूप में स्थापना की। हैडगेवार अनेक वर्षों तक हिन्दू महासभा के अध्यक्ष रहे। 1930 में उन्होंने उस दल से अपना सम्बन्ध तोड़ दिया। वे सत्यशोधक के प्रतिष्ठित मित्र थे। उन्होंने नागपुर में 'स्वातंत्र्य' नामक एक दैनिक पत्र भी प्रारम्भ किया था, किन्तु सरकारी दमन के कारण उसका प्रकाशन बन्द करना पड़ा। 1930

60. हुरदयाल की जीवनी साक्षात् के द्वारा मैं प्रकाशित हुई थी।

61. श्री केदारधर शिरोमणी हैडगेवार (नागपुर 1943) जीवनी प्रकाशित। हैडगेवार का जन्म 1890 में हुआ था। 1910 में उन्होंने मेसोपोटामिया की जाति बल्लारों से प्रेरित किया।

में उन्होंने असहयोग आन्दोलन में भी भाग लिया और वे कारागार में जल दिये गये। 1940 में उनका वैवाहिकान हो गया। सबसे उनके पिप्प तथा अनुयायी 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ' का काम जमाते आये हैं।

2 हैन्दोवार के राजनीतिक विचार

डॉ हैन्दोवार पर शिवाजी तथा अन्य बराबर नेताओं के कायकमान का बहुत प्रभाव पड़ा था।⁶² उन्हें वैराग्य आजीवन श्रम द्वारा प्रतिपादित 'हिन्दू पद-प्राप्तार्थी' के आदर्श से सम्पूर्ण प्रेरणा मिली थी।

हैन्दोवार ने 1925 में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की स्थापना की।⁶³ उसका मुख्य उद्देश्य हिन्दुओं में नैतिक अनुशासन की भावना जगाना, और उनकी सामाजिक चेतना की अल प्रदान करना था। यह पारिवारिक अर्थ में 'राजनीतिक' संघ नहीं था। हैन्दोवार को शक्ति में विश्वास था, और वे हिन्दू जनता में शारीरिक तथा सांस्कृतिक स्फूर्ति उत्पन्न करना चाहते थे। स्वतन्त्र और विवेकपूर्ण की शक्ति उन्होंने शारीरिक तथा नैतिक शक्ति को परभावपूर्ण माना। किन्तु व्यक्तिगत शक्ति के अतिरिक्त वे हिन्दुओं को संघ की भावना से उत्प्रेरित करना चाहते थे। सामानिक एकता और मुक्तता का उनकी चिन्ताओं में मुख्य स्थान था, क्योंकि शक्ति एकता से उत्पन्न होती है और अनुशासन शक्ति का आधार है।

हैन्दोवार हिन्दू समाज का विनाशकारी विपटन देखकर बहुत दुःखी हुआ करते थे। हिन्दू समाज विभिन्न जातियाँ, पंथ और सम्प्रदायों में विभक्त हो गया था। जाया, धर्म, जाति आदि के भेदों ने विपटनकारी तत्वों को पराजय पर पहुँचा दिया था। इसने हिन्दुओं को राजनीतिक दृष्टि से बहुत दुर्बल बना दिया था। हैन्दोवार का कहना था कि आधुनिक संघ के कारण हिन्दुओं की शैक्षिक राजनीतिक आस्था का सामना करना है। अतः आवश्यक है कि ऐसे सामुदायिक जीवन का निर्माण किया जाय जिससे हिन्दुओं में परस्पर एकता और मुक्तता का विकास हो। गहरे सामुदायिक सम्बन्धों की रचना अतीत में और भी गहनता की चेतना के द्वारा ही की जा सकती है। प्राचीन क्षत्रीय, सामानिक तथा पाण्डित्य नेताओं और राजनीतिक वीरों की अवलम्बियों की स्मृति का निरन्तर ही इस प्रकार की चेतना के मजबूत वाक्यों का निर्माण कर सकती है। इसलिये अनेक हिन्दू के हृदय में हिन्दू संस्कृति के महान् नेताओं का स्मरण करते भावनात्मक उन्मत्त की अनुभूति होती चाहिए। केवल शैक्षिक एकता राष्ट्रीयता का तार नहीं है, बल्कि परम्पराओं द्वारा विकसित कुछ सांस्कृतिक मान्यता के प्रति विश्वास भी आवश्यक है।

हैन्दोवार ने राजनीति की प्रचलित विचारधाराओं और वादप्रवादों को अस्वीकार नहीं किया। इसने विपरीत उन्होंने संस्कृति पर अधिक बल दिया। उनके अनुसार संस्कृति में जीवन के सभी पहलू समाविष्ट हैं। धर्म, राजनीति तथा अर्थशास्त्र भी संस्कृति के अंग हैं। अतः राष्ट्र के बहु-मुखी विकास के लिए बिना पवित्रीत उत्साह की आवश्यकता है उसको सभी उत्पन्न किया जा सकता है जब सांस्कृतिक एकता के लिए सभी सम्भव उपाय लिये जायें। हैन्दोवार यह नहीं चाहते थे कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का संगठित राजनीति से कोई सम्बन्ध हो। इस विषय में वे निरपेक्षता अर्पित थे। उनका विश्वास था कि समस्या का मूल सांस्कृतिक पुनरुत्थान और नवीन स्फूर्ति है। हिन्दुओं का नैतिक तथा सामानिक पुनरुत्थान सभी हो सकता है जब हिन्दू समाज की जो कि ऐतिहासिक उत्पत्ति-पुनर्जात के आकाश नीतिगत रहा है, स्वयंसेवक की भावना तथा पवित्र निष्ठा से सेवा की जाय।

डॉ हैन्दोवार मानते थे कि हिन्दुस्तान हिन्दुओं का है। हिन्दुओं में क्षीनता की जो मनोवैज्ञानिक शक्ति यह रही थी उसके लिए हैन्दोवार उन्हें पुनः जगाना चाहते थे। वे इस बात की निर्माण घोषणा चाहते थे कि हिन्दुस्तान हिन्दुओं का है।

62 विवाही ने जयसिंह की आ पद लिया था उनके उन्हें खुशी देना मिली थी।

63 डे ए. गुप्ता और ए. ए. ए. *Militant Hinduism in Indian Politics A Study of the R S S* (पुणे, इन्स्टीट्यूट ऑफ इतिहासिक शोध, 1951)।

दुर्लभभाववादी प्रवृत्तियाँ राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की विचारधारा में ही नहीं, बल्कि उसी वाक्यप्रवाहनी में भी देखने को मिलती थी। जनता संघ ने प्रति जो सम्मान प्रदत्त किया जाता था वह बुद्धिवादी और त्याग के उन आदर्शों से प्राप्त एकात्म्य या प्रकीर्ण या जिनकी शिक्षा हिन्दू धर्म पर से देता आया है। संघ ने अपने समकाल के निर्माण में धृष्टता की लोकतांत्रिक प्रक्रिया का नहीं का नाया। संघ का प्रमुख, जो सरसवचातक कहलाता है, लोकतांत्रिक ढंग से निर्वाचित नहीं चित्त जाता। सरसवचातक स्वयं अपने उत्तरदायित्वारी को नामनिर्देशित करता है। संघ के प्रमुख का नाम निर्देशित करने की यह परंपरा उस पुरानी हिन्दू परम्परा से अनुप्राणित है जिसने मनगात अर्थात् सिक्क प्रमुख अपने उत्तरदायित्वारी को नामनिर्देशित किया करता था। संघ के नेतृत्व का मूल फेलो मूलन है, न कि लोकतांत्रिक प्रवृत्ति द्वारा निर्वाचित। लोकतांत्रिक प्रक्रिया के इस अभाव की देव वर ही पक्षी-कभी सोच यह देखे हैं कि संघ में काशीवादी छल विद्यमान है। किन्तु 1949 के प्रति धान के अनुसार संघ की संरचना में कुछ अन्तर्गत में लोकतांत्रिक सिद्धान्त की अंगीकार कर दिया गया है। संघ कहा जा रहा है कि संघ की आसक्ति वाक्यप्रवाह अर्थात् भारतीय प्रतिनिधि गया है। सरसवचातक इसी संघ के द्वारा चुना आया है, और वह अपनी सम्पूर्ण वाक्यप्रवाह की विस्तृत करता है जो के के एम कहलाती है। संघ के संविधान के अनुसार सरसवचातक उस समय की के के एम की सम्पत्ति से अपने उत्तरदायित्वारी को नामनिर्देशित करता। इस प्रकार सरसवचातक 'वाक्यप्रवाह और धर्म प्रदत्तक' है, जबकि संघ का सर्वोच्चानिक प्रमुख सरसवचातक है। किन्तु संघाल प्रतां अभी भी निर्वाचित विचारों के बाहर से चुने जाते हैं। 1948-49 में संघ के कुछ कार्यकर्ता ने आरोप लगाया था कि वह एक ऐसा का निर्माण कर रहा है हिन्दू साम्राज्यवाद का विष फैला रहा है और वह हिंसा द्वारा सरकार को उलट देने का विचार कर रहा है। किन्तु वे आरोप बोरे वाक्यप्रवाह और बे-सिद्ध पैर के सिद्ध हुए।

3 निष्कर्ष

हैकलेवार की राजनीतिक विचारधारा सम्पूर्ण दुर्लभभाववादी प्रवृत्तियों से अनुप्राणित है। उसने मौलिक राजनीतिक विचार नहीं हैं। उसमें हिन्दुता की सांस्कृतिक और सामाजिक एकाता पर जो बल दिया गया है बड़ी प्रकृति शक्ति का सोच है। वह हिन्दू संघाल का विस्तृत पाठ्याधिक जीवन के आदर्श पर आधारित करने का दावा करता है। उसे हिन्दू संस्कृति की श्रेष्ठता के विश्वास है, और वह हिन्दू समाज में इस्लामी, ईसाई तथा पाश्चात्य धर्मों की समाधिष्ट करने के विरुद्ध है। उसके अनुसार साहित्यपूर्ण और दीर्घ बात एक संघाल का धर्म करते ही राष्ट्रीय पुनर्निर्माण का मूल प्रयत्न किया जा सकता है। उसका उद्देश्य ऐसे मुद्दों पर विचार का निर्माण करना है जो अपने चरम पर देशभक्तिपूर्ण जीवन की प्रतिष्ठाओं को सहन कर सके। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का दावा है कि उसका राजनीतिक उद्देश्य अभी नहीं रहा।

प्रकरण 3

श्यामाप्रसाद मुखर्जी

1 प्रस्तावना

श्यामाप्रसाद मुखर्जी (1901-1953) प्रतिभाशाली व्यक्ति थे, और उन्होंने जीवन के अनेक क्षणों में महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ प्राप्त कीं। वे मध्य वैरिटर और वक्ता थे। 1934 से 1938 तक वे कलकत्ता विश्वविद्यालय के कुलपति रहे, और हिन्दू महासभा के अध्यक्ष पद पर भी उन्होंने कार्य किया। जनता जन 6 जुलाई, 1901 को हुआ था, और 23 जून 1953 को उन्होंने 52 वीं जन्मदिन मनाया। 1947 से मध्य 1953 तक वे केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल के सदस्य रहे।¹ उन्होंने भारत तथा पाकिस्तान के बीच हुए विभिन्न सम्झौतों से अलग कर नेहरू मन्त्रिमण्डल के स्थापना में दिया। जून 1953 में नयी दिल्ली एक वाक्यप्रवाह में उनकी दुःखद मृत्यु हुई जिसने उनके व्यक्तित्व की एक चरम आभा प्रदान कर दी है।

मुकजी 1937 में बंगाल विधान सभा के सदस्य चुने गये थे। उन्हें बी बी सावरकर के व्यक्तित्व से विशेष प्रेरणा मिली और 1939 में वे हिंदू महासभा के सदस्य बन गये। 1941 से 1945 तक वे हिंदू महासभा में अध्यक्ष रहे। 1943 में उन्होंने हिंदू महासभा के अमृतसर अधिवेशन का आयोजन किया। 1941 में वे बंगाल में रॉ जमण्डल में, जिससे मुजरा भी फलसुत हुए थे, सम्मिलित हो गये। भारत का पब्लिक और नौकरशाही रॉ जमण्डल से पुनर्गठित तथा सामान्य प्रशासन सम्बन्धी मामलों में हस्तक्षेप किया करते थे, इसलिए 1943 में मुजरा ने रॉ जमण्डल से त्यागपत्र दे दिया। उस अवसर पर समाचारपत्रों की एक बैठक में हुए उन्होंने कहा कि राष्ट्रीय स्वायत्तता, शिक्षा इतना बोल पीटा जा रहा है, एक मसौदा है। 1946 में मुकजी संविधान सभा के सदस्य चुने गये।

30 जनवरी, 1948 में दिन महारत्ना बाबा की हत्या कर दी गयी। उसने बाद मुकजी के आदेश से हिंदू महासभा ने अपनी राजनीतिक कार्यवाहियां तुरंत बंद कर दीं। विष्णु 24 नवम्बर, 1948 की मुकजी ने स्वयं महासभा की कार्यसमिति से त्यागपत्र दे दिया। 29 दिसम्बर, 1948 को महासभा ने राजनीतिक मामलों में पुनः काम करना प्रारम्भ कर दिया।

मुकजी कमबोर् से, न कि निरोध मित्रतावादी। 1951 में उन्होंने भारतीय जनसंघ की स्थापना की जो दक्षिणपंथी हिंदू राजनीतिक विचारों और आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करता है। सच में पाकिस्तान के प्रति 'कटोरे' नीति अपनाते का सम्मान किया और रियायत देने की प्रवृत्ति को खारज कर दिया।⁶⁵ अर्थिक मामलों में सच का दृष्टिकोण अनुदार था। निर्वाचन आयोग ने जनसंघ की चार अखिल भारतीय बला में स्थान दिया है। 1957 के चुनाव में सच ने लोकतांत्रिक में चार और राज्यों की विधान सभाओं में द्विपक्षीय स्थान प्राप्त किया।

2. समाजवाद मुकजी के राजनीतिक विचार

मुजरा भारत में विभाजन की कमी अस्वीकार नहीं कर सके।⁶⁶ वे विभाजन को एक गम्भीर भूल और बारी दुर्भाग्य मानते थे। वे चाहते थे कि भारत और पाकिस्तान का शांतिमय तरीके से पुनः एकीकरण किया जाय। वे पुनः एकीकृत भारत के लक्ष्य पर निष्ठापूर्वक दृढ़ रहे।

मुजरा की हिंदू संस्कृति की घेष्ठता में विश्वास था। 30 नवम्बर, 1952 को उन्होंने सच को एक मापन दिया। उसने उन्होंने बुद्ध के शांतिपूर्ण मार्ग की प्रशंसा की और दक्षिण के राष्ट्रों के बीच एकता तथा अनुयायन की आवश्यकता पर बल दिया। एक राजनीतिक विचारक के रूप में मुकजी हिंदुत्व की एकता को अधिक महत्व दिया करते थे। 1944 में मुजरा ने दिल्ली में हुए पाचवें आर्य सम्मेलन की अध्यक्षता की। उस अवसर पर अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने इस बात का समर्थन किया कि जो व्यक्ति, शत्रु तथा वन भारत की स्थापना के लिए प्रतिबद्ध है और मुस्लिम लीग की पाकिस्तान की मांग के विरुद्ध है वे सब मिलकर एक देशव्यापी गठबन्धन गठित कर सकते हैं। विष्णु उनका मान और गहनपथिक और अध्यवहार सिद्ध हुआ। मुजरा की इस बात में बड़ी सत्यता थी कि हिंदू संस्कृति के मुख्य नैतिक तथा यौक्तिक दृष्टि से बहुत ही प्रगतवादी और गन्तव्यवादी है।⁶⁷ वे चाहते थे कि देश की शिक्षा नीतिवा इस दृष्टि से निर्धारित की जाय जिससे भारत में प्रमुख संस्कृतिवा गुरुओं की रक्षा हो सके। 13 दिसम्बर, 1952 को दिल्ली विश्वविद्यालय में अपने दोस्तों के भाषण में उन्होंने भारतीय विश्वविद्यालयों की स्थापना का समर्थन किया।

परमाण्व की नाति मुकजी की पक्षा और बंगाल की राजनीति में पुनर्गठन के उद्देश्य हृदय प्रभाव से व्यक्त थे। इसलिए संघर्ष में वेधमति में मिली से कम नहीं थे, फिर भी वह कावस

65 समाजवाद मुकजी, *Wily Bhartya Jan Sangh* (दिल्ली: भारतीय जनसंघ, 1951)।

66 समाजवाद मुकजी, *Integrate Kashmir* (लखनऊ, की उत्तरावध, 1953)।

67 का मुकजी का 1937 में लखनऊ विश्वविद्यालय में किया गया व्याख्यान था। उन्होंने कहा कि उत्तरावध तथा कावस महासंघीय पाकिस्तान कागुनि के लक्ष्य हैं। उन्होंने कहा, "भारत की शांति भारत की शांति का लिए उत्तरावधी नहीं है। जब संस्कृति का द्विपक्षन व अर्थन में तथा द्विपक्षन व उस चार प्रभाव हुआ है, हिन्दू संस्कृति की शांति की शांति प्रवृत्ति पुनर्गठन हुआ हुई है।

की मुसलमानी के प्रति रिश्तावादी की नीति से बाई सहानुभूति नहीं थी। 1944 में महात्मा गांधी के साथ बार्तालाप में उन्होंने राजनीति के प्रस्ताव का विरोध किया। 1945 में उन्होंने बंगाल छोड़ने का भी विरोध किया।

मुन्शी चाहते थे कि देश के लिए एक व्यापक औद्योगिक नीति अपनायी जाय जिससे बा, गन्धक, तथा लघु उद्योगों का समुचित विकास हो सके। अखिल भारतीय जनता के उद्घाटन तथा रोह में अक्सर वह अपने अध्यात्मिक भाषण में उन्होंने इस बात पर बल दिया कि व्यक्तिगत सम्पत्ति की अन्तर्परीय और पवित्र माना जाय।

प्रकरण 9

कृष्णचन्द्र भट्टाचार्य

1 प्रस्तावना

कृष्णचन्द्र भट्टाचार्य (1875-1949) बहुत ही दुरर्ध प्रकार के गीर्वाण और वेदाङ्गी उन पद्धति के प्रचारक प्रकृत थे। उन्हें हिन्दू जीवनरसम में गहरी आस्था थी। उन्होंने वेदाङ्ग, साम्य तथा योग पर भाष्य तथा समीक्षात्मक विचार व्यक्त हैं। उन्होंने वैदिक के 'अनेकात्मवाद' सिद्धांत पर एक निबन्ध लिखा किन्तु बौद्ध धर्म और यज्ञ पर उन्होंने कुछ भी प्रभावित नहीं किया। उन्हें एक सूक्ष्मदर्शी साधनिक के रूप में भी उच्च पर माना है और उन्होंने हिन्दुओं के वैदिक, धार्मिक तथा सामाजिक दृष्टियों का भी समर्थन किया है। उसी के कारण वे भारतीय राजनीतिक सिद्धांत के इतिहास में स्थान पाने के अधिकारी हैं। यद्यपि उन्होंने 'राजनीतिक' सिद्धांत की शास्त्रीय समझाया का विवेचन नहीं किया है, किन्तु उन्होंने 'विचारों के स्वरूप' की धारणा का समर्थन किया है। उनकी स्वतन्त्रता सम्बन्धी स्थान पर धारणा का राजनीतिक महत्व भी है।

जीवन के सम्बन्ध में भट्टाचार्य ने वेदाङ्गी दृष्टिकोण अपनाया। उनके अनुसार वेदाङ्ग की धर्मविद्या अथवा कर्मशास्त्रक तत्त्वज्ञान का कोई महत्त्व सम्बन्ध नहीं है, बल्कि एक जीवन दर्शन है जिसका धारा के लिए ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व के लिए सम्भीर महत्त्व है। उन्होंने लिखा है "अब यह सत्य नहीं है अब वेदाङ्ग जैसे दर्शन का एक धर्मशास्त्री के ज्ञान के साथ सम्बन्ध किन्ना प्राप्त, सम्बन्धित ऐसा करने की आवश्यकता भी नहीं है। हाँ, कर्म-धर्म उन लोगों को बंध करने के लिए नहीं ही ऐसा करने की आवश्यकता हो जो उनके विषय में पुण्य अर्पित होने पर भी ज्ञानाह भूतक ज्ञान का दर्शन करते हैं। जिस लोग को वेदाङ्ग में बंध माना है उन्हें भी उनके समर्थन में धर्मशास्त्रीय महत्त्व का परिचय नहीं देना चाहिए। इस सम्बन्ध में मैं कम से कम इतना यह कहता हूँ कि ऐसा करना बुद्धिमानी नहीं है, क्योंकि वेदाङ्ग की धर्मविद्या के अन्तर्गत में पत्नीयों का कर्म यह होता कि धर्म के दिग्गम के सभी लोग उनके विचारों का मान लें, और वह सब के लिए विस्तृत के मत में रूप मानना। अपने दर्शनधारण को परिचयनाओं का निर्माण भोज साथ समर्थन उपलब्ध नहीं है। यह एक मान्यता व्यवस्था है, और यह वस्तुगत होने का किन्ना ही प्रयत्न करना न करे, उसका अपना मुक्तिविकृत विनिष्पन्न है। अब यह नहीं सम्भवता चाहिए कि दर्शन सिद्धांतकाही दर्शन विवेचनाओं की विनिष्पन्न सम्पत्ति है जिसे वे दृष्टानुसार वास्तविकता पर सामनीय मता के रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं, वह वास्तव में जीवन का ही एक रूप है, इसीलिए उसे साहित्य की एक ऐसी विषयवस्तु सम्भला चाहिए जो अनुस्यू धारिता को अनिश्चित आनन्द प्रदान कर सकती है।"¹

2 भट्टाचार्य का तत्त्वज्ञान

भट्टाचार्य ब्रह्म के सम्बन्ध में वेदाङ्गी धारणा को स्वीकार करते हैं। ब्रह्म शाश्वत सत्ता है और साधारणक तथा असाधारणक विचारों के परे है। ब्रह्म ही वेदाङ्ग की नीति उन्होंने स्वीकार की सम्बन्ध हो जाता है। परब्रह्म सभी प्रकार के का साधारण है, अथवा साहित्यिक भाषा में कहा जा सकती अलिखित आत्मनिष्पत्ता ही सत्य है। विवेक

एक है वही निरपेक्ष स्वतंत्रता है। ये लिखते हैं, "इस कथन में कोई सार नहीं है कि वही सत्य, स्वतंत्रता और मूल्य की एकता है। यह इनमें से प्रत्येक वस्तु है, इनका प्रत्येक प्रत्येक उत्प्रेषण किया जाता है, किन्तु न वे प्रत्येक हैं और न एक। सत्य की सैद्धांतिक चेतना उस सत्य की चेतना है जो स्वतंत्रता के रूप में स्वयं के भिन्न है और जो स्वरक्षित आत्मनिष्ठता अथवा मूल्य से भिन्न है। धर्म-सुश्रुति से प्राप्त सत् से परे परम सत् एक बाह्यारम्भक सत्ता (सत्य) है अथवा भावात्मक अस्त (स्वतंत्रता) अथवा वह इनकी (सत्य और स्वतंत्रता की) भावात्मक निर्विकल्पकता (मूल्य) है। अद्वैत वेदांत ने परम सत् न आधुनिक सत्य के रूप में वर्णित किया गया है। जिसे विभिन्न नामों में प्रवर्णादी श्रीरक्षक कहा जाता है वह प्रकट रूप में परम सत् को स्वतंत्रता मानता है। हेगेल का परम सत् निर्विकल्पकता का द्योतक है, जिसे प्रभवस्य धर्म और स्वतंत्रता का, जो कि मूल्य है, लाक्षणिक कहा जाता है। ये सब विचार दर्शन के अनुभववादी स्तर के सम्बंध रखते हैं।⁶⁹ प्रज्ञा की उच्चतर सति का परमेश्वर और ईश्वर की निम्नकोटि का देवता मानना भावना है, यद्यपि दार्शनिक सिद्धि की दृष्टि से यह बड़ा पवित्र है कि ईश्वर की अनुसृष्टि सविशेष समाधि में जीर प्रज्ञा की अनुसृष्टि निर्विकल्पक समाधि में होती है।⁷⁰ अपनी परमती रचनाओं में से एक में महात्मा ने कहा था कि परम सत् "चेतना तथा अतस्तु की निहिततत्त्वक द्रव्यता से मुक्त है।"

महात्मा ने वाद के अंतर्विरोधवाद का खण्डन किया। उनसे अनुसार परम सत् हीम है, यद्यपि उस चिन्तन के प्रत्यक्षारम्भक प्रवर्णों में नहीं पाया जा सकता। ये चेतना की धार वैज्ञानिक स्वीकार करते हैं, और उनके अनुसृत चेतना की धार अतस्तुता की मानते हैं। ये अतस्तुतुर् ही विज्ञान और दर्शन की विषयवस्तु हैं। उह इस प्रकार ध्यक्त किया जा सकता है

- | | | |
|-------------------------------|------------------------------|----------------------|
| (क) सैद्धांतिक चेतना की धनिया | (ख) चेतना की अतस्तुतुर् | (ग) चिन्तन तथा दर्शन |
| (1) मानुषाधिक विचार | (1) अनुभवमूलक वस्तु | (1) विज्ञान |
| (2) शुद्ध वस्तुगत विचार | (2) आत्म अवशिष्ट शुद्ध वस्तु | (2) वस्तु-दर्शन |
| (अथवा चिन्तनात्मक विचार) | | |
| (3) आध्यात्मिक विचार | (3) वास्तविक वैयक्तिक विषय | (3) आत्मा का दर्शन |
| (अथवा मौलिक विचार) | | |
| (4) विश्ववादी विचार | (4) परम विश्ववादी सत् | (4) सत्य का दर्शन |

अनुभवमूलक वस्तु और आत्म-अवशिष्ट शुद्ध वस्तु में समान्य नहीं भेद है जो वाद में लाघात विषय (इन्द्रियगत वस्तु) और वस्तु स्वयं के बीच माना है। आध्यात्मिक और विश्ववादी के बीच भेद आध्यात्मिक जीवन की कोटिया के भेद की स्वीकृति पर आधारित है। हेगेल के अनुसार आत्मा अन्तिम सम्बन्धायाम सत्य है, प्रकृति तथा हेतु विद्या का सम्बन्ध है। महात्मा ने आध्यात्मिक तथा विश्ववादी के बीच जो भेद किया है वह अरविन्द के आध्यात्मिक तथा परमाण्विक के बीच भेद के सदृश है।

महात्मा का विद्वान्त है कि परमज्ञा की अवतता में नित्य विधि तथा प्राकृतिक विधि का सम्बन्ध हो जाता है। इससे वेदांत ने इस परम्परागत सिद्धांत का खण्डन होता है कि प्रज्ञा नैतिकता से परे है। परम सत् (परमज्ञा) में नित्य विधि का विचार नहीं होता बल्कि वह (नित्य विधि) प्रकृत्य का प्राप्त कर लेती है। महात्मा लिखते हैं "ईश्वर नित्य चेतना का सर्वोच्च रूप है वह सभी सुखिम्य सत्य की एकता है। यह वचन आचार्यों का ही सत्यवती नहीं है, यति प्रकृति का भी सत्यवती है यह सत्य जो उनसे सभी के अनुसृत अनुसृत प्रधान करता है। यह नैतिक विधि तथा प्राकृतिक विधि का समुक्त अवयवी है। प्राकृतिक विधि नैतिक विधि का पुनर्याम है। ये दोनों अथवाप्रकृति के, जिसमें परमप्रकृति अन्तर्गता है, शास्त्रिक और सामाजिक का भेद।"⁷¹

69 एम राधाकृष्णन् (अन्य) *Contemporary Indian Philosophy* पृष्ठ 124।

70 इन्द्रकान्त महात्मा, *Studies in Philosophy* वि० 1, पृ० 49।

71 इन्द्रकान्त महात्मा, *Studies in Vedantism* पृ० 37 (प्रकाशित विचारविधान, 1909)।

3 स्वतन्त्रता का सिद्धांत

महात्माय न स्वतन्त्रता की अत्यधिक सम्मति और सम-व्यक्तता प्राप्त हुई थी।⁷² वेदांत से उन्होंने यह विचार ग्रहण किया है कि हम जल्द ही अग्रिम साधु विपदाओं और निर्धनता पारण से अपने को मुक्त करना और आत्मा की आन्तरिक शक्ति का परम को देखना करना ही स्वतन्त्रता का सार है। वेदांत का ज्ञान इस बात पर है कि मनुष्य की परमात्मिका साधना और अनुशासन की सम्मति अन्तर्मुखी तथा उदात्तवादी प्रविष्टा के द्वारा मायावर्जित साधु यस्तुओं की निरस्त करने आत्म साक्षात्कार करने का प्रयास करना चाहिए। अनुभवजनित विभिन्न शक्ति से आत्मबोधन सम्मति विच्छेद करना ही स्वतन्त्रता के रूप में आत्मा का साक्षात्कार करने का एवमात्र मार्ग है। महात्माय स्वतन्त्रता के रूप में आत्मा की साक्षात्कृत करने की शक्ति पद्धति की सम्मति का ही स्वीकार करते हैं। उनमें अनुसार यह सम्मति है कि साधु जगत् की मनुष्यता के सम्मति में अनुभूत मायावर्ण स्वतन्त्रता की समझने आत्मा की मुक्त और अन्तर्निहित आन्तरिक शक्ति में विनीत कर दिया जाय।⁷³ बाद में महात्माय ने वैदिक स्वातन्त्रता तथा स्वतः प्रवृत्ति की धारणा को अंगीकार किया है। उन्हें हमल की इस धारणा में भी प्रेरणा मिली थी कि आत्म-नेतिष्ठ स्वतन्त्रता ही आत्मा है। इसलिए के परमात्मा का स्वतन्त्रता के रूप में भी उल्लेख करते हैं। स्वतन्त्रता आत्मा का विशेषण नहीं है, बल्कि उसका अन्तर्गत लक्षण है। अर्थात् वेदांत स्वतन्त्रता की सभी प्रकार की व्याख्या से पर मानता है। वैदिक साधना का अन्तिम उद्देश्य स्वतन्त्रता ही है। किन्तु इस स्वतन्त्रता का अर्थ जगत् से विमुख अथवा दूर होना नहीं है। स्वतन्त्रता की स्वातन्त्रता का इस बात से कोई विरोध नहीं है कि वह अपने वैदिक तथा आध्यात्मिक दायित्वों को निष्ठापूर्वक भाव से ग्रहण कर और अपने मनुष्यवर्ण के व्यक्तित्व को अनुभूत अथवा सम्मानित आध्यात्मिक जीवन में, जो वास्तविक गति है, लीन कर दे। बल्कि इस प्रकार अपने दायित्वों को ग्रहण करें और इस प्रकार गति का सम्पादन करने ही वह वास्तविक स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकता है।⁷⁴ इस प्रकार तत्काल और भावी की नीति महात्माय की निष्ठा का उपयोग का समर्थन करते हैं। वेदांत सम्मति के दायित्व प्रत्यक्षवादी होने के बावजूद महात्माय ने आत्म-साक्षात्कार के विचार का समर्थन किया किन्तु उन्होंने कम के परिधान की अनुमति नहीं दी। वे चाहते थे कि कम दूरता की शिक्षा के लिए तथा सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने के उद्देश्य से किया जाना चाहिए।⁷⁵

महात्माय ने स्वतन्त्रता की सम-व्यक्तता धारणा के विहित राजनीतिक निष्कर्षों की स्वीकार किया। वे बोद्धि युक्ति के समर्थक थे। राजमोहन राय और देवीर की नीति महात्माय मनुष्य के मन की सब प्रकार के अन्धविश्वास और दायित्व कठिनाई से मुक्त करना चाहते थे। उनका कहना था कि वास्तविक स्वतन्त्रता आधारभूत आवश्यकता है। विचारों के इस स्वराज के लिए आवश्यक है कि भारतीय बुद्धिजीवी निष्ठा काव्यमोक्ष तथा सभी प्रकार के मुक्त हों।

हेनरी की नीति महात्माय की स्वीकार करते हैं कि दायित्व प्रत्यक्ष तथा प्रत्यक्षवादी साधु लक्षण मनुष्य में अनुभूत होती हैं। यह विचारधारात्मक मान्यतावाद इस कट्टरपंथी दृष्टिकोण का अन्तर्गत करता है कि कोई एक केवल सत्त्विक अथवा वास्तविक के लिए आवश्यक प्रस्तुत करने का अर्थ लेकर उत्पन्न हुई। अतः महात्माय का कथन है कि निष्ठा काव्यमोक्षवाद के नाम पर विभिन्न विचारों का अनुचित रूप से परिधान करने के बिना उन सबका एक साथ सम्मिश्रण करना निरर्थक है। अर्थ सम्मति इस बात की है कि भारतीय दायित्व की वृत्ति रूप में समर्थन किया जाय और भारतीय चिन्तन के दृष्टिकोण से परिधान के दायित्व योगदान का अनुमान किया जाय। के लिए है 'हम परिधान तथा पुनः के आदर्शों के समर्थन की सुरक्षा मीन करने समर्थ है। किन्तु अन्तर्गत विषय के यह आवश्यक नहीं है कि समर्थन किया जाय। किसी समर्थन के आधार उसके अन्तर्गत के

72 कृष्णचन्द्र महात्माय *Studies in Philosophy* खंड 2 पृष्ठ 340-49 (नवम्बर, दशमिका सम्मति)।

73 कृष्णचन्द्र महात्माय *The Subject as Freedom* पृष्ठ 43 (दशमिका दायित्ववाद आन विचारों के अन्तर्गत)।

74 कृष्णचन्द्र महात्माय *Studies in Philosophy* खंड 1 पृष्ठ 120।

75 वही, पृष्ठ 122-23।

इतिहास तथा उसकी भूमि से उत्पन्न होते हैं। यह अविचार्य नहीं है कि उन्हें सामयिक रूप से लागू किया जा सके, और यह भी सर्वत्र देखने में नहीं आता कि वे अन्य समाजों के लिए स्वयं प्रभावित तथा स्पष्ट हैं। पश्चिम के कुछ ऐसे आदर्श हैं जिनमें हमारे लिए कोई अनुपपत्ति नहीं होती, फिर भी हम से हम उनका सम्मान कर सकते हैं। इससे अतिरिक्त ऐसे भी आदर्श हैं जो हमें आर्थिक रूप से आकर्षित करते हैं क्योंकि उनका हमारे अपने आदर्शों से साम्य है, यद्यपि वे अपनी विदेशी रंग में रंगे हुए हैं। वे हमारे लिए शिक्षा का विचार करते हैं उनका हम अपने स्वयं के और अपने ऐतिहासिक के अनुसार परिपालन करना चाहिए। व्यावहारिक जीवन के शिक्षा रूप में होने किसी आदर्श की सामर्थ्य करना है उसे हमें स्वयं अपने समाज की सहज प्रवृत्ति के अनुसार निष्पात करना है। प्रत्येक विषय में पश्चिम तथा पूर्व के आदर्शों का समन्वय करना आवश्यक नहीं है। और यदि आवश्यक हो तो हम विदेशी आदर्शों को अपने आदर्शों में अंतर्भूत कर लेना चाहिए, इससे विपरीत करना हितकर नहीं है। हमारे लिए अपने व्यक्तित्व का समन्वय करना किसी भी देश में आवश्यक नहीं है स्वयं निम्न श्रेष्ठ परधर्मों भगवान् (अपने धर्म में मरणा की श्रेष्ठकर है। दूसरे का धर्म मरणाह होता है)।⁷⁶

महात्मा उन भारतीय बुद्धिजीवियों के पुनरुत्थानवादी विचारों के विरुद्ध थे जो अपनी अलग विचारों प्रकाश करते हैं। वे चाहते थे कि बुद्धिजीवी राष्ट्रीय जनता से सम्पर्क स्थापित करें "एक ऐसी मस्तिष्क का विकास करें जो समय तथा देश की सहज प्रवृत्ति के अनुरूप हो।

4. महात्मा का सामाजिक दशन

यद्यपि स्वतंत्रता महात्मा के स्ववर्णित रूप में हिंदू पुनरुत्थानवाद की व्याख्या नहीं की है, किन्तु उनके व्यक्तित्व तथा रचनाओं में अवलोकन रूप में इसका समन्वय अवलोकन किया है। 1905 के उन्होंने अहिंसावादी राष्ट्रवाद के भारतीय सम्प्रदाय का संस्थापक किया जिसने नेता विनिमय पात्र भरविन्द और चक्रवर्ती थे। यदि परम्परागत हिंदू आदर्शों और जीवन प्रणाली में उनका अग्रिम विश्वास था, इसलिए उन्होंने वेदात्मक धर्म के सम्प्रदाय का विरोध किया, जो समाज-मुक्ति का प्रस्ताव था। यद्यपि वे राजनीतिक विचारक नहीं थे, फिर भी उन्होंने अपनी उन रचनाओं के द्वारा जिनमें वेदांत की शिक्षाओं का गुणगान किया गया है हिंदू पुनरुत्थान के आंदोलन की धार्मिकी बनाने में सहायता दी।

यदि महात्मा वेदांत की अवधारणाओं में इसलिए उनकी दृष्टि में आत्म साक्षात्कार की समस्या ही आधारभूत समस्या थी। वे यह स्वीकार करते थे कि वेदांत की विद्वत् दशन के अनुसार सामाजिक परिवर्तन तथा राजनीतिक शांति की समस्याएँ गौण महत्व की हैं। वेदांत सामाजिक उत्थान पुनर् और राजनीतिक विप्लवों के व्यवस्थापक प्रवर्तकों के विरुद्ध है। फिर भी यह इस बात की अनुमति नहीं देता कि जो समस्याएँ तथा परिघटनाएँ अपने आंतरिक उद्देश्य तथा औचित्य को छोड़ देती हैं उन्हें औचित्य रखन का मान्यताकर प्रयत्न किया जाय। परम्परागत वेदांत तथा मनुस्मृति की शिक्षाओं के अनुकूल महात्मा सामाजिक कार्यप्रणाली का विरोध यह का ही एक अंग मानते हैं। किन्तु रामकृष्ण और अरविन्द की भांति महात्मा भी यह मानने को तैयार नहीं हैं कि सामाजिक आदर्शवाद और मानववाद, तथा वेदांत की आत्म साक्षात्कार एक ही वस्तु है। फिर भी वे विचार्य कर्म का समन्वय करते हैं।

महात्मा परम्परावादी वेदांतों के, किन्तु वे सही राष्ट्रवादी नहीं थे। उन्होंने मानव मनुष्य के आदर्श का समन्वय किया। उनके अनुसार वेदांत उन आदर्शों का समन्वय है जो स्वयं का चर्च करते हैं मूलतः हैं।

76 स्वतंत्रता महात्मा, 'Swaraaj in Ideas', *The Vachaspathi Quarterly*, वर्ष-कालीन वर्ष 1954, पृष्ठ 169-10।

77 स्वतंत्रता महात्मा, *Studies in Philosophy* खंड 1, पृष्ठ 123, "मनुस्मृति के दृष्टि में परम्परागत शांति में अतिरिक्त होता है। यदि यह उनके द्वारा किया है तो यह अर्थ की ही घोषणा देता है।

प्रकरण 10 सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

1 प्रस्तावना

सर्वपल्ली राधाकृष्णन् (जन्म 1888) एक सर्वोच्च विद्वान् भारतीय हैं। वे एक उच्च कोटि के वैज्ञानिक, पंडित तथा धर्म और समाजशास्त्र के आचार्य हैं। वे आध्यात्मिक तथा अन्तरिम विश्वविद्यालयों के कुलपति रहे। बाद में उन्होंने भारत के उपराष्ट्रपति पद पर काम किया और बाद में भारतीय संसदन के राष्ट्रपति पद को सुरक्षित किया। भारत के बुद्धिजीवियों ने राधाकृष्णन् का प्रमुख स्थान है। वे शुद्ध सामाजिक-धर्म के सामाजिक तथा राजनीतिक विद्वान् नहीं हैं। वे उच्चकोटि के वैज्ञानिक हैं जिन्होंने सामाजिक तथा राजनीतिक विषयों में भी अपने विचार व्यक्त किए हैं। उनके सामाजिक एवं राजनीतिक विचार 'रिजोर्न एण्ड सांसाइटी' (धर्म तथा समाज), 'एन्क्वेजिन पीलि टिन्स एण्ड वार्' (विज्ञान, राजनीति तथा युद्ध), 'कल्की एण्ड द फुल्लर आन डिक्साइनेशन' (कला तथा संस्कृति का भविष्य), 'इतिहास एण्ड वाइता' (भारत तथा चीन), 'इज दिस पीस ?' (क्या यह शांति है ?) नामक ग्रंथों में तथा 'ईस्टन रिजोर्न एण्ड वेस्टन वाट' (पौराणिक धर्म तथा आध्यात्मिक चिन्तन) के अन्तिम अध्याय में मिलते हैं।

राधाकृष्णन् का व्यक्तित्व निरपेक्ष आध्यात्मिक आदर्शवाद की परम्पराओं से ओतप्रोत है। उन्हें उपनिषदी, शंकर, रामानुज (1055-1137) हैनोर, गांधी, प्लेटो, प्लैटोनीज़, ब्रह्मा और वेदों से प्रेरणा मिली है। शंकर का उन पर अधिक प्रभाव है।

2 राधाकृष्णन् के राजनीतिक चिन्तन का लक्षणात्मक अन्वय

(क) हिन्दू जीवन दर्शन—राधाकृष्णन् ने वैदिक जीवन के अधिष्ठान की हिन्दुत्व के अनुसार व्याख्या करने का स्पष्ट प्रयत्न करके अपना वैदिक जीवन प्रारम्भ किया था। उन्होंने इस आशय का अभ्यन्त किया है कि हिन्दुत्व आध्यात्मिक स्तर पर अन्तर्निष्ठता से ओतप्रोत है। साथ ही साथ उन्होंने यह भी दिखाया कि प्रयत्न किया है कि हिन्दुत्व की रहस्यवादी अनुभूतियों और वास्तविक विविध रूप के विषय तथा जीवन का निवेदन करने वाली नहीं है। हिन्दुत्व के सत्कारण करने के राजनीतिक तथा सामाजिक उत्तर-प्रश्नों के बीच अदभुत जीवन शक्ति का तथा अपना वास्तविक करने की महान क्षमता का परिचय दिया है। हिन्दुत्व ने एक स्पष्ट जीवन दर्शन का प्रतिपादन किया है। विश्व चिन्तनशास्त्र में बुद्ध, शंकर और रामानुज जैसे पराक्रमी जन्मोन्मेषों तथा इस युग में गांधी जैसे सुवर्णात्मक प्रशिक्षणों को उत्पन्न किया है उसके विरुद्ध निरालेखता का आरोप लगाया जा रहा है। हिन्दुत्व ने स्पष्ट तथा प्रेम सेवों को ही महत्त्व दिया है।⁷⁸ फिर भी हमने यह स्वीकार किया है कि मोलिन अमल की आवश्यकताओं को ही धर्मिक धर्म सेवा जीवन का अन्तिम लक्ष्य नहीं है, बल्कि इस युष्मों पर आत्मा के आध्यात्मिक राज्य की स्थापना करना असली उद्देश्य है। विद्यार्थी हर्ष जनजातिओं को आत्मसात करने तथा उन्हें उन्नति की स्थापना क्षमता हिन्दू संस्कृति की एक विशेषता है। हिन्दुत्व ने विदेशी तथा अलग-थलगता का नाश करने की अनुमति नहीं दी है। हमने सर्व आचरण की मुद्रा और साधुता का उपदेश दिया है। हमने सभी इस बात पर बल नहीं दिया कि आज कुछ आध्यात्मिक परम्पराओं में अन्तर्गत भाव से अमीनार पर हैं। राधाकृष्णन् की हिन्दू जीवन दर्शन के विषय है, जो मनुष्य का अपने उत्कर्ष पर स्थिति का साक्षात्कार करने की प्रेरणा देता है। एक ऐतिहासिक धर्म के रूप में हिन्दुत्व को अन्तिम और निरपेक्ष नहीं माना जा सकता, यह तो एक विश्वव्यापी परम्परा है। राधाकृष्णन् लिखते हैं "हिन्दुत्व यह है, न कि स्थिति, प्रशिक्षण है, न कि परिणाम, एक विश्वव्यापी परम्परा है, न कि विविध ईश्वरीय धर्म। हमका यह इतिहास हम यह विश्वास करने के लिए प्रेरणा देता है कि धर्मिक न कि मानव जगत् इतिहास के बीच न जगत् की नई शक्ति की नई आयु की यह उन्नत मानव

78 एक राधाकृष्णन् *The Hindu View of Life* पृष्ठ 79।

79 यह है एक और *Centre Attack from the East* पृष्ठ 43-45 तथा 170-72 (आन्ध्र, जर्मन एडिशन 1933)। यह न अनुवाद राधाकृष्णन् 'पीन हिन्दुत्व' में विचार करते हैं।

करने में समर्थ होता है⁸⁰ हिन्दुत्व के विकास का वास्तविक प्रस्तुत विषय है, उसमें तथा कृष्णन् बहुत प्रभावित हुए हैं। उन्होंने हिन्दुत्व में निहित भारत के आध्यात्मिक आदर्शों और आकांक्षाओं का आत्मिकीकरण में बड़ा योग दिया है। बहुसंख्या और विविधता के बीच एकराता का पाठ सिखाता हिन्दुत्व की मुख्य विशेषताएँ हैं।⁸¹ उनका स्वप्न व्यापक है, क्योंकि यह यह मानकर चलता है कि सब की विविध व्याख्याएँ सम्भव हैं और यह हर प्रकार की साम्यवादी-सुमावनाओं और कट्टरपंथी अतिहिंस्रता का विरोध करता है।⁸² धार्मिक ज्ञान में हिन्दुत्व का दृष्टिकोण लोक-तात्त्विक है। हिन्दुत्व के आधारभूत तथ्यों की प्रकृति आध्यात्मिक है। वे अलक्षित अवर्तमान हैं, और भारतीय जनता को शक्ति तथा जीवन प्रदान करा। उनका स्थायी महत्व है। किन्तु तथा कृष्णन् सभी प्रकार के समाजवादी नहीं हैं। उनका मान्य बहुत ही उदार और लक्ष्मि है। उन्होंने हिन्दुत्व तथा समाज के सभी में ही आध्यात्मिक तथा वैज्ञानिक शिक्षा का एकरूपता बूझ निरवरोध है।

(घ) परब्रह्म तथा ईश्वर—राधाकृष्णन् एक आदि आध्यात्मिक आधार पर तथा पुनः सब की शक्ति की स्वीकार करता है। वे ईश्वर तथा ब्रह्म के अवधारण में भेद की भी मानते हैं। किन्तु तथा कृष्णन् ईश्वर का भेद प्राचीन पंथा में स्वीकार किया है और उसका जीवन हमें उपनिषदों में भी मिलता है। किन्तु आध्यात्मिक क्षेत्र में 'उच्च तथा 'निम्न' के प्रमाण के भेद की कल्पना करना इस बात का द्योतक है कि मनुष्य की बुद्धि अनुभवशील तथा के सम्बंध में भी सीमाशून्य तथा निरन्तरता वाली समझ की आवश्यकता का प्रयोग करना का दक्षीय प्रयत्न कर रही है। यह कहना उचित-रूप होता कि ईश्वर निम्नशक्ति का और ब्रह्म उच्चशक्ति का है। यद्यपि राधाकृष्णन् का यह मत अधिक प्रतीति-रूप का प्रतीति है कि "विश्व के सृष्टा के सत्त्व में ब्रह्म का रूप निहित करना ही ईश्वर है," किन्तु आत्मिक लोका का वह दृष्टिकोण भी कुछ सत्य है। परम सत् परम सूक्ष्म की है। राधाकृष्णन् की आध्यात्मिक अनुभूति का वास्तविकता और व्यापकता में भी विश्वास है। वह आध्यात्मिक अनुभूति का वास्तविकता का प्रमाण उदाहरण, बुद्ध, राम, तुलसीदास, प्लेटो, सुहृन्मन्, सत नाथ, प्लेटोनीयस, मोरारजी, अमलादास, दादो, एनफोर्ड, ब्रिजमोहन के साथ बर्मा, सत नाथ, स्विनेन, मैक्स वेबेर्न तथा अन्य विचारों और तथ्यों के जीवन में मिलता है।⁸³ वे महापुरुष निम्न निम्न देता और बालों के वस्त्र हुए थे, फिर भी उन सब एकरूप में प्रभावित किया है कि आध्यात्मिक अनुभूति किसी वस्तु होती है और उस अनुभूति में हम सब की प्रतीति करने तथा परिण को स्थापित करने की अवसर शक्ति विद्यमान रहती है। इन महापुरुषों का यह साक्ष्य हमें प्रमाण है कि हमने जगत् नहीं की आ सचती, यही हमें प्रतीति होता है कि आध्यात्मिक अनुभूति एक वस्तुगत तथ्य है।

(ग) विश्व का पटव्यापक—राधाकृष्णन् का विश्वास है कि भूमि यह विश्व परब्रह्म की 'आवृत्त सञ्चालनीयता में निहित अवस्थित सम्भावनाओं में से एक का साधारणतया है, इसलिए उसमें या कुछ ही रहा है उसमें भूल में एक देखीयेमान आध्यात्मिक-अपेक्षित विद्यमान है। विश्व ब्रह्म की स्वरूप सञ्चालनीय की अभिव्यक्ति है। विश्व के पटव्यापक में निरन्तर बढ़िमान कृष्णता की और घटन की प्रवृत्ति स्पष्ट दृष्टिकोण पर होती है। विश्व की हम एक 'असौलभ्य' कृष्णरीचिका अवस्था आनोह बहुत नहीं होत सचते, और न उसे जगत् भूल ही मानकर सञ्चालन कर सकते हैं। वस्तुतः विश्व के भूल में तथा उसकी प्रतीति में ईश्वर की कृपा निहित है। विश्व में जीवन, मर, घटना तथा सृष्टि भीमता की समता का जो उत्तरोत्तर विस्तार हुआ है उसी स्पष्ट है कि विश्व की धार्मिक व्याख्या स्वीकृत नहीं हो सकती। विश्व की प्रतीति के द्वारा एक सम्भावनी आध्यात्मिक अवस्था का निरन्तर साक्षात्कार हो रहा है। भौतिकवादी तथा जट्टवादी दृष्टिकोण विश्व को वास्तविक प्रकृति का अवधारण नहीं कर सकता। आधुनिक भौतिक विज्ञान के दार्शनिक एडिगटन, पोल,

80 इस राधाकृष्णन् *The Hindu View of Life* पृष्ठ 129-30 (नया, आज एकरूप एवं अविन, 1928)।

81 इस राधाकृष्णन् *The Heart of Hindustan*, बहुत सारंग पृष्ठ 28, 64 (नया, जी ए. मोहन एन. क.)।

82 इस राधाकृष्णन् *Eastern Religions and Western Thought*, पृष्ठ 307-313।

83 इस राधाकृष्णन् *An Idealist View of Life*, पृष्ठ 91-98।

आइस्टाइन आदि भी अथ कडोर, धनसमृद्ध तथा जटिल तथ्यों के प्रत्यक्ष में विश्वास नहीं करते। बोस्तेयर और पाट ने ईश्वरवाद के पक्ष में दिये गये तर्कशास्त्रीय और प्रयोगजन्य तर्कों का आ मसौदा उदाहरण है जसका बावजूद विरथ की प्रक्रिया में अत सम्बन्ध प्रयोजन, वाचना और बड़ा तक कि वैज्ञानिक प्रकृति भी देखने की मिलती है। ह्यूडरट्टेव द्वारा निर्दिष्ट मजबूतीमान, वास्तव तथ्यों और अवस्था की धारणाओं ने तथा ऐतिहासिक और खोज मीमांसा के निरूपित विकास के विज्ञान न मोतिकीय ब्रह्माण्डविद्या की बमिया की स्पष्ट रूप दिया है। टीमसन, बोस्तेयर और और स्पष्ट भी वास्तविक भीतिकी की बमिया का उदाहरण करता है।⁸⁴ राधाकृष्णन आध्यात्मिक प्रत्यवेसा होते हुए भी विरथ की वास्तविकता से इनकार नहीं करते। वे विरथ की ईश्वर का विचार-मध्यम मानते हैं। इसलिए उनकी दृष्टि में विविध प्रकार की सभी वस्तुएँ और प्राणी उसी मूल आत्मा की अभिव्यक्ति हैं। विरथ के सभी पदान उसी एक चेतना के विविध रूप हैं। इस परिवर्तमान अवत न पर जो आध्यात्मिक अवत है उसी के ऐतिहासिक प्रक्रिया साधक होती है। विरथ न तो अनुशा का पुत्र मान है और न कोई सामाजिक है। यह एक गतिशील संपन्न आध्यात्मिक प्रवाह है। आध्यात्मिक वस्था ही मनुष्य के नैतिक प्रवृत्ता और आदर्शवादी माननाओं की सत्तता की धारणी है। अत राधाकृष्णन् के अनुसार ब्रह्माण्ड के घटनाचक्र की सत्यतया स्वरूपा करने के लिए एक अनुसंधानात्मक धर्म की वास्तविकता का स्वीकार करना आवश्यक है। उसी के सन्दर्भ में इस ब्रह्माण की सत्ता का उदाहरण है।

राधाकृष्णन् महावान सम्प्रदाय के सन्तुक्ति (सामुहिक निर्वाण) के आदर्श को स्वीकार करता है।⁸⁵ जब मनुष्य विरथ की राय तथा माया से मुक्ति हो जाती है तो उस समय सब जगत्, उसकी सम्पूर्ण सत्तियोंवला विरोधी तत्त्व तथा सब प्रकार के अन्तर्विरोध स्पष्ट समाप्त हो जाते हैं। ब्रह्म की सत्ता की पूर्ण अभिव्यक्ति का लय होता है समस्त ऐतिहासिक प्रक्रिया का अंत हो जाना।⁸⁶ जब ब्रह्माण्ड का जन सामाजिक मुक्ति के द्वारा अपनी चरम स्थिति पर पहुँच जायगा तो सम्भव है कि उस समय चरमस्थ अवस्था की किसी अन्य रूप में व्यक्त करने की इच्छा करे।⁸⁷ इस प्रकार ब्रह्म की अनन्त सृजनशक्ति सन्तुक्ति के उपरांत भी शाश्वत घटनचक्र की पुन संचालन कर सकती है। साथ हीम मुक्ति के विज्ञान के बीच होने सत्तपाल के विचारों तथा हिंदू पुराणा में भी मिलते हैं। इसके राधाकृष्णन् के दशन में चरमपरावादी तथा पुनरुत्थानवादी तथा की विद्यमानता विविध रूप में सिद्ध हो जाती है। यह विज्ञान वस्तुतः विज्ञान तथा तकसुद्धि की परिधि से परे है, और सत्यता तथा धार्मिकता होश्याता की उम आस्था का पुन प्रतिपादन है जो हमें प्राचीन हिंदुओं और गुरु दिया के विचार में तथा कथियों के निरवधारण न देखने का मिलती है।⁸⁸

(घ) अत प्रज्ञा तथा बुद्धि—गोडगेनस तथा कर्नर की भांति राधाकृष्णन भी अत प्रज्ञा की बुद्धि में अंधी शक्ति मानते हैं। अत प्रज्ञा वास्तविकता को प्रकट करते का साम्य है। यह सम्पूर्ण आध्यात्मिक तत्त्वशास्त्र तथा परामनाविज्ञान का आधार है। दासगिन, कलाकर, रहस्यवादी और यहाँ तक कि वैज्ञानिक भी अपनी-अपनी परिचयनाओं की खोज करते समय इसका सहारा लेते हैं, चाहे वे उसे स्पष्ट शब्दा में स्वीकार भले ही न करें। अत प्रज्ञा की विषय प्रत्यक्ष तथा तात्कालिक होती है। यह विषयी वस्तु पर बाह्य का आकर्षण करने की अवस्था उद्यमे कीतर, सभी सहायबुद्धिबद्ध प्रवेश कर जाती है। अत प्रज्ञा सम्पूर्ण प्राथमिकता की दीक्षानाल तक किसी वस्तु पर केन्द्रित करने में उत्तर होती है। विस्तु वह बुद्धि का विरोध नहीं करता। अतः यह भी कहा जा सकता है कि अत प्रज्ञा बुद्धिहीनता नहीं वरिक्त बुद्धि की चरम अवस्था है। नहीं नहीं, अत प्रज्ञा के साध्य पर आधारित निष्कर्षों की वैज्ञानिक तर्कों द्वारा पुष्टि की भी जा सकती है। इसलिए हम यह

84 यह पाठ 312-45 *Kaika*, पृष्ठ 38।

85 यह राधाकृष्णन् *The Hindu View of Life* पृष्ठ 65।

86 यह राधाकृष्णन् *Contemporary Indian Philosophy*, पृष्ठ 501।

87 यह राधाकृष्णन् *English Translation of the Bhagavadgita* पृष्ठ 77।

88 हिंदू सत्तुष्टा के विरुद्ध बमबम न सिर्फ सचिने की का बरफ, *Political Philosophy of Sir Aurobindo*, मल्लम 3।

नहीं कह सकते कि अज्ञ प्रज्ञा का प्रयोजन नहीं किया जा सकता। किंतु अवीक्षण न होने पर भी यह अपर्याप्तमान अवश्य है। यह चिंतन की प्रकृति में ही निहित है, यन्नि उसका आधार तथा पूर्वाभ्यास है। किंतु बुद्धि विस्लेषणात्मक तथा बहुमुखी होती है, उसके विचरोत् अतः प्रज्ञा सन्नि पञ्चात्मक तथा अविष्कारक हुआ करती है। किंतु अज्ञ प्रज्ञा न सा आत्मतत्त्व उद्देक है और न गवेषात्मक अतः मूर्खता। और न उसे सहजव्यवहारक (सुलभव्यवहारक) प्राप्त मान ही कहा जा सकता है। यह मानन में बुद्धि की पूर्णता है। रामाह्वयन में उस प्रचलित दृष्टिकोण का उल्लेख करने का मर्यादक प्रयोजन किया है जिसने अनुसार अज्ञ प्रज्ञा तथा बुद्धि को परस्पर विरोधी माना गया है। उसकी दृष्टि में अज्ञ प्रज्ञा का बुद्धि से नहीं सम्बन्ध है जो अज्ञी तथा अज्ञ के बीच हुआ जाता है। उनका कहना है कि अज्ञ प्रज्ञा का चिंतन के साथ निरवरोध तथा अविच्छिन्न सम्बन्ध है।⁸⁹ उनका यह भी कथन है कि अज्ञ प्रज्ञा स्वाभ्यास तथा विस्लेषण की समीक्षा तथा अविधान प्रक्रिया का परिणाम होती है।⁹⁰ किंतु सुभ इसमें सन्देह प्रतीत होता है कि बकीर, मीराबाई, टेरेमा आदि उन प्रज्ञा के, जिन्हें अज्ञ प्रज्ञा की शक्ति प्राप्त थी, सभी स्वाभ्यास और विस्लेषण की दीपकालीन शायदा थी थी। मेरी समझ में धार्मिक उत्प्रेरणा की दृष्टि से अज्ञ प्रज्ञा के दो प्रकार में भेद करना लाभदायक होगा। बौद्धिक दृष्टिकोण की परिपक्वता अज्ञ प्रज्ञा का एक प्रकार है, और परम सत्य का साक्षात्कार करने की दृष्टि दूसरा। ये दोनों एक ही वस्तु नहीं हैं। रामाह्वयन की धारणा है कि 'मन की सम्प्रज्ञा (अवस्था)' ही आत्मा⁹¹ है और मन की किया अनुष्ठान की अज्ञ प्रज्ञा के साथ एक पहुँचा सकती है तथा उस दृष्टि की बुद्धि की भाषा में व्यक्त किया जा सकता है।⁹² सुभे इस बात में सन्देह है कि 'रामाह्वयन' की न पारमार्थिक अनुष्ठान के आध्यात्मिक पुनर्जागरण के उस उद्देश्य की दृष्टि में सहायक हो सकती है जिसका ये समर्थन करते हैं।

3. रामाह्वयन का सम्प्रज्ञा सम्बन्धी दृष्टान्त

स्वीकृत्य की भाँति रामाह्वयन का भी विश्वास है कि सम्प्रज्ञा की रक्षा के लिए दृष्टिगत दृष्टि की आवश्यकता है। समझ में बुद्धि तथा आधुनिक सम्प्रज्ञा के साथ ही अवशिष्ट रह रही है, एक आध्यात्मिक मानवतावादी दृष्टिकोण ही उसे संवत्सा के साथ संजोती है। वे लिखते हैं 'विज्ञान के अन्तर्गत सभी सम्प्रज्ञाओं की रक्षा है जिन पर तुम की पूज्य जन्म चुकी है। हमने मान लिया कि वे ही परिवर्तन और विकास का न हो, पारमार्थिक सम्प्रज्ञा का दोष दाया स्वयं न दिखाने तथा स्वामी है, किंतु अब हम देख रहे हैं कि यह विज्ञान के साथ एक के अंतर्गत है। अंतर्गत होता दिखाने नहीं है। बुद्धि व्यवहार में अपने लोभ और अज्ञान के कारण अपना विज्ञान पर नहीं है। जो विज्ञान और दीर्घकालीन नियम की गहन से टकराते हैं वे अज्ञानता का ही विज्ञान के अज्ञान न जा सकते हैं। अभी अब तक समय है—वे अब अधिक समय नहीं रह गया है—हम चाहते हैं कि अनुष्ठान को, जो अज्ञान की शक्ति अपने समर्थन की ओर लौटा जा रहा है, मानन का मूल न रहे।'⁹³ इस समय अब मन का मूल अवस्था की ओर जा रहा है और नित्य प्रत्यक्ष नहीं है, यह निश्चय आवश्यक है कि आधुनिक सम्प्रज्ञा की नव विज्ञान स आध्यात्मिक दृष्टि और नित्य नियमों से अनुप्राणित करना है।

रामाह्वयन का स्वप्न है कि बहिष्कृत न हो एक ही मानव मानवता का साथ हुआ या सार्वजनिक की प्रकृति पर आधारित होगी। आधुनिक ज्ञान न आध्यात्मिक और नित्य तथा न आध्यात्मिक निष्कर्ष इतनी गहरी नहीं है और पूज्य विज्ञान के साथ अपने अज्ञान का न हो है कि अब क्षेत्रीय सम्प्रज्ञाओं का पुनर्जागरण करना आवश्यक नहीं है। अज्ञान (अज्ञान) अज्ञान, पदों की ओर से जाने वाला अधिमान्यता का विज्ञान, नित्य दृष्टि की उन्नतगुण आत्मनता के

89 यह रामाह्वयन 'The Spirit in Man, Contemporary Indian Philosophy' (दिल्ली, 1952)।

90 यह रामाह्वयन 'Contemporary Indian Philosophy', पृ. 426।

91 यही, पृ. 484।

92 यही पृ. 487।

93 यह रामाह्वयन 'Education, Politics and Man', पृ. 35।

पूरी का सचम आदि सहीय मयित के ही वसुधित परिचाम है । मित प्रकार आधुनिक युग के ज्ञान्य मे डीलमी के मुकेट्रिक सिद्धात को त्यागकर गोपनीयता के सुदकेट्रिक सिद्धात को अनीकार मित मया मीहो हो आन सम्मता के सम्मप मे आतिनेट्रिक देशमयित के मुष्टिमीय को त्यागकर साधनीय मयिकोय को अणनता होया । साधनीयवाद मयिष्य की आरुह्य सम्मता का आधार होया ।⁹⁴ मितु साधनीयवादी मुष्टिमीय के विवात के लिए नीय बोद्धि मय मयमित नही है । अत नयिष्य की इस सम्मता का निर्माण मितेय बोद्धिक उदारता अथवा सासप्रहवाद और उगादन के साधना के अमिनकीकरण के आधार पर वही मिया जा सनता । उहके लिए आवश्यक है कि हम अपना सम्मता की सोमाओ को समने और वरायी सम्मताओ के मूरुपा तथा गुणो की अमिर तवेत क से स्वीकार करें । अपनी सम्मता के मापदण्डो को दूसर पर वरुने के लिए सपय करना पासीकानी मनीभुति का सीलक है और उसकी विमलता मितित है । आवश्यकता इस मता की है कि हम पुन तथा वरिचम के आधारभूत आध्यात्मिक तथा मीति मूरुपा को अमिर मूरुहई के साप सनने का मल करें । मानव आति मीर कष्ट मे है । इतिहास सकट मे होकर मुनर रहा है । सम्मता मे मित मिकट सममयाओ को आम दिया है उवका एकमान हन यह है कि 'मिरव की अममी आत्मा'⁹⁵ प्रभुदित होकर स्पष्ट मीतिक तथा आध्यात्मिक पेतन को साप वरने । राधाकृष्णन् का वचन है कि मयवदगीता भी मानव भावुत्व पर वत देती है । उहानी मीता की मीमसबह की भारता का अम मिरव की एकता मयमा है ।⁹⁶

4 राधाकृष्णन् का राजनीति दशन

मीचाल कृष्ण मीचले का आदन 'राजनीति का आध्यात्मकीकरण' करना था । महारता मापी मे, जो मीचले को अपना शुभ मानते थे, राजनीति के मीतिक पम के मूरुपो को समाविष्ट करने का प्रयतन मिया । राधाकृष्णन् के राजनीतिक विचारो पर मापीवाद का बहुत अधिक प्रभाव मया है और जीवन के प्रति उनका मुष्टिमीय भी मातिक है । इसलिए मे मितत है "राजनीति केवल आकाहारीय पम है ।"⁹⁷ आधुनिक जीवन वरिष और सनटापुन परिमिवितीय मे उलभा हुआ है । मनुष्य विविष प्रकार की मानातिक चितताका इंडो, ममस्तावा और मयकर अरता की परि-मिवितीयो का मीकार है । पम विशुध जीवन म पुन ससुजन स्थापित वरन का सबसे अतिमाली साधन है । पम का अम है सन की सीज करना और सभी विममन वरुओ मे एकता का वसन करना । यह मातिक पूजावात, वमकाय्यो परम्परावाद और मितममनाय दुरीहित मय मे एकवम दुर है । राधाकृष्णन् का आग्रह है कि मनुष्य की पमसातिनयो के कालमिक तक मितक और कटुता पुन मातिक मापीमिया को सीडकर अपने म पमवरायमता तथा मिवृति की सावना का मितमन करता माहिए । जीवन के सभी डोयो मे इहिणुता की पामिक सावना प्रेम तथा उलारता का आचरण करना अत्यत आवश्यक है । पम का अम यह मीहो है कि पुनजन सामातिक सडिया और मूरुता पुन सामातिक मयावायो का मयम तथा मय, मीता कि मासीय समाज के अनेक डेयो म मान मिया मया है । राधाकृष्णन् की दृष्टि मे पम एक आनत ममीर और मीचलित वस्तु है । मातिक अनुभुति स्वभावतः सन-वमालन होती है । यह एक प्रकार का आध्यात्मिक मयम है जो सीध काल की उकात मापना और मितन मे उलमय होता है । मता तथा महान आवाओ के कया उरिता पमिव जीवन के उसकी मापातिनता सिद्ध होती है । उक्त मयुष आत्मा इस प्रकार मया मित हो उठती है कि पेतन और अवेतन का सामाव मय ही सनता हो जाता है । दूसरे माग म पामिक अनुभुति सवेदन-मि आत्मा की उक्त मयम मापतिनता के प्रति मरिमिया है मिसकी अति मयति मय, ममिवता और मीचम म होली है । पम इस बात पर वत मीता है कि माह्य मरि

94 Kalka, p. 69.

95 एन राधाकृष्णन् 'The World : Unborn Soul, Eastern Religions and Western Thought', पृष्ठ 1-34.

96 एन राधाकृष्णन् 'English Translation of the Bhagavadgita', पृष्ठ 66.

97 Education : Politics and War, पृष्ठ 2.

तथा नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों की दुनिया के बीच पारस्परिक सम्बंध स्थापित किया जाय। तब मनुष्य कर्त्तव्योन्ति समझ लेता कि मानव चेतना आध्यात्मिक सत्ता के साथ अभिपरी रूप में श्रुतभाव्य है, और फिर वह एवाणीयन, निराशा और विफलता की भावना से मुक्ति प्राप्त कर लेता।⁹⁸ करोषदारमूलन सेवा से भी धार्मिक चेतना की वृद्धि होती है। 'राधाकृष्णन् वा कह्ना है 'धम गोरी सनन' नहीं है, और न यह बार्ड ऐतिहासिक वैकयोग, मनोवैज्ञानिक मुक्ति अथवा पलायन की विचारविधि है। यह मानव सम्बंधों की विनम्र करने का कोई ऐसा धार्मिक साधन भी नहीं है जिसे उदासीन दुनिया ने उत्पन्न कर दिया हो। यह मानव प्रकृति का अभिन्न अंग है, मनुष्य की होतव्यता का संदेश है, व्यक्ति के मूल्य का प्रत्यक्ष ज्ञान है, और इस बात की चेतना है कि विश्व के भविष्य के लिए मनुष्य का नियम बहुत महत्वपूर्ण है। यह मनुष्य की आत्मा का परिचायक है, विश्व के रहस्य के विषय में संवेदनशीलता है, अपने सभी मनुष्यों तथा विभिन्नकोटि के प्राणिमा के प्रति प्रेम और करुणा की भावना है। जिस समाज के घटक धार्मिक व्यक्ति होते हैं उनके जीवन में भारी अंतर आ जाता है।⁹⁹ धर्म मूल्यों का सम्बंध और अनुभूतियों का समर्थन है। उसका उद्देश्य मनुष्य के सम्पूर्ण व्यक्तित्व की प्रदीप्ता करना है। जड़वादी नास्तिकता और बोद्धिवादी मुक्तिवाद मनुष्य की मनस्ताप और मानसिक विषयन से रक्षा नहीं कर सकते। इसके लिए सम्बंध और एकीकरण की धार्मिक भावना की आवश्यकता है। धर्म 'धर्म मनुष्य की समग्र वास्तविकता के प्रति प्रतिनिधित्व' है।¹⁰⁰ किंतु राधाकृष्णन् ने यह नहीं समझाया है कि मनुष्य की क्षमताओं और क्षमता के साथ रूप में विभाजीत होने की प्रविष्टा और विकासविधि क्या है। उनके विचार के अनुसार ही तत्त्व का उत्पत्तिन उनके इस कथन में होता है कि धार्मिक अनुभूति स्वयं-व्यक्ति, स्वयं-विद्य और स्वयं-प्रकाशवान है।¹⁰¹ यदि उनके ये अतिशयोक्तिपूर्ण कथन सत्य मान लिये जायें तो यह बात बड़े आश्चर्य की धारा बहती है कि सभी देशों और सम्प्रदायों में करोड़ों लोग इस स्वयं-विद्य अनुभूति का उत्पत्तिन उनके विचार ही इस जीवन के विचार हो गये। राधाकृष्णन् के धार्मिक मानवतावाद के पक्षपोषण में बहिनार्थ यह है कि उनके अज्ञान व्यक्तित्व का ही उत्साहवर्धन होता है, किंतु बुद्धिवादी उनके सर्वों से सहमत नहीं हो पाता। समग्र मनुष्य के विभाजीत होने का इसके अतिरिक्त और कुछ रूप सम्भव न नहीं आता कि मानव व्यक्तित्व के छायेरिक्त, बोद्धिक, संवेगात्मक, सो-वर्मात्मक तथा नैतिक तत्त्व एवं साथ सन्धि हो।

राधाकृष्णन् धार्मिक मानवतावाद के प्रतिपादक है। पश्चिम में मानवतावाद का उदय वैज्ञानिक प्रकृतिवाद और वैज्ञानिकीय धार्मिकतावाद के विषय प्रतिनिधित्व के रूप में हुआ। उसने सामाजिक तथा नैतिक मूल्यों को प्रतिष्ठा प्रदान की और मानव एकता का समर्थन किया। अतः उसका आदर्शवाद सत्य है। किंतु राधाकृष्णन् ने मानवतावाद के पाश्चात्य सम्प्रदायों में दो आधारभूत कमियाँ चलायी हैं। प्रथम, वह यह मानकर चलता है कि मनुष्य के जीवन तथा स्वभाव के दो नैतिक तथा प्राकृतिक तत्त्व हैं उनके बीच परस्पर तीव्र विरोध होता है। इससे नैतिक सामंजस्य की सम्भव आचार्यनीति असम्भव हो जाती है। नैतिक जीवन का सार इसमें है कि परस्पर सम्पर्क स्वाभाविक प्रवृत्तियों की नैतिक सततता के आधीन रखा जाय। मानवतावाद की दूसरी कमी यह है कि 'उन्ने आध्यात्मिक' अर्थ सत्य की खोज की है। मानवतावादी आचार्यनीति की दो सर्वोच्च व्याख्याएँ वैज्ञानिक भौतिकवाद तथा रहस्यवादी राधुवाद हैं।¹⁰² इस प्रकार पाश्चात्य मानवतावाद सेवा तथा आत्मरक्षा के जिस आदेश का उत्साह के साथ समर्थन करता है उसके लिए वह आध्यात्मिक आधार प्रदान नहीं करता। उसने अत्यंत जीवनशील तथा जीवन की स्वाच्छिन्न करने वाली धार्मिकता के लिए स्थान नहीं है। इससे निरपेक्ष राधाकृष्णन् नैतिक मूल्यों की आध्यात्मिक

98 *An Idealist View of Life*, पृष्ठ 58।

99 *Education, Politics and War*, पृष्ठ 31।

100 *An Idealist View of Life*, पृष्ठ 88।

101 यही पृष्ठ 92-93।

102 यह राधाकृष्णन् *Eastern Religions and Western Thought* पृष्ठ 80। इन प्रकार ही-वारा मानवतावाद तथा राजीववाद के विषय हैं।

आधारों पर स्थापित करना चाहते हैं। इन प्रकार वैयक्त और और के मानवतावाद के मुकाम में राधाकृष्णन आध्यात्मिक दृष्टिकोण की पुन स्थापना करने का सम्भव करते हैं। उनका विश्वास है कि ब्रह्म के रहस्यमयता धर्मों ने जिन निवृत्तिवादी सुषो पर बल दिया है उनके सामाजिक स्थिरता को बल मिलता है। इसलिए उनका आग्रह है कि यूरोप के मानवतावादी चिन्तन तथा एशिया व पश्चिम विश्व वंश के बीच सम्बन्ध स्थापित किया जाना चाहिए।¹⁰³ उनकी दृष्टि में मूलविहीन आधुनिक मानव का धर्म, ज्ञान तथा मानवतावाद के सम्बन्ध की आवश्यकता है।¹⁰⁴ उन्हीं ने उसको सांस्कृतिक मूल सन्धी है और उन्हीं के आधार पर वह निर्दोष सामाजिक व्यवस्था की स्थापना कर सकता है।¹⁰⁵

राधाकृष्णन् पर गांधीजी के अहिंसा तथा अत्याग्रह के दर्शन का गहरा प्रभाव पड़ा है।¹⁰⁶ उन्हें शक्ति, आक्रमण तथा साम्राज्यवाद के दानवी मित्रता का ये सूत्र हैं, इसलिए वे धर्म की राह नीति का आधार बनाना चाहते हैं। एक वास्तविक तथा बुद्धिमत्तापूर्ण सामाजिक व्यवस्था मात्र, 'माय तथा समान स्वतन्त्रता व आधार पर ही सम्भव की जा सकती है। हिंसा समुद्रा को बल देती है, और धर्मा आवश्यक को। गांधीजी के शिष्य होने के नाते राधाकृष्णन को विश्वास है कि समुद्रगत तथा समुद्रगत तत्वों को समायोजन करने का एकमात्र उपाय प्रेम की प्रशिक्षण को शक्ति प्रदान करता है। इसका अर्थ यह हुआ कि मानव स्वभाव की विच्छिन्नता और वपनशक्ति को रोकने के लिए वैयक्तिक तथा सामाजिक प्रेम के साधनों का प्रयोग करना आवश्यक है। गांधीवाद की शुद्ध भावना के अनुरूप राधाकृष्णन को हृदय विश्वास है कि अन्त में शक्ति, अत्याचार और आक्रमण की प्रवृत्तियाँ पर आस्था की विजय अनिवार्य है।

राधाकृष्णन ने स्वतन्त्रता के एक व्यापक विचार का प्रतिपादन किया है। उनके अनुसार स्वतन्त्रता मानव की सृजनशक्ति के विकास की कुंजी है। मनुष्य ईश्वरीय आत्मा है इसलिए आवश्यक है कि शरीर, मन तथा आत्मा की शक्तियों और गुणों का विकास किया जाए जिससे आध्यात्मिक व्यक्तित्व का साक्षात्कार किया जा सके। मनुष्य के अमूर्त वास्तविकता के रूप में व्यक्त होने वाली आध्यात्मिक सृजनशक्ति ही सांस्कृतिक सृजनता का आधार है।

स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में मुख्य दृष्टिकोण है। व्यक्तिवादिया तथा उदारवादिता के अनुसार निवृत्तता से मुक्ति ही स्वतन्त्रता है। हॉग ने अपनी पुस्तक 'सिवाइजन' में कहा है कि शक्ति के माध्यम से दाया का न होना ही स्वतन्त्रता है। विन्तु जलन प्रत्यक्षवादिता ने स्वतन्त्रता की अधिक व्यापक परिभाषा की है। हेगेल के अनुसार विचारता (यहू अथवा ईश्वर) ही स्वतन्त्रता का पूरा रूप है। राजनीतिक तथा सामाजिक स्तर पर सामाजिक विकास के लिए उपयोगी निवृत्तता के अनुसार अपने जीवन का ज्ञान सन्ने की क्षमता ही स्वतन्त्रता है। चूंकि राधाकृष्णन का बौद्धिक विकास पुण्यक्रम में प्रत्यक्षवादी परम्पराओं में अंतर्गत हुआ था, इसलिए वे स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में हेगेल की धारणा की स्वीकार करते हैं। वे निरूपते 'जिसे स्वतन्त्रता की नामना मनुष्य करते हैं वह केवल निवृत्तता का अभाव नहीं है, इस प्रकार की स्वतन्त्रता जो अवास्तविक और निर्देयतापूर्ण होती है। अपनी जगजाह 'शरीरित' तथा मानसिक शक्तियों का उपयोग न प्रयोग करना भी वास्तविक तथा मानवतात्मक स्वतन्त्रता है।'¹⁰⁷ चूंकि राधाकृष्णन सौमन्य के सम्बन्ध हैं इसलिए यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वे स्वतन्त्रता की व्यक्तिवादी व्याख्या की तस्वीर करेंगे। विन्तु उन्होंने हेगेल तथा वीन की नीति स्वतन्त्रता की मानवतात्मक प्रत्यक्षवादी धारणा की स्वीकार किया है। एलिनाई दला न साहूविन नव्याय को साक्षात्कार करने के लिए निवृत्तता की शिक्षा में की प्रवृत्ति है। यही है उनके मन्दन में सत्य की आवश्यकताओं और मौल्य का स्थान में रहते हुए राधाकृष्णन् की स्वतन्त्रता सम्बन्धी आवश्यक धारणा ही अधिक सन्धीपूर्ण प्रतीत होती है। विन्तु

103 एन. राधाकृष्णन् *Eastern Religions and Western Thought*, पृष्ठ 258-59

104 यही पृष्ठ 294।

105 *An Idealist View of Life*, पृष्ठ 62-63।

106 एन. राधाकृष्णन् (अग्रज), *Mohandas Gandhi*

107 एन. राधाकृष्णन् *Education, Politics and War*, पृष्ठ 94।

राधाकृष्णन् पूरा हेतुबोधनी नहीं है। यह काठ और सेमर की इस धारणा में भी विश्वास है कि कोई व्यक्ति अपनी स्वतन्त्रता का उपयोग तभी तक कर सकता है जब तक वह दूसरों की समान स्वतन्त्रता का अतिक्रमण नहीं करता। उन्होंने लिखा है "स्वतन्त्र समाज यह है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छानुसार जीवन बिताने के लिए स्वतन्त्र है, उसकी स्वतन्त्रता पर कबल दूसरा ही प्रतिबंध ही सकता है कि वह दूसरों की समान स्वतन्त्रता का अतिक्रमण न करे।"¹⁰⁸

लोकतन्त्र राजनीतिक स्वतन्त्रता का अर्थ समाज समग्रतापूर्ण है। उसका अर्थ ऐसी संस्थाओं का निर्माण करना है जिनमें अत्यन्त मनुष्य की स्वतन्त्रता को साक्षात्कार दिया जा सके। हिन्दू राजनीतिक लोकतन्त्र तभी सफल हो सकता है जब मनुष्य में कुछ विशेष प्रकार की प्रवृत्तियाँ का विकास हो। लोकतन्त्र सुनिश्चारी स्तर पर एक चिन्तनशक्ति है, और मानव गरिमा तथा अधिकारों की स्वीकृति पर आधारित है। लोकतन्त्र की सफलता के लिए सहिष्णुता की भावना, विवेकता तथा जीवन में अपने को दूसरों की तुलना में विद्यता स्थापित देने की इच्छा अत्यन्त आवश्यक है। लोक-प्रभुत्व के आदर्श का साक्षात्कार करने लोकतन्त्र व्यक्ति की स्वायत्तता तथा सामाजिक कल्याण के आदर्श के बीच समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न करता है। राधाकृष्णन् की लोकतन्त्र के सूत्रों में विश्वास है और उनमें यह शीघ्र इच्छा है कि उन सूत्रों को साक्षात्कार किया जाए। वे लिखते हैं "कहो अर्थ में लोकतन्त्र समाज का स्वशासन है। शब्द का अर्थ ग्राह्य होना सबसे अच्छे रूप में व्यक्त होता है। हर शासन स्वशासन का साधन है। लोकतन्त्र के अन्तर्गत सामान्य इच्छा मनु हीवी है, किन्तु सामान्य इच्छा जनजीवी विषयों का निश्चय नहीं कर सकती, उदाहरण के लिए शूल पद्धति में सुधार और भारतीय संविधान की समस्याएँ। अनेक देशों में लोकतन्त्र इसलिए असफल रहा है कि वह सच्चा लोकतन्त्र नहीं है। अभी तक यह कबल एक आदर्श है। जब हम लोकतन्त्र को एक व्यावहारिक सिद्धांत मान लेते हैं, तो हमारा अभिप्राय यह होता है कि प्रत्येक मनुष्य के कुछ अनपनीय अधिकार हैं जिनका हमें सब व्यक्तियों के साथ व्यवहार करते समय सम्मान करना चाहिए कि वे व्यक्ति किसी भी विषय अथवा उत्पन्न के हों। व्यक्तिगत विवेक है, अतः हर व्यक्ति को अपनी प्रकृति का पूरा विकास करने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए। लोकतन्त्र का अर्थ यह नहीं है कि हम सब समान हैं। मनुष्य प्राथमिक तथा द्वैष्टिक दृष्टि के अन्तर्गत उत्पन्न होता है। हर नाम के मनुष्य असमान रहते हैं। यह भी सत्य है कि कोई भी सामाजिक व्यवस्था पुनः समाजता प्रदान नहीं कर सकती। सुप्रसन्न वे काम उत्पन्न कर पाते हैं बिना होता है कि कोई मनुष्य बिना सामाजिक परिस्थितियों में रह रहा है और उनके प्रति उसकी क्या प्रति-विधा है। फिर भी अन्तर्गत की समाजता एक अच्छा सामाजिक आदर्श है। लोकतन्त्र कोई सामाजिक स्थिति नहीं है, यह एक आदर्श है जिसे उत्पन्न तथा शिक्षा के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। यदि अन्तर्गतता की दृष्टि विकसित हो और नेताओं ईमानदार हों तो लोकतन्त्र अधिक सफल हो सकता है। लोकतन्त्र पूरा आदर्श की तुलना में चिन्ता ही चिन्ता क्या न हो, फिर भी यह उदार निरन्तरवाद के कुछ उदाहरणों को छोड़कर अतीत में सभी शासन प्रणालियों से अच्छा है।¹⁰⁹ लोकतन्त्र विवाद, द्वैष्टिक उपनिषद् और सन्धीयों के द्वारा प्रभावकारी सामा-जिक, आर्थिक और प्रशासकीय परिवर्तन लाने की एक आवश्यक शक्ति है। यह पूरा रूप से विचारों का पाठ्य के सत्तावादी प्रणाली के विरुद्ध है। लोकतन्त्र विचारों का विनाश करने की सभी शक्त नहीं दे सकता। राज्य की शक्ति शिक्षा के अभाव में सभी प्रकार के मानव अधिकारों का परिचायक ही लोकतन्त्र का आधार है। शिक्षात्मक वास्तववादी का आवश्यकता का आवश्यकता के साथ मेल नहीं हो सकता। अतः राधाकृष्णन् उन लोकतांत्रिक देशों की वास्तववादी के विरुद्ध हैं जहाँ विवेक तथा धर्म की शक्ति की दार्शनिक रूप से एक ही क्षति के उत्पन्न का प्रयत्न किया जाता है।

राजनीतिक समन्वय आर्थिक सुविधाओं की आधारभूत समाजता के बिना निरर्थक है। आर्थिक धर्म ही राजनीतिक स्वतन्त्रता तथा विवेक समाजता की सफलता प्रदान कर सकता है।

अतः धार्मिक मान्यतावादी होने के नाते राधाकृष्णन् ने ऐसी समाद-व्यवस्था की आवश्यकता पर ज़ोर दिया है जिससे अतन्त्र सभी का 'आधारभूत धार्मिक स्थाप' ¹¹⁰ उपलब्ध हो सके । य सामाजिक संघर्ष तथा के भारत की स्वीकार करते हैं । ¹¹¹ उन्होंने लिखा है "मैं समाजवादी समाज का पूर्ण समर्थन करता हूँ । परा विवक्षा है कि इस प्रकार की व्यवस्था का स्पष्टतम धर्म के साथ बार्ड विरोध नहीं है, वास्तव में धर्म की भाँति है कि इस प्रकार की व्यवस्था की स्थापना की जाय । सामाजिक संघर्ष ¹¹² की स्थापना के एक प्रयत्न और सम्पत्ति तथा सुविधाओं के अधिक समान वितरण की सभी योजनाएँ धार्मिक मान्यता की वास्तविक अनिवार्यता हैं ।" ¹¹³ इसलिए समाजवादी न होत हुए भी राधाकृष्णन् सम्पत्ति पर मौल्यतात्मक पद्धति के सामाजिक स्वामित्व स्थापित करने के आग्रह की स्वीकार करते हैं । दोनों ओर साक्ष्य की शक्ति य भी मानते हैं कि किसी व्यक्ति का सम्पत्ति पर अधिकार उसके धर्म के मूल के आधार पर ही अधिक उद्भूतता का संकेत है । य निश्चित है "सम्पत्ति तथा शक्ति के बड़े साधनों के सामाजिक स्वामित्व पर आधारित एक व्यवस्था वैश्वी जीवन के लिए एक मान्यता होगी, और उससे सामाजिक भाईचारे के विकास में अधिक सहमता मिलेगी । अधिभूत पुरस्कार सामाजिक सेवा से जुड़न नहीं होना चाहिए । धर्म प्राप्त करने का अधिकार सामाजिक दायित्व के निर्वहन पर आधारित होना चाहिए । कुछ विशेष साधनों से होने वाला समा विविधता माना से अधिक साम अर्थव्यवस्था को प्रेरित कर दिया जाय । गरीबी भाव की वृद्धि के द्वारा सीमित किया जा सकता है । अन्तराष्ट्रीय जीवनवादी है, किन्तु सम्पत्ति का अन्त करने अन्ताराष्ट्रीय है ।" ¹¹⁴ राधाकृष्णन् धर्म की अधिकतम विषमता के उद्घाटन के पक्ष में हैं, किन्तु वे किसी सम्पत्ति के वास्तविक समाजीकरण की अनुमति नहीं दे सकते । फिर भी उनका पुनरावलोकनवादी होना उनके इस कथन से प्रभावित होता है कि प्राचीन भारतीय समाज में अनुवादी 'धर्म का सिद्धांत प्रचलित था । वे लिखते हैं "प्राचीन भारत में अनुवादी 'धर्म का जो आदेश प्रचलित था उसके अनुसार अधिका और कृपा ही नहीं अधिभूत दास्य, योद्धा, सभाई वनचारिया और पट्टेदारों की सी सेत की उपज का भाग उपलब्ध होता था । इस आदेश के सामान्य सिद्धांत में वर्तमान परिस्थितियों के अनुसार संशोधन किया जा सकता है ।" ¹¹⁵

यूनि राधाकृष्णन् आध्यात्मिक मान्यतावादी हैं, इसलिए वह मान्यतावाद की समाज की प्रधानता देने वाली प्रवृत्ति के पूर्ण हैं । यही कारण है कि वे धर्मवाद के वास्तविक आलोचक हैं । समाज तथा धर्म के सिद्धांत के विपरीत वे आध्यात्मिक मान्यता के मत को प्रेरित करने वाले आदेश का समर्थन करते हैं । ¹¹⁶ इन्द्रात्मक भौतिकवाद भौतिक शक्तियों के अर्थ और कोशिश के विरोध पर मान्यतावाद अन्त देता है । अधिक से अधिक वह भौतिक प्रक्रिया का अनिश्चय है, वह उसकी व्याख्या नहीं करता । ¹¹⁷ इससे अतिरिक्त सभी भौतिकवाद परम्परागत धर्मों का विरोधी होने हुए भी व्यवहार में एक दृष्टिकोण के धर्म और धर्म का धर्म है और वह भी प्रकार की परम्परागत प्रवाही का प्रयोग करता है । ¹¹⁸

राष्ट्र की समस्या आधुनिक भारतीय सामाजिक तथा राजनीतिक विचारों के लिए सबसे अधिक उत्तम और अवकाश उपलब्ध करने वाली है । इस विषय में राधाकृष्णन् पुरातनवादी हैं,

110 *Contemporary Indian Philosophy*, पृष्ठ 504 ।

111 अपने *Fragments of a Confession* नामक ग्रन्थ में राधाकृष्णन् य यही धर्म कहते हैं कि सामाजिक अधिकार माना हुआ है ।

112 *Education, Politics and War* 'समाजीकृत जीवन का समर्थन दिया है ।

113 यही, पृष्ठ 14-15 ।

114 *Education, Politics and War* पृष्ठ 42 ।

115 यह राधाकृष्णन् *Education, Politics and War*, पृष्ठ 43 (यूनाइटेड प्रेस ऑफ इण्डिया, 1944) : यही वह मान्यता है कि अनुवादी 'धर्म (मान्यतावाद) के सिद्धांत का प्रसारण करना है कि धर्म का न कि हिन्दू धर्मवादी है ।

116 *Eastern Religions and Western Thought* पृष्ठ 268 ।

117 यह राधाकृष्णन् *Fragments of a Confession*, *The Philosophy of Radhakrishnan*

118 *An Idealist View of Life*, पृष्ठ 47 ।

अतः धार्मिक मान्यतावादी हान के बावजूद राष्ट्रावृष्णन ने ऐसी समाज-व्यवस्था की आवश्यकता पर बल दिया है जिससे अत्यन्त सखी का 'आध्यात्मिक आधिन' 'भाव'¹¹⁰ उपलब्ध हो सके। ये समाजिक लोचन'न के आदेश की स्वीकार करते हैं।¹¹¹ उन्होंने किया है "मैं समाजतावादी समाज का पृथक् समर्थन करता हूँ। मेरा विद्वान् है कि इस प्रकार की व्यवस्था का श्रेष्ठतम फल के साथ कोई विरोध नहीं है, वास्तव में धर्म की भाँति है कि इस प्रकार की व्यवस्था की स्थापना की जाय। समाजिक लोकतन्त्र'¹¹² की स्थापना के राह प्रयत्न और सम्पत्ति तथा सुविधाओं का अधिक समाज विवरण की सखी लोकतन्त्र धार्मिक 'राज्य' की पालतु अधिकृत है।¹¹³ इसलिए समाजवादी न होत हुए भी राष्ट्रावृष्णन सम्पत्ति पर लोकतन्त्र'न पद्धति से सामाजिक स्वायत्त स्थापित करने के लिए को स्वीकार करता है। उनकी और सासों की भाँति व भी मानते हैं कि किसी व्यक्ति का सम्पत्ति पर अधिकार उसने धर्म के मूल्य के आधार पर ही उचित ठहराया जा सकता है। वे लिखते हैं "सम्पत्ति तथा सक्ति के बड़े साधन के सामाजिक स्वायत्त पर आधारित अथ व्यवस्था नैतिक जीवन के लिए कम फलदायी होती और उससे सामाजिक भाईचारे के विकास में अधिक बाधा पड़ती मिलेगी। आर्थिक दुरस्वर सामाजिक सेवा से पृथक् नहीं होना चाहिए। धन प्राप्त करने का अधिकार माना किन दायित्व के निबहन पर आधारित होना चाहिए। मुक्त विशेष साधन से होना वाला तथा निश्चित मात्रा से अधिक लाभ अर्जन प्रोत्साहित कर दिया जाय। सारी आय को राज के द्वारा सीमित किया जा सकता है। करारपत्र लोकतन्त्र'न है, किन्तु सम्पत्ति का जम्मा करना अत्याचारपूर्ण है।"¹¹⁴ राष्ट्रावृष्णन धर्म की अतिशय विषयता के अनुष्ठान के पक्ष में हैं, किन्तु वे निजी सम्पत्ति के शासकालिक समाजीकरण की अनुमति नहीं दे सकते। फिर भी उनके पुनरुत्थानवादी होना उनके इस कथन से प्रभावित होता है कि प्राचीन भारतीय समाज में अनुसूची 'जान' का विद्वान् प्रचलित था। वे लिखते हैं "प्राचीन भारत में अनुसूची 'जान' का जो आदेश प्रचलित था उसके अनुसार धर्मियों और कृषकों ही नहीं अपितु नाइया, शोषितों, सफाई कर्मचारियों और बहरेखा को भी धर्म की उपज का भाग उपलब्ध होता था। उस आदेश के सामान्य विद्वान्ता में बतमान परिधिधर्म के अनुसार संशोधन किया जा सकता है।"¹¹⁵

यदि राष्ट्रावृष्णन आध्यात्मिक मान्यतावादी हैं, इसलिए उन्हें मानसवाद की समाज का प्रभावता देने वाली प्रवृत्ति से घृणा है। वही कारण है कि वे मानसवाद के दार्शनिक आलोचक हैं। समाज तथा धर्म के विद्वान् के विपरीत वे आध्यात्मिक मानसवाद के बल करने वाले आदेश का समर्थन करते हैं।¹¹⁶ इन्द्रात्मक भौतिकवाद भौतिक दार्शनिक के अथ और भौतिक के विरोध पर अनावश्यक बल देता है। अधिक से अधिक वह भौतिक प्रक्रिया का अस्मरण है, वह उसकी व्याख्या नहीं करता।¹¹⁷ इसके अतिरिक्त सभी लोकतन्त्रिकवाद परम्परागत धर्मों का विरोधी होते हुए भी व्यवहार में एक बहुमानक धर्म और धर्म बन गया है और वह भी प्रकार की परम्परागत प्रवृत्ति का प्रयोग करता है।¹¹⁸

बावजूद की समाज आधुनिक भारतीय सामाजिक तथा राजनीतिक विचारों के लिए सबसे अधिक उत्पन्न और परभावशाली उत्पन्न करने वाली है। इस विषय में राष्ट्रावृष्णन पुरातनवादी हैं,

110 *Contemporary Indian Philosophy*, पृष्ठ 504।

111 *Some Fragments of a Confession* नामक पुस्तक में राष्ट्रावृष्णन ने कहा कि वह लिखता है कि सामाजिक अर्थ का भाग हमारा धर्म है।

112 *Education, Politics and War* 'समाजीकृत' रूप का समर्थन किया है।

113 वही पृष्ठ 14-15।

114 *Education, Politics and War*, पृष्ठ 42।

115 *Some Fragments of a Confession*, पृष्ठ 43 (यह पुस्तक बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, 1944)। वही वह कथना देता उपलब्ध होता कि अनुसूची 'जान' (अथवा धर्म) का विद्वान्ता का अतिशय करार है किना था व कि हिन्दू विधिधर्मियों ने।

116 *Eastern Religions and Western Thought*, पृष्ठ 268।

117 *Some Fragments of a Confession* 'The Philosophy of Radhakrishnan

118 *An Idealist View of Life* पृष्ठ 47।

किन्तु प्रतिक्रियावादी कमी नहीं है। वे बच-व्यवस्था के मनोवैज्ञानिक तथा समाजशास्त्रीय आधारों और मा-पताओं को स्वीकार करते हैं।¹¹⁹ उनका कहना है कि चूंकि बच व्यवस्था मनुष्यों की आध्यात्मिक समानता को स्वीकार करती है, इसलिए यह सौम्यतामय है। इससे अतिरिक्त जगत् यह भी मत है कि चूंकि उसमें अत्यंत व्यक्ति स्वेच्छा से अपने अधिकारों को स्वीकार करता है, इसलिए उससे व्यक्तित्व का परिवर्धन होता है। बचव्यवस्था समाज की प्रकृति की परमात्मिक धारणा के विरुद्ध है और अव्यवस्था धारणा को स्वीकार करती है। वह ज्ञान, प्रशासकीय साहस, उत्पादन क्षमता तथा सामाजिक सेवा के बुद्धिसक्त साधनत्व का समर्थन करती है।¹²⁰ राधाकृष्णन् का कहना है कि बच का समाजशास्त्र हर बच को सामाजिक दृष्टि से उपयोगी मानता है और सुअवस्था की व्यवस्था को ही सामाजिक 'बच' समझता है।¹²¹ मुझे इससे संदेह है कि राधाकृष्णन् बचव्यवस्था के सहकारी रूप की इस हानिकारकी व्याख्या को अब भी स्वीकार करते हैं। बचव्यवस्था की लोक-शासन सिद्धांतों के आधार पर समर्थन करना पुनरुत्थानवादी राजनीतिक दल का एक बहुत रोचक रूप है। किन्तु राधाकृष्णन् व्यक्ति व्यवस्था की उस विघटनकारी प्रवृत्ति के आलोचक हैं जो हम आज भारतीय समाज में देखने को मिलती है। आज वह पूट और रगड़ की प्रतीताह्वन देती है और बुद्धिहीन अत्याचारों को बनाये रखने में सहमन है। इसी सामाजिक सहनता के माध्यम से बाधा बढ़ती है। फिर भी वे समाज-व्यवस्था में बाधशूलक समुदायों की उपदेयता को स्वीकार करते हैं। सामाजिक उद्देश्य अव्यवस्था तरीकों से सिद्ध होता है, जहाँ हर व्यक्ति सामाजिक विकास में विशिष्ट योग दे सकता है।

आध्यात्मिक मानवतावाद का दलन विषय समाज के आदर्श को जन्म देता है।¹ आत्मा के धर्म तथा राष्ट्र पूजा के आदर्शों के बीच परस्पर उच्च विरोध है। मरिच्य में उल्लेख होने वाला¹²² मानव समाज विरक्त राज्य पर आधारित होना चाहिए। तलवार के 'धर्म' के समान पर विवेक, 'बच' तथा सामुहिक सुरक्षा की स्थापना होनी चाहिए। जातीय (नस्लगत) भ्रातृभाव की उपस्थिति तथा विषय सहकृति और विषय अल्ल करना का विकास परमात्मिक है। राष्ट्र का सार्वजनिक व्यवहार सार्वराष्ट्रीय विधि पर आधारित होना चाहिए। प्रभु व्यक्ति को सीमित करना होगा। राधाकृष्णन् सत्कारवादी हैं। वे समुक्त राष्ट्र सच के आदर्शों के समर्थक हैं। अपनी पुस्तक 'इय दिश पीछ' में उन्होंने एक प्रकार की विरक्त सरकार का समर्थन किया है। वे चाहते हैं कि एक सच सरकार की स्थापना की जाए जो सुरक्षा तथा प्रतिरक्षा के लिए जिम्मेदार हो।¹²³ किन्तु राजनीतिक सत्कारवाद की सफलता के लिए आवश्यक है कि धार्मिक मूल्यों का भी विचार हो। उनका विचार है कि धार्मिक आदर्शवाद ही वास्तविक आईवारे तथा सहकरिता के लिए आधार तैयार कर सकता है। वे लिखते हैं "विषय के इतिहास में धार्मिक आदर्शवाद ही धार्मिक का सबसे अधिकजानी और आशुभ साधन सिद्ध हुआ है। जब तक हम अधिकारी और कलश्यों को आधार मानकर चलते रहेंगे तब तक हम मनुष्य के परस्पर विरोधी स्थापनों और आकांक्षों में सामंजस्य स्थापित नहीं कर सकेंगे। धर्मियों तथा राजनयिक समझौते हमारे आवेष्टों पर अकुल तथा शकते हैं, किन्तु वे हमारे मन की दूर नहीं कर सकते। विषय में मानवजाति के लिए प्रेम का संचार करना है। हमें ऐसे धार्मिक वीरा की आवश्यकता है जो समूह विषय ने स्थापित की प्रतीक्षा नहीं करेंगे, बल्कि जो आवश्यकता पड़े पर अपना जीवन देकर भी 'एक पृथ्वी एक परिवार' के आदर्श को सिद्ध कर देंगे।"¹²⁴

119 *The Hindu View of Life*, पृष्ठ 127।

120 *Eastern Religion and Western Thought*, पृष्ठ 356।

121 श्री पृष्ठ 366-68।

122 श्री पृष्ठ 361।

123 श्री, पृष्ठ 57।

124 एक राधाकृष्णन् *Is This Peace?* पृष्ठ 62 (जुलाई 1950)।

एक राधाकृष्णन् *Kali or the Future of Civilization*, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ 64 (जुलाई, हिन्दु मिशन 1949)।

राधाकृष्णन 'पारम्परिक विचारधारा' की स्थापना व तीन उपाय बताते हैं

- (1) सामाजिक नीतियों की स्थापना,
- (2) साम्राज्यवादी आधित्य तथा कमिनिज्मवाद का उन्मूलन, और
- (3) राष्ट्रीय राज्या के प्रभुत्व पर अन्तरराष्ट्रीय नियंत्रण।¹²⁶

अपनी 'इतिहास एक पाठ्य' पुस्तक में उन्होंने 'वास्तविक विचारधारा' व तीन आवश्यक शिक्षा निर्धारित किए हैं (1) जातिगत समता, (2) विरक्त राष्ट्रवाद, और (3) अन्तर राष्ट्रीय पुनर्जाति।¹²⁷

राधा भी तथा अरविन्द की भाँति राधाकृष्णन् को मनुष्य के हृदय तथा मन में परिवर्तन व शिक्षा का प्रतिपादन करते हैं।¹²⁸ 'यस कर्मवीर है। मानव सत्कृति ताम, तमसो मा' और व्यास स्वामिन्ना व उत्तम कर्माणुस निराला तथा मानविक सिद्धि के क्षेत्र में पुनर्जाति है। तब और तब के इन युग में युद्ध सामाजिक बदलाव बन गया है। एक दूसरे की दृष्टि में निम्न सामाजिक की अधिनाधिक पूर्ति करना ही जीवन का लक्ष्य बन गया है और यही लक्ष्य ही लक्ष्य है। इसका अर्थ मनुष्य की चेतना में परिवर्तन करना ही शिक्षा का मतलब है। मानव आत्मा की सामाजिक कर्मवीरता का स्वीकार करना आवश्यक है, क्योंकि आत्मा की शक्ति और जीवनमूल की मातृभरत ही समता का हनन निराला का मतलब है, यद्यपि तत्कालीन प्रकृति तथा जातिगत सामाजिक समता की दृष्टि से काम नहीं चल सकता।¹²⁹ इसके लिए आवश्यक है कि सामाजिक स्वतंत्रता व सामाजिक के हनु सर्वोच्च शिक्षा की व्यवस्था की जान। मुद्रा और शिक्षा के जीवन का स्थापन ही और उन्हें पान, अन्न और अज्ञान में मुक्ति मिले। यही मानव जाति की हास्यता है।

5 निष्कर्ष

राधाकृष्णन उन्नीसवीं के समाजवादी और भारतीय दल के प्रमुख विचारकर्ता हैं। विन्तु वह मोक्षवाद के रचनात्मक संचालक नहीं बल्कि का मतलब। उन्होंने एक व्यवस्थित दृष्टिकोण दिखाया है कि विचार रचना नहीं की है, उनकी चर्चा उनके व्यापक और कर्मवीर सामाजिक परिवर्तन में निहित है। वह उन्नीसवीं के सामाजिक तथा राजनीतिक दार्शनिक भी नहीं बल्कि का मतलब। एक शिक्षाकार के रूप में उनका मुख्य प्रयोजन मन व मनुष्यवादी मान्यता का निरूपण करना रहा है। उनकी रचनाओं में इस बात का साक्ष्य नहीं मिलता कि उनका आधुनिक राजनीतिकार, सामाजिकार और मानवशास्त्र के मुख्य स्रोतों में परीक्षण है। इसलिए उनके पास उन सामाजिक व्यवस्था का अभाव है जिनके द्वारा उन्नत सामाजिक और राजनीतिक चिन्तन की व्यवस्था की रचना की जा सकती है। फिर भी वे इस बात के अधिवासी हैं कि आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन में उनकी कला की आन, क्योंकि उन्होंने मोक्षवाद सामाजिक चेतना तथा शिक्षा धर्म के समान में धार्मिक आवश्यकता के शिक्षा पर अधिक मन दिया है।

राधाकृष्णन पश्चिम में लिए भारतीय दल के प्रमुख आधारकार हैं। यद्यपि उनकी धार्मिक रचनाएँ विवेकानन्द और रामलीला की रचनाओं से उन्नत हैं और उनके पास भारतीय धार्मिक चिन्तन की पर्याप्त जानकारी थी, विन्तु उनका धार्मिक अधिक दल की विचार है। उन्होंने भारत की बहुमुखी धार्मिक विरासत की पश्चिम की अनेकी जाति वाली जनता के लिए उपलब्ध करा दिया है। अपनी रचनाओं में उन्होंने अनेक स्थापना पर भारतीय तथा भारतीय विचारों के बीच तुलना की है, इनके भारतीय दार्शनिकों का तुलनात्मक दल के क्षेत्र में योगदान स्पष्ट हो जाता है।

राधाकृष्णन की विभिन्न रचनाएँ जो 1908 के उपरांत लगभग आधी सतावी की दीप कालीन मोक्ष राजनीतिकता की उदय है, पश्चिम तथा पूर्व के बीच दार्शनिक सद्भाव का काम करती हैं। उन्होंने पारम्परिक चिन्तन की 'इतिहास', धार्मिक तथा आवश्यकता आधारित धार्मिकता की अधिना' सद्भाव

126 *Education Politics and War* पृष्ठ 11।

127 'यस कर्मवीर' *India and China* पृष्ठ 194-200 (मार्च 1954)।

128 'यस कर्मवीर' *Education Politics and War*, पृष्ठ 93।

129 *An Idealist View of Life* पृष्ठ 82-83।

मिठा है। रहस्यवाद तथा आध्यात्मिक चिन्तन पर पुनः का एकाधिकार नहीं है। पूरे तथा परिपूर्ण के विपक्ष में धार्मिक आन्दोलन की जो मर्यादा प्रवृत्तियाँ देखने की मिलती हैं वे मानव जाति की दो आत्मा के बीच निरन्तर वृद्धिमान सम्बन्ध की सम्भावना की सीमा हैं।

सामाजिक चिन्तन में राधाकृष्णन का योगदान यह है कि उन्होंने मनुष्य की सत्यता का अनुमान के लिए धार्मिक मार्ग का समर्थन किया है। उन्होंने एक नए मानवतावाद का उद्घोष किया है। उनका आधार यह मान्यता है कि जीवन में धार्मिक मूल्यों की आवश्यकता की जाती चाहिए। किन्तु राधाकृष्णन् सर्वोपरि 'सम्बन्धवाद' नहीं हैं। पथ में उनका अभिप्राय है वास्तव, साहचर्य, सम्बन्ध, उत्तरदाता तथा महत्त्वपूर्ण की भावना और इन बातों की स्वीकृति कि मनुष्य में ईश्वरीय उन्नति विद्यमान है और वही उत्तरी आन्तरिक प्रवृत्ति है। राधाकृष्णन उन लोगों में से हैं जिन्होंने धार्मिक भावना की पुनः स्थापना करने का आध्यात्मिक आन्दोलन इन में समर्थन दिया है।

राधाकृष्णन् ने सामाजिक चिन्तन के विषय में बहुत का मतलब है कि अपने 'धर्मवाद' प्रत्ययवाद की विचारधारा का दृष्टि किया है। वे मनुष्य के अस्तित्व तथा आध्यात्मिक मूल्यों के पुनः स्थापना के लिए मानव प्रवृत्तियों हैं, इस दृष्टि में वे धर्मवादियों हैं। वे इस अर्थ में भी धर्मवादियों हैं कि उन्होंने मनुष्य की आध्यात्मिक सम्भावना पर ध्यान दिया है और आग्रहपूर्वक कहा है कि मनुष्य का अस्तित्व पिता की प्रवृत्तियों के द्वारा इनका जैसा उद्घाटन का सत्यता है कि वह स्वतन्त्रता, बुद्धि प्रगति और वास्तव के मूल्यों की उत्तरोत्तर स्वीकार करना चाहें। उनका विश्वास है कि पिता के द्वारा मनुष्य के आचरण में भी विवेक तथा उत्तरदाता की वृद्धि की जा सकती है। राधाकृष्णन बुद्धि पिता तथा वैज्ञानिक प्रगति के लिए उत्सुक हैं। इस दृष्टि से उनका तथा धार्मिक उन्नतियों के बहुत कुछ समानता और सादृश्य है। किन्तु राधाकृष्णन् पर हस्त, बल और वंश के प्रत्ययवाद का भी गहरा प्रभाव है। वे सामाजिक धर्मियों की प्रवृत्तियों की स्वीकार करते हैं। उन्होंने मानव के सम्बन्ध में अवश्य ही धारणा की भी स्वीकार किया है। एक शरत्काली की भाँति उनका भी यकीन है कि राज्य का काम मनुष्य जीवन को संतुष्ट करना है।¹³⁰ इस प्रकार राधाकृष्णन धर्मवाद प्रत्ययवाद के सम्बन्ध में अनुवादी हैं। आत्मा के मूल्यों की खोज करना ही उनके चिन्तन का सार्वभौमिक मूल्यपूर्ण तथ्य है। वे बारम्बार कहते हैं कि अतीत और निराश्रित मानव आत्मा का एकमात्र संभव सम्बन्ध आध्यात्मिकता ही है। राधाकृष्णन 'सामाजिक विचारधारा', धार्मिक सम्बन्ध तथा सामाजिक अनुमान के बीच भी सत्यता के घन भी खोज में रहते हैं। इसके अलावा है कि उनकी जड़ें 'रहस्यवाद' आन्दोलन की हिन्दू धार्मिक परम्परा में बहुत गहरी हैं।

प्रकरण 11

सत्यदेव परिचय

1. प्रस्तावना

हिन्दू मठों के 'संन्यासी सम्प्रदाय' और एक सुप्रसिद्ध तथा विभीक सन्तों स्वामी सत्यदेव परिचय (1879-1961) का काम सुविधाना में हुआ था और ज्वालानुर द्वारा में उनका प्रवेश हुआ। जब वे साह्यार की एक आध्यात्मिक पाठशाला में पढ़ते थे उसी समय उन्हें वैष्णव परम्परा में आकर्षित कर दिया गया था। उन्होंने 'सत्यदेव प्रकाश' तथा 'सन्तों के जीवन' की एक सफल आत्मकथा नहीं और सामाजिक विरोधी भी बने। पण्डित तेलंगन के बीरब्रह्म निम्नलिखित उद्धाहृत तथा सत्यदेव के द्वारा उद्धृत सत्यदेव के जीवनचरित्र के उद्धरणों से उन्हें प्रेरणा मिली। उन्होंने लिखा है कि सत्यदेव की दुष्टता से मैं आध्यात्मिक स्वतन्त्रता का रूप सीखा था।¹³¹ मैट्रोपुलिटन परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरांत उन्होंने कुछ महीनों के लिए शिक्षक का काम किया और फिर वे ए. बी. कॉलेज लाहौर तथा न्यूटन कॉलेज ब्रिस्टोल में अध्ययन किया। स्वामी महानन्द से उन्होंने सम्पूर्ण ध्यानार्पण पत्रिका आरम्भ किया। उसके बाद उन्होंने उत्तर भारत के अनेक स्थानों में 'सत्यदेव विद्यालय' कीपुरी, 'विद्यालय कीपुरी' तथा 'अष्टाध्यायी' का अध्ययन किया। बारानसी के सेतु

130. *Eastern Religions and Western Thought* पृ. 360।

131. 'सत्यदेव परिचय' की आत्मकथा, 'सत्यदेव' की भाँति में, पृ. 232 (आध्यात्मिक विचार, ज्वालानुर, 1-2)

हिंदू नाॅनलिज ने उनका डा एंजी वेंसेंट से सम्पर्क हुआ। किंतु उस समय वे बहुत आयत्नशील थे इसलिए श्रीमती वेंसेंट से उनका सम्पर्क अधिक दिना तक न चल सका। वही आर्थिक रूप न समर्थमुत्तरदायक की प्रेरणा से उन्होंने हिन्दी में जिसका आरम्भ किया जा श्रमे पत्रकार उनके जीवन का मुख्य पाथ बन गया। स्वामी विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थ ने व्यक्तिगत, रचनात्मक और साधना से सम्बंधी प्रेरणा तथा उत्कट उत्साह प्राप्त करने सम्बन्ध में 1905 में अमेरिका को प्रस्थान किया। अमेरिका में वे पाँच वर्ष रहे। वहाँ उन्होंने सिनामी, मोरेगा (डुबोव) और वासिगन (सीटल) के विश्वविद्यालयों में अध्यापन किया तथा राजनीति राज्य का विशेष विषय लेकर भी ६ की परीक्षा उत्तीर्ण की। कॅम्ब्रिज (बैथेन्सिटेस) में उनकी माता हृदयघात से नैट हुई।¹³²

1911 में सम्बन्ध भारत भ्रम और राष्ट्रवाद की व्याख्या तथा प्रचार करने में लिए बहुत ही उप तथा ओजस्वी साधन देने लगे। उन्होंने भारतीयों को राष्ट्र राष्ट्रवाद का संदेश दिया जिसका वाद उन्होंने अमेरिका में सीखा था। अपने आत्मसी साधनों द्वारा उन्होंने शारीरिक बल, स्वावलम्ब, धर्म की परिभा, मानव अधिकार, हिन्दी का प्रचार, हिंदू सभ्यता पर नव तथा माता यता का महत्व समझाया। वे 'राजनीतिक संचाली' होने का दावा करते थे। उन्होंने राष्ट्रवाद का संदेश दिया, किंतु उसमें वैदिक संस्कृति की पुष्टा रहता था। महात्मा गांधी के बहने से उन्होंने 1918 में दक्षिण में हिन्दी के प्रचार के लिए शारीरिक कार्य किया।

जब गांधीजी ने आधुनिक भारतीयों को आरम्भ किया तो सम्बन्ध उनके सहयोग के रूप में काम करते रहे और स्वामी तथा कानिनी के सहयोग में अनेक स्थानों पर उन्होंने मातृता साधन दिये। किंतु बाद में वे मोतीलाल नेहरू के स्वराज्य दल में सम्मिलित हो गए और 1925 के चुनावों में उस दल के प्रत्यायियों का समर्थन किया। 1924 में उन्होंने अपनी 'संगठन का विपुल' नामक पुस्तक की रचना तथा प्रकाशन किया। 1927 में वे अहिंसा की चिकित्सा के लिए अपनी चले गये और वहाँ भी उन्होंने हिंदू सभ्यता की श्रेष्ठता पर साधन दिये।

सम्बन्ध स्वभाव से आकाशक तथा सुसंस्कृत प्रवृत्ति के थे। उनकी वाणी बड़ी तीक्ष्ण की। अपनी बातचीत में वे पुलित तथा सी आई की के विरुद्ध किए उल्ला करते थे। सम्बन्ध कभी भी आत्मवाद की अवस्था का प्रतिपाद नहीं थे, यद्यपि इस सम्बन्ध में उन पर निरंतर आकाशक संदेश दिया जाता रहा। बल्कि उन्होंने आत्मवादियों को हिंसा के माप से हटाने का भी प्रयत्न किया और वह समझाया कि यशस्वी हिंसा करने तथा यशस्वी होकर साहस के किसी महत्त्व की बार आत्मवाद की कोई बात नहीं हो सकती। किंतु पुलित के सम्मिलितों में वह एक आत्मवादियों के रूप में ही विवक्षित किया गया था, और इसलिए वहाँ उन पुलित का सम्पर्क था उनके राजनीतिक जीवन में बड़ी कष्टसाध्य रही।

सम्बन्ध ने पाप बार यूरोप की यात्रा की—1911, 1923, 1927-30, 1934 और 1939 में। अपनी तीसरी यात्रा में वे यूरोप में तीन वर्ष रहे। अपनी में रहकर वे जर्मन जीवन प्रणाली तथा सभ्यता से बहुत आकृष्ट हुए। जब वे प्राचीन भारतीय विरासत तथा सभ्यता की श्रेष्ठता के सम्बन्ध में साधन दिया करते थे उस समय भी वह नास्तिकों की द्विज प्रणाली तथा अनुशासन बहुत प्रभाव था। नास्ती लोक शारीरिक बल तथा राष्ट्रीय धर्मिक को बहुत महत्व दिया करते थे। उनकी यह बात भी सम्बन्ध को अच्छी लगी थी। सम्भव है कि ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति उनकी घृणा उनके फासीवाद की ओर आकृष्ट होने का आर्थिक कारण रही हो। अपनी भारत यात्रा में उन्होंने हिंदुत्व की महत्त्व कहा¹³³ है और उसके असाधारण बलिदान, साहस चरित्र, दुस्मनीय साहस तथा अदृष्ट देशभक्ति की बड़ी प्रशंसा की है।¹³⁴ हिंदुत्व ने बहुविध और ईसाईय की समझान (ईश्वरीय ज्ञान) की आस्था के विरुद्ध विहासकता रखा था, और वह यूरोप में आज सभ्यता के प्रचार

132 सम्बन्ध कीसल के अग्रणी सम्बन्ध न मातृ हृदयघात से निराश था अर्थात् विचार नाम के हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करवाया।

133 अर्थात् हिंसा की यात्रा में पृष्ठ 304। सम्बन्ध लिखते हैं कि मुंबई के हिंदुत्व में उत्कट राष्ट्रवाद का रूप देखा था।

134 वही पृष्ठ 405-06।

के लिए उत्तुंग था। इस समयें लिए भी मतभेद ने हिटलर का बहुत मुचमल किया है।¹³⁵ उनका विश्वास था कि ईश्वर ने हिटलर को भारतीय स्वाधीनता के लिए साधन के रूप में प्रयोग किया था। इसका प्रमाण यह था कि हिटलर ने इनलैण्ड की शक्ति को कमजोर करने भारत की स्वाधीनता के समय में सहायता पहुँचायी थी।¹³⁶ सत्यदेव ने जवाहरलाल नेहरू की भी आलोचना की है, क्योंकि वे भावधारा के कारण हिटलर को पसीमादी मानते हैं।¹³⁷

1942 में स्वामी सत्यदेव की नेत्रहृष्टि लगभग समझा हो गयी। उसने उपरांत 1961 तक उन्होंने अपना जीवन अधिकतर जवालापुर में बिता अपने सत्यज्ञान विनैतक अध्ययन में ही बिताया। विद्युद्भक्त काव्य में भी वे लिखने का काम करते रहे और उपदेश देते रहे। एक वक़्त तक उन्होंने 'सत्यवादा' नामक पत्र का सम्पादन किया। उन्होंने लगभग पच्चीस पुस्तकें जीर पुस्तिकार्थ लिखी थी। उनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं 'ज्ञान के उद्यान में', 'सत्यवादा की खोज में', 'पाकिस्तान एक मृगतृष्णा' (1952), 'अनंत की ओर', 'मेरी मेलाप यात्रा', 'अमेरिका भ्रमण', 'मेरी अमल यात्रा' इत्यादि। उनकी पुस्तिका 'राष्ट्रीय सम्पदा में भी खोजी की बहुत प्रभावित किया। वे हिंदी के श्रीरत्नी लेखन, तथा अंग्रेज़ि और कुर्छन चला वे। उनकी काफी बड़ी प्रभावोत्पादक थी। उन्होंने अंग्रेज़ी में 'द नोर्नियल आब इन्डियन कीडम (भारतीय स्वतंत्रता का गुम सदेव) नामक पुस्तक भी लिखी थी।¹³⁸

2. राजनीतिक विचारों के राजनीतिक आधार

सत्यदेव एक महान् आशितक थे, उन्हें ईश्वर की अनुकम्पा तथा उनके दयालुतापूर्ण विधान में पूरी आस्था थी। उन्होंने यहाँ तक कह दिया कि भारत की स्वाधीनता ईश्वरीय इच्छा की शक्ति प्रसिद्ध है।¹³⁹ यही तो यदि 1945 में एटली की जगह चर्चित इनलैण्ड का प्रधान मंत्री हो जाता तो वह भारत की स्वाधीनता की कम से कम कुछ रूप के लिए टाल तो अवश्य ही देता। कभी-कभी ऐसा लगता है कि सत्यदेव ज्ञान की एवं अनंत भाव सत्य मानते थे। उनके अनुसार मनुष्य जीवन का मुख्य ध्येय असीम ज्ञान के अनंत सागर में वे अधिकारिण प्राप्त करता है। यद्यपि वे मानिक थे, ईश्वरीय रूप में विश्वास करते थे, और महर्षि दयानंद तथा आर्य समाज से बहुत प्रभावित हुए थे, फिर भी उन्होंने यह मानने से इनकार किया कि वेद ईश्वरीय ज्ञान का संचार ह। वे ईश्वरी श्रुतिप्रवाह के सिद्धांत के विरुद्ध थे और बुद्धिवादी होने का दावा करते थे।

ऐसा प्रतीत होता है कि आर्य समाज की शिक्षाया तथा उसका प्रभावित होते हुए भी सत्यदेव शक्ति के विकासवाद के इस सिद्धांत को मानते थे कि मनुष्य शक्ति किसी प्रास्मान्य वस्तु-शक्ति से विकसित हुई है।¹⁴⁰

सत्यदेव यह भी स्वीकार करते थे कि शीघ्र ईश्वर साक्षात्कार की एक वैज्ञानिक पद्धति है। वे कहा करते थे कि प्राचीन आर्य ऋषियों के पास कुछ इसी ज्ञान का भण्डार था। वे पतञ्जलि के 'योगसूत्र' के प्रशंसक थे।

3. स्वामी सत्यदेव के राजनीतिक विचार

सत्यदेव ने अपनी 'द नोर्नियल आब इन्डियन कीडम' नामक पुस्तक में आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद के विकास का सुतात प्रस्तुत किया है। वे सिक्की तथा गुरु योगिन्दसिंह की भारतीय राष्ट्र-

¹³⁵ बहो, पृष्ठ 388।

¹³⁶ बहो पृष्ठ 404।

¹³⁷ बहो पृष्ठ 402।

¹³⁸ स्वामी सत्यदेव के सभी की सत्य सत्यवादा, समझवाद, और सत्य सत्य विनैतक, जवालापुर में प्रकाशित किया था।

¹³⁹ स्वामी सत्यदेव ने 1951 में पहला आर्य समाज में निवेदने सत्यवादा पर आधारित। इनके अनिर्दिष्ट लेखन 'सत्यवादा की खोज में' पृष्ठ 468।

¹⁴⁰ सत्यदेव 'ज्ञान के उद्यान में' द्वितीय संस्करण, पृष्ठ 323-26 (सत्यदेव आर्य समाज विनैतक 1954) स्वामी सत्यदेव पर सिक्की सिक्कीविद्यालय में की गुरु के *The Universal Knowledge* तथा सत्यदेव के *Mental Evolution* का प्रभाव पड़ा था।

साध या जनक मानते थे।¹⁴¹ विन्तु शिवाजी की प्राचीन वर्षाभय भी परम्पराओं में गूँथ खासा थी। इसलिए यद्यपि उन्होंने मुख्य साम्राज्य पर मजबूर प्रहार किये, विन्तु वे स्वतन्त्रता के राज नीतिगत आन्दोलन के साथ साथ किसी सन्तुल्य सामाजिक भावित का संकेत न दे सके।¹⁴² गुरुदत्त बहादुर के मतानुसार के फलस्वरूप “भारतीय स्वातन्त्र्य आन्दोलन एवं राष्ट्रीय के एक से पुनीत हुआ गया।”¹⁴³ गुरु गोविन्दसिंह ने सिखा समुदाय में सामाजिक जीवनरूप का समावेश कर दिया। इसी समीक्षा करते हुए सत्यदेव लिखते हैं— “सुरभी के समाज में न व्यक्ति प्रजा की और न अनुत्पन्ना, इसलिए गुरु गोविन्दसिंह ने भी हिन्दू समाज में समाजवाद के सिद्धांतों को साधू किया। हिन्दू जनता में शोकाशा की भावना का सफाई करने उन्होंने अकाली दल का संकल्प लिया। यह दल मौर्य पुरखों की एक सेना थी, और उसके सदस्य सदा धृष्ट या सामन्त करने के लिए उत्पन्न रहते थे। गुरु गोविन्दसिंह ने अकालियों में भाईचारे की भावना का भी संचार किया। यही कारण है कि इन जनता भारतीय राष्ट्रवाद के जनक के रूप में सम्मान करते हैं।”¹⁴⁴ यद्यपि बहादुर ने भी भारतीय राष्ट्रवाद के इतिहास में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की।¹⁴⁵ रणजीतसिंह ने “सिखा पश्चिम के विभिन्न वर्गों को समुल्लू किया और एक एकीकृत राष्ट्रीय राज्य की नींव डाली।”¹⁴⁶ सत्यदेव ने इस नए का सङ्कल्प लिया कि 1857 का आन्दोलन भारत का प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम था। वे लिखते हैं— “1857 में कुछ पनुर मुसलिम सुभाषों ने असंतुष्ट भारतीय राजाजी की समुल्लू करने और भारतीय सैनिकों में अस्वास्थि फैलाकर बन्दगी के दास्य का अन्त करने के लिए एक विद्रोह का संगठन कर लिया। साधारण जनता ने इस विद्रोह में कोई भाग नहीं लिया।”¹⁴⁷ सत्यदेव ने दमन, विवेकानन्द और रामतीर्थ के देशनतिपुल कार्यों और उपदेशों की बड़ी प्रशंसा की है और कहा है कि उन्होंने भारतीय राष्ट्रवाद के विकास में महत्त्वपूर्ण योग दिया था। उन्होंने दमन और सित्त की डींगीसकी सहाय्य में ‘राष्ट्रीय आदर्शों’ के संचारण होने का श्रेय दिया है।¹⁴⁸

सत्यदेव वैयक्तिक तथा राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के समर्थक थे। उन्होंने ‘मनुष्य के अधिकार’ नामक एक पुस्तिका लिखी थी जिसमें उन्होंने बतलाया था कि अत्याचार का प्रतिरोध करना ईश्वर के आदेश का पालन करना है।¹⁴⁹ पुस्तिका के छापक से स्पष्ट है कि सत्यदेव पर डॉमस पेन के ‘राष्ट्रीय आदर्श’ (मनुष्य के अधिकार) का प्रभाव पड़ा था।

सत्यदेव ने स्वराज तथा स्वतन्त्रता में भेद किया। स्वराज का अर्थ है वैयक्तिक स्वाधीनता। यह अर्थ की कुतिलत वास्तविकी के दमन पर आधारित होती है। इसके विपरीत स्वतन्त्रता मनुष्य के निम्न अधिकार तथा आत्म प्राप्ति का जतने की प्रवृत्ति का महत्त्व देती है। वैयक्तिक स्वाधीनता गुरु आश्या के प्रतिष्ठापन पर निर्भर होती है न कि वास्तविकी के सुन्दरीकरण पर। स्वाधीनता भौतिक अथवा आर्थिक वस्तु नहीं है। यह देवी छत्र है, और उसका आधार आत्म-आत्मकार है। इस प्रकार वास्तविक स्वाधीनता वैयक्तिक तथा आध्यात्मिक है। उन्होंने यह भी बतलाया कि स्वाधीनता एवं शक्ति है और यह बुद्धि तथा परिण के प्रविष्टान के द्वारा ही उपलब्ध हो सकती है। आत्म साक्षात्कार तथा साधुसमाचार के आधार और विनयी तथा बुद्धि का उपयोग, वे दोनों मार्ग परस्पर विरोधी हैं, इनका सह-अस्तित्व सम्भव नहीं है। आध्यात्मिक व्यापार के लिए सामाजिक सुधार तथा

[141] एक समय पर सत्यदेव न केवल शिवाजी की स्मृति लिखे थे जो किसी का भी एक कारण का विरोध थे। देखिये ‘पाद के प्रकाश’ न द्वितीय संस्करण 1954, पृष्ठ 117।

[142] सत्यदेव, *The Gospel of Indian Freedom* पृ 9 (बहादुर साह साध निकेतन, 1938)।

[143] यही पृ 11।

[144] यही पृ 12।

[145] यही पृ 13।

[146] यही पृ 14-15।

[147] यही पृ 17।

[148] ‘आत्म का प्रकाश’ न पृ 118।

[149] यह आध्यात्मिकी की दृष्टि प्रकट थी। मनुष्यी प्रकृतिक के न सरकारी मनीष जनक सत्यदेव ने कहा था कि आध्यात्मिकी को इस प्रकार के देखा किसी भी। प्रकृतिक के अर्थ तथा विनयी मनुष्य की प्रवृत्ति लिखे की है— स्वाधीनता की प्रवृत्ति पृ 174।

देश की राजनीतिक स्वाधीनता दोनों ही तत्वात्मक आवश्यक हैं। अतः 'याव' के प्रतिष्ठापन के लिए 'वीरशैव' प्रयत्न करना साम्प्रदायिक साक्षात्कार की कुञ्जी है।¹⁵⁰ सत्यदेव ने स्वतन्त्रता के एक व्यापक दृष्टान्त का समर्थन दिया है। साम्प्रदायिक सुधार, पूर्वीचर्चियों के अनुसार वे आर्थिक स्वतन्त्रता तथा साम्प्रदायिकता की श्रुतताओं से देश की राजनीतिक स्वाधीनता—ये सब स्वतन्त्रता के ही पहलू हैं। किन्तु स्वाधीनता के अंतिम साक्षात्कार के लिए मानव आत्मा को आत्मसंयम के द्वारा परम ज्ञान की ओर करनी होगी।

इसलिए सत्यदेव ने नैतिक, बौद्धिक तथा साम्प्रदायिक उत्थान की ओर उन्मुख आचारमूलिक संस्कृति और नीतिगत मान्यता तथा आत्मसंयमताओं पर आधारित नीतिकथाओं सम्मिलित, इन दोनों के बीच ब्रेक किया।¹⁵¹ उनका कहना था कि सम्प्रदायों के विविधता तथा अंतर ही सत्य है किन्तु संस्कृति एव है। आत्मसंयमताओं की सीमित करना तथा सर्वत्र यथेष्ट की 'मुक्तता' करना ही मुक्तसंस्कृति प्राप्ति के लक्षण हैं। उच्च संस्कृति वाला व्यक्ति विज्ञान और सत्यता का अनुशीलन करता है और शैलीगत रहस्यों का उद्घाटन करने का प्रयत्न करता है।

सत्यदेव काय धर्म के उल्लाही व्याख्याता थे। विवेकानंद की भांति उन्होंने भी देश के लोगों को शारीरिक शक्ति का निर्माण करने की प्रेरणा दी। पञ्चवक्त्रदेवीय सत्यदेव कथुर्वेद व इस वाक्य—“यथैव त्वं त्वं बध्नयस्व” को अवश्य अतिशय महत्त्व दते। उनका कहना था कि शारीरिक दृष्टि से वसिष्ठ और बह्मदुर पंथों ही देश के अग्रणी शत्रुओं का सामना कर सकती है और जीवन के संघर्ष में सफल होने के लिए आवश्यक सर्वस्वशक्ति का संचय कर सकती है। स्वामीजी ने सर्वदेवता प्रत्यक्षवाद तथा बौद्ध धर्मवाद के उक्त पंथों की निमग्नतापूर्वक मान्यता की जिन्होंने ब्रह्म तथा विश्व का समुत्प्रेदन करने की ही जीवन का परम सत्य माना था, उच्चतम मुक्तता किया था और मुक्त, स्वतन्त्रता आदि नीतिक कथनों की निन्दा की थी। वे मुक्तप्राप्त, लौंडी तथा अरस्तू द्वारा प्रतिपादित इन आदर्शों की भूरिभूरि प्रशंसा किया करते थे जिनमें मनुष्य की नीतिक, बौद्धिक तथा साम्प्रदायिक सभी शक्तियों के समुचित विकास पर बल दिया गया था। उन्होंने कुछ समय तक काशीर में मुक्तप्राप्त संस्कृति पाठशाला नामक एक संस्था चलायी जिसका उद्देश्य यूनानियों के सभ्य, विचारों तथा व्यापक संस्कृति के आदर्शों का प्रचार करना था।

स्वामी सत्यदेव ने साम्प्रदायिकता, परम्परावाद, कट्टरता तथा हठवाद की मान्यता की। उन्होंने हिंदू महात्म्या के साथ सम्बंध स्थापित करने के इन्तजार कर दिया। किन्तु उनके राजनीतिक दृष्टान्त की मुख्य चारणा यह थी कि हिंदुओं का शक्ति का संचय करना चाहिए। जब हिंदुत्व बल तथा नव जीवन प्राप्त कर लेगा तभी वह इस योग्य हो सकेगा कि मुसलमानों और ब्रिटिश साम्राज्यवाद की कुचालों का विरोध कर सके। हिंदू संगठन ही हिंदुत्व को विविध सामाजिक गुरुत्वा से मुक्त कर सकता है। तभी शक्ति और स्फूर्ति प्राप्त करने की हिंदुत्व राष्ट्रवादी मुक्ततावादी का स्वागत करने योग्य बन सकता है। जब भारतीय राष्ट्रवाद के विकास के लिए आवश्यक है कि मुसलमानों में बुद्धिवाद की वृद्धि हो। इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि मुसलमानों की हिंदू नीतियों का अध्ययन करें।¹⁵² यद्यपि एक व्यक्तिगत मान्यता है। हर व्यक्ति भगवद्, मंदिर अपना निवासस्थान के जाने के लिए स्वतंत्र है। किन्तु राष्ट्र को अविनाशनीय बनाने के लिए एक राष्ट्रिय और पञ्चमति का होना आवश्यक है।¹⁵³ सत्यदेव याचोत्री के इस विचार से सहमत नहीं थे कि स्वराज के लिए हिंदू भूतनिमित्त एकता आवश्यक है। उनका कहना था कि इस प्रकार के विचारों से हिंदुत्व ही नष्ट होना था और मुसलमानों ने इससे बचना चाहिए।¹⁵⁴ अहिंदुत्व व प्रति तथा विरोधी विचारों के सम्बंध में सहिष्णुता उल्लाखिता है हिंदुत्व का मुख्य आधार यही है। दल-निष्ठ अथवा हिंदू संगठन ने आधार पर ही स्थापित किया जा सकता है क्योंकि हिंदू अथवा सम्प्र-

150 सत्यदेव, 'सत्यदेव की जीवन' पृ. 129।

151 सत्यदेव, 'राष्ट्रिय और राष्ट्रिय', विचार स्वतन्त्रता के आयन पृ. 172-83।

152 'सत्यदेव का जीवन', पृ. 295।

153 यही पृ. 295।

154 यही पृ. 299।

राष्ट्रों के अधिकारों को उचित मान्यता प्रदान करेंगे। वास्तव्य रूप के राष्ट्रवाद की दृष्टि को स्वीकार करने का परिणाम अल्पकाल्यको का समर्थ होना जैसा कि बंगालवासी ने आन्दोलन की ओर हिटलर ने महसूसों का किया है।¹⁵⁵ इस समयदेव ने राष्ट्रवाद के वास्तव्य सिद्धांत और व्यवहार के स्थान पर हिंदू संगठन का सिद्धांत प्रतिपादित किया। संगठन हिंदुओं के सङ्गठित का मन तथा राष्ट्रीय सामान्य एकता-वैयक्तता उत्पन्न करेंगे और साथ ही साथ उनको शारीरिक शक्ति के विकास की प्रेरणा देगा।

समयदेव की व्यक्तिगत रूप से महत्त्वात्मा राष्ट्रीय के प्रति गहरी प्रवृत्ति थी, किन्तु वे यह पुन से करे मानने के लिए तैयार नहीं थे। वे राष्ट्रीय के शास्त्रीयवाद, त्याग, आत्मसमर्पण और भय पराजयता की प्रशंसा किया करते थे। वे राजनीति में साम्यवादीक मुक्त्य के महत्त्व को ना स्वीकार करते थे, और अस्वास्थ्यवादी यथोचित की निन्दा किया करते थे। उन्होंने अधिपत्यवादी सत्ता यह के महत्त्व को भी स्वीकार किया, विशेषकर सत्तावादी के द्वितीय चरण के सदन में जब वह म समर्थन निराशा और निर्विषयता व्याप्त थी। किन्तु वे पुन रूप से राष्ट्रीयवादी नहीं नहीं थे। उनका कहना था कि राष्ट्रीय ने 1922 के चौदहवीं की हिंसात्मक पटना के बाद प्रस्तावित सचिव अवस्था के कारणम को स्मरित करने जारी भूत की थी। सत्तावादी तथा असहयोग के प्रकार व चरमता में जारी अस्वास्थ्य उत्पन्न हो गया था। उसका शास्त्रीयवाद विरोधी समय के लिए प्रयोज किया जाना चाहिए था। किन्तु आन्दोलन के स्मरित हो जाने से उस अस्वास्थ्य की अभिव्यक्ति आन्दोलनिक कथन तथा वास्तविक उत्पन्न के रूप में हुई। 1952 में समयदेव ने एक ऐसी बात कही जिससे देश में कुछ समझी पैदा नहीं। उन्होंने कहा कि राष्ट्रीय का अधिपत्य वर अभिमान और तथा उनकी पाकिस्तान और मुसलमानों का समुच्च करने की नीति ही उनकी हत्या के लिए जिम्मेदार थी। उनका कहना था कि सोवियत 'सत्तवा' का प्रतिनिधि था किन्तु राष्ट्रीय के शास्त्री-वाद और पाकिस्तान के प्रति रिश्तामंदों की नीति ने उत्पन्न कर दिया था। इस प्रकार समयदेव ने अस्वास्थ्य रूप से सोवियत की राष्ट्रीय की हत्या के अपराध से मुक्त करने का प्रयत्न किया।¹⁵⁶ उन्होंने राष्ट्रीय के पुन अधिपत्य के अधिवादी मन के विचरीत बुद्ध के 'मध्यम मार्ग' का समर्थन किया। बुद्ध ने किन्तु सत्तावादी के प्रसंगों का उत्तर देते हुए अपने अधिपत्य के सिद्धांत की व्याख्या इस प्रकार की है "जो दण्ड का जारी हो उसे दण्ड अवश्य दिया जाना चाहिए और जो अनुग्रह के योग्य है वह वर अनुग्रह करना चाहिए। किन्तु सत्य हो उन्होंने (पौन्य बुद्ध ने) किसी को प्राणी को कष्ट व देने तथा समर्थ प्रति श्रेय और नकथा का व्यवहार करने का उपदेश दिया। इन आदेशों में परस्पर विरोध नहीं है, क्योंकि जिस मनुष्य को अपने अपराधों के लिए दण्ड दिया जाता है वह 'आवाधीन' के विरोध के कारण नहीं मरिण्ड अपने ही बुद्धों के कारण दण्ड मोलता है। कानून का निष्पादन उसे भी दण्ड देता है वह वास्तव्य में उसी के बन्नों का फल है। जब दण्डाधीन किसी को दण्ड दे तो उसके मन में गुणा नहीं होती चाहिए किन्तु जिस हत्यारे को मृत्युदण्ड दिया जाय उसे भी समझना चाहिए कि वह मेरे ही कर्मों का परिणाम है। जैसे ही वह दण्ड प्राप्त को समय लेता वैसे ही उसकी अपनी आत्मा बुद्ध हो जायगी, वह अपने आत्म पर विचार नहीं करेगा, मरिण्ड प्रसन्न होगा। सत्तावादी ने अपने कहा 'सत्तावादी का उपदेश है कि हर बुद्ध जिसका मनुष्य अपने बन्नों का दण्ड मरता है चौकनीय है, किन्तु उसकी सीख यह नहीं है कि जो लोग 'चाप' के रक्षाव नहीं सत्य शास्त्रीयम उपदेश का नि शेष करने बुद्ध से सम्मान होते हैं, वे निन्दनीय है। निन्दा उसी की बननी चाहिए जो बुद्ध का मार्ग है।'¹⁵⁷

एकही समयदेव शक्ति की नीति में विश्वास करते थे और उनका राजनीतिक शब्द यह था कि पूर्वी पाकिस्तान की आन्धीय सभ्य में मिला लिया जाय। वे चाहते थे कि आन्धीय मुसलमान

155 गृही पुन 309।

156 गृही पुन 517।

157 कालेन *The Gospel of Indian Freedom* पृ 60-61, चौथे संस्करण की पंक्ति *The Gospel of Buddha* पुन 126 के संस्करण।

जाहूरी देसा के प्रति अपनी सख्त त्याग है और बिना विशेष अधिकारों और अनुग्रह की मांग किये देशभक्त नागरिक की भाँति आचरण करें।

त्यागी सत्यदेव देश के विनाशजन की उचित मानवर जमीन करने के लिए सभी तैयार नहीं हुए। वे 'असमर्थ भारत' के आदेश पर हट रहे।¹⁵⁸

वे पारिवर्तन के निर्माण की कृतिमान मानते थे और ब्रह्मपुत्र के सिंधु तक समुक्त भारतीय सभ का स्वप्न देखा करते थे।¹⁵⁹ उनका कहना था कि पारिस्तान का कल्याण इसी में है कि वह भारतीय सभ की पुनर्जाति बन जाय।¹⁶⁰

4 निष्कर्ष

अपने आधी सताव्वी में अधिन के सामाजिक तथा साहित्यिक जीवन में सत्यदेव ने प्राचीन जाय संस्कृति का बीरवर्णन किया, स्वतंत्रता का तथा सामाजिकीय सत्ताय के प्रति प्रतिरोध का समर्थन किया, द्वितीय सत्ताय के अन्तिम दिना में हिन्दू समर्थन की सुकुम्भु पारणा का उद्योग किया, हिन्दुता तथा मुसलमानों की पक्षीयता और देवीभुति प्रकाश (ईश्वरीय ज्ञान, इसहाम) के सिद्धांत के विशद सूरतलिपि में जीवन दर्शन तथा बुद्धिवाद का पुनरुत्थान करने की सत्ताह थी। 1939 के प हिन्दुतर के आसपास के प्रकाशक बन गये और अन्त में एक सत्ताली के रूप में सत्ताय के रहस्यों की खोज में मुक्त और सत्यता प्राप्त की। उन्होंने कहा तक कहा कि मैं प्राचीन भारतीय सत्ताय तथा बहिर्मुखी सम्मता के बीच एक पुल हूँ। किन्तु अगमिन् सत्ताय-सत्ताय के बीच भी वे सत्य जीवन की खुदता, त्याग, अचरित्यह, सत्यनिष्ठा आदि हिन्दू जीवन दृष्टि पर हटता से बने रहे। अपने जीवन के विभिन्न मुद्दा में उन्होंने बुद्ध, महात्मा गांधी, मुकरण और हिन्दुतर की प्रशंसा की, किन्तु सत्ताय के प्रति उनकी सख्त प्रकाश थी, क्योंकि उन्होंने ही उनके मन में आत्म की स्वतंत्रता की खोज की उत्कट अधिदाया प्रकाश की थी।

अपने सुकुम्भु व्यक्तित्व, रचनाय तथा सत्तायशी और प्रेरणादायक मापका द्वारा सत्यदेव ने हिन्दू पुनरुत्थानवाद के विचार में महत्वपूर्ण योग दिया है। वे बुद्धिवादी थे।¹⁶¹ अपने स्वाध्याय में तथा परिचय में भ्रमण करते उन्होंने स्वतंत्रता, परिचय अध्ययन का तथा सत्ताय और सत्ताय के सामाजिक सत्ताय का महत्व सत्तायति हृदयगत कर लिया था। वे स्वतंत्र के अग्रगण्य सेनानी थे। किन्तु उनका हट विचार था कि भारतीय सत्तायवाद का विचार पुनर्जाति, सत्ताय-सम्पन्न तथा सत्तायहिन्दु हिन्दू समर्थन के मापार पर ही किया जा सकता है।

158 स्वतंत्रता की खोज में, पृष्ठ 474। सत्यदेव, 'पारिवर्तन' एक सुचरणा।

159 सत्यदेव, 'पारिवर्तन', पृष्ठ 10-32-101।

160 वही, पृष्ठ 89।

161 किन्तु बुद्धिवादी ज्ञान हुए भी सत्यदेव सत्तायवादी नहीं थे। वे अपने बुद्धिवादी का विचार सत्तायवादी का विचार मानते थे।

प्रकरण I

सैयद अहमद खाँ

1. प्रस्तावना

सैयद अहमद खाँ एक महान मुसलमान नेता थे। उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन में एक उत्तम योगदान दिया। वे चाहते थे कि उनके सहकर्मी जाने कई तथा प्रगतिशील बनें। इसलिए उन्होंने दो आधारभूत बातों पर जोर दिया: (1) पारंपरिक धर्म की व्याख्या करना, तथा (2) विदेशी आक्रमण के प्रति प्रतिरोध। आधुनिक मुसलिम राजनीतिक चिन्तन के नेता के रूप में उनका बड़ा महत्व है।

सैयद अहमद खाँ का जन्म अक्टूबर 17, 1817 को हुआ या जीर माच 18, 1818 को उनका जन्मदिन हुआ। उन्होंने एक शिक्षक के रूप में अपना जीवन आरम्भ किया था, और 1841 में मुस्लिम के पर पर पहुँच गये। उन्होंने ईस्ट इण्डिया कम्पनी की नौकरी की, न कि एतनाहीन मुसलमानों की। 1846 से 1854 तक उन्होंने दिल्ली के 'मायासवा' में काम किया। 1857 के आन्दोलन के समाप्त होने पर उन्होंने 'भारतीय विद्रोह के कारण' नामक प्रसिद्ध पुस्तक लिखी। सम्भव है कि इस पुस्तक ने एतन ओरेंटलिसम का जन्म को प्रभावित किया था। 1869-1870 में उन्होंने इंग्लैण्ड की यात्रा की। 1877 में सादर विद्वान द्वारा आयोजित दिल्ली दरबार के अवसर पर ऐसे विद्वानों और विचारों को दूर निकालने के लिए एक सम्मेलन हुआ जो भारतीय जनता के सभी वर्गों को स्वीकार हो सके। स्वामी वल्लभ, सैयद अहमद खाँ तथा बेगमबेगम सैन सम्मेलन में सम्मिलित हुए। किंतु जिस आन्दोलन के प्रेरित होकर सम्मेलन बुलाया गया वह कोई ठोस रूप में नहीं था। 1878 में सादर अहमद ने सैयद अहमद को लोक सेवा आयोग का सदस्य नियुक्त किया। 1872 से 1882 तक सैयद अहमद वादपुरा में परिषद के अध्यक्ष रहे। जिस समय सैयद अहमद भारतीय विधान परिषद में अध्यक्ष थे और जब उत्तम मध्य भारतीय स्वतंत्रता विचारों पर विवाद हो रहा था उस समय जनवरी 12, 1883 को उन्होंने राष्ट्रीय स्वतंत्रता दिनांक कि 'भारतवासियों को स्वतंत्रता की उस बात की विचारों की जा रही है जिसने इंग्लैण्ड को महान बनाया है। फिर भी सैयद अहमद ने भारतीय राजनीति में सुधार की प्रणाली को समाविष्ट करने का विरोध किया। अतः स्पष्ट है कि मुहम्मद अली ने शायद ही वे 'राज्यपाल के भी राजनयक बने रहे।'

सैयद अहमद खाँ ने समझ दिया था कि पुराने पाकिस्तानी और अंग्रेजीयानों का पुनर्जागरण करना मात्र पर्याप्त नहीं है। उन्होंने अनुभव किया कि अंग्रेजों ने भारतीय जनता का पुनर्जागरण भी आवश्यक है। वे दुर्ग की प्रवृत्तियों और पश्चिमी के प्रति शक्य थे, और इस्लाम की एक नयी व्याख्या देना चाहते थे।¹ 1864 में उन्होंने लाहौर में समाजिक विचारों के अनुवाद के लिए एक अनुवाद संस्थान खोला। 24 मई, 1875 को उन्होंने अलीपुर में एक स्कूल स्थापित किया जिसने

1 *Select Writings and Speeches of Muhammad Ali* पृष्ठ 13।

2 सैयद अहमद ने 1864 में एक द्वायकालीन पत्रिका की स्थापना की थी। उसका उद्देश्य हिंदू और मुसलमानों के बीच की दूरी को दूर करना था।

गोत्र ही विकसित होकर मोहम्मदेन एंग्लो-ओरियण्टल कॉलेज का रूप धारण कर लिया। साइ लिटन ने 1877 में एंग्लो ओरियण्टल कॉलेज की व्यापारधारा रची। सैयद अहमद का एक उद्देश्य यह था कि मानसिक प्रगुड़ीकरण के लिए पश्चिम के वैज्ञानिक तथा बुद्धिवादी विद्वानों को लोकप्रिय बनाया जाय। उनके मन में एक सांस्कृतिक तथा व्यावहारिक विचार भी था। वे चाहते थे कि मुसलमान अपने ही शिक्षा प्राप्त करें बिना उह सरकारी नौकरियों के लिए समुचित प्रशिक्षण मिल सके।

सैयद अहमद समान मुद्धार के महत्व को भी बनी-भाति समझते थे। अपनी मासिक पत्रिका 'तहसीलुल अरराय' के द्वारा उन्होंने इस बात का समर्थन किया। समान-मुद्धार के लिए आवश्यक उस्ताद भाषत करने के लिए उन्होंने मोहम्मदेन एडुकेशनल काउंसिल (मुसलिम शिक्षा सम्मेलन) की स्थापना की। सैयद अहमद मुसलमानों की दीन दशा को देखकर बहुत दुःखी होते थे। उन्होंने लिखा "वे भूटे तथा निरन्धक बुद्धिों के प्रभाव में हैं, और ज्ञाना भी बला बुरा नहीं समझते। इसके अतिरिक्त जगमे हिन्दुओं की सुख्या में एवं दूसरे के प्रति ईर्ष्या और प्रतिपाप की भावना अधिक है तथा वे किसी अह्वार के शिकार हैं। वे दखि भी अधिक हैं और इसी कारण से कुछ दूर हैं कि वे अपने लिए अधिक कुछ नहीं कर सकते।" इसलिए उन्होंने आधुनिक शिक्षा पर बल दिया। कुरान के सम्बन्ध में उनका दृष्टिकोण बुद्धिवादी था और इसलिए उनके कुछ सहपक्षी उह धमड़ीही समझते थे। उन्होंने समान-मुद्धार का समर्थन किया और ऐसे वैज्ञानिक पाठ्यक्रम की आवश्यकता पर बल दिया जिसमें प्राचीन तथा नवीन ज्ञान का सम्मेलन हो। अतः सैयद अहमद का वा अलीकृत जातीयता हाथी धारित करता, कुछ शिक्षा आदि मुसलिम पुनरुद्धारवादियों के विचारों तथा अहमद हूदीस के विरुद्ध जाग्रूतकर चलाया गया आन्दोलन था। सैयद अहमद आधुनिक ऐहिक शिक्षा तथा इस्लामी धर्मविद्या दोनों को ही उच्च स्थान देना चाहते थे।

2 भारतीय विद्रोह के कारण

1858 में सैयद अहमद का ने 'भारतीय विद्रोह के कारण' नामक पुस्तक लिखी। मूल पुस्तक उन्नीस में लिखी गयी थी, 1873 ई. में बीरुवा और साहब ने उसका अंग्रेजी में अनुवाद किया। सैयद अहमद के अनुसार भारतीयों की विधि निर्माण के कार्य से दूर रहना विद्रोह का मूल कारण था। उन्होंने कहा कि परिपक्षी में भारतीयों को सम्मिलित करना अत्यावश्यक है। भारतीयों के लिए अपना विद्रोह प्रकट करने तथा अपना मत व्यक्त करने के सभी माध बन्द थे। हम सरकार सरकार के नामविध द्वारा के सम्बन्ध में जनता में सारी भ्रम फैला हुआ था। एवं सत्य का क्या था "जब सब लोग श्रद्धा सरकार की योग्य विधि, रेत की रज्जु और जल की विद्रोहा-पात्री ज्ञानता समझने लगे थे।" यदि विधान परिषद में कोई भारतीय होता तो यह सारी वस्तु यह भी दूर हो सकती थी। अतः अपनी पुस्तक 'भारतीय विद्रोह के कारण' में उन्होंने इस बात पर धेर प्रकट किया कि शासकों तथा अत्याचार के बीच विचारों के आदान प्रदान का निरन्तर अभाव था। उह इसका भी दुःख था कि यद्यपि देश में ब्रिटिश सरकार को स्थापित हुए लगभग एक पचासवीं ही वर्षों की, फिर भी जनता ने प्रेम तथा समझना को प्राप्त करने के लिए कोई प्रयत्न नहीं किया गया था। उह वेद था कि जनता के पास शासकों तक अपनी शिकायतें पहुँचाने का कोई प्रापन नहीं था। सैयद अहमद ने इस बात पर बल दिया कि परिपक्षी में जनता की शायेदारी होनी चाहिए। उन्होंने कहा कि यह वेदजनक है कि जनता के पास अमादनीय कानून के विरुद्ध अपना विरोध प्रकट करने का कोई साधन नहीं है। उसके लिए अपनी दृष्टियों को सापेक्षित रूप से व्यक्त करने का भी कोई माध नहीं है। अतः सरकार को चाहिए कि यह जनता ने प्रेम तथा मैत्री को प्राप्त करने के लिए बल कर। उन्होंने लिखा "युमे विचार है कि अधिपतिर मीम इस बात के सहमत होने कि सरकार की सुगुडि तथा बन्धन के लिए आवश्यक है कि जनता का परिषदा में अपना मत प्रकाशित करने का अधिकार हो—अर्थात् यह बात सरकार ने स्थापित के लिए भी निराश करती है। जनता के मत को मानकर ही सरकार इस बात का क्या तथा करनी है कि उसकी दीनतामी का स्वागत किया जायगा अपना नहीं। इस बात का आवश्यकता तब तक नहीं मिल सकती जब तक कि जनता की सरकार तक अपने विचार पहुँचाने का समुचित अह्वार नहीं

दिया जाता। जो लोग भारत पर शासन कर रहे हैं उन्हें यह कभी नहीं भूनाया चाहिए कि इस देश के के विदेशियों की स्थिति क्या है। सरकार कभी सुरक्षित हो सकती है जब उसे शक्ति का सम्बन्ध में जानकारी हो और वह उनके अधिकारों तथा विशेषाधिकारों का सावधानी के साथ सम्मान करे।³

सैयद अहमद के अनुसार भारतीय विद्रोह के कुछ गीत कारण भी थे जिनका आधार भा भारतीयों का विधान परिषद में सम्मिलित न किया जाना था। वे इस प्रकार हैं

(1) ऐसी कानूनों का पारित होना और ऐसी कार्यवाहियों का किया जाना जो जनता की सम्मानित परम्पराओं तथा परिपाटियों के विरुद्ध थी। उनमें से कुछ कानून तथा कर्मकाण्डों का निश्चय रूप से अप्रतिबन्धक थी।

(2) सरकार जनता की इच्छाओं तथा भावनाओं से अनभिज्ञ थी।

(3) शासक न उन आधारभूत शिक्षाओं की जनता की जो भारत में सुशासन के लिए आवश्यक थे।

(4) सेवा का कुछवर्ष विरामे उत्तम आलोचक फीस गया।

1857 के विद्रोह के समय अहमद ने राजनीतिक दृष्टान्त के लिए कुछ निष्कर्ष निकाले। उन्होंने शासक तथा प्रजा के बीच सेना तथा राष्ट्रपुष्टिपूर्ण विचार विनिमय की आवश्यकता पर बल दिया। वस्तुस्थिति अपन के साथ सहमति दर्शाते हुए उन्होंने बताया कि सरकार भूल है और जनता उस भूल का विवशित रूप है। उन्होंने भारतीय के सम्बन्ध में एक बात के आदेश की उदाहरण दिया। उन्होंने ईसा मसीह के वचन की उदाहरण दिया, 'तुम अपने लोगों के साथ ईसा ही व्यवहार करो जसा कि तुम चाहते हो कि वे तुम्हारे साथ करें, क्योंकि पैसाबरा का यही कानून है।'

3. समय अहमद के राजनीतिक विचार

आरम्भ के समय अहमद का व्यवस्था की वास्तवता से सम्बन्धित हुए थे। 27 जनवरी, 1883 को एक मासिक में उन्होंने कहा 'जिस प्रकार उष्ण जल के हिंदू विषी समय बाहर से आकर इस देश में बस गये और पूरा रूप कि उनका आदि निवास स्थान बड़ा था तथा भारत की ही अन्तर्देश सम्मानने लगे, मुसलमानों ने भी ऐसा किया। उन्होंने भी ईसाई रूप धारण अपने-अपने देश छोड़ दिये, और वे भी इस भारत भूमि की अपना सम्मानने हैं। वेरे हिंदू चाई तथा मुसलमान दोनों एक ही वास्तु में मान लेते हैं, जसिन कल और कपड़ा का धन पीते हैं, उन्ही कृषि की उन्नति का भीषण हैं जो ईसाई ने इस देश को की है, और साथ साथ पीते तथा मरते हैं। वे विस्वास न साथ कहता है कि यदि एक धर्म के लिए हम ईसाई की धारणा को मृता वे भी हम देखते कि ईसाई जीवन के हर मानव में हिंदू तथा मुसलमान एक ही राष्ट्र (नोन) के सम्मान हैं और देश की उन्नति सभी सम्मान हो सकती है जब हमारे हृदय एक हो तथा हमारे बीच पारस्परिक प्रेम और सहानुभूति हो।' ये सब यही कहता है कि हमारा भारत देश एक तत्त्वस्थिति में पहुँचे सफल है और हिंदू तथा मुसलमान उन्ही को सुन्दर तथा समझाए नभ है, यदि किसी ने पारस्परिक अनभिज्ञता हो तो बहुत सदैव देशीयमान तथा सुन्दर बनी रहती। किन्तु यदि उन्होंने निम्न शिक्षाया में देशन का सफल कर दिया तो बहुत निरपेक्ष हो माओ हो आसानी और हो सकता है कि अन्तर्गत आधी भी हो जाय।' अपने जीवन में दशमतिपूर्ण बाल में सैयद अहमद ने इसका विवेचन का, जिसने द्वारा भारतीय 'जातीयता के क्षेत्राधिकार' में सम्बन्ध में भेदभाव की नीति को दूर करने का प्रस्ताव किया गया था, सम्मान दिया।⁴

आने वाला समय अहमद के विचारों में अन्तर्गामी परिवर्तन का गया। उन्हें भारतीय राष्ट्रीय भावों पर सादेह होना गया, और उन्होंने अपने सम्प्रदाय के सदस्यों का उन्नत धर्म रहने

3. *Essays of The Causes of the Indian Revolt* पृष्ठ 12।

4. *हिन्दुस्तान का नया विचार दर्शन* में सैयद अहमद का सम्मान दिया का।

की सलाह दी।¹ उन्होंने सोचा कि मुसलमानों के लिए हितकर नहीं है कि वे शिक्षा की प्रगति पर ही ध्यान केंद्रित करें, और इसलिए उन्होंने 1888 के एडुकेशनल बोर्ड (शिक्षा सम्मेलन) की स्थापना की। उन्होंने यूनाइटेड इण्डियन पैट्रियटिक एसोसिएशन (1888) तथा मोहम्मदेन एसोसिएशन ऑफ इण्डियन एसोसिएशन (1893) नाम की उन दो संस्थाओं का भी नेतृत्व किया जिसने मुख्य उद्देश्य भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रभाव को रोकना था। सैयद अहमद ने पैट्रियटिक एसोसिएशन की स्थापना पारम्परिकी के राजा शिवप्रसाद की सहायता से की थी। मोहम्मदेन एसोसिएशन एसोसिएशन स्पष्टतः राजमत्त था। उसके उद्देश्यों में भी इस बात की प्राप्ति कर दी गयी थी। मुसलमानों के राजनीतिक आंदोलन को रोकना उसकी मुख्य नीति थी। किंतु सैयद अहमद के प्रस्ताव के बावजूद अदालती नियंत्रणों के अनेक मुसलमान भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में सम्मिलित हो गये।

निष्कर्ष

सैयद अहमद साँ को लोकप्रिय शासन के विश्वास नहीं था। ज्ञान स्तुम्भ मिल की जति वह "बहुसंख्या के अत्याचार" का वास्तविक रूप था। युनि के एक अल्पसंख्यक सम्प्रदाय के सदस्य के इसलिए वह डर था कि लोकप्रिय शासन की प्रगति से मुसलमानों के हितों का कुछ निया बानसा। उन्होंने लोकतन्त्र का विरोध अभिव्यक्त नीय दृष्टिकोण से नहीं किया, इसलिए यह कहना अनुपयुक्त होता कि वे बेलिहर अभिव्यक्तय के हितों के प्रतिनिधि थे। विज्ञान हिन्दू समाज की जारी शक्यता का डर ही उनके विचारों का मुख्य आधार था। इस बात को सत्य स्वीकार किया जायता कि मुसलिम समाज में आधुनिक विद्या की प्रगति व सैयद अहमद का प्रमुख योग था। अंग्रेजी भाषा का उनका स्वयं का ज्ञान बहुत सीमित था, किंतु उन्होंने आधुनिक शिक्षा का निर्माण का काम सम्पन्न किया, और इस प्रकार सभ्यताकरण को उन्होंने महान प्रोत्साहन दिया।

प्रकरण 2

मुहम्मद अली जिन्ना

1. प्रस्तावना

मुहम्मद अली जिन्ना का जन्म 20 अक्टूबर, 1875 (अथवा दिसम्बर 23, 1876) को हुआ था और दिसम्बर 10, 1948 को उसका देहांत हो गया। उसका जन्म तथा मृत्यु दोनों कराची में हुए। जिन्ना ने पठन पढ़ाई के रूप में स्थायित्व प्राप्त कर ली थी और उसका कानूनी व्यवसाय बहुत अच्छा चलता था। 1906 में उसने दादाभाई नौरोजी के निजी सचिव के रूप में काम किया।

गोखले की जिन्ना से हिन्दू-मुसलिम एकता के दूत के रूप में बड़ी आशाएँ थीं।² उन्होंने कहा था "जब वास्तविक गुण विद्यमान हैं। साथ ही साथ वह साम्प्रदायिक दुर्भावनाओं से मुक्त है, इसलिए वह हिन्दू मुसलिम एकता का अच्छा दूत बन सकता है।" जिन्ना के मन में गोखले के लिए बड़ा सम्मान था और वह उनकी साम्प्रदायिक प्रशंसा किया करता था। वर्ष 1915 में सम्पर्क में एक जायस में उन्होंने कहा था कि गोखले "एक महान राजनीतिक आदि, भारतीय जिले के पंडित और जिन्ना तथा सम्पर्क के सबसे बड़े समर्थक हैं।"³

2 जिन्ना के राजनीतिक विचार

अनेक प्रारम्भिक विचार व जिन्ना सम्बन्धी था। 1916 में उसने राजदौरे के अभियोग में मोरमारा सिलक की पेशी की और उन्हें दण्डित होने से बचा लिया। इसके उसकी दण्ड में बांधी बांध बांध हुई। उसने 1908 के राजदौरे के अभियोग में भी प्रारम्भिक अल्पसंख्यक निवास की पेशी की थी।

3 एक दण्ड नाम विचार है, "जिन हिन्दुओं ने प्रतिनिधि शासन और समाज सुधार के लिए आन्दोलन आरम्भ किया था व बुद्धिजीवी समुदाय थे। उनके विचारों के अतीव दृढ़ व जिन्ना प्राप्त करने वाले, जिन पर उनकी व अनुपम की हानि की थी, वु परिवर्तित हो गए व भी व थे। आधुनिक दृष्टि से दण्ड विचार ठीक था व एक राष्ट्रीय सम्मेलन का सफल अनुष्ठान करने सम्मर्थ नहीं। *India in Transition* 78 125।

6 *Speeches and Writings of Jinnah*, पृष्ठ 125। (नया, नये दण्ड नाम, 1917)।

सामुदायिक भारतीय राजनीतिक विचार

अप्रैल 1912 में विद्या ने सायबे द्वारा प्रस्तावित 'सामुदायिक विद्या विधेयन' का सर्वप्रथम विचार किया। उसने विधेयन का विरोध नहीं करने का हृदयगत बदलाव के तर्कों का समर्थन किया। अपने समय में उसने कहा "यदि आपने पास धन है तो आपका सम्पादन निल कार्यवेत्ता, यदि आपका पास धन है अथवा नहीं। मैं नेकत नहीं कह सकता हूँ कि धन प्राप्त कीजिए। धन प्राप्त कीजिए। मैं हन उस पर बाधू या ही नहीं समझे? क्या भारत देश का सम्पादन करना इतनी बड़ी कठिनाई है कि लोग रहते हैं यह नहीं पढ़ता क्या और दुम्बर मान है? मैं कहता हूँ कि धन प्राप्त कीजिए—और यदि आवश्यक हो तो जनता पर कर लगाएँ। किन्तु मुझ से जान रह्य कि जनता पहले तो ही कर दे रही है, मुझ से यह भी कहा जायगा कि अधिन कर लगाने से हन जनता में बहुत अधिन हो जायगा।" नेत्र उत्तर है कि ब्रिटिश शासन पर जो यह उचित आरोप लगाया जाता है कि उसने सामुदायिक विद्या की अवहेलना की है, इसको दूर कीजिए। नेत्र उत्तर है कि जनता में विश्वास स्थापना हर समय संसार का लक्ष्य है, और यदि आपकी कुछ तीव्रप्रियता का सामना करना पड़े तथा कुछ संसार उसका पड़े तो लक्ष्य के साथ पर उसका बाधू के साथ सामना कीजिए।

1910 में विद्या सम्पर्क के मुसलिम निर्वाचन क्षेत्र में सामुदायिक विधान परिषद का सफल चुनाव बना। 1916 में पुन उसी निर्वाचन क्षेत्र में सामुदायिक विधान परिषद के लिए निर्वाचित किया गया। सामुदायिक परिषद में विद्या ने गोलमे के सामुदायिक विद्या विधेयन अज्ञात होता तत्पश्चात् विधेयक और भारतीय दण्ड विधि समीक्षा विधेयन पर सामान्य ध्यान दिया। उसने प्रेस विधेयन का विरोध नहीं किया। वह भारतीय प्रतिरक्षा बल विधेयक (दमिस्तान डिपेंडेंट फोर्स बिल) के पक्ष में था। शासन में यह सामुदायिक निर्वाचन क्षेत्रों के विरुद्ध था, किन्तु 1917 में उसने घोषणा की कि मुसलिम निर्वाचन क्षेत्रों के लिए शिक्कर है, क्योंकि इसी प्रकार वह उनके सामुदायिक प्रभाव से अपना का करता है।

अखिल भारतीय मुसलिम लीग की स्थापना 1906 में हुई और उसका बहुत अधिकार नेत्र ने विस्मयर 1908 में अपना ली के नेतृत्व में द्वारा में हुआ। 22 मार्च 1913 को लखनऊ अधिवेशन के समय में अखिल भारतीय मुसलिम लीग ने अपना नया समिधान स्वीकृत किया। मुहम्मद जली तथा सैयद अब्दुल हकीम ने विद्या को मुसलिम लीग में सम्मिलित होने के लिए राजी कर दिया। उसने स्पष्टतः कह दिया था कि मुसलमानों के हितों के प्रति घेरी जाति राजु के व्यापक क्षिति के साथ न बाधा नहीं डाल सकेगी। 1914 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने भारतीय परिषद के प्रस्तावित सुधारों के सम्मेलन में एक प्रतिनिधि मण्डल दस्तवेज किया, जिसे उस मण्डल का सर्वप्रथम बनकर गया।

जब अप्रैल तथा दिसम्बर 1916 में सितक तथा केसेट ने अपनी-अपनी होम रण नीति स्थापित की तो विद्या उनमें के किसी में भी सम्मिलित नहीं हुआ। किन्तु डॉ. केसेट के नेतृत्व में किये गये के उपरांत वह सम्पर्क होम रण नीति में सम्मिलित हो गया।

नवम्बर 1916 में विद्या ने अहमदाबाद में डॉ. सम्पर्क भारतीय सम्मेलन का समन्वयन किया। उसने हिन्दु तथा मुसलमानों के बीच एकता का समर्थन किया। उसे पुन विस्मयर का नि सम्पादक भी हो दिसम्बर 1916 में अखिल भारतीय मुसलिम लीग के लखनऊ अधिवेशन का नि सम्पादक भी हो। उसने मुसलमानों की बाध करके के लिए सामुदायिक निर्वाचन-क्षेत्रों की स्थापना का विचार किया। उसने विस्मयर 1916 में अखिल भारतीय मुसलिम लीग के लखनऊ अधिवेशन का नि सम्पादक किया और हिन्दू मुसलिम एकता पर बात किया। विद्या ने उसी हिन्दू-मुसलिम पर हस्ताक्षर किये थे और लखनऊ में उसने कांग्रेस-लीग घोषणा का समर्थन किया। लीग तथा कांग्रेस के अधिवेशन में लखनऊ सम्मेलन स्वीकृत कर दिया गया। उसने अनुसार मुसलिम निर्वाचन क्षेत्रों की स्वीकार कर दिया गया, और मुसलिम अल्पसंख्यक जातों में मुसलमानों की भारतीय विधान परिषदों में अपनी जनसंख्या के अनुपात के अधिक हस्त्र देने का सिद्धांत भी मान लिया गया।

जिन्ना की सलाहका बावज़ूद मे अनुसमर्थित बावज़ूद-शील योजना को सहमत था। 1917 की सलाहका कार्रवाई में भी उसने बावज़ूद शीघ्र योजना का समर्थन किया। उसने स्वराज्य सम्मन्धी प्रस्ताव पर भी अनुमोदन किया।

जैसा ही अन्तर्हीन आन्दोलन आरम्भ हुआ और जनजागरण का प्रचार आवाज बैसे ही जिन्ना ने अनुमोद किया कि अब बावज़ूद व गैर स्थान नहीं है। 1920 की लाहौर कांग्रेस में उसने असह-योग सम्मन्धी मुक्त प्रस्ताव का विरोध किया। एवं बरील के मातृ वह सावित्रानिक तरीके में विद्रोह करना आज्ञा था। किन्तु बावज़ूद ने इन माध्यमों के नेतृत्व में अहिंसात्मक आन्दोलन आरम्भ कर दी थी, इसलिए वह उसकी इस उन्नत नीति से सहमत न हो सका। 19 फरवरी, 1921 का हुना व एक अवसर पर जायस दत्त हुए उसने कहा था कि माध्यमों-असहयोग, शांति आदि के सम्पन्न के स्थान पर मैं "राजनीतिक आन्दोलन" चाहता हूँ।

1924 व जब 1919 के भारत शासन अधिनियम की समाप्ति की जाँच करने के लिए मुद्रांकन समिति नियुक्त की गयी तो जिन्ना का अपना सदस्य पदार्थ गया। उसने सज़ु, पराजय और विपक्षशील अवसर के साथ उन अल्पसंख्यक प्रतिनिधित्व पर हस्ताक्षर किन्तु जिसमें दस शासन की सहायता करने का प्रस्ताव किया गया था। वह उस स्थान समिति का भी सदस्य था जिसने भारतीय राजनीति के अधिपतिवाद के भारतीयकरण के प्रश्न पर विचार किया था।

जिन्ना ने 1918 की नेहरू रिपोर्ट का विरोध किया जबकि उसने मुसलमानों की उनकी जनसंख्या के अनुपात से बड़ी अधिक स्थान देने का प्रस्ताव किया गया था। नेहरू रिपोर्ट के विपरीत जिन्ना ने अपने भीतर ही सच प्रस्तुत किये। 1937 के चुनावों के उपरांत जब बावज़ूद ने मुसलिम जनसंख्या की नीति अपनायी तो उसने जिन्ना बहुत परेशान। 1939 में उसने मुसलिम लीग की ओर से दावा प्रस्तुत किया कि "राजनीतिक शक्ति व मुसलिम भारत" तथा "पर मुसलिम भारत का पथान-विकास प्रतिपादित का आभा होना चाहिए।

जिन्ना हिन्दू समाज व्यवस्था तथा कांग्रेस का शक्ति प्राप्त था। 1939 में जब लाल बहाल ने बावज़ूद मजिमतगरी में स्वागत दे दिया तो जिन्ना की प्रेरणा से ही मुसलमानों ने 22 नवम्बर की मुक्ति दिवस मनाया। उसने इस बात का विकारात होना जाना कर दिया कि यदि भारत व बावज़ूद दंग का संकेतन स्थापित किया गया तो देश में सचन हिन्दुओं का आधिपत्य स्थापित हो जायगा। उसने कहा कि लोकतन्त्र पर अब होना मुसलमानों, अल्पसंख्यक, बहुविध, पार-विना और ईसाइयों के उपर उन सबकी इच्छा के विरुद्ध हिन्दुओं का शासन। इसलिए जिन्ना व 'पारसी आचार्य' और 'हिन्दू आधिकार्य' के उत्तेजनात्मक चारे लयाये। उसने दावा किया कि लीग राष्ट्रीय मुसलमानों की एकमात्र प्रतिनिधि संस्था है। उसने वहाँ तक कह दिया कि कांग्रेस एक हिन्दू संस्था है। मार्च 1940 में मुसलिम लीग के लाहौर अधिवेशन में जिन्ना ने अपने 'दो राष्ट्रों' का सिद्धान्त विकसित किया। 9 मार्च, 1940 के 'आइड एन्ड टाइट' में उसने 'ए' लेख कावित किया हुआ। उसने उसने लिखा "भारत का राजनीतिक भविष्य क्या है? ब्रिटिश सरकार का प्रस्तावित (कोविल) उद्देश्य यह है कि भारत राष्ट्रीयतावादी पैटर्न-स्टर अधिनियम के अनुसार लोकनिर्देशित स्वराज्य का उपयोग करे। इस उद्देश्य का पूरा करने के लिए वह स्वभावतः चाहती कि भारत में लोकतांत्रिक इन के सविधान की स्थापना हो, क्योंकि वह इसी प्रकार के सविधान से सबसे अधिक परिचित है और इसी को सर्वोत्तम समझती है। ऐसे सविधान के अन्तर्गत देश की सभी अधिक परिचित है और इसी को सर्वोत्तम समझती है। ऐसे सविधान के अन्तर्गत देश की सभी अधिक परिचित है और इसी को सर्वोत्तम समझती है। किन्तु ब्रिटिश सरकार के उद्देश्य लक्ष्य के भारतीय परिस्थितियों के सम्मेलन में इसका अभाव होना हुआ है कि अतीत के सब अनुभव के बावज़ूद के सभी तक यह नहीं समझ सके है कि इस प्रकार का दावा भारत के लिए सचन अनुसृत है। लोकतांत्रिक प्रणालियाँ जो हमसब जैसे समाज सज़ु की भारत पर कायम है, निर्दिष्ट रूप से भारत जैसे विपन्न देश व सज़ु नहीं की जा सकती। मर दीहा सचन सच ही भारत की साविधानिक सुरक्षा की यह है।" जिन्ना ने बताया कि पारभात लोकतन्त्र का आधार समरक्षता तथा सामुदायिकता के सम्पन्न है, किन्तु भारत में इस प्रकार के सम्पन्न का स्थापित करना असम्भव है। अतः आन्दोलन और बला में दंग का सम्पन्न सविधान भारत

मनुकूल नहीं हो सकता। उसने लिखा "अपने लीग ईकाई होते हुए भी अपने इतिहास ने धार्मिक मुद्दा को भूल जाते हैं और धर्म की ईश्वर तथा मनुष्य के बीच या भित्री तथा वैयक्तिक सम्बन्ध में मग्न हो जाते हैं। किन्तु हिन्दुत्व तथा इस्लाम के सम्बन्ध में यह बात लागू नहीं हो सकती, क्योंकि वे दोनों धर्म निरिक्त आचार सहितार्थ हैं जो मनुष्य तथा ईश्वर के सम्बन्ध का उतना निम्न नहीं करती जितना कि मनुष्य तथा उसके परीक्षी के बीच सम्बन्ध को विघटित करती है। हिन्दुत्व तथा इस्लाम मनुष्य की विधि तथा व्यवृति को ही नहीं, अपितु ऊपर सम्पूर्ण सामाजिक जीवन को धारित करती हैं। इस प्रकार के धर्म जो सत्य कहियारखायी हैं उस अन्तर्गत के विचित्र तथ्य विचार की एकता के विरोधी हैं जिस पर पाश्चात्य लोगताय आधारित है।"

1944 में जारी जिन्ना बार्ता के दौरान जिन्ना दुःखता तथा कष्टता के साथ इस सिद्धान्त पर दृष्टा रखा कि मुसलमान एक धृक्क राष्ट्र हैं। 15 सितम्बर, 1944 को अपने एक वचन में जिन गांधीजी को लिखा "हमारा दावा है कि हम किसी भी परिभाषा अथवा कसौटी का क्या न जानें, हिन्दू तथा मुसलमान दो बड़े राष्ट्र हैं। हम एक बरोड का एक राष्ट्र हैं, और उसने भी अधिक उत्तेजनीय यह है कि हम एक ऐसा राष्ट्र हैं जिसकी अपनी विशिष्ट संस्कृति और सम्प्रदाय, भाषा और साहित्य, कला तथा स्थापत्य, धर्म तथा सामाजिकव्यवस्था, धर्म और मनुष्यता की धारणा, विभिन्न कानून तथा वैयक्तिक सहितार्थ परिचरितियाँ तथा जमीन, इतिहास तथा परम्पराएँ, प्रकृतियाँ तथा महत्वाकांक्षाएँ हैं। मधीन में, हमारा जीवन के प्रति अपना दृष्टिकोण तथा जीवनदर्शन है। अन्तरराष्ट्रीय विधि के हर सिद्धान्त के अनुसार हम एक राष्ट्र हैं।" यह किसी भी रूप में सम्मोहित करने के लिए तयार नहीं था, और जिनका आधार था कि देश का विभाजन ही हिन्दू मुसलिम समाज का एकमात्र हल है। मुसलमानों के अनेक समूह जैसे जनीयत-ए-उलमा, अहमद और इतिहास-ए-मिल्लत जिन्ना के इस बात से सहमत नहीं थे। 4 अक्टूबर, 1944 को लंदन के "यूथ मूवमेंट" के एक प्रतिनिधि के मेल में उसने कहा था, "मुसलमानों और हिन्दुओं के भय का निपटारे का एक ही व्यावहारिक तथा व्यापकवादी तरीका है। यह यह है कि भारत को पाकिस्तान तथा हिन्दुस्तान में प्रमुखसम्पन्न भागों में बांट दिया जाय, और हमारे लिए सम्पूर्ण उत्तर-पश्चिमी सीमांत प्रदेश, कश्मीर, जम्मू, पंजाब, कानून और आसाम को, जिस रूप में वे आज हैं प्रमुखसम्पन्न मुसलिम राज्य मान लिया जाय। इसके अतिरिक्त हम एक दूसरे का विश्वास करें कि पाकिस्तान में हिन्दू अल्पसंख्यका और हिन्दुस्तान में मुसलिम अल्पसंख्यका के साथ 'सांघीय व्यवहार किया जायगा। तथ्य यह है कि हिन्दू कोई ऐसा सम्मोहित वाद्वेदों के जिल्लों विरोध नहीं करके निरपराध बना रहे। वे हमारी पूर्ण स्वतन्त्रता को सहन नहीं कर सकते।"

आज में जिन्ना की यह कठु मिला गयी जो उसके लिए भी एक स्वप्न थी। शक्ति तथा अन्तरराष्ट्रिय के पर पर आश्रीत होकर 11 अगस्त, 1947 को पाकिस्तान की लविजत तथा क सामने अपने अल्पसंख्यक भाग में उल्टे कहा "आप स्वतंत्र हैं पाकिस्तान के इस राज्य के साथ अपने सदिकों में, अपनी संरक्षिका में अपना आराधना के किसी अन्य स्थान में जाने के लिए स्वातंत्र्य है। आप किसी भी धर्म, जाति अथवा रूप में हो—उसका इस आधारवृत्त सिद्धान्त से कोई सम्बन्ध नहीं है कि हम सब एक राज्य के नागरिक और समान नागरिक हैं। मेरा विश्वास है कि अब हम इस बात की अपने सामने एक आदर्श के रूप में रखें, और फिर आप देखें कि वास्तव में हिन्दू हिन्दू नहीं रहने और मुसलमान मुसलमान नहीं रहेंगे—धार्मिक अर्थ में नहीं क्योंकि धर्म ही हर धर्म के निजी विश्वास की बीज है, बल्कि एक राज्य के नागरिकों के रूप में, राजनीतिक अर्थ में।"

जिन्ना ने पाकिस्तान में इसानी पसलन की परम्परा की नींव रखी। 1 जुलाई, 1948 को उसने कहा "पश्चिम के अन्तर्गत के भागों के लिए ऐसी समस्याएँ उत्पन्न कर दी हैं जिनकी हल करना अत्यन्त महत्वपूर्ण है, और हमारे के अनेक लोगों को ऐसा प्रतीत होता है कि विश्व के लिए पर विचार के भी वाद्वेदों में रहते हैं उसी उरी कोई अपवाद ही क्या करता है। पश्चिमी

अत्यन्त अनुप्य तथा अनुप्य के बीच 'माध' स्थापित करने में, तथा अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्र में लक्ष्य का उन्मूलन करने में अत्यन्त यत्न है। यन्त्रिक चिन्तनी भाषी पलायनी के जो दो विषय मुख्य हुए हैं उनका अन्तराध्यात्मिक मुद्दा इसी पर है। यद्यपि पश्चिमी जनता की यन्त्रीकरण तथा औद्योगिक क्रांति का भारी भाग है फिर भी वह आज जिस विपदाग्रस्तता में है वही इतिहास के किसी युग में नहीं रहा। पश्चिम के आधुनिक विज्ञान तथा व्यवहार को अपनाकर हम जनता को सुखी तथा अनुप्य बनाने के अपने उद्देश्य को प्राप्त नहीं कर सके। हमें अपनी होतम्यता की प्राप्ति के लिए अपने हृदय से काज करना चाहिए तथा विश्व के समस्त एक ऐसी आर्थिक व्यवस्था प्रस्तुत करनी चाहिए जो मानव धर्म की सम्मानता तथा सामाजिक 'माध' के इस्तेमाली आदर्शों पर आधारित हो। तब हम मुक्तमानवों के रूप में अपने स्वयं को पूरा करने में सक्षम होंगे और अनुप्य जाति के लिए वास्तविक, सुख तथा समृद्धि प्राप्त कर सकेंगे।" विज्ञान पर भ्रम तथा कमान के जीवन का प्रभाव क्या था, निम्न कमान आधुनिकवादी का जर्मन विज्ञान को प्रभावित तथा इस्तेमाली मानवता में विश्वास था।

3 निष्कर्ष

जिना पश्चिमिक व्यक्ति नहीं था। वह धार्मिकविज्ञान था। एक राजनीतिक व्यक्ति के रूप में वह भारतीय राष्ट्रवाद के अन्तर्निरोधी तथा धार्मिकता की उपाय था। ब्रिटिश साम्राज्यवादियों की 'बूढ़े बालों और दासता करो' की नीति उसका एक मुख्य अवलम्ब थी। जब तक भारतीय राष्ट्रवाद किसी साम्राज्यवाद के विरुद्ध लक्ष्य की हमानी विचारधारा का रूप धारण करे रहा तब तक और तब तक सामाजिक तथा साम्प्रदायिक जीवन के विपटनकारी तत्व अनुप्य पड़े रहे। निम्न जब 'राष्ट्रीय स्वाधीनता का साकार करने की सम्भावना उत्पन्न हो गयी तो शिक्षित भुगतिय अनुप्य परका उपा, स्वाभि स्वाधीनता का अर्थ था बहुसाध्यता के औद्योगिक राष्ट्र की स्थापना, जिसे मुक्तमानव न अनुप्यक हिन्दुता का दासता समझा। ऐसी स्थिति में भुगतिय जनता को अतीव आदर्शित के पश्चिम प्रभाव तथा मुहम्मद अली और खोवत अली के सब इस्तेमाली विचारों के आदर्शित हो गये की नसिपुवक मुहम्मद अली जिना के भन्ने के नीचे एका ही तर्फी और वाकिस्तान की सम-कानिह तथा साम्प्रदायिक भाव की विज्ञान में उलका समकन करने लगी।

प्रकरण 3

मुहम्मद अली

1 जन्मस्थान

मोहम्मद मुहम्मद अली का जन्म 1878 में रामपुर में हुआ था और 3 जनवरी, 1931 को वरान में चलता देखा हुआ। उन्होंने अलीपुर तथा जोलका में शिक्षा पायी।¹ पार 1898 में 1902 तक) कोलकाता में शिक्षा प्राप्त करने के 1902 में भारत छोड़े और रामपुर राज्य में शिक्षा विभाग में नौकरी कर ली। उसके उपरांत वे बड़ोदा के वायसराय के महा नौकरी करने गए। 1911 में उन्होंने कलकत्ता में वज्रकार का जीवन आरम्भ किया और 'कोमरेड' नाम की एक साप्ताहिक मैगज़ीन पत्रिका आरम्भ की जिसका पहला अंक 11 जनवरी, 1911 को प्रकाशित हुआ। 'कोमरेड' का द्वारा मुहम्मद अली ने हिन्दुओं तथा मुक्तमानवों के पारस्परिक सम्बन्ध तथा अन्धता को मिटाने और उन दोनों के बीच एकता स्थापित करने का प्रयत्न किया। उनका 'पुर्खी की पत्त' नाम का प्रतिष्ठित लेख 16 सितम्बर, 1914 के 'कोमरेड' में प्रकाशित हुआ जिसमें अधिनायिका के मन में नारी बहूता उत्पन्न हो गयी। मुहम्मद अली ने 1914 में स्थापित 'हमदा नामक एक उच्च धर्मिक का भी सम्पादन किया। 1913 में उन्होंने अधिनायिका भारतीय मुक्तियोग की अधिवर्गण का सम्पादन किया। वर्ष 1915 में उन्हें बाबु बर्ष के लिए नजरबन्द कर दिया गया, और 25 दिनाम्वर, 1919 को मुक्त किया गया। मुक्त होने के उपरांत वे अनुप्यता की वापस में सम्मिलित हुए। 1920 में वे खिलाफत के सम्बन्ध में एक प्रतिनिधि मण्डल के साथ इंग्लैंड गये। खिलाफत का उद्देश्य के के प्रचार देना थे। 1921 में उन्होंने दिल्ली में आयोजित मिलनवा इस्लामिया की

8 मुहम्मद अली *My Life A Fragment* (मोहम्मद का मुहम्मद जन्मस्थान, नरसिंह काजार 1942)।

अनुकूल नहीं हो सकता। उसने लिखा "अबेन सोच ईसाई होते हुए भी अपने इतिहास के धार्मिक मुद्दा को भूल जाते हैं और धर्म को ईश्वर तथा मनुष्य के बीच का निजी तथा वैयक्तिक मामला समझते हैं। बिना हिन्दुत्व तथा इस्लाम के सम्बन्ध में यह बात साबु नहीं हो सकती, क्योंकि वे दोनों धर्म निरिपक्ष साधारण सहितार्थ हैं जो मनुष्य तथा ईश्वर के सम्बन्धों का उत्तम नियमन नहीं करती बिलग कि मनुष्य तथा उसने पदोली के बीच सम्बन्धों को निर्धारित करती हैं। हिन्दुत्व तथा इस्लाम मनुष्य की विधि तथा संस्कृति को ही नहीं, अपितु उसने सम्पूर्ण सामाजिक जीवन को शामिल करते हैं। इस प्रकार के धर्म जो उत्कृष्ट बहुधर्मवादी हैं उस अवनत्य के विलयन तथा चिन्तन को एका के विरोधी हैं जिस पर पारमार्थ्य लोचन व आधारित हैं।"

1944 में गांधी जिन्ना बार्ली के बीच निज दस्ता तथा कट्टरता के साथ इन सिद्धान्त पर उदा रहा कि मुसलमान एक पृथक राष्ट्र हैं। 15 सितम्बर, 1944 को अपने एक पत्र में उसने गांधीजी को लिखा "हमारा दावा है कि हम किसी भी परिभाषा अथवा बसोटी को स्वीकार नहीं करते, हिन्दू तथा मुसलमान दो बड़े राष्ट्र हैं। हम इस बचोव का एक राष्ट्र हैं, और उसने भी अधिक उत्तेजनायी यह है कि हम एक ऐसा राष्ट्र हैं जिसकी अपनी विशिष्ट संस्कृति और सम्पत्ता, भाषा और साहित्य, न्याय तथा स्वायत्त, नाम तथा सामाजिक, धर्म तथा अनुपात की धारणा, विधिक कानून तथा वैयक्तिक सहितार्थ, परिचायिका तथा नवी, इतिहास तथा परम्पराएँ, प्रवृत्ति तथा बहुधर्मवादी हैं। शीघ्र में, हमारा धर्म के प्रति अपना अधिकार तथा जीवनरक्षण है। अन्तरराष्ट्रीय विधि के हार सिद्धांत के अनुसार हम एक राष्ट्र हैं।" यह किसी भी रूप में समझौता करने के लिए तैयार नहीं था, और उसका आग्रह था कि देश का विभाजन हो हिन्दू मुस्लिम समस्या का एकमात्र हल है। मुसलमानों के अनेक समूह जैसे जमोअत-ए-उलमा, अहमद और इतिहास व मिलित निष्ठा के इस मता से सहमत नहीं थे। 4 जनवरी, 1944 को लंदन के "यूज बीबीसी" के एक प्रतिनिधि से मेल में उसने कहा था, "मुसलमानों और हिन्दुओं के भगवों की निपटारे का एक ही व्यावहारिक तथा परामर्शी तरीका है। यह यह है कि भारत को पाकिस्तान तथा हिन्दुस्तान दो प्रमुख समूह भाग में बांट दिया जाए, और उसने लिए सम्पूर्ण उत्तर-अधिकांश सीमांत प्रदेश, बहुविधता, शिथ, पञ्जाब, बंगाल और आसाम को, जिस रूप में वे आज हैं, प्रमुख समूह मुस्लिम राज्य मान लिया जाए। इसने अतिरिक्त हम एक दूसरे का निरवाह करें कि पाकिस्तान में हिन्दू अल्पसंख्यका और हिन्दुस्तान में मुसलिम अल्पसंख्यका के साथ 'आवश्यक व्यवहार किया जाएगा।' तब यह है कि हिन्दू कोई ऐसा समझौता चाहते हैं जिससे किसी व किसी रूप में उनका निराकरण बना रहे। वे हमारी धूम स्वतन्त्रता को चढ़न नहीं कर सकते।"

जिन्ना ने जिन्ना को यह कसु निज कभी भी उठने लिए भी एक स्थान की। कलित तथा अन्तरराष्ट्रीय के पद पर आसीन होकर 11 अगस्त, 1947 को पाकिस्तान की संविधान सभा में सामने अपने अन्त्योत्तम भाषण में उसने कहा "आप स्वतन्त्र हैं पाकिस्तान के इस राज्य में आप अपने अधिकारों में, अपनी संपत्ति में अथवा आपसों के निजी अर्थ स्थान में जाने के लिए स्वतन्त्र हैं। आप किसी भी धर्म, जाति अथवा रूप में हो—उनका इस आधारभूत सिद्धांत में कोई सम्बन्ध नहीं है कि हम सब एक राज्य के नागरिक और समान नागरिक हैं। मेरा निवार है कि अब हम इस बात को अपने सामने एक आदेश के रूप में रने, और फिर जान देंगे कि वास्तव में हिन्दू हिन्दू नहीं रहने और मुसलमान मुसलमान नहीं रहने—पाकि अथवा नहीं कोई धर्म तो हर स्थिति के किसी निराकरण की बीच है, बलित एक राज्य के नागरिकों के रूप में, राजनीतिक अर्थ में।"

जिन्ना 1 पाकिस्तान में इस्लामी समूहों की परम्परा की बीच खाली। 1 जुलाई, 1948 को उसने कहा "परिधर्म के अन्तर्गत में मानव जाति के लिए ऐसी समस्याएँ उत्पन्न कर दी हैं जिसकी हल करना लक्ष्य अशक्य है, और हमारे के अनेक लोगों का ऐसा प्रतीत होता है कि विधर्म के लिए पर निवार के जो आदेश मंडल यह है उसने उसे कोई समझौता हो स्या सकता है। अधिकांश

7 देखिए एन आर गुप्त *Jinnah Meets : Aham* (लाहौर, 15 जनवरी, 1944) तथा मदन-मोहन, *Jinnah and League Politics* (लखनऊ, 1948)।

अनुकूल नहीं हो सकता। उसमें लिखा—“अनेक लोग ईसाई होत हुए भी अपने इतिहास के पालन मुझ को भूल जाते हैं और पथ को ईश्वर तथा मनुष्य के बीच का भित्री तथा वैयक्तिक मामला समझते हैं। यिजु हिन्दुस तथा इस्लाम के सम्बन्ध में यह बात लागू नहीं हो सकती, क्योंकि यहाँ न दोनों पक्ष निर्दोष आचार सहित हैं जो मनुष्य तथा ईश्वर के सम्बन्धों का सत्ता नियमन नहीं करती बिना कि मनुष्य तथा उसने पदोती के बीच सम्बन्धों को निर्धारित करती है। हिन्दुस तथा इस्लाम मनुष्य की विधि तथा सत्सुति को ही नहीं, यद्यपि उसके सम्पूर्ण सामाजिक जीवन को शासित करती हैं। इस प्रकार के पक्ष को सत्तत बहिष्कारवादी है उस अनुरोध के विरुद्ध तथा चिन्तन की प्रवृत्ति के विरोधी है जिस पर पाश्चात्य नीतिज्ञ आधारित है।”

1944 में गांधी जिज्ञा वाला के दोरान जिस वक्ता तथा बहुमत के साथ इस सिद्धांत पर बड़ा रहा कि मुसलमान एक दुसरे राष्ट्र हैं। 15 सितम्बर, 1944 को अपने एक पत्र में उसने गांधीजी को लिखा—“हमारा दावा है कि हम किसी भी परिस्थिति में पश्चिम के पक्षों को नया न बनाये, हिन्दू तथा मुसलमान दो बड़े राष्ट्र हैं। हम इस बचोद का एक राष्ट्र हैं, और उसी भी अधिक अन्तर्जातीय यह है कि हम एक ऐसा राष्ट्र हैं जिसकी अपनी विशिष्ट सत्सुति और सम्पत्ति, भाषा और साहित्य तथा स्थापत्य, नाम तथा नामधेयता, धर्म तथा अनुष्ठानों की भाषा, विधि वाक्य तथा नैतिक सहित हैं परिघटित तथा जमी, इतिहास तथा परम्पराएँ, अवस्था तथा मनुष्यात्मक हैं। सक्षेप में, हमारा जीवन के प्रति अपना दृष्टिकोण तथा जीवनदर्शन है। अंतरराष्ट्रीय विधि के हार सिद्धांत के अनुसार हम एक राष्ट्र हैं।” यह किसी भी रूप में समझौता करने के लिए तैयार नहीं था, और उसका आग्रह था कि देश का विभाजन ही हिन्दू मुसलिम समझौता का एकमात्र हल है। मुसलमानों के अनेक समूह जैसे जमीयत ए-उलमा, अहमद और इतिहास ए मिलत जिज्ञा के इस पत्र के सहमत नहीं थे।⁷ 4 अक्टूबर, 1944 को सभा के “यून जमीन” के एक प्रतिनिधि से मेट में उसने कहा था, “मुसलमानों और हिन्दुओं के भगवानों के नियमों का एक ही व्यावहारिक तथा समाजवादी तरीका है। यह यह है कि भारत को पाकिस्तान तथा हिन्दुस्तान की प्रजासत्तान्त नामा में बांट दिया जाय, और उसके लिए सम्पूर्ण उत्तर-पश्चिमी सीमांत प्रदेश, बहुविधता, सिंध, पंजाब, बंगाल और आसाम को, जिस रूप में वे आज हैं, प्रजासत्तान्त मुसलिम राज्य मान लिया जाय। इसके अतिरिक्त हम एक दुसरे का विश्वास करें कि पाकिस्तान में हिन्दू अल्पसंख्यकों और हिन्दुस्तान में मुसलिम अल्पसंख्यकों के साथ “आधोपित व्यवहार किया जायगा। तब यह है कि हिन्दू कोई ऐसा समझौता चाहते हैं जिससे किसी न किसी रूप में उनका विभाजन बना रहे। वे हमारी दृढ़ स्वतंत्रता को सड़न नहीं कर सकते।”

अंत में जिज्ञा को यह बहुत नित नहीं जो उसके लिए भी एक स्वप्न की। सत्त तथा अंतरराष्ट्रीय के पद पर आसीन होकर 11 अप्रैल, 1947 को पाकिस्तान की स्थापना करने के सामने अपने अन्तर्जातीय भाषण में उसने कहा—“आप स्वतंत्र हैं पाकिस्तान के इस राज्य में आप अपने भविष्य में, अपनी सत्सुतियों में अपना आराधना के किसी अर्थ स्थापन में जाने के लिए स्वतंत्र हैं। आप किसी भी पक्ष, आदि अथवा पक्ष के हो—उसका इस आधारभूत सिद्धांत में कोई सम्बन्ध नहीं है कि हम सब एक राज्य के नागरिक और समान नागरिक हैं। ऐसा विश्वास है कि अब हम इस बात को अपने सामने एक आदेश के रूप में रखें, और फिर आप देखें कि वास्तव में हिन्दू हिन्दू नहीं रहने और मुसलमान मुसलमान नहीं रहने—धार्मिक अर्थ में नहीं क्योंकि धर्म ही हर व्यक्ति के निजी विश्वास की नींव है, नहीं एक राज्य के नागरिकों के रूप में, राजनीतिक अर्थ में।”

जिज्ञा ने पाकिस्तान में इस्लामी पक्षों की परम्परा को नींव रखी। 1 जुलाई, 1948 को उसने कहा—“पश्चिम के अन्तर्जातीय में मानव जाति के लिए ऐसी समझौता उत्पन्न कर दी है जिसकी हल करना सर्वथा असम्भव है, और हमने से अनेक लोगों को ऐसा प्रतीत होता है कि विश्व के सिर पर विनाश के जो बादल नैदरा रहे हैं उनसे जो कोई भयानक ही बचा सकता है। पश्चिमी

7 देखिये पत्र बर दूध, *Jinnah Meets the Press* (मार्च 15 सन् 1944) तथा बर दूध, *Jinnah and League Politics* (जुलै 1949)।

अपगत मनुष्य तथा मनुष्य के बीच 'भाव' स्थापित करने में, तथा अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्र में सहजता का अनुभव करने में सफल रहा है। इस्लिक विद्वानों आधी शताब्दी में जो दो विश्व युद्ध हुए हैं उनका उत्तरदायित्व मुख्यतः उसी पर है। यद्यपि पश्चिमी जगत की सर्वाकारण तथा औद्योगिक वीरता का भारी लाभ है फिर भी यह आज विश्व विप्लवकला में है वैसे इतिहास के किसी युग में नहीं रहा। पश्चिम के 'आधुनिक' विद्वानों तथा व्यवहार को अपनाकर हम जगत् की सुखी तथा समृद्ध बनाने के अपने उद्देश्य को प्राप्त नहीं कर सकते। हमें अपनी हीतकषयता की प्राप्ति के लिए अपने इन से काम करना चाहिए तथा विश्व में समस्त एक एसी आधुनिक व्यवस्था प्रस्तुत करनी चाहिए जो मानव जाति की समानता तथा सामाजिक 'भाव' के इस्लामी मान्यों पर आधारित हो। सब हम मुसलमानों के रूप में अपने 'धर्म' की पूरा करने में सफल होने और मनुष्य जाति के लिए वस्त्राग, सुख तथा समृद्धि प्राप्त कर सकेंगे।¹ विज्ञा पर मुसलमानों के जीवन का प्रभाव पड़ा था, किन्तु कमाज आधुनिकवादों या अधुनिक विज्ञा की समस्त तथा इस्लामी मोहकता के विरुद्ध था।

3 निष्कर्ष

विज्ञा आधुनिक व्यक्ति नहीं था। वह राजनीतिज्ञ था। एक राजनीतिज्ञ व्यक्ति के रूप में वह भारतीय राष्ट्रवाद के अन्तर्विरोध तथा धार्मिकता की उपाय था। ब्रिटिश साम्राज्यवादियों की 'बुरा हाली और शासन करो' की नीति उसका एक मुख्य अवलम्ब थी। जब एक राष्ट्रीय राष्ट्रवाद विदेशी साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष की हमानी विचारधारा का रूप धारण करने लगा तब एक भारतीय सामाजिक तथा साम्प्रदायिक जीवन के विघटनकारी तत्व सुपुष्टा पड़े रहे। किन्तु जब राष्ट्रीय स्वाधीनता की साकार करने की सम्भावना उत्पन्न हो गयी तो विभिन्न मुसलिम समुदाय पक्षों तथा, कदाचित् स्वाधीनता का अर्थ या बहुसंख्या के लोकतांत्रिक शासन की स्थापना, जिसे मुसलमानों ने बहुसंख्यक हिन्दुओं का शासन समझा। इसी विधि में मुसलिम जनता को असीम आन्दोलन के बीच एक प्रभाव तथा मुहम्मद अली और मौलाना अली के साथ इस्लामवादी विचारों से आदीनित हो उठी थी मसिहूब मुहम्मद अली विज्ञा के भले के लिये एक ही पक्षी और पाकिस्तान की पक्ष-तांत्रिक तथा साम्प्रदायिक मान की विज्ञा में उसका अवलम्ब करने लगी।

प्रकरण 3

मुहम्मद अली

1 प्रस्तावना

मौलाना मुहम्मद अली का जन्म 1878 में रामपुर के हुमा या और 3 जनवरी, 1931 को साधन में उनका देहान्त हुआ। उन्होंने असीम तथा अक्षयक म शिक्षा पायी।¹ भारत में (1898 से 1902 तक) ओरमफत में शिक्षा प्राप्त करके वे 1902 में भारत लौट और रामपुर राज्य के शिक्षा विभाग में नौकरी कर ली। उनके उपरान्त वे ब्रिटीश के शासनवाद के बहुत मोहकरी करने लगे। 1911 में उन्होंने बंगला में बंगाल का जीवन आगमन किया और 'कौमरेड' नाम की एक साप्ताहिक संवेदी पत्रिका प्रारम्भ की जिसका पहला अंक 11 जनवरी, 1911 को प्रकाशित हुआ। 'कौमरेड' के द्वारा मुहम्मद अली ने हिन्दुओं तथा मुसलमानों के पारस्परिक वैचल्य तथा भेदभाव को मिटाने और उन दोनों में बीच एकता स्थापित करने का प्रयत्न किया। उनका 'गुर्ने' की भावना का प्रसिद्ध लेख 16 सितम्बर, 1914 के 'कौमरेड' में प्रकाशित हुआ जिसमें अधिवासीयों के मन में भारी बहता उत्पन्न हो गयी। मुहम्मद अली ने 1914 में स्थापित 'हमद नाम' एक उर्दू पत्रिका का भी सम्पादन किया। 1913 में उन्होंने अधिवासीय भारतीय मुसलिम लोग के अधिवेशन का समायोजित किया। मई 1915 में उन्हें पांच वर्ष के लिए जबरनद कर दिया गया और 25 सितम्बर, 1919 को मुक्त किया गया। मुक्त होने के उपरान्त वे अमृतसर की वापस में सम्मिलित हुए। 1920 में वे सिमाफत के सम्मेलन में एक प्रतिनिधि भारत के साथ इंग्लैण्ड गये। विज्ञाण का दीनन के वे प्रमुख नेता थे। 1921 में उन्होंने दिल्ली में आयोजित मिस्लिमा इस्लामिया

8 मुहम्मद अली *My Life A Fragment* (मौलाना के मुहम्मद अली, नवम्बरी भाग्य 1942)।

हमामना की। 1920-21 में उन्होंने महात्मा गांधी के साथ-साथ काम किया। 1921 में वह गया उनके सख्त शीकटभरती की भारतीय सेवा में राजनीति पढ़ाने के अचाराय के बख्तर बना दिया गया। कराची में अखिल भारतीय शिक्षापत्र सम्मेलन के सम्पन्न के रूप में मुहम्मद अली ने मुसलमानों की महाकाश कि वह सब विविध सरकार तुर्की के साथ बिने गये अन्धकार को दूर न करे, वह एक वह भारतीय सेवा में सेवा नहीं करनी चाहिए। कराची में अपने अभिषेक परीक्षण के दौरान उन्होंने भी भाषण दिया उसने उन्होंने मोझा के से उत्तराह का परिचय दिया और उत्तरीयन सरकार को चुनौती अरे कश्मी में मतभार। इसी कारण वह भाषण ऐतिहासिक महत्व का हो गया है। दो वर्ष बादगार के बिताने के अचाराय अक्ट 1923 के में मुक्त कर दिये गये। कारागार के छूटन के बाद उन्होंने भीषणता की नि मुझे गांधीजी के अहिंसात्मक अंतर्द्वेष तथा हिन्दू-मुसलिम एकता में कामरन में अहिंसा आस्था है। 1823 में उन्होंने कोकीयाज के कायेस अभिलेखन का सम्पादन किया। जब 1923 के बाद साम्प्रदायिक समस्याओं में विचरन रूप धारण कर लिया तो उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष की हेतियत में 1924 में उस समय एकता सम्मेलन बुलाया जब गांधीजी ने 21 दिन का उपवास आरम्भ कर दिया था। 1928 में वे यूरोप के लिए रवाना हो गये इसलिए वे उस सर्वधर्म सम्मेलन की बैठकी तथा विचारविमर्श में भाग न ले सके जो भारत के लिए सविधान तैयार करने तथा देश में कभी हुई साम्प्रदायिक समस्या का हल ढूँढ निकालने के लिए बुलाया गया था। उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की अवहेलना करते हुए 1930 में प्रथम सोममेक सम्मेलन में भाग लिया।

2. मुहम्मद अली के विचारों का समझावनीय आधार

मुहम्मद अली तमक मुसलिम पत्रकारों में। इस्लाम के सिद्धांतों में उनकी गहरी आस्था थी। मुसलिम समाज परम्परा से प्रभावित एक इष्टिकोष का अनुसरण करता भाषा था, उन्होंने उस समाज की राजनीतिक राय पद्धति पर भी गहरा धार्मिक रंग पड़ा दिया। वे धर्म की विज्ञान से भी अज्ञा मानते थे। उन्होंने कुुरान की उपरासादी तथा सीद्धि व्याख्या का विरोध किया। उन्होंने लिखा है 'किंतु वह विज्ञान और धर्म के संबंध का प्रश्न है मैं उन दोनों के बीच किसी संबंध की सम्भावना की स्वीकार नहीं करता, और न उनके बीच समझौते के लिए ही प्रयत्न है। धर्म जीवन की व्याख्या है, इसलिए वह नहीं वह जा सकता कि उसका विज्ञान से कोई सम्बंध नहीं है। किंतु उसका काम केवल प्रोत्साहन देना है और उसे (विज्ञान से) मुक्त तथा अन्धकार छोड़ देना है। धर्म का उद्देश्य यह है कि विधान की प्रगति हो और उसकी उत्पत्ति-प्रकाश का इस प्रकार प्रयोग किया जाय कि उसके सम्पूर्ण मानव जाति की, बल्कि ईश्वर की समस्त इष्टि की काम पहुँचे। किंतु वह मानव जाति की विज्ञान पढ़ाने का काम अपने हाथों में नहीं लेता। धर्म प्रभु है और उसके कोई भूत नहीं हो सकती, कल्पना को हम सम्भव बैठने की भूल करने की जिम्मेवारी मानी और प्रकाश की है—सर्वाति विज्ञान की। कुुरान का उद्देश्य सबकुछ यह सिखाना नहीं है कि विश्व की सृष्टि किस प्रकार हुई थी। आज विज्ञान के महत्व की कोई धम नहीं मानेगा, फिर भी धर्म की महत्ता से मुक्तता करने पर वह दुष्प्रभाव तथा हेम प्रतीत होता है, क्योंकि धर्म जीवन का विधान है, सब विज्ञान और धर्म का सार है। बुद्धि इस्लाम बोधशास्त्र की शिक्षा नहीं देता, इसलिए ऐसी कोई चीज है ही नहीं जिसका वह अपनी व्याख्या द्वारा सम्बंध करने का प्रयत्न करे। इस्लाम ऐसे लोगों की देखावर दु खी होना की इतने प्रभावी और अकम्पन्न है कि प्रगति से सम्भावित बने गहरे है, और वा दार्शनिक द्वारा विचारसमर्थ के सिद्धांत के प्रतिपादित किये जाने के बादबूद इनीत के सृष्टि विधान सम्पन्न की दुहाई देते रहते हैं। फिर भी इस्लाम अविन तथा उसके विचारवाद की वैधानिक सत्य के सम्बंध में अन्तिम वाक्य मानकर उस पर अपनी मुहर लगाने के लिए तैयार नहीं होता। तथापि मैं यह मानने के लिए कोई कारण नहीं देखता कि अतिआधुनिक (मोडर्न

9 मोहमद अली (1873-1938) ने अपने अनुब मुहम्मद अली का विज्ञानपूर्ण अनुसरण किया और उनके जीवन में धर्म का काम बढ़ाया। 1931 में जब मुहम्मद अली की मृत्यु हो गयी उसके बाद मोहमद अली अधिपतिव मुसलिम आन्दोलनवादी बने धर्म बने।

सार) कम ईश्वर के लिए असम्भव है, उसके लिए सब कुछ सम्भव है। निश्चयन की इस स्वतन्त्रता के अतिरिक्त, जिसे हर व्यक्ति को अपने लिए सुरक्षित रखना चाहिए, मैं अन्य किसी बात का दावा नहीं करता और मैं यह मानता हूँ कि निश्चयन सभी मानवजात के नाम पर ईश्वर के वाक्य में अपनी ओर से कुछ जोड़ना, उसमें परिवर्तन करना अथवा उसमें से कुछ निकालना मनुष्य के लिए पातक पाप है, और कुरान केरे इस मत का समर्थन करती है।¹⁰ जीवन तथा राजनीति के सम्बन्ध में मुहम्मद अली का दृष्टिकोण धार्मिक था। ईश्वर तथा कुरान में उनकी की उत्साहपूर्ण आस्था थी यह उनके राजनीतिक कथना में भी स्पष्ट होती है। 1921 में बुरी के समझौते के तहत मावाजिद के साथ बहा था, “ईश्वर सर्वोपरि है—ईश्वर राजनैतिक के ऊपर है, ईश्वर राजा के ऊपर है, ईश्वर देशपति के ऊपर है, ईश्वर मेरे देश के ऊपर है, ईश्वर मेरे माता, पिता और सन्तान के ऊपर है। यही मेरा धर्म है।” मुहम्मद अली कुरान को अपना पथ प्रदर्शक तथा जीवन के लिए प्रेरणा का स्रोत मानते थे। उनका विश्वास था कि इस्लाम एक सम्पूर्ण जीवन दर्शन है और समाज व्यवस्था की आधार योजना है। उन्होंने लिखा था “ आठ वष पूर्व अपनी नजर-बन्दी के प्रारम्भिक कुछ महीनों में मेरे मन में इस्लाम की महत्ता के सम्बन्ध में की अज्ञा अन्तर्ज्ञ ही उत्पन्न हो गयी है उसमें मैंने जो कुछ पढ़ा है उसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। कुरान एषा हदीस का मुख्य उपदेश है ‘ईश्वर का राज्य तथा ‘ईश्वर के बन्दे मनुष्य की सेवा, और सब से मैंने जो कुछ पढ़ा है उससे इस्लाम के पञ्चतामिक रूप की पुष्टि ही होती है।’¹¹

3 मुहम्मद अली के राजनीतिक विचार

मुहम्मद अली का कहना था कि मुसलमानों के ‘आध्यात्मिक व्यक्तित्व का स्वीकार कर लेना भारतीय समाजशास्त्री के रचनात्मक समाधान का एकमात्र आधार है।’ उनकी राय में भारत पर ब्रिटिश एकता अथवा सन्तानी देशनक्ति योन देना सम्भव नहीं था। बीसवीं शताब्दी के द्वितीय दशक में मुहम्मद अली ने देशनक्ति का उपदेश दिया था और देशनक्तिपूर्ण आचरण भी किया था।¹² 1907 में ‘लाइम्स ऑफ इन्डिया’ तथा ‘इन्डियन स्पेक्टेटर’ के प्रकाशित अपने ‘वर्तमान भारतीय पर विचार’ नामक लेख में उन्होंने बतलाया था कि भारत का अन्तर्गत प्रथमतः पाश्चात्य शिक्षा तथा प्रबुद्धीकरण की प्रगति के कारण है। उन्होंने स्वीकार किया कि बक, ब्राइट, मैन्सले और बैन्डिक न भारतीय नवजागरण में बहुमूल्य योग दिया था। किन्तु उन्होंने इस बात पर भी उल्लेख किया कि कांग्रेस के तिलक, पाल, लालबहादूर साहू आदि अतिवादी नेताओं ने अग्र-दोष का विस्तार किया था। उन्होंने ‘कामरेड के प्रथम एक में लिखा “हमें इस बारे में विस्वास नहीं है कि (मैंने 14 जनवरी, 1911 को लिखा था) भारत समुक्त है।” यदि भारत समुक्त था तो इस वष के अख्यत (सर विलियम बटलर) को इतने दूर क्या है पसीटकर महा मान की क्या आवश्यकता थी? हमारा इस विश्वास है कि यदि मुसलमानों अपना हिन्दुओं से एक दूसरे के विपरीत चलकर अपना एक दूसरे के सहकार के बिना भी एकजुट होने का प्रयत्न किया ता वे असफल हो नहीं होंगे अतः अपमानपूर्वक असफल होंगे। किन्तु हर बन्दे सभी समझौते से रजना है। आधुनिक भारत की जो स्थिति है उसका साहचर्य हमें आधीन अथवा आधुनिक इतिहास में नहीं नहीं मिलेगा। इतिहास अपने की बन्दी

10 *My Life A Fragment*, पृष्ठ 166-68।

11 वही पृष्ठ 154।

12 *Select Writings and Speeches of Muhammad Ali*, पृष्ठ 69।

13 1930 में मुहम्मद अली ने दावा किया था कि वह उन ‘समाज में थे जिन्होंने 1906 में मुबर्क शिर्का-अल्ला की मौत का की। इसलिए उन्होंने कहा कि मैं उनका सम्मान करने भारत आया नहीं होता। *Select Writings and Speeches of Muhammad Ali* पृष्ठ 473।

14 एम. एन. राय *India in Transition* में पृष्ठ 224 पर लिखते हैं “मुसलिम बुद्धिजीवी भारत में कांग्रेस के प्रथम चले और फिर कांग्रेस के अग्रणी बनने के लिए उन्होंने विपक्ष कागजों का गयी। इसका कारण सरकार की पक्षाघात की स्थिति नहीं बल्कि उनमें (मुसलिम बुद्धिजीवियों) का एक सम्झौता था। मुसलमान एक एक राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग नहीं ले सकते थे जब तक उनके बीच ऐसा कुछ था वह न उभरता था। भारत के अन्तर्गत समाजों के कोई सम्झौता न होता जिसका अन्तिम इतिहास मुसलिमों की तरफ से होता था और अन्तिम समाज के अन्तर्गत होता था।

स्थापना की। 1920-21 में उन्होंने महात्मा गांधी के साथ-साथ काम लिया। 1921 में उन्हें तथा उनके अग्रज श्रीकृष्णजी⁹ को भारतीय सेना में राजद्रोह केस के अन्तर्गत में बन्दीर दण्ड दिया गया। बन्दीरों के अखिल भारतीय विधायक सम्मेलन के अध्यक्ष के रूप में मुहम्मद अली के सुसह-मानों को महजमा कि अब तब ब्रिटिश सरकार तुमों के साथ दिये गये अत्याचारों के दूर न कर तब तब उन्हें भारतीय सेना में सेवा नहीं करनी चाहिए। कानूनी में अपने अधिप्राप्त परोक्ष के दौरान उन्होंने जो मान्य दिया उसमें उन्होंने पोंडा के से लताइय का प्रतिपक्ष दिया और तत्कालीन सरकार को चुनौती भर वायदा में सतपाया। इसी कारण वह आपन ऐतिहासिक महत्व का हा गया है। दो वर्ष कारागार में बिताने के उपरांत अगस्त 1923 में वे मुक्त कर दिये गए। कारागार से छूटने के बाद उन्होंने घोषणा की कि मुझे गांधीजी के अधिपत्यक अग्रदूत तथा हिन्दू-मुसलिय एकता के कावचक के अग्रिम आका है। 1823 में उन्होंने बोम्बेनगरा के कांसेट अधिवेशन का सम्पादित्व किया। जब 1923 के बाद साम्प्रदायिक समस्याओं के विचारण रूप धारण कर लिया तो उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष की हैसियत से 1924 में उस समय एकता सम्मेलन बुलाया जहाँ गांधीजी ने 21 दिन का उपवास आरम्भ कर दिया था। 1928 में वे यूरोप के लिए रवाना हो गये इसलिए वे उस सबदलीय सम्मेलन की बैठक तथा विचारधारा में भाग न ले सके जो भारत के लिए सविधान तैयार करने तथा देश में फैली हुई साम्प्रदायिक समस्या का इस दंड निवारण के लिए बुलाया गया था। उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की अवहेलना करते हुए 1930 में प्रथम मोलमल सम्मेलन में भाग लिया।

2. मुहम्मद अली के विचारों का समाजशास्त्रीय आधार

मुहम्मद अली सबसे मुसलिय समाजशास्त्री थे। इस्लाम के सिद्धांतों में उनकी गहरी व्याख्या की। मुसलिय समाज परम्परा के परमार्थों का दृष्टिकोण का अनुसरण करता आया था, उन्होंने उस समाज की राजनीतिक रूप बदलि कर की महत्ता धार्मिक रूप बना दिया। वे धर्म की विज्ञान से भी ऊँचा मानते थे। उन्होंने कुरान की उपासकी तथा बौद्धिक व्याख्या का विरोध किया। उन्होंने लिखा है—“किन्तु जहाँ विज्ञान और धर्म के समय का प्रश्न है मैं उन दोनों के बीच किसी समय की सम्भावना की स्वीकार नहीं करता, और मैं अपने बीच समझते के लिए ही कुछ है। धर्म जीवन की व्याख्या है, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि जहाँ विज्ञान से कोई सम्बंध नहीं है। किन्तु जहाँ का धर्म केवल शोभाहन देता है और उसे (विज्ञान से) मुक्त तथा अज्ञान छोड़ देता है। धर्म का उद्देश्य यह है कि विधान की प्रगति हो और उसकी उपलब्धियों का इस प्रकार उपयोग किया जाय कि उनकी सम्पूर्ण मान्यता को, बौद्धिक ईश्वर की समग्र दृष्टि को जान सके। किन्तु यह मानक आदि की विज्ञान कहने का नाम अपने हाथ में नहीं लेता। धर्म प्रभु है और उससे कोई छूट नहीं हो सकती, कारणों को हर्ष सम्बन्ध देखने की भूल करने की जिम्मेदारी माँगी और प्रजा की है—अर्थात् विज्ञान की। कुरान का उद्देश्य सबकुछ यह सिद्धांत नहीं है कि विश्व की सृष्टि किस प्रकार हुई की। आज विज्ञान के महत्व की कोई बात नहीं मानता, फिर भी धर्म की महत्ता के तुलना करने पर यह स्पष्ट तथा हेल प्रतीत होता है क्योंकि धर्म जीवन का विधान है, सब विज्ञान और रचना का सार है। धर्म इस्लाम जीवनशास्त्र की शिक्षा नहीं देता, इसलिए ऐसी कोई चीज है ही नहीं जिसका यह अपनी व्याख्या द्वारा छन्दस करते कर प्रयत्न करें। इस्लाम ऐसे लोगों को देखकर खुशी होता की इतने प्रमादी और अकाम्य हू कि प्रगति में अवलम्बित गने रहते हैं, और जो धर्मिक द्वारा विकासवाद के सिद्धांत के प्रतिपादित किये जाने के साथ-साथ इसी के सृष्टि विमर्श अध्यापन की दुहाई देते रहते हैं। फिर भी इस्लाम धर्मिक तथा उसके विकासवाद की वैधानिक हस्त के सम्बंध में अग्रिम वाक्य मानकर उस पर अपनी गृह्य लगाने के लिए तयार नहीं होगा। तथापि मैं यह मानने के लिए कोई कारण नहीं देखता कि अतिमादुलिन (लोको-

⁹ जीवन अली (1873-1938) ने अपने अनुज मुहम्मद अली का विद्वत्पुत्र अनुकरण किया और उनके जीवन में जीवन का मार्ग बताया। 1931 में जब मुहम्मद अली की कलु हो गयी तबक का जीवन अली अधिकाधिक मुसलिय समाजशास्त्री बनते गए थे।

तार) कम ईश्वर के लिए असम्भव है, उसने लिए सब कुछ सम्भव है। निश्चयन की इस स्वतन्त्रता के अतिरिक्त, जिसे हर व्यक्ति को अपने लिए सुरक्षित रखना चाहिए, मैं अब किसी बात का दावा नहीं करता और मैं यह मानता हूँ कि निश्चयन सभी मनसूबों के नाम पर ईश्वर के वाक्य के अपनी ओर से कुछ जोड़ता, उसने परिष्कार करना अथवा उसने दो कुछ निश्चयनात्मक मनुष्य के लिए पास्तक पाप है, और कुरान मेरे इस बात का समर्थन करती है।¹⁰ जीवन तथा राजनीति के सम्बन्ध में मुहम्मद अली का दृष्टिकोण धार्मिक था। ईश्वर तथा कुरान में उनकी जो उदात्तहृदय भावना थी वह उनके राजनीतिक विचारों के भी स्वतः होती है। 1921 में यूरो के समस्त बीसले हुए उद्वाहने भावनेस के साथ कहा था, “ईश्वर सर्वोपरि है—ईश्वर राजवर्षि के ऊपर है, ईश्वर राजा के ऊपर है, ईश्वर देशमन्त्रि के ऊपर है, ईश्वर मेरे देश के ऊपर है, ईश्वर मेरे माता, पिता और सन्तान के ऊपर है। वही मेरा धर्म है।” मुहम्मद अली कुरान की अपना धर्म प्रयत्न तथा जीवन के लिए प्रेरणा का स्रोत मानते थे। उनका विश्वास था कि इस्लाम एक सम्पूर्ण जीवन दशान है और समाज व्यवस्था की आदर्श योजना है। उन्होंने लिखा था “आठ वष पूर्व अपनी गवर-बन्दी के शार्पनिम कुछ सहोनों में मेरे मन में इस्लाम की महत्ता के सम्बन्ध में जो अद्भुत अनायास हो उत्पन्न हो गयी है उससे मैंने जो कुछ पढ़ा है उससे कोई परिचयन नहीं हुआ है। कुरान तथा हदीस का मुख्य उपदेश है ‘ईश्वर का राज्य’ तथा ‘ईश्वर के बन्दे मनुष्य की सेवा’, और उस से मैंने जो कुछ पढ़ा है उससे इस्लाम के धर्मतान्त्रिक रूप की पुष्टि हो जाती है।”¹¹

3 मुहम्मद अली के राजनीतिक विचार

मुहम्मद अली का कहना था कि मुसलमानों के ‘साम्प्रदायिक व्यक्तित्व’ को स्वीकार कर देना भारतीय समस्याओं के रचनात्मक समाधान का एकमात्र आधार है।¹² उनकी राय में भारत पर कुश्मि एकता अथवा समाजी देशमन्त्रि पोष देना सम्भव नहीं था। बीसवीं शताब्दी के द्वितीय दशक में मुहम्मद अली ने देशमन्त्रि का उपदेश दिया था और देशमन्त्रिपूर्ण आचरण भी किया था।¹³ 1907 में ‘टाइम्स ऑफ इण्डिया’ तथा ‘इन्डियन स्पेक्टेटर’ में प्रकाशित अपने ‘पहलमान अल्लोप पर विचार’ नामक लेख में उन्होंने बताया था कि भारत का अल्लोप प्रयत्न वास्तव्य विपत्ता तथा प्रबुद्धी करने की प्रगति के कारण है। उन्होंने स्वीकार किया कि बंग, ब्राइट, मैगलि और वैडिक के भारतीय गवर्नमन्ट में बहुसूत्र्य बोल दिया था। किन्तु उन्होंने इस बात का भी उल्लेख किया कि बाबिस के जिन, बाल, लालपल राय आदि अतिवादी नेताओं ने अल्लोप का विस्तार किया था। उन्होंने ‘कामरेड’ के प्रसन अल में लिखा “एधे इस गारे के विश्वास नहीं है कि (मैंने 14 जनवरी, 1911 को लिखा था) भारत समुक्त है।”¹⁴ यदि भारत समुक्त था तो इस रूप के सम्पन्न (सर विलियम मन्टगम) को इतने दूर देश से लीडकर पहुँचाने की क्या आवश्यकता थी? ह्वाला इस विश्वास है कि यदि मुसलमानों अथवा हिन्दुओं में एक दूसरे के विपरीत चलकर अपना एक दूसरे के सहयोग के बिना भी उपलब्ध पाने का प्रयत्न किया तो वे अक्षम हो नहीं होंगे अतिसु अस्मानसूचक अक्षम होवे। किन्तु हर वदम बरी सामर्थ्य की रचना है। आपुनिम भारत की जो स्थिति है उसका साहस्य हने प्राचीन अथवा आपुनिम इतिहास में नहीं नहीं मिलेगा। इतिहास अपन की गनी

10 *My Life A Fragment*, पृष्ठ 166-68।

11 वही पृष्ठ 154।

12 *Select Writings and Speeches of Muhammad Ali*, पृष्ठ 69।

13 1930 में मुहम्मद अली ने कहा कि वह उन भाषा में थे कि जिहान 1906 में पृष्ठ निम्नलिखितों की नींव का थी। इसलिए उन्होंने कहा कि मैं उनका सम्पन्न करने का प्रयत्न करने लगे। *Select Writings and Speeches of Muhammad Ali*, पृष्ठ 478।

14 एक एक *India an Transition* में पृष्ठ 224 पर लिखा है “मुसलिम बुद्धिजीवी जर्मन में बाइबल के पृष्ठ पर ही और फिर जाने बसकर उनके सम्पन्न की सत्ति को उल्टे दिखाने का प्रयत्न कर रहे हैं। इसका कारण मन्टगम की मन्त्रि की नीति का अति बलिक उनके (मुसलिम बुद्धिजीवी) का का सम्पन्न था। मुसलमान अब उन सम्पन्न का उल्लेख नहीं करते हैं बल्कि वे अब उन उनके बीच ऐसा कुछ का वन में उल्लेख है। आता बिना काय की सम्पन्न के कोई सम्पन्न में हीन विपत्ता बाकि इतिहास मुसलिमों का जीवन में हीन कीसनीक तथा अक्षमविपत्ति से ही एक विपत्ति होता है।

मुहम्मद नहीं। किन्तु मनुष्य जाति के लिए वह शिक्षा का सबसे अच्छा माध्यम है और हम भी उससे बहुत कुछ सीख सकते हैं। भारत की समस्याएँ समस्त अंतरराष्ट्रीय समस्याएँ हैं। साथ हीमारे लिए अपने देश में तथा देशभक्तियों के साथ और राष्ट्रीय उमाद उत्पन्न करना भी सम्भव न हो जाता कि हम चार कराह की समान जनसंख्या वाले जापान में देखने की विनता है। किन्तु बनाया के समान समझौता कर लेना व्यावहारिक दृष्टि से असम्भव नहीं है। हम ईरान चारों के साथ साधारण साथ आरम्भ कर देना चाहिए, उसके बाद हम बड़ी सफलताएँ भी मिल पायेंगी। किन्तु वह काम भी सरल नहीं है। फिर भी वह भारत के पुनर्पुनर्जा के अनुरूप है और इस योग्य है कि हमने लिए पश्चिम और साथ साथ साथ।

हे एसा ! तु आयेगी और मनुष्य ने मेरा उत्पन्न करती तथा राष्ट्रा की सम्पूर्ण सम्पूर्ण करीबी, किन्तु तु हम लोगों ने लिए वो साथ प्रतीक्षा कर रहे और जल रहे है, गद्दी आयेगी, तु यहाँ व पश्चिम, अरब, प्रतीक्षा, अथवा उत्पन्न तथा नीरस व्याप के उत्पन्न आयेगी।

लिताकत आचार्यन के नेता के रूप में मुहम्मद अली ने पुनरुत्थानवादी प्रवृत्तियों का परिधय दिया। लिताकत आचार्यन के तीन मुख्य उद्देश्य थे (1) लिताकत को विश्व मित्र न बनाया जाय और अलोका के साथ न पर्याप्त लौकिक शक्ति रखने दी जाय, (2) अरब साम्राज्य के अलावा किसी आहारी मरगम के अन्तर्ग रूप में मुसलमानों का निवास हो, (3) पक्षीया मनका, मदीना, मस्जिद आदि तीर्थ-स्वाधो की तथा मक्का, बक्का, सम्मर, बजोम तथा बगदाद की मुख्य दरवाजा का प्रतिस्पर्ध माना जाय।¹⁵ अगस्त 1921 में मुहम्मद अली ने लिताकत सम्मेलन का समापन किया। एक प्रस्ताव पारित किया गया जिसमें घोषणा की गयी कि मुसलमानों के लिए ब्रिटिश सरकार की नीकरी करना हम के विरुद्ध है। इस प्रस्ताव के लिए जिसका बहुत बड़ा क्या कि मुसलमानों की नेता ने सम्मिलित नहीं होना चाहिए, अली बादशाह की कारागार में डाल दिया गया। अपने मुहम्मद के दौरान मुहम्मद अली ने कुरान ब्रिटिश मुसलमानों के लिये एक आधार पर अपने साथ की अति उत्पन्न। उन्होंने दुर्ग के मुसलमान अम्बुल हमीद ब्रिटीश द्वारा प्रतिस्पर्ध समझौतामवाद के भावों की ही स्वीकार नहीं किया, बल्कि वे यह भी चाहते थे कि भारत के मुसलमान अल्पसंख्यी मुसलमान समाज के अथ अन्तर्गत रहे। जब ब्रिटिशवाद पाल और समाज लाजकत राज ने शक्तिमतामवाद की धारणा की पुनर्जा दी तो मुहम्मद अली ने कहा "जब शक्तिमतामवाद स्वयं इस्लाम से न कुछ अधिक है और न कुछ कम—वह साथ बहादीया व मुसलमानों का साथ भी सम्मिलित है।"¹⁶ इस प्रकार वे एक ऐसी मक्का का सम्पन्न करने चाहते थे जो मुस्लिम समाज का मुक्तिवादिनी की दृष्टि में पुनर्जा साथ की साथसाथ के साथ प्रतिकूल थी। अपने घोषणा समझौता में अपने अपने व उन्होंने कहा था कि मेरी शक्ति कोहरी है—भारत के प्रति और मुसलमानों के प्रति। अपने साथ वे 'मेरी एक दृष्टि है, एक सम्पन्न, एक जीवन के प्रति एक दृष्टिकोण है—एक पुनर्जा है और बड़ी इस्लाम है। बहुत इस्लाम के अर्थों का अर्थ है बहुत में सम्पन्न मुसलमान हैं, उनके साथ में मुसलमान हैं और जल में भी मुसलमान हैं मुसलमान के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं। यदि आप मुसलमान हैं तो उन सम्पन्न का, उस सम्पन्न, उस सम्पन्न उस आचार्यनीति का पश्चिम के अर्थों के अर्थों सम्पन्न न प्रवृत्तों से ही ऐसा नहीं करेगा। किन्तु बहुत जाति का सम्पन्न है भारत की स्वतन्त्रता का और भारत के सम्पन्न का सम्पन्न है वहीं में सम्पन्न भारतीय है उनके बाद की भारतीय हैं और बात में भी भारतीय हैं, और भारतीय के अतिरिक्त कुछ नहीं हैं। यह सम्पन्न सम्पन्न भारत के दो परिपक्वता से है, किन्तु उन दोनों का देश एक नहीं है। उन परिपक्वता में एक भारत है और दूसरा है मुसलमान जाति। हम भारत की सम्पन्न का दोष ही परिपक्वता में स्पष्ट है। हम साथ व हैं और उनमें से प्रत्येक की जनसंख्या 30 करोड़ है। हम उनमें से एक का भी परिपक्वता नहीं कर सकते। हम गन्धारी नहीं हैं बल्कि साथसाथी साथ अन्तरराष्ट्रीय है। और मुसलमान होने ने नाम में बहुत है नि

15. *Select Writings and Speeches of Muhammad Ali*, p. 159.

16. वही, p. 389.

ईश्वर ने मनुष्य को बनाया और शासन ने राष्ट्र का निर्माण किया।' राष्ट्रवाद फूट डालता है, हमारा धर्म हमें परस्पर मिलाता है। किसी धार्मिक युद्ध में, किसी विद्रोह में इतना नरसंहार नहीं हुआ है और न किसी में इतनी धूर्तता व परिचय दिया गया है जितना कि अपने पिछले युद्ध में, और वह युद्ध अपने राष्ट्रवाद का युद्ध था, मेरा विद्रोह नहीं था।"

खिलाफत आन्दोलन के नेता तथा कांग्रेस के एक प्रमुख सदस्य के रूप में 1920 में मुहम्मद अली ने तीन दिन प्रयागी को अटलने का समझन किया। इस प्रयागी का आशय यह था कि परिषदी के लिए चुनाव सदा जाय, किन्तु बीछने पर भी उनमें बैठन न जाय। परन्तु महात्मा का भी परिषदी के बहुसंख्यकों के पक्ष में थे और कांग्रेस ने उन्हीं के हितकोश को स्वीकार किया।

1923 में मुहम्मद अली ने कांग्रेसीयों के हुए कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में अपने अध्यक्षीय भाषण में राष्ट्रीय नीति का समझन किया। उन्होंने स्वीकार किया कि यदि स्वतन्त्रता काय-नन को निष्ठापूर्वक चलाया जाय तो स्वराज प्राप्त हो सकता है। उन्होंने हिंदू-मुसलिम एकता के पक्ष में शीघ्रतया तब प्रस्तुत विधेय और सहिष्णुता के लिए असीत की। उनका प्रस्ताव था कि साम्प्रदायिक मत मिलाप के लिए स्थानीय समितियाँ तथा जिला स्तर पर परिषदी का निर्माण किया जाय। उन्होंने प्रेस तथा कांग्रेस समझन को अधिक सजग रहने की प्रेरणा दी। उनका कहना था "एक बात निश्चित है, और वह यह है कि न हिंदू मुसलमानों का सम्बन्धन कर सकते हैं और न मुसलमान हिंदुओं से अपना पिट छुड़ा सकते हैं। यदि वे एक दूसरे से निह नहीं छूड़ा सकते तो फिर उनके लिए केवल यही विकल्प रह जाता है कि वे एक दूसरे के साथ सहपीय करना आरम्भ कर दें। मुसलमानों को चाहिए कि वे हिंदुओं की इस बात का पूरा विश्वास रखें कि वे (मुसलमान) भी स्वराज के लिए स्वराज चाहते हैं और हर विदेशी आक्रमण का प्रतिरोध करने की तैयारी हैं। इसी प्रकार हिंदुओं को मुसलमानों के मन में यह भावना दूर कर देनी चाहिए कि हिंदू बहुमत मुसलमानों की बालता का पर्यायवाची है। जब 1916 में लखनऊ में हिंदुओं ने मर स्वर्गीय नेता बाल गंगाधर तिलक महाराज के शिष्यपद की कि भाव मुसलमानों को बहुत अधिक दे रहे हैं तो एक लम्बे तथा दूरदर्शी राजनीतिज्ञ की भाँति उन्होंने उत्तर दिया 'भाव मुसलमानों को बहुत अधिक नसी दे ही नहीं सकते।' इस प्रसंग (हिंदू मुसलिम एकता) की उचित तथा स्वाधीन रूप से निपटारने बिना आप कुछ भी नहीं कर सकते।"

1923 की कोकीनाडा कांग्रेस के उपरांत मुहम्मद अली कुछ सीमा तक मुसलिम साम्प्रदायिकता के समर्थक बन गये, यद्यपि उनका हितवाक्य सम्प्रदायवाद तथा प्रतिस्पर्धा के बहुत कम बका से निज था। उनके मन में मुसलिम समाज को सुदृढ़ बनाने की उत्कट अभिलाषा थी। किन्तु महात्मा गांधी भी मानते थे कि सम्प्रदायवाद हिंदू विरोधी नहीं था।" मुहम्मद अली नेहक समिति रिपोर्ट में प्रस्तावित समुक्त निर्धारण क्षेत्रों पर आधारित साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की योजना के विरुद्ध थे, क्योंकि उन्हें हिंदुओं के आधिकार का कम था। 1930 में मुहम्मद अली ने गम्भीर में अखिल भारतीय मुसलिम सम्मेलन का समन्वयित्व किया और उस अवसर पर उन्होंने महात्मा गांधी द्वारा संचालित सविनय अवज्ञा आन्दोलन की पट्टी आलोचना की। उन्होंने कहा कि गांधीजी के आन्दोलन का उद्देश्य भारत के लिए पुनः स्वतन्त्रता प्राप्त करना नहीं है, वह तो भारतीय मुसलमानों पर हिंदू महात्मा का आधिपत्य स्थापित करने के लिए चलाया गया है।

इस सबके बावजूद मुहम्मद अली के मन में देशप्रेम विद्यमान रहा। वे निष्ठापूर्वक भारत की स्वाधीनता के विरोध नहीं थे। मन्थन में मोलमोल परिणत के अधिवेशन में उन्होंने वस्त्राधीनता का यह विचार प्रस्तुत किया कि भारत में अल्पसंख्यकों के अधिकारों को सुरक्षित रखना चाहिए। यह विचार प्रस्तुत करने के लिए उन्होंने अपने अपने मुझे एक मुसलमन देश में लौटकर नहीं आऊँगा। वे पचास देश में लौटकर पचास बर्सेना, यदि वह पराया देश स्वतन्त्र हो। यदि आप भारत में हमें स्वतन्त्रता प्रदान नहीं करते तो आपकी अपन यहाँ मुझे एक बन्धन देनी पड़ेगी। हम यहाँ जाँच, यहाँ और स्वतन्त्रता के हेतु जाते हैं और मुझे आना है कि हम वह सब लेकर वापस लौटेंगे। यदि हम वह सब लेकर नहीं लौटते तो हम पुनः आयात्रा की

शेफी ने सम्मिलित हो जायेंगे वहाँ दस वष पूर थे। मैं तथा मेरा भाई पहले व्यक्ति थे जिन्हें बाइर चीकिंग ने बेल भेजा था, मुझे उनसे कोई धिमापन नहीं है। किन्तु मैं वह शक्ति चाहता हूँ जिससे यदि बाइर चीकिंग भारत में पुन कसती कर तो मैं उन्हें बेल भेज सकूँ। हम बरिश्म और कठिनाई से जाये बर रहे हैं, हमारी भाल बिज को थकित कर देनी। हम सब एक बीटगर भारत नहीं जायेंगे जब तक कि एक नये उपनिवेश (डोमिनियन) का जन्म नहीं हो जाता। यदि हम एक नय उपनिवेश के जन्म के बिना ही बीटगर भारत जाते हैं तो विश्वास रखिये कि हम ऐसे नय निवेश में जायेंगे जो आपके ह्राय से निजस चुनेगा। हम एक स्वतन्त्र राष्ट्र को वापस जायेंगे। तब आप एक स्वतन्त्र समुक्त राज्य भारत का कलन करेंगे जो ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल अथवा ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत नहीं बलित उससे बाहर होना। यह स्वतन्त्र समुक्त राज्य भारत है भी कुछ अधिन होना। अनेक वष पूर जीवनकाल से निम्नले के बाद मैंने शिक्षा या नि भारत अमेरिका से श्रेष्ठ होना, क्योंकि यह केवल एक समुक्त राज्य नहीं होना बरिक् समुक्त धर्म भी होना। मैं अब अपना स्थान ग्रहण करता हूँ। सन्तुष्टि महादिन, मुझे आशा है कि मुझे पूरा सम्मेलन में मौलने के लिए तब तक नहीं आयाँ वत किया जायगा जब तक कि आप यह घोषणा नहीं कर देंगे कि भारत बला ही स्वत न है वया कि इससेव्य।¹⁸

मुहम्मद अली का दावा था कि ईश्वरीय विधि साधिधार्मिक तथा राजनीय विधि के उच्च है। 1921 में कराची में सूरी की सम्मेलित करते हुए उन्होंने कहा था, " बीता कि मैं इस समय आपसे कह रहा हूँ, अब हम राजा की जगहा राजा नहीं मानते। हम किसी ऐसे व्यक्ति के प्रति निष्ठावान होने के लिए कतःकबड नहीं है जो हुने हमारे ईश्वर वमित के अधिकार से वचित करने का प्रयत्न करता है। मुझे राजा के विरुद्ध एक राज्य भी नहीं बहता है—मुझे राजपरिवार के विरुद्ध एक राज्य भी नहीं कहना है। किन्तु वहाँ सरकार के मुकाबले में ईश्वर का प्रबल वक्ता है, मेरे मन में ऐसी सरकार के प्रति कोई आदर नहीं हो सकता जो मुझ से माय करती है कि मैं पहले ईश्वर तथा उसके निजता का वास्तव न करूँ। अतः बीता कि मैं यह चुका हूँ, परशुत सम्पूर्ण प्रबल यह है कि ईश्वर के कानून का वास्तव बिना वाय अथवा मनुष्य के आदेश का।"¹⁹ मुहम्मद अली का यह दृष्टिकोन अगस्तान, दबिबनास, बोसे और फेनेता के दृष्टिकोन से निजता था। महात्मा गांधी भी कहा करते थे कि मानवीय कानून के प्रति निष्ठा के मुकाबले में ईश्वरीय विधान के प्रति निष्ठा का स्थान बहता हुता है। किन्तु ईश्वरीय विधान से गांधीजी का अभिप्राय उन आध्यात्मिक तथा नैतिक सिद्धांतों के था जो शास्त्रत तथा सावभौम हुता करते हैं, जबकि मुहम्मद अली मुसलिम धर्मशास्त्री होने के नाते कुरान की विधि को ही ईश्वरीय विधान मानते थे। इस प्रकार गांधीजी का राजनीतिक दशन सावभौम रूप से मानवीय अल करण की श्रेयता देता था, जबकि मुहम्मद अली के विचार शकीय साम्प्रदायिकता के प्रतीक बन गये। मुहम्मद अली निष्ठावान तथा वनवरायण थे किन्तु उनकी धार्मिक कट्टरता बीसवी सताब्दी में समय की मावना के प्रतिकूल थी। 1 जनवरी, 1931 को उन्होंने प्रधानमन्त्री रेम्से मकडोवेरड को अपन एक पत्र में लिखा था, " मैं कम से कम इतना अवश्य करेगा कि मुसलिम धर्म की मानवीय विधान के अन्तर स्थान दिना जाय, यह विधान चाहे भारतीय संसद का बनाया हुआ हो अथवा ब्रिटिश संसद का। उनमें बिना कोई मुसलमान किसी भी सविधान के प्रति निष्ठावान हुने का उत्तरदायित्व अपन उपर नहीं ले सकता।"²⁰ इस प्रकार की मापदाबा के आधार पर वनवराय के अतिरिक्त अब किसी प्रकार का सविधान सम्भव नहीं हो सकता।

4 विपक्ष

मुहम्मद अली भाबुन तथा निर्बल व्यक्ति थे। उनके व्यक्तित्व में आभंगारों की प्रभावता थी। अतः उनमें राजनीतिक विचार तत्कालीन रूप में उनका मुख्य आधार भावार्थम आदेश था। उनका आचरण भीया-भाया था व स्पष्टवादी ही नहीं बलित मूर्ख न थे। वे राजनीतिक

18 *Proceedings of the London Round Table Conference 1930* 31 पृष्ठ 98 106।

19 *Select Speeches and Writings* पृष्ठ 482।

मुन्ताज़ी से अपरिचित थे। भारत में ब्रिटिश शासन के प्रति उनकी शत्रुता 1921 से 1931 तक अक्षुण्ण रही, उसने कभी मोड़ नहीं खाया। किन्तु उनकी राष्ट्रवादी धारणा में सन्तुलनीय साम्प्रदायिक राजनीति के आवश्यकताओं के अनुसार उतार चढ़ाव होता रहा। उनका राष्ट्रवाद शान्तिमयवाद अथवा अन्तरराष्ट्रवाद से सम्बन्धित था। जहाँ कुरान की शिक्षाओं में ही आस्था नहीं थी, बल्कि सबइस्लामवादी आन्दोलन के प्रति भी उनकी सक्रिय सहानुभूति थी। 1924 के भारत में साम्प्रदायिक विवाद फैल गया और भीषण साम्प्रदायिक दंगे हुए। इसका मुहम्मद अली ज़र भी प्रभाव पड़ा। मुसलिम चिन्तक की धारणा के प्रति उनका जो जयजयत सम्मान था उसने इन साम्प्रदायिक दंगों से मनोवैज्ञानिक दखल मिला। इररूम में उन्होंने खिलाफत की सबइस्लामवादी धारणा का समर्थन किया। आगे चलकर कोलम्बो परिषद में उन्होंने घोषणा की कि वे शान्तिमयवादी इस्लाम और राष्ट्रवादी भारत इन दो ऐसे परिचयों के सदस्य थे जिनका केन्द्र एक नहीं था।

1. प्रस्तावना

डा. मुहम्मद इकबाल (1873-1938) कवि, धार्मिक दार्शनिक तथा राजनीतिक आन्दोलनवादी थे। उनका जन्म 22 फरवरी, 1873 को सिपालकोट (दक्षिणी पश्किस्तान) में हुआ था, और 21 अप्रैल को लाहौर में उनका देहावत हुआ। इकबाल लाहौर के मारिम्पटन कॉलेज तथा गवर्नमेण्ट कॉलेज में अध्यापन थे। उन्होंने वेम्ब्रिज तथा म्युनिख में उच्च शिक्षा पायी थी। 1905 से 1908 तक उन्होंने मैकटेमाट (1866-1925) तथा जेम्स वाड (1843-1925) के निर्देशन में कैम्ब्रिज में और फिर लन्दन में उच्च शोध-कार्य किया। उन्होंने म्युनिख में रहकर 'ईरान में शास्त्रज्ञान' पर एक शोध निबंध लिखा। उन पर डॉ. मैकटेमाट का प्रभाव पड़ा था। इकबाल 1925 से 1928 तक पंजाब विधान परिषद के सदस्य रहे। उन्हें सादन में हुए द्वितीय तथा तृतीय गोलमेक सम्मेलनों में लिए प्रतिनिधि नाम निर्देशित करके भेजा गया था।

मुहम्मद इकबाल पर जलामुद्दीन कबी (1207-1273) के आदर्शों का, जिनकी सुन्दर अन्तिमार्थिता उनकी रचना 'मकलबी परोफ' में हुई थी, गहरा प्रभाव पड़ा था। एक धार्मिक दार्शनिक के रूप में इकबाल में मुसलिम विचारधारा का नवनिर्माण करने का प्रयत्न किया। उन्होंने इस्लामी धर्मविद्या तथा विधिशास्त्र की प्रमुख अवस्थाओं और विद्वानों अनेक प्रभावशालियों में विकसित हुए आदर्शमयनर दार्शनिक चिन्तन के बीच सावजन्य स्थापित करने का प्रयत्न किया।

2. इकबाल के राजनीतिक चिन्तन के शास्त्रात्मक आधार

(क) परम अह—इकबाल ने अपना बौद्धिक जीवन एक सर्वेश्वरवादी रहस्यवादी¹ के रूप में आरम्भ किया। उनकी विश्वास था कि ईश्वर सब कुछ है और सब कुछ ईश्वर ही है। दूसरे शब्दों में वे 'सब अस्तित्व अह' के सिद्धांत को मानते थे। आगे चलकर अपने वेम्ब्रिज के अध्ययन के प्रभाव से वे आस्तिक अनेकवादी बन गये और सर्वेश्वरवाद की उस अवस्था की आलोचना करने लगे जो अह की अवस्थितता तथा ऐश्वर्य जगत की स्पष्टता का सम्बन्ध करता है। वे प्लेटोवादिया तथा सुक्तिमी की इस धारणा के धनु ही गये कि जीवन में चिन्तन ही सब कुछ है। इसके उपरान्त उन्हें कुरान के सिद्धांतों से आश्चर्य मिलने लगी। उनकी व्याख्या के अनुसार कुरान परम अखण्ड अह का प्रतिपादन करती है और यल्लताती है कि उसी अह के अनवरतता तथा असीमता का साधुवीय हास्य है। इकबाल सर्वेश्वरवाद के पक्ष में समर्थन थे। किन्तु वे परमात्मा के सम्बन्ध में इस धारणा का नहीं मानते थे कि वह मानव रूप है, विद्यालयीय भूलभूत है और धृवीमण्डल के उस पार कहीं स्वयं में विराजमान है। जेम्स वाड की भाँति इकबाल ने भी ईश्वर की कृता के सम्बन्ध में बहुधाव-साक्षीय, शास्त्रात्मक तथा हेतुवादी नहीं को प्रस्तुत नहीं किया। उनकी व्याख्या ने अनुसार कुरान का विश्व सम्बन्धी सिद्धांत नृव्यात्मक विकास के सिद्धांत के समतुल्य है।

1. यद्यपि इकबाल अपने सामाजिक चिन्तन के शीर्षक सर्वेश्वरवाद के हट चुके थे किन्तु उनकी कुछ विचारों और कल्पना में हम सर्वेश्वरवादी प्रभाव देखने को मिलता है। उन्मुहम्मद के लिए उनका काल 'कबी अह' के लिए उल्लिखित है जो आत्मवीय अह के लिए उल्लिखित किया गया है। कुरान के चिन्तन का भी यही अल्लिखित है। See *Lectures on the Reconstruction of Religious Thought in Islam* पृष्ठ 76 (लाहौर, नज़र बाक प्रिंटिंग प्रेस 1930)।

इकबाल इस धारणा पर दृढ़ रहे कि विश्व में एक परम आध्यात्मिक सत्ता है।¹ इसीलिए उनका विश्वास था कि मानव इतिहास एवं 'विरोध उद्देश्य' को साक्षात्कृत करने का साधन है। उन्होंने निश्चित रूप से कहा कि आहस्तादल का सिद्धांत केवल बस्तुओं की सरचना करता है, किन्तु वह उन परम तथा अंतिम सत्ताओं के विषय में कुछ नहीं कहता जो उस सरचना का आधार हैं।² इकबाल के अनुसार परम सत्ता मुँह बालायाधि है जिसमें मोहना, प्राणशक्ति, तथा शायक स्वतः स्फूर्त प्रयोजन का एक दूसरे में गतिशील अन्तरलेखन होता रहता है।³ परम सत्ता के मोद्देश्य स्वभाव से यह सिद्ध होता है कि यह शाश्वत, स्वतः स्फूर्त सृजनशक्ति है, न कि एक ऐसी शालग्राम प्रपञ्च तथा विनाश जीवनशक्ति जिसकी शक्ति विनाश मनवादी हो, जिसके सम्बन्ध में न कोई गतिविध-वादी की जा सके और न पहले से कोई अनुमान लगाया जा सके। अतः परम सत्ता को दारुण, आध्यात्मिक, मोद्देश्य सृजनात्मकता कहा जा सकता है।⁴ 'विश्व में गतिशील' में इकबाल ने गतिविध-वादी विषयवस्तु के साक्ष्यलेखन की लघाटबंद रख दिया है।

इकबाल अहमदिया के धर्म के प्रवक्ता थे। कुछ सीमा तक उन्होंने मो किन्दे तथा मेनस स्टनर की भाँति आनामन अह (मैं) के द्वितीय सिद्धांत का प्रतिपादन किया। इस्लाम में प्रतिपादित 'सब वष' के सिद्धांत के विरोध इकबाल ने अह तथा अह का अन्वय की धारणा का समर्थन किया है। वे ईश्वर की परम अह मानते थे। ससीम अह परम अह के रचावर मान है।⁵ परम अह सृजनात्मक, अनन्त आत्मा तथा स्वतः स्वतः सन्निभूत शक्ति है। यही अलख सत्ता है और उसके जीवन की कलाई अत्यन्त निर्धारित है। यह बुद्धि-वाचालित सृजनात्मक जीवनशक्ति है। किन्तु परमात्मा में अह भाव आरोपित करने का अन्त उसे मान्य रूप मानना नहीं है। उसका अन्त इस बात पर बल देता है कि जीवन का सत्य एकता का एक सघटनकारी तत्त्व है, एक सम्बन्ध है जो उसके जीवन अवस्था की बाधनर रहता है और उसकी प्रवृत्ति को रचनात्मक उद्देश्यों के लिए संचालित करता है।⁶ वैयक्तिक अह परम अह में अपना स्थितिरूप विनीत नहीं कर देते, बल्कि उसके उनका रूप तथा दिशा सुनिश्चित होती है। ईश्वर मनुष्य के ध्यान तथा प्राणना की सुनता है क्योंकि "अह की वास्तविक बसीदी यह है कि वह दूसरे अह की सुधार की सुनता है अथवा नहीं।"⁷ ईश्वर निरोध है, क्योंकि तब कुछ उसमें समाविष्ट है, उसके बाहर कुछ नहीं है। कुरान में प्रतिपादित 'लौहीय' का सिद्धांत इस धारणा पर आधारित है कि ईश्वर एक है, अद्वितीय और अनन्त है। इस प्रकार परम अह सन्वयायी तथा विकल्पाशील दोनों है और पुरुष भी है। इकबाल निश्चित है "परम अह में शाय तथा सकल का एकत्व होता है, उसकी सृजनात्मक शक्ति अहों की सुनता के रूप में कार्य करती है। ईश्वरीय शक्ति का हर परमाणु 'चाह' वह अस्तित्व की ओर में बिना ही निम्न तथा न हो, एक अह के रूप में कार्य करता है। किन्तु अह की अभिव्यक्ति को मोड़िया हुआ करती है।⁸ अस्तित्व अन्त में सधन अह का धर्म-धर्म बुद्धिमान अन्त ईश्वर का मिलता है और अन्त में यह मनुष्य में पहुँचकर पुनः शक्ति को प्राप्त कर लेता है। इसलिए कुरान कहती है कि परम अह मनुष्य के अन्त-बन्त की शिरा से भी अधिक निकट है। हम मोतिवी की भाँति ईश्वरीय जीवन के शाश्वत प्रवाह में रहते, कार्य करते तथा जीवन बिताते हैं।⁹ परम अह सन्वय, सन्वयस्थान शायक विरतन है और सत्ता

2 *Six Lectures*, पृष्ठ 233।

3 यही पृष्ठ 52।

4 कुरान में इस कथन के सुनना कीजिए विषय बरसाह और वर के एक ही भाग पर है।

5 *Six Lectures* पृष्ठ 75।

6 यही पृष्ठ 70-72।

7 कुरान में सब अन्वय बुद्धि और अन्त अन्वय विना न पैदा किया है। ईश्वरीय अन्त अह व रूप सन्वय करता है।

8 *Six Lectures*, पृष्ठ 82।

9 इकबाल *McTaggart's Philosophy Journal of East India Society* में प्रकाशित *Truth* (लाहौर, दिसम्बर 1937) में प्रकाशित है। एक गतिशील की ए वर की पुस्तक *A Study in Ideal & Philosophy* में प्रकाशित, पृष्ठ 402-413 (लाहौर 1944)।

10 सत्ता की मोड़िया हुआ करती है वह विचार इकबाल ने एक एक अवस्था का करता है।

11 इकबाल *Six Lectures on the Reconstruction of Religious Thought in Islam*, पृ 99-100।

अबनी सृजनारम्भ सम्भावनाओं को व्यक्त करता रहता है। किन्तु इसका मत है कि ईश्वर की सार्वभौमिकता का अर्थ किसी भी अर्थ में सर्वोपर्यवाद नहीं है।

(क) काल का सिद्धांत, इसका मतार्थ—विश्व अतएव-सम्बद्ध घटनाओं की अवस्था व्यवस्था है और जीवन तथा मरिचिकता से परिचित है। यह अविरल उदभव तथा अविच्छिन्नता की प्रतीति है। यह कोई ऐसा धर्म नहीं है जिसकी सृजनारम्भ सम्भावनाएँ निरर्थक हो चुकी हो और जो देश-काल की स्थिति में स्थिरता की अवस्था में पड़ा हुआ हो। इसका मत है अपनी अवस्थास्थायी धारणाओं को उस समय निरूपित किया या जब आदिकृत्यन का सार्वभौमिकता का सिद्धांत और स्थान का स्थापन वास्तविकता का सिद्धांत विचार पर लगे हुए थे। इसका मत है, “इसके प्रथम की सबसे बड़ा आपत्ति आदिकृत्यन में पहुँचाया है। उनका अनुसंधान में भाग्य चिन्तन के समस्त क्षेत्र में दूर-दानी वास्तविकता की नींव डाल दी है।”¹² इसका मत है आदिकृत्यन के अवस्थास्थायी सिद्धांत से तथा उसकी ईश्वरपक्ष प्रामाण्य के सिद्धांत से भी परिचित है। उन्होंने केंद्र के इस सिद्धांत का भी उल्लेख किया है कि देश तथा काल अवच्छिन्न है।¹³ उनका मतार्थ है सृजनारम्भ विकास की धारणाओं से तथा ईश्वर, ईश्वरवाद आदि के सिद्धांत से भी परिचित था। मोरिसो के आधुनिक अनुसंधानों के इस धारणा को निम्न सिद्ध कर दिया है कि इस देश (स्पेस) और काल (टाइम) में कला हुआ एक घना तथा कठोर संघ है। इसका मत है, “विरलम्ब (विरलम्बित) मोरिसो ने जिसका अवस्थित मोरिसोता का प्रतिपादन किया है उसमें किसी वस्तु का कोई अवस्थित ही नहीं है।”¹⁴ उन्होंने (धारणाओं के सिद्धांत में) प्रकृति की वस्तुगत कला का वर्णन नहीं किया है, उसने केवल इस धारणा का वर्णन किया है कि देश में स्थिति ही इस है—यही धारणा विरलम्बित मोरिसो के मोरिसोवाद का मुख्य कारण थी। आधुनिक सार्वभौमिकता प्रत्यक्ष मोरिसो के अनुसार इस कोई ऐसी निरंतर वस्तु नहीं है जिसकी अवस्थास्थायी घटनाएँ रहती हैं, वह ही अतएव-सम्बद्ध घटनाओं की एक व्यवस्था है।¹⁵ इसका मत है विश्व की वस्तुगत कला को स्वीकार करते हैं, किन्तु वे देश और काल व उनकी भौतिक स्थिति को नहीं मानते। किन्तु उन्होंने विज्ञान के वास्तविक ऐतिहासिक (प्रकृति) की अवस्था का वर्णन कर दिया है, क्योंकि वे विश्व प्रकृति की प्रकृति की उद्भवस्थायी धारणाएँ हैं। वे इसमें भी एक वस्तु धारणा करते हैं, और एक विपरीतविज्ञानवादी (अन्वेषिकविज्ञान-धारणावादी) की वास्तविकता है कि ‘देश-काल सम्बन्ध में आत्मा’ ही इस है।¹⁶ इसका मत है विचारों पर धारणाओं विज्ञान तथा दर्शन की महत्वपूर्ण प्रकृतिओं की वही लक्ष्य थी। आधुनिक मोरिसो तथा दर्शन व उन्होंने इसकी भौतिकता का वर्णन करते हैं कि धारणाओं की महत्ता का।

इसका मत है मोरिसोता के सिद्धांत को मानते हैं। उनकी दृष्टि में प्रकृति विचार तथा सीमित प्रतीति है। यह सर्वत्र के लिए निश्चित नहीं है, बल्कि उसमें सृजनारम्भिकता विद्यमान है। इस विचार में इसका मत है विचार आदिकृत्यन के निमित्त हैं। प्रकृति अतएव-सम्बद्ध घटनाओं की वस्तुगत प्रतीति है। उसमें अविरल प्रकृति देखने की मिलती है। इस अर्थों का पुत्र है। इन अर्थों की प्रतीति के स्तर अन्वेषण और अन्वेषण है। इस अर्थों के से धारणाओं प्रकार के यह उत्पन्न होते हैं। इसका मत है आदिकृत्यन की इस धारणा की भी स्वीकार करते हैं कि विश्व मान्य किन्तु अज्ञेय है। उनके अनुसार इस धारणा का धर्म धारणा के इस विचार से मिलता है कि विश्व की वस्तु ही ही कल्पनी है। इसका मत है कि इसका मत है सार्वभौमिकता का सिद्धांत अतएव की निरंतर विश्व की धारणा का विचार प्रतीति के रूप में अनुसंधित हुआ था। धारणाओं कल्पनशील व्यक्ति के और प्रकार प्रतीति और सिद्धांतों को वह निष्कर्षों के लिए वास्तविकता रहते हैं। इसका मत है कि यह या कि इसमें धर्म, व्यवस्थाओं तथा ऐतिहासिक धारणाओं की धारणा पर अधिक बल दिया है। इस

12 ग्री, पृ 47।

13 ग्री पृ 50।

14 ग्री, पृ 52।

15 ग्री पृ 52।

16 ग्री पृ 216। श्री अरविन्द के विचारों के अनुसार मोरिसो।

प्रकार विश्व की स्थिरता के ऐतिहासिक दृष्टिकोण के स्थान पर इस्लामी विद्रोह के रूप में इस सिद्धांत का उद्भव हुआ नि' निरन्तर विकासशील मनीन नृजनोत्पन्न सम्भावनाओं का नाम ही विश्व है। अतः प्रकृति आत्म-शासकालाकार का खोज तथा माध्यम है। सम्पूर्ण अविच्छिन्नता उस प्रच्छन्न आत्मा के वैभव का प्रकटीकरण है। नृजनोत्पन्नता के सिद्धांत के प्रतिपादक होने के नाते इकबाल ने नीली की 'आखिरत पुनरावृत्ति के रहस्य' की धारणा को वास्तविक तथा माध्यमकारी बतलाया।

इकबाल के अनुसार काल वास्तविक है। उनका कथन है कि काल की गति की इस्लाम वास्तविकता का प्रतीक मानता है।¹⁷ उन्होंने मैकर्टेन्सट की इस धारणा का अप्यन किया नि काल अवास्तविक है। काल की वास्तविकता के सम्बन्ध में मैकर्टेन्सट की आपत्ति यह है कि कोई घटना अतीत, वर्तमान अथवा भविष्य की है, यह उस मनुष्य की दृष्टि से ही कहा जा सकता है जो उस घटना के सम्बन्ध में विचार करता है, स्वयं से अतीत, वर्तमान अथवा भविष्य कोई वस्तु नहीं है। इनके विरुद्ध इकबाल का कहना है कि यह आपत्ति 'जम्बद' सिद्ध काल के सम्बन्ध में ही उचित है, यह उस मूल कालावधि के सम्बन्ध में, जो भविष्य को इस पृथ्वी सम्भावना मानती है, लागू नहीं हो सकती।¹⁸ इकबाल पुनर्निर्माण तथा द्विपुत्री के इस दृष्टिकोण से भी सहमत नहीं है नि काल की गति एक ही गति के सहज है। यचना के अनुसार वास्तविक काल 'जम्बद' सरलरेखीय देशबद्ध काल से भिन्न है। साधारण धारणा का काल अथवा गणितीय काल अतीत, वर्तमान, और भविष्य के पक्ष में बांटा जाता है। यचना के देशबद्ध काल और कालावधि में जो भेद किया है उसे इकबाल स्वीकार करते हैं। वास्तविक काल की अनुभूति यन्मीर आन्तरिक आत्मा के द्वारा अथवा जिसे इकबाल अनुभूतिशील अह कहते हैं उसने द्वारा ही की जा सकती है। अनुभूतिशील अह का काल केवल एक वर्तमान है। उसने विचरीत सोना के साधारण विविध अनुभव दीर्घाय की धारणा पर आधारित होते हैं। इस दीर्घाय को बुद्धि अथवा नायसतथक या आनुभविक अह¹⁹ के द्वारा ही हृदयमय किया जा सकता है, और यह बुद्धि अथवा आनुभविक अह साहचर्य के मनोवैज्ञानिक नियम के अनुसार काम करता है। नायसतथक अह 'एकल वर्तमान' को पर-चुर करने 'वर्तमान' की भूखला में परिवर्तित कर देता है। रहस्यात्मक अनुभूति में जम्बद काल की अवास्तविकता का पाल होता है, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि जम्बद काल से कुछ विमुक्ति हो जाती है।²⁰

यद्यपि इकबाल वगैरा के जम्बद अथवा देशबद्ध गणितीय काल तथा मूल कालावधि के भेद का स्वीकार करते हैं, किन्तु उनका फार्सीसी दार्शनिक से दो मतों में मतभेद है। प्रथम, यचना प्राप्त होती (जीवनसाक्षिकादी) है, किन्तु इसने विचरीत इकबाल आप्यात्मकारी है। इकबाल के अनुसार यह प्राप्तमूलक नहीं, मरिनु आप्यात्मिक सत्ता है। यह कोई नाकसूत्र इत्य नहीं है, यन्नि देदीप्यमान व्यक्तित्व है। द्वितीय, यचना सत् की उद्देश्यात्मक प्रकृति की स्वीकार नहीं करता, क्योंकि उसने अनुसार उद्देश्यवाद (हेतुवाद) काल को अयाम्भुवि कर देता है। इसने विचरीत इकबाल सत् की प्रकृति को उद्देश्यात्मक मानते हैं। वे कुशन के इस कथन का कि विश्व की यद्धि हो सकती है, यह क्षय लयते हैं कि विश्व एक चयनशील काल प्रक्रिया है जो प्रकृति से भिन्न नहीं सम्भावनाओं को उत्पन्न करती रहती है। वे परम अह का एक अवयवी सत्ता मानते हैं जिसने अलग विचार, जीवन तथा उद्देश्य का अन्तर-सम्बन्ध देखने को मिला है।

(घ) मानवीय अह स्वतन्त्रता तथा अवस्थ—मानवीय अह के सम्बन्ध में इकबाल पुराने दृष्टिकोण को स्वीकार करते हैं।²¹ वह अर्थ है अर्थात् ज्ञात कभी काल में प्रारम्भ हुआ था। देश-काल के परिवर्तन में प्रादुर्भाव होने से पहले उसका कोई अस्तित्व नहीं था, केवल प्रत्यक्षान्वित सम्भावना के रूप में उसकी सत्ता जले ही रही है। नीतिक ज्ञानों की शृङ्खला के उपरान्त अह पृथ्वी में

17 *Speeches and Statements of Iqbal*, पृ. 54।

18 *Six Lectures*, पृ. 77-78।

19 आनुभविक अह तथा अनुभूतिशील अह का बीच भेद के लिए देखें *Six Lectures* पृ. 66।

20 यही पृ. 29।

21 मुहम्मद इकबाल, *Self in the Light of Relativity*, Creston, 1925।

सीन नहीं हो जाता। अहं सात है, किन्तु उसकी सातता व्यथा का कारण नहीं है। उससे तो हम कम करने का तथा आत्म समर्थ, अपनी विशिष्टता और गरिमा का विकास करने का अवसर मिलता है। अक्सर के सुदी (आत्म-निश्चय) से पर (अनहं) का अनुभूति होता है। दूसरा के द्वारा अहं समर्थ तथा विरोध के आनंद का रसास्वादन करता है। सात अहं मूलमयीभिका नहीं है। अपनी 'रहस्य का नवीन उद्घाटन' शीघ्रक वसिता में इक्याव लिखत है

"अहं अहं है और उससे प्रमाण की आवश्यकता नहीं है।

तबिन सीधी और अपने रहस्य को समझी।

अहं ही सत्य है, वह मूलमयीभिका नहीं है।

परिचय होने पर वह सातवत हो जाता है।"

अहं व्यक्तित्व की प्राप्ति करने के लिए निरंतर तनाव की अवस्था में रहता है। व्यक्तिगत के द्वारा वह स्वातंत्र्य का अनुभव करने की क्षमता प्राप्त कर लेता है। उसका वास्तविक समाधान यह है कि वह मानसिक अनुभूतियों की स्थायी योजना नहीं है, बल्कि स्वतः स्फूर्त सज्जात्मक अवस्था गति है। 'अक्सर के सुदी' में इक्याव लिखत है

वह (अहं) अपने हाथ से बंध कर रहा है,

जिससे कि वह अपनी शक्ति का अनुभव कर सके।

मुलाय की भाँति वह रक्त में स्वाद करके जीवनदापन करता है

एक मुलाय के लिए वह सबसे बड़ानी की मर्त कर देता है

इस सम्भवता तथा श्रुता का महाना वह है

कि इससे उसका आध्यात्मिक जीवन पूर्णतः की प्राप्त होता है।"

इक्याव से 'अवैयनामा' के अनुसार अहं के विकास की तीन अवस्थाएँ हैं (1) अहं की सज्जात्मक सम्भावनाओं का साक्षात्कार करना पहली अवस्था है। वह व्यक्तित्व की अवस्था है। (2) अहं की दूसरी अहं की सत्य में देखना दूसरी अवस्था है। इसे सामाजिकता की अवस्था कहा जा सकता है। (3) ईश्वर का साक्षात्कार करना और इस ईश्वरीय चेतना की पक्षेक्ष में अहं की देखना तीसरी अवस्था है। ईश्वर के साक्षर प्रकाश के अनुभूति अहं रहकर अनुभूति शक्ति प्राप्त कर सकता है और इस प्रकार आत्मिक रूप में ईश्वर की भाँति सज्जात्मक बन सकता है।

अहं बमर नहीं है किन्तु उसमें अमरत्व की सम्भावना है। अहं के लिए अमरत्व एक विरलन आवास्था, एक सादरत आदय है, वह साक्षात्कृत वास्तविकता नहीं है। वह वास्तव है न कि अस्तित्व। यदि अनुभूति प्रत्यक्ष नहीं करता तो वह भ्रष्ट होकर निर्जीव पदार्थ की स्थिति में पहुँच सकता है। जीवन की उद्दिष्टता की वायव रखने के लिए सत्य प्रत्यक्ष के द्वारा ही अहं अमरत्व का प्रत्यापी बन सकता है। इक्याव का मह्य है 'जब अहं परिचय होकर आत्मा की स्थिति प्राप्त कर लेता है तब उससे विनाश का डर नहीं रहता।'

(ब) धार्मिक अनुभूति—आध्यात्मिक सत्ता की अनुभूति अहं सत्ता के द्वारा प्राप्त कर लेता सम्भव है। किन्तु अहं सत्ता पदवीयिक (अलिबीयिक) नहीं है, वह भी सत्ता और इच्छाशक्ति का ही एक प्रकार है। 'गान की प्रवृत्ति में चित्त निश्चित विशिष्टताओं की क्षमता से ऊपर उठ जाता है, और अपनी गतिशील आध्यात्मिकता के द्वारा सम्भावनी अनन्तता का प्राप्त कर लेता है। चित्त तथा अहं सत्ता के बीच अन्तरविरोध नहीं है। अहं की अहं सत्ता उसकी स्वतंत्रता तथा अमरत्व की प्रवृत्ति रखती है। अहं सत्ता आध्यात्मिक सत्ता अनुभव है और वह जीवन की सम्पूर्णताओं में के रूप में व्यक्त करता है उसके द्वारा आध्यात्मिक अनुभूति में प्रवृत्ति करना और परम सत्ता का प्रकाश प्राप्त करना सम्भव है। सत्ता सत्ता के रूप में ईश्वर की प्रवृत्ति, साक्षात्कृत तथा अमरत्व अनुभूति प्राप्त करना ही अहं सत्ता है। 'रहस्यमय अनुभूति में किसी तथा विषय का साक्षात्कृत स्फूर्त हो जाता है। वह अनुभूति तथा उच्चतर अहं के साथ परिणत साहचर्य की स्थिति है। 'पुनः अहं प्रवृत्तिमय रहस्यमय अनुभूति की सम्भवा का विरोध नहीं किया जा सकता इसलिए वह

विशेषात्मक शायी में प्रेषणीय नहीं होती।²³ किन्तु उसकी अपेक्षणीयता के आधार पर उसकी वास्तविकता से इनकार नहीं किया जा सकता। विभिन्न युगों तथा देशों में अगणित मनीषियों ने इस प्रश्न की अनुसृष्टि को प्रमाणित किया है। यह एक इंसान की शक्ति है जिसे कुरान 'फौद' अथवा 'कलब' कहती है। अतः प्रजा तथा चित्तन एवं दुखरे के पूरण होते हैं, क्योंकि अतः प्रजा चित्तन को सम्भार और उदात्त बनाती है। अतः प्रजा मनुष्य की वास्तविक प्रकृति का उद्घाटन करती है, जबकि सौद्धि चित्तन इस प्रपञ्च जगत की सौख्य करता है जिसकी अनेक निरिच्छत निरिच्छताएँ होती हैं।

(इ) प्रापना उत्तम सामाजिक तथा राजनीतिक महत्त्व—परम मनुष्य की धारणा राजनीतिक क्षेत्र में अनिवार्य विश्वराज्य के आदेश का समर्थन करती है। इस प्रकार "उस मनुष्य की एकता में जिसमें सब कुछ समाविष्ट है और जो सब मनुष्यों की सुखिता तथा पालन करता है, मानव जाति की शाश्वत एकता सिद्ध होती है।"²⁴ इनवाश का कहना है कि मानव जाति का अन्तर्जातिता, जातिता (कस्ता) तथा राष्ट्रता में विचारजन पहचान के व्यावहारिक उद्देश्य के लिए है। मनुष्य के कोई स्वाभाविक ऐनी-विचारजन अथवा पम विचार नहीं है। प्रापना का नैतिक उद्देश्य है। वह मनुष्य की परम मनुष्य के साथ साहचर्य की उत्कण्ठ की व्यक्त करती है। परम मनुष्य की प्रापना की सुखा है। किन्तु सामूहिक प्रापना का व्यापक समाजवादीय पहलू भी है। उससे सामाजिक एकता और हृदय व्यक्त होती है। दैनिक प्रापना से मनुष्य की एकता पुष्ट होती है। मनुष्य में समाहित होने वाला धार्मिक पम समावेष्ट इस्लाम के आदेशों की ओर रूप में व्यक्त करता है। इस प्रकार प्रापना का नैतिक ही नहीं बल्कि राजनीतिक महत्त्व भी है।

(घ) सुसंस्थित संस्कृति का नैतिक महत्त्व—इकबाल ने बहुत चित्तन (ध्यान) के आदेश का तथा स्पष्ट, सम्प्राप्तिक वस्तु की प्रेरणा करने की प्रकृति की आलोचना की है। रहस्यवादीयों के मत में मनु के साक्षात्कार के बलि की भूमिका बहुत ही अल्प है। इकबाल ने इस दृष्टिकोण की चालना की है और कहा है कि वह दृष्टिकोण पूर्वी राष्ट्रों के पराभव के लिए बहुत कुछ उत्तरदायी है। यूनानी चित्तन का इस्लामी विचारधारा पर का प्रभाव पड़ा था उससे इकबाल बड़े दुःख में। अतः वे आध्यात्मिक इस्लाम की ओरवर्ती प्रकृति को पुनर्जीवित करना चाहते थे। उनका कहना है कि सुकिया के सापक्षिक परलोकवाद तथा चित्तन के प्रति अनन्त सक्ति की जाहना ने जो प्रवृत्ति उत्पन्न कर दी है उससे कारण लोग इस बात की भूल गये हैं कि इस्लाम लौकिक के द्वारा आध्यात्मिक का साक्षात्कार करने की प्रेरणा देता है। "अधरारे दुखी न इकबाल न हाफिज की शिक्षा-त की आशा बना की है। लौकिक जीवन की उपक्षा करने से सामाजिक प्रवृत्ति में बाधा पड़ती है। सुकिया ने 'बाहिर तथा 'बातिल' के बीच जो श्रेष्ठ किया है उससे निरप तथा उसकी समझाओ के प्रति उदासीनता उत्पन्न होती है। इकबाल स्वयं सामूहिक तथा सामाजिक विचारधारा में निरंतर मान लेते रहने की प्रेरणा देते हैं। उनका कहना है कि पम जीवन की प्रतिक्रिया का एकीकरण करता है। इससे अतिरिक्त वह मनुष्य के समस्त आध्यात्मिक जीवन की उन महारङ्गमा को जिसकी चाह नहीं की जा सरी है, प्रकट करते उसे इतिहास के सटव में सृजनवात्मक रूप में भाग लेने के लिए प्रेरित करता है। इकबाल ने श्रीरूप द्वारा प्रतिपादित नमोश्री के सिद्धांत की सराहना की। किन्तु वे सनर के सत्यवादी के बड़े आलोचक थे। वे चाहते हैं कि वैयक्तिक तथा सामाजिक नेता पम, संस्कृति तथा उत्साह का जीवन विचारों के निधारी हैं।

‘यदि तुम्हारी पैसी में कबिता की मुद्रा हो,
तो उस जीवन की गहरी पर एककर पदों को,
बीपनाम का तुम देश की किलर पर नरबर्त बदलत रहते हो,
अब सुन्दर मुझे विछोने की आदत डालो।
अब अपने को बहुत हुए रत पर बँध दो

23 Six Lectures, पृष्ठ 23-31।

24 कुरान 32-68।

25 Six Lectures, पृष्ठ 129।

जगज्जम के प्रकाश में बूढ़ पड़ो ।

कब तब तुम तुमबुल की मूर्ति ध्येय हो प्रणाम करते रहोगे ?

कब तब उच्छ्वास में निवास करते रहोगे ?

तुम्हारा गुदर नींद अथरलसी के लिए भी सम्मानजनक होगा,

तुम ऊँचे पर्वत पर अपना नींद बनाओ,

निवास कि तुम जीवा के बुद्ध के लिए साधक्यवान हो सना,

निवास तुम्हारी आत्मा तथा शरीर जीवन की ज्वाला में जल उन्हें ।"²⁶

इश्वाल ने अपनी व्याख्या के द्वारा सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि इस्लाम कम तथा शक्ति का संदेश देता है । अपने अनुसार गुप्तता की शिक्षा है कि विश्व मानव प्रलय के द्वारा उत्तरोत्तर अच्छा बनाया जा सकता है, और यह ज्ञात इस सिद्धांत पर आधारित है कि विश्व की निरंतर वृद्धि हो रही है । कम जीवन का सार है । विश्व घटघट घाँव का स्थान नहीं है और न गुनाहों की घेरा है । इश्वाल की व्याख्या के अनुसार इस्लाम की शिक्षा नीचे की 'जायसद बुद्ध-वृत्ति' की प्रारम्भ में निहित मार्ग प्रकाश तथा जटिलता के विरुद्ध है । अहं की प्रारम्भ के आधार पर इश्वाल ने सकल व्यक्तिवाद का प्रतिपादन किया है । उन्हें केवल सत्ता की शक्ति में विश्वास नहीं है । अपने अनुसार मनुष्य में शक्ति का एकमात्र स्रोत स्वायत्तम्बी व्यक्ति, अथवा जिन्हें इश्वाल 'आत्म-निर्दिष्ट व्यक्ति' कहते हैं, द्वारा करते हैं ।²⁷ केवल वे ही जीवन की विनाशता तथा गहराई की व्याप्त करते हैं । वे शायद अन्त प्रकाश के द्वारा जीवन के तात्त्विक आधारों की पहचान करते हैं, और वे ही मानविक विद्या तथा समुच्चय के मानवता की समझ के योग्य होते हैं ।

(ख) अतिमानव—यह भी मूर्ति इश्वाल की अतिमानव के आधार के प्रतिपादन है । किन्तु इश्वाल का अतिमानव (इस्लाम इनामिज) नीचे के अतिमानव की मूर्ति प्रथिया के पुस्तकामी कम के अतिमानव-योग गुप्त का प्रतिनिधित्व करने वाला 'निर्दिष्ट' व्यक्ति का बीजकाम स्वर्ण-मलेखी नामधूँ नहीं है । अतिमानवता आत्मसमय की प्रथिया पर आधारित होती है । अन्तर तथा स्वेच्छाधार का प्रतिपादन करना आवश्यक है । जो अपने का निर्धारित कर सकता है वह बानु, जल, अग्नि आदि वृत्ति की शक्ति का सम्पन्नतापूर्वक बुद्ध कर सकता है और मुलमान की मूर्ति योग्य साक्षक बन सकता है । विश्व की शक्तियों की सौख्यता हट कराने वाले व्यक्ति की सर्वोच्चता स्वीकार करनी पड़ेगी । इश्वाल की कल्पना का यह अतिमानव ईश्वर का प्रतिनिधि होने (निवास-इ-इशाली) के मान्य होता है । यह ईश्वर की दृष्टि को कार्यान्वित करने का प्रभावकारी क्षमता होता है । इस प्रकार इश्वाल के अतिमानव के दो मुख्य गुण हैं (1) पूर्ण आत्मसमय, और (2) स्वेच्छापूर्वक ईश्वरीय आदेशों का पालन करने की क्षमता । इश्वाल लिखते हैं

'ईश्वर का प्रतिनिधि विश्व की आत्मा है,

ऊँचा जीवन महानताम नाम (अल्हाद के नाम) की छाया है ।"

3 इश्वाल के राजनीतिक विचार

(क) धर्मतत्त्व—इश्वाल इस्लाम का कुलधर्म करना चाहते थे । अपने 'ध्यायानो' में उन्होंने लिखा है, 'इस्लाम के अनुसार समुच्च जीवन यह आध्यात्मिक आधार पर होता है और यह अपने का विविधता तथा वर्णमय के रूप में व्यक्त करता है । किन्तु हमें यह नहीं भूलना चाहिए की जीवन बुद्ध वर्णमय नहीं है । उसके अन्तर्गत स्थापित के रूप में है । एक ओर तो मनुष्य अपने मुलमानत्व-कायस्थता में मान्य होता है और जीवन के नये दृष्टा को शीघ्र में अपनी शक्तियों की निर्दिष्ट किया करता है, किन्तु दूसरी ओर उसे अपना स्वयं का विचार देखकर उद्दिष्टता की होती है । अपनी अथ मति के दीर्घता मनुष्य मुक्तकर अपने अर्थों की ओर देखे बिना भी नहीं रह सकता, और अपने आन्तरिक प्रसार को देखकर कुछ मर्यादा होने लगता है । मनुष्य की आत्मा को अपनी अथमति के दीर्घता एवं शक्तियों के प्रतिरोध का सामना करना पड़ता है जो विपरीत दिशा

26 मुहम्मद इश्वाल *Secrets of the Self*, पृ. 70-71 ।

27 *See Lectures* पृ. 212 ।

ये काम किया करती है। दूसरे छप्पों में, जीवन अपने अतीत के बोध को अपनी बीड़ पर साइबर आने बढा है, अतः सामाजिक परिवर्तन के किसी भी दृष्टिकोण से स्थायित्व के तत्वों के मूल्य तथा काम की उपाया नहीं की जा सकती। कोई भी जाति अपने अतीत का पुण्य परिष्कार नहीं कर सकती, क्योंकि उसके अतीत ने ही उसके विशिष्ट व्यक्तित्व का निर्माण किया है।²⁸

किन्तु इकबाल पुण्य पुनरुत्थानवादी नहीं थे। वे सामाजिक स्थायित्व तथा परम्परावाद की शक्तियों के अपरिमित महत्व की समझते थे।²⁹ पश्चिम के गुरुन के सिद्धांतों ने अनुवादी थे, इसलिए उनके चिंतन में परम्परावादी तत्वों का इतना महत्वपूर्ण स्थान है। किन्तु वे मुसलिन विधिपालन के उदाहरणों की सम्प्रदाय के इस दृष्टि की उचित मानते थे कि 'आधारभूत धार्मिक सिद्धांतों की व्याख्या विधिसारित्र्यों के अनुभव की तथा परिवर्तित परिस्थितियों की ध्यान में रखकर की जानी चाहिए'।³⁰

इकबाल ने आधुनिक विचार की समस्याओं के धार्मिक समाधान को स्वीकार किया। इसलिए उन्होंने नीचे के अनीसरवाद की फलन की। आधुनिक राष्ट्रवादी विचारधाराओं तथा नारी में जो अनीसरवादी नीतिवाद ने एक देश के भीतर है उनके इकबाल कटु आलोचक थे। वे मनुष्य की आध्यात्मिक बुद्धि के आसपास पर रह रहे और सदैव इस बात का समर्थन किया कि मानव जाति का विकास आध्यात्मिक आधार पर ही होना चाहिए। यही कारण था कि 'पाश्चात्य सभ्यता के बौद्धिकवाद, बाह्यवाद और धर्मिकता से उग्र घृणा थी। उन्होंने वैज्ञानिकों की 'महात्मा का सदेवकाह' करके उसकी फलन की, क्योंकि उसने जातीयता और राजनीति की एक दूसरे से वृत्त कर दिया था।³¹ इकबाल लिखते हैं "राष्ट्रवाद तथा अनीसरवादी समाजवाद दोनों के लिए, कम के कम मनुष्य सभ्यता की वर्तमान स्थिति में, वह अविश्वस्य है कि वे पूजा, ईश्वर और नीति की उन शक्तियों को उत्तेजित करें जो मनुष्य की अस्मिता को धीमा करती हैं और उसकी आध्यात्मिक शक्ति के खोने को बंद कर देती हैं। विराट् के रूपों हुई मानवता की उसने सत्ता से न मध्यमवर्गीय रहस्यवाद मुक्त कर सकता है, न राष्ट्रवाद और न अनीसरवादी समाजवाद। आधुनिक संस्कृति के इतिहास की वर्तमान घड़ी तब तक एक महान खराब की पड़ी है। आधुनिक जगत के लिए आवश्यक है कि उसका जीवन मनीषीकरण किया जाय। केवल धर्म जो कि अपने उत्कर्ष पर 'मोक्ष' मतवाद है, न उपोहित था और न अनुष्ठान, आधुनिक मनुष्य को एक महान उत्तरदायित्व के बोध को बहान करने के लिए सक्षम बना सकता है। जो विज्ञान की प्रगति के उसने जगत् ला दिया है, और जो ही यज्ञ की उस प्रगति को पुनः जागृत कर सकता है जो उसे इस जगत् में अपने व्यक्तित्व का निर्माण करने तथा परलोक में उस व्यक्तित्व को वापस रखने की योग्यता प्रदान कर सकता है।³² इसलिए इकबाल 'कर्म' के उस इस्लामी आदर्श का समर्थन करते हैं जो मनुष्य का शक्ति देता है और पाप तथा पापियों को बर निजय प्राप्त करने की क्षमता प्रदान करता है। इकबाल की दृष्टि में धर्म प्रगति का तत्व है। उसने व्यक्तियों तथा समुदायों को उदात्त बनाने में योग दिया है। बुद्ध प्रवचनवाद में मनुष्य को प्रेरणा देने की शक्ति नहीं होती।³³ इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि मनुष्य को ऐतिहासिक विरासत की अभिव्यक्ति या और धार्मिक सिद्धांतों पर आधारित संस्कृति के विरासत हो। राजनीतिक तथा सामाजिक पुनरुत्थान के कारण इस धारणा पर आधारित होने चाहिए कि विश्व के मूल में कोई आध्यात्मिक सत्ता है। इकबाल लिखते हैं, "मनुष्य अपनी उत्पत्ति तथा सन्निध्य के सम्बन्ध में अज्ञान में नहीं से आया हूँ और मुझे निधर जाना है, इस विषय में मनीषी बहस और दृष्टिकोण के द्वारा ही अमानवीय अनिष्टों के अनुप्राणित समाज पर और उस सभ्यता पर निजय प्राप्त कर सकता है जो अपने धार्मिक तथा राजनीतिक मूल्यों के अन्तर्-सम्बन्ध के कारण अपनी आध्यात्मिक एकाता को खो रही है।"³⁴

28 यही, पृ. 232।

29 यही, पृ. 234।

30 यही, पृ. 22, *A Study in Iqbal's Philosophy* पृ. 254।

31 'Is Religion Possible?' *The Reconstruction of Religious Thought in Islam* (अनुवाद 7)।

32 *Six Lectures*, पृ. 248।

33 'Is Religion Possible?' *The Reconstruction of Religious Thought in Islam* (अनुवाद 7)।

राजनीतिक धर्मि के सम्बन्ध में इस्लाम का दृष्टिकोण समझाविए या। वे चाहते हैं कि जीवन को इस्लाम के धार्मिक आदर्शों की दिशा में प्रयुक्त किया जाय उपयोगी उपयोगितावादी अथवा भक्ति का सामाजिक माध्यमपर तथा राजनीतिक जीवन पर बहुत प्रभाव पड़ता है। वे लौकिक तथा पारलौकिक अथवा धार्मिक तथा पौरुषिक को एक दूसरे से वृत्त करने के विरुद्ध हैं। वे आधुनिक ऐतिहासिक दृष्टिकोण से, जो धर्म की व्यक्ति का निजी मामला मानता है, कट्टर शत्रु हैं। उनके अनुसार धर्म का जीवन के सभी पक्षों पर नियन्त्रण होना चाहिए। राजनीति की आधुनिक अवस्था, जिसकी अवस्थिति लोकप्रमुख तथा सामान्य इच्छा भी सर्वोच्चता के सिद्धांत में होती है, इस्लाम की आस्था की संतुष्ट न कर सकती। उन्होंने पीछे पीछे इस्लाम में निहित ईश्वरीय प्रमुख की इस धारणा की अंगीकार किया जिसने अनुसार मानव जीवन के सभी रूप और बहुत 'परिचित' द्वारा चालित होने चाहिए। शास्त्रिक जगत की अपनी कोई स्वतंत्रता नहीं है, बल्कि यह समझना चाहिए कि यह आध्यात्मिक सिद्धांतों की शास्त्रात्मक करने के लिए एक क्षेत्र है। अतः राजनीति तथा प्रशासन की भी आध्यात्मिक आधार पर समझ करना आवश्यक है। इस्लाम में राज्य, व्यक्ति तथा सरकार की एक दूसरे से वृत्त करने वाली सम्बन्ध का व्यवस्था। मानव जीवन के सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक आदि बहुत विभिन्न विभागों में नहीं बाँटे जा सकते। "इस्लाम के अनुसार सब अथवा हकीकत एक ही है, एक दृष्टि से यह धर्मधर्म के रूप में प्रकट होती है, और दूसरे दृष्टिकोण से वही राज्य का रूप धारण कर लेती है।"³⁴ इस्लाम के शरीर में, "इस्लाम ऐसी एकमात्र हकीकत (व्यावस्था) है जिसका विशेषण नहीं किया जा सकता, यह हर व्यक्ति को उसके दृष्टिकोण के अनुसार विविध प्रकार की दिशाओं देती है।"³⁵ सामाजिक तथा धार्मिक की बिना होन नहीं हैं। हकीकत एक है। किसी कार्य की परिणता अथवा साकारिता इस बात पर निर्भर है कि उसे किस मन्त्रालय से किया गया है। "अतः कुरान धर्म तथा दुनिया की, आधुनिकीति तथा राजनीति को एक ही इस्लाम (ईश्वरीय ज्ञान) के अन्तर्गत समुक्त करना चाहती है, बहुत कुछ उसी प्रकार जैसा कि प्लेटो ने अपनी 'रिपब्लिक' में किया है।"³⁶ संक्षेप में इस्लाम एक सामान्यपूर्ण धर्मधर्म व्यवस्था है, और यह धार्मिक तथा लौकिक कला का एकीकरण करता चाहता है। इस्लाम में सामान्य बनाम धर्मधर्म का जो द्वैत देखने को मिलता है वह इस्लाम की मूल प्रवृत्ति के विरुद्ध है। आध्यात्मिक जगत तथा लौकिक जगत के द्वैत का कोई अस्तित्व नहीं है। इस्लाम एक ऐसे मानव राष्ट्रमन्त्रालय की वृत्ति करता चाहते हैं जो ईश्वर के प्रमुख की स्वीकृति पर आधारित हो। वृत्त करने वाले राष्ट्रवाद के समय पर उन्होंने इस्लामी मानववाद का धारणा का समर्थन किया।³⁷ उन्होंने लिखा है "इस्लाम के अनुसार राज्य, मानव, प्रकृत के आध्यात्मिक जगत को साक्षात्कार करने का प्रयत्न माना है।"³⁸ इस प्रकार इस्लाम में इस रूप में धर्मधर्म का समर्थन किया कि आध्यात्मिक एवं राजनीतिक साक्ष्य का आधार होगा चाहिए। किन्तु उन्होंने इस धारणा का कभी स्वीकार नहीं किया कि धर्मधर्म ईश्वर का अखिनिधि होता है। उन्हें कुरान की इस पंक्ति से बहुत प्रेरणा मिली थी, "आओ ईश्वर! प्रमुख के स्थायी, तुमसे चाहता है धर्म प्रदान करता है, और जिसका चाहता है, धर्म धर्म से लेता है।"³⁹ इस प्रकार धर्मधर्म धर्म तथा प्रमुख के सिद्धांत का आधार करता है।⁴⁰

(ख) पुनर्जाद तथा समाजवाद की समीक्षा—इस्लाम कुरान के इस धर्म के विस्तार

34 *Lectures*, पृष्ठ 216। अथवा भारतीय प्रजासत्ताक की दिशा में इस्लाम के अखिनिधि में इस्लाम में कुछ धर्म से करने का विचारों का अधिपति कर दिया या और बढ़ा या कि इस्लाम कोई धर्म धर्म नहीं है। बल्कि यह एक धर्म है जो धर्मधर्म के अन्तर्गत में धर्म का अस्तित्व किया गया है और उसका अर्थ नहिं आध्यात्मिक जीवन का है। देखिए *Speeches and Statements of Iqbal*, पृष्ठ 14।

35 इस्लाम *Lectures on the Reconstruction of Religious Thought in Islam*, पृष्ठ 216।

36 वही पृष्ठ 231।

37 *Speeches and Statements of Iqbal*, पृष्ठ 7।

38 इस्लाम *Lectures on the Reconstruction of Religious Thought in Islam*, पृष्ठ 217।

39 कुरान, 3 : 3।

40 *Lectures*, पृष्ठ 217।

करते हैं कि "उसने अपने प्राणियों के लिए पृथ्वी की रचना की थी।"⁴¹ पृथ्वी केवल ईश्वर के लिए है, इस धारणा का अभिप्राय यह है कि यदि कोई पूजोपासि अथवा जमींदार पृथ्वी पर अपना एकाधिकार जमाना चाहता है तो वह ईश्वरीय विधान में अनुचित हस्तक्षेप करता है। वही व्यक्ति ईश्वर की महिमा में सच्चा विश्वास करने वाला है जो ईश्वर की समुच्च सम्पत्ति का स्वामी मानता है और अपने की केवल 'मासी (दुस्ती का संरक्षण)' समझता है।⁴²

इकबाल हर प्रकार के घोषण में शत्रु थे। उन्होंने शक्ति की तथा कुपना के दावों का समर्थन किया और वह भी भविष्यवाणी की कि पूजोपासी अथवा जमींदारों के विरुद्ध किसी दिन जाति अवलम होगी। अपनी 'देवदूतों के लिए ईश्वर का आदेश' घोषण कविता में उन्होंने कहा है

"आओ और मेरे सत्कार के दरिद्री तथा स्वतन्त्रचित्त लोगों को जमा दो,
और पतिका के प्राप्तादों की दीवारों को नीव तक भस्मकरो दो।
दासों का स्वतन्त्र आत्मविश्वास की कमी से खोल उठे,
हुक्म गौरवा महानवी करो मेरे इकबाले।
जानता है अनुभव का दिन तेजी से निरवध आ रहा है,
पुरातन अवशेषों का जहा बड़ी देखी ध्वस्त कर दो।
क्या कोई ऐसा पैत है जिससे विद्याला की जीविका न चल पायी हो,
जाओ और उसके पैतों के हर टुकड़े को जलाकर मिट्टी में मिला दो,
आम लोग ईश्वर का एक खिन्ना के लिए और सुखियों की गरिमा
के लिए पैत देते हैं।

अच्छा हो कि मस्तिष्क और मस्तिष्क के दीपक बुझा दिये जायें

मैं समझता हूँ कि इन पुत्रागहों से उन पैत हैं।

जाओ और मेरी आराधना के लिए मिट्टी की एक आपसी बना दो।"

निःसुहृत्संग ने कभी समाजवाद अथवा नही विचार, और न ही समाजवाद के अवधारण तथा समाजशास्त्र की ही मनी भावित समझते थे। वे समाजवादों को कुरान के दृष्टिकोण से देखते थे, और समाजवादी दशन के अनेक सम्प्रदायों की भौतिकवादी उन्नति से जह पैत थी। समाजवादी धारणा की भौतिक आधरपदाओं की अतिशय महत्व देते हैं, और फलस्वरूप मन और आत्मा की आवश्यकताओं की उपेक्षा करते हैं। इकबाल इस प्रवृत्ति के भी विरुद्ध थे। वास्तविक समाजों का निर्माण मिट्टी से नहीं विचार का उन्नति, उसके लिए हृदय की विद्यालय बनाने की आवश्यकता है। अतः इकबाल का मत मानस में उन अन्तर्द्वारावादी सिद्धांतों के आधरपक थे जो केवल भौतिक सुखियों की समझता का उपदेश हैं।⁴³ इस सबसे वास्तविक इकबाल ने पूजोपासी की कुरानों की मानना की। अपनी एक कविता में उन्होंने लिखा है

"अनुभव अब भी घोषण तथा साम्राज्यवाद का दखनीय खिन्ना है,
क्या यह धोर दुःख की बात नहीं है कि अनुभव अनुभव का खिन्ना करे ?
आधुनिक सम्प्रदाय की चमक दृष्टि को पचासीय कर देती है,
निःसुहृत्संग यह जो भूले पुरिदा की मानता है।
विज्ञान जिस घर पश्चिम के विद्याला का गण है
वह ही लोक के उत्तरचित्त हाथों में बुद्ध की उत्तरधार है।
राजनीति का कोई जह उस सम्प्रदाय की कल नहीं दे सकता,
जो पूजोपासी के अनुभव इतल पर आधारित है।

(ग) सपहस्तानवाद अथवा हस्तानी साधनीमता—धारण में इकबाल ने देवपति की भविष्यद्विष्टी। उसी सुग में उन्होंने 'हिंदुस्तान हमारा घोषण कविता की रचना की जिसमें भारत

41 कुरान 55: 10।

42 सुहृत्संग इकबाल, *Jam and Nama*, पृष्ठ 90-125।

43 वही, पृष्ठ 69।

का गौरवमान किया गया है।⁴⁴ वे भारत को सतरार में सर्वोच्च मानते थे और उनकी दृष्टि में भारत का कथ-कथ देखता के सहस्रव पवित्र था। उन्होंने देशवासीयों में स्वातन्त्र्यपराधीता, मुक्तता तथा वैमनस्य के स्थान पर हृदय की सच्ची एकता पर बल दिया। उन्होंने राम तथा स्वामी राम जीव पर भी प्रशस्तियाँ लिखीं।⁴⁵ विन्तु बाद में वे मुसलमानों की मुसलिम भावतृत्व की आराधना का समर्थन करने लगे और अपने को सर्वइस्लामवादी घोषित कर दिया। उन्होंने राष्ट्रवाद की मर्यादिक और जातीय धारणा के स्थान पर इस्लामी पुनरुत्थान का संदेश दिया। वे लिखते हैं, "चीन, अरब तथा भारत हमारे हैं, हम मुसलमान हैं और तुम्हारा संसार हमारा है।" 'छोटी' (एन्स्वरवाद) के सिद्धांत में उन्होंने विश्व एकाता का निर्माण निकाला। उनकी दृष्टि में इस्लाम न राष्ट्रवाद है और न साम्राज्यवाद है, बल्कि एक 'राष्ट्र सभ' है। राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए इस्लाम जातीय भिन्नताओं को स्वीकार करता है, विन्तु अन्त में वह मानव एकाता में निरवसत करता है। इनका लिखते हैं, 'मेरा वास्तविक उद्देश्य अधिक अच्छी सामाजिक व्यवस्था का अन्वेषण करना और विश्व में समग्र जीवन और कर्म का ऐसा आदर्श प्रस्तुत करना है जो मानवीय रूप से स्वीकार हो। विन्तु हम धर्मों की स्मरणता प्रस्तुत करते समय धर्म के लिए इस्लाम की उस सामाजिक व्यवस्था तथा जन-मूल्यों की उन्नति करना असम्भव है जिसका मुख्य उद्देश्य जाति, पक्ष, रंग तथा भाषा-विभक्ति के कारण द्वन्द्व में भी को ध्वस्त करता है। इस्लाम में सर्वे जातीय (नस्लगत) वैभक्तता की उस धारणा का उच्च विरोध किया है जो अन्तर्राष्ट्रीय एकता तथा सद्भाव के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है। वस्तुतः इस्लाम तथा जातीय बहुल्यवाद की नीति एक दूसरे के विरुद्ध विरोध है। वह जातीय आदर्श मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है और मानव जाति के हितैषियों का कलम्ब है जिसे उसका उन्मूलन करने में योग्य है। जब मैंने अनुभव किया कि जातीय तथा वैभक्त मेरुताव पर आधारित राष्ट्रवाद का आदेश इस्लाम की भी आध्यात्मिकता करने लगा है और इस बात का एकदम जपन हो गया है कि मुसलमानों की सच्ची वैभक्तता तथा विष्णु राष्ट्रवाद के पक्ष में मानवीयता के आदेश का प्रतिपक्ष का देने की मैंने मुसलमान तथा मानव जाति का हितैषी होने के बाते अन्तः कल्प समझा कि मैं इन्हें मानव विकास के मार्ग में अपनी सम्पूर्ण धूमिल अथा कर्म के लिए पुनः प्रेरित करूँ। इससे सन्देह नहीं कि इस्लाम के प्रति मेरी प्रभाव पक्ति है, विन्तु मैं अन्तः काम आरम्भ करने के लिए मुसलिम समाज की किसी जातीय अथवा भाषिक दुर्भाव के कारण नहीं चुना है बल्कि इसलिए चुना है कि समस्या के हल का यही सर्वाधिक व्यावहारिक मार्ग है।⁴⁶ इसलिए इस्लाम के 'आदि इस्लाम को वापस लाने का मार्ग समझा। उन्होंने मुसलिम आईकारों की धारणा को गृह्य करने के लिए विस्तार की धारणा को स्वीकार किया। इनका के अनुसार मिलत छोटी की धारणा के—जिसका अर्थ है समानता, स्वतन्त्रता तथा भावतृत्व—राजनीतिक तथा सामाजिक पहलुओं को ध्वस्त करती है। वाया इस एकाता के नोमोलिक केन्द्र का प्रतीक है। विन्तु 19 सितम्बर, 1933 का इस्लाम के स्वयं राज्य में घोषणा की थी कि सब इस्लामवाद का स्वयं यह नहीं है कि सब मुसलमानों को एक 'राजनीति' संगठन के अन्तर्गत एकजुट किया जाय। फिर भी न सर्वइस्लामवाद की एक ऐसे मानवतावादी आदेश में रूप में स्वीकार कर्त में जो व्यक्तिगत, राष्ट्रिय अथवा मौखी लिख-सोमोक्षों की स्वातन्त्र्यता को देता है।⁴⁷ ईश्वर के प्रति प्रभाव प्रेम तथा उसमें अन्तिम बगम्बर मुहम्मद के प्रति नस्ति सर्वइस्लामवादी एकाता के बचन है। मुहम्मद के प्रति नस्ति मिलत का एकाता प्रभाव करती है,⁴⁸ क्योंकि मिलत दायित्व ए इस्लामिया (इस्लामी विधि) के वास्तविकी स्वयं का अर्थ बार करने ही बल सक्ती है। मिलत की आधारनीति का आधार सर्वोच्च रूप में वास्तविकी ईश्वर-रोन विधि है, न कि कोई मानवीय विधान। धूमि इस्लाम की सर्वइस्लामवादी भावतृत्व के महान् न अन्तिम विस्मय-वा,—इसलिए उन्होंने राष्ट्र रूप का उपहास किया और उसे 'पुरातन कठोरता का दुष्ट सङ्कलन' कहा। उन्होंने यह भी प्रविष्ट्यवादी की कि राष्ट्र सभ का विधान अवश्यमानों है।

44 'उल्लान्द हिन् 1904 में अन्तः के राष्ट्रीय आन्दोलन के रूप में लिखा गया था।

45 *Speeches and Writings of Ishat* पृ. 187।

46 'मिलत के महान् न सम्पन्न न आदर्शवादी न कि सर्वोच्च इस्लाम की रचना, *Ramuz : Bekhudi*।

इकबाल ने दो आधारों पर राष्ट्रवाद का विरोध किया। उनका विचार था कि यदि अस्तित्व भारतीय राष्ट्रवाद का आदेश साम्राज्यवाद ही गया तो देश में हिंदुओं की सर्वोच्चता स्थापित हो जायगी। कट्टर मुसलमान होने के बावजूद इकबाल धार्मिकतुल्य वह सहा करने वाले नहीं थे कि भारत का एक करोड़ मुसलमानों पर हिंदुओं का आधिपत्य कायम हो जाय। दूसरे, इकबाल की यह भी धारणा थी कि राष्ट्रवाद का आदेश विभिन्न मुसलमान देशों के बीच भूमक वेगमार्ग की मांगनाओं को उत्पन्न करेगा। इससे इस्लामी भाईचारे के बंधन क्षीयित होंगे। इकबाल का कहना था कि राष्ट्रवाद का पारंपार्य आदेश मुसलमान बिरादरी के लिए प्रासंगिक विषय है, और वह साम्राज्यवादी शक्तियों की हस्तगत की दुसल बनाने की कुटिल नीति है।⁴⁷ अतः इकबाल ने 'पवित्र राष्ट्रवाद' तथा 'पवित्र साम्राज्यवाद' के स्थान पर इस्लाम के इस आदेश का प्रतिपादन किया कि समस्त विश्व ईश्वर का परिवार है।⁴⁸

(घ) धार्मिकतात्व सम्प्रदायी विचार—इकबाल ने अनुसार 1799 का नया इस्लामी राजनीतिक चेतन का जन्म बिन्दु था। ईसा मुसलमान की पराजय तथा सवारिना के युद्ध में सुन्नी अहमदी दोनों का विनाश (1799) इस्लाम के पराजय की पराजय का चोकर था।⁴⁹ किन्तु उन्नीसवीं शताब्दी के इस्लाम का पुनरुत्थान हुआ। भारत में सैयद अहमद खां, रस ने सुन्नी आतम जान और अफगानिस्तान में सैयद जहांगीर की कामनायक थे इस्लामी पुनर्जागरण का दौर प्रारम्भ हुआ।⁵⁰ इकबाल अहमदिया आन्दोलन के विरुद्ध थे,⁵¹ क्योंकि उनकी दृष्टि में उस आन्दोलन ने भारतीय मुसलमानों की राजनीतिक पराधीनता पर धार्मिक अनुमोदन की छाप लगा दी थी। उनका विचार था कि भारतीय मुसलमानों की होशियारी यही है कि वे अपने लिए एक पूरक राज्य का निर्माण करें। उन्हें ऐसी किसी राजनीतिक विचारधारा से सहानुभूति नहीं थी जो आदेशवाद के नाम पर भारतीय मुसलमानों के सांस्कृतिक अस्तित्व को नष्ट करना चाहती थी।⁵² वे मुसलमानों का एक अस्तित्व भारतीय अस्तित्वगत समान मानते थे, बल्कि वे उन्हें एक राष्ट्र बन बन की सपना थे।⁵³ वे एकलव्यक भारतीय राष्ट्र के आदेश के विरुद्ध थे। उनकी दृष्टि में यह आदेश मुसलमानों पर बहुलवादा का आधिपत्य स्थापित करने की एक योजना मान था।⁵⁴ उन्होंने साम्प्रदायिक विचार का समर्थन किया।

पुनः देश के प्रारम्भ में इकबाल 'एकीकृत उत्तरी पश्चिमी भारतीय मुसलमान राज्य' के समर्थक बन गये। यह प्रस्ताव 1928 में मेहर सभित के समर्थन रखा गया था, किन्तु इस आधार पर अस्वीकृत कर दिया गया कि प्रस्ताव की दृष्टि से यह राज्य बहुत बड़ा होगा। इकबाल का विचार था कि समुक्त भारत में मुसलमानों का कोई अधिकार नहीं हो सकता। इसलिए वे इस बात के उद्यम समर्थक बन गये कि पश्चिमोत्तर भारत के मुसलमानों की एक पूरक प्रदेश में मेहिल विद्या जाय। मुसलमान भीम के स्वाहावाद अधिपत्य में अल्पसंख्यक भाषण में उठने पड़ा, "समिधान की एक समान भारत की धारणा पर आधारित करना अथवा चिन्तन की सौकराविध भाषणों के विदायी को भारत में लागू करना अथवा यद्यपि भी संपादित करता है।" उन्हें अनुमान भारत की समस्त राष्ट्रीय नहीं किन्तु अन्तरराष्ट्रीय थी। उनका कहना था कि भारत आज राष्ट्रा की भूमि है, अतः देश में सब एक धार्मिक नहीं हो सकती जब तक कि उसने विभिन्न भाषा का अपने अंतर्गत है सम्प्रदाय विच्छेद विषय बिना अपना विचार करने का अवसर नहीं मिलता। इसलिए उनका

47 *Speeches and Statements of Iqbal*, p. 203-5.

48 पृ. 203.

49 *Speeches and Statements of Iqbal* पृ. 124.

50 यही, पृ. 130.

51 अहमदिया आन्दोलन (यहाँ पुनः अहमद (1839-1908) के आदेश दिया था। वे अरब का सैन्य भाषण था। 1914 में आन्दोलन में पुनः वह नहीं और की पुनः बन गये। उनमें में एक सन्तुष्ट और दूसरा का विचारों का भाषण।

52 यही, पृ. 143.

53 यही, पृ. 31.

54 यही पृ. 193-95.

प्रस्ताव था कि एक 'एनीकृत मुसलिम राज्य' भी स्थापना की जाय। उद्धान बहा, "यैरी इच्छा है कि पञ्जाब, पश्चिमोत्तरी सीमांत प्रदेश, निम्न तथा बहुविस्तृत का एक ही राज्य के अंतर्गत सब स्थित किया जाय। इस स्वराज बाहे दिविस साम्राज्य के अंतर्गत निते और बाह् उगने बाह्, किन्तु मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि एक एनीकृत पश्चिमोत्तरी भारतीय मुसलिम राज्य का निर्माण मुमकिनमानी थी, कम से कम पश्चिमप्रांतीय भारत के मुसलमानों की, अन्तिम होतव्यता है।"⁵⁵ इस प्रकार पश्चिमोत्तरी भारत के मुसलमानों की भारतीय राजनीतिन व्यवस्था के अंतर्गत अपने स्वतन्त्र का पूरा पूरा अवसर मिल गयेगा और वे भारत की सेनिव तथा विचारधारारमय आगमन से रक्षा कर सकेगे। इस रूप में इस्लाम न 'भारत के भीतर मुसलिम भारत' की भाँति का समथन किया।

6 दिसम्बर, 1933 को इस्लाम के इस बात का नयेत दिया कि इस का आगिन, ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक सम्पदा के आधार पर पुनः व्यवस्था कर दिया जाय।⁵⁶ 28 मई, 1937 का उद्घोष किया की एक पक्ष तिरा और उसमे शुभाव दिया कि मुसलिम भारत अपनी समस्याओं की हल कर सके, इसके लिए आवश्यक है कि देश का पुनः व्यवस्था कर दिया जाय जिससे निरपन बहुमत वाले एक अथवा अधिक मुसलिम राज्या का निर्माण किया जा सके।⁵⁷ इस प्रकार इस्लाम पालिस्तान की गृध्रजवादी भाँति के आम्मातिन तथा पवारित प्रवृत्तन बन गये।

4 निष्पत्ति

इस्लाम का अपनी ऊर्ध्व तथा पारसी की बलिताओं के लिए बड़ा आवर दिया जाता है। एक बलि के रूप में उन्होंने पश्चिमी एशिया में स्थापन कायता प्राप्त कर ली। अपनी बलिताओं के कारण वह अपरिमित बना मिला। इसमें सन्देह नहीं कि वे आधुनिक भारत के नष्टनतम उर्ध्व बलि के। किन्तु राजनीतिक अथवा राजव्यवस्था के विचारों के रूप में उनका न मौलिकता देखने का मितती है और न महत्त्व। उन्होंने कुरान में अल्ला के मुद्रा कायार्थि के विचारों की उर्ध्व निरालने का अवसर दिया है। उनका मुख्य उद्देश्य किसी भी भी बलि विचार सम्प्रदाय का निर्माण करना नहीं था। वे कुरान के सिद्धांतों की इस रूप में व्याख्या करना चाहते थे कि वह चिन्तन की आधुनिक प्रवृत्ति के लक्षण में अधिक लोकप्रिय बनाया जा सके। इस प्रकार उन्होंने इस्लाम का सत्यवादीय पुनः निरवध करने का प्रयत्न किया। सभी (डेविटन) जातिवादी के विचारप्रवृत्ति एक ही ईश्वर की भी पारणा वाली जाती है उसने लिए इस्लाम न मन में महती आवश्यकता उत्पन्न की। वे कुरिया की इस पारणा की भी स्वीकार करते थे कि ईश्वर की अनुपति अंतः ज्ञान के द्वारा ही हो सकती है। वे यह भी अनेकाल में भी विश्वास करते थे। वह इस वैज्ञानिक इतिहास में भी प्रेरणा मिली थी कि विश्व अन्तरदेशी घटनाओं की ऐसी अवस्था व्यवस्था है जिसका प्रवाह नहीं रुकता नहीं। अपन पक्ष साधनिक सिद्धांत में कि परम यह एक व्यक्ति है न कि कोरा इच्छा, उन्होंने चिन्तन के कुछ विभिन्न घटकों को समीक्षा करने का प्रयत्न किया है। किन्तु उनमें साधनिक महत्त्व तथा आत्मन ईर्झातिन रचना की क्षमता का अभाव था, इसलिए वे ऐसी पारिवाश्या तथा आधारभूत प्रत्याशनाओं की निरवध न कर सक जिनसे इन विभिन्न घटकों तथा नेतात्मिक साधनिक इतिहासों का समेकन किया जा सकता। इसलिए उनकी रचनाओं का अध्ययन करने में ऐसा प्रतीत होता है कि वे रचनात्मक तथा अवशिष्ट रूप के विचारों नहीं वे अतिरिक्त के इस्लाम के ऐसे प्रचारकों तथा उपदेशकों के जिन्होंने इस्लाम के पुण्य के समर्थकों के वे विकास, आधिर्भाव तथा राजव्यवस्था के सिद्धांतों की उर्ध्व निरालने की चेष्टा की।

इस्लाम की आध्यात्मिक स्वतन्त्रता की पारणा से प्रेरणा मिली थी। उन्होंने स्वीकार किया कि आध्यात्मिक, पारमार्थिक, मोदीयन शुभनसम्पत्ता ही सब का आधार स्वभाव है। अतःक अथ

55 एन्डर होकरन के अपनी पुस्तक *East India for Freedom* में किया है कि इस्लाम के मरे लम्बे इतिहास किता था कि पश्चिमप्राय जीवा यती अर्थात् कि मुझे मुसलमानों तथा मरेकों के लिए विचारकारी सिद्ध हुआ। कि मुझे भी इस भाँति का समर्थन समिति दिया था कि यह भाँति के समर्थन थे।

56 *Speeches and Statements of Jhal* पृष्ठ 195।

57 ईश्वर मौलिकों द्वारा रचित *Jinnah Creator of Pakistan* में पृष्ठ 114 पर उद्धृत (नाहोर, अग्रे, 1934)।

भौतिक और अद्भुत सृजन का अवसर है। इस दृष्टिकोण को स्वीकार करने के कारण इस्लाम मोरख धार्मिक निपटिवाद की धारणा से बच गये। उन्होंने उन प्राणवादी (जीवनशक्तिवादी) तथा प्रचुर भौतिकवादी सम्प्रदायों की आलोचना की है जो किसी न किसी प्रकार के यह निपटिवाद का समर्थन करते हैं। उन्होंने कुरान में प्रतिपादित 'अकदीर' की धारणा को स्वीकार किया और उसे स्वतंत्रता की साधक धारणा बताया।⁵⁸ उनदीर कोई कूर और निष्कूर भाव्य नहीं है। मस्तुल यह साबित करने का है जो नैमित्तिक अनुभव के उन बाधना से मुक्त है जो समझ और देश-वर्द्धता की विशेषता है। इस्लाम ने उनदीर की जो व्याख्या की है वह कुरान की मूल भावना के अनुरूप नहीं ही न हो, किन्तु उन्होंने मानव स्वतंत्रता का जो समर्थन किया है वह अद्भुत है। उनके समर्थन का आधार धार्मिक है, जबकि यह धर्म निपटिवादी दृष्टिकोण का बोध होता है। यही उनकी स्वतंत्रता निपटक धारणा का अन्वेषण है।

इस्लाम की आध्यात्मिक लोकतन्त्र के आदर्श में बहुत प्रभावित किया था। यह स्वतंत्रता (शुदी) के मूल विकास में विश्वास था। उन्होंने कुरान की इस धारणा को स्वीकार किया कि सर्वोच्च अहं या व्यक्तिगत अहं होता है और उसे स्थापित नहीं किया जा सकता। जीवन अहं की विधा के लिए अवसर प्रदान करता है। व्यक्तिगत का मूल विकास आवश्यक है और मिलावट तथा इतिहास में मान लेने तथा उसके निर्माण में बंध देने की शक्ति प्राप्त करना ही व्यक्तिगत का विकास है। ईश्वरीय प्रभाव को प्राप्त कर लेने पर व्यक्तिगत का और भी अधिक विस्तार होता है। मिलावट के सभी खतरों का व्यक्तिगत का प्रखरीकरण ही आध्यात्मिक लोकतन्त्र का आधार है। किन्तु हमने आश्चर्य कि इस्लाम ने इस्लामी धर्मतन्त्र के समर्थन होने के नाते आध्यात्मिक लोकतन्त्र का समर्थन किया, वे लोक प्रमुख के सिद्धांत को स्वीकार नहीं करते थे। उन्होंने श्रीकृष्ण मानसो ने जो सामाजिक समर्थन की सर्वोच्च मानने से इनकार किया। इस प्रकार इस्लाम ने आध्यात्मिक लोकतन्त्र के राजनीतिक लोकतन्त्र का निषेध नहीं किया। उन्होंने पाश्चात्य मानवता के सभी को साम्राज्यवादी कहा और उनकी भयानता की। उनका कहना था कि विज्ञान-कलाओं तथा सभ्यता के जो विचार और विचार विमर्श होते हैं वे पूँजीपतियों का साक्षात्कार मात्र है। इस्लाम ईश्वरीय लोकतन्त्र का समर्थन करते हैं, किन्तु उन्होंने इस प्रश्न का सविस्तार विवेचन नहीं किया है कि दिन प्रति दिन के राजनीतिक तथा धार्मिक भावना में ईश्वरीय प्रमुख की अभिव्यक्ति किस माध्यम से होती। यदि वे यह कहें कि धार्मिक राजनीतिक भावना में कुरान की ही अन्तिम प्रमाण माना जायता तो यह निर्णय यह आती है कि कुरान की व्याख्याओं में परस्पर अंतर होता है। यह केवल धर्मिक के आधार पर राजतन्त्र और समाज व्यवस्था का निर्माण नहीं किया जा सकता। इस्लाम ने धर्मिक को आवश्यकता से अधिक महत्व देकर सामाजिक सुधारण का मार्ग प्रशस्त किया। इस्लाम स्वयं इस बात को स्वीकार करते हैं कि कुरान विचारों की युग की क्षमताओं के परिनिर्माण के अनुरूप बनाने के लिए आवश्यक है कि उनकी छद्म दृष्टिकोण से व्याख्या तथा पुनर्रचना की जाय। इसीलिए उन्होंने 'इतिहास' का समर्थन किया।⁵⁹ वे स्थापित के साबित सिद्धांतों तथा सामंजस्य के परिणामस्वरूप सिद्धांतों के बीच समन्वय स्थापित करना चाहते थे। किन्तु आश्चर्य इसके कि 'समाजिक' मानना की व्याख्या में इस्लाम का दृष्टिकोण अंतर था, वे इस बात की न समझ गये कि नैतिक के लिए लोक प्रमुख की धारणा का अपरिमित महत्व है और मनुष्य की राजनीतिक होतव्यता के निर्माण के लिए अपने आदर्श सम्भाव्यार्थ निहित है। धर्मिक की पवित्रता के नाम पर उन्होंने धारणा बताया कि 'लोकतन्त्र के कूर भावों और मूल मानव के धर्म धर्म जाओ।' इस प्रकार इस्लाम ने इस्लाम के सामाजिक लोकतन्त्र के निर्माण का विस्तार करने और मुसलिम देशों की जनता के समस्त लोकतांत्रिक आदर्शों की मुक्ति करने वाली मन्त्रणा प्रस्तुत करने के पलायन योग्यता के प्रतिनिधित्ववादी सम्प्रदायों तथा राजनीतिक आदर्श का समर्थन किया।

58. Six Lectures पृष्ठ 67।

59. 'इतिहास' की भावनाओं की इस दृष्टि, यही उपाय, अन्तर्गत अन्तर्गत और हानि बाधा में किया था।

भेदना रहती है, अथवा उसे मृत्यु से कुछ अपने बाकी जीवन का आकाश मिल जाता है, जैसा कि उन लोगो के सम्बन्ध में कहा जाता है जिन्हें स्वर्ग के तथा परम अह के सम्बन्ध में अल-अक़ारमक तथा अहस्मात्मक अनुभूति होती है। जो व्यक्ति के दावो तथा अभिप्रायो पर मिलन का निश्चय स्थापित करने का कोई औचित्य नहीं हो सकता, क्योंकि निश्चय ही एक परम्परागत तथा ऐतिहासिक व्यवस्था है जिसका अपना कोई शक्तिमान अस्तित्व नहीं है। इब्नबाल के राजनीति दर्शन की आधारभूत कठिनाई यह है कि उसने अलम्माव को सिद्ध करने का प्रयत्न किया है—न तो कुरान के धर्मतन्त्र के आधार पर और न निरपेक्ष प्रत्यक्षवाद की बुनियाद पर अह के दावा, अभिप्रायो तथा शक्तियों का सम्बन्ध बिचा जा सकता है।

18

मोतीलाल नेहरू तथा चित्तरंजन दास

अकरण I

मोतीलाल नेहरू

1 प्रस्तावना

पण्डित मोतीलाल नेहरू (1861-1931) का जन्म 6 मई, 1861 को आगरा में हुआ था, और 6 फरवरी, 1931 को सऊद अरब में उन्होंने अपनी इच्छापूर्वक समाप्ति की। लक्ष्मण ने 1906 के लक्ष्मण के राष्ट्रीय अधिवेशन में सम्मिलित हुए। वे मित्रवादी (बरमदनी) गुट के सदस्य बन गये। तिलक के नेतृत्व में कार्य करने वाले अधिवैद्यों को उन्होंने बहुत बालोचना की। 1907 में ऐतिहासिक लुट के अवसर पर वे लुट में उपस्थित थे। 1907 में इलाहाबाद में संयुक्त प्रांत का राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ। उसके में प्रथम सम्पादित थे। व संयुक्त प्रांत की प्रांतीय समिति के साथ बन लक्ष सम्मिलित रहे। 1910 में व संयुक्त प्रांत की विधान परिषद के सदस्य बन गये। 1917 में जब श्रीमती एनी बेसेंट का मजबूत बर दिया गया तब मोतीलाल होम रूल लीग में सम्मिलित हो गये। 'द पार्लियमेंट' लुट 'होम रूल लीग का महाविधेयिक' कहा करता था। 1919 में उन्होंने विशेष स्मार्ति और अनुसूक्त प्रांत करली। पतिपत्नीका नाम के बर वल्लू का मोतीलाल बर बहुत मानसिक तथा नैतिक प्रभाव पडा जिससे वे एक राष्ट्रीय बन गये और इस प्रकार वे दुनिया में मित्रवादी से जाने कद गये। जिस समय वल्लू समिति शासन के दीवानाजीव आत्मपरीक्षा के फल था, उस समय पण्डितजी ने उस प्रांत के तथा भारत के आत्मपरीक्षा की रसा की। जमियाबादा बाण्ड में भीमच और कुश्तिन दूरमा की जान करने के लिए भी समिति विमुक्त की गयी उसका सम्पादित मोतीलाल को बताया गया। बहुमत था, मरनेमोहन मानवीय तथा चित्तरंजन दास को उस समिति के सदस्य थे। मोतीलाल की बार भारतीय राष्ट्रीय राष्ट्रीय का अग्रणी बन गये, 1919 में तथा 1928 में। अनुसूक्त के अधिवेशन में वे 1919 के भारतीय शासन अधिनियम (एनमेन्ट ऑफ इन्डियन लैट) को स्वीकार करने के पक्ष में थे। 1919 में उन्होंने 'इन्डियन वेल्थ' नामक समाचार पत्र प्रारम्भ किया जो 1923 तक प्रकाशित होता रहा।

जब महात्मा गांधी ने अग्रहमय आन्दोलन प्रारम्भ किया तो मोतीलाल उसमें सम्मिलित हो गये। 1922 में उन्होंने राष्ट्रीय अधिवेशन अग्रह आन्दोलन लीग समिति की अध्यक्षता की। 1923 में मोतीलाल ने लखनऊ दल स्थापित करने में चित्तरंजन दास की सहायता की और उसने महात्माजी विमुक्त हुए। 1924 में लुट में गांधीजी ने चित्तरंजन दास तथा मोतीलाल ने साथ गणधीला बर दिया जिसने अनुसूक्त उन दोनों को अपने लक्ष्यका का विचारित करने की लुट दे दी गयी। 1924 के देवगढ़ अधिवेशन में राष्ट्रीय ने इस समिति का अनुमोदन कर दिया। 1925 में लखनऊ अधिवेशन में पण्डितजी विरोधियों ने भी लखनऊ दल की परिषद में प्रवेश करने और लुट में मोतीलाली के विरुद्ध लक्ष्य चलाव की नीति का मान लिया। इस अधिवेशन में मोतीलाल ने भाषणा की कि यदि लखनऊ में राष्ट्रीय लीग का स्वीकार न किया तो स्वतन्त्र दल

के सदस्य विधानागम की सदस्यता के त्यागपत्र दे देंगे और अखिलेश्वर समिति के लिए तीव्रता के काम आरम्भ कर देंगे। पण्डितजी ने 1924 से 1930 तक वैदेशी विधान सभा में स्वराज प्रतिपक्ष का नेतृत्व किया। 1930 के सातहरे कार्यक्रम के आदेशानुसार उन्होंने विधान सभा की सदस्यता का परित्याग कर दिया। प्रतिपक्षी नेता के रूप में मोतीलाल ने महान् रम्यता प्राप्त की। उनके योग्य नेतृत्व तथा समझदारता के फलस्वरूप स्वराज दल ने भारतीय विधान सभा में सरकार की अनेक बार पराजय किया, जिसने भारत सरकार जनरल को अपनी प्रमाणन की क्षमता का प्रयोग करना पड़ा। 1924 में मोतीलाल ने स्वराज प्रतिपक्ष के नेता के रूप में वैदेशी विधान सभा में एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया जिसका आशय था कि भारत में पूर्ण उत्तरदायी शासन की स्थापना के हेतु आवश्यक बनाने के लिए एक पोलिटिक सम्मेलन किया जाय। सम्मेलन जी बीजवाडी तैयार करे छलें वहलें एक निर्वाचित विधानागम के समक्ष प्रस्तुत किया जाय और फिर ब्रिटिश संसद के सम्मुख रखा जाय ताकि वह उसकी वांछावित करने के लिए समुचित अधिपक्ष प्राप्त करे। सरकार के विरोध के बावजूद विधान सभा ने प्रस्ताव स्वीकार किया। 1925 में मोतीलाल ने सभा में यह राष्ट्रीय माँग प्रस्तुत की कि ब्रिटिश संसद भारत में पूर्ण उत्तरदायी शासन स्थापित करने की घोषणा करे। सरकार के विरोध के बावजूद राष्ट्रीय माँग विधान सभा में पारित हो गयी, किन्तु सरकार उसे स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थी। 8 मार्च, 1926 को पण्डित मोतीलाल ने विधान सभा में घोषणा की कि स्वराज दल का सरकार के अधिपक्ष में अतिरिक्त कुछ नहीं निता है। इसने उपराष्ट्र के मन्त्रों को सहिमान्त कर दिये। किन्तु जून 1925 में मोतीलाल स्वयं आयोग के सदस्य नियुक्त किये गये। इस आयोग का काम होगा कि भारतीयकरण की सम्भावनाओं की जांच करना था। 1925 में चित्तरंजन दास भी मृत्यु हो गयी जिसने स्वराज दल की क्षमता को भारी आघात पहुँचा। मोतीलाल विरोध को सहन नहीं कर सकत थे। उन्होंने महाराष्ट्र के उस सभायी स्वराज गुट के सम्बन्ध में, जिसने नेता एन सी वेत्तबर और एम आर जयकर थे, कुछ आलोचनाएँ शब्द कह दिये जिसने फलस्वरूप महाराष्ट्र के नेता स्वराज दल में घृणित हो गये। मोतीलाल विधान सभा के निष्पक्ष और निवेदात्मक वादविवाद से ऊब गये थे, इसलिए 1930 के वे वर्ष कर्माचरों के सम्मिलित हो गये। इसने अतिरिक्त देश में साम्प्रदायिक तनाव लीज ही गया था किन्तु फलस्वरूप स्वराज दल में आन्तरिक घृणा की और घूट उत्पन्न हो गयी।

मोतीलाल असामर्थता नेता थे, और अपने परिपक्व तथा दृढ़ संकल्प के लिए विख्यात थे। वे भारतीय गौरवशाही के कुचक्रों और शिकटता की भव्योन्नति समझते थे। वे स्वराज के बीज रोनाही थे। 1919 के 1931 तक मोतीलाल ने एक अग्रदूतों, भारतीय निष्पक्षता के प्रतिपक्ष के नेता, नेहरू रिपीट के मुख्य रचना तथा महारथ पायी के सहजनों के साथ-साथ भारतीय नीति में प्रमुख भूमिका अदा की।

पाद अथवा पथ से गहरा अनुसंधान 'गहरी' था। भारतीयता कायकवादी थे।¹ उनसे मन में प्राचीन हिन्दू सभ्यता के लिए गहरा प्रेम 'गहरी' था। इसलिए राजनीति की समझाका के सम्बन्ध में उनका हिन्दू बोध व्यापित तथा एहिव था, न कि धार्मिक तथा शोभाशील। भारतीयता में विचारविम्वल मुग की निहित सम्मता के मुत्तरा की मलमलाल कर लिया था। उन्हें साम्यबुद्धिवाता से कोई सहानुभूति नहीं थी, और न वे परम्परागत संस्थाका की अपनी प्राचीनता के आधार पर बचाव रखने के मत में थे। उन्हें साम्यवादिन बहुत तथा भूषणतनुच दया का दायर नहीं भारतीय वेदना होती थी। वे सभी के भुषणताकाकी प्रमाण को समाप्त करना चाहते थे। उन्होंने पाणिथकवादी धर्मविद्या तथा धन न सांख्यिक पहनुका के खीर पर सम्भीरतापुनर विचार और मनन नहीं किया, किन्तु वे यह मानते थे कि सगठित संस्थागत बहुरता, धर्मापता तथा धार्मिक शरीरगत राष्ट्र की अवधि के लिए सम्भवित पातक है। मार्च 1907 में समुक्त भारत के प्राचीन सम्मेलन के अवसर पर अपने सम्मेलीय भाषण में उन्होंने "मेरा धिक्तात तथा परस्परिक रिश्तामल" का सम्मन किया। उन्होंने कहा, 'आज धन का जो व्यापहारिक स्वरूप है वह सबसे बड़ा भुषणताकाकी तत्व है। यह समुक्त तथा समुक्त के बीच भुषित अवरोधन रखे करता है, और बन्धावकारी, सहमीपनूतन राष्ट्रीय जीवन के विकास में बाधा डालता है। उसे सामाजिक भाषणों पर इतिविचारवादी प्रभाव डालकर ही प्राचीन नहीं हुआ, अब उसने राजनीति तथा सभ्यता पर भी आक्रमण कर दिया है और जीवन के हर पहलु का प्रभावित कर रहा है। राजनीति के साथ उसका संबंध न उसने स्वयं के लिए हितकर रिश्ता बना है और न राजनीति के लिए। धर्म का पतन हुआ है और राजनीति कोषट में फँस गयी है। एक की दूसरे से भूषण भूषण करना ही रोग का उपचार है।'² इस प्रकार मोतीलाल स्वयं तथा सम्भीर राष्ट्रवात के सम्बंध में। उन्होंने समाज का हर प्रकार की असहिष्णुतापुन बहुरता तथा सर्वेष भूषा से मुक्त करने पर मत दिया।

भारत की हीतम्यता के सम्बन्ध में भारतीयता की कल्पना बहुत उज्ज्वल थी। वे यह नहीं चाहते थे कि भारत परिषद का सम्मानुकरण करे। उनका कहना था कि सविन्य के शीरवताली तथा सविन्यमल भारत का निर्माण करने के लिए उच्च अध्यापका तथा कामकाजी सरकार की आवश्यकता है। उन्होंने अनुसंधार की कल्पना में अपने सम्मेलीय भाषण के स्वतंत्र भारत की कल्पना इन शब्दों में समुक्त की "हमारा तत्व देखा भारत होता चाहिए जिसमें सब स्वतंत्र हो और सबको विकास का पूरा अवसर मिले, जहाँ निष्ठा यथन से मुक्त हो चुकी हो और जहाँ सविन्य की अति-तता भुषा हो चुकी हो, जहाँ मिष्टा नि धुक्त हो तथा सबके लिए स्वतन्त्र हो, जहाँ भूषणति तथा सर्वोदार धर्मिकी तथा रीम का शीघ्र न करे, जहाँ अधिक का सम्मान होना हो और उसे समुचित वितन मिलता हो, और जहाँ सविन्य जिससे वर्तमान पीढ़ी आतुर है, अतीत की समुक्त बन गयी हो।"³ 3 दिसम्बर, 1925 का स्वयं दल के नेता की हैमिलत से मोतीलाल ने केन्द्रीय विधान सभा के घोषणा की नि स्वयं दल समुक्त देश के हितों का सम्बंध करता है, किसी वय अथवा समुक्त के हितों का नहीं।

मोतीलाल स्वतन्त्रता के उत्कट समर्थक थे, इसलिए उन्होंने अधिकारों की घोषणा का सम्बंध किया। उन्होंने अपने पथ 'इन्विजेंट' की जो सन्देश दिया उसमें कहा कि उनका पथ भारतीय राष्ट्र की भावना की अवस्था के समक्ष उपस्थित रखेगा। उन्होंने मुठबन्दी, मुक्त कामप्रवासी तथा अवसर बाधिता की मारका की। 'इन्विजेंट' की नीति के सम्बन्ध में उन्होंने पथ दिया कि यह दल आसक्त सत्त पर दृढ़ रहेगा कि मानव धार्मिक के अधिकतर इस हेतु उपस्थित नहीं रहे या सत्ते कि वह उपस्थिता प्रवर्धित करने के लिए शीघ्र शीघ्र करने विचारित किया जान और न अपनी धार्मिक तथा

1. पणित मोतीलाल ने इन्विजेंट भाषण में भारतीयता के कहा था कि सविन्य की हीनता में विन्यास करने में। 'यह सम्भीर सत्त आसता था कि सविन्य की हीनता में विन्यास का, कल सत्ता सत्त में विन्यास मुक्त। 'यह सत्त का जल करते रहे थे। श्रीमती मेहुता ने जा उनके पास उठी हुई की सुनत कहा था कि यह हीनता की विनिय का थी कि कल सत्त सविन्य की सविन्य का जल कर रहे थे। *Life and Works of Pandit Motilal Nehru* मुद्राभाष और सम्बंधी दल सम्बंधित पृष्ठ 53।

2. भारतीयता का 1928 में सविन्य सविन्य में सम्बंधित भाषण।

नामाङ्कित बहुता और कूट के वातावरण में ही रहा भी जा सकती है। मोतीलाल पर अमेरिका के शीघ्र तथा राज्यीय अधिपान का प्रभाव पड़ा था। 1907 में उन्होंने ब्रिटिश समर की "भारत की होशियारी का अन्तिम निर्माण" कहा था, किन्तु 1919 में वे भारत के अधिपान के निर्भीक समर्थक बन गये। उन्हें इन बातों का कुछ था कि 1919 में भारत सामान अधिनियम में कोई अधिपान-रूप सम्मिलित नहीं किया गया था। उन्होंने कहा, "कोई अधिपान तब तक हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकता जब तक जब तक उन अत्यन्तपूज्य अधिपानों की मारपीत तथा घावना म हो जिसका अभी हाल में प्रभाव में प्रत्यक्षपूज्य उत्पन्न किया गया है। यदि भी भारतीय इस समय की स्वीकार किये बिना नहीं रह सकते कि हमारे मूल नागरिक अधिपानों की रक्षा सामाजिक महत्त्व का विषय है। कोई राज्यनीति इस वैश्व आवश्यकता की मददवाह नहीं कर सकती कि भारतीय जनता को अपने नागरिक अधिपान की अवधारणा में विस्थापित हो। यह स्पष्ट है कि भारतीय प्रतिस्था अधिनियम के लागू होने से तथा अनेक समर्थकों कागुनी तथा मैजिस्ट्रेट प्रणाली के स्थापित होने से देश में इन परम्परागत अधिपानों की डिमांड में देरी गयी है। इतिहास हम सिखाता है कि जहाँ नहीं जनता की स्वतन्त्रता ऐसी वास्तविकता के हाथों में रही है जिसे मनमाने कागुन बनाने का अधिकार हो बहुत स्वाभिमानी की प्राप्ति से बहुत अन्धता अपने सामान्य विधिक रूप में अधिपान की घोषणा अवश्य की गयी है।" नागरिकों की प्रतिष्ठा तथा प्रतिष्ठा के परिचय के लिए अधिपानों की घोषणा आवश्यक थी। इस प्रकार की घोषणा मया वह प्रतिष्ठित सामान की पुनरावृत्ति की रीति में सहज हो सकती थी। पञ्जाब के कुटुम्बों ने स्पष्ट कर दिया था कि उत्तराधिकारहीन शक्ति में निरुत्पन्नता तथा कथरता की प्रवृत्ति विद्यमान रहती है। भारतीयों के अधिपानों की घोषणा से ही देश की जनता की आवश्यकता सुरक्षा तथा सत्ता की मारपीत मिल सकती थी। इसलिए मोतीलाल ने कहा कि कांग्रेस बार बार अधिपानों की आवश्यकता पर बल दे चुकी है। 1919 में संयुक्त भारतीय समिति के समक्ष यह बात रखी गयी थी। गम्भीर की विवेक कांग्रेस तथा दिल्ली कांग्रेस ने भी इस बात पर बल दिया था कि वास्तविकता की अपनी शक्ति का दुरुपयोग करने से रोका जाय।

प्रथम विश्वयुद्ध विश्व की जीवनशक्ति के लिए निराश्रित बनने के लिए लड़ा गया था। किन्तु भारत में जीवनशक्ति अधिपान दिए जाने के प्रभाव शक्ति-राजनीति की दुष्प्र तथा सिद्धांतहीन व्यवस्था थीने दी गयी थी। शक्ति तथा सत्ता की विलम्बितप्रभुता प्रभावों के कारण प्रथम पाठक तथा विपक्ष उत्पीड़न का दोषपाता था।³ मोतीलाल ने चेतावनी दी कि पञ्जाब के समर्थकों काधारण समर्थक टाल देना उचित नहीं है। उनका यह कहना उचित था कि आधुनिक तथा नागरिकताओं का प्रभाव प्रभाव के वैश्व व्यवस्था में बन्द कर देता है। किन्तु इतिहास में वैश्व प्रतिष्ठित वा की विलक्षण नियम बना रहता है उसके अनुसार आकाशवाणी प्रभाव प्रभाव उत्पीड़न की भी शक्ति कर देता है। यह उसकी सदैवनीयता तथा राजनीतिक सहानुभूति की वृद्धि कर देता है। इस प्रकार यह उत्पीड़न के प्रति की गम्भीर आपात पहुँचाता है। मैजिस्ट्रेट तथा कुछ निरुत्पन्नता पर आधारित प्रभाव सर्वत्र पहुँच तथा घोषणा का परिचय दिया करता है और वे भी सत्य सिद्धांत तथा आवश्यकता का उपलब्ध करती है। यदि भारतीयों को अपने अधिपान प्राप्त करने के लो उनके लिए निर्भीकतापूर्वक अधिकतम राजनीतिक प्रभाव बनना आवश्यक था। पञ्जाब के अन्तर्गत इस बात की चेतावनी थी कि उत्तराधिकारहीन सत्तावादी प्रभाव सम्प्रदाय के लिए गम्भीर सत्ता होता है। मोतीलाल ने कहा, 'यस्युक्त दृष्टिकोण को चाहिए कि हमसे समर्थकों की ओर उक्त स्थिति का मत करे जिससे कारण उनके ही उत्पन्नियों में इस प्रकार की परभाव परती है। यदि हमारा जीवन तथा सम्मान उत्तराधिकारहीन वास्तविकता तथा सेवा की गुण पर निर्भर है, और यदि इन सामान्य मानव अधिपानों से वंचित किया जाता है तो सुधार की सारी बातें बेकार पड़ती हैं। स्वतन्त्र नागरिकता के बिना सामाजिक सुधार कैसे हो है जैसे कि कृत शरीर

3 2 वर्षों की 1919 की एक वर्ष की अवधि का प्रभाव मोतीलाल ने कहा था कि रीति विचारक न। वह उन विभिन्न रूपों में विभिन्न तथा बात का उल्लेख करता है।

आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन

पर धमकाते रहने । बिनाये वहुमत ईश्वर की सहायता से मुन्दरतम वक्ताओं ने विपदा हुआ साथ रहने में नहीं अपना है ।"

सोशलिज्म स्वतन्त्रता के उपायन थे । स्वतन्त्रता की माँग है कि सामरिज की मजिद स्वतः सृष्टि का सम्मान निया आप । उनका विश्वास था कि जो बानून आताया की पुनार न विवरीत है उसका पालन करने से इनकार करना हर सामरिज का अधिकार है । यद्यपि माझीज्म एक महान विधिबेता थे, किन्तु ये विधिबेता के विप्लावन सम्प्रदाय के अनुयायी नहीं थे । वे विधि-व्यवस्था की मजिद आपरा पर दावा करता चाहते थे और ऐसे बानूना की अन्त में पक्ष में दा सामरिज की दृष्टि अन्त तथा वैदिक धर्मिता का आपरा नही है । इस प्रकार गांधीजी की मजिद सोशलिज्म की दृष्टि अन्त, 'चाप तथा आकासीनी की कमीटी पर घरे नहीं उतरा । किन्तु वे बानून का पालन करने के लिए हिया के प्रयोग की स्वीकृति देने के लिए तयार नहीं थे । हिया अन्तरीन अहिंसात्मक तरीके से सम्प्रदाय बानूना का उल्लापन करना आवश्यक था । अतः अन्तरीन अहिंसात्मक मार्ग में उन्होंने बहा था, 'हर मनुष्य का अधिकार है कि वह उन बानूना का पालन करने से इनकार कर दे जो उसकी अंतर्गता क विरुद्ध हैं और विनया पालन करना साथ के अनुमूलन नहीं है । साथ ही साथ उसे इस प्रकार की अन्त में के परिधान की मुक्तने के लिए भी उद्यत रहना चाहिए । जो बानून जगता की दृष्टि के विरुद्ध हैं उनके सम्प्रदाय में यह बात विशेषकर लागू होती है । जब तक हम न के पुन नहीं हैं जब तक हम न स्वतन्त्र हो सकते हैं और न स्वतन्त्रता के पान ही नही का सकते हैं । स्पष्ट है कि वहाँ सोशलिज्म गांधीजी की आपरा का प्रयोग कर रहे हैं । सोशलिज्म की आपरा नियम के सिद्धांत में विनया था ।" मद्रास कांग्रेस ने जिस सम्प्रदाय की विप्लाव किया उसने सोशलिज्म की अन्तरीन न कार्य निया और एक सम्प्रदाय के रूप में औपनिवेशिक स्वराज के लक्ष्य की स्वीकार कर लिया । नेहरू रिपोर्ट सोशलिज्म नेहरू तथा तीस महापुर हनु की सविधान निर्माण की मोदता का सम्प्रदाय प्रभाव है । यद्यपि अनेक अन्तरीन सम्प्रदाय के रिपोर्ट का हृदय में सम्पन्न नहीं किया, फिर भी प्रत्यक्ष अन्त 'चापक उदाहरण का हृदिक नौल देखने की मितता है । 1928 की कलकत्ता कांग्रेस के अन्त अन्तरीन सम्प्रदाय में उन्होंने काय के लिए औपनिवेशिक स्वराज का सम्पन्न इसलिए नहीं किया कि वे उस देश के लिए उन्मत्त राज-नीतिक आवास मानते थे, बल्कि इसलिए कि उस समय वही उन्मत्त सम्प्रदाय लक्ष्य जान पड़ता था । कलकत्ता कांग्रेस के औपनिवेशिक स्वराज का आरम्भ इस बात पर स्वीकार कर लिया कि विदित सरकार उसे 31 दिसम्बर, 1929 से पहले ही प्रदान करदे, अपना वह 1927 की मद्रास कांग्रेस के स्वीकृत पुन स्वराज्य की माँग की पुन अपना ल्येव बना लेगी । जनम्बर 1929 में गांधीजी तथा सोशलिज्म नेहरू न शास्त्रात्मक दाद इरविज के मेट की और उसने वह किया कि कांग्रेस मोलयेव सम्पन्न न इस बात पर सम्मिलित हो सकती है कि सम्पन्न नारा न लिए ओन निवेशिक स्वराज देने की प्रभावी निमित्त करने के लिए पुनराया था ।

सोशलिज्म नेहरू का विश्वास था कि 'राजनीतिक साथ सभी ओर रूप धारण कर सकता है जब उसे मुद्रा सामाजिक आधार प्रदान किया जाय । इसलिए रानाडे, मोलये और गांधीजी की मजिद उन्होंने भी अन्त पुनार पर बल दिया । 1928 की कलकत्ता कांग्रेस में उन्होंने राजनीतिक स्वायत्तता तथा सामाजिक मुक्ति की माँग के लिए एक नीवनी सम्प्रदाय प्रस्तुत किया ।

(1) सार्वभौम सम्पन्न में स्वीकृत सामाजिक हल की मित तथा मज द्वारा प्रचार करने का प्रचार काम करना शायद ही अधिकार हो कि सामाजिक विपदा में सम्पन्न न जो विपदा मिते है उनसे अतिरिक्त पुन मज पुनार करना चाहें ही नरते ।

- (3) अछूतो तथा दलित जातिया के बीच पाप ।
- (4) मेरिहूर तथा औद्योगिक शक्ति का संगठन ।
- (5) अर्थ नीति-संगठन ।⁵
- (6) एहूर की सोवियत इनामा तथा विदेशी भाषा का बहुल्यार ।
- (7) उन सामाजिक रुढ़िया के विरुद्ध आन्दोलन जो सामाजिक नैतिकता तथा राष्ट्रीय विकास के साथ दालती हैं, विशेषकर यहाँ तथा हिन्दो की निबल बनान वाली अर्थ रुढ़िया के विरुद्ध समिधान ।
- (8) मध्यम तथा अधीम के विरुद्ध पोर प्रचार ।
- (9) प्रचार पाप ।

3 निष्पत्ति

भोलीलाल नेहरू 1919 से 1921 तक के काल में भारतीय राजनीति के एक अपनी नेता थे । भारतीय विधान तथा म प्रतिपक्ष के नेता के रूप में उन्होंने अद्भुत प्रतिभा का परिचय दिया । अपनी बोद्धिबल शक्तिया तथा हृद अन्वेषण का कारण वे भारतीय दल के लिए आन्दोलन का संचालन बन गए थे । उनकी देशभक्ति सम्मोह थी, तथा वे बहुत ही निर्भीक और स्वातन्त्र्यवादी थे । उन्होंने नेतृत्व तथा सार्वजनिकता का विनम्र उदाहरण प्रस्तुत किया । उन्होंने बलनगंगा कांग्रेस (1906) तथा मूरत (1907) के एक मित्रवादी के रूप में अपना राजनीतिक जीवन आरम्भ किया ।⁶ किन्तु 1919 के पहले राष्ट्रवादी बन गये । विचारजन दास के साथ मिलकर उन्होंने स्वराज्य दल का निर्माण किया जो दल समय का स्वायत्त दल बन म समर्थित दल था । 6 फरवरी का अपने अवस्थित समय में महारण गांधी ने बहुत ही भोलीलाल नेहरू का जीवन राष्ट्र की विरुद्ध प्रेरणा देता रहेगा ।

भोलीलाल नेहरू के राजनीतिक विचारों में अद्भुत व्यापकता देखने को मिलता है । यद्यपि वे राजनीतिक दार्शनिक नहीं थे, किन्तु वे योग्य राजनैता तथा तैयारी प्रदान करने के थे । वे चाहते थे कि भारतीय राजनीति में आन्दोलन तथा मध्यमवाद का सम्बन्ध हो । वह साम्यवादिक मोक्षोत्तर आदर्शों में विश्वास नहीं था । उनकी विचारों में राजनीति और आदर्शों में भी भिन्न अन्वेषण तथा स्वातन्त्र्य परियोजना के द्वारा समझावृत्त किया जा सकता था । विचारों के काम दिया निर्धारित नहीं की जा सकती थी । किन्तु साथ ही साथ वे उन विचारों के प्रथम तथा सार्वजनिक विवेचन का पना समय मन्द नहीं करता चाहते थे किन्तु सामाजिक तथा राजनीतिक वास्तविकता के कोई सम्बन्ध नहीं था । 1928 की बलनगंगा कांग्रेस में उन्होंने जो अन्वेषण प्रदान किया वह राजनीतिक मध्यमवाद का सुन्दर उदाहरण है । गांधीजी राजनीतिक आन्दोलन के साधनवादी थे, इसके विपरीत भोलीलाल राजनीति में मध्यमवाद का समर्थन करते थे ।

राजनीति की मध्यमवादी दिशा देने के अतिरिक्त भोलीलाल ने ऐतिहासिकता का भी ध्यान दिया । मुक्त-मुक्त मध्यमवादी होने के कारण उनके लिए ऐतिहासिकता का समर्थन करना सरल भी था । वह किसी भीकातर वरम सत्ता में आस्था नहीं थी । इसलिए उनकी उन कट्टर धर्मा था वे साथ ही ही मध्यमवादी नहीं थी जो राजनीति में समतावादीय मध्यमवादी तथा मध्यम दुर्भावों को प्रविष्ट करना चाहते थे । उन्होंने राजनीतिक क्षेत्र में उस समय नेतृत्व किया जब साम्यवादिक तथा मध्यमवादीय विचारों की बीच धार्मिक समतावादी के कारण स्वातन्त्र्य दल की एकता भी मन्द हो रही थी । किन्तु साम्यवादिक विचारों ने उस समतावादीय काल में भी भोलीलाल ने अपने माधमी तथा गांधी के द्वारा भारतीय राजनीति में ऐतिहासिकता के विचारों को बल दिया । वे समतावादी का समाज-वादी, राजनीतिक तथा आर्थिक स्तर पर विवेचन करता करते गये थे । किन्तु धार्मिक कट्टरता

5. भिन्न भोलीलाल नेहरू ने *Independent* में एक लेख किया था जो अक्टूबर 13, 1920 की *Young India* में प्रकाशित हुआ था । उसमें उन्होंने बलनगंगा का देना करने वाली के अर्थों की थी । उनमें उन्होंने पक्षधरों का संगठन पर भी बल दिया था ।

6. 29 मार्च, 1907 की मूरत कांग्रेस के प्रथम का नील सम्मेलन के अवसर पर अपने सम्बोधन में नेहरू ने कहा था, "मैं अपने अहिंसावादी विचारों के बहुत से विचारों को प्रस्तुत नहीं करूँ । किन्तु साथ ही साथ मैं अहिंसावादी को समर्थन प्रदान करने की उम्मीद करता हूँ ।"

के वह पना थी। वे राजनीति तथा धर्म को एक दूसरे से पृथक् करना चाहते थे। व उनमें है किता एन को दूसरे का मान्य नहीं करता चाहते थे। यह सब है कि मोतीलाल ने अपने राजनीतिक विचारों को स्पष्ट विचारों में रच म आरणा नहीं की है, फिर भी देश म उनके शक्त तथा उनके राजनीतिक मान्यता के भारतीय राजनीति में ऐतिहासिक के विकास म महत्वपूर्ण थी है। अत बिना प्रतिवाद के हम के हम यह कहत है कि मोतीलाल न भारतीय राजनीति म काफी तथा ऐतिहासिक विचारों को बन बिना है।

प्रकरण 2

वितरजन दास

1. प्रस्तावना

देवाचणु वितरजन दास (1870-1925) कवि, विधिवेत्ता ईश्वर मठ तथा देश के ए महानतम राजनीतिक नेता तथा योद्धा थे। उनका ज म सकलता म 5 नवम्बर, 1870 को हुन का और 16 जून, 1925 को पार्लियामेंट में उनका स्वयंकाश हुआ। जब वे सदन म (1890-1892) विचारों के उस समय उन्होंने दास नई मोरीजी के चुनाव अधिवेशन में भाग लिया था। 1908 में वितरजन दास ने अलीपुर का समय अधिवेशन में अखिल मोर की समर्थन वाली की। उन्होंने साथ कविता सह प्रकाशित किने 'मल्ल' (1895), 'माता' (1904), 'अनर्वासी' (1915), 'मिर्झा-मिर्झा' तथा 'सागर समीप' (1913)। उन्होंने 'सागर' नामक एक वफावादी मासिक पत्रिका प्रारम्भ की। 1915 म वे अपना साहित्य सम्मेलन के पदना अधिवेशन के समापति चुने गये। उन्होंने कुछ वैचारिक जीवन की लिखे। अक्टूबर 1923 म उन्होंने अपना पत्र 'परिचय' प्रारम्भ किया।

1917 म वितरजन दास ने अपना राष्ट्रीय सम्मेलन के अलीपुर अधिवेशन का सभापति किया। 1918 म वे सम्मेलन में हुए कांग्रेस के विरोध अधिवेशन म सम्मिलित हुए और अखिलभारतीय कांग्रेस के विरोध म भाग लिया। वे उस कांग्रेस साथ समिति के समय में जो 1919 के अधिवेशन के विरुद्ध थे। अक्टूबर कांग्रेस म उन्होंने उन लोगों का नेतृत्व किया जो उस अधिवेशन की स्वीकृति के तथा मोर्चों के प्रति हठमत्ता प्रकट करने के विरुद्ध थे। वितरजन दास कांग्रेस के विरोध के। वे परिचय के द्वारा आन्दोलन प्रकट करने के रख थे थे। इसलिए वितरजन दास 1920 म उन्होंने महात्मा गांधी द्वारा प्रस्तावित अखिलभारतीय आन्दोलन का विरोध किया। वे अखिलभारतीय आन्दोलन का विरोध करने के लिए नागपुर अधिवेशन म भी एक बड़ा जवाब लेकर पहुँचे थे। वितरजन दास उन्होंने गांधी जी का कार्यक्रम स्वीकार कर लिया। 1921 में वे खरीद, मन तथा वस्त्रों के लिए उन्हें देशवाचु कहने लगे थे। देश की वस्तु उनके प्रति अपना श्रेष्ठ प्रतिक्रिया के विरुद्ध आन्दोलन का समर्थन करने के लिए अधिवेशन हुआ। 11 दिसम्बर, 1921 को उन्हें कांग्रेस छोड़ दिया गया, और जुलाई 1922 म वे मुक्त कर दिये गये। उन्हें अखिलभारतीय कांग्रेस का सभापति चुना गया। विरुद्ध उस समय उनके अधिवेशन का 'साहित्य' प्रकाश हो रहा था और व कांग्रेस अधिवेशन का समापति किया। कांग्रेस के मुक्त होने के बाद वितरजन दास कांग्रेस का सभापति चुन लिये गये।

1923 म वितरजन दास ने अखिल भारतीय स्वयंकाश दल की स्थापना की। वे स्वयंकाश दल का नाम कांग्रेस विचारों के विरुद्ध दल रखा गया। मोरचा म कहा गया कि 'अखिलभारतीय स्वयंकाश दल' का नाम कांग्रेस विचारों के विरुद्ध दल रखा गया। मोरचा म कहा गया कि 'अखिलभारतीय स्वयंकाश दल' का नाम कांग्रेस विचारों के विरुद्ध दल रखा गया। मोरचा म कहा गया कि 'अखिलभारतीय स्वयंकाश दल' का नाम कांग्रेस विचारों के विरुद्ध दल रखा गया।

करना" दल का नईदम है।" दास तथा नेहरू के अतिरिक्त दल ने अथ प्रमुख सदस्य के विरुद्ध भाई पटेल, हकीम अजमल खाँ, एन सी वेल्डर, एन आर जयकर, बी अम्बर तथा बी एन रंगा अम्बर। स्वराज दल ने राष्ट्रीय परिषदी तथा भारतीय विधान सभा के चुनाव लड़े। दास प्रतिष्ठ के मुख्य नेता के रूप में प्रकट हुए तथा बंगाल की सरकार के लिए तबभुन आतक का कारण बन गये। अपनी अत्यन्त हृदयवाही तथा मानवक्यापूर्ण वक्तव्य के द्वारा वे सरकार के अनेक महत्वपूर्ण प्रस्तावों को परास्त करने में सफल रहे, जिससे सरकार बंगाल के गवर्नर की उनमें से कुछ प्रस्तावों का पारित करने के लिए 'प्रमाण' के अधिकार का प्रयोग करना पड़ा। दिल्ली में हुए कांग्रेस के विशेष अधिवेशन के स्वराज दल तथा परिवर्तन विरोधियों में तबभीला हो गया। 1924 में महात्मा गांधी तथा चित्तरञ्ज दास ने बीच समझौता हो गया जिसने कलकत्ता कांग्रेस ने स्वराज दल की अपने परिषदी में प्रवेश करने वाले एक पक्ष के रूप में स्वीकार कर लिया। 1925 में हुए कानपुर के कांग्रेस अधिवेशन में स्वराज दल कांग्रेस में विलीन हो गया। 1924 में चित्तरञ्ज दास कलकत्ता नगर महासमितिको ने प्रमुख निर्वाचित हुए।

चित्तरञ्ज दास कृषि का पुनरुद्धार करने के पक्ष में थे। उन्होंने यूरोपीय इन के भारत का औद्योगिकरण करने का विरोध किया। किन्तु वे व्यापार तथा वाणिज्य की बढ़ि के पक्ष में थे। वे चाहते थे कि जिन उद्योगों में सफल होने की सुवादृश हो उनके लिए सस्ते म्वाल पर पूनी का प्रमाण किया जाय। वे धन की निहित शक्ति की मती भाति समझते थे। उन्होंने 1923 में अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन काँग्रेस का समापनविषय विषय और निमापनशास्त्री के सम्मन्धित बानूना का तथा उद्योगी में काम करने वाले मजदूरों की शमसथा में समझित करने का समयन किया। अपने मापन में उन्होंने प्रतिता की कि यदि मध्यवर्ती में अपन लिए स्वराज प्राप्त किया तो वे अविना तथा किसानों के हितों के लिए लपन करैया। दास ने 1924 में भी अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस के अधिवेशन की अध्यक्षता की।

चित्तरञ्ज दास स्वराज के लिए लपन करने वाले विपरीत योद्धा थे। वे स्वायत्तरहित तथा काहसी थे। वे राष्ट्र के एक महान्तरण प्रतिनिधि थे। साथ ही साथ वे उष्णकोटि के राजनीतिक भी थे, और उनके राजनीतिक विचारों में यौनिकता थी। उन्होंने कांग्रेस के अधिवेशनो में, बंगाल की परिवद तथा सावजनिक समाज में जो मापन दिये उनसे प्रकट होता है कि उनकी बुद्धि अत्यन्त तीव्र थी, और वे तत्कालीन राष्ट्रीय तथा अन्तरराष्ट्रीय सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं की मनीमालि समझते थे।

2 चित्तरञ्ज दास के राजनीतिक विचारों का दलनिक आधार

चित्तरञ्ज दास न एक ब्रह्मसमाजी थे न्च में अपना जीवन आरम्भ किया। किन्तु ऐन्दवर-वाद तथा बुद्धिवाद उनकी भावना की मनुष्ट न कर सके। अत आने चलकर वे वैष्णव हो गये। उनके हृदय में अपने की सर्वोच्च निकलनासील मता में लपन कर देने की उत्कट भावना थी। गांधी जी' में अपनी एक कथिता में वे लिखते हैं

"जस दूसरे लट पर रहस्यमयी ज्योति जल रही है
की महीं न कभी दमाल में जलती है और न सप्ता वेला में।
क्या आनन्द, अनन्त सवीत उसी लट पर नू यता है
जिसे महीं वाणिज्य बाध-मया से कभी किसी न गही गुला ?
क्या महीं भी कोई बीछ है बेरी जालि लपना से आनन्द
इस व्यास में कि कोई अज्ञात समस्या आकर उसकी आत्मा की पुलकित करे ?

7 एक मापनकारी आलोचक तथा विद्वान्तरण के रूप में लिखत हुए मापनोद्धारण दास न सरकार दल के आसन्न की वे विरोधार्थ अनायी की (1) कपिलवारी सामाजिक सुवास (2) विदित साधन के अत्यन्त यौनिकिक शक्त, और (3) यूनीकल का समाज विचार। एम एन राज, *One Year of Non-Cooperation* पृष्ठ 180।

क्या हृदय वा स्वप्न नहीं साकार हुआ है ? क्या तारी अग्रजिन आत्मा
जिसे हम दूध रहे हैं वही लक्ष्य रूप में पुनः तेज के साथ प्रकटवर्तित है ?
हे शक्तिमान् ! मेरे हृदय की कृपा
अव्यक्त गहरी और अतृप्त है ।

हे करधामय ! तुम्हें अपनी नीरस अथाह विद्या में कुबो द
अवकाश में चल मुझे उस तट पर जिसे कभी कोई नहीं छू पाया ।

क्या मेरी आशाओं में स्वप्न जाड़त रहा पुरे नहीं होय ?

क्या मेरी निष्कल आत्मा ऐबीमय, ऐक्यवाक और विशाल नहीं होती ?⁸

दास वैष्णव थे, अतः वे सम्पूर्ण इतिहास तथा विश्व की ईश्वर की अभिव्यक्ति मानते थे । ईश्वर प्रकृति तथा इतिहास में व्याप्त है । यह ब्रह्माण्ड के भीतर है । जीवन से पूर्ण ईश्वर की वरपणा नहीं की जा सकती और न ईश्वर के पृथक् जीवन की कल्पना की जा सकती है । हेमंत तथा अरविन्द की भाँति दास का भी विश्वास था कि इतिहास ईश्वर की आत्मा का नोशाकन है । उन्होंने कहा, "सत्य की कसौटी तात्त्विक परिभाषा नहीं है । सत्य की कसौटी उस लक्ष्यात्मकारी शक्ति में है जिसने द्वारा वह अपनी प्रतीति बना देता है । अतः सत्य को हमी जानते हैं जब आपका उसकी अनुभूति हो जाती है । ईश्वर की परिभाषा नहीं की जा सकती और न सत्य की ही परिभाषा की जा सकती है क्योंकि सत्य ईश्वर की अभिव्यक्ति है । मैं इतिहास की ईश्वर की अभिव्यक्ति मानता हूँ । मैं हर वस्तु के अस्तित्व को, राष्ट्र और मानव जाति को को एक दूसरे के जीवन में बीज देते हैं, ईश्वर की अभिव्यक्ति मानता हूँ । मैं समझता हूँ कि व्यक्ति तथा राष्ट्र स्वराज प्राप्त करने की अपने को पुनः कर सकते हैं । मैं राष्ट्रीय कार्यकलाप की उस मानव जाति की सेवा का आधार मानता हूँ जो स्वयं ईश्वर की अभिव्यक्ति है ।"⁹ दास विश्व की सृष्टि की सीला मानते थे । ईश्वर का देवत्व अपने की चेतन तथा अचेतन दोनों प्रकार की सत्ता के द्वारा व्यक्त करता है । प्रकृति तथा इतिहास ईश्वर की अभिव्यक्ति है । अतः विश्व की सभी वस्तुएँ अनिवार्यतः ईश्वी गुणा के मुखरित होने लगती हैं । ईश्वर की सीला अपने का विविधता तथा तानवस्व दोनों के रूप में व्यक्त करती है । ईश्वर इतिहास है तथा विश्व की उस अवस्थित घटनाओं का एकमात्र दृष्टा है जिसने इतिहास का निर्माण होता है ।¹⁰ दास लिखते हैं, "सब तथ्या का सार यह है कि ईश्वर की आज्ञा सीला अपने की इतिहास में व्यक्त करती है । व्यक्ति, समाज, राष्ट्र तथा मानव जाति उसी सीला के विभिन्न पक्ष हैं । स्वराज की कई योजनाओं व्यावहारिक दृष्टि से सत्य हो और वास्तव में व्यावहारिक हो, हमने अतिरिक्त समय किसी जीवन दशन पर आधारित नहीं हो सकती । इस सत्य का माधानकार करता ही समय की सर्वोच्च आवश्यकता है । यही भारतीय चिन्तन का ज्ञान है और यही यह आदेश है जिसकी ओर अनापीन यूरोप का चिन्तन धीरे धीरे निरुत्तर निरिक्त रूप से अग्रसर हो रहा है ।"¹¹ चित्तरजन व अनुवाद वैष्णवों की यह धारणा कि इतिहास में ईश्वर व्याप्त है, वस्तुतः स्वतन्त्रता का सिद्धांत है । हर व्यक्ति चाहे वह किसी जाति और पक्ष का हो, इतिहास की पुनीत प्रक्रिया अथाह सीला में सम्मिलित है । दास लिखते हैं, "क्या नहीं कभी मानव आत्मा की परिभाषा तथा स्वतन्त्रता का इससे अधिक भेद सिद्धांत प्रतिपादित किया गया है ?"¹² इतिहास की इस हेतुवादी वैष्णववादी धारणा पर ही दास न अपने स्वराज के सिद्धांत का निर्माण किया ।

अर्किम, दास तथा अरविन्द की भाँति दास भी भारतीय राष्ट्र के देवत्व में विश्वास रखते थे । उनका कहना था कि भारत में राष्ट्र का विकास परिणाम से नहीं किया गया है । राष्ट्र उस सत्ता के एक पक्ष का विभक्त रूप है जिसमें ईश्वर व्याप्त है । अतः जो राष्ट्र की सेवा में अर्पित करता वस्तुतः मानव जाति की सेवा के समन्वित करता है, और मानव जाति की सेवा ही ईश्वर

8 *Songs of the Sea* (जी नवीन व न अरिजी अनुवाद) ।

9 चित्तरजन दास का 1922 की कथा नालेन व अन्वेषणीय भाषण ।

10 *C. R. Das's Speeches* पृष्ठ 209 ।

11 चित्तरजन दास का 1922 का कथा नालेन व अन्वेषणीय भाषण ।

12 *C. R. Das's Speeches* पृष्ठ 203 ।

है। इस प्रकार दास वैष्णवी ने देशस्वायत्त को समाजवादीय अर्थ प्रदान करना चाहते थे।¹³ अक्टूबर की मीमोरांडम में अपने एक भाषण में उन्होंने कहा था, "अगर दस की धारणा में मैं देशत्व का ही उल्लेख करता हूँ।"¹⁴

3 दास के राष्ट्रवादी विचार

21 अगस्त, 1917 को दास ने वल्लभता में बंगाल प्रांतीय सम्मेलन का समापनित किया। अपने भाषण में उन्होंने प्रांत की बढ़ती हुई दीनता तथा प्रतितापस्वता पर दुःख प्रकट किया। उन्होंने मोहबिलास के पातकाल्य आदेश का विरोध किया और स्वायत्त की आवश्यकता पर बल दिया। वे देश के प्राचीन आदर्शवाद की पुनर्जीवित करना चाहते थे और राजनीति, अर्थशास्त्र तथा समाज-शास्त्र की समस्याओं का उसी दृष्टि से अनुशीलन करने के पक्ष में थे। वे जीवन की समष्टता की विभिन्न भागों में बांटने की पातकाल्य प्रवृत्ति के विरुद्ध थे। उनका कहना था कि राष्ट्रीय समस्याओं का यही समाधान स्वामी होगा जो भारत की सहज प्रवृत्ति के आधारभूत तत्वों पर आधारित होगा। दास ने गांधी के पुनर्स्थापन तथा कृषि व्यवस्था के पुनर्निर्माण पर बल दिया। वे चाहते थे कि लोग विदेशी वस्तुओं का आयात बन्द कर दें। उन्होंने चेतावनी दी कि वायसराय डग का उपयोगवाद देश के लिए घातक होगा। उनका कहना था कि वैकला के माध्यम से राष्ट्रीय डग की प्रभावकारी माँछा देकर ही प्रांत की वास्तविक प्रवृत्ति की आ सचनी है।

चित्तरंजन दास को हिंदुआ तथा मुसलमानों के हार्दिक सहयोग में विश्वास था। राष्ट्रवादी होने के नाते और विशेषकर अपने प्रांत बंगाल के नाथन में वे अंतर मीति को अचाने के पक्ष में थे। उन्होंने बंगाल के विभिन्न सम्प्रदायों के दावों के बीच तालमेल स्थापित करने के लिए एक तरीका बूझ निकाला जो दास 'अर्मूला' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। मध्य 1923 की कोकोनाडा कांग्रेस ने बंगाल समझौते को अस्वीकार कर दिया, किंतु 1924 में बंगाल प्रांतीय सम्मेलन ने उसका अनुसमर्थन किया।¹⁵

दास मनीषाति समझते थे कि शक्ति पर आधारित आक्रामक साम्राज्यवाद विप्लव शक्ति के लिए एक भारी सख्ता था। उन्होंने कहा कि भारत आक्रामक राष्ट्रवाद को सिद्ध नहीं करना चाहता है, वह तो अपनी आत्म विकास तथा आत्म-साक्षात्कार की शक्तों की वृद्धि करने का प्रयत्न कर रहा है। उनका कहना था, "राष्ट्रवाद ही वह माध्यम है जिससे द्वारा विप्लव शक्ति प्राप्त की जा सकती है। जिन प्रकार राष्ट्र के लिए व्यक्तियों का पूरा तथा अबाध विकास आवश्यक है वैसे ही विप्लव शक्ति के लिए राष्ट्रवाद के पूरा तथा अबाध विकास की आवश्यकता है। राष्ट्रवाद का सार यह है कि प्रत्येक राष्ट्र के लिए अपना विकास करना, अपनी अनिच्छित करना और अपना साक्षात्कार करना आवश्यक है जिससे मानव जाति स्वयं अपने की विवर्धित कर सके, अपनी अधि-स्थिति कर सके और अपने को साक्षात्कृत कर सके।" दास यूरोप ने आक्रामक तथा साम्राज्यवादी राष्ट्रवाद के आलोचक थे। विभिन्न-प्रकार प्रांत की शक्ति उन्होंने भी मान्यता दी अनुसरण करत हुए कहा कि जगत्ता के व्यक्तिगत का विकास ही राष्ट्रवाद है।

1921-22 में चित्तरंजन दास ने अहिंसालोक सहयोग का समर्थन किया। इस समयप्रवासी की उन्होंने राष्ट्र के आत्म-साक्षात्कार की शक्ति के लिए एक वैदित्य तथा आध्यात्मिक साधन बल लाया। 1922 में गया की कविता में उस व्यक्ति की जो किसी समय बलवत्ता का प्रमुख वैदित्यर रहा था गांधीजी की दीनी में आत्म गुडीकरण के वैद्यकी कीड सिद्धांत का उपयोग कर हुए दलना एवं अचमल प्राप्त की "राष्ट्रीय दृष्टिकोण से सहयोग की वृद्धि का अर्थ यह है कि राष्ट्र अपनी शक्ति पर ही अपना स्वायत्त वैदित्य कर और अपनी शक्ति के मत पर धरत होवे वा प्रयत्न कर। साधारणीकृत दृष्टि से सहयोग का अर्थ है आत्म गुडीकरण की वृद्धि अर्थात् उस जानी त पूर रहना जिसमें राष्ट्र के विकास की और अपने फलस्वरूप मानव जाति में बलवान वा आपात पहुँचता है। आध्यात्मिक

13 वही, पृ 111।

14 गुमाचरन मोर, *The Indian Struggle*, पृ 166 (प्रथमता, बार, लिख एवं बंगाली, 1948)

दृष्टि से स्वराज का अभिप्राय इस प्रकार है कि जिसे स्वराज की भाषा में 'प्रवाह' कहते हैं, इस प्रकार का प्रवाह इसीलिए आवश्यक है कि हम अपनी भाषा की गहराई में के राष्ट्र की अन्तर्गत की उसने समय एवम् के साथ निष्कास कर बाहर रख सकें।¹⁵ दास द्वारा प्रतिपादित राष्ट्रवाद की यह मूल्यी भाषा विवेकानन्द, विपिनचन्द्र दास तथा अरविन्द के साम्प्रदायिक राष्ट्रवाद के सिद्धान्त के अनुगम्य है। स्वराज में सम्मेलन में दास की भाषणा बहुत ही व्यापक और उदात्त थी।¹⁶ वे स्वराज की राजनीतिक स्वतन्त्रता की प्राप्ति तथा अवश्य विपरीततः भारत के अन्तिम पुनः स्थापक तथा व्यापक मानते थे। दास का मन बचनमुक्त था और उनकी बुद्धि तीव्र थी। उन्होंने इस बात की आवश्यकता का भलीभाँति समझ लिया था कि राष्ट्र का पुनर्निर्माण इन पुरानी मशीन की सम्मेलनाधीन का उद्मूलन करके किया जाना चाहिये जो देश के साम्प्रदायिक एकीकरण के साथ में भाषा समझी है। नया राष्ट्रीय सम्मेलन के करोड़पुत्र अभिवेक्षण में उद्गारे कदा का 'निन्दु' हम जिसे बहुत ही आवश्यकता है वह केवल स्वतन्त्रता नहीं है, हम स्वराज की स्थापना करना है। एकीकरण का यह काम सभी प्रशिक्षण है, अन्तिम बहुत कष्टसाध्य प्रशिक्षण भी हो सकती है, निन्दु इसके बिना स्वराज सम्भव नहीं हो सकता। इसी में महारामा दासी के रचनात्मक कामकाज की बुद्धिमत्ता है। मैं उस कामकाज में पूरा सहमत हूँ, और मैं अपने देशवासियों से बहुतबहुत अनुरोध किया जाता है कि वे इस कामकाज को केवल बौद्धिक स्वीकृति में न, बल्कि अपनी अधिक-पिण्ड रूप में व्यक्तित्व करके उसका साम्प्रदायिक सम्मेलन भी करें। दूसरे, स्वतन्त्रता से हम सम्मेलन के हम विचार का बोध नहीं होता जो स्वराज का सार है। मेरी समझ में स्वराज में बहुत निहित अभिप्राय यह है कि हम साम्प्रदायिकता के विभिन्न भाषा का एकीकरण करने के मामले में स्वतन्त्र हो, दूसरे, इस विषय में हम राष्ट्रीय ध्यान का अनुकरण करें। इसका अर्थ यह नहीं है कि हम बौद्धिक की हज़ार रूप दीर्घ चले कार्य बलि' हमें राष्ट्र की बहुत प्रगति तथा समाज को ध्यान में रखते हुए आप की ओर बढ़ना है। तीसरे, हमारे मामले में ध्यान है अपने कोई विदेशी शक्ति भाषा में नहीं।¹⁷ चित्तराज द्वारा निरूपित स्वराज का यह ध्यान अर्थात् स्वराज साम्प्रदायिक के विना में प्रतिपादित आदर्श से उत्पन्न विषय था। विदेशी आधीनता के नेत्राभा में स्वराज तथा स्वाधीनता अपना स्वतन्त्रता में भेद किया था। उन्होंने स्वराज की स्वाधीनता के समन्वय माना था, और स्वाधीनता अपना स्वतन्त्रता का अर्थ विदेशी धारण से पूरा मुक्ति लगाया था। दास ने कहा कि स्वाधीनता एक विदेशात्मक भाषा है क्योंकि अपना अर्थ स्वाधीनता का अभाव है। इस प्रकार दास ने स्वराज की अन्तिम रचनात्मक रूप प्रदान किया। उनके स्वराज की भाषणा में स्वराज सम्मिलित है, यदि उसका अर्थ हो, अपना 'गामन और अपने लिए'।

दास का स्वराज की भाषणा से बहुत तथा उत्साहपूर्ण अनुपान था। निन्दु स्वराज की प्राप्ति के लिए उन्होंने चारोंमुखी दिशा तथा अराजकताओं की कार्यप्रणाली की स्वीकृति नहीं की। 1924 में बंगाल में हिंसात्मक कामकाजियों पुनः उभर पड़े थे। दास ने उनकी मरणापी। फिर भी वे इसमें यथासंभव तथा निष्पक्षता से निन्दु हिंसात्मक कामकाजियों करने वाले युवकों का देख तथा आवश्यक राजनीतिक आशुवाद को यद्वाचनिक अर्पित थी। निन्दु दास ने चारोंमुखी दिशाओं का आधार पर तथा स्वराज दास की ओर राजनीतिक कार्यप्रणाली को ध्यान में रखते हुए राजनीतिक हत्या तथा कार्यकारी दिशा की पद्धति का स्पष्ट रूप में विरोध किया।¹⁸ उन्होंने साम्प्रदायिक तत्त्वों की भी समझ की और उन्हें अनुरोध किया कि वह धर्म धर्म का आ समाज आत्मवादी दिशा की ओर देखी है, अनुसरण में करें।

1925 में भारत सर्विज ब्रिगेडियरों में एक बैठक हुआ था जिसमें उनके समर्थकों की सम्मेलन का सम्मेलन किया था। 3 अप्रैल का चित्तराज दास ने पटना में एक बैठक जारी किया जिसमें उन्होंने भारत तथा स्वराज दास के बीच समर्थकों का आवश्यक मतभाषा। उन्होंने बंगाल के साम्प्रदायिक गवर्नर सिद्ध में बंगाल में अन्तिमकाल कार्यकाल का सम्मेलन में मुक्त भाषा आदर्श

15. अपने तथा अन्य (यह भाषण में चित्तराज दास के हिंसात्मक आशुवादों की निरूपण प्रणाली थी।

16. चित्तराज दास के कार्य 29 तथा बर्तन 4, 1923 में एक सम्मेलन।

की। उन्होंने शत यह रखा कि सभी राजनीतिक बन्दी मुक्त कर दिने कार्य और पुष्टि की होकर सभी घरवादी विभाग नमिषी की इस्तक़रिफ़ कर दिने कार्य। 2 मई, 1925 को फरीदपुर में दान ने एक महत्वपूर्ण भाषण दिया। उन्होंने सरकार के समस्त सम्मानपूर्ण सहयोग का प्रस्ताव रखा, किन्तु साथ ही साथ वे यह भी चाहते थे कि भारत की औद्योगिक स्वराज्य दे दिया जाय। उन्होंने कहा, 'आज औद्योगिक स्वराज्य किसी भी रूप में वास्तव नहीं है। वास्तव यह साम्राज्य के विभिन्न अंगों की सहमति पर आधारित एक सत्य अथवा समझौता है। उसका उद्देश्य पार-स्परिक भौतिक लाभ है और उसका आधार सहयोग की सच्ची भावना है। स्वतन्त्रतापूर्वक विवेक समझौते में पृथक् होने का अधिकार अनिवार्य निहित रहता है। एक ओर तो औद्योगिक स्वराज्य ब्रिटिश साम्राज्य नाम के अविहित महान राष्ट्रमंडल के प्रत्येक घटक की पूर्ण सुरक्षा प्रदान करता है, और दूसरी ओर वह प्रत्येक को अपने को साम्राज्यगत करने, अपना विकास करने तथा अपने को पूरा करने का अधिकार देता है।' किन्तु इस विषय में दास का दृष्टिकोण पूर्णतः सुनिश्चित तथा स्पष्ट था कि वास्तविक प्रत्येक राष्ट्र ने आत्मसाक्षात्कार, आत्मविकास तथा आत्मवृत्ता का है। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि यदि यह स्पष्ट सत्य ब्रिटिश साम्राज्य के अंतर्गत रहकर प्राप्त किया जा सके तो स्वतन्त्र भारत ब्रिटिश साम्राज्य में बना रहेगा, किन्तु यदि ब्रिटेन के साम्राज्यीय राजनीतिज्ञ ने 'जगत्प्राप के रथ' को कुचलने की पाल पत्ती तो भारत साम्राज्य के बाहर बना रहेगा। अपने फरीदपुर के भाषण में दास ने नौकरशाही के समस्त सहयोग का प्रस्ताव रखा, किन्तु शत यह भी कि नौकरशाही ने हृदय तथा नीति में भी परिवर्तन दिखायी दे। वे ब्रिटिश सरकार के इस बात की गारंटी चाहते थे कि "पूर्ण स्वराज निकट भविष्य में स्वतन्त्र आ जायगा।" किन्तु उनकी सलाह थी कि यदि नौकरशाही में परिवर्तन का कोई लक्षण न दिखायी दे तो राष्ट्र की पूर्ण मुक्ति के लिए द्विगुणित परिश्रम के साथ प्रयत्न करना चाहिए। ऐसी स्थिति में वे राष्ट्र का यह भी सलाह देने के लिए तैयार थे कि वह विदेशी शासकों को कर देना बन्द कर दे। यह सच है कि अपने फरीदपुर भाषण में दास ने सहयोग का समर्थन किया था, किन्तु वे सम्मानपूर्ण सहयोग के पक्ष में थे। वामपक्षियों का यह आरोप अनुचित था कि जब स्वराज्य एक भारतीय पुनर्जात का प्रतिनिधि था इसलिए दास अपने फरीदपुर भाषण में 'नितवादी नीति' के निम्नतम स्तर पर पहुँच गये थे।¹⁷

4 बितरजन दास का राजनीतिक दर्शन

(क) अधिकारों का सिद्धान्त—बितरजन दास ईश्वर की सन्मन्वापकता में विश्वास करते थे। उनकी वृत्ति आध्यात्मिक थी। इसलिए ही एक छीन की भाँति दास भी अधिकारों के प्रत्येक-वादी सिद्धान्त को मानते थे। उनके अनुसार अधिकारों की सृष्टि मनुष्य नहीं करता है। मनुष्य को अधिकार ईश्वर के प्राप्त होते हैं, और कोई मनुष्य उन्हें नहीं छीन सकता। राजनीतिक संस्थाओं का काम ईश्वर द्वारा प्रदत्त अधिकारों को केवल सम्भाल देना है। सांविधिक अभिविषय केवल उन अधिकारों को "सम्भाल देते हैं जो वृत्ते में विद्यमान हैं।"¹⁸

(ख) महान एशियाई सपना—गया कांग्रेस में दास ने महान एशियाई सपना का आकाश निकाल दिया। उन्होंने कहा, "इससे भी अधिक महत्वपूर्ण यह है कि भारत महान एशियाई सपना में सम्मिलित हो, मुझे दिखायी दे रहा है कि ऐसा सपना बनने की है। मुझे इससे श्रेष्ठ नहीं है कि सत्यसत्तावाद की आलोचना, जो कुछ सचीन आधार की बेहतर भावना तथा या समान्य होने वाला है और उसके स्थान पर समस्त एशियाई जातियों का एक महान सपना धरेगा। यह एशिया की उत्पीड़ित जातियों का सपना होगा। क्या भारत उस सपना के बाहर रह सकता है?" दास ने आपाज में एशियाई सपना में समझने में रोमांचपूर्ण भाषण दिये। उनके बहानों की जनता में भारी उत्साह उत्पन्न हुआ और उसने सपना के विचार को सत्यसत्तावाद का अन्तर्गत विचार मानकर उसका स्थापित किया।¹⁹ दास एशियाई सपना के सम्बन्ध में वचनबुद्ध बड़े उत्सुक थे। 1925 में उन्होंने अपने एक

17 एम एन दास *The Future of Indian Politics* पृष्ठ 72।

18 *Speeches of C R Das* पृष्ठ 268-70 (नमस्कार, बनारस, दास एम नमस्कार)।

19 एम एन दास, *Muhammad Ali Jinnah*, पृष्ठ 302 (आज़ाद एम एम दास, 1945)।

विषय से भारत में एक दृष्टिकोण के परिचित अवलोकन करने के लिए रवीन्द्रनाथ टैगोर का दस्तावेज सामान्य का अनुलोपन किया।²⁰

(घ) रानी मातासंवाद—राज की मुद्रि इतनी तीव्र थी कि उन्होंने अपने समय की प्रमुख आर्थिक अवस्था को बलीभाति समझ लिया था। वे "नए प्रतिष्ठ के लिए स्वराज्य" के आदेश का समर्थन थे इसलिए उन्होंने समाजवादी विचारों के महत्व को स्वीकार किया। उन्होंने धर्मनिरपेक्ष (नॉन-रेलियाज) विचारधारा का समर्थन किया। कांग्रेसी श्रेष्ठा में उन्हें सामर्थ्य की समझा जाता था।²¹ स्वराज्य देश में मोतीलाल आनन्दार विचारों का प्रतिनिधि थे इसका विपरीत दादा का दृष्टि कोण उदार तथा सामर्थ्य की था। बिजु दास रानी काचित ने सम्पादित अतिवाद तथा हिंसा को सहन नहीं कर सकते थे। उनका विचार था कि कम की अवस्था तथा महान प्रकृति मिलना योग्य युक्ति, हालांकि, वेनोडिन्स्की और ओबोदकिन की वरमराया में हुआ था, अवश्य ही अपने ऊपर बलपूर्वक मातृवादी सिद्धांतों के बोधे जान के विरुद्ध विद्रोह करेगी। विम्वर 1922 के उन्होंने मोलना की थी, 'हाल की स्थिति का अध्ययन करना क्या ही रोचक है। उसका भाव को रूप धारण कर लिया है जलवा मुख्य कारण यह है कि न्याय की जगह पर मातृवादी सिद्धांतों तथा मतवादी की उसकी दृष्टि के विरुद्ध बलपूर्वक बोधों का प्रयत्न किया जा रहा है। हिंसा के विरुद्ध हाजी। यदि वेग निवृत्ति का अध्ययन करेंगे तो मैं एक दृष्टिकोण की आशा कर रहा हूँ। कम की आत्मा अपने का राज सामर्थ्य के मतवादी का मुक्त करने के लिए अवश्य ही समर्थ करेगी।'²²

(घ) मातृव जाति का तथ्य—दादा ने 'मातृव जाति के तथ्य' की भी पुष्टि की करतना की थी। उनसे इस दृष्टिकोण के दृष्टिकोण से स्पष्ट है कि वह महान देशभक्त विचारधारा का भी कल्पना कर सकता था। दादा 'विश्व तथ्य तथा 'राष्ट्र की कथा' के आदेश के प्रेरणा मिली थी। 14 अक्टूबर, 1917 का भारतीयों में उन्होंने एक भावना दिया था। उसमें उन्होंने तब राष्ट्रों के साथ की स्पर्धा प्रमुख की जिसे 'दान अवस्था' में साम्राज्य किया जाता था। य बाद अवस्था की (1) पूरा प्राचीन स्वायत्तता, (2) भारतीय राष्ट्रीयवाद को साम्राज्य करना (3) साम्राज्य की साथ सरकार मिलने भारत, आनुविधाय, अन्तर्गत सम्मिलित होय और निम्न विधि तथ्य भी अपने प्रतिनिधि मेनेकी, और (4) सब राष्ट्रों का तथ्य।²³ उन्होंने कहा 'यदि हमी दूर तथा अवस्था प्रकृति के विषय में मातृव जाति के साथ की स्वायत्तता हो सकी तो वह इसलिए होता कि विश्व का विभिन्न राष्ट्र अपनी निजी विशेषताओं के पूरा विचारों की अवस्था का प्राप्त कर चुके, और देश यह हद विवर्तन है कि जिस समय ऐसी स्थिति आ जायगी उस समय विश्व के कल्याण के लिए राजाओं तथा राज्या की राष्ट्रों तथा राष्ट्र जाति का अधिक आवश्यकता नहीं रहेगी।'²⁴

3 विवरण

दादा एक राष्ट्रवादी थे, और देश की पूजा में उन्होंने एक भेष के उत्साह और भावों का परिचय दिया। उनसे 'राजनीति' व्यक्तित्व में हम एक प्रतिष्ठित मनीष के-के ज्ञान तथा स्वायत्तवादी चिन्तन और स्वराज के लिए मातृकता तथा अवस्था के मुक्त उत्पत्ति का तथ्य देखने को मिलता है। दादा की मातृक भावना 'आत्ममाता' और 'आत्मविश्व' तथा 'आत्मपूजा' के अवस्था के लिए' दुनवर रही थी। उनकी स्वराज की धारणा बली स्वातंत्र्य थी। उनकी मान्यता थी कि राजनीति का आधार जाति की सम्पत्ति होता चाहिए। वे यह भी मानते थे कि पूरा कल्याण का प्रतिरोध करना मुख्य का अवस्था अवधारण है। उन्हें मूल अधिकारों के सिद्धांत में भी विश्वास था। इन्होंने अतिरिक्त उनसे लिए स्वराज का अर्थ वेवसाय 'राजनीतिक स्वायत्तता' नहीं था। य

20 *Life and Times of C. R. Das*, पृष्ठ 224।

21 यी ना राज में *Life and Times of C. R. Das* के पृष्ठ 230 पर लिखा है कि विवरण दादा 'सामर्थ्य' था, विवरण दादा 'सामर्थ्य' सिद्धांत के अधिक महत्वपूर्ण था।

22 यहाँ।

23 *C. R. Das's Speeches* पृष्ठ 165-71।

24 विवरण दादा का बलीपूर में हुए अन्तर्गत राष्ट्रीय सम्मेलन में भाषण।

मानसिक तथा नैतिक सामयस्य तथा विकास की भी स्वतन्त्रता का अनिवार्य मानते थे। वे आधुनिक भारत के उन पाँच-छे नेताओं में थे जिन्हें आधुनिक वास्तविक राजनीतिक चिन्तन की मुख्य धाराओं का अच्छा ज्ञान था। इसलिए उनकी राजनीतिक कल्पना तथा आदर्श राजनीतिक सिद्धांत के नाम पर आधारित थे। चित्तरंजन दास का व्यक्तिगत देश की परम्पराओं में हड़ता से गड़गूल था, किन्तु साथ ही साथ उन्हें विश्व राजनीति का अच्छा ज्ञान था, और एशियाई समय तथा मानव जाति के साथ के सम्बंध थे उन्होंने एक पैकम्बर की मूर्ति पहले से स्वयं देख लिया था।

चित्तरंजन दास ने इस बात का समर्थन किया कि देश के लिए ज्ञान पचायती की एक विचार योजना होनी चाहिए। इस सम्बंध में भी उनकी कल्पना एक सदैवस्थाहृन् के मध्य की। जुलाई 1917 में उन्होंने बंगाल प्रांतीय सम्मेलन में अपने अध्यक्षीय भाषण में प्राथमिक ध्यान समाज तथा जिला समाजों की योजना की स्वरूपता प्रस्तुत की थी। वे विनो-डीकरण के महत्व को समीक्षाति समझते थे। वे इसे लोकतन्त्र का प्राथमिक धार मानते थे, इसलिए उन्होंने स्थानीय शासन की पुनर्जीवित करने का अनुरोध किया। वे-डीकरण से राज्य एक मौखिक शासन मान रहे जाता है। जो लोग विनो-डीकरण के मध्य भाग को अपनाते हैं वे लोग से निम्नान्न करने में विवशत करते हैं। आचमनका इस बात की नहीं है कि स्थानीय मन्त्रालय के-डीम सरकार के अधिकता के रूप में मत नहीं। साथ ही साथ यह है कि छोटी छोटी सामन सभाओं की एकीकृत और संगठित करने एक योजना सामयस्यपूर्ण समझ का निम्नान्न किया जाय। गया कांग्रेस में दास ने भारत के शासकीय पुनर्निर्माण के लिए विचारितित विचारों की योजना प्रस्तुत की

- “(1) ऐसे स्थानीय वे-डा की स्थापना करना जो ‘पुनर्निर्माण’ रूप में प्राचीन भारत की ग्राम व्यवस्था पर आधारित ह।
- (2) इन ग्राम वे-डा का एकीकरण करने उत्तरोत्तर बड़े समूहों का विकास करना,
- (3) एकीकरण करने वाला राज्य इसी प्रकार के विकास का परिणाम हो
- (4) ग्राम वे-डा तथा उनमें बड़े समूह समस्त स्थापित ह,
- (5) निम्नान्न की अवस्थिति धर्म वे-डा में निहित हो।”

हाल में लोकशासित विनो-डीकरण की जो प्रवृत्ति चल रही है उनको देखते हुए मानना पड़ेगा कि दास की योजना दूरदृष्टिपूर्ण थी, यद्यपि उन्होंने स्थानीय संस्थाओं की उत्तरोत्तर अभिवाधित स्थापना देने का समर्थन किया था।

चित्तरंजन दास भारत की राजनीतिक तथा सांविधानिक वास्तविकता की ही समीक्षाति नहीं समझते थे, उन्हें देश की आर्थिक समस्याओं के सम्बंध में भी अच्छी सूझबूझ थी। 1922 में उन्होंने कांग्रेस की कि में “अधिकांश के लिए बड़े प्रतिष्ठित लोग के लिए स्वराज” चाहता है। इसलिए ‘परिचित नहीं’ की नीति तथा स्वतन्त्रता कायम के सम्बंध में उन्हें सभाजनवादी समझते थे। चित्तरंजन दास जनता के पक्षधर थे। यद्यपि साम्प्रदायिकता ने उन पर गम्भीरभाव (हर्ष) सदैव-वादी होने का आरोप लगाया था, किन्तु वास्तव में उन्हें पक्षधरि वष के हितों से कोई प्रयोजन नहीं था। 1 नवम्बर 1922 को देहरादून में उन्होंने घोषणा की थी, “स्वराज अधिकांश के लिए होना चाहिए और जनता द्वारा ही प्राप्त किया जाना चाहिए।” वे जनता के लिए स्वराज के आदर्श में ईमानदारी से विश्वास करते थे। गया कांग्रेस के अवसर पर अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने धर्मिका तथा किसानों के सम्बंध का सम्बंध किया।

चित्तरंजन दास के राजनीतिक दशन में विभिन्न चिन्तनधारकों का सम्मिश्रण देखने की संज्ञता है। वैष्णवों की भाँति वे विश्वास करते थे कि विश्व ईश्वर की सीता है। उन्होंने इन वैष्णव सिद्धांतों के हेनरीय दृष्टिकोण से व्याख्या की और कहा कि इतिहास ईश्वर की अभिव्यक्ति है। दास के अनुसार इतिहास में एक बड़ा प्रयोजन व्याप्त है। वैष्णवों, साधुसिद्ध तथा हेनरी की इन इतिहास विमर्श धारणा के सम्मिश्रण दास ने राष्ट्रवाद के सम्बंध में मस्तीनी के दृष्टिकोण का अन्वयान। उनका कहना था कि मानवता के आदर्श का साक्षात्कार करने के लिए राष्ट्र की सांविधिक पूर्णता तथा उनकी सहज प्रवृत्ति का पूर्ण विवर्ण निम्नान्न आवश्यक है। अतः राष्ट्रीय वृत्ति-न मानवता के ज्ञातन की महत्वपूर्ण अवस्था है। दास ने अमेरिका के व्यवहारवादी तथा बहुधवादी चिन्तन

नयी प्रवृत्तियों का भी सम्बन्ध किया। पड़ोस की याचना का विरोध नागरिक चेतना का तात्त्विक अंश है। पड़ोस का छोटा समूह सामंतीवादी की याचना पर आधारित नागरिकता की प्राथमिक पाठ छांटा है। इस प्रकार हम देखते हैं कि यद्यपि राज ने इतिहास काल पर हेगल का तत्त्वमीय प्रभाव पड़ा था, किन्तु उनके विधे-दीनरत्न के सिद्धांत तथा मिस फोल्स्ट²⁵ के नवीन विचारों के प्रति उनके सहरे अज्ञानाभासे से स्पष्ट होता है कि उन्हें राज्य की वे-दीकृत समस्तता का साम्राज्यवादी सिद्धांत से घृणा थी। यह सत्य है कि राज ने इतिहास विषयक ऐंगेलेस वॉल्टकील तथा राजनीतिक चर्चा की अवधारणावादी बहुलवादी धारणा की वैज्ञानिक दृष्टि से समीक्षित करने का प्रयत्न नहीं किया, फिर भी उनके गंगा कावेस के अन्तर्गत भाषण का भारतीय राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रहेगा, क्योंकि उसमें उन्होंने एक प्रकार के व्यापक राजनीतिक काल का निरूपण करने का प्रयत्न किया है।

19

जवाहरलाल नेहरू

I प्रस्तावना

जवाहरलाल नेहरू (1889-1964) न अपने घर इलाहाबाद में तथा हेरो और वैमिन्जल में शिक्षा पायी थी।¹ इंग्लैण्ड में वे लगभग सात वर्ष रहे। उस काल में उन्होंने ब्रिटेन की मानववादी स्वतंत्रता की परम्पराओं की आत्मज्ञान कर लिया था। वह उस सामान्य दार्शनिक लोकान्तर में विश्वास था जिसके समर्थक मिल, गैडस्टन और मोर्स थे। उन पर बर्नार्ड शॉ तथा मर्गरेट रसल के विचारों का भी प्रभाव पड़ा था। नेहरू उस अर्थ में राजनीतिक दार्शनिक नहीं थे जिसमें वह शब्द लिसेरो, हॉम्स अथवा रूसो के लिए प्रयुक्त होता है। किन्तु इसमें शक नहीं कि वे विचारवान व्यक्ति थे। यद्यपि नेहरू महान कर्मवीर थे, फिर भी उनके दार्शनिक अनासक्ति का कुछ था, और एक चिन्तनशील अत्यन्त ही व्यक्ति की भाँति उनका मन भी प्रायः तन्माओं और शक्यों के उद्दिष्ट हो उठता था।

मनाबिसलेषण की भाषा में जवाहरलाल अपने पिता के पुत्र थे, जवनि गांधीजी अपनी माता के पुत्र थे। जवाहरलाल ने अपने पिता मोतीलाल के स्वतन्त्रता तथा साहुल की भाषना एवं अनिवासीय अधिकार विरासत में पाया था। जवाहरलाल को अपने पिता के प्रति सम्मोह, निरक्षर तथा बृहद् अनुप्राण और स्नेहपूर्ण श्रद्धा थी। उनकी 'आत्मकथा' तथा 'पुराने वक्तों का पुनर्जा' (ए बच माय ओल्ड टाइम) में इस बात की अत्यन्त रूप से पुष्टि होती है। मोतीलाल नेहरू ने जति, दृष्टा तथा अधिकतम सफल एवं योगित उद्योग की क्षमता के भी गुण विद्यमान थे उनका जवाहरलाल पर बहुत प्रभाव पड़ा था। जवाहरलाल की दृष्टि में मोतीलाल सदैव पितृमतात्मक ऐश्वर्य के स्वाधी प्रतीक तथा जीवन की शुद्धता से दूर रहने वाले बहुरूप बन रहे। किन्तु नेहरू का अनिवासीय तथा मानववादी स्वभाव गांधीजी के साहचर्य से बहुत कुछ सशत और नम्र हो गया था। गांधीजी ने 'आनीन मनसल' का शब्द दिया, तथा वे सह्य प्रवृत्ति में लोकवाकिक मानवतावादी थे। नेहरू ने गांधीजी के निकट सम्पर्क में रहने तथा गजान्दी ने तत्वीय दान म उत्तर प्रदेश के विधान में विचार करने के फलस्वरूप जनता की भावनाओं तथा आकांक्षाओं की समझना एवं समझना सीख लिया था।

जवाहरलाल नेहरू ने लोकमान्य तिलक तथा एनी बेसेंट द्वारा स्थापित होय दल की संस्था में आकर अपना राजनीतिक कार्यक्रम आरम्भ किया। उन्होंने अन्तर्द्वेष आन्दोलन में भाग लिया, और वे गान्धिवर में बाल स्थिते गये। तत्वीय दान के अतिरिक्त दिन में जवाहरलाल का मुख्य जीवनकाल यह था कि उन्होंने भारत के लिए पूर्ण स्वतंत्रता के आदर्श का समर्थन किया। उन

1 जवाहरलाल नेहरू, *An Autobiography* (मदन, जति मन, न बीसी इर 1936)। जवाहरलाल नेहरू का राजनीतिक विचार *Glimpses of World History* (सम्पन्न विषये पुनः 1939) तथा *Discovery of India* (पुनः 1946) में विस्तृत है। एकर अनिर्दिष्ट विषय पार पीत *Jawaharlal Nehru* (सम्पन्न जति सीमलित पुनः 1939) जवाहरलाल नेहरू, *Independence and After* तथा *Jawaharlal Nehru's Speeches*, 2 वि०, 1949-1953 तथा 1953-1957।

काल में कांग्रेस के बहुसंख्यक मूर्खों ने तथा राजकीय सम्बन्धों में, जिसके सम्पादन मोतीलाल ने, औपनिवेशिक स्वराज्य के आदेश की स्वीकार कर लिया था। जवाहरलाल ने श्रीनिवास आयकर तथा सुभाषचन्द्र बोस ने साथ मिलकर औपनिवेशिक स्वराज का विरोध किया और उसके स्थान पर पूर्ण स्वराज की खिल भारतीय कांग्रेस का संघ निरधारित किया। गांधीजी के आदीनार से जवाहरलाल कांग्रेस के राष्ट्रीय अधिवेशन में सम्पादन पुन लिये गये, और 31 दिसम्बर, 1929 की आधी रात को पूर्ण स्वराज्य का ऐतिहासिक प्रस्ताव पास किया गया। जवाहरलाल 1936, 1937 तथा 1946 में पुन कांग्रेस के सम्पादन चुने गये। 1942 के आन्दोलन में वह सचन लीन वष बारम्बार में विलाने गये। बारम्बार से मुक्त होने के बाद उन्होंने ब्रिटेन के साथ हुई अनेक वार्ताओं में भारत के प्रमुख प्रतिनिधि के रूप में भाग लिया। 1946 में उन्होंने भारत की अन्तरिम सरकार का निर्माण किया, और फिर 15 अगस्त, 1947 से लेकर 27 मई, 1964 के दिन, अपनी मृत्यु के समय तक, उन्होंने भारत के प्रधान मंत्री पद पर भाग लिया।

2. नेहरू के चिन्तन के साधनिक आधार

जवाहरलाल ने पिता पण्डित मोतीलाल अहोयवादी थे। वे बुद्धिवादी तथा समापवादी भी थे। इसलिए उन्हें किसी विकल्पातीत सत्ता में विश्वास नहीं था और वे केवल सत्ता की रक्षामुक्त अनुसृष्टि के विचार को ही हृदयस्थ कर सनत थे। अपने पिता में पुन होने के नाते जवाहरलाल मनी अपनी माता की धार्मिक निष्ठा की आत्मसात न कर सके। जन्म एनी वेस्ट के सम्पर्क के कारण तथा कर्मीनाथ डी बुनक के विषय होने के नाते की पुन बोडी-ली आस्था छिपी रह गयी होती वह भी रसल के सदेहवाद में नष्ट कर दी थी।² लीन वष से भी अधिक गांधीजी जैसे धार्मिक तथा वाममूर्खतापूर्ण धार्मिक के निरुक्त सम्पर्क में रहने पर भी जवाहरलाल समापवादी ही बन रहे। यह सत्य है कि जवाहरलाल बहुत अपवा उध नास्तिक अपवा नीतिवादी नहीं थे। किन्तु वे आध्यात्मवादी भी नहीं थे।³ उन्होंने सदैव व्यवसाय और ज्ञानशास्त्र (गान भीमासा) की सूक्ष्म तथा जटिल समस्याओं पर विचार में उतारने से इनकार किया। फिर भी उनमें कुछ मस्पष्ट आध्यात्मिक बाध्या विद्यमान थी किन्तु उन्हें किसी आदि आध्यात्मिक सत्ता के अस्तित्व में विश्वास नहीं था। वे निरनकालिक रूप से द्वय (दया), नति अपवा मत को ही एकमात्र सत मानने के लिए भी हीनार नहीं थे। नेहरू काट सम्प्रदाय के नहीं बनि स्नेह सम्प्रदाय के सहापवादी थे। वे यह नहीं कहते थे कि सनक्षण वस्तुओं का एक ऐसा सात्विक अपठ है जिसे मनुष्य की बुद्धि मनी जान ही नहीं सकती। उनकी पारणा केवल यह थी कि इस ऐसे इन्द्रियस्थ प्रथम जनत स परे और किसी सत्ता की कल्पना नहीं की जा सकती। उन्होंने लिखा है, 'जब मैं इस अपठ को देखता हूँ तो मुने प्राम रक्षकी तथा अज्ञात बहुपदवा का आभास होता है। यह रक्षमय चीज क्या है, यह मैं नहीं जानता। मैं उसे ईश्वर नहीं कहता, क्योंकि ईश्वर का बहू पुन अय ऐसा है जिसमें सन विद्यमान नहीं है। मैं अपने को इस चीज नहीं पाता कि किसी देवता अपवा मानव अप में किसी अज्ञात उच्चतम शक्ति की कल्पना कर सकू। मुने मनुष्य ईश्वर का विचार बहू अजीब लगता है। बौद्धिक दृष्टि में रक्षवाद के सिद्धांत को पुन हव तक समझ सकता हूँ, और मुने वेदान के अद्वैत दान में आरुण्ड विरा है। किन्तु सान ही सान वेदान तथा जरी प्रचार के अय अज्ञो के अज्ञ के सम्बंध में अरुण्ड जमर अनुसन्धितन से मैं नमभीत हो उठता हूँ। प्रकृति की

2. 1921 की बहुसंख्यक बाधन म हृदय पुनानी में 'नितिक सामान्य के बहू पुन स्वराज्य का प्रस्ताव रखा था, किन्तु यह मनीकृत हो गया था। 1924 में 'पुन स्वराज्य की कांग्रेस का बहू विधित्त करने के लिए एन अय प्रस्ताव रखा गया था, किन्तु गांधीजी ने, जो कांग्रेस के अध्यक्ष में विषम सन्धित की अज्ञ में उर्धे प्रमुख करने की अनुता नहीं की थी।

3. जवाहरलाल नेहरू का लीन वष उन निरीक्षोन्धी में भी रहे थे। 13 वष की आयु में वे निरीक्षोन्धीन वलाद्वी में सनम अन गये। एनी वेस्ट न उन्हें बीमा दी थी।

4. जवाहरलाल के मन में बुद्ध तथा ईसा के लिए बहू अनुमान था (*Autobiography* पुन 271)। किन्तु निरनक मई में भी उन्हें बहू आरुण्ड किया था (*Glimpses*, पुन 220)।

विविधता तथा परिपूरिता मुझे स्पर्शित कर देती है और आत्मा का सामंजस्य उत्पन्न करती है। मैं पुनः भारतीय अथवा यूनानी और संस्कृतवादी वातावरण में सुखी होने की कल्पना कर सकता हूँ। किन्तु उसके साथ ईश्वर अथवा देवताओं की जो धारणा सम्बद्ध थी वह मुझे प्रिय नहीं लगती।"⁵ नेहरू उन आयुनिष्ठ भौतिकीय अथवा प्राचीनता से परिचित थे जिनका सम्बन्ध आइंस्टाइन और प्लांक हाइड्रोजनबम के नामों से साध है। वे यह भी स्वीकार करते की संसार के कि कर्तव्यहीनतावादी के मानसवादी अथ के भौतिकवाद पुनरावृत्ति पर गहरा है। वे 'आध्यात्मिक' छन्द का भी प्रयोग करते हैं, किन्तु उनकी भाषा में वह शब्द 'नैतिक' अथवा 'मानसिक' शब्दों का पर्यायवाची है।⁶

नेहरू का प्रारम्भिक जीवन दान्त आनन्दवादी था। अपने प्रभावशाली पिता के नेहरू और श्रीलाल माइसल की रचनाओं से प्रभावित हुए थे।⁷ किन्तु उनका जीवन दान्त केवल बौद्धिक स्वाध्याय अथवा सत्यशास्त्रीय सत्य चिन्तन से निर्मित नहीं हुआ था। उन्होंने मुरकट अपने अनुभवों के सम्बन्ध में भग्न करके अपने विचारों का निर्माण किया था। जीवन तथा उसके निहित अव्यक्त मुक्तकालों के विषय में उनका दृष्टिकोण आध्यात्मिक था। प्राचीन यूनानियों की भांति वे भी विश्वास करते थे कि मनुष्य में निहित क्षमताओं तथा शक्तियों का अनुचित तथा सामंजस्यपूर्ण विकास होना चाहिए। परिणाम के अतिरिक्त मानव की भांति वे भी साहस तथा जोशिम के नामों से आनन्दित तथा पुनर्निर्मित हो सकते थे। यद्यपि वे होते वैयक्तिकता तथा बौद्धों की आत्मोत्थान और इन्द्रिय-निग्रह की आचारनीति को स्वीकार नहीं किया, किन्तु वे अन्त-परिणाम के यूनानीवादी आदर्श की भी मान्यता के लिए तैयार नहीं थे। वे सामाजिक आदर्शवादी थे, और उनके मन में सामाजिक मनुष्य की भावनाओं के प्रति लोकतांत्रिक सहानुभूति थी।

3 नेहरू का इतिहास दान्त

नेहरू ने अपनी पुस्तक 'मिशन इतिहास की कला' में इतिहासवादी समाजशास्त्र की पुनरचना करने का प्रयत्न किया है। पुस्तक केवल घटनाओं और तथ्यों का विवरण दान्त नहीं है। प्राकृतवादिता की भांति नेहरू भी सत्य परिस्थितियों का विश्लेषण करते हैं जिसमें सामाजिक तथा राजनीतिक घटनाएँ घटती हैं। जवाहरलाल नेहरू नेपोलियन के सम्बन्ध में वे लिखते हैं, "सम्भव है कि यदि नेपोलियन किसी अन्य तथा अधिक शक्तिशाली युवक में उत्पन्न हुआ होता तो वह एक विरजित सेनापति के अधिक कुछ न बन पाता और प्रायः लोगों का ध्यान आकृष्ट किसे बिना ही चल सकता। किन्तु शक्ति तथा परिश्रम ने उसे अपने कदमों का अवसर दिया और उसने उसका भरपूर लाभ उठाया।"⁸ इस प्रकार नेहरू इस सिद्धांत को नहीं मानते कि इतिहास प्राकृतिक ऐतिहासिक व्यक्तियों की आक्रमण है, वे ऐतिहासिक विचार में बहुमुखी शक्तियों की प्राकृतिकता देते हैं। किन्तु उन पर ऐतिहासिक स्थिति ने जोर जताने का विरोध करने लगते हैं तो 'आधि' शब्द को ही प्रयोजन देते हैं। नेहरू ने कार्टेज, नीलेखण्ड और अथर्व वेदांति इतिहास में अलगाव तथा परिवर्तन का विश्लेषण नहीं किया है।

किन्तु इसके बावजूद कि नेहरू ने इतिहास में बहुमुखी शक्तियों की भूमिका की प्रयोजन दी, वे कुछ बौद्धिकवादी अथ के बहुमुखी नहीं थे। उन्होंने यह भी माना कि इतिहास में महापुरुषों की भी महत्वपूर्ण भूमिका हुआ करती है। जवाहरलाल नेहरू ने आयुनिष्ठ भारतीय राजनीति में सत्य में उन्होंने महात्मा गांधी की सत्यतापूर्ण भूमिका को स्वीकार किया। उन्होंने निरन्तर इस बात पर जोर दिया कि महात्मा गांधी के अलगाव व्यक्तित्व के कारण भारत में महत्वपूर्ण सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन हो चुके थे, जो अलगाव एक शक्ति ने सहाय थे। सभी शक्ति का

5 जवाहरलाल नेहरू *The Discovery of India*, पृष्ठ 12 (द डिस्कवरी ऑफ़ इंडिया, जवाहरलाल, द्वितीय संस्करण, 1946)।

6 वही पृष्ठ 490।

7 *Autobiography*, पृष्ठ 20-21। नेहरू ने बहुत सारा सत्य तथा अर्थों की रचनाएँ की हैं।

8 जवाहरलाल नेहरू, *Glimpses of World History*, पृष्ठ 393 (जम्हा-विश्व इतिहास, द्वितीय संस्करण, 1939)। इस तरह की बात ऐतिहासिक दृष्टि से सत्य नहीं है।

सम्बन्ध में भी उनके इसी प्रकार के विचार थे। यद्यपि उन्होंने स्वीकार किया कि उस महान विप्लव के मूल में गहरी राजनीतिक तथा सामाजिक घटनाएँ थी, किन्तु उन्होंने बहु भी माना कि होलम्बता का निर्माण करने वाले व्यक्तिका भी भी मूलकामना धूम्रिषा हुआ करती है। उनका स्पष्ट कथन था कि एक व्यक्ति करोड़ों लोगों के जीवन की परिस्थिति कर सकता है। उनसे विचार में लेनिन को इसी पारिष्ठ के फलस्वरूप तथा पारिष्ठ के बाद के स्थापित का क्षेत्र था।⁹

4 नेहरू की दृष्टि में साम्यवाद तथा साम्यवाद

नवम्बर 1927 में नेहरू ने सोवियत संघ की दृष्टिगत यात्रा की। उस यात्रा के दौरान उन्होंने स्वयं अपनी आँखों से उस देश की उस महान उपलब्धिका की देश को उनसे शिक्षा, स्त्री उद्धार तथा किसानों की दशा के सुधार के क्षेत्र में प्राप्त की थी।¹⁰ किन्तु अपनी पुस्तक 'सोवियत रूसिया' में, जिसकी रचना उन्होंने 1928 में की थी, नेहरू ने रूस के सम्बन्ध में निम्नलिखित रूप से कहा था। फिर भी वे उस देश में जो कुछ ही सुखा या और हाँ खूब था उसको मानव शक्ति की सात्विक और नाटकीय अभिव्यक्ति मानते थे।¹¹ उनका विचार था कि आज विश्व को जिस समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है, उसका समाधान बस निश्चयन में रूस का उदाहरण से सहायता मिल सकती है।¹² 1927 में रूस से लौटने के बाद उन्होंने साम्यवाद के विचारों को लोकप्रिय बनाने का कार्य आरम्भ कर दिया।

नेहरू को मानस की विश्व तथा इतिहास की धारणा में और भी मिली थी। अपनी 'आत्म-कथा' में उन्होंने स्वीकार किया कि साम्यवादी जीवन दमन न वह अज्ञान तथा साधना की थी। साम्यवाद अतीत की स्मरण करने का प्रयत्न करता है और 'वर्तमान' का लिए आशा प्रदान करता है।¹³ नेहरू को मानसवादी इतिहास दमन के वैज्ञानिक समीक्षा विरोधी तथा अंधविश्वास विरोधी दृष्टिकोण ने विशेषकर प्रभावित किया था। इतिहास के सम्बन्धों में विचारों का उन पर बहुत ही गहरी और घटनाओं का अभाव बुरा प्रतीत होता है उसको मानसवादी ऐतिहासिक नीतिक्रम मानव के ऐतिहासिक विकास की प्रक्रिया में परम्परा सम्बद्ध तथा आवश्यक बर्तिका मानता है। अतः ऐतिहासिक व्याख्या का मानसवादी सिद्धांत तथा उसका विकास सम्बन्धी दृष्टिकोण नेहरू को प्रभावित आया। उसके मन पर यह 'हैडरिशन' प्रभाव 1930-32 के विश्वव्यापी आर्थिक संकट से और भी अधिक पुष्ट हो गया। वह ऐसा गया कि मानसवादी विरोधन तथा निष्पक्ष समीक्षण है। किन्तु नेहरू को मानसवाद में पूर्ण विश्वास कमो नहीं हुआ। उन्होंने ऐतिहासिक व्याख्या के सम्बन्ध में मानसवादी सिद्धांत का कार्य प्रयोजन किया था। किन्तु वे इससे अधिक सचेतनशील व्यक्तियों के कि वे व्यावहारिक जीवन में साम्यवाद को सत्तावादी को प्रभावों को स्थायी रूप से नहीं स्थापित कर सकते थे। अपनी 'आत्म की खोज' में उन्होंने साम्यवादी तथा लेनिनवाद के सम्बन्ध में अपनी प्रतिक्रिया का कारण इस प्रकार व्यक्त किया है "मानस तथा लेनिन के अध्ययन ने मेरे मन पर दृष्टिगत प्रभाव डाला और मुझे इतिहास तथा सामाजिक घटनाओं को एक नयी दृष्टि से देखने के सहायता दी। मानसवादी दमन में बहुत तात्त्विक था जिसे मैं बिना कठिनाई के ग्रहण कर सकता था—उत्तम एकरूपता, मन तथा पदार्थ का अज्ञान, पदार्थ की परिधीयता, तथा किताब और अर्थीय किताब, कारण और कार्य, भाव, प्रतिकार और सत्ता के साम्य में विकास तथा लुप्त हो जाने के द्वारा सत्ता परिचयित का दृष्टि निम्न। उसने मुझे पूरा रूप से सन्तुष्ट नहीं किया और न मेरे मन के सभी प्रश्नों का उत्तर दिया। मेरे मन में प्रत्येक अनजाने एक अनजाने साम्यवादी विचार पड़ति आया करने लगती थी जो बहुत कुछ वैदानी दृष्टिकोण के सहाय थी। इससे ऐतिहासिक व्यावहारिक की मूलभूमि भी थी। मैं अनुमान किया कि वैदिक

9. जवाहरलाल नेहरू, *Some Reminiscences*, पृष्ठ 62-74 (एकदावाद, 'वा' जलन सेन, दिसम्बर 1928)।

10. वही।

11. वही, पृष्ठ 57-58।

12. वही, पृष्ठ 50।

13. *Autobiography*, पृष्ठ 362-64।

धारणा विकासशील मन पर तथा अग्रगामी सम्प्रदाय पर निर्भर होती है, वह बहुत कुछ गुण के मानसिक वातावरण से निर्धारित होती है। किन्तु इसके अतिरिक्त कुछ और भी है, कुछ आधारभूत प्रेरणाएँ हैं जो अधिक ग्राह्य हैं। आप जोषा की भाँति साम्यवादियों के व्यवहार तथा इन आधारभूत प्रेरणाओं अथवा सिद्धांतों के बीच सामाजिक जो अंतर देखने को मिलता है वह मुझे पसंद नहीं है। सामाज्य मानववादी दृष्टिकोण है, जो वैज्ञानिक मानवारी की वर्तमान स्थिति के 'समाधि' अनुकूल है, मुझे बहुत कुछ सहायता दी। किन्तु उस दृष्टिकोण को स्वीकार करते हुए भी उसने निष्पक्ष तथा उसके आधार पर की गयी अंतिम तथा वर्तमान की घटनाओं की व्याख्या कभी स्पष्ट रूप से बेरी समझ में नहीं आयी। सामाज्य विकास के सम्यक् से मार्क्स का सामाज्य विरोधजन्य अनाधारण और पर सही बात पड़ता है, फिर भी बाद में अनेक ऐसे घटनाएँ घटी हैं जो निकट भविष्य की ध्यान में रखते हुए उसके दृष्टिकोण से स्पष्ट नहीं छाती।¹⁴

नेहरू ने इन्द्रात्मक नीतिप्रवाद का जो विरोध किया है उसके पार आधार है। प्रथम, नृति-शील इष्ट (पण्य, भूत) की इन्द्रात्मक धारणा ही परम वास्तविकता है, इस बात से नेहरू की सन्तुष्ट नहीं होता। प्रत्यक्षवादी न होते हुए भी उसने अस्पष्ट प्रत्यक्षवादी प्रवृत्ति विकसित है। बहुमान्य का व्यापक रहस्य उनके मन की प्रायः उद्दिष्ट करता रहता है। दूसरे, वे यह भी मानने के लिए तैयार नहीं हैं कि नैतिक मान्यताओं का स्वरूप शुद्ध समाजशास्त्रीय तथा वसन्त होता है। नैतिक आधारों के मूल में कुछ इससे भी अधिक बहरी और अनिश्चित प्रेरणा निहित रहती है। आधारहीनता केवल समय की परिस्थितियों की प्रायः के फलस्वरूप उत्पन्न नहीं होती। तीसरे, स्वतन्त्रता के समर्थक होने के बाते अवधारणात्मक उस शक्त और अवस्था का समर्थन नहीं करते, जिसमें सम्यक् साम्यवाद के कुछ रूपों के साथ जोड़ा जाता है। चौथे, नेहरू का विचार है कि मानव चिन्तन ने प्राकृतिक तथा सामाजिक विज्ञानों के क्षेत्र में जो प्रगति की है उसकी देखते हुए वर्तमान की सत्ताओं के सामाजिक अर्थ में मान्यवाद पुराना पड़ गया है। उसने बहुत कुछ स्पष्टतर और सन्तुष्ट की आवश्यकता है। 1952 में नेहरू ने यह घोषणा करने साम्यवादियों की समर्थन प्रणाल बना दिया कि विज्ञान, विज्ञान तथा आर्थिक चिन्तन के क्षेत्रों में विद्यमान सौ वर्षों की प्रगति ने मार्क्सवाद को पुराना सिद्ध कर दिया है। अतः स्पष्ट है कि नेहरू के मन में मान्यवाद और साम्यवाद के प्रति विरोध साम्राज्य के विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप में अपना, उसने विरोध से जो मान-सिद्धि प्राप्त की है उसने कारण जो संकेतार्थक अनुसंधान उत्पन्न हो गया था वह आधुनिकी की वृद्धि तथा समय के परिवर्तन के साथ-साथ बहुत कुछ गलत हो गया। 1950 में सिंगापुर में अपने एक भाषण में नेहरू ने कहा था कि एशिया में साम्यवादी आन्दोलन राष्ट्रवाद का शत्रु है। भारतीय सत्ता के तत्त्व में नेहरू ने यह सत्य के समाजशास्त्र में विरोध करना छोड़ दिया था और ग्राह्यों की भाँति वे कहने लगे थे कि यह सधर्मी जो शक्तिमय तरीकों से मुक्तताया जा सकता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि जैसे जैसे नेहरू की आयु बढ़ी, प्रशासन की जिम्मेदारियाँ आधी और अंतरराष्ट्रीय साम्यवाद की विनाशकारी कार्यप्रणाली प्रकट हुई वैसे-वैसे उनके मन में विरोध साम्राज्यवाद के विरुद्ध उनकी प्रतिक्रिया के कारण साम्यवाद के प्रति जो भ्रम उत्पन्न हो गया था वह यदि भूचक से गलत नहीं हुआ तो बहुत कुछ कम अवशेष हो गया। इसीलिए विरोध के अनेक अंतरराष्ट्रीय राजनीतिज्ञ नेहरू की भावना तथा एशिया के साथ प्रायः साम्यवाद की प्रगति के विरुद्ध सबसे बड़ा अवरोध मानने लगे थे।

5. नेहरू का राजनीतिक सिद्धांत

(क) नेहरू का राष्ट्रवाद—नेहरू एक महान् राष्ट्रवादी थे, किन्तु उन्होंने राष्ट्रवाद का कोई क्या सिद्धांत प्रतिपादित नहीं किया था। उसने केवल भारत की एकाता से प्रकट होता है कि वे भारत की आधारभूत एकाता की वास्तविकता के विरोध करते थे। वे स्वीकार करते थे कि अल्प-संख्यक जातियों का कार्यभार भारत के सम्पूर्ण इतिहास में एकाता देखने को मिलती है। उद्देश्य-सिद्धि बहुलवाद तथा समर्थन की धारणा से भी प्रेरणा मिलती थी। उन पर रवीन्द्रनाथ टागोर द्वारा

पीटा जाता है यह एक दल के शासन के स्वयं के लोग भ्रम है। यह सत्य है कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की अदम्य अवस्था उसने भारतीयों तथा अल्पसंख्यक इतिहास की उपज है। किंतु वास्तविकता यह भी है कि इतिहास में ऐसे प्रतिपक्ष का अभाव, जो वैयक्तिक सरकार बनाने में समर्थ हो सके, लोकतांत्रिक व्यवस्था की एक भारी गमी है। नेहरू भारतीय लोकतंत्र के विकास में इस कमी को मनी-मर्ति समझते थे।

(घ) नेहरू का अन्तरराष्ट्रवादी स्वभाव—नेहरू एशिया तथा अफ्रीका की जातिका एक निरपेक्ष राजनीतिज्ञ तथा आर्थिक स्वतंत्रता की आकांक्षा के प्रमुख प्रवक्ता थे। उनकी अफ्रीका एशियाई एशिया तथा प्रगति की परंपरा न नाशिर, पासा के कठम एतदुमा, गारना के मेव दूर, विद्यमान के बाल अल्पसंख्यक तथा नाशिम का प्रेरणा दी है। 1927 की महासभा के बाद नेहरू का प्रेरणा से विदेश द्वारा चीन के भारतीय सेना के प्रयोग का विरोध किया। पराधीनता की जातिका के व नष्ट आलोचक थे। वे स्वयं की अल्पसंख्यक सरकार तथा चीन के साथ भारत की महासंयुक्ति प्रवर्तन के लिए एक देश में स्वयं गये। स्वतंत्रता प्राप्त करने के उपरांत भारत में कोरिया में मुद्रा विनिमय सम्मान करना तथा द्वितीय चीन में मुद्रा बंद कराने में भी साथ दिया और स्वयं में अल्पसंख्यक विरोधी साम्राज्यवाद का अर्थ करने का भी समर्थन किया उसका आर्थिक महत्व है।

नेहरू महान अन्तरराष्ट्रवादी थे। वे राष्ट्रीय अन्तर्गत तथा आकांक्षा के उत्तरी से सभी जाति अवस्था थे। उन्हें सकीन, अन्तर्गतमुक्त तथा प्रसारवादी राष्ट्रवाद से भारी प्रभाव था। इसी लिए भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के प्रवर्तकों की नेहरूने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की अन्तर्गत राष्ट्रवाद की आरंभ प्रमुख कर दिया। उन्होंने आर्थिक क्षेत्र में भी अन्तरराष्ट्रवादी आदर्श का समर्थन किया। उनका कहना था, "राज्य जिस चीज की मनी-मर्ति नहीं समझता उसका वह अल्पसंख्यक का अन्तरराष्ट्रीय स्वभाव है। उसने राष्ट्रीय सीमाओं को पार कर दिया है, और हर राष्ट्र का, वह किताब ही कहा क्या न हो, दूसरे देशों पर अधिकार बना दिया है। राष्ट्रवाद की महानता आज की समय तक नहीं ही प्रवर्त है जिसकी नि पहली थी, और उसके पवित्र नाम पर मुद्रा लगे एक है तथा दक्षिण आरंभ सीमा की हत्या की कमी है। किंतु यह एक विषय विनिमय है जिसका वास्तविक से कोई सम्बंध नहीं है। विषय का अन्तरराष्ट्रीयकरण ही चुका है, अन्तर्गत राष्ट्रवाद है आकांक्षा अन्तरराष्ट्रीय है तथा परिवर्तन अन्तरराष्ट्रीय है, केवल अनुभव व विचारों पर एक अल्पसंख्यक का शासन है जिसका आज कोई अर्थ नहीं रह गया है। कोई राष्ट्र वास्तव में स्वाधीन नहीं है, सभी एक दूसरे पर निर्भर है।" इस प्रकार यदि रोमांसपूर्ण देशमर्ति ने नेहरू का अपना राष्ट्रवादी बना दिया था, तो भारत के समाज की सीद्धि तथा व्यावहारिक आवश्यकताओं के कारण के शांतिमय सहसंस्कृत तथा 'एक विश्व' के आदर्शों से विनिमय करने गये थे। परमाण्विक विस्फोटन के इस युग में अन्तरराष्ट्रवाद सत्य की एक अविनाश्य आवश्यकता है। नेहरू की समस्त राष्ट्र उभ के आदर्शों में इस विनिमय का और वे विश्व-राजनीति व अल्पसंख्यक के विरोधी थे। वे अल्पसंख्यक राष्ट्र के किसी मुद्रा के सम्मानित होने से हताशप्रवृत्त इन्कार करते रहें।

नेहरू न अन्तरराष्ट्रीय में मुद्रा निरपेक्षता को आ नीति अल्पसंख्यक उनके तीन आधारभूत मद्रा 'तिन' तथा व्यावहारिक कारण है। भारत एक नवीन राष्ट्र राष्ट्र राष्ट्र है। उस अल्पसंख्यक जाति आर्थिक तथा सामाजिक पुनर्निर्माण के बालों में जुटाती है। यह इस स्थिति में नहीं है कि अल्पसंख्यक राष्ट्र के अतिरिक्त ही मुद्रा के नवीन सत्यों में उसके और उसके फलस्वरूप सामाजिक-आर्थिक विकास और विकास के मुख्य काम से विचलित हो जाय। एक मुद्रा निरपेक्षता एक नये राष्ट्रीय राष्ट्र के लिए स्वाभाविक गति है। दूसरे, मुद्रा निरपेक्षता का ऐतिहासिक आधार पर भी समर्थन किया जाता है। अपने सम्पूर्ण इतिहास में भारत ने शांति की नीति का अनुसरण किया है। उसने कभी शांति राजनीति का समर्थन नहीं किया है। मुद्रा तथा शांति शांति ने इस दलन के मुख्य प्रवर्तक थे। इस प्रकार मुद्रा-निरपेक्षता भारत के एक अल्पसंख्यक राजनीतिक अभिप्रेत है जो सबसे निम्न शांति तथा सत्यमयता का संकेत देता आया है। तीसरे, अन्तरराष्ट्रीय शांति राजनीति की अल्पसंख्यक आधार

पर भी गुट निरपेक्षता का सम्पन किया जाता है। ऐसी दुनिया में जो सशस्त्र क्षेत्रों में विभक्त है, शांति के अवन की हृदयनादा बुद्धिमत्तापूर्ण नीति है। यह समझ हो सकता है यदि अनेक राज्य प्रतिद्वंद्वी शक्तियों में सम्मिलित होने से बचना चाहते, और अन्तरराष्ट्रीय सन्धियों को कम करने में सम्मत्ता करें। शांति के अवन को हृद करने का अनिवार्य परिणाम यह होगा कि दोनों गुट परस्पर टकराने में हिचकेंगे। किन्तु नेहरू इस बात को स्पष्ट करने में बड़े सतर्क थे कि उनका गुट निरपेक्षता का सिद्धांत गत्यन्तक था, उसका अर्थ निष्पक्ष सत्यता नहीं था। उन्होंने कहा कि जब स्वतंत्रता संग्राम में होनी और राज्य की सुरक्षा के लिए सतर्क रहना होगा तब वे अपनी गुट-निरपेक्षता की नीति को संशोधित करने में नहीं हिचकेंगे।

अन्तरराष्ट्रीय राजनीति में नेहरू नीतिक्रम का अनुसरण करने में विश्वास करते थे। उन्होंने शान्तिपूर्ण तरीका का सम्पन किया और वास्तव में सहयोगमूलक मेल मिलान प्रवृत्ति दिखा। अन्तर्गत बात में विश्वास थे कि राष्ट्र सम्पन्नता केवल सन्तुष्टि तथा स्वातंत्र्य का शिखर है। इस आधार पर सन्तुष्टि के वातावरण में नेहरू ने पश्चिमीयों का प्रतिपादन किया। 1954 में नेहरू तथा थाऊ-एन लाई ने अपने एक समुक्त वक्तव्य में सिद्धांत का प्रतिपादन किया। य इस प्रकार है

- (1) एक दूसरे की नीतिगत अलगपन तथा अनुभव के लिए पारस्परिक सम्मान,
- (2) अन्तर्गत,
- (3) एक दूसरे के आन्तरिक मामलों में अस्पर्धेय,
- (4) समता तथा पारस्परिक मान, तथा
- (5) शान्तिपूर्ण सहसंस्कार तथा आर्थिक सहयोग।

पश्चिमीयों के इन सिद्धांतों का उन्होंने सुरक्षा की भावना तथा पारस्परिक विश्वास में बद्ध किया था। इन सिद्धांतों की 22 दिसम्बर, 1954 के नेहरू-दीरो वक्तव्य में और फिर 10 जुलाई, 1956 की त्रिबोनी में प्रकाशित नेहरू-दीरो-नासिर वक्तव्य में पुष्टि पायी। इस प्रकार नेहरू का अन्तरराष्ट्रीय सम्बंध का सिद्धांत सन्तुष्टिवाद तथा शान्ति-राजनीति की अस्वीकृति पर आधारित है। उसका अर्थ है कि यदि अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्र में सशस्त्र प्रयोग की प्रवृत्ति बहिष्कृत नहीं किया जा सके तो उसे दूबतम अवस्था किया जाना। उनके मूल में परम्परा यह है कि राष्ट्र एक दूसरे के हितों की समझने का प्रयत्न करें और एक दूसरे के अधिकार तथा दावों का शान्तिपूर्ण तथा सम्मान के साथ मूल्यांकन करें। किन्तु नेहरू किसी भी रूप में शक्ति के सामने झुकने को तैयार नहीं थे। फिर भी नेहरू के कुछ आलोचकों का कहना है कि पश्चिम, चीन, सोवियत तथा अमेरिका के सम्बंध में नेहरू का नीतिक्रम तथा मानवतावादी अन्तरराष्ट्रीयवाद विफल होकर सुधीकरण की नीति में परिवर्तित हो गया है।

6 नेहरू का अर्थशास्त्र

नेहरू नेहरू को स्वतंत्रता के आदर्श में नेहरू अनुसरण था, फिर भी वे अर्थशास्त्र के अन्तर्गत सन्तुष्टिवाद में विश्वास नहीं करते थे। वे विषय तथा रिक्तता के अर्थशास्त्र से सम्बंधित अर्थशास्त्र के सिद्धांत का सम्पन करने के लिए तैयार नहीं थे, और न उन्हें अर्थशास्त्र के प्रवृत्तिवादी (मिडिजिवाइट) सम्प्रदाय में विश्वास था। उनके विचार अनुसार, समांतर आदि जमाने राज्य समाजवादियों के सिद्धांतों से मिलते-जुलते हैं। वे सच्चीता को राज्यकीय सहायता देने वाले न पक्ष में थे, किन्तु साथ ही साथ वे अर्थशास्त्र के किसी एकल की भी सम्मानपूर्ण स्थान देना चाहते थे।

नेहरू का समाजवाद के आदर्श तथा व्यवहार में बहुत आच्छादित किया था। मेनन एक्टर की शक्ति उन्हें भी नीतिक्रम समाजवाद में विश्वास था। य समाजवाद की आर्थिक पुनर्निर्माण का सिद्धांत मान्य नहीं मानते थे, बल्कि वे इसे एक जीवन दान समझते थे। किन्तु 1936 में उन्होंने अपने सन्तुष्टिवाद के अर्थशास्त्रीय भाषण में स्पष्ट घोषणा की कि समाजवाद के प्रति मेरा अनुसरण अस्पष्ट मानवतावादी दृष्टि का नहीं है, बल्कि उससे मेरा अनिवार्य आर्थिक समाजवाद है। उनके नेहरू में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने 1955 में भारतीय अधिवेशन में समाजवादी दृष्टि के समाज के

आदम को अभीवार किया, विद्रोही दिनों में मारदास के दोन में राजकीय स्थापना तथा सहाकारी सेती की विपक्षी दला तथा समाचार पत्रों में बहुत कुछ मत्तापना की है।

नेहरू इस विद्वान्त की स्वीकार नहीं करता थे कि विद्रोहीकरण तथा उद्योगों के राष्ट्रीयकरण के द्वारा उत्पादन की बढ़ावा ही समाजवाद है। वे आर्थिक पुनर्निर्माण की योजना में सामाजिकी तथा खादी की भी स्थान देना चाहते थे। उनकी सततक कांग्रेस के अध्यात्म मत्पन में उन्होंने कहा था, "मुझे देश के हुए औद्योगिकरण में विश्वास है, और मेरा विचार है कि इसी प्रकार जनता का स्तर जैसा उठ सकेगा और गरीबी दूर की जा सकेगी। फिर भी मैंने आती में खादी-वापसन से हार्दिक सहयोग किया है और मुझे आशा है कि अविश्य न भी मैं ऐसा करता रहूँगा, क्योंकि मेरा विद्वान्त है कि खादी तथा सामाजिकी का हमारी वर्तमान अवस्थावस्था में निश्चित स्थान है।" 1928 में जब मुम्बई-कांग्रेस में कांग्रेस के अध्यात्म में, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने राष्ट्रीय आजीवन समिति की स्थापना की थी और नेहरू उसमें सम्मिलित थे। उस समय उन्होंने स्पष्ट कर दिया था कि आजीवन के अन्तगत केवल सारी उद्योग ही नहीं आते हैं बल्कि उसमें कुटीर उद्योग भी सम्मिलित है। समिति की सितम्बर 1945 की बैठक तक मैं उन्होंने उपयोग की वस्तुएँ उत्पन्न करने के हेतु तथा योजना की बुद्धि से लिए कुटीर उद्योगों पर धन दिया था।

ब्रिटिश कैपिटलिज्मवादियों के विपरीत नेहरू की विद्वान्त था कि समाजवाद अन्तान स्थापित किया जा सकता है। वे चाहते थे कि विज्ञान तथा औद्योगिकी का उपयोग का प्रयोग करते उत्पादन की अधिकतमिक बढावा पाय। वे उत्पादकता की बढि के लिए आजीवन की प्रगती की आवश्यकता मानते थे। वह राष्ट्रीयकरण में विश्वास था, किन्तु वे यह भी चाहते थे कि उत्पादन के मापनों में बुद्धि की काम और पर्याप्ततम तमाम पूर्ण योजना की व्यवस्था की जाय। उनका आशय था कि राज्य नये उद्योगों की स्थापना करें। नेहरू पीछे तथा ब्रिटिश मजदूर दल की विचारधारा के आधारपक्षों द्वारा प्रतिपादित कम्युनिज्म की राज्य के आदम की स्वीकार करते थे। 1952 में उन्होंने विश्ववा में अमेरिकन यूनाइटेड फ्रेंड्स के सहायता के साथ वर्तनी के दीपन 'समिक समाजवाद' की भाषा कही थी और भारत के विभिन्न लोक के पुनर्निर्माण की आवश्यकता पर बल दिया था। उनके निर्देशन में कांग्रेस दल में जनवरी 1955 में समाजवादी दल के समाज का आदम स्वीकार किया, और 1958 की मासपुर कांग्रेस का समय से सहाकारी सेती की उक्त प्रकार के समाज की साक्षात्कृत करने की एक प्रमुख प्रगती मान लिया गया है। नेहरू निश्चित अवस्थावस्था के व्यवहार तथा विद्वान्त के सम्बन्ध में अनन्तक थे। इस कारण की दो पंचवर्षीय योजनाओं में भी स्वीकार कर लिया गया है। नेहरू चाहते थे कि कुछ उद्योगों का राष्ट्रीयकरण किया जाय, और साथ ही साथ राज्य कुछ नये उद्योगों की स्थापना करें। साथ ही साथ वे निम्नी अर्थतन्त्र की भी महत्वपूर्ण स्थान देने के लिए तत्कार थे। नेहरू भारत की वर्गीय आर्थिक समस्याओं में सम्बन्ध में प्रथम सकेत थे। उदाहरण के लिए उन्होंने बेकारी, अन्नबेकारी, व्यापक गरीबी, साथ मापनों का अभाव, जैसी कीमते 'आदि की ओर ध्यान धिया। इन समस्याओं का समाधान करने के लिए उन्होंने निर्देशित अवस्था के विद्वान्त की कार्यान्वित करने का प्रयत्न किया। पूँजी की गरीबी बढिआई पर कष्ट होने के लिए वे पश्चिमी देशों से जारी माया में धन उधार लेने में भी नहीं हिचके। यद्यपि इन देशों के साथ कोई कर्न नहीं चुकी है, फिर भी आलोचकों का कहना है कि अन्त्योपस्था इसके अभाव में परिणाम होय। इसमें सन्देह नहीं है कि समाजवाद की कांग्रेस तथा देश के सभस एक ठोस आर्थिक तथा सामाजिक उद्देश के रूप में अस्तुत करने में नेहरू का मुख्य हाथ था। यद्यपि उन पर यह आरोप लगाया जाता है कि निश्चित अवस्थावस्था कैपिटल समाजवाद की ओर वापस लौटने की सम्मननामान अवस्था है, फिर भी समाजवाद के आदम को लोकप्रिय बनाने में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका है।

7 नेहरू तथा सामाजवाद

नेहरू के मन में गांधीजी के प्रति लक्ष्य सम्मीर माननात्मक अनुभाव रहा।¹² उनके पक्ष में वे

उन्हें स्नेहपूर्वक जापू कहकर सम्बोधित किया करते थे। नेहरू की गांधीजी से सबप्रथम मेट 1916 की सफलता बाधित ने हुई। 1920 में वे गांधीजी के प्रभाव में आ गये। उन पर गांधीजी की प्रवृत्ति निम्ना तथा काम की लय का गहरा प्रभाव पड़ा था। गांधीजी सदैव काय पर बल दिया करते थे। उनकी इसी बात ने नेहरू को विरोधपूर्ण से आकृष्ट किया। यद्यपि स्वभावतः गांधीजी का भुक्तान लोकलोक समस्याओं के प्रति था, किन्तु भारत की स्वाधीनता के लिए उनके मन में लटक अति ताप था और वे इस बात के लिए अत्यधिक व्यग्र रहते थे कि स्वाधीनता की प्राप्ति के लिए लयन के साथ काम दिया जाय। गांधीजी की कायप्रवाही ने भी नेहरू को प्रभावित किया, यद्यपि उससे सफलता किसी की। जापू ने पहले ने साध-साध स्नेह, अनुशासन तथा शक्ति के ये बंधन अधिकवधिक हट होते गये। गांधीजी के व्यक्ति में जो सामन्तस्पृह सन्तुलन तथा सामन्तमक एता देखने को मिलती थी उसकी नेहरू भूरि भूरि प्रशंसा किया करते थे। मई 1933 में जब गांधीजी 21 दिन का उपवास प्रारम्भ करने का रहे थे, नेहरू ने उनकी एक सार दिया निम्नमें उन्होंने लिखा था, “मैं अपने को एक ऐसे देश में खीसा हुआ अनुभव कर रहा हूँ जिसमें केवल आप ही एक सुपरिचित भूमि बिहू हैं। मैं अंदरे में टटोल रहा हूँ, किन्तु पक्कप पर ठीकर आ रहा हूँ। कुछ भी हो मेरा स्नेह तथा विचार सदैव आपसे साथ रहने।” प्रत्यक्ष है कि सत्यवादी तथा समाजवाद की ओर वक्रुल और पारचायन रह के रंग हुए नेहरू और धर्मपरायण, ईश्वर कीय तथा पूर्वात्य गांधीजी ने समन्वित लय बनाये। गांधीजी जनता के लोकतान्त्रवादी थे, और कुर्नुआ नेहरू, जैसा कि उन्होंने स्वयं स्वीकार किया था, जनता के लिए लोकतान्त्रवादी थे। कहने का अभिप्राय यह कि गांधीजी जनता की भावनाओं और आकांक्षाओं का और नेहरू ने हिता का प्रतिनिधित्व करते थे। किन्तु नेहरू दो कारणों से गांधीजी की ओर आकृष्ट हुए थे। प्रथम, नेहरू गांधीजी के सहूल तथा सब प्रकार की कठिनाइयों और विपत्तियों के प्रति उनकी चुनौती की भावना ने बड़े प्रसन्न थे। दूसरे, उन्होंने देखा कि गांधीजी के नेतृत्व तथा राजनीतिक कामकाज के महत्वपूर्ण परिणाम हुए थे। गांधीवादी होने के नाते नेहरू ने सदैव जब तथा विचारों की एकता का सम्पन किया। उन्होंने ही बगनबादी बुद्धिवादियों के सहानुभूति की ओर न अवसरवादी व्यवहारवादियों के। भारत के कुछ समाजवादी तथा साम्यवादी गुट अपराधन तथा समाजशास्त्र की समस्याओं के सम्बन्ध में सूक्ष्म तथा दृष्टात्मक एक विचार में एकते हुए थे, और कुछ इतने उद्धत थे कि गांधीजी को महान प्रतिनिधित्ववादी कहते थे भी नहीं हिचकते थे। किन्तु नेहरू गांधीजी के समाजशास्त्र से सहमत न होते हुए भी उनसे इसलिये प्रभावित थे कि उन्हें भारत की समस्याओं की गहरी पक थी और उनका मुकाबला करने में उन्हें महत्वपूर्ण सफलता मिली थी। नेहरू और गांधी के सामाजिक तथा आर्थिक सिद्धांतों के सम्बन्ध में मतभेद था, किन्तु राजनीतिक प्रश्नों पर उनके विचारों में बहुत कुछ साम्य था। उनकी ‘आत्मकथा’ में नेहरू लिखते हैं, “विचारवाच्य की दृष्टि से उनका शिक्षावन कभी नहीं विमोचनवन जान पड़ता था, किन्तु कम में वे आधुनिक भारत के महत्वपूर्ण चार्तिकारी हुए हैं। उनकी व्यक्तिगत व्यक्तता था, प्रचलित बहोदियों से उनकी परण करता अर्थात् उनके सम्बन्ध में सत्य-शास्त्र के साक्षात् नियमों की लागू करना अस्मम्य था। किन्तु वे मुलतः चार्तिकारी थे और भारत की स्वाधीनता के लिए अपने को अर्पित कर चुके थे, इसलिये अनिवाय था कि जब तक स्वाधीनता प्राप्त नहीं हो जाती जब तक वे बिना सम्भीता निने उसके लिए सघष करते रहने, और इस सघष के दौरान वे प्रचण्ड जनशक्ति को उमारेने तथा जैसी कि मुझे आशा थी, वे स्वयं बध्म-बध्म सामाजिक उद्देश्य की ओर बढ़ते जायेंगे।”²⁴

गांधीजी ने राजनीति क्षेत्र में जो नैतिक पाप अचवाया था उसका भी नेहरू पर प्रभाव पड़ा था। गांधीजी ने केवल साम्या की धुझा पर ही बल नहीं दिया था, वे साधनों की परिचला की भी आवश्यक मानते थे। कुछ समय के नेहरू साधना की व्येष्टता के इस विचार की बाख्बार सुनाने लगे थे और कहने लगे थे कि नैतिक नियम निष्कुरता के साथ काम करते हैं।²⁵ आन्तराष्ट्रीय राज

24 वही पृष्ठ 365।

25 शिबिने 1949 में लिखली विवरविचारण में लिखा गया नेहरू का भावय।

नीति तथा अथवा व क सम्बन्ध में समझना की पवित्रता की यह नीति साम्प्रदायिकता की नीति से कौसी दूर थी किन्तु अहिंसा के सिद्धांत का स्वीकार करने में नेहरू उम्र छोटा एक बाले की तैयारी नहीं बल्कि एक बाले की पीढ़ी वाला चाहते थे। स्वतन्त्रता संग्राम के दिनों में भी नेहरू ने अहिंसा का केवल एक नीति के रूप में स्वीकार किया, या पीढ़ी की नीति उद्धाने उसे अपनी धर्म मानकर स्वीकार नहीं किया। किन्तु उन्होंने स्वातंत्र्यहारिक आधार पर अहिंसा का समर्थन किया। उनका कहना था कि हिंस्र से समस्याओं का वास्तविक समाधान नहीं होता, केवल विनाशकारी समाधान होते ही मिल सक। महात्मा नेहरू ने अंतरराष्ट्रीय समस्याओं की हल करने के लिए शांतिमय तरीकों का समर्थन किया। महात्मा परमाणु अस्त्री का प्रतीकार करने के लिए उन्होंने पंचशील का सिद्धांत प्रतिपादित किया। शांतिमय तरीका के इस समर्थन के मूल में सम्पूर्ण मानवजातीय भावना थी, किन्तु उसके पीछे यह स्वातंत्र्यहारिक दृष्टिकोण भी था कि समस्याओं का स्थायी हल अनुभव, मत विचार, सहिष्णुता तथा बातों के तरीका से ही प्राप्त किया जा सकता है। शांतिमय तरीकों की शक्ति में यह विश्वास इस बात का साक्ष्य है कि नेहरू पर या पीढ़ी का मुख्य किन्तु गहरा प्रभाव पड़ा था। इससे अतिरिक्त एक या पीढ़ी होने के नाते ही नेहरू न वह भी आग्रह किया कि यदि एक सम्प्रदायिकता और बुद्धिमत्तापूर्ण सामाजिक तथा अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था की स्थापना करनी है तो उसकी मनोवैज्ञानिक मूलभूमि के रूप में हमें भी अवसर दूर करना होगा। आधुनिक मानव की जो निराशा तथा क्षमता विपत्ति घेरे हुए है उसका अन्त करने के लिए नैतिक तैयारी के रूप में निम्नलिखित अपरिहार्य है।

3 विश्व

अतः नेहरू की आधुनिक विज्ञान की चिन्ता मिथी थी, किन्तु इतिहास तथा साम्प्रदायिकता के ऐतिहासिक विकास में उनकी रूचि खोजिया रूचि में कहीं अधिक गम्भीर थी। मानवजातीय समाजशास्त्र के अध्ययन से उनका इतिहासवादी दृष्टिकोण और भी अधिक स्पष्ट हो गया था। राजनीति विज्ञान के क्षेत्र में नेहरू का सबसे बड़ा योगदान यह है कि उन्होंने भारतीय इतिहास की साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से समझने का प्रयास किया। समसमकालीन भारत में उन्हें या अनुभव हुए थे उनके आधार पर उन्होंने भारत के पुरातन इतिहास पर बीछे की आर मुद्रक मनन किया। उन्होंने भारत की निराशा का अतिशय आकर्षक रूप में प्रस्तुत नहीं किया। उन्होंने अपनी 'भारत की रात', 'विश्व इतिहास की धलक तथा 'आत्मकथा' में भारतीय इतिहास की सम्प्रतिष्ठित तथा अनमन्यकारी घटनाओं तथा स्मृति के बीच अधिक गम्भीर प्रकाश की दृष्टि निराशा का प्रकाश किया। उन्होंने भारतीय ऐतिहासिक विकास का जीवन क्षति के रहस्य का ज्ञान की चेष्टा की, क्योंकि मानवता, निष्पक्षता तथा उनकी पराजय और पतन के बावजूद भारत में अपना साम्राज्य कर देने की विमर्शकारी क्षमता का परिचय दिया है। भारत की सांस्कृतिक अविच्छिन्नता का उन्हें मुख्य बात था, और इस बात में उन्हें भारतीय पुनर्निर्माण के काम के लिए प्रबल उत्साह प्रदान किया। इस सैद्धांतिक साधकता में उनकी राजनीतिक नीति का भी प्रभावित किया। उन्होंने भारत में घटने वाली घटनाओं की विचार की परिस्थितियों के तत्त्व में भी देखन का प्रयास किया। भारतीयों में प्रभाव की तथा अपने सभी क्षेत्र में सीमित रहने की जो प्रवृत्ति व्याप्त की उसकी उन्होंने निम्न आभाषण की है 'य इस बात में थे कि भारतीय प्रवृत्ति की विचार के तत्त्व में देश काय। घटने नेहरू की साम्प्रदायिकता तथा ऐतिहासिक रचनाओं में अधिक 'आधुनिक' चतुर्धा तथा सैद्धांतिक मौलिकता रही है, किन्तु उनका ज्ञान अत्यन्त दृढ़ता से निराला है और इसका कारण यह था कि उन्हें मानव-सृष्टि की निरालता तथा राजनीति की परिच्छिन्नता की गम्भीर चेत थी। उन्हें आधुनिक भारतीय समस्याओं का ज्ञान अनुभव या जितने उन्हें आधुनिक इतिहास की मुख्य अवस्था का वर्णन करने के लिए प्रवृत्ति प्रदान किया। अपनी 'विश्व इतिहास की रात' में उन्होंने साम्प्रदायिकता तथा पतन के क्षेत्र में निम्न का योगदान की

और ध्यान के दृष्ट करने का प्रयास किया। यह परिचय के उन इतिहासकारों की सूची में शामिल है।
का उत्तर है जिसकी दृष्टि सर्वेसुखता तथा एकीकृत संस्कृति पर केंद्रित रहती है।

मेहरू की स्वतंत्रता में हड़ और उग्र आस्था थी। वे भारतीय स्वतंत्रता के एक महान समर्थक थे। उन्होंने औपनिवेशिक देशों की स्वतंत्रता का भी स्वतंत्र समर्थन किया। किंतु वे समानता तथा दास के आदर्शों के भी परम शत्रु थे, इसलिए उन्होंने कांग्रेस को इस बात की प्रेरणा दी कि यह समानतावादी इस देश के समाज के आधार पर जनता के अधिकार तथा सामाजिक कल्याण के लिए आवश्यक प्रयास करें। उन्होंने यह भी कहा कि सरकारी सेवा तथा अधिकारों के निर्वहन के अभाव में इस विचार में महत्वपूर्ण बदल है। उन्होंने भारत के संसदीय लोकतंत्र की नींव को मजबूत करने का भी प्रयास किया, यद्यपि कुछ क्षेत्रों में यह लोकप्रिय अधिकारों का माना जाता था। उन्होंने अपनी वैज्ञानिक रचनाओं तथा साहित्यिक लेखों के द्वारा प्रतिनिधि लोकतंत्र की भावना का अधिकार प्रदान करने अधिकार विस्तृत बनाने का प्रयास किया। 15 दिसम्बर, 1953 को संसद में एक भाषण के दौरान उन्होंने राजनीतिक तथा अधिकार लोकतंत्र के समर्थन का आदेश प्रस्तुत किया। किंतु राजनीतिक स्वतंत्रता तथा अधिकार का समर्थन मेहरू का मौलिक विचार नहीं है। यह राजनीतिक स्वतंत्रता के सामाजिक लोकतंत्र (लोकतंत्र का समाजवाद) के अन्तर्गत था तथा अन्तर्गत और निम्न समाजवाद की विस्तृत या विभिन्न अवस्था है। नाट्यिकी, संस्कृत और भारतीय ने भी इस प्रकार के समर्थन का समर्थन किया है। फिर भी यह मानना पड़ेगा कि मेहरू ने इस विचार की लोकप्रिय बनाने के लिए महत्वपूर्ण काम किया।

भारत की राजनीतिक, सामाजिक तथा अधिकार समस्याओं के समर्थन में मेहरू का दृष्टिकोण वैज्ञानिक था। वे देश का प्रगतिशील बनाने में विश्वास रखते थे। वे बुद्धिवाद तथा वैज्ञानिक स्वतंत्रता के शत्रु थे। उनके वैज्ञानिक दृष्टिकोण ने ही उन्हें आधुनिकता का समर्थन बना दिया था। उनकी भारत की एक आधुनिक राष्ट्र बनाने की उत्कट अभिलाषा थी, और इसलिए उन्होंने सिद्धांतों का सामाजिक तथा वैज्ञानिक आधार बनाने का प्रयास किया और ऐतिहासिक का समर्थन किया। यह पुनरुत्थानवाद के प्रयास थे, और समाजवाद के वे शत्रु राष्ट्र थे। उनकी दृष्टि इच्छा थी कि भारत वैज्ञानिक दृष्टिकोण की अवस्था में आने के समर्थन में वे ही सही मध्यस्थता, पुनरुत्थानवाद तथा सामाजिक समाज का मत कर सकते हैं। देश का औद्योगिकरण तथा आर्थिक प्रगति वैज्ञानिक दृष्टिकोण की स्वीकृति के ही रहनी हैं। मेहरू की समाजवादी समर्थन का यह नहीं था, और न उन्हें यह पसंद था कि राजनीतिक तथा अधिकार विचारों की सामाजिक स्वीकृति की आवश्यकता प्रत्येक व्यक्ति को स्पष्ट किया जाय। वे चाहते थे कि सामाजिक तथा राजनीतिक समर्थन को वैज्ञानिक दृष्टिकोण में देखने और समर्थन का प्रयास किया जाय। उन्होंने अपनी 'विशेषा दृष्टि' एवं दूसरों (भारत का वर्तमान तथा भविष्य) को एक आदर्श स्मारक स्थापना का प्रयास तथा औद्योगिकी का मान्यतावादी सहित्युक्त तथा कल्याण के आदर्शों के साथ समर्थन करने पर बल दिया। वैज्ञानिकता तथा आधुनिकता की ओर मेहरू का भारतीय सामाजिक तथा राजनीतिक चिन्तन की महत्वपूर्ण योगदान है।

मेहरू की मान्य समर्थन की पुनरुत्थानवाद मध्यस्थता में विश्वास था। तुर्की, भारत और अरब की नीति उन्हें भी प्रगति में विश्वास था। वे वैज्ञानिक मान्यतावाद के आदेश को स्वीकार करते थे। अपनी भारत की ओर वे उन्होंने लिखा है कि ईश्वर भारत के महानतम मान्यतावादी थे। किंतु ईश्वर का मान्यतावाद इस सामाजिक विश्वास पर आधारित था कि परमात्मा सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त है। इसके विपरीत मेहरू समर्थनवादी थे, इसलिए वे मनुष्य को केवल एक अनुसंधान के रूप में मानते थे। मेहरू की नीति ऐसी सामाजिक और अर्थव्यवस्थात्मक नीति में विश्वास नहीं था जो मनुष्य के अन्तर्गत का प्रयास प्रदान करती हो। इसी दृष्टि से उनका विचार स्वीकृति का दान न मिले था। मेहरू ने मनुष्य का मान्य के कल्याण और दुःख का देखकर आ गहरी और मान्यतावाद

साधुनिष्ठ भारतीय राजनीतिक चिन्तन

प्रतिनिधा होती थी वही उनके मानसतावाद का आधार थी। सत्तान्वी के तुलीय दशन में उन्होंने उत्तर प्रदेश के सितावा के बीच जो प्रमथ किया उसके उन्हें देहावी जगत की घोर दुःख और निराशा का साक्षात्कार हुआ। इससे उनकी कर्मात्मक भासा को नारी भासात पहुँचा और उन्होंने बीच ही इन गण्टों का उन्मूलन करने में लिए लषष करने का बीरवपूष सकल कर लिया। अपने सापरी तथा निजी चित्तानी ने बीच में उन्होंने मानव के प्रति अपने प्रेम को तथा समुप्य के रूप की मृगतत्पय होतव्यता में अपनी श्रेष्ठ भासा को व्यक्त रखा। उन्होंने इस बात पर बरावार मत दिया कि वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा सुद्धितादी पद्धति की नींव पर नये नास्त का निर्माण करने के लिए समप्रथ की भावना से पायात्मक रूप लिया जाय। साथ ही साथ उन्होंने चित्तान के अपसित प्रकृतिवादी दृष्टिकोण के मुकाबले में मानवीय मूल्यों तथा प्रतिपत्त को पुन स्थापित करने की प्रेरणा दी।

20

सुभाषचन्द्र बोस

1. प्रस्तावना

सुभाषचन्द्र बोस (1897-1945) एक महान राजनीतिक नेता थे।¹ गम्भीर तथा उद्यम-शक्ति और साहस में ब्रिटिश शासन के प्रति तीव्र घबराहट उनके व्यक्तित्व का स्तर थी। जब वे कॉलेज में विद्यार्थी ही थे, उसी समय एक वेदाङ्गी रहस्यवादी के रूप में उन्होंने एक आध्यात्मिक गुरु की शीर्ष में उत्तर भारत के मकर का उद्घाटन किया।² कलकत्ता विश्वविद्यालय में विद्यार्थी के रूप में उन्होंने बिलघात प्रतिभा का परिचय दिया। 1920 में उन्होंने भारतीय सचिविक सेवा (इण्डियन सिविल सर्विस, आई सी एस) की परीक्षा में सफलता प्राप्त की। नई 1921 में भारतीय गवर्नमेंट में उन्होंने इण्डियन सिविल सर्विस के स्थापन में दिया और अन्तराष्ट्रीय राजनीति में उत्तर पड़े। उन्हें भारतवासियों में विश्वास था। राजनीतिक कार्य की उन्होंने अपने जीवन का ध्येय बना लिया और उसी भावना से उसमें लगन ही रहे। उनमें बहुत तेज क्षमताएँ दृष्टा थीं। शिक्षक की छोड़कर अन्य किसी नेता ने इसका कष्ट नहीं सहन किया उन्हें एक बार काकाजोर में बाला गया और कुछ मिलाकर बाठ बय तक केत न मिलाने पर ही अन्तराष्ट्रीय के आदर्श में उनकी गम्भीर निष्ठा थी। उसकी शाश्वत करने के लिए उन्हें अन्य अन्य दिया जो हल प्रसार की ओरिण लक्ष्यी। उन्हें समझौतावादी रवैया पसन्द नहीं थी, जो अन्तराष्ट्रीय में वे विरोधी थे। यही कारण था कि उन्होंने कांग्रेस में शामिल होने से अन्तराष्ट्रीय के अन्तराष्ट्रीय विरोधी पक्ष का साथ दिया।³ पर सेनिंग, कमलपात्र, श्री देवनागरी देवनागरी के व्यक्तित्व का गम्भीर प्रभाव पड़ा था। योह एक निर्भीक आदर्श के अन्तराष्ट्रीय विरोध के अन्तराष्ट्रीय देशवासियों में है।

की बहानी उनके साहसपूर्ण कार्य की वीर गाथा है। 27 फरवरी, 1942 को उन्होंने बर्लिन से ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के विरुद्ध सशस्त्र प्रचार अभियान आरम्भ कर दिया और विभिन्न स्थानों से अनन्त वर्षों तक प्रसारण करते रहे। जून 1943 में बीस जापान वा पहुँचे। 5 जुलाई, 1943 को उन्होंने आज़ाद हिन्द फौज की स्थापना की घोषणा की। उस समय उसमें 60 हजार से कुछ अधिक भारतीय सम्मिलित थे। उनका मुद्र-पोष या 'दिस्ती बसों'। 21 अक्टूबर, 1943 को बीस ने स्वतन्त्र भारत की अस्थायी सरकार की स्थापना की। फरवरी 1944 से अगस्त 1945 तक आज़ाद हिन्द फौज ने भिन्न राष्ट्रीय की सेनाओं के विरुद्ध बीरतापूर्ण अभियान चलवाये और भारत की भूमि में प्रवेश करने में भी सफल हुई। पुनःसंयुक्त 8 अगस्त, 1945 को टोकियो जाते हुए राय में विधान दुषटना से बचत हो गये। उन्हें पाठक चोट पहुँची और उनके दिनों की छाया भेला न उठान अपनी बहुवीरता समाप्त की। इस प्रकार द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान राय ने जातीयवादी शक्तियों के साथ भेल कर लिया और आज़ाद हिन्द फौज का संगठन करते हितात्मक आधार पर देश की स्वतन्त्रता के लिए युद्ध आरम्भ कर दिया।¹² बीस ने राजनीतिक जीवन में यह सफल अवधिपूर्ण रोचक है। जो व्यक्ति एक समय स्वराज्य दल का सक्रिय सदस्य था वह देश की स्वाधीनता के लिए आज़ाद हिन्द फौज का महासल्लाहक बन गया।

2 बीस के राजनीतिक विचारों के दार्शनिक आधार

मुन्नायपण्ड बीस कमजोरी थे। वे दार्शनिक नहीं थे, और न उन्होंने वैज्ञानिक दार्शनिक दृष्टि की कोई चीज लिखी है। निम्न विद्यार्थी जीवन में उन्होंने दर्शन का अध्ययन किया था। उस पर विवेकानन्द¹³ और आरबिन्द¹⁴ की रचनाओं का प्रबल प्रभाव पड़ा था। बीस विवेकानन्द की और विशेष रूप से आकर्षित हुए थे। पन्द्रह वर्ष की आयु में ही उन्होंने उनकी रचनाओं का अध्ययन कर लिया था। उनकी दृष्टि में विवेकानन्द निर्भीक मनुष्यत्व का मूर्तरूप थे। उनसे बीस ने 'आत्मना मोक्षाय जपद्विनाय' (जिसी मोक्ष तथा मानवता के उत्थान के लिए) का जीवन दलन सीखा। वे विवेकानन्द के वाक्यों की बीरतापूर्ण मानते थे।

बीस ने शंकर के मायावाद के सिद्धांत को स्वीकार नहीं किया, यद्यपि विद्यार्थी जीवन में वे शंकर के सिद्धांत का हिंदू दर्शन का सार मानते थे। उन्हें ईश्वर में आस्था थी।¹⁵ निम्न वे विद्वत् की भाषा मानकर स्वयं के लिए तयार नहीं थे। उस पर रामकृष्ण और विवेकानन्द के विचारों का प्रभाव था। वे बीस महाभारत विद्वत् की 'ईश्वर का सीलाक्षर' मानते थे। वेगल ने शंकर के सिद्धांत के अद्वैतवादी आध्यात्मवाद का महाभारतविद्वत् का भी स्वीकार नहीं किया है। उसका भूवाच सर्वत्र आस्तिक दर्शन के प्रति रहता है। बीस ने रामकृष्ण तथा विवेकानन्द¹⁶ के प्रभाव में शंकर विद्वत् व मायावादी दृष्टिकोण का जो संगठन किया वह 'आर्षा' में आरबिन्द की रचनाओं की पद्धति से और भी पुष्ट हो गया। बीस ईश्वी विधान की सर्वोच्चता की स्वीकार करते थे, निम्न प्राप्त ही प्राप्त वे इस पारम्परिक पर भी बड़े रहे कि विद्वत् की सत्ता सदाय है और उनके दार्शनिक तथा अधिकांश आध्यात्मिक है।

बीस ने माया के सिद्धांत का मन्दन दिया और विद्वत् की वास्तविकता को स्वीकार किया। उन्हें यमिन् विचार के सिद्धांत में विश्वास था। प्रकृति की धारणा के समर्थन में उन्होंने तीन तक प्रस्तुत किये हैं। प्रथम, प्राकृतिक जगत तथा इतिहास का अवलोकन करने से प्रतीत होता है कि

12 बीस ने जीवन के इन क्षणों के लिए तथा आज़ाद हिन्द फौज का वास्तविकता के लिए निम्नलिखित पुस्तकें का अनुशीलन किया था जिनमें हैं - *सुप्रिंग टिगर* (अगस्त 1939) का प्रकाशन 1939), *माया मेमोर्स ऑफ़ द I N A and its History* का प्रकाशन 1939) *My Adventures with I N A* निम्न बीस की एकमात्र व्यक्तिगत पुस्तकें जिनमें वे अपने *On to Delhi Blood Bath On with the Fight* की पुस्तक मुन्नायपण्ड का सम्पूर्ण व महाभारतविद्वत् नहीं है।

13 *An Indian Pilgrim* पृ 42-45

14 1928 में पांडेयों के राजनीतिक विचारों तथा राजनीतिक की आलोचना करते समय राय ने आरबिन्द का भी आलोचना की थी।

15 मुन्नायपण्ड बीस 'विद्वत्' के रूप में (पृ 10)। राय का मानना था कि युद्ध में विचारों का। उन्होंने शंकर के अपने दल में लिया था कि यदि मायावाद का प्रभाव विद्वत् मान का कारण है।

16 *An Indian Pilgrim* पृ 82

अधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन

विषय प्रगति की ओर जा रहा है। दूसरे अर्थ प्रण से भी यही अनुभूति होता है कि हम अपने की ओर बढ़ रहे हैं। इसके अतिरिक्त लोग ने मुख्यमन्त्री तक भी दिया है। उनका कहना है कि जीवशास्त्रीय तथा नैतिक आधार पर प्रगति में विपन्नता करना आवश्यक है।

लोग या विचार है कि प्राचीन साम्य सम्प्रदाय के वास्तविक है।

लोग अन्धकार और बोधोपा विरहित की भी वे लोग के वास्तविक है।

होने परन्तु वे विकासवादी विचारों के वास्तविक है।

वास होता है।

सोच का विचार है कि प्राचीन साम्य सम्प्रदाय के दार्शनिकों ने विकासवादी प्रगति की जो
 उल्लेख स्पष्ट और बोटिया विधि की जो वे सामुदायिक मानव को स्वीकार नहीं हो सके।
 विकास होता है। उन्होंने मान हाइमन द्वारा प्रकाशित इस धारणा का भी उल्लेख किया है कि
 विनय मान-सूचक दृष्टांतिक की अधिष्ठाता है। य साम्यवाद धारणा का भी उल्लेख किया है कि
 के धारणा का प्रतिनिधि है, उल्लेख कर सकते थे। वे धारणा के सुव्यवस्थित विकास तथा अंत प्रकाश
 के सिद्धान्तों से भी परिचित हैं। किन्तु सोच की धारणा है कि यद्यपि इन सिद्धान्तों में साथ का कुछ
 अंत है, फिर भी हेनल का ब्रह्मात्मक विकास का सिद्धान्त इन सबसे अधिक समीचीन है।¹² के
 स्वीकार करते हैं कि कोई भी सिद्धान्त धारणा के साथ सहजता से स्वीकार्य नहीं कर सकता
 फिर भी वे मानते हैं कि स्पष्ट के विकास और प्रगति के सुव्यवस्थित विकास के सिद्धान्तों की
 सुलभा में हेनल का ब्रह्मात्मक प्रगति का सिद्धान्त धारणाधारी धारणाधारी विकास के सिद्धान्तों की
 स्पष्ट, दोनों ही धारणा में अधिष्ठान्त उपयुक्त है। सोच लिखते हैं, 'किन्तु हमें तब तक नहीं कि हेनल
 का सिद्धान्त साथ के सर्वाधिक निकट है। वह तथा की अन्य विचारों सिद्धान्त की अपेक्षा अधिक
 साधारणतया धारणा करता है। साथ ही साथ उसे अधिकतर साथ नहीं माना जा सकता, क्योंकि
 किन्तु हीनल के ब्रह्मात्मक विकास के सिद्धान्त से अनुप्राणित होने के
 इस धारणा को स्वीकार करते कि तथा (धार्मिकता) के सिद्धान्तों से अनुप्राणित होने के
 स्पष्ट तथा की बुद्धि अपेक्षा विचार (धार्मिकता) के सिद्धान्तों से अनुप्राणित होने के

किन्तु होल में इन्द्रायक विकास के सिद्धांत से अनुमति होने के बावजूद भी होल की
 इस धारणा की स्वीकार करते कि सत्ता (शासकविका) का स्वभाव भौतिक है। एनेस्तेयरस तथा
 होल सत्ता की बुद्धि अथवा विचार मानते हैं। किन्तु भीत प्रेम की सत्ता की प्रवृत्ति मानत है।
 उन्होंने लिखा है 'मेरी दृष्टि में प्रेम सत्ता का तात्त्विक स्वभाव है। प्रेम विश्व का सार है और
 मानव जीवन का तात्त्विक गुण है। मैं मानता हूँ कि यह धारणा भी असुर है। स्वाभिन्न नै वास्तविकता
 की नहीं जानता और न जान वरन सत्ता की जानने का दावा करता हूँ, वाहे आत्मात्मा वह मानव
 मान और अनुभव द्वारा मते ही साक्षात्कृत की जा सके। किन्तु भी मेरी दृष्टि में सत्य सत्ता के साव-
 कृष्ट यह सिद्धांत अधिकतम सत्य का बोधक है और वरन सत्य के तत्वाधिक निष्कर्ष है। मुझे योंन
 कुछ सत्त हैं कि मैं इस निष्कर्ष पर बसे पहुँचा कि प्रेम सत्ता के तत्वाधिक निष्कर्ष है। मुझे योंन
 मेरा शासकान्तर वरनरावादी नहीं है। मैं इस निष्कर्ष पर कुछ अन्त में जीवन के सभी पहुँचा का
 पौरुषिक अध्ययन करके कुछ अन्त प्रका के द्वारा और कुछ 'साधारण' आवश्यकताओं को ध्यान में
 रखकर पहुँचा हूँ। मैं अपने अनुविद प्रेम की सीमा देखता हूँ अपने भीतर भी मैं उन्नी प्रवृत्ति की
 देखता हूँ, मैं अनुभव करता हूँ कि 'मुझे अपना जीवन सावक बनाने के लिए प्रेम करना चाहिए' और
 जीवन का पुनर्निर्माण करने के लिए एक 'साधारण' सिद्धांत का रूप मैं मुझे प्रेम की आवश्यकता
 है। अनेक बार मैं त न इसी निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ। मैं बहुत बड़ बुद्धि हूँ कि मानव जीवन में साधारण
 प्रेम है। बुद्धि जीवन में बहुत कुछ ऐसा देखन का विचार है जो प्रेम के बिना ही प्रेम के बिना ही
 सत्ता की पुनरीति की जा सकती है। किन्तु इस विरोधाभास का समाधान सरलता में निष्ठा या सत्ता
 है। साधारण की अन्नी कुछ अधिष्ठाति नहीं हुई है वह अपने को देख और काल में व्यक्त कर रहे
 हैं। प्रेम भी सत्ता की साध, जिसका कि यह सार है सत्तात्विक है। यह सम्भव है कि योग न
 यह धारणा कि प्रेम सत्ता का सार है वैमिश्र है नवद्वेषरावादी वास्तविक मध्यस्थ से प्रवृत्ति की थी।
 'बुद्धि' सत्ता में सत्ता का प्रेम के रूप में देखा, इसत प्रवृत्ति होता है कि सत्ता के सम्बन्ध में जगता

17 *मन न An Indian Pilgrimage* का प्रथम संस्करण १९०८ ई. में हुआ था। यह ग्रन्थ है कि योग
18 *योग के सम्बन्ध में योग का विचार क्या है और कि* *योग के सम्बन्ध में योग*
19 *विचार कर व सोच का अर्थ क्या है, व कि योग क्या है* *योग के सम्बन्ध में योग*

18
19

18
19

19 ४४ १ 14
४४ १ 142

दृष्टिर्बोध मानकतावादी का । वे सत्ता के उन गुणों से अधिक प्रभावित नहीं थे जिनकी अभिव्यक्ति ब्रह्माण्ड में होती है, वे उसके उस रूप से अधिक आकृष्ट हुए थे जो मानव जाति के रूप में व्यवहृत हुआ है । सत्ता की यह धारणा जो प्रेम की कक्षा का सार मानती है वैश्वक ब्रह्म के समान है । अरविन्द आनन्द की सत्ता का परम सार मानते हैं, विन्तु मोक्ष वैश्वता के आस्तिकवाद के अनुयायी हैं इसलिए वे आनन्द की नहीं, प्रेम की सत्ता का मूल स्वरूप समझते हैं । यह भी सम्भव है कि उन पर अग्रवस्था रूप से ईसाइयत की प्रेम की धारणा का भी प्रभाव पड़ा हो ।

धोस की सत्ता विषयक धारणा ये, जिसे उन्होंने मकटपगड से सीखा था, प्रतीत होता है नि-
उनवा हस्तिकोण अस्तित्ववादी भी है। उन्हें जीवन से अनुप्राण है। वे प्रत्यक्षवादी नहीं हैं। वह
केवल की इस धारणा से सहजपुष्टि नहीं है कि वस्तु एवं निर्गुण तथा अनियमनीय आध्यात्मिक
सत्ता है। वे अपने को इस सीमा तक व्यवहारवादी कहते हैं कि वे सत्ता की इस धारणा को स्वीकार
करना चाहते हैं जिसके अनुसार जीवन की क्षण सत्ता सम्भव हो सके।

बोध की विचारों की सत्यतात्मक शक्ति में निश्चय है। वही हमी में इस पारंगत की भी स्वीकार करते हैं कि विचारों की अत्यन्त शक्ति स्वयम्भूति होती है।¹⁰ प्रायः वे आस्तिक ब्रह्म की शक्ति ईश्वर की असीम महिमा तथा शक्ति का भी अनुभव करते हैं और उन्हें ऐसा प्रतीत होता था कि भगवत् ईश्वर के हाथों में एक वज्र प्रति है।¹¹

3 भारतीय इतिहास पर नीचे के विचार

महाधि अपनी विश्वोपस्था में जोस वेदात राजन के प्रसन्न है, विस्तु पीरे पीरे के सामानिक तथा राजनीतिक समायवादी बन गये । तिलक की भाति वे भी कम के समयक थे । वे आधुनिक समाजिक सम्मता की प्रविधियों की अग्नाने के पक्ष में थे । विवेकाद की भाति उनका भी विश्वास था कि अखिल अहिंसा भारत के पराजय के लिए उत्तरदायी थी । भारत की धर्म के ह्रास के कारण का विरलेपन करते हुए बीज ने लिखा था, “अतः है, वह क्या बीज है जिसके कारण भारत का नीतिक तथा राजनीतिक दोषों में पड़न हुआ है ? उसका नाम तथा अतिप्राकृतिक शक्ति में विश्वास, आधुनिक समाजिक प्रगति के सम्बन्ध न उसकी उदासीनता, आधुनिक बुद्ध विज्ञान न उसका विश्वास, अन्तः के परवर्ती दयन से उत्पन्न धार्मिक समता के की भावना तथा अहिंसा का प्रारण जो ह्रासास्पद बीजा एक पक्षक पक्ष है—ये सब भारत के पराजय के कारण हैं ।”

होस का विचार है कि भारतीय राजनीति में हिन्दुओं तथा मुसलमानों के पारस्परिक भेदभाव तथा अलगवाह के सम्बन्ध में भी जोरमुल मचाया जाता है वह "बहुत कुछ इज्जत बीज" है। उन्होंने कहा कि बहुत सारा भी अलगवाह से बढ़ते की भारतीय राजनीतिक व्यवस्था को मुसलमान व्यवस्था कहना अनुपयुक्त है, क्योंकि दिल्ली में केन्द्रीय प्रशासन तथा प्रांतीय प्रशासन, दोनों ही दोनों के अनेक प्रशासकाली हिन्दुओं का मुसलमान शासन के साथ सम्बन्ध था।¹

बोले या कहना या कि बंगाल कुछ सीमा तक अनुरण्य है। यह भारत के अन्य भागों से भिन्न

जाते थे "हैम्पटन और नॉमवेस जैसा अधिकृत आदेशवाद हो।"³¹ उन्होंने बिदेवाचार से इस कथन को दुहराया कि बिना त्याग से साधारणकार नहीं हो सकता। उनकी दृष्ट भाषणा थी कि राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए घोरतम कष्ट उठाने पड़ेंगे। बात यह भी जाती है कि स्वाधीनता की प्राप्ति के लिए महान नैतिक संघर्षों की आवश्यकता है। इस प्रकार यद्यपि विदेशी शासन-शाही के विरुद्ध संघर्ष के सम्बन्ध में उनका दृष्टिकोण समाजवादी था, किन्तु वे मानते थे कि भारतीय जनता की आत्म-रक्षा तथा कष्ट-मूलक से बिना सम्पन्नता नहीं मिल सकती।

बोस को कोई राजनीतिक स्वतन्त्रता वास्तुष्ट नहीं कर सकती थी। इसमें सन्देह नहीं कि वे देश की राजनीतिक स्वतन्त्रता की साक्षात्निष्ठ आवश्यकता को स्वीकार करते थे, किन्तु समाजवादी होने के नाते वे इस बात को भली-भाँति समझते थे कि अमीरों तथा किसानों, पूँजीपतियों तथा मजदूरों, अमीरों तथा शरीरों के 'आंतरिक सामाजिक संघर्ष' को स्थगित नहीं किया जा सकता। उनका यह भी विश्वास था कि भारतीय समाज में घनी जन विद्रोह गहराई में वहाँ में सम्मिलित हो जायेंगे। उन्होंने लिखा था, "इसलिए दृष्टिगत था 'आत्म अनिवाच्यता' अपने मांग का अनुसरण करेगा, राजनीतिक संघर्ष तथा सामाजिक संघर्ष साथ-साथ चलता रहेगा। जो देश भारत के लिए राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करेगा वहीं देश जनता को सामाजिक तथा आर्थिक स्वतन्त्रता भी दिलावेगा।"³² फ़रवरी के बहुत दशक में वहाँ समाजवादी (साम्यवादी) सत्तिवा के माने हुए नेता थे।³³ उनके वादपथ के दृष्टिकोण थे। राष्ट्रीय दशक के अंतिम वर्षों में उनके सामवाद (साम्यवाद) का अभिप्राय औद्योगिक स्वतन्त्रता की भाव का विरोध करना था।³⁴ अथ नेताभा ने मिलकर बोस ने पूरे स्वतन्त्रता का समर्थन किया। बहुत दशक में तथा उनके बाद बोस के सामवाद के स्पष्टतः आर्थिक रूप धारण कर लिया। 19 मार्च, 1904 में रामपद ने हुए अखिल भारतीय सम्मेलन विरोधी सम्मेलन में भाषण देते हुए बोस ने कहा था, "यहाँ पर यह समझने के लिए कि सामवाद के हमारा अभिप्राय क्या है, दो शब्द कहना आवश्यक है। वर्तमान युग हमारे आदर्शन की साम्राज्यवाद विरोधी अवस्था है। इस युग में हमारा मुख्य काम साम्राज्यवाद का अन्त करना तथा भारतीय जनता के लिए राष्ट्रीय स्वतन्त्रता प्राप्त करना है। जब स्वतन्त्रता मिल जायगी तो राष्ट्रीय पुनर्निर्माण का युग प्रारम्भ होगा, और वह हमारे आदर्शन की समाजवादी अवस्था होगी। वर्तमान अवस्था में सामवादी न कहतामैं तो साम्राज्य के विरुद्ध बिना किसी प्रकार का सम्मेलन बिदे संघर्ष जारी रखेंगे। जो साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष में वसन्तार और द्विचक्रवाते हैं, वह किसी भी रूप में सामवादी नहीं कहा जा सकता। हमारे आदर्शन की अन्ती अवस्था में सामवाद साम्राज्यवाद का पर्यायवाची होगा—किन्तु वर्तमान अवस्था में 'सामवाद' और 'साम्राज्यवाद विरोधी' का एक ही अर्थ है। बोस ने सभी वरन्धवावादी मानववाद को अस्वीकार नहीं किया। उनकी द्विद्व आध्यात्मवादी दशन की उत्तमवादीय धारणाओं में इसकी गहरी अवस्था थी कि मानव का उद्धारनन औद्योगिकवाद जननी आत्मा को सभी सहीय नहीं दे सकता था। किन्तु उन्होंने सामानवादी विचार-धारा का समर्थन किया। हरिद्वार गार्गेश ने अकबर पर अपने अन्धश्रौत भाषण में उन्होंने कहा, "मुझे हमने अनिक को सन्देह नहीं है कि हमारी दरिद्रता, निरक्षरता, और बीमारी के उद्धारनन तथा समाजिक उत्थान और विद्रोह से सम्बन्धित समस्याओं का समाधान सामानवादी समाजवादी मार्ग पर चलकर ही प्राप्त किया जा सकता है।" उनका कहना था कि दरिद्रता तथा निरक्षरता का उद्धारनन राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के मुख्य काम हैं। उ होने अमीरों का उद्धारनन तथा किसानों की आध्यात्मिकता का अन्त करने तथा देशीय सेवा में सक्षम जन की व्यवस्था करने का समर्थन किया। उन्हें महानगी आदर्शन के अन्त में विश्वास था। वे द्वि में बीजानिष्ठ प्रभावों को अपनाते थे

31 वही।

32 वही *The Indian Struggle*, p. 413-14

33 वही p. 45-46-55

34 वर्तमान बीजानिष्ठ *History of the Indian National Congress* वि. 1, पृ. 330-31 (सर्व प्रकाशकाल, 1946)।

35 *The Indian Annual Register* 1938 वि. 1, p. 340 पर उद्धृत।

क्यों तक वह अविभाजकवादी दलितों के सम्मान एवं मजबूत वैश्वीय सरकार में विश्वास करेगा जिससे कि भारत अपने पैरों पर खड़ा हो सके।⁴⁴

(4) देश के ऐतिहासिक तथा औद्योगिक जीवन का पुनर्गठन करने के लिए उन्हे राजनीय नियोजन की सुझाव तथा समुचित व्यवस्था में विश्वास होना।

(5) वह कभी सामाजिक व्यवस्था का उन पुराने नव समाज के आधार पर निर्माण करने का प्रयत्न करेगा जिसमें नव पक्ष शामिल करते थे। इससे अतिरिक्त वह ज्ञाति जमीन वर्तमान सामाजिक बीमारों को ध्वस्त करने की भी चेष्टा करेगा।

(6) वह आधुनिक सरकार में प्रचलित सिद्धांत तथा प्रयोगों की ध्यान में रखते हुए एक नयी मुद्रा-व्यवस्था की स्थापना करने का प्रयत्न करेगा।

(7) वह जनोद्योगी प्रथा का उद्घाटन करने तथा सम्पूर्ण भारत में एकाही धूमि व्यवस्था कायम करने की कोशिश करेगा।

(8) वह उस प्रकार के लोकतंत्र का समर्थन नहीं करेगा जैसा कि किटोरिया के शासन-काल के मध्य में इंग्लैण्ड में प्रचलित था। वह एक ऐसे सत्तियाधी दल के शासन में विश्वास करेगा जो सैनिक अनुशासन के द्वारा बरस्वर आचर्य होना। जब भारतवासी स्वतंत्र हो जायेंगे और उन्हें पूर्ण अपने साधना पर ही निर्भर रहना होगा उस समय देश की एकाता की कायम रखने तथा अराजकता की रोकथाम का यही एकमात्र साधन होगा।

(9) भारत की स्वतंत्रता के पक्ष की मजबूत बनाने के लिए वह अपने आंदोलन को भारत के भीतर तक ही सीमित नहीं रहेगा, बल्कि वह अन्तरराष्ट्रीय प्रचार का भी सहारा लेगा और उसके लिए विश्वमात्र अन्तरराष्ट्रीय संघर्ष का प्रयोग करने का प्रयत्न करेगा।

(10) वह सब उपकारी संघर्षों की एक राष्ट्रीय कामवासीता के अन्तर्गत समर्थित करने का प्रयत्न करेगा जिससे जब कभी कोई कामवासी की आज की अनेक बीमारों पर एक साथ काम किया जा सके।⁴⁵

5 बीस द्वारा गांधीवादी विचारों तथा कार्यप्रणाली की आलोचना

मुन्नाय बीस के मत में गांधीजी के चरित्र तथा व्यक्तित्व के लिए गहरा सम्मान था।

6 जुलाई, 1944 को रजुल रविदा से एक प्रचारक में उन्होंने महात्माजी को राष्ट्रनिष्ठा कहकर अभिनन्दन किया और उनसे भारत के स्वाधीनता संग्राम में सक्रियता के लिए आशीर्वाद मांगा। वे गांधीजी की सत्यनिष्ठा तथा आर्थिक पवित्रता की प्रशंसा किया करते थे। बात उनकी "अनन्ध भक्ति, उनकी दुर्लभनीय दृष्ट्यायति तथा अथक विवाधीनता के सम्मान दीक्षा तथातः।⁴⁶ वे उनके मानवतावादी दृष्टिकोण तथा अनमित्रीह की भावना की सराहना किया करते थे।⁴⁷ उन्होंने स्वीकार किया था कि कांग्रेस की सुझाव बनाने तथा जनता में व्यापक जागरूक उत्पन्न करने के लिए गांधीजी ने महान् कार्य किया है। किन्तु वे कभी गांधीवादी नहीं बन सके। उनका कहना था कि गांधीवाद का सम्बन्ध केवल कामवासी अर्थात् सत्याग्रह से है, उसका कोई सामाजिक दान अथवा सामाजिक पुनर्निर्माण का कोई कामना नहीं है।⁴⁸ उन्होंने गांधीजी के विचारों तथा कार्यप्रणाली का पांच भाषाओं पर विरोध किया।⁴⁹

राजनीतिक तथाचकती होने के नाते बीस गांधीजी के अतिशय नैतिक आदर्शवाद की सराहना न कर सके। उनकी भावना थी कि प्रजीवन की बुद्धता के सम्बन्ध में मुद्रा नैतिक छान-

44 वह कामकाज जिसमें अविभाजक की दलितों के सम्मान वलितवादी वैश्वीय सरकार पर मत दिया गया था बीस की राजनीयदी मर्यादित का कोषक है।

45 बीस *The Indian Struggle*, पृ 428-29

46 वही, पृष्ठ 408

47 वही, पृष्ठ 408-9

48 वही पृष्ठ 483

49 मुन्नायबीस *'The Role of Mahatma Gandhi in Indian History,' The Indian Struggle*, ममान 16, पृ 906-14

यौन में लौटने से राजनीतिक समस्याएँ उत्पन्न जाती हैं। उनका विश्वास था कि राजनीतिक बाध में सफलता के लिए सौदागरी भी वाली भी आवश्यकता होती है और बाह्य माहमूर बनना पड़ता है। यौन का कहना था कि गांधीजी दोहरी भूमिका खड़ा कर रहे हैं—य भारतीय जनता का राजनीतिक नेता है और साथ ही साथ अहिंसा के नैतिक अवलम्बक हैं। इससे भारी अवलम्ब और भ्रम उत्पन्न हुआ है और महात्माजी दोहरी भूमिका सफलतापूर्वक खड़ा नहीं कर सके हैं क्योंकि एक स्थिति के लिए दो भूमिकाएँ खड़ा करना सर्वथा असंभव नहीं है।⁵⁰ बुद्धि सम्स्याका के प्रति उनका दृष्टिकोण तत्काल नकार है, इसलिए वे ब्रिटिश राजनीतिज्ञों और प्रतिक्रियानाटिका की कुटिलता तथा व्यवहार को समझने में असफल रहे हैं। महात्माजी की सार्थक इरादा निहित है कि अपनी जनता की मन स्थिति की जो वह भुविवादी समझ है, किन्तु न अपने विरोधियों की मनोवर्तन को समझने में असफल रहे हैं।

यौन के अनुसार गांधीवाद का सामाजिक-धार्मिक आधार 'अनुष्ठान' था। बुद्धि गांधीजी का ईश्वर के बलवत्तम विश्वास में विश्वास था इसलिए वे कहा करते थे कि भेरे लिए एक कदम बर्बाद है।⁵¹ वह माना की कि कुछ साधना से बलवत्तमारी उद्देश्य अनिवार्य सिद्ध हो जायेंगे। किन्तु यौन स्वयं राजनीतिक व्याख्यादी थे इसलिए वे पाह्य थे कि राष्ट्र के राजनीतिक उद्देश्य का एक सुदृष्टिगत षाट तयार किया जाय और उसको साक्षात्कृत करने के लिए आवश्यक साधना को समझने में असफल रहे। गांधीजी अन्तरात्मा की योग्य पुरार का गुण के सम्मत्त आधार की समझने में असफल रहे। गांधीजी के राजनीतिक विचारों के अंत महात्मा के किन्तु यौन को राजनीतिक गुणों और राजनीतिक स्थिति में विश्वास था। उनका विश्वास था कि बिनास्वच्छ मोतीलाल नेहरू तथा लाला लाजपतराय की मनु से गांधीवादी अनुष्ठान के प्रमुख के लिए सब खाली हो गया था।⁵² बुद्धिवादी रूप में कुछ प्रभावशाली तार्किक प्रारम्भ में गांधीजी के विश्वास के किन्तु जनता में वलम्बर के लिए जो उपायपूर्ण श्रद्धानुसंधानार्थ की उन्होंने उनके विराध को कुचल दिया था।

यौन की मान्यता थी कि केवल अहिंसा द्वारा स्वराज्य प्राप्त नहीं किया जा सकता। उनका कहना था कि अहिंसात्मक साधना में मोक्षमार्ग को उपायने की क्षमता होती है किन्तु जब तक जनता पर स्वतन्त्रता नहीं प्राप्त की जा सकती। यौन का विश्वास था कि अहिंसा के पूरक के रूप में दो अन्य कार्य प्रभावशाली का प्रयोग किया जाना चाहिए (क) कूटनीति, तथा (ख) अन्तरात्मात्मिक प्रचार।⁵³ वे अपने राजनीतिक गुणों बिनास्वच्छता तथा मोतीलाल नेहरू की राजनीतिक व्याख्या तथा योग्यता की सराहना किया करते थे। गांधीजी देश में छेड़ रचवापर बाध करने में विफल रहते थे। उनकी मान्यता थी कि बाध ही सबसे अच्छा प्रचार है। यौन का विश्वास था कि जब गांधीजी को द्वितीय मोक्षमार्ग सम्मत्त की निरवकता स्पष्ट हो गयी थी तो उन्हें चाहिए था कि उही समय उनके अधिवेत्ताना को छोड़ कर बने जल और सम्मत्तन के खोजने का प्रयास करें के लिए अमरिका तथा यूरोपीय महाद्वीप की यात्रा पर निश्चय करते।

गांधीजी ने सम्पूर्ण भारतीय राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करने का दावा किया था इसलिए उन्होंने विभिन्न वर्गों की वास्तविक सन्तुष्टा को कम करने के लिए सामाजिक सम्मत्तन तथा गैर वितापन का समर्थन किया। वे जमींदार तथा ब्राह्मण पक्षीयता और मजदूर सभी के प्रतिनिधि बनना चाहते थे। इसके विपरीत यौन भविष्य तथा विपत्ति के बीच सामाजिक संघर्ष को अत्यावश्यक मानते थे।

50 यही, 3 322

51 यही 3 164

52 यही 3 90 91, 104

53 कुलपत्र 2 यौन ने 1938 में ब्रिटिश क हार्मिगुस अधिवक्ता के अवसर पर अपने सामाजिक भाषण में इन बातों का सम्मत्तन किया था कि ब्रिटिश की यूरोपीय जमींदार तथा जलती वन्य और स्थानीय अवस्था में अपने विश्वसनीय प्रतिनिधि बनने चाहिए। वे पाह्य थे कि उनका पक्ष पर अन्तरात्मात्मिक सम्मत्तन कायम करने चाहिए।

54 यौन ने किन्तु ब्रिटिश के अवसर पर अपने भाषण में बिनास्वच्छता की बलवा 'दुष्ट' अवस्था का।

उनकी भावना थी कि देश के सभी तथा समूह वन अनिवार्यतः विदेशी साम्राज्यवादियों के पक्ष में सम्मिलित हो जायेंगे इसलिए वे इसके विरुद्ध थे कि गांधीवाद के अत्यन्त देश के विभिन्न विभाग कला को एक ही स्थान पर एकत्रित किया जाय। उन्हें आशा थी कि एक ऐसा वागवची दल निर्माण हो उठित होगा जो अधिक कुम्हार और उन्नत कला का समर्थित कर सकेगा। ऐसा दल गांधीवादी नेतृत्व से बाहर रहकर देश की स्वाधीनता प्राप्त करने में सफल होगा। अपनी पुस्तक 'द इन्डियन स्टूडन' (भारतीय छात्र) के अन्त में बोस ने लिखा है "निन्दु भारत की महत्त्वात्मा गांधी के नेतृत्व में मुक्ति नहीं मिल सकती।" इतिहास ने सिद्ध कर दिया है कि बोस एवं ऐसे संगठन के जिनकी मभिप्रायवाणी अत्यन्त सिद्ध हुई।⁵⁵

बोस का विचार था कि गांधीजी न केवल अपना अनेकान रूप में भारतीय जनता की साहू-हिन क्रांतिवादी के रूप तथा की उन्नततम अनुचित शक्ति उठाना था। इसके लिए बोस गांधीजी की आलोचना किया करता था। भारतीय जनता के मन में गलती तथा गृहमियों के लिए अभाव यज्ञा है। गांधीजी ने सत्य की वैश्वभूषा अपनायी थी। नहीं बरकरा था कि उन्हें जनता का समर्थन तथा आत्मसम्मान शोधप्रियता मिली। याम की भावना थी कि जनता की भावनाशा वा इस प्रकार प्रयोग करने से देश में स्वतंत्र व भित्तन तथा दस्तुष्ट विस्तेषण की प्रवृत्तियों की प्रोत्साहन नहीं मिलता, यह ही एक बुद्धिपूर्ण राजनीतिक प्रयासी थी।

6 क्या बोस गांधीवादी थे ?

बोस की राजनीतिक सम्भावना व विश्वास था। उनकी बुद्धि बहुत ही कुशाग्र थी। उन्होंने स्वीकार किया कि भारतीय स्वाधीनता के पक्ष में सहानुभूतिपूर्ण विरोधवादी मोर्चागत तैयार करने के लिए विदेशों में प्रचार करने की आवश्यकता है। इस प्रकार वे देश के बाहर भारत के लिए विदेशी की लोड करने में विश्वास करते थे।

इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि बोस के मन में गांधीवादी अभिप्रायों के समस्त तरीका के प्रति भावनात्मक भ्रम था। 1934-35 में बोस ने अपनी पुस्तक 'भारतीय छात्र' में लिखा था कि मुस्लिमों एक देश व्यक्ति है जिसका आधुनिक यूरोप की राजनीति में विशेष महत्व है। 1931 में गांधीजी ने इटली की यात्रा की और मुस्लिमों के भेंट की। इसकी बोस ने बहुत ही महत्वपूर्ण माना। उन्होंने लिखा था, "गांधीजी के इटली की यात्रा करने महान सांस्कृतिक सेवा की है। ग्रेट की बात केवल यह है कि वे बहुत और अधिक नहीं उधरे तथा अधिक निजी सम्पन्न वागम नहीं किये।"⁵⁶

बोस की इंग्लैण्ड के विक्टोरिया युवीन सोकल"न की परम्परागत बात प्रयासी में विश्वास नहीं था, और न वे उनकी कलात्मकी के फास के पुञ्जीवादी मध्य व ने तरीका को सहाय्यक

55 *The Indian Struggle*, पृष्ठ 414 : जब 1933 में गांधीजी के आत्मबुद्धि के लिए 21 दिन का अवकाश दिया तो उस समय बोस और विजयवाई वरेन ने लिखा के एक समुक्त वेदव्य विचारों किसे उद्धृति कहा, हमारा यथार्थ यह है कि वह बोसों एक राजनीतिक देश के मन में समझता हुआ चुने है। इसलिए यह समझ भावना है कि वह विदेश का सबसे सिद्धा की न समझ कर और मन तरीकों के आतिशयोक्ति कुम्हार विचार काम। उनके लिए एक ही मता की आवश्यकता है। यथाकि वह समझ करना अनुचित होता कि की गांधी ऐसे काव्यमय भी काशीं लड़ कर सकेंगे की उनके सोचन कर के सिद्धांती के अतिरुक्त है।

56 निन्दु बोस ने इतिहास में अपने सामाजिक भाषण में कहा था कि भारत की स्वतंत्रता न लिए गांधीजी की आवश्यकता है। उनका कथन था "वस्तुतः इस विषय में नहीं है कि वह बोस मन और मन मन का वह निश्चय ही नहीं छोड़ जा सकता। इस उनकी आवश्यकता इसलिए है कि हमारा समझ पूर्ण और अत्यन्त स मुक्त यह नके। हम भारतीय स्वतंत्रता के लिए उनकी आवश्यकता है। हमने भी अतिरिक्त एक सामाजिक स दिन के लिए उनकी आवश्यकता है। सम्भवतः बोस बोसों की कला करीब न सिद्ध था न " यह यह न।

57 *The Indian Struggle*, पृष्ठ 322 : अनाद्वैतवाक्य नेतृत्व में लिखा है कि 1938 में जब सुभाषचन्द्र बोस भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष में उस समय में होने "एक बात की स्वीकृति नहीं की कि विदेशी बोसों तथा काम करे की कलात्मक कलात्मक प्रयास न सिद्ध है। फिर भी बोसों न और मन के ऐसी यात्रा की कि उन्होंने विदेश द्वारा बोस तथा काशीं विदेशी और कलात्मक के आवश्यकता के सिद्धांती के सति काव्यमय द्वारा दर्शित सहानुभूति का विरोध नहीं किया। हमने उनकी आवश्यकता के काम में कलात्मक प्रयास काम विदेश और समझ प्रयासी का समर्थन किया किना वह हम अनुभवी नहीं किया कि नु उद्धृत उनकी बहुत कर सिद्ध यथाकि न उनके पीछे की भावना की उनकी शक्ति की समझ न।

सहायता की थी। उन्होंने 'नेता' की उपाधि ग्रहण की थी। यह शब्द जयन शब्द 'पूरुर' का कृत्रिम तथा द्विती दर्पितवाची है। स्वयं में इस उपाधि की अपनाने का कोई विशेष महत्व नहीं था।⁴¹ बदायित्त जलजी केना वा प्रसासनीय नयनन कासीवादिनां की सहायारी नेकुल की धारणा पर आधारित था, और उस लोकतांत्रिक नियन्त्रण के सिद्धान्त के विपरीत था जो बुद्ध अशा में पातञ्जल देशों के संनिध समर्थन में जाया जाता है।⁴² विन्तु यदि यह सत्य की हो, तो भी लोकतन्त्रीय राजनीतिक आधार की दृष्टि में इसका विशेष महत्व नहीं है।

चिन्तु बोस को पारसीवाद ने अतिवादी सिद्धांता में विश्वास नहीं था। उन्होंने कभी सामान्यवादी प्रकार का समर्थन नहीं किया,¹⁰⁰ और न कभी जातीय (राष्ट्रवादी) सर्वोच्चता के सिद्धान्त को स्वीकार किया। वे जब तक भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में रहे तब तक वाफिज बनारस के हिंदू का समर्थन करते रहे। अतः यह समझ करना अनुचित होगा कि यदि इनके हाथों में राजनीतिक शक्ति का जाली हो व नवमौल और इहमौल ने पारसीवादियों की भाँति शोषक तथा प्रभुतावादी अर्थों में मिल जाते।

राष्ट्रवादी धर्म म बोस हमेशा वै वैज्ञानिक विचार के सिद्धांत से तथा ब्रह्मर्षी के प्रेम के आधार पर विचारण करते थे। इसलिए यह मान लेना के लिए कोई गुंजाइश नहीं है कि वे फासीवादियों के उस अशुद्धिवादी धनन को, जिसमें नेता की इच्छा तथा अलक्ष्य का विरोधाभास किया जाता है, समानता तथा अंतराष्ट्रवाद के आधारों से श्रेष्ठ मान लेते। अतः यह स्पष्ट है कि बोस को फासीवादी धनन के कुछ आधारभूत राजनितिक तथा राजनीतिक सिद्धांतों में विश्वास नहीं था।¹⁰ फिर भी वे फासीवादियों की समर्थन समर्थन को आलोचना से सहमत थे।

7 फोरवर्ड ब्लॉक के राजनीतिक विचार

मुद्रापत्राङ्कन बीस ने उन परिस्थितियों को प्रयोजनित करने में उद्देश्य से पारम्परिक शक्ति को स्थापना की जो भारत में ब्रिटिश शासन का विरोध करने तथा हुए उपाय में उसका तत्काल अन्त करने में जिज्ञासु की स्वीकार करती थी। वे यह नहीं चाहते थे कि उनका दल महिला की सर्व-साधारणीय सीमाओं के भ्रमों में पड़े, उनका उद्देश्य था कि वह केवल भारतीय स्वतन्त्रता की सुरक्षा प्राप्त करने के नाम में चलते रहें। 1 जनवरी, 1941 को बीस ने पारम्परिक शक्त के मुख्य सिद्धांतों का सार इस प्रकार व्यक्त किया

(1) पूरा राष्ट्रीय स्वतंत्रता तथा जनता के अधिकारों के लिए अधिकतम साधनात्मक विरोधी साधन ।

(2) एक पृथक् आर्थिक दय का सहायता दी राज्य ।

(3) देश के आर्थिक पुनर्गठन के लिए वैज्ञानिक दम से बड़े पैमाने पर उत्पादन ।

(4) उत्पादन तथा वितरण दोनों का सामाजिक स्थायित्व तथा विकास।

(3) व्यक्ति को पारिक्त पुनामाठ में स्थापित ।

(6) हर व्यक्ति के लिए समान अधिकार ।

(7) 'शास्त्रीय समाज' के हर वर्ग को अपना निषेधक उपर्युक्त सांस्कृतिक स्वतंत्रता ।

(8) नवीन स्वच्छता मार्गों के निर्माण से सम्बन्धित तथा सामाजिक काम के शिक्षार्थी को साज्य करना।

यद्यपि इस विवरण में पासीबादो सिद्धांतों को वृक्षतः बहिष्कृत कर दिया गया है, किन्तु इसमें राजनीतिज्ञ स्वतन्त्रता के सिद्धांतों की स्पष्ट घोषणा नहीं है। इसमें धार्मिक, सामुदायिक तथा भाषा

61. बीस व 19 जनवरी 1939 को हनुमान म बीर देकर बहुत बड़ा हिंसा करने के बाद के बाद में बलिष्ठ का समीक्षात्मक विधि बनाई रखी जाती है। इसे पाली पाली करी की तरह है जो कि नेत्रों व विज्ञान पर आधारित है। बाद में करना चाहिए। *The Indian Annual Register* 1938, विषय 1 प 340

62 श्रीमद् ह्युन तर्क, *The Spring Tiger*, पृ 86, 142, तथा एकक अक्षिति 'The Supreme Commander' श्रीमद् बालक ।

63. बीजा का आकाशवाणी विरोधी विचारों के लिए दक्षिण उत्तरांचल क्षेत्र 'Japan's Role in the Far East', *Modern Review*, 1957

64 *The Indian Struggle* 1935-1942, p. 100-1

मानवेन्द्रनाथ राय (1886-1954) का जन्म 6 फरवरी, 1886 को हुआ था, और 25 1954 को उनका देहांत हुआ। उनका प्रारम्भिक नाम नरेश मद्रासाय था। वे अपने बचपन से ही शिक्षाकारी बन गये थे। प्रारम्भ में उन पर स्वामी विवेकानन्द का बड़ा प्रभाव पड़ा था।¹ जिस समय मद्रास में 'महात्मा' का नाम प्रचलित हो रहा था, तब ही उन्होंने 'महात्मा' नाम अपना लिया।

मानवेंद्रनाथ राय (1886-1954) का जन्म 6 फरवरी, 1886 को हुआ था, और 25 जनवरी 1954 को उनका देहांत हुआ। उनका शार्वनिक नाम नरेंद्र मद्रुपाय था। वे अपन विद्यार्थी जीवन से ही क्रांतिकारी बन गये थे। प्रारम्भ में उन पर स्वामी विवेकानन्द, स्वामी राम तीर्थ तथा दशानाथ सरस्वती का प्रभाव पड़ा था।¹ जिस समय बंगाल में स्वदेशी आन्दोलन व कारण प्रचलित चल चुका था तब ही उन्होंने देशी काल में उच्च राजनीतिक धर्म हुआ और उन्होंने अपना राजनीतिक कार्यरत प्रारम्भ कर दिया। उनके मन में उच्च राजनीतिक धर्म हुआ और उन्होंने अपने स्वस्थित कर दिया। उन्होंने गुप्तार मद्रु के कार्यकर्ता तथा नेताओं के साथ मिलकर भी कार्य किया। उन्होंने गुप्तार मद्रु के कार्यकर्ता तथा नेताओं के साथ मिलकर भी कार्य किया। उन्होंने गुप्तार मद्रु के कार्यकर्ता तथा नेताओं के साथ मिलकर भी कार्य किया।

[illegible][illegible]

Life of A. N. Roy and New Humanism (हिन्दी में) एक एक पुस्तक तथा दो लेख संग्रह
 निम्न १।।
 सन १९९९ *Savarkar and His Times* १ १९९९ (सर्कल, १९२८)।
The Radical Humanist सन १९९९

भाषांतर भारतीय राजनीतिक विचार
जो किमान भी मनुष्य का करता रहेगा जो मनुष्य के ही हितों को ध्यान में रखेगा।
1922 के अंत में हम एक रूप में 'द्वितीय' रूप में आगे बढ़ते हैं और यह स्पष्ट है कि भाषा

[illegible]

1922 के दिसम्बर-फरवरी के महीने में हुआ काँग्रेस का अधिवेशन बंगाल की माधुरी में हुआ। इस अधिवेशन में 1200 से अधिक लोग भाग लगे। इस अधिवेशन में 1200 से अधिक लोग भाग लगे। इस अधिवेशन में 1200 से अधिक लोग भाग लगे।

- (1) जमींदारी प्रथा का उन्मूलन ।
- (2) भूमि के अधुनिकीकरण के लिए राजस्वीय सुधार ।
- (3) अन्तर्गत कर का उन्मूलन तथा 'सर्विज' आयकर ।
- (4) सार्वजनिक उपयोग की वस्तुओं का राष्ट्रीयकरण ।
- (5) राजस्वीय सुधारों से आयुक्तिक उद्योगों का विकास ।
- (6) आठ घंटे का दिन । विधान द्वारा 'मनव्यय' मजदूरी का निर्धारण ।
- (7) सार्वजनिक सुधारों का प्रवर्धन ।
- (8) सार्वजनिक सुधारों का प्रवर्धन ।
- (9) सार्वजनिक सुधारों का प्रवर्धन ।
- (10) सार्वजनिक सुधारों का प्रवर्धन ।
- (11) निर्यात तथा उद्योगों का विकास ।
- (12) राज्य तथा सार्वजनिक सुधारों का प्रवर्धन ।
- (13) सार्वजनिक सुधारों का प्रवर्धन ।

भारतीय समाचारपत्रों में इस वाक्यक्रम की बहुत आलोचना की जा रही है।

12 २४१
13 २४१

13 The Programme, *One Year of Non-Cooperation* 105 11

1923 में राय ने 'वन इपर डॉन डॉन बोबोरेयान' (असहयोग का एक वर्ष) नामक पुस्तक प्रकाशित की। इसमें उन्होंने महारवा गांधी की उनके राष्ट्रियतापथ्य के लिए अज्ञान-वृत्ति बर्धित की और उनकी तुलना सत दामन एगिबरास, शायीमरीता तथा अमोसी के मतसि से की। गांधीजी ने 1919 से 1922 तक सामूहिक वाक्यवाही की प्रवृत्ति करने के लिए जो प्रयत्न किये थे उनकी राय में सराहना की। उन्होंने गांधीजी के चार रचनात्मक योगदान स्वीकार किये (1) राजनीति तथा के लिए सामूहिक वाक्यवाही का प्रयोग, (2) भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का एकीकरण, (3) 'अहिंसा के मार्ग' के द्वारा सरकारी दमन से राष्ट्रीय शक्ति का मुक्त करना, और (4) असहयोग, करो भी न भुक्ताने तथा सविनय अवज्ञा के तरीका का प्रयोग।¹⁴

किंतु राय ने अपनी पुस्तक में गांधीवाद की अनेक कमियां पर भी प्रकाश डाला (1) गांधीवाद में जनता का सम्पर्क प्राप्त करने के लिए कोई आधिकारिक कार्यक्रम नहीं था, (2) यह भारत के सभी वर्गों—अमींदारों, मध्यमवर्गीयों आदि शोषकों और शोषित किसानों तथा मजदूरों—की समुक्त करना चाहता था, (3) राजनीतिक वाक्यवाही में सर्वप्रथम शिष्टाचारों की समाविष्ट करना दुर्भाग्य की बात थी, क्योंकि उसमें राजनीति का वाक्यवाही की प्रवृत्ति को अंत करना-सम्बन्धी मनोवृत्ति मान्यताओं की बलिबेदी पर पड़ा दिया गया था, (4) वर्गों का अतिविश्ववादी अवधारण मान्यवादी मानवेन्द्रनाथ राय की अवधारणा का, (5) राय ने गांधी की दुर्लभता की भी आलोचना की। वह यह कहते नहीं थे कि गांधीजी वास्तव में सेंट जॉर्ज का प्रयत्न करें। इसलिए उनका कहना था कि गांधीवाद राजनीति नहीं है बल्कि दुर्लभ तथा निराल सुधारवाद है।¹⁵

1926 में मानवेन्द्रनाथ राय ने 'ए प्रिन्सिपल ऑफ इन्डियन पोलिटिक्स (भारतीय राजनीति का सिद्धांत)' नामक पुस्तक लिखी जिसमें उन्होंने एक लोक दल (पीपुल्स पार्टी) का महत्व समझाया। यह पुस्तक उस समय में लिखी गयी थी जबकि विचारजन दल की प्रेरणा से भारत में भारतीय राजनीति में उत्तर आ गया था, गांधीजी राजनीति से सतक वापस लौटने के लिए थे और मुख्यतः रचनात्मक काम में जुट गये थे, स्वराज्य दल¹⁶ वक्ता अतिरिक्तियों¹⁷ के उत्पन्न आन्दोलन के कारण विद्रोह हो चुका था, और अब राजनीतिक शक्तियों की प्रवृत्ति भी बदल गयी थी। उन्होंने इस पुस्तक की रचना उस समय की जब 1926 के चुनावों के होने में कुछ ही महीने बचे रह गये थे। राय ने लिख लोक दल की स्थापना की थी उसमें उन्होंने सर्वप्रथम दल का स्थापना नहीं बल्कि उसका दूरक वर्तमान था। साम्प्रदायी होने के साथ राय सर्वप्रथम की राष्ट्रीय शक्ति की शक्तियों का सत दल मानते थे किंतु उनका कहना था कि भारत में अब ऐसे साम्प्रदायिक वर्ग हैं जो सत्ता की दृष्टि से विचार हैं अतः उनका भी ध्यान रखना आवश्यक है। राय का विश्वास था कि चारों भारतीय राजनीति पर सिद्धांत में भी बहुत समय तक विचारों, निम्न बुद्धिजीवी¹⁸ दलकार, छोटे व्यापारी, किसान आदि वर्गों के हितों का आधिकारिक रहेगा। राय स्वराज्य दल की दलीयता तथा जमींदारों के हितों का ध्यान समर्थन मानते थे।¹⁹ इसलिए वे चाहते थे कि जमींदारों तथा दलीयताओं का छोड़कर जन समुदाय की राष्ट्रवाद का आधार बनाना चाहिए। वह सामिक सत्तावाद (स्टेट प्रिन्सिपलवाद) तथा सत्तावाद में आस्था रखने वाले किसी मजदूर वर्ग से विशेष आशा रखते थे। जो इस पक्ष में थे कि भारत में एक मजदूर वर्ग की स्थापना होनी चाहिए उनको राय ने 'अप्रवाद

14 एन एन राय, *One Year of Non-Cooperation*, पृ. 50-56

15 वही पृ. 56-60

16 एन एन राय, *The Future of Indian Politics* (नयागर विचार 1926)।

17 एन एन राय के अनुसार अतिरिक्त अर्थों की शक्ति में एक कदम था। राय ने विचारजन दल का स्थापना करने के लिए न केवल न केवल करने वाले स्वराज्य दल का आधिकारिक विधानों की स्थापना की थी। उन्होंने लिखा था कि यह दल प्रत्यक्ष रूप से भारत में स्थापना तथा सर्वप्रथम का सम्पूर्ण भारत में स्थापना करना था। एन एन राय, *Fragments of a Prisoner's Diary* वि. 2, पृ. 114

18 *The Future of Indian Politics* पृ. 99

19 राय का कहना था कि भारत में निम्न बुद्धिजीवी की विधि प्रत्यक्ष सर्वप्रथम की जा रही गयी है।

20 *The Future of Indian Politics*, पृ. 85

का प्रतिनिधि बनता था।²¹ उनके अनुसार एमआन विकल्प यह था कि जनता के एक सांख्यिक दल की स्थापना की जाए जिसमें निम्न सम्पन्न, किसान तथा सर्वहारा सम्मिलित हों। उसका स्वरूप इस प्रकार होना चाहिए था—(क) मूल स्वराज्य, (ख) दलित-श्रीय सरकार की स्थापना, (ग) शक्तिशाली मूल मुधार, और (घ) प्रगतिशील सामाजिक विद्या।²² वैचारिक दृष्टि से यह सब भी इतने सेलितवादी थे कि वे सामाजिक राष्ट्रीय स्वतंत्रता के इस सपने में सर्वहारा के साम्यवादी दल की प्रमुखता देना चाहते थे।

इस समय तक यह तथा सोलसैविषी के बीच फूट नहीं पड़ी थी। यह साहस की सम्पत्ति के प्राथमिक विभाग के अधीन थे। 1926 के अंत में उन्हें कोरेंटिन तथा मूलकर के साथ चीन की भ्रमण करा था।²³ वे वहाँ के साम्यवादी अंतरराष्ट्रीय (कम्युनिस्ट इंटरनेशनल) के प्रतिनिधि के रूप में बने थे और 1927 के समय तक वहाँ रहते। उन्होंने चीन के साम्यवादियों की सलाह दी कि वे अपना सामाजिक आधार विस्तृत करने के लिए कृषक शक्ति की योजना में जुट जायें।²⁴ किन्तु चीनी साम्यवादी दल ने उनकी सलाह के अनुसार काम नहीं किया, और उन्हें सोवियत सरकार के अनिवार्य कोरेंटिन से सहायता दी। यह वे अनुसार यह विभाग के साथ ही नहीं बल्कि सर्वहारा के साथ भी विश्वस्तथागत था।²⁵ यह मूल बातें केन की सर्वप्रथम प्रतिस्पर्धावादी कूट उपवाद²⁶ (एनएसए) का प्रतिनिधि मानते थे। उनके विचार में मुन-बात केन व्यक्तिवाद के कठोर विरोधी थे²⁷ और एक नव कलशपूर्ण राज्य की स्थापना करना चाहते थे। यह न उन दिनों (1926-27) के चीनी साम्यवादी दल की वह आलोचना की थी। उनमें अनुसार साम्यवादी दल अपनी भूलों के कारण नवरीय लोकतांत्रिक जनसमुदाय से दूषित हो गया था और औद्योगिक शीमों में अपनी बड़े जमाने में असफल रह चुका था। संस्करण उन्हें देखा था की नवीय जनता का सहायता लेना पड़ा था। उन्होंने नवरीय जनसमुदाय की शक्ति का विभाग नहीं किया था, उसे सैनिक बाधकालिका में अधिक विश्वास था।²⁸ तीसरे दलक के दशकों बाद में यह नया साम्यवादियों ने फूट पड़ गया। यह इस बात के विरुद्ध थे कि इसी साम्यवादी, जो अपने की मानसवादी सिद्धांत तथा कार्यप्रणाली का आकाश मानते थे, नवीय अंतरराष्ट्रीय (साम्यवादी अंतरराष्ट्रीय) पर अपना एकाधिपत्य जमा दें। 1924 में स्थापित न 'एक देश में समाजवाद' का मार्ग जगता था। इस अंतरराष्ट्रीय साम्यवाद की आकाशवाणी करने की सम्भावना जाती रही थी।²⁹ साम्यवादी अंतरराष्ट्रीय के दृष्टि विश्व-नाश्वेनन के रूप में 'अ-उपनिवेशीकरण' का सिद्धांत प्रतिपादित किया। अ-उपनिवेशीकरण का अर्थ यह था कि ब्रिटिश साम्राज्यवादी पूँजी का ह्रास हो चुका था और इसलिए उसके तान का कुछ अंत भारतीय पूँजीपति बन की अंतर्गत हो गया था। इस प्रकार यह वे साम्यवाद के बदले हुए स्वरूप का प्रतिपादन किया।³⁰ अ-उपनिवेशीकरण की सीमित यह थी कि साम्राज्यवादी देशों की निर्धारित योग्य पूँजी का क्षय हो चुका है, इसलिए उनके लिए आवश्यक हो गया है कि वे उपनिवेशों के पूँजीपति बन के साथ समुक्त लाभकारी काम करें। यह न अधिकवादी की वि-जाय पतन का साम्यवाद

21 बही, पृ 101

22 बही पृ 17

23 राजेंद्र की गांधी तथा दल के द्वारा, *M N Roy's Mission to China* (पुनरीतिता पुनरीतिता 1990)।

24 दल दल विचार में अपनी पुस्तक *History of the Far East in Modern Times* का प्रथम संस्करण में 'मूलक कालकाल के साम्यवाद' एवं 'यह नाम न एक साम्यवाद' पुस्तक' का 'अतिरिक्त' का उपपद दिया है।

25 दल दल दल *My Experiences of China*, पृ 31

26 दल दल दल *Revolution and Counter Revolution in China*, पृ 302

27 बही पृ 287

28 बही, पृ 643

29 *New Humanism*, पृ 20

30 दल दल दल *The Communist International* पृ 43-49; यह भी गांधी तथा दल के द्वारा 'M N Roy and the Theory of Decolonization, *The Red in Humanism*, द्वारा 12 1959

का मुख्य मद्दतदायका और तब विदेशी पूँजीपतियों को बाध्य होकर अपनी शक्ति का परिचय करना पड़ेगा। छठे विश्व-सम्मेलन में एक प्रस्ताव पास किया जिसमें भारतीय जनता को नेतावनी दी गयी कि प्रतिष्ठा तत्परी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस उसमें साथ कभी भी विश्वासपात्र नर सकती है। राय ने स्थापित की साम्यवादी लक्ष्यगत³¹ तथा अति साम्यवाद की आलोचना की जिसके परिणामस्वरूप 1928-29 में राय तथा साम्यवादी अन्तरराष्ट्रीय के बीच फूट पड़ गयी। 1927 में जब सादमन कमीशन भारत में आया तो राय ने सुझाव दिया कि भारत के लिए एक सविधान सभा की मान की जाय। कदाचित बहुत मान प्राप्तपूव थी। परम्परागत साम्यवादिका न सविधान सभा के बारे में लिए राय की आलोचना की और उह मध्यमार्गीय राष्ट्रवादी लोक-राजवादी कहा।³²

राय 1930 में देश बदलकर भारत में आये। उह वानपुर पदमन कैल में छह वर्ष (1931-1936) के लिए कारागार में डाल दिया गया। इस प्रकार पंद्रह वर्ष के निर्वासन तथा छह वर्ष के कारावास के बाद 1936 में राय भारतीय राजनीति में सक्रिय रूप से प्रवेश कर सके।

1936 में वाराणसी में मुक्त होने के उपरांत उन्होंने सा धीवाद के विरुद्ध अभियान तीव्र कर दिया। उन्होंने सा धीवाद की सामाजिक समन्वय के अ बाधहारिक आदत का प्रतिपादन करने का ना प्रतिनिधावादी सामाजिक दलन बलनाया और उसकी निन्दा की। उन्होंने कहा कि अहिंसा पूर सामाजिक क्षोषण के मयाय स्वभाव की हिसाने नर एक बाधरण है। चतुर्थ दशक के परबर्ती वर्षों में मानवैन्द्रनाथ राय ने साम्यवाद विरोधी पाकसवादी फुट का नेतृत्व किया। अप्रैल 1937 में उन्होंने अपने इन्विपेकट इन्डिया नामक साप्ताहिक की स्थापना की, 1949 में उसका नाम बदलकर ऐडीशनल फूमेन्सिड रखा दिया गया। राय गांधीवादी अहिंसा की देश के पूँजीवादी क्षोषण की हिसाने का एक प्रचलन बौद्धिक साधन मानत थे। उन्होंने कांग्रेस ने दिवासिया नेतृत्व की कलना की और कहा कि गांधीजी के नेतृत्व में कांग्रेस हर बर्षा-लय का रूप लेती जा रही है।³³ उनका कथन था कि अहिंसा कलता के काँलकारी उमाद की अवरुद्ध कर रही है। उन्होंने विरक्त जापानिक दलन के किसी तावसात्रीय दलन की स्वीकार करने से की हनकार किया।³⁴

1939 में राय ने सीम ऑन ऐडीशनल काँसेसमें (उप बाधेदमन राय) का सपष्टन किया। 1940 में उह होने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के उमापति-नर के लिए चुनाय तथा, किन्तु अन्तुल कलाम आजाद में उह परास्त किया। अपनी पराजय के उपरांत सितम्बर 1940 में उन्होंने कांग्रेस छोड़ दी। दिसम्बर 1940 में उन्होंने अपनी ऐडीशनल डेमोक्रेटिक पार्टी (उप लोकसाजिक दल) का सन्धन किया और 'वैसातिक राजनीति' का नया नाम अलाने का सपष्टन किया। जिस पीन का राय

31. मरियापोव फुई किलर तथा दन दन राय ने अनुवाद दल में निरा पूँजीवादी के कथन कर राय पूँजीवाद विरुद्धन था। अपनी *The Russian Revolution* नामक पुस्तक में पृष्ठ 382 पर राय ने निरा है कि बर्षावत बलत में कमीन तथा इति में सवाने का लिए निर बोरी राय का प्राविधान निरा जाता था न योमन न योमना की फुई कलदुई न देशर हो उमा की आली की। मरदुर का उमा की योमन के लिए कलुईक देशर नहीं दिया जाता था। यदि उले उलेके यम का पुन योमन दे दिया जाता था नर न कमीन की इतकी डेकी के बर्ष नहीं हो यमकी की किली डेका के बरु डेकी आली है। इन्विपेकट का निरुक्त था कि बर्षावत नर य उमावत का कोमन का कलवातावत हो गया था किन्तु यम का कथन का कथन नर दलन है।

समसिधवाद के विरुद्ध राय की पुनरी आलावक बरु की नि स्थापित ने टाटररी का उन्तुल नरक निराया के विरुद्ध फुट की नीति कथन की की (*The Russian Revolution* पृ 384-89)। टाटररी नर। कलिक नीति के विरुद्ध इन्विपेकट था कि उमन कला निरुक्त की अमन दिवावती की गयी थी। राय निरुक्त तथा बाधेदमन न कलामि नर पुनरी (अक निरुक्त) का कथनक दलन का कथन सवान था। 'दिनु 1928 का इन्विपेकट के इति का कलपुवक कलुईकन कथन का नीति कथन था। निरुक्त यम का निरुक्त न विरुद्ध फुट निरुक्त कि टाटररी के बीच की था।

32. दम दन राय, *Fragments of a Prisoner's Diary*, विर 2 पृ 59

33. दम दन राय, 'Morality and Politics' *The Alternative* पृ 16-17

34. दम दन राय ने 7 कलम्बर, 1939 की पदमया गांधी की बाधेदमन जन साकलिक दल का निरुक्त कलिक नीति कथन का निरुक्त किया था। दम दन राय, *The Alternative*, पृ 78-79

ने समझन किया उसे व 'बीसवीं शताब्दी का जैनोविनवाद' कहा करता थे। द्वितीय विश्व-युद्ध व दोरान उद्दोहेने विचारधारा को सहायता करने की सलाह दी। भारत के पतन के बाद उद्दोहेने विचारधारा का बिना रात भर लेके का समझन किया। वे द्वितीय विश्व-युद्ध की न सामान्यवादी युद्ध मानते थे और न राष्ट्रा के बीच युद्ध। वे उसे एक अवसरवादी उपलब्धता समझते थे जिनमें इतिहास को एक तथा मोड़ दे दिया था।³⁵ राम ने अनुसार यह मंचकर तथ्य जिसमें विश्व की का पतितता प्रस्तुत थी एक अंतरराष्ट्रीय यह युद्ध था। सामाजिक शत्रु कोई राज्य नहीं बल्कि अवशिष्ट विचारधारा थी। उनका कहना था कि फासीवाद के विपक्ष विचारधारा जिसमें तभी प्राप्त हो सकते हैं जब फासीवाद को युद्धरत राष्ट्रा के बनेलू मोर्चों पर प्रसारित कर दिया जाय।³⁶ भारत इस युद्ध में अवशेष अपनी रक्षा कर लें, इसके लिए एक कृपण नाटि आवश्यक है। जैसे ही कृपण-अनुयाय को विपन्नता हो जायगा कि जिस भूमि की हम चोखते हैं वह हमारी है वस ही उनमें देश की रक्षा के लिए आवश्यकता सलाह तथा सुरक्षा उपलब्ध पड़ेगा।³⁷ राम ने बताया कि अवसरवाद की सीमित अवधारणा भारत के अवशेष औद्योगिक विकास का मूल कारण है। औद्योगिक अवस्था के अवसर पूर्वोक्त अवधारणा तथ्य का काम नहीं कर सकता। इसलिए अपनी पुस्तक 'पतनी और पतनी' (परिष्ठा अवस्था बाहुल्य) में उद्दोहेने निरोधित अवधि विचारों की योजना का समझन किया। राम ने 1942 की भारतीय नाटि की निरा की। उनका कहना था कि यह भारतीय 'कावेस के औद्योगिक तथा वितीय सरलता द्वारा समर्थित किया गया है।³⁸ भारतीय पुनीपतिता न युद्ध से भारी साम कया लिया था। जब तक युद्ध-लेन दूर रहता तब तक वे युद्ध से घबराते रहे। किन्तु जैसे ही युद्ध बीच निरव आया जैसे ही वे हानि में करने लगे और बाहुल्य तथ्य कि सहायता पायी तथा अन्य कावेसी नेता मुक्त कर दिए जायें जिससे कि हम में एक ऐसी सरकार स्थापित हो जाय की जैसे युद्ध से बाहर रख सके।³⁹ राम ने कथना की सरकार के निर्माण का समझन किया।⁴⁰ उद्दोहेने राष्ट्रीय सरकार की मांग की 'नीतिधार (काल) के अगुस्त किन्तु कपटपुत्र'⁴¹ अवस्था। उद्दोहेने कहा कि राष्ट्रीयता का नाट कालनिक तथा एक 'अंतरराष्ट्रीय परमप्राप्त' है। सामाजिक इसलिए है कि भारत वस्तुतः दो हैं⁴²—औद्योगिक, बाहुल्य तथा जलोद्याय का भारत तथा ग्रामिक वस का भारत। राम के अनुसार भारत के तथ्य न राष्ट्रीय एकता की भारता कालनिक इसलिए थी कि जिना तथा मुसलिम लोग कृपण राज्य की मांग कर रहे थे बल्कि भारत एक होता तो पाकिस्तान का नाट लयाने की क्या आवश्यकता थी।

राम ने 1942 के भारतीय नाटि को भारतीय राष्ट्रवादियों का फासीवादी प्रेमन कहकर निरचित किया। उनका कथन था कि राष्ट्रवादों नेका विदेश के प्रति कुलित भारतीय शत्रुता की भावना से उत्तेजित हैं और इसलिए वे फासीवादियों के विपक्ष युद्ध में विदेश की शक्ति की कपजोर करने के निहित परिणामों की नहीं समझ पा रहे हैं।⁴³ राम दूर युद्ध के दौरान कावेस तथा राष्ट्रीय नेताओं पर फासीवादों हानि का आरोप लगाते रहे। फासीवाद की उनकी फासीवादी प्रतीत हुआ, क्योंकि उनके विचार में फासीवाद जनसमूह की अवधारणा, जनता की निरक्षरता तथा सकील बहुलता की उभाड़ते की एवं कुलित जाय थी। 1942 का भारतीय इसलिए फासीवादी था कि वह जिस राष्ट्रा के मोर्चों की परमप्राप्त करके अवस्था तथ्य से सामान्यवादी रूप के युद्ध प्रणामों में जाया

35 एम एन राय, *War and Revolution* पृ 20

36 वही, पृ 51

37 वही, पृ 61

38 वही, पृ 96

39 वही, पृ 89-90

40 राम किन्तु अवस्था की अवधारण करने के रूप में व।

41 एम एन राय *Nationalism as a People's Government* पृ 45-58

42 वही पृ 59-69

43 वही पृ 66-67

44 एम एन राय, *Jawaharlat Nehru* पृ 28-29

निसम उद्धान आहम्दाइन⁵³ नैबल्लखान, आदिमर, डिघर तथा अन्य भारतीयराष्ट्रियता के अन्य पक्षा तथा मित्रपक्षों की व्याख्या करता का प्रयत्न किया। मौलिवीर्य अनुसंधानों में केवल इस विर प्रतिष्ठित धारणा को ध्वस्त कर दिया है कि इन्ध दयापाल में विद्यमान पक्षा का पुत्र है। किन्तु मौलिविचारों होते हुए भी राम इन्द्रवाद का आलोचक थे। 'द मासिकल के' (मासिकवादी मास) में उन्होंने कुछ निम्नलिखित विषय विषय इन्द्रवाद पद्धति की आलोचना की। उनकी आलोचना सम्बन्धी नहीं है। उसमें केवल इस बात का उल्लेख किया गया है कि इन्द्रवाद मत्ता के रहस्य का उद्घाटन नहीं कर सकता। राम बुद्धिवादी थे। वे बन्धनों के मुक्तिकारण विचारों के तथा योग्य हाथों और हाथमन में सफलवाद के दशन के विरोधी थे। उन्होंने बल्लेधिन तथा 'मास दशन का मौलिविचारों पद्धति में निश्चय करन का प्रयत्न किया।⁵⁴ उनकी भावना थी कि 'वाय-बैनेदिक दशन के बाद में का आस्तित्व तथा का समाधिष्ट करने का प्रयत्न किया गया है यह उस पर बाह्यी लेन है।

चूकि 'मौलिविचार' नाम के साथ अनेक भावित्या का सम्बन्ध है, इसलिए राम उनके 'मौलिवीर्य पञ्चमवाद' नाम देना चाहते थे। यह मत्व है कि आज के वैधानिक सभ्यता तथा अक्षरहवी 'गतादिशा की इस धारणा का स्वीकार नहीं करते कि इन्ध पक्ष है। किन्तु राम ने सिमिन के इस मत्र को स्वीकार किया है कि आधुनिक विचार इस धारणा का समर्थन नहीं करता कि किसी ऐसी बाह्य वस्तु की सत्ता है जो हमारे सब अनुभवों का आधार है।⁵⁵

3 राम का इतिहास दर्शन

(क) सभी जाति की व्याख्या—मानने इन्ध राम ने सभी जाति का पञ्चमवादक बतला दिया है। वे सभी साम्यवाद की राज्य प्रतीक मानते थे। उन्हें आशा थी कि भारतीयक शासक-वादिता के स्वर्णता की मान्यता करने के लिए हम में एक अन्य जाति होती। उनकी 'रिपन रिपोरुण' (एकी जाति) एक विशाल पक्ष है। ऐतिहासिक सामाजिकता अथवा कष्टतात्मक अनुसंधान की दृष्टि में उनका कोई योग्य नहीं है, किन्तु उनमें उनकी वैयक्तिक धारणाओं का समर्थन अवश्य देखन की मिलता है। सभी जाति का वस्तुवत् बतलाते के रूप में यह सम्भवलेन तथा ई एन कार के प्रथा की कृपता में बढिया है। राम ने सम्य ही कहा है कि हम की जाति इतिहास के किसी पहले के विच्छिन्न ऐतिहासिक नियम के अनुसार सञ्चल नहीं हुई थी। वे उनके आकस्मिक परिवर्तितता की संहति के अन्तर्गत ऐतिहासिक रूपों का परिवर्तन मानते थे।⁵⁶ राम का कहना था कि हम के सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तितता इनकी परिणाम नहीं हुई थी कि सामाजिक जाति अनिवार्य हो जाती। 1921 के बाद सभी राज्य की नीतियां कुछ स्वायत्तारिक आवश्यकताओं में संकलित हुई हैं। साम्यवाद की आकांक्षा को सभी राज्य के रक्षकों की सिद्धि का एक साधन बना लिया गया है और नैर सवहार्य वर्गों की उन्नति रखी रखी है।⁵⁷

(ख) बौद्धधर्म का सामाजिकदर्शन—कहुर मौलिविचारों होने के नाते राम वैदिकी प्रत्यववाद के समु थे। उनकी भावना थी कि धर्म और समाज का प्रत्यववाद साम्यवादी धार्मिक सकीयता और पारिविधवाद के भार का बोझ का। यह बौद्ध आलोचना की मुक्तिवादी भूमिका के विरुद्ध बाह्यता की प्रतिविम्बा था।⁵⁸ राम बौद्ध धर्म में 'जातिवाद' को समर्थन थे।⁵⁹

53 एक एक राम ने *Source and Philosophy* सुधारकधर्म तथा विच्छिन्न सुधारक के बीच मत-विधि। क अनुसार इन्ध की मरिचिकता कम अथवा

54 एक एक राम, *Materialism in Indian*

55 एक एक राम *Reason Romanticism and*

56 एक एक राम, *Communism*

57 *New Humanism*, 1

58 एक एक राम के जाति का

59 राम के एक एक का बाई राम,

रिक्त था।

विच्छिन्न
राम
का

का क विच्छिन्न क
इन्द्रादन की बात
ता नहीं है।

55)।

बौद्ध धर्म ने बरम्भरायत धर्म विद्या तथा उसने माने हुए साधकवर पुरोहित वर्ग पर नमस्कार प्रहार किये थे। बुद्ध ने परीवर्तीयी वर्ग की विलासिता के विरुद्ध विद्रोह का राजकाज किया।⁶⁰ बौद्ध धर्म ने एक समुद्र तथा गौरवशाली सम्प्रदाय की नींव रखार की। किंतु मध्ययुग में बाह्यमो के व्यापक सामिक आंदोलन ने प्रतिस्पर्धा, गतिहीनता तथा क्षय की विजय का मार्ग प्रशस्त किया।⁶¹

(ग) फासीवाद—फासीवाद के दशन तथा सोवियत संघ के सम्बंध में दो परस्पर विरोधी धारणाएँ हैं। बरम्भरायत तथा मेयर के महासुधार फासीवाद का निरुद्ध ही अपना एक दशन है। हेनेक तथा हाइडल्के के नामों से सम्बंधित राज्य की सर्वोपरिता तथा शक्ति-राजनीति का सिद्धांत, शीर्ष के प्रतिमानक या आदर्श और फाट द्वारा प्रतिपादित आचार नीति की अखिल और सुनिश्चित बनाने का सिद्धांत—ये जर्मन फासीवाद के कुछ मूल सोच मान जाते हैं। कुछ लेखकों ने माटिन मूर के इस सिद्धांत को जर्मन फासीवाद का बौद्धिक सोच माना है कि प्रजासत्ता की विना किसी प्रकार के प्रतिरोध के शासकों ने आदेश का पालन करना चाहिए।⁶² इसके विपरीत फाल्ज 'यूनन और हेरोल्ड लास्की का कहना है कि फासीवाद का कोई दशन नहीं है। यूनन ने फासीवाद की एक 'विशालकाय धनु' से तुलना की है। राम मानते हैं कि फासीवाद का निरुद्ध एक दशन है।⁶³ मानववादी होने के नाते राम फासीवादी विचारकों की मानव स्वतंत्रता के प्रति विरुद्धता की भावना के बहुत शत्रु थे। व्यवहार में फासीवाद का अर्थ या मानव गरिमा की हानि तथा मनुष्य की दैनिक उन्नति का विनाश। फासीवादी शासन के अंतर्पो-साधिका ने अपनी जातीय श्रेष्ठता की धारणा को सिद्ध करने के लिए 'अस्तित्व के लिए लड़ना' के सिद्धांत का तथा राजनीतिक उद्देश्य के प्रति मानव धारण का सहारा दिया। लास्की तथा राम दोनों ही फासीवाद की समाजवाद के विरुद्ध एक प्रकार की प्रतिस्पर्धा मानते हैं। राम का कहना था कि जर्मनी में फासीवाद की सफलता इसलिए मिली कि उस देश के पूंजीपतियों ने जिन्हें प्रथम विश्व युद्ध में नमस्कार बरामभ मुकती नहीं थी, पतनशील पूंजीवाद की सहाय्य देने के लिए इस दशन तथा कामप्रवादी की प्रोत्साहन दिया। पूंजीवाद की बचाने के लिए फासीवाद जर्मनी की पसींठकर मध्ययुगीनता में ले गया।⁶⁴ राम के अनुसार फासीवाद प्रतिस्पर्धाकारी तथा प्रतिनिधवादी शक्तियों का जन्म दे-द है। यह पूंजीवाद की सृष्टि है। जब यह साम्राज्यवाद की नींव की सहाय्य देने में अपने को असमर्थ पाया है तो यह सतिम बचाव के अर्थ के रूप में फासीवाद का प्रयोग करता है।⁶⁵ उद्योग के पूंजीवादी सफल के परिणामस्वरूप मनुष्य का स्वतंत्रता धार-धार हो जाता है। मनुष्य की एकाकीपन तथा विषमता का विनाशकारी आपात भेलना पड़ता है।⁶⁶ फासीवाद समप्रवादी राष्ट्र की उपलब्धि को परम प्रतिष्ठा प्रदान करने हस्ताक्षर स्वतंत्रता की एक ऐसी मनोवैज्ञानिक तथा रोमांसपूर्ण पद्धि प्रदान करता है जिसे वे स्वयं अपने पुरपाथ से अक्षित करने में असमर्थ होते हैं। जन्मे जन्मे एनाधिकारी पूंजीवाद के कारण 'सतियों की सामाजिक' अमुरता पड़ती है जैसे ही फासीवाद का संवेगारक आंचपध अधिक प्रभाव-कारी होता जाता है।

60 एम एन राय *From Savagery to Civilization* पृ 15

61 राम ने देवी की सर्वोपरिता के सिद्धांत में 'बुद्ध का बौद्धिकवादी समप्रवादी' की अभिवृत्त कर दिया। फाल्ज के प्रतिष्ठान में अपने पुनः प्रकाशित बुद्ध की कि बौद्ध धर्म की वास्तविकी की प्रतिष्ठा के, जिसे 'सोवियत समाजवाद, बरम्भरायत तथा जर्मन के जन्म विद्या का, प्रभावित कर दिया। एम एन राय, *Heresies of the Twentieth Century*, पृ 76-78

62 राम ने फाल्ज का पतनवादीय धारणा की भावना की, बरम्भरायत अपने अपने का राष्ट्र का प्रतिनिधि मानन 'आम एम छोटे-स बत' का द्वारा बहुसंख्या की स्वतंत्रता का स्पष्ट होता है। (एम एन राय, *Nationalism* पृ 23-24)।

63 एम एन राय ने यह भी कहा है कि यदि पुनर्जीवक का समप्रवादी स्वतंत्रता तथा बुद्धि का धारणा की समप्रवादी का सफलता में विफल न कर दिया होता तो पूंजी की फासीवाद की बरम्भरायत विचारिका न होकर न मुकती पड़ता। (राम *The Problem of Freedom* पृ 36)।

64 एम एन राय, *Passions* पृ 2-3 (बरम्भरायत, की एम पुनर्जीवक)।

65 एम एन राय *War and Revolution* पृ 13

66 एम एन राय *The Communist International*, पृ 60

67 एम एन राय *The Problem of Freedom*, पृ 22-27, 'The Logic of History'

4 वैज्ञानिक राजनीति

राम ने 1940-1947 में मार्क्सवाद से उग्रवाद (आतंक परित्यक्तवाद) में और 1947-1954 में उग्रवाद से अधिगत वैज्ञानिक मार्क्सवाद में संक्रमण किया। उन्होंने अक्टूबर 1947 में अपनी पुस्तक 'साइंटिफिक पॉलिटिक्स' (वैज्ञानिक राजनीति) में स्वयं संक्रमण की इस प्रक्रिया का वर्णन किया था, "हाल तक दूध में एक परम्परानुसृत मार्क्सवादी की भाँति मान लिया था और जो उस विचारधारा से प्रभावित हुआ अपना उसकी समझने में भूल करता उसकी आलोचना किया करता था। किन्तु उस समय की मुख्य साम्यवाद से परे देखने की प्रवृत्ति कीश्वरचन्द्र ने विकसित की। यद्यपि मैं वग-उपपन्न की भाषा में बात किया करता था, फिर भी मैं सामाजिक संरचना में उपयोगशील तत्त्व की परीक्षा देता था। उस समय भी मैं मार्क्सवाद का कग-नाम की विचारधारा से कुछ अलग यही चीज समझने लगा था। मैं मानता था कि वह उस पुराने कौटिल्य प्रपत्ति की ही उत्पत्ति था जो एक ऐसा दशक विनियमित करने के लिए जिसे मैंने बाद में 'क्रिसमस क्रान्ति' प्रकृति, सामाजिक विज्ञान तथा वैयक्तिक मानव की इच्छा और संवेगा का सामंजस्य ही।"⁶⁸

राम ने उग्रवाद तथा अधिगत मार्क्सवाद के दशक का निरुपण अपनी तीन पुस्तकों में किया था—'साइंटिफिक पॉलिटिक्स' (वैज्ञानिक राजनीति), 'न्यू ओरिएंटेशन' (नवीन विचार-निर्धारण) तथा 'विप्लव कम्युनिज्म टू लाइवेलिज्म' (साम्यवाद से परे मार्क्सवाद की ओर)। राम वैज्ञानिक राजनीति की सम्भावनाओं की स्वीकार करता है। वे यह भी चाहते थे कि राजनीति एक जीवन-दशक द्वारा निर्दिष्ट होनी चाहिए।⁶⁹ किन्तु उनकी कल्पना की वैज्ञानिक राजनीति का भव्य होना संभव सिन्धोना की वैज्ञानिक राजनीति से भिन्न था। इन दोनों चरित्रगत विचारों ने वैज्ञानिक पद्धति पर अधिक बल दिया है। हमें यह विचारना चाहिए कि एक ऐसे राजनीति विज्ञान की रचना करना संभव है जो रैखिकी के आदेश पर आधारित हो। चूँकि मनुष्य का आचरण उसके नीतिक शरीर की सामंजस्य वृत्ति के प्रति प्रतिक्रिया से निर्धारित होता है इसलिए उस परिभाषित और प्रमाणित करना संभव है। सिन्धोना मानव के मनोवृत्ति के विषयों के अध्ययन में रैखिकी की पद्धति को हलचलित करने के पक्ष में था। इस प्रकार होना और सिन्धोना के अनुसार वैज्ञानिक राजनीति को रैखिकीय विज्ञान के आदेश पर आधारित करके विनियमित किया जा सकता है। इसने विपरीत राम ने वैज्ञानिक राजनीति की प्रभावशाली व सामाजिक आधारों पर अधिगत बल दिया है। वैज्ञानिक राजनीति से उनका अविज्ञान राजनीतिक प्रभावशाली की उस व्यवस्था से है जो परस्पर विरोधी विचारधाराओं का अनुसरण करने वालों की वष प्रवृत्ति की स्वीकृति पर आधारित हो।⁷⁰ 'नवीन स्थिति निर्धारण' में राम ने लिखा है कि राजनीति विज्ञान में योगदान करने के लिए राष्ट्रवादी तथा साम्यवादी मनोवृत्ति पर विचार पाना आवश्यक है।⁷¹

राम पुनर्जागरण की इस धारणा को, जिसमें स्पेंसर और ह्यूडब्रूक की सहमति है स्वीकार करते थे कि दशक सभी विज्ञानों की विशिष्टताओं का सम्भव है। वे राज्यशास्त्रीय (प्रत्यक्षवादी) और राष्ट्रवादी परिवर्तनवादी के विरुद्ध हैं, किन्तु समन्वयवादी विज्ञान की आवश्यकता को मानते हैं। अतः उनकी मान्यता थी कि वैज्ञानिक राजनीति भौतिकवादी प्रदानात्मक के आधार पर ही निर्मित की जा सकती है।

द्वितीय विश्व युद्ध (1940-1945) ने दोषात राम ने बीसवीं शताब्दी के डेकोविनवाद का सम्मन किया। उनका कहना था कि यदि यह भी मान लिया जाय कि डेकोविनवाद पूँजीवादी विद्रोह की विचारधारा की जो भी वह स्वीकार करता रहेगा कि ऐतिहासिक दृष्टि से वह जोरा विचारवाद का प्रवर्तनी था।⁷² बीसवीं शताब्दी के डेकोविनवाद के सम्मन में राम ने कहा कि वह पूँजीवादी शांति तथा व्यवस्था की शांति के बीच की चीज है। इसने को निहितार्थ है (1) भारतीय

68 एक एक राम, *Scientific Politics* द्वितीय संस्करण पृ. 7 (नवम्बर, दशका नव वसन्त, 1947)।

69 एक एक राम, *New Orientation* पृ. 36

70 एक एक राम *Scientific Politics* द्वितीय संस्करण, पृ. 53-56

71 एक एक राम *New Orientation*, पृ. 36

72 *Revolution and Counter Revolution in China* पृ. 374

मानि ना मनुष्य एवं बहुमर्त्य दल को बनता होगा, व नि 'वैकल्य आत्मन्याय' सबद्वारा बन गी, (2) भारत में साम्यवादी प्रश्न समाजवाद अथवा साम्यवाद का नहीं बल्कि राजनीतिक पुनर्जादी मोक्षवादी मानि जा था। यह प्राति समाजवाद के लिए सबभय का नाम बनेगी। राय ने चीन के सम्बन्ध में भी वही ही भविष्यवाणी की थी।⁷³ किन्तु उनकी यह भविष्यवाणी झूठी सिद्ध हुई थी कि चीन की स्वाधीनता का सक्षम उप मोक्षवादी अथवा बीसवीं शताब्दी के जेकोविनवाद के नष्ट के नीचे सदा जायगा।

द्वितीय विश्व-युद्ध के दौरान वाल्दे-इनाथ राय ने भारत के लिए नियोजन का एक वाय-जन्य भी संसार दिया था। पुनर्जादी नियोजन प्रभावकारी नीति के सिद्धांत को लेकर चलता है। इसने विपरीत, राय इस वक्त में थे कि उत्पादन भारत में बरौदा दरिद्र तथा सीमित सीमा की मानवीय नीति की बुद्धि को ध्यान में रखकर नियोजित किया जाय। उसने अनुसार यह आवश्यक था कि मेसिहुर बर्षों की नय दक्षिण व दक्षि की जाय। उनका कहना था कि यदि सामाजिक मान्य को पूरा करने के लिए प्रयोग स्थापित निचे जा सके तो औद्योगिकरण पर विकास होगा और उसने परिणामस्वरूप सैली म सप हुए विद्यालय जनसमुद्र में से बड़ी सरवा का हटाकर उद्योगों म लगाना जा सकेगा। इसके बर्षोद्वय दृष्टि का प्रारम्भ करना सुखम होगा। राय यह भी चाहत थे कि भूमि के स्वामित्व के सम्बन्ध में किसानों के अधिकार सुनिश्चित कर दिये जायें। उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया कि राजनीतिक तथा आर्थिक नियोजन परस्पर निमर ह। उन्होंने कहा, 'राजनीतिक नियोजन के बिना आर्थिक नियोजन योगी कल्पना सिद्ध होगी।'⁷⁴

5 राय द्वारा मार्क्सवाद की आलोचना

राय की दार्शनिक तथा समाजशास्त्रीय रचनाओं में स्पष्ट है कि उन्होंने मार्क्सवाद के अपना सम्बन्ध धीरे-धीरे विशिष्ट कर दिया था। मार्क्स के धारित्व की राय व भूरि-भूरि प्रशंसा की है। उनकी दृष्टि में यह सामाजिक अन्धकार का बुरा आलोचन था, और इस रूप में यह महान् पट्टी पैमाने की परम्परा में था। बर्षोपायीय, रीहर्गमिल, सोम्वल तथा हारमन' की भांति राय भी मानते थे कि मार्क्स ने सामाजिक 'जाय का जो आवेद्यमून वैदिक समर्थन किया यह पट्टी पैमाने की विरासत था।⁷⁵ वे मार्क्स को सत्य एक मानववादी और स्वतः सदा का प्रेमी मानते थे। इसलिए वे मार्क्सवाद की आर्थिक नियतिवाद की बहुरता में मुक्त करके उसने 'मानववादी, स्वातंत्र्यवादी तथा वैदिक' शब्द की पुनः प्रतिष्ठा करता 'चाहत थे।'⁷⁶ जहां तक मार्क्स की शिक्षाओं का सम्बन्ध था, उन्होंने या तो उनका लक्ष्य दिया या उसने लालिच सञ्चाधन कर दिया। राय लिखते हैं, 'मार्क्स की इस प्रत्याप्ता न कि वैकल्य जीवन से निर्धारित होती है, नीतिकवादी सत्य-वाक्य को ठोस वैज्ञानिक आधार पर प्रकाश कर दिया। किन्तु उसके परवर्ती, विशेषकर समाजशास्त्रीय, विचार उस दिशा में विकसित नहीं हुए जो उसकी पूर्वीय सत्यशास्त्रीय धारणा में निहित कर दी थी। समग्र रूप में मार्क्सवाद अपनी दार्शनिक परम्पराओं के प्रति निष्ठावान नहीं है। समाजशास्त्र में उसने नीतिकवाद को इस सीमा तक निरा दिया है कि यह देश-नाल निरपक्ष नीतिक मूल्य के अस्तित्व से जो इतरा कर देता है। उत्पादन की अवैकल्यक धर्मितया की धारणा का स्वीकार करते उसने इतिहास में प्रयोगवाद (हेतुवाद) का समाविष्ट कर दिया है या उसके इस विचार के एकमात्र प्रतिफल है कि मनुष्य अपनी होतकता का निर्माण स्वयं करता है। उसके इतिहास वाक्य का आर्थिक नियतिवाद मार्क्स स्वतः-तत्ता को ध्वस्त कर देता है क्योंकि उसके अनुसार व्यक्ति के रूप में मनुष्य के स्वतः-तत्ता को सम्भावना ही नहीं है। फिर भी वर्तमानवादी समाजशास्त्रीय

73 पृष्ठ 4 668

74 पृष्ठ 44 राय *Planning a New India*, पृ 48 62 63 (एनएस 'वैकल्य' विचार)।

75 V P Varma, 'Critique of Marxian Sociology', *The Calcutta Review*, मार्च 1955

76 *Review: Rosenzweig & Revolution* (पृ 2, पृ 219)

77 *New Humanism*, पृ 25 26

फलस्वरूप उत्पन्न होती है। किन्तु एक बार उत्पन्न हो जाने पर विचार अपने निजी विकास नियम का अनुसरण करते हैं। विचारों की प्रति तथा सामाजिक प्रक्रियाओं की द्वांद्वात्मक प्रति के बीच परस्पर विचार होती रहती है। किन्तु राम का स्पष्ट मत है कि किसी भी विशिष्ट ऐतिहासिक समय में 'सामाजिक घटनाओं तथा विचार-आन्दोलनों के बीच समय-बारेय सम्बंध स्थापित नहीं किया जा सकता।'⁸³ वे लिखते हैं, "सांख्यिक दृष्टि से इतिहास के भौतिकवादी अन्तर्गत की बुद्धि की सृजनात्मक भूमिका को स्वीकार करना पड़ेगा। भौतिकवाद विचारों की वस्तुगत सत्ता से इनकार नहीं कर सकता। विचार स्वयम्भू नहीं होते, वे घाटीरित निष्ठा से निर्धारित होते हैं।"

भौतिक आधे, अर्थात् यदि पुराना दम के पद का प्रयोग किया जाय तो दम ही कृषकर्ता होता है। दम पहले का होता है और विचार बाद में उससे उत्पन्न होते हैं। किन्तु एक बार जब घाटीर द्वारा निर्धारित चिन्तन की प्रक्रिया पूरी हो जाती है, अर्थात् विचार बन जाते हैं, तो फिर उनका स्वतन्त्र अस्तित्व, उनके विकास की अपनी प्रक्रिया विद्यमान रहती है और वह सामाजिक विचारों की भौतिक प्रक्रिया के समानांतर चलती रहती है। दो समानांतर प्रक्रियाओं, वैज्ञानिक तथा भौतिक, से ही इतिहास का निर्माण होता है। वे दावत अपने आन्दरित दवाव, अपनी प्रति-घटित तथा अपने द्वांद्वा नियम से निर्धारित होती हैं। साथ ही साथ वे स्वभावतः एक दूसरे से प्रभावित भी होती हैं। यही मत है जो इतिहास का एक समर्पित तथा व्यवस्थित प्रक्रिया का एक प्रदान करता है।⁸⁴ विचारों तथा वस्तुगत समाज की व्यवस्था की समानांतरता से सिद्धांत का निहितत्व है कि "विचारों तथा घटनाओं के बीच कोई सीधा सह-सम्बंध सम्भव नहीं है।"

(4) राम न इतिहास की आर्थिक व्याख्या की आलोचना की है। उनका कहना है कि मनुष्य आर्थिक मानव बनने से पहले अपने आचरण में घाटीरित आवश्यकताओं से निर्धारित और तत्कालित होता था। आदिम मनुष्य के मानवजातीय अन्वयन से सिद्ध होता है कि मानव जाति के प्रारम्भिक विकासक्रम तथा समय जीवन निर्वाह की सामग्री प्राप्त करने में प्रयत्न तक ही सीमित थे। इन विचारधाराओं की तत्कालित और उद्देशित करने वाली प्रेरणाएँ तथा प्रवृत्तियाँ स्वभाव से मुख्यतः भौतिक थीं। प्रारम्भिकमानव का विकासक्रम अब से नहीं बल्कि घाटीर की आवश्यकताओं से तत्कालित था। ऐतिहासिक भौतिकवाद का सिद्धांत इस सीमा तक सीमित है कि वह मानव-जाति के आदिम इतिहास की व्याख्या करने का प्रयत्न नहीं करता। मनुष्य के परवर्ती इतिहास में भी ऐसे विभिन्न आवश्यकताएं देखने की मिलती हैं जिनसे मनुष्य की आत्मा मिलती है किन्तु वे 'आर्थिक' जीवन के अन्तर्गत नहीं रहे जा सकते थे। अब यह नहीं कहा जा सकता कि आर्थिक नियतिवाद भौतिकवादी दान का आवश्यक संतुलन परिणाम यह है। किसी व्यक्ति के लिए भौतिकवादी होते हुए भी ऐतिहासिक व्याख्या की विभिन्न कसौटियां को स्वीकार कर लेना सम्भव है, उदाहरण के लिए अति नियतिवाद, अन्तर्गत नियतिवाद, दार्शनिक नियतिवाद आदि, क्योंकि राजनीतिक अति, अन्तर्गत तथा मनुष्य की घाटीरित रचना भी महत्वपूर्ण भौतिक अतिरिक्त है। इसीलिए दार्शनिक भौतिकवाद तथा इतिहास की आर्थिक व्याख्या के बीच कोई आवश्यकता तथा अन्वयित सम्बंध नहीं है।

(5) राम के अनुसार मार्क्सवाद के नीति विषयक आधार दुर्बल है, क्योंकि वे सत्तेसत्तावादी तथा कट्टरवादी हैं, और मनोवैज्ञानिक कसौटी पर पर नहीं चलते। मार्क्स ने इस उच्च व्यवहारवादी सिद्धांत का प्रतिपादन किया है कि प्रकृति में विच्छेद रूपों की प्रक्रिया में मनुष्य स्वयं अपने स्वभाव में भी परिवर्तन कर लेता है। मानव स्वभाव में कोई स्थिर तत्व नहीं है। यह मानता है कि मानव-स्वभाव ज्वलत नक्षत्रीय है और परिवर्तनशील है। राम की दृष्टि में मार्क्सवाद के मनोवैज्ञानिक आधार की दुर्बल है। राम महत्वपूर्ण सतर्कता के भौतिकवादिनों की इस धारणा से सहमत हैं कि मानव-स्वभाव में कुछ स्थायित्व तत्व विद्यमान है।⁸⁵ मानव-स्वभाव में किसी स्थायी तत्व की न मानव

83 *Reason, Romanticism and Revolution* पृष्ठ 2, पृ 309

84 यही विचार 1 पृ 11

85 *22 Theses Principles of Radical Democracy*, पृ 6 (जनवरी 1946)।

86 *Reason, Romanticism & Revolution* पृष्ठ 2 पृ 186-87। राम स्वीकार करते हैं कि अर्थिक की अतिरिक्त की दान में स्थायित्व अन्तर्गत कसौटी के भौतिकवाद की को घिरे से आवश्यकता करता आवश्यक है।

का अर्थ होता आचारसूक्ति का निर्वेध बरतना। मनुष्य ने स्वभाव न किसी ऐसे स्थायी तत्व को स्वीकार बिना जिससे बरतना कुछ फायदा दूसरों को साधनासुख करना आवश्यक हो, किसी बुद्धिमत्तापूर्ण आचारसूक्ति का निर्वाण नहीं किया जा सकता। मानव ने विपरीत राय की मांग है कि मानव-स्वभाव से कुछ अतिरिक्तनीति तथा स्थायी तत्व हैं, जो अधिकारा तथा कर्तव्य का आधार हैं। यदि मानव सिखा जाय कि मनुष्य उत्साहल भी दुःखमयीय व्यक्ति का दास है तो उसकी स्वायत्तता तथा मृत्युनामरणा से भी इनकार करना पड़ेगा। नविव चेतना आप्रिय क्षति का उपन नहीं होती। मानवकादी आचारसूक्ति ने विरुद्ध राय ने ऐसी मानवकादी आचारसूक्ति का प्रतिपादन किया है जो मनुष्य की सर्वोदरिता को महत्त्व देती है और स्वतन्त्रता तथा मानव के मृत्यु न विरुद्ध करती है। इस प्रकार राय ने मानव की आचारसूक्ति को, जो वय-समय को नीति आचरण की समीची मानता है, अस्वीकार किया और उसने स्वतन्त्र पर इन धारणा की मांग की कि नीति मृत्यु न कुछ स्थायी तत्व है।

(6) मानव ने उदारवादिता की व्यक्तिवाद की धारणा का खण्डन किया। इसका कारण यह था कि उस पर हेनरी के नीति प्रत्यक्षवाद (मालावाद) का प्रभाव पड़ा था। हेनरी का तत्त्व धारणीय सिद्धांत था कि वास्तविक है वह बुद्धिमत्ता है। इससे यह नीतिक सिद्धांत निकला की विरुद्धात नीतिक मानवता का पवित्र मानता है। यह नीतिक प्रत्यक्षवाद क्षति-राजनीति ने इसका भी आधार बन राखता है। इसने अतिरिक्त नीतिक प्रत्यक्षवाद समाज अथवा मनुष्य की नीतिक विरुद्धा का प्रत्यक्ष मानता है। इसका भी परिणाम यही होता है कि व्यक्ति की मृत्युका 'मृत्यु' ही जाती है। व्यक्ति की स्वतन्त्रता के मृत्यु की अवैधता करने मानव न अपनी मानवकादी मृत्युकादिकादी कृत-धारणा के साथ विरुद्धात किया। व्यक्ति ने सम्बन्ध न उदारवादी तथा जनसोपितवादी धारणा का खण्डन करने मानव न अपने प्रारम्भिक मानवकादी दृष्टिकोण के प्रति दाह किया।⁸⁷ इसने अतिरिक्त राय का मत है कि अन्तराष्ट्रीय साम्यवाद के आन्दोलन के नीतिक अर्थ प्रदान का कारण है नीतिक मृत्यु की आवश्यकता तथा हेनरी के इन के अतिरिक्त प्रत्यक्षवाद की उच्च पर प्रदान करने की प्रवृत्ति।⁸⁸

(7) राय की वय-समय के समाजवाद न भी सन्देह है। इतिहास न विभिन्न सामाजिक मनुष्य है, इसमें सन्देह नहीं। किन्तु सामाजिक विरुद्ध तथा समय की क्षति का के अतिरिक्त सामाजिक मनुष्य ने अर्थ भी विचारणीय रहे है। इसके अन्तर्गत वर्तमानकालीन समाज परस्पर विरोधी और प्रतियोगी क्षीन न विरुद्ध नहीं हुआ है, जैसी कि मानव ने 'साम्यवादी सोपना' में प्रविष्ट वाणी की थी। यह एक अतिरिक्त कारण है जिससे मानव की स्वतन्त्रता सन्देहास्पद बन जाती है।⁸⁹

(8) मानव ने मनुष्य वय के विरोध ही अर्थ के सम्बन्ध न जो व्यक्तिवादी की थी यह भी अन्तर्गत सिद्ध हुई है। मनुष्य आन्तरिक प्रवृत्ति के अन्तर्गत से ता मनुष्य की धारणा के बुद्धि होती है। इससे अतिरिक्त 1919 के मनुष्य के विरुद्ध इतिहास न मनुष्य वय का सामाजिक तथा 'राजनीतिक' मनुष्य एक अवसरम सम्बन्ध है।⁹⁰

87 *New Humanism*, पृ 28

88 वही, पृ 29

89 वही, पृ 34। किन्तु जहाँ मानव है कि कभी कभी राय यह भी स्वीकार करता है कि मनुष्यवाद के मनुष्य के मनुष्य वय का मत होता है। उसका विचार था कि अन्तर्गत मनुष्यकीय बुद्धिमत्तियों द्वारा कलित विचारणा है। मनुष्यवाद के मनुष्य न मनुष्य वय की नीतिक दृष्टि के मनुष्य कर दिया और इस प्रकार उसका मनुष्य वय का मनुष्य सामाजिक व्यवस्था की क्षति उत्पन्न की। (वही पृ 36-37)। किन्तु राय का यह मत कि मनुष्यवाद के मनुष्य के मनुष्य वय की मनुष्य ही नहीं, विचारणा उत्पन्न होता है। मनुष्य के उसकी बुद्धि नहीं होती। इसके अतिरिक्त इसका कोई प्रमाण नहीं है कि मनुष्य वय के मनुष्य तथा उसने मनुष्य वय का सामाजिक क्षति की व्यवस्था न विचार का उत्पन्न हुआ। मनुष्य की क्षति न कोई व्यक्तिगत सम्बन्ध है। कारण यह है कि मनुष्य के मनुष्य के व्यवस्था की विचारणा मनुष्य की मनुष्य विचारणा का प्रतिपादन किया, उस मनुष्य वय का मनुष्य नहीं है या मनुष्य ही मनुष्य था।

90 वही, पृ 36

(9) माथ मनहाइन की भाँति राय की स्वीकार करते हैं कि जातिवाद में सत्त्वामुलक काल्पनिकता (रीनसवाद) का पुट भी रहता है। जातिवादी धर्म लोचन की पराकल्पना पर पहुँचे हुए सामूहिक तथेयो की अधिष्ठाति हुआ करती है। धारणा के रूप में जाति का विचार बिस्व का धुननिर्माण करने में मनुष्य के प्रयत्न को अत्यधिक महत्वपूर्ण मानता है। अतः जातिकारी काल्पनिकता इन्द्रात्मक निवृत्तिवाद में एकदम विपरीत है। मानस के इतिहासकारों में अत्यविशेष इसलिए है कि वह दो परस्पर विरोधी धारणाओं को समुक्त करने का प्रयत्न करता है। एक ओर तो उसका विश्वास है कि इतिहास तथा इन्द्रात्मक एक निम्न (निम्नारित) प्रक्रिया है, और दूसरी ओर वह इस हेतुवादी (प्रयोजनवादी) धारणा का प्रतिपादन करता है कि इतिहास की उस प्रक्रिया के परिवर्तन में जातिकारी लक्ष्य स्वतन्त्र होता है। अतः राय की मान्यता है कि भौतिकवादी निवृत्तिवाद और जातिकारी प्रयोजनवाद, दोनों का सम्मेलन नहीं किया जा सकता। इसलिए राय का कथन है कि माथवाद में उसके अन्त में ही अन्तर्विरोध के साथ विद्यमान है।⁹¹ बुद्धि तथा प्रयोजन-मूलक जातिकारी काल्पनिकता, इन दोनों की साथ साथ प्रतिष्ठित करने का परिणाम यह हुआ कि उन्होंने एन-डूहरे का निषेध कर दिया और मानसवाद में विरुद्ध होने पर सामूहिक अनुवृत्तिवाद की उपलब्धि की रूप धारण कर लिया। सम्यक्वादी साम्यवाद की परम्परा विरुद्धिवादी तथा इन्द्रात्मक काल्पनिकता का बीज हुये मानसवाद की इस मूल धारिता में ही देखने की मिलता है।⁹²

किन्तु राय अपनी मानसवादी अस्मिता में भी मानसवाद की कुछ प्रस्तावनाओं की स्वीकार करते रहे। (1) राय वेनिन के इस कथन से लगभग पूर्णतः सहमत थे कि आधुनिक भौतिकी के अनुसंधानों में भौतिकवाद का खण्डन नहीं किया है, बल्कि उसकी अधिन कम्पीर बना दिया है। भौतिकी और हाइड्रोजनबम में इन्द्र की तात्त्विकता का खण्डन करके सम्मुक्त सत्ता का निषेध नहीं कर दिया है। आधुनिक भौतिकी में हमारी बरमायु की धारणा की अधिक सूक्ष्म बना दिया है, और वह बरमायु से भी आगे बढ़कर विद्युत् (इलेक्ट्रॉन) तथा प्रानु (प्रोटॉन) तक पहुँच गयी है, किन्तु उसने इस धारणा का खण्डन नहीं किया है कि हमारे मस्तिष्क (एन्डोसकोप) के मूल में कोई मूल सत्ता है जो अमानविक है। बल्कि राय ने कहता है कि मानसवाद की जाति धारणा की जाति आधुनिक भौतिकीय अनुसंधान अनुसन्धानों में जगत की भौतिकता की सिद्ध करते हैं। राय की दृष्टि में इन्द्र एन-डूहरे सत्ता बनो रहती है। इसलिए अन्त में राय यह भी कहते हैं कि भौतिकवाद में स्थान पर 'भौतिक काल्पनिकता' के का प्रयोग किया जाना चाहिए।⁹³

(2) कदापि राय ने इन्द्रात्मक भौतिकवाद के लक्ष्यकारण का खण्डन किया, किन्तु वे तथेयता-त्मक मानसवाद पर हट रहे। सम्पूर्ण ज्ञान का मूल भौतिक तथ्य है। राय तथेयता तथा सत्ता की ज्ञान का योक्त मानते हैं। किन्तु उन्होंने एन्डोसकोप तथा वेनिन जैसे परम्परा मानसवादियों की सुचना में अत्यन्तमय धारणा की प्रापधितता की। वेनिन के विचार के अधिष्ठान पर चल दिया था। किन्तु राय के विचार के प्रत्यक्षमय तथा असमानात्मक सत्ता की अधिन महत्व दबकर निष्ठ कर दिया है कि ज्ञान पर हेतुवादी का प्रभाव था।⁹⁴

(3) राय ने मार्क्स के सिद्धांत के ज्ञान-ज्ञान की स्वीकार किया जो विज्ञान तथा ज्ञान की प्रकृति पर चल देता है। कोई ज्ञान ज्ञानी मूल्य ही सत्ता है जबकि एन-डूहरे-मानसवाद

91 *Reason, Romanticism & Revolution*, किन् 2 पृ. 204

92 वही, पृ. 223

93 इन दोनों अर्थों विज्ञान की मानसवादी अस्मिता में भी राय मूल भौतिकवाद में रहे। भौतिकवाद में विज्ञान-मानसवादी भौतिकवाद के रूप में कुछ महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। उदाहरण के लिए—

(1) विज्ञान एक निरन्तर प्रक्रिया है जिसमें निरन्तर परिवर्तन होता है।

(2) ज्ञान विज्ञान के विज्ञान का ज्ञान ज्ञान होता है।

(3) आधुनिक विज्ञान विज्ञान की प्रकृति तथा ज्ञान विज्ञान का विज्ञान मूल्य है।

94 एन-डूहरे राय *Science and Philosophy*, पृ. 205। इन्द्रात्मक काल्पनिकता की प्रकृति है और मानस ज्ञान मानसवाद, इन्द्रात्मक और मानसवाद का ज्ञान है।

निश्चित की हुई योजना के अनुरूप हो।⁹⁵ विन्सु विन्सी योजना के प्रभावकारी हान के लिए आवश्यक है कि वह विद्यमान वस्तुस्थिति पर आधारित हो। इस प्रकार चिन्तन तथा वस्तुस्थिति में एकरूपता का होना आवश्यक है।

मानव-इगोय राय ने मानववादी दशन की बुद्धिवा तथा ऐतिहासिक भौतिकवाद के समाज शास्त्र की विवेचना की है।⁹⁶ उन्होंने मानववादी कम्यारम की शास्त्रीयता पर विचार नहीं किया है। उनकी रचनाओं का अनुशीलन करने से इस बात का प्रभाव नहीं मिलता कि वे मानव के आधिक सिद्धान्तों से परिचित थे। उन्होंने पूजी के सत्य, पूजीवादी उत्पादन तथा 'नैतिक' (पूजी) की प्रथम चिन्तन में प्रतिपादित सत्य के अथ सिद्धान्त तथा तीसरी चिन्तन में प्रतिपादित उत्पादन-सत्य व सिद्धान्त के बीच की अन्तर्विरोध है, उसकी विवेचना नहीं की है। मानववाद ने आलोचना के अन्तर्गत ही चीन-वाणिज्य, मुस्लिम पर्वत भाइयन तथा तुगलक-आराधनाओं की रचनाओं से और भी अधिक शक्ति प्राप्त करती थी।

6 नवीन मानववाद⁹⁷

अपने जीवन के अन्तिम वर्षों (1947-1954) में राय 'नवीन मानववाद' की व्याख्या करने लगे थे। मानववादी तत्त्व शास्त्रात्मक दशन के अनेक सम्प्रदायों तथा युगों में देखने को मिलते हैं। प्रोटेस्टेन्ट, इरास्मस,⁹⁸ मोर, बुकनन और हुडर के मानववादी प्रवर्तित विद्यमान थे। तुनी तथा फोर्डों की भाँति राय भी भी मानते थे कि विज्ञान की प्रगति मनुष्य की वृत्तान्तरण शक्तियों की वृद्धि का एक महत्वपूर्ण साधन है। विज्ञान ने मनुष्य की वृत्तान्तरण शक्तियों में वृद्धि कर दी है और उसे आचरितवादा तथा बहिर-केन्द्री के शास्त्रीयिक अर्थों से मुक्त कर दिया है। अपने बौद्धिक कामकाज की मानववादी अवस्था में राय की हृषीक, वृत्तान्तरण तथा वैयक्त आदि दार्शनिक अवधारणा से प्रेरणा मिली थी, और उन पर इन विचारकों के तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओं के प्रति आलोचनात्मक दृष्टिकोण का प्रभाव पड़ा था। दार्शनिक अवधारणा में नैतिक समस्याओं के सम्बन्ध में व्यक्तिवादी दृष्टिकोण अन्तर्भाव था। मानव ने व्यक्तिवादियों के मुक्तिवादी सिद्धान्तों की पूजीवादी कल्पना मानकर उसका अध्ययन किया। राय ने मानव के इस दर्शन का दुर्भावपूर्ण बलाया और कहा कि इससे प्रकट होता है कि मानव को नैतिक आदर्शों के ऐतिहासिक विकास का समुचित ज्ञान नहीं था। राय के अनुसार आधुनिक समस्या जिस नैतिक तथा सांस्कृतिक संकट से गुजर रही है उसके देखते हुए मानववादी सत्य का पुनः प्रतिपादन करना अत्यन्त आवश्यक है। आधुनिक पद्धति के अन्तर्गत के सत्य, पुष्ट, नैतिक वृद्धि की पारणा व्यस्त हो गयी है और परिणामस्वरूप मानव जाति एक नैतिक उत्तमन में फँस गयी है। नैतिक सत्य की वस्तु-वस्तुता का ह्रास हो चुका है। ऐसे युग का दार्शनिक विशय दशन व्यवहारवादी (उपयोगवादी) है। राय की मान्यता है कि चिन्तनमूलक बुद्धिवादी व्याप्त अवधारणा तथा सूचवाद के स्थान पर किसी प्रकार की नैतिक स्थिरता के लिए उत्तरदायी है। मनोवादा, सामाजिक, वैयक्त, अर्थव्यवस्था आदि सामाजिक तथा

95 *Reason, Romanticism & Revolution* वि० 2 पृ 292। राय का कहना है कि विशय की ऐसे दशन की आवश्यकता है जो विशय तथा रूप का सम्बन्ध कर सके। पृष्ठ 293 पर वे कहते हैं कि मनुष्य का रूप उसी प्रभावकारी हो सकता है जबकि वह बौद्धिक विशय द्वारा सम्बन्धित हो।

96 वे दार्शनिक सत्य के सिद्धान्त की अन्तिम कल्पना करते हैं। वे लिखते हैं 'यह सिद्धान्त कि दार्शनिक सत्य का प्रभाव पूजीवाद का निश्चित ज्ञान है और अधिक वन व जीवन का दौड़क है, एक ऐसी साधारणता प्राप्त है जो मानववादी अवधारणा का ही नहीं बल्कि जाति के समुच्च दशन का अपनी राय है। ऐतिहासिक का ज्ञान के जो दार्शनिक अर्थ हैं, जिसका अन्तर्भाव के अन्तर्गत की अवधि, यह इस बात पर है कि विशय की सत्य सत्य का समुच्च उत्पादन का उपयोग नहीं किया गया।' *New Humanism* पृ 31। 'अन्तिम सत्य के अन्तिम सिद्धान्त के और निम्नतर इन सिद्धान्त के कि इन सत्य की पूजीवादी वस्तुस्थिति रूप के रूप में है वन सत्य के अन्तर्गत के लिए नैतिकता आधार तैयार किया।' पृ 33

97 हम एक राय *New Humanism: A Manifesto* (नवीन, लंदन की नवीन, अगस्त 15 1947)।

98 जीवित दौड़क के लिए है कि पुनर्जीवन का नाम का मानववादात्मक अवधारणा रहा क्योंकि वह मानववादात्मक मानव का ही जीवन का दौड़क है वन सत्य का नाम मानव की शास्त्रीयता करने का ही दौड़क है। विन्सु दार्शनिक मानववाद का अन्तर्गत बुद्धिवादी है, और वस्तुस्थिति मानव की आधुनिक विशय का निश्चित रूप मानववाद का अन्तर्गत है। (जीवित दौड़क, *Scientific Humanism* अगस्त, अगस्त दिवसों में, 1926)।

और उह पर आधुनिक विचार शकरी का तत्कालमक उपलब्धता प्राप्त की है उन्होंने उसे स्वीकृत बना दिया है। इससे अलग मनुष्य की नई नैतिक प्रकृति में ही है, किन्तु वह उसके अभिभूत नहीं है। नवीन मानववाद मनुष्य का इसलिये स्वीकृत मानता है कि उसके अनुसार इतिहास मनुष्य के नियामकत्व का चेला होता है, और समाज का इन बात पर अधिकार नहीं है कि वह एक विशाल व्यक्ति के रूप में अपने की व्यक्ति पर मौज द। नवीन मानववाद का आधार वैज्ञानिक विचार तथा नैतिकवादी तत्वज्ञान है, वह सामाजिक मानवियों के सामाजिक अथवा वास्तविक आधारों पर ध्यान नहीं दे। मानववादी आधारनैतिक (नवीन मानववाद के नैतिक विचार) बुद्धिवाद पर आधारित है और मनुष्य की बुद्धिमत्ता का स्रोत मुख्यतः प्रकृति का बुद्धि स्वभाव है।¹⁰³ मनुष्य अपनी बुद्धिमत्ता (संदर्भनैतिक) की नैतिक विकास के द्वारा प्रकृति से ही प्राप्त करता है। बुद्धिवादी मानववाद का बीच हम द काठ के दशन में तथा अज्ञातहोती सामाजी के फासीकी नैतिकवादिता के विचारों में मिलता है। यह सब का दावा है कि अविश्व मानववाद आधुनिक ज्ञान की उपलब्धियों के समन्वय पर आधारित है।

नवीन मानववाद नैतिक तथा सामाजिक स्वतन्त्रता, विवेक तथा आधारनैतिक के दून प्राथमिक महत्व की स्वीकार करता है। किन्तु अन्तर्मा में सब का अभिप्राय यह नहीं है जो अज्ञात अथवा द काठ का था।¹⁰⁴ वे विचार की हेतुवादी (प्रयोजनवादी) धारणा के विरोधी हैं। यह सामाजिक स्वतन्त्रता का एक राजनीतिक, नैतिक तथा सामाजिक धारणा में सुनिता है। पुराने में पुनर्जीवन का सामाजिक स्वतन्त्रता का संकेत दिया था किन्तु पुनर्जीवनी समाज के बंधनों से उत्पन्न सब तथा नैतिक अधिकारों में उसे अभिभूत कर लिया था।¹⁰⁵ नवीन मानववाद सामाजिक स्वतन्त्रता पर ध्यान देता है। अविश्व मानववाद में तीन आधारभूत तत्वज्ञान हैं—स्वतन्त्रता, बुद्धि तथा नैतिकता। ये तीन चीजें अविश्व अथवा प्रकृति नहीं हैं, वे इन अनुभवों का धनीभूत सार हैं जो ऐतिहासिक विचारों के दीपक प्राप्त हुए हैं। मूल तत्व यह है कि इस सचुतापूर्ण अर्थ में सभी का जीवन के लिए समर्थ करता करता है। आम-नैतिकता तथा आम-पुनर्जनन के लिए यह तत्व ही स्वतन्त्रता की धारणा का आधार है। स्वतन्त्रता एक सामाजिक सामाजिक धारणा है, वह जीवन की एक प्रमुख धारणा है। स्वतन्त्रता कोई सामाजिक से कर की वस्तु नहीं है। उसे इसी प्रकार में सामाजिक बनाया है। कुछ लोग सामाजिक स्वतन्त्रता तथा सामाजिक स्वतन्त्रता के बीच एक तत्वज्ञानिक भेद मानते हैं। उनका कहना है कि सामाजिक धारणा के समस्त सामाजिक स्वतन्त्रता यह सचनी है। यह इन प्रकार के विचारों के जन्म में नहीं आये। उनका कहना था कि कानिशन तथा सामाजिक द्वारा प्रतीपादित पुनर्जननवाद तथा पुनर्जाति सामाजिक की धारणाई स्वतन्त्रता के आधार के विपरीत हैं। हेतुवाद (प्रयोजनवाद) तथा स्वतन्त्रता में परस्पर विरोध है।¹⁰⁶ यह न मानववाद की अन्तर्धारा इन आधार पर की है कि अविश्व नैतिकता के

103 यही पर सब के विचारों का आधारनैतिक है। एक बार उह न प्रकृति के नियामकत्व की मनुष्य की बुद्धिमत्ता का सार मानते हैं और फिर नियामकत्व और समाजों के बीच सब समर्थन करने का दावा करते हैं। उन्हीं विचारों के अर्थ मानव बुद्धि तथा बुद्धि के पुनर् मनुष्य प्राकृतिक विचार का विचार करते हैं। जिस पुनर् प्रयोजन तथा बुद्धि धारणा समर्थन है। धारणाधनुष्य का जीवन तथा जीवन की धारणा उनसे सब तथा विचार धारणा की विचारित हैं। मनुष्य जीवन बुद्धि है। मनुष्य की बुद्धि विचार का सामाजिक का धारणा है। नैतिकता का मनुष्य की समाजिक बुद्धिमत्ता पर आधारित मानव धारणा है। उन्हीं मनुष्य सब तथा धारणा के जीवन का समर्थन है। तथा प्रमाण द्वारा है कि यह सचुतापूर्ण तथा नैतिकता समर्थन की इन धारणाओं की स्वीकार करते हैं कि प्रकृति न समर्थन है और वह अविश्वनैतिक विचारों में समर्थन होती है। ये धारणा मानव की बुद्धि विचारों का सब था। अब धारणाओं की धारणा इन विचारों में ही सब अपनी धारणाओं की मानववादी धारणा में था मानव के धारणा विचारों की रहे। (New Humanism, पृ 48-49)

104 एक एक सब *The Problem of Freedom*, पृ 61। 'मानव की सामाजिक धारणा मानव के साथ बना का ही आधारनैतिक है। एक बार सब धारणा की मनुष्य की प्रकृति के प्रतिनिधि कर ली है और उसकी धारणा तथा का विचार कर ली है।

105 एक एक सब *The Problem of Freedom*, पृ 63

106 एक एक सब *Fragments of a Primer & Diary*, Part 2, पृ 38

सिद्धांत ने इतिहास की माकसदादी व्याख्या की हेतुवादी रूप प्रदान कर दिया है।¹⁰⁷ अरबिन्द के अनुसार स्वतन्त्रता मनुष्य के ईश्वर द्वारा दीयित एवं मूल प्रवृत्ति है, इससे विपरीत राय जीवन तथा आत्मपरिरक्षण के लक्ष्य की जिसकी पारम्भा का प्रतिपादन होना और जर्मन ने किया है, स्वतन्त्रता का मूल स्रोत मानते हैं। राय के जीवनवादी दृष्टान्तशास्त्र न स्वतन्त्रता की निरवधि आत्मा का निर्विकल्प सार नहीं माना गया है, यह तो वैयक्तिक विचारों की ही एक विरासत है। जीवन के लिए जो वैयक्तिक लक्ष्य चला करता है वहीं मानवतात्मक और सदाचारत्मक स्तर पर स्वतन्त्रता की सीमा का रूप धारण कर लेता है।¹⁰⁸ अतः स्वतन्त्रता सामाजिक प्रवृत्ति और सामूहिक उन्नति की मूल श्रेया अथवा अभिप्रेरणात्मक शक्ति है। स्वतन्त्रता के तीन मुख्य स्तम्भ हैं—मूलतत्वाद, स्वतन्त्रतावाद तथा बुद्धिवाद।¹⁰⁹ प्रोटोपोरस, वेनेटिज्म और फिरो की वाक्यांशों की निबुद्धि, चिन्त (नीति) अथवा 'गान (नीति) का वास्तविक अस्तित्व है। राय ने उनकी इस सत्य-शास्त्रीय धारणा का स्वीकार नहीं किया। उनका कहना है कि मनुष्य विधि शास्त्र तथा विधि-निर्धारित विषय में निराला करता है, और यही उसकी बुद्धि का मूलोद्धार है। मनुष्य को धीरे धीरे वाक्य-वाक्य सम्बन्ध के आधार पर साधन का सम्पादन हो जाता है। सम्पादन सम्बन्ध (व्यापक-व्यपन), अन्तर्गतिका तथा वाक्यवादिता की शक्ति राय भी मानते हैं कि मनुष्य मूलतः बौद्धिक प्राणी है, यद्यपि उसके अतिरिक्त वाक्य-वाक्य तथा अन्तर्गतिकता का भी है और वह कभी-कभी सम्पूर्ण नीति और प्राकृतिक शक्ति का भी प्रवर्धन के साथ फट पड़ता है। आधारनीति का आधार अतः सदाचार अथवा सामोदर नहीं है। मनुष्य सामाजिक सम्बन्धों की प्रतिभाओं तथा व्यक्तित्व शक्तियों के विषय में व्यवस्थित रूप से बुद्धि का प्रयोग करता है इसी से आधारनीति का उद्भव होता है। आधारनीति का उद्देश्य मानव-जाति न सामूहिक वाक्यांशों की साक्षात्कृत करना है। राय न प्राकृतिक सत्यता और आधारनीति की वाक्यांशों की चुनौती की। वे बुद्धि पर आधारित आधारनीति के समर्थक थे। राय का यह नीतिशास्त्र काट के बौद्धिक निरुद्धार (नवोद्धारवाद) के विषय है। काट यह मानकर चलता है कि विश्व में एक आधारमूल वैयक्तिक व्यवस्था विद्यमान है जिसे साधारण अनुभवमूलक बुद्धि के द्वारा नहीं समझा जा सकता। इसके विपरीत, राय का कहना है कि वैयक्तिक विवेचन की कसौटी बुद्धि होनी चाहिए, रहस्यात्मक लक्ष्य की अथवा शास्त्रीय मर्यादा की नीति मूल्य की कसौटी नहीं माना जा सकता। राय की इस बौद्धिक आधारनीति का आधार नीतिवाद की दृष्टान्तशास्त्र है। इसका मुख्य उद्देश्य मनुष्य की राजनीतिक, पारिवारिक आदि सभी प्रकार के वाक्यांशों में मुक्त करना है। राय उन लोगों के भी विचार का स्वीकार है जो क्रिस्तियन भोगवाद और नव ईश्वरवाक्यता की ही नीतिवाद मान लेते हैं।¹¹⁰

नवीन मानववाद का दृष्टिकोण विश्वराज्यवादी है। उनके वाक्य सत्य न राष्ट्रवाद अतिम भवता नहीं है। राष्ट्रवाद का आधार वास्तविक विवेचन है, और जिस सीमा तक वह सामाजिक सम्बन्धों की अन्तर्गत करता है, वहीं तक प्रतिनिधित्ववादी है।¹¹¹ इसलिए राष्ट्रवाद की अन्तर्गत विवेचन-मूल्य की आवश्यकता है। अरबिन्द, टैमोर तथा बायो की शक्ति राय को मानव जाति के सदाचार-शिक्षात्मक रूप में विवेचना करता है। आज के अन्तर्गत सत्य तथा सत्य न विश्व के आदर्श की साक्षात्कृत करने की बुद्धिवादी शक्त यह है कि पहले वैयक्तिक तथा सामाजिक दृष्टि से मुक्त व्यक्तियों की विचारों की स्थापित की जाय। इसके लिए आवश्यक है कि मनुष्य की ऐसी शिक्षा की जाय जिससे वह स्वतन्त्रता तथा उन्नति की आवश्यकता महसूस करना सीख सके। नवीन मानववाद स्वतन्त्र मनुष्यों के समान तथा विचारों के आदर्श की स्थापना करने के लिए प्रतिपाद्य है। राय न विश्व सत्य का उत्साह के साथ समर्थन किया। उन्होंने लिखा, "नवीन मानववाद विश्वराज्यवादी है। आध्या-

107 इन इन राय, *New Humanism*, पृ. 23

108 वही पृ. 52-53

109 इन इन राय, *The Problem of Freedom*, पृ. 61

110 इन इन राय *Materialism*, प्रोफ. सत्यन, पृ. 240-41 (कलकत्ता, देशीय प्रकाशन, 1951)।

111 इन इन राय, *The Problem of Freedom* पृ. 113-16। राय ने इसके साथ उल्लेख की है कि उन्नतिवादी प्रतिनिधित्ववादी सामाजिक राष्ट्रवाद की आवश्यकता की है। (वही पृ. 110-11)।

समक हृष्टि से स्वतन्त्र व्यक्तिता का विचारराज्य राष्ट्रीय राज्यों की सीमाशा से परिवर्द्ध नहीं होकर — बल्कि पूँजीवादी, फार्मीवादी, श्रमजवादी, साम्यवादी अथवा अन्य किसी प्रकार के क्या न हो। राष्ट्रीय राज्य धारण के बीचकी रास्तावादी के पुनर्जागरण के आधार से पीर-पीर विस्तृत हो जायेंगे।¹¹² यह न विचारराज्यवाद तथा अन्तरराष्ट्रवाद के बीच भेद दिया है। उन्होंने आध्यात्मिक समाज अथवा विचारराज्यवादी मानववाद का समर्थन किया है। अन्तरराष्ट्रवाद से प्रथम राष्ट्रीय राज्यों के अस्तित्व का विचार निहित है। राम के अनुसार एक सच्ची विचार-सरकार की स्थापना राष्ट्रीय राज्य का निराकरण करने ही की जा सकती है।¹¹³

राम की मान्यता थी कि राजनीतिक तथा सामाजिक पुनर्विर्माण की आवश्यकता यह है कि मनुष्य का बौद्धिक पुनर्जागरण हो जिससे वह नवीन अविनाश मानववाद के दान के पुनः स्वरूप को हृदयगत कर सके। स्वतन्त्रता की क्षमता व्यक्ति से प्रथम अन्तर्निहित होती है। स्वतन्त्रता का साकार होना इस बात पर निर्भर होता है कि मनुष्य को अपनी नृजन्मभक्त सत्तियों की चेतना हो। मनुष्य परम्परागत पुरोहितवाद तथा आध्यात्मिक अतिशक्तिकवाद के जघना की तोड़कर ही आध्यात्मिक स्वतन्त्रता की प्राप्ति कर सकता है। आध्यात्मिक हृष्टि से मुक्त व्यक्ति ही स्वतन्त्र समाज का निर्माण कर सकते हैं। आध्यात्मिक मुक्ति सामाजिक तथा राजनीतिक स्वतन्त्रता की अपरिहार्य बात है। इस प्रकार राम के विचार रॉबर्ट मॉकिन, सेंट साइमन तथा जॉन स्टुअर्ट मिल जैसी समाजवादीयों की धारणाओं से भिन्न जुड़ते हैं। ये विचारक मानविक प्रगुडीकरण का सामाजिक पुनर्विर्माण की भूमिका मानते थे।

7 मानववादी राजनीतिक तथा आर्थिक विचार

आधुनिक तथा पोपटकिन की भाँति राम सत्ति के केन्द्रीकरण के विरोधी थे और किनेड्रीकरण की आवश्यक मानते थे। केन्द्रीकरण स्वतन्त्र अधिकार तथा स्वतन्त्र विचार का विरोध करता है। राजनीतिक दल, विभिन्न देशवासी संगठन तथा विद्यालय वितीय सामयन हाथ हैं, केन्द्रीकरण के सामर्थ्य बन जाते हैं। कल की सोवियत प्रणाली के आगबुर महाँ के आर्थिक तथा राजनीतिक जीवन में साम्यवादी दल का प्रभुत्व स्थान है जिससे केन्द्रीकरण की प्रोत्साहन मिलता है। मनुष्य साम्यवादी दल केन्द्रीकरण की प्रक्रिया से दुःख तब है, जहाँ व्यापक संगठन तथा सत्ति के कारण सत्त की हताशा का जो स्वावलम्ब मिली हुई है वह निरपेक्ष हो जाती है। इसीलिए राम इस बात में है कि सत्तन में राजनीतिक दलों की चुनित बन से बन होनी चाहिए। ये इस कारण की स्वीकार नहीं करते कि राजनीतिक सत्ति सामाजिक परिवर्तन लाने का एकमात्र साधन है। वे इस बात में नहीं हैं कि सामाजिक परिवर्तन के लिए विद्यमान साधनत्व पर अधिकार दिया जाय। उनका विचार है कि सामाजिक स्वतन्त्र के लिए दलीय संगठन के द्वारा राजनीतिक सत्ति प्राप्त करनी की अपेक्षा गाँव तथा कारखाना में सचन काम करना अधिक प्रथम है।

सोवियतवादी व्यवस्था का सार आर्थिका में दल मान्यता पर विचार करता है कि 'सत्तन' लाने में उनका भी हाथ है। स्वतन्त्रता की साधार बनने के लिए सत्तन बड़ी आवश्यकता इस बात की है कि व्यक्ति पर सामाजिक आर्थिक तथा राजनीतिक प्रतिबंध कम से कम हों। समाज के जामूल पुनर्विर्माण करने के लिए व्यक्ति की प्रथमिकता की आवश्यकता बनना आवश्यक है। सत्तन, नियन्त्रण तथा शासित की सम्बन्धी कामप्रणाली का प्रयोग करते व्यक्ति की स्वतन्त्रता का हनन करता उचित नहीं है। इसलिए अन्तता का अधिकार आवश्यक है। जान डीवी के इस कथन में सत्य है कि अन्तता परीक्षण, भूल तथा प्रमाद के द्वारा ही लोकतांत्र की कामप्रणाली में प्रविष्टि हो सकती है। सत्तन लोकतांत्र का जो व्यावहारिक रूप बंधन की मिलता है उनमें समयपर दाप है। पुनः ही व बीच के काम में अन्तता व हताशा में कोई उचित नहीं रहती। सत्तन के समय में व्यक्ति का सत्तन की व्यक्ति की मुरादा जगन बनन में अन्तगम रहता है।¹¹⁴ इसलिए राम ने 'असत्ति

112 *Reason, Romanticism & Revolution*, p. 310

113 *New Humanism* p. 50

114 वही, पृ. 10-11।

सौजन्य'¹¹⁵ का निरूपण किया जिसके अंतर्गत जिसपर पर बरा हुआ कोई प्रकाश शक्ति सम्पन्न व्यक्ति आदेश नहीं देता बल्कि शक्ति जनता की स्थानीय समितिवा के हाथों में होती। औपचारिक संसदीय लोकतन्त्र ने निर्वाचनों को एक ऐसी भीड़ का रूप दे दिया है जो भ्रम में दिन-दिन और अज्ञात होती है। केवल संसदीय लोकतन्त्र ही राज्य के ऊपर वास्तविक नियंत्रण कायम रख सकता है। राज्य ने लोकतांत्रिक केटवादी की विस्था कल्पना का भी परिष्कार करने का आग्रह किया है। व एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था चाहते थे जिसमें सामाजिक प्रविधि और मानव बुद्धि तथा निर्माण की सहायक शक्तियों को व्यक्ति की स्वतंत्रता तथा सामाजिक कल्याण एवं प्रगति के आधारों के बीच सामंजस्य स्थापित करने के लिए प्रयोग किया जायगा।¹¹⁶

राज्य की संसदीय लोकतन्त्र और दलबिहीन सौजन्य की धारणा के अनुसार राज्य का हाथ संसदीय स्थानीय लोकतांत्रिक विचारों के आधार पर निर्मित होना चाहिए। वे जिसका राष्ट्र के लिए राजनीतिक विचारधारा का काम करेंगे और जनता को अपने सामाजिक तथा राजनीतिक उत्तरदायित्वों को चतुराई के साथ बुरा करने का प्रविलोक देंगे। वे नागरिकों को उनके सर्वोच्च अधिकारों के सम्बन्ध में संवेत बनाएंगे और उन्हें ऐसी शिक्षा देंगे जिससे वे अपने कल्याण का चतुराई के साथ तथा उद्देश्यपूर्णता प्राप्त कर सकें। शासन पर प्रभावपूर्ण, जनमत सर्वोच्च प्रत्यक्ष लोकतांत्रिक प्रतिबंधों के द्वारा निरंतर नियंत्रण रखा जायगा। राज्य की चाहिए कि इसमें अभिन्न की प्रथा की भी सम्मिलित कर दें। केवल इन स्थानीय लोकतांत्रिक विचारों को चुनाव के लिए प्रयोगी करते करने का अधिकार होगा। जो दलगत, वगैरह अथवा अन्य सभीन स्वार्थों की ध्यान में रखकर मतदान नहीं करेंगे, वह एकमात्र ध्यान रख पाता का होगा कि नैतिक सत्य, राजनीतिक स्वतंत्रता की मानना तथा सामाजिक शक्ति के सम्पन्न लोग जनता में रहेंगे। व संसदीय स्थानीय लोकतांत्रिक विचारों को सकलतत्त्वपूर्ण काम कर सकते हैं जबकि जनता में नैतिक तथा सामाजिक पुनर्जागरण के गुणों और बुद्धि का व्यापक रूप से प्रचार हो। दूसरे शब्दों में, इस लोकतांत्रिक व्यवस्था की स्थापना से पहले मानसिक प्रकुञ्चिकरण का होना आवश्यक है। वह व्यवस्था बिना राजनीतिक दलों की सम्पन्नता के काम करेगी। एक शब्द में राज्य के प्रत्यक्ष लोकतन्त्र के सिद्धांत को स्वीकार करते हैं, क्योंकि इससे सम्पूर्ण व्यवस्था जनता की लोक समितिवा के द्वारा शासन में प्रत्यक्ष रूप से भाग लेने का अवसर मिल पाता है। इस योजना की सफलता जनता के उन वर्गों पर निर्भर करती है जो नैतिक तथा बौद्धिक दृष्टि से विकसित हैं। वे 'एक राजनीतिक दल के रूप में समुक्त' होंगे और उनका एकमात्र काम जनता के बौद्धिक तथा नैतिक कल्याण का अभिवर्धन करना होगा। सामाजिक स्वतंत्रता के सम्पन्न पुरुषों तथा स्त्रियों का यह दल शक्ति पर अधिकार करने का प्रयत्न नहीं करेगा। वे इस बात की परीक्षाएँ प्रारंभ करेंगे कि व्यक्तिगत स्वायत्तता तथा शक्ति के प्रयोग का प्रयोग होकर लोक विचार है। इस सामाजिक दल का—यदि उनके लिए दल शब्द का प्रयोग किया जा सके—मुख्य उद्देश्य लोकसमितिया के गठन में सहायता देना होगा और वे समितियाँ लोकतांत्रिक शक्ति का मुख्य नेत्र होंगी।

जिन्हु संसदीय लोकतन्त्र के इस आधार की संतुष्टता साकार नहीं किया जा सकता। इसलिए जनमत बाल के लिए राज्य एवं वाम पक्षित उत्पन्न का सुभाव बत है। चुनाव तथा प्रत्यक्ष योजना का विषय आवश्यक है। जनमत बाल में एक राज्य परिषद अवशिष्ट शक्ति का प्रयोग करेगी। इवीनिंगर, अध्यापक, वैचारिक, साह्य, विविधता, इतिहासकार तथा कला और ज्ञान की उत्पत्ति में सत्यन भाव व्यक्तता के उद्देश्य परियोजना की सम्पन्नता के लिए कुछ भाग के भागों पर प्रस्तावित करेंगे। राज्य का मुख्य कामप्रकार इन सदस्यों की साथ निर्देशित करना। वह कुछ भाग लेने व्यक्तिता को भी सम्मिलित कर रहेगा जो मुख्य है जिन्हु निर्णय का सम्बन्धित नहीं है। इस परिषद का राज्य की अधिन, सांस्कृतिक तथा साम्प्रदायिक योजनाओं के निष्पादन में सम्बन्ध में पर्यवेक्षण करने का अधिकार होगा।

आधुनिक भारतीय राजनीतिक विचार

राज्य एकाधिकारी प्रभुवाद तथा उसके उत्पन्न विद्यालय तत्वावहक तथा और उपयोगमयता के विरुद्ध थे। एकाधिकार की वृद्धि से केवल प्रतिरोधिता ही कम नहीं होती बल्कि विरोध विरोध तथा औद्योगिक शक्ति के नेटवर्क स्थापित हो जाते हैं। इसलिए एकाधिकारी प्रभुवाद का नाश करना आवश्यक है। सामाजिक तथा आर्थिक असमानताएँ जो प्रभुवाद के कारण अधिक गहरी हो जाती हैं, राष्ट्रीय लोकतन्त्र को संश्लेषित बना देती हैं। उदारवाद प्रभुवाद को तो अहस्ताक्षर तथा प्रयोग के विद्यालयों पर आधारित है, लोकतन्त्र का मूल ध्येय है, व्यक्ति की स्वायत्तता पर नज़र रखना राज्य तत्वावहक भी, जो प्रभुवाद के विरुद्ध माने जाते हैं, व्यक्ति की स्वायत्तता पर नज़र रखना किन्तु राज्य प्रभुवाद और राज्य तत्वावहक दोनों ही बना तथा गौरवदायी की क्षमितावादी तब, जब कि राज्य प्रभुवाद ही है इसलिए वे दोनों के विचारधारा को साफ़ किया जाता है। इसलिए एकाधिकार विचार कोई ऐसी आर्थिक व्यवस्था होगी जो ध्यान देने की आवश्यकता है। इसलिए एकाधिकार विचार पर आधारित हो।¹⁰⁰ इसलिए राज ने छद्मराज्य अथवा राज का समर्थन किया, जिसने अल्पमत उत्थापन का एकाधिकार अल्पमत समुच्चय की आवश्यकताओं की पूर्ति करना होता है। केवल इसी प्रकार विचार प्रसारण को लोकतन्त्र का वैधानिक आधार मानते हैं, और उन्होंने वास्तविक, सामाजिक तथा राजनीतिक लक्ष्य ध्वनितवाद की व्यापक प्रारम्भ का समर्थन किया है। उनके अनुसार व्यक्ति, परिवार ही नहीं बल्कि समाज से भी बहते हैं। समाज का जन्म व्यक्ति, व्यक्ति समुदाय के रूप में हुआ था,¹⁰¹ व्यापक सामाजिक व्यक्तिवाद ने यह निश्चित है कि समाज की जनक प्रतिष्ठा है यही हमारे कार्य। राज विचारधारा पर आधारित समुच्चय परिवार प्रथा की अवस्था का एक अवरोध मानते हैं। उन्होंने विचारों की स्वतन्त्रता की वृद्धि करने का एक सिद्धांत है,¹⁰² और वे विचारधारा के विरोधी हैं।

8 निष्कर्ष

सत्य यह है कि मानव-समाज राज आधुनिक भारत ने स्वयं तथा राजनीति के विकास में सबसे बड़े विद्यालयों में से है। वे महान बनता भी है। उनकी सभी औद्योगिक तथा प्रसारण समर्थन की। उन्होंने बहुत विचार है। कहा जाता है कि उन्होंने विचारधारा (आधुनिक विचार के वास्तविक परिणाम) माना एक बड़े हज़ार रूप की पुस्तक लिखी। यह एक प्रकाशित होगी ता सम्भवतः अनेक विद्यालय न गुरी हो सके। उनकी विद्यालय विचारों में बहुत ही निराश्रयता थी। यद्यपि उन्हें स्वयं अपना सामाजिक विचारों के छात्राधीन क्षेत्र का विरोध मान नहीं था, फिर भी उनकी विद्यालय बड़ी व्यापक थी।

राज का भारतीय विचार के इतिहास में एक व्यापकता तथा इतिहासकार के रूप में महत्वपूर्ण स्थान होगा। आधुनिक काल ने विद्यालय के क्षेत्र में जो विचार प्रसारण के रूप में समर्थन वाले भारतीय विद्यालय में राज्य सम्भवतः बहुत प्रमुख थे। उनकी पुस्तक 'राज, रोमांटिक विचार एक विचार' (जुद्ध विचार तथा भाषा) वास्तविक विचार के इतिहास में एक भारतीय विचार का महत्वपूर्ण योगदान है। उनकी 'प्रीटोरियन विचार' (प्रीटोरियन विचार) नामक पुस्तक भी काफी अच्छी है।

राज एक अतिरिक्त तथा व्यापक व्यक्तिवादी थे। भारत कुछ भी रहा हो स्वयं स्पष्ट है कि भारत में व्यक्तिवाद का एक व्यापक सम्भवतः के रूप में महत्वपूर्ण विचारधारा नहीं बना। राज का दूरगामी व्यक्तिवाद एक प्रतिष्ठा के रूप में बहुत ही महत्वपूर्ण है। वे व्यक्ति-

117 एन एन राज, *Problems of Democracy* The Problem of Freedom, p. 131-40
 118 21 जनवरी 1943 को 88 भारतीय राज (88th Indian Journal) में जो व्यापक प्रकाशित की थी
 उनमें समाजवादी तथा राष्ट्रीय विचारों की छद्मराज्य प्रतिष्ठा का सम्भवतः विचार था। एन एन राज, *National Government or People's Government* p. 104
 119 एन एन राज, *Fragments of a Prisoner's Diary*, Part 2, p. 83
 120 यही p. 60-61 "The Ideal of Indian Womanhood"

वाद को एक वास्तववादी दर्शन मानते हैं, क्योंकि उसकी दृष्टि में उसका ज्ञानसाधन (ज्ञान नीमासा) धारणा शक्ति की दृष्टि से बहुत ही विस्तृत है। वह मनमाने ढंग से मनुष्य की जानने की शक्ति की कोई सीमाएँ निर्धारित नहीं करता। वह मनुष्य की विविध अनुभूतियों की निरन्तर जाच करता रहता है, और मानव ज्ञान की सीमाओं का उत्तरोत्तर प्रसार करता जाता है। वह भौतिक ज्ञान पर प्रतिबन्ध नहीं लगाता जैसा कि मन्दिर आदि कुछ रहस्यवादियों ने किया है। भारतीय चिन्तन के क्षेत्र में प्रत्यक्षवाद के लोकोत्तर सम्प्रदायों को इसकी अधिक महिमा गायी गयी है कि सामाजिक दमन तथा प्राकृतिक विज्ञान के क्षेत्र में किये गये प्रयासों को यदि भूषण निरूपक नहीं तो भीषण अवलोक माना जाता है। जिनु राय ने अपने मौलिकवादी उत्साह और उन्नता के द्वारा चिन्तन को उत्तेजित करने की दिशा में महत्वपूर्ण काम किया है। मौलिकवाद के पक्ष में उनमें एक कुछ मौलिक नहीं हैं और उनमें कालनिवृत्ता तथा बहुतरासुण उन्नता अधिब देखने की भित्ती है, फिर भी उन्होंने इस क्षेत्र में नवीन चिन्तन के लिए आवश्यक उत्तेजना प्रदान की है। भारत में स्कूलशास्त्र तथा मूलभारमक चिन्तन के विकास में लिए आधारहीन सारोत्तरता पर प्रहार करना आवश्यक है। भारतीय चिन्तन में बहुतरासुणता की नये छिंदे से धारणा करने की आवश्यकता है।

राय द्वारा प्रतिपादित 'नवीन मानववाद' जीवन में मनुष्य को प्रथम स्थान देने का उपदेश देता है। वह स्वतन्त्रता की सार्वभौमिकता को सर्वोच्च मानता है। आधुनिक विद्वानों की राजनीतिक विमर्शमयता का मुख्य कारण यह है कि मनुष्य में नैतिक मूल्यों का परिष्कार कर दिया है, और जबल भीतकारिक संस्थाओं की पुनर्स्थापना है। मौलवी सार्वभौमिक की राजनीति का अपविश्वस्त संस्थाओं की पुनर्स्थापना है। सांख्यिक राजनीति में भी मानव के निर्माण की नैतिक तथा शैक्षिक संस्थाओं की उत्पत्ति की जाती है। संस्था संस्थाओं, आयुष्यों और सहितियों का जाल विमित किया जा रहा है, और आशा की जाती है कि निरन्तर बढ़िमान संस्थाओं का यह सम्पूर्ण मनुष्य के लिए सन्तुष्टि में आयेगा। जिनु राय का कहना है कि लोकतन्त्र ही सफल ही संस्था है जबकि सामंजसिक मानसता का संचालन साम्प्रदायिक दृष्टि से स्वतन्त्र स्थितियों के द्वारा में होगा। अधिकतम लोकता का अधिकतम संस्थापन तभी प्राप्त किया जा सकता है जबकि सरकारें सबसे पहले अपनी सत्तरासा के प्रति उत्तरदायी हो। चतुर्थाई, गुणों की श्रेष्ठता तथा सार्वभौमिकता के लोकोत्तर की कसौटी होनी चाहिए। नवीन मानववादी मूलभारम स्वतन्त्रता, मानव तथा लोक को प्राथमिकता देता है। राय का यह सिद्धान्त कि राजनीति तथा संस्था का आधार मूल्य होने चाहिए, आधुनिक राजनीतिक चिन्तन में महत्वपूर्ण योगदान है। मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता है कि जो व्यक्ति किसी समय मानववादी वास्तववादी या और संस्था द्वारा शक्ति पर अधिकार करने का उपदेश देता या बड़ी नवीन पुनर्जागरण की आवश्यकता पर जोर दे रहा है। भारत संसदीय लोकतन्त्र के माग पर चल रहा है। एशिया के अनेक देशों में किसी न किसी प्रकार में समकाल में लोकतन्त्र को स्वीकृत कर दिया है। ऐसे अवसर में समय में मानवेंद्रनाथ राय का जाग्रत है कि केवल मानव सन्तुष्टि का पवित्रवादी प्रभाव देश की अन्तर्गत सत्तरों और विप्लव के मंचा संज्ञता है। राय ने समकाल गांधीजी की माग में कहा है कि जिस बहुतरासुण के द्वारा में शक्ति है उसकी नैतिक अन्तरात्मा ही सार्वभौमिक लोकतन्त्र की सुरक्षा की एकमात्र गारन्टी हो सकती है।

समाजवादी चिन्तन के इतिहास में राय का स्थान एक नैतिक सशोषणवादी का है। उन्होंने एक मानववादी के रूप में अपना मौलिक जीवन आरम्भ किया, जिनु पीर-पीरे उन्होंने मानव की सभी प्रस्तावनाओं की नये ढंग से व्याख्या कर दी। केवल उनका 'अविश्वस्त' उस नवीन मानववाद एक निताउ नयी विचारधारा नहीं है, वह मानववाद का नैतिक विचारधारा है। अतः मेरा विचार है कि उनकी सामान्य नैतिकता स्थिति की तुलना सामंजसिक जीवन सशोषणवादियों का की जा सकती है। मैं राय को भारतीय दृष्टिकोण समझाऊँ मानता हूँ। अवस्थाओं और दृष्टिकोण में मानववादी सिद्धान्त में वाद की आधारनीति ओझर उड़ चुक कर दिया है। इसी प्रकार राय ने मौलिकवाद की मानववादी आधारनीति के द्वारा पुनर्स्थापन का उपदेश दिया है। उन्होंने स्वतन्त्रता बुद्धि तथा सामाजिक मानववादी आधारनीति पर भी जोर दिया है वह मौलिकवादी चिन्तन में एक स्वातन्त्र्य योग्य योगदान है।

सांख्यिक भारतीय राजनीतिक विज्ञान

[illegible][illegible][illegible]

121 छात्रावली का अध्ययन
122 एक एक एक The
123 एक एक एक The

122 एम एम राम *The Problem of Freedom* पृ 61
123 एम एम राम, *Fragments of a Promise*

123 एन एन एन *The Problem of Freedom* १ 61
एन एन एन *Fragments of a Prisoner's Diary* भा- 2 १ 62

मान्यवादी विद्वत्प्राज्ञवादी होने के नाते वे राज्यवाद की एक पुराना और कूट टांठने वाला बंध मानते थे।¹²⁴ वे अपने को आधुनिक मानते समझने के और इसलिए वे भारतीय संस्कृति तथा जातीयवाद के विरुद्ध ज़ोर उठाया करते थे।¹²⁵ मौलिकवादी होने के नाते वे धर्म तथा आत्मा विषय इतना ही धर्मिस्वर का अज्ञान मानते और उसकी अलगा किया करते थे। मानवैदनाय राय एवं ऐसे बुद्धिवादी के जो भारतीय समाज में अपनी जड़ें न खमा सके। इन काम में उन्हें खिलती ही अधिन असाधारण मिली उसनी ही उनकी आलोचना अधिन उग्र और चौकस होती गयी। यही उनके सम्बन्ध में सबसे अधिन दुःख की बात थी। उनकी आलोचना का रूप सदैव अक्षरार्थक बना रहा।¹²⁶

राय की रचनाश्राव्य में प्रायः दो बातों का मिश्रण देखने को मिलता है, उनका विविध शक्ति और उनमें विभिन्न विचारप्रवाह और दृष्टिकोण का समन्वय करने वाला वे विरुद्ध बहु धर्म्य। अपनी पुस्तक 'अधार्मिक राजनीति' में वे लिखते हैं 'राजित्तारी राजनीति की वैज्ञानिक इज्जत में श्रेष्ठता मेनी चाहिए। उस श्रेष्ठता के बिना राजनीति अनीतिजवा, अतिवा और बाकी होने वाली का असाधारण बन जाती है। राजनीति का आध्यात्मिकरण नहीं किया जा सकता। आध्यात्मिक अथवा नैतिक राजनीति प्रथम उदा और धूर्त का जाधक हुआ करती है। इस स्वयम्भवा अनुभव है।¹²⁷ बहुसंख्या की इस भूमी में निश्चय ही उनके हृदय का उदाहृ प्रकट होता है, किन्तु इससे यह भी स्पष्ट है कि राजनीति के नैतिक आधार के महत्त्व की न स्वीकार करना भी जारी चल है। विवेकी, विवेक तथा ईसा मनोहृ इत आदर के प्रतिपादक के कि राजनीति का आधार नैतिक होना चाहिए। मानव चिन्तन के विकास में उनका योगदान गण्य नहीं है।

मानवैदनाय राय का यह मिश्रण भी फलतः कि राज्यवाद एक पुराना और सजा गया साधक है। उनकी मान्यता थी कि द्वितीय विश्व युद्ध ने राज्यवाद के सम्मोर अन्तविरोधा की प्रकट कर दिया था। उनका कहना था कि राज्यवाद के उपाद न भारत की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए निर्य राज्यो का बंध लेने के रोक दिया था। इसलिए वे राज्यवाद की विचारपूर्ण मान्यता के समन्वय मानते थे। राय के दृष्टिकोण तथा चिन्तन द्वारा का विधीय अन्वयपूर्ण मान्यवादी बुद्धिवाद उदा हुआ था। उनकी कठिनाई यह थी कि वे एक युग विधीय बुद्धिवादी के और इसलिए वे भारतीय राज्यवाद की बहरी दबी हुई आकाशो की पहचानने में असमर्थ रहे। उन्होंने राज्यवाद के आदेश पर भी प्रहार किया। बीच के उपाद में वे बड़ा तक यह बैसे कि "राज्यवाद की पराजय भारतीय स्वतन्त्रता की बात है।¹²⁸ उन्होंने महत्त्व कापो तथा भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की विचारप्रवाह की तुलना पार्सीवाद से की और ब्रिटिश सरकार से अनुरोध किया कि "इस पार्सीवाद का उन्मूलन कर दे। ब्रिटिश सरकार ने 1942 के आन्दोलन की कुचलने के जो कवर प्रयत्न किये उन्हें राय 'भारत के अन्दर चल रहे पार्सीवाद विरोधी संघर्ष का एक अधिन अंग' मानते थे।¹²⁹

राय का यह दृष्टिकोण सही है कि बहुरूपी पराजयी के यूरोपीय पुनर्जागरण में महत्त्वपूर्ण मान्यवादी और साधनीनी (विरोधतावादी) उदा थे। किन्तु उन्होंने नकियावेनी का जो निबन्धन किया है वह सही नहीं है। उन्होंने लिखा है, "यह सत्य है कि इराक़ी के पुनर्जागरण ने नकियावेनी

124 एम एन राय लिखत हैं कि प्राकृतिक राज्यवाद का अर्थ राज्यवाद की जातीय (जातवादी) अंग की सञ्चालन करना है और अधिन सामाजिक असाधारणता की विचार का प्रयत्न करता है। (एम एन राय *The Problem of Freedom*, पृ 113)

125 एम एन राय के महोदया काकी की राजनीतिक अर्थ राय का तीन बतारा और एम एन में उनकी आलोचना थी। उनका कहना था कि अजरा के मान्य पर उनका अद्वितीय अर्थ के अज्ञान आध्यात्मिक निराकरण तथा आधुनिक धर्म के अभाव था। (एम एन राय, *The Political Church, The Problem of Freedom*, पृ 124-30)। काकी की अद्वितीय के अधिन कायम का निर्य केविने विचारप्रवाह अर्थ *Political Philosophy of Mahatma Gandhi*

126 एम एन राय, *Heresies of the Twentieth Century*, पृ 81-129

127 एम एन राय, *Scientific Politics* पृ 51-52

128 एम एन राय *The Problem of Freedom* पृ 65

129 यो, पृ 67

आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन

यैव व्यक्ति को उत्पन्न किया जो सृष्टिज्ञान में संपूर्णता के रूप में प्रसिद्ध है। किंतु पुनर्जागरण के व्यक्ति ने रूप में प्रतिपादनी नहीं अधिक महान है, यह मानववादी तथा विज्ञानवादी भी था। मानववाद और विज्ञानवाद पुनर्जागरण की सृष्टि का ही परस्पर सम्बन्ध बन गये।¹¹³ किंतु राय ने अपने दृष्टिकोण की पुष्टि करने का लिए न तो कोई तर्क दिया है और न वैज्ञानिकों की रचनाओं से ही कोई उद्धरण दिया है। यह सबविशिष्ट है मानव स्वभाव का सम्बन्ध में मनुष्यावैली की धारणा अवशेष विहृत और निराशावादी भी। फिर भी राय ने उत्पन्न मानव उचित मानववादी और विज्ञानवादी मान लिया है। निरपेक्ष ही राय का यह मत मान्य में टाकने वाला है।

राय का यह दृष्टिकोण भी कलट है कि मानव में हृदय से समाज की अवस्था धारणा प्रत्यक्ष की भी¹¹⁴ हृदय में समाज के एक अवस्था सिद्धांत का प्रतिपादन किया है। किंतु प्रकृति मानव में मनुष्य के गुणगानन व्यक्तित्व की धारणा का उक्त अर्थ में सम्मन किया है जिस अर्थ में हृदय और मनुष्यभाव में उत्पन्न प्रतिपादन किया था, फिर भी यह समाज में अवस्था सिद्धांत का सम्बन्ध नहीं करता। भाषा में एक व्यापक सामाजिक छाप का सिद्धांत प्रतिपादित किया और बताया कि सामाजिक विचार में व्यापक। तथा घोषित के बीच छाप ही प्रमाण है। उक्त यह मत अवस्था सिद्धांत का प्रत्यक्ष निर्देश है। समाज की अवस्था धारणा में विज्ञान करने वाली को या तो यह स्वीकार करना पड़ेगा कि मनुष्य के बीच हिता का सम्बन्ध होता है या फिर यह मानना पड़ेगा कि समाज में जीवन अवस्था वैज्ञानिक अवस्थाधारा विद्यमान रहती है। कारण एक ही विषय को अर्थ में समाज के अवस्था सिद्धांत का सम्बन्ध नहीं रहा या समाज।

राय की प्रतिपादन समाजवादी धारणा की न कि रचनात्मक। उन्होंने कोई भी चिन्तनधारा नहीं की है। उन्होंने न तो राजनीतिक धारणा की ओर न दृष्टि में ही किसी प्रकार विज्ञानधर्मिक विचार प्रकृति का प्रतिपादन किया है। उन्होंने चिन्तन के विविध धारा की समीक्षा करने का प्रयास किया है। न बुद्धिवादी पुनर्जागरण 'मौलिक' रचनावादी बहुसंख्यक मानववादी आधार भीति तथा रचनात्मक की उक्त अवस्थाधारा की एक किंतु पर केन्द्रित करता चाहते थे और इसी विचार में उन्होंने प्रयत्न किया। किंतु जो समाज अवस्थाधारा उपर्युक्त मानने वाला है वह न तो सम्पूर्ण है और न मौलिक। फिर भी बहुसंख्यक धारणा में राजनीतिक चिन्तन पर लिखने वाले जो भारतीय हुए हैं उनमें राय सम्भवतः सबसे अधिक चिंत और विद्वान् थे।

1. The first part of the paper is devoted to a general discussion of the problem of the existence of a solution of the system of equations (1) for arbitrary values of the parameters α and β .

2. In the second part of the paper we shall consider the case when the parameters α and β are small quantities of the same order of magnitude. In this case the system of equations (1) can be written in the form

$$\begin{cases} \frac{dx}{dt} = \alpha x + \beta y + \dots \\ \frac{dy}{dt} = \alpha y + \beta x + \dots \end{cases}$$

where the dots denote terms of higher order in α and β . The first two equations of this system are linear and can be solved by the method of variation of constants. The solution of the system (1) for arbitrary values of α and β can be obtained by the method of successive approximations. The first approximation is obtained by neglecting the terms of higher order in α and β . The second approximation is obtained by substituting the first approximation into the right-hand side of the system (1) and solving the resulting linear system. The third approximation is obtained by substituting the second approximation into the right-hand side of the system (1) and solving the resulting linear system. The process can be continued indefinitely. The solution of the system (1) for arbitrary values of α and β can be written in the form

$$\begin{cases} x = x_0 + \alpha x_1 + \beta x_2 + \dots \\ y = y_0 + \alpha y_1 + \beta y_2 + \dots \end{cases}$$

where x_0 and y_0 are the solutions of the system (1) for $\alpha = \beta = 0$, x_1 and y_1 are the solutions of the system (1) for $\alpha = \beta = 0$ and x_2 and y_2 are the solutions of the system (1) for $\alpha = \beta = 0$.

3. The third part of the paper is devoted to a discussion of the stability of the solutions of the system (1) for arbitrary values of the parameters α and β . The stability of the solutions of the system (1) for arbitrary values of α and β can be determined by the method of Liapunov. The first step in this method is to find a function $V(x, y)$ which is positive definite and whose derivative with respect to time is negative definite. The second step is to find the derivative of $V(x, y)$ with respect to time. The third step is to determine the sign of the derivative of $V(x, y)$ with respect to time. The fourth step is to determine the stability of the solutions of the system (1) for arbitrary values of α and β .

विषय प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया। अपनी 'विश्व इतिहास की भूतक' तथा 'आत्मकथा' में तथा दूरवास में मानव की वैज्ञानिक तथा आर्थिक पद्धति की भूमि-भूमि प्रकृति की है।

मई 1923 में कांग्रेस समाजवादी दल की स्थापना हुई। समाजवादी विचारों की लोकप्रिय बनाने की दिशा में इस घटना का विशेष महत्व था। उस समय तक समाजवाद अर्थात् 'साम्यवाद' अन्धविचारों का अस्पष्ट पुत्र था। मरठ परमाण्व अधिपति (मार्च 1929 जनवरी 1933) ने साम्यवादी विचारधारा को कुछ सुधारों के साथ प्रसारित कर दी थी। 1918 में इलाहाबाद में एक 'विशाल मंच' स्थापित की गयी थी, किन्तु उस दल समाजवादी विचारधारा का प्रचार नहीं था। 1934 में इलाहाबाद में केन्द्रीय विधान मंच स्थापित किया गया। अक्षै 1936 में अधिल भारतीय विधान मंच का गठन किया गया। अन्धधर्म आचार्य, सुबक तथा भारतीय समाज मंच की समुदाय में शीघ्र योग्य आदि गुणों समाजवादी विचारधारा के अक्षैयि के।

मई 1934 में कांग्रेस समाजवादी दल की स्थापना भारत में समाजवाद के गठनगत विकास में एक महत्वपूर्ण घटना थी।³ बिहार समाजवादी दल 1931 में स्थापित किया गया, और 1934 के दम्पई समाजवादी गुट कायम हुआ। भारत समाजवादी दल की स्थापना से उसी प्रयोग सचदवा और गुटों का अधिल भारतीय आचार तथा मंच मिल गया। समाजवादिता का पहला अधिल भारतीय सम्मेलन 17 मई, 1934 को घटना में नरेन्द्रदेव की अध्यक्षता में हुआ। इस दल की स्थापना में जयप्रकाश नारायण का मुख्य हाथ था। अन्धधर्म परमाण्व, सुबक महत्त्वपूर्ण तथा अक्षैय महत्त्व में इस नाम में उसकी परिणित सहायता की थी।⁴ 1942 के आचार्य के अधिल साम्यवादी तथा समाजवादी कांग्रेस के विरुद्ध युवा का प्रचार करने में और उनके नेताओं का पार्टी वाली कहकर निर्दिष्ट करने में सही हुए थे उस समय समाजवादिता में औरतपुत्र भूमिका अक्षै की। 1948 के वार्षिक सम्मेलन में समाजवादिता में कांग्रेस की अक्षै देने का नियम किया वार्षिक कांग्रेस सचदवा के अधिल आचारिक गुट के निर्माण को अनुमति नहीं देता थी। इस प्रकार अक्षैय मंच एक कांग्रेस में अक्षै के उपचार समाजवादिता में उस दल का परिणित रूप दिया और भारतीय समाजवादी दल नाम का एक दल कायम कर दिया। 1952 के आम चुनावों में बाद समाजवादी दल तथा के सी कुलकर्णी ने नेतृत्व में सचदवा गुणक मजदूर दल में परतन विधान होने का निर्णय किया। 25 अप्रैल, 1952 को सचदवा में दोनो दलों के नेताओं की बैठक हुई। 26 तथा 27 दिसम्बर 1952 को दम्पई में पुन एक बैठक हुई और दोनो दल समुदाय हो गये। समुदाय दल का नाम प्रयोग समाजवादी दल रखा गया।

भारत में समाजवादी विचारों का विकास जिन सचदवा में हुआ वह अक्षैय समाजवाद के सचदवा में हो घटना में मिल था। भारत में समाजवाद का विकास सामाजिक तथा अधिल पुन निर्माण की एक वास्तव में रूप में ही नहीं हुआ, बल्कि वह पुर बिदेशी साम्यवाद में अधिल व गान्धीयक भूमि की एक विचारधारा के रूप में भी विकसित हुआ। 1900 के 1947 के काल में भारत की पूरा साम्यवादी देश की गान्धीयक स्थानता थी। कोई भी लोकप्रिय दल उसकी उल्ला नहीं कर सकता था। दूसरे, भारतीय समाजवादी विचारों के लिए यह भी आवश्यक था कि वह केन्द्रीय मजदूर के उल्ला का भी कोई विचार और अधिल प्रमाण को। अधिली कुरक्षेत्र समाजवाद का अक्षैय घटनाओं तक प्राय अनुमान ही हुआ था। किन्तु भारत में साम्यवाद अधिली समाजवादी के अधिल एक समता फलता रहा। अक्षै सामाजी अधिलधर्मिक विशेषाधिकार पर प्रहार करने का जो नाम अधिल में पूजावादी लोकतन्त्र और पूजावादी उपचार के अवस्था में किया था वह भारत में समाजवादी विचारों को करता था। यह पूजावादिता में भारतीय साम और ध्यान की भूमिवाद का ही अधिली नहीं देनी थी, बल्कि अधिलधर्म के उपचार तथा भूमि में अधिल अधिल में तीन धानी कमाई का भी विरोध करता था।

3. जब मई 1934 में कांग्रेस समाजवादी दल की स्थापना हुई तो साम्यवादिता के उस 'अधिली उपचार' का अक्षैय और अधिल निर्माण था।

4. अक्षैय देवता *Democratic Spectator & Student in Indian Socialism*

स्वतन्त्रता की प्राप्ति तथा राष्ट्रीयता की मूल्य के उपरांत कांग्रेस समाजवादी दल की विचार-धारा में उल्लेखनीय परिवर्तन हो गया। 1949 के पटना सम्मेलन में दल ने लोकतांत्रिक केन्द्रवाद के औपचारिक सिद्धांत के प्रति प्रतिबन्ध का परिहारा कर दिया। उसके स्थान पर उसने इस बात पर बल दिया कि साम्यवादी जन-आधार प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाय। इसका अर्थ था कि नेताओं की भुला करना छोड़कर दल के साधारण सदस्यों की एजेंडा पर बल दिया जाय। जन-आधार प्राप्त करने के लिए जन मापपथी विरोधी दलों के साथ, जो राष्ट्रवाद, समाजवाद और लोकतन्त्र में विश्वास करते थे, चुनाव समझौते, मेलमिलाप आदि करना तथा कभी-कभी उनके साथ विलीन होना भी आवश्यक था। इस समय के दल की नीति में एक सामान्य परिवर्तन दिखायी देने लगा। नरिन्दरजी काय, नगरी में कार्य तथा आन्दोलनात्मक कार्यप्रणाली के स्थान पर किसानों में रचनात्मक कार्य तथा सशस्त्रीय लड़ाई पर जोर दिया जाने लगा। 1920 में हुए साम्यवादी अंतरराष्ट्रीय के द्वितीय सम्मेलन के समय के मापपथी क्षेत्रों में पालिकावादी संगठन की जो प्रणाली प्रचलित थी उसका पटना सम्मेलन में साथ-साथ अन्त हो गया। 1949 के बाद समाजवादी दल ने सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओं के प्रति रचनात्मक दृष्टिकोण अपनाया है और लोकतांत्रिक कार्यप्रणाली का अनुसरण करने का प्रयत्न किया है। 1952 के दसवें सम्मेलन में दल को राष्ट्रीय मापपथी के सम्मेलन के सदस्यों में से नाम निर्देशित करने और चुनने की लोकतांत्रिक प्रणाली अपनायी गयी। 1953 में इलाहाबाद में यह निर्णय लिया गया कि चुनावों में निर्दोश लक्ष्यों के बचने के लिए विरोधी दलों के साथ चुनाव समझौते किये जायें। किन्तु समुक्त धर्मों तथा सम्मिलित सरकार का सम्बन्ध नहीं किया गया। 1953 में गया में जो नीति-सम्बन्धी बतलाव प्रकाशित किया गया उसमें दल के मुख्य व्यक्तित्वों को बनाये रखने के लिए यह निर्णय किया गया कि कांग्रेस, साम्यवाद तथा हिन्दू समाजवाद के दलों के साथ कोई समझौता अथवा तालमेल नहीं किया जायगा। 1956 में बरतोर में 1957 में जाने वाले चुनावों को ध्यान में रखते हुए इस कठोर नीति में कुछ परिवर्तन किया गया और विशिष्ट परिस्थितियों में चुनाव सम्बन्धी तालमेल करने की अनुमति दे दी गयी।

16 अक्टूबर, 1959 को इम्बई में प्रजा समाजवादी दल की राष्ट्रीय कार्यकारिणी की बैठक हुई और उसमें भारत के लिए भारत नूतनी कार्यक्रम निर्धारित किया गया। यह स्वीकार किया गया कि अपने अस्तित्व की दृष्टि से देश की सबसे बड़ी आवश्यकता है, और उसके लिए सेवा सहायरी समितियों का सम्बन्ध किया गया। इस बात की सिफारिश की गयी कि 'भूमि की व्यवस्था में भी निष्पक्षता की आवश्यकता है। इस बात से देश के जनता के मूल्य देने स्तर पर विचित्र किये जायें जिससे किसानों की सम्पत्ति पारिवारिक मिल सके।' बरतोर के कथ करण तथा दलित और निम्न वर्गों के जीवन स्तर को उठाने पर भी बल दिया गया। सरकार तथा लोकप्रशासन ने सेवा के सिफारिश की गयी कि कार्यप्रणाली को 'कार्यप्रणाली के दूर स्तर पर पुनर्किया जाय, अन्धकार-विरोधी कार्यप्रणाली स्थापित किये जायें जिसकी प्राप्ति (हेमिपल) उच्च आवश्यकता के सम्बन्ध में और प्रशासन का सम्बन्ध राम मेहता समिति के सुझावों के आधार पर बिने-डिबेन किया जाय। स्पष्ट है कि प्रजा समाजवादी दल कृषक तथा औद्योगिक उत्पादन की दृष्टि, 'सामाजिक विचार तथा लोकतांत्रिक विचारों का सम्बन्ध है।' उन्हीं साम्यवादों की विवेचना के प्रति जो प्रतिबन्ध और सम्बन्ध है उनकी निम्न की है। उसका आधारभूत राजनीतिक तथा आर्थिक सिद्धांत राष्ट्रवाद, जन विरोधतावाद, औद्योगिक विरोधी-रक्षण तथा निर्यात विकास का सम्बन्ध करता है।

प्रकरण 2

नरेन्द्रदेव

1 प्रस्तावना

आचार्य नरेन्द्रदेव (1889-1956) का जन्म विजय नगर 1946 (1889 ई.) में बर्हिस मुनस कमिटी को हुआ था और वर्ष 1956 में उनका देहांत हुआ। वे हिंदी तथा संस्कृत भाषा में ही कविता तथा लेखन करते थे। उन्होंने 'सिंह' तथा 'अर्थ' के अतिवादी राष्ट्रवाद के अनुयायी के रूप में अपना राजनीतिक जीवन आरम्भ किया। जब राष्ट्रीय न अन्धकार आन्दोलन आरम्भ किया तो नरेन्द्रदेव उसमें सम्मिलित हो गए। बाद में वे भी अधिक उनका भागी बिदा

नया बुनियादी चीज थी किन्तु इसके वास्तविक वे माधोजी के अहिंसा के सिद्धान्त को सचप रूप में मानने व लिट् संसार नहीं थे ।

3. नरेंद्रदेव के राजनीतिक विचार

इतिहास एवं निरन्तर गतिमान प्रवाह तथा सामाजिक घटनाक्रम है, इस बात की गह्रात्मक इतिहासिक चेतना के द्वारा ही समझा जा सकता है । किन्तु ये कोई वस्तु स्थिरता की अवस्था में नहीं है । नरेंद्रदेव को इतिहास की भौतिक व्याख्या में विश्वास था । एक मात्तावादी होने के नाते न मानते थे कि पूँजीवाद के विकास की सम्भावनाएँ समाप्त हो चुकी हैं ।⁹ एकाधिकार की बढ़ि में पूँजीवाद के प्रसारवादी शिक्षा के भी और भी अधिन मजबूत बना दिया है । मानव जाति की मुक्ति की स्थापक विमोचिका तथा सचरी से बचाने का एकात्म उपग्रह राजनीतिक समाजवाद की अंगीकार करना है । उन्होंने कहा, “मानव का बहना केवल यह था कि कोई विचार इतिहास के घम को समी प्रभावित कर सकता है जब वह वास्तविकता का रूप धारण कर ले और इस प्रकार स्वयं एक वस्तु बन जाय । उसने मानव तथा इन्ध के सम्बन्ध महत्व या कहीं विवेचन नहीं किया है । दोनों का समाज महत्व है । मनुष्य वस्तुगत परिस्थिति के बिना स्वतंत्र रूप से किसी भी वस्तु का निर्माण नहीं कर सकता, और न कोई वस्तुगत परिस्थिति तब तक मानव द्वारा बाधित फल उत्पन्न कर सकती है जब तक कि मनुष्य स्वयं उसका अधिक जाय न ले । उसने इस पर (इतिहासिक भौतिकवाद) का प्रयोग बचत इसलिए किया है जिनसे उसकी चेतना तथा ऐंगेल के प्रत्ययवाद के बीच, जो मनुष्यविरुद्धता की मता से अलग कर रहा तथा केवल एक निरन्तर प्रत्यय की अंगीकार करता है, फेद स्पष्ट हो जाय । मानव इस बात को स्वीकार करता है कि इतिहास के विकास में अनेक कारण बाध पड़ते हैं । मानव ने सर्वत्र यह स्वीकार किया कि जो वस्तु वस्तु किसी रूप वस्तु के उत्पन्न होती है उनमें स्वयं एक अवस्था कारण बन जाने की क्षमता की विद्यमान रहती है । अब यह बहना अन्ततः कि मानव ने ऐतिहासिक विकास का केवल एक ही कारण माना ।¹⁰ इस प्रकार नरेंद्रदेव ने यह माना कि उत्पादन की अवस्था पर और अधिक तरकीबों का भी प्रभाव पड़ता है । किन्तु नरेंद्रदेव ने नरेंद्रदेव की यह धारणा नहीं नहीं है कि मानव इन्ध तथा मानव दोनों का समाज महत्व होता था । वे इतिहास की मानववादी एकरावादी धारणा की वे काल की ईशवादी माना में आधार बन का प्रयत्न कर रहे हैं । मानव व अनुसार भौतिक वास्तविकता तथा चेतना, इन दोनों में है पहली वस्तु किन्तु यह प्रत्ययिक तथा आधारभूत है । नरेंद्रदेव की व्याख्या तो वस्तुतः मानव व वस्तु सिद्धान्त का समीपन है ।¹¹

नरेंद्रदेव पर बुधार्ति की प्रसिद्ध पुस्तक ‘हिस्टोरीजल मैथिथिजलिज्म’ (ऐतिहासिक भौतिकवाद) का प्रभाव पड़ा था । उन्होंने बुधार्ति की मर्जी की बमोली तथा विधानन के सिद्धान्त को स्वीकार किया । उसकी अंतिम वे भी मानते थे कि समाज में पूँजीपतिता तथा सचराज के अनिहित अव दग भी होते हैं, अब मध्य दग, सचमय दग तथा मिथित दग ।¹² लोकशासिक समाजवाद के मन्तव्य होने के नाते नरेंद्रदेव राज्य व नीतयवादी हस्तक्षेप के विरुद्ध थे । इसलिए उनका प्रयत्न था कि मजदूर का एक दम के रूप में उद्योग के प्रत्यय में सामना होना चाहिए । यद्यपि उनका माधोजी में प्रसिद्ध सम्बन्ध था, फिर भी उन्होंने वन मन्तव्य के सिद्धान्त का प्रतिज्ञान नहीं किया । उन्होंने कहा, “दम में समाज के विभिन्न वर्गों के बीच विवेकीकरण की प्रविज्ञा अधिकाधिक दृढ बलि व बाध कर रही है जिसने परिणामस्वरूप उच्च तथा मध्य वर्गों के अधिकाधिक अय राष्ट्रीय आधारभूत में वृत्त होना जा रहे हैं । अब वर्गों का निषाध हो रहा है और व वस्तुतः जनमनुष्य न अलग हो रहे हैं । हमारा मन्य है कि उस एका के लिए विचार बाई आधार नहीं है,

9 वहा, पृ 138

10 वहा, पृ 20-21

11 नरेंद्रदेव काव्य व समाजवादी चिन्तन व : ‘साप्तीकता और कालवर्षा’, पृ 307 ।

12 वही, पृ 417-19

पीठ के साथ सम्बन्ध रहा। 1934 में उन्होंने अग्रिम भारतीय राष्ट्रीय समाजवादी दल के उन्मादक सम्मेलन का समापनस्थ किया। उनकी प्रमुख समाजवादी बुद्धिजीविया तथा प्रचारका में गणना थी। उनकी भारत के विमान आन्दोलन में भी बढ़ती रुचि थी। वे अग्रिम भारतीय चिन्तन तथा के संस्थापकों में से थे। दो बार वे दश दश के सम्बन्ध विरहित हुए। 1936 में सत्यनन्द बापट के साथ जवाहरलाल नेहरू ने उन्हें राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं में स्थान दिया। वे अन्तर्गत एक अग्रिम भारतीय कार्यकर्ता मानिनी की सामन्तारिणी गतिविधि के सहकर्म रहे। वे इस पक्ष में नहीं थे कि समाजवादी राष्ट्रीय के कृषक हों, किन्तु दल के निष्पक्ष के सामने उन्हें चुनना पड़ा।⁵ 1947 में राष्ट्रीय की कृषक शाना के लिए नरेंद्रदेव का नाम प्रस्तावित गया, किन्तु सम्भवतः भारत काई पक्ष ने उनका विरोध किया। नरेंद्रदेव ने समाजवादी दल तथा कृषक मजदूर प्रजा पार्टी के वित्त का, जो दिसम्बर 1952 में सम्भव हुआ था, विरोध किया था।

2 नरेंद्रदेव के चिन्तन का सामाजिक आधार

नरेंद्रदेव बौद्ध धर्म के प्रभावित पण्डित थे। उन्हें संस्कृत तथा बाली का ज्ञान था। संस्कृत के विद्वानों ने बौद्ध धर्म और दशम पर जो ध्यान दिया था उससे नरेंद्रदेव का अनिष्ट प्रभाव था। किन्तु धर्मशास्त्र से वे बौद्ध नहीं थे। फिर भी सम्भवतः उन्हें बौद्ध चिन्तन की सीमांतता विरोधी प्रवृत्ति से सहानुभूति थी। उनका विचार था कि आस्तिकता भारतीय सभ्यता का सार नहीं है। उनका मूल तत्व यह धारणा है कि विश्व नैतिक नियमों द्वारा शासित होता है।⁶

नरेंद्रदेव तथा जवाहरलाल नेहरू का विचारधारा की दृष्टि से मानववादी थे, यद्यपि राष्ट्रीय के साथ उनका पण्डित सम्बन्ध था और राष्ट्रीय की उन दोनों पर व्यक्तिगत सहृदयता थी। नरेंद्रदेव ने इन्द्रात्मक धार्मिकवाद के दशन की विचार धारणा नहीं की, फिर भी उन्होंने उनका सामान्य सिद्धान्त का विश्लेषण किया। उनका कहना था कि आस्तिकता अस्तित्व में है, किन्तु इन्द्रात्मक पद्धति सामान्य चिन्तन की समस्त समस्त तथा प्रतिकूल रूप में समझने का प्रयास करती है।⁷ वे इन्द्रात्मक सिद्धान्त तथा पद्धति की स्वीकार करते थे, किन्तु इससे उन्हें यह कि वे मानववादी के रूप में नैतिकवाद के समस्त दशन की अस्वीकार करने के लिए उद्यत थे। फिर भी वे मानववाद की नैतिकवादी एकलवाद के रूप में मानते थे और धर्म की सामाजिकता का स्वीकार करते थे जिसका अर्थ है कि विश्व एक प्रक्रिया है। नरेंद्रदेव सामाजिक समाजवादी होने का दावा करते थे। उनका कहना था "हमारे सामने का काम है उसे हम सभी द्वारा कर सकते हैं जब हम समाजवाद के सिद्धान्तों और उद्देश्यों को हृदयमय रूप से तथा परिस्थितियों के सहित ज्ञान के लिए मानव द्वारा प्रतिपादित इन्द्रात्मक पद्धति का समर्थन और उस क्षमता का उपयोग करना का प्रयास करें। इसे वैज्ञानिक समाजवाद का अर्थ है और इसे स्वीकार करना चाहिए, और प्रत्येक समाजवाद अथवा सामाजिक सुधारवाद के अर्थ का अर्थ करना चाहिए। विद्यमान सामाजिक व्यवस्था का नैतिकता का अर्थ है परिस्थितियों की आवश्यकता को पूरा कर सकता है। हमारे पास बिल्कुल भी नहीं है जब तक कि हम नहीं जान सकते हैं।"⁸

नरेंद्रदेव वैज्ञानिक समाजवादी थे। उन्हें नैतिक सुधारों की प्राथमिकता में विरोध था। वे समाजवाद का एक सामाजिक आधारभूत भी मानते थे। उन्होंने उन्हें समाजवाद के आधारवादी आधार पर मान लिया। उन्होंने किन्तु समाज बौद्ध चिन्तन का समर्थन अस्वीकार किया था, जिसने एकलवाद कृष्ण की अविश्वसनीयता के अन्तर्गत अग्रिम करने का दावा किया। उन्होंने मान की व्यवस्थावादी बौद्धों का स्वीकार करने से स्पष्ट अलग किया। उनकी दृष्टि में साथ सामाजिक

5 किन्तु नरेंद्रदेव ने कहा कि अगस्त 1947 तक राष्ट्रीय एक उन्मादक पार्टी थी जो अब नहीं करने का अर्थ है और एक पार्टी अब नहीं है। उन्होंने नरेंद्रदेव की उन्मादकी तथा नरेंद्रदेव का उन्मादकी की अस्वीकारता का। "सामाजिक और समाजवाद" पृ. 317-19

6 यही, पृ. 334

7 नरेंद्रदेव, *Socialism & National Revolution*, पृ. 148 (प्रथम प्रकाशन, अक्टूबर 1946)।

8 यही पृ. 24-25

तथा बुनियादी चीजें भी किन्तु दूसरे सामन्त के चापीसी के अहिंसा के सिद्धांत का समर्थ रूप में मानने का लिए तैयार नहीं थे।

3. नरेंद्रदेव के राजनीतिक विचार

इतिहास एक निरन्तर चलिराया प्रवाह तथा सामाजिक घटनाक्रम है, इस बात का समग्रतया ऐतिहासिक चरित्र के द्वारा ही समझा जा सकता है। विद्वत् व वाई वस्तु स्थिरता की अवस्था में नहीं है। नरेंद्रदेव की इतिहास की ऐतिहासिक व्याख्या में विद्वान्ता था। एक मानववादी होने के नाते व मानते थे कि पूँजीवाद के विकास की साम्यवादार्थ समाप्त हो चुकी है।⁹ अन्तिमतर की चरित्र के पूँजीवाद के प्रसारवादी विचारों की ओर भी अधिक समर्पण बना दिया है। मानने जाति की मुक्त की स्थापना विभीषित तथा गवर्नर। न समझने का समझाव उपर्युक्त समाजवाद की अन्तिमतर करना है। उद्देश्य रहा, "मानव का कहना केवल यह था कि कोई विचार इतिहास के वक्त की सभी अवस्थित कर सकता है जब यह साम्यवाद का रूप धारण कर ले और इस प्रकार स्वयं एक वस्तु बन जाय। उक्त मानव तथा इस के स्थापना महत्व का पूरी विवेचन नहीं किया है। दोला का समझाव महत्व है। मनुष्य वस्तुगत परिस्थिति के जिना स्वतन्त्र रूप से किसी की वस्तु का निर्माण नहीं कर सकता, और न कोई वस्तुगत परिस्थिति तब तक मानव द्वारा वांछित फल उत्पन्न कर सकती है जब तक कि मनुष्य स्वयं उक्त मनुष्य भाग न ले। उम्मेद इस चरित्र (इतिहास) भीतिवाद) का अवधि वक्त इसलिये किया है जिसमें उम्मेदी चरित्र तथा ह्येन के अवधिवाद के बीच, या आनुमतिकजनन की मता न इनकार करता तथा केवल एक विवेक प्रथम की अन्तिमतर करता है, जेद स्पष्ट हो जाय। मानव इस बात की स्वीकार करता है कि इतिहास के विकास में अन्तक कारण काम करता है। मानव न सदैव यह स्वीकार किया कि जो वस्तु वस्तु किसी अन्य वस्तु से धुपन होती है उक्त वक्त एक वक्त में कारण बन जाने की समझा भी विवेकमान रहती है। अतः यह कहना समझ है कि मानव न ऐतिहासिक विकास का केवल एक ही कारण माना।¹⁰ इस प्रकार नरेंद्रदेव न यह माना कि उत्साहन की अवस्था पर नर-आधिपत्य तथा का की प्रभाव पड़ता है। किन्तु मेर विचार में नरेंद्रदेव की यह धारणा सही नहीं है कि मानव ह्येन तथा मानव दोनों की समान महत्व होता था। वे इतिहास की मानववादी एकरववादी धारणा को दे बात की ईतवादी मान्य न धारणा करने का प्रयत्न कर रहे हैं। मान्य के अनुसार ऐतिहासिक साम्यवाद तथा केतना, इन दोनों में से पहली वस्तु निम्न-है साम्यवाद तथा आधारभूत है। नरेंद्रदेव की धारणा ही वस्तुतः मानव के मूल सिद्धांत का समर्थन है।¹¹

नरेंद्रदेव पर बुधार्थि की प्रसिद्ध पुस्तक 'हिस्टोरियनल मीथिपलिटिज्म' (ऐतिहासिक भीतिवाद) का प्रभाव पड़ा था। उद्देश्य बुधार्थि की वक्ता की समझी तथा विचारन के सिद्धांत की स्वीकार किया। उम्मेदी भाति के जो मानव के कि समझ व पूँजीपतिपति तथा मनुष्य के ऐतिहासिक अवधि वक्त भी होता है, अतः समझ वक्त, समझन वक्त तथा विभिन्न वक्त।¹² लोन्गार्थि वक्त समाजवाद के समझन होने के नाम नरेंद्रदेव समझ व भीतरवाही ह्येनसेन के विवेक में। इसलिये उनका प्रस्ताव था कि मनुष्य का एक वक्त न रूप में उम्मेदी व प्रभाव न समझ होता चाहिए। वक्त उनका चापीसी व ऐतिहासिक समझ था, फिर भी उद्देश्य वक्त समझ व सिद्धांत का परिचाय नहीं किया। उद्देश्य रहा, "ऐत के समझ के विभिन्न वक्तों के बीच विवेकीकरण की प्रक्रिया अधिकाधिक इस वक्त में काम कर रही है जिसके परिणामस्वरूप उक्त तथा समझ वक्तों के अधिकाधिक अतः राष्ट्रीय आन्दोलन व रूपन होत आ रहे हैं। नये वक्तों का विभाजन हो रहा है और के बहुतरजन जनसमुदाय में अतः हो रहे हैं। एकारा कलव है कि अतः एवता के लिए विवेक कोई आधार नहीं है,

9 वही पृ 138

10 वही, पृ 20 21

11 नरेंद्रदेव मानव की मानववादी मान्य में। 'साम्यवाद और समाजवाद', पृ 307।

12 वही पृ 417 19

विक्षाप करना छोड़ दे और उन तरीका को बूझ निवाले जिनने राष्ट्रीय मध्य, या अब तब प्रयत्न मध्य का ना आंदोलन रखा है, अधिक सीधे बनाया जा सके। मेरी भावना है कि इसका एकमात्र उपाय यह है कि जनसमुदाय को अधिक आधार तथा नव-चेतना की बुनियाद पर स्थापित कर आंदोलन का अधिक व्यापक रूप प्रदान किया जाए। प्रचार तथा संगठन ही ऐसे दो साधन हैं जिनके द्वारा किसी वय को आत्मसम्भेद बनाया जा सकता है।¹³ नरेन्द्रदेव ने भारत की सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओं को वय-मध्य के दृष्टिकोण से समझने का प्रयत्न किया। वे इस पक्ष में प कि निम्न मध्य वर्गों तथा सामान्य जनता के बीच संबंध सम्बन्ध कायम हिंदे जायें। उनका कहना था कि साधारण जनसमुदाय अनुसूचनीय अधिकारी तथा नीच प्रभुत्व के सामान्य शिक्षाओं व आकर्षण नहीं हो सकता। उससे कम चेतना सभी उत्पन्न हो सकती है जबकि उससे अधिक शिक्षा का नामा न बात की जाय।¹⁴ समाजवादी भाषित ने सम्बन्ध में नरेन्द्रदेव लेखन के विचार के समर्थन थे। लेखन के अनुसार यह अनिवार्य नहीं है कि समाजवादी भाषित पहले उस देश में ही या औद्योगिक दृष्टि से पहले अधिक विकसित है, वह तो उस देश में होगी 'जहाँ सामाज्यवादी प्रवृत्तता सबसे दुबल है।'¹⁵ नरेन्द्रदेव अधिक वय को सामाज्य विरोधी मध्य का हस्तगत (असमाप्ति दुर्गम) तथा किसानों और बुद्धिजीवियों को उसका सहायक मानते थे।¹⁶ उन्हें कीर सुभाषचंद और सवि भवनवाद से सहानुभूति नहीं थी।¹⁷ उनका कहना था कि जनसमुदाय का निमज्जील बनाने तथा देश की लोकतन्त्र के लिए तैयार करने का एकमात्र उपाय यह है कि किसी सामंजस्यकारी आर्थिक विचारधारा को अंगीकार करके राष्ट्रीय सरकार का समाप्तीकरण किया जाय।¹⁸

नरेन्द्रदेव ने वय में समाजवादी आंदोलन तथा राष्ट्रीय आंदोलन के बीच सम्बन्ध स्थापित करते का प्रयत्न किया।¹⁹ उस समय भारत पूँजीवादी सत्ताधिकार भाषित के दौर में गुजर रहा था। नरेन्द्रदेव ने बहुत मजबूती दृष्टिकोण नहीं अपनाया और न उन्होंने देश को विदेशी साम्राज्यवाद के जुए से मुक्त करने के लिए निम्नमध्यवर्गीय जनता के साथ मिलकर लड़ने का इन्कार किया। उनकी मानना थी कि समाजवादियों को राष्ट्रीय मुक्ति-लड़ाई में सम्मिलित होना चाहिए। उनका कहना था कि यदि समाजवादियों ने अपने को देश में चल रहे राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य लड़ने में नृपण रखा तो उनका यह काम आसम्भल्य करने में सक्षम होगा। वे स्वाधीनता-लड़ाई को सबसे अधिक आवश्यक और महत्वपूर्ण मानते थे। उन्होंने समाजवादियों का यह मानने की सलाह दी कि एक औपनिवेशिक देश के लिए राजनीतिक स्वतन्त्रता 'समाजवाद के साथ में एक अनछिद्र्य अवस्था है।'²⁰ नरेन्द्रदेव ने कांग्रेस के अगस्त 1942 के प्रस्ताव का समर्थन किया, और कहा कि यह प्रस्ताव स्वतन्त्रता के सामाजिक पहलू की व्याख्या करता है।²¹ यह केही तथा कांग्रेसों की सम्पूर्ण सक्ति को अधिक वय में सहित करण चाहता है। उनकी दृष्टि में अगस्त प्रस्ताव का उद्देश्य जनसाधारण को सर्वोच्चता स्थापित करण का। नरेन्द्रदेव जनसमुदाय की एतता के समर्थन थे। वे चाहते थे कि जनसमुदाय की नातिकारी भावना को दूर किया जाय, और उन्होंने स्वयं जनता का नातिकारी काजवाही के लिए उत्तेजित करने के लिए वय की किया।²² उनका विचार था कि सामाजिक तथा आर्थिक मुक्ति के लिए काम को परिश्रमी पुरीय में अखण्डवी सत्तावादी ने पूँजीवादियों ने किया था उसे

13 नरेन्द्रदेव का 17 मई, 1934 को बहना में अधिवेशन भारतीय समाजवादी दल के सम्मेलन में किया गया अन्य सारा लक्षण। *Socialism & National Revolution* पृ. 67

14 वही, पृ. 8

15 वही, पृ. 22, 23

16 वही।

17 वही, पृ. 28

18 वही, पृ. 29, 77

19 वही, पृ. 4

20 वही।

21 वही, पृ. 167

22 वही, पृ. 149

भारत में घोषित जनता के उपद्रव के द्वारा सम्पादित करना होना।¹ उनकी दृष्टि में भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के आधार की स्थापन बनाने के लिए जनता में रचनात्मक काम करना आवश्यक था।² भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद देशी राजाशाह, पूँजीपतियों तथा सामन्तों की महामता से अपनी जगह की मजबूत करने का प्रयत्न कर रहा था। इस प्रकार शोषण की व्यवस्था के स्तरमा की हड़ बनाना था रहा था। पूँजीपतियों ने भी जमींदारों के साथ समझौता कर लिया था। प्रतिनास्तिकारी पक्षियों के इन कदम-पदों ने घोषित जनता के काम का भी कष्टित बना दिया था। उसी देश की राजनीतिक तथा आर्थिक दानों ही प्रकार की मुक्ति के लिए समय करना था। ऐसी स्थिति में औद्योगिक मजदूरों, किसानों तथा विभिन्न वर्गों की संयुक्त मांगों आवश्यक ही गया था। इसी प्रकार आर्थिक तथा राजनीतिक समय बनाने की अधिक आशा के साथ फैलाया जा सकता था। इंग्लिश नरेन्द्रदेव ने देश के स्वाधीनता संग्राम के आधार की मजबूत बनाने पर बल दिया। उन्हें आशा थी कि द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरान्त भारत में जन-जनताई होगी।³

नरेंद्रदेव भारत के रूप में पुनर्निर्माण में विद्यमान करते थे। वे इस पक्ष में थे कि किसानों के आर्थिक अधिकारों की प्राप्ति के लिए किसान संगठनों की संघटित किया जाय। उनका आग्रह था कि सभी प्रकार के किसानों की पक्षियों को एक जुट किया जाय। उन्होंने ग्राम विद्यालय के लिए आवश्यक अधिकारों का समयन किया। वे जनसमुदाय की शिक्षा की प्रगति की आवश्यकता पर मानते थे।⁴ भारत में किसानों तथा वैदिक मजदूरों की समस्याएँ बड़ी बिगड़ान थी। जो जनसमुदाय श्रेणी-श्रेणी में लगे हुए थे उनका समयन करनी के बिना न किसी प्रकार उद्धार करना आवश्यक था। इसके लिए देशी जीवन के पुनर्निर्माण की एक नास्तिकारी योजना की आवश्यकता थी। नरेंद्रदेव स्थापित की इस बात की दृष्टि सहज थे कि किसानों के विद्यालय समुदाय को समाजवादी विचारों का अनुपाणित करना आवश्यक है।⁵ बहुसंख्यक किसानों की देश के समाजवादी पुनर्निर्माण की योजना के सम्पादन करने के लिए सहकारी समितियों की संघटित करना और उन्हें मुक्त बनाना अति आवश्यक था। नरेंद्रदेव ने दृष्टि की सहकारी आधार पर संघटित करने का समयन किया। उनका आग्रह था कि यह नियत कर दिने जानें और किसानों के साथ के लिए सबसे स्थान पर धन की व्यवस्था की जाय।⁶ भूमि व्यवस्था का नास्तिकारी आधार करने के लिए आवश्यक था कि भारत में किसानों तथा राज्य के बीच की बहुत से विचारों के उनका उद्घाटन कर दिया जाय। किन्तु नरेंद्रदेव राष्ट्रीय समस्याओं के किसानों के सबसे दृष्टिकोण से देखने के लिए समयन करती थे। उन्होंने 'विचारवाद' की निन्दा की, उसे एक प्रकार का देशी साम्यवाद बताया जो किसानों की विचारधारा को आवश्यकता से अधिक महत्व देता था। इस बात का अर्थ था कि 'विचारवाद' के बड़ी दहात तथा नगरों के बीच द्वितीयक समय न उत्पन्न हो जाय। नरेंद्रदेव इस पक्ष में थे कि गाँव में सहकारी व्यवस्था का समयन करने से शोषण-प्रणाली समाप्त की जाय। जनता के विचारों को दूर करने तथा उस जीवन आदर्शों और आकांक्षाओं से अनुपाणित करने के लिए नरेंद्रदेव ने इस बात का समयन किया कि भारत के गाँव में किसी न किसी रूप में नवीन जीवन आन्दोलन प्रारम्भ किया जाय।⁷

नरेंद्रदेव पर जाय वीरस के 'आम हलाल' के अमरुपवादी निन्दा का प्रभाव पड़ा था। उन्हें विश्वास था कि आम हलाल गाँवनात्मक विचारधारात्मक तथा साम्यवादी होगा ही दृष्टिमा

23 श्री. १ 68 69

24 श्री. १ 87

25 श्री. १ 149

26 श्री. १ 39

27 श्री. १ 87

28 श्री. १ 161

29 श्री. १ 54

30 श्री. १ 183

से सामंजस्य है। उसका विचार था कि आम हितों के वा परिणाम होंगे। प्रथम, उसने देश का अर्ध-स्वतन्त्रता प्राप्त करवा दिया था, और सम्पूर्ण आधिकारिक क्षेत्रों के रूप में जाना जा रहा था। चौथम देश को एक राष्ट्र बना दिया था। द्वितीय, आम हितों के वा सफलतापूर्वक समर्थन करने के वास्तविक जनता में प्रचलित धर्म का उदय होना था सामाजिक जाति की भूमिका का नाम करनी। उन्होंने कहा, "हम के विपरीत भारत में अभी तक हस्तगत के अन्तर्गत अर्थ का जनसमुदाय की वा वाही के लिए संकेत के रूप में प्रयुक्त नहीं किया गया है, किन्तु अन्तिम अर्थ अन्तिम राजनीतिक प्रणाली की सभी वा सफल है अन्तिम वह राष्ट्रीय सभ्य में आम हितों का प्रचार करने निम्न मध्यम को हस्तगत की जातिवादी सम्भावनाओं से अन्तर्गत करा दे।"³¹

राजनीति में नरेंद्रदेव ऐतिहासिकवादी³² राष्ट्रवाद के समर्थक थे। वे मुत्तकारवादी नहीं थे।³³ उनका ऐतिहासिक आधिकारिक स्वाभाविक के प्रति उदासीनता के उत्पन्न नहीं हुआ था, बल्कि उनका आधार उनका वह विचार था कि समतापूर्ण तथा लोकतांत्रिक विचारों की सुझावित सामाजिक निर्माण के माध्यम नहीं होना चाहिए।

4 विचार

नरेंद्रदेव ने समाजवादी विचारों पर एक पुस्तक तथा अनेक लेख लिखे हैं। उनका राजनीतिक चिन्ता बहुत धार्मिक अथवा आध्यात्मिक नहीं है, किन्तु वे अत्यन्त ही प्रगतिशील सभ्य हैं।³⁴ इससे स्पष्ट है कि भारतीय समाजवादी वास्तविकी सुवर्णमय, सुख, आनन्दमय, हिंस्र, कुत्सा और मुक्तता की सम्पूर्ण चिन्ताओं से परिचित थे। नरेंद्रदेव की चिन्ताओं का स्वाभाविक उद्देश्य है अन्तिम उद्देश्य की कुछ शिक्षा या उनके मूल में समाजवादी आदर्शों तथा विचारों आदर्शों का प्रचार करने का स्पष्ट चिन्तन विद्यमान था।

नरेंद्रदेव ने अपनी पुस्तक 'राष्ट्रवाद तथा सामाजिक जाति' में राष्ट्रीय सभ्य के आधार की विस्तृत करने का प्रयत्न किया है। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि जनसमुदाय का सभ्य में प्रयुक्त करने के लिए आधिकारिक विचारधारा की आवश्यकता है। प्रथम वह मान लिया गया है कि समाजवादी जाति का अर्थ अन्तर्गत राष्ट्रीय होता है और राष्ट्रवाद समाज का आवश्यक अंग नहीं है। समाजवादी यह भी कहा जाता है कि समाजवादी राष्ट्रवाद के पुनर्जाति वास्तविक अर्थ में उद्भूत नहीं है। किन्तु भारत के समाजवादी सभ्यता के सभ्य में नरेंद्रदेव तथा देश के अन्य समाजवादी नेताओं ने राष्ट्रीय सुनिश्चित समाज तथा समाजों की विभिन्न प्रकार की वास्तविकी के आदर्शों का मिलान का प्रयत्न किया। एक समाजवादी सिद्धान्तकार के रूप में नरेंद्रदेव पर भारत के वा सभ्य के सिद्धान्त का अधिक प्रभाव पड़ा था, उन्हें लेखन के माध्यम से देश के द्वारा धार्मिक पर अधिकार करने का सिद्धान्त प्रचार नहीं था।

नरेंद्रदेव ने समाजवाद के आदर्शवादी आधारों को अधिक स्पष्ट किया। वे प्रथम बार के इस बात को स्वीकार करते थे कि भारत आधुनिक युग का अन्तिम युग था, वह आदर्शवादी अन्तर्गत ले अन्तिम या और धार्मिक तथा सभ्य आदर्शों की सुनिश्चित के द्वारा प्रकार के वास्तविकी का सहन करने के लिए उत्पन्न था। मानववाद से सम्बन्ध होने के कारण समाजवाद ने अन्तिम युग में एक प्रकार की जातिवादी अन्तर्गत का रूप धारण कर लिया है, अन्तिम अन्तिम अन्तिम की सभी वास्तविकी अन्तिम प्रचार की है। नरेंद्रदेव ने अन्तिम अन्तिम कहा कि समाजवाद की विचारधारा के एक अन्तिम समाज का निर्माण करना सम्भव है।

31 पृष्ठ 70

32 नरेंद्रदेव, भारतीयता और समाजवाद, पृष्ठ 315

33 पृष्ठ 544

34 *Atomism and Social Revolution* पृष्ठ 78-84 पर नरेंद्रदेव ने 1935 के भारतीय समाज अन्तिम विचारों का समाजवादी दृष्टि के समीक्षा की है।

35 नरेंद्रदेव, 'समाजवाद' का मुद्राधार वास्तविकता, 'राष्ट्रीयता और समाजवाद', पृष्ठ 451-56

प्रकरण 3

जयप्रकाश नारायण

1 प्रस्तावना

जयप्रकाश नारायण का जन्म 1902 में हुआ था। उन्होंने मा-बीबायी अल्लहपुगी तथा तम-बद्वीटा के दलन के अनुयायी के रूप में अपना जीवन आरम्भ किया। जब वे अमेरिका में विद्याध्य-यन कर रहे थे, उसी समय पूर्वी यूरोप के बुद्धिजीवियों से उनका सम्पर्क हुआ और चरित्ररूप के मात्सवादी बन गये। उन पर एम. एन. राय की तीव्र रचनाओं का भी प्रभाव पड़ा, किन्तु मात्स-वादी होने पर भी वे एन्ही पार्टी के समर्थक नहीं थे। एन्ही की बौलशेविक पार्टी ने जो कुर कुराप लिये वे उससे उनकी नैतिक चेतना को भारी आपात पहुँचा था। यन्तु दलक म उहोन साम्यवादिका के साथ समुक्त जन मोर्चे का समर्थन किया था, किन्तु 1940 में उन्होंने साम्यवादियों के साथ समुक्त मोर्चे की मरतना की, और तब से वे साम्यवाद से सत्तावादी कठोर नियन्त्रण के प्रमुख आलोचक बने हुए हैं।³⁶ पिछले दिनों में तिब्रत के दलन को देखकर उन्होंने चीन के साम्यवादिका की उद्धतता तथा सिद्धांतपूर्ण साम्राज्यवाद की बहु आलोचना और निंदा की है।

जयप्रकाश नारायण भारतीय समाजवाद के प्रमुख नेता, प्रचारक तथा प्रवक्ता रहे थे। उन्होंने 1934 में भारतीय कांग्रेस समाजवादी दल की स्थापना में अभिन्नम किया था, और दल तथा उसके कामचम की लोकप्रिय बनाने के काम में अत्यन्त प्रतिभा का परिचय दिया था।

जयप्रकाश नारायण एक महान् राष्ट्रीय सफलकर्ता रहे हैं। 1942 के भारतीय आन्दोलन में उन्होंने बीबीसित स्थिति प्राप्त कर ली। वे हजारीधम केन्द्रीय कार्यकार के माय विकसित और स्थायीता सन्धान का सचठन किया। किन्तु वे पुन विरतार पर लिय गये और कैल में दाल दिने गये। अग्रेल 1946 में उन्हें मुक्त कर दिया गया। 1946 में मा-बीबी ने कांग्रेस की अध्यक्षता के लिए उनका नाम प्रस्तावित किया किन्तु कांग्रेस की कार्यकारिणी ने उसे स्वीकार नहीं किया। उन्होंने कैबिनिट मिशन योजना का विरोध किया, क्योंकि 1946 में कांग्रेस समाजवादी दल जन पार्टी की बात बीच रहा था। उन्होंने भविष्यवाणी की कि यदि इसीसक को सरकार न भारतीय सविधान सभा द्वारा निर्मित सविधान की स्वीकार नहीं किया तो जनपति उलट गयेगी।

1953 में जवाहरलाल नेहरू तथा जयप्रकाश नारायण के बीच इस समस्या पर बातचीत हुई कि राष्ट्रीय पुनर्निर्माण तथा विकास के क्षेत्रों में कांग्रेस तथा समाजवादी दल के बीच सह-योग किस प्रकार स्थापित किया जाय। किन्तु कैबूल के सम्मेलन में समाजवादी नेताओं ने समझौते की बातचीत को अस्वीकार कर दिया।

मा-बीबी की मृत्यु के उपरांत जयप्रकाश नारायण का राजनीतिक व्यक्तित्व में महारा कमा-तेर हो गया। उन्हें संस्थापक तथा आहत चरित्रकनी की उपदेशक म तादह होने तथा और वे साम्य-वैरिण परिवर्तन के उक्त सिद्धांत का मानने लगे किंतु पर मा-बीबी म चल दिया था। 1954 में उन्होंने प्रयोग की राष्ट्रीय कार्यकारिणी स त्यागन दे दिया और जाये चलकर दलगत राजनीति में अपना सम्पन्न चिन्चिद कर दिया। 1954 में उन्होंने अपने को एन. बी.नदानी के रूप में सर्वोप आन्दोलन के लिए समर्पित कर दिया।

2 जयप्रकाश नारायण के राजनीतिक विचार

एन. समाजवादी मनोषी के रूप में जयप्रकाश नारायण की शक्ति दल माल में थी कि उन्हें राजनीति के आधिक आधार का स्पष्ट ज्ञान था। महत्समा मा-बी उन्हें समाजवाद का सचक मठ भारतीय सिद्धांत मानते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि उन पर ब्रिटन तथा अमेरिका के समाजवादी विचारों का प्रभाव पड़ा है। वे समाजवाद को सामाजिक-आर्थिक पुनर्निर्माण का एक सम्पूर्ण सिद्धांत

36. देखिये जयप्रकाश नारायण का कार्यकारिणी को लिखा गया पत्र, नवम्बर 18, 1956 को भारतवा समाचार पत्रों में प्रकाशित।

मानते थे। उनमें अनुसार वह वैयक्तिक आचारसूत्रि के सिद्धांत से भी बहुत दूरी थीज है।³⁷ उन्होंने मनुष्य की वैयक्तिक असमानता के सिद्धांत का खण्डन किया। कोई भी समझदार व्यक्ति इस बात का समर्थन नहीं करेगा कि सब मनुष्य अपनी अवशिष्टता समताता में समान हैं। कोई भी समाजवादी इस धार्मिक तथा सुलझापूर्ण अथ म समानता को स्वीकार नहीं करेगा। समाजवादी होने के नाते अवप्रकाश नारायण ने इस बात को स्पष्ट किया है कि सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्रों में व्याप्त यह मानता का मुख्य कारण यह है कि कुछ लोगों का उत्पादन में साधना पर बहुत अधिक नियंत्रण है और बहुसंख्यक लोग उनसे वंचित हैं। इसलिए उनका आग्रह है कि समाज उही व्यवस्था करें जिसमें मनुष्य की शक्ति और समताता को निष्पन्न करने वाली सर्वाधिक बाधाएँ दूर हो सकें। वे सामाजिक तथा आर्थिक समताता के समर्थन हैं, उनका कहना यह नहीं है कि सब मनुष्यों का मानसिक स्तर समान हो। समाजवाद व्यापक निर्धारण का सिद्धांत तथा वायव्यवादी है। उसमें समाज ने समय-समयों के प्राविधिक पुनर्निर्माण की धारणा निहित है। उनका उद्देश्य सम्पूर्ण समाज का 'सामंजस' रूप तथा सुलझावुति विकसित' है।³⁸

समाजवाद की स्थापना उत्पादन के साधनों का समाजीकरण करने की जा सकती है।³⁹ समाजवाद ही विद्यालय जनसमुदाय के आर्थिक शोषण की दूर प्रक्रिया का अंत कर सकता है।⁴⁰ अवप्रकाश नारायण ने बराबरी वांछ के मूल अधिकारों के सम्बंधित प्रस्ताव की मतांशता की थी। वे भूमिद्वर की घटान, अथ वः कम करने तथा उद्योगों के राष्ट्रीयकरण के पक्ष में थे। भारत की मूल आर्थिक तथा सामाजिक समस्या यह थी कि जनता के जीवन का अंत कैसे किया जाय। यह तभी सम्भव था जबकि जनता अपने प्रयत्नों से राजनीतिक तथा आर्थिक क्षेत्रों पर नियंत्रण स्थापित कर लेती। इसके लिए आवश्यक था कि राष्ट्रीयवादी तथा सामाजिक प्रवृत्तिवादियों के कायमालय के बीच सामंजस्य स्थापित किया जाय। 1934 में अवप्रकाश नारायण ने अनुभव किया कि समाज ही भारत की स्वाधीनता का आधार बन सकता है। 1940 में उन्होंने राजनयिक कार्य में एक प्रस्ताव रखा जिसका आशय था कि बहुत उत्पादन करवाना पर सांस्कृतिक स्वाधिराज तथा नियंत्रण स्थापित किया जाय। उन्होंने आग्रह किया कि भारी परिवहन, उद्योगराजी, लाल तथा भारी उद्योगों का राष्ट्रीयकरण किया जाय।

अवप्रकाश नारायण ने अनुसार समाजवाद उन प्रमुख मूल्यों के विरुद्ध नहीं है जिसका भारतीय संस्कृति ने शोषण किया।⁴¹ भारतीय संस्कृति में इस मादक की सर्वोपरि माना है कि व्यक्ति को निम्नकोटि की वासनाओं तथा परिणत की वरि है मुक्ति प्राप्त करनी चाहिए। अपने इस बात का कभी समर्थन नहीं किया कि मनुष्य तुल्य वास्तविकता तथा सर्वोपर अहं की तुष्ट करने में ही उत्तीर्ण रहे। मनुष्यों का निम्न वादकर उपमाग करण भारतीय संस्कृति का प्रमुख अंगत्त रहा है, इसलिए यह आरोप उपहासपूर्ण है कि समाजवाद का सिद्धांत वचिबन से लिया गया है। हमें स्पष्ट पड़े कि समाजवाद ने व्यवस्थित आर्थिक सिद्धांत का निरूपण परिवर्तन में हुआ किन्तु उसका मूल आवक बाद भारतीय संस्कृति का भी अंश है।

अवप्रकाश नारायण प्राय जीवन के पुनरुत्थान में पक्ष में थे। वे चाहते थे कि भौत का स्वाधिराज तथा स्वावलम्बी द्वाइया बनाया जाय। इसके लिए भूमि-सम्पत्ती कानूना में आसुत सुधार करने की आवश्यकता थी। भूमि पर वास्तविक किसान का स्वाधिराज होना चाहिए।⁴² अवप्रकाश नारायण ने सहकारी भेटी का समर्थन किया। उन्होंने कहा, 'वास्तविक' समाधान यह है कि उन

37 अवप्रकाश नारायण *Towards Struggle* पृ 65 (प्रथम बार कलकत्ता संपादित, वर्ष 1946)।

38 वही, पृ 88

39 वही, पृ 77-78

40 वही।

41 वही, पृ 85-86

42 अवप्रकाश नारायण का 1940 की राजनयिक कार्य में अनुभव प्रस्ताव।

शमी निहित स्थायी का उद्घाटन कर दिया जाय जितने किसी भी एक न भूमि खोदने वालों का योग्य होता है, किसानों के शमी जल की विस्तृत पर दीर्घ, जोता की एवम करने सहकारी और सामूहिक फार्मों की तथा राजकीय और सहकारी जल व्यवस्था तथा हाउस-व्यवस्था और सहकारी सहायक उद्योगों की स्थापना कीजिए।⁴³ उनका कहना था कि सहकारी प्रयत्नों के द्वारा ही कृषि तथा उद्योग में बीच उद्घाटन वापस किया जा सकता है।⁴⁴ एशिया की मुख्य आर्थिक समस्या कृषक पुर्ननिर्माण की है। उत्पादन में साम्यता का समाजीकरण करना निश्चित रूप से अति आवश्यक है। राज्य की अपने पिछी उद्योगों की स्थापना करनी है तथा आर्थिक प्रसार में अर्थ उन्माद करने हैं। विस्तृत कृषि को उसकी वर्तमान अवस्था में छोड़ देना उचित नहीं है। जयप्रकाश नारायण कृषि के वर्तमान स्थितिवादी समर्थन की हानिकर तथा अपव्ययपूर्ण मानते थे। उनका कहना था कि कृषि के क्षेत्र में उत्पादन की बढ़ि सहकारी तथा सामूहिक पैली के द्वारा ही सम्भव हो सकती है।⁴⁵

समाजवादी होने के नाते जयप्रकाश नारायण आर्थिक समस्याओं को प्राथमिकता देते थे। इसलिए उनका मासह था कि देश की आर्थिक समस्याओं को सुरक्षित हल किया जाय।⁴⁶ आर्थिक व्यवस्था तथा सांस्कृतिक जीवन में बीच कोई अन्तर तथा अविश्वस्य सम्भव नहीं है। विस्तृत यह भी मान है कि आधारभूत आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति में बिना सांस्कृतिक राजनीतिज्ञता अधम्यव है। इसलिए जयप्रकाश नारायण उन परिस्थितियों में निर्माण में यत्न में थे जिनमें समान अवसर के आदेश की संशोधन विचार जा सके। संस्कृति में पक्ष-व्युत्पन्न के लिए 'नूतन आर्थिक स्तर की प्राप्ति अपेक्ष्य है।

जयप्रकाश नारायण विश्व समाज के आदेश की मानते थे। उनका कहना था कि वर्तमान संविधान तथा समाजवादी व्यवस्थाओं ने जो विनाश का ताण्डव मचा रखा है उसके मुकाबले में विश्व समाज ही एशिया तथा अफ्रीका की दमित मानवता के साथ 'साथ कर सकता है।⁴⁷ विश्व समुदायगत सक्ति-मुक्ति में विनत है, और उनमें से प्रत्येक अपने सर्वोच्च अधिकार का उत्पन्न के लिए हुर्रला मचा रहा है। बलि राजनीति के सिद्धांत की खुले आम पूजा हो रही है, उसका प्रचार किया जाय तथा उसे व्यवहार में लाया जाता है। उसके साथ-साथ सिद्धांतहीन उद्धरण का भी बोधवला है। व सब बड़े ही अनुमत्त हैं। जयप्रकाश नारायण के विचार में इस संकट की घड़ी में बुद्धि-वीर्य का कतम्ब है कि वे विश्व-समाज की मानवता की प्रसार और पुष्टि करें। आज विश्व की सक्ति-व्यवस्था का पुर्नोद्धार हो चुका है। दो युद्ध आगने-खाने खाते हुए है। इसका मुकाबला करने के लिए एक मानसिक जाति की आवश्यकता है।

3 निष्कर्ष

जयप्रकाश नारायण भारतीय समाजवाद के क्षेत्र में मान हुए तथा सुविख्यात स्थिति है। यह उनका महत्वपूर्ण योगदान था कि उन्होंने भारत में समाजवादी आन्दोलन को कांग्रेस के भोजे में नीचे पल रहे राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संग्राम में साथ सम्बद्ध कर दिया। तरे-बदेव तथा जयप्रकाश नारायण ने समाजवादी विचारधारा को जनता की सांस्कृत्यवादी राजनीतिक अभिप्रेत तथा देशी सामन्तवाद की दासता से मुक्त करवाने की दिशा में मोड़ दिया। इस प्रकार उन्होंने समाजवादी पक्ष की दो युद्ध का समरयोग बनाया—राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संग्राम तथा सामाजिक जाति। भारत में वर्तमान स्थानीय समाज की विकरात दृष्टि के सन्दर्भ में जयप्रकाश नारायण ने उन सामाजिक तथा पार्थिव वर्गों के उद्घाटन पर अति विश्व जो कृषि में उत्पादन में साथ डाल रहे थे।

43 जयप्रकाश नारायण, *Towards Struggle* पृ 90, 260

44 यही पृ 92

45 यही।

46 जयप्रकाश नारायण का समाजिक क हल में पिछा क्या वापस (मार्च 28 1951), *Indian Congress for Cultural Freedom*, पृ 37 (जुलाई, न रायल डेन, 1951)।

47 यही पृ 39

प्रकरण 4

राममनोहर लोहिया

1 प्रस्तावना

डॉ० राममनोहर लोहिया का जन्म 1910 में हुआ था। वे समाजवादी विचारों के उच्च तथा धर्मोपधार प्रचारक थे। उनके मापन लोक्य आलोचना के मुक्त तथा आनंद स पूरा हैं। इस के स्थापना तथा समाज में उन्होंने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। भारत के समाजवादी आंदोलन की प्रगति में उनका उत्तेजनात्मक योगदान था। जहाँ के प्रचारा के फलस्वरूप 1953 में एशियाई समाजवादी सम्मेलन सम्पन्न हुआ।

1952 में कांग्रेस समाजवादी दल के अध्यक्ष के रूप में उन्होंने इस बात का समर्थन किया कि समाजवादी चिन्तन में गांधीवादी विचारों की और अधिक अग्र में सम्मिलित किया जाय। न कुटीर उद्योगों पर आधारित विनोद-ईकृत अर्थतन्त्र के पक्ष में थे। साम्यवादियों के विपरीत, जिन्हें बड़ी मशीनों की पुन है, लोहिया ने उन छोटी मशीनों को महत्व दिया जिनके द्वारा अल्प पूर्वी समर्थक व्यक्तित्व का अधिपति उपयोग किया जा सके। 1952 में हुए वनमशी के समाजवादी सम्मेलन में अनेक प्रतिनिधियों ने इस प्रकार के विचारों के प्रति सह्य अग्रताप प्रकट किया। 1953 में अध्यक्ष मेहुता ने विद्युत् के अर्थतन्त्र की राजनीतिक अविवरणार्थ नामक अपनी पीठिस प्रतिपादित की जिसमें उन्होंने बताया कि नीकेम की विचारधारा समाजवादियों के सिद्धांतों के निकट आ रही है। इसलिए उन्होंने कांग्रेस तथा प्रगति के बीच अधिक धनिक सहयोग का समर्थन किया। इससे विपक्ष लोहिया ने समान दूरी का सिद्धांत प्रस्तुत किया। कुनि लोहिया पर गांधीवाद का प्रभाव बड़ा रहा था इसलिए उन्होंने कहा कि समाजवादी कांग्रेस तथा साम्यवादियों के समान दूरी पर है। उनका आग्रह था कि प्रगति को कांग्रेस के साथ अलग में भी सम्बन्ध नहीं कायम करना चाहिए, बल्कि यह अच्छा होगा कि यह परिस्थितियों के अनुसार उनसे से किसी के भी साथ चुनाव सम्बन्धी सम्बन्धों पर है। 1954 में कांग्रेसकोर-लोधीन में अग्रतन्त्रक राज्य की मान करने वाले आन्दोलनकारियों पर पुनित ने गोली चला दी। इस समय लोहिया प्रगति के प्रमुखधिय थे। उन्होंने पुनित के काम का विरोध किया और यही तक माग की कि पट्टन पाने मिलई के समाजवादी अति-मण्डल की स्थापना दे देना चाहिए। दिसम्बर 1955 में भारतीय समाजवादी दल की स्थापना हुई और लोहिया उसने पहले अध्यक्ष बने।

लोहिया ने भारत की परराष्ट्र-नीति की सुसंवर आलोचना की थी। उन्हें नेहरू की मुक्त-निरपेक्षता की नीति में बिचकाव नहीं था। उनका कहना था कि भारत को विदेशों में पकड़े मित्रों की ओर करनी चाहिए।

जाने चलकर लोहिया हिंदी के महान् सम्पन्न बन गये। वे चाहते थे कि हिंदी का अंग्रेजी के स्थान पर शीघ्र ही भारत की सहकारी भाषा बना दिया जाय। उनका कहना था कि भारत में लोकतन्त्र व अब तक साम्यविष नहीं बन सफल जब तक कि लोक प्रशासन अंग्रेजी के माध्यम से चलाया जाता है, क्योंकि अंग्रेजी बहुसंख्यक जनता के लिए एक मुक्त रहस्य है।

2 लोहिया के सामाजिक एवं राजनीतिक विचार

लोहिया के अनुसार इतिहास की गति पक्ष के सह्य तथा अपरिवर्तनीय होती है। वह धारणा अस्तु के चक्र-सिद्धांत का समर्थन दिताती है। इसी इस धारणा का समर्थन होता है कि इतिहास सरल रेखा की मॉडि आगे नो करता रहता है। उस चक्रता पति के दौरान देश सम्पत्ता के उच्च शिखर पर पहुँच सकता है और पतन के पक्ष में भी बूझ सकता है तथा पुन उठ सकता है। इतिहास के चक्र सिद्धांत के प्रथमतः में लोहिया सोरोकिन का स्वयंवर तथा बोधीन के यज्ञ मानते हैं।¹⁴

साहिबा इन्डालन' मौलिकवाद के सिद्धांत को स्वीकार करते हैं, किंतु परम्परावादी मानस-वादिता के मुकाबले में वे बेतला की अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं।⁴⁹ वे एक ऐसे सिद्धांत की रचना में एक में हैं जिसके अन्तर्गत आत्मा अथवा सामाज्य उद्देश्यों तथा इष्ट अथवा आर्थिक उद्देश्यों का परस्पर ऐसा सम्बन्ध हो कि दोनों का स्वतंत्र अस्तित्व कायम रह सके।⁵⁰

लोहिया का विदमस्त का कि इतिहास में जातिबो तथा वर्गों का समय देखने की मिलता है। जातिबो की विशेषता यह होती है कि उनका रूप पुनर्विभक्त होता है, इससे विपरीत वर्गों की आन्तरिक रचना स्थिर रहती है, यही सोलज विषय इतिहास को गति प्रदान करती है। जातिबो गतिहीनता, निष्क्रियता तथा रुढ़िगत अधिकारा की पुरातनवादी छविता या प्रतिनिधित्व करती है। जब सामाजिक गतिशीलता की प्रवणता रचितों के प्रतिनिधि होते हैं। लोहिया के अनुसार जब तक का मानव इतिहास जातिबो तथा वर्गों के बीच आन्तरिक गति का इतिहास है। जातिबो निष्क्रिय होकर वर्गों में परिणत हो जाती है और जब संचलित होकर जातिबो का रूप धारण कर लेती है।⁵¹ इस प्रकार लोहिया की जातिबो तथा वर्गों के बीच समय की धारणा वैदिकी के सिद्धांत का ही लोकप्रिय रूप है। परिकी के अनुसार इतिहास में समय संचालन-उपजीवी भूस्वामियों के स्वामी तथा भूमिका (इष्ट के स्वामियों) के हितों के बीच हुआ करता है। भूस्वामी 'अवस्था की समुहों की स्थिरता के अवरोध' हुआ करते हैं और घनी लोग 'सम्मिलन के अवरोधों' के प्रतिनिधि होते हैं।

लोहिया का आग्रह रहा है कि एशिया के समाजवादिता की मौलिक चिन्तन तथा अभिव्यक्त का अन्तर्गत आता चाहिए। उन्हें अपनी नीतिबो उस सम्पत्ता के आधार में निरूपित करती है जो संचालित पुराने निरकुलवाद तथा सामन्तवाद के कूट-करण में से उभरने का प्रयत्न कर रही है। एशियाई राजनीति की दुष्का का मुख्य कारण यह है कि उसमें बहुत धार्मिक विरासतों और राजनीतिक सोच विचार का मिश्रण पाया जाता है। इससे पर्याप्तमान तथा सामन्तवादिता का विषय बनता है। चूंकि एशियाई देशों में लोकतांत्रिक राजनीति की विशिष्ट परम्पराओं का अभाव है, इसलिए प्रथम आत्म तथा दूसरा राजनीतिक कामप्रभावी का रूप धारण कर लेती है। एशियाई राजनीति तथा समाज की दूसरी दुष्कता यह है कि गौरवराही और उद्योग प्रभावता का तथा का चलन हो गया है। इन विभिन्न दुष्कताओं के कारण वेले नेताओं का उद्योग सम्पन्न हो गया है जो राष्ट्रपति तथा जनोद्योग तरीक के अपने की पराजय रहने का प्रयत्न करते हैं। इसलिए लोहिया ने ऐसे व्यापक तथा मौलिक सामाजिक दखन की आवश्यकता पर जोर दिया है जो एशिया में व्यापक समाजिता का उपचार कर सके।⁵²

लोहिया ने चतुस्तम्भी (चार स्तम्भों वाले) राज्य की बलना की है।⁵³ इन चतुस्तम्भी राज्य के वैदिकरण तथा विकेन्द्रीकरण की परस्पर विरोधी धारणाओं को समन्वित करने का प्रयत्न किया गया है। इस व्यवस्था में अन्तर्गत मान, भण्ड (जित), प्राय तथा वैदिक सरकार का महत्व बना रहे और उन्हें एक साथमूलक व्यवस्था की व्यवस्था में अन्तर्गत एकीकृत कर दिया जायगा। राष्ट्रीय का सम्पादन उन्हें एक सूत्र में बांध कर रखेगा। इस चतुस्तम्भी राज्य में जिलापीठ का पर समन्वय कर दिया जायगा, क्योंकि वह राजनीतिक गति के वैदिकरण की वर्धमान सत्ता है। इनमें अति रिक्त मण्डला, भूमि तथा मनुष्य की बचावले वरदानकारी नीतिबो तथा वर्गों का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लेगी।⁵⁴

49 राममोहन लोहिया, *Aspects of Socialist Policy*, पृ. 76-77 (सर्वा 6 दृश्य पर 1952)।

50 *Wheel of History*, पृ. 37

51 पृ. 51

52 *Aspects of Socialist Policy*, पृ. 10

53 साहिबा का कहना था कि 'वर्गों का समय विषय सरकार द्वारा है।

54 राममोहन लोहिया, *Wheel to Power and Other Writings*, पृ. 132 (द्वितीय, पश्चिम संस्करण 1956)।

साहित्य विपरीतज्ञान गणतन्त्रवाद का समर्थन थे। इसका अर्थ है छोटी बगोनें, मजदूरी का तथा साम सामान।⁵⁵ पूँजी का समय तथा कच्ची हुई मशीनों की शक्ति के लिए साहित्य के छोटे मशीनों पर आधारित उत्पादन का समर्थन किया।

अपने जीवन के अन्तिम दिना में साहित्य कहते जाते थे कि कम्युनिज्मानी तथा वर्गीय समतावाद 'एक महा दुष्प्रसिद्ध तथा परलौकिक व्यवस्था है। इसलिए उन्होंने नवीन व्यवस्था का मार्ग बताया।⁵⁶ इस नवीन समाजवाद का लिए उन्होंने दूर-दूरी काजना का निर्णय किया। साथ तथा अन्य के क्षेत्र में अधिकतम समानता के स्तर का उपलब्ध करना आवश्यक है। इसका लिए राष्ट्रीयकरण एवं मालवपूषण सामान है, विन्तु यह एकात्मता सामान नहीं है। विश्व में आदिम अन्तरनिष्पत्ति मशीनें जा रही हैं, जिसका कारण यह आवश्यक हो गया है कि मनुष्य विश्व में जीवन-स्तर को ज़ेपा करने का प्रयत्न किया जाय। साहित्य ने वर्ग-मताधिकार पर आधारित 'विश्व सत्ता' का समर्थन किया। यह एक अर्थित तथा मुद्राविधायी मुपाय प्रतीत होता है। साहित्य जीवनसाधन राजनीतिगत समता का वकील समर्थन थे। वे चाहते थे कि बान्नी की स्वतन्त्रता समुदाय बनाम की स्वतन्त्रता तथा निजी जीवन की स्वतन्त्रता के क्षेत्र मुरीतिन होन चाहिए, और निजी भी सरकार की बलपूर्वक उपयुक्त हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। उन्होंने सामान्य जनों के अधिकारों तथा प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए वैयक्तिक तथा सांस्कृतिक अधिकार अथवा की नापीबानी काय प्रवर्धनी का समर्थन किया। इसका समाधानाधिक कहते की है।

3 निष्कर्ष

समाजवादी दल के अगुआ म गणतन्त्र तथा समतावाद कायानन पर आवश्यकता का समर्थन अधिक प्रभाव था। उनकी दुष्प्रसिद्धता में साहित्य पर नापीबानी विचारधारा का प्रभाव अधिक था।

एक समाजवादी बुद्धिजीवी के रूप में समतावाद साहित्य के मुख्य विचार तथा मूल विचार था। उन्होंने समाजवादी चिन्तन की समताओं की एतिपादी इष्टिजाय में देखने का प्रयत्न किया। वे कीर बचवादी नहीं थे। उन्होंने कम तथा चिन्तन के द्वारा समुदाय के अस्तित्व के विनाश की समता का सदैव ध्यान में रखा। वे चाहते थे कि समुदाय का समुदाय जीवन तथा स्वतन्त्र की अधिकतम हो। वे इस पक्ष में नहीं थे कि अस्तित्व के किसी एक विनिर्णय पक्ष की एकाकी तथा कीमति बढि हो।⁵⁷

अध्याय 5

भारतीय समाजवाद का संवैधानिक मोलदान

भारतीय समाजवादी साहित्य में यह महत्त्व तथा अतिरिक्त देखने को नहीं मिलती या अतिरिक्त सुझाव अथवा दोष सुनसुन को एकताओं का वकील नहीं है। उनका कोई मौलिक सिद्धांतिक मोलदान नहीं है। विन्तु उनका महत्व इस अर्थ में है कि हमने भारत के केनिहुर अति-वृद्ध, तथा अधिकतम अर्थतन्त्र और राजतन्त्र के मध्य में मौलिक समाजवादी चिन्तन की आवश्यकता पर मत दिया है। मार्ग का अनुसरण करते हुए हमने के फार्कबार्डिना के विचारों को प्रतिनिधित्ववादी शब्द माना था। लेकिन वे इस दृष्टिकोण में समर्थन दिया। भारत में मूल साधन एवं महत्त्व की नीति अधिक कम नहीं है, राज के अधिकतम महत्त्व तथा विकास इस देश के समाजिक घोषित कम है। अतः सामाजिकता की समताओं का विनिर्णय करना आवश्यक है। भारतीय समाजवादी प्रवर्धित जीवन-मध्य तथा बल-मध्य का अर्थ करना चाहते हैं। वे नियोजन की स्वीकार करते हैं, किन्तु वे समर्थ और निरर्थक नियोजन के स्तर पर अत्यधिक नियोजन के प्रवर्धनी हैं। मार्ग में पूँजी के नियोजन की समस्या बड़ी विषय है। अर्थ के अतिरिक्त विषयों में भी पूँजी के नियोजन का एक महत्वपूर्ण साधन है विन्तु विषयी अर्थ राजनीतिक क्षेत्र में मुक्त होना चाहिए।

55 *Aspects of Socialist Policy*, p. 17

56 13 मजदूर का साहित्य का समर्थन केन्द्र काय दूर-दूरी काजना काय अतिरिक्त।

57 साहित्य, *World of History* p. 111

भारतीय समाजवादियों ने इन तीन प्रमुख समस्याओं पर गम्भीर चिन्तन किया है—अधिकतम जन-जन में निस्साली की भूमिका, वय-वयस तथा विधोवन ।

जमन समाजवादी लोकतन्त्रवादियों की भांति भारतीय समाजवादी भी राजनीतिक स्वतन्त्रता तथा आर्थिक पुनर्निर्माण का समर्थन करना चाहते हैं । उन्हें समझीम तरीका में विश्वास है । गांधीवाद तथा भारतीय शासन की लोचताधिक व्यवस्था के अभाव के फलस्वरूप उन्होंने हिंसा में विरोध का प्रमुख परित्याग कर दिया है । निरु-बादशास्य समाजवादियों के विपरीत वे बिने-दीकरण की धारणा के अधिक उग्र समर्थक हैं । कदाचित् विके-दीकरण पर यह जोर भारतीय समाजवाद की गांधीवाद से विरासत के रूप में मिला है ।

1. सामाजिक धरातल पर

सर्वोदय यह स्वीकार करता है कि मानव की प्रकृति धर्मिक है। वह स्वतन्त्रता, समता, 'पाप' तथा आधुनिक के आदर्शों को अवधारित महत्व देता है। इसलिए वह राज्य-व्यवस्था का विरोधी है।¹ अपने अनुसार राज्य कृपायु दसी भत्ता की धार्मिक अनिवार्यता नहीं है, भत्ता कि कुछ वास्तविक विचारों का मत है। यह एक धार्मिक व्यवस्था है जिसका द्वारा वे लोग अपने सफल को विचारित करने का प्रयत्न करते हैं जिसमें विचारधाराओं की समता, आकाशक जगह, दुर्लभता तथा शासन का भी विचारित करने की योग्यता होती है। इसलिए गांधीजी ने राज्य का युद्ध विरोध किया था। लेख संविधान की धर्म के राज्य के समुद्र के। उन्होंने स्वराज्य का समर्थन किया था। लेख संविधान की धर्म के राज्य के समुद्र के। उन्होंने स्वराज्य का समर्थन किया था। लेख संविधान की धर्म के राज्य के समुद्र के। उन्होंने स्वराज्य का समर्थन किया था।

1. स्वराज्य का समर्थन किया था। लेख संविधान की धर्म के राज्य के समुद्र के। उन्होंने स्वराज्य का समर्थन किया था। लेख संविधान की धर्म के राज्य के समुद्र के। उन्होंने स्वराज्य का समर्थन किया था।

2. स्वराज्य का समर्थन किया था

आधुनिक राज्या न राजनीतिक दला न राज्यसत्ता का मुख्य उद्देश्य शक्ति प्राप्त करना होता है और उसके लिए वे निम्न व्यवस्था बनाते हैं। स्वराज्य का समर्थन किया था। लेख संविधान की धर्म के राज्य के समुद्र के। उन्होंने स्वराज्य का समर्थन किया था। लेख संविधान की धर्म के राज्य के समुद्र के। उन्होंने स्वराज्य का समर्थन किया था।

1. अन्तर्गत भाग में A Picture of Sarvodaya Social Order पृ. 43 (स्वराज्य का समर्थन किया था, लेख संविधान की धर्म के राज्य के समुद्र के। उन्होंने स्वराज्य का समर्थन किया था। लेख संविधान की धर्म के राज्य के समुद्र के। उन्होंने स्वराज्य का समर्थन किया था।)

उस काम के तब विभागी। इसी प्रकार जिता वभावत न चुनाव न समूह जिते न विभागी सामूहिक रूप से मात्र नहीं तैरे, उसका चुनाव केवल जिते की मात्रा वभावता न बदल करे। प्राचीन तथा राष्ट्रीय प्रशासना अपना प्राचीन और राष्ट्रीय वभावता के सदस्या का निर्वाचन भी अप्रत्यक्ष रूप निर्देशन न सिद्धान्त के आधार पर ही होता। इस प्रकार साठ तथा षड न स्तर पर अप्रत्यक्ष निर्वाचन के सिद्धान्त को विज्ञान प्रधान पर विचारित किया जायगा।

अप्रत्यक्ष नामनिर्देशन अपना अप्रत्यक्ष निर्वाचन का यह सिद्धान्त दो दृष्टिया से सांप्रत्य है।⁶ इसका प्रथम मुख्य दोष यह है कि यह व्यक्ति की नीति तथा राजनीतिक गरिमा को कम करता है। इस समय निर्वाचन प्रत्यक्ष रूप से मतदाता तथा विधाना के सदस्या की चुनाव की संश्लेष द्वारा बनित दलविहीन लोकतन्त्र की योजना में साम्यवादिता को केवल प्राय वभावत के सदस्या का चुनाव का अधिकार होता। वे प्रत्यक्ष रूप से मात्रा वभावता, जिला वभावत, जिला वभावत तथा राष्ट्रीय वभावत के सदस्या न चुनाव न मात्रा वभावत में सम्मिलित। इस प्रकार स्वसम्मति से चुनाव के नाम पर प्रत्यक्षता को राज्य के विधाना तथा मतदाता के चुनाव के महत्वपूर्ण राजनीतिक अधिकार से वंचित कर दिया जायगा।

व्यावहारिक दृष्टि से अप्रत्यक्ष निर्वाचन के सिद्धान्त का अन्य दोष यह है कि विभिन्न वक्ता को चुनाव में सारी उत्तम और अजडा का सामना करना पड़ेगा। राजनीति विज्ञान के विचारों बावले है कि राजनीतिक दला के वामपक्षीय दालि पर अधिकार करने का ही सीमित नहीं होता। न साम्यता को शिक्षित करने तथा राजनीतिक समस्या का सुनिश्चित तथा स्पष्ट रूप देने का भी प्रयत्न करते हैं। न चुनाव में दले होने वाला के चुनावी की और की वक्ता का प्रत्यक्ष भाग्य साफल्य के कारण सम्भव ही नहीं, वरन् दली रूप अपना मात्रा के बहुतसक लोभा में भागा की का सकती है कि चुनाव सम्भव ही नहीं, वरन् दली रूप अपना मात्रा के बहुतसक लोभा में भागा की का सकती है कि सम्भव न यह नहीं होता कि राष्ट्रीय समस्या के विना उत्तर प्रथम की वभावत से अधिक जिला तथा दला के लिए अपने उन स्वयंसेवक लोभा की दूक निरासता के सम्भव ही नहीं है कि राष्ट्रीय वभावता के लिए चुन लें।

(2) सर्वोच्च दलविहीन लोकतन्त्र के सिद्धान्त को साधारणतः करने के लिए एक अथ वाम-विधि का समर्थन करता है। सर्वोच्च का उद्देश ऐसे समाज को स्थापना करना है जो दला के बीच से मुक्त होना।⁷ यह सर्वोच्च राष्ट्रीय राजनीति में हस्तगर्भ करने से उत्पन्न करता है। जो व्यक्ति अपने को सर्वोच्च आन्दोलन के लिए अर्पित कर देता है वह किसी निर्वाचित पर भी प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं करता और न चुनाव में भाग ले सकेगा। किन्तु यह अपनी अंतरात्मा के आदेशानुसार प्रयत्न कर सकता है।⁸ दलविहीन लोकतन्त्र सर्वोच्च आन्दोलन को वाम परिवर्तित माना जाता है। किन्तु जब तक यह अर्पित अवस्था नहीं आ जाती जब तक सर्वोच्च दलन न विस्थापन करने वाला मतदाता के समक्ष मुक्तिप्राप्ति और साम्यवादी से काम लेता तथा उस दल के सदस्या को मत देना जो उसकी राय में उन्नत की समझे अच्छी सेवा कर सकता है।

(3) दलविहीन लोकतन्त्र का एक तीव्रता सिद्धान्त भी है। आन्दोलन की प्रारम्भिक अवस्थाओं के लिए एक महत्वपूर्ण वाक्यविधि यह है कि विभिन्न राजनीतिक दला को सर्वोच्च का काम करने के लिए आर्पित किया जाय। दल दला की विचारधाराएँ बिना बिना ही सरती हैं किन्तु वहाँ तक न सहयोग करन के लिए उत्पन्न हो वहाँ तक उनकी श्रेष्ठता ली जा सकती है। इस

6 राजा समीक्षाणी सर्वोच्च दलन पृ 24।

7 अप्रत्यक्ष निर्वाचन प्रणाली का समर्थन के लिए देखिये किरोस माने पुरान वक्ता, जिन् 4 पृ 28-29।

8 अप्रत्यक्षता मतदाता A Picture of Sardarji Social Order पृ 10 पर लिखे हैं। इनमें लिखत किया है हम लोग के चुनावों का दला के आधार पर नहीं करते। और जो सिद्धान्त यदि न सम्भव न सही है।

9 वही, पृ 30।

प्रकार के सहयोगमूलक काम से इन भाववर्तीता की समझ में यह आ जायगा कि जिन सबव्ययी फाँटों का सम्मर्पन सर्वोदय कर रहा है उसको उत्कल सम्पादित करना चिन्ता आवश्यक है। उसने बाद फिर सब दल मिलकर सर्वोदय के आदेश को धारणागत करने का सगलित प्रयत्न करने। विनोबा का कहना है, “जहाँ तक विभिन्न राजनीतिक दलों के प्रति हमारी नीति का प्रश्न है मेरा रुढ़िबोध यह है कि उन्हें बिना दसा के रूप में अपना अस्तित्व समाप्त कर देना चाहिए और सामान्य सम्मति के स्वीकृत कार्यक्रमों की चुरा करने के लिए अच्छे तथा निष्ठावान व्यक्तियों का एक समुक्त मोर्चा बना लेना चाहिए। इस उद्देश्य से मैं अनुरोध के समाने एक ऐसा कार्यक्रम रख रहा हूँ जो सबको स्वीकार हो सके और जिसमें सब लोग अपना मतभेद भुलकर सम्मिलित हो सकें। इससे राजनीतिक दल एक दूसरे के निकट आँगे और परिणाम यह होगा कि हमारे माँभर कम होंगे और सहमति तथा मेल मिलान की बढि होगी। भूदान इसी प्रकार का कार्यक्रम है। वह सबको स्वीकार है। उससे देश प्रगति के चर पर अग्रसर होगा और इस प्रकार जनजाति का विकास होगा।”¹⁰

(4) कभी-कभी दलबिहीन लोकतांत्र्य का विकास करने के लिए एक बीया छोड़ चुकाव भी दिया जाता है। यह यह है कि विधानाया तथा सदन में दलीय उपद्रव तथा मतभेदों को समाप्त करने का प्रयत्न किया जाय। यदि विधायी विभागों के लिए दलीय टिक्का पर निर्वाचित होने की बलवान प्रणाली लागू भी रहे तो भी यह व्यवस्था की आ शक्यता है कि विधानायी के प्रविष्ट होने के बाद प्रतिनिधियुक्त दलीय समाज और भक्ति की भावना से मुक्त होने का प्रयत्न करें। वे दल के सदस्यों के रूप में मत देने के बजाय राष्ट्र के प्रतिनिधियों के रूप में मतदान करें। वे अपने दल के संघर्ष के आदेशानुसार काम न करने अपनी आत्मा के उच्च आकाश के मिश्रण का प्रयत्न करें। इस व्यवस्था के अंतर्गत मजिमा को दल के आधार पर नहीं चुना जायगा। हर सदस्य के बड़ा प्रयत्न कि वह मजिमा के लिए जाया की एक सूची प्रस्तुत करें। इन जाया में स जिनको सबसे अधिक मत मिलेंगे उन्हें चुन लिया जायगा। यह प्रस्ताव सुकर प्रतीत होता है किन्तु यह यह है कि उसे क्रियाचित किया जा सके। मुझे प्रस्ताव की व्यावहारिकता में शारी संदेह है। इसलिए इस समय मैं इसी पक्ष में हूँ कि मजिमासदनों का निर्वाचन दलीय आधार पर किया जाय।

यह सत्य है कि गुटबन्दी और दलीय वसपल लोकतांत्र्य का सबसे बड़ा दोष है। किन्तु दला को समाप्त कर देना सम्भव नहीं जान पड़ता। हमें दलीय वसपल का अंत करना है न कि दला का। आखिरकार दल आधुनिक वातावरण सम्भव की उपज है। पहले-पहल दलबन्ध में सहजवी घटावकी में दला का सगलित आरम्भ हुआ। किन्तु क्या कोई यह कह सकता है कि सहजवी घटावकी से पहले राजनीति नहीं थी? अनेक घातकियों से बिना दलीय व्यवस्था के जिन्हीं में किसी रूप में अनलिता राजनीतिक कार्यक्रमों की आ रही हैं। यह कहना सत्य है कि अब में जनता की घटाव-धिवार प्राप्त हुआ है तब से राजनीतिक दला की स्थिति बहुत महत्वपूर्ण हो गयी है। किन्तु यदि सर्वोदयी कार्यक्रमों का अधुनिक दलीय राजनीति में विश्वास नहीं है, तो य प्रणालीय व्यवस्था के अंतर्गत वातावरणवादात्मक के रूप में काम कर सकते हैं। यह काम में किसी रूप में कर सकन है। आधुनिक सभ्यता की परिणताओं की बुद्धि के साथ-साथ वातावरण-परिष्कार और परावर्तन विचारों का महत्व बहुत बढ़ गया है। इसलिए मेरा विश्वास है कि सर्वोदयी वातावरणता के लिए यह अधिक अपेक्षा होगी कि वे हर प्रकार की राजनीति का परित्याग करने की अपेक्षा जाँच, प्राय, जिला कायुक्त आदि सभी स्तर पर वातावरण-परिष्कार और परावर्तन विचारों के सदस्य न रूप में काम करें। इस प्रकार का काम छोड़ वातावरणिक महत्व का काम हो सकता है। मरी चारवा है कि यदि कुछ शक्ति बुननिर्माण के कार्यों के साथी चालि लगा देने की अपेक्षा आत्मन के सत्तामय तब में सुधार किया जाय तो उसके अधिक छोड़ सत्य होगा। दलीय चरों का यह है कि सर्वोदयी गठनाओं को कुछ शारीय वातावरण में उत्थान न होने पर आत्मन की सफलता का मुख्यमान का भी प्रयत्न करना चाहिए। यदि हमें देखें कि बिना तथा वातावरणिता न गठना राजनीतिक तथा आत्मशील गठना-

द्वारा वॉशिंग्टन परिवर्तन लाया जा सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि जनता भी इस दम से प्रतिक्षित और अनुशासनबद्ध किया जाए कि वह स्वयं अपने मामलों का प्रबंध तथा संचालन कर सके। इसके लिए आवश्यक है कि प्रारम्भिक अवस्थाओं में हर जगह ऐसे आत्मसम्पन्नी नेताओं की मन्त्रिणी हो जा जनता को अपना काम करने की रास्ता में मद्दतग्राहक बन सके। ये नायकता जनता के समुद्र होना चाहिए न कि उसमें शासन। जनता यह महसूस होगी कि ये जनता को सहयोगपूर्ण कामकाज के द्वारा शिक्षित करने का प्रयत्न करे। भारत की वर्तमान जनता छात्रावासों में प्रतिशत अभियोग तथा स्वावलम्बन को आदर भी जो वैध है और पुनः राज्य के अधिकारिका पर निर्भर होती जाती है। गांधीजी चाहते थे कि ग्राम पंचायत अपने स्वयं के बनाये हुए नियमों के अन्तर्गत कार्य करे। किन्तु हमारी जनता का वैयक्तिक चरित्र काफी गम्भीर हो चुका है, और ये पंचायतों की जातिवाद तथा जाति प्रभुत्व के दुरिस्त कल्याण और प्रभावों के अन्तर्गत बन गयी है। विने-डीकरण की प्रमुख समस्या यह है कि पंचायतों इस दम से कार्य करें कि वे गाँव में गम्भीरता तथा सामुदायिक जीवनशैली के प्रतिक्षण का वेन्द्र बन सकें। अतः विने-डीकरण की समस्या शक्ति के द्वै-करण के विरुद्ध जाग्रत देने अथवा पंचायत, मुखिया और सरपंच की साधारण की 'वायिक' अथवा नायवारी समिता प्रदान करने हल नहीं की जा सकती। सर्वोदय दलन के अनुसार प्राथमिक आवश्यकता यह है कि वर्तमानकारी राज्य के नाम पर केन्द्रीकरण, राष्ट्रीयकरण तथा राज्य समावेशन को प्रोत्साहन देने के स्थान पर जनता की अपनी आर्थिक, सामाजिक तथा प्रशासनिक समस्याओं का सुयोग्यतापूर्ण प्रबंध करने की कला का प्रतिक्षण किया जाए और उसे अनुशासन-बद्ध किया जाए। सर्वोदय के समयका का एक तक यह है कि विने-डीकरण राजनीतिक व्यवस्था के अन्तर्गत मतभेद कम होता है, वह स्वतन्त्र लोकतन्त्र को साक्षात्कृत करने की अधिक आशा हो सकती है।

सर्वोदय की धारणा के अनुसार ग्रामराज का आदर्श सभी समाजगत किया जा सकता है जब सम्पूर्ण राजनीतिज्ञ तथा का प्रयोग सामुदायिक स्वयं करे और जनता द्वारा प्रशासन का मही निष्ठात निष्ठा तथा जाति के स्तर पर व्यवहार किया जाय चाहिए। प्रशासन के दो क्षेत्र केन्द्रीय सरकार की इच्छा की जाति स्वयं से विभाजित करने के वेन्द्रभाव नहीं होने, बल्कि व समाधान की जीवन एकताओं के रूप में कार्य करेंगे। सर्वोदय के समयका वा यह विचार पुनः नहीं है कि यदि ग्राम के स्तर पर स्वशासन अथवा वास्तविक जीवन व की विभाजित किया जाय तो वह अति सामुदायिक प्रवृत्ति को रोवने का सबसे अधिकारी साधन होगा।

कुछ लोगों का डर है कि यह ग्रामराज एक एक समाजगत स्तर का रूप में संचालित है जिसके पास आम सामुदायिक दुर्भावना के साथ जातिभेद स्थापित करने के कोई साधन न हो। किन्तु यह भय निम्न है, क्योंकि इस जीवनने अन्तर्गत केन्द्रीय प्रशासन का समाधान करने का कोई विचार नहीं है। जब तक केन्द्रीय सरकार विद्यमान है तब तक अन्तर्गत के अनुसार अपनी सेवाओं का उपभोग किया जा सकता है। "वे-डीकरण शक्ति, जब तक वह विद्यमान है, देशवासी के अन्तरे की ज़खीर के समान होगी। गांधीजी का ध्यान सबसे इस ज़खीर पर नहीं हो रहा, किन्तु शक्ति के समय व उनका प्रयोग करते हैं।"¹²

सर्वोदय स्वशासन की सभी क्षेत्रों में स्थापित करना चाहता है। इसका अर्थ है कि जनता एक जगह हो और सहयोगपूर्ण भावों के स्वयं और जाति स्वयं से भाग ले। यदि जोड़ी के अति पारी विपुल और अन्तर्गत हो सकते हैं, तो ग्राम स्तर के छोटे नायकताओं के सम्बंध में भी यह कर हो सकता है अतः आवश्यक है कि उन्हें हर प्रकार के अन्तर्गत से बचाने के लिए प्रभावकारी उपाय विधि जायें। सर्वोदय जनता का उत्थान करना चाहता है। जनता की राजनीतिक सामुदायिकता के वेन्द्र बनना है न कि केन्द्रीय महत्त्व अथवा गाँव प्रभुत्व की। राजनीति के स्थान पर जातिनीति

आधुनिक भारतीय राजनीतिक विचार

को प्रतिष्ठित करने का बड़ी महत्व है।¹⁴ विचार का महत्व है, "स्वराज का पुत्र है। जिन्हे क्या मतलब था उसने ब्रह्मचर्यादी प्रमाण की अनुकूलि हाँकी है? स्वराज अपना स्वातन्त्र्य म ही विरोधीकरण का मास निहित है। इसलिए इन विद्वानों की हर व्यावहारिक सीमा तब लागू नहीं है जीवन के सामाजिक आर्थिक तथा राजनीतिक हर क्षेत्र में प्रभावित करता है। ब्रह्मचर्य त उस व्यक्ति का साथ ही मजबूती तब पहुँचा दिया है जो वास्तव में उसकी ही जिन्हे जिस साम्राज्य में वे दुर्भाग्यवश संवेत नहीं थे और जो उत्तरोत्तर रूप में दुर्गुण तथा घिल्ली आदि स्थान में हेतित थी। इस केडीकरण के परिणामस्वरूप जनता की स्वतन्त्रता का उत्तरोत्तर ह्रास हुआ और उसकी पहिचान एवं कष्टों में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई। ब्रह्मचर्य का ह्रास ही शायद ही स्थिति तक को ब्रह्मचर्य अथवा स्वराज्य में परिवर्तित किया जा सकता है। प्रामाण्य के स्थापित होने पर प्रत्येक व्यक्ति एवं छोटे से राज्य का रूप धारण कर लेता और तभी विचार सुयोग्यतापूर्वक एवं ही काम करते हैं।"¹⁵

सर्वोदय आन्दोलन का आग्रह है कि जिन सीमाओं और पहिचानों से तब अधिकतम लोग लाभ की स्थानता ही देने उनका प्रभावित करने का लिए छात्रावृत्त उठाया जाय। ब्रह्मचर्यादी राज्य में भी तबबचारी जनता की प्रवृत्ति होती है क्योंकि उनमें अत्यन्त राज्य अधिकारिक शक्तों का अपने हाथों में लेता है और शक्तों की वृद्धि से शक्ति की वृद्धि होती बनितवान है। सर्वोदय का अनुसार दूसरा पर निम्न रहने की वास्तविकता की-शक्ति प्रवृत्ति स्वतन्त्रता की आसन तथा लोकतांत्रिक की ही शक्ति कर देती। अतः यह जनता की तबबचारी नियन्त्रण की वास्तविकता में ले जाकर पटक देती। इसलिए स्वावलम्ब्य और अनुशासन की कला की सीखना आवश्यक है।¹⁶ यदि स्वतन्त्रता जीवन का राष्ट्रीय उद्देश्य हो तो सर्वोदय चाहता है कि लोगों की धुरी के इस सीमितकन को हृदयगत कर लेता चाहिए कि बड़ी सरकार सर्वोदय है जो सबसे कम सीमित करता है।¹⁷ राष्ट्रीय की इस वास्तव का धार-धार पुष्टगते हैं।¹⁸ इस विद्वान्त में वास्तविक जनशक्ति का निर्माण पर जोर दिया गया है।¹⁹ जनशक्ति का द्वारा ही जनशक्ति का आविर्भाव त घृष्टराज्य प्राप्त जा सकता है। जिन्हे अधिकतम आवश्यक के रूप में सर्वोदय राज्य की शक्ति की सीमित अथवा निमित्त करती ही वस्तुतः नहीं ही जाता, जनता परम उद्देश्य राज्य का अनुशासन करता है।²⁰

4 सर्वोदय के राजनीतिक निहितार्थ

(क) ब्रह्मचर्यादी के वास्तविकता विद्वान्त का अन्तर्ग्रह—सर्वोदय का आधारभूत विद्वान्त तबके मुख तथा जनमान की प्राप्ति करता है। राजनीतिक दृष्टि से इसने दो महत्वपूर्ण विचार है। प्रथम,

- 13 राजनीति तथा लोकनीति में ऐसे इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है

- (क) वास्तव
(ख) शक्ति
(ग) निष्पक्ष

लोकनीति

- (क) अल्प निष्पक्ष
(ख) स्वतन्त्रता
(ग) अनुशासन
(घ) ब्रह्मचर्य का वास्तव

- 14 विरोधाग्रह *Abolition of Caste* पृ 41 (वर्ष 1936) में 107 पर धार प्राप्त की। के मत का अन्तर्ग्रह किया है। जो तब में केडीकरण का जीवन वास्तव में नहीं हुआ।

- 15 इसलिए सर्वोदय 'वास्तव' का इसका पर अनुशासन का आवश्यकता बता रहा है।
16 सर्वोदय विचारकों ने ब्रह्मचर्यादी राज्य के तब में वे वास्तविकता का यह जीवन व्यापार का किया है कि वास्तव तब में वस्तुतः का ब्रह्मचर्यादी राज्य में निहित था।
17 सर्वोदय के अनुसार जनशक्ति का वास्तविकतः तब में ही उत्पन्न है।
18 सर्वोदय के अनुसार जनशक्ति का वास्तविकतः तब में ही उत्पन्न है।
19 सर्वोदय के अनुसार जनशक्ति का वास्तविकतः तब में ही उत्पन्न है।
20 सर्वोदय के अनुसार जनशक्ति का वास्तविकतः तब में ही उत्पन्न है।

- 17 सर्वोदय के अनुसार जनशक्ति का वास्तविकतः तब में ही उत्पन्न है।
18 सर्वोदय के अनुसार जनशक्ति का वास्तविकतः तब में ही उत्पन्न है।
19 सर्वोदय के अनुसार जनशक्ति का वास्तविकतः तब में ही उत्पन्न है।
20 सर्वोदय के अनुसार जनशक्ति का वास्तविकतः तब में ही उत्पन्न है।

- 18 सर्वोदय के अनुसार जनशक्ति का वास्तविकतः तब में ही उत्पन्न है।
19 सर्वोदय के अनुसार जनशक्ति का वास्तविकतः तब में ही उत्पन्न है।
20 सर्वोदय के अनुसार जनशक्ति का वास्तविकतः तब में ही उत्पन्न है।

यस समय के सिद्धांत का समर्थन, और दूसरे अल्प संख्या के हिंसा तथा अधिराज्य की रक्षा करना। वसन्तधर के सिद्धांत में यह धारणा निहित है कि सामाजिक व्यवस्था के अंतर्गत विषय ही नहीं बल्कि परस्पर विरोधी हिंसा दृष्टा करते हैं। इसने विनयीत सर्वोदय समाज को एक विशिष्ट प्रकार की वास्तविकता मानकर चलता है। सामाजिक तथा राजनीतिक वास्तविकता का उद्देश्य प्रभावशाली वर्गों के हितों की रक्षा करना नहीं है, बल्कि पूरे समाज का अधिराज्य प्रस्थापन करना है। सर्वोदय स्वाभिमानी तथा शक्ति और मन की विस्था के युग्मित तथा दुर्गमित परिणामों की बहुत आलोचना और विरोध करता है। इसलिए यह निश्चय सदा की आवश्यकता पर अधिकर न देता है। सेवा, सम्मान तथा सामाज्य ब्रह्मण सर्वोदय के मूलतत्त्व तथा विचारविधि हैं। यह वसन्तधर के सिद्धांत का इसलिए विरोधी है कि उसमें हिंसा की दृष्टि आती है। यदि एक बार यह स्वीकार कर लिया जाए कि हिंसा का संगठित सामाजिक जीवन का आधार नहीं बनना या बनना तो फिर परस्पर विरोधी वर्गों के समय के विघटनकारी सिद्धांत का जीवन में कोई स्थान नहीं हो सकता। सर्वोदय वसन्तधर की धारणा के स्थान पर सामाज्य ब्रह्मण तथा सामाज्य के अधिक बुद्धिसंगत सिद्धांत का समर्थन करता है। सामाजिक सामाज्य का यह आदेश बीजे मोक्षिक दुहाई देने से वास्तविक नहीं किया जा सकता। उसे वैश्व जीवन में उत्तरदाता आवश्यक है। हमें मूलभूत मनुष्यता का विस्तार करना है। उद्देश्य यह नहीं है कि परिवार की सम्पत्ति का वसन्तधर अपहरण कर लिया जाए, बल्कि हमारे पास जो भी सामग्री है उसका दूसरा के साथ मिल-बाँटकर उपयोग करें। इस प्रकार सामंतीय आदेश की वास्तविकता बनाया जा सकता है और जनता में एक ऐसी शक्ति जागृत होगी जो माननीय है जिसमें वास्तविक सामाजिक पुनर्निर्माण का कार्य सम्पादित हो सके। इस शक्ति का उद्देश्य शक्ति पर अधिकार करना नहीं है, बल्कि मनुष्य के दृष्टिकोण तथा मूल्य में परिवर्तन करना है। अंधे की प्रकृति के स्थान पर सामंतीय की जायदा की प्रतिष्ठित करना है।

किन्तु वसन्तधर के सिद्धांत का समर्थन करने तथा सामाजिक सामाज्य के आदेश की स्वीकार करने का अर्थ यह नहीं है कि वर्तमान विधायी को विरुद्ध समीक्षात्मक विचारों का पोषण करते हैं, वापस रहने दिया जाए। अपने राजनीतिक नेतृत्व के आराध्यिक विचारों में सामंतीय समीक्षा की बजाये रखने के पक्ष में है, किन्तु अपने चलकर उनके विचारों में शक्तिशाली परिवर्तन हो गया और वे निरंतर दृष्टि समाज व्यवस्था की बात करने लगे जो सभी प्रकार के अंध-भेद के मुक्त हो। सर्वोदय शोषण और उत्पीड़न की व्यवस्था बनाये रखने के पक्ष में नहीं है, बल्कि यह कुछ सामाजिक समाजता तथा अधिपत्य आधिक्य समाजता की स्थापना करना चाहता है। सामाजिक आदेश के रूप में सर्वोदय तथा सामाज्य सेवा ही सामाजिक समाजता तथा स्वतंत्रता की स्वीकार करते हैं। किन्तु दोनों में तादृश अंतर यह है कि सर्वोदय की अहिंसा की शक्तिता तथा वास्तविक में बढ़ती बढ़ा है। सर्वोदय की शक्तिता है कि वेम तथा अहिंसा की शक्तिता तथा स्वातंत्र्यकारी शक्ति के द्वारा स्वतंत्रता, समानता तथा काम की स्थापना की जा सकती है।

(स) बहुसंख्यवाद की धारणा का समर्थन—सर्वोदय की इस धारणा के कि समाज एक नैतिक वास्तविकता है एक अर्थ बहुसंख्यक विचारों का समर्थन है। प्रायः यह मान लिया जाता है कि बहुसंख्यकों के विचारों में अनिवार्य श्रेष्ठ गुण होता है। सर्वोदय इस धारणा का समर्थन करता है। यदि यह स्वीकार कर लिया जाए कि समाज एक अवस्था की व्यवस्था है और उसके सभी सदस्य व्यक्तिगत रूप से नैतिक तथा आध्यात्मिक गुणों के बाहुल्य होते हैं, तो निम्न से निम्न और अधिकतर में अधिकतर व्यक्ति के जीवन और अधिपत्य की जोशिव म मानने का कोई आधार नहीं हो सकता। कोई व्यक्ति किसी विशिष्ट समूह के सदस्य के रूप में मजबूत होते अथवा किसी दल का सदस्यता गुण देने से बहुसंख्यक अपना असमर्थता बन सकता है। किन्तु यदि राज्य की सर्वोदय सिद्धांत माना जाए और हर सदस्य के मत, इच्छा और आवश्यकता को मूलभूत समानता माना जाए तो ऐसी स्थिति में बहुमत के आधार पर नहीं बल्कि समसम्पत्ति के आधार पर कार्य करना होगा। विवाद और विचार-विमर्श आवश्यक हैं किन्तु अंत में एक और विचार के द्वारा आध्यात्मिक समाधान और आधारभूत न्याय आवश्यक हो अन्त हो जायगा। सामाजिक वास्तविकता यह नहीं सही तरीका है, इतिम

लिए प्राप्त है तो राज्य और 'बाग की रक्षा के हेतु' यह अपने जन्मसिद्ध अधिकार सत्याग्रह का प्रयोग करने का हकदार है। राजनीतिक प्रतिरोध की धारणा का होटना, नाशियन, यूरो और लास्की ने अक्षत समर्थन दिया है। टी एच वीन ने राजनीतिक प्रतिरोध का इस बात पर समर्थन दिया है कि पहले सभी घातित्वपूर्ण तरीका का प्रयोग कर लिया जाय, लोकमत समस्याओं के महत्व के प्रति शक्य हो, और विप्लव को रोकने के लिए तयार कर लिये गये हों। जब माक्सफर्ड विश्वविद्यालय के छात्रावरण में रहते वाला उसका प्रत्येकवादी प्रोफेसर प्रतिरोध का समर्थन कर सकता है तो गरीब समाज में नहीं जाता कि भारतीय लोकतन्त्र के प्रसार में सत्याग्रह का विशेष बड़े विद्या का स्वतन्त्रता है। सत्याग्रह मानव आत्मा की सम्पत्ति, वैदिक स्वतन्त्रता तथा आध्यात्मिक मूल्यों की रक्षा करने की उचित वागवधि है। यदि सर्वोदय के समर्थक सत्याग्रह के महत्व को कम करना चाहते हैं तो मेरा विश्वास है कि वे ऐसे विद्वानों का प्रतिपादन कर रहे हों जो गांधीवादी दृष्टिकोण के विपरीत हैं।

5 निष्कर्ष

सर्वोदय का राजनीतिक दशन सर्वप्रथमर्थात् आधार पर राजनीतिक तथा सामाजिक मुद्दों विमर्श की पोटला को निमित्त करने का एक दार्शनिकी बौद्धिक प्रयत्न है। यह गांधीजी की अठ-ह पिट पर आधारित है। यह स्वतन्त्र मानव की व्यवस्था के अन्तर्गत गांधीजी के विचारों को विकसित करने का एक निर्दोष प्रयत्न है। गांधीजी धर्मराज के समर्थक थे। वे हिंसा की प्रोत्साहन करने आधुनिक वादवाच्य लोकतन्त्र के बहुत तथा अवकाश आलोचक थे। सर्वोदय ने गांधीजी के विवेकीकरण तथा धर्मराज के सम्बन्धित विचारों को विकसित करने का प्रयत्न किया है। यद्यपि सर्वोदय ने विवेकीकरण का आदेश गांधीजी ने दिया है किन्तु उसकी दलविहीन लोकतन्त्र की धारणा राजनीतिक चिन्तन को एक नीतिक योगदान है। हा यह सम्भव है कि उसने यह धारणा यूरोपवादिता की सम्पूर्णता पार्टी की विचारधारा के ग्रहण की हो।²² फिर भी भारतीय राजनीतिक चिन्तन तथा व्यवहार के दृष्टिकोण से दलविहीन लोकतन्त्र तथा धर्मराज का सम्बन्ध एक महत्वपूर्ण योगदान है।

सर्वोदय ने केन्द्रीकृत राज्य व्यवस्था के विरुद्ध संयुक्त की जो मांगना व्यक्त की है यह हम उन व्यवहारवादी तथा बहुलवादी विद्वानों का समर्थन दिखाती है जो प्रथम विश्वयुद्ध के बाद पश्चिम के देशों में एक चरम बन गये थे। भारत में निरंकुशता के परम्परागत शासक-विद्या पुरानी है। यह सम्भव है कि स्वतन्त्रवादी राज्य तथा समाजवादी समाज के आदर्शों की आश में हम केन्द्र-नीतिक तथा आर्थिक केन्द्रीकरण के साथ पर अग्रसर होते जायें जो अन्त में हम केन्द्राकर अधिना-कसत्रण के पक्ष में पड़क दे। सर्वोदय हमें राजनीतिक शक्ति के केन्द्रीकरण के विरुद्ध चेतावनी देने का प्रयत्न करता है। सर्वोदय आन्दोलन में हम राजनीतिक शक्ति के केन्द्रीकरण तथा वैयक्तिक स्वतन्त्रता के शत्रुओं के विरुद्ध चेतावनी देकर हमारे अन्तर्गत लोकतान्त्रिक गणतन्त्र की महत्वपूर्ण सेवा की है। भारत को इसका अर्थ अर्थों अर्थों की क्षीण प्रतिस्पर्धा नहीं बनना है। दलितवादी राष्ट्र के विमर्श के लिए आवश्यक है कि हमारी अपनी योग्यता परम्परागत है। सर्वोदय आन्दोलन भारतीय संस्कृति एवं दशन के अर्थ तथा उन्नत आदर्शों का सूत्रक है। धारणाएं देना न समाज धारित्वों तथा राजनीतिक समानता के दृष्टिकोण से राजनीतिक दल की समर्थकता न इतना अनुचित कर दिया है कि उन्होंने लोकतन्त्र की स्तिम द्वारा की सभी परिभाषा में सम्पूर्णतापूर्ण विन्यास करना छोड़ दिया है। एक समाजवादी ने तो यहाँ तक कह दिया है कि लोकतन्त्र शासन की पद्धति नहीं है बल्कि यह नियम करने का तरीका है कि लोक और निम उद्देश्य के लिए शासन करना। इस बात में सत्य बौद्धिक निष्पक्षता देखने को मिलती है विचारों की लचीलता का अभाव है और सोचा न व्यवस्थित के सामान सम्भव करने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। क्षी सामान में सर्वोदय के सद्भावपूर्ण स्वभाव के अर्थ गांधीवादी स्वयं का स्थापन करने का प्रयत्न कर रहे हैं

22 अर्थात् कि उन के अर्थों और न मूल रूप पर धार के की दलविहीन लोकतन्त्र का समर्थन किया था। सर्वोदय ११८ एवं १२० पृष्ठ पर सम्भव है।

आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन

—धीरे स्वराज्य का अर्थ है व्यापक रूप में व्यक्ति का स्वयं अपने ऊपर शासन। यह अर्थ है कि राजनीतिक दलन को साक्षात्कृत करने के लिए सम्पूर्ण नीतिक चिन्तन तथा सामाजिक राजनीतिक प्रयोग की आवश्यकता है। इसे वाक्य है कि हम अपने देश की तक इस दलन को व्यापकता के साथ न दे सकें, फिर भी मुझे सर्वोदय की इस धारणा से सम्पूर्ण प्रेरणा मिली है कि लोकतांत्रिक की समस्त स्वशासन की कला के रूप में प्रयुक्त करना है। बीसवीं सताब्दी में सम्भवतः यही एक ऐसा राजनीतिक दलन है जिसका अर्थ है कि लोकतांत्रिक तथा बरीदा नीति के स्वशासन को साक्षात्कृतता का रूप देना है। यदि हम राष्ट्रीय अधिनायकत्व, राज्य के विरुद्धवाद तथा मुक्ति के आधिपत्य की पुरानी रुढ़िया से चिपके रहे तो उसमें किसी भी प्रकार के लोकतांत्रिक को सुलभ बनाना है। इस देश का स्वराज्य के प्रथम नागरिक के लिए स्वराज्य तथा लोकतांत्रिक को सुलभ बनाना है। इस देश का हर नागरिक, बल्कि सम्पूर्ण विश्व का हर नागरिक एक व्यक्ति होता है। मैं सर्वोदयी राजनीतिक चिन्तन की सम्पूर्ण नागरिक तथा नीति-गुणों से सहमत नहीं हूँ, फिर भी उसका व्यक्ति के स्वतन्त्रता को वास्तव में साक्षात्कृत करने का आधारभूत तथा नातिक्रमों मकर प्रेरणादायक है। उसका स्वयं नियंत्रण ही संपूर्ण प्रदान करता है।

भारत में साम्यवादी आन्दोलन तथा चिन्तन

1 भारत में साम्यवादी आन्दोलन

भारत में साम्यवादी आन्दोलन का जन्म नवम्बर 1917 की बीतलेखित रात्रि के बाद के युग में हुआ।¹ इस आन्दोलन के सम्पूर्ण प्राच्य जगत में मजबूत विस्फोटक परिणाम हुए थे। दलित तथा शोषित वर्ग मानसों का एक नया स्वयं सम्भले लगे और वैयक्तिक की एक नये वितामह और मनीह्रा के रूप में बूजा करने लगे। सुन-बाल सेन, मानवद्वन्द्व राय हो भी सिंह, माओसे युग, चाऊ दन साई, जवाहरलाल नेहरू आदि प्राच्य के महत्त्ववादी राजनीतिक नेताओं की कल से प्रेरणा मिली और वृद्धि जगत के परम्परागत तथा पश्चिमतवादी देश में मानववादी वैयक्तिकवादी विचारधारा प्रवेश करने लगी। मानवद्वन्द्व राय भारतीय साम्यवाद के संस्थापकों में से थे। उन्होंने साधारण में कुछ लोपी की मानववादी सिद्धांत सिखाने का प्रयत्न किया था। छात्रादी के लोपी इसकी में राय न अपनी मौखिकी रचनाओं के द्वारा कुछ अन्य भारतीय तरफा भी मानववादी विचारधारा में दीक्षित करने का प्रयत्न किया। अरानी मुनशी, नलिनी गुप्त आदि कुछ अन्य मुनशी के मास्को के प्राच्य विद्यापीठ में मानववाद की दीक्षा ग्रहण की। 1928 में राय की साम्यवादी अन्तर्राष्ट्रीय (कम्युनिस्ट इंटरनैशनल) से निकाल दिया गया। तब से भारत के साम्यवादी देश में जनता प्रभाव करने लगे। लाला हरदयाल तथा लोहनसिंह के भारत के लिए स्वतंत्रता प्राप्त करने के हेतु रूसीकोनिया में मदर पार्टी की स्थापना की। इसमें अधिकतर निम्न कम्युनिस्ट थे। तीसरे दशक के प्रारम्भ में मदर पार्टी के छात्रोत्साह रत्नसिंह, गुरुमुखसिंह आदि कुछ सरस्य मास्को गए और साम्यवादी अन्तर्राष्ट्रीय के बहुत सम्मेलन में सम्मिलित हुए। वहाँ उन्होंने सोवियत संघ का सम्मेलन करने का वचन दिया। 1921 में मोरार जीराभावाय, भूराद दत्त, श्री छात्रोत्साही तथा नलिनी गुप्त आदि कुछ अन्य व्यक्ति मास्को पहुँचे। उन्होंने अपने भी साम्यवादी चलताया। सम्मेलन के दीर्घत समय होने, जिसका जन्म 1899 में हुआ था एक 'पुराने मौखिकी' है,² और रजनी पामदत्त विदेशों में भारतीय साम्यवाद के प्रमुख प्रभावता तथा भारतीय साम्यवादियों के गुरु और प्रभावदायक रहे हैं।

1924 में सम्भवत उत्तर प्रदेश के सरपंच के अधिपति में भारतीय साम्यवादी देश की स्थापना हुई।³ यद्यपि जन्म से ही भारतीय साम्यवाद भी प्रेरणा का सात रूप रहा है, फिर भी

1 एक देश, *Historical Development of the Communist Movement in India* (नवम्बर 1944)। एक देश में भारत में अन्तिमारी साम्यवादी देश का उद्भव किया था। व दन दन राय न बत किया था।

2 एम ए लाले, *Gandhi and Lenin* (1921)

3 भार पामदत्त, *Modern India*

4 मुनशीर महन्, *The Communist Party of India and Its Formation Abroad* (नवम्बर, नवम्बर 1962)। मुनशीर महन् का वचन है कि भारतीय मानववाद देश की स्थापना देश का बहुत हुए थे, और 1921 में उसे साम्यवादी अन्तर्राष्ट्रीय के सम्मेलन किया गया था। उनका वचन है कि साम्यवाद देश

अपने प्रारम्भिक काल में साम्यवादी आन्दोलन ने राष्ट्रीय मुक्ति-युद्ध में अपना सम्बन्ध रखा। कानपुर दसवें अभियान में श्रीराम दास, जिनकी मृत्यु, मुजफ्फर अहमद तथा सीतल उन्मानी— इन पाँच व्यक्तियों पर मुकद्दमा चलाया गया था और राजपूताना के अग्रजों में उन्हें दण्ड दिया गया था। कानपुर दसवें अभियान का भारत में साम्यवाद की प्रगति पर अतिशय प्रभाव पड़ा। 1929 में गैररक्त पद्धति अभियान चला। उग्रम श्रीराम अग्रज दास, राम जी पाट, जयपुरकर, विजयकर, निरंजनकर, सीतल उन्मानी, विजय रामदास, बदन, मुजफ्फर अहमद आदि 11 दण्ड में अधिक स्थिति दण्ड में। उन्हें सम्ये वाराणसी का दण्ड दिया गया।

1926-27 में आज एसीमन, विजय रामदास आदि कुछ व्यक्ति साम्यवादी भारत आए। उनके साथ एक सफलतावादी साथ था एक पारसी मजदूर भी आया। वे ब्रिटिश संसद के लिए किया चला कर विजय मने थे। उन्होंने महाराष्ट्र का भी न साथ विचार विमता किया।

सितम्बर 1, 1928 का साम्यवादी अंतरराष्ट्रीय न उन्हें विजय-असमेलन में औपनिवेशिक देशों के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव पारित किया गया। उनमें कुछ अंग इस प्रकार हैं— “भारत, मध्य आदि न लिए आवश्यक है कि वहाँ की जनता का राष्ट्रीय-मुक्तिवादी सम्बन्ध न प्रभाव से मुक्त किया जाय। इस हेतु साम्यवादी देश तथा संस्थाओं का समर्थन तथा निम्नलिखित कार्य प्रारम्भ करना होगा, और उसके लिए ब्रिटिश वरिष्ठों की आवश्यकता है। सभी इन देशों में सफलता की कुछ आशा न साथ उन वर्षों की कुछ करने के लिए आज बहुत सम्भव हो सकता है कि वह भी बहुत बृहत् के बाल में ही कुछ कर चुका है। यह आवश्यक है कि भारत, मध्य, इन्डोनेशिया आदि उपनिवेशों की जनता को, वर्तमान परिस्थितियों के अनुकूलित सभी साम्यवादी राजनीति के द्वारा सहायता दी जाय जिससे वह अपने को स्वतन्त्री, अपनी आदि सम्बन्धीय देशों के प्रभाव से मुक्त कर सकें। यह भी आवश्यक है कि साम्यवादी देश तथा राष्ट्रीय-मुक्तिवादी विरोधी देशों में भी कोई संघर्ष न किया जाय। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि उनके साथ अपवादी सम्बन्धों में बिना कार्य अथवा विभिन्न देशों के निरिक्त साम्यवाद विरोधी प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में युक्त-युक्त वर्षों में तत्परेन स्थापित न किया जाय। लेकिन यह यह है कि सम्बन्धीय विरोधी देशों के इन प्रवृत्तियों की जन-आन्दोलन की दृष्टि के लिए प्रयुक्त किया जा सके, और साथ ही साथ इन सम्बन्धीय साम्यवादी देशों की जनता में तथा सम्बन्धीय संस्थाओं में प्रचार-काय करने की सफलता पर किसी प्रकार का अग्रज न लगाया जाय। मूलतः भारत में राष्ट्रीयवाद धर्म में मुनपाठकेवाद और इन्डोनेशिया में सवेरत इस्लाम आदि आन्दोलन भी उन विभिन्न सम्बन्धीय विचारधारात्मक आन्दोलन थे, बाद में उन्होंने सम्बन्धीय राष्ट्रीयवादी मुक्तिवादी आन्दोलनों का रूप धारण कर लिया।”

1934 में भारतीय साम्यवादी देश पर प्रतिबंध लगा दिया गया जो जुलाई 1942 तक बरामब रहा। 1935 में साम्यवादी अंतरराष्ट्रीय ने संयुक्त मोर्चे की नीति अपनायी। उसी और पर इस नीति का अर्थ यह था कि राष्ट्रीयवाद के अन्तर्गत के विपक्ष सभी मानवकी प्रतिपक्षों को मजबूत किया जाय, किन्तु अवस्था में यह साम्यवादीयों द्वारा अन्य मानवकी तथा समाजवादी देशों और मोर्चों का दृष्टि देने की आवश्यकता सिद्ध हुई। विजय मध्य युरोप में संयुक्त मोर्चों की नीति कार्यविधि की जा रही थी उन दिनों भारतीय साम्यवादियों ने भी राष्ट्रीय का मार्ग का समर्थन किया। 1936 में एक जी. एम्. नया महानाल मरसबरी (1888-1950) ने अन्तिम भारतीय विमान सेवा का प्रारम्भ किया। साम्यवादियों ने उस पर अपना नियन्त्रण कायम करने का प्रयत्न

को अपनाया 1920 का न-न का अन्तर्गत अन्तिम रूप में हुई थी। लेकिन उन्हें यह विचार है कि साम्यवादी देश की अन्तर्गत 1921 में अन्तर्गत न की गयी थी।

5 विजय रामदास व अन्य का मुकद्दमा एक विमान दण्ड (कमल एम्. वरिष्ठ पाटी) की मजदूर बलात्कृत न महाराष्ट्र का थी।

6 एक जी. एम्. *Asian and Communist* (सम्पादक)।

7 काली महाराष्ट्र व महाराष्ट्र का औपनिवेशिक (पटना 1952)

किया, और बुनियाँ 1940-1941 में⁸ सहजानन्द पर साम्यवादी विचारधारा का प्रभाव का इस्तिलाफ़ ने साम्यवादी विचारों तथा पर अपना अधिकार जमाने में सफल हुए।

रूस ने युद्ध में प्रवेश करते ही साम्यवादियों में प्रभावशाली दिखलाई। उस समय तक वे द्वितीय विश्वयुद्ध की साम्राज्यवादी युद्ध कहते आये थे और उसका विरोध करते आये थे। विन्तु अब उन्होंने उस लोकयुद्ध को पवित्र कर दिया। फासबेस्वत भारत सरकार ने उनका सम्मान प्राप्त करने का प्रयत्न किया। 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के दौरान जब कांग्रेसी नेता बाराक में थे और ब्रिटिश सरकार राष्ट्रीय शक्ति का कुचलन के लिए दमक और जातक की नीति का अनुसरण कर रही थी उस समय साम्यवादियों ने अपनी शक्ति बड़ा ली। कहा जाता है कि 1942 में उनके सदस्यों की संख्या केवल 2,500 थी विन्तु आग चलकर वह 30,000 तक पहुँच गयी। युद्ध के दौरान साम्यवादियों ने अनुसूचित के साथ अधिक भारतीय विमान तथा पर भी अधिकार कर लिया।

1948 में साम्यवादी दल ने दक्षिण में हिन्दुस्तान काम्यवादियों की। विन्तु उस प्रधानमंत्री सरदार पटेल ने उनके विरुद्ध कठोर वाकबाहो की। फरवरी 1950 में सरदार पटेल के अनुरोध पर सरकार ने विद्रोहग्रस्त काम्यवादियों का राजन के लिए निवारण नज़रबंदी बनाना पास कर दिया।

1950 के बाद साम्यवादी दल ने अपने को जनता के दल के रूप में निर्मित करने का प्रयत्न किया है जिससे कि वह सामूहिक कार्यवादियों के साथ और अधिकता तथा किसानों की सम्बन्धित करने में सफल हो सके।⁹ 1951 में साम्यवादी भारतीय संसद में एक सदस्यवादी प्रतिपक्षी युद्ध के रूप में काम करते आये हैं।¹⁰ 1951-52 के आम चुनाव में साम्यवादियों की साठ लाख मत और 1957 के आम चुनाव में एक करोड़ बीस लाख मत प्राप्त हुए। दिसम्बर 1952 में नृपन आश्रम राज्य बनाने के प्रयत्न की लेकर सीताराममुनि ने भूख हड़ताल की और फासबेस्वत उनकी मृत्यु हो गयी। उस अवसर पर साम्यवादियों ने सीपन दण्ड करवा दिया और केलेपु जनता को आर्थिक शक्ति का अधिकार प्राप्त करने का प्रयत्न किया। 1954 में पंडित नेहरू ने लोकियत का भी नामा की और भारत-लोकिमत साम्यवादी के पचास सुधार हो गया। साम्यवादियों ने इस बात को हृदयकर्म कर लिया। उन्होंने अपने उस दुराने नार की, कि भारत अभी भी साम्राज्यवादियों का उपनिवेश है, स्थाप किया। उसी समय रूसी इतिहासकारों के काफी भी भूमिका का पुनर्निर्माण किया और जिस व्यक्ति को एक समय पूँजीपतियों का नेता कहा जाता था उस अब जनता के लिए सत्य करने वाला माना जाने लगा। अगस्त 1957 में साम्यवादियों के फेरल में साम्यवादी तरीकों में शक्ति प्राप्त कर ली। उनकी सफलता से उनका जागरणबोध बहुत बढ़ गया। विन्तु अक्टूबर 1959 में साम्यवादी सरकार इस आधार पर हटा ली गयी कि राज्य में साम्यवादी व्यवस्था विफल हो गयी थी, और अनुच्छेद 357 के अन्तर्गत फेरल में राष्ट्रपति का शासन लागू कर दिया गया।

अक्टूबर 1962 में चीनिया ने भारतीय सीमाओं पर जो आक्रमण किया उसने साम्यवादियों के अंत करण को जारी भूलीसी दी। आक्रमण से साम्यवादी दल की एजेंडा के लिए सारा प्रभाव हो गया। पीपुल्स सम्मेलन युद्ध को अपना प्रभाव करने में जारी कहनाह का सामना करना पड़ा। विन्तु उनका रचना विद्रोहग्रस्त रहा है। अब वे पहिली बगल, फेरल और आश्रम में शक्तिवाली होने का दावा करते हैं। उनके का बहुत स्वीकार करने वाले दक्षिणवर्ती साम्यवादी अधिक साम्यवादी हैं। वे पहिली सहीय मार्ग पर अधिक अधिक हैं और सरकारी कार्यवाही की हीनता का उनका दावा नहीं है। वापसी साम्यवादी फाहारा के अधिक निकट हैं, और अभी भी सत्य

8 वह, 'आईन और मनुष्य बोरी' (पटना समर्थी पुस्तकालय 1947)। यह पुस्तक मलिन, सतिस तथा जल मनुष्य की रचनाओं का संग्रहण मात्र है।

9 कान पीन, *Articles and Speeches* पृ 108

10 जगज्जलाल नेहरू ने 7 दिसम्बर, 1950 का संकेत में अपने एक भाषण में कहा था कि भारत सरकार की साम्यवादी दल के अधिक शक्ति हीनता शक्ति नहीं रही है और वे साम्यवादी विचारों का प्रसार नहीं है। (*Jawaharlal Nehru's Speeches*, 1949-1953), पृ 265

अपने प्रारम्भिक काल में साम्प्रदायी आन्दोलन ने राष्ट्रीय मुक्ति-सङ्ग्राम में अपना सम्बन्ध रखा। बालगुरु पदमन अभिषेक में धीमे-धीमे, मणिनी कुल, मुजफ्फर अहमद तथा मोहन उस्मानी— इन चार व्यक्तियों पर मुसलमान बलात्ता तथा का और राजकुमारों के अपराधों में उन्हें दण्ड दिया गया था। बालगुरु पदमन अभिषेक का भारत में साम्प्रदाय की स्थिति पर प्रतिबुद्ध प्रभाव पड़ा। 1929 में मेरठ पदमन अभिषेक हुआ। उसमें धीरे-धीरे अमर दास, एम बी चौध, जालेकर, मिश्र, निराकर, मोहन उस्मानी, किर्तिमय झाट, ब्रह्म, मुजफ्फर अहमद आदि का स्थान है अधिक व्यक्ति वस्तु थे। उन्हें चमक बारातों का दण्ड दिया गया।

1926-27 में आज एलीसन, किर्तिमय झाट आदि कुछ विद्वान साम्प्रदायी भारत आए। उनमें साथ ही सत्तावादी लोग थे एक भारतीय सङ्गठन भी आया। वे विद्वान सङ्घ के लिए निर्वाचित कर लिए गये थे। उन्होंने महारत्ना शास्त्री के साथ विचार विमर्श किया।

सितम्बर 1, 1928 की साम्प्रदायी अन्तरराष्ट्रीय के छठे विद्वान-सम्मेलन में औपनिवेशिक देशों के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव पारित किया गया। उसमें कुछ अर्थ इस प्रकार हैं— "भारत, मिस्र आदि के लिए आवश्यक है कि वहाँ की जनता का राष्ट्रीय-मुधारवादी सम्बन्धों के प्रभाव में मुक्त किया जाय। इस हेतु साम्प्रदायी दल तथा सङ्घर्षों के अधिक तथा की निर्वात एवं समझ बनना होगा, और उनके लिए कठिन परिश्रम की आवश्यकता है। सभी इन देशों में सफलता की कुछ जागा है साथ ही उनकी का पूरा करने के लिए काम करना सम्भव हो सकता है किन्तु चीन बहाल के बाद यह ही पूरा कर चुका है। यह आवश्यक है कि भारत, मिस्र, इरान आदि उपनिवेशों की जनता को, वर्तमान परिस्थितियों के अनुकूलित सभी साम्प्रदायी राजनीति के द्वारा सहायता दी जाय जिससे वह अपने को स्वतन्त्री बनाने आदि सम्बन्धीय दलों के प्रभाव में मुक्त कर सकें। यह भी आवश्यक है कि साम्प्रदायी दल तथा राष्ट्रीय-मुधारवादी विरोधी दलों के बीच कोई गठन-बन्धन न किया जाय। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि उनके साथ स्वतन्त्री सम्प्रदायी न किने कार्य अपना विभिन्न दलों के विभिन्न साम्प्रदायिक विरोधी प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में कुछ-कुछ कार्य में सातमेन स्थापित न किया जाय। लेकिन यह यह है कि सम्बन्धीय विरोधी दलों के इन प्रवृत्तियों का स्व-आन्दोलन की बुद्धि के लिए प्रयुक्त किया जा सकें, और साथ ही साथ इन सम्प्रदायी के साम्प्रदायी दलों की जनता में तथा सम्बन्धीय सङ्गठनों में प्रचार-कार्य करने की सत्ता-सत्ता पर किसी प्रकार का अंकुश न लगाया जाय। मुक्त भारत में राष्ट्रीयवाद चीन में मुसलमानवाद और इस्लामीयों के भारत इस्लाम आदि आन्दोलन भी इस विभिन्न सम्बन्धीय विचार-प्रवाहों के आन्दोलन के बाद के अनुसार सम्बन्धीय राष्ट्रीय मुधारवादी आन्दोलन का रूप धारण कर लिया।"

1934 में भारतीय साम्प्रदायी दल पर प्रतिबंध लगा दिया गया था क्योंकि 1942 तक काम चल रहा। 1935 में साम्प्रदायी अन्तरराष्ट्रीय ने अनुवर्त मोर्चे की नीति अपनायी। अपनी तीर पर इस नीति पर अहम यह था कि एकात्मिक के अन्तर्गत के विरुद्ध सभी सम्प्रदायी स्थितियों का समर्थन किया जाय किन्तु अन्तर्गत के वह साम्प्रदायिकों द्वारा काम सम्प्रदायी तथा समाजवादी दलों की भाँति का हस्त लेन की विकल्प सिद्ध हुई। जिस समय यूरोप में सङ्घर्ष मोर्चे की नीति कायम की गई थी उस दिना भारतीय साम्प्रदायिकों ने भी काम के नीति का समर्थन किया। 1936 में एक की रूप में तथा महानन्द सरस्वती (1888-1950) ने अन्तिम भारतीय विज्ञान समाज का प्रवर्धन किया। साम्प्रदायिकों ने काम पर अपना विचार-प्रवाह काम करने का प्रवर्धन

का स्थापना 1920 के अन्त में साम्प्रदायी स्थिति अनुवर्त मोर्चे की नीति का विचार है कि साम्प्रदायी दल का स्थापना 1921 में काम करने की नीति की।

5 किर्तिमय झाट ने बम्बई के महारत्ना एम ब्रह्म एम (बर्लिन एम-परीक्षा काली) का महारत्ना बनाने का महारत्ना की नीति।

6 एम बी चौध *Nations and Communities* (कलकत्ता)।

7 इसी महारत्ना महारत्ना का चीन का काम (पटना, 1932)।

रिया, और जबकि 1940-1941 में सहायता पर साम्यवादी विचारधारा का प्रभाव का दृष्टिपूर्वक साम्यवादी विचार सभा पर अपना अधिकार जमाने में सफल हुए।

इस के कुछ से प्रेरित करते ही साम्यवादियों ने जनतावादी दिखलाई। उस समय तक ये द्वितीय विश्वयुद्ध की साम्यवादी युद्ध कहते आये थे और उसका विरोध करते आये थे। किन्तु अब उन्होंने उसे लोकयुद्ध घोषित कर दिया। फलस्वरूप भारत सरकार ने उनका सम्बन्ध प्राप्त करने का प्रयत्न किया। 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के दौरान जब कांग्रेसी नेता बारम्बार म थे और विदेशी सरकार राष्ट्रीय शक्तियों की कुचकने के लिए हमल और आतंक की नीति का अनुसरण कर रही थी उस समय साम्यवादियों ने अपनी शक्ति बढ़ा ली। कहा जाता है कि 1942 में उनके सदस्य की संख्या केवल 2,500 थी किन्तु आगे चलकर यह 30,000 तक पहुँच गयी। युद्ध के दौरान साम्यवादियों ने चतुर्थाई के साथ अधिकृत भारतीय विज्ञान सभा पर भी अधिकार कर लिया।

1948 में साम्यवादी दल ने दक्षिण में हिंस्रतापूर्ण कार्यवाहियाँ की। किन्तु उन प्रधानमन्त्री सरकार केले ने उनके विरुद्ध बड़े पैमाने पर कार्यवाही की। जनवरी 1950 में सरकार केले के अनुरोध पर संसद ने विद्रोहात्मक कार्यवाहियों को रोकने के लिए विचारण नगरपाली कानून पास कर दिया।

1950 के बाद साम्यवादी दल ने अपने को जनता के दल के रूप में निर्मित करने का प्रयत्न किया है जिससे कि वह सामुहिक कार्यवाहियाँ कर सके और व्यक्ति तथा किसानों की सहायता करने में सफल हो सके।⁸ 1951 में साम्यवादी राष्ट्रीय संसद में एक महत्वपूर्ण प्रति-पक्षी युद्ध के रूप में काम करते आये हैं।⁹ 1951-52 के आम चुनाव में साम्यवादियों की साठ लाख मत और 1957 के आम चुनाव में एक करोड़ बीस लाख मत प्राप्त हुए। दिसम्बर 1952 में गुजरात राज्य बनाने के द्वारा की लेकर सीतापुराधुन ने पूछ हस्ताक्षर की और फलस्वरूप उनकी मृत्यु हो गयी। उस अवसर पर साम्यवादियों ने घोषण दवा करवा दिया और ठेकेदार जनता की प्रादेशिक शक्ति का अधिकारिक सत्ता उठाया। 1954 में पश्चिम बंगाल ने घोषित कर की यात्रा की और भारत सावित्र सम्प्रदायों के सम्बन्ध सुधार हो गया। साम्यवादियों ने इस बात की हृदयवत्ता कर लिया। उन्होंने अपने उस पुराने सारे की, कि भारत अभी भी साम्यवादियों का उपनिवेश है, स्थापन दिया। उसी समय कर्नाट इतिहासकारों ने गांधीजी की भूमिका का पुनर्निर्माण किया और जिस व्यक्ति को एक समय पूज्यवर्तियों का नेता कहा जाता था उसे अब जनता के लिए सफल करने वाला माना जाने लगा। अक्टूबर 1957 में साम्यवादियों ने केरल में माविधानिक तरीका से शक्ति प्राप्त कर ली। उनकी एकलता से उनका आत्मविश्वास बहुत बढ़ गया। किन्तु अक्टूबर 1959 में साम्यवादी सरकार इस आधार पर हटा दी गयी कि राज्य में साविधानिक व्यवस्था विफल हो गयी थी, और अनुच्छेद 357 के अन्तर्गत केरल में राष्ट्रपति का शासन लागू कर दिया गया।

अक्टूबर 1962 में चीनिया ने भारतीय सीमा-ली पर भी आक्रमण किया उनमें साम्यवादियों ने अन्त करण की सारी प्रयत्नी की। आनन्दन से साम्यवादी दल की एकता के लिए अन्तरा सम्पन्न हो गया। पश्चिम सम्पन्न युद्ध की सम्पन्न सम्पन्न करने में सारी शक्तियाँ का सामना करता पडा। किन्तु जनता रक्षा विद्रोहात्मक रहा है। अब में पश्चिमी सम्पन्न केरल और आन्ध्र में शक्तिशाली होने का दावा करता है। दले का केरल स्वीकार करने वाले दक्षिणवादी साम्यवादी अधिकारवादी सम्पन्न हैं। वे धर्मिक संप्रदायों में एक अधिक सजिव हैं और सदीय सम्पन्नवादी की प्रार्थना का उनका दृष्टांत नहीं है। साम्यवादी साम्यवादी सम्पन्नवादी के अधिकार निश्चित हैं, और सभी की सम्पन्न

8 यह 'अर्थ' और 'सुन्दर' काका (पटना सम्पन्नवादी पुस्तकालय, 1947)। यह पुस्तक अधिक शक्तिशाली तथा अधिक सजिव की सम्पन्नवादी का सारा सारा है।

9 सम्पन्न पात्र, *Articles and Speeches* पृ 108

10 साहजिक सम्पन्न न 7 दिसम्बर 1950 का संसद में अपने एक सम्पन्न में सारा का कि भारत सरकार का साम्यवादी दल में शक्ति शक्ति 'सीकन सम्पन्न सारा सारा' और न सम्पन्न सारा सारा सारा सारा है। (*Janashakti News & Speeches, 1949-1953*), पृ 265

संपन्न की धारणा का समर्थन करते हैं। वे दक्षिणपंथियों का महापद्मवादी बहुकर विदित करते हैं। दक्षिणपंथियों का बहुती संघा न अधिग प्रभाव है। इसने विपरीत वागपथी "भूमि भूमिहीन न लिए का नाश लगाव है, इसलिए मातापार, तलपाना और तनार के कृषि संघा न उनका सक्ति अधिन है।

2 इतिहास ब्रह्म

भारतीय साम्यवादी भावों के इच्छात्मक नीतिवाद और इतिहास की नीतिन व्याख्या का स्वीकार करते हैं। इसलिए वे वन के सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक विकास और राजनीतिन समस्याभा की व्याख्या वन-मध्य व सिद्धांत के आधार पर करते हैं।

वात मास ने तुर्ब मोमन के इस सिद्धांत का विना समीक्षा के स्वीकार कर लिया था कि साम्य साम्यवादी समाज स्वतः-श्चा तथा समानता पर आधारित था। उस समाज में उत्पन्न विनिमय के लिए नहीं होता था इसलिए उसमें न सामाजिक व न मोमन की इस स्थापना की अपनी पुस्तक 'परिवार विजयी सम्पत्ति तथा राज्य की उत्पत्ति' में मोमन की इस स्थापना को स्वीकार कर लिया था कि समुच्च सामाजिक विकास की तीन अवस्थाभा न होकर गुच्छ है—प्राकृतिक, ध्वरता और सम्पत्ता। और इसी आधार पर ऐतिहासिक के सामाजिक विकास का विन विनियत किया। वाने मोमन भाव और ऐतिहासिक के इस दृष्टिकोण को पुच्छ स्वीकार करते हैं, और इसी वन के आधार पर उन्होंने प्राचीन भारत के सामाजिक और सामाजिक विकास का विन प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। उनके अनुसार प्राकृतिक भारत में वने वाने वाने सामाजिक विकास का प्रयत्न किया है। उनके अनुसार प्राकृतिक भारत में वने वाने वाने सामाजिक विकास का प्रयत्न किया है। उनके अनुसार प्राकृतिक भारत में वने वाने वाने सामाजिक विकास का प्रयत्न किया है।

किंतु वाग की यह धारणा निरात भ्रमपूर्ण है कि समुच्चमात्मक तथा आवश्यकतक वन उपमान के हेतु उत्पादन की प्रणाली का प्रतीक है। उनका यह मत उपहासार्थक है कि हवन समाज में सामूहिक वन व उत्पादन मादन की प्रतिस्ति बढने का तरीका था।¹¹ उन्होंने परिवार के विकास के सम्बन्ध में ऐतिहासिक के सिद्धांत की जोरि अथ भ्रमपूर्ण दृष्टिकोण को पुष्टि करने के लिए प्राचीन संहिता के स्तोका की समुच्च व्याख्या कर दावी है। उनकी इस धारणा का भी दोष ऐतिहासिक आधार नहीं है कि पुत्र दास थे।¹² वाग ने अपनी पुस्तक में अधिक वाद-मय तथा महा काव्य स अनेक उदाहरण दिये हैं, किंतु उनका वाग निरात वाग पर आधारित वागिद्वेषपूर्ण वाग सामाजिक इतिहास के कुछ पहलु) स सहस्रता मिल सकती थी।¹³ यह आवश्यक की बात है कि भारतीय साम्यवादी इस पुस्तक के परिचित नहीं हैं। कुछ वन लेखका ने भावने के इस सिद्धांत को स्वीकार किया है कि नीतिन परिस्थितिका नीज का काम करती हैं और विचारधारा उन नीज पर तबे हुए भवन के सहज होती हैं जव उन्होंने सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि सामाजिक, आर्थिक तथा सामाजिक विकास आर्थिक दृष्टिकोण तथा उत्पादन के सम्बन्ध की आवश्यकताभा के

11 वाने India From Primitive Communism to Slavery १ 43
12 वही १ 51
13 वही १ 139
14 वही १ 49
15 वही १ 135
16 वही १ तरवार Sam Aspects of the Earliest History of India (महापद्म गुप्तसिद्धि ३२ 1928)

पत्रस्वरूप हुआ करता है।¹⁷ राहुल साहस्रनाम (1893-1963) ने बताया कि भारत में सामाजिक विकास की प्रक्रिया के मूल में क्या तथ्य ही मुख्य तत्व था। इस तथ्य में एक भारी ब्राह्मण और क्षत्रिय तथा दूसरी ओर समाज के दलित वर्ग थे। ब्रह्मभारत में बौद्ध धर्म की जो कथा आती है उसने सम्भव है राहुल का कहना था कि वह हिमालय की तराई क्षेत्र में प्रचलित बहुपत्तित्व की प्रथा का ही अवरोध थी। उनसे अनुसार प्राचीन श्रुति मुनि शास्त्र-धर्म का क्या बोधक करने वाले बुद्धिजीवी थे। उन श्रुतिवादी मुनियों का नाम सात्यभवाद, पुनन्नगवाद, स्पन, नरन आदि की मिथ्या पारम्पर्य का निर्माण करना था जिससे कि श्रमिक-जन के बोधक की तुलना प्रक्रिया का बौद्धिक जन्म पहुँचाया जा सके। अपनी 'दत्तन दिग्दर्शन पुस्तक' में राहुल ने यह विचार लाने का प्रयत्न किया है कि प्राचीन युग के दार्शनिक सिद्धांत सत्ताधीन आर्थिक परिस्थिति का ही उत्पन्न हुए थे। राहुल की इस मान्यवादी वैज्ञानिक सिद्धांत में अक्षरों बिस्वास था कि धर्म जगत्ता में सिर्फ एक प्रकार की अनीति है और यह जनता के साधन की मदद प्रक्रिया का हिसाने का एक सुरीला है। उन्होंने मान्यवादी इतिहास के क्षेत्र में 'साम्यवाद ही क्या?' मानव-समाज तथा 'इन्द्रावरुण मोर्तिरवाद' नामक तथ्य प्रकाश की रचना की। उनसे अनुसार बुद्ध एक ऐसे तत्त्ववादी थे जिन्होंने उपनिषद् के ब्रह्मवाद की सीख का ध्वस्त करने का प्रयत्न किया। राहुल की मूल बौद्ध कथा का अच्छा ज्ञान था, किन्तु बादकारण, सामाजिक तथा राजनीतिक विज्ञान और अवधारण के सम्भव में उनकी जानकारी एक बख्तर की जानकारी के अधिन नहीं थी। इसलिए राजनीतिक तथा आर्थिक क्षेत्र में उनका प्राचीन भारतीय सन्धुति का उपहास करने के अतिरिक्त कोई योगदान नहीं है।

साम्यवादियों की दृष्टि में गांधीवादी आन्दोलन पुर्वोपनिषद् धर्म का आन्दोलन था। उसका उद्देश्य था कि विदेशी साम्राज्यवादियों के हाथ से राजनीतिक शक्ति छीन ली जाए और उसका प्रभाव पुर्वोपनिषद् के सिद्धांत की रक्षा करने के लिए किया जाए। उन्होंने गांधीवाद की यह कहकर प्रस्ताव की कि यह एक कम-सहजोब की विचारधारा है, और अहिंसा तथा 'वास्तवशक्ति' (इंटीरिफि) का उपयोग केवल सहायक शक्ति की उपस्था की शक्ति करने का प्रयत्न करती है। यह साम्यवादियों के अनुसार गांधीवाद सहायक के उद्देश्य का धारण था। उसका अहिंसा का सिद्धांत मानव-के इस सिद्धांत का विरोधी था कि हिंसा नवीन समाज के जन्म में धर्म का काम करती है।¹⁸ साम्यवादियों की नेहरू के विचारों की उपस्था में विश्वास नहीं था। प्रारम्भ में उनकी इच्छा थी कि नेहरू

17 मानव जन की एक पुस्तक है। देवीप्रसाद शर्मासमय *Lokajana*, पृ. 696 (पि.सी. कोरुम रॉ बलिन हार्वेड, 1959)। इन पुस्तक में तथ्य यह मानकर कहा है कि अक्षरों के धर्म में एक आर्थिक प्रकार की बौद्धिकवादी विकासवादी प्रवृत्ति थी। तथ्य यह था कि सत्य यह है कि भारत में धर्म का उद्भव एक आर्थिक बौद्धिकवाद का विकास का प्रयत्नकृत हुआ था। बौद्ध बौद्धिकवाद सत्य का भी आधार था। उनसे यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि भारत में शक्ति और शक्ति का जो सम्बन्ध था वह सही है। उसका आधार यह सामाजिक व्यवस्था की विचार सिद्धांत का सामाजिकता की जाती थी। उसी समय लक्ष्य विचारों में अहिंसा और शक्ति है कि अहिंसा व्यवस्था का वह परिणामित उत्पन्न कर दी जो विचार सही की सामाजिकता की सही। तथ्य में शक्ति का शब्द 'अहिंसा' व्यवस्था का और शक्ति धर्म का अनुमान के साथ उल्टा है। कि यह कहना सत्य है कि शक्ति व्यवस्था का अनुमान की व्यवस्था की। यह मानक का मत है कि सत्य सामाजिक धर्म में सामाजिक व्यवस्था का व्यवस्था का शक्ति की सामाजिकता का शक्ति का प्रतीक है। फिर की 'वैद्य' पुर्वी जीवन और जीवन के पुर्वी जन्म जीवन के प्रत्यक्ष जन्म करता है। वैद्य का मत है कि एक पुर्वी की सत्य लक्ष्य शक्ति के पुर्वी में जन्म का जन्म का जीवन की *Aschylus and Athens* तथा *Studies in Ancient Greek Society* (न्यूयॉर्क, 1949 और 1955) और विचारों की *The Mothers* का नाम 'एनरिचम की Mother Right in India' (1941) और जार्ज मीरुन की *Science and Civilization in China* में उल्टा की है।

18 सामाजिक सन्धुतिवादी का मत है कि के अति इतिहास अनुभव सामाजिक इतिहास के साथ साथ बढ़ता रहा है। 1954 के बाद बौद्धिक लक्ष्य में ब्रह्मवाद का धर्म के विचार में अक्षरों दृष्टिकोण उत्पन्न किया है। अब के उद्भव सहायक के सिद्धांत का ब्रह्मवाद विचारों की शक्ति अहिंसा और शक्ति विचार है कि का शक्ति के अति शक्ति शक्ति का शक्ति की थी। इस एक एक सामाजिकवाद तथा जीवन पुर्वी की रचना का सामाजिक का शक्ति का अति शक्ति शक्ति विचार कहा है और उद्भव भारत के सामाजिक शक्ति विचार की पुर्वोपनिषद् में समाज का प्रभाव किया है।

1948 में साम्यवादी दल ने अपने द्वितीय सम्मेलन में अपना कार्यक्रम प्रकाशित किया। उसकी मुख्य धाराएँ निम्नलिखित हैं

- (1) राष्ट्रपुनर् संरचना का सम्मेलन विच्छेद करना,
- (2) आगत अमरीकी साम्राज्यवाद के साथ सहयोग न करना,
- (3) भारत तथा पाकिस्तान के बीच सहयोग,
- (4) वयस्क सत्ताधिकार तथा सत्ताधारी प्रतिनिधित्व,
- (5) जनजातीय तथा पिछड़े वर्गों को समान लोकतांत्रिक अधिकार,
- (6) किसानों के लिए समान लोकतांत्रिक अधिकार,
- (7) निःशुल्क शिक्षा का अधिकार,
- (8) राष्ट्र आत्मिया के लिए अल्पसंख्यकों का अधिकार तथा 'ऐच्छिक मासुपीय शक्ति',
- (9) स्वायत्ततापूर्ण मापदण्डों का अर्थ
- (10) भूतपूर्व देशों राज्यों का उनकी जनता की इच्छा के अनुसार भारत अथवा पाकिस्तान में प्रवेश न कि बाहर की इच्छानुसार प्रवेश,
- (11) जमींदारी का उन्मूलन रूपों की व्यवस्थाओं का उन्मूलन, सुदृष्टापी का अर्थ,
- (12) राज्य द्वारा विदेशी बैंक, औद्योगिक तथा वित्तीय संस्थानों, व्यापारों, सड़कों आदि का प्रत्यक्ष किया जाना तथा उनका राष्ट्रीयकरण
- (13) बड़े उद्योगों, बैंक, वीथी सम्पत्तियों का राष्ट्रीयकरण और धनिकों द्वारा उन पर नियन्त्रण की मांगों,
- (14) आठ घंटे का दिन,
- (15) आर्थिक नियंत्रण,
- (16) दमनकारी कानूनों को रद्द करना,
- (17) लोकशाही प्रशासन का उन्मूलन, तथा
- (18) जनता को अल्प संख्या में सुसम्पन्न करना।

साम्यवादियों को सदीय लोकतांत्रिक प्रणाली के सहानुभूति नहीं है। यह सत्य है कि जातीयता की दृष्टि से उद्धार के समर्थन तथा चुनाव बढ़तियाँ की अन्तर्गत लिया है किन्तु स्वभावतः उद्धार कोविमता पर आधारित जनता के लोकतांत्रिक राज्यों में विस्तार है। वर्तमान में उद्धार के समर्थन के अन्तर्गत राज्य को उद्धार के लिए देशव्यापी विद्रोह की आवश्यकता का विश्वास कर दिया है। किन्तु वह भी संशय के तहत ही है कि उद्धार के अन्तर्गत होती है, और उद्धार कहना है कि भोज के सामान्य लोगों में निवासों की अन्तर्गत कुछ प्रणाली की भी जीत हुई उसमें जाति-धर्म तथा दृष्ट कोविमता विद्रोह के निवारण कोविमता का। प्रथम आम चुनाव से पहले साम्यवादी दल ने भीमता की भी, दल का यह धारा होना चाहिए कि वर्तमान सरकार को जाना है और उसके समर्थन पर एक एही लोकतांत्रिक सरकार की स्थापना करनी है या लोकतांत्रिक शक्तियों की एकता का प्रतिनिधित्व करती ही, या विद्रोह साम्राज्य के अन्तर्गत सम्मेलन तथा निःशुल्क शिक्षा तथा लोकतांत्रिक कार्यक्रम का कार्यक्रम कर सके। उस (दल की) आकांक्षी आम चुनावों का अपने कार्यक्रम का व्यापार प्रचार करने, लोकतांत्रिक शक्तियों को सशक्त और सक्रिय करने तथा वर्तमान सरकार की नीतियों का प्रचार करने के लिए प्रयोग करना चाहिए। उसे जनता का उसके दिन-प्रतिदिन के समर्थन में प्रेरित करना है और उसे नरम-नरम आम से चलना है जिससे यह स्वयं अपने अनुभव का द्वारा प्रचार शक्ति की आवश्यकता तथा अविचारधारा का समर्थन है। पार्टी का यह प्रकार नहीं करता है कि लोकतांत्रिक शक्ति है। उसकी चाहिए कि वह में जो व्यापक लोकतांत्रिक विचारधारा फैली हुई है उसका जनता को सक्रिय करने के लिए प्रचार कर जिससे वर्तमान सरकार की लोकतांत्रिक की आरंभ बढ़ती हुई शक्ति को रचना का सके। दिन प्रति दिन प्रेरित तथा अविचारधारा का करने, जनता की मांग का सहस्रगुण समर्थन करके और उसके सभी वर्गों का आर्थिक समर्थन

सही नेतृत्व प्रदान करके अपनी शक्ति में वृद्धि कर सकता है और जनता के लोकतांत्रिक आंदोलन के संगठनकर्ता तथा नेता की भूमिका असा कर सकता है।¹

साम्प्रदायी दल ने भारतीय समाजवादीक परिवर्तन की आलोचना की थी। वह उस कभी दाने और पुनर्विनिर्माण का परिवर्तन मानता था। उसने परिवर्तन के तकससालीन परिवर्तन का भी विरोध किया है क्योंकि उसके विचार में इससे लोकसत्ताही की अपनी शक्ति की वृद्धि करने में सहायता मिलेगी। दल का कहना है कि परिवर्तन का उद्देश्य अथवा य, भूमि तथा सभी पर सभी दावा, राजाओं तथा साम्राज्यवादियों का शिकवा मजबूत करता है। वह इस बात की भी आशा बना करता है कि परिवर्तन में अतिके तथा बेतनमोषी कभी के लिए हस्तगत करने, निर्वाह योग्य बेतन, काम तथा विभाग की पारदर्शी नहीं है। वह चाहता है कि इन अधिचारों को नाश करने के लिए 'वास्तविक उत्पत्ति' की व्यवस्था होनी चाहिए। साम्प्रदायी दल परिवर्तन, सामंतीय तथा प्रजासत्ताक स्तर पर निम्नलिखित सुधार का समर्थन करता है

(1) जनता का प्रत्यक्ष अर्थात् देश की जनता के हामी में शक्ति का केंद्रीकरण। राज्य की सर्वोच्च शक्ति प्रजा जनता के प्रतिनिधियों के निहित होगी। वे प्रतिनिधि जनता द्वारा निर्वाचित होंगे, और उन्हें बहुमस्तक निर्वाचकों की भाव पर किसी भी समय वापस बुलाया जा सकेगा। व एक ही लोकसभा राजा, अथवा एक ही विधानी सदन के रूप में काम करेंगे।

(2) समाज के राष्ट्रवाद के अधिचारों पर नियंत्रण, जिससे राष्ट्रवाद अथवा उनके द्वारा अहितकारी शक्तियों की उन कानूनों की लागू करने में बाधित कर दिया जायगा जिन्हें विधानसभा ने पारित नहीं किया है।

(3) भारत के उन सभी दुर्गम और सभी नागरिकों की जा अछाहू कय के हा मुक्त है, विधान सभा तथा विभिन्न स्थानीय विधानों के निर्वाचन में सामंतीय, सत्तान तथा प्रत्यक्ष सत्तान का अधिचार, दुर्गम सत्तान, इन शक्तियों की किसी भी प्रतिनिधि सभा के लिए निर्वाचित होने का अधिकार, जनता के प्रतिनिधियों की बेतन, सभी चुनावों के राजनीतिक कर्मों का समानुपाती प्रतिनिधित्व।

(4) असाधक बेतान पर स्थानीय सत्तान, और जनसंघितियों द्वारा स्थानीय विधानों की विस्तृत शक्तियाँ। ऊपर के नियुक्त किन पर सभी स्थानीय तथा प्रांतीय अधिकारी कर्मों का प्रभुत्व।

(5) शरीर तथा अधिचारों की मतभेदता, विवेक, साधन, प्रेस, तथा हस्तगत तथा मय निर्वाच की अनसंघित स्वातंत्रता, आवागमन तथा व्यवसाय की स्वतंत्रता।

(6) सभी नागरिकों की मय, शक्ति, तिव महल अथवा राष्ट्रवाद के उद्देश्य के विना, सत्तान अधिकार, तिव भेद के विना सत्तान कर्म के लिए सत्तान बेतन।

(7) सभी राष्ट्रवादियों की अलग विचार का अधिकार। भारतीय समाज एक सम्मिलित राज्य की रचना के लिए भारत की विभिन्न राष्ट्रवादियों की जनता की अपनी प्रतिज्ञा सत्तान के आधार पर समुक्त करेंगे, न कि मय प्रभाव के द्वारा।

(8) समान भाषा के सिद्धान्त के आधार पर सभी रिवाजता का राष्ट्रीय राज्या में विवाद करने सत्तान वृद्धिमान अथवा राज्या का पुनर्निर्माण। उक्त जनसंघितों को अथवा उन क्षेत्रों का, जिसकी जनसंख्या की संख्या विभिन्न प्रकार की है और विभिन्न सामाजिक तथा है अथवा की एक राष्ट्रवादी व्यवस्था के रूप में समर्थन है, कुछ अतिरिक्त स्वायत्तता और प्रदर्शित साधन प्राप्त होगा।

(9) उद्योग, कृषि तथा व्यापार पर उत्तरीयार सत्तान आध-पर तथा अधिचार, विधान और विधानों का कर में अधिचारिता छट।

(10) 'गोपी' का अपनी राष्ट्रीय भाषा की सहायताया में निष्ठा पात्र का अधिकार, सभी

सांस्कृतिक तथा राजनीय सुस्थाओं में राष्ट्रवादा का प्रयोग। हिन्दी का एक अधिकृत भारतीय राज्य भाषा के रूप में प्रयोग अनिवार्य नहीं होगा।

(11) सब जाति को किसी भी अधिप्रायी पर खींच "जायालय में अधिप्रायी चलान का अधिप्रायी।

(12) राज्य का सभी धार्मिक संस्थाओं से वृत्तनकरण। राज्य धर्म निरपेक्ष होगा।

(13) दोनों सिपा के बालका के लिए पीढ़े वष की आयु तक नि मुक्त तथा अधिप्रायी प्राथमिक शिक्षा।

(14) पुलिस के स्थान पर लोकसेवा की स्थापना। नृतिनीची सेवा तथा जम दार्मिक दल का उन्मूलन तथा भारत की रक्षा के लिए एकी राष्ट्रीय सेवा, नौसेना तथा वायुसेना की स्थापना जिनका जनता से परिच्छ सम्बन्ध हो।

(15) लोक स्वायत्त सेवा की स्थापना, सम्पूर्ण देश में विकिरण-वेन्द्रो तथा अस्वतन्त्रता का निर्माण जिनका उद्देश्य देश में हैजा, मलेरिया, आदि बहुमायारियों के वेन्द्रो की नष्ट करना होगा।²⁴

इस आलोचना तथा इन प्रस्तावों का विमोचन करने से स्पष्ट होता है कि साम्यवादी राज्य समा तथा विधान परिषदा का उन्मूलन करना चाहते हैं। वे चाहते हैं राजनीतिक दल का सभी चुनावों में उनके द्वारा प्राप्त सम्पूर्ण दल के आधार पर, समानुपाती प्रतिनिधित्व स्थापन दिया जाय। वे चाहते हैं भारतीय संविधान के अनुच्छेदों के उन सभी प्राधिकारों को हटा दिया जाय जो व्यक्ति की भाषा, समा तथा आचरण आदि की स्वतन्त्रता पर प्रतिबंध लगाते हैं। साथमें तथा जाड़के पक्ष से स्पष्ट बात होती है कि वे एक प्रकार से देश के राजनीतिक एकीकरण का समाप्त करना चाहते हैं और आत्मनिर्णय के सिद्धान्त की आड़ में सब राष्ट्रवादियों का आत्मनिर्णय का अधिकार लेकर तथा भारतीय राज्य के प्रति मरिष्ठ की एकीकृत बनाकर भारतीय मरिष्ठ की छिन्न मित्र कर देना चाहते हैं।

साम्यवादियों की आलोचना है कि सहकारी संस्थाओं अथवा सरकार ने विद्या का जा नष्ट किया है यह बहुत ही अपर्याप्त है। उन्होंने व्यापक कोषी वृद्धी की तथा जूमि में वृद्धीपतियों के प्रवेश की मानता की है, और शिक्षा कायन्त्रालय तथा वेन्द्रोविद्या का पक्षोपेक्ष किया है। उनकी मांग है कि वेन्द्रोकर मजदूरों के लिए मुक्त मजदूरी निश्चित करदी जाय और कानून प्रशासन का विकेंद्रिकरण किया जाय।²⁵

सूचीय भाग चुनाव के पूर्व अक्टूबर 1961 में साम्यवादी ने अपनी चुनाव पांचना प्रकाशित की। उसमें शांति की नीति की सर्वोच्च महत्व का काम माना गया। साम्यवादी देश के साथ अधिक वृत्तित्व सम्बन्ध स्थापित करने की मांग की गयी। भारतभूत विदेशी संस्थानों के राष्ट्रीयकरण का समर्थन किया गया, और कहा गया कि उनके द्वारा लाभ के धन को स्वदेश भेजने पर रोक लगा दी जाय। इसके अतिरिक्त भूदा, सामान्य बीमा सोझ, इस्वत तथा कोषों के उद्योगों के राष्ट्रीयकरण और सांस्कृतिक क्षेत्र के विस्तार की मांग की गयी। साम्यवादी दल न भूमिहीन का भूमि देने का जोरदार समर्थन किया। उसमें यह भी घोषणा की कि नई जमीनदारों को मुजावरा न दिया जाय। 'जायसकल तथा उचित करारोक्षण का समर्थन किया गया।'²⁶ दल का विचार था कि

24. साम्यवाद पार्टी की चुनाव घोषणा (प्रथम भाग चुनाव)।

25. अलग भाग *Articles and Speeches* पृ. 127-28

26. अलग भारतीय मजदूर दल में अक्टूबर 1959 में कर्नेल अक्टूबर सम्मेलन में कर्नेल आधिक नीति का संस्कार इस प्रकार व्यक्त किया था

- (1) हम राष्ट्रीय सेवा का समर्थन करते हैं। हम हमारा मजदूर व्याप और विस्तार करने का मर्म करते हैं। हम उसे जिन उपाय अथवा साम्य प्रारम्भ आत्मनारी में सुकर बनाय में विस्तृत हैं।
- (2) हम औद्योगिक तथा समुदायिक का उन्नत विकास का समर्थन करते हैं और उनके विस्तृत समर्थन करते हैं जिनका मजदूर द्वारा स्वतन्त्र अधिकारिक विस्तार की घोषणा तथा हम अपने देश में और अधिक प्रगति है।
- (3) हमारा मत इस बात का आत्मनारीय है कि सभी उद्योग, वृत्तियोगों, हम समर्थन तथा औद्योगिक की घोषणा का नीति किया जाय और उनका नियंत्रित मुक्त राजनीय धन में समारम्भ प्रगति का दिन जाय। सम्पूर्ण प्राथमिकता सभी उद्योग तथा दल का जा जाय।

माधव दिवा और दमनगढ़ तथा अमेरिका की मुद्रिस्तु (मुद्रोत्तेज) बहुर निर्मित किया, तब से नवी दशा के साम्यवादी धार्मिक के सम्मनन बन बन है। भारतीय साम्यवादियों ने भी अपने धार्मिक मार्ग स्थापित किए। किन्तु धार्मिक वा यह सम्मनन एक चलन मात्र है। उन्होंने माधववाद वैश्विकवाद के इन आधारभूत दार्शनिक सिद्धांत का परिष्कार नहीं किया है कि हिंसा ही पुराने समाज का तब समाजों में स्थापित करने का माधन है। हिंसा तथा धार्मिक के सिद्धांतों में साम्यवादों दार्शनिकों के लिए गम्भीर आवश्यक है और धार्मिक की बात करने लक्ष्यवर्धन नाम की धार्मिक के लिए है।

4 निष्कर्ष

भारतीय साम्यवादियों ने राजनीतिक, आर्थिक अथवा समाजशास्त्रीय सिद्धांत के क्षेत्र में कोई योग नहीं दिया है। उनकी माधववाद-वैश्विकवाद स्थापितवाद के मूल तत्त्वों में इतनी गम्भीर आसक्ति है कि उनके लिए सामाजिक विज्ञानों के क्षेत्र में किसी प्रकार का मौलिक चिन्तन करना सम्भव ही नहीं है। किन्तु उन्होंने अपने समकालीन लेखकों और लक्ष्यवर्धन के द्वारा भारतीय राजनीति में सहरी धर्मिता बगैर की सीमा का सुखरित करने का प्रयत्न किया है। उनके मन में भारत के प्राचीन तीर्थों तथा और धर्मियों के लिए धर्मिता भी सम्मान नहीं है, इसलिए विशेषकर मार्क्सवाद के आधारों को उनके राष्ट्रवाद में लक्ष्य से देह रहा है। उन्होंने भारतीय राजनीतिक जीवन में दुबल बहुमुखी में लक्ष्य उन्होंने म अधिष्ठान धर्मिता का परिष्कार दिया है।

यद्यपि भारतीय साम्यवादियों ने मध्यमिक प्रतिपादन के स्तर पर कोई बहुमुखी योग नहीं दिया है, किन्तु उन्होंने भारतीय इतिहास एवं दर्शन के अध्ययन में ऐतिहासिक धर्मितावाद के सिद्धांतों का लागू करने का प्रयत्न किया है, और उनकी कुछ दिव्यधर्मिता मध्यमिक धर्मिता ही है। इसमें सन्देह नहीं कि उनकी रचनाएँ अधिष्ठानधर्मिता हैं। किन्तु उन्होंने भारतीय समाज के साम्यवादी तथा धर्मिता मूलक स्वरूप को बहु आलोचना की है। उन्होंने जब माधव धर्मिता के विरुद्ध भी बहुर उनका है कि उन्होंने भारतीय इतिहास के स्वयं युग में प्रचलित धर्मिता की विद्या पर मध्यमिक और राष्ट्रवादों को लक्ष्य करने का प्रयत्न किया था। साम्यवादियों की इन आलोचनाओं में एक लक्ष्य हुआ है। प्रथम लक्ष्य का भारत की लक्ष्यवर्धन और आध्यात्मिक लक्ष्यिता के सम्मनन में मध्यमिक और के मध्यमिकतापूर्ण आरम्भ प्रत्यक्ष के विचार बन हुए हैं। साम्यवादियों की बहु आलोचना के इस प्रकार की प्रवृत्ति और लक्ष्यवर्धन के लक्ष्यवर्धन की लक्ष्यिता दिया है।

माधववाद में राष्ट्रवाद की धर्मिता की विचारधाराधर्म अधिष्ठान धर्मिता है और उनकी लक्ष्यिता है। उनके धर्मिता राष्ट्रवाद के लक्ष्य पर लक्ष्यवर्धन के लक्ष्यवर्धन के लक्ष्य का प्रतिपादन किया है। किन्तु लक्ष्य व लक्ष्य व लक्ष्यवर्धन की लक्ष्यिता ही लक्ष्य व लक्ष्य पर लक्ष्य राष्ट्रवाद की लक्ष्यिता का लक्ष्यवर्धन प्रत्यक्ष अधिष्ठान लक्ष्यिता ही लक्ष्यिता है। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान लक्ष्य राष्ट्रवाद का लक्ष्यवर्धन और लक्ष्य लक्ष्यिता लक्ष्यिता, यद्यपि लक्ष्य लक्ष्य पर लक्ष्यवर्धन लक्ष्य में लक्ष्य लक्ष्य राष्ट्रवादों की लक्ष्यवर्धन की लक्ष्यिता ही लक्ष्यिता ही लक्ष्यिता है। यह लक्ष्य लक्ष्यिता है कि लक्ष्य व लक्ष्यवर्धन के लक्ष्य लक्ष्यवर्धन के लक्ष्यवर्धन लक्ष्यिता लक्ष्यिता है, किन्तु भारतीय साम्यवादी लक्ष्य लक्ष्यवर्धन तथा लक्ष्यवर्धन के लक्ष्य लक्ष्य व लक्ष्य लक्ष्य लक्ष्यवर्धन की लक्ष्यिता लक्ष्यिता है।

माधव दिवा और इसलख तथा अदेरिया को मुद्रित (मुद्रोत्पन्न) कहकर निर्दिष्ट किया, तब से सभी देशों में साम्यवादी गति के समर्थन बन गये हैं। भारतीय साम्यवादियों ने भी अपने गति मार्ग स्थापित किए। किन्तु गति का यह समर्थन एक खास माप है। उन्होंने माधववाद के निम्न भाग के इन आधारभूत दार्शनिक सिद्धांत का परित्याग नहीं किया है कि जिस ही पुराने समाजों को नये समाज में रूपान्तरित करने का माधव है। जिस तथा गति के सिद्धांतों में साम्यवादी दार्शनिकों के लिए सम्बोधित आश्वासन है और गति की बात केवल दार्शनिक भाव की गति के लिए है।

4 निष्कर्ष

भारतीय साम्यवादियों ने राजनीतिक, दार्शनिक अथवा समाजशास्त्रीय सिद्धांत के क्षेत्र में कोई योग नहीं दिया है। उनकी माधववाद-लेनिनवाद स्थापितवाद के मूल दृष्टि में इतनी सम्बोधित जाति है कि उनके लिए साम्यवादियों के क्षेत्र में किसी प्रकार का मोलन कि तल करना सम्भव ही नहीं है। किन्तु उन्होंने अपने समयावधि में जो जगहों और समयोचितता के द्वारा भारतीय राजनीति में राष्ट्रीय धर्म की भी सीमा को सुस्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। उनके मन में माधव के प्राचीन गौरव तथा और दूरदोश के लिए सतिन की सम्मान नहीं है इसलिए विमोक्षक मोक्षप्रिय नेताओं को उनके राष्ट्रवाद में सत्य स देह रहा है। उन्होंने भारतीय राजनीतिक क्षेत्र में कुछ महत्त्व का काम करने में अतिशय चतुराई का परिचय दिया है।

यद्यपि भारतीय साम्यवादियों ने वैज्ञानिक प्रतिपादन के स्तर पर कोई महत्त्वपूर्ण योग नहीं दिया है, किन्तु उन्होंने भारतीय इतिहास एवं दर्शन के अध्ययन में ऐतिहासिक चेतनावाद के सिद्धांतों का माप करने का प्रयत्न किया है और उनकी कुछ दृष्टियाँ सचमुच सभी सीधी हैं। इसमें सन्देह नहीं कि उनकी रचनाओं में अतिशय सत्य है। किन्तु उन्होंने भारतीय समाज के मानसिकता तथा साम्य के स्वरूप की कटु आलोचना की है। उन्होंने जो दार्शनिक पुरोहितों के विरुद्ध भी अहम प्रयास है जिन्होंने भारतीय इतिहास के स्वरूप में प्रचलित चेतना की विषय पर दार्शनिक और राष्ट्रवाद की बातें कहने का प्रयत्न किया था। साम्यवादियों की इन भावी चेतना में एक काम हुआ है। प्रायः सभी को भारत की दार्शनिकीय और 'आध्यात्मिक' महत्ति में सम्बोधन में सदा अहम है और वे मानवतापूर्ण जीवन प्रयत्न के विचार बन हुए हैं। साम्यवादियों की कटु आलोचना ने इस प्रकार की अवधि और दृष्टिगत के योगदान को स्थापित किया है।

माधववाद ने राष्ट्रवाद को पूँजीवाद की विचारधारात्मक अन्तिमता माना है और उसकी हेतु कहाँ है। उसने पूँजीवादी राष्ट्रवाद के स्थान पर समझने में अन्तराष्ट्रवाद के भाव का प्रतिपादन किया है। किन्तु जब रूस में स्थापितवाद की विजय हो गयी तो रूस की जनता पर रूसी राष्ट्रवाद की भावना का मवेशात्मक प्रभाव अत्यधिक तीव्र हो गया। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान रूसी राष्ट्रवाद का असेमित और मुद्रित किया गया, यद्यपि उसकी तीव्र पर लेनिनवाद में मर्मित तित राष्ट्रवादियों की समझना की दृष्टि की जाती रही है। यह भारी अवधि है कि रूस में साम्यवादी रूस के लोह निष्कर्ष के अन्तर्गत राष्ट्रीय एकीकरण हुआ है, किन्तु भारतीय साम्यवादी रूस के राष्ट्रवाद तथा अन्तराष्ट्रवाद के सिद्धांतों का प्रचार करने के विपक्षकारी अवधि की प्रस्तावना दे रहा है।

[illegible]

ऐनक सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक समस्याओं का भी विश्लेषण करते हैं। सभी सभी सम्पूर्ण जीवन-रक्षण की समीक्षा करने का प्रयत्न किया जाता है। पारंपरिक देशों के राजनीतिक क्षेत्रों की सामाजिक, धार्मिक, वैज्ञानिक तथा आर्थिक समस्याओं से कोई प्रभाव नहीं होता। भारत में स्थिति भिन्न रही है। रानाडे, गांधी और अरविंद ने आर्थिक, धार्मिक, वैज्ञानिक तथा सामाजिक समस्याओं की भी विश्लेषणा की है। चित्ररत्नदास कहते हैं कि भारतीय चिंतन का यह अग्रणी स्वरूप इस देश के जीवन-रक्षण का प्रतिबिम्ब है। किंतु अज्ञा की जा सकती है कि भारत में स्वतंत्र अनुसंधान की प्रवृत्ति के साथ-साथ उसकी अपनी चिंतन प्रणाली पर आधारित उसके अपने पुनर्जागरण चिंतन का विकास हुआ।

आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन सम्प्रदाय के सम्बन्ध में एक बात की जरूरत है। भारतीय जनता की कृष्णामय प्रतिभा बहुत ही बड़ी थी। इसीलिए देश का राजनीतिक विघटन हुआ। 1707, 1757, 1761, 1818, 1849 और 1857 के बीच सामाजिक तथा राजनीतिक विघटन की अनिश्चितता थी। राजनीतिक प्रभाव के प्रत्यक्ष रूप में देशों में भी लोगों की कृष्णामय प्रतिभा का प्रभाव हुआ। एक विचार तथा दूसरे विदेशी सम्प्रदाय की चुनौती ने भारतीयों को अज्ञान-के घन के लिए विवश किया। पूरे भारत में विचार की समस्याएँ भारतीय चिंतन का मुख्य विषय बन गयीं। उसी राजनीतिक चिंतन के लिए भी महत्वपूर्ण क्षणों उत्पन्न हुईं। अब भारतीय राजनीतिक चिंतन एक अर्थ में सम्प्रदाय का आधारभूत स्वरूप बन गया है। उसका मुख्य विषय राज्य की प्रकृति तथा विचारों की व्याख्या और समीक्षा करना नहीं है। उसके अध्ययन का क्षेत्र इससे भी अधिक व्यापक है, जिसके अंतर्गत पूरे तथा परिवर्तन के, पुरातन तथा नवीन के और आर्थिक तथा वैज्ञानिक के सम्बन्ध की समस्या ही मुख्य है। इन प्रकार भारतीय विचारों के लिए सम्प्रदाय का दायर सबसे उपयुक्त और अधिकतम सम्प्रदाय बन गया है और कि उनीतरी दायरों के रूप में हुआ था। ईश्वर, विचारों, गांधी, अरविंद आदि कुछ विचारकों की भारतीय तथा पारंपरिक दोनों ही सम्प्रदायों के जीवन का निजी अनुभव था। उन्होंने पारंपरिक तथा पुरातन सम्प्रदायों के सम्बन्ध का अध्ययन करते समय इस अनुभव का प्रयोग किया। हम इस बात से इनकार नहीं कर सकते कि राजनीतिक विचारों का उद्देश्य जीवन की परिस्थितियों और सामान्य जीवन में ही हुआ करता है। आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन बहुत कुछ अज्ञान में विघटन सामाजिक तथा राजनीतिक वास्तविकता की विभिन्न व्याख्याओं का संकलन तथा स्पष्टीकरण है। बहुत कम है कि महान विचार का उद्देश्य ऐसी विषय परिस्थितियों तथा महान संकट के घुंटी में हुआ करता है, जब अज्ञानता और अराजकता के बीच किसी प्रकार के स्थायित्व के लिए सम्मिलित होना ही पड़ता है। विदेशी पारंपरिक साम्राज्यवाद के प्रत्यक्षी आधार ने हमें अपने मूल का अध्ययन करने के लिए विवश किया। आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन उस बात में फँसा हुआ जब भारतीय संस्कृति के पुरातन कृत्य तथा विभिन्न साम्राज्यवादों के जीवन की वास्तविकता अथवा एक वैज्ञानिक जीवन के बीच असंकर समय चल रहा था। इस समय के प्रत्यक्ष बोद्धि क्षेत्र में एक नये सांस्कृतिक की ओर आकर्षण हुई। एक नवीन नैतिक तथा सामाजिक विकास की उच्च दिशाओं के लिए प्रयत्न करने लगे। ईश्वर तथा गांधी की रचनाओं के रूप में हमें स्पष्ट तथा हृदय में दर्शने का मिलता है। भारतीय राजनीतिक चिंतन का अर्थ सम्प्रदाय के संकट और बोद्धि उन्नत पुनर्जागरण के रूप में हुआ था। उस पर अपने नाम के काल की दृष्टि स्पष्ट दिखायी पड़ती है। उसका मुख्य प्रयोजन नैतिक निश्चितता की ओर करना है। सभी सभी हम उसमें प्रचारात्मक रूप में देखने का मिलता है, क्योंकि उसका सम्बन्ध समय की आवश्यकताओं से था। उसका उद्देश्य सामाजिक तथा राजनीतिक विचारों का प्रभावित करना था। आज यह विचारों के लिए नहीं बलित वास्तविकता के लिए था। सभी-सभी समय उसका प्रभाव डालने वाले लोक अधिक देखने की मिलता है किंतु समय आदि विचारों का आधार पर चिंतन की उत्पत्ति करने की स्थायी समस्या नहीं पायी जाती। अब आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन की तुलना उन राजनीतिक रचनाओं से की जा सकती है जो पुरातन में लोक और समाज के बीच अपनी पुरातन भाँति और भाँति की भाँति के गुण में मिली गयी थी। उनमें विचारों का उद्देश्य भी देखने का मिलता

आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन

है। कुछ सीमा तक यह दृष्टान्तक भी है और प्रतिपक्षियों के उत्तरी का समर्थन करने का प्रयत्न करता है। उसमें प्रत्यक्ष कार्यों को सम्पादित करने के लिए सांसारिक प्रभाव प्राप्त नहीं की वस्तुति है, उसी के कारण यह उन राजनीतिक राजनिका की दृष्टिकोण से निम्न है जो अपने व्यक्तित्व सिद्धांत के निर्माण में उदात्तताविक वसाधता से ऊपर उठने का प्रयास करते हैं, यद्यपि जीवन का सम्पर्क हुआ उनके प्रति भारतीयता के मन में दो प्रकार की प्रतिक्रिया हुई। पुनरुत्थानवादिता की एक संरक्षणी के माधेयन प्रकाशना से जेम्स की और हिंदू चिन्तन की चारमध धारा को पुन प्रभावित करने का प्रयत्न किया। दुसरे वय में इस बात का समर्थन किया कि या ता पाश्चात्य विचारों की भारतीय चिन्तन में सम्पादित कर लिया जाय या अपनी तथा पुरातन का सम्पर्क कर का प्रयत्न किया जाय। किन्तु इन दोनों प्रकार के विचारों को प्रत्यक्ष करने वाली कोई सुनिश्चित दीक्षा नहीं थी। पहले नय के बीच भारतीय चरमपथ से ओलझोले थे, जबकि दूसरी की इस बात की सीक सेना थी कि भारत का राजनीतिक सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन और विरासत बहुत कुछ धिन्न धिन्न हो चुकी है।

पुनरुत्थानवादी धारा का प्रतिनिधि दयानन्द सरस्वती थे जिन्होंने देवा की और साधनात्मक पुनर्निर्माण की एक दीक्षा बनाया प्रारंभ थे। उनका अनुरोध था कि बहिर्क ज्ञान के विरुद्ध मर में फलने का प्रयास किया जाय। रामकृष्ण, विवेकानन्द, रामतीर्थ तथा अरबिन्द का उपनिषदों की अद्वैतवादी सिद्धांत के जेम्स मिली थी और उनकी मान्यता थी कि आध्यात्मिक आचारव्यवस्था तथा सामुदाय के साम्प्रदायिक सिद्धांत की रचना के लिए देवा की अद्वैतवाद ही सबसे अच्छा आधार है। तिरुक् तथा साची मनकवरीता के परम सत्य थे। गीता तथा उनके निष्पन्न वय के सिद्धांत में साहित्यारिदा को भी प्रभावित किया। तिरुक् ने मराठा राजतन्त्र की लमिद्धि काय के लिए साची तथा चित्तरजसदात दोनों ही धार्मिक वसाधता व्यवस्था के पुनरुत्थान में भी किया गया है। साधनात्मक की। जिस प्रकार दयानन्द, विवेकानन्द, रामतीर्थ, पंजिका तथा साधनात्मक की वद्व अथवा अलक बहिक तथा हिंदू पुनरुत्थानवाद के समर्थक थे, उसी प्रकार मुहम्मद इकबाल और मुहम्मद अली जुरान के पुनरुत्थान तथा लक्ष्मणामाया के व्याख्याता थे। इकबाल ने तैरीय का समर्थन किया। उनका विश्वास था कि उत्तरी का आधार पर एक ऐसे समाज-तन्त्र का निर्माण किया जा सकता है जिसके अंतर्गत स्वतन्त्रता समन्वय तथा आहूत का आधारों का समतुल्य किया सके। मुहम्मद अली जुरान की सिद्धांतों के अनुसार बहिक बहुत वसधोपय थे। या एपी व मान है आधुनिक की फिर भी उन्होंने हिंदू पुनरुत्थानवाद का समर्थन किया। धार्मिक पुनरुत्थान बाद में इन विचारों के राजनीतिक विचारों की बहुत कुछ प्रभावित किया। उनकी आध्यात्मिक चर्चा में इन विचारों के राजनीतिक विचारों की बहुत कुछ प्रभावित किया। उनकी आध्यात्मिक और धर्म के विचारों को कार्यान्वित करने के लिए इन ने इस बात से सहमत नहीं थे कि भारतीय सित, समत सम्पर्क में हय वह समत है कि हिंदू सकिपन की सता और पुन का पुनरुत्थानवादी मान्यता से जेम्स मिली है।

किन्तु जब हम आधुनिक भारतीय तथा आधुनिक पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन का तुलना

2. सचें मरकामरु न गीता का संस्करण और साधनात्मक पुनरुत्थानवादी (The Awakening of India, p. 189)। यह सिद्धांत है 'भारतीय होना का सचें मरकामरु की उत्तरी चरम वद्वी चरम है कि प्रारंभ दयानन्द का न केवल पुनरुत्थान दयानन्द (मरकामरु) की वद्वी चरम वद्वी चरम है कि आध्यात्मिक का उदय वय में ही पुनरुत्थान दयानन्द का सचें मरकामरु वद्वी वय में ही सचें मरकामरु वद्वी चरम वद्वी चरम है कि भारतीय सचें मरकामरु वद्वी चरम वद्वी चरम है। (The Awakening of India p. 196)

तब विश्लेषण करता है तो हम एक जलैतनीय तथ्य यह दृष्टिगत होता है कि धार्मिक तथा सामाजिक पुनरुत्थान के बावजूद आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन का देश की प्राचीन परम्पराओं से कोई अवयवी सम्बन्ध नहीं है। बादशाह्य राजनीतिक चिन्तन तथा आधुनिक भारतीय चिन्तन में बीच यह महानपुन अन्तर है। बादशाह्य चिन्तन में कुछ ऐसी आधारभूत धारणाएँ हैं जो प्लेटो और अरस्तु में केवल अस्वाइन, एथिक्तास, मार्टीनियो, मरिमावेली, हास्य और हुनस तक बार-बार देखने का मिलती हैं। बादशाह्य राजनीतिक चिन्तन का प्रमुख प्रत्यक्षतात्मक आधार पुनरुत्थान का दिशा हुआ है। जिधि (डीन—'नीनी'), 'यान (डीन—'आइन') आदि पदों की रचना पुनरुत्थानों में की गयी, और ये आज तक चले आते हैं। निन्तु भारतीय राजनीतिक चिन्तन में इस प्रकार का प्रत्यक्षतात्मक साक्ष्य देखने का नहीं मिलता। नीतिरूप, यन्तु अथवा फलन तथा हम एक साथ के बीच कोई सम्बन्ध नहीं है। इसमें सन्देह नहीं कि इन प्राचीन, मध्ययुगीन तथा आधुनिक विचारकों में इस बीच के परिस्थितियाँ का साक्ष्य है कि इन सबने भारत भूमि पर अपनी रचनाएँ की थी और भारतीय सम्प्रदाय का विश्लेषण किया था, निन्तु राजनीतिक चिन्तन में यह अवयवी साक्ष्य नहीं है जो हम विश्लेषण में देखने की मिलता है। निन्तु अब सामाजिकरूप की भाँति मेरा कथन भी ध्यान की चीजों पर साधु नहीं होता, मैं तो ऐतिहासिक साक्ष्य के सम्बन्ध में प्रमुख प्रवृत्तियों की बात कर रहा हूँ। मेरे कथन का साक्ष्य यह है कि प्राचीन तथा मध्ययुगीन राजनीतिक विचारकों के प्रभाव का आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन के साथ कोई अवयवी सम्बन्ध नहीं है जैसा कि प्लेटो, अरस्तु, सिनेरो आदि की रचनाओं का आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन के साथ है। कुछ भारतीय महा भारत के गौरवशाली के महान परिचित हुए हैं। इसमें 'द तथा जितन' पदों के प्रभाव विस्तृत थे, ईश्वरनाथ टंडोर, विवेकानन्द, राजनीति तथा रवीन्द्रनाथ टंडोर उपनिषद् के जन्मदाता थे, ज्ञानपथ रूप, गांधी तथा अरविन्द समकालीन के समीर व्यापारकार थे, निन्तु आधुनिक भारतीय चिन्तन में 'महाभारत', नीतिरूप के 'अपराध' अथवा 'अनुसूति' की सिद्धांतों की पुनर्जीवित करने का प्रयत्न नहीं किया गया है। आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन में ज्ञान, नीतिरूप अथवा गुन के राजनीतिक चिन्तन की आधारभूत धारणाओं का प्रयोग नहीं किया गया है। अब भारतीय राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में साक्ष्य का बीच ही गया है। बादशाह्य राजनीतिक चिन्तन के अतिरिक्त आधारभूत पद प्लेटो, अरस्तु, एथिक्तास, हांस और जॉन में समान रूप में विद्यमान है। इस प्रकार विचारों की विविधता के बावजूद आधारभूत पदों की सामान्यता का साक्ष्य तथा स्थायी परम्परा कथन देखने की मिलती है। तब, गांधी और अरविन्द की रचनाओं में उपनिषद् तथा बीता के समर्थन, स्वयं, उपस्था, ज्ञान आदि पदों का प्रयोग किया गया है निन्तु, प्राचीन भारत के 'अनुसूति', 'अपराध', 'रत्न' आदि राजनीतिक पदों का नाममात्र की भी प्रयोग नहीं हुआ है। इसलिए भारतीय राजनीतिक चिन्तन में हमें यह साक्ष्य देखने की नहीं मिलता जो बादशाह्य राजनीतिक चिन्तन में पाया जाता है।

भारतीय विचारकों के दूसरे रूप की पश्चिम के प्रति प्रतिनिधता अधिक सहानुभूतिपूर्ण थी। राममोहन रूप को ईसाई ऐकिकरूप तथा फलसीसी ज्ञानोदीयों से प्रेरणा मिली थी। वैश्वचन्द्र सेन पर ईसाई परम्पराओं का गहरा प्रभाव था। राममोहन रूप, वैश्वचन्द्र आदि कुछ विचारकों विदेशी शासन की देश के लिए परेशान आने से। उनका प्रभाव राजासाई, रामाई, श्रीरोजशाह और मोसली पर पड़ा। रामाई अपराध के जन्म ऐतिहासिक सम्प्रदाय के सिद्धांतों तथा कैरिक् सिद्ध के विचारों से प्रभावित थे। उनके प्रेषित होकर ही उन्होंने अपराध के सत्यतात्मक सम्प्रदाय के विचारों का प्रयोजन किया। व्यक्तिगत जीवन में उन पर तुषाराम के उपदेशों का प्रभाव था निन्तु उनके सामाजिक दशन पर बादशाह्य विचारधारा का प्रभाव देखने की मिलता था। मिताबादी सम्प्रदाय के अन्य विचारकों पर भी पश्चिम की गहरी छाप थी। वे बुद्धि सहिष्णुता तथा 'माय के अन्तर्गत' थे। उनका आशावादी दशन असाहस्यता का ही के पूर्ण, को-वर्ग आदि विचारकों के दशन से बहुत कुछ मिलता हुआ था। मल्लिकी के राष्ट्रवादी विचारों ने सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, ज्ञान

आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्ता

[illegible][illegible]

राष्ट्रीय राजनीतिज्ञ, आर्थिक तथा सामाजिक परिस्थितियों से हुई है। ब्रिटिश सरकार ने जो सामाजिक-आर्थिक सुधार प्रारम्भ किये उन्होंने वादविवाद तथा आन्दोलन के लिए सामग्री प्रदान की। 1892 तथा 1909 के भारतीय परिषद अधिनियमों तथा 1919 और 1935 के भारतीय प्रान्त अधिनियमों से ऐसी अवसरमिल सामग्री उपलब्ध हुई जिसका सेक्टर सामाजिक वादविवाद भ्रष्ट और केन्द्रीय तथा प्रांतीय विधान सभाओं, राजनीतिक सम्मेलनों तथा कांग्रेस के अधिवेशनों में प्रस्ताव पारित किये गये। भारतीय राष्ट्रवादी अर्थिक अर्थ में स्वायत्तता की माँग कर रहे थे। किन्तु ब्रिटिश सरकार अपनी साम्राज्यवादी नीति के कारण विरोध करने में आकाङ्क्षाओं और मजबूती कर रही थी। इस विषय में भारत तथा यूरोप के बीच बहुत कुछ सादृश्य देखने को मिलता है। सोलहवीं शताब्दी के प्रारंभ में राजा तथा सामन्तों के बीच संघर्ष चले। उन्होंने ऐसी ही संस्थाओं की उत्पत्ति किया जो राजनीतिक विचारों का विषय बन गयीं। भारतीयों से चौदहवीं शताब्दी तक घोषणा तथा सभाओं के बीच विवाद चलता, उसने अर्थ और सामाजिक, दार्शनिक एवं वैज्ञानिक, धार्मिक आदि क्षेत्रों में समझौता तथा मान और बल, दावे और वास्तविकताओं और वास्तविकताओं के विचारों के लिए सामग्री प्रदान की। इसी प्रकार ब्रिटिश साम्राज्यवादी नीतिवादी तथा भारतीय राष्ट्रवादियों की उदीयमान राजनीतिक दृष्टि के बीच भी संघर्ष हुआ उसने आधुनिक भारतीय राजनीतिज्ञ विचारों के लिए परिस्थितियाँ तथा सामान्य उत्पन्न किया। पूर्ण समझौता एक ही और उनके सामाजिक समाधान की आवश्यकता थी, इसलिए संघर्ष में अधिक दृष्टि लगायी गयी, और आचार्यभूत प्रत्यक्ष तथा सामाजिक और राजनीतिक दृष्टि के प्रयोगों के वैज्ञानिक निरूपण की ओर उनका ध्यान गयी दिया गया।

भारतीय राजनीतिक विचारों का प्रमुख विषय राष्ट्रवाद रहा है। राष्ट्रवाद के कारणों तथा उनके अर्थों की सामाजिक विवेचना की गयी है। राष्ट्र, राज्य, जनता, राष्ट्रवाद तथा राष्ट्रवाद के बीच के संबंधों की समझ का भी कुछ प्रभाव किया गया है। भारतीय वैश्वी तथा अन्तर्राष्ट्रीय में नित, ऐत, अनुसंधान आदि की राष्ट्रवाद सम्बन्धी रचनाओं का वर्णन किया है। किन्तु राजनीति, विज्ञान तथा विधिशास्त्र के प्रमुख, स्वतन्त्रता, राज्य की विधि तथा अन्तर्राष्ट्रीय प्रवृत्ति आदि अन्तर्गत प्रयोगों का निष्कर्ष विवेचना नहीं किया गया है। यद्यपि इन विषयों का उल्लेख देखने को मिलता है, किन्तु सम्पूर्ण विषयवस्तु का विशद तथा गम्भीर विवेचन नहीं हुआ है। लेकिन राष्ट्रवाद के सिद्धांत की व्याख्या करने में भारतीय राजनीतिक नेताओं ने सम्पूर्ण गहरी दृष्टिकोण से काम किया है। भारतीय विचारों में राष्ट्रवाद की धारणा के सम्बन्ध में अनेक दृष्टिकोण अवलोकित किये हैं, उनके के तीन का उल्लेख करना पर्याप्त होगा। आचार्य मोरोनी, आर. सी. दास तथा मोहनदास करमजी की रचनाओं में राष्ट्रवाद के आर्थिक आधारों का विश्लेषण किया गया है। यह भारतीय धर्मशास्त्र का वास्तविक समर्थन मानता दृष्टिकोण होता है। उनकी रचनाओं तथा विषयों में भारतीय अर्थशास्त्र की ऐतिहासिक दृष्टि का विश्लेषण किया गया है। यह उदीयमान धर्मशास्त्र का दृष्टिकोण है ही नहीं किया गया, बल्कि उसमें देखी जाती है का भी ध्यान रखा गया है। मोरोनी धार्मिक जनता के कष्टों और दुःखों को दूर करने के उपायों की निरन्तर चर्चा किया करते हैं। राष्ट्रवाद की समस्या के सम्बन्ध में दूसरा दृष्टिकोण उन लोगों का था जो राष्ट्र के विकास में आस्था रखते थे। अर्थ, राज, विचारजनकता तथा अर्थिक साधुता की शक्ति सत्ता मानते थे। उनकी दृष्टि में यह वैश्व मौरिक सत्ता अन्तर्गत भीमोर्लिक प्रेरण नहीं थी। अन्तःकरण के अति-वाधियों में राष्ट्रवाद के प्रकार में ऐसी स्पष्ट मान्यता का पुष्ट उदाहरण दिया जिसने हिन्दू जनता की चेतना पर स्थायी प्रभाव डाला। राष्ट्रवाद के सम्बन्ध में तीसरा दृष्टिकोण विज्ञान तथा मुस्लिम लोग का था। यह बहुत ही विषयगत तथा विषयगत था। उनका कहना था कि भारत में उन महाद्वीप में ही राष्ट्र है। वे ऐतिहासिक विचारों जीवन दान तथा सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं के प्रति दृष्टिकोण की दृष्टि से एक दूसरे से भिन्न भिन्न हैं। इस विचारों सिद्धांत के विरुद्ध हिन्दू पुनर्जागरण ने नेताओं ने यह सिद्धांत प्रतिपादित किया कि इस देश में वैश्व हिन्दू ही राष्ट्र है, अथवा अन्तःकरण की दृष्टि में आते हैं। इस प्रकार 1938 से 1947 तक

सिद्धांत है।⁷ सत्याग्रह की धारणा का आधार इस बात की अनुमति है कि मनुष्य की स्वतन्त्र नैतिक इच्छा और अन्तःकरण स्वायत्ततासम्पन्न तथा स्वतः स्रष्टृ होती है। सत्याग्रह मनुष्य की गरिमा तथा अन्तःकरण के उद्धार का आध्यात्मिक प्रयत्न है। सत्याग्रह के मूल में यह धारणा है कि मनुष्य की आत्मा सर्वोपरि है और 'माय, राग तथा क्रोध' के लिए तपस्य करना उसका स्वभाविक धर्म है। गांधीजी ने अनेक दृष्ट और साक्ष्यपूर्ण चीककर इस सिद्धांत की पुष्टि की। इस समय समग्रवाद, सत्तात्मक पद्धतियों तथा वे-इंजीनरिंग का बोलबाला है, और नाभिकीय विनाश का भय कोरी बात बन गई है। ऐसी स्थिति में आत्मा की जगती है कि सत्याग्रह विवेक, क्षम, शिष्टता, शांति और स्वतन्त्रता में विश्वास रखने वालों के हृदयों में एक ऐसा अस्त्र सिद्ध होना जिससे वे शक्ति और सम्पत्ति के ठंकेदारों के विरुद्ध विद्रोह कर सकें और मानव गरिमा की स्थापना करने में समर्थ होंगे।

आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन का हीरोस महुत्तपूज योगदान मानने-इन्द्राथ राय का नवीन मानववाद है। ईसा, अरबिंद और गांधी की आध्यात्मिक मानववादी थे। अन्नाहुरलाल बैहूक ने अपनी 'भारत की सोच' में वैज्ञानिक मानववाद का समर्थन किया है। जिन्हु मानने-इन्द्राथ राय ने मानववाद के दृष्ट की विराट विवेचना की है, और उनका मानववाद वैज्ञानिक जीविकवादी ब्रह्माण्ड शास्त्र पर आधारित है। राय को भारतीय चिन्तन के इतिहास में महुत्तपूज स्थान देने के लिए उनकी सुविस्तर प्रस्थापनाओं से सहमत होना आवश्यक नहीं है। नवीन मानववाद यह स्वीकार करता है कि विज्ञान की सृजनतात्मक शक्ति की का अधिक बन्धी समाज के निर्माण के लिए महत्त्व है, और साथ ही साथ उनका विरुद्ध तथा शीघ्र की व्याख्या की दृष्टि के रूप में भी प्रवीण किया जा सकता है। यह सम्भव है कि आधुनिक भारतीय समाज में पब्लिसिस्तेशिया की दृष्टि के साथ साथ राय का नवीन मानववाद, जिसमें स्वतन्त्रता, बुद्धि तथा विरुद्धराज्यवाद पर बल दिया गया है, बुद्धि-जीवियों की अधिक आकर्षण करने लगे। दृष्टि यह बात भीतिव सन्देह नहीं हैता, जिन्हु व्यापकता की दृष्टि से उसका महत्त्व है।

आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन तब तक सिद्धांत की दृष्टि से पर्याप्त रूप में परिपक्व और परिभाषित नहीं है। अब तक उसके मुख्य प्रकृत सामाजिक तथा राजनीतिक नेता रहे हैं, न कि निर्दिष्ट दार्शनिक तथा विचिन्तन। यूरोप में परिपक्व राजनीतिक चिन्तन का मूलन विद्वानों तथा दार्शनिकों ने किया है। कुछ राजनेताओं का भी उदाहरण है जिन्हु राजनीतिक चिन्तन पर लिखा है। क्लेरी, माइनिंग, हेबोर्नल थोलेपुड और का ऐसे सामाजिक नेता थे जिन्हुने महत्त्वपूर्ण प्रश्न लिखे। भारतीय राजनीतिक चिन्तन उन राजनीतिक वाक्यांशों की मूर्ति है जिनमें काय अन्तःकरण के कारण बुद्धि मनन तथा दार्शनिक चिन्तन के लिए न समय था और न शक्ति। उनका मुख्य काम विचारों की शीकस्थि बनाना तथा राष्ट्रीय मुक्ति की योजनाओं का कार्यान्वित करना था। इसलिए आधुनिक राजनीतिक चिन्तन में हमें न तो हॉल्म और धीन जैसा उर्कानुवद्ध विवेचन देखने की मिलता है, और न किसी न प्रेसल और यूरोपीय के सहज विचार का ही मिले है। राममोहन राय से वेमर कांधी, नेहू और मोन तक आधुनिक राजनीतिक चिन्तन ने सम्मर्थन के लिए विद्यार्थी की राजनीतिक और सामाजिक नेताओं की रचनाएँ पढ़नी पड़ेनी। बुकि ने नेता थे, इसलिए उनमें यह दार्शनिक विविधता और लक्ष्यता नहीं थी जो विद्या रामन चिन्तन के लिए आवश्यक होती है। वे परिस्थितिका के दूरे हुए थे। इतनीद और अमरिका के राजनीतिक चिन्तन ने सम्मर्थन के लिए विद्यार्थी की बाहर लिखे, लाम्बी बाल, गरिमा, र्मबाधपर आदि की रचनाएँ पढ़नी पड़ी है। यह चिन्तन, एटनी, रजवत अथवा आइजन होवर के विचारों का सम्मर्थन नहीं करता। भारतीय राजनीतिक चिन्तन की सभी अपन लाम्बी, बाल और मनहृदय उदयन करते हैं। अत आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन के पीछेपता की आन

7 वेन अपनी पुस्तक *Political Philosophy of Mahatma Gandhi and Sarvepalli* में भारतीय की सविस्तर समीक्षा की है। उसे इन काय का मुख्य भाग का समर्थन है।

[illegible][illegible][illegible]

और उत्साहन की क्षमता थड़ी कम है। ऐसे देश की आर्थिक नीकरवाही के आगमन से जनता के अधिकारों की रक्षा करने और तथा की जन-जीवन में साक्षात्कार करना नियोजन का एक अपरिहार्य अंग है। यह समस्या की विचारकों तथा नियोजकों की शक्तियों के लिए एक चुनौती सिद्ध होगी। अतः यद्यपि पिछली दो शताब्दियों के भारतीय राजनीतिक चिन्तन में मौलिकता तथा सुव्यवस्थापन का अभाव है, फिर भी निराशा का कोई कारण नहीं है। स्वतंत्रता के आगमन से राष्ट्र की शक्तियाँ खम्बुक हुई हैं। जब देश पराधीन था उस समय उसे किसी न किसी प्रकार विदेशी शासकों के मौलादी नियमों में मुक्त करना ही एकमात्र उपाय था। इसलिए राष्ट्रवाद भारतीय राजनीतिक चिन्तन की मुख्य समस्या की किन्तु स्वाधीनता की प्राप्ति से और नये राजनीतिक, प्रशासनिक तथा आर्थिक प्रयोगों के प्रारम्भ विदे जाने से हम जाया होने लगी है कि भारतीय राजनीतिक चिन्तन का संवर्धन सुदृढ हो रहा है और थाता है।

सस्मद्कालीन भारतीय राजनीतिक चिन्तन की कुछ समस्याएँ

26

लोकतन्त्र तथा भारतीय सस्कृति

हमको विश्व का सबसे बड़ा लोकतान्त्रिक राष्ट्र होने का गौरव प्राप्त है। संयुक्त राज्य अमेरिका की भूमि आकार में भारतीय सभ की भूमि से लगभग दुगुनी है, किन्तु हमारे निवासियों की संख्या (अठारह करोड़ से अधिक) अमेरिका की सम्पूर्ण जनसंख्या से अधिक है। 1950 में भारत में एक लोकतान्त्रीय सर्वशायिन प्रजासत्ति को कार्यान्वित करने का विद्याल प्रयोग आरम्भ किया। यह प्रयोग एक ऐसे अविश्वसित एशियाई देश में आरम्भ हुआ जहाँ राजतन्त्रीय विरुद्धता, अस्पृश्यता का प्रचलन, ज्ञान विरोधी पुण्यहित का तथा पिछड़ी हुई जन व्यवस्था की शासकियों द्वारा परम्पराई चली आ रही थी। फिर भी भारतीय लोकतन्त्र की सामान्य अवलम्बिका सहायनीय है। इस देश में 1952, 1957, 1962, 1967 तथा 1971 के बीच आम चुनाव हो चुके हैं। केन्द्र तथा विभिन्न राज्या में जो राजनीतिक विकास है उनके चयन की औपचारिक प्रजाधी लोकतन्त्र के सभी सिद्धांतों को पूरा करती है। केरल में साम्यवादी सरकार की जो स्थापना हुई वह इस बात की द्योतक है कि भारतीय जनतन्त्र निर्वाचका के विकास को स्वीकार करने के लिए तैयार है। संसार के अन्य लोकतान्त्रिक देशों की भाँति भारतीय जनतन्त्र में भी अनेक दुर्लक्षताएँ हैं, किन्तु वे विरासा का कारण नहीं हैं, बल्कि वे नयी चुनौतियाँ हैं जिन पर विचार प्राप्त करनी हैं।

यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि आज भारत में लोकतन्त्र के जो कारण तथा निवर्तिका नाम कर रहे हैं वे परिवर्तन से और विशेषकर दलगत से मिल गये हैं। यद्यपि भारत का बहुसंख्यक लोकतन्त्रात्मक समाजवाद अभी केवल पञ्चीय का पुराना है, किन्तु देश में राजनीतिक तथा मानवाद के प्रयोग लगभग दो दो रूप से होते आये हैं। इसमें सन्देह नहीं कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन साम्राज्यीय राजावादी बन का था, फिर भी निरममवाद सविधानवाद की धीमी तथा ग़र निम्न बन की परम्परा कम्पनी के शासन के आरम्भ से ही काम करने लगी थी। 1773 का रेगुलेशन एक्ट तथा 1784 का मिस्ट इण्डिया एक्ट इसके उदाहरण हैं। एक में भारत हेतुसिद्ध के कुशल द्वारा दो का जो न्यायवाद विकास का उत्तम पञ्चीय के शासन में वास्तविक मानवा का आरम्भ हुआ। 1793, 1813, 1832 और 1853 के भारत एक्ट निरममवाद सविधानवाद की दिशा में बहुसंख्यक बदल से। 1757 तथा 1857 के बीच भारतीयों का राजनीतिक शासन की प्रक्रिया में मान लेने का प्रयत्न नहीं उठता था। जब दलगत की सरकार में देश के शासन की आगदीर प्रत्यक्ष रूप से अपने हाथ में ले ली तो धीरे धीरे स्थानीय शासन, उत्तरदायी शासन तथा स्वशासन की दिशा में बहुसंख्यक बदल उठने लगे। देश में ब्रिटिश राजावाद वास्तविक उद्योग तथा राजनीतिक एवं आर्थिक सुधारों के विकास का प्रमाण धीरे धीरे अनुभव किया जाने लगा। भारतीय जनसंख्या तथा भारतीय राष्ट्रवाद के विकास ने स्वतन्त्रता अधिकांश सहयोगी मानवित्व तथा सामाज्य-

बादी शोषण से मुक्ति के नाम पर अपना से अपील की। 1947 का भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम तथा 1950 में स्थापित किया गया प्रमुखसम्पन्न लोकतांत्रिक संसदसभ्य का संवैधानिक ढांचा एक अर्थ में भारतीयों को परिपक्वों में सम्मिलित करने की उस प्रक्रिया की परिणति से निकला प्रारम्भ 1861 के अधिनियम के साथ हुआ था। अतः यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि आज भारत में लोकतन्त्र के जो कारण काम कर रहे हैं वे पश्चिम के राजनीतिक अनुभवों से लिये गये हैं।

लोकतन्त्र के दो अर्थ हैं—एक राजनीतिक और दूसरा सांस्कृतिक। राजनीतिक प्रणाली के रूप में उसका अर्थ है जनता का शासन। अठारहवीं शताब्दी के सिद्धांतकारों ने राष्ट्र के प्रमुख की पारणा का प्रतिपादन किया था। उसी सभा की सम्पन्न इच्छा का समर्थन था। होमर वेन ने अपने मानव अधिकारों के सिद्धांत के आधार पर संवैधानिक समाज की परम्परागत मुनिवादी की चुनौती दी। अठारहवीं शताब्दी में अष्टाह्न लिखन में 'जनता का, जनता के द्वारा तथा जनता के लिए शासन का संदेश दिया। किन्तु आज के विज्ञान क्षेत्रों वाले राज्यों में उन परिस्थितियों को पुनः उत्पन्न करना सम्भव नहीं है जो पौराणिक के युग में एवम् न मिलता था। रिक्टररसैण्ड के कुछ प्रान्ता (बेटरी) में प्रत्यक्ष लोकतन्त्र मने ही सम्भव हो सके, किन्तु बड़े देशों में आज लोकतन्त्र इसी अर्थ में सम्भव हो सकता है कि जनता की राज्य की नीति के मुक्त आधारों के सम्पन्न में अपनी सम्पत्ति प्रकट करने तथा विधानों के तदर्थों और सर्वोच्च न्यायाधिकार की चुनने का अधिकार दे दिया जाय। एक राजनीतिक सिद्धांत के रूप में आज लोकतन्त्र का अर्थ अत्यन्त अर्थात् प्रतिनिधि लोकतन्त्र ही है।

हमारे देश में लोकतांत्रिक शासन की राजनीतिक परम्पराओं का प्रचलन नहीं था। जिस सभी अर्थों में भी 'अष्टाह्न' में, सिद्धांत के आधारे में समय भारत का पदार्थ करने वाले युगान्वी के वृत्तांतों में और बौद्ध साहित्य तथा महाभारत में उल्लेख आता है व लोकतन्त्र नहीं थे, अधिक से अधिक उच्च प्रजासत्ताकीय स्वतन्त्रता का अर्थ था। यह सत्य है कि अष्टाह्न में लोकतन्त्र के प्रसारण में राज्यों की सहायता का उल्लेख किया है किन्तु उस बात का अर्थ है कि लोकतन्त्र के सिद्धांत के प्रति उत्तरदायी होने का सिद्धांत प्रचलित नहीं था। परन्तु युग में भी 'समा' और 'समिति' केवल प्रचार के काम करती थी। हा, यह सम्भव है कि वैदिक काल में समिति सम्पूर्ण जन की सभा रही हो। नीच, गुण, वस्त्र, धान्य तथा राष्ट्रकृत आदि सभी के सामाज्यीय शासन के विचार के साथ-साथ पुरानी गणतन्त्रीय व्यवस्था का मुनोन्देश हो गया। बुद्ध-अन्यान तथा बुद्ध धर्म के अन्तर्गत ऐसी स्वायत्ततापूर्ण संस्था का विकास न हो सका जो शासकों पर नियंत्रण रख सका अथवा उनकी शक्ति को सीमित कर सकती। विचारों का सरासरी राजतन्त्र भी उदार निरनुकूलता का ही नमूना था। इस प्रकार हम देखते हैं कि जब 1950 में प्रमुखसम्पन्न राज्य की लोकतांत्रिक प्रणाली की स्थापना की गयी उस समय देश में लोकतांत्रिक प्रतिपादनवाद की कोई प्रणाली नहीं थी। यहाँ तक कि स्वतन्त्रता पर आधारित ग्राम पंचायतों की नियमित व्यवस्था नहीं थी। आज की ग्राम पंचायतों का केवल नाम पुराना है, वास्तव में वे केन्द्रीय या राज्य सरकार की वृत्ति हैं, और वे सरकारों के व्यवस्थापन मनुष्यों के निर्मित हैं। वर्तमान भारतीय लोकतन्त्र का आधार व्यक्ति रूप में परिपक्व शासन की व परम्पराएँ हैं जिनका मूलभूत भारत की पुरानी विधि सरकार के लिये था। अतः स्पष्ट है कि भारत का राजनीतिक लोकतन्त्र व्यवस्था प्रणाली के आधार पर प्रारम्भ किया गया है। चीन, स्पेन तथा बाइरल जर्मनी में लोकतन्त्र का जो उद्भव हुआ उनका कुछ अर्थ है। अठारहवीं शताब्दी में लोकतन्त्र का केवल राजनीतिक अर्थ माना जाता था। उसका स्वरूप तथा प्रतिपादन के प्राकृतिक अधिकार पर अधिकार था। अठारहवीं शताब्दी में राजनीतिक

लोकतन्त्र की राजनीतिक वृद्धि अथवा सिद्धांत नहीं है। यह इन सभी कुछ अर्थों है। यह वस्तुतः एक जीवन प्रणाली है। यह सामाजिक तथा नैतिक जीवन का दर्शन है। अठारहवीं शताब्दी में लोकतन्त्र का केवल राजनीतिक अर्थ माना जाता था। उसका स्वरूप तथा प्रतिपादन के प्राकृतिक अधिकार पर अधिकार था। अठारहवीं शताब्दी में राजनीतिक

सामाजिक तथा आर्थिक राज्य की समानिष्ट बन दिया गया। अमेरिका में दासों की मुक्ति (1865), रुस में अद्ध दासों की मुक्ति (1861) तथा उदारवाद, मानववाद और राज्य समाववाद का उदय—इन सबसे इस धारणा की पुष्टि हुई कि 'साधारण अक्षताय तथा वनविहीन सामाजिक व्यवस्था व बिना मताधिकार पर आधारित लोकतन्त्र एक इच्छोसला है। बीसवीं शताब्दी में विज्ञा के प्रसार तथा मनोविज्ञान के विचारों ने इस सिद्धांत की लोकप्रिय बना दिया है कि राजनीतिक लोकतन्त्र की सफलता के लिए ज्ञान का सामग्रीय प्रसार अत्यावश्यक है, और 'गारिजा' ने व्यक्तिगत या निर्माण लोकतांत्रिक आधार पर बिना ज्ञान चाहिए। दूसरे शब्दों में, यह विश्वास किया जाता है कि लोकतन्त्र की सफलता के लिए हमें ऐसे नागरिकों की आवश्यकता है जो समझी तथा चतुर हों, जिनमें अपने को विभिन्न प्रकार की सामाजिक परिस्थितियों के अनुकूल बनाने की क्षमता हो, जिनकी विश्व की समस्याओं में व्यापक दृष्टि हो, जो उदासीन तथा आत्मवादी न हों, यद्यपि स्वतः स्फूर्त सामुदायिक वाक्यप्रयोग में अभिव्यक्त करने की शीघ्र तथा विचारशील क्षमता रखते हों। अतः प्रथमतः में लोकतन्त्र की एक प्रकार का भ्रम माना जाने लगा है। यह समझ तथा राजनीति के सम्बन्ध में एक प्रकार का मूल्यव्यक्त दृष्टिकोण बन गया है, यह एक ऐसा धर्म है जो मनुष्य का इस उग से पुनर्निर्माण करता चाहता है कि यह मानववादी तथा मननसमय अब में पराववादी बन सके। यदि हम लोकतन्त्र की इस व्याख्या की स्वीकार करते और उसे पारम्परिक सहयोग तथा सामनस्य का एक सिद्धांत मानें तो भारतीय संस्कृति की परम्पराएँ उसका उचित आधार बन सकती हैं और उसका पूर्ण सिद्ध हो सकती हैं। यद्यपि मुझे आध्यात्मवाद तथा आत्मवाद की श्रेष्ठता प्रवर्तित करने की उद्यम शास्त्रीय समस्या से प्रयोजन नहीं है। मैं ईश्वर तथा आत्मा के अस्तित्व के सम्बन्ध में हेतुवात्तवीय तरीके में नहीं उलझना चाहता। वैसी समस्या तो केवल राजनीतिक है। मैं यह विश्वास चाहता हूँ कि भारतीय संस्कृति के मूल विचार लोकतांत्रिक ध्यान के विरोधी नहीं हैं, बल्कि वे एक ऐसे मन तथा एक ऐसी चिन्तन प्रणाली का पोषण कर सकते हैं जो लोकतन्त्र के पक्ष की बल प्रदान कर सकें।

भारतीय संस्कृति की आधारभूत धारणा यह है कि विश्व के मूल में एक आदि आध्यात्मिक सत्ता विद्यमान है। यह सत्य है कि अनेक बौद्ध सम्प्रदाय, पारम्परिक शास्त्र एवं बीमाशा सम्प्रदाय तथा चारवाक भौतिकवादी किसी निरर्थक लक्ष्यवाक तथा वे अथवा समुल ईश्वर में विश्वास नहीं करते थे। फिर भी बहुलस्यक भारतीय विचारण तथा दार्शनिक एवं निरर्थक आध्यात्मिक आत्म शक्ति की स्वीकार करने के पक्ष में थे। आध्यात्मिक जीवन-उद्यम के अनुशासिका में बहुलस्यक देखे हैं जिन्हें बहुलस्यक इन की सच्ची स्थापनाकारी अनुभूति नहीं हुई है, फिर भी वे एक बौद्धिक सिद्धांत तथा परम्परागत विश्वास के रूप में आध्यात्मिक दृष्टिकोण को अंगीकार करते हैं। एक राजनीतिक सिद्धांत के रूप में लोकतन्त्र आध्यात्मिक लाक्षणिक के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहता। यह तो उसे व्यक्तियों के निजी जीवन का मामला तथा आन्तरिक विचार का विषय मानता है। यह इस सिद्धांत को स्वीकार करता है कि नास्तिक, आध्यात्मवादियों तथा भौतिकवादियों, सभी के साथ समान व्यवहार किया जाय। इसी साम्यवाद के कुछ समर्थक उक्त नास्तिक के और पक्ष का विचार करने में विश्वास करते थे। किन्तु लोकतन्त्र की आध्यात्मिक विश्व-दृष्टि के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहना है। यह बहुलस्यक शासन तथा आधारभूत प्रयोजन शासन की समस्याओं की अपने जीवन से परे का विषय मानता है। यद्यपि भारत का आध्यात्मवादी लोकतन्त्र मनुष्य की आत्मा की समस्याओं के सम्बन्ध में मोन है फिर भी यह कहा जा सकता है कि आध्यात्मिक विश्व ध्यान लोकतन्त्र की नींव की अग्रिम हो बल प्रदान करेगा। मैं आध्यात्मवाद की लाक्षणिकीय श्रेष्ठता का समर्थन नहीं कर रहा हूँ। वैसा कथन केवल यह है कि राजनीतिक दृष्टि से आध्यात्मिक लाक्षणिक जीवन के आधार की मजबूत बना सकता है। आध्यात्मवाद मनुष्य के व्यक्तित्व की एकता प्रदान करता है। आजकल नविक प्रतिस्पर्धा तथा अज्ञानमूलक सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था के कारण समुदाय तथा व्यक्तियों के समय विद्रुमा छापी हुई है इस प्रकार की एकता अत्यन्त आवश्यक है। विभिन्न प्रकार की आर्थिक तथा सामाजिक समस्याओं की वृद्धि, अज्ञान समर्थों का निरन्तर भ्रम और नहीं तक कि कुछ जीवन के अर्थक जीवन में अज्ञान तथा अविषय का राज्य, वे सब बातें समाधिजन तथा मानसिक श्रम उत्पन्न करती हैं। मानसिक दुःखजन्य जिनसे मनोविचार उत्पन्न होते

है, होनाता अर्थवादी तथा निःहो छोट मुल्मों के आस्था का समर्थन, आदि लोकतन्त्र के लिए भारी खतरा है। आध्यात्मिक इष्टिकोण विषय तथा उसने और अन्तर्विरोधी की बुद्धिबूझ सिद्ध करता है, यह मनुष्य के क्रियात्मकता की एक दिशा देता है तथा यह बतलाता है कि प्रत्येक एक प्रयोजनपूर्ण व्यवस्था है जब तक मनुष्य की निःहो आधारभूत इष्टिकोण मुल्मों के आस्था नहीं है, तब तक लोकतन्त्र सफल नहीं हो सकता। भारतीय जनता का आध्यात्मिक इष्टिकोण में विश्वास है, और उस पर परिष्कार के यौद्धिक नास्तिकवाद (एथेलेन्सवाद) का प्रभाव नहीं है, अतः वह लोकतांत्रिक दर्शन को पुष्ट करने की विरासत मनीषात्मक सामग्री प्रदान करती है। इस प्रकार आध्यात्मिक विश्व दर्शन का, जो भारतीय संस्कृति का एक महत्वपूर्ण तत्व है, बुद्धिवादी राजनीतिक परिणाम यह है कि वह व्यक्ति के एकीकरण और समष्टि का भाग दिखलाता है, और यह लोकतन्त्र की सफलता के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

आध्यात्मिक व्यवसाय का एक अन्य विहितार्थ यह है कि वह राजनीतिक शक्त को परिष्कृत करने के सिद्धांत को स्वीकार करता है। व्यक्ति में 'राजनीतिक' लोकतन्त्र का एक महत्वपूर्ण आधार प्राकृतिक विधि की धारणा है जिसने मुख्य प्रतिपादन मिलेरी, टर्मिन्स एक्विनास तथा अन्य विचारक हुए हैं। मध्य युग में उत्कृष्ट प्राकृतिक विधि की परम्परा का बोलबाला रहा, तथा यह धारणा प्रचल रही कि जो मानव विधि उस प्राकृतिक विधि के विचलित होती है उसे स्वीकार नहीं किया जा सकता। इस परम्परा से इस इष्टिकोण को कम मिला कि राजनीतिक सम्बन्धितता पर अद्विष्ट तथाका आत्म तथा आधिपत्य सहकारी वाक्यमार्ग को समर्थन जनता को सीप दिया जाय। सामान्य अविचलित शक्ति की निरस्तता की कम करने का उपाय है। यह सत्ताधारिता को निर्मासित करता है। यह शक्ति कांडा को इस धारणा से औत्तरीय करने का प्रयत्न है कि शासन में सबका साथ हाथा चाहिए। लोकतन्त्र शक्ति के कांडा की परम्पर सम्बद्ध करने के तथा उत्तरदायित्व, सत्ता, स्वतन्त्रता और प्रमुख का समर्थन करने के विश्वास करता है। यह आधिपत्य की कम से कम करने का प्रयत्न करता है। लोकतांत्रिक सिद्धांत शक्ति को प्रदान तथा सीमित करने के विश्वास करता है। यह परम्परा कि 'राजनीतिक शक्ति अंतिम शक्ति नहीं है, लोकतांत्रिक दर्शन का सार है। इस परम्परा की भारतीय संस्कृति की आध्यात्मिक परम्पराएँ और भी अधिक सज्जत बना सकती हैं। आलोचनात्मक बुद्धिवाद के इन वैज्ञानिक युग में आधुनिक बुद्धिवादियों के लिए आध्यात्मिक इष्टिकोण को स्वीकार करना बिल्कुल ही सम्भव न हो, किन्तु सनातनवादीय इष्टि से बड़ा जा सकता है कि जो परम आध्यात्मिक शक्त को सर्वोच्च मानते हैं उनके लिए शक्ति के उत्तरदायित्वहीन प्रयोग पर अनुष्ठ और निवर्तन सन्ताने का लोकतांत्रिक सिद्धांत अपरिचित नहीं है। प्राचीन ऋषियों के अनुसार मानव विधि, देव विधि तथा राजकीय विधि और राजशासन (संसार का आदेश), इन सबके ऊपर सर्वोच्च पथ है। सर्वव्यापी मूल देवतावा, मनुष्य तथा प्रकृति सभी को निर्मासित करता है। आध्यात्मिक शासन की इस सम्बन्धी विधि की धारणा राजनीतिक शक्ति पर निवर्तन सन्ताने के सिद्धांत के समर्थन अनुकूल है। अतः भारतीय संस्कृति की आध्यात्मिक परम्परा इस लोकतांत्रिक सिद्धांत की बल प्रदान कर सकती है कि 'राजनीतिक शक्ति के उत्तरदायित्वहीन प्रयोग पर अनुष्ठ तथाका आत्म।

लोकतन्त्र मनुष्य के आध्यात्मिक व्यक्तित्व में विश्वास करता है। 'एक व्यक्ति एक मत' का आदेश मनुष्य की आध्यात्मिक स्वातन्त्रता के सिद्धांत पर आधारित है। इस बात से कोई इनकार नहीं कर सकता कि एक दार्शनिक, कवि अथवा राजनीति शास्त्री की उत्पत्तिमयी तथा एक साधारण मनुष्य विधि अथवा ठेकेदार के कार्यों के बीच बहुत गुणात्मक अन्तर होता है। किन्तु अन्त में प्रत्येक की एक ही मूल का अधिभार दिया जाता है। इस समानता का आधार वह सिद्धांत है जिसे अठारवीं शताब्दी के दार्शनिक प्राकृतिक अधिभार कहते थे तथा जिसे आधुनिक 'विचारक' मनुष्य का आधारभूत नैतिक मूल्य तथा अन्तर्निहित आध्यात्मिक परिणाम नाम से अधिहित करता है। मनुष्य आध्यात्मिक प्राणी है। मनुष्य का जीवन नैतिक तथा सामाजिक परम्पराओं का ही सीमित नहीं है। लोकतांत्रिक दर्शन चाहे आध्यात्मिक मनोविज्ञान के सर्वोच्च स्वीकार न करे और चाहे वह

मनुष्य के मानस की अतिव्यवस्था के सम्बन्ध में बोल रहे, किन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से स्पष्ट था सम्भ्रात है कि बारम्बार लोकतांत्रिक के राजनीतिक दखन न ईसा, सत्त पात तथा क्रूर द्वारा प्रतिपादित मानव सम्बन्धी आध्यात्मिक दृष्टिकोण को धुनचाप क्षणों में समाविष्ट कर दिया है। ईसाई मानव शासन पारम्पर्य सविधानवाद का आधार है। भारतीय संस्कृति भी आध्यात्मिक मनोविज्ञान को स्वीकार करती है। वह मनुष्य को अमर आत्मा मानती है, और लोकतांत्रिक व्यवस्था की आधारभूत न विश्वास करती है। वह यह स्वीकार करती है कि मनुष्य को आध्यात्मिक तथा नैतिक शक्ति का कभी क्षय नहीं होता। इस आध्यात्मिक मनोविज्ञान के आधार पर भारतीय मानस के लिए इस लोकतांत्रिक सिद्धांत को स्वीकार कर लेना सरल है कि मनुष्य स्वयं साध्य है, वह साधन नहीं है। मानव शासकी परिवर्तन के विषयों की हर प्रकार के सामूहिक सत्तावाद और नियन्त्रण से मनुष्य का बचाव कर सकता है और यही विचार सामाजिक तथा राजनीतिक सभ्यता का साक्षात्कार करने में हमारी सहायता कर सकता है। भारतीय संस्कृति के अनुसार जिस मनुष्य को आध्यात्मिक अनुभूति हो जाती है वह हर प्रकार के सामाजिक बचन तथा ईश-नीच के भेद भाव से ऊपर उठ जाता है। भारतीय इतिहास में ऐसे अनेक लोगों तथा भूमि के उदाहरण हैं जो समाज के निम्नतम वर्गों में उत्पन्न होने के बावजूद श्रेष्ठता और प्रतिष्ठा के उच्चतम स्तर पर पहुँच गये थे। वह लोकतांत्रिक परम्परा के अनुकूल है। कबीर, रामक और रदास की शिक्षाओं को पुनर्जीवित करके उनके लोकतांत्रिक सामाजिक समानता के आदेश का समर्थन किया जा सकता है। भारतीय जनता वैदिक, बौद्ध और हीनयान के सामाजिक सिद्धांतों के प्रति मानवतावादी सहानुभूति भरी हो न दिख सके, किन्तु अज्ञानवाद का सिद्धांत सामाजिक तथा राजनीतिक समानता के आदेश को अवश्य बल देता।

लोकतन्त्र बुद्धि सहिष्णुता और समझौते का सिद्धांत है। उसका विश्वास तक, विचार विमर्श तथा सहपरिचय में है। वह शक्ति को सीमित करने की शिक्षा देता है। वह बहुकार्यवादी स्वातंत्र्य के स्थापन करने के आदेश को स्वीकार करता है। वह चाहता है कि व्यक्ति तथा समूह की प्रकृति के स्थापन पर उस लोग को प्रतिष्ठित किया जाय जिसे वैदिक युग में मानवता की आवश्यकता कहा है। सामेदारी लोकतांत्रिक दखन का आधारभूत सिद्धांत है। शासन में, मनुष्य एवं सामाजिक तथा सामूहिक अनुभव सभी में सामेदारी की आवश्यकता है। अतः समूह-वर्तिका पर प्रतिबन्ध करता है, आवश्यकताओं को सीमित करता है, तथा अपने पक्षीय के व्यवस्था का ध्यान रखता है। विश्व का निम्न दक्षिणीयतापूर्ण समय का स्थापन यही मानता है बल्कि यह मानकर चलता है कि वह लोकतांत्रिक के लिए आवश्यक कार्यों को समाविष्ट करने का स्थल है। हम 'जियो और जीने दो' के आदेश पर आचरण करता है। अतः लोकतांत्रिक दखन बहुरी नैतिक नीति पर आधारित है। भारत में लोकतांत्रिक के नैतिक आधार को अपनी पुरातन आचारभूतिक परम्पराओं ने द्वारा सुदृढ़ किया जा सकता है। भारतीय नैतिक अनुशासन अत्यन्त ही है। वह स्वायत्त तथा आत्मसमय पर बल देता है। वह दूसरों पर आक्रमण करने और अधिकार जमाने का उपदेश नहीं देता। भारतीय धर्म तथा दखन में प्रेम, नम्रता, मानवता, दया तथा 'पाप को क्षमा कर दो' का धर्म प्रशस्त की गयी है। बल इस बात पर दिया गया है कि विचार तथा मन के द्वारा नैतिक उत्साह तथा अज्ञान विचार प्राप्त की जाय। बाह्य शक्ति तथा धन की योग्यता कायम करनी चाहिए और उसके लिए योग्य उपाय करनी भारतीय संस्कृति का आदेश नहीं रहा। धन का निम्न बुद्धिमान किया गया है। महाभारत में एक वक्ता है कि एक भारतीय व्यक्ति न सक्षम के विचार हेतु अथवा मन के लिए अपनी हृदयों तक दूरी की। लोकतांत्रिक के लिए आत्मोन्नति का यह एक उत्कृष्ट उदाहरण है। उद्देश्य की प्रतिष्ठा तथा व्यक्ति की श्रेष्ठता में विश्वास रखने वाली भारतीय आचारभूतिक परम्पराएँ लोकतांत्रिक दृष्टिकोण को बुद्ध कर सकती हैं। शक्ति का एक ऐसा आचारभूतिक नियम है कि उसका पारम्पर्यिक दखन अतिव्यवस्था तथा आक्रमण की दिशा में अन्तर्गत होना सकता है। लोकतांत्रिक में साक्षर के अन्तः क कम से कम आर्थिक बुद्धिकरण भूमि अधिकार, 'प्राथमिक पुनरीक्षा, महाविद्यालय, प्रत्याहारण आदि का भी अधिकार किया जाता है उसका मुख्य उद्देश्य शक्ति-वर्तिका उन्माद को प्रकृति पर अनुपस्थान है। भारतीय आचारभूतिक निरनुपस्थान के स्थापन पर अत्यधिक-वर्तिका की अधिक महत्व देती है। वह धारणा प्रमुख के स्थापन पर तथा और साक्षात्कारवाद के स्थापन पर

आन्दोलन को परम्परा की धारा में प्रवेश कर सकती है। आज के अन्त में इस परम्परा को मजबूती प्राप्त होना है।

लोकतन्त्र ऐतिहासिक स्वतन्त्रता की स्वीकार करता है। यह अवस्था की स्वतन्त्रता चाहता है, और इस बात पर आग्रह करता है कि दूसरे लोगों के मत को सुना जाय। किसी पर सत्ताभूषण वृद्धि सिद्धांत अथवा घमण्डात्मा के आदेशों को आपस लोकतन्त्र विरोधी बात है। चित्तन तथा मानवनिष्ठ अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता लोकतन्त्र की सफलता के लिए आवश्यक है। लोकतन्त्र मानता है कि मानव सम्पत्ति की प्रगति नागरिक के इस सम्मान पर निर्भर होती है कि वे किसी बात का अंगीकार करने से पूर्व प्रारम्भ में उसे सब की दृष्टि में देखें और उनकी छानबीन करें। भारतीय संस्कृति अर्थात् युवा ने विचार के दौरान कुछ घमण्डात्मीय तथा परलोभमान्मीय अवस्था में सम्पन्न हो गयी, इसमें शक नहीं है। किन्तु भारतीय चित्तन की आत्मा स्वयं ही स्वतन्त्र अवस्था का आकाङ्क्षित होती आती है। उसने एक तथा संदेह पर खन दिया है। वह स्पष्ट है कि भारतीय संस्कृति में स्वतन्त्र चित्तन पर उल्टा अधिक बल नहीं दिया गया है जिससे व्यक्ति के मनोवृत्ति आकांक्षों के वैज्ञानिक आलोचना में विषय क्या था। किन्तु भी भारतीय संस्कृति में बुद्धिवाद के महत्वपूर्ण बीज देने के भी मिनत है। नास्तिक तथा लोक सम्प्रदाय के विचारक वेदा की औपनिषद मानने वालों से बड़ी अपेक्षा बुद्धिवादी थे। भारतीय इतिहास में हमें बड़ी ऐसे घमण्ड का प्रमाण नहीं मिलता जिसने किसी का उत्पीड़न किया हो, और न किसी अत्याचारी दुरोद्भूत का भी उल्लेख आता है। राजनीतिक शक्ति धारण करने वालों तथा साम्प्रदायिक और धार्मिक नेताओं के बीच ऐसा कोई सम्बन्ध नहीं था जिसके अनुसार विपक्षी जनता पर कुछ सिद्धांत अथवा सत्तावादी होने का प्रयत्न किया जाता। यह भारतीय बुद्धिवाद की परम्परा लोकतन्त्र के नैतिक आधारों की शुरुआत करने में योग दे सकती है।

मैंने यहाँ भारतीय संस्कृति के तीन आधारभूत सिद्धांतों का उल्लेख किया है (1) वरुणा की धारणा (2) आत्मा में विश्वास, (3) अलसमयन का आचारलौकिक सिद्धांत। मैंने यह भी दिखाने का प्रयत्न किया है कि राजनीतिक दृष्टि से ये तीन धारणाएँ लोकतन्त्र विरोधी नहीं हैं, बल्कि ये लोकतन्त्र को कुछ भी कर सकती हैं। यह स्पष्ट है कि आधुनिक प्रतिनिधि लोकतन्त्र की संस्थाएँ तथा कार्यविधि परिचय से ली गयी हैं, किन्तु हम आधुनिक लोकतन्त्र में भारतीय संस्कृति के प्राक्कूलन तथा भारभूत संदेश की ओरकर उसके नैतिक आधारों को मजबूत बना सकते हैं। हम वेचन सीन और सभी के सबों के मत पर भारतीय लोकतन्त्र की नींव को मजबूत नहीं बना सकते। यदि हम चाहते हैं कि लोकतन्त्र भारतीय लोकमानस में आकांक्षित संस्कृति उत्पन्न करे तो हम सबसे कम धारणाओं और प्रभावनाओं की आपस में बात करनी पड़ेगी जिससे वे सभी नीति परिचित हैं। भारत में व्यक्ति के सत्ताधर और व्यक्ति की उत्पन्न करना सम्भव नहीं है। किन्तु यह हो सकता है कि हम कुछ आधारभूत लोकतांत्रिक आधारों को के ले और उनका भारतीय संस्कृतिक विरासत में प्राप्त सामर्थ्य स्थापित करने का प्रयत्न करें। यह एक कठिन हो सकता है जिसके द्वारा हम भारत में लोकतांत्रिक सिद्धांत का विकास कर सकते हैं।

भारतीय लोकतन्त्र के शैक्षिक आधार

1. भारत में लोकतन्त्र तथा शिक्षा

पिछले डेढ़ सौ वर्षों की एक सबसे महत्वपूर्ण घटना जनता का उत्थान है। राजतन्त्रीय स्वराज्य, अभिजात्य-मध्यम वर्गिकता तथा अल्पतन्त्रीय मंडलीय का महत्व घट रहा है। यह तथ्य ही संकेत है कि सामन्यता के बावजूद सभी मित्रताओं के बावजूद महत्वपूर्ण राजनीतिक विषय सभी की सोझ-से व्यक्तिया के द्वारा विवेचित होते हैं। किन्तु उत्थानवादी शक्ति पर धोखे से शोषी का दबावबिनाश होने से हमारी इस प्रत्याशना का समर्थन नहीं होता कि आधीन, मध्य तथा आरम्भिक आधुनिक युगी की तुलना में आज सम्पूर्ण जनता का महत्व बहुत बढ़ गया है। अल्पविक कठोर अभिजात्यवादी सरकारों की भी जनता का विरोध करने के लिए सब प्रकार के प्रचार तथा प्रकाशन का सहारा लेना पड़ता है। जनता का यह उन्माद आधुनिक विज्ञान, प्रविधि, हमलावादी समाज-व्यवस्था तथा शिक्षा का परिणाम है।

वर्तमान काल में शिक्षा व्यक्तिगत या सार्वजनिक महत्वपूर्ण अंग है। लोकतन्त्र की भाव है कि शिक्षा का सामाजिक प्रसार हो। शिक्षा के जनताओं के व्यक्तिगत या विज्ञान होता है, और जनता का प्रमुख ही लोकतन्त्र का मूलभूत है, और उसी प्रमुख को लोकतन्त्र साक्षात्कार करना चाहता है। यह व्यक्तिगत नहीं है कि निर्वाचक की शिक्षा के बिना लोकतन्त्र एक मशीन है। इसीलिए धीरे-धीरे यह स्वीकार किया जा रहा है कि शिक्षा एक महत्वपूर्ण मानव अधिकार है, और इस अधिकार की गारंटी का भी प्रयत्न किया जा रहा है। अनिवार्य शिक्षा का आन्दोलन इसी शिक्षा की ओर के जाने का प्रयत्न है। धीरे धीरे यह स्वीकार किया जाने लगा है कि अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा का प्राविधान करना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि शिक्षा प्रत्येक की नवीन वैज्ञानिक पद्धतियों को लोकप्रिय बनाना भी आवश्यक है। यह लोकतन्त्र का एक आधारभूत सिद्धांत है कि एकमेव शिक्षा का समान अवसर दिया जाय, और स्त्रियां तथा निम्नवर्गीयों को न प्रवेश करने के आधार पर नहीं बल्कि प्रभावित योग्यता के आधार पर होना चाहिए।

लोकतन्त्र के विकास के कारण शिक्षा के सम्बन्ध में एक नये समाजवादी दृष्टिकोण को अपनाया आवश्यक हो गया है। हम केवल यह मानकर संतोष नहीं कर सकते कि शिक्षा सामुदायिक ज्ञान का एक निजी प्रतिफल है, मर्यादा साम्प्रदायिक प्रमुखीकरण की एक रहस्यवादी प्रक्रिया है। शिक्षा की एक ऐसी सामाजिक वागविविध मानना है जिसके द्वारा मनुष्य समाज तथा समूह के साथ अपना सामंजस्य स्थापित कर सकता है। जनहनी तथा अत्याहनी घटनाक्रमों में मनुष्य की शक्ति की विकास तथा व्यक्ति की शिक्षा का उद्देश्य माना जाना था, और इस उद्देश्य की सुरक्षा अनिवार्य रूप के कारण के सम्बन्ध में ही साक्षात्कार करने का प्रयत्न किया जाता था। किन्तु शिक्षा के विषय में यह व्यक्तिवादी दृष्टिकोण उस प्रतिधीन, अत्याचार तथा लोकतांत्रिक समाज के अनुकूल नहीं है जिस हमारी जनता इस देश में साक्षात्कार करना चाहती है। यदि हम चाहते हैं कि हमारे समाजवादी विचारों को चलने के अर्थ प्रमुखमूलक अभिचार का सही रूप में प्रयोग करे तो हमें शिक्षा की व्यक्तिगत शक्ति की विशेष प्रशिक्षण नहीं मानना है, बल्कि यह स्वीकार करना है कि यह

मनुष्य के आचरण का डालने और प्रभावित करने की शक्तिविधि है। शिक्षा का हमारी सामाजिक आवश्यकताओं तथा अधिनियमों से सम्बन्ध होता चाहिए, साथ ही साथ यह भी हो कि हम यह जानें कि हमें कि शिक्षित नियन्त्रणन पुनर्वास के समय सीमा व्यक्तियों का ही बात देंगे। शिक्षा सम्बन्धी हम समझनासही तथा सामुदायिक दृष्टिकोण के दो महत्वपूर्ण निहितार्थ हैं

(1) अब तक भारतीय समाज तथा संस्कृति पर इस विचार का प्रभाव रहा है कि व्यक्ति को पाने में तथा समाज के उत्पन्न करने के प्रति यथा रूप से चाहिए। इसका परिणाम यह हुआ है कि समाजवादी तथा व्यक्तिगत रूप से व्यक्तिगत उत्पन्न के बहाने जनता पर अपनी वृत्तान्तपूर्ण मनता को प्रकट या प्रकट किया है। इसने निरन्तर समाज के लिए यह आवश्यक है कि नाम लिखें म अभिप्रेत की प्रवृत्ति का निरन्तर विनाश हो। अब भारतीय शिक्षा पद्धति ऐसी होगी चाहिए जिससे लोग म बौद्धिक अभिप्रेत तथा गणन-पूर्ण की क्षमता उत्पन्न हो सकें। नवजात मानव की सफलता के लिए शिक्षा के सम्बन्ध म इस सामुदायिक दृष्टिकोण को स्थापित करने के स्वीकार किया जाय।

(2) सामाजिक समाज म व्यक्तियों के स्वतन्त्र विचार पर समान अधिकार प्रकट किया जाना चाहिए। इसका अधिप्राप है कि सोव 'आधुनिक' शक्ति, शक्तिशाली सामुदायिक, उदासीनता तथा निष्पक्षता का परिणाम करें, और सामुदायिक विचार के बापों म मन लयाने। इसके लिए आवश्यक है कि नागरिकों को ऐसी शिक्षा दी जाय जिससे उनमें राजनीतिक तथा सामाजिक बापों के लिए उत्साह तथा शक्ति उत्पन्न हो। मतदाताओं की यह नहीं समझना चाहिए कि वे अपना मत देकर कुछ प्रभावित की सफलता कर रहे हैं अपना उन पर अनुग्रह कर रहे हैं। यह महाधिकार के उत्पन्न शक्ति तथा राजनीतिक महत्व का प्रकट म उत्तर के बाद देना चाहिए। यह आवश्यक है कि जनता म प्रकट के म महान् सुख की प्रेरणा प्राप्त हो, और विचार हुए मतदाताओं का समूहों म शक्ति प्रकट किया जाय और उनमें सफलता आवश्यक की क्षमता उत्पन्न की जाय। कर्षण महाधिकार भारत के लिए एक नवी चीज है। 1909 के भारतीय सुधारों, 1919 के वाट्सन केमतक सुधारों तथा 1935 के भारतीय सार्वजनिक अधिकारों के अनुसार महाधिकार बहुत सीमित था। 21 वीं वर्ष तक उसमें अधिकार आने के लोभ की महाधिकार देकर लोकतांत्रिक की विचार म एक अधिप्रेत शक्ति-शील प्रकट प्रकट गया है। इस बात का महत्व यह है कि वीं वर्ष इस अधिकार का प्रकट करें। अब इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि भारतीय समाज के सभी वर्गों म ऐसे बुद्धिजीवियों का प्रादुर्भाव हो जो मतदाताओं को उनके उत्तरदायित्व तथा अधिकार के प्रति समेत करें।

भारतीय निर्वाचन की शिक्षित करने का अर्थ है कि 21 वर्ष की तथा उससे अधिक आयु की सम्पूर्ण जनता को शिक्षा दी जाय। इसके पहले यह है कि निरक्षरता के विरुद्ध निरन्तर आन्दोलन चलाना जाय। मुहम्मद, अन्धकार तथा शिवाजी जैसे व्यक्तियों के लिए बिना साक्षर हुए प्रकट उत्पन्न कर पहुँचने सम्भव था, किन्तु यह संभव जनता के लिए बिना साक्षरता की अपरिहार्य बात है। भारतीय निर्वाचनों की शिक्षित करने की दूसरी बात यह है कि साक्षर जनता को राजनीतिक शिक्षा दी जाय। इसके लिए स्कूला तथा कॉलेजों की शिक्षा पर्याप्त नहीं होगी। उनकी पूर्ण मात्र साधना के जरूरी होगी। हमें यह नहीं समझना चाहिए कि शिक्षा संस्थाएँ जीवन के प्रथम एकाद स्थान हैं, वास्तव म वे समाज का ही अंग हैं। शिक्षा के प्रति इस समानतापूर्ण दृष्टिकोण का एक विशेष अर्थ है। कर्षण होने पर मनुष्य को परिवार तथा गाँव के अधिप्रेत तथा सरल सम्बन्धों की दुनिया के निरन्तर जीवन सम्बन्धों के प्रति प्रकट म नाम करना पड़ता है, उसने सामुदायिक का सीमा अधिप्रेत सम्बन्धों को सीमित नहीं रह सकता। शिक्षा का कार्य मात्र कि जो इस व्यापक जनता म समुचित बुनियाद बना करने के लिए समर्थ करता है। नागरिकों की निरन्तर अधिप्रेत के उत्पन्न महत्वपूर्ण राजनीतिक नियम करने पड़ता है। उसे प्रकट विचार तथा समाज तथा समुदाय के सदस्यों का पुनर्वास करना पड़ता है। इसके लिए आवश्यक है कि उसे सही जानकारी उपलब्ध करायी जाय, और यह सभी सम्भव हो सकता है जब शिक्षा की प्रक्रिया म जारी रखी जाय।

भारतीय लोकतांत्रिक की सफलता के लिए हमें विश्वी नागरिक चाहिए। आ

बात भी है कि उनकी विविध राजनीतिक कार्यों में रूचि ही थी और उनमें इतनी चतुराई हा कि न चुनाव के लिए सजे होत याते प्रत्यायियों के चुनो तथा दोषों की परख कर सकें। यह सत्य है कि एशियायी देशों के निर्वाचकों के व्यवहार में अस्थिरता देखने की मिलती है, फिर भी प्रगतिशील आन्दोलन की गुंजाइश है। भारत के कुछ राजनीतिज्ञ तथा प्रशासकीय क्षेत्रों में जो अष्टाचार, कुलबादलशी तथा शोचनक व्याप्त है उसे देखते हुए एक बार पुन प्लेटो तथा अरस्तू की नीति यह कहना प्रासंगिक नहीं होगी कि हमें सर्वमुलसम्पन्न नागरिकों की आवश्यकता है। आवश्यक यह व्यापक रूप से स्वीकार किया जाता है कि शिक्षा से नीतिक काम होता है, उससे व्यक्ति की भाषा सुसज्जता बढ़ती है और साह-बुद्धिमत्ता से उत्पादन की क्षमता में वृद्धि होती है। शिक्षा निर्वाचकों में बाढीलाप की क्षमता उत्पन्न करती है, वे देश के सदस्यों के सही प्रकार प्रश्न पूछ सकते हैं और विषयको को समझ सकते हैं कि जनता के सर्वो-मुनी विकास के लिए वायव्य त्पार करना आवश्यक है। निर्वाचकों को इस बात की मान करनी पड़ती है कि वह काम दिया जाय, छापा निकल तथा आर्थिक अवसर की समानता प्रदान की जाय और शारीरिक शक्ति तथा संसृष्टि के विकास की सुविधाएँ तथा राजनीति में भाग लेने का अवसर दिया जाय। अन्तरराष्ट्रीय तनाव दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है, और भारत में स्थानीय भद्रों के अनेक क्षेत्र हैं। ऐसे अवसर पर आवश्यक है कि निर्वाचक विभिन्न राजनीतिक दलों के आदर्शों तथा कामविधि की सही जाति समझें। विद्यमान व्यवस्था की स्वीकार कर लेने के कठिना रवने से काम नहीं चल सकता। हमारे अतिरिक्त भारतीय निर्वाचकों में उदासीनता की भावना भी बड़ी प्रबल है। इस बात की आवश्यकता है कि उन्हें राजनीतिक कामनतान में भाग लेने के लिए निरन्तर प्रोत्साहित किया जाय, और उनका पय प्रदर्शन किया जाय।

2 भारतीय निर्वाचकों की शिक्षा के विषय सामाजिक विज्ञान, मनोविज्ञान तथा भाषाशास्त्रों में भारतीय निर्वाचकों की शिक्षा के विषय के सम्बन्ध में बहुत हदिकोच नहीं अवताना चाहता, फिर भी मेरा विचार है कि निर्वाचक के लिए भारतीय इतिहास की कुछ जानकारी आवश्यक है। उदाहरण के लिए हम निर्वाचक का जानना चाहिए कि पाकिस्तान का नाम किस प्रकार हुआ। सामाजिक शासन, भारतीय संविधान तथा भारतीय लोकप्रशासन की जानकारी हमें बहुत महत्वपूर्ण विषय है। भारतीय अवधारण और भूगोल का अत्यन्त प्राथमिक ज्ञान शिक्षा का अन्तर्गत विषय है। निर्वाचकों को भारतीय विदेशी चरित्र, तथा देश की छाया स्थिति का भी ज्ञान होना चाहिए। अन्तरराष्ट्रीय राजनीति का ज्ञान भी आवश्यक है। यह सत्य है कि अन्तर राष्ट्रीय विधि तथा राजनीति के सम्बन्ध में विद्यार्थी के लिए भी विश्व राजनीति के निरन्तर बदलते हुए तथा वे सम्बन्ध में नवीनतम जानकारी रखना जरूरी है, फिर भी निर्वाचकों को पाकिस्तान तथा अमेरिका के सन्धि व्यवधान, सामुदायिक जीवन के उत्पन्न तथा धम्मपूज के तनाव के सम्बन्ध में कुछ जानकारी होनी चाहिए।

सामाजिक तथा ऐतिहासिक विषयों की जानकारी से अतिरिक्त, शिक्षा में धनप्रविधान का भी कुछ ज्ञान जाना चाहिए। प्राचीनता, जाति तथा जात के प्रश्न में सम्पूर्ण भारतीय राष्ट्र के सामाजिक वातावरण की दृष्टि कर रखा है। अन्तः सामनात्मक (सवेगात्मक) विचारधाराओं की वृद्धि हो रही है जिन्में स्वतन्त्र सामाजिक विचारों में बाधा पड़ती है। देश में स्वतन्त्र सवेगात्मक महाचारित्र्य पत्नी हुई हैं। अब इस बात की आवश्यकता है कि निर्वाचकों के सामुहिक सवेगा में अनुचित साम उद्घाटन की प्रवृत्ति का योग काम। सामुदायिक समीक्षा तथा प्राचीनता के वास्तविक राजनीतिज्ञ क्षेत्र में नरिष्ठ भुत्वा का विचार हा चुका है। देश का राजनीतिक जीवन में विपन्नकारी विचारधाराओं में प्रवेश कर दिया है, जो बहुत ही गतरसा है। इसमें राष्ट्रीय जीवन दिव्य-विधि हो नहीं हो रहा है अन्ति उत्तम नहीं समुद्र उत्पन्न हो रहे हैं या देश की स्वतन्त्रता की भी नष्ट कर मजबूत है। आम जनता से पढ़ने तथा बाढ में लोक पार महीने दल का सामाजिक काम करना सामाजिक तनाव सामाजिक उत्तर तथा सवेगात्मक अस्थिरता में व्याप्त रहता है। उदाहरण प्रसार में स्वतन्त्र साम सवेगा अन्तर उत्पन्न करता है। सामुदायिक नरिष्ठता तथा प्रविधता का ज्ञान हो जाता है। जाति, दल तथा प्राचीन सामाजिक तथ्यों के सत्य उत्तरात्तर उत्तर आ जाय है।

[illegible][illegible]

बची-बची राजनीतिक दल इसा वास्तविकता उत्पन्न पर दल हैं जिससे निर्वाचन के प्रति प्रति के विचार और चीज उत्पन्न हैं। वास्तविकता देखते हैं कि अनेक समूह विश्व अहिंसा और बचपनी आदि उच्च नैतिक तथा शैक्षिक मूल्य की दुहाई देते हैं। दूसरी ओर समूह अपना स्वयं मूल्य बचन के लिए हिंस्र, भ्रष्टाचार तथा सुसज्जित पर सहारा लेते दे हैं। उनके आदर्शवाद तथा आचरण के बीच दिखायी देने वाली इस अंतराधि से निर्वाचन के चुनाव उत्पन्न होता है और वे यह नियंत्रण नहीं कर पाते कि किसको चुनें। बहुसंख्यक निर्वाचन होता है और आगे दिन बढती हुई सुदृष्टीयति पर आधारित प्रतिरोधितामूलक अंतराध काभाव प्रभाव के विचार देने रहते हैं। अतः वे अपना सवेगात्मक सन्तुलन को बँटते हैं। सा वास्तविकता यह नितात अधिष्ठ प्रतीत होती है। ऐसी परिस्थिति जनताप प्रस्त व्यति उत्पन्न करने के लिए बहुत ही उपयुक्त होती है और आधुनिक दल तथा समाज गुट भाति-ना तिवदमा के द्वारा इस प्रकार के व्यतिरिक्त से अनुचित लाभ उठान का प्रयत्न करते हैं। वेक निराद इस प्रकार के कुमानवस्था की प्रतीकार कर सकती है, जो सही कदावसागिन तथा पुन्या पर आधारित हो। ऐसी परिस्थिति में आवश्यक हो जाता है कि समाज के नैतिक का बल प्रभाव करने के लिए सामुदायिक जीवन की अधिक से अधिक प्रोत्साहित किया जाय। अहिंसा संकटा के समय के नैतिक मूल्य पर बल देना और भी अधिक आवश्यक होता है। आम उद्देश्य की महात्मापू है। अब तक हमारी सामाजिक व्यवस्था असमानता पर आधारित है। हमने अत्यन्त मनुष्य के व्यक्तिगत का दमन होता है और अपने जीवन पर नाना प्रकार अनुप्रा और प्रतिबंध लगाये जाते हैं। हमने जीवनशैली के व्यतिरिक्त के स्वतंत्र तथा स्वातन्त्र्य के बाधा बढती है। यह भारतीय निर्वाचन की शिक्षा में हम मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण के

ध्यान में रखना है। इसके लिए मनोवैज्ञानिक पुनर्शिक्षा की एक व्यापक योजना की आवश्यकता है। पाठशाला, राज्य तथा समाज की एक दूसरे से भूषक धारणा सम्भव नहीं है। हर स्तर पर तथा हर क्षेत्र में व्यक्ति के विकास को प्रोत्साहन देना है। योगी में लौकिकताईयक मूल्यों के सम्बन्ध में एक संतुल्यकारी सामाजिक चेतना आसक्त करने के लिए सामूहिक मनोवैज्ञानिक तथा नैतिक शिक्षा की आवश्यकता है। मनुमान कोई छुटपुट तथा याविक विचार नहीं है, बल्कि वह हमारे राजनीतिक व्यवस्था का एक स्वतः प्रतीक है।

भारतीय राजनीतिक जीवन के कुछ अन्य दोष भी हैं। प्रत्यासी तथा इस मनुकताओं को उपकरण मान समझते हैं। उनकी व्यक्ति लोकतांत्रिक के बोधे मारा के प्रति है। उन्होंने अब तक मत दाता के स्वातंत्र्य व्यक्तित्व का सम्मान करना नहीं सीखा है। लोकतांत्रिक ने नैतिक मूल्यों को अल्पज्ञात करना अल्पमत आवश्यक है। मतदाता तथा प्रत्यासिद्धा और दत्ता की मनोवृत्ति को स्थायीकृत करता है। कभी-कभी शासक दलों के कुछ बड़े निरंकुशतापूर्ण और यहां तक कि क्रूर दंग का नाश कर देते हैं। इससे मतदाता की ऐसी शिक्षा की जानी चाहिए जिससे उनमें शक्ति, गरिमा, स्मृति तथा स्वावलम्बन की भावना का विकास हो। मतदाता राजनीतिक व्यवस्था के अंतर्गत कोई योग्य तथा अधीनस्थ वस्तु नहीं है, बल्कि वह एक नैतिक प्रतीक है।

3 भारतीय निर्वाचनों की शिक्षा के अधिकरण

मैंने भारतीय निर्वाचन की शिक्षा का एक बहुत ही आवश्यक प्रस्तुत कर दिया है। इनको दूर करने के लिए विविध अधिकरणों के सहयोग की आवश्यकता पड़ेगी। निर्वाचन के निरक्षर वर्गों को आसक्त बनाने का सामाजिक उत्तरदायित्व राज्य की ही बहुत करना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त समग्रपूर्ण शिक्षा, आन समाज आदि कुछ परंपरागत समस्याओं की साधारणता फैलाने के कार्य में सहभागिता कर सकती है। निर्वाचनों की राजनीतिक शिक्षा देना अन्य महत्वपूर्ण समस्या है। इस नाम की राजनीतिक इस सामाजिक समझौते, मोटिवों, अध्ययन विविधों आदि के द्वारा कर सकते हैं। सरकार के लोक-सम्बन्ध विभाग तथा प्रचार एवं प्रचार विभाग इस नाम में योग्य दे सकते हैं। शिक्षा के लिए निश्चित सामग्री तथा माध्यम, दानों की सामग्री का प्रयोग करना पड़ेगा। निपक्षित शिक्षा संस्थानों तथा संस्थाओं के अतिरिक्त रेडियो, समाचार पत्रों, पत्रिकाओं, पुस्तिकाओं, पत्रों तथा सामाजिक समाज का भी प्रयोग किया जा सकता है। समय-समय पर विश्वविद्यालयों में राजनीतिक विषयों पर प्रसार व्याख्याओं का भी आयोजन किया जा सकता है। ऐसे माध्यमों में साधारण जनता को भी जाने की छूट होनी चाहिए।

4 निष्कर्ष

भारतीय निर्वाचन की शिक्षा का समग्र आयोजन का अर्थ नहीं बताया जाना चाहिए क्योंकि उससे जनता जीवन कठोर नियंत्रण के विकल्प में बंध जायगा। किन्तु साथ ही साथ उसमें समस्याओं की असमानी उपस्था के द्वारा भी हल नहीं किया जा सकता। हमें नियंत्रण तथा अधिकार के बीच समन्वय स्थापित करना है। शिक्षा को सामाजिक शक्तियों की प्रति में साध-साध चलना है। हमें अब जोका वह समय करना पड़ेगा जो शिक्षा पर समग्रकारी तथा एकाधिकारी इन का नियंत्रण स्थापित करना चाहते हैं। शिक्षा को राज्य के निर्देशन के अंतर्गत एक शक्ति में आने का प्रयत्न करना व्यक्ति का समय करने वाली शक्तियों को नियंत्रण देना है। लोकतांत्रिक में हम स्वातंत्र्यता, स्वयं के निर्माण सम्पन्न, अभिनय, सहयोग, तथा त्याग पर बल देना है। लोकतांत्रिक की सम्पन्नता के लिए एक दूसरे के भुक्त-भुविषा का ध्यान रखना आवश्यक है। हमारे चुनावों में दोषों को दूर तथा अनावकताओं की निष्पत्तियों की शक्तियों उनमें पड़ती हैं उनको रोकने का एकमात्र स्वयं उत्पन्न समुचित शिक्षा है। इसी लिए हमें आवश्यकता तथा निष्पत्तियों को, जो पानी निर्वाचन है सही दंग की तथा चतुर्दाई के साथ शिक्षा देनी पड़ेगी। निर्वाचन में परिणाम प्रारम्भ से ही ऐसी आदता का विकास करना होगा जो देश के सामाजिक तथा नैतिक विकास में योग्य द सर्वे।

भारतीय समाज में सवेगात्मक एकीकरण

1 सवेगात्मक एकीकरण की धारणा

मनुष्य की मानसिक रचना में सवेग महत्वपूर्ण अवयव होते हैं। किन्तु इनकी भूमिका तथा महत्व को सवेग समुचित रूप से नहीं समझा गया है। प्लेटो तथा अरस्तू स्वीकार करते थे कि मनुष्य की आत्मा में अवीदिक, वासनतमक तथा ज्ञानसिक्त तत्व होते हैं, किन्तु उन्होंने वासनित ज्ञान तथा वीदिक विज्ञान के पहलु को ही अधिक महत्व दिया। रिकार्डो तथा हेमेल ने भी बुद्धि को ही प्रधानता दी थी। किन्तु आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान तथा मानव विज्ञान ने दर्शा दिया है कि व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन में सवेगों की प्रचण्ड भूमिका होती है।¹ मैकडूगल, वेबेरी, डूबोइस, टाड, ली बीन, ब्लू, बालास, राइसिंगहोर्कर टाका तथा हेन ने भी मनुष्य के मानसिक जीवन के अवज्ञानात्मक पहलुओं पर ही अधिक बल दिया है। इसलिए जब विद्वानों तथा उस समय के सम्प्रदाय में सदेह होने लगा है जो इस उपयोगितावादी धारणा पर आधारित है कि मनुष्य अपने सब कामकाज अपने मूल दुःख की नाश-तोष का व्यापन व रक्षण कर रहा है।² मनुष्य के मानसिक जीवन में सवेगा के साथी महत्व को हिन्दू मनोविज्ञान ने भी स्वीकार किया गया है जैसा कि 'एगसा', 'मान' और 'वाक्ता' की धारणाओं से स्पष्ट है।

देवता, निपनीया भाँति का यह मत नहीं सही है कि सवेग अस्पष्ट और क्षीण विचार ही है।³ और न जेम्स और लॉरे के सवेग सम्बन्धी सिद्धांत को स्वीकार करता ही सम्भव है। मैकडूगल की यह धारणा सही नहीं है कि सवेग मूलप्रवृत्तात्मक प्रवृत्तियाँ⁴ के अंग होते हैं, क्योंकि भाव वा मनोविज्ञान यह नहीं मानता कि मनुष्य में सपन, चर्चित, अपरिचित और वसन्तात प्रवृत्तियाँ होती हैं। जेम्स के अनुसार सवेग प्रारम्भिक जीवन के अनुभवों की पुनरावृत्ति होते हैं।⁵ जेम्स के इन्टिमेंसी की विशेषता यह है कि उसने मनुष्य के प्रारम्भिक अनुभवों में विद्यमान सामाजिक तत्वा पर बल दिया है। यह अवयव है कि मनुष्य के मानसिक जीवन में सवेग सामक कोई भूषण विभाव नहीं होता। फिर भी यह एक तथ्य है कि मानक में सवेग का बुद्धि में गहरे उदय होता है। सवेग वा सम्प्रदाय मनुष्य के सामानात्मक जीवन से होता है।

सवेग भूय सभी हूँ तथा है जब उह्वास्तु कर्षों में व्यक्त किया जाय। सभी-सभी सवेग की वैकल्य धारणीक सविपत्ति होती है। जेम्स सकारों पर सवेग प्रतीक के द्वारा व्यक्त किये जात है, उदाहरण के लिए भाषा, कला, धर्म पीठविन साधारण, नकिता, विनकारी भाँति।

1 ग्रेट लॉरे, *A Dynamic Theory of Personality* (न्यूयॉर्क, 1935)।
एन एच कनर *Emotions and Bodily Changes* (न्यूयॉर्क 1935)।
डमरू एम गार्डन, *Emotions of Normal People* (मैन, 1928)।

2 जाल मन्दाप, *Ideology and Utopia* पृ 108-10।

3 ई. मर्जर *The Myth of the State*, पृ 25-26 (डेन यूनिवर्सिटी प्रेस 1945)।

4 एन ब्लू, *The Psychology of Emotion* पृ 66

5 पृ 1।

सर्वेसार्वभौम एकीकरण की समस्या का निरपेक्ष रूप से विवेचन नहीं किया जा सकता। हम सर्वेसा को परिवर्तनशील मानकर चलना पड़ेगा, और उनकी बंटीय विधा को विविध सामाजिक तत्वा की वारस्परिक निगरानी के सह-मन से समझना होगा। सर्वेसार्वभौम एकीकरण की समस्या का नैतिक तथा सामाजिक दोनों ही स्तरों पर विश्लेषण करना पड़ेगा। वस्तुतः समाज से पुनक व्यक्ति नाम की कोई वस्तु नहीं होती और न व्यक्ति समाज नाम की ही कोई सत्ता हो सकती है। वास्तव में समाज सामाजिक विधा प्रतिनिधिता और व्यक्तिवाद के वारस्परिक सम्बन्धों की है। समाज ऐसे व्यक्तिवाद का प्राण है जिनके बीच हथार के स्पष्ट स्थापन निश्चिन्ता होते हैं। जब कुछ मानव प्राणी किन्हीं प्रबल प्रेरणाओं, मूल अवस्थितों अथवा इच्छाओं का अनुभव करने लगते हैं तो उनकी अभिव्यक्ति सामाजिक स्तर पर भी होना लगती है। किन्तु व्यक्ति सामाजिक विचारों में सामाजिक परिस्थिति की ही प्रत्यक्षतम अभिव्यक्ति एकीकरण किया जाता है, फिर भी सर्वेसा का विकास-सम्पन्न व्यक्तिवाद का मन ही होता है। एक और वस्तुतः व्यक्तिवाद तथा समाजवाद होता है और दूसरी ओर मनुष्यों का सर्वेसार्वभौम व्यवहार। इन दोनों के बीच निरन्तर संपर्क चलता रहता है, वे एक दूसरे में अनन्तरांतर होते रहते हैं और एक दूसरे की प्रभावित करते हैं। सर्वेसा की अभिव्यक्ति के लिए सामाजिक संज्ञा समाजवाद से मिलती है, और दूसरी ओर सर्वेसा का संचित आधार समाजवाद की वदन गवाह है।

एकीकरण अथवा संघटन मनुष्य की सर्वेसार्वभौम विचारों के लिए आवश्यक है।⁶ सर्वेसार्वभौम विचारों के अनेक कारण होते हैं। सर्वेसा के एकीकरण के लिए पुन विधित करना की सामाजिकीय प्रक्रिया की आवश्यकता होती है। उसके लिए यह भी आवश्यक हो सकता है कि पुनर्निर्मित मनुष्य को मानवतावाद तरीके से हृदयमय किया जाय। सर्वेसार्वभौम एकीकरण की समस्याएँ सभी समाजों और समाजशास्त्रों में पायी जाती हैं।⁷ हमारे देश तथा सम्प्रदाय में आज अनेक अज्ञानविरोध देखने को मिलते हैं। हमारी कुछ समस्याएँ आधुनिक सम्प्रदाय की भी आधारभूत समस्याएँ हैं। उदाहरण के लिए 'वेद तथा आदिनिष्ठ' लोगों के बीच तात्वेय, अधिकांश तथा बुद्धिबलियों के हितों के बीच सामाजिक, वैवाची की समस्या का समाधान, शिक्षा-सम्प्रदायी विषयताओं का सम्पूर्ण व्यवहार। इन सभी अवगुणों की समस्याओं का संचित परिणाम यह होता है कि मनुष्य के स्वच्छिन्न व निर्माण में व्यवहार करता है। इनके अतिरिक्त उद्योग तथा विज्ञान पर आधारित पादप्रमाण सम्प्रदाय तथा सामाजिक अनुशासन पर आधारित भारतीय मनुष्य के बीच व्यवहार संपर्क की सम्प्रदाय विज्ञान का एक मुख्य कारण है। परिवर्तन तथा पुन के मूल्यों के बीच संपर्क की सत्ता पैदा हो रही सामाजिक संज्ञा, दवायक, निराल, अरविन्द और माधवी की रचनाओं में दर्शन का मिलती है। इस बात पर बात इन आवश्यक है कि भारतीय समाज के सर्वेसार्वभौम अनुष्ठान की विधुयक कारण के विविध कारण हैं।

2 सर्वेसार्वभौम एकीकरण में राजनीतिक आधार

(क) समस्याएँ—इन दण के अन्तर्गत निम्नलिखित की सभी दण यह अवसर नहीं मिलता है कि वे अपने सर्वेसा का भारत में प्रति प्रति और प्रेम के आधार पर संचित कर लयते। भारतीयता सभी की एक जलना मान है। यह सम है कि विद्वानों द्वारा सभी में भारत में एकता व कुछ स्थापक रूप रहे हैं। हिन्दू व मम तथा संस्कृति दोनों का रूप व भारत के कदाचित् निवासियों की गवहायक सत्ता का आधार प्रमाण दिया था। किन्तु सम्पूर्ण दण में राजनीतिक एकीकरण का अभाव रहा है। अंगीकृत, अज्ञात, अज्ञान और औरतत्व के समय में भारत नाम व श्रीगार्ग्य अंगीकृत व अज्ञात राजनीति एका में सम्पन्न की गयी थी। किन्तु यह एका राष्ट्रवाद की सचची मान्यता में अज्ञानता नहीं थी। यह अज्ञात राजनीति सत्ता थी और निरनुपवाद के राजनीति रूप में लिए ऊपर व गयी गयी थी। और जय संपर्क जय परिष्कार व संपर्क

6 मनुष्य का भारतीय की ही विन और ही एक सम्पूर्ण *Integrative Psychology* (मार्च 1951)।

7 नाम व 1870 के नाम प्रक्रिया मनुष्य का उदाहरण सर्वेसार्वभौम एक संपर्क की सम्प्रदाय का नाम था। पुनर्निर्मित सामाजिक नाम का नाम था कि दवायक व दवायक तथा सम्प्रदायक अज्ञान का नाम था। एक ही विज्ञान सम्प्रदायी सम्पूर्ण दवायक का नाम सम्प्रदायी सम्प्रदायी के सम्प्रदायी व।

आदिम प्रकार के और अविच्छिन्न थे, एवला की सातत और जीवन्त भावना का वन्य शक्तता सम्मिल भी नहीं था। अंधेन विद्वान तथा पाषाणकाल की शक्तियाँ का प्रयोग करने देश में समझन एवं सी सीमा वन के लिए राजनीति तथा प्रशासनिक एवला शोधने में समर्थ रहे।

देश की स्वतन्त्रता के उपरांत राजनीति तथा प्रशासनिक एवला की समस्या बहुविध बन गयी है। वर्तमान भारतीय व्यवस्था का समझन के भाव बहुते भारतीय लोगों के अविचार में था। यद्यपि बहुते के अविचार भारत का एक बड़ा क्षेत्र पारिवर्तन में चला गया है, किन्तु समझ कुछ नया प्रदेश भी सम्मिलित हुआ है। यह व्यवस्था है कि भूतपूर्व ब्रिटिश भारत तथा देशी राज्यों के विचारों में भारत के प्रति अलग-अलग दृष्टि के रूप में निश्चयता तथा एवला की भावना का विकास हो।

ब्रिटिश युग में भारतीय प्रांत वेचन प्रशासनिक इकाइयाँ थे। उनका निर्माण प्रशासन और कमी-कमी प्रतिस्था की गुणिता की दृष्टि से किया गया था। 1935 में भारतीय स्वायत्तता के सिद्धांत को स्वीकार करने भारतीयता की भावनाओं को संतुष्ट करने का कुछ प्रयत्न किया गया। जब राज्यों को 1947 से पहले की चुनाव में अधिक शक्तियाँ देकर प्रत्यक्ष की भावना के साथ गयी विचारों की गयी है। एक प्रदेश की एक ही भाषा हो, इस विचार के लोग के संवेदा को बहुत कुछ प्रभावित किया। भारतीय राज्यों में चुनावों में भाषा की कमी की आशय्य रूप में स्वीकार कर लिया गया है। इस चीज की बहुत प्रशंसा की गयी है। यद्यपि भारत का सांविधानिक ढाँचा अनुसूचित एकात्मक है, फिर भी कुछ भाषात्मक समूह भाषात्मक राज्यों पर बल कर सतर्क है, और साथ ही साथ वे इस विचार के अन्तर्गत यह भी सुनिश्चित कर सतर्क है कि हमारा राज्य सार्वभौम है। अनुसूचितप्रति प्रतिस्था विचारों कमी-कमी राजनीतिक व्यवस्था की जन्म के सतर्क है। यद्यपि के विचारों का इतिहास एक जीता जागता उदाहरण है। विद्यमान विचार हमारे देश के कुछ भागों में जो दुर्भाग्यपूर्ण घटनाएँ हुई हैं वे भी हमारे लिए सीखनीय नहीं हैं। वर्तमान व्यवस्था में भाषात्मक मनीषता के बीच है। उनके का उत्तर और भी अधिक बढ़ गया है। अतः यह समझ है कि बार स्वरूप सदैव पर आधारित मनीषता का शक्ति बल चलता रहे और राष्ट्रवादी भावनाओं का विकास होता जाय।

अतः हम भारतीय राजनीति में दो प्रवृत्तियाँ देखने की चाहती हैं। पहली केन्द्रीकरण तथा राजनीतिक एकीकरण की प्रवृत्ति है। इस प्रवृत्ति के समर्थन का कहना है कि भारतीय इतिहास में राजनीतिक विभक्तन के विनाशकारी परिणाम हुए हैं। वे भारत पर हुए उन अनेक आक्रमणों का कारण बने हैं जो भारतीय राजाओं ई पू में अतुल्य के समय से आरम्भ हुए थे। अतुल्य के उपरांत महाकुलियों के मुगलों, बाहमी के तुलसी, छत्र, तुल्य, मुगलमान तथा यूरोपीय आक्रमणकारी आये। इस इतिहास के समर्थन को यह है कि नहीं मविष्य में भारत वास्तविक आक्रमणों की शक्ति अनेक स्वतन्त्र राज्यों में विभक्त न हो जाय। जहाँ आपत्त है कि देश को राजनीतिक दृष्टि से सुदृढ़ बनाया जाय। अतिल भारतीय स्वायत्त तथा सांविध्य के द्विजे के शोधन को इस मत का समर्थन करते हैं। वे स्वतन्त्र बुद्धिजीवी जिन्हा विचारों सामाजिक रूप से लगाव नहीं है, इस विचार के मुख्य प्रयत्न हैं। वे भारत की राजनीतिक एकता और सांस्कृतिक सुदृढ़ता की भावना के पोषण हैं। इसके विपरीत भाषात्मक तथा सांस्कृतिक प्रदेशवाद की भी प्रवृत्ति है। यह एक रोमानी प्रवृत्ति है जिसका लक्ष्य स्थानीय भूमि, परम्पराओं तथा स्वतन्त्र प्रवृत्ति होलक्ष्यता की चेतना है। यदि बुद्धिजीवी यह केन्द्रीकरण को शक्ति प्रवृत्ति का समर्थन है तो उनके विपरीत मन्त्रों का समर्थन विरोधकर इस रोमानी प्रवृत्ति का विचार है जो भाषात्मक भावभूमि के अनुसूचित संवेदों और भावनाओं का समर्थन करने का प्रयत्न है। यह वह एक समय उत्प्रेरणा होकर चल रहा है जब यह चेतना है कि भारत के जय भागों में भाषात्मक राज्य स्थापित किये जा चुके हैं। इसलिए हम सीमा पुरार की पुरार सुनने की मिलती है। अतिल भारतीय केन्द्र की पुरार दिल्ली की दूरी की प्रतीक है और भाषात्मक भूमि की रोमानी पुरार उन संशयित अनुसूचित के प्रति लगाव और भक्ति के महत्व को व्यक्त करती है जिन्हें स्वतंत्रता का दिन प्रतिदिन के जीवन में सम्मिल होता है।

सोकता-व की प्रगति के पत्रस्वरूप एक विविध मनोवैज्ञानिक-राजनीतिक दृश्य सामने आन लगता है। रैमन्ट रैमन्ट ने इसे "कवेयो का सोकता-व" कहा है।¹ भारतीय सौंदर्य न हम वह दृश्य देखने को मिलता है। जब तक ब्रिटिश शक्ति देश में काम चाली रही जब तक विदेशी नीतिपद्धति मुख्य विषय करती रही, और जबता का नाम केवल जन विपक्ष का अनुसरण करता था। जब स्वतंत्रता न अपना महाविचार का मूल अधिकार प्रदान कर दिया है। इससे अनेक गम्भीर समस्याएँ सामने आ गयी हैं। औद्योगिक स्थिति ने भारतीय की शक्ति का अनुसरण साधन उपलब्ध हो गया है। अब इसे बता लग गया है कि जिन लोगों का यह सब तक निर्विवाद रूप से सम्मान करता आया था वे ही अब बोट के लिए उमका टार खटखटाते हैं। इसलिए अब सम्भव है कि राजनीतिक विषय सुरक्षित प्रसादों और कार्यालयों में न बिये जायें बल्कि उनके सम्बन्ध में जनता के सामूहिक समर्थन पृष्ठ पर और समस्याओं का विचार सत्यता और शक्ति में बिना धाम। सोकता-व एक स्पष्ट आदेश है, किन्तु उससे लिए प्रसिध्दान तथा विचारों की सम्पत्ति अवधि की आवश्यकता पड़ती है। अब तक जनता सोकता-व की भावना की अपनी वृत्ति, चापों और आवहारा में मानसता नहीं कर लेती जब तक इस प्रकार जनता के सबेरा में पृष्ठ करने का मय बना रहेगा। एशिया तथा अफ्रीका के विकासशील सोकता-वों में यह एक महत्वपूर्ण समस्या है। इस स्थिति में अब अब तक के उपेक्षित और विस्मृत मनुष्य की शक्ति का गया सारा उपलब्ध हो गया है, यह सम्भव है कि यह अपने बल का प्रयोग बिना ऐसी गुट के पक्ष में करे जो उनकी सामाजिक विरासत और शोध की किसी कल्पित गन्तु की ओर मोड़ सके। यह आवश्यक है कि सामूहिक सबेरा के इस विस्तार से सोकता-विक व्यवस्था की रक्षा की जाय।

(ख) उपस्य—राष्ट्रीयता के विपटनकारी प्रभाव का निराकरण करने के लिए आवश्यक है कि ऐसी नीतियाँ निर्धारित की जायें जिनसे लोगों ने मन में एक अखिल भारतीय केन्द्र के प्रति भक्ति की प्रबल भावना उत्पन्न हो सकें। ऊपर के बोली गयी राजनीतिक एजेंडा की धीरे-धीरे एकीकृत करने काही राष्ट्रीयता की भावना को विकसित कर देती है। बलविषय की जनता कुछ कानून और कुछ स्वतंत्रता प्राप्त की है, और विभिन्न भाषाएँ बोलती हैं किन्तु समय बीतने पर उससे भी बलविषयी राष्ट्रीयता की भावना उत्पन्न हो पड़ी है। अब भारत की वा सक्ती है कि सुदूरकेन्द्रीय सरकार के राजनीतिक साहित्यिक अर्थन कला-तर में अखिल भारतीय भक्ति की भावना को उत्पन्न कर देंगे। आवश्यकता इस बात की है कि स्थानीय क्षेत्रों के स्थाय कर सम्पूर्ण भारत को महत्वपूर्ण राजनीतिक कामकाज का केन्द्र बिन्दु बनाया जाय, नहीं तो सम्भव है कि विपटनकारी तत्व प्रभाव हो जाय।

राष्ट्रिय राष्ट्रीयता की भावना को विकसित करने वाले कुछ समुदाय तत्व होते हैं, जैसे मूल्य, भाषा, धर्म आदि की एकता—फिर भी सामक राष्ट्रियता की शोध का निर्माण करने के लिए ऐसे सांस्कृतिक समाज की भावना का होना आवश्यक है जिसका निर्माण सामाजिक समितियों की कार्यकारी ने भाषा पर हुआ हो। एक होने की मनोवैज्ञानिक भावना का होना आवश्यक है। यह तभी हो सकता है जब राष्ट्र की अन्तर्गत के साथ एकात्म्य की भावना हो। एक व्यापक तथा उदार अखिल भारतीय दृष्टिकोण की आवश्यकता है। यह अनिवार्य है कि सब देशवासी भारत की भावना मानकर उस पर अपनी सम्पूर्ण इच्छाओं की भावना रूप से केन्द्र करें। अखिल भारतीय राष्ट्रवाद की भावना के विकास के महत्वपूर्ण घूर्णीय तथा सहोदर की स्वतंत्रता की उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं। जब स्थानीय तथा पक्षपातपूर्ण समाज समितिकाओं होने लगे ही उनका निराकरण करने के लिए बहुत धीरा के बलिदान तथा घटनाओं के सम्बन्ध में मनन और चिन्तन करना चाहिए। जब तक भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद का आधिपत्य रहा जब तक अखिल भारतीय राष्ट्रवाद की दिशा में स्पष्ट कुछ प्रगति होती रही, स्थानिक विदेशी आवश्यकताओं के विरुद्ध प्रजा निर्पक्षालन रूप से उद्वेग प्रकट करती रही। किन्तु स्वतंत्र्य की प्राप्ति के बाद विदेशीकरण की विपटनकारी शक्तियाँ सक्रिय हो उठी हैं। स्थानीय समाज के जो अर्थन राष्ट्रवाद ने बढ़ते हुए प्रकार के कारण, अब तक

अस्मापी रूप में इसे पढ़े से वे अब पुनः चर्चिताली हो गये हैं। अतः आवश्यकता है कि ऐसी भावनाओं का बौद्धिक रूप से पोषण किया जाय जो अखिल भारतीय स्तर पर लोगों को प्रभावित कर सकें। भारतीय इतिहास के हर युग में आधारभूत सांस्कृतिक एकता की भावना विद्यमान रही है। उस एकता की भावना पर अतः विश्वास जाय। मैं ऐसी एकता का समर्थन नहीं करता जो विविधताओं को नष्ट करके ही जन्य सन्ने। विविधता में एकता होती चाहिए। इसलिए स्वाधीन संस्कृतियों, प्रादेशिक भाषाओं और समूह चर्च का भी पोषण करना होगा। किन्तु छावपानी इस बात की वरतनी है कि स्वाधीन चर्च के-हीन एकता को दुकल न करने पाये। अगो का विकास इस इन से होना चाहिए जिससे दूर शरीर स्वस्थ हो। ऐसी सांस्कृतिक समीपता और भावनात्मक लगावों को प्रोत्साहन देना आत्मप्राप्ति होगा जिससे सम्पूर्ण राष्ट्र के हित के लिए जोशिम उत्पन्न हो जाय।

यह सम्भव है कि बाह्य जगत के तनाव विरोधकर हमारे चिन्तन के पक्षीसिक्ती के साथ सम्भव का जगदना राष्ट्रीय चर्चना की मजबूत करने में सहायक हो सकें। किन्तु यह एक नियेपात्मक बात होगी, और अन्तराष्ट्रवाद तथा विश्व अशुल की बढ़ती हुई आचना के सम्भन में चर्चामात्री की बड़ी होगी। अतः विपटनकारी तर्का और चर्चियों का निराकरण करने का सर्वोत्तम उपाय यह है कि राजनीतिक देवी अर्थात् भारतमाता की गुला पर मलपूजन चल दिया जाय।

3 सवैचारमक एकीकरण के आर्थिक आधार

(क) समस्याएँ—आर्थिक स्तर पर की सवैचारमक एकीकरण की समस्या महत्वपूर्ण है। हमारे वृथिविद्यमान अर्थतन्त्र पर धीरे धीरे सामाजिक और प्रसारणीक औद्योगिक अर्थ व्यवस्था का तुर प्रभाव पड़ रहा है। निर्माणसाधना तथा कर्मियों के विवाह के चतसकन नगर तथा उनकी जनसंख्या में बढ़ि हो रही है। बड़ी सरवा में लोक गावों की छोड़कर नवरी की जा रहे हैं जिससे जनता अपने मूल निवास स्थानों से दल्लड रही है। यद्यपि कमीवारी का कटुलन हो गया है, किन्तु कमीवारी चर्च के लकीन लोगों पर अचना अधिचार जमा रहे हैं। वे जमीन तथा यह निर्माण कोसाइतियों में अपने पाव जमा रहे हैं और पूजीयसिक्ती के बग की चर्चिताली बना रहे हैं। भारत के अनेक भाग में चोपयमूलक सामाजी व्यवस्था के किलासकारी प्रभाव पड़े हैं। इनके अतिरिक्त बुद्धिमान औद्योगिक पूजीवाद में समाज को ऐसे चर्चों में विचल कर दिया है जिसकी आग में एकदम गहरा अन्तर देखने की किलता है। आर्थिक प्रसार की असमान रति में देश में धनकुचेरी, कटुवासी, बाहूवासी, चिन्तामोचियों आदि का एक चोपय बग उत्पन्न कर दिया है। उनके नीचे दल्लड लोगों का विद्याल जनधमूह है। चारवाले सम्भन के विकसित देशों में चोपय तथा चोपियों के बीच सामाजिक दूरी दल्लड अधिक नहीं है, कमीन उन लोगों के पय व्यवस्थासियों, सवैवरोध अमिया, हिस्सेदारा (सेयरधारियों) तथा वेतनभोचियों का एक जग दल्लड पड़ा हुआ है। आता न की एक सम्भन का विकास होता जाय या। उनमें अधिकतर ब्रिटिश प्रसारन में काम करने वाले कर्मचारी सम्मिलित हैं। किन्तु 1942 के बाद मुद्रास्फीति की तीव्र प्रचलियों ने सम्भन की आर्थिक स्थिति की नष्ट भष्ट कर दिया है। आज सम्भन भारतीय जनता का सबसे अधिक अशुभ और सवैचारमक दृष्टि से अशुभित्त चर्च है। एक ओर तो वह चर्चों में लोग की सबद्धि और वैभव की देखकर चिन्ता है और दूसरी ओर उनमें सामाजिक विरतर इस बात का भय पड़ा रहता है कि बड़ी उसकी स्थिति सवहारा यम की सी न हो जाय। सम्भन विदेन तथा अमेरिका के लोकतन्त्र का मेदल्ल खू है। जो जनता की स्पष्ट चर्चों में विचल होती है वह सत्तावाद न उदय के लिए सामाजिक पुद्धुमि दूआ करती है। ऐसा देश किलक अशुभ अधिचर्चित वृथि-प्रधान तथा औद्योगिक विकास की अरम्भिक अवस्था में हो और जिसमें चर्चिताली सम्भन का अभाव हो, अतः कि भारत में है, अधिसम्भन के विवाह के लिए बहुत उपयुक्त होता है कमीन अधिचर्चवाद जनता के चोप तथा निराशा की मल्ल करव का मय प्रदान करने के लिए आवश्यक प्रतीक, विध्या विदवाह तथा पक्षीसिक्ती पर राजनीति अधिचर्च के लकीन नारे प्रस्तुत कर सकता है।

पूजीवादी अर्थतन्त्र प्रतिकीयता पर आधारित होता है। यद्यपि प्रतिकीयता में निष्ठासुल्ल स्थितल तथा स्वायत्तल की भावना उत्पन्न होती है, किन्तु प्रतिकीयतामूलक स्वाय की पुन चर्चों

संवेगात्मक तनाव पैदा करती है। प्रतिबोधिदायक अव्यवस्था के मनुष्य को निरंतर तथा सत-रता के साथ प्रयत्न करने पड़ते हैं जिससे तनाव तथा असुरक्षा की भावना उत्पन्न होती है। जंगल की परिणाम होता है उसे काल सामर्थ्य ने स्थापित तनाव की भावना बढ़ा है।

आधुनिक आर्थिक जीवन का एक बहुत ही दुःख दत्त अज्ञान वैचारिकी की समस्या है जो औद्योगिक तथा कृषि की सेवा में देशों की मिलती है। वैचारिकी के समकाल आर्थिक तथा संवेगात्मक विपन्न उत्पन्न होता है। आम के निरंतर साधना के विस्तृत हो जाने से समस्त आर्थिक सम्पत्ति व धन मित्र हो जाते हैं। उससे मनुष्य के आत्मसम्मान का ह्रास होता है और उससे आत्मसन्तुष्टि की भावना उत्पन्न होती है। अब वह नाश्वर्य तथा के वस्तुएं महंगा विस्तृत हो जाती हैं जिनके पशुदिक बाध के कारण मनुष्य की संवेगात्मक व्यवस्था का तनाव होता है, जो मनुष्य के सब तनाव और सम्पत्ति समकाल रूप से धन-मित्र हो जाते हैं। कमी-कमी से मनुष्य का सम्पूर्ण संवेगात्मक संतुलन ही सुप्त हो जाता है। वैचारिकी हमारे सुचको का समकालम अनु है, और वैचारिकी के मध्य में विभिन्न स्वयं का जीवन बहुत ही दुःख कर दिया है। वैचारिकी एक स्वनीय प्राणी होता है। जिस मध्य में हमारी जनसंख्या बढ़ रही है उसकी देशसे हुए मने सोयी की काम पैदा दिन प्रतिदिन कठिन होता जा रहा है। अब तक सोयी के लिए समुचित काम की व्यवस्था नहीं होती जब तक हमारे सुचकी में संवेगात्मक संतुलन उत्पन्न नहीं किया जा सकता।

भारतीय अर्थ न प्रभावित कृषि तथा सामाजिक दोर से निरंतर बदलने के माध्यमक चरण में प्रवेश कर रहा है। भारत जैसे विपन्न देश में विभिन्न क्षेत्रों के बीच आर्थिक विकास का असमान होना अविशेष है। यह सम्भव है कि विभिन्न प्रांता के आर्थिक विकास में अधिक अंतर और विषमता होने से सोयी में निराशा उत्पन्न हो, और उसकी अनिश्चित भविष्यकृत विकसित क्षेत्रों के प्रति आकांक्षक प्रवृत्ति के रूप में होने लगे। इससे आंतरराष्ट्रीय ईर्ष्या और प्रतिस्पर्धा का उत्पन्न होना स्वाभाविक है।

आधुनिक भारतीय आर्थिक जीवन का एक न न मनोवैज्ञानिक पक्ष साधारण जनता के शिक्षा का जाली होता है। ऐतिहासिक मजदूर का मध्य में अज्ञातकृत कम सम्भव काम करना पड़ता है। मनव्यवस्था तथा सामाजिक संवेगात्मक विपन्न को जन्म देते हैं। महाराम गांधी के सामाजिक जनता की वैचारिकी का बहुत विरोध किया था और उनका सोयी का वाचनम बहुतसमय जनता के अनुमान, वैचारिकी और सामाजिक की दूर करने का ही उपाय था।

(क) उपाय—आर्थिक विपन्नता तथा आर्थिक सुविधाओं का अभाव तनाव तथा निराशा को उत्पन्न करता है। संवेगात्मक एकीकरण की एक निरन्तर सुख के रूप में साक्षात्कृत नहीं किया जा सकता। जिन आर्थिक गुरुत्वों में संवेगात्मक असामयिक उत्पन्न होता है वह दूर करता होता है। संवेगात्मक आर्थिक प्रसार के लिए भी यह आवश्यक है। इसके अतिरिक्त देश के विभिन्न क्षेत्रों के आर्थिक साधना का निरंतर प्रयत्नकृत हुआ चाहिए। देश के विकास की समस्या के सम्पत्ति में क्षेत्रीय दृष्टिकोण से साधना सुविधाओं नहीं है। यह हम विस्तृत भद्र तथा व्योमनीय है कि लोग अपने-अपने प्रांतों में साथ कार्यरत अथवा अन्य औद्योगिक उत्पादन की स्थापना के लिए भगता करता है। अपने आर्थिक जीवन तथा साधना के निरोधन के सम्पत्ति में हम क्षेत्रों और स्थानों की दृष्टि से साधन की स्थिति में नहीं है। समस्त देश की आवश्यकताएँ सभीपरि है। जहाँ न हम उच्च साक्षरता विकास के लिए प्रयत्न करता होता है। आर्थिक विकास का अंतर मिलने से जनता की संवेगात्मक गतिता सुख हावी। परन्तु सोयी की जो संवेगात्मक गतिता अब तक दबी पड़ी रही है उनका संवेगात्मक राष्ट्रीय जीवनता की पुनर्जन के लिए प्रयोजन किया जा सकता।

4 संवेगात्मक एकीकरण के समाजशास्त्रीय आधार

(क) समसामय—पुनर्निर्माण के सामाजिक विकास की समस्या का निरोधन व्यक्ति की कुलव्यवस्था तथा सामाजिक क्षेत्रों के आधार पर किया जाता है। आधुनिक मनोविज्ञान तथा मनोविश्लेषण में मनता की उत्पत्ति न सामाजिक कारणों का उपपादक किया है। सामाजिक चर्चा में सोयी की स्थिति की विपन्नता से निरंतर जनता की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। जिन साधनों की

सामाजिक स्थिति अधिन उठेगी होती है उसमें अधिकतम तथा मुद्रितगत नियम की लागूता अधिक देखने को मिलती है, और इसके विपरीत निम्न स्तर के लोग विभिन्न समूहों और आकाशवाणी के आधी होते हैं।

भारतीय समाज अब तक अव्यवस्थी समाज रहा है और पुरानी लोकरीतिवा तथा लोकान्तर धार्मिक परम्पराओं और पौराणिक विनियमों से बँधा रहा है। प्राचीन तथा मध्य युगों में देश पर अनेक आक्रमण हुए और राजवस्था में दृष्टिकोण से परिवर्तन हुए किन्तु उससे सामान्य जनता की जीवन प्रणाली में विवेक आंतर नहीं पड़ा। किन्तु सामुदायिक सम्मेलन के प्रभाव में नवीन रूपों का निर्माण हो रहा है। नगरों के निवासियों में व्यक्तिवाद की नवीन भावना का उदय हो रहा है। यदि नगरों में लोगो की अधिक प्रवृत्ति के अन्तर्गत अधिक अवसर और सुविधाएँ मिलती हैं, इससे अपने अधिकारों का जताने की व्यक्तिवादी प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। नगरनिवासियों की यह महती हुई व्यक्तिवादी भावना अव्यवस्थी सामाजिक आकाशवाणी के लिए निश्चय ही विघटनकारी सिद्ध होगी। नगरनिवासियों का व्यक्तिवाद उनके विनियम तथा आचरण का घटानेको पुरानी नसोद्विगी का उद्घाटन कर देता है। व्यक्तिवाद की नवी भावना नगरनिवासियों तथा उनके आकाशवाणी सम्पर्कियों के बीच घूट उत्पन्न कर देती है। यह भावना कभी-कभी नगरवासियों के लिए भी उत्तरदायक सिद्ध होती है। कभी-कभी यह भावना उस धर्म की उत्पन्न कर देती है जिसे दृष्टिकोण में 'एनीमी' कहा है। 'एनीमी' आकाशवाणीवाद, एकत्रीकरण तथा वृत्तवर्धन की भावना को कहते हैं। इस प्रकार की भावना अनुपम म तब उत्पन्न होती है जब उनके वे वाक्य मिल मिल हा जाते हैं जिनके द्वारा वह समाज के साथ अव्यवस्थी रूप में मूलवर्ध होता है। आकाशवाणी वर्षों में बड़े नगरों की बड़ों के सामाजिक सम्पर्क कम से कम नगरनिवासियों के लिए ही विरचय हो छित मिल होते।

सामुदायिक भारत में सामाजिक नियंत्रण की परम्परागत व्यवस्था धीरे धीरे लीन हो रही है, और इसके विपरीत उत्पन्न हुआ है क्योंकि पुरानी व्यवस्था के स्थान पर सामुदायिक नियंत्रण और सामंजस्य की किसी नवीन व्यवस्था का निर्माण नहीं हुआ है। अतः इससे व्यक्तिवाद का विघटन हुआ है।

लोकतांत्रिक राजनीतिक विचारधारा की संभावनाएँ नर लेने के पल्लववर्ध सामाजिक ज्ञान और भी अधिक बढ़ेंगे। लोकतांत्रिक राजनीतिक आदर्शवादी संवेदन्य सामाजिक व्यवस्था का समर्थन करता है। यह मान्य प्राप्ति की समानता पर आधारित होती है। इसने विपरीत जाति व्यवस्था, जैसी कि यह ज्ञान प्रचलित है, सामाजिक दूरी और सामाजिक भाईचारे के अभाव पर कायम है। असुरक्षा के अविद्याय का मना रहना लोकतांत्रिक आदर्शवाद का निषेध है। लोकतांत्रिक सिद्धांतों को निरुद्ध हो अधिक कार्यायित विद्या प्राप्तता उत्पन्न हो संवैधानिक विधीय अधिक उत्पन्न होगा। लोकतांत्रिक की प्रवृत्ति के साथ-साथ उच्च सामाजिक वर्गों को अपनी संवेदन्यता की प्रवृत्ति और सामाजिक अधिकारों का प्रयोग करने की आकांक्षा का परिष्कार करना पड़ेगा। यदि समाजवाद की समर्थक भावने का प्रत्यक्ष विद्या गया तो उच्च सामाजिक वर्गों का जोष और निरुद्धा और भी अधिक तीव्र होगी। वे जब अपने जोष, घृणा और प्रतिघोष की भावना को छुट भरकार के निरुद्ध स्थला करने में असमर्थ होंगे तो समाजवाद को लाने का प्रयास करेंगे, अतः सम्भव है कि वे उन लोगो के प्रति भी अपनी अविनियमित करने लगे जिनकी मुक्ति का प्रयत्न किया जा रहा है।

इसके अतिरिक्त यह भी सम्भव है कि नवीन मुक्त हुए वर्गों को संवैधानिक सामंजस्य स्थापित करने की समझना का समझना करना पड़े। वे एक विशेष प्रकार की व्यवहार प्रवृत्ति के अन्तर्गत हो चुके हैं। अब उन्हें नवीन प्रकार की अधिकारिता जगानी पड़ेगी। नवीन अधिकारिता के निर्माण में कुछ एक प्रकार के संवैधानिक ज्ञान की अनुमति हो सकती है। परिचय में भी यह देखने में आया है कि जब राष्ट्रीय अधिकारों के विचारधारा की नगरों के मजदूरों में स्थापनाकरित विद्या गया तो उन्हें नवीन संवैधानिक कठिनाइयाँ का सामना करना पड़ा। कभी-कभी उन्हें नष्ट का अनुभव हुआ और उन्होंने वापस जान की इच्छा प्रकट की। अब निम्न वर्गों के भी पुरानी पीढ़ियों के लोग हैं उन्होंने अपने जीवन भर अधिकारों की आकांक्षा की ईश्वरीय विद्या प्राप्त है।

यदि उन्हें सहा समानता की स्थिति में रख दिया जाय तो उन्हें सम्पूर्ण सदैवात्मक स्तर का अनुभव होगा।

हम पहले उल्लेख कर आये हैं कि मुद्रास्फीति की प्रवृत्ति का के कारण मध्य वय की निरन्तर इस बात का चयन बना रहता है कि वही उसे सबहाय की वृत्ति में व सम्मिलित होना पड़े। मध्य वय, विशेषकर निम्न मध्य वय के विनाश की आशका सदैव विद्यमान रहती है, और दूसरी ओर जो अब तक निम्न स्तर पर थे उनका उत्थान हो रहा है और वे समानता की स्थिति प्राप्त कर रहे हैं। यह बात स्वयं एक सम्पूर्ण सदैवात्मक महत्व की समस्या है। भारतीय समाज का मध्य वय सम्पूर्ण सदैवात्मक स्तर और अस्थिरता की स्थिति में है। यह वह वय है जो अपनी जाति को बँटा है और आर्थिक बोध से दया जा रहा है। यह वही व्यपत्ति के साथ अपनी पुरानी प्रतिक्रिया और प्रतिक्रिया को बनाये रखने का प्रयास कर रहा है। यह चाहता है कि उसे जो सम्मान निम्न वर्गों के मिलना आया है वह वापस रहे। दूसरी ओर निम्न वय एक नुकीली के साथ ऊपर उठ रहा है। यह बात मध्य वय के लिए सदैवात्मक दृष्टि से भयंकर संकट उत्पन्न कर सकती है। उसका जनरित आत्मसम्मान बाह्य लक्षण के अभाव में अपनी ही ओर मुड़ सकता और उद्यमीकरण का चिकार बन सकता है। यह भी सम्भव है कि वह उस अवस्था की प्राप्त हो जाय जिसे काव हरी भाषा में प्रतिप्रमन (रीप्रेशन) कहते हैं। अब यहाँ समूह संकट और समाज के समय में प्रबल सदैवात्मक स्तर की सामान्य मर्त्यों से स्पष्ट करने में असम्य होता है जो वह प्रतिप्रमन का चिकार बन जाता है जिसके फलस्वरूप उसकी चरित्रकथा की भावना क्षीय हो जाती है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह समय अस्मानमय का समय होता है।

(क) उपसंग—यह आवश्यक है कि समाजीकरण अधिकाधिक मात्रा में प्राप्त किया जाय। इससे मनुष्य की वे शक्तियां मुक्त होंगी जो अमर्यादात्मक तथ्यों में मरती हो सकती हैं। अब तक भारतीय समाज की शक्ति के केन्द्र छोटे छोटे समूह एक आर्थिक व्यवस्था अधिक से अधिक प्राप्त रहे हैं। इससे समाज विरोधी शक्तियों का जन्म होता है। व्यापक समाजीकरण के लिए आवश्यक है कि समूहों के बीच पारस्परिक प्रेरणा और आशोधन सम्भव हो। अलग भारतीय महत्व की समस्याओं पर विचार विनिमय की प्रक्रिया के द्वारा लोगों में पारस्परिक स्पर्धा और कुशल व्यवस्था के स्थान पर ऐसी प्रवृत्तियों की उत्पन्न करना सम्भव है जो सामाजिक मेल मिताप और सहयोग के अनुकूल हो। वृद्धिमान आशोधन सम्भव और पारस्परिक प्रेरणा के द्वारा भावा, जाति आदि के भेदभाव को दूर करना और सब भारतीय समाजिकों के प्रति सहानुभूति की भावनाओं को उद्दीप्त करना सम्भव हो सकता है। इस प्रकार साहचर्य की ऐसी भावनाएँ पुष्ट की जा सकती हैं जो आंतरजातीय प्रतिस्पर्धा की वृद्धि रोकने में समर्थ हो सकें।

यह सामान्य अनुभव की बात है कि बच्चों में जातिगत समूह नहीं होंगी। यदि परिवार, प्रोत्साहन, पढ़ाई आदि प्राथमिक समूहों का पारस्परिकता और सहयोग की भावनाओं को विकसित करने के लिए प्रयत्न किया जा सके तो सभी जीवजातीय व्यवस्थाओं की मुहूर्त नींव का निर्माण किया जा सकता है। इन प्राथमिक समूहों में उपयुक्त वातावरण का निर्माण करके अलग भारतीय राष्ट्रवाद के भावनों का परिचयन किया जा सकता है। इन प्राथमिक समूहों में भारत के प्रति भक्ति पर आधारित सदैवात्मक एकीकरण की शक्ति निर्मित की जा सकती है और वही के द्वारा जाति, भाषाजन्य भेदों आदि की सर्वोच्छाई दूर की जा सकती है।

यह आशा की जाती है कि आर्थिक विनाश के साथ-साथ आर्थिक प्रतिस्पर्धा बढ़ेगी और वह अंत में सामाजिक गरिबीनता को प्रोत्साहित करेगी। अमेरिका में आर्थिक प्रगति के फलस्वरूप ऐसे समाज का निर्माण करना सम्भव हो सका है जिसमें संकट का वय यूरोपीय समाज की परंपरागत प्रणाली से निम्न है। भारत में भी निम्न वर्गों की आवाज बढ़ने से उठने रहन सहन का स्तर ही ऊँचा नहीं होना बल्कि उनका सामाजिक स्तर भी सुधरेगा। सामाजिक शक्ति में प्रगति होने से विविध जातियों के बीच आशोधन सम्भव बड़ेगा और समानता की भावना उत्पन्न होगी।

5. संवेगात्मक एकीकरण के शैक्षिक तथा सांस्कृतिक आधार

(क) समस्याएँ—भारत का शिक्षित वर्ग, जिसे अंग्रेजी भाषा के माध्यम से शिक्षा मिली है, भारी संवेगात्मक तनाव का शिकार रहा है। उस पर वैज्ञानिक नीतिकवाद और सत्यवाद का विपरीतकारी प्रभाव पड़ा है। उसे कृषिप्रधान धर्मबद्ध समाज के पुरातन प्रतिमानों और मूल्यों में आस्था नहीं रही है। मुक्तता उसे व्यक्ति के लिए मानविक आदर्श के बीच भी संवेगात्मक तानु-तन बनाने रखता जैसे ही सम्भव हो सके। किन्तु जब अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त औसत भारतीय परिचय की विभिन्न विस्मयकारी उपलब्धियों की देखता तथा उसमें सम्बंध में पड़ता है तो वह धर्म-धर्म पर अपने मूल्यों और व्यवस्था की आलोचना करने लगता है। कभी-कभी वह क्रुद्धित धर्मपूजकता की अपने निषेधों की बगोटी मानने के प्रलोभन में पड़ जाता है। भारत में परिचय के आदर्शों और व्यवस्थाओं को सफल स्थापित करना सम्भव नहीं है। हम किन्तु ही दुःशास्त्र के साथ अपने व्यापक साधनों का नियोजन क्यों न करें, हम भारत में अमेरिका की प्रतिष्ठित बनी भी स्थापित नहीं कर सकते। किन्तु हमारे शिक्षित वर्ग परिचय से बहुत अनुप्रेरित है। किन्तु साथ ही साथ वह व्याख्यात्मक संस्कृति के पुराने मूल्यों में भी गूँध बिखारा है। किसी व्यक्ति के लिए एक मूल आधार और धर्मपरायणों से पुण्य उत्तर उठ जाना असम्भव है जिसमें वह भग्न होता है। इसलिए परिचय के प्रति संवेगात्मक साराहुना की भावना तथा जीवन के व्याख्यात्मक मूल्यों के लिए प्रयत्न तथा अधिक आकांक्षा—दस दोहा के बीच एक बहुत संवेगात्मक तनाव उत्पन्न हो गया है। जिस प्रकार मनुष्य अपने शरीर का रस नहीं बदल सकता वैसे ही वह अपनी सांस्कृतिक विरासत में वृद्ध मुक्ति नहीं ला सकता। अतः शिक्षित भारतीयों के मन में पुकारत दर्शन के प्रत्यक्ष और आदर्शों तथा परिचय के आदर्शों, धर्मप्रणाली तथा सामाजिक व्यवस्था के बीच निरन्तर संघर्ष बना रहता है।

आधुनिक शिक्षा प्रणाली के फलस्वरूप मनुष्य की विभिन्न क्षमता का विकास असंतुलित हो गया है। उसकी वैज्ञानिक प्रतिभा को विशेष उत्तेजना मिली है, किन्तु उसी अनुपात में उसकी नैतिक अज्ञात हिट का विकास नहीं हुआ है। मनुष्य अपने की कलात्मक प्रतिभा की तबीयतन क्षमियों से विधुषित कर सकता है और अधिकाधिक वेगवान परिवहन वाहन में बैठकर उड़ान भर सकता है, किन्तु नैतिक तथा मानवीय क्षेत्र में उसकी तबीयत आरम्भजनक तथा हृदय की आधार पहुँचाने वाली है।

मनुष्य को संवेगात्मक एकीकरण के लिए प्रेरित करने की दृष्टि से हमारी सामाजिक तथा धर्म शिक्षा अत्यन्त दोषपूर्ण है। प्रत्येक समाज अपने सदस्यों पर नियन्त्रण बनाने के लिए उन पर कुछ कठोर और विशेष लागू करता है। इसमें सबसे मनोविचार उत्पन्न होते हैं। दमित शिक्षा प्रणाली का वाय यह है कि वह मनुष्य के कामसेवाओं की गहराई में जाँच करने दबाव और निषेध से उत्पन्न मनोविचारों का पता लगाए। उनकी उल्लास करने तथा उनके विषय में बात न करने के काम नहीं चल सकता। शिक्षा की उन रीतों का व्यवहार करता है जो दमित गुणधर्मों के कारण उत्पन्न होते हैं।

कभी-कभी सामाजिक तथा नैतिकद्वैतता के अतिगोपितपुत्र प्रकार शिक्षा करता है जिससे विभिन्न समूहों के सदस्यों के संवेगात्मक एकीकरण में बाधा पड़ती है। द्वैत वैज्ञानिक साधन का सहारा न लेकर प्रायः लोगों के संवेगा की बदलावों के लिए 'गूँध भौतिक' तथा विद्या प्रणाली के आधार पर प्रकार किया करता है। किन्तु सामाजिक इन बड़े प्रणाली के विरुद्ध कर लेते हैं, विशेष-कर यदि वे उनकी मूल प्रवृत्तियों और मान्यताओं के अनुरूप होते हैं।

आज भारतीय समाज के अनेक क्षेत्र और अनुभाग ऐसे हैं जिनमें संवेगात्मक विशेष की सम्भावनाएँ नहीं पड़ी हैं। जनसंख्या के तेजी से बढ़ि हो रही है।¹ व्यापकताएँ तथा आकांक्षाएँ बढ़ रही हैं किन्तु सामाजिक तथा व्यापक सुविधाएँ और अवसर सीमित हैं। लग समय में सम्भव है कि 'सामाजिक' वह चीज के निवार हो जायें जिस साहस वातावरण में हठोत्प्रेरित विभक्तियों का

दिता है।¹⁰ व्यापक संवेगारमक असाहजिक स्वपीठनरति की प्रवृत्तियों की शमन से संज्ञा है, और कभी कभी यदि कोई व्यक्ति का व्यवहार मिल गया हो उसने प्रति भूतलानुग आचरणवृत्ता की प्रवृत्ति उत्पन्न हो सकती है। संकेत तथा साक्षयान् राजनीतिज्ञ इन विधियों की सहाय से प्रयोग कर करते हैं। वे जनता की प्रतिरोधक भावना को उल्टा करने के बन्दे की ओर मोड़कर अपना स्वयं किद कर सकते हैं। इस प्रकार वे अपनी विफलताओं के लिए निर्दिष्ट होने से बचने का माय उद निकालने में सफल हो सकते हैं। अपनी ये बहुधा विरोधी प्रचार से जो भयावह किनासा हुआ उसने स्पष्ट है कि आधिक विपदाओं की दिवति न कोई दल जनता के शुद्ध संवेगारमक लताओं को एक सुविधा जनक बलि के बन्दे की ओर सरनता से मोड़ सकता है।¹¹ फलतः का कहना है कि आदि की सामान्य परिस्थितियों में लोगो में सहजनुकूलि की साधारण देखने की मिलती है, और वे सफल क लक्ष्यों के साथ एकात्म्य स्थापित करने का भी प्रयत्न करते हैं। विन्तु सन्द के दीपन, उदाहरण के लिए बुद्ध-नाल म, पारिविक पदन की प्रविषा आरम्भ हो जाती है और फलस्वरूप लाभ करने अधिकारों और स्वाधी को अधिक सहज देने लगते हैं तथा साधिव के साथ एकात्म्य की मानना का परिधान बन लगते हैं।

(ग) उपाय—संवेगारमक असाहजिक और विधियों की इन समस्याओं का समाधान करने के लिए ऐसा शिक्षा व्यवस्था की स्थापना करना आवश्यक है जो लोगों की चरित्यों के उत्पत्तीकरण का सफल माय दिखता रहे। हमने पहले भारतीय सामरिकों के संवेगारमक एकीकरण के तीन मुख्य उपाय बताये हैं—(1) अधिकांश भारतीय राष्ट्रवाद पर चल देना, (2) गतिशील भारतीय आधिक व्यवस्था को स्थापना करना, और (3) सामाजिक मेल मिश्रण। विन्तु साथ ही साथ लक्षिक स्तर पर भी संवेगारमक एकीकरण के उपाय करने होने। शिक्षा को बहुलानुग-सत्तावर्ती भासाकरण से मुक्त करना होना। इसके अतिरिक्त उसे इस रूप से व्यवस्थित करना पड़ेगा जिससे वह विद्यार्थी का भी सामाजिक व्यवस्थाओं की वृत्ति में सहजक हो सके। यह आवश्यक है कि भारतीय विद्यार्थी की सहपीठ, शरीरगार, पारस्परिक सहपदा तथा माईभारे के शूलों की शिक्षा दी जाए।

आधुनिक भारत में जिस सम्मता और सहजति का निर्माण किया जा रहा है वह अवश्य ही और समन्वयारमक होनी चाहिए। हम मुक्त पुन के बाद के भारत की चरिहीन, कृपिमयान, दुष्ट सन्तुषी, असाहजिकी सम्मता को पुनर्जीवित नहीं कर सकते। वह तो शत्रु का पुनर्जीवित करने का बड़ा बीज प्रयत्न होता। मुक्त भारत को भी लीटा कर नहीं लाया जा सकता। विन्तु भारतीय भारतीय देशों के मूल्यारमक लक्ष्यों की बनावे रखना आवश्यक है। हमें उत्साहन का प्रसार करने के लिए परिचय की पद्धति का नानाना प्रयोग, यद्यपि लक्ष्य-परक असाहजिक अवस्थाओं के बिना देश की निकट सम्मताओं का समाधान नहीं किया जा सकता। सांस्कृतिक क्षेत्र में भी विश्व राज्यवाद तथा अन्तरराष्ट्रवाद का सम्पर्क है। पूरा अपना परिचय, उत्तर अपना दक्षिण की सार्थ के बात करना आदिभूतक है। म उस समय की चलना करता है जब 'एक विश्व' का लक्ष्य साधारण हो खरिग और लोगो के मन में आधुनिक तथा वैज्ञानिक मानववाद की आधारद्वत पारदाओं के प्रति पड़ा हमी। सहज के सम्मय में हमारा इतिवृत्त समन्वयारमक और व्यापक होना चाहिए। इसलिए हम पूरा तथा परिचय की परस्पर विरोधी न मानकर विन्तु-नागरिकता की लक्ष्यी बननी पड़ेगी। उस विद्या में प्रथम कदम के रूप में हम भारत के ऐसी सहजति की नींव डाल सकते हैं जिसमें पूरा के वैदिक आदशवाद और परिचय के सामाजिक समनतावाद का सम्मय हो। ये उस परिचय का सम्मय गही करता जो साधारणवादी उपनिवेशवाद और आधुनिक आचारवृत्ता का चामक है। मुझे शत फाईदस 'पूरा और फलतः स्वायत्त' के परिचय में ज्ञेय है। हम उस परिचय की सहाय बननी चाहिए जिसने असहनीय आह्वितिक अधिकारों तथा मानव व्यक्तित्व की

10. लोरेण एच डी समरन, "The Psychology of Hitlerism as a Response of the Lower Middle Classes to Continuing Insecurity," *The Analysis of Political Behaviour* पृ. 234-43।

स्थापन करने के हेतु आत्मा के
 । म हम इतना भया नहीं हो
 भारतीय समाज में सर्वोत्तमक एकीकरण का मर्म म सक ।

नतिक स्वापलता का समर्थन किया है और उद्घाटन व एध्या का उद्देश्य के साथ-साथ हम भारतीय
 अभाव महसूस नहीं की प्रतीति देना है । राष्ट्र व प्रति प्रति
 जाना चाहिए कि हम आध्यात्मिक मर्ममय व प्रमुख पद्धतियों व मर्ममय क
 विचारों का मर्म उदा व आचारमय व शिक्षा देना व कार्य
 कर्मका वा पुन शिक्षित करने का आवश्यक भी बताया पड़ेगा । पुन
 का उद्देश्य विचार गुणाव या सेवा है । इस मर्म व म नवीनीकरण
 का भी अपनाया जा सकता है । व्यवहारवादी महाविद्यालय में नवीनी
 म पड़ी हुई दुरी आत्मा का दूर करने नवीन आदता का उदाहरण
 आध्यात्मिक का मर्ममय उदाहरण अव्यवस्थित हम म नवी
 हम आध्यात्मिक उद्देश्य की समर्थनीय क साथ पुनर्जागरण करनी पड़ेगी
 उदाहरण जो कि लक्ष्य रहे है विचार अनुचित वान अपनी इच्छा का
 उदाहरण वर राष्ट्र का प्रतिष्ठित करना है । उदाहरण हम
 निम्नान करना होगा । मर्म बहुमध्यक जगत की प्रवृत्ति वक्तव्य
 होगा । आज आध्यात्मिक शिक्षा भारत की सबसे बड़ी आवश्यकता है ।
 हम आध्यात्मिक की मर्ममय विचारों का उपयोग करने का अधिकार
 म हम बात की आध्यात्मिक उदाहरण हमी कि व आध्यात्मिक, वला आचारमय
 म हम बात की वा अनर्गल वक्तव्य है अपनी सचता वर मर्म । हम
 की अवस्थिति का माग मिलना और उदाहरण की वक्तव्य का वा
 जगता व वास अधिक वक्तव्य का अनर्गल वक्तव्य मर्ममय है
 वला ला उदाहरण अवस्थिति है । इसलिए उदाहरण प्रचार विचार
 किया जाना चाहिए । आचारमय व आचारमय विचार मर्म है कि वा
 और क्षमता मर्ममय है विचार व आध्यात्मिक अनुभव म आचारमय वर म
 लक्ष्य वर मर्ममय वर व वक्तव्य का परिष्करण करने वर अनुभव म म
 सक व विराधी लक्ष्य व वर म वक्तव्य वर रहते है । नतिक के वर
 अनुभव मर्ममय हो वर रहते । वर आवश्यक है कि आचारमय व वर
 किया जाय जिससे जन मर्ममय लक्ष्य व प्रति वर की प्रमुख वाचना
 उद्देश्य का पुनर्निर्माण होगा और वक्तव्य की वरणी आध्यात्मिक होगी । कि
 उदाहरणमय जा जाता है ।¹¹ भारत म वाचन व वरणी वक्तव्य हो म
 आध्यात्मिक की वाचना विचारित है । निम्न व निम्न और अधिक म म
 की वाति जातिगत किया जाता चाहिए । वक्तव्य व की वक्तव्य के लिए
 वक्तव्य वरणी आवश्यकता होगी है, किसी एक व्यक्ति व भी योगदा
 सचनी । आपन जम म वक्तव्य का उद्देश्य है कि वर व वर वी
 नतिक आचारमय और आचारमय आचार का परिष्करण किया जाय ।
 की सफलता व वर म बहु आवश्यक है कि देश के वी वर वर वर मर्ममय
 लक्ष्य वरणीय व प्रवृत्ति के लिए मिलकर प्रयत्न किया जाय ।

६ एकीकरण के लिए धर्म का महत्व

धर्म सामाजिक एकीकरण और नियम का एक मर्ममय महत्वपूर्ण विचार है जिसने आध्यात्मिक
 व्यक्ति के लिए धर्म का सर्वोत्तम सर्वोत्तम महत्व है । धर्म व उदाहरण
 मर्ममय प्रचार की नतिक की

[1] वरणीय वाक्य व अपनी पुस्तक *Reflections on Government* में वाचन
 की है । उदाहरण लक्ष्य मर्ममय है । (1) वाक्य व व वक्तव्य वक्तव्य व
 का वर वाचना मर्ममय हो मर्ममय है । (2) वक्तव्य व वक्तव्य वक्तव्य व
 वरणीय वक्तव्य वाचन की वाचना व वक्तव्य वक्तव्य वक्तव्य है । (3) व

व सर्वोत्तमक वाचन की वरणीय
 वक्तव्य व वक्तव्य वक्तव्य वक्तव्य
 वक्तव्य वक्तव्य वक्तव्य वक्तव्य
 वक्तव्य वक्तव्य वक्तव्य वक्तव्य

व्यक्तिता, व्यष्टिगत और वहाँ पर बल देता है। हमें सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक एकीकरण के लिए भी कुछ धार्मिक मूल्यों की आवश्यकता है। अब तक हम ने सामाजिक एकता के क्षेत्र में प्रचण्ड शक्ति का काम किया है।¹² यह सत्य है कि सामाजिक विज्ञान अपने विश्लेषण और शोध के द्वारा संवेगात्मक एकीकरण के लिए कुछ निर्देश देते हैं। किन्तु आधुनिक सामाजिक विद्वानों ने मनुष्य के संवेगात्मक एकीकरण की जो सामर्थ्यशक्तियाँ और पद्धतियाँ प्रस्तुत की हैं उनकी अधिक प्रभावकारी बनाने के लिए नैतिक और धार्मिक मूल्यों की आवश्यकता है। किसी प्रकार के नैतिक और धार्मिक व्यक्तित्ववाद के द्वारा ही संवेगात्मक स्थावर और सम-संवेगात्मक एकीकरण सम्भव हो सकता है।¹³

12. वाहीगर, *In the Minds of Men* (दुबान, 1953)।

13. आधुनिक सामाजिक विज्ञान ने मनुष्य व्यक्तित्व के सन्तुलित स्वरूप के लिए भी सामर्थ्यशक्ति और पद्धतियाँ प्रस्तुत की हैं। उनमें यहाँ तक के द्वारा का नाम है जहाँ ज़मीन करना चाहिए। किन्तु सभी सभी यह भी सामर्थ्यशक्ति हो सकता है कि उनकी सभी की कुछ करने के लिए मनुष्य की सामर्थ्यशक्ति प्रकृति पर मन बना रहा।

साथ एकात्मता स्थापित करने का मार्ग प्रदान किया है, और इसी मनुष्य मनु के समकर्म मानविक मय से मुक्ति का सङ्केत है। यम मनुष्य को समस्त वा द्वारा मानता है, और इस प्रकार वह मनुष्य को बौद्धिक स्वायत्तता प्रस्तुत करता है। यम के समकर्मकारी बचपन के क्षिप्त मिल होने से बचकर सवेमारमक अन्तर्मुखन उत्पन्न हुआ है। पहले मनुष्य को ईश्वर के विरुद्ध था, इसलिए उसे मनुष्य मन्मायी मनुष्य की विज्ञा से कुछ क्षाति मिल जाती थी और वह समकर्म मानविक मालका से बच जाता था। किन्तु अब मनुष्य एवं स्वायी मय का कारण बन गयी है। अब मनुष्य के लिए उस मय प्रका की मानना का अनुभव करना असम्भव है जो एक साम्प्रदायिक समाज में शास्त्रेश्वरी की भावना से उत्पन्न होती थी।

हम कुछ नवीन प्रतीकों और नवीन मूल्यों की स्थापना करने समकर्म की भावना का अनुभव करने का प्रयास कर रहे हैं। समकर्मवाद एक ऐसा ही प्रतीक है, क्योंकि वह मनुष्य, मानविक समकर्मता और प्रकृति का प्रतीक है जिसके आगमन से परिष्कृता से उत्पन्न विज्ञा और विज्ञान समाज हो जायेगा। राष्ट्रवाद इसी प्रकार का एक अन्य प्रतीक है। राष्ट्रवाद उस सीमा तक ही प्रसक्त है जहाँ तक वह स्वायत्तता, आत्मिकता, आत्मिकता और साम्प्रदायिकता से उत्पन्न होने में हमारी सहमति करता है। किन्तु हम यह स्पष्ट रखना है कि राष्ट्रवाद विज्ञा होने पर अधिकतर मूलक प्राणी बच और आत्मिक साम्प्रदायिकता का रूप न धारण कर ले। इसका अन्तिम अर्थ है कि राष्ट्रवाद का मानववाद से सम्बन्ध न होने पाये। आधुनिक जगत् में विज्ञा और मन्मायी के साथ ईश्वर की पूजा करना छोड़ दिया है। इसलिए यह आवश्यक है कि मनुष्य की प्रतिष्ठा और पवित्रता के उच्च आसन पर विरामता काय, आत्मता इस बात का उर है कि मनुष्य ईश्वर के स्थान पर सम्पत्ति तथा वह भी पूजा करने लगेगा। मानववाद राष्ट्रवाद की विज्ञा होने तथा राष्ट्रीय अहंवाद का रूप धारण करने से रोक सकता है। इस प्रकार स्पष्ट राष्ट्र अथवा समुदा की पूजा करने की प्रवृत्ति से बचना सम्भव हो सकता है।

किन्तु मानववाद की विज्ञा के लिए मनुष्य की नैतिक तथा मनोवैज्ञानिक पुनर्रचना करनी पड़ेगी। हमें मनुष्य की अन्तर्विज्ञा प्रकृति, मूल प्रवृत्तियों, मनोवैज्ञानिक और सवेयी की ही मनी साक्षि नहीं समझना है बल्कि सम्पूर्ण मानव स्थिति की उच्च पद पर प्रतिष्ठित करना होगा। इसका अर्थ है कि धार्मिक, एकता, परोपकार और आत्मता के मूल्यों को आत्मसात् करने मनुष्य के स्थिति का पुन निर्माण और समकर्म किया जाय। मनुष्य का सवेमारमक एकीकरण तक तक सम्भव नहीं किन्तु का सकता जब तक उसकी सम्पूर्ण प्रकृति की साम्प्रदायिक पुनर्रचना की विज्ञा में सम्मुख न कर दिया जाय। राष्ट्रवाद अन्तर्मुख है, समाजवादी रूप के समाज का आदेश सराहनीय है और साम्प्रदायिक समाजता की धारणा स्पष्ट है। किन्तु हमें मूल्यों की सम्पत्ति रूप से और स्वायी आधार पर तक साक्षात्कार नहीं किया जा सकता जब तक धार्मिक एका से मूल्यों को हृदयमय न कर लिया जाय। यम मूल्यों के सम्पत्ति को साक्षात्कार करता है। उसका अर्थ है कि हम आत्म प्रका की हृदय से मनुष्यता का अस्वीकार करना चाहिए। मैं पुरोहितवाद के पुनर्रचना का समकर्म नहीं हूँ। किन्तु मैं साम्प्रदायिक मूल्यों का पुनर्रचना करता चाहता हूँ। उसी ने द्वारा हमारे बीच विचार और आदर्श की एकता स्थापित हो सकती है। इस बात की आवश्यकता है कि हम कुछ ऐसे आधार-भूत मूल्यों के सम्बन्ध में एकमत हो जिनके आधार पर हम कष्ट और त्याग के समय में लोभी या अव्यवस्था कर सकें। मानव व्यक्ति की अर्थ और स्वायत्तता में अन्तर्मुख लोकतन्त्र का समकर्म साक्षि है। वह हर प्रकार के समकर्मकारी (अधिपत्यवादी) समकर्म का समकर्म करने का समकर्म समकर्म है। हम कुछ महत्वपूर्ण मूल्यों के आधार पर ऐसे क्षेत्रों की खोज करनी चाहिए जिनमें समकर्मता प्राप्त हो जा सके और फिर उन क्षेत्रों की प्रतीक्षा के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास करना चाहिए। अब तक यम ऐसा क्षेत्र था जिसके आधार पर पवित्र स्थापित विज्ञा जा सकता था। किन्तु बहुधा क्षेत्रों में पवित्र साम्प्रदायिकता का करने स्वायी के लिए अनुचित प्रयोग किया है। मैं साम्प्रदायिक और समकर्मता की पवित्रता का समकर्म नहीं हूँ। मैं मनुष्य और जीवन की परिभा के सम्बन्ध में धार्मिक मानना का पुनर्रचना करना चाहता हूँ। यम मानव जीवन की

पवित्रता, श्रेष्ठता और अहाँ पर बल देता है। हमें सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक एकीकरण के लिए भी कुछ धार्मिक मूल्यों की आवश्यकता है। अब तक हम ने सामाजिक एकता में क्षेप के प्रचण्ड शक्ति का काम किया है।¹² यह सत्य है कि सामाजिक विज्ञान अपने विवेचन और घोष के द्वारा सवैवात्मक एकीकरण के लिए कुछ निर्देश देते हैं। किंतु वास्तुनिक सामाजिक विज्ञान ने मनुष्य के सवैवात्मक एकीकरण की जो सामग्रियाँ और पद्धतियाँ प्रस्तुत की हैं उनकी अधिक प्रभावकारी बनाने के लिए नहिं और धार्मिक मूल्यों की आवश्यकता है। विभी प्रकार के नैतिक और धार्मिक व्यतिरिक्तवाद के द्वारा ही सत्कारण स्थापित और समन्वयकारी एकीकरण सम्भव हो सकता है।¹³

12. गार्डिनर, *In the Minds of Men* (दुबारा, 1953)।

13. वास्तुनिक सामाजिक विज्ञानों ने मानव व्यक्तित्व के वास्तुनिक स्वरूप के लिए जो वास्तविकताएँ और प्रक्रियाएँ विवक्षित की हैं उनका जहाँ तक के हमारा काम है उन्हें उल्लेख करना पड़ेगा। किंतु कभी कभी यह भी आवश्यक हो सकता है कि उनकी कमी की कुछ बचने के लिए मनुष्य की आध्यात्मिक प्रवृत्ति पर बल देना पड़े।

साथ एकात्मता स्थापित करने का माध्यम प्रदान किया है, और इसके मनुष्य मृत्यु के भयंकर मानसिक मय से मुक्ति का सचता है। धर्म मनुष्य की अमरत्व का द्वार मानता है, और इस प्रकार वह मनुष्य की बोद्धि का व्याख्या प्रस्तुत करता है। धर्म के समर्थनवादी वाक्यों के बिना बिना होने से भयंकर सवेगात्मक अस्तित्व उत्पन्न हुआ है। पहले मनुष्य को ईश्वर से विभक्तता था, इसलिए उसे अवश्य ममावी मृत्यु की चिन्ता से कुछ घाति मिल जाती थी और वह भयंकर मानसिक यातना से बच जाता था। किन्तु अब मनुष्य एक स्थायी भय का कारण बन गयी है। अब मनुष्य के लिए उस मन ज्ञता की भावना का अनुभव करना असम्भव है जो एक आध्यात्मिक समाज से सामनेवादी की भावना से उत्पन्न होती थी।

हम कुछ नवीन प्रतीका और नवीन मूल्यों की स्थापना करने समर्थता की भावना का अनुभव करने का प्रयत्न कर रहे हैं। समाजवाद एक ऐसा ही प्रतीक है, क्योंकि वह समृद्धि, आर्थिक समता और प्रचुरता का प्रतीक है जिसके आगमन से दरिद्रता से उत्पन्न विषम और विज्ञान समाज हो पायेगे। राष्ट्रवाद इसी प्रकार का एक अन्य प्रतीक है। राष्ट्रवाद उस सीमा तक तो प्रसन्नगी है जहाँ तक वह स्थानीयता, प्रांतीयता, प्राचीनता और साम्प्रदायिकता से ऊपर उठने में हमारी सहायता करता है। किन्तु हमें यह स्थान रखना है कि राष्ट्रवाद विह्वल होकर अहंकार-मूलक राष्ट्रीयवाद और आत्मक शास्त्रात्मकता का रूप में परिवर्तन कर ले। इसका लक्ष्यमात्र यह है कि राष्ट्रवाद का मानववाद से सम्बंध न टूटने पावे। आधुनिक जगत ने निष्ठा और नवीनता के साथ ईश्वर की पूजा करना छोड़ दिया है। इसलिए यह आवश्यक है कि मनुष्य की प्रतिष्ठा और पवित्रता के उच्च आसन पर विठाना जाय, अर्थात् इस बात का कर है कि मनुष्य ईश्वर के स्थान पर सम्पत्ति तथा अहं की पूजा करने लगेगा। मानववाद राष्ट्रवाद की विह्वल होने तथा राष्ट्रीय अहंवाद का रूप धारण करने से रोक सकता है। इस प्रकार ये राष्ट्र अपना समूह की पूजा करने की प्रवृत्ति से बचना सम्भव हो सकता है।

किन्तु मानववाद की विह्वल के लिए मनुष्य की नैतिक तथा मनोवैज्ञानिक पुनरचना करनी पड़ेगी। हम मनुष्य की अतृप्तिहित शक्ति, मूल प्रवृत्ति, चेतने की ओर लगे हैं जो नती नती चिन्ता नहीं समझता है बल्कि सम्पूर्ण मानव व्यक्तित्व को उच्च पर पर प्रतिष्ठित करना होता। इसका अर्थ है कि शक्ति, एकता, परीयकार और आह्वान के मूल्यों की आवश्यकता करने मनुष्य के व्यक्तित्व का मूल निर्माण और समर्थन किया जाय। मनुष्य का परिवर्तनकारी एकीकरण तब तक सम्भव नहीं किया जा सकता जब तक उसकी सम्पूर्ण प्रकृति को सार्वजनिक पुनरचना की दिशा में उन्मुख न कर दिया जाय। राष्ट्रवाद सम्भव है समाजवादी जग के समाज का अवलोकन राष्ट्रीय है और सामाजिक समानता की धारणा येष्ठ है। किन्तु इन मूल्यों को अनुचित रूप से और स्थायी आधार पर तब तक साक्षात्कृत नहीं किया जा सकता जब तक सामाजिक एकता के मूल्यों को हृदयगत न कर दिया जाय। धर्म मूल्यों के उत्थान को साक्षात्कृत करता है। उसका आशय है कि हमें आत्म ज्ञान की दृष्टि से अनुशासन का अनुसरण करना चाहिए। मैं युरोपियन के पुनरुत्थान का समर्थन नहीं हूँ। किन्तु मैं आध्यात्मिक मूल्यों का पुनरुत्थान करना चाहता हूँ। जहाँ के द्वारा हमारे बीच विचारों और आदर्शों की एकता स्थापित हो सकती है। इस बात की आवश्यकता है कि हम कुछ ऐसे आधार-भूत मूल्यों से सम्बंध में एकमत हो जिनके आधार पर हम सब और जगत् के समय में योग का पथप्रदान कर सकें। मानव व्यक्तिके अहं और स्वायत्तता में आस्था को जगत् का सबसे बड़ा सहारा है। वह हर प्रकार के समर्थनवादी (अधिकांशकवादी) सचता का समर्थन करने का एकात्मक मार्ग है। हमें कुछ महत्वपूर्ण मूल्यों का आधार पर देख लेना की सीख करनी चाहिए जिनमें सर्वप्रथम शान्ति की भावना और फिर जन सेवा की प्रतीका के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न करना चाहिए। अब तक हम ऐसा छेब या बिन्दु आधार पर महत्व स्थापित किया जा सकता था। किन्तु अहंता सीमा के बलवत् साम्प्रदायिकता का अपने स्वामी के लिए अनुचित प्रयोग किया है। मैं वरम्परावाद और पदसाक्षात् की पवित्रता का समर्थन नहीं हूँ। मैं शक्ति और जीवन की गरिमा के सम्बंध में धार्मिक भावना का पुनरुत्थान करना चाहता हूँ। धर्म मानव जीवन की

विविधता, श्रेष्ठता और सही पर बल देता है। हमें सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक एकीकरण के लिए भी कुछ धार्मिक मूल्यों की आवश्यकता है। अब तक धर्म ने सामाजिक एकीता के क्षेत्र में प्रथम शक्ति का काम किया है।¹² यह सत्य है कि सामाजिक विज्ञान अपने विश्लेषण और शोध के द्वारा संवैधानिक एकीकरण के लिए कुछ निर्देश देते हैं। किंतु आधुनिक सामाजिक विज्ञान ने मनुष्य के संवैधानिक एकीकरण की जो कल्पप्रणालियाँ और पद्धतियाँ प्रस्तुत की हैं उनको अधिक प्रभावकारी बनाने के लिए नैतिक और धार्मिक मूल्यों की आवश्यकता है। किसी प्रकार के नैतिक और धार्मिक व्यक्तित्ववाद के द्वारा ही गत्यात्मक स्मांतर और समन्वयात्मक एकीकरण सम्भव हो सकता है।¹³

12. गरीबर, *In the Minds of Men* (दुबान, 1953)।

13. आधुनिक सामाजिक विज्ञानों में धार्मिक व्यक्तित्व के आधुनिक कण्ठ के लिए भी आवश्यकियाँ और प्रक्रियाएँ निर्दिष्ट की हैं उनका जहाँ तक वे हमारा काम है उन्हें प्रयोग करना चाहिए। किन्तु सभी सभी जगहों की आवश्यकता हो सकती है कि उनकी जगहों की पूर्ण करने के लिए मनुष्य की सामाजिक प्रकृति पर बल देना पड़े।

भारतीय लोक प्रशासन में सत्यनिष्ठा

1. सत्यनिष्ठा की धारणा

जब सभी सामाजिक वर्गों की सति लोक प्रशासन के लिए की आवश्यक है कि यह कुछ प्रमुख नैतिक सिद्धांतों पर आधारित हो।¹ जैसे 'चाय, समानता, विष्मलता यादि मुम्मी की शाखा' कृत करना होगा है। यदि प्रशासन का उद्देश्य केवल सति और व्यवस्था, चाय कुशलता, अधिकाधिक उत्पादन, सति न भ्रष्टाचार सामंदायी, कम से कम व्यय और अधिकाधिक लाभ प्राप्त करने तक ही सीमित मान लिया जाय तो लोक प्रशासन की अपेक्षाकृत स्थायी व्यवस्था का निर्माण करना असम्भव होगा। ये औपचारिक उद्देश्य² अत्यंत आवश्यक है, किन्तु इनके साथ अधिकाधिक उद्देश्य की बहुल होने चाहिये जैसे सत्यनिष्ठा करना की प्राप्ति, सामाजिक समन्याय, समुदाय के नैतिक परिवर्तन का विकास तथा सामंदाय प्रगति और उत्थति का साक्षात्कृत करना। लोक सेवा के क्षेत्र में सत्यनिष्ठा का व्यापक अर्थ है।³ हम जब नैतिक तथा सम्मानजन्य दोनों ही ज्यों न समझना है। लोक प्रशासन का वाय क्षेत्र सामाजिक होता है।⁴ इसलिए ऐसा कोई काम 'राज्य की आवश्यकता' के नाम पर कभी भी उचित नहीं रहस्यमा या सत्ता विरुद्ध समुदाय की समुदाय का अपकण होता हो। अधिकाधिक सत्ता की परिनिष्ठिया अपकण इनका अपवाद मानी या सत्ता है। यदि राज्य के अस्तित्व के लिए ही सत्ता हो तो ऐसे आचरण की उचित सत्ता का सत्ता है जिसका सामाजिक आचारनीति के आधार पर समन्य नहीं किया जा सकता। अतः सामाजिक तथा राजनीतिक क्षेत्र के भी इन नैतिक गुणों की आवश्यकता होती है जो समुदाय की पुनर्जा के लिए आवश्यक होती है।

समन्य एक ह्वाय रूप की विविध प्रकार की पराधीनता तथा निराशाओं के बाद सत्ता स्वतंत्र होता है। सत्ता तथा समन्याय के आधारों पर सत्ता के लिए तब तक कोई अर्थ नहीं हो सत्ता जब तक कि सामाजिक तथा राजनीतिक क्षेत्र सत्ता की अपनी अधिकाधिक वायता के समुदाय सेवा नहीं करते। यह आवश्यक है कि सत्ता की लोक प्रशासन व्यवस्था सत्ता की नैतिक

1 जे ए सर जॉन 'Ethics and Administrative Discretion', *Public Administration Review*, जॉन 3, 1943 पृ 10-23 जॉन जॉन *Administrative Powers over Persons and Property* (निकाय विनिर्माण 1928) जॉन *Politics*, Book VI

2 हम की जॉन *Dynamic Administration*, जॉन जॉन जॉन जॉन जॉन *Papers on the Science of Administration* (1937) *Report of Roosevelt's Committee on Administrative Management*

3 जॉन जॉन 'A Code of Ethics as a Means of Controlling Administrative Conduct' *Public Administration Review* (1953) पृ 184-87।

4 जॉन एम जॉन 'Administrative Ethics and the Rule of Law', *American Political Science Review* 1949 जॉन 43 पृ 1936-43। जॉन *Sub-committee Report Ethical Standards in Government* (U S Senate, *Report of a Sub-committee of the Committee of Labour and Public Welfare*)

तथा आध्यात्मिक चरम्परालो पर आधारित हो।⁵ नैतिक गुणों तथा मूल्यों का पुनर्स्थापन करना अपरिहार्य है। हर लोक सेवाक की नैतिक मूल्यों के महत्व को हृदयगत करना चाहिए और अपने बहस्यों का प्रामाण्य करते समय उनके प्रति निष्ठावान रहना चाहिए।

लोक सेवाओं के नैतिक आधार पर बल दिया जाना चाहिए। ईमानदारी, निष्पक्षता, परिवर्तितियों का निराला भाव से आनन्द की क्षमता, प्रभावकारी नियम करने की योग्यता और आप की जायना आदि कुछ अत्यन्त आवश्यक हैं। जितने के लोक प्रशासन का नैतिक सिद्धांत यह है कि अधिकारियों को ईमानदार हो नहीं होना चाहिए, बल्कि यह भी आवश्यक है कि वे वेईमानी के लक्ष्य से भी परे हों। दूसरे शब्दों में बाह्य आचरण ऐसा होना चाहिए जिसका ईमानदारी तथा सदाचार के नियमों के साथ पूर्ण सामंजस्य हो। मान हम प्रशासकीय क्षेत्र में एक विशिष्ट बात देखने की मिलती है। प्रशासकीय अधिकारियों का व्यवहार लोक सेवाओं के रूप में नीचा का आचरण बहुत ही कुदृष्टि होता है। नैतिक आचरण के रूप में उनका आचरण नीचा होना चाहिए तथा नहीं होता। आचरण का वह दुर्गुण मानवस्य सम्पत्ति होना चाहिए।⁶ आधारभूत लक्ष्य तब जीवन है। तब जीवन के लिए समाज अर्थव्यवस्था आवश्यक है, और लोक प्रशासन समाज को बुद्धिमत् बनाने के लिए महत्वपूर्ण साधन प्रदान करता है।⁷ अतः किसी प्रशासकीय व्यवस्था की यही आधारभूत आचारनीति हो सकती है कि वह जीवन को साचक बनाने वाले आदर्शों के अधिकारिण निराला हो। यदि नैतिकता के दुर्गुण मानवस्य को स्वीकार किया गया तो सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन का पतन अवश्यम्भावी है। हम सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन में भी ईमानदारी, 'चाप, सम्पत्ति' आदि उन्हीं आदर्शों को अपनाया देखेंगे जिन्हें हम पारिवारिक जीवन में तथा व्यक्तिगत के रूप में साधारणतया करना चाहते हैं। यदि हम परिवार में सम्पत्ति तथा निष्ठा चाहते हैं तो हम सामाजिक क्षेत्र में भी उन्हीं गुणों को व्यावहारिक रूप देना होगा। जिन गुणों की हम एक सन्तुष्ट के आशा करते हैं उनकी हमें सामाजिक और व्यवसायी बनाना है जिससे वे सत्त्वाधिकारी लोक प्रशासन का आधार बनाये जा सकें।⁸

कोटिस्त एक ऐसे प्राचीनतम राजनीतिक वैज्ञानिक के विद्वान प्रशासकीय आचारनीति का इस आदर्श को महत्व दिया।⁹ उनका नीतिवाक्य था कि नीतिवाक्य का जीवन जीवनशुद्ध होना चाहिए, और उसे ऐसे सभी प्रयोगों से बचना चाहिए जो अलोचन की ओर प्रवृत्त करते हों। कोटिस्त ने निश्चय है कि विभिन्न सेवाओं के लिए नियुक्ति करते समय प्रत्येक के नैतिक परिणाम की ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। जो लोक पारिवारिक पक्षपात से मुक्त हो वह व्यक्ति परी पर नियुक्त किया जाय (अर्थोपधानुद्धान भवसोपकण्टकसोपलेप स्वतन्त्र)। जो लोक अधिक प्रयोगों से परे हो वह प्रशासकीय तथा राज्यक सम्पत्ति तथा पर नियुक्त किया जाय (अर्थोपधानुद्धान सदाशु सनिधत्तनिकसकसु)। जो व्यक्ति पारिवारिक, आर्थिक तथा ऐतिहासिक आदि सभी

5. कोटिस्त द्वाक का राजनिति भाष्य, पृष्ठ 5, जनवरी 5, 1961

6. एक अधिपति पाठि निश्चय ज्ञात जिनके द्वारा जीवनशुद्धी की निम्नलिखित बातें करने का प्रयोग करें—

(क) जो अधिक स्वीकार करना,

(ख) महत्त्वपूर्ण पाणिनीय और अधिक रहना या अत्यन्त करना,

(ग) किसी अत्यन्त अधिक लाभ करना और

(घ) जो किसी व्यक्ति द्वारा या या करने हैं उनका यही अधिकार में नीति का भी दृष्टा रहना। (विनय तथा वनय, *Public Administration*, पृ. 573-74)

7. एक ए. माह्वन और अन्य द्वारा लिखित 'Human Factors in an Administrative Experiment' *Public Administration Review* वर्ष 1941। जो लक्षण, *Human Relations in Industry*, एक ए. माह्वन, जो अन्य विमर्श एक की ए. लक्षण, *Public Administration*, पृ. 113-29।

8. जॉन ई. कोटिस्त *Public and Private Government* (मेन यूनिवर्सिटी प्रेस 1945) तथा *Systematic Politics*, लखनऊ की प्रकाश, *Public and Republic* (द्वारा, जनवरी 4, 1951)।

9. निम्नलिखित प्रमाण वर्ण, *Hindu Political Thought*

प्रकार के प्रतीकनों से परे हो और जो निर्भीक हो वह भी तब पर निपुण विद्या प्राप्त (जो पशुसाम्राज्य के दुर्बल)।

2 साम्यप्रियता का सम्पन्न करने के उपाय

जब मैं प्रस्तावित की मानववाद तथा वैज्ञानिक के आदर्शों पर आधारित करने की बात सोचता हूँ तो मुझे घर तथा बालावरण का महत्त्व प्रमुख आन पड़ता है। यह आशा निराधार है कि एक ओर तो परिवार, प्राथमिक समूह, सामाजिक संघ, पाठशालाएँ, धर्मस्थल आदि सामाजिक जीवन की इसकादमी अपना गौरव और उदासीन जीवन बनाती रहें, और दूसरी ओर जो प्रत्यक्ष चारित्रिक पुष्पा के आदर्श बनकर कार्य करें। समस्या को समझ रूप में हल करने का प्रयास करना है।¹⁰ अनुपम पर आकाशचर्य का मनोवैज्ञानिक प्रभाव समस्त महत्त्व पड़ता है।¹¹ यह अधिकांशतः एक घातिका की उपलब्धि है जिनके बीच छोटे अपना जीवन पितृता पड़ता है। यह जीवन और अवेगन रूप से उन सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक घातिका को नष्ट रूप होता है जिनके शत्रुत्व से इसका जीवन व्यतीत होता है। समस्या का समाधान एक ही सत्यमय है जब तक कि हम जीवन के विभिन्न क्षेत्रों को एक दूसरे से पुनः मानकर विचार करते रहें। मैं सोचता हूँ कि यह अधिवासी नहीं है कि प्राचीन प्रजासत्ता की पद्धति से ही प्रतिष्ठित करना होगा। प्राचीन घातिका ने हमें सिखाया है कि अनुपम पर इसकी प्रारम्भिक जीवन की स्मृति तथा और मानव घातिका का महत्त्व और साम्यकारी प्रभाव पड़ता है। अतः हमें लोक प्रजासत्ता की समस्या को मानव के सामाजिक तथा मानविक पुनर्निर्माण की मानव समस्या के शत्रुत्व में समझने का प्रयास करना होगा।¹²

कोरे उपदेशों का कोई परिणाम नहीं हो सकता। यह मानना करना उपलब्धतापव है कि अनुपम की समीक्षा का यह विचार वैज्ञानिक मान्यता का सत्यता है। हमें लोक प्रजासत्ता की सफलता के लिए ऐसी परिस्थितियों का निर्माण करना पड़ेगा जिनमें अन्धकार का प्रतीक ही न रहता हो।¹³ लोक सेवा की समझ से सम्मानपूर्ण स्थान देना पड़ेगा। इस देश के लोक सेवाओं का ब्रिटिश साम्राज्यवाद के साथ ही का एक सम्बन्ध रहता है, इसलिए लोक मानव से उनके प्रति कुछ असा से घना का मान्य अवस्था होगी है। पुलिस के प्रति लोगों के मन में जो सम्मान बना देखने की मिलती है उससे उक्त कथन की पुष्टि होती है। उक्त अधिकांश सेवाओं के ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विघटनपुर्ण के रूप में जो कुतर्क किये हैं उन पर मैं नहीं दावा चाहता। यह भी धर्म है कि जनता की घृणा के कारण और अपनी स्थिति को गुरुचित बनाये रखने के उद्देश्य से लोक सेवाओं में विघ्ना डालना और भूमी क्षान तथा अन्ध का जीवन अपना लिया है। किन्तु अब समय बदल चुका है। जिम्मेदार तथा विवेकपूर्ण सामाजिक नेताओं ने घृणा तोर पर इस बात को प्रमाणित किया है कि लोक सेवाओं ने अपने-अपने के अपने के बाद कठिन परिस्थितियों से देश की सुशोभता के साथ सहाय्यता की है। 1947 के उत्तराखण्ड के तथा 1948 के प्रारम्भिक गृहीतों के सफलता विचार मानव तथा व्यवस्था बनाये रखने में, देशी विदेशीयों को भारतीय संघ के बिलीन करने के कार्य में तथा जो पंचवर्षीय योजनाओं के लक्ष्यों की पूर्ति में सेवाओं ने बहुत अच्छा कार्य किया है। इसलिए जनता ने निम्न बुद्धिमानी की बात यह होनी कि वह अपना दुष्प्राप्त लोभों का तरीका छोड़ दे और सेवाओं के सम्बन्ध में अच्छी धारणा बना ले। जनता का सम्मान मिलने से लोक सेवाओं के बीच

10. जॉन एम. निकलर तथा जॉन सी. डेल, *Public Administration* (पुस्तक 4 रोडवेल रोड 1935) लंदन सरकार, पृ. 377। मजबूती का प्रभाव है 'लोक प्रजासत्ता की एक बहुत सामाजिक जीवन का एक अर्थ बनता बाह्य विचार राजनीति सामाजिक तथा प्रभाव के लिए अपने अर्थ विचारों रहते हैं।

11. जेम्स एम. डेल *Psychic Factors in Civilization* और *Neurological Foundations of Animal Behaviour* (1924) एवं की सम्मान, *Power and Personality* नाम है और *Political Power*, नाम है *Psychological Foundations of Human Behaviour* (1924)।

12. जॉन डेल *Education for Public Service* (विचारों, 1941), जो उपलब्ध *Ethics in Government* (विचार बुद्धिमानी से, 1952), वेन ए. जॉन डेल, *Ethics for Policy Decisions* (विचार शान, 1952)।

13. रेलिगे इन्स्टीट्यूट ब्रिटी रेलिगे द्वारा अधिपत आचार रहित (1924, संशोधन 1952)।

नित्य परिवर्तन में स्थिरता आती है तथा उच्च सार्वनिष्ठता की वृद्धि होती है। जिन लोगों की जनता का सम्बन्ध प्राप्य होता है उनके मन में जनता की प्रत्याशाओं में अनुकूल आचरण करने की इच्छा उत्पन्न होती है। मैं चाहूँगा कि सरकार के जो राजनीतिक अर्थ हैं उन्हें भी लोक सेवाओं में निष्ठा तथा आस्था रखनी चाहिए। विद्वत्ता से एका और निष्ठा का वातावरण उत्पन्न होता है, तथा युक्त सेवा के लिए मर्यादाबद्ध आधार तैयार होता है। मैंने लोक सेवाओं के लिए सामाजिक सहानुभूति तथा विद्वत्ता के जित सिद्धांत भी सिफारिश की है उसकी शिक्षा सेवाओं के सम्बन्ध में और भी अधिक आवश्यकता है। जनता का मत है कि विद्वानों का आदर करें। विद्वत्ता प्राप्त करने के लिए पढ़ी की समस्या की आवश्यकता होती है। मनुष्य अपने को विद्वत्ता की पैवी पर उभरी अविष्ट कर सकते हैं, जबकि वे अपने मन में अनुभव करें कि विद्वत्ता का जीवन गरिमा, प्रतिष्ठा और सम्मान का जीवन है।

लोक प्रशासन में सार्वनिष्ठता की स्थापना करने के लिए¹⁴ व्यावसायिक आधारनीति का निर्माण करना आवश्यक है।¹⁵ स्वाभिमानी व्यक्ति के लिए दलित-ही लोकनिष्ठा की बहुत महत्ता समझी जानी चाहिए। सेवाओं की आन्तरिक स्थिति में सुधार की आवश्यकता है जिससे उनके भी व्यावसायिक आधारनीति का विकास हो सके। व्यावसायिक आधारनीति महान नियम का काम करती है।¹⁶ सर्वेक्षणशील नागरिक के परिवर्तन पर आधारनीति का महत्त्व का बहुत प्रभाव पड़ता है। जब सर्वे सेवाओं के वास्तविक व्यावसायिक आधारनीति की मान्यता का विचार होता है तो उनके सम्बन्धित सभी व्यक्तियों में प्रशासकीय व्यवस्था की अनुष्ठानात्मकता और युक्त्य के प्रति व्यक्तिगत चर्चा की मान्यता अवश्य उत्पन्न होगी।

लोक प्रशासन में सार्वनिष्ठता के विकास के लिए यह भी आवश्यक है कि वेतन, पारिवारिक आदि में सुधार किया जाए। इन बातों की उच्च स्तर के ध्यान करने की आवश्यकता नहीं है कि सेवाओं में नियुक्ति तथा पदवृद्धि योग्यता और कार्यक्षमता की कमी की आधार पर की जानी चाहिए। लोकतांत्रिक मूल्यमूर्त यह सत्य है जबकि सेवाएँ ईमानदार हों, वैधानिक के दलित की सचेष्ट से परे हों और वे निष्ठापूर्वक अपने कर्तव्य का पालन करें। इसके लिए दो चीजें आवश्यक हैं। प्रथम, सेवाओं का समूह ऐसा हो कि उनके समुचित वेतन और मती की व्यवस्था हो, वैधानिक और सुदृढ़ का समुचित प्राविधान हो तथा नवित्व निर्दिष्ट का समुचित प्रभाव। स्पष्ट है कि इस आर्थिक दृष्टि पर जनता की समग्र आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखकर ही विचार किया जा सकता है। यहाँ मैं न तो किसी वास्तविक आधारवाद का प्रतिपादन कर रहा हूँ और न आर्थिक प्रतीकरण की अतिशय तीव्र करने के ही बात में हूँ। कभी कभी कहा जाता है कि राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति की आय की तुलना में आर्थिक सेवाओं के वेतन तथा सुविधाएँ समुचित हो नहीं हैं बल्कि विशेषाधिकारपूर्ण हैं। यह कथन उच्च प्रशासकीय सेवाओं के सम्बन्ध में सत्य हो सकता है, किन्तु निम्न स्तरों पर अधिक सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण की आवश्यकता है। दूसरे, भर्ती तथा पदवृद्धि में नियमा के लागू करने में पूर्ण वस्तुनिष्ठता, निष्ठा तथा 'पाय' के काम किया जाना चाहिए।

यदि हम चाहते हैं कि सेवाओं में व्यापक रूप से सार्वनिष्ठता पायी जाए तो यह भी आवश्यक है कि सेवाओं की सम्पूर्ण व्यवस्था वस्तुनिष्ठता, कार्यक्षमता, निष्ठा और 'पाय' की मान्यता के

14 शीम लेवीन 'The Responsibility of Administrative Officials in a Democratic Society', *Political Science Quarterly* (जननिष्ठा पुनर्विनिर्देश, नवम्बर 1941)

15 कुछ विचारों का सुधार है कि 'काम के स्तर की सार्वजनिक मूल्य का शोध पाठ्य पाठ्य'।

16 नाम पत्रिका, *Integrity and Administration in Democratic Government* (पुनर्विनिर्देश लेख पुनर्विनिर्देश, 1952) पृ. 178। वेतन का कथन है 'आज प्रशासन का एक महत्वपूर्ण पहलू यह है पहले लोकसर्वो के वैधानिक नैतिक मूल्यों का बरकरार किया जाता है—और नवित्व दृष्टि त के द्वारा बहुत ही अधिक होते हैं। फिर एक न वैधानिक के अन्तर्गत मूल्यों का अधिकृत कार्यालय मूल्यों के द्वारा स्थापन होता है। इस सर्वोच्च वैधानिक तथा वैधानिक के लिए अनुशासन की आवश्यकता होती है, और अनुशासन में के द्वारा तत्त्व चर्चा (वैधानिक) है।

अंतर्ग्रहीत है।¹⁷ प्रांतीयता, जातिवाद और पक्षपात व विनाशकारी तत्व हमारी समाज की समूह व्यवस्था को नष्टकृत कर रहे हैं और उनकी सटम्भता, मानवविष मायका तथा क्षमता के आगे भी पड़ कर रहे हैं। व अल्प प्रभुत्ववाली सामाजिक गुणवत्ता और नैतिक विघटन की मायका को उत्पन्न कर रही हैं। व निम्नकारी के बराबर बराबर माना जा प्रभावकारी इन तत्त्व करने से रोक्ती हैं। प्रांतीयता और जाति के आधार पर अल्प तथा घट्ट अधिकांशता को बाध रखा जाता है और यहाँ तक कि उनकी परवर्द्धि भी कर दी जाती है। यह प्रवृत्ति अधिकांशता व मनोवत्ता के लिए बहुत ही घातक है। इनके अधिकांशता की मदद की विलय व क्षमता लोग इन सक्ती है और व विघाता व विचार का बलि है। इसलिए आवश्यक है कि नर्ति, प्रशिक्षण और परवर्द्धि के नियम 'साव और साम्य के उच्चतम आदर्शों पर आधारित ह। जब सभी महानिष्ठा व सिद्धांत का धृष्ट, भ्रष्टाचार अथवा अव्यक्ति आदि 'साव के कारण उत्पन्न किया जाता है।¹⁸ तो यह एक मूल्य उदाहरण उन कर रही रहे जाता, यदि उसका व्यापक दुष्प्रभाव करता है और भ्रष्टाचार की विनाश हर क्षेत्र में अपना विर उद्घाटन करता है। उत्तरदायी शासन में सकारात्मक काम का मुख्य आधार-समझौती है। राजनीतिज्ञ बाधमानता या भाव लोकमत व अनुसार करता बिगड़ता रहता है। इनके विपरीत केवल समझौती हावी है, इसलिए सामाजिक बल्य व अति उनकी नर्ति को दिखाने का प्रयास करने निकृष्ट नैतिक का देखी है।¹⁹

विशु में मतभेद की बात नहीं कर रहा हूँ। मेरे कहने का अर्थ यह नहीं है कि हम 'साव राज्य अथवा ईश्वरीय राज्य के आगमन की प्रतीक्षा में बैठ रहे चाहिए। मैं स्वीकार करता हूँ, कि मानव जाति को कानून के दायरे में लाने नहीं अवकाश आ सकता। सभी नैतिकता मनुष्य के सक्ती के गुड़ीकरण पर निर्भर होती है। यह बात है कि नैतिकता चरित्र के निर्माण पर तथा धर्म व्यवस्था के उत्थान पर निर्भर हुआ करती है। यह उपदेश के द्वारा नहीं सिखायी जा सकती, और न उसे मनुष्य के अंत पर थोपा जा सकता है। सभी नैतिकता स्वतः रहती होती है और साव जनिक व्यवस्था को मान्यता तथा मान्यता की मुद्रा पर आधारित हुआ करती है। विशु कुछ ऐसे काम भी होते हैं जिनको सामाजिक व्यवस्था की दृष्टि से करने की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती चाहे कर्मा के सक्ती का क्वातर हुआ हो और चाहे न हुआ हो। इसलिए किसी भी अधिकारी को घट्ट होने की इजाजत नहीं दी सकती, चाहे उसका नैतिक गुणवत्ता हुआ हो और चाहे न हुआ हो। अतः न कानून को अपना नाम करना ही पड़ेगा। यदि कोई अधिकारी भ्रष्ट है यदि वह उन आदर्शों का पालन नहीं करता जिनकी एक लोकमोक्ष के रूप में उभरे जाता की जाती है और यदि वह धर्म केता है तो 'साव की लोड सक्ती को बिना पक्षपात और विचार के अपना काम करने पड़ेगा। हम उस समय की प्रतीक्षा नहीं कर सकते जब अधिकारी नैतिक विकास की योग्य प्रक्रिया के द्वारा ईमानदारी के गुणों को धीरे धीरे। सामाजिक जीवन की आवश्यकताएँ पूरी प्रकट होती हैं उनकी अवहेलना नहीं की जा सकती। इसलिए यदि कोई अधिकारी क्षमता की कमी के दैनिक भी विनमित होता है तो उसे एक बड़ी मुश्किल मानकर उसको दक्षित किया जाना चाहिए।

हमारा समाज बहुत समुदायी समाज है। भारतीय राज्य ने व्यवस्था को साक्षात्कृत करने का

17 यदि अमेरिका में विशेष विचार कुछ के अंत में देना किया गया 'The Federal Employee's Creed of Service'

18 ए. पी. मेन्डोसा अपनी *Report on Public Administration* (पब्लिश ऑफिस, 1933) पृष्ठ 17-18 पर लिखते हैं: 'क्या प्रभावकारी नैतिक का गुणवत्ता का कि वेदविवरण के एक ऐसा प्रविष्टान किया जा कि वह कोई लोकमोक्ष अथवा उपकार आधारित रहता हो और वह ही अन्य की वह विचार है यह विचार करने का दक्षिण उभरे कर है। विशु को कानून का रूप नहीं दिया गया। 'साव' यह शब्द तथा या कि विशेष मायनों में भी वर्णित की वृद्धि सम्भव है। इसलिए एक प्रकार पर किसी व्यक्ति के ऊपर मुद्रा पक्षपात व बाध होता कि वह सक्ती पक्षी होता है। फिर भी यदि वह तथा यदि कि कोई लोकमोक्ष अथवा उपकार आधारित रहता हो तो ही यह है तो कुछ न कुछ सक्ती का नामकरण किया जा सकता है।

19 भारतीयता की उपचार के अर्थों का भी प्रयास करना चाहिए कि वह लोक की के सामाजिक मनोविचार का है। केवल विचार कि दक्षिण एकमात्र काम करने के कारण हो जाता है। 'यह मनोविचार-विचार विचारिता (अनुचित उदाहरण) केवल तथा अनुचित मन तथा अति दक्षिणित है।'

आदर्श अपनाया है। समाजवादी हमारे समाज की सामाजिक-नैतिक तथ्यावली से सहायताग्रहण करता है। किन्तु राज्य के शासकों के वृद्धि होने से शासक वर्ग और औद्योगिकता का प्रभुत्व ही होता है, समाजवादी का मुख्य बल है कि और लोकतांत्रिकता का स्थापना होता है। इन चीजों की रीति का एकाना उपक्रम यह है कि ऐच्छित समुदाय सामाजिक क्षेत्र में समुदाय स्वीकार्यता का नाम लेंगे कि अधिकारित प्रयत्न करें। समाजवादी नागरिकता की भावना की वृद्धि करने तथा लोक जीवन में साम्यनिष्ठा के परिचय देने में ही ऐच्छित समुदाय महत्वपूर्ण योग दे सकते हैं।

एशिया तथा अफ्रीका के जनन दबाव में लोकतांत्रिक पर जो प्रयोग आयात हुए हैं उन्होंने भारत के मामले एक चुनौती प्रस्तुत करती है। ऐसे समय में समय में अधिकार की प्रस्तावना में उत्पन्न-वित्त मूल्यों और मौलिक अधिकारों की अंगीकार करना आवश्यक है। भारत में लोकतांत्रिक जीवननैतिकता में साम्यवाद की अवधारणा की जाती है उसकी और हम अपने गहरे देश चाहिए, क्योंकि ऐच्छित एक बाँधी भरा में और समाज पर जो विचारहीन वापसलुता प्रदर्शित की जाती है उससे हमारा मनोबल क्षीण होता है, और लोकतांत्रिक आधारा की हृद करने का हमारा अवलोकन दुबल होता है। ऐसे समय में गहरी आवश्यकता नहीं है कि प्रशासकीय शाखा सुव्यवस्था तथा बुद्धिमत्ता हो और कुछ निश्चित तथ्या की प्राप्ति के उद्देश्य को ध्यान में रखकर कार्य करें, बल्कि इस बात की भी अहम है कि वह साम्यनिष्ठा और साम्यवाद के मान्यता की भावना से ओतप्रोत हो। यदि हमने किसी भी प्रकार की पुर्नर्गठन के साथ समझौता किया तो उससे राज्य की नींव दुबल होगी। अतः हम भारत में लोकप्रशासन के नैतिक आधारों की हृद नीमत पर खड़ा करनी है। सत्ता-सेवा का साम्यनिष्ठा की वृद्धि के लिए निम्नलिखित पाँच सूत्री कार्यक्रम प्रस्तुत कर रहा है

- (1) परिवार, सामाजिक समूहों तथा शिक्षा संस्थाओं का नैतिकीकरण।
- (2) सेवाओं के अधिकार क्षेत्रों में सुधार, विशेषकर प्रशासकीय जीवन के विभिन्न स्तरों (सकनीनी, कार्यकारी तथा निरीक्षण स्तरों के सम्बन्ध) पर।
- (3) समाजों के व्यावसायिक आधारनीति का विकास।
- (4) ऐच्छित समुदाय नागरिकता तथा अधिकारिता में नैतिक व्यक्तित्व के विकास को प्रोत्साहन दें।
- (5) अतः में राज्य की वास्तुकी तथा दृष्टिकोण व्यवस्था की सशिव होना है। अर्थात् जीवन की परिस्थितियों का विद्यमान होना तथा बहुलपूर्ण है कि उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। इसलिए यदि उनके लिए सत्तरा उपक्रम होता हो तो राज्य की दृष्टि क्षति की विचारणीय होना है।¹

20. लेखन बहन केर का *Studies in Bureaucracy: Wirtschaft und Gesellschaft*

21. एडिटर बीन केर का *Review (Public Administration Review, Dec. 12 1952 पृ. 8)*
 "यह निश्चित है कि हम अपने समाज का हृद स्तर पर नैतिक सुधार करना है जिससे सुलभ मौलिक सुव्यवस्था सुव्यवस्था के साथ हमारी व्यवस्था के आधारभूत अधिकार बनने में ही जायें। किन्तु कुछ ही समय पूर्व परिस्थितियों की भी आवश्यकता है जिसका सुधार 'साम्यवाद' नैतिक अधिकार विचारक उन परिस्थितियों के, किन्तु समाजों में ही का सुलभ बनने का, बिना है। ये परिस्थितियों सुलभ की विचारित कराने का प्रयासों की हम करेंगे और जो व्यवस्था तथा अधिकारिता है उसका पर प्रयत्न करेंगे। उनमें सुलभ है।"
- (1) नागरिकता की एक अधिकृत तथ्या की अवस्था में कि कोई-कोसेवक-उपलब्ध उपलब्ध करने की जो उपलब्ध पर है। किन्तु जायें और नैतिक की हृद करवाएँ नैतिक तथ्या उपलब्ध करने की जो है। यदि अधिकार और अधिकारिता के बलित कर दिया जायें।
 - (2) सामाजिक आर्थिकों की बिना जायें नागरिकता का सुलभ में नैतिक तथ्या तथा उपलब्ध प्रयास करने के लिए अधिक सुव्यवस्था उपलब्ध का विकास करना। अतः ही सुलभ तथा उपलब्ध करना चाहिए कि एक सामाजिक का तथ्या का व्यवस्था अधिक सामाजिक हो।
 - (3) निम्न तथ्या तथा उपलब्ध नैतिकता की साथ 10-600 हजार नागरिक तथ्या उपलब्ध अधिक हो उन तथ्या जायें का अर्थ उपलब्ध तथ्या उपलब्ध का सुलभ करवाएँ। हृद करवाएँ अधिकारिता का नैतिक तथ्या का सामाजिक करने में हम उपलब्ध और उपलब्ध का अधिकार तथा अधिकार, और ही अधिकारी शासकी हैं। अतः सामाजिक सामाजिक ही उन्हें उपलब्ध करने उपलब्ध पर जो नैतिक की सुलभ किन्तु अतः चाहिए। किन्तु हृद सामाजिक किन्तु का तथ्या तथ्या सुलब्ध तथ्या के तथ्या का कर सारी तथ्या तथ्या तथ्या सामाजिक तथा सामाजिक सामाजिक की नैतिक तथ्या के सुलभ के तथ्या पर विचार तथा करवाएँ।

साथ विधायकों और सदसद सदस्यों को सम्मिलित करने का प्रयत्न है, मैं चाहूँगा कि इन शक्ति व पूँछ राजनीतिज्ञों को पंचायती राज पर अधिकतम न जमाव दिया जाय। अन्ततः यह होगा कि इन नेताओं को पंचायती राज की संस्थाभा में न तो कोई बड़ धारण करने दिया जाय और न उन्हें अपने पुत्रों को नोट देने का ही अधिकार हो। उनका काम यह होना चाहिए कि वे राजनीतिज्ञ तथा आर्थिक मामलों में सम्मिलित अपनी व्यापक जानकारी के द्वारा लोगों की सहायता करें। उन्हें इस बात का अवसर न दिया जाय कि वे अपने लिए शक्ति के अधिकृत केन्द्र स्थापित कर सकें। वास्तव में पंचायती राज संस्थाभा में उनकी उपस्थिति इसलिए हीनी चाहिए कि लोग उनके अनुभव से कुछ सीख सकें, न कि इसलिए कि वे इन संस्थाभा का अपनी शक्ति का विस्तार करने के लिए प्रयत्न करें। सर्वोदय आन्दोलन ने हम नेताओं की है कि पंचायती राज संस्थाभा का शक्ति राजनीति के कुत्सित क्षेत्र की ओर न बनाया जाय। इस प्रकार उनके हमारी शक्ति तथा भी है।² किन्तु दूसरी ओर हम सहजानी लोकतन्त्र की धृष्ट न जिलाधीश को सम्मिलित करने अपना उसे शक्ति संपूर्ण संचित करने की धृष्ट नहीं करनी चाहिए। मेरा विचार है कि आन्तरिक सावधानता का पंचायती राज के प्रति पञ्चानन्द के मानने का प्रस्ताव भी बोधा आवश्यक है। मेरा मत है कि आर्थिक लोकतन्त्र की मूर्तों के मानने में लोक सेवा आयोग की राज सेवे रह्य आवश्यक है।

कभी-कभी विकासखण्डों में या द्वीप नियन्त्रण अथवा द्वीप शासन स्थापित किया गया है। पहले विद्वत् भी विचारण की जाती है। उनकी भी वाचकता अथवा प्रसार सहायकार अपने दिन प्रतिदिन के काम में विकासखण्ड अधिकारी के नियन्त्रण में होती है, किन्तु वास्तव में उन्हें अपने विचारों के प्रसारणीय क्षमाधिकार के अन्तर्गत काम करना पड़ता है। विकासखण्ड अधिकारी अपनी सीमित शक्तियों से प्रसन्न नहीं हैं।³ दूसरी ओर उनकी कार्यकला विकासखण्ड अधिकारी के नियन्त्रण की कुछ मानते हैं। पठिनाई इसलिए और यह गयी है कि विकसित अधिकारियों तथा विकासखण्ड अधिकारियों का वैतन्त्र्य एवम् है। इसलिए विकसित अधिकारी विकासखण्ड अधिकारियों के नियन्त्रण की बाहरी हस्तक्षेप मानते हैं। शिक्षा अधिकारी भी विकासखण्ड अधिकारियों के नियन्त्रण से असंतुष्ट रहते हैं, क्योंकि उनके कुछ स्वातन्त्र्यता अधिकारी होते हैं जबकि अन्य विकासखण्ड अधिकारी केवल स्वातन्त्र्य होते हैं। अब प्रशासन की किसी रूप में बुद्धिमत्त मानन आवश्यक है।⁴

3. सर्वोदय तथा पंचायती राज

(क) कृषि की उत्पादकता को उत्तोजित करना—देहाती क्षेत्र के सम्मिलन में देश के सामने सबसे महत्वपूर्ण काम पञ्चानन्द कृषि, पशुपालन, तथा वायव्यों के द्वारा देहात की उत्पादकता में बृद्धि करना है। सब के समया की धृष्ट की देखकर प्रसन्न होना पर्याप्त नहीं है। प्राथमिकता इस बात की हो जानी चाहिए कि कृषि की उत्पादकता बढ़े। इसलिए ग्रामीण कृषिक उत्पादन योजनाओं की इस हद से तयार किया जाय कि विकास, ग्राम तथा के समस्त तथा उनकी भी प्रसार अधिकारी सब के सब धृष्टी लिप्ता में सब कृषि के उत्पादन को बढ़ाने के काम में लय जायें। ग्रामीण सर्वोदय के विकास में जो बाधाएँ हैं उनको सत्ता मातृकीय दृष्टिकोण अपनाय बिना दूर नहीं किया जा सकता। देहाती क्षेत्रों की मुख्य समस्याओं को प्रसारणीय और सहयोगी संस्थाओं की संस्था बना कर हल नहीं किया जा सकता। सर्वोदय मातृकीय दृष्टिकोण का समाप्त नहीं ले सकते। ग्रामीण तथा निरक्षर ग्रामीणों की भूमिकर बढ़ाने की पंचकी से अन्तर्निहित करने (विह्वल व 25 प्रतिशत

2 अन्तर्गत मातृकीय, *Survey for the People*, पृ 8 (पंचायती अधिनियम प्रारम्भ करनेवाला अध, 1961)।

3 यही, पृ 10।

4 मुख्याधीश श्रीश के एक अन्य अधिकारी ने यह बात उस समय कही जब हमारे सम्मिलन के समस्त नहीं थे।

5 विकास आनुकूल के 11वें आर्थिक समीक्षण में यह सुझाव प्रस्तुत किया गया था कि जब जिलाधीश विकासखण्ड अधिकारियों के सम्मिलन में योजनाओं को तय करने में अपने सहयोगी के साथ व व विकास कृषि अधिकारियों को साथ मिलित रूप में कार्य कर लनी चाहिए। इससे प्रसारणीय योजना दूर हद तक बुद्धिमत्त बनायी और अधिकारियों का सर्वोदय तथा विकास दूर होनी।

भूराजत्व यद्यपि के प्रस्ताव पर विचार हो रहा है। अथवा उन्हें सामूहिक और सङ्घनारी नहीं' का होश दिखाने से काम नहीं चल सकता। सबसे आवश्यक काम प्रति एकड़ जंगल बढ़ाना है। इसलिए कृषि की उत्पादकता को बढ़ाने के लिए भूमि संरक्षण तथा सिंचाई, ईंधन के लिए वृक्षारोपण, वनारोपण, सर्वरक्ष तथा कृषि की अद्वितीय वन्य जीवों का संरक्षण का प्रस्ताव दिया जाना चाहिए। पञ्चायती राज योजनाओं में शिक्षा, विनाशपूर्ण तथा ग्रामीण के साथ इस बुनियादी उद्देश्य को ध्यान में रखकर निर्धारित किया जाये। उक्त सूची में पाण्ड-उत्पादन कायम करने की सम्मिलित विचार का समावेश है। ग्राम कृषि उत्पादन योजना को कार्यान्वित करने के लिए वनसमाजी की सक्रिय साथ दारी आवश्यक है। गांधीजी की रचनाओं का अध्ययन करने मुझे विश्वास हो गया है कि वे व्यक्ति यात्री के। वे ग्राम की प्रकृति को समीक्षा करता चाहते थे। पर विचार के सर्वोच्च नेता गांधी के विचार में साम्प्रदायी आदर्शों को हटाना चाहते थे। जो प्रत्यक्ष कर रहे हैं वह उनकी भूल है। यह कहना भी गांधी की भूमि पर ग्रामसमाजी का स्पष्टीकरण होना चाहिए, गांधीजी की विचारधारा के विपरीत है। ऐसे नारे केवल ग्राम गांधी को सङ्घन और बढ़ाने के लिए हैं। यह माना जाता है कि इस प्रकार के गांधी से गांधी के बीच विचार योजनाओं में सहयोग देने। यदि ग्राम सिंचाई योजनाओं के द्वारा कृषि की उपज 25 प्रतिशत की बढ़ जाय तो उसके गांधी की विशेष आनन्द मिलेगा। बुनियादी स्तर पर जनता के ऐच्छिक समझने की हट करने की साम्प्रदायी की दावा से उनका उत्पादन नहीं हो सकता। मुख्य उद्देश्य राष्ट्रीय वैज्ञानिक सर्वज्ञान के कृषि-औद्योगिक आधारों को मजबूत करना है। किन्तु इस समय गांधीय क्षेत्रों के औद्योगिकरण की योजनाओं पर प्रतिबन्ध करना बुद्धिमानी का काम नहीं है। अलग आवश्यकता तो इस बात की है कि सिंचाई योजनाओं तथा विद्युतीकरण के द्वारा कृषि उत्पादन में वृद्धि की जाय।

(क) वैज्ञानिक अनुसन्धान—साम्प्रदायिक विचारों की योजना का विकास साम्प्रदायिक विचार और राष्ट्रीय स्तर पर गांधीयों के अध्ययन के दौरान हुआ है। इस योजना के अन्तर्गत विचारपूर्ण को प्रसारण की शक्ति से विधुचित कर दिया गया है। इसलिए साम्प्रदायिक विकास योजनाओं से जो अनुभव उपलब्ध हुए हैं उनकी ओर ध्यान देना भी आवश्यक है। साम्प्रदायिक विचार योजनाओं की भी वृद्धि हुई है जो कि गांधी के ग्रामों में अनुसन्धान उत्पन्न किया है। उन्नी गांधी की अधिक लाभ हुआ है की विकासपूर्ण के मुख्य स्थान के निम्न हैं अथवा निम्न के कुछ चतुर चालान लोग विचार करते हैं। वे ग्रामसमाजी गांधी के साथ कीर्तिता व्यवहार किया गया है। मुझे विश्वास है कि ग्रामसमाजी के विकासपूर्ण विकासपूर्ण का अनुभव है। उसके आधार पर मैं कह सकता हूँ कि गांधी के क्षेत्रों में जारी आदर्श है। उनकी धारणा है कि उनकी किसी की विचार नहीं है। यह ग्राम-समाजी अनुसन्धान के लिए बड़ा पाठ्य है। पञ्चायत समितिओं को इस रूप से काम करना है कि यह ग्राम-समाजी अनुसन्धान ग्राम में गया रहे।

(ग) भूराजत्व—भारतीय इतिहास और सम्प्रदाय का सबसे बड़ा अविचार यह है कि गांधी के क्षेत्रों का स्थानीय भूमि से ग्राम सङ्घन बनाया रहा है। इससे उनके स्थानीय प्रति की सक्रिय भावना उत्पन्न हुई है। इस देश के निवासियों के जीवन और विचार में भारत का एक साधारण राजनीतिक इकाई ने रूप में बिना किसी भी भ्रम है। इसलिए इस बात पर सदैव प्रयत्न करना है कि इस देश के निवासी भारत को ही अधिकारपूर्ण अपनी इच्छाओं का केन्द्र बनाएँ। सर्वोच्च सम्प्रदाय का यह विचार है कि भूमि का समान पूरी तरह गांधी पञ्चायत और पञ्चायत समिति के सुपुर्ण कर दिया जाय, बहुत ही पाठ्य शिक्षा होना। क्योंकि इससे गांधी का गांधी परम्परागत स्थानीय प्रति और अधिक तीव्र होगी। गांधी भारत की होशना चाहिए कि देश को रक्षा का काम भी उनका सुपुर्ण करण है। आर्य पञ्चायत की अधिकतम विचार करने से ग्रामसमाजी की भावना हट जाती है।

6 लोग (विचार) में अनुसन्धान के अध्ययन में कीर्तिता हुई की उपर सुलभ दिया गया था कि निवासियों के क्षेत्रों में के सङ्घन कृषि विचारों की कुछ अनुभव दिया जाय करे। मैं इस सुलभ का अनुसन्धान मानता हूँ।

7 बी बी वर्मा, *The Political Philosophy of Mahatma Gandhi and Sardars* पृ 277

8 अथवा गांधी समाज, *Suara for the People*, पृ 10।

इसलिए आवश्यक है कि भूमि के लगान का नाम से कम 30 प्रतिशत राज्य तथा सभ की संचित निधि के लिए सुरक्षित रखा जाए। पंचायत तथा पंचायत समिति की वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए राज्य तथा सभ सरकारें अपने-अपने क्षेत्र में से कुछ अनुदान दे दिया करें। इस प्रकार वारसपरिता की भावना का विनाश होना। अथवा गांव वाले समझेंगे कि हमारा भूमि लगान 'हमारा' है, और हिंसात्मक की सीमाओं की रक्षा करना केन्द्रीय सरकार का काम है। इसलिए मेरा सुझाव है कि भूमि-लगान का नाम से कम 30 प्रतिशत राज्य सरकार तथा सभ सरकार को दिया जाए जिससे वे सामंसेधिक आवश्यकताओं की पूर्ण कर सकें, चाहे बदले में उन्हें पंचायती राज की प्रशासनिक सहायता की अनुदान ही क्यों न देने पड़े।

4 नैतिक क्रांति समय की मांग

आज नैतिक क्रांति की आवश्यकता है। यह अधिक व्यापारभूत और दीयवालीन प्रवृत्ति है। बिना जब तक लोगों में नैतिक मूल्यों के प्रति समझ की भावना का उदय नहीं होता तब तक स्वावलम्ब्य और सहयोग का उपदेश देने से काम नहीं चल सकता। ग्रामीण जीवन निष्प्राण हो गया है। आज हमारे गांव अस्थिरता के सङ्घ है। यदि हमारा उद्देश्य उन अस्थिरता में नति और जीवन का संचार करना है तो हमें उनके सामने उनकी समस्याओं का समाधान करने के लिए विनम्र जाय से आना पड़ेगा। प्रशासकीय सहायता का कुछ नामकी समाधान दे सकता है, बिना उससे समस्या की वह तक नहीं पहुँचा जा सकता। इसलिए 'जीव मनोवर्ति' से श्रमता है। प्रशासकीय सहायता में सरलता की आवश्यकता है, न कि जटिलता की। विद्यालय अनिवारी रूप, दरबार तथा विद्यालय प्रशासकीय सहायता की भूमि देने की दरिद्रता की देखते हुए बेतुकी और असमर्थ आन पड़ती है। हमारे देश की एक सबसे बड़ी बीमारी यह है कि गांधीवादी आदर्शवाद देश में जीवन से चली के विमुक्त होता जा रहा है। पारंपार्य सम्पदा के उपकरण और वस्त्रप्रणालियाँ देश के लिए प्रायः सिद्ध हो रही हैं। अतः हमारी नैतिक पुनरी का समय हो रहा है। सर्वोदय आंदोलन भी एक बड़ी सेवा यह है यह अवश्य ही गांधीवादी लोकतन्त्र के सत्पात्र आधारों का गांधीवादी नैतिक आदर्शवाद के उन्नासक जल से सिंचित करने का प्रयत्न कर रहा है। उस आदर्शवाद के बिना सत्पात्रमक परिवर्तन बाहरी दृष्टि मात्र सिद्ध होते। नैतिक मूल्य राजनीतिक जीवन का भी आवश्यक आधार है। लोगों के मन में नैतिक मूल्यों की विद्यमानता का नाम जिम्मेदार नागरिकों, कुटुम्बीयता, विश्वविद्यालयों के शिक्षण तथा वैज्ञानिक तथा सत्पात्रों की करना है। पंचायती राज की आलोचना के सार में हम कह सकते हैं कि पंचायत समितियों में उच्च जातिवादी के नेताओं, भूमिपति तथा सरकारी अधिकारियों के बीच सत्पात्र के द्वारा पुराने दस का अत्यन्त-धीन शासन कायम रहेगा। इस आलोचना में बहुत कुछ सत्य निहित है। इसलिए यह और भी अधिक आवश्यक है कि निश्चित बुद्धिजीवी तथा वैज्ञानिक रूप गांव वाला का सामाजिक तथा नैतिक शिक्षा इन का काम और भी अधिक तेजी और निष्ठा के साथ करें। केवल य लोग और सभ ही गांधीवादी नैतिक आदर्शवाद से अनुप्राणित होकर प्रचलन तथा अत्यन्त-धीन प्रवृत्तियों का निराकरण कर सकते हैं।

भारतीय लोकतन्त्र की गतिशीलता के कुछ पहलू

1 प्रस्तावना

भारतीय संविधान की प्रस्तावना में भारतीय लोकतन्त्र के आदर्श दर्शन का निकटतम विवरण दिया है। उसकी मुख्य धारणाएँ हैं स्वतन्त्रता, समानता, ग्यारह तथा भातृत्व। कुछ नैतिक अर्थ में लोकतन्त्र काधारण जन शक्तों के आधार को लेकर चलता है, और साधारण जन का अर्थ है वहक तथा पैल पर काम करने वाला व्यक्ति, मतवादी का हकवादी तथा अन्य दलित एवं उपेक्षित लोग।¹ वाचपीत्री में लोकतन्त्र के इस मानकवादी पैल पर बहुत बल दिया है। यह काय है कि बीसवीं शताब्दी के विभाल राज्यों में लोकतन्त्रीय शासन का अर्थ सांख्यिक अर्थ में जनता द्वारा शासन नहीं हो सकता। फिर भी यह आवश्यक है कि यह जनता के विनाल क्यों को आधारभूत सम्मति और साधारण भावादाभा पर आधारित हो। लोकतन्त्र सभी शक्तों माना जा सकता है जब उसमें से तीन चीज विद्यमान हों (1) दबाव, भयभीती, आतंक और हिंसा के स्थान पर विश्वास, मार्ग, विवेचना और समझने-बुझने की नैतिक विधाविधि का प्रयोग, (2) पाठ की इस धारणा में विश्वास और इसी के अनुसार काम कि अनुपम मान्य है, साधन नहीं, और इसके समस्त रूप से साधारणों को राजनीतिक नियम में स्वतन्त्रतापूर्वक काम देने का अवसर देना तथा सावनीन सम्पादन के दर्शन को स्वीकार करना, (3) व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को साक्षात्कार करने के लिए कुछ सम्बन्धक शरीरों का प्रयोग करना, उदाहरण के लिए मूल अधिकारों को लागू करने के उपाय, 'सांख्यिक स्वतन्त्रता, विधापी तथा प्रशासनिक शक्तों की सांख्यिक पुनरीक्षा, स्वतन्त्र चुनाव इत्यादि। बल और आतंक के स्थान पर नैतिक विचार विनियम के सिद्धांत को स्वीकार करने का अर्थ है विधि करना आवश्यकता में विस्थापन करना, क्योंकि विधि शक्ति को सुचना में अधिक पवित्र चीज है। व्यक्ति के अधिकारों को प्रसिद्ध करने की इच्छा में मूल में यह धारणा निहित है कि मानव प्राणी का व्यक्तिगत तत्त्व नैतिक और आध्यात्मिक है।

अतः भारत की जनता निर्देशर तथा अन्तर्गत नैतिकीकृत है, फिर भी संविधान द्वारा वे जानबूझकर लोकतन्त्र की स्थापना का निषेध किया। किन्तु विधान अन्तर्गत क्यों में विदेशी आगंतुक

1. दलित में जिस लोकतांत्रिक सिद्धांत का विकास हुआ है उसने पाठ मुक्त आधार है। (1) वहनी धर्म तथा ईसाई धर्म में 'जान कर्मा' व्यक्ति की स्वातन्त्रता की धारणा प्रकाश में है। अन्तर्गत मानव में व्यक्तिगत धर्म में व्यक्ति व्यक्ति तथा उसके अन्य करने की धारणा का पर मूल का निष्कर्ष है। (2) यह नैतिकीकृत में जिस की सांख्यिक सम्बन्ध का काम किया। जनक सांख्यिकीकृत नैतिक सांख्यिकीकृत विधि तथा सांख्यिकीकृत विधि के सिद्धांतों में 'सांख्यिक सम्बन्धता को पवित्रता की भावना के विकास में चील दिया है। सांख्यिकीकृत विधि की अनु को दलित विधि पर विचारित अन्तर्गत के लिए शरीर विचार तथा इसके पाठ की साधनवादी शक्त का अधिकार करना में बहुमान विधी। (3) विधान के उपाय में की सांख्यिकीकृत विज्ञान के विकास में पाठ दिया है। विज्ञान के सांख्यिकीकृत अन्तर्गत तथा अन्तर्गत विवेकविचार का सम्बन्ध। तथा अन्तर्गतसांख्यिक साधन की उपाय करक मानवता के विकास में चील दिया और अन्तर्गत पुनर्धार उपाय करने के लिए साधारण में विवेक की सम्बन्धता।

ये देश की बड़ी प्रशंसा की है। यह स्पष्ट है कि स्वतंत्रता के बाद भारत ने जनता को भाषा में महत्वपूर्ण सफलताएँ प्राप्त की हैं, जैसे पञ्जाब तथा बंगाल से आने वाले शरणार्थियों का पुनर्वास, पाकिस्तान के साथ कुछ महत्वपूर्ण भगवों का निवृत्त, बुराही देशी पिपल्लो का भारतीय रूप में विलय, प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय में कुछ वृद्धि, 'असह्यता का सांविधानिक सम्मेलन तथा रिजवा एवं अन्य दलित वर्गों की सामाजिक तथा विधिक स्थिति में सुधार।

किन्तु अभी भी अनेक ऐसी समस्याएँ हैं जिन्हें हल नहीं किया जा सका है। हम भारतीय लोकतंत्र की समस्याओं पर विचार करते समय यह ध्यान में रखना है कि एशिया-अफ्रीका के अनेक देशों की प्रादेशिक सुरक्षा के लिए सतत निरंतर चर रहता है। अफ्रीका की विज्ञानिक स्थिति तथा विभक्तता का सतत खलबल गम्भीर चीजे हैं। चीनी साम्यवादियों ने भारत की 12,000 वर्ग मील भूमि पर वस्तुपूर्वक अधिकार कर लिया है और इस प्रकार पंचशील के आदेश की मूल में निहा दिया है, वरन् कुछ मामलों में यह इस तथ्य को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं कि चीनिया ने आज्ञा किया था, किन्तु किसी दल को लोकतांत्रिक अधिकारों के संरक्षण के अन्तर्गत देश की स्वाधीनता को बेच देने की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती। देश की राजनीतिक सुरक्षा तथा स्वाधीनता सबसे बड़ा तथा प्रथम चीज है।

हिंसा की वृद्धि ने सतत की एक गंभीर परिस्थिति उत्पन्न कर दी है। समय अनुशासनहीनता तथा हठकथाओं का राज्य है। हम ऐसी स्थिति का सामना करना पड़ रहा है जिसमें गठक के बोझ का बोझ बढ़ रहा है, और वस्तु प्रतीकार करने के लिए कभी-कभी वानुन तथा व्यवस्था के नाम पर मृत्यु दमन और निम्न हिंसा का साथ देखने को मिलता है। यह निम्नान्त उपहासस्पद स्थिति है कि अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्र में हम बुद्ध तथा गांधी की आचारनीति का उपदेश देते हैं और प्राचीन भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता का शिरोधार्य करते हैं, किन्तु राष्ट्रीय स्तर पर विधिविहीन व्यवहार तथा सरकार दोनों ही चुनकर बहूत वा प्रयोग करते हैं। ऐसी स्थिति में हम गांधी और बुद्ध की जो दुहाई देते हैं वह एक झोला बन जाती है।

किन्तु वास्तव को धेरे कपन के सम्बंध में सत्यपक्षों नहीं होनी चाहिए। मैं निराशा और निराशा का संदेहाह्व नहीं हूँ। मैं आशावादी हूँ। मुझे देश की ऐतिहासिक विरासत में आस्था है, और मुझे आशा है कि हम अपने विस्कृत गति आदर्शों का पुन प्राप्त करने में सफल होंगे। भारत संघर्षस्थिति की बुद्धिसमय निम्न करने का प्रयत्न नहीं करते, और न वे शोषणमूलक समाज के अन्तर्विरोधों की दृष्टि में वा शोषण उत्पन्न है। वे राष्ट्र तथा जनता का पक्षप्रदान करने वाले होते हैं। लोकतांत्रिक आदर्शवाद निश्चय ही जनता की मानवता और आनन्दता के अनुकूल होते हैं। समुच्च के परिध तथा स्वभाव में निश्चित बौद्धिक तथा प्रशस्त तत्व होते हैं। उनकी दल प्रदान करना तथा वह लोकतंत्र का आधार बनाना बुद्धिमानों का कार्य है। हमारी जनता ताँब तथा लक के दलन की ओर ही न समझ सकें, किन्तु वह सामाजिक समानता के सम्बंध में कबीर के विचारों के महत्त्व को अवश्य हृदयमय कर सकती है। इसलिए हम सत की आवश्यकता है कि लोकतांत्रिक आदर्शवाद को साधारण जनता की समर्पित बनना आवश्यक।

आजकल भारत में हम राजनीतिक तथा आर्थिक परिवर्तन, सामाजिक परिवर्तन नियोजित सामाजिक परिवर्तन तथा समन्वित सामाजिक परिवर्तन की बात करते हैं। ये सब श्रेष्ठ तथा प्रासंगिक आदेश हैं। किन्तु प्रश्न यह है कि इन परिवर्तनों की नींव क्या है। जनता के जीवन से निम्न होता है कि निम्न वृद्धि वर्षों में वेद तथा राज्या दोनों में ही प्राप्त कर 50 प्रतिशत से कम वाता के आधार पर प्राप्त करता आया है। क्या उस यह अर्थिक है कि यह इन सम्पत्त के संचयन के आधार पर जनता पर सामाजिक परिवर्तन जीवन का प्रयत्न कर ? क्या हम अन्य सम्पत्त के आधार पर सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन सारवा, चाह के परिवर्तन विनये अपने क्या न हूँ, सामाजिक है ? क्या अनिश्चय यह है कि यदि हम लोकतंत्र की दुहाई देते हैं तो यह उत्तरान के

साधारण व राष्ट्रीयकरण की समस्या हो चाहे भूमि के सामाजीकरण अथवा अनीनवासि बसाई-गढ़ी प्रथा की विविध रूप का या अन्त हो और चाहे विद्यालय प्रणाली पर स्थिरा के उद्धार की बात हो, कोई भी परिपक्व हर्ष सभी तरह समझे हैं जब उसने सिद्ध हुए जनता का विशेष आदेश मिला हुआ हो। ये सब परिपक्वता अर्पित हैं और जहाँ एक ऐन समझ और अग्रगण्य का निर्माण होता था सामाजिक जाति व विपक्ष प्रतिपक्षी शोध का कार्य करता। किन्तु महत्त्व की बात यह है कि ये परिपक्वता ऐसी प्रक्रिया के द्वारा हो गिय आन चाहिए जिसका सम्भावना रूप शौरतात्मिक बड़ा जा सके।

2 भारतीय लोकतन्त्र की कुछ सामाजिक तथा राजनीतिक समस्याएँ

इस प्रथा के सम्बन्ध में साक्षात्चित तथा व्यावहारिक दावा हो सारा पर विभिन्न प्रकार के बात और अनुभव उपलब्ध हैं। हम भारत के लिए गतावादी-समस्यावादी दम प्रथा का अनुमानन नहीं कर सकते, क्योंकि यह हो सम्पिधानवाद की नींव का ही प्रस्ताव कर देखी है। इसलिये और अग्रगण्य की द्वितीय प्रथा में उन देशों की उद्धार मानववाद की परम्पराका का सामयिक है, इसलिए उसमें सन्तततापूर्वक पात्र किया है। काम के स्वभाव में भारतीय आर्थिक और उद्योग का पुट है इसलिए उसमें बहुदलीय प्रथा की विनिश्चित कर लिया है। द्वितीय तथा बहुदलीय चीन ही प्रचार्य उन देशों की विनिश्चित सामाजिक आर्थिक तथा राजनीतिक दक्षिण की उपज है।³

राजनीतिक तथा आर्थिक विद्यालय बचल चाहने मान के नहीं हो जनता। हमारे देश में हम धर्म और अमेरिका की ही द्वितीय प्रथा नहीं है, इस बात पर विचार करना विषयक है। हम यह देखना है कि हमारी 'राजनीतिक' तथा आर्थिक व्यवस्था में जीवन के तत्त्व प्रमुख हैं, और उन्हीं की ध्यान में रखकर हमें अपने नियम बनाने और नीतियाँ बनानी हैं।

हमारे देश में केन्द्र तथा राज्य, दोनो ही स्तर पर परसुत एकदलीय शासन है, सबन बायेस का ही अनुभव है।⁴ तीन बार काम चल भी हैं, किन्तु अपने इसी चालि नहीं है कि वे अपनी सरकार बना सकें। इसलिए भारत में हम एक दल के शासन पर आधारित लोकतन्त्र का परीक्षण कर रहे हैं। अतः स्थिति कुछ वैसी ही बन रही है वैसी कि अधिनायकवादी देशों में देखने को मिलती है। स्वतन्त्रता के अठारह वर्ष बाद और नये सम्पिधान के लागू होने के बीसह वर्ष बाद भी एक ही प्रभावकारी तथा स्थायी प्रतिपक्ष के उदय होने की सम्भावना नहीं है जो बर्तमान सरकार का विचार कर सके। संगमन बड़ाह वर्ष तक सत्ताकुरु रहने के कारण बायेस अपना पुराना आदवावाद भी वैसी है, और यह चालि कर अधिनायकवादी राज्य के लिए विभिन्न प्रकार के हथ-कड़ों का प्रयोग करने लगी है।⁵ पुराने कापीवादी लोक-सेवक रूप के आदेश की पक्षा बला दी गयी है, और 'राजनीतिक' तथा आर्थिक चीन ही प्रकार की चालि एक छोटे से गुट के हाथों में फैलित हो गयी है। राष्ट्रीय विकास परिषद, योजना आयोग तथा राष्ट्रीय रक्षा समन्वयन में एक 'निजी' अल्प शासक का रूप प्रारम्भ कर लिया है। यह 'निजी' अल्पशासन कुछ असरों में उन प्रजीवितियों के बहुमूल्य से फल फूल रहा है जो सरक्षित बाजार में काम उद्योग परपरिचित बन करोर रहे हैं। शासकवर्ग तथा धनिकवर्गीय वर्गों के बीच यह साठ साठ लोकतन्त्र के लिए एक सम्मोर खड़ा है।

लोकतात्मिक शासन इस प्रकार पर साधारण होजा है कि कुछ ऐसे आधारभूत सदन तथा गुप्त हैं जिनके सम्बन्ध में महत्त्व होना सम्भव है। सभी 'राजनीतिक' दल लोकतात्मिक व्यवस्था को बनाने रखने के लिए सहमत होजा है। इसलिए जो भी व्यक्ति परिपक्व हो जाह सभी किन्तु समत

3 जेम्स मादन *Modern Democracies* 2 खिर्द :

4 यह बात के कोई लम्ब अन्तर्गत नहीं है कि विचार अधिकांश में अधिकांश की सभी के हाथों हो देश की नीति का आधार। सामाजिक वर अधिकांश सैनिक अन्तर्गत है। केन्द्र में सामन्तवादी शासन का उदय प्रयोग लक्षण रहा। कि नु केन्द्र का मानवाद लोकतन्त्र विरोधी चालि है जिसकी मूल्य में प्रथा मानवगत है।

5 भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के 'आदर्श' का उद्देश्य भारतीय लोकतन्त्र की एक बड़ी कुप्रथा है। सत्ताधीनता उद्देश्य के विना व कारण बहुत राष्ट्रीय मोर्चे का प्रतीक की और उसने समसामयिक के लक्षणों के साथ काम किया। या लोक की कु-नु के बाद कांग्रेस के 'पठन' की प्रक्रिया चीन हो गयी है, और अब यह सब राजनीतिक दलों की नीति एक एक है।

विवाद के द्वारा ही सम्पादित किया जा सकता है। इस देश में सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों की सफल आवश्यकता है। कठिनों के समाधान को छिन्न भिन्न करना है। इसलिए लोकतन्त्रवादी किसी ऐसे दल का समर्थन नहीं कर सकता जो दमनस्थिति का समर्थन करता हो अथवा सामाजिक विधान को पुरातन धर्मशास्त्रों के उद्धरण देकर निरस्त करना चाहता हो।

सभी लोगों में स्वीकार किया जाता है कि आतिवाद भारतीय लोकतन्त्र का सबसे भयानक शत्रु है। एक अर्थ में जाति को कानून द्वारा समाप्त कर दिया गया है, फिर भी जाति एक सचमुच का विज्ञान बनी हुई है और हमारे जीवन के हर क्षेत्र को घेर कर रही है। किन्तु इस विज्ञान का अर्थ करने के लिए एक साधारण दृष्टिकोण की आवश्यकता है। हम अपनी शक्तियों को ऐसे समाज का निर्माण करने में लगा देना चाहिए जिसमें भारतीय समाज की प्रस्तावना में निरूपित मूल्यों की प्रतिष्ठा हो। कुछ ने भारतीय अद्वैतवाद का विरोध किया था माना और कभी-कभी दमनवादी आतिवाद के विरोधी थे, और दवानन्द ने सिखाया था कि मनुष्य की प्रास्थिति जन्म से निर्धारित नहीं होती। महात्मा गांधी ने दलित वर्गों का ध्यान देकर आतिवाद के विरुद्ध प्रामुख्य बताया। किन्तु आतिवाद को गंभीर उपदेश के द्वारा नष्ट नहीं किया जा सकता। वह जान है कि विज्ञान तथा बुद्धिवाद के उदय से आतिवाद के अर्थविरोधक, चरित्राति तथा धर्मशास्त्रीय आधार व्यस्त हो गये हैं। किन्तु वह राजनीतिक रूप में पुनः उत्थित हो रहा है। आतिवाद के इस रूप का नाश राजनीतिक अथवा ना निर्माण करने ही किया जा सकता है। राजनीतिक अथवा निरर्थक ही राजनीतिक समाज का जन्म देगा। इस बीच में किसी ऐसे दल की प्रोत्साहन नहीं दिया जाना चाहिए जो जातिगत भावनाओं को उन्माद कर अपना काम बनाना चाहता हो।

हममें संदेह नहीं कि पुराने अर्थ में जाति का एक सामाजिक संघ के रूप में प्रभाव समाप्त होता जा रहा है। यदि जाति के हमारा अभिप्राय करना द्वारा निर्धारित सामाजिक वर्गों के है तो हम निश्चय ही मानना चाहेंगे कि आधुनिक ज्ञान के प्रभाव के कारण जाति प्रभाव के औचित्य आधार का ह्रास हो रहा है। पिछड़ी हुई तथा परिणामित जातियों में से अश्विन सेवका तथा प्रजासत्ताकीय अधिपतियों की शक्ति के बाहुलीय प्रोत्साहन का प्रभाव पड़ रहा है। आशा की जाती है कि लोकतन्त्र के परिणाम होने पर जातीय भेदभाव तथा राजनीतिक शक्ति का प्रत्यक्ष छिन्न भिन्न होगा। मनुष्य भारत में पिछड़ी हुई तथा परिणामित जातियों के लोग में दल में अनुमानिकों के रूप में महत्वपूर्ण पद प्राप्त कर लिये हैं। लोग ही के उत्थित करने के लिए जन जाति। अन्वयकर तथा कामकाज जैसे स्थितियों का उत्थान करने वाली स्थिति का मूल्य है। पिछड़ी तथा परिणामित जातियों का उत्थान इन वर्गों की राजनीतिक जाति का ही प्रतीक नहीं है, बल्कि इस बात का भी प्रतीक है कि राजनीतिक दल के महान की बुनियादी ही जा रही है, क्योंकि वे एक मुक्त आर्थिक दृष्टि से दलित वर्ग हैं। इनके अतिरिक्त इन वर्गों के द्वारा वे राजनीतिक शक्ति विरही हो अधिन स्तित होती जायगी उम्मा ही के आर्थिक शक्ति के माध्यम पर भी विचार-व्यवस्था करने में सफल होंगे। इनके परिवर्तनपरण उन वर्गों की शक्ति का भी अर्थ एक समझ में, राजनीतिक महत्व का होगा।

लोकतन्त्र की सफलता के लिए आवश्यक है कि लोग देशवादियों के साथ एकता की भावना का अनुभव करें। क्या ऐसे कोई सामाजिक प्रतीक हैं जो सभी भारतीय नागरिकों के मन में उभित और अनुपम का प्रचार कर सकें? हम कुछ को करपा तथा और उत्साह का मूल रूप मानते हैं और उनकी प्रशंसा करते हैं। इसी प्रकार हम गांधीजी को भारतीय स्वाधीनता का प्रभावक मानते और उन पर ध्यान करते हैं। किन्तु क्या भारतीय नागरिकों में इतना साहस है कि वे अपने भावना और शक्तियों में से उन चीजों का निष्पादन कर दें जो कुछ और गांधी के आदर्शों के विपरीत हैं। गंभीर नाश और उपदेश के नाम नहीं चल सकते। देशवाद और राष्ट्रवाद ऐसी भावनाएँ हैं जिन्हें प्रत्यक्ष-निष्ठ रखने के लिए प्रयत्न करने पड़ते हैं। करोड़ों भारतीयों के साथ बाहुली की भावना का अनुभव करना कठिन काम है। एक साधारण नागरिक के लिए करोड़ों लोग अज्ञान, अव्यक्त तथा दूर की चीज होते हैं। स्थानीय धर्म, स्थानीय भाषा, आर्थिक भाषा के साथ सामाजिक स्वाधीनता होता है। भारतीय इतिहास के विचार में

सही कभी यह रही है कि जब कभी बाहरी आक्रमण हुए हैं तब देश में कुछ तब अनासुर्य मुठ खसल रही है जिहान आक्रमणकारियों का स्वतन्त्र किया है । ईराकिया और कुवैतिका व आक्रमणों का समय न अजेला, फातीहिमा और बीबी आक्रमणों के बाल सब दस में सर्वक ऐम समुह यह है जिनका देश की भूमि के साथ समेकालमन लगाव बड़ा ही दुबल रहा है । अतः यदि भारत में सब साथ तथा समिपानवाद की लयन होना है तो इस बात की आवश्यकता है कि लावा में समीर राष्ट्रीय एकाता की भावना का विकास हो ।¹ यदि पारम्परिक अनुष्ठान के बचन का अभाव है, और यदि हम अपने अस्वाधी स्वार्थों के लिए हिंसा और भीषणता पर उतार हा जात हैं तो लक्ष्य है कि हमारे बीच एकाता के कोई आधारभूत भागन नहीं हैं । एलो बरिहियनिका में जबकि राष्ट्रवादी के स्वयं पर स्वानीय भक्ति का बोधपाता हो, सोवर्ताइक प्रजाती काय नहीं कर सकती । विपटनकारी अवेकवादी प्रवृत्तियाँ देश की स्वधीनता के लिए लक्ष्य उत्पन्न करती हैं । नाटिका, सम्प्रदायवाद, प्रान्तवाद तथा भाषावाद दस के मयभला का ही साथ जा रहे हैं, और कभी-कभी ऐसा लगता है कि देश में ऐसी ही स्थिति आ कभी है जहाँ कि 236 ई पू में अजात की मृत्यु का बाद उत्पन्न हो गयी थी । बरिहार्ड यह है कि राष्ट्रीयता की भावना का परिष्करण करने के लिए राष्ट्र के प्रति भक्ति की भावनात्मक आधारभूतिका का उपदेश देना साथ वर्धाता नहीं है । इसने अनि रिक्त यदि कुछ समूह अपना हीन राष्ट्र के साथ पर सभी अधिन और प्रजाकतीय सामा पर अपना एकाधिकार जमाते का प्रयत्न करें और दूसरा को समेकालमन एकीकरण के महत्व के सम्बन्ध में उपदेश दे तो स्थिति और भी अधिन भयकर हो जाती है । इसलिए इस बात का लक्षित और लजित रूप से प्रयत्न करना है कि सब में सामेकारी की भावना हो और सबके साथ 'साथ किया साथ । कुछ सामाजिक लक्ष्य और सुख्या को इस लक्ष्य के साथ स्थापित करना आवश्यक है । सभी लोग साथ सकल हो सकते हैं । इसलिए यदि हम चाहते हैं कि लोकलन सफल हो और विहल होकर गुटबादी का सब न ले ले तो इस बात की आवश्यकता है कि सब लोग राष्ट्रीय एकाता के मूल्य को समझें और अपने सम्बन्ध में एक मत हा । 'कुरुराष्ट्रीय राज्य की बात मयभा इस प्रकार का कथन कि बगाली तथा लजित उपराष्ट्र हैं, मुरु देखाइह है । राजनीति शास्त्र के विद्यार्थी की इविड मुनेर कहनाम के प्रकार में नहीं फैलना चाहिए ।² भारत की राष्ट्रीय एकाता अपना राजनीतिक स्वाधीनता के सम्बन्ध में किसी प्रकार का समझौता सहन नहीं किया जा सकता ।³ मत को राजनीतिक दल राष्ट्र के प्रति बफादार नहीं हैं उह कभी जो मूल अधिपारा का करलन प्राप्त नहीं होना चाहिए, क्वाकि ने समिपानिक अधिपारी तथा उपचार का प्रयोग औपचारिक व्यवस्था को समाप्त करने के लिए कर सकते हैं ।

3. सौजन्यासाठी व त्या प्रभावासाठी प विधि

किसी देश में पोर्टो ने असहज परिस्थितियों से लेकर बहुसंख्य जनता तथा राजनीतिक सत्ता के प्राप परक होते हैं। (क) लोकसेवक, (ख) महामन्त्र तथा केबिनेट, (ग) विधानसभा (अथवा राज्य की सभा में विधिक प्रभु), (घ) निर्वाचन मण्डल (अथवा राज्य की सभा में राजनीतिक प्रभु), तथा (ङ) नागरिका और निवासियों का समुदाय जो घर-घर तथा उनके अनेक और अनेक का प्राप करने राजनीतिक व्यवस्था को प्राप रखता है।

सोसायटय (सिविल सेवक) कडले विभागीय मर्गद्वारा लक्षा घाते द्वारा प्रधान भवना मूल

- [illegible]

गामी के प्रति वैयक्त औपचारिक रूप से उत्तरदायी हो सकते हैं। इस तात्कालिक तथा औपचारिक उत्तरदायित्व को ही सम्प्रत्यक्ष रूप दिया जा सकता है। यदि लोकसेवक प्रत्यक्ष रूप से विधानाग के प्रति उत्तरदायी बना दिये जाएँ तो कबन मजबूती फैल जायगी। वे स्याही लेबक हूत हैं, इसलिए उनका कामकाज विधानाग के विश्वास पर निर्भर नहीं होता, इसलिए वह उस अर्थ में विधानाग के प्रति उत्तरदायी नहीं बनाया जा सकता जिसमें गामीय उत्तरदायी होते हैं।

मन्त्रियों के प्रति उत्तरदायी होने के अतिरिक्त लोकसेवक सचिवाग तथा अन्य अधिकारियों, और सेवाभारम्भी नियमा और विनियमों से नियंत्रित और निर्देशित होते हैं। विधिक दृष्टि से उन्हें सिर्फ सचिवाग, अधिकारियों, नियमों तथा विनियमों का पालन करना आवश्यक होता है। यदि वे उक्त विधिक व्यवस्थाओं का उल्लंघन करते हैं तो उनके विरुद्ध अभियोग चलाया जा सकता है।

किन्तु मेरे विचार में लोकसेवक किसी औपचारिक अपना सम्प्रत्यक्ष रूप में विधानाग अपना नियंत्रकत्व के प्रति उत्तरदायी नहीं बनाये जा सकते। यह सत्य है कि कुछ देशों में लोकसेवकों का वापस चुनावों की प्रथा प्रचलित है। किन्तु यह प्रथा जो व्यक्त रूप में लोकतांत्रिक प्रतीत होती है एक स्याही कमकी के रूप में काम कर सकती है, और इसलिए लोकसेवकों की उत्साह पूर्वक अपना कार्य करने से रोक सकती है।

संसदीय शासन प्रणाली में लोकसेवक भी क्या द्वारा विधानाग के प्रति उत्तरदायी होते हैं। किन्तु अल्पसंख्यक शासन प्रणाली में वे केवल अल्पसंख्यक के प्रति उत्तरदायी होते हैं और उनके द्वारा जनता के प्रति। किन्तु अल्पसंख्यक निश्चित अवधि के लिए चुना जाता है और वह अवधि में उसे हटाया नहीं जा सकता। यदि उसे हटा दिया जा सकता है तो बहुसंख्यक के असाधारण तरीके से जिसका प्रयोग बहुत कम अवसरों पर देशद्रोह और आपराधिक मामलों के लिए किया जाता है न कि राजनीतिक नीतिना में बुद्धिहीनता का परिचय देने के लिए। इसलिए अध्यात्मिक प्रणाली में विधानाग के प्रति उत्तरदायित्व की यह आवश्यकता नहीं होती जो संसदीय प्रणाली में देखन की मिलती है।

कभी कभी उत्तरदायित्व शब्द का एक भिन्न अर्थ लगाया जाता है। उदाहरण के लिए हमें देखना है कि अनेक देशों में निर्वाचन प्रणाली को लोकतांत्रिक बनाने की प्रक्रिया कभी का रही है। जनता की राजनीतिक दृष्टि में वृद्धि होने के कारण इस बात की मांग की जा रही है कि लोकसेवकों की भर्ती का आधार अधिक व्यापक होना चाहिए। लोकसेवकों की भर्ती और परीक्षा के मामले में सामूहिक, अधिजातजातीय, धनिकता योग, धार्मिक अथवा सामाजिक हिता को महत्व देना लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था से मेल नहीं खाता। इसलिए अधिक विस्तृत अर्थ में उत्तरदायी लोकसेवा के लिए आवश्यक है कि लोकसेवकों की भर्ती बहुसंख्यक जनता में से की जाय। भारत में परिचित जातिया और जनजातिया के लिए स्वयं सुरक्षित स्थान की व्यवस्था की गयी है जिससे समाज के दुबला वर्गों को शासन में कुछ साधन मिल सके। किन्तु में लोकसेवकों की भर्ती सामाजिक आधार की विस्तृत करने की व्यवस्था के लिए उत्तरदायी लोकसेवाओं के स्थापन पर प्रतिनिधि लोकसेवाओं के अर्थ में प्रयोग करना अधिक उपयुक्त समझता हूँ। भर्ती के सामाजिक आधार को विस्तृत करने में लोकसेवक जनता के प्रतिनिधि बनते हैं, न कि उसने प्रति उत्तरदायी।

लोकसेवाओं का सम्पन्न करने वालों में जातीयता में औपचारिकता, निम्न परिणती तथा पुर्नोद्धारना में विपरीत रहने की वजहों हुई अवधि की और व्यापक आरम्भ किया है।¹ सामाजिकता काही का अतिरिक्त सावधानताओं का दया योग है। कभी-कभी कहा जाता है कि लोकसेवकों अपनी व्यावसायिक दृष्टि का अधिक ध्यान रखते हैं और भावकल्याण की चिन्ता नहीं करते। भारतीय लोक प्रशासन में गांधीवादी आलोचना का बहुत है कि लोकसेवक में निष्ठाविता की-की सम्पन्न की जायना का अभाव है। एक वस्तुवादी राज्य में लोकसेवकों का दिमाग नयनीय होना चाहिए।

उन्हें विरासत और वृद्धि में अथर्वान का समझना चाहिए, और उनका दृष्टिकोण ऐसा होना चाहिए कि वे नयी चीजों में महत्त्व को हृदयगत कर लें। परम्परावादी और कट्टरपंथी दृष्टिकोण घातक होता है। सामाजिक 'पाप' और कल्याण में आदर्शों का वास्तविक करना आवश्यक है। प्रायः नीचरताही के नाम में बहुत विध्वंस होता है, क्योंकि यह निम्न परिस्थिति और पूर्वोक्तदूरियों का आधार पर काम करती है, जबकि विनाशकारी अथर्वान में सीधे निम्न सेन की आवश्यकता होती है। यह उचित नहीं है कि लालचलन अन्तर्मितता (माधुर्योन्मत्त, गुणधारी) की आश में नवाजा की सामर्थ्य को कागिज तथा स्थितिरूपता बना दें। यह भी आवश्यक है कि लोकतन्त्र जनता का आदर्शों, मानाक्षाया, आवश्यकताया और मान्य के सम्बन्ध में सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण अन्तर्गत की आवश्यकता है। वे जनता की दृष्टि में अविश्वस्य निम्नजनता अथवा व्याख्याता नहीं होत, किन्तु लोकतांत्रिक व्यवस्था में यह आवश्यक है कि वे जनता की उत्तमरी दृष्टि का अन्तर्गत की मान्यता दें। लोकतन्त्र की प्रमुखसम्पन्न जनता की दृष्टि का वास्तव में रहना है। इसलिए यद्यपि लोक सेवा का साधिकागिज दृष्टि के जनता के प्रति उत्तरदायी बनाने की आवश्यकता नहीं है, फिर भी यह आवश्यक है कि लोकतन्त्र जनता की आधारभूत दृष्टि का और मान्य के प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण अन्तर्गत। इसका एक स्पष्टक यह है कि आवश्यकता तथा जनता के बीच सामन्तम्य रूप सम्बन्धों का विकास हो। जनता के साथ व्यवहार करने समय लोकसेवा की ध्यान रखना चाहिए कि एक समय में जनता के साथ उनका नहीं सम्बन्ध है जो उपभोक्ता का उत्पादन के साथ होता है। निम्नी अवस्था पर उनके लिए जनता की मुख्यता देश मान्यता हो सकती है, किन्तु कभी-कभी उन्हें सरकार की नीति का भी ध्यान भी सिद्ध करना पड़ सकता है। इस प्रकार के व्यवहार में एक अनुकारी प्रभु जैसा व्यवहार करना लोकतन्त्र की राजनीतिक सहिता से भिन्न नहीं जाता। भारतीय नीचरताही की सभी साधारण मान्यता का सम्मान करने की आधारभूत नीति की आवश्यकता रहना है। देश का प्रशासन अन्तर्गत देश का विचार है क्योंकि नीचरताही का व्यवहार सभी की पुराने का है। यह निरुद्ध इन का आधार बन रही है और जनता पर भी अमान की अपना अधिकार मानती है। इसलिए ऊपर से नीचे तक सभी स्तर के लोकप्रशासक को पुनर् शिक्षित करना है जिससे वे सभी अर्थ में जनता के सेवा बन सकें।

प्रशासनिक अधिनियम अब एक स्थायी चीज बन गयी है, और भारत में प्रशासकीय 'साधिकागिज' का विकास हो रहा है। किन्तु यह आवश्यक है कि उनकी कार्यविधि की अधिकाधिक 'साधिकागिज' में दे दिया जाय। किसी 'साधिकागिज' की कार्यप्रणाली 'साधिकागिज', निम्नता दुर्भाविरहित तथा निम्नता सभी हो सकती है क्योंकि निम्नता और अनुगत अधिकागिज का अनुसरण किया जाय। यह स्वाधिकागिज है कि वे सभी सम्बन्धी नियमों का उक्तनी न्याय के साथ चलने नही कर सकते हैं। इससे कि साधिकागिज 'साधिकागिज' में देने की निम्नता है। इन धर्म-साधिकागिज अधिकागिज की समय की काल अवधि करती है। इसलिए वे पूरी 'साधिकागिज' अधिकागिज का चलने नही कर सकते, केवल महत्त्वपूर्ण नियमों को नाम में ला सकते हैं।

'साधिकागिज' का मुख्य काम मान्यता के अधिकागिज की रक्षा करना है। इसलिए आवश्यक है कि उच्च 'साधिकागिज' तथा सर्वोच्च 'साधिकागिज' प्रशासकीय तथा अन्तर्गत 'साधिकागिज' नियमों के निम्नता की कालनी नीति की दृष्टि में ही नहीं बल्कि समय में आधार पर भी पुनरीक्षा करें। मेरा अधिकागिज यह नहीं है कि उच्चतर 'साधिकागिज' नये दिने से किसी काय का परीक्षण कर, अपना समयों की पूरी जाँच करें। किन्तु यदि 'साधिकागिज' की अपनी कार्यवाही के दौरान निम्नता हो जाय कि किसी पक्ष के साथ अन्तर्गत हुआ है तो वह प्रशासकीय 'साधिकागिज' की कार्यवाही का रद्द करने में भी नहीं हिचकना चाहिए और देश करने में उन्हें इस बात की चिन्ता नहीं करनी चाहिए कि वह ('साधिकागिज' की) समयों के प्रयोग है अथवा नहीं। किसी पक्ष के साथ निम्नता अन्तर्गत का प्रयोग करने के लिए अन्तर्गत प्रयोग (प्रयोग) आदि जारी करना 'साधिकागिज' के स्वधिक के अन्तर्गत जाता है। यदि राज्य का नाम निम्नतागत न होकर आवश्यक हो गया है, इसलिए उनके साथ दिन प्रति दिन करते आ रहे हैं। कन्वन्शन लोकसेवा की वास्तविक के जीवन और नामों में हस्तक्षेप की करता आ रहा है। यह सम्भव है कि लोकसेवा स्वधिक का प्रयोग करने में नाम पर

मन्थानी करने लगे। प्रशासना की मन्थाने तथा अनियन्त्रित ढंग से शक्ति का प्रयोग करने से रोकने के लिए आवश्यक है कि 'सामिक उपचारों का शक्तिशाली अविनाश हो। यदि 'सामाजिक को विनाश हो जाय कि नागरिकों के मूल अधिकार तथा अन्य सार्वजनिक अधिकारों की कुपता तथा है तो वह प्रयोगात्मक का अधिक प्रभावकारी ढंग से प्रयोग करना चाहिए।

नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करने के लिए यह भी आवश्यक है कि 'सामाजिक के नियमों को कार्यान्वित किया जाय तथा हृदयपूर्ण सामाजिक अधिकारों को उनमें विनियमित करने में सहायता जाय। यदि 'सामाजिक के नियमों को लागू नहीं किया जाता तो उन नियमों का क्या सम्मान रहे जायगा। इसलिए आवश्यक है कि अवमान-सम्बन्धी ('सामाजिक की मानदण्डों से सम्बन्धित) नियमों को अधिक कठोर बनाया जाय, जिससे उन व्यक्तियों तथा अधिकारियों की जो 'सामाजिक के नियमों का उल्लंघन करते हैं, समुचित दण्ड दिया जा सके।

आज देश आन्दोलन की विप्लव परिमाणताओं की प्रारम्भ करने जा रहा है। कुछ सीमा तक राज्य स्वयं प्रत्यक्ष रूप से अधिकार उल्लंघन की चला रहा है। इससे अतिरिक्त राज्य ने नियमन और नियन्त्रण की व्यापक शक्तियाँ अपने हाथों में ले ली हैं। विप्लव तथा कमजोर वर्गों के हितों में सामाजिक न्याय के दायरों को कार्यान्वित करने के लिए अनेक सुरक्षा अधिकारों तथा सीमा क्षमताओं का स्थापना हो रही है। इस प्रकार विमानों, विमानों, सार्वजनिक सम्पत्तियों, अधिकारों, परिवारों, सत्ताओं तथा प्रशासना का बड़ी संख्या में उदय हो रहा है। इन अधिकारों की वृद्धि करने के अन्तर्गत न करने या करने नहीं है, बल्कि अब तो उन्होंने हड़ताल से अलग होकर अपना नियमों की नींव उनकी सत्ता बढ़ती जा रही है। प्रशासकीय अधिकारों की वृद्धि नागरिकों के अधिकारों के लिए एक खतरा है। एक और संविधान की प्रस्तावना, मूल अधिकारों तथा राज्य के नीतिनिर्देशक सिद्धांत हैं। दूसरी ओर प्रशासकीय विभागों में फैलाने पर मूल अधिकारों का अतिक्रमण कर रहे हैं। इस बात की निश्चयता है कि अधिकारों का शक्ति या आवश्यकता के अधिक प्रयोग करते हैं, प्रशासकीय स्वतंत्रता के स्वेच्छाचारिता का रूप धारण कर लिया है और निरन्तर बढ़ रही गौरवशाली नागरिकों के अधिकारों का अव्यक्त अतिक्रमण करने प्रशासकीय प्रणाली को विफल कर रही है। अब हम किसी के क्षेत्राधिकार के मनमाने ढंग से अतिक्रमण करने के प्रयास पर विचार करते हैं तो हमें उत्तरप्रदेश के विचारों का स्मरण हो जाता है जिसमें एक और मूल अधिकारों की सम्पत्ति 'सामाजिक की ओर हस्तांतरण और अपने अनुसूचित वर्गों के अधिकारों पर नज़र करने वाली व्यवस्थापित (विधानमंडल)। प्रत्यक्ष में यह दृष्टि देना अनुसूचित वर्गों को कि इस अनुसूचित विधानों की सत्ता इस बात पर आधारित की कि उसने आम जनता के दिलों में बोलों का 50 प्रतिशत से भी कम प्राप्त किया था। अब यह आवश्यक है कि नागरिकों के मूल अधिकारों की रक्षा की जाय, और उनकी रक्षा के जो उपाय और उपाय हैं उनका सम्मान किया जाय।

इस सम्पत्ति में बड़ा सुझाव है कि फास को राज्य परिवर्द्ध के ढंग की किसी संस्था की स्थापना कर ली जाय। इस की प्रशासकीय विधि और प्रशासकीय 'सामाजिक संस्थाओं को धार कर चुके हैं अब आइसो ने अतिरिक्त की विधि की प्राप्ति तथा फास के उन विशेष सामाजिकों की व्यवस्था के बीच अंतर बतलाया था जिसमें नागरिकों तथा प्रशासकीय के बीच उठने वाले विवादों की सुनवाई होती थी। यह सत्य है कि भारतीय संविधान में प्रशासकीय अधिकारों की शक्तों की सुधारों के लिए विभिन्न प्रकार के आदेश (पिटो), आदेशों तथा निर्देशों का प्राविधान किया गया है। किन्तु इन आदेशों में दो गम्भीर दोष हैं। प्रथम है उपचार 'सामाजिक के स्वतंत्रता पर निर्भर होते हैं। 'सामाजिक यह जारी करें अथवा न करें। नागरिकों को उनके सम्पत्ति के आदेशात्मक अधिकार नहीं है। दूसरे, आदेश जारी जारी किन्तु जारी है अब कोई नानुल की भूल ही। सामाजिक 'सामाजिक सत्ता की शून्य होना पर हस्तक्षेप नहीं करते। इसलिए आदेश सरलता से उपलब्ध नहीं होते, न के अधिकारों के अतिक्रमण के विरुद्ध प्रभावकारी उपचार सिद्ध होते हैं। इसलिए ऐसे नियमित 'सामाजिकों की आवश्यकता है जिनके प्रमुख उद्देश्य 'सामाजिक के 'सामाजिकों का, और जो नागरिकों को अधिक व्यापक अनुसूचित (सूचित) दें हों। इन 'सामाजिकों के सामाजिक प्रभावकों को चाहिए, जसा कि फास में है, बल्कि ऐसे व्यक्ति होना चाहिए जिन्हें विभिन्न प्रविधान ५

और जिनमें उच्च 'मायालय का' आध्यापीय बनने की योग्यता हो। इस 'मायालय' को तथा वा छानबीन करने का भी अधिकार होना चाहिए।

नागरिकों की सविधान के साथ होने में जो मूल अधिकार प्रदान किये गये हैं उनकी रक्षा की विशेष आवश्यकता है। अनुच्छेद 14 और 15 की रक्षा की जानी चाहिए। ताबूत हीवाह ने नीकर-बाही के 'पाप' निषेध की और ब्रिटेन के सरकारों विधायी द्वारा 'आर्थिक क्षेत्र' में किये जाने वाले हस्तक्षेप की जो अतिरिक्त चलाया की है उससे इन सगे ही सहमत न हा, किन्तु इस बात पर बल देने की आवश्यकता है कि 'आय'पालिका के आयकषा के नागरिकों की रक्षा की जानी चाहिए। ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिए जिससे आयपालिका अपनी शक्तियों का दुरुपयोग न कर सके, आय कषता से अधिक शक्तियों को अपने हाथों में केन्द्रित न कर से और स्वयंसेवक की स्वेच्छा-वर्तिता में परिवर्तित न कर पावे। ऐसी स्थिति में हमारा ध्यान उस संरक्षण की ओर आकृष्ट होता है जो प्राप्त के नागरिकों को महा की राज्य परिषद द्वारा प्रदान किया जाता है। कभी-कभी सामान्य विधि (कॉमन लॉ) द्वारा 'आय' प्राप्त करने में समय अधिक लगता है और फल अधिक लच होता है। शास की राज्य परिषद में लच कम होता है, और वह अधिक प्रभावकारी भी है। इसलिए हमें उसका अध्ययन करना चाहिए और देखना चाहिए कि हमारा देश में इसकी जहाँ किसी समस्या का परीक्षण करना अनुभूत होगा अथवा नहीं। किन्तु उच्च 'आय'लया और सर्वोच्च 'आय'लय द्वारा जो विशेषाधिकार प्रदेस (रिट) जारी किये जाते हैं, वे बने रहने चाहिए। मैं इस बात में नहीं हूँ कि प्रशासकीय 'आय'लय स्थापित करने के लिए उच्च 'मायालय' और सर्वोच्च 'आय'लय की प्रशासकीय विभागों की पुनरीक्षा करने की शक्ति हीन की जान। मेरा सुझाव है कि प्रशासकीय 'मायालय' उच्च और सर्वोच्च 'आय'लया के दूरक के रूप में स्थापित किये जाने चाहिए।

4 भारत के निर्दोष तथा लोक प्रशासन

आज निर्दोष की आवश्यकता के सम्बन्ध में आधुनिक विचार की आवश्यकता नहीं है। आज इस बात में सभी सहमत हैं कि निर्दोषता अव्यवस्था ही भारत का इरिदृश तथा बेकारी के अविद्याप से उद्धार कर सकती है। गांधी के लोग आये समय बेकार रहते हैं। इससे उनकी काम क्षमता व्यय हो जाती है। निर्दोष के द्वारा ही उनकी इस शक्ति का प्रयोग कर सकना सम्भव है। वर्तमान काल में अधिक दूषकत्व का प्रदल ही नहीं उठता। देश के दूर सीमा में रहने वाले लोगों में भी रहन-सहन के उच्च स्तर की चेतना और आकांक्षा देखने को मिलती है और उच्चोत्तम लोग नवीन आवश्यकताओं का अनुभव कर रहे हैं।

निवाजन के दो मुख्य पक्ष हैं (1) आर्थिक विकास की गति में वृद्धि, और (2) आर्थिक विचारधारा का कलाप। स्पष्ट है कि इसका राज्य के कार्यों में वृद्धि होगी। प्रशासन के इस विस्तार में अवधारण पुन राजनीतिक अवधारण का एक घाट कर लेता है।

यदि निर्दोषता की 'पोनरार्थिक' रूप से वर्णित और 'विचारित' किया जाय तो भी उसके नीकरवाही की वृद्धि होती है। अवधारण के 'आन्विषाई समुदाय' की इस अवधारण में निदधय ही साथ का अंग है कि निर्दोषता नीकरवाही के अन्वेषण की विचारधारा देता है। निर्दोषता दो प्रकार से नीकरवाही की वृद्धि करता है (1) जो आर्थिक क्षेत्र पक्ष निर्दोषता लच में का उस पर अथ राज्य का निदधय स्थापित हो जाता है। इस प्रकार उत्पादन, वितरण, बेचिन, आयात, निर्यात तथा विभिन्न वर राज्य का निदधय और कभी-कभी तो प्रत्यक्ष राजकीय निदधय कायम हो जाता है। (2) नीकरवाही शक्ति का अब हम अन्वेषण निर्दोषता की द्वारा विविधता बनाते हैं, अब राज्य के वरविध नीकर बन जाते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि लाभ कभी-कभी सरकार का या विद्याप कर लेते हैं और जो वास्तव में राज्य के लिए एक बोध का नाम करता था वह भी समाप्त हो जाता है। राज्य के नीकर के रूप में व्यक्ति राज्य की इच्छा का उत्तरदायन करने का शाह्य नहीं कर सकेंगे।

भारत में निवाजन में प्रशासन की हीन स्तर पर प्रभावित किया है (1) उमन नाशिन रूप में राज्य की स्थापितता का ठेक पहुँचानी है (2) वह वर्तमान अविद्यन (पहुन) में विद्याप का तथा सहभागी नागरिकता का गन्ध है, और (3) उमन भारत में आर्थिक प्रशासन का विदेशी

विभाजना तथा भारत की एकात्मता देने वाले तथा और कड़ा की कड़क का विकास करा दिया है ।

भोजना आयोग जो एक असाधारण निकाय है, जिसका सम्बन्धन म कड़ी उत्प्रेषण नहीं है और जिसका निर्माण वायपालिका के आदेश से किया गया है, आज एक अत्यधिक सक्रियता की वस्था बन रहा है । आरम्भ में उसकी एक अनपेक्षित अधिकरण (स्टाफ एजेंसी) के रूप में कल्पना की गयी थी और समझा गया था कि उसका काम सलाह देना और घोषणा करना होगा । किन्तु उसके साथ जोड़ी के वैकल्पिक मा'त्रों का सम्बन्ध है इसलिए उसको अनावश्यक प्रतिष्ठा मिल गयी है और वह नीति निर्धारण में भी हस्तक्षेप करने लगा है । किन्तु नीति-निर्धारण ही एक राजनीतिक काम है, अतः वह वास्तविक रूप का विरोधाभास होना चाहिए ।

यह सत्य है कि अनेक 'आर्थिक' समस्याओं का समाधान कर दिया गया है । हमारे प्रशासन एक अधिक आर्थिक के विकास है । उनका ध्यान उत्पादन के लक्ष्य की अपेक्षा खर्च के लक्ष्य पर अधिक केन्द्रित है । यदि बजट के निर्धारित कुछ लाख व्यय की सीमा रख दी जाती है तो हमारे प्रशासकों की कठिनाई हो जाती है । किन्तु जनता की उत्पादन क्षमता की सीमा लक्ष्य से प्रभावित है । इसे बढ़े हुए खर्च के आकाश से छोड़ दिया नहीं हो सकता, वह ही सीमा नीतिक लक्ष्य को प्राप्त करना चाहती है । तीन वर्षवर्षीय योजनाओं के बावजूद व्यवस्थापन गरीबी, भुखमरी, और अभाव हमारे जीवन की ही गठ्ठ करके पर तुले हुए प्रतीत होते हैं । हमारे देश में विकास की के अतिरिक्त का अधिभार इसी में है कि वह विदेशों से अधिकतम धन लेने के लक्ष्य हो सके । यह हमारे लिए कोई सम्मान और प्रतिष्ठा की चीज नहीं है कि जिस देश में वैश्वीय युग से प्राप्त फल प्राप्त होता आया है उसे फ्लोरिडा व अपने लिए चाहत करना पड़े । न्यूयार्क की अतिवृद्धता से मुद्रास्फीति का उत्पन्न और भी अधिक बढ़ता आया है । देश पर पचास-साठ करोड़ का विदेशी ऋण गढ़ गया है ।

यह सत्य है कि निजीकरण भारतीय जनता की आकांक्षाओं की पूर्ण करने में असफल रहा है । मैं उन अनेक हस्ताक्षर के वाक्यांशों तथा वाक्यों का महत्व कम नहीं जानता जिसका देश में पिछले वर्षों में निर्माण हुआ है । किन्तु कुछ की उत्पादनता की वजह से यह सही विचारों की बात है कि बुनियाद, भुखमरी और अभाव का भुखमरी भी भारतीय जनता की वस्तु बन रहा रहता है । निजीकरण के बड़े से बड़े समर्थकों में भी कठिनाई किया है कि योजनाओं के वास्तविक में बड़ी कमियां रही हैं । मुझे योजना के सिद्धांत और लक्ष्यों के विवरण से कोई अपेक्षा नहीं है किन्तु मुझे देखना है वह परिणाम नहीं दिखाने देता जिसकी हमने कल्पना और कल्पना किया था । योजनाओं के वास्तविक में जो असफलता हुई है उसका उत्तरदायित्व राजनीतिक वर्गों पर है, और इस सम्बन्ध में कभी-कभी प्रतिष्ठा के लक्ष्य को भी अपेक्षा की कटार दिया गया है । किन्तु प्रशासकीय गरीबी की भी है । कदापि ऐतिहासिक विवेचना के भारत के अधिकांश प्रशासकों की बड़ी प्रज्ञा की है फिर भी यह सत्य है कि हमारे देश का जीवन का प्रशासन कम अपने नाम में अपेक्षा सिद्ध हुआ है । कभी-कभी आत्मसुनिहित और पदचढ़ाई की सीमाओं की तुलना में अधिक महत्व दिया जाता है ।

यह सत्य है कि एक निरंतर अर्थतन्त्र की वास्तविक रूप देने की प्रक्रिया में अनेक प्रकार के असंतुलन उत्पन्न कर दिये हैं । कुछ अर्थशास्त्री भी विचारते हैं कि उनकी उपाय की जा रही है । मुद्रास्फीति में अचानक वृद्धि हुई है और यह महिष के लिए एक अमान्य अवलोकन है । यह सत्य है कि वास्तविक में कर्मचारी वर्ग की प्रतिष्ठा भी भी रही है । योजनाओं के उत्पादन में कम में भी अत्यधिक निष्ठा के रूप में व अतिरिक्त रूप से पूरा नहीं हुआ है । इसका लिए अनेक कारण जिम्मेदार हैं । इन विचार-मग्न में अन्तर्गत आर्थिक विभाग का जा जाया जाता है उत्तम की योजनाओं की पूर्ति में कम वापारें नहीं आती हैं ।

आज हमारे देश में राजनीतिक प्रक्रिया में जनता की मा'त्रों की और जनता के निर्माण की बहुत चला ही रही है । किन्तु कल्प यह है कि योजनाओं जनता में उस सच्चे उत्पाद की वापस कर में असफल रही है जिसकी कि आशा की जाती थी । जनता के दिना और दिनाओं का मात्र-

नाश्री के साथ एकत्रित रूप से स्थापित नहीं हुआ है। वह योजनाओं की अपेक्षा नहीं समझती है। वह द्वितीय योजना बनायी जा रही थी उस समय बीजे ड योजना बनाये की बड़ी चर्चा थी। किन्तु तृतीय योजना के समय इस प्रकार की भित्तिदाहट मुझे बड़ी नहीं मिली। इसका कारण मुख्य रूप से कि शासक दल अधिक अधिकाधिक-वास्तव (बीजरक्षाहीन पर अवलम्बित) होता जा रहा है और उसे अपनी शक्ति व अधिक विधवाय हो गया है। किन्तु इसके इनकार नहीं किया जा सकता कि योजना के साथ जनता का सहयोग आवश्यक है। दुर्भाग्य की बात है कि हमारे देश में योजना का एक दलमयी माहौल बन गया है, और राजनीतिक दल योजनाओं की विफलता की आलोचना व अधिक व्यस्त रहते हैं, वे योजनाओं की सफल बनाने के लिए माहौल बनाने का कोई काम नहीं करते। आवश्यकता इस बात की है कि विश्व नाम को करने में राजनीतिक दल असफल रहे हैं इस ऐतिहासिक अनुशासन और कमिशन को करना चाहिए। यदि शासक दल के सदस्य योजनाओं का सुझाव करते हैं तो जनता अधिक मनोवैयक्तिक तथा नैतिक प्रभाव नहीं पड़ता। द्वितीय तथा तृतीय आम चुनावों में सिद्ध कर दिया है कि नाश्री की विधानमंडल में बहुसंख्यक स्थान इसलिए प्राप्त करे कि विपक्षी दलों में परस्पर फूट थी। कांग्रेस की अन्य दलों में अधिक मत मिले। किन्तु उसे बहुसंख्यक मत प्राप्त नहीं हुए। इससे स्पष्ट है कि कांग्रेस का निर्वाचकत्व के मन पर अनुचित मनोवैयक्तिक तथा नैतिक प्रभाव नहीं है। इसलिए उसके अनुपयोग का आवश्यक प्रभाव नहीं पड़ता। इसलिए जो ऐतिहासिक अनुशासन और कमिशन योजना के मुक्त की स्वीकार करते हैं, वह वह काम करने द्वारा में होता चाहिए। जनता का समर्थन प्राप्त करने के सांख्यिक समर्थन अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं। जनता के प्रतिनिधियों के निर्मित सलाहकार समिति या मन्त्रि मन्त्रि परिषद् इस काम में अधिक सफल नहीं हो सकती।

वास्तविकता के लिए यह मुद्दे की समस्या अधिक महत्वपूर्ण है। मैं विवेकी लोगों के विरुद्ध हूँ। अपने कतमान तथा माजी पीढ़ियों के पते में पता पड़ता है। यदि यह सत्य है कि राज्य की प्रति व्यक्ति आय बढ़ गयी है तो अतिरिक्त रूप के द्वारा राज्य में बढ़ि करना उतना कठिन नहीं होता चाहिए बिना कि आज जान पड़ता है। नियोजन की प्रोत्साहित करने के लिए विभिन्न प्रकार के आर्थिक उद्देश्यों का उपयोग करना पड़ेगा। हम ईमान, सुमेट्टर अच्छा काम किसी के विकास सम्बन्धी सिद्धांत की अनुशासन बिना आर्थिक विकास की प्रोत्साहन देना है और उतना परिवर्द्धन करना है।

मेरा सुझाव है कि योजनाओं की अवलम्बिता का सुझावन निम्न कमिशन के द्वारा होना चाहिए। योजना आयोग की योजनाओं की परिवर्द्धना के सम्बन्ध में एक समिति है। उस समय मानविक सुझावन समझने की भी स्थापना करनी है। बिना मुख्य काम सामुदायिक विभाग कामकाज का सुझावन करना है। किन्तु मेरा सुझाव है कि कामकाज का सुझावन सामाजिक विभागों के निर्माण के स्वतंत्र अधिकारों के द्वारा किया जाना चाहिए। विश्वविद्यालयों के अध्यापक सुझावन प्रति के मन में रूप में काम कर सकते हैं।

नियोजन की प्रणालीय समस्याओं के सम्बन्ध में धीरे निम्न सुझाव है

(1) मैं आवश्यक उद्योगों के क्षेत्र में राज्य पूंजीवाद के विरुद्ध नहीं हूँ। जो उद्योग देश की सुरक्षा के लिए आवश्यक हैं उनकी स्थापना करनी है और उन्हें चलाना है चाहे उसके कुछ सीमा तक मोनोपॉली की हो बृद्धि नहीं हो।

(2) राज्य पाश्चात्य के उत्पादन के लिए कुछ प्रति काम भी करना सकता है।

(3) उपयोगी अनुशासन तथा विभाग अनुशासनों के क्षेत्र में राज्य का प्रवेश नहीं करना चाहिए। उस उस क्षेत्र में नियंत्रण करके ही अनुपुष्ट हो जाना चाहिए।

(4) योजना आयोग के समझने में कुछ परिवर्द्धन किसे जाने चाहिए। इस प्रकार की समझ को विविध रूप में दिया जाना चाहिए। उतना मुख्य काम प्राप्त करना और बनाना देना होता चाहिए। साथ ही साथ उसे इस बात की सलाह देनी चाहिए कि विश्व, दुनिया, उद्योग और सामाजिक के अन्तर्गत व क्षेत्र सामंजस्य कि प्रसार सिद्धांत जानें। योजना आयोग की नीति निर्धारण का

नाम अपने हाथों में नहीं लेना चाहिए। और न उन्हे योजनाओं को स्वीकृत करने का काम सीधा जाना चाहिए।

(5) योजना अमिकरण का यथासम्भव विकेंद्रीकरण बिना नाम।

(6) भारतीय राजतन्त्र ने सम्बलन रूप को सुशिक्षित रखने के उपाय किये जाने चाहिए। आज स्थिति यह है कि योजना आयोग और राष्ट्रीय विज्ञान परिषद् का सीट तथा बिल पर निम्न उक्त है, जबकि योजनाओं की समीक्षा करने की जिम्मेदारी राज्यों की सरकारों की होती है। इससे यह पता लगता रहित हो जाता है कि योजनाओं की अमकलता की जिम्मेदारी किम पर है। इससे अपेक्षाकार फलता है। इसलिए इस बात की आवश्यकता है कि जिम्मेदारी समुचित रूप से बांटी जाय।

हम अपने योजना के नैतिक मूल्यों की ओर भी ध्यान देना है। भारत एक गरीब देश है, और शानीय जनता की तरीबी समवर है। इसलिए हमारी योजनाओं में गांधीजी के सरल जीवन के आदर्श का गुट होना चाहिए। हमारे उद्देश्यों से नाम नहीं चलेगा। गांधीजी, जिन्हें योजना बनाने वाले राष्ट्र का पिता तथा पैगम्बर मानते हैं, सरलता, श्रम तथा शौकिक और आध्यात्मिक मूल्यों के सम्बन्ध में विस्वास करने से। यह उचित नहीं है कि हम विदेशों से अपरिमित धन उधार ले लेकर ऐसे बड़े-बड़े भवना का निर्माण करते जहाँ भी जनता की दरिद्रता के सम्बन्ध में असमता और वैयुक्तिक दान पड़ते हैं।¹⁰ हमें गांधीजी के "चरि में सम्मिलन होता" धर्मन निर्वाह का स्वभाव करना चाहिए। हमारे जीवन का स्तर और हमारी दशावलीय सुविधाएँ हमारी शक्ति और साधनों के अनुकूल होनी चाहिए।

5 सामुदायिक विकास

सामुदायिक विकास की योजना प्राचीन जीवन के मनोवैज्ञानिक तथा भौतिक आधारों को सुधारने की पद्धति और सम्प्रतिष्ठि है। अनेकी साम्राज्यवाद के परिणती दौर में दूरीवादी सोपन व विज्ञानकारी परिणामों के कारण प्राचीन जीवन का निरास ह्रास और पतन हो गया था। सामुदायिक विकास कार्यक्रम भारतीय समाज का पुनर्वास करने का उपाय है। यह कार्यक्रम उस चीज से भी जाने से जाने वाले हैं जिसे हम आधुनिक विकास कहते हैं। उनके मूल में लक्षणा यह है कि दूरी को दूराने के बुद्धिमत्तापूर्ण तरीका का अपना कर लोगों की मनावृत्ति में दूरगामी फलान्न बिना नाम। उनका उद्देश्य केवल इति एकत्र लक्ष्य बनाना नहीं है। आज यह भी जाती है कि इनमें सामुदायिकता में अपने भौतिक स्तर की सुधारने की शीघ्र आवश्यकता उत्पन्न होती। इस दृष्टि से उनका उद्देश्य उस चीज के विरुद्ध समकित सम्भव फलाना है जिसे बोदेगु वैम्माफर रिपोर्ट में 'भारतीयों का दयनीय सदीय' कहा गया था।

यह कथन सत्य है कि सामुदायिक विकास कार्यक्रमों का उद्देश्य सामुदायिकता में नयी मनो-वृत्ति उत्पन्न करने प्राचीन जीवन का मनोवैज्ञानिक स्थापन करना है। किन्तु कभी कभी यह विषय प्रचल भी सिद्ध हो सकता है। मनोवृत्तियों का निर्माण निरन्तर साक्षात्करण में नहीं किया जा सकता। वे अत्युक्त परिस्थितियों के प्रतिबिम्ब हूना करते हैं। यदि कृषि की उत्पादनता बढ़ायी जा सके और गरीब किसानों की आवश्यकता साक्षात् मिलते रहने का आवश्यकता दिया जा सके तो अवश्य ही वे मानस और ऊर्जाहूँ का अनुभव करेंगे।

कुछ अवधारणाओं में भारत के आधुनिक पिछड़ेपन के लिए देश की जनता को सामुदायिक उदा-योगिता का दोषी ठहराया है। ये इस दृष्टिकोण से सत्य नहीं हैं। विदेशी साम्राज्यवादियों ने देश की आधुनिक दुर्घटना को पुनिक्रमण ठहराने के लिए इस विषय पर ध्यान का पोषण बिना कर, किन्तु भारतीय अवधारणाओं को धारण नहीं देना कि वे इस अवधारणा तथा निराधार धारणा को दुहराते रहें। वेदा अपना अनुभव यह है कि भारतीय मजदूरों को अल्प आहार मिलता है, उनको

10 यह कुछ भी बात है कि सामुदायिकता की दृष्टि से हम गांधीजी के शरण जायें के आदर्श की छात्रता पर रहे हैं। सामुदायिक उद्देश्य वह सबको का निर्माण किया जा रहा है और धारण के सम्बन्धों अधिकाधिक का धारण जारी रिये जा रहा है। इस सम्बन्ध में अनुभव की शीघ्र करने की आवश्यकता का स्थान पर उक्त अवधारणा करने की प्रवृत्ति यह रही है।

देखते हुए वे कितनी शक्ति उत्पादन के कार्यों में लगे रहते हैं यह सचमुच आश्चर्यजनक है। जो मजदूर प्रति सप्ताह लगभग सप्तरात्र घंटे काम करता है उस पर साम्यवादी होने का बोध नहीं लगता था सकता।

प्राथम्य पर सामुदायिक विकास योजनाओं की उपलब्धियों में मते ही महान हूँ, किन्तु यह यह है कि भारतीय किसान अपने ही धारण प्राप्त की सुखता में न अति सुखी हैं और न अति समृद्ध।

सामुदायिक विकास कार्यक्रमों के बारे में मेरे निम्नलिखित सुझाव हैं।

(1) हमें धीमी गति से चलना है। भारत में जो तरह-तरह के दल अथवा पट्टे वगैरह 'ग्राम और ग्रह' की नदियाँ बहा देते हैं अस्मभव काम होना में ऐसा निरर्थक है। जिस व्यक्ति की आवश्यकताएँ समाप्त हो सकती हैं, किन्तु उसे अग्रगण्यवादी नहीं होना चाहिए और न वह बाधों परने चाहिए। इसलिए अनेक क्षेत्रों में शक्ति संचयन के विचार को छोड़ देना चाहिए।

(2) विकास काल के लिए ऐसे क्षेत्रों की सर्ती किया जाना चाहिए जिनमें समग्रता से विकास हो और जिनकी मनोवृत्ति सेवाओं की-सी हो, धारणा की-सी नहीं। प्रारम्भिक काल में अग्रगण्य सरकारी कर्मचारियों की नयी शक्ति का निर्माण करना आवश्यक नहीं है।

(3) विकास-क्षेत्र परामर्श समिति के नेतृत्व की शक्तियाँ बलवत्ता प्राप्त।

(4) आवश्यकता इस बात की है कि परामर्श तथा परामर्श समितियों के द्वारा कार्यान्वित होने वाली लोकतांत्रिक विवेकीकरण की योजनाओं तथा विकासपरक अधिकारियों के द्वारा काम करने वाली के हीनता की प्रवृत्तियों के बीच सम्पर्क स्थापित किया जाए। समस्त ग्राम ग्रहण समिति की विचारणा भी कि ग्राम परामर्श तथा परामर्श समितियों सामुदायिक विकास कार्यक्रमों को कार्यान्वित करने का साधन होना चाहिए। सङ्घातिक दृष्टि से यह सुझाव लोकतांत्रिक प्रतीत होता है, किन्तु समस्या यह है कि बुनियाद जनता की शक्ति पहुँचा कर स्वयं समीर उद्देश्य बनने का प्रयत्न करते हैं, इस बीच की कमी रोका जाए।

6 भारत में सङ्घातीय आर्थिक प्रशासन के कुछ पहलू

स्वतन्त्रता के बाद हम अपने देश के इतिहास के सबसे बड़े परीक्षा काल में गुजर रहे हैं। भारत एक ऐसे मूल, बकर तथा आत्मशासी समझौते देश के आग्रहों से ग्रस्त है जो सामुहिक हस्तगत की प्रणाली से प्रभावित है और जिसमें समीक्षा की विस्तारक प्रवृत्ति देखने की मिलती है। साथ ही तथा प्राकृतिक शक्ति की स्वतन्त्रता के लिए सबसे बड़ा बाधा है। इस प्रणाली का सामना करने के लिए हमें अपने मानवीय तथा भौतिक साधन मूलतः प्रचलित करने होंगे। यह बड़ी कठिन समस्या है, किन्तु यदि भारत को एक स्वतन्त्र राजनीतिक इकाई के रूप में अपना अस्तित्व स्थापित करना है तो इसका समाधान दूसरा ही पड़ेगा।

हम अपनी योजनाओं की कार्यान्वित करने में लगे हुए हैं, और हमारा उद्देश्य यह है कि इन्फिन्, औद्योगिक तथा विद्युत क्षेत्रों की उत्पादनता बढ़ावी जाए जिससे जनता के रहने रहने में स्तर ऊँचा बढ़ाया जा सके। अब हम इस लक्ष्य में मोटा सा सहायन करना पड़ेगा। अब अनवरत सभी हमें हमारा उद्देश्य केवल राष्ट्रीय आन बढ़ाना नहीं है, बल्कि कुछ सामग्री उत्पन्न करना भी है। किन्तु उद्देश्य में परिवर्तन करने का अर्थ यह नहीं है कि इन्फिन् तथा औद्योगिक उत्पादनता के लक्ष्य को भुला दिया जाए। अपनी योजनाओं की शक्ति की अन्तर्गत रखने के लिए भी इन्फिन् तथा औद्योगिक उत्पादनता में बढि करना आवश्यक है। समीक्षा की योजना, उनी प्रत्यक्ष तथा अग्र अनेक प्रत्यक्ष तथा वैधानिक की आवश्यकता होती है। देश के दक्ष, योग्य तथा मोटर उद्योग बनने में। साथ ही समस्या की हल करने के लिए विभिन्न सम्बन्धी योग्यता की अतिम तेजी के चलाने की आवश्यकता है। अतः राष्ट्रीय अधिकारों परियोजना तथा राष्ट्रीय उत्पादनता परियोजना की बीच तालमेल स्थापित करने की आवश्यकता है।

ग्राम की उत्पादनता बढ़ाना निश्चय ही एक प्रमुख उद्देश्य है। अनेक क्षेत्रों में लक्ष्य बहुत से अतिम ऊँचे कर दिये गये हैं। उत्पादन के लिए ग्राम प्रशासन के सम्बन्ध में अब लक्ष्य एक

करीब दस लाख एकड़ के बड़ाबर एक करोड़ साठ लाख एकड़ निर्धारित किया गया है। इसी प्रकार लघु सिंचाई का लक्ष्य अब एक करोड़ बीस लाख एकड़ से एक करोड़ नब्बे लाख कर दिया गया है। राज्य कृषि के क्षेत्र में पहले सदन दो करोड़ एकड़ था, अब पांच करोड़ एकड़ है।¹¹ यह आवश्यक है कि कृषि उत्पादन के सभी साधन का भरपूर प्रयोग किया जाए, और नये साधन निर्मित किये जायें। जहाँ तक प्रयासशील सरकारों का सम्बन्ध है, अनेक राज्यों में सामुदायिक निवास शायद और पंचायती राज की संस्थाएँ हमारी राष्ट्रपिता कर सकती हैं। उनका काम है कि वे जनता के सम्पर्क स्थापित करें, उसे राष्ट्रीय प्रतिरक्षा तथा योजना से सम्बन्धित कार्यों का सारका निज महत्व समझाएँ और इस प्रकार उत्पादन को प्रोत्साहित करें।

औद्योगिक उत्पादन बढ़ाने के लिए थम मोर्चा के बल सचप के सिद्धांत को त्याग देना पड़ेगा और पहले स्थान पर देश की रक्षा के लिए समाज के सभी वर्गों को एकजुट होकर समर्थन की सभी मांगों के काम करना होगा। राष्ट्रीय थम मोर्चा ने एक सड़ककारी उत्पादन समिति की स्थापना की है। उत्पादन के सम्बन्ध में औद्योगिक थम प्रस्ताव को कार्यान्वित करना उस समिति का काम होगा। यह औद्योगिक उत्पादन की बढ़ान के उपाय बतासामेयी और उत्पादन थम के सितम्बरगत करने के लिए सुझाव देगी। राष्ट्रीय थम मन्त्रालय ने 60 000 कुशल शिक्षिका के प्रशिक्षण का कार्यक्रम भी प्रारम्भ किया है। एक राष्ट्रीय थम सेवा का भी संचालन किया जा रहा है। आवश्यकता पड़ने पर इससे सदस्य प्रतिरक्षा के काम में लगाये जा सकेंगे और इससे अन्तर्-निर्गामी दुकानियाँ भी होंगी।

मेरा सुझाव है कि मानव थम संचालन परिषद की तरह की एक संस्था की स्थापना की जाय। इस परिषद के पास जनसंख्या के राज्य वार सही आँकड़े होंगे। यदि प्रादेशिक सेवा के लिए सत्ता पाछ और यह रक्षा सेवा (होमगार्ड्स) के लिए दस लाख मनुष्यों की आवश्यकता है तो वे लोग कहा उपलब्ध होंगे और उनकी कैसे जर्तों की जायगी—जादि समस्याओं का समाधान यह परिषद करेगी।

समस्याओं को सुधार रूप में बसाते रहने तथा उपयोक्तृता का विस्तार बनाये रखने के लिए सूखों की स्थिति रखना आवश्यक है। औरजागारी तथा गुनागाजीरी का कटारता से बचन करना होगा। कभी कभी घुसकनकी (राशन) तथा निज भव व्यवस्था का भी सहारा देना पड़ सकता है। इस सबके लिए प्रशासकीय परिवर्तन करने होंगे। यह भी सम्भव है कि नयी परिस्थितियों के निपटने के लिए एक नया विभाग, केन्द्रीय वित्त विभाग में एक नया अनुभाग अथवा राज्यों के वित्त विभागों में नये अनुभाग स्थापित करने पड़ें।¹²

जरूर पसूल करने वाली व्यवस्था में सुधार करना होगा जिससे बहुलवादी का काम पयावत पूरा हो सके। इससे लिए कमचारियों की संख्या में बढ़ि करनी पड़ सकती है और तब बन्धनधरिया में प्रशिक्षण की व्यवस्था करने की आवश्यकता हो सकती है। यह सम्भव है कि तब जरूर पगले पड़े, अतः प्रशासकीय व्यवस्था में और भी अधिक सुधार करने की आवश्यकता होगी।

यह प्रस्तावित है कि बजट के आकड़ा में बर्द गुनी बढ़ि होगी। हो सकता है कि पुराना आवश्यकता बजट जिसमें स्मोरे की मरमार होगी भी अब हयाथ उद्देश्य पूरा न कर पड़े। इसलिए हम कम से कम राष्ट्रीय प्रशासन के लिए 'निष्पत्ति बजट' अपनाता पड़ेगा जसकि अमेरिका में प्रथम रूपर आधीन के सिद्धांत की थी।

7 प्राचीन वैतुल्य तथा जन संचार

आधुनिक सामाजिक विज्ञान में अन्वेषकता (रिसर्च किया) की धारणा का बहुत महत्व प्राप्त है। इसलिए अब उस पुरानी धारणा को त्यागना पड़ेगा जिसने अनुसार व्यक्ति और समाज दो वृत्त सराई बानी जाती थी, जसकि अपने व स्वतंत्र व्यक्ति कोही सदाशिव विधिक है। यह उन अनिष्ट सामाजिक उत्पत्ती का सूत्ररूप है जो निरंतर धारणात्मक किया प्रतिक्रिया करते

11 वे मार्च 1962 के हैं।

12 यही यही ऐसे विभागों की स्थापना कर दी गयी है।

रहते हैं। और न समाज अक्षम्य व्यक्तिता का निमित्त मुख्य है, वह व्यक्तिपुं और समूहों के अति न्यून पारस्परिक सम्बन्धों के कारण निरन्तर बदलता रहता है। जनता एक अक्षम और अविकसित विराट् शक्ति नहीं है। उसमें अगणित व्यक्ति सम्मिश्रित होते हैं जिनके बीच निरन्तर असांख्यिक बदलाव रहते हैं। इसलिए किसी भी सामाजिक घोष में हमें अयोग्यता तथा विचारों और मान्यों के पारस्परिक आदान प्रदान के महत्व को समझना होगा।

पिछले दो सौ वर्षों के आन्दोलनिक और राजनिक क्रांतियाँ हुई हैं जिनके कारण व्यापक परिवर्तन प्राप्य की जनता की उद्देष्टित हो उठी है और अपनी स्वायत्तिका अभ्यन्ता का प्राप्य कर रही है। सत्ता-साधनों के प्रभाव के कारण यह भी सब प्रकार के विचारों और क्रांतिकारी विचार धाराओं से प्रभावित हो रही है। यदि हम आज की समाजशास्त्रीय धारणाओं की लानू करें तो हम मानना पड़ेगा कि 'आप, स्वतन्त्रता तथा सामाजिक और आर्थिक समानता की उन धारणाओं की जड़ें की आज प्राप्य बदल की जनता की अनुशासित और स्वीकृत कर रही है, उस वातावरण में है, जो वहाँ की जनता और बुद्धिजीवियों के लिए धीरे धीरे निर्मित हो रहा है।

आपों की अव्यक्त समस्याओं को समझने के लिए यथासंभव तथासांख्यिक तथा आर्थिक दृष्टिकोण की आवश्यकता है। आज यहाँ का जो रूप है उसी की आकाश मानना हमारी वास्तविक उत्तरदायिता की भले ही सहाय्य कर सके, किन्तु इसमें सन्देह नहीं है कि पारवाय्य प्रतिमान की दशात हुई हमारे गाँव लक्ष्य निर्देश है। सामुदायिक विकास से होने वाले लाभों पर कुछ अन्य वर्षों और पुराने व्यक्तिता के एकविचार बना रहा है। करोड़ों युवा लोग विकास उद्धार गांधीजी करना चाहते हैं, सभी भी अपनी दशा में रह रहे हैं।

भारतीय गाँवों की समस्याओं का समाधान करने के दो माध्य हैं। एक गांधीवादी दशन तथा रचनात्मक वाचन का माध्य है। पिछले वर्षों के अतिम राष्ट्रीय छात्री तथा छात्रीय आयोग के प्राचीन जीवन के पुनर्निर्माण के लिए गांधीवादी अवधारण की कुछ चीजों की सम्मिलितपूकक बहुत कर लिया है। सामुदायिक विकास योजनाओं में भी गांधीवादी दशन के कुछ तत्व देखने की मिलते हैं। दूसरा विकास तथा प्रविधि का उद्योग माध्य है। उसके आतपत औद्योगीकरण तथा गांधीकरण की अर्थिक महत्व दिया जाता है। बुद्धि औद्योगीकरण तथा गांधीकरण के विद्यमान से कोई विरोध नहीं है। किन्तु बुद्धि इसमें सन्देह है कि हम इस विद्यमान कार्य के लिए आवश्यक पूँजी तथा साधन जुटा सकते हैं। हमारी जनता का एक बड़ा बस अश्व-मुक्तपरी की अवस्था में रह रहा है। एसी सफल की स्थिति में यह सोचना भ्रम है कि भूतों पर कर पूँजी का लब्ध किया जा सकता है। यह सामाजिक आर्थिक परिवर्तन का प्रतिरोध करने का प्रयत्न नहीं है। किन्तु पैरा विचार है कि सीमित साधनों की इस स्थिति में बड़े पैमाने पर औद्योगीकरण तथा गांधीकरण करना सम्भव नहीं है। इस लिए हमें धीमे-धीमे एक सहाय्य विकास की माध्य से लोचना पड़ेगा जिसके आतपत औद्योगीकरण तथा दृष्टिक पुनर्निर्माण दोनों के लाभ उत्पन्न हो सकें। इसका अन्तिम यह हुआ कि औद्योगिक अवधारण तथा गांधीवादी अवधारण दोनों का मिश्रण करना पड़ेगा। जगत सभी भी गांधी में रहता है। भारतीय जनता का लगभग 75 प्रतिशत देश के बिहारे हुए 3 लाख गाँवों में रहता है। गांधीकरण की वजहों हुई प्रवृत्ति के बावजूद देश की राष्ट्रीय जनसंख्या अनेकानेक बहुत कम है। लघुक राज्य अमेरिका में 70 प्रतिशत जनता 60 बड़े नगरों में रहती है। किन्तु यद्यपि अमेरिका में छात्रीय जनसंख्या में राष्ट्रीय कमी हुई है फिर भी गांधीकरण के कारण बड़ा पूँज के सीतिहृद दलों की तुलना में ऊँच उत्पादन बहुत अधिक है। किन्तु पुनः भारत के पास आवश्यक साधन नहीं हैं इसलिए हमें आधुनिक औद्योगिक अवधारण तथा गांधीवादी-सर्वोदयी अवधारण के मिश्रण की माध्य में साधना पड़ेगी।

मेरुत्व इस बात पर आधारित होता है कि शीघ्र नेताओं को अपने से थोड़ा मानत हैं। नेताओं की थोड़ा वास्तविक भी हो सकती है और नहीं भी। मेरुत्व का लक्ष्य अनुमाई करने की क्षमता। इसके लिए दूसरों की दृष्टि शक्ति को प्रभावित करने की क्षमता की आवश्यकता होती है। गांधी-गांधी मोक्षार्थिक राज्यद्वितीय में मेरुत्व की नेतृत्व यह प्रभावित करने वाली क्षमता ही देखने की मिलती है। पर-सीधार्थिक राज्यद्वितीय में दूसरा पर आधारित जमाने तथा उसकी दृष्टिओं की

कुशलसाधन संचालित करने की क्षमता की प्रधानता रहती है। लोकतांत्रिक देशों में नेताओं तथा अनुयायियों के बीच परस्पर विश्वास आदान प्रदान भी होता है। अनुयायी अधिक सरलता से अपने नेता के पास पहुँच सकते हैं, और नेता अपने कार्यक्रम या उनके विचारों को भी समझाकर देने का प्रयत्न करता है। किन्तु समझवादी राजनीति में मानवीय आदेश तथा विश्वास के तत्वों का आभाव होता है और वे तब सत्कार के साथ तथा चारीरिक हिंसा पर आधारित होते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि लोकतांत्रिक राजनीति तथा समझवादी राजनीति की बहुल-प्रमाणी में आधारभूत अंतर होता है। किन्तु लोकतांत्रिक तथा समझवादी, दोनों प्रकार के नेताओं में प्रत्यक्षतः स्तर पर एक समानता यह होती है कि वे दोनों ही दूसरों की इच्छाओं की प्रभावित करने का प्रयत्न करते हैं, यद्यपि यह सत्य है कि समझवादी राजनीति में प्रभाव डालने की विधा भी अतः में शक्ति का रूप धारण कर लेती है, और उस शक्ति में चारीरिक हिंसा भी सम्मिलित होती है।

यदि हम नेतृत्व के सम्बन्ध में मैक्स वेबर का प्रकार-बन स्वीकार करें तो हम यह समझते हैं कि भारत के गांधी में पुरोहित तथा उच्च जातियों के लोग परम्परावादी नेतृत्व के प्रतिनिधि हैं। आधुनिक भारत में चमत्कारी नेतृत्व के भी अनेक उदाहरण हुए हैं। प्रधान-द, भिखान-द, तिलक तथा गांधी चमत्कारी नेतृत्व के उदाहरण हैं। उनके नेतृत्व का आधार नैतिक व्यक्तित्व, लक्ष्यता, तथा ईश्वर-माहात्म्य का है। अतः अथवा लोकसेवा को, जिसमें उच्च प्रशासनिक अधिकारी तथा कार्यलय कर्मचारी भी सम्मिलित होता है, बौद्धिक अथवा विधिक नेतृत्व की संज्ञा दी जा सकती है। इसकी सत्ता का आधार यह निश्चित विधि व्यवस्था है जिसे संवैधानिक रूप में दिया गया है। बौद्धिक विधिक नेतृत्व की यह व्यवस्था भारत में अभी भी है। गुप्तता का शासन का अन्त बताना-गुप्तता होता था। किन्तु ईस्ट इण्डिया कंपनी ने आधुनिक देश की नींवस्थाही का आरम्भ किया। लोकतन्त्र पर भारत का इस नींवस्थाही की सत्ता का आधार था।

सांसाधनिक विकास तथा लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण की योजनाओं के परस्परफलकारी क्षेत्रों में जिस नेतृत्व का उदय हुआ है उसके लिए बौद्धिक विधिक प्रकार का होना आवश्यक है, क्योंकि नेतृत्व निर्माण की प्रक्रिया ही ऐसी है कि उसके अन्तर्गत परम्परावादी और चमत्कारी नेतृत्व का उदय होगा अवश्य है। चमत्कारी नेता एक अति महान तथा विस्मयकारी पुरुष होता है। वह अपने व्यक्तिगत की बुद्धि तथा उद्यम के कारण दूसरों पर अपना प्रभाव डाल लेता है। ऐसा नेता सच के समक्ष इतिहास के रूप पर अवतरित होता है। उसे अनेक देवर निर्मित नहीं किया जा सकता। गाँव-स्तर के देहायी नेता से जिस छोटे प्रमाण के काम की अपेक्षा की जाती है वह चमत्कारी नेता के लिए बहुत छोटा काम होता है। परम्परावादी नेतृत्व ऐतिहासिक विचार का परिणाम होता है और उसमें जो परम्पराओं, कठिनायों और विचित्रों में हुआ करता है। इसलिए गाँव के पुनर्निर्माण के लिए जिस प्रकार के नेतृत्व की संधि करना आवश्यक है वह वेबर की भाषा में बौद्धिक विधिक प्रकार की होती है। पुनः हुए गाँव के किसी समूह में नेतृत्व के गुण का उत्पन्न करना एक सुविचारित प्रक्रिया है जिसमें बुद्धि तथा सफल की आवश्यकता पड़ती है। अतः स्पष्ट है कि नवीन नेतृत्व जिसके जनक बर आने की कल्पना की जा रही है वह बौद्धिक विधिक प्रकार की होगी। यह भी सम्भव है कि जिन लोगों के हाथों में परम्परावादी नेतृत्व या जनक सम्बद्ध कुछ व्यक्ति भी नवीन प्रकार के नेतृत्व के लिए चुनकर आ जायें। किन्तु सर्वे ऐसा होना अनिवार्य नहीं है क्योंकि नवीन क्षतिज्ञ भी बाल बर रही हैं जिनमें कारण एक-दूसरे सामने आये हैं जिनका सम्बन्ध परम्परावादी नेतृत्व धारण करने वाले समूह से नहीं है।

यह सत्य है कि गाँव के नेतृत्व के लिए सच बात यह है। गाँवों का परम्परावादी नेतृत्व की जड़ें हट गयी हैं। आज का भारतीय नवयुवक चारीरिक तथा न विचारों में निर्यात नहीं करता है। जमींदारी सामुदाय में सामंती नेतृत्व को भी अन्तर्गत दिया है, किन्तु जिस भाषा का काम अभी भी विचारों के सम्बन्ध में उनकी स्थिति स्पष्ट है और वे कुछ हद तक व्यक्तिगत रूप पर अपना नियंत्रण कायम रख सकते हैं। निर्दिष्ट लोग गाँव से जा रहे हैं, वर्तमान बौद्धिक एवं श्रम सम्बन्ध नेतृत्व की प्रदान कर सकता था, वह उपलब्ध नहीं है। राष्ट्रीय प्रशासन तथा सामुदायिक के कार्यक्रम ऐसी प्रेरणा नहीं दे रहे हैं जिससे गाँव में सामुदायिक प्रशासन का विकास हो सके।

10

जनपुत्र का अर्थ है विधित इय से सगठित मानव प्राणियों का समूह। सगठन की विधितता के कारण जनपुत्र के अन्तर्गत विविधता और विन्यास अधिक पायी जाती है। अतः व पवित्रता की कठिनाइयाँ के कारण जनपुत्रों का अस्तित्व सम्भव था। किन्तु परिवर्तन और जन संचार के आधुनिक साधनों के अधिवाशिन प्रयोग के कारण असंगठित जनपुत्र भी बहुते की अपेक्षा अधिक संगठित हो गये हैं। लेकिन जनसंचार साधनों के विकास के कारण सातक-वर्षों के लिए अपने प्रतीका का व्यापक रूप से प्रसार और विज्ञापन करना अधिक सरल हो गया है। इससे इस बात का उत्तर उत्पन्न हो गया है कि जो जनता अब तक प्रादेशिक अथवा स्थानीय जन का जीवन बिताती आयी थी वह कहीं एकरूपता का शिकार न बन जाय। यह एकरूपता कुछ हद तक सातक-वर्षों के स्वाधीन को पूरा कर सकती है, किन्तु राष्ट्र के स्वतन्त्र विरासत की दृष्टि से यह वास्तविक नहीं है। अब तक भारतीय जनता पर परम्परावादी राय देने वाले नेताओं का प्रभाव रहा है। उनमें पुरोहित, ज्योतिषी, याद के बड़े बुद्ध, ओगा आदि अधिक महत्वपूर्ण रहे हैं। किन्तु अब राज देने वाले नेता बन बैठते हैं। जो राज वाले नयरो में जाकर कुछ धन कमा लेते हैं वे राज देने इसने भी एक शतर है। प्रायः इस प्रकार के नेताओं का एक पैर गाँव में और एक शहर में रखा है। इसलिए वे मुकद्दमाओं की ओलाहल देने लगते हैं और इस प्रकार के सामाजिक मूल्यों के विपरीत का नाशक बन जात है। प्राचीन काल में धर्मोपदेशक और कथावाचक ज्ञान को फैलाने का काम किया करते थे, और राज देने वाले नेताओं के रूप में भी उनकी महत्वपूर्ण भूमिका थी। आधुनिक युग में गांधीजी तथा विनोबा ने इस पुरानी प्रथा की प्रायतः-समाप्ति के रूप में अधिक विचार विमर्श पर पुनर्जीवित करने का प्रयत्न किया है।

हम एक ऐसी कथावादी व्यवस्था का निर्माण करना हैं जो प्राचीन नेताओं के नाशक से नये विचारों की प्रभावकारी दम से फैलाने में सहायक हो सके। नवीन नेताओं में अविनम (बहुत) की क्षमता, बहुचर्चा तथा शिक्षा अपेक्षित है। न कम न कम सैद्धांतिक स्तर तक शिक्षित होने चाहिए तथा उनमें लोकतांत्रिक आधार पर राज का पुनर्निर्माण करने के आदेश के प्रति समनय की भावना का होना भी आवश्यक है।

8 निष्कर्ष

भारतीय सविधान की प्रस्तावना में स्वतन्त्रता, समानता, भ्रातृत्व तथा सामाजिक-आर्थिक न्याय पर बल दिया गया है। सविधान के तत्वीय अन्वय में लोकतन्त्र के विषय में व्यक्तिवादी दृष्टिकोण को सगठित रूप से दिया गया। इसीलिए उसमें वैयक्तिक स्वतन्त्रता समानता तथा न्यायिक अधिकारों की प्रमुखता है। पौर्वे अन्वय में राज्य के नीतिनिर्देशक सिद्धांतों का रूप में 'सामान्यता सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था की महत्व दिया गया है। इसलिए उसमें लोक या अज्ञ, दूरा विचार का उन्मूलन, जीवन स्तर का उत्थन तथा जनता के सभी वर्गों को सामान्य समुचित लाभों का समवेस दिया गया है। कल्याणकारी राज्य, समाजवादी जन का समान लोकतांत्रिक व्यवस्था आदि के आदेश भारतीय जनता की आधारभूत आवश्यकताओं को दर्शाते हैं। लोकतांत्रिक नीतिनाम का दृष्टि तथा नीतिगत उत्तरदायता की धारणा, समुदायिक जीवन का विकास करने की शिक्षा सुविधाओं में सुधार करने तथा जो जन अब तक दलित रहे हैं उनकी दशा को सुधारन का प्रयत्न किया गया है। वषास्वी राज की योजनाओं से इस बात की जनता की जाती है कि वे सचचीव से स्थापित आधारभूत लोकतन्त्र के निर्माण में सहप्रयत्न करेंगे।

किन्तु तीन सप्ताह नाम पुराणा के वास्तविक भारतीय शासतन की मापी दमक और तथा का विचार होना पड़ा है। यद्यपि हम विदेशी महामुद्रा पराजित माना में पाती हैं फिर भी हमने यह दृष्टि की थी कि लोकतन्त्र का अस्तित्व ही न्याय का अस्तित्व ही है और दृष्टि में सामान्य आर्थिक अनुपस्था का साधारण उत्पन्न हो गया है। साम्यवादी नीति के प्रसारवादी मनुष्य हस्त लिए एक अर्थ व्यवस्था का स्थापन हो सकार में अपनी प्रमुखता स्थापित करना चाहता है, और वह हितात्मक तरीका में पाँच की सचन

कैलाना चाहता है। राजनियमों तथा नीतियों के बीच लोकतांत्रिक साठपाठ भारत के विरुद्ध एक विद्रोहात्मक कदम है। इससे भारत की राष्ट्रीय प्रतिबोधिता का भारी व्यतिक्रम हुआ है। प्रजातन्त्रीय स्तर पर भी भ्रष्टाचार के आरोप लगाये जाते हैं। वसो-कसो प्रवेशवाद की विघटनकारी प्रतिबोधिता भी फिर उठाने लगती है।

चिन्तु विराधा का कोई कारण नहीं है। हमारी शक्ति का श्रोत हमारी एकता, सहिष्णुता पारस्परिक सहमायना और करुणा की परम्पराएँ हैं। वैदिक ऋषिवा और बृद्ध तथा महावीर से लेकर तुलसीदास और बिरेकानन्द तक हमारे सभी आचार्यों ने सहिष्णुता तथा 'भोजे दो' के गुणों का उपदेश दिया और वे कुछ लोकतांत्रिक आचारसौम्य के आधारभूत तत्व हैं। महात्मा गांधी ने विद्रोही आत्मन के विरुद्ध सत्य की विराधिधि के रूप में अहिंसा की प्रभावकारिता को सिद्ध कर दिया। यह सोचकर हथ होता है कि गांधीजी की विराधत सभी की हमारे साथ है और पूण्ड मुरभा नहीं गयी है।

देश में सामन्तत्व सम्प्रदाय से प्रभावित एक ऐसा सिद्धि तत्व का उदय हो रहा है जो स्वतन्त्रता, समानता, 'साध तथा मोक्ष' स्वात्मक व्यवस्था की बजाये रखने में निष्ठापूर्वक विद्रोह करता है। यह तत्व सैनिकवाद के उदय को रोक्ने में सक्षम हो सकता है।

हमारी सभी बड़ी आवश्यकता प्राप्ति है। यदि हम प्राप्तिपन्न जीवन बिना अपने ही हम लोकतांत्रिक व्यवस्था के सुदृढ़ आर्थिक आधारों का निर्माण कर सकते हैं। सामाजिक अनिश्चयता, प्रति व्यक्ति अल्पविविध निम्न आय तथा निश्चयता से उत्पन्न आर्थिक शक्तों के अतिरिक्त मुझे बाहरी सत्ता की अधिपति बिना है। चिन्तु यदि हम अपने सम्पत्तियों की नियन्त्रण से रज सके तो हम लोकतांत्रिक मांग पर अग्रसर होने में सक्षम हो सकेंगे। हम लोकतांत्रिक समाजवाद की शिक्षा में एक बड़ा प्रयोग कर रहे हैं। हम यह स्मरण रखना चाहिए कि स्वतन्त्रता एक अविनाश वस्तु है, इसलिए यदि सत्ता के किसी एक पात्र में लोकतन्त्र ने निष्कट उत्पन्न होता है तो उससे मांग की स्वतन्त्रता की संभव आपात पहुँचता है।

वर्तमान की व्यापक भारतीय जनता की लोकतांत्रिक आकांक्षा का मुख्य तत्व है। उसकी प्राप्ति निम्नलिखित चरणक्रम की दूर करके ही सम्भव हो सकती है।

(1) परिश्रम करने वाले बहुसंख्यक किसानों तथा मजदूरों के हितों की उच्चतम प्राथमिकता को जानी चाहिए। इसका अनिवार्य है कि सावजनिक क्षेत्र का अधिपतिविश्व विस्तार, निजी क्षेत्र पर अधिकाधिक नियन्त्रण, भूमिहीनों का भूमि, विराधत पर अधिकाधिक प्रतिबोध। अन्ततः में जनता का विश्वास बिगने में पाये, इसके लिए भीड़ों के गुल्मों को निर्धारित करना आवश्यक है।

(2) 14 वर्ष की आयु तक के सभी बालक प्रतिबोधों की अनिवार्य शिक्षा की जानी चाहिए। प्राथमिक तथा विरविश्वविद्यालयी शिक्षा सरली होनी चाहिए।

(3) वसावली राज की मोक्षमाया को उल्लाह तथा स्फूर्ति के साथ बर्बाद करना है और प्रातिविहीन तथा वगविहीन समाज की शासकत्व करने के लिए प्रयत्न करने हैं। 'लोकतांत्रिक विरोधीकरण' की भी मोक्षमाया, राजस्वधान, केवल तथा अन्य स्वामी में काशीषित की जा रही है उसका दूसरे क्षेत्र में भी अग्रसर बिना जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त सामुदायिक विकास परीक्षणों की सफलता के लिए अधिकाधिक प्रयत्न करने ह।

(4) अधिन तथा की स्वतन्त्र सौदास्यता का अधिनार हाना चाहिए। उन आवश्यक उद्योगों को छोड़कर जो राष्ट्र का जीवन रक्त हैं, राज्य को अन्य अधिक तथा के वापसलाप को निरविश्व करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। केवल का नियन्त्रण कृप्य सूच्यता तथा अन्य जीवन स्तर की वशीदी के आधार पर किया जाना चाहिए।

(5) सामाजिक सेवा की निष्ठा तथा ईमानदारी के साथ काम करना चाहिए। वसन्धिया से बड़ी पनपति प्राप्त करना लोक वसन्धिया की दृष्टि से बालक सम्पन्न जाना चाहिए, क्योंकि इससे पनपतियों की शक्ति बढ़ती है।

(6) देश में सामाजिक, प्रवेशवाद और प्रान्तवाद का भी लोकतांत्रिक है उसकी व्यापक रखते हुए राष्ट्रीय तथा सवैनात्मक एकीकरण पर अधिक धन दिया जाना चाहिए।

(7) मूल अधिकारों को लागू करने तथा राज्य के नीतिनिर्देशक तत्वों को कार्यान्वित करने के लिए सांविधानिक उपचार की अधिकारिता सुविधाएँ मिलनी चाहिए। जापानिक भारतीय हस्त तथा राज्य के लिए य सुविधाएँ निम्नवाचक विधिक आवश्यकताएँ मानी जानी चाहिए।

(8) वेरा एक अथ सूत्र यह है कि प्रजातन्त्रिय इकाइयों के हक में (अ) श्रम, (ब) उपज तथा विपरीतित हैं— (अ) श्रम, (ब) उपज तथा विपरीतित हैं— (अ) श्रम, (ब) उपज तथा विपरीतित हैं—

(४) येरा एक अच सुभाष यह है कि प्रशासकीय इकाइयों के ढांचे को अधिक सुविधाजनक बनाया जाना चाहिए। य इकाइया निम्नलिखित हैं—(क) ग्राम, (ख) तालुका, (ग) जिला, (घ) उपखण्ड तथा निम्नखण्ड, (च) तालुका तथा ग्राम पंचायत, तथा (छ) गांव तथा ससदीय, विधानी और स्थानीय स्तरासन के सुभाष क्षेत्र।

32

भारतीय लोकतन्त्र के लिए एक दर्शन

हजारों युग मूल्यों की सर्जित का युग है। यत्नमान काल में नौ बौद्धिक और नैतिक विभव बढ रहा है उनका मुख्य कारण बौद्धिक क्षेत्रों में व्याप्त सदेह, अनास्था और निराशा का वातावरण है। मनुष्य उन सामाजिक तथा आर्थिक दलितों का, जिसका उसे सामना करना पड रहा है, मनुष्य पितृ हन के नियन्त्रण और संचालन नहीं कर पा रहा है। परिणामस्वरूप उसे मसकर कष्ट और कष्टगर्ह भोगनी पड रही हैं। इसलिए स्वयं बुद्धि पर सदेह किया जाने लगा है। अक्षरही तथा ज्ञानीही अज्ञानविद्या का प्रबल आभासाव कृत्रिम हो रहा है और उसके स्थान पर अतर्क्यही स्वाध-वाद तथा निराशा का दृष्टिकोण पनप रहा है। भारत में इसके अतिरिक्त हम पूरा तथा पश्चिम के राजनीतिक मूल्यों के समन्वय की समस्या का भी सामना करना पड रहा है। विश्व का यत्नमान घण्ट विविध दलितों की दक्षिण परस्पर विचार और अंतर्भाविक का परिणाम है। आर्थिक अज्ञान-मज्जा तथा अभिमतवीकरण का अभाव, बहुतरणक कर्तों तथा औद्योगिकीक कालों की बाधोचित राजनीतिक आशाओं का हनन, सामाजिक सम्पेद के अचक्षेयों का विघटन होना, सामाजिक ज्ञानीजन तथा नैतिक मूल्यों के घातक बहुल में अनास्था आदि इस युग की मुख्य दलितिया हैं। ऐसे समय में राजनीतिक दलन का काम सामाजिक तथा राजनीतिक सम्पेदाओं के समाधान का गया काम बूड विकासना है। राजनीति की मरकना करने तथा उसे शक्ति और दलन रूप में पुनर्रचना का उदाहरण मानने के कोई काम नहीं होना। राजनीति शक्ति को प्राप्त करने की बुद्धि का तथा विचारविधि नहीं है, बल्कि यह राज्य की सेवा का साधन है और उसका आधार बुद्धि, आचारवैति तथा विधि है। राजनीति की मारतम परम्परा का मुख्य उद्देश्य यह तथा विभव का अनुसरण करना रहा है।

आज विश्व के सामने दो आधारभूत राजनीतिक समस्याएं हैं (1) राष्ट्रीय प्रमुख का अंतरराष्ट्रीय समाज की बगली हुई आशयनाशा और माना के साथ सम्बन्ध स्थापित करना, तथा (2) व्यक्ति की अर्ह और मूल्य का राजनीतिक सत्ता के साथ सम्बन्ध स्थापित करना।

आज विश्व में विविध विचारधाराएं हैं। कुछ मेलों से प्रेरणा लेती हैं, कुछ बाइबिल से, कुछ हेनरे से, और कुछ मार्क्स से तथा कुछ पापी से। जिन्नी लेखन अथवा विचार-सम्प्रेषण की बहुलता इसकी वैज्ञानिक परिमुद्रता पर निर्भर नहीं होती। यदि हम हेनरेवाद, मार्क्सवाद तथा आधुनिक भारतीय प्रत्यक्षवाद का आधुनिक रूप की दृष्टि से परीक्षण करें तो हम उनमें अनेक कमियाँ दिखायी देंगी, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि हम उन्हें दलन तथा राजनीतिक चिन्तन के क्षेत्र में मानव की बौद्धिक प्रतिभा का बहुल वैतिस्त्व नहीं मानते। हमारे कहने का अविश्रय केवल यह है कि कोई सिद्धांत पूरा नहीं है। मानव ज्ञान देने-खने प्रगति करता है, और कोई विचारण यह दावा नहीं कर सकता कि उसका पूरा तथा अविश्रय सत्य पर एकाधिकार है। भारत में राजनीतिक चिन्तन की एक ऐसा वैतिक दलन करने की आशाया समी चाहिए जो अंतरराष्ट्रीय समाज की बुद्धिवादों की रक्षा कर सके। उस आधुनिक अर्थमज्जा, राजनय तथा दलन-पद को पश्चित उद्घरण का साधन नहीं बनना है। उस कष्ट तथा कापी का अनुसरण करत हुए वैतिक तन्त्र

की सर्वोन्नतता पर मत देना चाहिए। उसका निर्देशन सिद्धांत परोपकारमय जीवन के तथा न उन्नतरोतर साक्षात्कृत वरणा होना चाहिए, न कि किसी राजनीतिक दल की सफलता की वरणा करना। व्यावहारिक शोध में इस प्रकार का राजनीतिक चिन्तन अनिवार्यता सामाजिक शांति व अखण्डता प्राप्त तथा समाजशास्त्रिक विज्ञान का समर्थन करना, और जब तक उद्योगों का विकास करेगा तबतक उद्देश्य मानव एकाता के आधारों की सफलतम रूप देना है।

यदि व्यक्ति की स्वतन्त्रता एक अधिपतीय पवित्र अधिकार है तो हुनैल के राज्य की न स्वतन्त्रता व सिद्धांत की स्वीकार नहीं किया जा सकता। किन्तु यदि यह मान लिया जाय कि समूह अथवा राष्ट्र का अपना प्रहसन तथा समाचारण व्यक्तित्व होता है और यह समूह समूह के व्यक्तित्व से संरक्षित होता है तो हमें हुनैल के सिद्धांत की कुछ मांगें देनी पड़ेंगी। इसका पालीवादिषा का राज्य की अवधारणाओं और फर्कपरि मनाने का प्रयत्न महत्त्व और विचार है। फिर भी कुछ क्षेत्रों में राष्ट्रीय राज्य के प्रमुख के सिद्धांत का समर्थन किया जा रहा है। लेकिन न महासत्तावादी दृष्टिकोण की जो व्याख्या की है उसके अनुसार स्वतन्त्रता के राज्यविज्ञान का मुद्दे के आधारों से पहले सम्बन्ध की अवस्था में राजनीतिक धर्म का प्रयत्न केन्द्रित करना है। पूर्व के महासत्तावादी राष्ट्रों में राष्ट्रवाद की अभी भी प्रवृत्ति प्रवृत्ति बना करती है। इन देशों में स्वतन्त्रता तथा स्वायत्त के स्वयं का मानना करने के लिए धर्म की राज्य के द्वारा में निर्देश करने का आवश्यकता है, इसके राज्य के विरुद्धवाद के दशन की कुछ समर्थन व निरूपणवादी प्राप्त हो सकता है। फिर भी विभिन्न धर्मों तथा विभिन्न समूहों के संदेशवाहक राष्ट्रीय राज्य के बड़ी राजनीतिक दृष्टि की अवस्था करत हैं, और इसलिए आज की जगह है कि हुनैल का राज्य की साम्य मानव काका विचार एक अंतर्गत की बहुत बल जायगा। इस बात की आशा है कि अन्तराष्ट्रवाद, विश्वराज्यवाद तथा साम्य एकाता के आधारों की प्रवृत्ति के साथ-साथ राज्य की प्रत्येकवादी धारणा पुरानी पर जायगी। पालीवादी का आधारकृत चिन्तन अभी भी सर्वोच्च राष्ट्रीयवाद से प्रभावित नहीं था, जबकी पूर्व प्रवृत्ति सर्वेक ही विश्वराज्यवादी की। पालीवादी न मानव एकाता पर जो बल दिखत वह राजनीतिक चिन्तन तथा व्यवहार काका के शोध में एक महत्त्वपूर्ण योगदान है।

स्वतन्त्रता मनुष्य की एक सबसे अधिक धर्म और महत्त्वपूर्ण विरासत है। यह जगह एक मुख्य लक्ष्य की है। मनुष्य समाज में उत्पन्न होता है और समाज में अपनी सम्पूर्णता स्वरुप के द्वारा उसने विकास के लिए श्रेष्ठता तथा सुविधाएँ प्रदान करता है। किन्तु समाज की विधमान व्यवस्था के अन्तर्गत स्वतन्त्रता के साक्षात्करण की मारी सम्भावनाएँ उपलब्ध नहीं हो पाती। मनुष्य के अपने साम्यवादी जीवन तथा व्यक्तित्व की साक्षात्कृत करने के लिए सामाजिक व्यवस्था के भी पर धर्म की प्रवृत्ति होती है, और यह साम्यवादी व्यवस्थाकार के विज्ञान ही अधिक निर्देश होता है जगत ही वह अधिक स्वतन्त्र हो जाता है। अतः स्वतन्त्रता के साक्षात्कृत करने की प्रवृत्ति दुहरी होती है। प्रथम स्वतन्त्रता का अर्थ है मनुष्य पर सामाजिक नैतिक और भौतिक लक्ष्य। दूसरा अधिकार है कि वह सामाजिक अर्थों का स्वतन्त्रतापूर्वक स्वीकार करने अपने व्यक्तित्व का पनीकरण करे। इस सीमा तक स्वतन्त्रता का अर्थ है समाज की सर्वोत्तम तथा परम्परागत में सम्मिलित, और अपने द्वारा सीमित होता। मनुष्य को यह हृदयगत करना है कि वह सामाजिक तथा राजनीतिक ज्ञानी है। आधुनिक साम्यवादी व्यक्तित्व के राजनीतिक तथा सामाजिक अधिकारों का समर्थन करता है, यह उचित ही है। मानववाद समाज की सुविधायक बनाने का तथा व्यवस्था कसुम के वांछित वा समर्थन करता है। यह चाहता है कि जगहों स्वतन्त्रता तथा स्वायत्तता के आधार पर परस्पर संगठित हो। किन्तु यह मनुष्य के अधिकारों की समुचित महत्त्व देने के विचार रहा है। दूसरा स्वतन्त्रता विचार की सीमा है। दूसरा अर्थ है मनुष्य की गति तथा समता का विचार जिसमें वह अपनी नैतिक तथा साम्यवादी प्रवृत्ति का सामाजिक रूप में सम्मिलित कर लेने। नैतिक तथा साम्यवादी अनुकूल राज्य तथा समाज की सीमाओं में सीमाएं नहीं रखी जा सकती। यह समाज में पर भी जा सकती है। उन्मूलन तथा वरणा, भौतिक, साम्य, धर्म, विज्ञान और दशन का चिन्तन सम्मिलित होता है। यह नैतिक गुरुता पर अधिक बल देता है। उसके धर्म, स्वतन्त्रता, धर्म तथा साम्य उल्लेख होता है। पालीवादी में साम्य जीवन के सामाजिक आधार

पर और राजनीतिज्ञ विचार-व्यवस्था के नैतिक आधार पर बल दिया और यह उचित हो पा । हैनेल तथा मानस दोनों स्वीकार करते हैं कि मनुष्य की आवश्यकता के अन्त में निहित कर स्वतन्त्रता की दुनिया में पहुँचने से पहले एक संघर्ष की अवस्था में होकर गुजरना पड़ेगा । किन्तु इस संघर्ष की पद्धति के सम्बन्ध में दोनों में मतभेद है । हैनेल राजनैतिक चाल की और मानस चाल की संरचना का माध्यम मानता है । वास्तविक स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए हमें मानव स्वार्थ की नैतिक स्वतन्त्रता की स्वीकार करना पड़ेगा अथवा एक समप्रवादी आर्थिक तथा राजनीतिक व्यवस्था के उदय का मर्म हो सकता है । ऐसी समप्रवादी व्यवस्था बुद्धिमत्त नहीं ही हो किन्तु यह मनुष्य की स्वतन्त्रता को अवश्य ही समाप्त कर देगी । आधुनिक भारत में स्वतन्त्रता के एक मूल दान की प्राप्ति के लिए ऐसा सुभाष है कि इस विषय में तीन महत्वपूर्ण चिन्तनधाराओं का सम्मेलन किया जाय — गांधीजी की नैतिक स्वतन्त्रता की धारणा, मानस की उस स्वतन्त्रता की धारणा जो प्रकृति के बौद्धिक और वैज्ञानिक विचार-व्यवस्था के उपन्यास होती है और वैयक्तिक स्वतन्त्रता की आत्म-अभिव्यक्ति की धारणा जिसका निष्पन्न मिलटन बॉक, वैंडरबल और मिल ने किया है ।

सुभाष के अनेक देशों में जिस फासीवादी तथा साम्यवादी समप्रवाद का उदय हुआ है उससे हमें महत्वपूर्ण सीख मिलती है । वेदांत ने जो कि भारतीय संस्कृति का आधार है, आध्यात्मिक व्यक्ति के चारलैतिक महत्त्व पर बल दिया है । उसके अनुसार सभी मनुष्य अपने आन्तरिक जीवन में परम आध्यात्मिक सत्ता ही हैं । किन्तु अपने ऐतिहासिक विकास के दौरान भारतीय संस्कृति में स्पष्ट व्यक्तिता की समानता का सम्पन्न किया है, क्योंकि अधिकारवाद के दार्शनिक सिद्धान्त में और व्यक्ति-व्यवस्था की बड़े-छोटे सत्तावादी प्रवृत्ति ने व्यवहार में अत्यावृत्ति के सिद्धान्त का दोष दिया है । लोकतन्त्र मनुष्य की अपनी राजनीतिक इच्छा तथा विचार का प्रयोग करने का अवसर देकर अपने व्यक्ति का उपयोग करना चाहता है । भारतीय लोकतन्त्र की सबसे बड़ी बुद्धिमत्ता यह है कि बहुसंख्यक लोग ऐसे हैं जिनके पास अपनी श्रद्धाओं के अतिरिक्त खोले की कुछ नहीं है । ऐसे लोगों की समप्रवाद अन्तर्गत सब सत्ता है । उनकी सभी सत्ताओं में वह में नाशवाद (समसामर्थ्यवाद) की भी सहज भावना उसका अनुभव हमें मिलता है कि अर्थिक सुरक्षा का अभाव मनुष्य में ऐसी मनोवृत्ति उत्पन्न कर सकता है कि वे उस से उस परिवर्तन की स्वीकार करने की इच्छा हो सकते हैं चाहे वह परिवर्तन केवल परिवर्तन के लिए हो । इसलिए हम देखते हैं कि हमारे लोकतन्त्र में अनेक कमजोर दोष हैं । यदि इन कमजोर बुद्धिमत्ताओं को ध्यान में रखकर हमने सत्ता के आध्यात्मिक लोकतन्त्र की निश्चित और साक्षात्कृत करने का अतिमात्रात्मक प्रयत्न न किया तो मुझे फासकालिक विचार, नैतिक अभावता तथा राजनीतिक अधिवासकता का जटिल निरवधारित दिया है । हमारे सामने विवेकपूर्ण आध्यात्मिक लोकतन्त्रिक दृष्टि का निर्माण तथा साक्षात्कार करने की समस्या विद्यमान है जिसका समाधान करना नितांत आवश्यक है । एक और जो हमें राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक स्वतन्त्रता और समानता के आदर्शों को महत्त्व देना है । अपने कार्य हमें गांधीजी की आन्तरिकीय परम्पराओं का शोचन करना है । यह आवश्यक है कि राजनीतिक लोकतन्त्र की समानता की निम्नलिखित तथा गांधीवादी नैतिक पुनरुत्थान के द्वारा अनुप्राणित की जाय । राजनीति में व्यक्ति तथा विचार का सामाजिक गुट विचारान रहता है । इसलिए हमें राजनीतिक जीवन की नैतिक तथा आध्यात्मिक दृष्टि में अनुप्राणित करने पर ध्यान देना है । यह तथ्य है कि ऐसा करने पर हमें निष्पक्षता करने वाला तथा कर्तव्यविहीन होने का आरोप महत्त्व पड़ता पड़ेगा, किन्तु हम इसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए । अभी तक ऐसा कोई सामाजिक अथवा राजनीतिक उपाय नहीं दिखायी देता जिससे ऐसे नागरिक उत्पन्न हिये या उन्हें निजो मन से कम 'ज्ञान' अथवा नैतिक आधार की महत्ता की बातें और जो कुसुमा करती और आन्तरिक प्रवृत्ति का मुक्त हो । राज्य साक्षात्कृत नैतिक सार नहीं है, बल्कि कि हैनेल का मत है, किन्तु यह 'निज' मर्म रितो के विकास के लिए आवश्यक परिस्थितियों का निर्माण कर सकता है और जहाँ मानव अपने बाली पाषाणों की दूर कर सकता है । अपने देश के ऐतिहासिक विकास का ध्यान में रखते हुए मैं इस बात पर बल देता कि लोकतन्त्र के सुव्यवस्थित आधारों की सुरक्षा में निज का भी नैतिक विकास का अनुसरण करना चाहिए । किन्तु नैतिक सुव्यवस्था का यह दाय

करना चाहिए, न कि राज्य को। लोकतांत्रिक राज्य में राजनीतिक शाय तथा नियम के बहुत केन्द्र होते हैं, इसलिए यह आवश्यक है कि जिन साम्राजा विषय क्षेत्रों पर विचारण भूमिका नग करनी पड़ती है उनका नतिक परिवर्तन आवश्यक है। जोरा निर्वाचन मतसंवादी समाजवाद इस दश में सफल नहीं हो सकता। उस प्रकार का समाजवाद पाश्चात्य पूँजीवाद के सभी दोषों की पुनरा वृत्ति करता। जोरा लोकतांत्रिक अधूरा है, जोरा आचारनीति सामाजिक दृष्टि से दृष्टिहीन होती है, और समल समाजवाद तथा क्रिस्टिअन मजदूर दल ने इस की समाजवादी लोकतांत्रिक राजनीति में पक्षित नतिव यति नहीं होती। इसलिए समाजवाद के शाय के शब्दों में लिए लोकतांत्रिक, समाजवाद तथा मार्क्सवाद के समाज की आवश्यकता है। यदि राजनीति का शाय में आधिक शाय तथा मार्क्सवादी आचारनीति का मुह जोर दिया जाय तो जहाँ भारत तथा विश्व की कुछ तराजित समसाम्राजा का समाधान हो सकता है।

परिशिष्ट 1

भारतीय स्वातन्त्र्य-आन्दोलन

1 सन 1857 का महान् स्वातन्त्र्य संग्राम

हमने अपने जीवन कात में स्वतन्त्रता का सपना किया, उसके मधुर कलौ का स्वास्वाद लिया, समुक्त भारतीय आराध और प्रभुक्त भारतीय धरती पर विचरना किया और एक विशिष्ट-तर अधिपत्य की कल्पना से हृषारत हृदय उत्पन्न है। जिस महान् यज्ञ का प्रारम्भ सन 1857 में हुआ, 1947 में उसकी पूर्णावृत्ति हुई। इस यज्ञ का सूत्रपात करने वाले और सनातनियों को हम प्रभाव करते हैं। तब-तब राष्ट्रीय जीवन में सामाजिकता, प्रभाव, सौचित्य और परामर्श का आरम्भ होता है, तब-तब देश भस्मी की वाधाओं से भोज और शक्ति प्राप्त कर हम फिर सत्य-यश पर आसक्त होते हैं। कलम का सतत अनुलेखन करने में हमें सबसे महापुरुषों की जीवन वाधाओं से मदद मिलती है। इसी की विभूति पूजा करते हैं। नमस्स्वीत्या में कहा है —

पराश्रिभूतिभ्यः कृत्य धीमहिः
सत्त्वैवाकवन्तः स मम तेजोऽस्य सम्भवम् ॥ (10/41)

राष्ट्रीय जीवन के प्रवाह की अवतिष्ठत तथा निरवधिधन करने और रखने के लिए विभूति-पूजा परम आवश्यक है। अपने शुद्ध स्वामी का हृदन कर परमाय, देशवक्ति, सदाचार की सत्ताओं करने के लिए जिन बीरा ने अपना बलिदान दिया है वे सभी विभूतियाँ हैं। भारतीय की सती लक्ष्मी-बाई, नानासाहेब, सात्वा दीने, कृष्ण सिंह और अन्य नेताओं की विभूतियाँ की ओरों में आते हैं।

सन 1757 से ही भारतवर्ष के राष्ट्रीय परामर्श का सूत्रपात हुआ। पलायनों की लड़ाई और कलसर की लड़ाई में अंग्रेजों की विजय हुई। 1761 के द्वितीय पानीपत के युद्ध के बाद मराठों की शक्ति भी कमजोर हुई। यद्यपि महादजी शिंदे, बाबा अन्नबाई, हैदर अली, टीपू सुल्तान आदि ने बड़ी योग्यता और वीरता से देश की शक्ति का संचयन की चेष्टा की, तथापि राष्ट्रीय परामर्श का यश बाद में ही लगा। केवलज्ञा और उसहीनी की नीति की सफलता से देश दिन भर दिन अधोगति की ओर जाता रहा। किन्तु ना परामर्श और अन्ध का पतन उस पतन भय के किंचित् आशिराई रूप में। इस सन्निध राजनीतिक परामर्श से देश मुसामी की जखीर में बंध गया था। इस जखीर को तोड़ने के लिए एक अवसर आसीन हुआ। उस आसरे में हम भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम का प्रथम अवसर प्राप्त करने लगे हैं।

सन 1857 के आन्दोलन के अनेक कारण थे। राजनीतिक दृष्टि से अंग्रेजों का प्रभाव दिन-पर-दिन बढ़ता जा रहा था। मराठों की पराजय देश की बड़ी क्षति थी, क्योंकि प्रायः देश की सभी से जो एक विशिष्ट राजनीतिक शक्ति देश में पायी रही थी उसका अन्त हो गया। मसूर की राजनीतिक दृष्टि से सम्पाद ही था। विपत्ति ने भी परामर्श परीक्षित कर भी था। अष्टाध्य, राजनीतिक पतन और उसके प्रजनित विषाद देश में आशु हृदयों की बर्षा कर रहा था।

आर्थिक दृष्टि से भी देश कमजोर हो गया था। व्यापार का नष्ट हो व्यवसाय बड़ी क्षती से नष्ट किया गया था। वाणिज्य की कोई बड़ती नहीं हो रही थी। अंग्रेज देश में उद्योग का विकास नहीं चाहते थे। व्यापार की उत्पन्नता भूमि अन्तर्गत के कारण किसानों की भूमि नष्ट रही

साधुनिष्ठ-भारतीय राजनीतिक विचार
 थी। अथवा वे तात्तुवेदारा की जमींदारी दीवरी की कमी थी और अथवा मैं भी इनका हनीयन न
 णिय न अनुसार अन्तर्गत की दुस्वर्ती सम्पत्ति न ही कमी थी। इस प्रकार, साधुनिष्ठ
 बारव भी दम्भ न साथ और रोष या उन्मत्त स्वाभाविक था।
 अथवा की साधारणतया अन्तर्गत विचार के कारण
 शनवी रूप न बड़े रही थी। एक, दूसरा
 बरती या भी प्रस्ताव न ही। एक, दूसरा

[illegible][illegible]

कृषि सरकारी लेखक और भवेज इतिहासकार इस आलोचन को सामंतवादी (Feudal) आलोचन कहते हैं। यह ठीक है कि कुछ विप्लव और अन्यायिक सामंतव्यवस्था इस युग में मौजूद थी। लेकिन भारत में सामंतवादी व्यवस्था की उत्पत्ति और विकास के पीछे मुख्य कारण यह थे, इसाहाबाद और नजदक के कानून के अनुसार, जमीन के मालिकों को किसानों से जमीन के बदले में धान और अन्य फसलों के कुछ हिस्से देना पड़ता था। इस व्यवस्था के अभाव में किसानों को अपने धान और अन्य फसलों को बाजार में बेचना पड़ता था, जो कि बहुत कम कीमत पर होता था। इसलिए किसानों को अपने धान और अन्य फसलों को मालिकों को बेचना पड़ता था, जो कि बहुत अधिक कीमत पर होता था। इस व्यवस्था के अभाव में किसानों को अपने धान और अन्य फसलों को मालिकों को बेचना पड़ता था, जो कि बहुत अधिक कीमत पर होता था।

मैं मानता हूँ कि इस आन्दोलन और युद्ध के पीछे कोई विशिष्ट राजनीतिक दमक नहीं था। इसके पीछे मात्र स्वतन्त्रता का वाई घोषणा-पत्र नहीं था। वह भी ठीक है कि व्यक्ति का स्वतन्त्रता का भी कोई तथ्य इसमें नहीं था। लेकिन, हमने कहा कि क्रांतिकारी दमक नहीं था। प्रजातन्त्र और समाजवाद के अभाव में भी राष्ट्रीयता का मन उपोत्पन्न और बढ़ता ही जाता है। युग और प्रभाव की नीति हमने भी राष्ट्रीयता को पुष्ट करने वाला विचार प्रस्तावना नहीं था। साहस की शक्ति से लेकर अनाहारी शक्ति तक के राष्ट्रीय आन्दोलन

एतन्म और राजतन्त्र की अवधानता में चलते रहे। फ्रांस की राज्य शक्ति के बाद ही राष्ट्रवाद और प्रजातन्त्र का सम्बन्ध स्पष्ट हुआ। अतएव, प्रजातन्त्र की उद्घाषणा के बिना ही राष्ट्रवाद फल गवता था। यह ठीक है कि जिन कारणों से राष्ट्रीय एकाता होती है—उदाहरणार्थ भाषा, धर्म, नस्ल आदि की एकाता—उनका कारण व अभाव था। राष्ट्रवाद के विशेषात्मक पक्ष का स्पष्ट करने वाली शक्ति—एथिनायन बरम्परा के निर्यान्विद्ध प्रवाह व जन-जमूह का भाग लेना—का भी उस समय अभाव था। लेकिन राष्ट्रवाद का विशेषात्मक पक्ष, अन्ततः विदेशी के प्रति झोढ़ एवं आन्दोलन में अन्तर्गत था। अतएव, पहला चाहिए कि देशभक्ति का यह विराट प्रदर्शन आधुनिक समाजशास्त्र की दृष्टि से राष्ट्रीय न होते हुए भी व्यापक अर्थ में राष्ट्रीय था, क्योंकि इनमें एक 'वय मायना' सम्मान थी।

इस युद्ध का हम अनेक पिछाई ग्रहण करते हैं। हम राष्ट्रीय एकाता के मूल में वैधाना है। यदि निवेद्य, दुरंगे और निषिद्ध न अनेका की मध्य में ही होती, तो साम्य भारतीय इतिहास का एक दूसरा होता। मगदल का अन्तर्गत, भारतीय राजनीति का प्रथम अन्विष्टान है। तेजस्वी और विरक्षण तथा भी सामाजिक और राजनीतिक मगदल के अन्तर्गत व प्रगु हो जाती है। अतएव हम भारतीय म भावू भावना दणकी है। दूसरी और हम अपनी दृष्टि की व्यापक बनाया है। सत्कार की अनेका हम नहीं करती है। विधान, उद्घात और तन्त्र की शक्ति की धारण करना है। 1857 के युद्ध में सामाजिक तथा और जातीय की दृष्टि से अनेक हमारे अधिन शक्तिशाली थे। इस सभी की दूर करना चाहिए। दशार्थकारी राजनीति व 'विद्या धर्हि' की नीति से काम नहीं चल सकता। हमें सत्कार के साथ पहचान होना। नाना माहव और अन्वीमुष्ठा का ने यूरोप में चलने वाले वैमिद्ध के युद्ध का प्रथम उद्घात करण में आन्दोलन करना शुरू किया था। निस्संदेह यह राजनीतिक युद्ध का अन्तर्गत था। इस प्रवृत्ति का और दृढ़ करना होता।

1857 के स्वातन्त्र्य-आन्दोलन का स्वरूप करते हुए हम शक्तियोग की साधना करती है। हम अपने देश के इतिहास पर व्याप्त देना है। अपने स्वातन्त्र्य के अधिग्रहण के लिए मूल्य काय लेना है। अधिग्रहण, धर्म, साधना, धर्म, अन्तर्गत, देशभक्ति, मगदल एवं वादी के राष्ट्रीय जीवन की परिचुष्ट करता है। हमें तेजस्वी उद्घातार्थी और मद्दीना की भाषा से सत्कार नहीं करना है बल्कि अपने जीवन की उन्माद्यय, विधान, तेजस्वी बनाने का भाग धारण करना है। स्वतन्त्रता तथा विधान काय है। इसकी धारण करने के लिए सभी शक्ति लक्ष्य करती है। सभी हम अपने के विजयी बन सकते हैं।

2 भारत में स्वातन्त्र्य आन्दोलन का प्रथम युग (1858-1885)

राष्ट्रवाद के पीछे एक महती भावना काम कर रही है। सम्प्रदाय, संस्कृति, धर्म भाषा, ऐतिहासिक स्मृति के सहित जन-जमूह के अन्दर एकीभाव का उद्घात होता है। जब इस एकाता की राजनीतिक आत्म निवेद्य के अधिग्रहण का प्रस्ताव और माहव हम मानते हैं, तो राष्ट्रवाद का जन्म होता है। युद्ध व माहविक पुनरुत्थान (Renaissance) के साथ साथ धार्मिक स्वातन्त्रता का भी जन्म हुआ पन्द्रवी सताब्दी के ही यूरोप में एक नये समाज का निर्माण होने लगा। इस नये समाज के मूलभूत दो कारण थे—(क) धार्मिक स्वातन्त्र्य के फलस्वरूप सम्बन्धित वैज्ञानिक शक्ति का बरम्परा के साथ हुए धर्म और धर्म की सम्बन्धित शक्ति के विरोध में खड़ा हुआ। (ख) यूरोपीय के विधान के साथ साथ एक नव आधिपत्य का जन्म जो व्यापार और यूरोपीय के सहारे अपनी शक्ति का वय से बना रहा था। राष्ट्रवाद का पहला रूप इंग्लैण्ड, फ्रांस स्पेन तथा हालैण्ड के अन्दर व्यक्त हुआ। अन्तर्गत सताब्दी के अन्त में राष्ट्रीय भावना का प्रवर्धन देश विदेश के राजयोग के प्रति अनुरक्ति और शक्ति व प्रकट होता था। फ्रांस की राज्य शक्ति के बाद के पीछे ही राष्ट्रवाद का जन्म था एक रूप व्यक्त होने लगा।

सातत्य व देशभक्ति की भावना सभी आनीन है। पोरन, पांडुरूप मीम, आरसेम, सादगुप्त, राष्ट्रकृत लक्ष्मण, महाराजा प्रताप, विधानी आदि महान देशभक्त भारत में ही बना हुए हैं। निवेद्य, देशभक्ति की यह भावना राष्ट्रवाद की भावना व युद्ध विजय है। जब सारे देश के अन्दर

रखने वाले निराश्रितों की अथवा राजनीतिक मान्य नियम करने का अधिकार है—इस प्रकार का विचार स्वीकृत होता है। तब हम राष्ट्रवाद का स्वयं वर्णन करते हैं। जब तक देश का एक दुर्लभ मिश्रणों की बाहुर निवास कर स्वयं घातक-मृत्यु देण म पेशता है तब तक हम नहीं परराष्ट्रवाद का मानना गही देगते, यद्यपि बहुत देशमक्ति की मानना सतमान है। भारतीय राष्ट्रवाद का सात्व है—मनुष्य आरत इस एक है, इस प्रकार की मर की मानना का होता। माना, जब तक इस प्रकार की विविधताका व मानना जब हम यह कहते हैं कि भारत भारत एक है और इसी निराश्रितों की अथवा मान्य नियम स्वयं करने का अधिकार, तब नहीं मानना राष्ट्रवाद की मानना नहीं आ सकती है। इस प्रकार की राष्ट्रमान्यता मुख्यतः आरक्षण म आधुनिक मान म उत्पन्न हुई। एग राजिशासी विदेशी साम्राज्य का मानना करने के लिए ही भारतजन व नेताका ने राष्ट्रवाद के मान की अहम निमा।

अन्धेरा के भारत म मान्यन के बाद से ही दिग्गुह समय, उनही और भारतीय क्षतिमा व बीच होते रहे। अन्धरह ती सत्तमय व आन्दोलन के बाद ईस्ट इण्डिया कम्पनी के माने इंग्लैण की साम्राणी और पारिवासेक के अधिकार के अन्तम आरक्षण आ गया, किन्तु इससे देश के अन्तर पूरी क्षति नहीं हुई। और और राष्ट्रीय एकता का संदेश सुनन मया और अन्त के मन 1947 म भारतजन एक स्वायत्त राष्ट्र हो गया। अन्धरह ती सत्तमय के बाद के राष्ट्रीय आन्दोलन व प्रथम युग का तीन भाग के बाँटा जा सकता है—(क) भारतीय मुफार आन्दोलन, (ख) भारतजन म आधुनिक सत्तमय का विनाश, (ग) अन्धरह ती अहमय के केर अधिकार भारतीय कर्मि का मानना तब की राजनीतिक यत्नार्थ।

(क) पश्चिमी सत्तमय और सत्तमय के क्षतिमा म मान कर भारतीय मन और आधुनिक सत्तमय का फिर के उत्थान हुआ। साम्राज्यवाद, पुत्रीवाद और पश्चिम विमान के आधार पर स्थापित पश्चिमी सत्तमय के बाद और प्रविपाल के भारतीय केशात और कर्मयोग की भारत फिर म आपन हुई। उपनिषद् और अहंतावाद के आधुनिक आधार पर समोहन राम न अहंतामान की मानना की। अहंतामान के द्वारा अहंता मानात्मिक मुफार का मया प्रभाव हुआ, यद्यपि यह मुख्यतः ब्रह्म राम ही सीमित था। समोहन राम उच्छकोटि के मानवतावी के। इनके मानवता के ही इनकी राष्ट्रवादी मानना या और युरोप के मतमान राष्ट्रवादी आन्दोलनों के सम इसकी क्षतिम सत्तमय की। यद्यपि बहुत सत्तमय कोई राजनीतिक आन्दोलन न कर सका, तथापि इसम माने नही कि मानवमय के, केमानय आहुत, एकीकृतय आहुत, विजयकृष्ण मानवामी, भारतीय पत्र और आदि भारत के मनुष्यजन इसकी सिमाका के पुन प्रभावित के और भारतीय सत्तमय की मानना मानाकर अन्तम और अन्तमय मन म इन माना व राष्ट्रवाद का मुफार निमा है, इसम कोई इन्कार नहीं कर सकता।

आम-समाज के सम्मानन स्वामी दयानन्द सरस्वती अहंता राष्ट्रमयी के। भारतजन म प्रथमिन सामाजिक और पारिवा मुफारिमा के विरोध म आन्दोलन करता भी उनके द्वारा अहंता आम समाज के मानवता म एक था। देश प्रेम स्वामी दयानन्द म खुन भरा हुआ था। प्राचीन मानों की आधुनिक और पारिवा कर्मिमा से इनकी विमान आरक्षण की प्राप्ति हुई थी। पश्चिमी भारत की यह माने केर कि समूचे देश म वैदिक आम-सत्तमय का प्रकार और प्रकार ही दयानन्द न एक क्षतिकारी काम किया। आधिक और राजनीतिक इति म पीठित भारतजन की सामाजिक और वैदिक उत्थन का की अहंतामान स्वामी दयानन्द के विचार, उनसे निम्न-देह भारतजन म एक समूचे राष्ट्रवाद की बीच नहीं और इसी इति से ऐसी केर और अहंतामान नहीं व की स्वामी दयानन्द के राष्ट्रीय मन की स्वीकार किया है। इतिहासविद्या काहीमानद मानवताका व स्वामी दयानन्द की उद्दीष्टनी सामाजी का समूचे आन्दोलन कहा है। योमी अरविन्द के विचार म स्वामी दयानन्द के वैदिक अनुमानका के की एक राष्ट्रीय प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। मनुष्य कला कर रोमा रोमा न माना है कि जिस दिन कासी के अहंता विद्वत् सत्तमय व नह व स्वामी दयानन्द ने यह मानना की कि 'यह पवन का अधिकार यह अहंता मनमान मानना का है' इस विचार भारतीय इतिहासकारण म नहीं स्वतन्त्र के मानों का उत्थन हुआ। आमन्तर विचार म आम-सत्तमय

का उत्थप हो, भारतीयों ने बच-से इस आत्म-न्यायकी याचनान्तर स्थापित हो, इस प्रकार की अन्तिम भाषा स्वामी दयानन्द के महानुक्त 'महात्म्यप्रकाश' में मिलती है। और, इसीलिए प्रसिद्ध लेखक साधु टी एल बालगोपी ने आलोचक के इस भूतन चक्रवर्तन, पर प्रयत्न किया, की सम्भवता की है।

(ग) भारत के सन् 1851 के ही बहुत ही सत्ताओं का जन्म हुआ, जिन्होंने देश में सामाजिक जीवन की नींव रखी। सन् 1857 के क्रांतिकारियों ने ब्रिटिश इण्डियन एसोसिएशन की स्थापना हुई। उसी के अवधान में डा. राजेन्द्र प्रसाद मिश्र ने अपना सांस्कृतिक अनुसंधान कार्य किया। बम्बई एसोसिएशन की स्थापना काया भाई नैरोजी ने की थी। ब्रिटिश में सामाजिक सेवा का कार्यक्रम मुहम्मद एमर और मुहम्मद के नेतृत्व में आरम्भ हुआ। पुना में श्रीमती ने द्वारा एक समाजवादी गरी, जिसका नाम था 'सांस्कृतिक समाज' और इसी के अवधान में राजाजी तथा विप्लवकार और पीछे चल कर तिलक और गोखले जैसे व्यक्ति काम करते रहे। 1876 में क्रांतिकारियों ने इण्डियन एसोसिएशन की स्थापना हुई, जिसमें मुख्य व्यक्ति गुरुदत्ताजी बनर्जी और जगन्नाथ गोखले समेत थे। सन् 1881 में महात्मा महात्म्य-प्रकाश की स्थापना हुई। जनवरी 1885 में बम्बई प्रेसीडेन्सी एसोसिएशन कायम किया गया। इस प्रकार हम देखते हैं कि कांग्रेस की स्थापना के पूर्व ही देश में सामाजिक जीवन विकसित हो रहा था, यद्यपि वह अभी कमजोर और गूँथ संचित नहीं था। 1857 के क्रांतिकारियों से अधिक बलवत्तर निकलते थे, जिनमें से अधिकांश प्राचीन भाषाभाषी थे।

(घ) 1857 के आन्दोलन के बाद देश में क्रांतिकारिता बढ़ती चली गयी। अंग्रेजों और भारतवासी के बीच खाई बढ़ती जा रही थी। स्वतंत्रता की नींव के कारण जो असंतोष फैला था वह अभी शांत नहीं हुआ था। लाहौर के प्रक्रियाओं का मतलब था देश के अन्दर असंतोष बहुत अधिक बढ़ गया। ब्रिटिश के कारणों से बहुत उत्तेजन पाया गया था। बिना किसी उचित कारण के उसने कायम पर आक्रमण किया, जिससे दूसरा अवधान मुक्त हो गया। 1878 में बम्बईकर प्रेस एक्ट बनाकर उसने भारतीय समाचारपत्रों की शक्ति को अतिक्रमण करने का प्रयत्न किया। इस के बाद का प्रभाव एक अवास्तविक शोका लाया और उसने मेला के ऊपर जो बहुत बड़ा प्रभाव डाला। भारतीयों को 'आत्म-वैयक्तिक' बनाकर निष्ठा करने का उसने प्रयत्न किया। लगातार के चुनौतियों का सामना करने के लिए उसने 1877 में क्रांतिकारियों को बल दिया। 1877 में महात्मा बनर्जी का उत्थप किया गया। 1878 में गुरुदत्ताजी बनर्जी ने बम्बई और महात्मा की भाषा की। लाहौर के मतलब में भारतीयों को बलिदान करने के लिए उन्होंने अपनी भाषाओं में मुद्राभाषा के पीछे भाग दिया और इस विषय पर, ब्रिटिश क्रांतिकारियों में देश करने के लिए, साहस दिया और से एक स्वरण बन गया था। और, इस कार्य में सफलता भी मिली।

ब्रिटिश का उत्तराधिकारी लाहौर रिपन था, जो ब्रिटिश प्रधान मंत्री ग्लेडस्टोन ने द्वारा चुना गया था। ग्लेडस्टोन की ऐसी योजना थी कि भारतीयों को उत्तम-व्यवस्था पर लाने के लिए ही उन्हें भारत में रह सकते हैं। रिपन ईमानदार और उदार व्यक्ति था। उसने अफगानिस्तान के अमीर के साथ मुलाकात कर लिया। बम्बईकर प्रेस एक्ट को रद्द कर तथा स्थानीय स्वतंत्र-प्रशासकों का आरम्भ कर भारतीयों को इतिहास में रिपन ने एक नया युग स्थापित किया। इसका मतलब था कि यह समय दीर्घ नहीं था। जब भारतवर्ष का जनमत भारतीय सरकार का भाविक बन जायेगा। 1883 में 'इण्डियन किल' उपस्थित किया गया। इस विषय के अनुसार, हिन्दुस्तानी मजिस्ट्रेटों पर से यह एकादश कि वे लोक-प्रियता के मुद्दों में वापस नहीं कर सकते के हट जायेंगे। क्रांतिकारियों पर आधारित 'यंग मन्मथी प्रेस' की हत्या के लिए यह विषय एक महान् प्रमाण था। किन्तु, ग्लेडस्टोन ने इस पर ध्यान नहीं दिया। भारत में यह एक हुआ कि बिना मजिस्ट्रेटों का दौरा कर (यहाँ के हिन्दुस्तानी ही या यूरोपीय) ने सामान्य भाषा को स्थापित कर, पूरी द्वारा, जिसमें अपने यूरोपीय होने, अपने मुद्दों की मुलाकात कर सकते थे। किन्तु इस तरह की सहायक हिन्दुस्तानीयों की नहीं भाषा थी और इस सम्बन्ध की भाषा में बिल का मुख्य उद्देश्य ही गलत हो गया। इण्डियन किल के अन्त में जो क्रांतिकारिता बढ़ा, उसमें

कभी आपसी बढ़ता पत्नी । विविध हिन्दुस्तानियों ने ऊपर दत्त अलग-अलग से क्या सद्मा पहुँचा ।
मित्रों इस समय के कारण भारतीय सम्प्रदाय अविश्व कष्ट और मनचुड़ ही बना ।

1883 में जनसभा ने अलग-थलग होकर एक राजनीतिक परिषद् की स्थापना की गयी। इस परिषद् में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और आनन्द मोहन बसु सम्मिलित थे। इस परिषद् ने हांग कोंग को एक नया क्रायस् और गवर्नर प्रोत्तुष्ट हुई। 1884 में जनसभा ने जनसंघ परिषद् आवागमन हट और इस प्रकार अखिल भारतीय कांग्रेस की सन्स्थापना प्रथमचिन तैयार हुई।

1883 में ऐलन ओनस्टाइन जर्मन में, जिन्होंने विद्युत का उत्पन्न शक्ति की खोज-पथ दे दिया था, कलकत्ता विदेशविद्यालय में स्थायी रूप से एक वर्ष बिताया। यह वर्ष स्मरणीय है और भारत में राष्ट्रवादी आंदोलन पर बड़ा प्रभाव डालता है। इस वर्ष में उन्होंने विज्ञापन—“प्रधान राष्ट्र हीन हीन बैसी ही सरकार प्राप्त कर लेता है जिसमें वह मान्य होता है।” जर्मन ने बताया कि जाति-भक्तिवाद और निस्वार्थता ही सुख और स्वातंत्र्य के पथ प्रदान हैं। उन्होंने अपने पत्र में बताया कि, सत्य और निस्वार्थ, आत्मसमर्पण ही रास्ता ही मान की थी। इसी वादवादी-प्रभाव का कारण है भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म मग 1885 में हुआ जिसकी स्थापना के भारतीय राष्ट्रवाद का एक मजबूत और तेजस्वी मध्यम बन गया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि समाज-सुधार-आंदोलन, सामाजिक जीवन का विकास और शिक्षित समाज की कुछ जागृताह्वी के विरुद्ध प्रतिनिधित्व, इन तीन कारणों व समन्वित परिणाम का फल है—एक सफल देशव्यापी राष्ट्रीय आंदोलन का जन्म। सम्भव ही, राष्ट्रवाद निम्न राष्ट्रीय मनोवृत्ति है और अनेक प्रकार की विचारधाराओं व समन्वित उद्योग का फल इसमें हम देख सकते हैं।

१ भारतीय स्वातन्त्र्य-युद्ध में अहिंसा का योगदान

नाटि मौलिक और सामूहिक परिवर्तन को कहते हैं। यद्यपि यह संस्कृत भाषा का शब्द है और संस्कृत-साहित्य में इसका अर्थ होता है—यस्य अस्मादिभ्यो प्रपञ्च, आगमन आदि, तथापि आधुनिक भारतीय साहित्य में इस शब्द से वही अर्थ व्यक्त किया जाता है जो यूरोपीय साहित्य में रेवोल्यूशन (Revolution) शब्द से। जब जब तीव्र ऋण में और आधुनिक परिवर्तन होता है तब-तब हम कहते हैं कि नाटि हुई। अन्धकार की राज्यशक्ति और काम की राज्यशक्ति के बीचो-बीच नाटिक कारण विद्यमान था। कल की राज्यशक्ति मुख्य आविर्भावमान पर हुई थी। इन तीनों की स्फूर्तिवत् राज्यशक्ति के बीचो-बीच नाटिक मानव-जीवा का राज्य था।

यसमि नाति सीध भौतिक और सामुहिक परिवर्तन की वृत्ति है, तयानि हिला नाति की क्षम्यवक अंग नही है। इसलए ये सन् 1688 की नाति रक्तहीन की (Bloodless Glorious Revolution)। बनी-बनी नातिकारी परिवर्तन थोरे थोरे होत है किन्तु जनका सामुहिक प्रभाव बडा व्यापक होत है। उदाहरणार्थ, अष्टाहरी छताब्दी की औद्योगिक नाति। युरोप व ग्राम पन्नास से सी कम तक का यानियन उत्पन्न के क्षेत्र व परिवर्तन हुए, यह हम औद्योगिक नाति कहत है। थोरे थोरे की नाति हो सक्ती है, इसका यह एव नका अन्तर्गत है।

वाचित अनेक कारणां मध्येही आहे। जगात ते वाचित के घटोत्तरात्मिक-आदिम काळाची सीमास्था समजे व स रिपब्लिक (Republic) मध्ये आहे। मानव-आदिम तथा सामाजिक काळाचा इतिहास असतो ते विद्या आहे। अनेक प्राय दलन दृष्टिगता (Poverty of Philosophy) मध्ये आद्य ते वाचित्र्य वाचिताचे प्रभाव वा उत्तेजन विद्या आहे। नविष्ठ प्राय ते प्रथम अर्थ मध्ये मध्ये आदिम वाचिताचे वाचित्र्याची प्रभाव या विषय विवेचन विद्या आहे।

[illegible]

भारत की स्वातन्त्र्य चार्ति पुनः तो नहीं, किन्तु अधिकांशतः अहिंसक थी। सन् 1857 के भारतीय मे एक महान् आन्दोलन हुआ। अंग्रेजी साम्राज्य के साथ संगठित हिंस्रतात्मक युद्ध का यह अंतिम उदाहरण था। तथापि सन् 1857 के बाद भी छिद्रयुद्ध कुछ दिनों बराबर होती रही। सन् 1876 में बालुदेव पटके ने हिंसात्मक द्रोह किया। सन् 1897 में पूना का प्रसिद्ध हत्याकाण्ड हुआ जिसमें रत और एमरट की हत्या हुई। 1908 में और उसी बाद भारतीय आतंकवाद का उष्य रूप प्रकट हुआ। नासिक में हुआ हुई। मुम्बईकरपुर में बन फौज गया। पहले विश्वयुद्ध में अमेरिका में एक बरर पार्टी बनी, जो भारत में समर्थन चार्ति के लिए कुछ बलकल प्रयत्न कर सकी। 1920 के बाद भी बल-शर हिंसा का प्रयोग होता रहा। 1942 में भी हिंसा का आधम किया गया। नेताजी सुभाष का आन्दोलन भी हिंसा में विश्वास करता था। और भी कुछ उदाहरण हिंसा के समर्थन और प्रयोग के दिये जा सकते हैं।

किन्तु, इन उदाहरणों के बावजूद यह कहना यथाथ है कि भारत की राजनीतिक चार्ति अधिकांशतः अहिंसात्मक थी। इससे अहिंसक होने के तीन प्रधान कारण थे—(क) अंग्रेजी साम्राज्य में भारतीयों को अत्यन्त शक्ति दे रहित कर दिया था। उद्योग और विज्ञान की चार्ति से शर्मावत अंग्रेजी साम्राज्य के सामने भारतीयों की हिंसात्मक चार्ति प्रायः कुछ भी नहीं थी। यदि वे हिंसा का आधम करते तो अति वीर्य कुशल और पोष दिये जा सकते थे। (ख) यद्यपि भारतीय संस्कृति में समदुष्ट और अत्यन्त का सम्पन किया गया है, तथापि औरविषद् और प्रयुक्त लीन, वीर्य और वीर्य-संस्कृति में अहिंसा का विशेष महत्त्व है। स्वभावतः अब भारतीय जनता शांतिप्रिय हो गयी है। अतः अहिंसात्मक चार्ति का तथैव इस जनता की अपनी संस्कृति का एक महान् सन्देश प्रकट हुआ। (ग) महारमा गांधी का व्यक्तिगत अहिंसक चार्ति के उद्यम और शांति का एक महत्त्वपूर्ण कारण था। महारमा की सत्य और अहिंसा के अमर्त्यन पुकारे थे। अहिंसा अपने लिए सीति नहीं, यथ था। भारतीय राजनीतिक सफलता के द्वारा वे विश्व के सामने अहिंसा के विराट सामाजिक और राजनीतिक रूप का प्रवटीकरण करना चाहते थे।

इस वैदार्थिक विवेचन के बाद हम भारतीय अहिंसक चार्ति की ऐतिहासिक आलोचना करते। कांग्रेस की स्थापना सन् 1885 में हुई। इसके पहले ही सामाजिक और धार्मिक सुधार का पूनपाठ ब्रह्मसमाज, आयसंवाज और प्राचना-समाज के प्रचार के हो गया था। बंगाल में सुरद्रनाथ बनर्जी, बम्बई और इन्दौर में दादा नाई गोरोजी और महाराष्ट्र में बाल कथापर तिलक की अपना राजनीतिक और शिक्षा-सम्बन्धी आन्दोलन प्रारम्भ कर चके थे। कांग्रेस की स्थापना से राजनीतिक प्रयत्न को, आशिव रूप में हो रही, केन्द्रित करने में सहायित हुई। 1885 से 1904 तक कांग्रेस तिलक कावेदन पर और निवेदन की नीति का आधम लेती रही। 1905 में बन मय के प्रस की लेकर कुछ गणजी आजी और लोकमान्य तिलक ने नेतृत्व में स्वराज्य, स्वदेशी, राष्ट्रीय शिक्षा और अहिंसक के बहु सूची की कांग्रेस में स्वीकृत किया। यह ठीक है कि तिलक अहिंसा के पून पक्षपाती नहीं थे। बिनाली के द्वारा भी सभी अक्षलता की हत्या का, पीछा के दार्शनिक आधार पर, बहाने समर्थन किया था। यह ठीक है कि नरम दल ने नेताभा—करोरदाह नेहता, पीनालकृष्ण गोखले, सुरद्रनाथ बनर्जी—ने संवैधानिक आन्दोलन (Constitutional Agitation) का उद्देश्य प्रकट किया था, तथापि यह भी ठीक है कि कथापवादी तिलक भारत की एकाकीन परिस्थिति में हिंसात्मक आन्दोलन का समर्थन नहीं करते थे। 1916 में तिलक और मोरट के मृत्यु में हाय-कल लीग की स्थापना हुई और इस लीग के प्रचार से निम्नवर्ग की जनता की सहानुभूति की कांग्रेस के काम और साधारणतया राजनीतिक काम के प्रति हुई। 1919 में तिलक पिनापत में थे और वहाँ उन्होंने ब्रिटिश नेबर पार्टी (मजदूर-दल) के साथ राजनीतिक वीची स्थापित की, जो बाला नगर में आत्मजायी चिट्ट हुई, क्योंकि इसी दल ने अन्तरीया 1947 में भारत का स्वतन्त्रता प्रदान की।

सन् 1920 में, तिलक के देहावसान के बाद, महारमा गांधी देश का समर्थक बला हुए। यद्यपि गांधीजी गोखले की अपना राजनीतिक गुरु मानते थे, तथापि व्यावहारिक राजनीति में उनकी अहिंसात्मक साधनयुक्त नीति, नरम दल की ही बला, नरम दल की नीति से भी अधि-

उप थी। यद्यपि गांधीजी समा और धार्मिक के सभी गुणगरी थे, तथापि दलित अमीरा के समान आंदोलन (1908-1914), चम्पारन में नीलहा के विरुद्ध सत्याग्रह (1917) तथा देश के सत्याग्रह में उन्होंने दिया दिया था कि अयोग्यता की कानून का विरोध में आना की आजी समाज में कल में समा है। दायमिद हटि में सिलका वृक्ष अहिंसक नहीं थे और गांधीजी वृक्ष अहिंसक व तथापि व्यावहारिक राजनीति की दृष्टि से सिलका की कानून की सीमा में अन्दर ही आंदोलन करना चाहते थे, किन्तु गांधीजी अयोग्यता की कानूनों के सविनय अहिंसक विरोध का वृक्ष समर्थन करते थे।

1920 में ब्रह्म हत्याकाण्ड और विद्रोह के अयोग्यता का विरोध करने के लिए असहयोग आंदोलन का आरम्भ हुआ। यद्यपि चौरी चौरा के हिंसाकाण्ड से दुखी होकर 1922 में गांधीजी ने असहयोग-आंदोलन बंद कर दिया, तथापि इस आंदोलन से देश में एक अभूतपूर्व राजनीतिक जागरण हुआ। 1922 से 1924 तक गांधीजी जेल में थे। 1924 से 1928 तक उन्होंने अपना समय कायम कर रखा। 1929 में वे अमरावती में एक के राष्ट्रीयता में और गांधीजी का आंदोलन प्रारंभ कर चौरी में काहौर में भारत के लिए वृक्ष स्वतंत्रता का प्रस्ताव पेश किया। 1907 में बोली अरविन्द के अपने देश में एक महाराष्ट्र के राष्ट्रियता में 1907-1909 में वृक्ष स्वतंत्रता की पक्ष की थी। उन 1929 में देश की राष्ट्रीयता काहौर में वृक्ष स्वतंत्रता की अपना विद्रोह स्वयं बनाया। 1930 में नगर-सत्याग्रह का आंदोलन हुआ। 1920-1922 की अयोग्यता अधिक सली और बहाई के सरकार में इस समय आंदोलन का समाप्ति की चेष्टा की, किन्तु आंदोलन बहा ही गया। 1931 में गांधीजी वृक्ष स्वतंत्रता के अयोग्यता गांधीजी काहौर में एकान प्रतिनिधि होकर विचारित गये। 1932 में गांधीजी ने हिंसा की हिंदू समाज से राजनीतिक दृष्टि से वृक्ष विचारित गये का (मिज निर्वाचन का) आरम्भ समर्थन कर विचारित किया। 1934 में सविनय अवज्ञा आंदोलन बंद किया गया। इसी वर्ष गांधीजी काहौर में अलग होकर रचनात्मक समर्थन के द्वारा देश को समर्थन और समर्थन करने लगे। 1937 में काहौर में भारत प्रांती में मा समर्थन बनाया, जो 1939 में विश्वयुद्ध दिवस पर बिना भारतीय अलग की वृक्ष भारत की की युद्ध में समर्थन कर देने की अयोग्यता समर्थन की नीति के विरोध में व्यापक देकर हुआ किया गया। 1940 में व्यक्तिगत सत्याग्रह का आंदोलन किया। 1942 में महाराष्ट्र गांधी ने 'अयोग्यता भारत छोड़ो' (Quit India) के महामान का समर्थन किया। 1942 की भारत विद्रोही और अमानुषता से दवापी सभी वृक्ष समर्थन करना कठिन है। इसी समय नेताजी सुभाष अपने भारतीय राष्ट्रीय संघ दल (I N A) का समर्थन कर रहे थे। इस दल का कार्य भारत की हिंसात्मक नीति के समर्थन करने का प्रयास था। नेपात्र की तराई में अयोग्यता समर्थन में अपना आग्रह करता बनाया। 1945 में भारत और अयोग्यता राज्य के बीच समर्थन शुरू हुए। 1947 में 15 अगस्त को महान् राष्ट्रीय वग की वृक्षहिंसा हुई। देश स्वतंत्र हुआ।

उप थी। यद्यपि गांधीजी समा और शांति के चरम दुवारे थे, तथापि आन्दोलन (1908-1914), अम्बेडकर की विरुद्ध सत्याग्रह (1) में उद्घाटन दिया गया था कि अस्वाभाविक कानून का विरोध में प्रयास हो तैयार थे। आधुनिक दृष्टि से विचारका मूल अहितर नही थे भी-तथापि व्यावहारिक राजनीति की दृष्टि से विचारकी कानून की नीति का चारित्र्य था, किन्तु गांधीजी अस्वाभाविक कानून के सविनय अहिंसात्मक करता थे।

1920 में प्रथम हायाग्राह और विचारका के अस्वाभाविक का विरोध आन्दोलन का आरम्भ हुआ। यद्यपि चोरी चोरी से विचारका के दुपरी हो न अस्वाभाविक-आन्दोलन चरम कर दिया, तथापि इन आन्दोलन से इस में एक आवरण हुआ। 1922 से 1924 तक गांधीजी जेल में थे। 1924 से 1925 तक वास्तव में चरम दिया। 1929 में प्रथम अस्वाभाविक विचारका राष्ट्रियता का आधिकारिक प्रमाण कर वास्तव में आन्दोलन का चरम के लिए चुन स्वतंत्रता का प्रमाण 1907 में घोषित कर दिया न अपने विचारों में तथा कानूनका के वास्तविकता का 190, स्वतंत्रता की नीति की थी। का 1929 में देश की स्वतंत्रता राजनीतिक प्रमाण के गुण की अपेक्षा निश्चित रूप बनाया। 1930 में प्रथम अस्वाभाविक का आन्दोलन हुआ। 1931 की अपेक्षा अधिक सख्ती और कड़ाई से सरकार ने इस समय आन्दोलन का दवाने की चेष्टा किन्तु आन्दोलन चरम हो गया। 1931 में गांधीजी इतिहास समझने के चरमस्थान प्रतिनिधि होकर विचारका गये। 1932 में गांधीजी ने इतिहास की द्वितीय समझ राजनीतिक दृष्टि से चुन विचार करने का (मिथ विचारका का) आन्दोलन अस्वाभाविक कर विरोध किया। 1934 में सविनय अस्वाभाविक आन्दोलन चरम दिया गया। इसी वर्ष गांधीजी वास्तव से अस्वाभाविक होकर चरमस्थान का प्रमाण के हाथ देन की चरमस्थान और उद्धार चरम का। 1937 में वास्तव में प्रमाण का चरमस्थान बनाया, जो 1939 में विचारका द्वितीय चरम, बिना भारतीय जनता की भारत की नीति के चरमस्थान कर देने की अस्वाभाविक का नीति के विरोध में अस्वाभाविक हुआ किया गया। 1940 में अस्वाभाविक सत्याग्रह का आन्दोलन दिया। 1942 में महात्मा गांधी 'अस्वाभाविक भारत छोड़ो' (Quit India) के चरमस्थान का उद्धारका दिया। 1942 की विचारका और अस्वाभाविकता से दवाने की चरमस्थान चरम करता कहिन है। इसी समय अपने भारतीय राष्ट्रिय नीति का (I N A) का चरमस्थान कर रहे थे। इन चरम का की विचारका नीति से स्वतंत्रता चरम का प्रमाण था। चरम की चरमस्थान का चरमस्थान अस्वाभाविक चरम बनाया। 1945 में भारत और अस्वाभाविक राज्य के बीच समझौते 1947 में 15 अस्वाभाविक की महात्मा राष्ट्रिय चरम की चरमस्थान हुई। देश स्वतंत्र हुआ।

कि अधिकांश जनता धीरे-धीरे समझा वे रहकर छाया की ही राह मानती है। किन्तु, कोई विद्वान् ही ज्ञानरूप का दस्तक देने की इच्छा करता है। कठोरनिषद व भी कहा गया है कि कोई धीरे-धीरे सामाजिक काम चाल से आत्मतन्त्र होकर धर्म का अनुसंधान करता है। अन्वेषणपरम्परा और दृष्टि बलिक का त्याग कर लक्ष्य की निर्दिष्ट धुरंधरा पर आत्मप्रतिपादित विषय का विश्लेषण करना दयानन्द का काम था। शायद एक हजार वर्षों से भारतीय मूर्खता इतिहास में सकल ज्ञान का त्याग परम्परावाद ने ले लिया था। लोग धारणा की पकड़े तो थे, किन्तु दृष्टि विषय पर आलोचनात्मक बुद्धि से निगम नहीं करते थे। भारतीय अध्यात्म परम्परा में आलोचनात्मक तन्त्र का त्याग बुद्धि का प्रयोग करना भी स्वामी दयानन्द का महान् राष्ट्रीय काम है। मध्ययुगीन भारत में ज्ञान और टीका करने की प्रणाली मजबूत हो गयी थी। ज्ञान, प्रमाण और पवित्रता रखते-रखते कल्पना का समय बसाव होता था। दण्डी विरचानन्दजी ने दयानन्द को नृत्य आनन्दों की पकड़ का उद्घाटन दिया। मूलतः को पकड़े से अल्प समय में अनेक विषयों का पारदर्शी गान हो जाता है। गिनक न भी लिखा है कि जब गीता के अनेक भाष्यों को उन्होंने बक्ते में बाँट कर दिया और मूल गीता को ही अनेक आबलिखा की और उसका गहन चिन्तन किया तो उन्हें एक जलम्ब विनयान और नूतन युद्धम मूल गीता से प्राप्त हुआ। आधुनिक भारतीय विश्वविद्यालयों में दयानन्द और राजनीतिज्ञान पढ़ने वाले विद्वानों मूल मूलतः का अध्ययन कर करते हैं। ज्ञान साधारण जना द्वारा लिखित गीत प्रकी और देशमूढ प्रकी से सुनना मान प्राप्त कर लेते हैं। जब वे 'पुष्पा' के शोधनिका विश्वविद्यालय और शिक्षण विश्वविद्यालय में अध्ययन करता था, तो उस समय ज्ञान दयानन्द के बताए हुए मार्ग का भ्रम करी सम्भव था था। अमरीका के विश्वविद्यालय में डाक्टरेट की डिग्री प्राप्त करने का एक प की उपाधि के लिए भी मौलिक प्रकाश का अध्ययन अनिवार्य है। हेल्स साहसी ने भी लिखा है कि राजनीतिज्ञान का ज्ञान प्राप्त करने का सबसे अच्छा उपाय है कि मौलिक विचारों के प की का गहरा अनुसंधान हो। बर्देन रसत न भी दयानन्द का गान प्राप्त करने के लिए मौलिक पुस्तकों का स्वाध्याय आवश्यक समझा है। शायद वे ज्ञान प्रकाश की पक्ष मूल ज्ञान दयानन्द ने समझ लिया था कि माया का ही सम्भव मानना बड़ी भूल है। समझ बता रहा है कि ज्ञान की दृष्टि बिल्ली मूल और अन्त प्रवेदिनी थी। जब हम अनेक भाषा और प्रकाश-प्रकाश को पकड़े है तब हमारी बुद्धि की मौलिकता बन्द हो जाती है। मौलिक प्रकाश से ज्ञान प्रकाश निमज्जता और ज्ञानवी प्राप्त होती है वह तबका मजहबीय है। देना को हम प्रकाश प्रकाश का मार्ग दिताकर स्वामी दयानन्द ने महान् राष्ट्रीय काम किया है। ज्ञान प्रकाश और राष्ट्र मज्जता की जीत और तेज की प्राप्ति को निम्न देने वाले आधुनिक ज्ञान के श्रेष्ठ प्रकाश का गान प्राप्त हो, ज्ञान का ऐसा विचार विमुक्त अन्त में राष्ट्रीय है। थोड़ा और अल्प का ऐसा विचार था कि ज्ञान में प्रेरित करने वाले साहित्य का ही अध्ययन करता है। निम्न अधिवादिता है। होमर का साहित्य देवताओं के सम्बन्ध में विमुक्त करते रहता है अन्त ज्ञान राष्ट्र रचना न मानन प्रति विचार में अस्तुत हो जाती, इसलिए होमर और होमोपेट के मनुष्य कादम्बर के अधिवादिता का भी मोहो न प्रकाश मानन रहा। स्वामी दयानन्द द्वारा अस्तुत प्रकाश के मज्जता का प्रकाश प्रकाश मानुष, अज्ञानु लोका के हृदय पर चोट बट्टाता है किन्तु यहाँ भी विचारणीय है कि क्या होमर प्रति नम स्वभाव के मानना के द्वारा में ज्ञान साहित्य का रचना अच्छा है जिनमें ज्ञान प्रकाश विमुक्त हो जाती ? क्या यह मान नहीं कि होमर प्रकाश-साहित्य में दयानन्द के सम्बन्ध में अन्त अन्तने वाली वाली नहीं करी हैं ? यह दीन है कि अनेक पौराणिक माया का राष्ट्रवादात्मक आत्म-परमात्ममूलक अन्त मानना ज्ञान सत्ता है। ज्ञान की राजनीति का आधुनिक ज्ञान अन्त विज्ञान ने स्वीकृत किया है। किन्तु हम प्रकाश का ज्ञान ज्ञान मानना के लिए निम्न है। ज्ञान अधिवादिता में स्वयं हम ज्ञान का विरोधी हैं कि आत्म-परमात्म विवेकन मौलिक स्वी-प्रकाश का प्रकाश के द्वारा बलिता हो। क्या परमात्मविवेकन का अन्त ज्ञान-मान प्रकाश नहीं विज्ञान करता ? अन्त स्वामी दयानन्द ने जो प्रकाश के प्रमाण और अज्ञान का विवेकन किया है, ज्ञान की अज्ञान ज्ञान की राष्ट्रवादिता की दृष्टि का ज्ञान ज्ञान है। देना और ज्ञान की अज्ञान प्रकाश के अनुसार, विचार की जाती में अधिवादिता और प्रकाश की अधिवादिता का

हृदीयता अवस्थित है। अपने स्वयं और अधिकारों की रक्षा के लिए मौलिक बल आवश्यक है। तपस्वी का मजबूत शरीर आत्मबल की भी उत्पत्ति करता है। आरोग्यपूर्ण शरीर ही बहुत कम बलाओं को सहित करने में सक्षम हो सकता है। जो कुछ भी कष्ट या शक्तिशाली है, प्रथम है, दीपकालावस्था है वह शीघ्र, शीघ्र, तब शीघ्र बचने का प्रयास है। प्राचीन भारत में शक्ति की पूर्ण उत्पत्ति की जाती थी। राम और कृष्ण हिन्दुओं के आदर्श मंदारपुत्र हैं। अधिकतर जनता उन्हें अवधारणा तक मानती है। विष्णु, एक ही शक्ति या भी आत्मबल का पूर्ण विस्तार प्राप्त करता है। यह भारत काय में इस शक्तिपूर्ण का पूर्ण आत्महस्तिक रूप ही देखते हैं। जब इस देश में अत्यन्त पोषा और प्राथमिक काय की उत्पत्ति हुई, तब यह देश पराक्रम की प्राप्ति हुआ। जब मुसलमानों का आक्रमण वहाँ पर हुआ तब समय कलक मुसलमानों के लिए जो राजपूत, महारथ और निराला बलशक्तता में प्रवृत्त हुए, वे इसी कारण ऐसा कर सकते कि उनका शरीर भारत के अन्तःशक्ति की उत्पत्ति बनकर था। भारत के राजनिर्माण में स्वयं शरीर को उत्पन्न करने पर बल दिया है। वे जानते थे कि कमजोर और विपुलता नागरिकों से राष्ट्र की रक्षा नहीं हो सकती थी। स्वामी कला के जो अन्तर्गत मिलते हैं उनमें एक आत्मनिष्ठा और अधिकारी के सन्तुष्टि प्रदान के बिना दिया देते हैं। यह इसी और शीघ्रही अन्तर्गत की इच्छा की वला के समुदाय में ही हम हृदीयता का अविच्छिन्न निराला है। शरीर की शक्तियों में एक महान् शक्ति है प्रवृत्त गमना है कि शरीर की उत्पत्ति करने वाले नागरिक और राष्ट्र कदाचित् अत्यन्त शक्ति या नहीं मिल सकते। अन्तर्गत न ही हम समय की समझ या कि 'शरीरवाद में मनुष्य प्रवृत्त'। शरीर की उत्पत्ति करने के कारण ही मुसलमान विचारों का केवल प्रवृत्त रूप की अत्यन्त में देशव्यवस्था ही गया। उपनिषद् में कहा है कि शरीर अविच्छिन्न भाव है और अत्यन्तकला है कि इसकी मजबूत और सुरक्षित रक्षा काय। अन्तर्गत, स्वामी दयानन्द जब सभाधि लवाते थे जो फिर सभाधि में उनमें पर दोह भी लगाते थे। जब वे प्रचार काय में आए तो अनेक लोगों ने देखा कि उन पर शरीर-शरीर के आत्मबल दिने। विष्णु, बल के समान शरीर रखने वाला महर्षि का भी विचारित न हुआ। कर्मसिद्धि में प्रवृत्त में पर हीकर स्वामी के ऊपर एक प्रवृत्त प्रवृत्त 'बल' विष्णु स्वामी ने उनके रूप में लवाकर हीकर लवाया। जब स्वामीजी प्रचार काय में लवाते 'चलने के ही शीघ्रही मजबूत की भी उनके साथ साथ चलने में हीकर लवाया था। अपनी आत्मबला 'अत्यन्त काय का पवित्र' में स्वामी दयानन्द ने स्वीकार किया है कि अपनी स्वामी के दिवा में भी मनुष्य के साथ चलने में एक पर हीकर लवाये। शरीर काय की इस प्रकार सामना कर महर्षि ने 'आत्मबल राष्ट्र के मजबूतों के प्रवृत्त के लिए एक आत्मबल केवली उदाहरण प्रवृत्त किया है। इस देश के गुलाब शक्तिपूर्ण बाले पूर्ण को ही इस और काय की शक्ति होने का आत्मबल और प्रवृत्त में अपना समय पेशाते हैं। इस प्रकार के लोगों के लिए महर्षि का अत्यन्त एक महत्त्व प्रदान और शीघ्र ही उत्पन्न करता है। अन्तर्गत निर्माणा के समान, दयानन्द ने केवल काय प्रवृत्त, आत्मबलादिमाय प्रवृत्त आदि अपने अन्तर्गत की मजबूत शक्ति करने का उपदेश ही नहीं दिया, बल्कि उसे जीवन में विचारित भी किया। शरीर काय के उपर अत्यन्त 'अधि दयानन्द का एक विशिष्ट राष्ट्र-निर्माण मूल्य प्रवृत्त है।

महर्षि दयानन्द ने दशरथजी के माय-माय बन्नाजीय और विराय जी की आराधना की थी । वेद और व्याकरण ने वे महान् बलिष्ठ थे । दशरथ विद्वान्द वारणसी में उन्होंने व्याकरण का अध्ययन किया था । दशरथजी के आग्रह सेरथी शिष्यों ने दयानन्द जी काव्यग्रन्थ से । यदिक बाद-मम या दयानन्द या अग्रप्राण्य अधिकार था । सम्प्रदाय-साहित्य पर अवशिष्ट नति रहने के कारण सांभोव जनता साधारण पाकर या दयानन्द की बुद्धि न करती है । स्वामीजी की अध्ययनशीलता की दो विशेषताएँ थी । प्रथम, व प्रतिदिन काय ज्ञान का स्वाध्याय करती थे । अतः, वेदादि सन्तुषा ने विविध स्थल उद्गु सदा उपलब्ध मिलते थे । सामान्य करने में प्रमाण के सदा सतिष्ठान में उपलब्ध रहने से उद्गु कदा सहायता मिलती थी । द्वितीय, व बुद्धि और चिन्तन के द्वारा वाक्य का परीक्षण करते थे । उनको बुद्धि यही शीक्षण थी । विचारन के दिन या उद्गु विचारधुति ने ऊपर चले की चक्रे देखकर विस्मित हो, उनके चक्षुषि ने अनुसन्धान का कल सिखा, कदा प्रमादित जाता है कि परम्परा प्राप्त पद वा वे अनुपपन्न नहीं बनता पाठ्य है । ऐसी व दयानन्द 'वैदिक' में कहा गया है

कि अधिकांश जगत् की ओर उमिदा मे रहकर छाया की ही सत्य मानती है। किन्तु, कोई विद्वान् ही ज्ञानभूषण का दशन करने की इच्छा करता है। कठोपनिषद् में भी कहा गया है कि कोई भीरु जन हो साधारण वाम-भोग के आनन्दबन्धु होकर भोग का अनुसन्धान करता है। अधवेष्टुनरत्नरा और कठि चक्ति का त्याग कर तत्काल की निमित्त क्षुरम्भारा पर साधनप्रतिपादित विभवों का विश्लेषण करके दयानन्द का काम था। ज्ञान एक हजार वर्षों से भारतीय बौद्धिक इतिहास में तत्कालीन ज्ञान का स्थान परम्परावाद ने से लिया था। सीधे राजनीति की चट्टे ती थे, किन्तु पठित विषया पर आकाशमारुह बुद्धि से निगम नहो करते थे। भारतीय अध्ययन परम्परा में आलोचनात्मक तत्कालीन बुद्धि का अभाव करना भी स्वामी दयानन्द का महान् राष्ट्रीय काम है। मध्ययुगीन भारत में भाष्य और टीका पढ़ने की प्रथाओं मजबूत हो गयी थी। भाष्य, प्रमाण्य और पञ्चिका रटते रटते मनुष्य का समय बर्बाद होता था। दम्भी विद्वान्-दम्भी ने दयानन्द की मूल भाष्य प्रथा की पढ़ने का बन्धन दिया। मूलग्रन्थों की पढ़ने से अल्प समय में अनेक विषया का पारदर्शी ज्ञान हो जाता है। जितन न भी लिया है कि जब गीता के अनेक भाष्यों की चाहने बर्षों में बन्द कर दिया और मूल गीता की ही अनेक आवृत्तियाँ की और इसका महान् चिन्तन किया तो यह एक अव्यक्त मिलनान और मूलन प्रकाश मूल गीता में प्राप्त हुआ। आजकल भारतीय विश्वविद्यालयों में दशनशास्त्र और राजनीतिशास्त्र पढ़ने वाले विद्यार्थी मूल दृष्टिकोण का अध्ययन कम करते हैं। आप साधारण जनों द्वारा लिखित गीत प्रथा और दृष्टिकोण प्रथा से सूचना प्राप्त कर लेते हैं। जब मैं प्रकाश के काव्यमय विश्वविद्यालय और शिक्षाओं विश्वविद्यालय में अध्ययन करता था, तो उस समय जूनि दयानन्द के बताए हुए माग का मम मेरी सम्मत् में आया। अमरीका के विश्वविद्यालय में डाक्टरेट की डिग्री प्राप्त करने का एम. ए. की उपाधि के लिए भी मौलिक ग्रन्थों का अध्ययन अनिवार्य है। हरण छात्री ने भी लिखा है कि राजनीतिशास्त्र का ज्ञान प्राप्त करने का सम्बन्ध प्रकाश है कि मौलिक विचारकों के ग्रन्थों का महान् अनुसन्धान हो। वर्टन रखत में भी दशन शास्त्र का ज्ञान प्राप्त करने के लिए मौलिक पुस्तकों का स्वाध्याय आवश्यक समझा है। आज के ज्ञान पचासी वर्ष पूर्व जूनि दयानन्द ने समझ लिया था कि भाष्यों का ही समस्त मानना बड़ी भूल है। समय बड़ा रहा है कि जूनि की दृष्टि कितनी सूक्ष्म और अन्त प्रवेशिनी थी। जब हम अनेक भाष्यों और सूचना-ग्रन्थों की पढ़ते हैं तब हमारी बुद्धि की मौलिकता मन्द हो जाती है। मौलिक ग्रन्थों से जो एक विचारों निष्कर्षता और साक्ष्यी प्राप्त होती है वह समस्त बचहृषीक है। देश को इस प्रकार कच्ची गिना का मार्ग दिखाकर स्वामी दयानन्द ने महान् राष्ट्रीय काम किया है। जागी वास्तविकता और राष्ट्र-मन्त्रालय की ओर और देश की प्रगति की विज्ञा देने वाले आप-वास्तविक के अन्त ग्रन्थों का ज्ञान प्राप्त हो, जूनि का देश विचार विमुक्त अर्थ में राष्ट्रीय है। ऐन्दो और सरसू का ऐसा विचार का नि शास्त्र में प्रेरित करने वाले वास्तविक का ही अध्ययन वास्तविक के लिए अनिवार्य है। होमर का वास्तविक दयानन्द के ग्रन्थ में विस्तृत वर्णन कहा है, अतः जागी राष्ट्र रक्षण के सामने महिष्ठ विचार न प्रस्तुत हो जायें इसलिए होमर और हेरोडास के संपूर्ण वाद पक्ष के पहिष्ठिकरण का भी ऐन्दो न प्रस्ताव सामने रखा। स्वामी दयानन्द द्वारा प्रस्तुत पुस्तकों के अध्ययन का प्रस्ताव कुछ वास्तव, अज्ञात सीधों के हृदय पर पोट पहुँचाता है किन्तु यह भी विचारणीय है कि क्या मौलिक-महिष्ठ नाम स्वभाव के वास्तविक के हृदय में उस वास्तविक की रचना अच्छा है जिसका ज्ञान वास्तविक विस्तृत हो जायें ? क्या यह सत्य नहीं कि हमारे पुनर् वास्तविक में देशवासी के ग्रन्थ में अनेक अन्तर्गत वाली वर्तों कही गयी हैं ? यह लोक है कि अनेक बौद्धिक वास्तविक का राष्ट्र-वास्तविक ज्ञान-परमात्मामूलक अर्थ समझाया जा सकता है। जूनि की वास्तविकता का अध्ययन वास्तविक अनेक विज्ञा ने स्वीकृत किया है। किन्तु इस प्रकार का ज्ञान ज्ञान प्राप्त करने के लिए किष्ट है। हमने वास्तविक में स्वयं इस बात का विरोधी हैं कि वास्तव-परमात्मक विवेक बौद्धिक स्वी-पुनर् वास्तविक के द्वारा वक्त हो। क्या परमात्मिक विवेक का अन्त तत्कालीन माध्यम नहीं मिल सकता ? अतः स्वामी दयानन्द ने जो ग्रन्थों के प्रमाण्य और अज्ञानान्य का विवेक किया है, ज्ञान की समस्त ज्ञानी राष्ट्रप्रतिपादित दृष्टि का हमें वर्णन होता है। देश और वास्तव की वास्तव-पञ्चता के अनुसार, विस्तार की वास्तव में आर्थिक परिवर्तन और संशोधन की वास्तव-पञ्चता का

मुक्त अन्तर्गत थीर था। बीच विवाह के महापरिनिर्वाण भूषण में बताया है कि नरककाल में महात्मा बुद्ध पुनः भोजन और स्निग्धता से। शांति और सम्मोह तब से वे युक्त थे। इससे मान्य पड़ता है कि सम्भवतः अन्तर्गतकाली बुद्ध को भी निजी विशिष्ट शक्ति का उपयोग अवगत हुई थी।

अन्यथा आत्मिक उन्नयन के जीवन-मार्ग आलोचित होता है और विकट परिस्थितियों के भी सामना कठिनपण्य रहता है। इसी आत्मिक उन्नति के कारण ही स्वामी दयानन्द जैसे प्रबोधकों और तथा कत ठुकरा और कुचल सके। आत्मज्ञान के अभाव में बहुवार और अस्मिता के आविष्ट हो मनुष्य मोह, लालच, विषय वासना और लोभ में लिप्त हो जाता है। इस कारण इसके व्यक्तिगत में निम्नता (Schizophrenia) फैलायी पड़ती है। जीवन की समग्रता का उसे बोध नहीं रहता। मन्त्रा आत्मज्ञान नहीं है जो विशिष्ट शक्तियों के अपने जीवन की अनुप्राणित और संचालित करता है। आत्मिक जीवन की वास्तविकता का शायद सबसे बड़ा प्रमाण मानव जीवन में आत्मबोध-प्रवृत्ति का उत्तर के द्वारा व्यक्त होता है। यदि आत्मिक जीवन उत्तम न होता तो भवविषय, हिंसा-निष्ठ, शत्रु, विषयनिष्ठ, लालच, भोगी आदि कदापि महात्मा नहीं बन सकते। तुलसीदास, महात्मा गांधी और अज्ञानन्द का जीवन तथा भारत के विरले इतिहास के वास्तविकता का जीवन इसकी प्रमाणित करता है कि आत्मिक जीवन उत्तम है। आत्मज्ञान द्वारा का जीवन में का शांति, जो स्वयं और विज्ञान सामर्थ्य है वह अत्यन्त बलवत् नहीं प्राप्त हो सकता। आत्मज्ञान द्वारा कभी भी शक्ति और स्वयं में नहीं फँस सकता। वह अपने के विज्ञानतर बल के साथ एकतात्मकता प्राप्त करता है। यदि उसने स्वयं और अन्तर का राष्ट्र या जगत के स्वयं में लक्ष्य होना तो वह मन्त्रा अन्तरात्मा द्वारा अन्तर्गतकाली स्वयं द्वारा देगा और मन्त्रा पुनः की और अस्मिता करेगा। जगत में एकता, समता और उन्मत्तकाली नाशकाली का प्रतीकण ही उसके जीवन का एकमात्र काम ही जाता है। यदि ऐसा आत्मज्ञान द्वारा उत्पन्न हो तो इसके राष्ट्र प्राप्त हो जाता है। राष्ट्रीय जीवन के सम्पूर्ण परिवर्तन के लिए अन्तर्गत का उत्पन्न आवश्यक है। वैज्ञानिक, आधुनिक, शक्ति आदि के जीवन में इसी अन्तर्गतकाली के द्वारा व्यक्त अन्तर्गतकाली का आवश्यकता हुआ है। यदि दयानन्द का आत्मिक जीवन हमारी सामाजिक और राष्ट्रीय उन्नति के मार्ग का द्वार अन्तर्गत करता है। जब तक हम आत्मिक जीवन का, आत्मिक ही नहीं, बोध नहीं होता है तब तक हम अन्तर्गत, अन्तर्गत और स्वयं-साधन में उत्तर नहीं उठ सकते। और, वह निश्चित है कि आत्मिक व्यक्तित्व में अन्तर्गत, अन्तर्गत और स्वयं साधन के बलवान रहने पर ही ही राष्ट्रीय जीवन बलवत् सिद्ध नहीं हो सकता। अतः, स्वामी दयानन्द का आत्मिक जीवन, न केवल मनुष्य के साथ पाने का, बल्कि सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन में शक्ति साधन के अनुप्रेषण का मार्ग भी हमारे सामने स्पष्टता में व्यक्त करता है। मौखिक साधन पर परिपूर्ण होकर ही राष्ट्रवाद एक मनोवैज्ञानिक और सामाजिक वृत्ति है। सांस्कृतिक सामर्थ्यता के राष्ट्रवाद परिपूर्ण होता है, निरुद्ध इस आध्यात्मिक बल और सामाजिक बल के निर्मित आत्मज्ञान का बोध आवश्यक है। मनुष्य में कहा जाता है—

मनु सर्वानि भूतापत्यवेद्यानुभवति ।

एवमुक्तेषु चारमान सती न विचिन्तयति ॥

अस्मिन् सर्वाणि भूतानि आत्मीयापुनर्विज्ञानतः ।

तत्र नो बोधः कः बोधः एकत्वमनुभवतः ॥ [यजुर्वेद, 40/67]

स्पष्ट है कि आत्मज्ञान का निश्चित सांसारिक परिणाम है—सर्वभूतों के कल्याण की आशा पना। सर्वभूतकल्याणवाद के मार्ग में राष्ट्रवाद एक निश्चित और आवश्यक सीढ़ी है। दयानन्द का आत्मिक जीवन यदि एक ओर राष्ट्रवाद की मजबूत करता है, तो दूसरी ओर राष्ट्रवाद में भी जीवन उत्कृष्ट विज्ञानतर बल के एकतात्मकता का संकेत देता है।

परीरमोह, विज्ञानज्ञान और आत्मज्ञान की समन्वित साधना उदात्त है कि स्वामी दयानन्द का जीवन विज्ञान समाज का अविद्वान करता है। वैदिकता में अन्तर्गत और अन्तर्गत का

मुद्राएँ अत्यन्त धीरे-धीरे। दीप निवाच के महापरिनिर्वाण मृत्यु में बताया है कि मरणकाल में महात्मा बुद्ध धूमिल और निरुत्सव थे। शांति और सम्मोह के में मृत थे। इससे साबित होता है कि सम्भवतः अन्तर्महात्मा बुद्ध को भी किसी विशिष्ट तार्किक तथ्य की उपलब्धि अवश्य हुई थी।

असमयम आरिक्ता उन्मत्त से जीवन-मरण आता-विल होता है और विकट परिस्थिति में भी जीवन वृत्तमय हो जाता है। इसी अस्मिता-वृत्ति के कारण ही स्वामी दयानन्द अनेक प्रलोभनों और भयावह दुकृतों और मुकृत लगे। आत्मज्ञान के अभाव में अहंकार और अस्मिता से आविष्ट हो मनुष्य मोह, मत्सर, विषमवासना और क्रोध में लिप्त हो जाता है। इस कारण उसके व्यक्तिगत में निरसता (Schizophrenia) विकसित होती है। जीवन की समझता का उसे बोध नहीं रहता। मरणा आत्मदान नहीं है जो विशिष्ट सदस्यों से अपने जीवन का अनुप्राणित और संचालित करता है। आरिक्ता जीवन की वास्तविकता का साधक सबसे बड़ा प्रमाण मानव जीवन में आत्मबोध-प्रवृत्ति रचनात्मक के द्वारा व्यक्त होता है। यदि आरिक्ता जीवन मरण में होता तो अनिष्ट हिंसा-निष्ठ, क्रोध, विषममिष्ट, मत्सर, माफी आदि कदापि प्रकट नहीं हो सकते। बुद्धजीवन, महात्मा गांधी और महात्मा बाबा जीवन तथा मरण के निष्ठे इतिहास में वास्तविकता का जीवन इसकी प्रमाणित करता है कि आरिक्ता जीवन मरण है। आत्मदान पुरुष के जीवन में भी शांति, भी स्वयं और विज्ञान सामर्थ्य है यह अत्यन्त बलवत् नहीं प्रकट हो सकता। आत्मदान पुरुष सभी की बुद्धि और स्वयं में नहीं बँट सकता। वह अपने से विज्ञानमय तथा के साथ एकत्वता प्राप्त करता है। यदि उसके स्वयं और जनपद या राष्ट्र का जनता के स्वयं में सम्यक् होता, तो वह मरण अथवा बुद्ध अहंकारोपित स्वयं छोड़ देता और सबैव वृत्तता की ओर अभिवृत्त करता। जनता में एकता, समता और उन्मत्तमयुक्त मानसमुक्तता का प्रवर्तन ही उसके जीवन का एकमात्र नाम ही जाता है। यदि ऐसा आत्मदान पुण्य उत्पन्न हो तो इससे राष्ट्र पवित्र हो जाता है। राष्ट्रीय जीवन के सम्बन्ध परित्याग के लिए अहंकार का जनमन आवश्यक है। मजिनी, वाजिगहन, तिलक आदि के जीवन में इसी अहंकारोपितता के द्वारा व्यापक जनकल्याण-करण का आदेश परित्याग हुआ है। अहिंसा दमन का आरिक्ता जीवन हचारी सामाजिक और राष्ट्रीय जनता के मान का द्वार मसाल करता है। जब तक हम आरिक्ता जीवन का, आरिक्ता ही नहीं, भाव नहीं होता है तब तक हम अज्ञान, अन्धकार और स्वायत्तता के अन्तर्गत नहीं रह सकते। और, यह विशिष्ट है कि वास्तविक व्यवहार में अज्ञान, अन्धकार और स्वायत्तता के अन्तर्गत रहने पर कोई भी राष्ट्रीय जीवन विकसित नहीं हो सकता। अतः, स्वामी दयानन्द का आरिक्ता जीवन, न केवल मानुष्य के राज करने का, बल्कि सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन में वैदिक मान्यताओं के अनुप्रेषण का माग भी हमारे सामने पड़ता है व्यक्त करता है। वैदिक मान्यता पर परिपूर्ण होकर भी राष्ट्रवाद एक मनोवैज्ञानिक और सामाजिक वृत्ति है। सांस्कृतिक सामर्थ्यता से राष्ट्रवाद परिपूर्ण होता है, किन्तु इस सामाजिक वृत्ति और सामाजिक जीवन के विभिन्न आत्मदान का बोध आवश्यक है। अनुपम में कहा गया है—

मनुः सर्वान् मृत्यान्नात्मदेवानुपसमतिः ।

धर्मसूत्रेषु चारमार्गं कृतं न विचिन्तयति ॥

मस्मिन् कर्माणि कृतानि आत्मैवाह्वयिकानि ॥

तत्र नो मोहः कः चोन् एतत्प्रमाणमवश्यम् ॥ [पञ्चैत, 40/67]

स्पष्ट है कि आत्मज्ञान का निश्चित तार्किक परिणाम है—समभूता के कल्याण की आकांक्षा। समभूतकल्याणवाद के माग में राष्ट्रवाद एक निश्चित और आवश्यक शीर्ष है। दयानन्द का आरिक्ता जीवन यदि जन और राष्ट्रवाद को मजबूत करता है, तो दूसरी ओर राष्ट्रवाद से भी अधिक उल्लेख विज्ञानमय बुद्धि से एकत्वता का कथन देता है।

शरीरयोग, विज्ञानयोग और आत्मयोग की तर्कित समझता बताती है कि स्वामी दयानन्द का जीवन विज्ञान समर्थन का अन्तिममय करता है। वेदज्ञान में बहुशक्ति और अत्यधिक

समन्वय का विनाशक उपहारण प्राप्त होता है। तृतीयोपेक्षितपद में अन्तमय, प्रान्तमय, महीन, विमानमय और मान-कमय बीजा की वषस समन्वित माधवत का उपदेश प्राप्त होता है। अन्त प्रसिद्ध ग्रन्थ 'निर्मोक्षविद्यन एवियन' में अस्तु के बह्य है कि वैभव शासकीयन और राष्ट्रनेता का जीवन ही सत्यव नही है। इस प्रकार ने वषमय जीवन व भी उत्तर सन्तुल दिव्य विविधन का जीवन है। आनन्द की व्याख्या करते हुए उसने कहा है कि नीलमुक्त कर्षों को सम्पन्न करना ही आनन्द का मान है। प्राचीन मदिन सङ्कृति और वृत्तनी सङ्कृति में समन्वय का अन्तस प्रान्त प्राप्त है। विष्णु, वीरों ने अन्तमयव और निर्वाणवाद तथा अज्ञातविद्यन के माधवत के प्रकार व वषस भारतीय जीवन में प्रतिभास और पञ्चमयमान का प्राप्तन हो गया। अन्त विषयस की मित्रि की हुई और अपनी सामन्ता में वषस की विविधन करने वाले पुरर वषस की हुए, विष्णु इसमें ह्मार राष्ट्र का प्राप्तमय जीवन कुछ विविध अवस्य हो गया है। वेद और बीजा में जिस निष्पन्न-वषस योग का उपदेश दिया गया है, वह हमारे सामने सङ्कित पात्र और प्राप्तमयिका सङ्कित में समन्वय का मान प्रस्तुत करता है। नृसङ्कमान के शासन मान में भी अनेक सेवा में ह्मावी सङ्कानक पञ्चमय हुई, उसने वषस देव व विषय आद्यों का कुछ मोन-सा हो गया। वषानन्द, विषय, विषेयानन्द, अरविन्द और मान्नी के पुररवि इस व्यापक व्याप समन्वयवादी वषमान की शिक्षा देकर भारतीय राष्ट्र का अवसत बहान उपहार दिया है। मादिक आद्यों के अन्तम व सङ्कित मङ्कान हो जाती है। वषमय का अनुशीलन वैवक्तिन और राष्ट्रीय जीवन में जीवन सङ्कित सङ्कित करता है। वषमय धीकृष्ण के समान वषानी वषानन्द का भी अनेक दिव्य पुरर मादिक वषस या कोई प्राप्तमय पञ्चमय ही नही रह गया था, सङ्कित वीर सङ्क और वृत्तकमान के लिए वङ्किते वषस वषुर्वेद के विष्णुविद्यन मान का अनेक जीवन में विषयवषस दिया —

कुम्भसबह वषानि निनीविषेवस्य कथा ।

एष एवि मायवेसीङ्कित व वषस विष्णुवे नरे ॥ [वषुर्वेद, 40/2]

यदि वेदी की वषमयान वषीस्य रहता है या कथावि देवता उपदेश वही नही मिलता वषा नि वषुर्वेद में प्राप्त होता है —

वायुरविषममृतमयेद मरमाते वषीरम् ।

जं नती स्वर कुत स्वर मता स्वर कुत स्वर ॥ [वषुर्वेद, 40/15]

अन्त आवस्यन है कि माधव व वैभव अन्त अन्तस के सम्पन्न में मान प्राप्त कर, अन्तु सम्पन्न कर्षित का भी प्राप्त कर। इस प्रकार कर्षित और वैवस्य का सम्पन्न व वैभव मानव के वैवस्यन जीवन की वषस वषाता है अन्तु राष्ट्र की सङ्कित वषसि वषा की प्रवसत सङ्कित वष वषीस्यन करता है।

सङ्कानी वषानन्द का अनुपम और वषसमान वषीस्यन इस प्रकार सङ्कानम-योग की वषसना व वषस, मादिक के नृसङ्क वषान में अवसत ही मङ्कानुप है। आज वषस बी-वषस की वषों के मार वीर राष्ट्र का वृत्तन विविध हो रहा है। इस निमावषस में विषयव आन वदिक आद्यों की वष वैवस्यी वषवीरवषा कर, वषानन्द में वषसविमता सङ्कित वष वषावि विषय है। विषयव वषमयवषीसी अन्तमयवषस अवसमय वषीसी जीवन की वषसङ्क और वषाव वषाती है। प्राचीन आज आदमान, अनुपम की वीर और वीर की सङ्कित वष विविध वषीस्य और वषमयमान में वषस होने की शिक्षा देता था। विष्णु, मान ही मान वषस और मान की भी वषसना करन का मान वषान करता था। अन्त उस वषसमान वषीसी और वषमयवषस विषय विषय का मान है जो वषस वषस की विषय विषे हुए है। साधु वषी है जो वषस के वषसिप्रवसक वष का वषुवषस करता है। वषस, वीरव, वषस और वषा ने वषस ही वषु का वषुवषस सम्पन्न है। वषा और वषि की वषसि के लिए वषुवषस मान का वषस और वषस वष वषीरवषस अन्तमय वषमयक है। इसी वषि की वषसना करते व वषमय वषा वषमयन होता है। सङ्कानी वषानन्द वषान की वीर वीर वषा के वषीसी वीरर इस वषस की मान, वषि और वषस के मान के अनुवषस का वषस व वषे है। वषि वषस वषि वष, इस वषा-वेषा वषमयवषसमान मान की, अनेक जीवन में विषयवषस और भारतीय

जीवन में प्रचारित करने में ही व्यक्ति का जीवन व्यतीत हुआ। विराट् श्रेयवाद से उनका जीवन अनुशासित था और अपने व्यक्तिगत भी लेखकी आग्रहाष्ट के निर्माण का ये समुदाय बनाना चाहत थे। केवल प्रचार ही सर्वस्व नहीं है, प्रचार की प्रभावशाली क्षमता वनता है जब उसके पीछे निम्नलिखित व्यक्तिगत की क्षमता बतमान हो। दयानन्द के जीवन में यह व्यक्तिगत विराट् हुआ एक धारण करता है।

केवल शक्तिवाद ऐतिहासिक दृष्टि से अकारणकारी है। शक्ति की अनिश्चित उपस्थिति शक्ति-नाशकों का पराजय कर डालती है। एक जमाना था जब असीरिया के सम्राटों ने पश्चिमी एशिया में और मसालों में पूर्वी एशिया में शासनात्मकी व्यवस्था की पुष्टि कर शक्तिवाद का नाम इस उपस्थिति दिया था, किन्तु महाराज राम ने यही कृष्ण से उनका साक्षात्कार कर डाला। महावि दयानन्द, बुद्धिमान और सीधे के बीच अन्त में हमें शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। शक्तिवाद कुछ दिना तक मते ही टिका जाय, किन्तु इसकी उत्पत्ति और सम्भारता के कारण अवश्य ही इसने विशेष में अतिविशाल आन्दोलन आरम्भ हो जाये है। यदि एकान्त शक्तिवाद व्यावहारिक दृष्टि से हेतु है, या दूसरी ओर एकात्मत विनयवाद भी सम्भवतया प्रवर्तता है। भारतीय संस्कृति सम्पूर्ण में आत्मवाद और आदरवाद का प्रचार करती रही, किन्तु वेदाङ्ग और भाष्यमय दशन शास्त्रवादात्मक दृष्टि से अत्यन्त उत्कृष्ट रहते हुए भी यचना ने आग्रहण की कुचन में हच कोई ऐतिहासिक प्रणाली नहीं प्रदान कर सके। बालादा विरचविशाल मध्ययुगीन ज्ञान-उत्पत्ति का सीमन्तन था, किन्तु कुछ मुद्दी पर विदेशी यचना ने उसकी मिट्टी में निला दिया। इससे मान्यता प्रवर्तता है कि प्रचार में जीवित रहन में लिए केवल वैराग्यवाद, वादावाद, निर्वाणवाद, दूषणवाद आदि में नाम नहीं चलेगा। धीरे, दायन, विनयता पर आधारित उनके स्तर का उत्पत्ति कुछ शास्त्रवेत्ता स्वयंसे के लिए चले ही उपयुक्त हो, किन्तु सामाजिक और राजनीतिक स्तर पर हम शक्तिवाद और विनयवाद का सम्भव करता ही चलेगा। न ही केवल शक्ति से दीक्ष्यमिनी सम्पत्ति मिल सकती है और न केवल विनय से एक विनयकारी शक्तियों का शासन कर सकते हैं। उत्तरी भारत के अग्रज के सिलसिले में स्वामी दयानन्द ने भारत के पराजय का दशा था, अतएव उन्होंने उन वैदिक आदरवाद की उत्पीड़ना की की सम्भवदर्शी है। समुद्र के नाम 'मधुरति मधु मणि धेहि' पर प्रारब्ध करते हुए दयानन्द ने लिखा है 'परमेस्वर ! त्वं मधु प्यात्रति नीमकुक्षिं दयति स्वमत्तया पुष्टाप्रति मधु धेहि।' अग्रज की कहान लिखा है कि परम पुराण से सहायक पर और राजकी की प्राप्त करना चाहिए। उनके अनुसार 'आत्मसातकारिता पराजय और विनयता तथा निर्दोशता भी अन्तर्गत है। इस प्रकार स्पष्ट है कि स्वामीजी केवल युवा वैराग्य और सहायक वैराग्य नहीं थे। अन्तर अन्तर बराबरी अपने मन की प्रयोग करने में लिए और वैराग्य और सहायक की परम उत्तरता की राधा मान लागत है। कबीरदास ऐसे वैरागियों के अनुयायी थे। चले ही आज कबीर ने दूषणवाद पर दीर्घा रचना हम लोग आन्दर की उत्पत्ति प्राप्त कर में किन्तु कबीर की शक्तियों के आधार पर एक गुण सम्पत्ति युक्त सहायक राष्ट्र की स्थापना नहीं की जा सकती है। महावि दयानन्द का सम्भव के प्रवर्तता में निम्नलिखित सम्भवतया उत्पत्ति और महासाक्षात्कारीन भारत में हुआ जब इस देश में भीष्म और दूषण ने समान पीडा, लज्जामें तथा राम और मुषिष्ठर के समान परमाण उत्पन्न हुए थे। दयानन्द ने जीवन भरित न पड़ने से मुझे स्वयं महासाक्षात्कारीन आचार्य के तन का स्मरण ही आता है और आज भरित की महात्मा और सम्भव उत्पत्ति का दान होता है।

पश्चिम आदर्शों की पुनर्परीक्षा भारत और अन्त में चरित्रात्मक बन का सम्मान स्वामी दयानन्द का वैराग्य प्रवर्तता है। किन्तु वेदा की ओर प्रत्यागमन का विचार कोई अतिविना का मणि राध का मणि नहीं है। जीवन में प्रवर्तन क्षय का ओर सम्भव में अन्तर्गत करन बाला निधिलता और मुम्ती का मन्दत वन से उत्पत्ति था ? एतत्तु शास्त्र में कहा है परवर्तित—आगे बसी, आगे पड़ी। बड़ीचरित्र में कहा है—'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्ते वद का साक्षा है कि हम जानें करता हुए अदीन रहने में अब और उत्तरी में अधिक

समन्वय का विधात्मक उदाहरण प्राप्त होता है। तीर्थरीशोपनिषद् के अथर्वम, ब्राह्मण, स्तोत्र, विज्ञानमय और आनन्दमय कोशा की कथित सम्बन्धिता साधना का उपदेश प्राप्त होता है। अतः प्रसिद्ध ग्रन्थ 'निषोपाकिमन् एषिषत्' से अरस्तू से बहुत है कि केवल शासकीयता और राष्ट्रप्रेम का जीवन ही सम्भव नहीं है। इस प्रकार के कथनय जीवन से भी उत्तर तत्पूज्य दिव्य विधित्त का जीवन है। आनन्द की व्याख्या करते हुए उसने कहा है कि जीवनमूल्य कर्मों की सम्पन्न करता है ज्ञानन्द का माय है। प्राचीन वैदिक संस्कृति और कुशाची संस्कृति से समन्वय का आदर्श प्राप्त होता है। किन्तु, बौद्धों के अनारम्भवाद और निर्वाणवाद तथा ब्रह्मवादियों के मायावाद के प्रकार के कारण भारतीय जीवन में प्रतिफल और पलायनमाय का आक्रमण हो गया। अतः विवेक की शिक्षा से हुई और अपनी साधना से जय का विशिष्ट करने वाले पुण्य उत्पन्न हो हुए, किन्तु हमारे ह्मा राष्ट्र का आनन्दमय जीवन कुछ निमित्त अवश्य हो गया है। वेद और गीता ने विश्व निष्काम-सर्व योग का उपदेश किया गया है, यह हमारे सामने शारिख ज्ञान और प्रत्यक्षुतिता गति से सम्भव का माय प्रस्तुत करता है। मुसलमानों के शासन काल में जो अनेक सेवा में ह्माारी सहायकता प्रदान हुई, उसके कारण देश में निम्नता आदर्शों का कुछ जीवन-सा हो गया। दखानन्द, सिमर, विवेकानन्द, आरविन्द और राधी ने पुनरपि इस आदर्श स्वयं समन्वयकारी समयोग की शिक्षा देकर भारतीय राष्ट्र का अवगत महान् उपकार किया है। शारिख आदर्शों के अभाव में जाति भूतभाव हो जाती है। कमयोग का अनुशीलन व्यक्ति और राष्ट्रीय जीवन में जीवा शक्ति संचालित करता है। समन्वय शीतल के समान स्वाधी दखानन्द का भी अपने लिए कुछ शारिख कथ्य का कोई आकाश प्रदान होन नहीं रह गया था, तथापि लोक सङ्घ और सुव्यवस्था के लिए उन्होंने नवरा बहुवेद के निम्ननिष्ठित गम का अपने जीवन में निष्कासन किया —

कुम्भवेदो कर्मणि निभीविषेवज्जत सता ।

एष स्वपि नाकपेक्षीयैत न कथं सिम्यत नर ॥ [यजुर्वेद, 40/2]

यदि वेदों की कथन्या असीम रहता है तो कदापि ऐसा उपदेश नहीं मिलता जैसा कि यजुर्वेद के प्राप्त होता है —

वायुरनिलमनूतमपेद भम्माहं शरीरम् ।

जं चरी श्वरं कृत श्वरं भरी श्वरं कृत श्वर ॥ [यजुर्वेद, 40/15]

अतः आवश्यक है कि मानव न कथन अथवा अथवा के सम्न्वय में पात्र प्राप्त करे, अथिष्ट सम्मय कर्मों का भी पात्र करे। इस प्रकार कथन और वेदात का समन्वय न केवल मानव के व्यक्तिगत जीवन को उत्तम बनाता है, अथिष्ट राष्ट्र की सविध उत्ति का भी प्रदात मातक का आशीर्वाद करता है।

स्वामी दखानन्द का अनुभव और मतदान स्थिति, इन प्रकार समन्वय-योग की उदात्तता का दर्शन, भारत के नूतन उत्था में अवगत हो महत्वपूर्ण है। आज प्राप्त सी-सवा-सी-सर्वा से भार शीम राष्ट्र का नूतन निर्माण हो रहा है। इन विमानमान में विद्यालय आन वैदिक आदर्शों की पुनः अवली उद्घोषणा कर, दखानन्द ने सत्यनिष्ठाता शक्ति का प्रकाश किया है। विद्यालय समन्वयशीली आदर्शमाय अवश्यमय राष्ट्रीय जीवन को सज्जुत और उत्तम बनाती है। प्राचीन आन आदर्शता, मनुष्य का योग और जीवन की शक्ति कर विविध शक्ति और अव्यवस्था में प्रवृत्त होन की शिक्षा देता था। किन्तु समय ही समय चल और समय की भी उत्तमता करन का माय प्रदान करता था। चल हम समातन वैदिक और आध्यात्मिक विद्यालय विद्यम का नाम है जो समस्त जगत् की विपुल विन हू है। साधु नहीं है जो चल के स्वर्तिमतामय गम का अनुसरण करता है। वत, वेदात, आनन्द और शब्दा के सहार ही गनु का अनुसरण सम्भव है। सी और रवि की शक्ति का लिए कुटिल माय का दखान और सुपय कर आशीर्वाद सत्यम आनन्दमय है। हमी रवि की उत्तमता करन न कथन का प्रमाण होता है। हमारी दखानन्द भारत की दीन-शील ह्मा से हुमी ह्मावर हम देन का ज्ञान, रवि और चल ने माय का अनुसरण का गद्देन दे गये हैं। अविद्यात गति में इस आकाशेवी आनन्दविमानमय आन का, आन जीवन में निष्काशित और भारतीय

जीवन में प्रभावित करने में ही व्यक्ति का जीवन व्यतीत हुआ। विराट शैववाद है उनका जीवन अनुशासित का और अपने व्यक्तित्व की शैवस्वी आध्यात्म के निर्माण का है नमूना बनाना चाहते थे। केवल प्रचार ही सबस्व नहीं है, प्रचार भी प्रभावशाली सभी बनता है जब उसने पीछे निम्न व्यक्तित्व की सामग्री प्रदान की। दयानन्द के जीवन में यह व्यक्तित्व निखरा हुआ रूप धारण करता है।

केवल शक्तिवाद ऐतिहासिक दृष्टि से अस्वरूपधारी है। शक्ति की अभिव्यक्ति उदात्तता शक्ति-मार्गों का पराजय कर जाती है। एक जमाना था जब असीरिया के सम्राटों ने पश्चिमी एशिया में और मसोदा ने पूर्वी एशिया में साम्राज्यवादी व्यवस्था की पुष्टि कर शक्तिवाद का नमूना उपनिषद् दिया था, किन्तु सहराब बाल ने बड़ी क्रूरता से उनका सत्प्रमाण कर डाला। महाभारत, दुर्वाचन और सीतार के जीवन अन्त से हम शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। शक्तिवाद कुछ दिना तक चले ही टिक जाय, किन्तु इसकी उद्दामता और मनबुरखा के कारण अवश्य ही इसमें विरोध में प्रतिनिधित्व आन्दोलन आरम्भ हो जाये। यदि एकात्म शक्तिवाद व्यावहारिक दृष्टि से हेतु है, तो दूसरी ओर एकात्म विनयवाद भी अनन्युरूप का प्रदाता है। भारतीय संस्कृति मध्ययुग में आत्मवाद और आदमवाद का प्रचार करती रही, किन्तु वैज्ञानिक और साम्यमिक दशन व्यवस्थापन दृष्टि में अव्यक्त उत्कृष्ट रहते हुए भी मनो के अवयव की कुचलने में हम कोई ऐतिहासिक प्रेरणा नहीं प्रदान कर सके। आधुनिक विश्वविद्यालय मध्ययुगीन विज्ञान तथाकथित वा शीघ्रस्थान का, किन्तु कुछ मुद्दी भर विदेशी मनो ने उसकी मिट्टी में मिला दिया। इससे मालूम पड़ता है कि प्रसार में प्रीतिशत रहने के लिए केवल वैराग्यवाद, योगवाद, निर्माणवाद, शून्यवाद आदि से काम नहीं चलेंगा। शील, सामय, विनयता पर आधारित उच्च स्तर का उत्कृष्टान कुछ प्राच्यशास्त्रियों के लिए चले ही उपयुक्त हो, किन्तु सामाजिक और राजनीतिक स्तर पर हम शक्तिवाद और विनयवाद का समन्वय करना ही पड़ेगा। न तो केवल शक्ति है दीयस्वाधिन की सत्ता मिल सकती है और न केवल विनय से इन विनयकारिणी शक्तियों का सामना कर संभव है। उत्तरी भारत के भवन के शिक्षितों ने स्वामी दयानन्द ने भारत के वैराग्य की सेवा का, अतएव उन्होंने उस वैदिक आदर्शवाद की उपोदघा की जो समन्वयशील है। मनुष्य के मन 'मनुष्य मनुष्य धर्म धर्म' पर साध्य करने हुए दयानन्द ने लिखा है 'वन्दनम्'। एक मनुष्य प्राप्ति शीघ्रकालीन मनुष्य स्वभावता दुष्टाप्रति मनुष्य धर्म'। अन्त में उन्होंने लिखा है कि परम पुरुषात् से सम्पन्न कर और राज्यशी की प्राप्त करना चाहिए। उनके अनुसार 'साधनात्मिक पराजय और निम्नता तथा निर्दोषता भी अप्रति है। इस प्रकार स्पष्ट है कि स्वामीजी केवल शून्य वैराग्य और उपनिषद् वैराग्य नहीं थे। अन्तर अनेक बरादी अपने मन की प्रयोग करने के लिए घोर कष्ट और सकार की परम अज्ञानता की गत्ता पाने सफल है। कवीरसाह ऐसे वैराग्यों के अनुयायी थे। जो ही आन्त कवीर के रहस्यवाद पर टीकाई रखकर हम लोक शास्त्र की उपधि प्राप्त कर ले, किन्तु कवीर की शक्ति की आधार पर एक नूतन मनुष्य-शून्य सत्ता राष्ट्र की स्थापना नहीं की जा सकती है। महर्षि दयानन्द जब स्वयं के प्रमाणों के जिसका क्रियात्मक सामाजिकजीवन और महाभारतजीवन साक्ष्य में हुआ, वह इस देश में शीघ्र और कुल के समान शीघ्र, उत्कृष्टता तथा राम और कुचिद्धि के समान प्रमाण उत्पन्न हुए थे। दयानन्द के जीवन चरित की पढ़ने से मुझे स्वयं महाभारतजीवन साधना के देश का स्वरूप ही जाता है और आम चरित की मनुष्य और वैराग्य उत्पन्न का दशन होता है।

वैदिक आदर्शों की पुनर्प्राप्ति साक्ष्य और अन्त में चरित्राचरण करने का सदेश स्वामी दयानन्द का वैराग्य प्रकट करता है। किन्तु वैदा की ओर अन्तर्गत का विचार कोई प्रतिनिधि का चरित्र के का सदेश नहीं है। जीवन के प्रत्येक क्षण की ओर समन्वय में व्यतीत करने वाला पुरुष विनयता और कुली का सदेश कैसे दे सकता था? ऐतरेय ब्राह्मण में कहा है—'चरित्रेति चरित्रेति'—आने बड़ी, जाने बड़ी। बड़ीपनिम्न में कहा है—'वक्षिष्ठ आन्त प्राप्य चरित्रोपपत्ति।' यह वा सदेश है कि हम काम करते हुए अन्त रहने की वच और उसमें भी मनुष्य जीवन की दृष्टि

जीवन में प्रभावित करने में ही महुवि का जीवन व्यतीत हुआ। विराट् वैषम्यवाद से उनका जीवन अनुपमित या और अपने व्यक्तिगत को लेखनी आचरण के निदान या वे नमूना बनाना चाहत थे। वैषम्य प्रचार ही कथम् नही है, प्रचार भी प्रमाणवाली तभी बनता है जब हमने बीछे निमित्त व्यक्तिगत को मापना पतमान है। दयानन्द ने जीवन में महु व्यक्तिगत निरुपण हुआ रूप पारन करता है।

वैषम्य प्रतिवाद एतिहासिक दृष्टि से अवस्थापनकारी है। पालि की अनिमित्त उपलब्धता प्रति-आपत्ति का परामर्श कर दालती है। एक जमाना का जब अमीरिया ने सम्राटा ने पश्चिमी एशिया में और मर्यादा में पूर्वी एशिया में साम्राज्यवादी व्यवस्था की पुष्टि कर प्रतिवाद का नाम इस उपमित्त विचार था, किन्तु साम्राज्य काल में बड़ी भूखण्ड से उनका समानता कर दालता। साम्य राज्य, दुर्गोप और गीजर के भीषण अन्त से हम विचार ग्रहण करनी चाहिए। प्रतिवाद कुछ विचार तक चले ही ठिक जाय, किन्तु हमारी उद्दामता और मर्यादा के कारण अवश्य ही इनके विराट् में प्रतिविमलम आबोला आरम्भ है। जाने हैं। यदि एकाग्रता प्रतिवाद व्यावहारिक दृष्टि से है, तो दूसरी ओर एकाग्रता विषयवाद में अन्तमुदय का प्रदाता है। भारतीय संस्कृति मध्यम में आद्यवाद और आद्यवाद का प्रचार करती रही, किन्तु वैदिक और साम्यवाद इसका अन्तर्भाव दृष्टि से आरम्भ उद्गृह्य रहत हुए भी बनना के आरम्भ की भुचलने में हम कोई एतिहासिक श्रेया नहीं प्रदान कर सके। दयानन्द विषयविज्ञान में मध्यमोपनिषद् विचार-सम्बन्ध का भीषणता था, किन्तु कुछ मुठ्ठी भर विदेशी विद्वानों ने उसकी मिट्टी में बिना दिया। इससे मानस बनता है कि मसार में अविश्व रहने के लिए वैषम्य वैषम्यवाद, साम्यवाद, निर्माणवाद, धूम्यवाद आदि से बच नहीं चलेगा। 'गीत, रामय, विषयवाद पर आधारित उच्च स्तर का व्यवहार कुछ सातवैता स्वविरा के लिए चले ही उपयुक्त हो, किन्तु साम्यवाद और राजनीतिक स्तर पर हम प्रतिवाद और विषयवाद का साम्यवाद करनी ही चलेगा। न तो वैषम्य पालि से दीपकवायिनी समानता मिल सकती है और न वैषम्य विषय से ही विषयवायिनी पालि का सामना कर सकत हैं। इससे भारत के भ्रमण के क्लिप्तिले में स्वामी दयानन्द ने भारत के परामर्श का देखा था, जहाँ उद्गृह्य उन वैदिक आद्यवाद की उद्गोपना की जो साम्यवादकी है। पञ्चदे के नाम 'मसुरसि मयु यदि पेहि पर साम्य करते हुए दयानन्द ने लिखा है ' परमवर। एक मसुरसि प्रतीति भीषणद्विष्ट मयुवि स्वतन्त्रता दुष्टाप्रति मयु पेहि।' अन्त में उद्गृह्य लिखा है कि परम बुद्धिमान से समग्रत पर और राज्यकी की प्राप्त करना चाहिए। उन अनुसार 'साम्यवायिनीय परामर्श और विषयता तथा निर्दिष्टता में अप्रतिष्ठ है। इस प्रकार स्पष्ट है कि स्वामीने वैषम्य धूम्य वैषम्यवाद और उपायविश्व वैषम्य नहीं थे। अन्तर अनेक बरसी जाने पल की प्रयोग करने के लिए धीरे वैषम्य और मसार की परम अन्तराल की राधा गति जगत है। नशीरदास ऐसे विचारियों के अनुयायी थे। चले ही आज नवीर के रहस्यवाद पर टीकाई रचकर हम जीव वास्टर की उपायि प्राप्त कर ले, किन्तु नवीर की साक्षिों ने आधार पर एक नून मन्त्रिभोयुक्त समग्रत राष्ट्र की स्थापना नहीं की जा सकती है। महुवि दयानन्द उस साम्य के परामर्शों से निकला विचारमय साम्यवायिनीय और महाभारतकालीन भारत में हुआ जब इस देश में भीषण और दुष्ण के समान योद्धा, सत्यवादी तथा राम और मुनिष्ठिर के समान परमराज उत्पन्न हुए थे। दयानन्द ने जीवन पालि का करने से मुझे स्वयं महाभारतकालीन साम्यवाद के तन ना स्मरण ही जाता है और आज पालि की महुता और वैषम्य उत्पन्न का विलन होता है।

वैदिक आद्यवादी की कुलपति भारत और अन्त में पालिपन करने का सन्देश स्वामी दयानन्द का वैषम्य प्रकट करता है। किन्तु वैदिक की और प्रमाणवत का विचार कोई प्रतिविद्या या प्रति-रीय का सन्देश नहीं है। जीवन के प्रत्येक क्षण की धीरे नमनोप में व्यतीत करने वाला धूम्य विषयवायिनीय और सुखी का सन्देश बंसे से बनता था ? क्षेत्रीय साक्ष्य से कहा है—'वैदिक पालि—आने यही, आने यही। कठोपनिषद् में कहा है—'उत्तिष्ठ जाग्रत प्राप्नो वराजिगीमता। वेद का सन्देश है कि हम नाम करते हुए अन्त रहकर ही बंध और जगत् में अविन आने की दृष्ट्य

करें। इन आदर्शों की अपने जीवन में धारण करने वाला व्यक्ति चित्त प्रसार भारतीय इतिहास में प्रतिभिया उत्पन्न करता है स्वामी दयानन्द की प्रतिभा की और महाशक्तिवाद का प्रसारण स्वयं परिचय के सम्पन्न भारतीय ही करते हैं। निम्न इन सम्पन्न की ओरें सुन जानी चाहिए। मध्यमवयस में ऐसा एक समय आया था जब कुछ साधु न ऐसा स्वयं देता और बाल की विद्या में कि मक्का, मदीना और तेहरान के आधार पर भारतीय सभ्यता और सम्बन्ध का विचार हो। रामा प्रसाद, सिन्हाली, शक्तिद सिंह आदि ने इन अरब फारसीवादि का कुचक की सम्पन्न कर दिया। राजीसिन्हा शताब्दी के भी एक ऐसा समय आया जब कुछ साधु ने यह प्रस्ताव रखा कि बिना लड़ने और बैरिज की लड़ाई बिना सारंग नयी की शिक्षा नहीं रद्द करता। उनका यह आग्रह था कि सीधे ही हूँ, वैष्णव धर्म के जाने चमड़े की छद्मधर, सचन आंतरिक और बाह्य दृष्टि का परिचय का अभावपूर्ण करना चाहिए। परन्तु, भारतीय सभ्यता की वय के समान इस आधार सिद्धांत पर अपने को स्थापित दयानन्द, रामसीध, साँधी आदि जन्मदात्र महापुरुषों ने यह बताया कि इस प्रकार का कथित हमारे राष्ट्रीय आंतरिक स्थानिमात्र के अनुकूल नहीं है। इन महापुरुषों के वेद, वेदाङ्ग और गीता की शिक्षाओं को धारण कर परिचय की अवस्था चुनौती की। मोदी अरविन्द ने कहा कि वेद और वेदाङ्ग के दिव्य ज्ञान में वे उत्कृष्ट अर्थ कोई भी विचार इस जगतीय पर नहीं है। इस प्रकार के उद्देश के धीरे धीरे फिर हम लोग स्वयं हुए। आज भारत लोक सभ्यता पर एक सीधे आक्रमण हुआ है। अरब और मदीना के आक्रमण के और लड़ने और लड़ाई पर के आक्रमण से भी यह आक्रमण अधिक भयानक है। कुछ लोग मानते हैं, लेकिन प्रार और पकिंग का यह अभाव है। अरब और महापुरुषों की मुक्ति विज्ञान के नाम पर के आक्रमण की ही लड़ करणा चाहते हैं। उनकी दृष्टि में वेद, वेदाङ्ग, गीता, महापुरुष आदि के कोई ईश्वर मानन भारत की नहीं मिल सकता। लोग, ज्ञान, आक्रमण आदि महान् सदेव उनकी दृष्टि के विरुद्ध और विरोधाभासी हैं। इस घोर आक्रमण में एक बार फिर हमें अपने दयानन्द के व्यक्ति का अध्ययन करना है। स्वामी दयानन्द समार का उपयोग करना अपना सभ्य मानते थे। उनका उद्देश्य था कि समस्त जगत आज अर्थात् धर्म-साक्षी बन। हमारे देश की प्रमुख शक्ति का विकास हो इसलिए ही उन्होंने वैदिक आदर्शवाद का मान दृष्ट किया। वेदा की ओर लौटने का यह अर्थ नहीं है कि लोग सभ्य हुए और अग्नि की उपासना करेंगे और सोमरस पीकर निराले बने रहेंगे। यह तो वैदिक आदर्शवाद का विरुद्ध तात्पर्य है। अर्थात् दयानन्द के अनुसार वैदिक आदर्शवाद का निरुद्ध अर्थ इस मान में है —

विश्वानि वैव सविताहुरितानि पचामुव। दग्धं तप आ सुव।

अर्थात्, हमारे वैविकान, राष्ट्रीय और साक्षात्क जीवन के समस्त दुष्ट और कुछ पुन दूर हो कार्य और कल्याणप्रदाय, सबकुलहित साधविद्याशक्ति प्रकृत अनुष्ठान और निश्चय की सम्बन्धित सिद्धि देने वाला मद्र होने चाहते हैं। एक साधारण दुष्ट की दूर करने में विज्ञान परि श्रम करना पड़ता है, फिर समस्त दुष्टों की दूर करना कितनी कठिन साधना, दीर्घकालीन जम्मा और अध्ययन की अपेक्षा करता है। इस साधनात्मक प्रयत्न के साधन की जो साधनात्मक साधनात्मक और साधन की प्राप्ति का मान देता है उसे कोई विचारशील पुरुष कदापि प्रतिभा की नहीं कहता। मोदी अरविन्द ने शिक्षा कि ईश्वर की साधना के एक मद्र इस महान् काम मोदी अर्थात् दयानन्द का समर्थन मुझे माना है उन-जैसे सभ्य सुद्ध, विज्ञान, शक्ति का समर्थन करने वाले सभ्य वेद सतिष्ठत में लौट सकते हैं। कुचरपि इतिहास भी बताता है कि जहाँ आन्दोलनों में शक्ति जाती है वो राष्ट्र की इतिहासिक साधनात्मक में निष्ठा होकर भागे पड़ते हैं। उदाहरणार्थ, ब्रह्म की शताब्दी का दुरीपीय पुनरुत्थान पीछे और अरब के आदर्शवाद से प्रभावित था, सुगर और कलिन की लड़ पीछे और लड़ पात्र की प्राचीन शिक्षाओं के बैरपा मिलती थी और सकार में जब लड़ की पोषणा करने वाली साक्षी शम्भुशक्ति सुमान और रोम में सभ्यतात्मक आदर्शवाद से प्रभावित थी। अरबीका न जब सम्भुशक्ति हुई जब साक्षिपद, वेदरस आदि नेलाओं में अपनी विनीत शासनसाधना समेत का सामर्थ्य प्राचीन रोमीय सेंट के आधार पर ही किया। अतएव, अर्थात् दयानन्द के इस विचार की कि लो के साक्षिपदक मानों का कुछपि विचारयन हो, हम

ध्यानपूर्वक समझना चाहिए। यदि भूरी आधुनिकता का राग चुनकर हमने उन महान् बाँबी की मुखा दिया, जिसने आधार पर यह सनातन धर्म-शक्ति अपना जीवन बना रखा है, तो वह समय हम देश और समस्त जगत के महान् पराभव का दिन होगा। आज वेद और वेदा की शिक्षाओं को धारण कर ही हमने अपने पतनान की उत्पत्ति और अपने अधिपत्य की आकांक्षित बनाया है। नि सन्देह हमने केवल भूतकाल का गीत नहीं गाया है, वह कमबोयी का नहीं अस्तित्व सामरिक वृत्तिवादा का काम है। भूतकाल की विराट शिक्षाओं को अपने जीवन में धारण कर हमने विजयी अधिपत्य का तेजस्व निर्माता बनाया है। आज देश स्वतन्त्र है और आत्मसन्त है कि हम अपनी सांस्कृतिक वीरता से विमुक्ति हो अपना और समस्त का उपकार करें। सत्यमेवा और कमबोयी महर्षि दयानन्द राष्ट्र-निर्माता के रूप में नहीं महान् सन्देश हमें दे रहे हैं।

स्वामी दयानन्द ने वैज्ञानिक और व्यावहारिक दोनों दृष्टियों से भारतीय राष्ट्रवाद की मजबूत और प्रगल्भ किया है। उनके राष्ट्रवाद के व्यावहारिक समर्थन का ऊपर विवेचन किया गया है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से उन्होंने हमारे सामने आधुनिक राष्ट्रवाद का चित्र प्रस्तुत किया है। तीन दृष्टियों से यह साम्यवादी राष्ट्रवाद आधुनिक राष्ट्रवाद से भिन्न है।

(क) आधुनिक राष्ट्रवाद मुख्यतः औद्योगिक और धर्म विरुद्धतावाद पर आधारित है। अपने देश के लोगों का अधिपत्य भाषा में गुल-सबक बनाना इसका लक्ष्य है। गुल के साधनों का अतिरिक्त एकीकरण ही इसकी दृष्टि में उत्पत्ति और अन्तुदय का सहाय है। विज्ञान और तकनीक तथा तकनीक (Technology) के आधार पर तकनीकपूर्ण समाज (Rationalized society) का निर्माण ही इसका परम पुरोषास है। अपने लक्ष्य की संसृष्टि में सदायस अत्यधिक साधना का प्रयोग ही यह विहित करता है, क्योंकि तत्त्व का वैज्ञानिक साधना की अवस्था और समझता की शिक्षा देता है। इसके विपरीत, आधुनिक राष्ट्रवाद समस्त उत्पत्ति का विरोध है। अन्तुदय की वह वृत्ति उत्पत्ति नहीं करता। अन्तुदय की पूर्ण उत्पत्ति यह करना चाहता है। यदि अन्तुदय इसे अनवीर्य होता तो यशुवर्धन म कदापि निम्नलिखित मात्र नहीं आता—

आजहान् आहानो प्रह्वयपदी आत्ममाभाराष्ट्रे राजस्य शूर इत्योद्योगिमाधी
महाराधी नामता दीर्घी सेतुहीदानकमानासु सन्धि पुरीपर्वीया शिप्नु
रनेष्ठा सपेदी युवात्स यजमानस्यवीरो आसता निजमे विकामे न पययो
यपतु कलवसमी मज्जीयधम पय्यता दीप्योमी न वल्यताम् ।

[यशुवर्ध, 22/22]

विशु मैत्र, योगेश्वर और अन्तुदय तथा रवि की शक्ति को ही आधुनिक राष्ट्रवाद सबसे नहीं मानता। वह आधुनिक कल्याण और विविधता का भी समर्थक है। इसके अनुसार राष्ट्रीय कल्याण के लिए आवश्यक है कि आत्मज्ञानवेत्ता शक्ति और महत्वा अपनी तेज शक्ति का जन-कल्याण के लिए उपयोग करें। तत्पश्चात् वे आत्मज्ञानकृत 'सोकसप्रहृष्टवन' कमयोग से यह विशेष पल होता कि राजकीय और आर्थिक शक्ति का वित्तकीकरण होगा। धर्म का अतिरेक स्वार्थ और कल्याण के न ही ज्ञान हमने निर्मित आत्मज्ञान पुरोष का समाज में रहता और शासन-कार्य में असाक्षि ज्ञाना केन आवश्यक है। ऐसे पुरोष, सामाजिक कर्तव्यों की ही सबसे समर्थन के कारण उत्पन्न कर्तव्यों से समाज का परिपालन करते हैं। इस प्रकार की व्यवस्था को सगठित करने के लिए श्रमिक के एक मात्र घर जाय्य करते हुए स्वामी दयानन्द ने तीन सभाओं का उत्प्रेषण किया है। प्रथम, राजा-सभा, जहाँ पर विवेक राज-न्याय होता हो। द्वितीय, विद्या-सभा, जहाँ विवेक विद्या प्रचार और उत्पत्ति हो। तृतीय, धर्म सभाएँ, जहाँ विवेक धर्मोत्पत्ति और अधमभूति का उत्पत्ति हो। सामाजिक न के समाज में विकर उत्तम व्यवहार का प्रकाश में प्रचार करें। इस दयानन्दक पर्वीय सभा और प्लेटो तथा अमन दार्शनिक क्रिस्ट द्वारा प्रवर्तित दार्शनिक साक्ष्य की कल्याण न आधिक समानता अवश्य है। इन विचारों के कारण स्पष्ट है कि श्रमि दयानन्द द्वारा समर्थित आधुनिक राष्ट्रवाद सामाजिक अन्तुदय के साथ परमाध और नि श्रेयस् का ही अनुगोचन

[illegible]

विष्णुनामि देव सविन्दुरित्यानि पद्यान्तः । सप्तमः सप्त आ सप्त ।

[illegible]

ध्यानपूर्वक समझना चाहिए। यदि झूठी आधुनिकता का राग सुनकर हमने उन महान मानों को भुला दिया, जिसके आधार पर वह सनातन भाव जालि बनना जीवन बना रही है, तो वह समय इस देश और समस्त जगत के महान पराभव का दिन होगा। आज वेद और गीता की शिक्षाओं को धारण कर ही हम अपने यशमान को सुरक्षित और अपने भविष्य को आशाश्रित बनाना है। निःसन्देह हम केवल भूतकाल का गीत नहीं गाना है, वह कमजोरी का नहीं अपितु सामर्थ्य व क्षमताओं का काव्य है। भूतकाल की विराट शिक्षाओं को अपने जीवन में धारण कर हमें निजकी भविष्य का संजुग निर्माता बनना है। आज देश स्वतन्त्र है और आवश्यक है कि हम अपनी सांस्कृतिक दीक्षा से विभूषित हो अपना और सभ्यता का उद्धार करें। तत्परवेत्ता और वनपीथी महर्षि दयानन्द राष्ट्र-निर्माता के रूप में वही महान संदेश हमें दे गये हैं।

स्वामी दयानन्द के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनों दृष्टियों से भारतीय राष्ट्रवाद की व्यवस्था और प्रवृत्ति विषय है। इनके राष्ट्रवाद के व्यावहारिक समर्थन का ऊपर विवेचन किया गया है। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से उन्होंने हमारे सामने आधुनिक राष्ट्रवाद का चित्र प्रस्तुत किया है। तीन दृष्टियों से यह आध्यात्मिक राष्ट्रवाद आधुनिक राष्ट्रवाद से भिन्न है।

(क) आधुनिक राष्ट्रवाद मुख्यतः भौतिकवाद और धर्म निरस्ततावाद पर आधारित है। अपने देश के लोग का अधिकतम भाग में सुख उपभोग करना इसका लक्ष्य है। सुख के साधनों का अतिरिक्तित्व एकत्रीकरण ही इसकी दृष्टि में उत्तमि और अम्युदय का साधन है। विज्ञान और अर्थशास्त्र तथा तकनीक (Technology) के आधार पर संस्थागत समाज (Rationalized society) का निर्माण ही इसका वरन पुरुषार्थ है। अपने सभ्यता की संसृष्टि में सदाकाय अनतिक साधना का प्रयोग भी वह विहित करता है, क्योंकि सभ्यता का वैशिष्ट्य साधनों की अवरता और अधमता का क्षिप्त होता है। इसके विपरीत, आध्यात्मिक राष्ट्रवाद समस्त उत्तमि का दीपक है। अम्युदय की वह वरान विशेषता नहीं करता। अम्युदय की पूर्ण उपभोगता यह करना चाहता है। यदि अम्युदय इसे वनपीथ होता तो यजुर्वेद में कथानि विम्वनितिकत मान नहीं आता—

आवृत्तुं ब्राह्मणी ब्रह्मवर्षी वायव्यामासाष्टे राज्ञश्च शूर इत्यथोऽथिष्ठापी
महर्षी वायव्या वीष्ठी धेनुर्वीदान्वासाशु सन्ति पुरपिर्वीया मिष्णु
रमेष्ठा सधेपी बुवास्म यजमानस्य वीपी वायव्या निवासि विरायै न पञ्चा
वपदु कलवत्यो नःपीवधय पञ्चता वीक्षणेनो न वलनताम् ।

[यजुर्वेद, 22/22]

किन्तु वेद, यजुर्वेद और अम्युदय तथा रवि की प्राप्ति को ही आध्यात्मिक राष्ट्रवाद सर्वस्व नहीं मानता। यह आधुनिक कल्याण और विदित्यासन का भी समर्थक है। इसके अनुसार राष्ट्रीय कल्याण के लिए आवश्यक है कि आत्मज्ञानवेत्ता ऋषि और महर्षि अपनी देश शक्ति का व्यवस्थापन के लिए उपयोग करें। तत्परिवर्षी के आत्मज्ञानमूलक लोकसंस्थात्मक कमजोरी से यह विवेक कर होगा कि लोकवीय और आधुनिक शक्ति का नैतिकीकरण होगा। शक्ति का अतिरेक स्वार्थ और अशास्त्र के न ही जाय इसके निमित्त आत्मज्ञान पुरवों का समाज में रहना और शास्त्रन-काय में सज्ज हिंसा केना आवश्यक है। ऐसे पुरव, सामाजिक वरानों को ही सर्वस्व समर्थने के कारण उत्तम सधनों के समाज का परिशासन करते हैं। इस प्रकार की व्यवस्था को समर्थित करने के लिए ऋग्वेद के एक मान पर मान्य करते हुए स्वामी दयानन्द ने तीन सधना का उल्लेख किया है। प्रथम, राज्याय-समाज जहां पर विशेषतः राज काय होता हो। द्वितीय विद्याय-समाज, जहां विवेकता विद्या उपार और उत्तमि हो। तृतीय, यथा समार्थ जहां विवेकत धर्मोपनि और अधमहानि का उपदेश हो। सामाजिक काय में वे समार्थ मिलकर उत्तम व्यवस्था का प्रवर्धन में प्रचार करें। इस दयानन्दात्मक धर्म-समाज और प्लेटी तथा अधम वरानित किन्तु द्वारा प्रवर्धित सामाजिक शासन¹ की वरानता में आधुनिक समाजता अवश्य है। इन विचारों के कारण स्पष्ट है कि ऋषि दयानन्द द्वारा समर्थित आध्यात्मिक राष्ट्रवाद सामाजिक अम्युदय के साथ वरमान और नि धेवत का भी अनुपीठन

1. सामाजिक शासन—Philosopher king

करता है। आध्यात्मिक दृष्टिबोध को स्वीकार करने के कारण, यह किसी भी प्रकार का अंधाधिकारवादी या प्रयोग विहीन नहीं मान सकता।

(ख) आधुनिक राष्ट्रवाद यूरोप में उत्पन्न हुआ और प्रत्यक्ष तथ्या आधारित रूप में इसके उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद का समर्थन किया है। अठ्ठीवीं शताब्दी के तीन गुरु थे— स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृत्व। किन्तु इन विचार विभाग की उपधीनता करने में जाकबुन, फ्रांस में भी साम्राज्यवादी लूट पाट के घुप हिंसा किया। अमेरीकन स्वातन्त्र्य घोषणा पत्र में कहा गया था कि सभ्यता न भव मनुष्य की समान बनाया है। किन्तु इनके बादलू ने-डोव और दक्षिणी अमेरीका में समुक्त राज्य अमेरीका का आधिक साम्राज्यवाद कायम रखा। उनकी शताब्दी में वर्ष शेषलावाद के विपुल दशन का प्रथमन कर। यूरोपीय जातियां के स्वतन्त्र जातिका का एधि जातीयता पर ईश्वर प्रदत्त महत्व (White man's supremacy) घोषित किया। अठ्ठीवीं शताब्दी में जर्मनी के अधिनायकवादी कर्न हिल्डर न जर्मन जातिवादी राष्ट्रवाद शेषला का जारी स प्रविष्टान किया। इसे रूप में ही सही, यूरोपीय और अमेरीकी देशों की इनके जातिक, जातिक और राजनीतिक उत्पन्न में अवश्य ही प्रभाव बना हुआ और संसार में सम्पत्ता और संस्कृति का आर्थिक फैलाने वाले एशिया की के अपने से अधम मानने लगे। यह बीमारी जमी घुस रूप से नहीं गयी है किन्तु, यदि दशान्व का आध्यात्मिक राष्ट्रवाद मानव की समानता पर आधारित है। जाति रिज और राष्ट्र बीमारी क्षेत्र में यदि न समानता की विद्या दी। नि सदेह, भारतीय दृष्टिकोण में यह जातिवादी और आर्थिकमय दिवस का पत्र मनुष्यताता, मुक्तता शास्त्र और सामाजी होते हुए, काजी और हर्द्वार जैसे रविवाद के क्षेत्र में दशान्व न मुक्त आशा में प्रवेश की कि ज्ञान का जाति से कोई महान और नीच नहीं होता, अनितु मुक्त रूप और स्वभाव से मनुष्य शेषला या अधमता प्राप्त करता है। मरकर राष्ट्रवाद के यह न यह मानना करना कि वेदा की पद्धति का अधिकार मानवमान की है और बहुत प्रमा की अवधि करार करता भारतीय दृष्टिकोण में यदि सामाजिक स्वतन्त्रता का प्रथम घोषणा-पत्र कहा जाय तो उसमें यदा की आधुनिक नहीं होती। दशान्व की सम्प्री हठ अन्तर्गत भारतीय आकाश में मुक्त जमी और विहित स्वार्थ के प्रत्येकक प्रकाश पड़े। स्पष्ट है कि सामाजिक दृष्टि में भारतीय राष्ट्र की संस्कृत करने का यह महान प्रभाव का। यदि राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक की मानवीय स्वतन्त्रता नहीं मिलती तो के कदापि राष्ट्रानु रक्ति नहीं प्रदर्शित करने। किन्तु आधुनिक दृष्टि में राष्ट्रवाद की संस्कृत करने का सदेह देश की यदि मानव-अवमानता तथा साम्राज्यवाद का समर्थन नहीं चाहते थे। वे अपने प्रपा में आय सब बीम प्रकटवी राज्य की स्थापना का मदद दे रूप है। किन्तु उत्पन्न और हिंस में जारी विद्व का प्रत्यक्ष का अनुकर्षी के कदापि नहीं कथना चाहते थे। उनकी दृष्टि में समता मनुष्य एवं ही ईश्वर की प्रजा है। ईश्वर ही मय नर नायिका का पिताका और अर्पित है। अतएव हिंसमय दशन का के समर्थन नहीं कर सकते थे। 'बुध'की दिवसप्राम' का उत्पन्न सदेह दशन, उत्पीड़न और अनुपू दन का सदेह नहीं है। समस्त दिवस में प्रमयुक्त, 'यावदूत, यवी समर्पित व्यवस्था स्थापित हा— यही इसका मतलब है। और, धर्म का अनुशीलन कर ही देश और विदेश में मानव हठ ही बनता है। स्वामी दशान्व ने बताया है कि शब्दों कीलुक्तक मयायोग व्यवहार करना चाहिए। इस प्रकार विहित है कि उत्पन्न आध्यात्मिक राष्ट्रवाद मानव-अमानता और भ्रातृत्व का बीमक है। यह सत्य है कि मानव-समठन की शक्ति में आध्यात्मिक राष्ट्रवाद एक विद्या अधम बरम है। इसका लक्ष्य है मानवमान के साम दशात्मकता, राष्ट्रमय मनुष्यों के साथ दशान्वकता और उत्पन्न एक प्रत्यक्ष कायदा।

(ग) आधुनिक राष्ट्रवाद या राजनिक आधार नीतिवाद और जदवाद है। जर्मनी और इटली के उस राष्ट्रवाद में अत्यंत अधिनेकवाद और मानववाद की प्रभावता थी। अनेक यूरोपीय विचारका ने मानव की मानता प्रमाण और सत्य प्रमाण घोषित किया। इस प्रकार जल-मानव की भावनाका की उत्पन्नने का के प्रथम करने थे। इनके अनुसार बहुत मेल की प्रजा और जल हिं ही पत्र बन्य है। जनता की किसी भी प्रकार मेल द्वारा प्रकटिक्त भावा पर बाद विवाद और राज्य मयन नहीं करना चाहिए। जर्मनी और इटली के राष्ट्रवाद में जित भाववाद और मानववाद

का प्रचार किया गया, उनके पीछे यूरोपीय संस्कृति की बुद्धिमिष्ट बातों की नष्ट करने का कुत्सक क्षेप हुआ था। कोई भी संस्कृति और सम्पत्ति केवल मानववाद पर कदम नहीं ठिक सकती है। सोन विवेचन-बुद्धि भी भी अद्वितीय रूप से आवश्यकता है। वैदिक मनोविज्ञान के मानव और बुद्धि के सम्बन्ध और समीकरण का संदेश है। अन्वेष के महा गया है

समानोप आनृति समाना हृदयानि व ।

समानमस्तु भी मनी वया व सुखहामसि ॥

[अन्वेष, 10, 191, 4]

उपनिषद् के यदि एक ओर मनुष्य की कर्म, संकल्प आदि से मुक्त माना गया है, तो दूसरी ओर मनुष्य को विज्ञानज्ञान और विचारधारा की बनने का भी उपदेश दिया गया है। अतएव, स्पष्ट है कि आध्यात्मिक राष्ट्रवाद विवेकवाद सशक्त है।

इस प्रकार, संस्थापित दृष्टि से वाप आश्रित के आधार पर महुवि दयानन्द ने उस आध्यात्मिक राष्ट्रवाद और समाज का विश्लेषण किया है, जो अंधवाद के स्थान में मानववाद की, मानव अंधमानस के स्थान में मानव समाजता को और निरन्तरविवेकवाद के स्थान में बुद्धिवाद और मानववाद के सम्बन्ध को प्रथम देता है। महुवि दयानन्द का यह आध्यात्मिक राष्ट्रवाद आज की विदेश राजनीति को एक जटिलता चुनौती है। यह आध्यात्मिक राष्ट्रवाद आरम्भ होता है देशत्व मानवी के स्वतन्त्रतापूर्ण समझ के और इसकी परिधि मनुष्य के निम्नलिखित मान द्वारा उपस्थापित आवश्यकता में होती है—

हरे हरेमा मित्रस्य मा यक्षुषा सर्वानि भूता निरामीषाणाम् ।

मित्रस्याहं यक्षुषा सर्वानि भूतानि समीक्षे विचरम यक्षुषा समीक्षायहे ॥

[मनुर्वेद, 36/18]

मनुष्यवाद और अन्तर्गत आलोचक सीमा पर प्रत्यक्ष करना चाहते हैं और इसी कारण के आशयवाद की संभावना करते हैं। किन्तु, प्लान में रखना चाहिए कि सम्बन्ध आदर्शों के धारण करने से ही वास्तविक सफलता मिल सकती है। क्या हिन्दू और यूरोपीय के बीच व्यावहारिक उपयोग और साक्षात् की कमी थी? किन्तु उचित आदर्शों के सम्बन्ध परिलक्ष्य के अभाव में खराब पतन हो गया। जब हम आदर्शों का विचारपूर्वक स्वीकरण करते हैं तो इससे बड़ी गहरी शक्ति उत्पन्न होती है। शक्ति का भी वास्तविक स्रोत हमारे मन में ही है। महारत्ना माफी की शक्ति उनसे परिणत बन व निहित थी। कहते हैं कि मनुष्यवाद की नेपोलिमन की बड़े-बड़े सन्ने देखा करता था और इस प्रकार उसको बच करने की प्रेरणा और शक्ति मिलती थी। उचित कल्याण सामक आदर्शों की ग्रहण करना और ग्रहण करने के अनन्तर उनका विचारधारा करना ही कमजोर का वास्तविक स्वरूप है। महुवि दयानन्द आध्यात्मिक राष्ट्रवाद के पैगम्बर थे। भारतीयों की कुछ किन्तु प्रेरणक शक्ति में उनका विश्वास था। वे चाहते थे कि पुनर्जीव समकक्षी यदि आवश्यकता का निपाचयन हो और देश और जनता में संभव कल्याण की सिद्धि हो।

जित प्रकार सभी के आवश्यकता से परासीली राष्ट्रवादि की प्रेरणा मिली थी और वास्तव की शिलाओं से सभी अशक्त की बल मिलता है, उसी प्रकार महुवि दयानन्द, लोकमान्य तिलक और महारत्ना माफी के आध्यात्मिक राष्ट्रवाद से हुआ यह समझ भारत उन्नत और स्वतन्त्र हुआ है। सभी-कमी कुछ मादमा की ऐसी घटा होती है कि यदि महुवि दयानन्द आध्यात्मिक राष्ट्रवाद के पैगम्बर से तो चाहते इस्लाम और ईसायित का संस्थापक प्रकाश में नये खण्डन किया है? ऐसी बात स्वाभाविक है। मनुष्यवाद नेहरू भी की ऐसी घटा हो गयी और इसमें कोई आश्चर्य नहीं। किन्तु विचारने की बात है कि महुवि दयानन्द केवल कुछ मित्रताओं का खण्डन करते थे। मनुष्यो में उनको कदापि घृणा नहीं थी। दीर्घनिष्ठ और मर्मस्पर्शित्व का अध्ययन करने वाले विचारार्थी जानते हैं कि भगवान बुद्ध ने जब मायावस्तुविषय का निराना उप खण्डन किया है। निरन्तरिष्ठ में तो ऐसी भी घाटा आती है जिसमें बताया है कि पया के धारण-अभुषो की धारणीय पराजय देने में बुद्ध ने महुवि-यल का भी प्रयोग किया था। किन्तु क्या इससे बुद्ध की महारत्ना सिद्धि हो जाती है? स्वामी दयानन्द का ऐसा विचार था कि इस्लाम में धारण के अन्त मनु-

हम का प्रकार दिया है। प्रत्यक्ष ऐतिहासिक दृष्टि से यह बात को मानना है कि इस्लाम ने प्रकार में हिंसा और दमन का हथकण बड़े जोरों से रखा है। यदि हम सखीका आन्दोलन, औरतों के और अज्ञान के जीवन शक्ति का तुलनात्मक अध्ययन करेंगे तो यह विषय स्पष्ट हो जाएगा। ईसाइयत ने भी प्रकार में कृपा, हिंसा और कीमतीका का काफी प्रयोग हुआ है। जिस तरह की और कदमों ने साथ उसी और दक्षिणी अफ्रीका के आदिम निवासियों का ईसाई धर्मोपनिवेशी शक्ति ने खिलार दिया और वह पराधीनता दिया, वह विषय भी इतिहास के विद्यालयों से छिपा नहीं है। इन बातों को देखते हुए श्रद्धा दयानन्द पर यह आरोप करना कि वे देवी से और बदला देने की उनकी भावना थी, जहाँ विष्णुवाद उपवासालापर और विचारों रोम्बा रोला में बहुत है, कथन अशुद्ध है। जब से-जब भारतीयों ने सामोरे की यह विधि है कि श्रद्धा दयानन्द ने किस विचारों वाले हुएारे की भी छात्रा कर दिया। एसा अनुभव आत्मसाक्षात्कार शुद्ध माननाका से प्रभावित होकर जिस प्रकार कोई बात कर सकता था ? दयानन्द ने इस अतीति-धर्मोपनिवेश की पटना पर स्वयं महत्त्व का भी बराबर बढ़ा प्रयत्न करते थे। श्रद्धा दयानन्द बुद्धिवाद और तब की बसोटी पर समस्त विचारधाराओं की ताकत थे, इसलिये सत्यता प्रकाश में मिलित उन सत्यता के बावजूद न तो स्वामी दयानन्द के राष्ट्रवाद पर कोई और न तो 'धर्मोपनिवेशवाद' द्वारा प्रयत्नित उनके विचारधारावाद पर कोई धक्का लगाता है। श्रद्धा दयानन्द विद्यापीठ उपनिवेशवादी धार्मिक व्यवस्था का भारत और भारत में प्रकार और प्रकार चाहते थे। जब देश राष्ट्रवादपर ही और सत्य हो सभी सत्य और पवित्रता का दिव्य मान्य जगत में सर्वोपरि हो सकता था। भारत में आध्यात्मिक राष्ट्रवाद की पुष्टि कर ही विश्व में आत्म प्रकाश और प्रकाश हो सकता था इस प्रकार का विचार विचार निरन्तर ही उद्दीप्त की शक्ति के महान् उद्घाटन की श्रद्धा दयानन्द की भी स्थान दिया है। दयानन्द एक ही साथ धार्मिक निहित शक्ति के विरोधी और मानव की एका के प्रकार थे। उद्दीप्त की शक्ति की महान् राष्ट्रवाद के दिव्य की श्रद्धा दयानन्द की पुष्टि में आ सकता है।

महर्षि दयानन्द के राष्ट्रवाद की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह आदिम धर्म के दीक्षित था। जिस प्रकार आदिम धर्म के अन्तर्गत के खरीर मूल्य हो जाता है, सभी प्रकार आदिम धर्म नहीं रहे पर शक्ति और राष्ट्र का पतन हो जाता है। राष्ट्रवाद के लिए आदिम धर्म अनिवार्य है। अनुभव की अपने सत्यतापर धर्म का प्रथम बीच धर्म के क्षेत्र में ही होता है। यूरोपीय महायुद्ध (Reformation) में जब धार्मिक क्षेत्र में आदिम स्वतन्त्रता की घोषणा की तो उसका सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र पर भी बड़ा प्रभाव हुआ। आदिम धर्म के ही शक्तियों का पुनर्गठन परिणाम होता है। भारतीय सत्यता का यह सत्यता सिद्धांत है। शक्ति का सामाजिक क्षेत्र आन्तरिक है। धर्म मान के ही उस आन्तरिक शक्ति का ज्ञान लगता है। भारत में अनेक सत्यताईं आईं और निरुपेय, किन्तु आदिम धर्म को धारण करने के कारण ही भारत में सभी जीवन शेष रह गया है। धर्म के क्षेत्र में ही इस राष्ट्र की अपनी विचारधारा शक्ति का ज्ञान हुआ है। जिस दिन पराधीन और पराभूत भारत की श्रद्धा दयानन्द ने यह वैदिक सन्देश दिया कि समस्त जगत को धर्म देना है वह दिन एक प्रचण्ड शक्ति का संचार इस देश के लोगों की धर्म दिव्य में हुआ। पराधीन देश के विराट् सोचा ने अपने विश्वव्यापक जड़ों और नाम का ज्ञान ज्ञान किया। इस प्रकार का आत्मविश्वासपूर्ण सन्देश इसलिये दयानन्द प्रयत्न कर सकें क्योंकि उनमें स्वयं प्रचण्ड आत्मविश्वास था। अनेक बार श्रद्धा की शिखरालय आक्रमण की धमकियाँ दी गयीं, किन्तु अनेक नाम हीन न हुए। वह सत्यता कर लिया है वह बराबर साधारण लोगों की धमकी के विरुद्ध सत्य सत्य करता। श्रद्धा दयानन्द ने सत्यता कर अपने विरोधियों की कहा कि भारत अजर और अमर है और भारत अविनाशी ज्ञान ने विश्वास रखने के कारण विरोधियों के समस्त आक्रमण श्रद्धा की तेजस्वी हस्ता के सामने जगमगाते हुए। दयानन्द ज्ञान के जीवन मूल्य के और इस प्रकार का ज्ञान ही पराधीन शक्ति का स्वतन्त्रता का नाम दे सकता था। कोई भी सामाजिक शक्ति श्रद्धा की अपने साधोचित धर्मपूर्ण मान से नहीं हटा सकती थी। भारत का ज्ञान की उनकी सत्यता विचारित नहीं कर सकता था। उनकी शक्ति और शक्तिशाली अन्तर्गत में। इस प्रकार के पुनर्गठन का ज्ञान धारण और जीवन ही इतिहास में सभी शक्ति को ला सकता

है। हम सोच जब ध्वनि बिस्तारण काय का प्रयोग कर राष्ट्रमूर्ति खीरता और तेजस्विता का संदेश बिस्तारते हैं, तब भी हमारे अन्दर समझौरी और समझौले की भावना रहती है। स्वामी दयानन्द की परिभाषा में धर्म और सत्य के बिना दूसरे राज्य का समझौता नहीं हो सकता था। अंधाधुन, अन्धकार और पाषाण की सहायता से हमें किसी भी चीज़ का पता न था। उनकी दृष्टि में असाध्य से बगावत और अनाचार का समय ही अनुपलब्ध है। इसी विराट आदर्शवाद पर उनका अपना जीवन निर्मित हुआ था। किसी-किसी क्षण दयानन्द एक आध्यात्मिक अराजकतावादी के रूप में हमारे सामने आते हैं और तब वे कहते हैं कि वे किसी सांसारिक शक्ति को नहीं मानता, परमान ईश्वर ही मेरा राजा जीर प्रभु है। ऋषि ने प्रबन्ध आत्मवश से प्रभावित होने के कारण ही स्वामी दयानन्द ने दहली में अंग्रेजी सेवा की शर्तों को सामने अपना कसबपन खोल दिया और बाला साजसज्जाय वश के शज़ार में अमर दाखिल हो गये। निराला-देह, आने वाली शताब्दी महर्षि दयानन्द को मोछ में आध्यात्मिक राष्ट्रवाद के महान पैरम्बर के रूप में, उन्नीसवीं शताब्दी के भारतीय नेताओं में, शकशेष्ठ स्थान देती।

रवीन्द्रनाथ, आत्म-स्वातन्त्र्यवाद तथा मानव-एकता

भारतीय साहित्यिक इतिहास में रवीन्द्रनाथ ठाकुर (1861-1941) का अविस्मर्य महत्त्वपूर्ण स्थान है। अपना कृतिषा के बर्षाष्टम में बारण, भारतवर्ष की सभ्यता के हृदय में उनका अमर स्थान है और रहता है। वे मुख्यतया साहित्यसंस्था न। वे उस नम में साहित्यिक नहीं के, जिसमें हृदय कविता, कथाएं संकर प्लेटो, हेगेल, बपला की साहित्यिक मानते हैं। अर्थात् जिस प्रकार सत्ताशासन, राजशासन, तन्त्रशासन अथवा अध्यात्म विषय पर एक मुक्तमूर्ति, सर्वत्र विचारधारा दुनिया का प्रथम मोटि के साहित्यिक के हृदय प्रदान की है, उस प्रकार की कोई सत्ताशासन विचारधारा हृदय रवीन्द्र नाथ में नहीं प्राप्त होती है। तथापि की अर्थात् न हम उनमें साहित्यिक सत्ता प्राप्त होता है (क) प्रकृति की उत्पत्ति के विषय में साहित्यिक उनमें नहीं उपस्थित करते हुए की मानव जीवन के विषय में प्रथम महात्मा साहित्यिक अथवा ही बार्द विराट सन्देश हृदय देता है। इस विराट जीवन-दर्शन में अन्तर्गत में, साहित्यिक महत्ता की उपस्थिति कर ही नहीं सकता। मानव जीवन के प्रति एक अव्यक्त कुतूहल और उनके रहस्य के उद्घाटन का एक सत्ता प्रयास हृदय रवीन्द्रनाथ ठाकुर के कविता में पाते हैं। अतः, वहाँ तक जीवन दर्शन का प्रारंभ है, रवीन्द्रनाथ की कृतिषा में इसकी अवस्था प्राप्ति होती है। (ख) अर्थात् जीवन-मानव का बार्द जीवन-वाद, विचार, सत्ता विकट रूप रवीन्द्र नाथ में हृदय नहीं दिया है, तथापि दर्शन के क्षेत्र में उनकी कुछ कृतिषा अन्तर्गत है। उपनिषद्वाद, 'मनुष्य का धर्म' (Religion of Man) 'साधना', 'व्यक्तित्व' (Personality), 'समन्वय-एकता' (Creative Unity) आदि। उनके धर्म राष्ट्रवाद (Nationalism) में उनका इतिहास-दर्शन सत्ता राज्य-दर्शन हृदय अन्तर्गत प्राप्त होता है।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर का प्रतिष्ठा समन्वयवादी था। उपनिषद् के आध्यात्मिक उपलब्धि की विचारधारा में के प्रारम्भ में ही प्रभावित थे। वह मानते हैं कि अपने निष्ठा में विचारधारा के रूप में उन्हें उपनिषद्-प्रोक्त सत्ता के प्रति अनुसंधान प्राप्त हुआ था। बर्षों के रहस्यवाद और वैयक्तिकत्व के प्रतिवाद का उन पर प्रभाव था। अन्तर्गत के रहस्यवादी साधुत्व बाबु (Bauli) लोग का भी उन्होंने अपने धर्म में की सत्ता में उपलब्धि किया है। किन्तु, धर्म की परम्परा में प्रभावित होने के साथ ही-साथ पश्चिमी ज्ञानधारा का भी उन पर प्रभाव था। पश्चिमी साहित्य का उन्होंने महत्ता अध्ययन किया था, मुसलमान दर्शन, सोनी आदि का। उनका वैयक्तिकत्व का अध्ययन महा समन्वय था। किन्तु पश्चिमी साहित्य और साहित्यिक का अध्ययन करने के बाद भी, रवीन्द्रनाथ भारतीय अधि परम्परा और अधि परम्परा का ही हृदय विषय स्वीकार करता है। समन्वयवादी होने हुए भी साध्य का वे वैयक्तिक स्वीकार करते हैं।

उपनिषद् में अधिमा का मूलभूत सन्देश था अन्तर्गत का सत्ता। 'ईशानान्धमिदं सर्वं' पश्चिमा अन्तर्गत अन्तर्गत। अन्तर्गत—साहित्यिक अन्तर्गत ही अथवा साध्य—उत्तर आध्यात्मिक विषय सत्ता का अध्ययन होता था। अधिमा के अन्तर्गत में ही अधिमा की हृदय सत्ता का 'मान हुआ और भारतीय सत्ता में ही अधिमा के अन्तर्गत की अधिमा सत्ता की अधिमा सत्ता का प्रयोग कर हुए किया। रवीन्द्रनाथ की अधिमा ही अधिमा-सत्ता का सत्ता होता है। वह अधिमा का अन्तर्गत अधिमा ही अधिमा सत्ता का सत्ता है। अधिमा अधिमा में न अधिमा अधिमा का अधिमा नहीं करता। अधिमा की

अनुभूति ही इसका सर्वश्रेष्ठ द्रव्यमान है। सबन उसकी पुण्यतत्त्व के प्रापक्यादन का दर्शन होता है। बाह्य जगत में भी आत्मा का दर्शन करना, उनके अनुसार, प्राप्य सत्सृष्टि की विशेषता है। 'महान् पुरुष' या 'पुरुष विशेष' की अन्वेषना और व्यासना और उसके आधार पर मानव जीवन का निर्माण, भारतवर्ष के साधकों का महान् लक्ष्य था। 'वेदाहमेत पुरुष महान्' आदिशिवदर्पण तमस पर स्यात्—इस वेदवाक्य से रबीन्द्रनाथ आत्यधिक प्रभावित थे और परस्पर विलक्षण, पुण सत्ता की बेचन पुणजान न मानकर वे उसे पुरुष मानते थे। अद्वैत वेदांत ने निर्गुण ब्रह्म के स्थान में उड़ोने परम पुरुष की विचारधारा की समर्थित किया।

इस परम पुरुष का विलक्षण प्रकाशन मनुष्य के रूप में हो रहा है। मानव केवल भौतिक तत्त्वा का समग्र नहीं है। उसके अंदर ईश्वर अवस्थित है। प्रत्येक रूप उस परम पुरुष का प्रकाशन ही है। मनुष्य, सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ परिचायक है। जगत में विकास-क्रिया ही रही है। इस विकास क्रिया की पुनतम परिणति मानव के रूप में हुई है। यदि नीचे और अद्वैत अतिमात्र (Superman) का सिद्धांत उपस्थित करते हैं, तो रबीन्द्रनाथ दिव्य मानववाद ने प्रवर्तक हैं। विद्वज्ज्ञानमय न साक्षात्कार करना हमारा पुराण है और इसने लिए सबन हमें आध्यात्मिक एकता और समरसता का साक्षात्करण करना है। श्री पुरुष है, यह ब्रह्म है। सबन ब्रह्म का अनिवार्यता ही रहा है, अतः सबसे साथ एक आध्यात्मिक नृप के अवशिष्ट होना चाहिए। भारतीय अद्वैत वेदांत ने सच्चिदानन्द की सत्ता की घोषणा की, किन्तु उसने साध-साध अनेक विचारों जगत की भाषा समझने लगे। साक्षात्कि अन्वेष और पारिवारिक समृद्धि को दिव्या समझने के विचार का जन्म हुआ। 'ब्रह्म सत्यम्' के साथ 'अर्वाभय' विचार की समर्थित हुआ। रबीन्द्रनाथ साक्षात्कार के दर्शन का ही हृदय से खगल करते हैं। (क) यह ब्रह्म की पुणता का विरोधी है। पुन सत्ता, सृष्टि का अवलोकन करने पर नहीं प्राप्त होती है। सब कुछ पुन का भय है। पुणता कोई गणितात्मक रेखा नहीं है। नाना अनुभूतता की पुणता न सम्बन्धित प्राप्त होती है। सबभूता-व्यवस्था ही नाना रूपों में प्रकाशित हो रहा है, अतः नानात्व की भ्रम या दिव्या मानना ठीक नहीं है। (ख) मान्य हुआ की कहीं से जान और जगति के लिए मनुष्य कोर उपलब्ध करता आ रहा है। इस विद्यालय जगत्परत परिश्रम के द्वारा सम्प्राप्त सामग्री की सामा या भ्रम कहने का कोई कारण नहीं है। अतः अपने साथ 'साधना' में साक्षर ने कहा है कि परिहार, समाज, राज्य, कला, विज्ञान और धर्म के क्षेत्र में हमें पूर्णात्मा का साक्षात्कार करना है। साधना और साक्षात्कार के द्वारा हमें विलक्षणत्व और सामान्य का पुन बोध होता है।

परम पुरुष या पूर्णात्मा ने साक्षात्कार का साधन साधन और सम्भवतः जीवन में कीन और निदिध्यासन को ही समझ आता था। किन्तु, रबीन्द्रनाथ के अनुसार, मानव जीवन के अवस्थि—रमणीयता और साधन—की उपेक्षा करना ठीक नहीं। सृष्टि का विलन करते हुए आग्नेय में इसे विद्यालय भाव्य ब्रह्म गया है। 'अथ देवदेव साध्य न समार न बोधति।' ऐसे ही सौन्दर्यमय का पुन सौन्दर्य के विचार का समर्थक था। रबीन्द्रनाथ का कवि हृदय सौन्दर्य की विद्यालय मनुष्य वलन का भय हुआ है। पूर्णात्मा शुष्क विविधता नहीं है, यह परम शिव है और अन्त आनन्द के भय है। सौन्दर्य उसके मानव का प्रकाशन है। विद्या ही अधिक मानव अपनी साधना का विस्तार और वेदना का प्रसारण करता है, जगत् ही अधिन यह पूरा सौन्दर्य के प्रति बढ़ता है। वयस्तिन अनुभूति की शीघ्रतम अवस्था में ही हम ईश्वर का दर्शन होता है। इन अवस्था की प्राप्ति के लिए हमें साधना के साथ साधारण करना है। एकांत में बैठकर उपेक्षा करना ठीक है, किन्तु नहीं संभव नहीं है। हमें मानव-जीवन की एका की भी हृदयमय करना होगा। इस विद्यालय समृद्धि को अपनी सेवा और साधना की अवधि अर्पित करनी होगी। पूर्णात्मा का बोध करने के लिए समस्त मानव जीवन और समस्त विश्व में हम एका का दर्शन करना होगा। इन एका का अधिक दर्शन हम विद्व-सौन्दर्य का अधिक दर्शन कराल है। इस प्रकार सृष्टि का विस्तार और साधना का विस्तार साथ-साथ होता है। देवत्व और मानवत्व का इस प्रकार सम्बन्ध होता है। अपने साथ 'सज्जनात्मक' एका में रबीन्द्रनाथ ने बुद्ध के जीवन के बलिदान का समर्थन किया है। बुद्ध ने 'शुद्ध मद्' के नाम का उपदेश दिया और श्रेय की साधना करने का, **पञ्चा**।

‘धर्मभाव’ की व्याख्या करते हुए डाकुर का कहना है कि यह अनन्त ‘मान और प्रेम का सम्मेलन है’। उसके अनुसार, शांति सिद्धांत का निष्कर्ष नानाजनों के ‘बोधि हृदय नामक विचारधारा में भी हुआ है’।

दिव्यमानववाद पर अपना देखना और मानववाद के सहयोग और सम्मेलन पर बल देना ही डाकुर के दर्शन का आधार है। हठ और गेहे ने जिस मानववाद की जमीनी में प्रवृत्तता की थी, उसमें मानव की क्षमताएँ बाधित पर अतिरिक्त बल की दिशा में बढ़ी, किन्तु उसमें देखने के लिए कोई स्थान नहीं था। दूसरी ओर, दिव्य मानववाद का मूल स्तंभ है—‘समोऽहं समभूतेषु’। शरीर की दृष्टि से गरणधर्मा होते हुए भी मानवता के स्तर में समुप्य अन्तर है। समस्त नैतिक शक्तियाँ लक्ष्यित होकर भी इस बिलक्षण अवस्था का गन्त नहीं कर सकती, जिसका सांसारिक प्रवृत्त मानव जीवन में ही रहा है। इस प्रकार पुनर्जाता का भी मानवीयता प्रकट रूप है। ‘रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने पूरा सत्य का मूलभूत मानव रूप प्रस्तुत किया है। अपने धार्य ‘मानवधर्म’ में उन्होंने कहा है ‘पूर्ण सत्य मानवी है, यह यही है जिसका हमें ज्ञान है, जिसके द्वारा हम प्रभावित होते हैं, जिसकी हम अधिष्ठाता करते हैं’। ‘सत्य मानव की, जो सृष्टि है, उसकी प्राप्ति, उसकी अनुसृष्टि और अपने स्वभावमक धर्मों के द्वारा जगत् प्रतिनिधित्व करना चाहिए। मानव सम्पत्ता, परस्पर मानवता के सत्त अनुसंधान का इतिहास है। पूरा सत्य ही पूरा मानव है और वह अनन्त है। शूद्र व्यक्तिवाद काही भी विचार नहीं हो सकता’। शूद्र व्यक्तिवाद के कारण ही दुष्ट और पाप की उत्पत्ति होती है। सम्पूर्णता की छोड़कर सीमित की उपलब्धता करने के कारण असम्यक् और तथ्य उपनिषत् होती है। पर ‘रवीन्द्रनाथ ठाकुर के दर्शन में मानव होने आध्यात्मिक पुनर्जाता के सिद्धांत का समर्थन मिलता है। पुनर्जाता वैचल मानव नहीं है, वह अनन्त है। जो मुक्त है, वह अनन्त सीधों का पत्नीभूत रूप है। जगत प्रत्येक क्षण में सत्य की उत्पत्ति कर ईश्वर की छाया दे रहा है। मनु मानव जीवन प्रवाह का ही एक सामयिक आविर्भाव स्वरूप है। परम आनन्द की म सम्पन्न के कारण ही पाप और दुष्ट उत्पन्न होते हैं। इस विचार के समर्थन में सम्बंध विच्छेद करना ठीक नहीं। बचपन, मैत्री, सहानुभूति, सहयोग के द्वारा हमें पुनर्जाता का बोध होता है। मनुष्य, शूद्र, आकाशा, विष्णु ने करने आत्मप्रसारण का निमित्त पाप ही सदैव है। इस प्रकार हम देखते हैं कि यदि आध्यात्मिक सदैवता का सत्य ‘रवीन्द्रनाथ ठाकुर की उपनिषद् में मिलता है, तो उसका विवेचन करने में वैचल धर्म और अनन्त बोधधर्म के विचारों का भी आशय देते हैं। विज्ञान द्वारा समर्थित ‘नियम’ का विचार भी उसकी समीक्षा है, किन्तु नियम की सीमाओं और ‘पुनर्जाता की’ उन्होंने ईश्वर मानव के अनिमित्त माना है। नियम की बलवत्ता की कमजोर मनीषात्मक मानव्य रवी प्रेरणा से उन्होंने आध्यात्मिक माना है। धर्म-धर्म परिवर्तन के द्वारा प्रकृति प्रवृत्ति की सहीय कल स्वर्णिक का आधुनिक परिवर्तन दे रही है। अनन्त शूद्र रूप के द्वारा तथा शूद्र मानव और प्रेम के द्वारा हम सत्य की आध्यात्मिक एकाता का बोध प्राप्त करते हैं। सत्य की प्राप्ति करने के लिए जिस प्रकार सत्य का समर्थन के मिलता है और जिस प्रकार ‘अनेक कम मुखा’ यह प्राप्ति ईश्वरमिष्ट में मिलती है, उसी प्रकार की नैतिक विचारधारा का आशय कर रवीन्द्रनाथ भारतीय परम्परा का समर्थन करते हैं।

पूरा पुनर्जाता या परस्पर अनन्त सीधों में निवृत्त करने के परस्पर मानव इतिहास की नैतिक व्याख्या में रवीन्द्रनाथ का विश्वास है। साक्षर सत्य, इतिहास में अपना प्रवृत्त करता है। सीमा, सीमा की बल नहीं करती, उसकी अनिमित्त आत्मिक रूप में ही सही करती है। अनन्त, सत्य, पत्नीभूत वेचल मानव का आधार प्रवृत्त अनन्त में ही रहा है। सत्य का इतिहास और मानव इतिहास परस्पर सत्य के लक्ष्य प्रवृत्त अनुसंधान के आधार हैं। यह अनिमित्त आध्यात्मिक सत्य की है, यह नैतिक नियमों का दूसरे प्राप्ति है। नित्य नियमों के अभाव में अध्यात्म एक विविध रूप मान रहा जाता है। यूरोप के आधुनिक इतिहास में यह नित्यता का अभाव माना जाता है। निम्न-यह यूरोपीय सम्पत्ता का सत्य आध्यात्मिकता में प्रवृत्त था। महान साहित्य की दृष्टि कर, सत्य की प्रवृत्ति कर और सामाजिक तथा राजनीतिक आदर्शवाद की जगह देकर यूरोप में आध्यात्मिकता का परिवर्तन दिया था। निम्न, आधुनिक यूरोप में समाजवाद का प्राप्ति है और

मानव-जीवन का समुचित उत्थान करने वाले विचारों का बहुत अभाव है और यदि उनकी कुछ दूर तक प्राप्ति है भी तो उसकी निष्ठा में निष्पत्ति नहीं होती। यूरोप में नैतिकता के अभाव का दूसरा प्रमाण साम्राज्यवाद ने नारसीय क्रूरों ने हाथ प्राप्ति होना है। एशिया और अफ्रीका को कमजोर जनता का अकामन कर यूरोप अपनी उदरार्थ समष्टि प्रादधिकता का परिचय दे रहा है। यूरोप न विज्ञान की उपासना भी और इस प्रकार विज्ञान समष्टि वास्तविक सम्मत्ता की उत्पत्ति हुई, जिसमें जन और समष्टि की अद्भुतपूज वृद्धि हुई। किन्तु इससे राज्य और पूँजी का ही विद्वत् विवर्धित रूप हमें देखने को मिला। नैतिक और साम्प्रदायिक मानवाभावा का विद्वत् प्रतिनिधित्व जिस व्यक्तित्व के होता है उसका बलिदान, विज्ञान अमृत वैधानिक शक्ति के नाम पर दिया जा रहा है। एशिया के भूमि के रूप में रबीन्द्रनाथ ने नैतिकता के ह्रास पर यूरोप को कड़ी चेतावनी दी। यह ठीक है कि यूरोप ने सामाजिक श्रुति, राजनीतिक स्वतन्त्रता तथा कानून का महत्त्व प्रवर्धित किया है, किन्तु साम्राज्यवाद के सीमन्त और दारण क्रूरत्व ने नारण यूरोपीय सम्मत्ता साम्प्रदायिक मानव एकता और विश्वमैत्री की मानवाभावा से दूर हट गयी है। यूरोप की सम्मत्ता की उत्पत्ति मुगल के सहरी के हुई, जो सहर वही-वही दीवारों के बिदे हुए थे, अतः उसी समय सीमित जन क्षेत्र के आपार पर ही सोचने की आदत यूरोप की पड़ी। इसी कारण, आधुनिक यूरोपीय सम्मत्ता समष्टि हृत्पापुम क्षमता और समष्टता का रूप उभरित करती है। यह सम्मत्ता राजनीतिक है और राज्य, व्यक्ति नहीं, इसके ध्यान का नेत्र स्थान है। यह वैधानिक सम्मत्ता है, मानव-सम्मत्ता नहीं। इस प्रकार के कुशक का कारण यह है कि यूरोप ने अपने मानवता का, राष्ट्रवाद की समष्टि शालव सीमा कर, बाध कर डाला है। अब कोई अन्तर्गृह केवल राजनीतिक और आर्थिक रूप धारण कर लेता है, अब राष्ट्रवाद का जन्म होता है, आधुनिक युग में रबीन्द्रनाथ राष्ट्रवाद के सबसे अवशस्त आलोचक थे। राष्ट्रवाद को वे एक प्रकार का मत्ता कहते थे। राष्ट्रवाद का अवलम्बनाधी परिणाम है साम्राज्यवाद और साम्राज्यवाद देश के सम्मत्ता का पूर रूप है। यूरोपीय सम्मत्ता, इसी साम्राज्यवाद के कारण, पतनीयुक्त है। इसी दुरवस्था अब बचन करते हुए रबीन्द्रनाथ ने लिखा है

“पश्चिमी समुद्र के किनारे

चिताओं से लिप्त रही है

आगिरी विचारों

एक स्वार्थी पतनी-मुख सम्मत्ता ने चीन के पत्नी हुई।

शक्ति की उपासना

मुड़लेची और फकिरुमी ग

हुम्नायी उपासना नहीं है,

आ सकार के शालनवर्ता।”

इस साम्राज्यवादी पश्चिमी सम्मत्ता से पाप पाप का संदेश उद्घात एशिया का दिया। पश्चिमी राष्ट्रवादी सम्मत्ता समय और विजय पर आधारित है। एकता और सहयोग की वे मानवार्थ, जो साम्राज्य के उत्पन्न होती हैं, उनका दलन अभाव है। जापान अपनी प्राचीन और मध्यवर्ती नैतिक साम्प्रदायिकता को छोड़कर यूरोप का आधाधुकरण कर रहा था और इस कारण शत्रु के उसका विरोध किया और मानवता की उपासना करने का संदेश दिया। आराधन की सम्मत्ता की मुख्य पाठ राजनीतिक नहीं अधिपति सामाजिक है। अपन इतिहास में आरम्भ से ही भारत सामाजिक प्रश्नों के समाधान में लगा है। अनेक जातिवाद और वर्गों का समाधान करता ही यहाँ का मुख्य प्रश्न है। आधुनिक काल में भी जा नेता और विचारक यहाँ की समाधानों का नेषण राजनीतिक समाधान पोषते हैं, वे भूल गये हैं। साम्प्रदायिक मानवता की आधारशील पर राजनीतिक स्वतन्त्रता की हमारा नहीं खड़ी हो सकती।

स्वतन्त्रता एक आन्तरिक विचार है। इसे केवल बाह्य मानावरण की एक वस्तु मानना, इसका आर्थिक रूप देना है। आन्तरिक स्वतन्त्रता हमारे बाह्य की शक्ति और विज्ञानता प्रदान करती है। अपनी स्वतन्त्रता का उपभोग नहीं कर सकता है जो अपनी स्वतन्त्रता के साथ अभाव की स्वतन्त्र देना चाहता है। अब भारत ने अन्तर विचारों की एकता की, इस समय उन

प्रदान करी जाता तब स्वातन्त्र्य ही था। महात्माजी के विश्वास की पुष्टि स्वातन्त्र्य का होने समझ होता है। बौद्धधर्म ने धार्मिक स्वतन्त्रता पर जो बल दिया था, उन्ही कारण स्वतन्त्रता की पूर्ण विचार प्रथा और उसका अच्छा परिणाम समस्त एशिया में देखने को मिला। स्वातन्त्र्य के अभाव में भारत में एक सामाजिक कटुपक्ष और कटिवाद का जन्म हुआ जो समस्त नूतन रचना का विरोधी है। स्वतन्त्रधर्म के निमित्त आवश्यक है स्वातन्त्र्य में पुनः विश्वास। इस प्रकार के विश्वास के अभाव में हमने प्रलय के लिए कदम बढ़ाने की हठारी पालि खींच ही जाती है। स्वतन्त्रता के बिना नवीन की सृष्टि नहीं हो सकती और नूतन की सृष्टि ही आध्यात्मिकता का लक्षण है। अतः आध्यात्मिक जीवन की शिक्षा के लिए हमें पुनः स्वतन्त्रता के आदेश को अंगमाना ही चाहिए।

रबी द्रणाथ के जीवन काल में भारतवर्ष स्वातन्त्र्य की लड़ी प्रारंभ कर सका था। पुनः स्वातन्त्र्य तो अभी भी बहुत प्रारंभ नहीं कर सका है और जिस विचारों अथवा आध्यात्मिक स्वातन्त्र्य का प्रारंभ ने अपने प्राचीन प्रतिपादन किया है, उस अर्थ में प्रत्येक मानव और प्रत्येक देश के लिए वह बरम लागू ही रहेगी। तथापि कम-से-कम आज राजनीतिक स्वतन्त्र्य हमें प्राप्त हो गया है। राजनीतिक स्वतन्त्र्य के अभाव में जनमानस पर देश और विदेश में हमारा अमान होता था। दक्षिण अफ्रीका में 1893-94 में किस प्रकार गांधीजी का अमान हुआ, उसका वर्णन पढ़कर आज भी हमारा मस्तक लज्जा से झुक जाता है। किन्तु, पराधीन दुखी भारत की आस्थावाद का तद्देश रबी-द्रणाथ ने दिया। वही औरतार 'मन्दा' के उन्होंने कहा कि विराट्नामाधी दान उस समय उपस्थित होता है जब हमारे मन में दुःख समाप्त रहता है। किन्तु, राज्य के विजय के सम्बन्ध में विराट् होता, आध्यात्मिकता में अविद्या का परिचय देता है। अन्तर्जातिय परिनिवृत्ति में जीवन व्यतीत करने वाला की निराशावादी दान प्रिय लगता है। किन्तु, अन्तर्जातिय शक्ति के दुःख में व्याप्त ईश्वरीय करुणा का विरसकार है। वही बुद्ध के शब्दों में उन्होंने कहा 'आज हमारे मस्तक धूलि में गये हैं, किन्तु निरसक यह धूलि, उस धूलि से, जिससे शक्ति का अविद्या बना होता है, अधिक पवित्र है।' भारत की उन्होंने कहा कि यहाँ के लोग की ईश्वर और मानव-आत्मा के विश्वास नहीं खोना चाहिए। निरसक अमानित व्यक्ति की, शक्ति में निजली हुई आत्मा से, धीरे-धीरे वह नम्रकर शक्ति उत्पन्न होती, जिससे वही-वही सामान्य की सृष्टि हो जायेंगे। कमजोर शक्ति मानव का अन्तर्जातिय शक्तिवादी की प्रत्येक उपधि में दुखी देता। उन्होंने कहा —

‘भारत ! जागते रहो !

उस पवित्र सृष्टि के लिए अपनी पूजा-आराधना से आओ !

हमारे स्वतन्त्रता का रहता नाम तुम्हारी आस्था से पुनः और पवित्र—

‘आओ, शक्ति, पुनः ईश्वर के अपने महान पुनः पुनः

अपने शक्तियों की सम्पत्ति, धर्म के शक्तियों के साथ आओ,

सम्पत्ति तुम्हारे मस्तक का स्वरूप हो ।’

नम्रित मत्त होओ आदमी, शक्तिशाली और अमानि की शक्तियों के शक्तियों के अपने अपने शक्तियों के शक्तियों के ।

तुम्हारा मुक्त नम्रता का हो, तुम्हारी स्वातन्त्र्य आत्मा की स्वातन्त्र्य हो ।

अपनी निरसक के प्रत्येक अमान पर

प्रतिदिन ईश्वर के विराट्नाम का निर्माण करो

और जान ली कि जो स्वतन्त्र्य है वह महान नहीं है

और अमानि निरसक नहीं है ।’

अपने जीवन के प्रारम्भिक काल में रबी-द्रणाथ पश्चिम से अधिक प्रभावित थे। उन्होंने लिखा था कि पुनः वह भारतीय बुद्ध भूता है और आवश्यक है कि पश्चिम की गलत धारणा से धीरे-धीरे कटिवाद निजा जाय। किन्तु, धर्म और ज्ञान के परिणाम के साथ अपनी पश्चिमी सम्पत्ति के शक्तियों

पत्र का बोध हुआ और अपने अन्तिम समय में बड़े जोर से उन्होंने घोषणा की कि संसार के परि-
पालन का मातृ भारभारत की पुरातन आध्यात्मिक परम्परा में है, न कि वैज्ञानिक औद्योगिक और
वार्त्तिक सम्पदा में।

आध्यात्मिकता से रबीन्द्रनाथ का तात्पर्य पुनरुत्थान से था। उनको उक्त योग पद्धति से अनुमान
वही था जो वैचल निब्रह्म और रामन की सिखा देती है। स्वयं अपने जीवन से अनेक अन्तर्गत भारतीय
जना की मृत्यु ने दुःख की उन्होंने अनुभव किया था। पत्नी, कनिष्ठ पुत्र और ज्येष्ठ पुत्री की मृत्यु
की देखकर भी जीवन दुःखमय है, ऐसा उन्होंने नहीं कहा। उनको जन्मजिज्ञासा की अत्यन्त कष्ट-
प्रसिद्धता में विश्वास था और मायजन्मवश के ही रहते रहे। वे कलाकार थे और उनका मत था कि
शक्ति की प्रचुरता और अधिकता (Simplicity) से ही कला की उत्पत्ति होती है। वे सच्ची कला की
पूरा जीवन की अभिव्यक्ति का माध्यम मानते थे। प्लेटो, कला की तत्त्वज्ञान का विरोधी और शल्प
या विकृत रूप मानता था, किन्तु रबीन्द्रनाथ कला की पुनरुत्थान की सम्प्राप्ति का मातृ मानते थे। वे
अपने वाचनिक सिद्धान्त को इसी कारण 'एक कलाकार का पत्र' कहते थे।

रबीन्द्रनाथ आधुनिक के वाचनिक विचारों की विशेषता अपने नुस्ख होने में नहीं है। स्वयं
उन्होंने कभी भी वैज्ञानिक वाचनिक होने का दावा नहीं किया। आज परिचयी जगत का ध्यान,
सांसारिक धारणा से और वैज्ञानिक विज्ञान की पद्धति से प्रभावित है। रबीन्द्रनाथ ने कभी जगत के
गूढ़ तत्त्विक भाषा के पान्थिक या दावा नहीं किया। तथापि उनकी विशेषता है कि भारतीय
आध्यात्मिक विचार के मूल सूत्रों का उन्होंने विग्रह समझा किया है। अपनी दीपकादीन वैज्ञानिक
और साहित्यिक साधना के आधार पर उन्होंने आध्यात्मिकता की ही प्रवृत्ति बताया। अर्थवाद,
अनात्मवाद, वैज्ञानिकवाद, सम्यकवाद के अन्तर्गत में, जब बुद्धिजीवी मन विश्वास की ओर मुड़ा है,
रबीन्द्रनाथ ने अपने अनुभव की मुहर अध्यात्म पर लगाई। अपने निजी अनुभव से बचकर सत्य की
साधनी देने का क्या साधन मानव की उपलब्ध है? उनके धर्मों में सम्मिलित वाचनिक वाचनिकता नहीं
है। तथापि, अपने सरल मातृपूजक उद्गार हमारे ऊपर एक बहुरा प्रभाव स्थापित करते हैं। इस
विश्वास की वह परिणत उनके छोटे छोटे बानवों में मिलती है जो हमारे जीवन की विपदा और
आस्था से पूरा कर मुक्ति और आनन्द की प्राप्ति का स दाता देती है। प्रकृति के साथ 'परात्मनः
सर्वज्ञानता और मानव की रचनात्मक स्वतन्त्रता का प्रवर्धन' ही रबीन्द्रनाथ के अनुसार मुक्ति
के साधन है। इस मुक्ति से हम ईश्वर का सर्वत्र बोध होता है। यही रबीन्द्रनाथ के ध्यान का
सार है।

परिशिष्ट 4 लोकमान्य तिलक¹

सन 1856 में रामागिरि गृह में एक धार्मिक विद्यार्थिमुख महाप्राणीय ब्राह्मण परिवार में लोकमान्य बलवन्तराय गंगाधर तिलक का जन्म हुआ था। कहने की आवश्यकता नहीं कि निजी देशभक्त, आलोचक राष्ट्रनिर्माता, विद्वान वैदवेत्ता, महान चिंतन, भगवद्गीता के विस्तृत भाष्य-प्रवृत्ता तिलक का हमारे देश के इतिहास में एक अलग, अप्रतिम स्थान है। महाराष्ट्र में वे देवता की भाँति पूजे जाते थे। समस्त देश उन राष्ट्रप्रेमियों का अनुसरण करता था। महार के विद्वान उनकी बौद्धिक बिलसकता और देश की स्तुति करते थे। निष्कलक, विप्लवकाम्य, ग्राह्य का चिन् प्रस्तुत कर वे प्राचीन जपियों की कोटि में मिले जाते थे।

लोकमान्य के पिता श्री गंगाधर बल जिज्ञा विमान में काम करते थे। गणित और सङ्गत प्रवृत्त हुआ था। स्वाध्याय की भावना भी तिलक की जिज्ञा के विस्तृत में प्राप्त हुई थी। तिलक की माता श्रीमती बाबाजी बाई धार्मिकता और सरलता की सुति थी। धार्मिक वातावरण में ही तिलक का बोधन हुआ और ग्राह्यजीवन में हिंदू संस्कृति और धर्म के नैतिक वसातक रहे। बाल्यकाल में ही तिलक की तेजस्विता और देश के उदाहरण मिलने लगे। स्कूल और कलिन में पहले समय की बराबरी उनकी सङ्गत कविताएँ मात्र की मनोहारिणी प्रतीय होतीं हैं। उनकी स्मरण एतकि नहीं हीन थी। पाठ्य रूप की अवस्था में उनका विवाह हुआ। जब वे सोनह वर्ष के थे तभी समय उनके पुत्र विद्या का निधन हो गया। इस प्रकार, जीवन की अल्पकाल में ही इसी समय उनकी वृद्धिमाता माता का देहांत हो गया था। इस प्रकार, जीवन की अल्पकाल में ही उनको महान कष्ट का सामना करना पड़ा, किंतु बलीय धर्म, अनवरत अध्यवसाय और बल-वर्धनशीलता की अवधिक मात्रा का विवास भी उनके चरित्र में इन प्रारम्भिक जीवनका के साथ समय करने में ही हुआ था। बीस वर्ष की अवस्था में ही ए और तेजस्वन की अवस्था में कानून की परीक्षा की उद्वाह उदीय की।

कलिन में पहले के प्रथम वर्ष में तिलक का स्वास्थ ठीक नहीं था। वे कमजोर थे। अतः एक एक वर्ष उन्होंने स्वास्थ-मुधार में लगाया। कसरत कुटी और सुषपण के द्वारा उन्होंने अपने शरीर की कृष्ट मज्जुत बनाया। शरीर का उद्ग रूप अन्त्या था। उस समय जी उन्होंने अपने रक्षण बनाया उनकी पारल पोते जेल जीवन की बचपान और मातृमाई में सहन कर रहे। कलिन में पहले समय तिलक का हृदय देशभक्ति में भर चुका था। उनके जन्म के एक वर्ष बाद ही वर्ष 1857 का राष्ट्रीय प्रकाश हुआ था। बाल्यकाल में देशभक्ता की वीरता और सरकार के नीयक वनन वर्ष के बारे में उन्होंने अवश्य ही सुना होगा। जब वे बलिष्ठ में पहले के उसी समय बाल्यकाल में पहले का अवसर सरकार विरोधी बल हुआ। उनका भी प्रभाव उन पर पडा ही होगा। स्वयं तिलक उनकी ऐतिहासिक चित्रावध मुख में उत्पन्न हुए थे, जिलन वसाया की जन् दिया था। अवश्य ही बाल्यकी विस्तृत और बाल्यकाल के बाल्यकाल उनका मुख और पहले का

1 तिलक की जन्म तिथि (23 जुलाई, 1956) व महार पर भी बला का प्रमाण।

मिले जाने। सन् 1818 में पेशवाई का अन्त हुआ था और रत्नागिरि तथा पूना के निवासियों के मुख से बराठा इतिहास में गौरवपूर्ण अध्यापन का स्वप्न भर विनश्वर उल्लाह के तिलक का हृदय भर जाता होगा। इसीलिए, हम देखते हैं कि जीवन के उप काल में ही तिलक ने एक भीष्म प्रतिमा की। उन्होंने हठ स्वल्प धारण किया कि वे सरकारी नौकरी में नहीं प्रवृत्त होंगे। कलिंग के दिनों के अपने छात्राधी गोपाल गणेश आगरकर ने साथ तिलक ने अपने जीवन को शिक्षण में व्यतीत करने का अविचल निश्चय किया।

इसी समय विष्णु घास्वी बिनलूचकर का भी साहाय्य तिलक को मिला। बराठी साहित्य के महत्त्व, निरूपमात्ता के कलावी सेवन, उक्त देशवर्तक विपलूचकर का महाराष्ट्र में बड़ा प्रभाव पड़ा है। बिनलूचकर और तिलक ने पूना 'नू इन्सिख स्कूल' की स्थापना 1880 में की और पूरे एक वर्ष तक तिलक ने यहाँ एक पैसा लिए इस शिक्षणस्थान में अध्यापन किया। 1884 में डेक्कन एज्युकेशन सोसायटी की स्थापना हुई और 1885 में कम्युनल कॉलेज खोला गया। तीन वर्षों तक इस कॉलेज में तिलक ने संस्कृत और गणित का अध्यापन किया। अपने पवित्र परिवार, गम्भीर वादित्य और सरसता के कारण छात्राध्य के रूप में तिलक अत्यंत ही श्रद्धाभाजन सिद्ध हुए। सामाजिक द्रव्य पर मतभेद होने के कारण तिलक डेक्कन एज्युकेशन सोसायटी से सन 1890 में अलग हो गये और स्वतंत्र रूप से इसी साल के 'बैतरी' और 'मराठा' इन दो पत्रों का सम्पादन करने लगे।

1881 में 'बैतरी' और 'मराठा' इन समाचार-पत्रों की स्थापना हुई थी। 1882 में कोल्हापुर दरबार के दीवान के विरोध में तीन पत्रों को छापने के कारण तिलक और आगरकर की पार नहींने की सारी बंद हो गया हुई थी। दीवान के आदेशों का मझाफेद करने के कारण तिलक मराठी जनता के हृदय में शरीर अधिक हो गये। डेक्कन एज्युकेशन सोसायटी के अलग होकर 1890 में तिलक इन दो पत्रों द्वारा महाराष्ट्र की जनता में एक उच्च देशभक्ति की भावना भरने लगे।

1893 में उन्होंने गणपति-उत्सव का प्रारम्भ किया। इस उत्सव का मुख्य उद्देश्य था हिन्दुओं में निष्पक्ष और मर्यादा शक्ति की भावनाओं की भरना। शीघ्र ही यह साप्ताहिक गणपति उत्सव महाराष्ट्र में अत्यंत प्रचलित हो गया। 1895 में तिलक ने शिवाजी उत्सव का आरम्भ किया। बराठा-स्वराज्य के अन्त, विभूति-सम्पन्न शिवाजी की स्मृति या पुनरुद्धार कर लेमहीन निष्पक्ष शक्ति में शक्ति या संचार करना तिलक का उद्देश्य था। उस समय अंग्रेजी साम्राज्यवाद के अन्तर्गत के कारण पुलिसकरी राजनीतिक अधिकारों के लिए संचय करना कठिन था। अतएव, सामाजिक और धार्मिक वर्गों के अन्तर पर दृष्टिगत हानि कीरनुता करना राष्ट्रीयता का एक महान् काम हो सकता है—इसे तिलक के समान दूरदर्शी लोकनायक ही समझ सकता था। मध्य 1885 में कांग्रेस की स्थापना हो चुकी थी और मध्य 1889 से ही तिलक और मोरारजी बापेस के अधिवेचना में सम्मिलित होते थे, तथापि कांग्रेस अभी शक्तिहीन संस्था थी। विदेशी राजनीति साहसों की सम्भावनाओं का प्रयोग कर, तीन बार दिन अंग्रेजी में बाकलौशल दिखाना ही कांग्रेस का काम था। गणपति और शिवाजी उत्सवों के द्वारा देश की धार्मिक और ऐतिहासिक परम्परा और आदर्शों में राष्ट्रीय आदर्शन की निष्ठा करना तिलक का उद्देश्य था। इस प्रकार, जनता में देशभक्ति की भावना का संचार कर तिलक कांग्रेस का भी एक श्रेष्ठ प्रयत्न प्रदान कर रहे थे।

सन 1896 में पवित्र भारत में भीष्म अन्तर्गत बड़ा और उस समय जनता में आधुनिक अधिकारों के सम्पन्न में पैदा हो उत्पन्न करने में तिलक ने अथवा परिश्रम किया। पूने की प्रसिद्ध संस्था, साधनगिन समा के द्वारा उन्होंने जनता की उचित भावों को सरकार तक पहुँचाना। जनता की मन छानने का उद्देश्य किया। सारे महाराष्ट्र में उनके द्वारा प्रचलित बाकलौशल धूमने लगे और आठ जनता की अपनी सम्पत्ति बचकर कर नहीं देने का उद्देश्य देने लगे। इन सब वर्षों में सम्भवत आगरकरों के समीप सभ (Land League) के उद्देश्य से तिलक प्रभावित थे।

1897 में भीष्म प्लेग के अन्तर्गत में लोकमान्य तिलक ने पूना के निवासियों की बड़ी सेवा की। जब जय पैदा पूना छोड़ कर भाग गये थे, उस समय आराम की आवश्यकता में अथवा निरवकाश करने वाले तिलक जीवन का मोह छोड़कर जनता की सेवा कर रहे थे। प्लेग के समय कुछ अंग्रेजी पत्रिका ने आरमाही के साथ का अनुसरण किया। प्लेग बसाने के नाम पर जनता पर अन्त आका-

लिए खाना हुए, बिन्दु बोलम्बी से ही उनके दस को लौटा दिया गया। फिर, बम्बई युद्ध परिषद में वे शामिल हुए। वहाँ गवर्नर वैसिमटन के मत्त करने पर भी उन्होंने अपन राजनीतिक मातृका पर बोलना प्रारम्भ किया। गवर्नर ने द्वारा हस्तक्षेप होने पर वे सामा से उठकर चले गए।

1918 के अंतिम विधान में वे विज्ञापित गये। वैसिमटन चिरोल में अपनी पुस्तक 'राष्ट्रीय अग्रगण्य' (Indian Ureast) में उनके राजनीतिक कार्यों की अनुचित आलोचना की थी। चिरोल सामान्यवाद का भीषण समर्थक था। तिलक ने उस पर मुहदमा बनाया। यद्यपि सर जॉन राम मन् ने बड़ी सख्तता से तिलक की दबावत की थी तथापि वास्तव (चिराफी दश के कर्मील और अबे कालिग की आवेकपूर्ण युतिपा से प्रभावित होकर अबेज जूरी ने तिलक के विरुद्ध ही फैसला दिया। अमेरीकी वोट का वैतन्ता कुछ भी हो, भारतवर्ष की जनता की दृष्टि में श्रुतिवन्त तिलक की असीम देशभक्ति और बिन्दु देशीकृत परित्र की पुर्नित के लिए नवे वश समर्थन की आवश्यकता नहीं थी। बीछ ही तीन लाख रुपये तिलक को अर्पित कर (आम तीन लाख रुपये इस मुकदमे में खर्च हुए थे) जनता ने अपनी असीम तिलक भक्ति का परिचय दिया।

विलासत प्रदान में अपनी 'राजनीतिक दूरदर्शिता का अनुपम परिचय तिलक ने दिया। ब्रिटिश मजदूर-दल के साथ उन्होंने राजनीतिक सम्बन्ध स्थापित किया। अन्ततः मजदूर दल ने ही भारत की स्वतन्त्रता प्रदान की। निम्नोद्ध तिलक महान् राजनीतिज्ञ थे।

अमृतसर वाक्त्रि में जितन अवन चिरोमणि कन में आसीन थे। पनाम की जनता उनके वशन के लिए पावत थी। उस समय उन्होंने प्रति-सहकारी सहयोग (Responsive Co-operation) का प्रस्ताव समर्पित किया। नीता ने वक्षय गव प्रसिद्ध स्वीकार्य—'मे वषा मा प्रवक्षते तारतमव मजाम्महम्' का ही वह एक 'राजनीतिक उदाहरण था। बीछू पेम्मापेड मुषारा के सम्बन्ध में वा प्रस्ताव वाक्त्रि ने पास किया, वह तिलक के 'राजनीतिक उत्कष के विक्षय का एक उदाहरण था। अर्थात् 1920 में तिलक ने कांग्रेस प्रवर्तनार्थिक-दल की स्थापना की। इसर कुछ महीना से उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं था और देश के महान् सकट के समय जनता की पीछा छोड़कर 31 जुलाई की रात्रि में बारह बजकर पालीस मिनट पर उन्होंने महाप्रवास कर लिया। पैठनावस्था में बीछा का 'वदा वदा हि वचस्व' वाला प्रसिद्ध वलीक उनके मुख से सुना गया अंतिम शब्द था। मरणांशाल में भी हिन्दू धर्म और संस्कृति के धूल तत्वों पर उनकी अक्षिर और अविचल आस्था का ही वह उदाहरण था।

सोमनाथ तिलक सिंह के समान निमग्न देशभक्त थे। किसी प्रकार का प्रलोभन वा तीव्रतम भीषण मय उनके स्क्त निर्बाधित रूप से उन्हें विमुक्त नहीं कर सकता था। बीछू पेम्मापेड एवढ के सम्बन्ध में भी उत्तमभुति ने तिलक का विचार पुछा था। उस समय तिलक ने कहा—

रत्नमहार्ह तुनुपुनदेवा न भेजिरे बीचकिरेन बीछिम।

मुषा विना न पवद्विराचन न विनिरवताथिदिरमर्चित धीरा ॥

जीवन में तिलक का एव ही उद्देश था—भारतवर्ष का स्वसोमायेन उत्कष। इस महान् वाप की सिद्धि के लिए अपने समस्त जीवन को उन्होंने एव अवलम्ब बन बना रखा। निरन्तर साधना, अदृष्ट अप्यवसाय, दीधनालीन देशनिमित्तक बन्धन—तिलक के जीवन का यही सार है। देशभक्ति के प्रवण उद्गीर्य अग्निपुच्छ में अपने समस्त जीवन को सविषय के रूप उन्होंने अर्पित कर दिया। यह वहीने में कोई अशुक्ति नहीं कि जितना कष्ट जन्मभूमि के लिए तिलक ने सह्य, सामय उरणा किसी प्रमुख नेत्रा ने कही सहा। त्याग की ती ने सृति थे। कवी की पन-सचय करने की उनकी दक्षता नहीं थी। 1916 में महाराष्ट्र ने उनके साठ वर्ष की आयु पूरी करने पर एव लाख रुपये की पैन्ती उन्हें भेंट की, किन्तु उन्होंने उसे देशवाज में अर्पण कर दिया। उनकी कानूनी प्रतिभा विलक्षण थी। कानूनी गान की विषयता का परिचय उनके सन 1908 वाले उस व्याख्यान से मिलता है जो 21 फरवरी 10 मिनट में समस्त हुआ था। यदि तिलक चाहते तो अपने कानूनी गान का वापदा उठाकर लाखों अक्षि कर क्षति से बिन्दु खराब मुक्त में उन्होंने अपना की अपने कानूनी गान का नाम लेने दिया। 1894 में अपने राष्ट्रपती मित्र वाष्ट की ओर विपत्ति के समय आवत

निष्ठावान् नाय के चित्त' न सहाय्यता की। अनेक वर्षों तक 'वेमरी' और 'मराठा' को वे घाट पर पकता रहे।

इस प्रणेत, अन्ध, यज्ञयाचनामय, तपोमय, स्वाध्याय जीवन के पीछे उनकी शक्ति दब जाती महान् शक्ति उनका निष्ठावान् वैयक्तिक जीवन था। परित की विप्लवना ही उनका महान् अन्ध था इसी महान् परिण के कारण ही उनका बहु दबोचन प्रभाव था। उनके परित के ऊपर जब मय पमान जाता है, तो कोई व्यक्ति छोड़ सामने नहीं दिखायी देता जिसन उनकी तुलना की जाय। यथोक्त तुलनात्मक रूप और विज्ञानमय मोक्ष के उदात्त, चरित्र, विप्लव जीवन से ही चित्त के जीवन की तुलना की जा सकती है।

चित्त का भारतीयता के इतिहास में एक विशेष स्थान है। अथर्व वेदाध्ययन, पूजायन, सन्निवाह की सन्निहित शक्ति न विरोध न भारतीय स्वराज्य का नाश मुक्त कराना और भारतीयता का अन्ध-महान् रूप न उल्ल स्वराज्य के लिए सज्जे रहना नमस्कार चित्त का ही नाम था। और सन्निवाह के द्वारा चित्त के स्वराज्य की इमारत की आधारभूतता का समर्थन दिया। उन्होंने अन्ध शक्ति का हवन कर, स्वराज्य के रूप की समर्थन कर, वैदिक सार 'प्रायः समर्थन' दवा स्थानि समर्थन प्रथमाचार्य को पुष्ट किया। पीछा की भाषा न यज्ञशक्तिरूपमय होकर स्वराज्य-यन के महान् अन्धमय और उदात्तता न रूप न चित्त हमारे इतिहास में अन्ध रहें। 1857 के बाद चरित्र की साम्राज्यवाद और चरित्र की सम्पत्ता का भारत में प्रभाव सतत विचलित हो रहा था। उससे चरित्र के लिए चित्त जैसे अन्धमय राष्ट्रवाद और निर्भीक शक्ति की भाषा आचार्यता की। यह भारतीयता का महोपाय था कि स्वातन्त्र्य लड़ाई के अन्धमय दिना न देते महान् शक्ति का नेतृत्व उसे प्राप्त हुआ।

राजनीतिक नेतृत्व और राष्ट्र निर्माण के चित्त महान् रूप स्थान चित्त का है उनका ही वैयक्तिकमय उनका स्थान दिया के रूप में ही है। व्योमिष की पद्धति का अन्धमय केन्द्र उन्हें अपने रूप आचार्य न सिद्ध किया कि अन्धमय के अन्धमय रूप आचार्य के पीछे यह हुआ कि रूप रहे रहे। भूतनायक तथा मुक्तवाचक चरित्रवाद के आधार पर उन्होंने बताया कि आन शक्ति का मूल निवास स्थान उत्तरी भूय के पास था। उनके अनुसार प्राचीन सामर्थ्य और वैदिक सम्पत्ता और समर्थन के बीच विमान है—

(1) 10,000—8,000 ई. पूर्व—हिमयुग का आचार्य और आन शक्ति का उत्तरी भूय के प्रभाव।

(2) 8,000—5,000 ई. पूर्व—आन-व्योमिष अन्धमय शक्ति युग।

(3) 5,000—2,500 ई. पूर्व—व्योमिष युग।

(4) 2,500—1,400 ई. पूर्व—कृति युग।

(5) 1,400—600 ई. पूर्व—आन युग अन्धमय युग।

वारेन (Warren) के चित्त के उत्तरी भूय सम्पत्ति विज्ञान की सम्पत्ति की मुक्त कद से उदात्त की। 'ओरामन' रूप की सम्पत्ति और नमस्कार न की प्रभाव की। चरित्र और प्राचीन इतिहास के चरित्र विज्ञान नहीं बन सकते, किन्तु हमारा निश्चित है कि चित्त विज्ञान केन्द्र-सम्पत्ति चरित्र विज्ञान है। इसका प्राथमिक उदाहरण उनके इन की सम्पत्ति—'ओरामन' तथा 'आकटि' द्वारा इन के वैयक्तिक—के चित्त है।

चित्त का पीछा रहस्य उनकी समर्थन की शक्ति है। समर्थन की शक्ति के चित्त अन्धमय का समर्थन करते थे, किन्तु चरित्रवाद की शक्ति के पीछा को वे प्रवर्तित कर मानते थे। 'ओरामन' नमस्कार-सम्पत्ति के पीछे चित्त है इस शक्ति पर चरित्र अन्धमय रूप चित्त के चरित्र और आचार्य व्यक्त्याचार्य नमस्कार की शक्ति के बाद आचार्यवाद चित्त अन्धमय रूप के चरित्र, आचार्यवाद चरित्रमय सम्पत्ति ही पीछा का चरित्र प्रवर्तित है। इस रूप के चित्त के अन्धमय आचार्यवाद का पता चलता है। मैं मानता हूँ कि हमारे एक हजार वर्षों के पीछा का चरित्र बड़ा समर्थन चरित्र में नहीं चरित्र हुआ।

चित्त का चरित्र न महान् है। मैं मानता हूँ कि चरित्र चित्त अन्धमय है। उनकी तुलना चरित्र से की जा सकती है।

परिशिष्ट 5

तिलक का गीता-रहस्य

1 प्रस्तावना

लोकनाथ तिलक ने भारत के बारापार में प्रसिद्ध 'गीता रहस्य' की रचना की थी। यह बहुत और चिरस्थायी ग्रन्थ गीता का विद्वत्साधु नाम्य ही नहीं है, बल्कि उसने आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद की आधिकारिक पाठ्यपुस्तक का भी स्थान किया है। उसने देश के नवजुवनों को निष्काम काम का अनुप्रेरित संदेश दिया। तिलक को निम्नोद्योगिता से प्रेम था। 1892 में ही उन्होंने विवेकानन्द के साथ आर्वात्तार के दौरान कहा था कि गीता निष्काम काम का उपदेश देती है।¹ जनवरी 1902 में उन्होंने नागपुर में गीता पर एक पापन दिया। 1904 में भी उन्होंने सारंगबाघ की अध्यक्षाता में सवेसरर मठ में गीता पर प्रवचन दिया। बहुत समय से तिलक यह कहते आये थे कि गीता साराध की शिक्षा नहीं देती। यह यह नहीं सिखाती कि अनुपम सामाजिक व्यवस्था के दायित्वों से मुक्त रहकर जीवन बिताये, बल्कि यह काम के सिद्धांत की शिक्षा देती है। उनके मन में गीता पर एक पुस्तक प्रकाशित करने का भी विचार था किंतु उन्हें भारत के बारापार में पहुँचकर ही ऐसा अवसर मिला कि वे अपने जीवन की साधना पूरी कर सके। राष्ट्रतिथि के प्रथम प्रारूप की संधार करने में उन्हें 2 नवम्बर, 1910 से 30 मार्च, 1911 तक वैकल्पिक बाध नहींने लगे। पुस्तक महान् कठिनाइयों के बीच लिखी गयी, व्यापक लेखन की बारापार के बंदीर निष्काम का पालन करता करता था। गीता रहस्य के सम्पादन में उन्होंने 1911 में भारत से विन्-लिपिगत पत्र लिखा था जो मार्च 1911 में 'मराठा' में प्रकाशित हुआ था "गीता के सम्पादन में मैंने उस ग्रंथ की समालोचन कर लिया जिसे मैं गीता रहस्य कहता हूँ। यह एक स्वतंत्र तथा मौलिक ग्रन्थ है। इसमें गीता के रहस्य का अवलोकन किया गया है और यह दर्शाते हैं कि इसके अन्तर्गत हमारे धार्मिक दर्शन की आधारभूत नीति का समन्वय करने के लिए किस प्रकार प्रयत्न किया गया है। मेरी दृष्टि में गीता आधारभूत नीति का ग्रन्थ है। अपना दृष्टिकोण मैं उपनिषद्वादी है और मैं अन्तःप्राप्तत्व, बलि, पारंपरिक है, जो कुछ लोग के 'गीता-योग' का दृष्टिकोण (आधारभूत नीति का उपनिषद्वादी) के विपरीत है। गीता-ग्रन्थ की सारंगबाघ धार्मिक तथा आधारभूत दर्शन से तुलना की है और उन दर्शन का प्रयत्न किया है। इसका दर्शन काम से काम पारंपरिक दर्शन से अधिक विपरीत है। गीता-ग्रन्थ के अन्वय है और एक परिशिष्ट है जिसमें महाभारत के ग्रन्थ के रूप में गीता की समीक्षा की गयी है और उसकी विधि विधि का विवेक किया गया है। इस ग्रन्थ में सम्पादन में इससे अधिक कुछ लिखना अवसर है। इस ग्रन्थ में दिए गए हैं वस्तुओं के विषयों का बहुत विचार (विन्-लिपिगत, मराठा के 300 से 350) हो जायगी। इसमें मुझे अत्यंत दृष्टिकोण में गीता के ग्रन्थ के आधार है। अनुवाद काय में तथा हुआ है और यह ग्रन्थ ग्रन्थ में ही है।

1 विवेकानन्द प्रसाद वर्मा, 'The Religion of India and Vivekananda',
 vol. 45, part 7, pp. 221-92.

मैंने पूरा कर लिया है। मर जाइया है कि 'ओरामन' की नीति यह भी पुनः प्रचलित होगी। गीता का अनुवाद अथवा भाष्य करने में अभी एक दस प्रकार के साधन का अनुष्ठान करने का काम किसी ने नहीं किया है। किन्तु जहाँ तक मर प्रश्न है, मैं विद्युत् 20 वर्षों से गीता के सम्बन्ध में इस दृष्टिकोण से शोधना आया हूँ। मैं उन सब पुस्तिका का प्रयोग किया है जो इस समय यहाँ पर पाई हैं। किन्तु पुस्तिका में ऐसे प्रश्न का जो शोध है जो यहाँ पर पाई नहीं है। इनके अलावा मैंने अपनी स्मृति से भी उपयोग कर दिया है। अतः पुस्तिका को प्रकाशित करने में पहले इन सब प्रश्नों की जाँच करनी पड़ेगी। इसलिए प्रकाशन का काम मेरी मुक्ति के बाद ही पूरा हो सकता है। इस रहस्य तथा गीता के बराबरी अनुवाद को मिलाकर 500 पृष्ठों का ग्रन्थ बन सकता है। मैं समझता हूँ कि मैं दो महीने में अनुवाद का काम पूरा कर लूँगा। अतः मैं आपका यह भी अनुरोध है कि अपनी पुस्तिका में मैंने जिन अनेकों बातों का सहारा लिया है उनसे बाट का विधिक और पुरे जीवन और चीन का 'ओरामन' का दृष्टिकोण मुख्य है। मर मेरे ग्रन्थ का आधार उल्लेख (आचार्य भाष्य), महाभारत और गीता है, और इसमें हिन्दुओं के कमजोर धर्म का निवेदन किया गया है।"

1914 में सम्पत्ति उत्साह के अवसर पर तिलक ने गीता रहस्य में प्रतिपादित गीता के विषय पर चार व्याख्यान दिये थे।² उन्होंने यथार्थता का निरीक्षण न बल के साथ व्याख्यान स्थापित हो जाने पर भी काम करते रहने का उपदेश दिया गया है। ईश्वर-साक्षात्कार के पूरे तथा परमात्मा, दीक्षा ही अवलम्बना में, काम करना आवश्यक है।

1915 में गीता-रहस्य प्रकाशित हुआ। उसका छ. हजार का प्रथम संस्करण एक सप्ताह के भीतर ही बिक गया। लोकमान्य तिलक के जीवनकाल में पुस्तिका के बराबरी तथा हिन्दी में अनेक संस्करण प्रकाशित हुए। उसका भारत की जनता सभी महत्वपूर्ण नागरिकों में अनुवाद हो चुका है। कई वर्ष पहले एक अंग्रेजी संस्करण भी प्रकाशित हुआ था।

1917 में लोकमान्य ने अन्तर्जाली के गीता-रहस्य पर एक भाषण दिया। इस भाषण का माराष्ट्र तिलक के ही शब्दों में पुस्तिका की सुन्दर रूपरेखा प्रस्तुत कर देता है। तिलक ने कहा, "आरम्भ में ही मैं आपकी यह यक्षा है कि मैंने मनुष्यवृत्ति का अध्ययन तथा आरम्भ किया। जब मैं बालक ही था उस समय मेरे बड़े-बड़े भाई बहुत बालक थे कि कुछ धार्मिक और दार्शनिक जीवन तथा प्रतिष्ठित के मुख्य एवं गौरव जीवन के बीच सम्बन्ध नहीं हो सकता। यदि किसी व्यक्ति में जीवन के उत्कृष्टतम मध्य मार्ग को प्राप्त करने की महत्त्वपूर्णता है तो उस दार्शनिक दृष्टिकोण के लिए चाहिए और जगत से सम्बन्ध के लिए चाहिए। बहुत-से ईश्वर तथा सत्कार, इन दो स्वार्थों की साथ साथ सेवा नहीं कर सकता। मैंने इसका अर्थ यह समझा कि यदि कोई व्यक्ति स्वयंसेवक-जल सह जीवन का अनुकरण करता चाहता है तो उसे दार्शनिक जीवन का औपनिषदीय प्रतिपादन कर देना चाहिए। इस विचार ने मुझे आने के लिए प्रेरित किया। मेरे मन में जो प्रश्न उठा और जिसका समाधान मुझे देना था वह इस प्रकार का था कि क्या हम यह सिद्धता है कि मैं मानव-जीवन का मुख्य प्राप्ति करने का प्रयत्न करने में पहले ही सत्कार का परिष्कार कर दूँ अथवा मुझे मुख्य प्राप्ति करने के लिए उसका परिष्कार करना है? मर आत्मज्ञान में मुझे यह भी अलगाव था कि मनुष्यगीता एक ऐसा ग्रन्थ है जिसमें हिन्दू धर्म के सभी सिद्धांतों का समावेश है, और उसकी इस विशेषता को द्वारा विश्व स्वीकार करता है। मैंने सोचा कि यदि ऐसी बात है तो मुझे अपने प्रश्न का उत्तर इस ग्रन्थ में ढूँढना चाहिए। इस प्रकार मैंने मानव गीता का अध्ययन आरम्भ कर दिया। गीता की आरम्भ करने से पहले मेरे मन में किसी दार्शनिक सम्बन्ध में कोई पूर्वनिर्धारित विचार नहीं था, और न मेरा ही ऐसा कोई सिद्धांत था जिसका सम्बन्ध मुझे गीता में देना था। जब किसी मनुष्य के मन में पहले से कोई विचार निश्चित होता है तो वह किसी ग्रन्थ की परीक्षापूर्वक दृष्टि से पढ़ता है। उदाहरण के लिए जब कोई ईसाई गीता की

2 तिलक का 15 अक्टूबर 1914 का 'कर्म' में प्रकाशित लेख। देखिए, *Tilak's Writings in the Karm* (महाराष्ट्र) 4 अक्टूबर वि० 4 पृ. 515-27

ब्रह्मा है वो यह यह जानने का प्रयत्न नहीं करता कि गीता क्या कहती है, बल्कि यह यह कहता है कि गीता में ऐसे चीजें हैं जिन्हें वह नहीं समझता कि वह गीता है, और फिर वह बिना सोचे-समझे इस निष्कर्ष पर पहुँच जाता है कि गीता में वादविवाद की नकल कर ली गयी है। मैंने अपने ग्रन्थ गीता-अहस्य में इस विषय का विवेचना किया है, इसलिए यहाँ मुझे अधिक कुछ नहीं कहना है। किन्तु मैं निम्न बात पर बल देना चाहता हूँ यह यह है कि जब आप किसी वचन को पढ़ना और समझना चाहते हैं, विशेषकर गीता जैसे महान ग्रन्थ को, तो जानना उसे निम्नलिखित बातों से और पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर पढ़ना चाहिए। मैं जानता हूँ की ऐसा करना अत्यधिक कठिन काम है। जो ऐसा कर सकने का दावा करते हैं उनके मन में कोई पक्षपातपूर्ण विचार अपना पूर्वाग्रह दिया होता है जिससे ग्रन्थ का अध्ययन कुछ सही न निकल ही जाता है। कुछ भी हा, मैं केवल यह बताना चाहता हूँ कि यदि आप सब एक पहुँचना चाहते हैं तो अपनी मन स्थिति सही होनी चाहिए। उम मन स्थिति को प्राप्त करना किताब ही कठिन काम न हो, फिर भी उसे प्राप्त करना ही है। दूसरी चीज यह है कि पाठक को उस काल तथा परिस्थिति पर विचार करना होता जिसमें पुस्तक लिखी गयी थी, और जिस उद्देश्य से वह लिखी गयी थी उसे भी समझना होगा। संक्षेप में किसी पुस्तक को उसके सादर की ध्यान में रखे बिना नहीं पढ़ना चाहिए। मन्वत्-गीता जैसे ग्रन्थ के सम्बन्ध में यह बात विशेषकर महत्वपूर्ण है। विभिन्न सम्प्रदायों ने पुस्तक के अपने-अपने दृष्टिकोण से भाष्य किये हैं। किन्तु यह निश्चित है कि लेखक ने पुस्तक इसलिए नहीं लिखी होगी कि उसके लिये अब सबसे बड़ें। उसका सम्पूर्ण ग्रन्थ में एक ही अर्थ और एक ही उद्देश्य रहा होगा, और मैंने उसी को इस निबन्धन का प्रयत्न किया है। मेरा विश्वास है कि मैं अपने प्रयत्न में सफल हुआ हूँ क्योंकि मेरा अपना कोई सिद्धांत नहीं था जिसका समर्थन मैं इस विश्वविदित पुस्तक में करने का प्रयत्न करता, और इसलिए कोई कारण नहीं था कि मैं मूल पाठ की अपनी सिद्धांत की दृष्टि के लिए तौर मारा करता। गीता का ऐसा कोई भाष्य नार नहीं हुआ जिसने अपने एक द्विप सिद्धांत का प्रतिपादन न किया हो और जिसने यह विश्वास का प्रयत्न न किया हो कि जगत्कलीला उसके सिद्धांत का समर्थन करती है। मरा निष्कर्ष है कि गीता के अनुसार मनुष्य की ज्ञान अथवा शक्ति के द्वारा परब्रह्म के साथ एकात्म प्राप्त कर लेने के उपरांत इस संसार में बच कर रहना चाहिए। बच इसलिए है कि यह संसार निराश के सम मान पर चलता रहे जो मनुष्य में इसके लिए निवारित किया है। बचकता को बचन में न आने, इसने लिए आवश्यक है कि बचकता की बचकता के बिना अन्त के इस उद्देश्य की प्रति में योग देने के प्रयत्न से किया जाय। मेरे विचार में गीता का यही उद्देश्य है। मैं जानता हूँ कि उनमें शान्तिभी है। उनमें शक्तिभी है। इसके इनमें बचकता है ? किन्तु मैं ऐसा उसके प्रतिपादित बचकता के समर्थन में नहीं हूँ। यदि गीता का उद्देश्य बचकता के अन्त को मुक्त न रख करके अर्थात् बच में प्रवेश करने के लिए दिया गया था तो यह कैसे कहा जा सकता है कि गीता का बचकता के अन्त अथवा अन्त है ? तब यह है कि गीता के इन सभी बचकता का समर्थन है। किम प्रकार वास्तु में केवल अन्तर्गत है, न हृदयगत और न कोई अन्य चीज, बल्कि किसी विनिष्ट अनुपात में इन तीनों का मिलन है, उसी प्रकार गीता सब पाया का विषय है।

“मरा कथन है कि गीता के अनुसार ज्ञान और शक्ति में वृद्धि प्राप्त कर लेने तथा इन साधनों के द्वारा परब्रह्म का साक्षात्कार कर लेने के उपरांत भी बच करना चाहिए। इन दृष्टि में मेरा ग्रन्थ सभी सम्प्रदायों में प्रसिद्ध है। ईश्वर, मनुष्य तथा ब्रह्म इन तीनों में अन्तर्गत एकात्म है। विषय का अस्तित्व इसलिए है कि इश्वर की ऐसी इच्छा है। उसी की इच्छा में यह दिया हुआ है। मनुष्य ईश्वर के साथ एकात्म प्राप्त करता चाहता है और जब वह एकात्म प्राप्त हो जाता है तो व्यक्ति की इच्छा मनुष्यत्वमान साधनों के इच्छा में विरत हो जाती है। क्या इस स्थिति में मनुष्य ज्ञान पर शक्ति यह कहें कि मैं बच नहीं करूँगा मैं संसार की लड़ाई नहीं करूँगा — इस संसार की जिसका अस्तित्व इसलिए है कि किम इच्छा के साथ उनमें अपना एकात्म कर दिया है वही ऐसा चाहती है ? यह बात समर्थन नहीं है। यह मेरा मत नहीं है, गीता का यही उद्देश्य है। श्रीहृदय के साथ कहा है कि जिस में एकात्म बचकता नहीं है किम प्राप्त करने की मुझे

आयस्यवता है, फिर भी मैं बच करता हूँ। वे इसलिए बच करते हैं कि यदि वे न करें तो विश्व का कितना हो जायगा। यदि मनुष्य ईश्वर के नाम एकाकार होना चाहता है तो उसे विश्व के हिता के साथ भी लगातार स्थापित करना पड़ेगा, और उसने (विश्व के) लिए बच भी करना पड़ेगा। यदि यह ऐसा नहीं करता तो एकाग्र अग्रणी, बर्माणि उस स्थिति में तीन तरफा में है वो (मनुष्य और ईश्वर) के बीच एकाग्र स्थापित हो जायगी और तीनों तरफ (विश्व) कुछ जायगा। अतः मैं अपने लिए तो मध्यम का समाधान चुन लिया है। मेरा विचार है कि समार की सेवा करना और उसके द्वारा उसकी दृष्टि (ईश्वर की दृष्टि) की सेवा करना मोक्ष प्राप्ति का सर्वाधिक सुविधिदायक मार्ग है, और इस मार्ग का विवरण मैं ईश्वर अनुसरण किया जा सकता है, य कि उसका परिणाम करे।¹

भौतशास्त्र विज्ञान के अनुसार बीता एक महान् और पम्मीर वृक्ष है।² उसने अद्वैतवादी लक्ष्यधारण का प्रतिपादन किया गया है और साथ ही साथ उसने मण्डलावन और उद्गमनधारण का भी विवेचन है। यह परम आध्यात्मिक अनुभूति का मार्ग प्रस्तुत करती है, किन्तु इसके साथ यह समार के बच के महत्त्व से भी लक्ष्य नहीं करती। उसका निष्पन्न मध्यम मार्ग, मण्डल तथा वन के बीच समन्वय स्थापित करता है। बीता एक उदात्त तथा अनुपेक्षित होती मध्यम वन का स्वर प्रस्तुत करती है। अपनी बीता की सरलता तथा सदैव की लक्ष्यता के कारण यह समार में बहुत ही भौतिकता बच गयी है। बीता वेदाव के इस सिद्धांत को स्वीकार करती है कि मनुष्य तब तक बीता प्राप्त नहीं कर सकता जब तक कि उसे परम्परा तथा प्रज्ञा की एकता का ज्ञान नहीं हो जाता किन्तु साथ ही साथ उसका यह भी लक्ष्य है कि बच जितना उसका ज्ञानी दाता के लिए आवश्यक है। इसी सिद्धांत के आधार पर उसने यह समझने का प्रयत्न किया है कि बीता सम्पत्ति से विमुक्ति स्थिति की कुछ ऐसे बीतन वन में क्यों प्रवृत्त होती है। बीता का मुख्य लक्ष्य लक्ष्यता की लक्ष्य का लक्ष्य देना तथा उसका आधार पर बच की आधारभूत समन्वयता का नियम करना है।³ दूसरे शब्दों में बीता आध्यात्मिकता का ऐसा वृक्ष है जिसका आधार आध्यात्मिकता का स्वर है।

लक्षण के अनुसार बीता सात्त्विकता वन से पाँच सौ वर्ष पूर्व विद्यमान थी।⁴ मण्डारकर, लेखन, बी बी बच तथा बीतित का यही मत है। लक्षण ने बीता की स्थिति के सम्बन्ध में निष्पन्न मार्ग के मत का लक्ष्य किया है। वर्तमान बीता जिसका दाता भी बीता है वर्तमान महान्धारण का ही वन है और बीता एक ही लेखन की रचनाएँ हैं, बीता महान्धारण में कोई बीतन नहीं है। यह महान्धारण वन तथा लक्षण के लक्ष्य में प्रवृत्ति विद्यमान थी।⁵

2 भौतिकबीता रहस्य स्वर तथा विवेचन

अब बीता वेदाव प्रस्तुत की जा एक महान्धारण वृक्ष है, इसलिए मध्यमबीतन मार्ग के लक्ष्य महान्धारण ने उस पर टीका की है। चर, रामानुज, माधव वल्लभ और निम्बार्कर सभी ने उस पर भाष्य लिखे हैं। किन्तु लक्षण के अनुसार इन आचार्यों ने बीता का अपने-अपने वेदाव समन्वय के अनुसार लक्ष्य लक्ष्यता का समन्वय करने के लिए एक बीतिक लक्ष्यता के रूप में प्रयोग किया है। लक्षण ने इस दाता पर बच दिया है कि बीता का विवेचन करते समय हम उस ऐतिहासिक परिस्थिति की लक्ष्य नहीं करनी चाहिए जिसमें यह लक्ष्य दिया गया था। यह लक्ष्य लक्ष्य की दिया गया था या बचता और विवाद से अभिप्राय होकर अपनी मध्यम स्थिति की बीता का और निष्पन्नविमूह हो गया था। लक्ष्य का लक्ष्य लक्षण ने यह अपनी वन वन की और कुछ के लिए लक्ष्य हो गया। इसके निष्पन्न निष्पन्नता है कि अर्जुन ने यही समझा कि बीता लक्ष्य करत

3 दाता महान्धारण लक्षण, चरमानीप्राधान्य, वृक्ष (हिंदी संस्करण 1950)।

4 बी बी लक्षण, बीता लक्ष्य (हिंदी संस्करण), पृ. 506।

5 बी, पृ. 570।

6 बी, पृ. 584। लक्षण के अनुसार यह लक्ष्य है कि महान्धारण वन के अनुलिखित परिणाम का आद्य बीता के लक्ष्य का हो। बी, पृ. 582।

का उपदेश देती है। लिलक का कहना है कि अर्जुन को इसलिए आध्यात्मिक दृष्टि से शुच मानना कि कृष्ण ने उसे देवी सम्पद से विभूषित परम भक्त माना है, उचित नहीं है। उपरम और उपस-हार को इस कमीटी के अतिरिक्त, मीमांसका ने भी इस बात पर बल दिया है कि नीला ने जिन लक्ष्यों को बार-बार सुझाया गया है उनकी महत्व दिया जाना चाहिए। इस कमीटी से भी नीला कमयोग का ही उपदेश देती है, क्योंकि कृष्ण सूरम शास्त्राचार्यीय विवेचन के माध्यम बार-बार अर्जुन को अपने स्वयं का पालन करना तथा युद्ध में रत होने की प्रेरणा देते हैं। नीला रहस्य के प्रथम अध्याय में इन तथा अन्य आध्यात्मिक नीला की समीक्षा है।

नीला रहस्य के दूसरे अध्याय में भारतीय तथा पश्चात्य साहित्य में से ऐसे उदाहरण दिये गये हैं जबकि मनुष्य की धर्म लक्ष्य का सामना करना पड़ा है। प्रायः मनुष्य को ऐसी परिस्थितियाँ या सामना करना पड़ता है जबकि उसने लिए कम का कोई निश्चित भाव अपनाता नहीं हो जाता है। क्या परमार्थ का को अपने पिता की आज्ञा का पालन करने अपनी माता का वध कर देना चाहिए, अथवा वह चाहिए कि अपने पिता की आज्ञा करते और मातृप्राण के दूषित भक्षण से बच जायें? क्या विश्वासियों को अपने जीवन की रक्षा के लिए भ्रातृप्राण के पर से कुत्ते या मातृ प्राण लेना चाहिए अथवा वह आत्मरक्षा के लिए भी मांस नहीं खुराना चाहिए? क्या अर्जुन को अपने आचार्यों तथा प्रिय अनुयायी को नष्टकर क्षत्रिय महसूस के कल्याण का पालन करना चाहिए अथवा उसे सत्कार को त्याग कर समाज का मान अपना लेना चाहिए? क्या सत्य और अहिंसा के सिद्धांत निरोधक अंतर्भाव है अथवा उनके अपवाद भी हो सकते हैं? यदि अहिंसा की निरोधक मान लिया जाय तो मनु ने यह क्या निष्ठा है कि आत्मता की सुरक्षा मार देना चाहिए चाहे वह आचार्य, साहित्य, वास्तव अथवा बड़ ही क्यों न हो? यदि समा की सामर्थ्य रूप से व्यवहार मान लिया जाय तो महाभारत में महाबाह ने यह उपदेश क्यों दिया है कि न शोक विरोध है और न क्षमा? यदि सत्य विरोध है तो कृष्ण, जो कि ईश्वर का अवतार माने जाते हैं, सुविष्टार को युद्ध क्षेत्र में 'अस्वस्थामा मर गया है', इस प्रकार का मृत्यु बचन कहने के लिए क्यों प्रेरित करते हैं? बात स्पष्ट है कि वैदिकता की समस्या बड़ी कठिन है। जब मनुष्य के सामने कम के अतिरिक्त और कभी-कभी परस्पर विरोधी मान उपस्थित होते हैं तो उनके लिए अपनी बुद्धि से उनके से किसी एक का चुन लेना सरल नहीं होता। जो शोक नतिक दृष्टि से सदैवस्थीय है उनके जीवन में जब निरंतर कम के परस्पर विरोधी विचार उत्पन्न होते रहते हैं तभी आचार्यनीति की समस्या का वास्तविक विशय हो जाता है। इसलिए कम, अथक और विजय गया है, यह जान लेना महत्वपूर्ण है।

कमयोग का आचार्याचार्य बहुत ही महत्वपूर्ण है। हिन्दु दर्शन में कम शब्द का बहुत ही व्यापक अर्थ है। मीमांसा के अनुसार कम के चार विशिष्ट प्रकार हैं (1) निम्न कम प्रियम दलिक स्तान, सम्पदा आदि सम्मिलित होते हैं, (2) निश्चित कम विनय वाचा-सम्बन्धी अनुष्ठान और ब्रह्म की प्राप्ति के लिए निम्न बड़े कार्य शामिल रहते हैं, (3) वाच्य कम सत्तान, धर्म आदि की प्राप्ति के लिए निम्न करते हैं, और (4) निश्चित कम विनय करना बलित है। नीला में कम का एक निम्न वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है। विनय का महत्त्व है कि नीला ने अनुसार अथक का अर्थ आध्यात्मिक कम और कम का अर्थ आध्यात्मिक कम है, विनय में कम सम्मिलित होता है जिसे मनुष्य आध्यात्मिक करता अथवा छोड़ देता है।⁷ कमयोग में 'योग शब्द का विनय महत्व है। योग के अर्थ अर्थ हैं।⁸ कभी-कभी इसका अर्थ होता है ब्रह्माण्ड की सृजनकारण शक्ति और कभी-कभी इसका अर्थ विनयनिरोध अथवा सहाय्य समायोजन होता है। परन्तु यह न योग की अतिरिक्त परिभाषा में इसी अर्थ का प्रयोग किया है। कमयोग में योग का इससे भी अधिक व्यापक अर्थ दिया गया है। लिलक का कहना है कि नीला में यदि योग का अर्थ योग के विनय नहीं समझा गया है तो इसका अर्थ सदैव कमयोग है। लिलक के अनुसार कमयोग का अर्थ कम कम से है या व्यवसायिकता बुद्धि

7 कम तथाकथित विनय, नीला रहस्य (हिन्दी संस्करण) पृ. 675।

8 देखिए 'युग सभा' तथा 'सुविष्टार'। 'अर्थ' का अर्थ है 'युद्ध' का अर्थ।

को प्राप्त करने की प्रक्रिया में तथा उससे बाद किया जाता है। और व्यवस्थापिका बुद्धि वह बुद्धि है जिससे संयुक्तन, समता तथा अधिकतमता का माप विद्यमान होता है। गीता का कमवीर मान प्राप्त करने तथा समता में बस करने का एक पुरातन मान है। गीता स्वीकार करती है कि सत्ता से जो मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। निरवयव ही गीता सत्ता से माप की निंदा नहीं करती। उसका मत वैफल इस बात पर है कि कमवीर सत्ता से श्रेष्ठ है। जिस के बलवान की दृष्टि से कमवीर का माप सम्पाद से अच्छा है। तिलक के अनुसार कम्य रामदास ने जो कमवीर का ही उद्देश दिया है। तिलक ने गीता के उद्देश को स्पष्ट करने के लिए नतिषय स्वभाव पर दासबाध का जो उद्धृत किया है।

मन्वदगीता महानारायण का एक अंग है। उस उग्र महाकाव्य में सम्मिलित करने का उद्देश्य ठा महामुखी और मुरखी के अर्थ और आचरण के नैतिक और आध्यात्मिक औचित्य का निरूपण करना है जिसके जीवन और समाज का उद्देश्य यथार्थ है।⁹ गीता एक ऐसा ग्रन्थ है जिसमें मानव धर्म की आधारभूत सिद्धांतों की स्वीकार कर लिया गया है। अनुष्ठानों के अनुसार नर और क्षात्र-धर्म की श्रद्धा से जो अर्जुन और कृष्ण के रूप में अवतरित हुए थे। उन्होंने नारायणीय अवस्था मानव धर्म का प्रतिपादन किया जिसमें निरवयव धर्म की महत्ता दिया गया है।¹⁰ मानव धर्म अनैकपक्षित सत्यता और वाच्यता का नाम ही भी विख्यात है। महानारायण के अनुसार मूल मानव धर्म में निरवयव धर्म पर बल दिया गया है। इसलिए शांतिधर्म में निष्ठा है

सन्तुष्टोऽप्येकीकेषु पुरुषाण्डमर्षीभ्यु ।

अनुने विमनसके च गीता मन्वदगीता स्वयम् ॥

+

+

+

नारायणधर्म धर्म पुनरावर्तितुर्मम ।

प्रवृत्तिदलनस्य चर्षी नारायणधर्मक ॥

जुनि नारायणीय मानव धर्म का ग्रन्थ है और मानव धर्म में प्रवृत्ति धर्म का जन्म दिया गया है, इसलिए यह इस बात का अतिरिक्त प्रमाण है कि उसमें ही कमवीर का उद्देश मिलता है।

मन्वदगीता के चौथे अध्याय में कृष्ण ने अर्जुन के समक्ष इस ग्रन्थ में प्रतिपादित योग का ऐतिहासिक विकास का वर्णन किया है। यह समस्त योग पहले विद्वान्ता का शिक्षाया गया था। विद्वान्ता ने उसे मनु की ओर मनु ने इक्ष्वाकु की सिखाया। कृष्ण ने अर्जुन से कहा कि इस पुरातन योग की अब मैं तुम्हें पुनः दे रहा हूँ। कृष्ण राजनि जनक का उदाहरण देते हैं। जनक तथा उनके सहस्र अंग सोम ने स्वयम् का पालन करते आध्यात्मिक परमेश्वर का श्रेष्ठ कर लिया था, इसलिए कृष्ण अर्जुन को प्रेरित करते हैं कि तुम भी उस परम्पराप्राप्त और पुरातन मान का अनुसरण करो।

तिलक का मत है कि गीता आध्यात्मिक आचारनीति का ग्रन्थ है और उसकी मूलतः दो एक योग के श्रोतरीयोर्मात्रा दृष्टिगत से ही जा सकती है। तिलक औपस्थ कोमल की पद्धति सम्बन्धी आधारभूत मान्यताओं के विवेचन से अपना विवेचन आरम्भ करते हैं। उनका कथन है कि कोमल ने श्रिष्ट मान की परम्परास्वीय अवस्था बनाई है उसे प्राचीन भारतीय ज्ञान की सांघिकिक अवस्था कहते थे। जिसे कोमल मान की परम्परास्वीय अवस्था कहता है उसकी तुलना भारतीयों की आध्यात्मिक पद्धति से की जा सकती है। और जो कोमल की भाषा में विध्वंसक पद्धति है उसे प्राचीन भारतीय आध्यात्मिक पद्धति कहते थे। मान्य विध्वंसिक पद्धति की श्रेष्ठ मानता था। किन्तु

9 का भी निम्न गीता रहस्य (हिन्दी संस्करण), पृ. 556-557 और पृ. 511 भी पढ़िए।

10 तिलक ने अनुसार मानव धर्म की उत्पत्ति 1400 ई. पू. के लगभग हुई होगी। पुनः मानव धर्म में निरवयव धर्म बल दिया गया है। हिन्दू धर्म में उनमें शक्ति धर्म का सम्मिलन कर दिया गया। गीता रहस्य, पृ. 552-55। मानव धर्म के विद्वान्ता, शर्मा की गीता अध्याय 4 में अन्तिम में 1400 अवस्था आध्यात्मिक धर्म, मानव धर्म, आध्यात्मिक मानव धर्म तथा मानव धर्म का नाम दिया है।

तिलक आचार्योक्ति का प्रयोग में आचार्योक्ति का प्रति ने पक्ष में के और जगने अनुसार काट, हेमेल, गोपेनहामर, गोपेन तथा ग्रीन भी इसी दृष्टिकोण का समर्थन करते हैं।

बीता रहस्य के बीते और पानके आस्था में तिलक ने कुछ और कुछ की प्रकृति का विश्लेषण किया है। विश्लेषण के उद्देश्य से वे मौलिनवादी मुसवादी के सम्प्रदाय का अनेक अनुसंगी में विभक्त करते हैं। प्रथम, आचार्य, अथवा आदि का और मुसवादी और तन्त्रवाद का सिद्धांत है। गीता की भाषा में इस सम्प्रदाय के प्रवक्ता को आचार्य सम्प्रदाय से कुछ कहा जा सकता है। द्वितीय, हाँसा और हेन्वेनियस का परिष्कृत मुसवादी है। उन्होंने आचार्यपरिष्कार की धारणा पर आधारित दूरदर्शी स्वायत्त के सिद्धांत का प्रतिपादन किया है। हाँसा ने अनुसार स्वायत्तता का धारणा का आधार है। तृतीय, एव ऐसा सम्प्रदाय भी है जो पराधनवाद की वास्तविकता को स्वीकार करता है। यह सम्प्रदाय भी लौकिक कल्याण को ही महत्व देता है, किन्तु उसका कहना है कि किसी राज्य के नैतिक मूल्यों की परवाह करते समय हमें पराधनवाद को भी ध्यान में रखना चाहिए। तिलकिक इस सम्प्रदाय का समर्थन है। इसे प्रबुद्ध स्वायत्तता का सम्प्रदाय कहा जा सकता है।

चतुर्थ, वैषम्य, मिल और गोपेनवादी का उपयोगितावाद है। उन्होंने अधिकतम लोगों के अधिकतम सुख पर धन दिया है। यद्यपि मिल ने परिभाषात्मक और गुणात्मक सुख के बीच भेद किया और कहा कि सन्तुष्ट सुख से असन्तुष्ट सुख अधिक है, फिर भी उपयोगितावाद नैतिक धर्म की धारणा पर आधारित है क्योंकि उसका विश्वास है कि सुख और दुःख की परिभाषात्मक सापेक्षता सम्भव है। उसका आदेश दुःख को न्यूनतम करना और सुख को अधिकतम बढ़ि बनाना है। यह आदेश इस धारणा पर टिका हुआ है कि सुख और दुःख की समस्त सीमा निर्धारित की जा सकती है।

तिलक ने इन सब सम्प्रदायों की आलोचना की है। उन्होंने मुसवादिता की इस परिष्कृतता का अर्थन किया है कि चतुर्थ स्वभाव से स्वार्थी है, और स्वीकार किया है कि मनुष्य के वैयक्तिकता की प्रकृति उसकी ही स्वाभाविक है जिसकी कि अत्यन्तुष्टि की स्वायत्तता का धारणा। बाद की भाँति तिलक का भी विचार है कि इन मनुष्य के सन्तुष्टि की नैतिक और बुद्धिमत्ता ज्ञान पर धन जाना चाहिए न कि उसके डींग भाषों के बाह्य परिभाषों पर। कुछ पाठ्यक्रम लेखन ने नैतिक मूल्यों की सापेक्षता का प्रतिपादन किया है। तिलक ने उनका खण्डन किया और कहा कि मनुष्य-भाव के प्रतिपादित धर्म की निष्पत्ति की धारणा बहुत अधिक समीचीन है।

यद्यपि आचार्योक्ति का उपयोगितावादी सिद्धांत मानव जाति के आचार्योक्ति के एक उत्कृष्ट अर्थवाद का स्रोत है, फिर भी इस सिद्धांत में दोष है। तिलक उपयोगितावादी आचार्योक्ति की सविस्तर आलोचना करते हैं। उपयोगितावाद का दोष यह है कि यह धर्म तथा धर्म का एक ही मानता है। आचार्योक्ति का भी यह समीचीन मानसिक आनन्द, आत्मतत्त्व तथा लौकिक धर्म का समुचित रूप से समझने में असमर्थ है। उपयोगितावादी समीचीन का आधार अस्तित्ववादी दृष्टिकोण है, क्योंकि यह अधिकतम लोगों के सुख अथवा आनन्द को किसी अथवा साधन है, और सन्तुष्टि के श्रुतिकरण की आवश्यकता पर धन नहीं देती। किन्तु बाइबिल (मैथ्यू 5, 328) बीड धर्म तथा मनु मनुष्य के प्रेरकों को अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं।

तिलक के अनुसार उपयोगितावादी दृष्टिकोण में अनेक अतिरिक्त, परिभाषा और कठिनाई हैं। प्रथम, यह एव परिभाषात्मक प्रतिपादन है और अधिकतम लोगों के अधिकतम सुख को प्राप्त करना चाहता है। किन्तु अधिकतम धर्म धर्म धर्म पर सत्य है। उदाहरण के लिए औरवा की सना मारु अतीति की धारणा की सत्य अतीति की भी। उपयोगितावादी दृष्टिकोण में पाठ्यक्रम की तुलना के औरवा का धर्म अधिक उचित माना जाना चाहिए। किन्तु व्यवहार में यह परिभाषात्मक प्रतिपादन अत्यन्त सिद्ध होता है। सामान्य धर्मधर्म यही है कि एव धर्म धर्म का धर्मधर्म धर्म धर्म के धर्मधर्म की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण है। अतः धर्म अथवा धर्म की परिभाषात्मक सापेक्षता नहीं की समुचित और सम्भव नैतिक समीचीन नहीं जानी जा सकती।

दूसरे, समीचीन देखने में आता है कि जो बहुत अधिकतम लोगों का सुख और धर्मधर्म

मान पड़ती है वह एक अवस्था अथवा अधिव्यवस्था की दूर दृष्टि और कल्पना के प्रतिफल होती है। अर्थस और फिनिसलीन के अनुसंधानों का सोचने और समझने का अपना एक ढंग था। उसमें विरोध श्रेष्ठ के सम्बंध में सुकरास और ईसा मसीह के विचार मिले थे। इतिहास में सुकरास और ईसा की अन्तर्दृष्टि की ही आत्मा में अभिन्न सिद्धि निभा। जनता ने सोचा था कि अधिकतम लोगों का अधिकतम कल्याण इस महान विप्लवों की धुनु के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। अब स्पष्ट है कि उपवासितावादी दृष्टिकोण धनसत्ता और समासद है। जनता के समक्ष ऐसी कसौटी रखी जाती बाह्य की हर काम में निरपवाद रूप से अपनायी जा सके। अधिकतम लोगों का अधिकतम सुख प्राप्त करने में निहित है इसका निष्कर्ष करने का कोई बाह्य साधन नहीं है।

उपवासितावादी कसौटी ने निरन्तर दुर्बल की आपत्तियाँ प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त उसमें एक तीसरी आत्मा भी है। यह आत्मा है और मनुष्य के व्यवहार को प्रेरित करने वाले साधन की पहचान नहीं देती। मनुष्य कोई ब्रह्म नहीं है। उसके हृदय तथा व्यक्तित्व होता है। इसलिए उसके बापों के अंतर्गत पर ध्यान देना आवश्यक है। जिसका भाव है कि सामान्य जीवन में आप्र देखा जाता है कि यदि किसी परोपकार के काम के लिए एक लक्ष मनुष्य बहुत बीड़ा धन और एक बड़ी व्यक्ति जारी व्यवस्था के रूप में देता है तो उन दोनों के हान के वैयक्तिक धर्म की लोप समाप्त सम्मिलित हैं। इसके प्रबल होता है कि बाप के मुख में निहित प्रेरणा अधिन श्रेष्ठ बहुत है। जिसका ने की शक्ति वास्तव की 'वि एकीकृत प्रीति' (आचार्योक्ति सम्मेलन) का उदाहरण देता है। एक बार अमेरिका के एक बड़े शहर में एक व्यक्ति दान-धर्म की व्यवस्था करना चाहता था। किन्तु सरकारी अधिकारियों से उसे काम के लिए आवश्यक अनुज्ञा प्राप्त करने में बड़ी देर हो रही थी। इसलिए दान-धर्म के प्रवर्धन में सरकारी अधिकारियों को कुछ देकर बहुत प्राप्त कर ली और दान-धर्म प्रारम्भ कर दिया। किन्तु कुछ समय उपरांत सामान्य गुप्त समा, और दान प्रवर्धक पर अधिव्यवस्था चलाना गया। पहली बार जूरी के सदस्य में निषेध के सम्बंध में मतभेद हो गया। अब दूसरी जूरी निर्णय की गयी। प्रवर्धक को अपराधी घोषित किया गया और उसे दण्ड दिया गया। जिसका भाव है कि दान प्रवर्धक व्यवस्था के लिए सत्ता और दण्ड परिकल्पित व्यवस्था का निर्माण करके अधिकतम लोगों का अधिकतम कल्याण कर रहा था, फिर भी उसे अपराधी माना गया। यह उदाहरण उपवासितावादी कसौटी की अनुपयुक्तता और आत्मा को सिद्ध करता है। कभी-कभी यह कहा जा सकता है कि किसी मनुष्य की उपवासिता की परत करने समय हम विद्या-पक्ष के मन की प्रवृत्तियों की ओर ध्यान नहीं देते, हम केवल यह देखते हैं कि विविध कानून के अधिकतम लोगों का अधिकतम कल्याण होता है अथवा नहीं। किन्तु यह कसौटी ऐसी साधन नहीं है कि इसे सभी परिस्थितियों में लागू किया जा सके। जिसका स्वीकार करते हैं कि कुछ बाह्य दृष्टि से 'अधिकतम लोगों का अधिकतम सुख' का अच्छी अर्थ कोई कसौटी नहीं हो सकती, किन्तु आचार्योक्ति की भाव है कि इसमें अधिन सुनिश्चित, सुगम और उपयुक्त प्रतिमान की स्थापना की जाए। वे बात के इस सिद्धांत का समर्थन करते हैं कि आचार्योक्ति कर्ता के कुछ सम्पत्ति के कारण होने की बाह्य। मान स्टुअर्ट मिन अपनी 'पूटीलिटीरियनिज्म' (उपवासितावाद) नामक पुस्तक में लिखता है "बाप की वैयक्तिकता सुगत सम्पत्ति (अभिप्राय) पर लक्ष्य नहीं की कुछ करने का मकसद करता है, उस पर निर्भर होती है। किन्तु यदि प्रेरक हेतु से, अर्थात् उस सम्पत्ति से जिससे प्रेरित होकर वह काम करता है, काम में कोई अंतर नहीं पड़ता तो उससे (उस काम की) वैयक्तिकता के भी कोई अंतर नहीं पड़ता।" जिसका भाव है कि मिन का यह कथन उसमें समतापूर्ण दृष्टि होने का संकेत है। ऐसे दो मामलों में जिसके बाह्य रूप अपना परिणाम एक से हों, किन्तु उनके प्रेरक हेतु भिन्न हों, वेद न करना बुद्धिमानी नहीं है। इसलिए उपवासितावादी कसौटी लोपित रूप में ही लागू की जा सकती है।

जिसका ने उपवासितावादी आचार्योक्ति के रूप की भी कुछ निष्कर्ष है। उनका कहना है कि उपवासितावादी सम्पदा इस बात का समुचित उत्तर नहीं देता कि परोपकार स्वाध के क्या अर्थ है। यह भाव है कि जिसका के बहुत सम्पदा के सिद्धांत ने विपरीत उपवासिता कसौटी स्वीकार करते हैं कि जब स्वाध और परोपकार के बीच द्वन्द्व हो तो परोपकार के भाग को

ही अपनाता चाहिए। किन्तु उन्होंने अपने इस दृष्टिकोण को संज्ञासिद्ध औचित्य प्रदान करने का प्रयत्न नहीं किया है। यह कोई उत्तर नहीं है कि यह मानव स्वभाव के अनुकूल है। अतः तिलक का कहना है कि आध्यात्मिक दृष्टिकोण को अपनाता और मानव-आत्मा को धर्मियों को साक्षात्कृत करना आवश्यक है। वे मानते हैं कि साधारणीकृत मूल्य अपरिचयनीय होते हैं। वे महाभारत के इस विज्ञान के अनुयायी हैं कि यम मिल होता है और दुःख एवं सुख धर्मिक होते हैं।

आचारनीति के मुख्यवादी सम्प्रदाय का आधार भौतिकवादी ब्रह्मसंस्कारण है। तिलक के अनुसार भौतिकवाद मूलतः अस्तित्वजनक है क्योंकि उसमें आचारनीति के प्राथमिक सिद्धांत तक के लिए स्थान नहीं है। भौतिकवाद मानव आत्मा को स्वतन्त्रता से सम्बन्धित आधारभूत प्रयोग तक का उत्तर नहीं दे सकता। तिलक के अनुसार परम सुख विवेक तथा आध्यात्मिक दृष्टि अनिहित होता है। सामाजिक अथवा आंतरिक प्रकार का सुख ऐंद्रिक तथा भौतिक दोनों प्रकार के सुख से श्रेष्ठ होता है। समयोग का विज्ञान सुख की समस्याओं के सम्बन्ध में आध्यात्मिक दृष्टिकोण का समर्थन करता है। भारत में सातवक्त्र और पवित्र में तीन के इसी प्रकार के दृष्टिकोण का समर्थन किया है।

गीता-रहस्य के छठवें अध्याय में तिलक ने आचारनीति के अन्त प्रणाली सम्प्रदाय का विरोध और खण्डन किया है। इस विचार सम्प्रदाय का प्रवर्तन ईसाई धर्मका ने किया है। तिलक के अनुसार यह सम्प्रदाय भी अनुपयुक्त है, क्योंकि मन और बुद्धि के अतिरिक्त अन्त करण अपना अन्त प्रज्ञा (संस्कारविवेक शक्ति) नाम की किसी वृत्ति वस्तु की सत्ता की स्वीकार करने का कोई समुचित आधार नहीं है।¹¹ इसके अलावा भारतीय चिन्तन के अनुसार उन लोगों के अन्त करण का ही वैज्ञानिक महत्व हो सकता है जिनका आध्यात्मिक पुनर्जन ही पुरा है। जिनकी मानवार्थ और सबैव परिष्कृत और उत्तर नहीं हुए हैं उनके अन्त करण का कोई वैज्ञानिक मूल्य नहीं हो सकता। चूंकि मुख्यवादी और अन्त प्रणाली सम्प्रदाय अनुपयुक्त है, इसलिए तिलक तत्त्वज्ञानीय अथवा आध्यात्मिक दृष्टिकोण के समर्थन है।

तत्त्वज्ञानीय (आध्यात्मिक) दृष्टिकोण गीता, महाभारत तथा वाद, द्वैत और द्वैत की रचनाओं में प्रतिपादित किया गया है। तिलक के अनुसार ब्रह्मविद्यामय योगशास्त्रों का अर्थ है कि गीता की आचारनीति का आधार सत् (वास्तविकता) के सम्बन्ध में आध्यात्मिक दृष्टिकोण है। यह सत्य है कि गीता और महाभारत दोनों ही सामाजिक संरचना की समस्याओं तथा सत्य प्राप्ति के कल्याण (सुखभूतहित) की विवेचना करते हैं, किन्तु अन्तर्गत की मुक्ति के सम्बन्ध में आध्यात्मिक दृष्टिकोण को वे सभी आद्य से जीवित नहीं होने देते। इस आध्यात्मिक दृष्टिकोण के कारण ही गीता की आचारनीति कोमल के उस प्रत्यक्षवाद (वस्तुनिष्ठवाद) से श्रेष्ठ है जो अपने उच्चतम रूप में भी केवल मानवता के यम तक पहुँच पाता है। तिलक के अनुसार गीता का आध्यात्मिक दृष्टिकोण 'विकीर्णधियः एभिर्न' में प्रतिपादित आत्मसुखवाद के सिद्धांत से भी श्रेष्ठ है। तिलक ने गीता का भी विवरण किया है उसने अनुसार आध्यात्मिक आत्मसुखवाद की दृष्टि में विद्या यथा यम ही सर्वोपरि है। गीता के अनुसार कम तीन प्रकार का होता है—सार्वभौम, राजनिय तथा सामनिय। इस सर्वोपरि का आधार मनुष्य का स्वभाव है। यह सर्वोपरि भी सिद्ध करता है कि गीता के अनुसार कर्तव्य का स्वत्व प्राथमिक महत्व की चीज है।

चूंकि भगवद्गीता का आधारप्रारण (आचारनीति) परम सारि गता (वास्तविकता) की प्रकृति के सम्बन्ध में आध्यात्मिक दृष्टिकोण की लेकर चलती है, इसलिए तिलक ने गीता का मानव, आत्मा तथा सर्व आध्यात्मिक व मूर्तिप्रारण तथा तत्त्वज्ञान का विवेचन किया है। तब ही जति तिलक भी स्वीकार करता है कि गीता अद्वैतवादी तत्त्वज्ञान का प्रतिपादन करती है। गीता के निम्न यम के सम्बन्ध में उत्तर तथा तिलक के बीच मतभेद तत्त्वज्ञान व सम्बन्ध में नहीं। यमि नीति शास्त्र के सम्बन्ध में है। उत्तर तथा तिलक दोनों का कहना है कि जगत् में यदि आध्यात्मिक गता

11 तिलक के अनुसार अन्तर्गतवर्तित बुद्धि के तत्त्वनिष्ठवर्तित अतिरिक्त है—गीता रहस्य (हिन्दू साहित्य) पृ. 427

है, आधारभूत तथा परम तत्त्व है, और वह विमय तथा आनन्दमय है। त्रिषु आप्यात्मिक तत्ता की सन्निधानद वस्तुतः उत्पत्ता केवल उच्चतम प्रत्ययमयक निरूपण है। वास्तुतः यह अविषयनीय है, और सभी प्रकार के निरूपण के परे है। परम सत्ता (सत्) परम ज्ञान और परम आनन्द की है। यह तीन तत्त्वों का बोध नहीं है, वास्तव्य में तीन तत्त्व एक ही चीज हैं। परम आप्यात्मिक सत्ता (परब्रह्म) का अन्वेषण के दीर्घतम मूल्य में उत्कृष्ट किया गया है और नास्तवीय मूल्य में उसकी अन्वेषण औपस्थीय इस से व्याख्या की गयी है। त्रिलोक का ब्रह्मा है कि आदि आप्यात्मिक सत्ता की मूल प्रकृति के सम्बन्ध में वह निरूपण साधनिक चिन्तन की उच्चतम उपलब्धि है। पण्डित डॉमनन की भांति उनका भी विश्वास है कि सविद्य म साधनिक बोध के क्षेत्र में त्रिलोकी ही अधिक प्रगति क्या न करती ज्ञान, मायक का मय इस अद्वैतवादी चेतना के आगे नहीं जा सकता। त्रिलोक रहस्य तमक अनुभूतिवादी की वास्तविकता की स्वीकार करते हैं। वे मानते हैं कि परम सत्ता (परब्रह्म) के साक्षात्कार के लिए तुरीयावस्था तथा उनसे उपजात निर्विकल्प समाधि की अवस्था आवश्यक है। अद्वैतवादी वेदांतियों की भांति त्रिलोक का भी विचार है कि विद्वत् परब्रह्म की आभासी तथा दृश्य मात्र अभिव्यक्ति है। वह परब्रह्म का दमिष्ठित (कारणजनक) विकास अथवा रचाकर नहीं है। वे परम्परावादी अद्वैत वेदांतियों के विद्वत् के सिद्धांत को स्वीकार करते हैं। वेदांत के अनुसार तत्त्वज्ञानशील इन्द्रिय से सन्निधानद परम सत्ता है। समाधिस्थ अवस्था में सर्वत्र पर व्याप्ति की भी ऐशा ही अनुभूति होती है। त्रिषु आराधना की दृष्टि से सभी सन्निधानद (परब्रह्म) का ईश्वर मान लिया जाता है। परब्रह्म आप्यात्मिक सत्ता की परम, आदि प्रकृति का वाचक है, जबकि ईश्वर आस्तिक भक्त के लिए स्वयं परब्रह्म का रूप है। अतः ईश्वर आराध (परब्रह्म) का व्यक्तीकृत रूप है। उपनिषदों में भी उपासना के लिए अनेक प्रकार की विद्याओं का प्रतिपादन किया गया है।

गीता वेदांत के तत्त्वज्ञान तथा सारय व ब्रह्माण्डशास्त्र के बीच सम्बन्ध स्थापित करती है। ईश्वर कृष्ण द्वारा प्रतिपादित सारय अनीश्वरवादी है। सम्भवतः कपिल द्वारा प्रतिपादित मूल साख्य भी अनीश्वरवादी था। केवल विनायकियुग में जो सारय के एवं परब्रह्मों आप्यकार के सारय का ईश्वरवादी इन्द्रियीय से निबन्धन करने का प्रयत्न किया है। सारय प्रकृति की बहुमुखी सत्ता की स्वीकार करता है। उसके अनुसार प्रकृति सत्य, रजस तथा तमस इन तीन तत्वों के शक्तुलन की अवस्था है। सारय के अनुसार प्रकृति के अतिरिक्त अप्रगणित पुरुष है जो तेजोमय, बुद्ध और विष्णव होते हैं। पुरुष के साथ सम्बन्ध होने से प्रकृति की सृजनगतक व्यवस्था विद्यावली हो उठती है जिससे परिणामस्वरूप अन्त में मानसिक तथा बौद्धिक चेतनों का तथा विद्वत् का निमात्र करने वाले तत्वों का भी विकास होता है। सारय के अनुसार महत् सत्य तथा अज्ञान ब्रह्माण्डव्यापी होते हैं। गीता में वेदांत तथा सारय का सम रूप दिया है। उसमें वेदांत से इस प्रकार का ग्रहण किया है कि परब्रह्म आदि तथा अद्वैत तत्त्व है। सारय से उसने प्रकृति के विकास का सिद्धांत लिया है। इस लिए गीता में कहा गया है

अपरममितसत्त्वया प्रकृति विद्धि मे परमम् ।

जीवभूता महाबाहो भयेद भाषते जयत ॥ (7, 5)

+

+

+

समात्मसेव्य प्रकृति मूर्धते सत्त्वचरणम् ।

हेतुनामेन नीलेय जगद्विपरिवृत्तते ॥ (9, 10)

गीता सत्य, रजस और तमस इन तीन प्रकार के गुणों की स्वीकार करती है, और इस सिद्धांत के आधार पर उनमें बुद्धि के तीन प्रकार, वाक् के तीन प्रकार, आदि की विविध व्यवस्था का निर्माण किया है। यही नहीं कि गीता सारय सम्बन्ध के आधारभूत तत्त्वों की सतोपित रूप में स्वीकार करती है, बल्कि वह सारय का विवेक और स साक्ष के पक्षों के रूप में भी प्रस्तुत करती है। सारय प्रकृति के सम्बन्ध से मुक्ति के लिए विविध परम वेदा है। वेदांत के अनुसार मोक्ष के लिए परब्रह्म का ज्ञान आवश्यक है जबकि साख्य के अनुसार मोक्ष तब प्राप्त होता है जब अनुपम्य ज्ञान की प्रकृति के प्रकृत से मुक्त करने आत्मा के पुनरूप का ज्ञान कर लेता है।

ब्रह्मणि गीता के अनुसार आदि आध्यात्मिक तत्त्व (परब्रह्म) ही परमाय सत्य है। किन्तु वह विद्वान् को भी ब्रह्म की ही सृष्टि माननी है। सृष्टि की रचना का मुख्य कारण माया है। माया और मन एव ही शीघ्र है, यदि मन उस माय का अंग न होता तो माया के विना ही विद्वान् के परिश्रम के लिए किया जाता है (भूतनायोदमभवकरो विलस)। वेदान्त का कहना है कि प्रकृति अपना माया स्वतन्त्र नहीं है, बरन वह परब्रह्म के निर्देशानुसार न चले सकती है। वेदान्त के अनुसार मायात्मक मन भी अनारि है। माया इस अर्थ में अनारि है कि उसकी उत्पत्ति जानी नहीं जा सकती। यदि विद्वान् के सम्मुख में ब्रह्म भौतिकवादी दृष्टिकोण अपना लिया पाये जैसा कि हेनल ने प्रतिपादित किया है तो हमें मानना पड़ेगा कि मनुष्य एक माय है जो ब्रह्म (पदार्थ) की सति के भावों के अनुसार विभिन्न रसाभा में मारा मारा निरता है। किन्तु विद्वान् का आध्यात्मवादी दृष्टिकोण यह मानकर चलता है कि प्रकृति की निरन्तर होने वाली घटनाओं और परिवर्तनों के बीच भी मनुष्य ने कुछ स्वतन्त्रता तथा स्वतः स्फूर्ति विद्यमान रखी है। मनुष्य में स्वतन्त्र की स्वतन्त्रता निहित है, और इस स्वतन्त्र की अभिव्यक्ति नव होती है जब वह कम और ईर्ष्या के चक्रों के मुक्ति पाने के लिए ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। मनुष्य में परब्रह्म की जानने की इच्छा और क्षमता होती है जिसके द्वारा वह मुक्ति पाने का प्रयत्न करता है, वह तत्पक्ष ही अपने स्वतन्त्र की स्वतन्त्रता का प्रमाण है। किन्तु वेदान्त के दृष्टिकोण से स्वतन्त्र की स्वतन्त्रता की धारणा धीमीधीन नहीं है, क्योंकि स्वतन्त्र अज्ञान मन का गुण है और तत्त्व के अनुसार मन प्रकृति की उपज है। गीता शास्त्र के दृष्टिकोण की स्वीकार करती है। वेदान्त के अनुसार स्वतन्त्रता न तो मन का गुण है और न बुद्धि का, अज्ञान की अवस्था स्वकूपोत्पत्ति और प्रकृति ही स्वतन्त्रता है। मानव-आत्मा ज्ञान प्राप्त करने के लिए स्वतन्त्र है, और जब वह ज्ञान प्राप्त करने के लिए ब्रह्म से निरन्तर अभ्यास करती है तो समय-समय पर उसे ज्ञान उपलब्ध हो जाता है। गीता का कहना है कि इस प्रकार कमलिका और मानव-आत्मा की स्वतन्त्रता, इन दोनों का सम्बन्ध बिना जा सकता है। गीता रहस्य ने हमें अध्याय ३ इस विषय का विवेचन किया गया है। मोक्ष आध्यात्मिक ज्ञान के द्वारा प्राप्त होता है, उसकी प्राप्ति के लिए गीता कम-पाप का उल्लेख नहीं देती। उल्लेख उल्लेख है कि मनुष्य की केवल मन के मन के सम्मुख में अहंकार और स्वाध्याय का साथ देना चाहिए। तिलक के अनुसार गीता की सर्वोपरि शिक्षा यह है कि मनुष्य की मन अवस्था पर आधारित अपने स्वयं का पालन करना चाहिए और साथ ही साथ उसे तिलकप्रति की अवस्था तथा ब्रह्म के साथ एकात्म्य प्राप्त करने की भी चेष्टा करनी चाहिए। किन्तु इस अवस्था और इस एकात्म्य मार्ग के प्राप्त हो जाने पर भी मनुष्य की स्वयं का परिचाय नहीं करना चाहिए। उसका कर्तव्य है कि वह स्वयं का अज्ञान और ईश्वरपूजा की भावना से पालन करे। मोक्ष तथा अहंकार के बीच अन्तर्विरोध है, किन्तु निष्पन्न मन और बुद्धि के बीच कोई विरोध नहीं है। गीता ने मनुष्य प्राणि के लक्ष्य स्वयं ब्रह्म का उदाहरण रखा है। वह अपना कोई निजी अपना निवर्तित उद्देश्य प्राप्त नहीं करता है, फिर भी वे लोकसमूह के लिए निरन्तर काम करते रहते हैं। ईश्वर इस ब्रह्मात्म्य के लक्ष्य की सुरक्षित रचना पाहता है, इसीलिए वह ज्ञान के विनाश और मन की रक्षा के लिए बार-बार अवतार लेता है। अतः मनुष्य का ब्रह्म का उदाहरण अपने सामने रखना चाहिए, और अपने अज्ञान तथा मोक्षसमूह के लिए निरन्तर काम करते रहना चाहिए। किन्तु जैसा कि पहले कहा गया है, जीवन का परम उद्देश्य परब्रह्म का साक्षात्कार करना है।

गीता रहस्य के आधारों अध्याय ३ समाप्त तथा चमत्कार की आधारनीति की निष्कर्षा की गयी है। गीता के अनुसार आध्यात्मिक का आधारभूत प्रश्न यह है कि मनुष्य की मन का परिचाय कर तथा चाहिए अथवा परम ज्ञान की प्राप्ति के उपरांत भी मन करते रहना चाहिए। समाप्त तथा चमत्कार दोनों ही वैदिक जीवन की पुरातन तथा आध्यात्मिक पद्धतियाँ हैं। ब्रह्मणि गीता में अनुसूत लोक समूह की दृष्टि से चमत्कार का मार्ग स्पष्ट है। अन्तर के मत में मोक्ष की प्राप्ति ज्ञान से होती है। अतः जब कम मोक्ष के लिए अवसरमय है तो ज्ञान की प्राप्ति के उपरांत उसका परिचाय कर देना चाहिए। किन्तु गीता के अनुसार केवल आध्यात्मिक समाप्त आवश्यक है। गीता के मत विवेकी ब्रह्म की परम ज्ञान की प्राप्ति के उपरांत भी लोक कल्याण के लिए काम करते रहने

युष्म ने अनुमन की वृत्ति में नियोजित किया, इसी से स्पष्ट है कि युष्म वन का परिष्कार करने के पक्ष में नहीं थे। प्राचीन भारत के इतिहास से भी यही प्रमाणित होता है। यदि युष्म और मानवत्त्व ने सम्मान या भाग अनायास या तो दुसरी ओर जनक, युष्म आदि न कमवास या अनुसरण किया था। श्वास की वृत्ति करते रहे थे। प्रकृति और निर्वाण—दोनों ही मार्ग पुरातन हैं। गीता का मत स्पष्ट है कि परम ज्ञान पर आधारित निष्काम वृत्ति ही मोक्ष का सर्वोत्तम मार्ग है। ज्ञान से युक्त ब्रह्मादि वन से द्वारा, जितना सम्भव भीमानता ने किया है, मनुष्य को मोक्ष नहीं मिल सकता, उसी वेषल स्वर्ग की प्राप्ति ही संभव है। इससे अतिरिक्त वन का युष्म ध्याप अन्तर्मन की है। शत्रु मार्ग करने के उपरांत भी विवेकी युष्म का शरीर की आवश्यकताओं की पूर्ति करनी पड़ती है। जब शरीर की भूमि उसे जिज्ञासे से युक्त वन करने के लिए प्रेरित करती है तो फिर वन के परिष्कार के लिए कोई बुद्धिमान भीतर नहीं हो सकता।¹² इसलिए मनुष्य को पूर्ण निष्काम मार्ग से अपने वन्य का मार्ग करना चाहिए और साथ ही ज्ञान निरंतर ब्रह्म के ध्यान से हताशुक्त स्थिर रहना चाहिए। ब्रह्मांड की सत्ता का एक ईश्वरीय पक्ष के सहज है। स्वयं ईश्वर ने इसकी सृष्टि की है, और इसका उद्देश्य ज्ञान नहीं आ सकता। इसलिए मनुष्य को अपना वन नहीं छोड़ना चाहिए। वन तथा उसके परिष्कार की श्रुतियाँ अपरिहार्य हैं। इसलिए विवेकी युष्म के लिए आवश्यक है कि ज्ञान प्राप्ति के उपरांत भी कम करता रहे। आवश्यकता वेषल इस मार्ग की है कि उसे वन से ज्ञान के सम्मान व युष्म निरासक्त हो जाना चाहिए। उसे वन का परिष्कार नहीं करना है। विवेकी युष्म को अपने कर्मी के द्वारा लोक वन्यता के काम में योग देना है। वन निरासक्त और निष्काम मार्ग से किया गया वन ही वन पुराण है। विवेकी के लिए करोबहार और मानव सेवा नतिक अधिबोधन नहीं होती, वे तो परम तत्व के ज्ञान एकात्म्य के साक्षात्कार की भावना से स्वमाया अनुमन होते हैं। बुद्धिमान ज्ञान स्वतंत्रता की भाँति सामाजिक परिवर्तन का भी सूत्रपात कर सकते हैं। जीवन मुक्त की नियति की प्राप्ति आध्यात्मिक साधना की परिणति है। बुद्धिमान को ईश्वर की भाँति ज्ञान सत्य के लिए वन करना चाहिए। गीता का मत इस बात पर है कि विवेकी को भी निर्धारित वन करने चाहिए। गीता का किसी विशिष्ट समाज व्यवस्था से ज्ञान नहीं है, यद्यपि उस युष्म के हिंदू समाज के समय में चार कर्मों के वन्य ही भावना से जितना अनुसरण करना आवश्यक था। किंतु गीता का सिद्धांत सामाजिक है, वह किसी सामाजिक व्यवस्था तक सीमित नहीं है। मनुष्य पारण यह है कि मनुष्य को ईश्वरपथ की भावना से और निरासक्त होकर वन करना चाहिए। गीता का समाज मानवत वन है जिसमें प्रवृत्ति मार्ग का उपदेश दिया गया है। शत्रु स्थापन सम्प्रदाय के थे। वह सम्प्रदाय सिद्धांत है कि एक विशिष्ट व्यवस्था के बाद मनुष्य को वन का परिष्कार कर देना चाहिए। इससे विपरीत गीता ईश्वरपथ के इस उपदेश का समर्थन करती है कि मनुष्य को लोक वन्य निरासक्त मार्ग से वन करना चाहिए। शत्रु ने वेदांत सूत्री (3, 4, 26 और 3, 4, 32-35) की व्याख्या अपने ढंग से की है और सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि ज्ञान प्राप्त करने के उपरांत मनुष्य के सामने समाज और मनोवृत्ति से नकारण जीवन प्रवृत्ति होती है। स्थापन सम्प्रदाय कर्मों के परिष्कार पर बल देता है और गीता वन वन की दृष्टि के परिष्कार का उपदेश देती है। मनु और मानवत्त्व वन्यता की समाज का विकास मार्ग से किंतु आवश्यक तथा बोधार्थक के वन युष्म से ज्ञान जीवन की आवश्यकता की गयी है और कहा गया है कि बहुत वन का अनुचित रीति से ज्ञान करने पर अंत में मनुष्य अमरत्व प्राप्त कर सकता है। समाज मार्ग के परिष्कार करने वाला ने मन से सुखी वन्य कर बल दिया है और कहा है कि आध्यात्मिक अनुभूति के प्राप्त कर मन के उपरांत वन की आवश्यकता नहीं रहती। किंतु वन्यता सम्प्रदाय का कहना है कि वन वेषल मन की मुक्ति करने के लिए नहीं नियम वाले चरित्र सृष्टि वन की ज्ञान करने के लिए भी विवेकाले है। अतः अंतिम मार्ग की प्राप्ति कर लेने के उपरांत भी ज्ञाना परिष्कार करना उचित नहीं है। जितना व

अपने गीता रहस्य में कमयोग और संचार के भेद की स्पष्ट करने के लिए गीता के निम्नलिखित पंक्तियों का अवलम्ब लिया है

कोनैऽस्मिन्निविष्टा निष्ठा पूरा प्रोक्त समानम् ।

पानयोगेन साध्याना नमयोगेन योगिनाम् ॥ (3, 3)

गीता-रहस्य के बारहवें अध्याय में तिलक ने इस बात का विश्लेषण किया है कि पूरा ज्ञान (सिद्धावस्था) की प्राप्ति के उपरान्त नम की क्या प्रणाली और प्रक्रिया होनी चाहिए । उनका कथन है कि पूरा पुरुष को भी दुष्टों तथा नापी पुरुषों के समुल्लेख जगत में रहना पड़ता है । यदि पूरा पुरुष को आध्यात्मिक तथा नैतिक प्राप्ति के समान में रहना पड़े तो उसके लिए नैतिक नियमों का पूरा कठोरता के साथ पालन करना सम्भव हो सकता है । किन्तु इस बात का सर्वत्र भय रहता है कि नापी और दुष्टताओं के प्रति जीवन के लिए ही सकल उत्पन्न कर दें, इसलिए आवश्यक है कि वह अहिंसा, शमा आदि गुणों की विशेष रूप में स्वीकार न करे । गीता के अनुसार तत्त्व की बात यह है कि ननुप्य को अपने में अध्यात्मोपलब्धि अनात्मिक की भावना का निरास करना चाहिए, बाह्य काय का, चाहे वह हिंसात्मक हो और चाहे अधिहात्मिक, इत्यादि महत्त्व नहीं है । यदि किसी पुरुष दुष्टता का प्रतिरोध करता है तो उसमें कोई बाध नहीं है । गीता मानसिक अहिंसा का उपदेश देती है, न कि शारीरिक प्रतिरोध के अभाव का । आत्म-संरक्षण¹³ का प्राकृतिक अधिकार हर व्यक्ति में मान्य है, किन्तु ऐसे भी अवसर आ सकते हैं जब किसी पुरुष अपने मन अथवा देश के लिए अपना प्रतिदान करना ही उचित समझे । सत्कार विनयसम्बन्ध और आचरणसम्बन्ध के आधारों को संसाधित करने की विद्या में अन्तर हो रहा है । तिलक के अनुसार भूयस्वतः आध्यात्मिक प्रेरणा है, वास्तविक कल्याण का परिचिप्टों की आवश्यकताओं के अनुसार निरूपण किया जा सकता है । गीता का परम उपदेश है कि ननुप्य को साम्प्रदायिक प्राप्ति करने का प्रयत्न करना चाहिए, और नित्य ही अधिक व्यक्ति इतनी प्राप्ति कर लेते जتنا ही सत्कार संप्रदाय की ओर अवसर होता जायगा ।

गीता-रहस्य के बारहवें अध्याय में भक्ति मान का विश्लेषण है । भक्ति अध्याय का एक अर्थ है । एक साधन के रूप में भक्तिमान की ईश्वर साक्षात्कार तथा निष्ठाप्राप्ति की अवस्था की ओर अवसर होने में सहायता करता है । किन्तु भक्ति मान प्राप्त करने का एक साधन है वह स्वयं अन्तिम सत्त्व अथवा निष्ठा नहीं है । गीता के अनुसार ज्ञान तथा कमयोग को निष्ठाएँ हैं । किन्तु भक्ति एक स्वतंत्र निष्ठा नहीं है । पूजा की रीति की परिणति का नाम ही निष्ठा है । इसलिए गीता केवल ज्ञान और कमयोग को ही निष्ठाएँ मानता है, क्योंकि सिद्धावस्था की प्राप्ति के बाद के दोनों जीवन की प्रणालियाँ ही सकती हैं, किन्तु भक्ति इस प्रकार का स्वयं नहीं बन सकती । भक्ति मान एक 'उपासना' की पारम्परिक विनियमित रूप है जिसका उपनिषदों में उल्लेख आता है । गीता में भक्ति की महत्त्व दिया गया है, इसलिए यह इतनी लोकप्रिय बन गयी है । गीता में भक्ति पर जो बल दिया गया है उससे उपनिषदों की शिक्षाओं का रूप अधिक 'लोकतात्पर्य' हो गया है, क्योंकि सभी लोक भक्ति मान का अनुसरण कर सकते हैं, किन्तु सब लोग सत्त्वसाधन की सूत्रों का नहीं समझ सकते । भक्ति के द्वारा ईश्वर के साथ एकात्म्य स्थापित किया जा सकता है, इस पारम्परिक के देश की जनता ने आध्यात्मिक पुनर्जागरण का मान प्रकट कर दिया है ।

गीता-रहस्य के बारहवें अध्याय में गीता के बारहवें अध्यायों की पारम्परिक समीक्षा का विश्लेषण किया गया है और यह दिखाया गया है कि एक अध्याय और दूसरे के बीच प्राप्ति समीक्षा है । बारहवें अध्याय में अन्तिम निष्कर्ष दिया गया है । तिलक के अनुसार गीता का सार पानमर्ति-

13 यह कथन देने की बात है कि तिलक प्राकृतिक अधिकार के सिद्धांत का स्वीकार करते हैं और ज्ञान की लक्षितक एकाग्रता के सिद्धांत की उन्नत व्याख्या करते हैं । उनका मान है 'उपासना' तथा 'पूजा' एक ही अवस्था अथवा अनुभूति का अन्तर्गत या अन्तर्गत रूपों में अनुभूति का अन्तर्गत रूप है । उनका मान है कि किसी व्यक्ति अथवा जनता को यह अधिकार नहीं हो सकता कि वह प्राकृतिक अधिकार की, जो इन सब जीवन पद्धति का है, दुष्टता करे ।

सामर्थ्य। कमजोर है।¹⁴ इस अभाव में तिनका १ पीठा की आधारभूति की बात और बात की स्थिति निम्नांश में सुनायी गयी है। तिनका का कथन है, “यद्यपि कई न गुरु प्रशिक्षण में आना का लक्ष्य के सिद्धांत का स्वीकार नहीं किया है, फिर भी उपाय कुछ बुद्धि और व्यावहारिक बुद्धि (वास्तविकता बुद्धि) के प्रकाश पर गुरुत्व का नाम विचार करने विचारविमल विचार विचार है। (1) किसी काम के स्थिति सुख का उसके बाह्य परिणाम का आधार पर निर्धारित नहीं किया जाना चाहिए अर्थात् स्थिति मुख्य निर्धारित करने समय यह नहीं दंगता है कि उपाय का तिनका तादात का और तिनका पीठा का नाम होता है। अर्थात् मुख्य निर्धारित करने समय यह दंगता चाहिए कि कर्ता की व्यावहारिक बुद्धि (वास्तविकता बुद्धि) कर्ता का गुरु है। (2) किसी मनुष्य की व्यावहारिक बुद्धि (वास्तविकता बुद्धि) का गुरु, तिनका और स्वतंत्र सभी मान्यता का सत्यता है जब यह इतिहास-गुरु के विचार का द्वारा निर्धारित गुरु बुद्धि के निर्धारण में रहे अर्थात् यह मनुष्यवत्त्व का सम्बन्ध में गुरु बुद्धि के आधेनागुरुत्व का नाम का। (3) जिस मनुष्य की दृष्टि इतिहास निर्धार के परिणाम स्वतंत्र बुद्धि का। सुखी है उसके स्थिति निर्धारण का निर्धारण का निर्धारित करने आवश्यक नहीं है, य निर्धारण कर्ता काधारण स्थिति के लिए है। (4) जब दृष्टि इस प्रकार गुरु ही जाती है तो जिस किसी काम की यह प्रेरणा देती है जन्म पीछे यह नाम रहता है कि मैं या गुरु का रहा है यदि नहीं किसी १ के नाम किया तो उसका क्या परिणाम होता है। और (5) दृष्टि की गुरुता अथवा स्वतंत्रता की तब तब व्याख्या नहीं की जा सकती जब तब कि मनुष्य का नाम का उपाय का स्वतंत्र का दृष्टि का उपाय का प्रकट नहीं हो जाता। विचार अर्थात् और दृष्टि के सम्बन्ध में बात के विचार अर्थात् है। इसलिए चीन में कर्ता यह बात के सम्बन्ध का था, अपने काम “श्रीतीयाधेना दु एथिक” (मनुष्य 99, पृ 174 79 और 223 32) में यह सिद्धांत प्रकटित किया कि यह अर्थात् तब, या सम्पूर्ण दृष्टांत के व्याख्या है, आधेना रूप के विचार (मानव-शरीर) की अर्थात् के रूप में अब प्रकट होता है। आगे चलकर उसमें निम्नलिखित सिद्धांत प्रतिपादित किये (1) मानव शरीर में व्याख्या का आधार तब स्वतंत्र तब (अर्थात्) की उपाय अर्थात् जाती है कि यह अथवा सर्वप्रथम व्यापक, सामाजिक तथा सर्वव्यापी स्वरूप का आधारित कर। जसकी यह उपाय दृष्टि ही मनुष्य की सुख का नाम के लिए माध्यम करती है। और (2) इस आधारित में ही मनुष्य का आधार और अर्थात्स्वतंत्रता मनुष्य निहित होता है, इसके विपरीत बाह्य वस्तुता का माध्यम सुख अर्थात् होती है। स्पष्ट है कि बात और चीन मान्यता का यह दृष्टिकोण तबस्वतंत्र है, फिर भी चीन के अथवा की गुरु बुद्धि का अथवास्वतंत्र तब ही प्रकट नहीं होता, यन्कि उसमें गुरु माध्यम का, जोकि विचार तथा दृष्टांत चीन का आधार रूप में व्याख्या है, आधार मानव वस्तु और अथवा के बीच के तब तबस्वतंत्र की स्वतंत्रता चीन की उपाय दृष्टांत है। यन्कि अथवा के स्थिति काश्चित् की है य सिद्धांत और पीठा के सिद्धांत एकरूप नहीं है, फिर भी चीन के बीच विचार समानता अथवा की मिलती है। पीठा के य सिद्धांत इस प्रकार है (1) कर्ता की दृष्टांतस्वतंत्र बुद्धि (वास्तविकता बुद्धि) उसके बाह्य कार्य के अथवा महत्वपूर्ण होती है, (2) जब गुरु बुद्धि (वास्तविकता बुद्धि) आधेनागुरु, स्वतंत्र और तब ही जाती है तो उसकी अथवा बुद्धि भी गुरु और अथवा ही जाती है, (3) स्वतंत्र, जिसकी बुद्धि इस प्रकार तब और स्थिति ही प्रकट है, स्वतंत्र आधार के निर्धारण में यह प्रकट होता है, (4) उसका आधार तब उसकी आधेनागुरु बुद्धि के अथवा स्थिति के निर्धारण का निर्धारण का नाम के लिए अथवा और आधार का जाता है, और (5) आधार के रूप में तब ही तब है जो विचार तथा दृष्टांत चीन में व्याख्या है, और विचार के अथवा अथवा अपने गुरु तब सर्वव्यापी रूप का आधारित करने चाहती है (यही माध्यम है)। और जब मनुष्य इस गुरु रूप की प्रकट कर लेता है तो सब प्रशिक्षण में प्रति उसकी दृष्टि आधेनागुरु (अर्थात् कि अपने प्रति होती है) ही जाती है। फिर भी चीन के दृष्टि अथवा, माध्यम, तबस्वतंत्र की स्वतंत्रता, दृष्टि तथा आधार का आधार, आधेनागुरु आदि के सम्बन्धित सिद्धांत बात और चीन के सिद्धांतों की सुनाय में अथवा उपाय और सुनिश्चित है, इसलिए पीठा में अथवा और

जननिष्ठा की शिक्षाओं के आधार पर जिस कमयोग का प्रतिपादन किया गया है वह तत्त्वज्ञानीक दृष्टि से अधिक स्पष्ट और दृढ़ है। इसलिए आधुनिक जनन वैदात्ती वास्तविक आधार होवसन ने अपनी पुस्तक (तत्त्वशास्त्र के तत्त्व) 'एनीमेटर ऑफ मैटाफिजिक्स' में आधारनीति के सम्बन्ध में इसी पद्धति को स्वीकार किया है।¹⁵

3 गीता रहस्य की सफलता के कारण

अपने प्रकाशन के समय से गीता रहस्य ने इस देश के चिन्तन और आचरण पर गम्भीर प्रभाव डाला है। तिलक के मन में सरकार के प्रति गहरी श्रद्धा थी और वे उन्हें एक सूक्ष्मदर्शी तत्त्व शास्त्री मानते थे, किन्तु उन्होंने उनसे आधारनीति का सिद्धांत को स्वीकार नहीं किया। सरकार सम्प्रदाय के अनेक विद्वानों ने तिलक के निष्कर्षों पर खण्डन करने का प्रयत्न किया। बापट शास्त्री ने 'रहस्य खण्डन' और 'रहस्य परीक्षण' नामक दो ग्रन्थ लिखे। सदाशिव शास्त्री ने 'तिलक का मण्डन करने के लिए 'रहस्य बीजिका' लिखी। एक बार तिलक ने भी अपने आलोचकों की आपत्तिका पर प्रतिकार दिया। उन्हें अनेक दक्षिणा और व काश्तिका से शास्त्राध्यक्ष भी करना पड़ा और इन शास्त्राध्यक्षों ने वे अपने सिद्धांतों पर पूर्णतः हठ रहे।

तिलक के मन में गीता के लिए गम्भीर श्रद्धा थी। जीवन में उन्हें हमसे बरम सांतीय और शान्ति मिली थी। अन्तिम समय में उन्होंने गीता के कुछ स्मरणीय श्लोकों का जप करते हुए इह-लोका समाप्त की। गीता ने अपनी गम्भीर आस्था के कारण ही वे उसका इतना बड़ा नाम्य प्राप्त कर सके। उनका भाष्य एक पुष्पांतरकारी श्रम माना जाता है। कमयोग की शिक्षा ने देश में प्रचण्ड कमवाद की एक सहर उत्पन्न कर दी और तिलक की गणना जगद्गुरुओं में की जाने लगी। गीता रहस्य की रचना के पहले तिलक भारत के एक राजनिवासी राजनीतिक नेता थे। इस श्रम के प्रकाशन के उपरांत वे एक आचार्य से रूप में सम्मानित होने लगे। महारत्ना राष्ट्री लिखते हैं, "गीता ने ही उन्हें इस योग्य बनाया कि वे अपने प्रचण्ड पाश्चिष्य और सम्प्रदाय के बल पर एक विश्ववर्णीय भाष्य की रचना कर सके। उनके लिए गीता जगत्पथ सत्य का मन्दार थी जिसको समझने में उन्होंने अपनी बुद्धि अर्पित कर दी। वेदा विद्वानों हैं कि उनका गीता रहस्य उनका अधिक रचनायी स्मारक सिद्ध होया। जब स्वाधीनता संग्राम सफलतापूर्वक समाप्त हो जायगा, तबने बाद भी उनका यह भाष्य जीवित रहेगा। इस समय की जाने जीवन की निष्कलक बुद्धि तथा गीता-रहस्य के कारण उनकी स्मृति सदैव ताजी रहने ली। न ही उनके जीवन-काल में कोई ऐसा व्यक्ति का और न आज है जिसको शास्त्रों का ज्ञान उनके अधिक हो। गीता पर उनका नाम्य अद्वितीय है, और भविष्य में बहुत समय तक बना रहेगा। किसी भी व्यक्ति ने गीता तथा वेदा से उत्पन्न प्रश्नों पर इसके अधिक विचार शोध नहीं की है।"¹⁶

गीता रहस्य के महारम्य के दो मुख्य कारण हैं। प्रथम, भीमदमयध्वनीता ऐसा श्रम है जिसे हिन्दू हृदय से प्रेम करता है। धार्मिक प्रवृत्ति के हिन्दू उसे ईश्वर के अवतार श्रीकृष्ण के मुखार्थिन्ध से निपुण मानते हैं। गीता सरलतम भाषा, रहस्यवाद और आध्यात्मिक ज्ञान का उच्चतम कोलिस्तरम है। इसलिए उसका भाष्य सदैव ही माना का ध्यान आकृष्ट करता है। द्वितीय, गीता रहस्य में गम्भीर पाश्चिष्य और उदात्त जीवन के अनुभव का समावेश है। तिलक संस्कृत वम भाषा के प्रचण्ड पण्डित थे। वे अपने बुद्धि व भाषा विद्या के सबसे बड़े विद्वान थे। उनका भावभाव तत्त्वशास्त्र, नीतिशास्त्र और सामाजिक चिन्तन पर भी अग्रेष्ठा अधिकार था। पूर्वार्थ तथा बादार्थ चिन्तन के ज्ञान की दृष्टि से बहुत कम लोग उनके समकालीन होने का दावा कर सकते थे। चायद पंडित बीमसन, बनेइलाध मीन, आपर भी बीष को केवल उनके समकक्ष माना

15 श्री बी तिलक *Sriyad Bhagavadgita Rahasya* (मुम्बयार द्वारा रचित हिन्दी अनुवाद) विष्णु 2, जून 1936 पृ. 679-81

16 महारत्ना राष्ट्री द्वारा भाष्यकी तथा बाकपुर में लिखे गये भाषा के। गीता रहस्य के अनेकी अनुवाद में उद्धृत।

जा सकता था।¹⁷ 'लिवन' का मतिल्लन सुन्दरदर्शी और प्रतिभासम्पन्न था। वे मनिल्लन की व और गम्भीर चिन्तन के अम्पन्न थे। वे आचारनीति की नष्टि समस्याका था अम्पन्न विवेचन कर सकते थे। उनमें सामन्तव्य करने की समझा थी। वे भगवद्गीता, बाट तथा धीन की आचारनीति का प्रभावकारी तुलनात्मक अध्ययन कर सकते थे। इस बहुमुखी बौद्धिक प्रतिभा के साथ-साथ उल्ला परिचय इस तथा उल्ला था। भारतीय की धृष्ट और साधु परिचय वल्लि सोका त स्वाभाविक प्रेम होता है। लिवन का निजी जीवन निम्नलिख था। इसलिये भारतीय जनता का एक ब्रह्म वल्ल उल्ला स्वाधीन भक्त बन गया था। नीला रहस्य मुख्य तथा व्यापक लक्ष्यलक्ष्य का ही एक ब्रह्म नहीं है, अपितु उसके रचयिता की उल्ल महान समतात्मक की सिद्धांता म निरपेक्ष आस्था थी। लिवन व नीला की बौद्धिक रूप से ही सहृदय नहीं निभा, अपितु उल्ल उत्तम हार्दिक आस्था थी। लिवन का सम्पूर्ण जीवन नीला की सिद्धांता के ओल्लोत्त था। उल्लाने अपने देश की सेवा म वातमाता और लक्ष्यका का दीप जीवन लिखा था। उल्ल जीवन व प्रभुत विनमता अपने इस ब्रह्म व प्रतिबिम्बित है। नीला रहस्य अल्लु की 'दिवामरिचम एषिक्त', लिनीला की 'एषिक्त' (नीतिशास्त्र), बाट की 'निष्टिक्त आल्ल ब्रेन्टीकन रीजन' (व्यावहारिक बुद्धि की समीक्षा) और टी एल धीन की 'प्रोलीपीयिना व एषिक्त' की मल्लि मोल्लि प्रथम नहीं है। नीतिशास्त्र के क्षेत्र में अल्लु, लिनीला, बाट तथा धीन लिवन की तुलना में निरक्षर ही नहीं अपितु मूलनात्मक थे। किन्तु उनकी तुलना म लिवन का हार्दिकीय अपितु व्यापक था। उल्लाने नुर्बल तथा वातमाता कीनी निरुत्तमाचाराली के आधार पर लक्ष्याय निम्नलिख निवास। इसके अतिरिक्त वे एक वल्ल राजनीतिक नेता थे, जवलि अल्लु, लिनीला, बाट और धीन का व्यावहारिक राजनीति म कोई सम्पन्न नहीं था। लिवन ने अपना सम्पूर्ण जीवन नीला की सिद्धांता के अनुसार उल्ल रला था। यही कारण है कि भारतीय मानस के लिए उनके ब्रह्म में विशिष्ट परिवर्तन की आमा विद्यमान है। अपने राजनीतिक जीवन में लिवन की मल्लकर अतिवाद्या का सामना करना पला था। कभी-कभी तो उनके विरुद्ध बाव करने वाली लल्लिया अल्लय विवरल और प्रचल थी। किन्तु इन सबक बीच लिवन एक चहुन की वल्लि अल्लि रहे, वसीकि वे नीला के निष्काय कल के उस लन्देय के अनुयायी थे लिङ्गना उल्लाने अपनी पुस्तक में विवेचन किना है। लुकाउ की मल्लि अल्लु के लिए की ज्ञान गुण है। मनुष्य के बौद्धिक पाव का उल्लेख परिचय पर अवलम प्रभाव पल्ला है और पल्ला वल्लिए। समतीय का भी कहना है कि देशाल की सिद्धांता का लार निम्नलिख है। लिवन ने भगवद्गीता से निम्न होकर स्वयन का मात्मक करने का पाठ लीला था। वे परल मल्लि और निरक्षर अध्ययनलक्ष्य के साथ इस लक्ष्य का अनुकरण करते रहे। वल्लुता नीला के सिद्धांता की मलीनार करने के कारण उनका व्यक्तित्व एक विशेष ब्रह्म में उल्ल गया था और रुनाल्लि हो गया था। नीला रहस्य का भारतीय जीवन पर इतना स्वाधीन प्रभाव इसलिये है कि वह एक लक्ष्यलक्ष्य प्रकार के बौद्धिक और नल्लि व्यक्तित्व में ल्वभूत हुआ है। सम्भवत ब्रह्म का रचना-काल भी उल्लकी मेल्लका का एक कारण है। लिवन ने उल्लकी रचना उल्ल लक्ष्य की थी लक्ष्य के मल्लिने की लल्ल में उल्ल वल्ल के वातमाता का लक्ष्य योग रहे थे। ऐतिहासिक हल्लि में लक्ष्यलीला के महानल्लय आल्लय बौद्धिक के लक्ष्य और नीला रहस्य के लक्ष्य में बीच महल्लपूर्ण समल्लय था। बौद्धिक कारणकार म लल्लय हुए थे और नीला रहस्य की लल्लिने के कारणकार म लिखल गया था। भारतीय मानस इस लल्लय लक्ष्य के लक्ष्य की लल्लल्लि में लल्ले भूक कर सकता था। यही कारण था कि नीला-रहस्य में हिन्दुओं की हार्दिक वातमाता की इतना अधिक प्रभावलि निभा। नीला पर अवलिख माध्य और टीकाएँ लिखी गयी हैं, किन्तु उनमें से बहुत कम ऐसी हैं लिह इतनी स्वालि और लोकप्रियता लल्लल्लय हुई हो और लिनेने प्रभाव लल्लल्ले की इतनी स्वाधीन लल्लि रही हो लिनी कि लिवन की तुलना म है।

17 नीलेश म लिवन व 10 मुखल्लि लिखन की नीला मल्ली थी (1) हिन्दु ब्रह्म का इतिहास (2) भारतीय लक्ष्यलक्ष्य (3) लक्ष्य लल्लल्लय लक्ष्यलीय लक्ष्य का इतिहास (4) लक्ष्य लक्ष्य (भारतीय लक्ष्यलक्ष्य) (5) भारतीय लक्ष्यलक्ष्य (6) हिन्दु लिखि (7) लक्ष्य लक्ष्य के लिखल (8) नीला रहस्य (9) लिवन की का जीवन और (10) लल्लिना तथा लक्ष्य।

4 गीता-रहस्य के गुण

(1) जब से देश में बौद्ध धर्म तथा जैन धर्म का प्रभुत्व था तथा वास्तविक और नैतिक जीवन का स्तर बहुत समझ जाने लगा था कि मनुष्य सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन की आवश्यकताओं और दायित्वों से मुक्त होकर सच्चाई का भीषण विषाण और दार्शनिक चिन्तन में मगल रहने लगे। आधुनिक युग में इमान्दारी, सम्मेलन, विवेकानन्द, रामलीला, भक्तानन्द तथा महापुरुष ने भी सच्चाई और उपस्था के जीवन को ही खोजा था। यह सत्य है कि इन आधुनिक सामाजिकों में से किसी ने भी सामाजिक तथा राजनीतिक काम का निषेध नहीं किया था। मध्ययुग के महान् आचार्यों ने सच्चाई की महत्ता को बड़ा बढ़ाकर बतलाया था। उनके ज्ञान ने कारण सांसारिक जीवन के प्रलोभनों और दायित्वों का परिहास करना धार्मिक जीवन का परम स्तर माना जाने लगा था। गीता-रहस्य की विशेषता यह है कि उसने सुदूर अतीत में जाकर महाभारत के आदेश को प्रकट किया है और परमेश्वर का निष्कासन करने की भावना को अस्वीकार किया है। तिलक ने लोगों को कृष्ण के जीवन से पाठ सीखने के लिए बार-बार प्रेरित किया है। क्या कृष्ण ने महान् जीवन का परिहास किया? नहीं। कृष्ण अपने ही काम में उस समय भी निमग्न रहते हैं जबकि लोग सोचते हैं कि ऐसा बहुत नहीं है जिसका उद्देश्य प्रलोभन ही है। इस प्रकार स्वयं कृष्ण ने कामयोग के नाम पर ईश्वरीय गुरु माना ही है। तिलक का एक मोक्षिक है। उन्होंने गीता के मूल पाठ के अन्वय में जो भी विवेचन नहीं किया है। उनका लक्ष्य यह कहना है कि हमें अपना ध्यान उस सद्देश पर केंद्रित करना चाहिए जो स्वयं गीता के उपदेशों के जीवन से मिलता है। अर्जुन भी, जिसने लिए मूल गीता का उद्देश्य दिया गया था, सच्चाई प्रकट नहीं करता। अतः सच्चाई की प्रकाश में जो अतिशयोक्तिपूर्ण बातें कही गयी हैं उनका निषेध महान् नहीं है। गीता रहस्य की विशेषता यह है कि उसने प्रकट अर्थात् निष्कासन करने के उद्देश्य का पुनः प्रमाणीकरण का स प्रतीक्षण किया गया है जिसका अनुसरण जनक, राम और भीष्म ने किया था।

(2) आधुनिक युग में नैतिक सापेक्षतावाद का सबसे बोलबाला है। यद्यपि आज कुतूहल गुणवाद अथवा प्रभुत्व गुणवाद का सुझाव समझने वाले नहीं हैं, फिर भी नैतिक निष्कासनवाद के सिद्धांत की कुतूहल ही जा रही है। गीता रहस्य परमेश्वर की सत्ता को स्वीकार करने वाला है और उसी के आधार पर नैतिक व्यवस्था का निर्माण करता है। सभी-सभी बड़ा जाता है कि एक अनन्य साम्प्रदायिक सत्ता को स्वीकार करना एक प्रकार से नैतिक भेदों का निषेध करना है। बड़ा जाता है कि नैतिक भेद को ही परिचितिविषय में सुनिश्चित माने जा सकते हैं—एक ही उस स्थिति में जब मान लिया जाय कि विश्व धर्म और अनुभव के बीच द्वन्द्वमय समझ का क्षेत्र है, और दूसरे यदि एक समुच्च ईश्वर ने अस्तित्व को स्वीकार कर लिया था। यह एक गुणवत्ता तथा समझ है। गुण सिद्धांत की दृष्टि से नैतिक गुणवत्ता का एक ही समझ करना चाहिए कि वह एक ही मान लिया जाय कि स्वयं ईश्वर उन गुणों का परिहास करता है। यदि परम सत्ता (परमेश्वर) अतिवैशेष (नैतिकता से परे) है तो फिर नैतिक नाम को प्रेरणा बहुत कुछ दुबल हो जाती है। तिलक का तर्क है कि यद्यपि नैतिक भेद नैतिक समझ में ही लागू होते हैं, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि नैतिक भेद ही सत्ता, क्योंकि विश्व स्वयं ईश्वर की सृष्टि है और उसने परिहास के लिए वह स्वयं अवधारित होता है। यह एक नैतिकवादिका तथा प्रतीतिवादिका की परिभाषा नहीं लगेगा। किन्तु जिन्हें हिन्दू जीवन-दर्शन में आस्था है उन्हें यह एक बहुत साहसिक बात है। अनन्य लोकगीत रूप में परम सत्ता (परमेश्वर) गुणानुसारी के भेद से भले ही परे हो, किन्तु नैतिक दृष्टि में पूरा वह जगत को बसे प्रिय है। इसलिये नैतिक भेदों का भी साम्प्रदायिक महान् है और उनका भी ईश्वर से सम्बन्ध है।

(3) गीता रहस्य के 'सिद्धांतों और व्यवहार' अध्याय तदर्थों सम्प्रदाय में तिलक ने एक शान्ति (तथा) जीवन-दर्शन का प्रतिपादन किया है। उनका उद्देश्य साम्प्रदायिक व्यवस्था और सामाजिक व्यवस्था का समर्थन किया है। इस अध्याय में जीवन-दर्शन की सम्प्रदायों की विवेचना की गयी है। तिलक उस सद्देश के जीवन को खोज और महान् मानते हैं जिसने पूर्ण साम्प्रदायिक (सिद्धांतों) प्राप्त कर ली है, आ प्रत्यक्ष है जो सत्य धर्म में बलिष्ठ ही गुणों ने ईश्वर का

गंधर्वों से ऊपर उठ चुका है, जो सर्वोच्च क्षमता विपरीत और ईश्वर मनु है। निम्नतम व्यक्ति को भी अलक्षितकरा, समस्त ईश्वर ईश्वर और प्रकाश तथा अहंकारमूलक विद्वत्पिता के इस जगत में जीवन प्राप्त करता प्रकाश है। निम्नतम के पूर्ण समाज में दुःखता की रक्षा के लक्ष्य की आवश्यकता नहीं ही न हो, निम्नतम इस अपूर्ण जगत में अस्मिता के नाम आवश्यक है। इसलिए हिन्दुओं के धर्म शास्त्रों में तथा पीढ़ी में अपनी 'विश्वविद्यालय' में राज्य के लिए अस्मिता की आवश्यकता का स्वीकार किया है। निम्नतम अर्थात् ईश्वर की प्रति समष्टिगत या सम्पूर्ण राजनीतिक आदर्श नहीं मानते। उनका आग्रह है कि मनुष्य की एकभूतलक्ष्य बुद्धि की पहचान करना चाहिए। तिलक के अनुसार साम्य बुद्धि बंधन का गार है।

(4) तिलक का यह धारणा समस्त यह है कि नीति का दृष्टिकोण बाद के दृष्टिकोण में अस्मिता आध्यात्मिक है। बाद में अनुसार नैतिकता का प्रतिपादन यह है कि मनुष्य की स्वयं प्रतिष्ठित दृष्टि विवेक के उस आदेश की ओर अनुसरण हो जो कम की नसीदी का सामर्थ्य रूप देता है। इसके विपरीत नीति का आग्रह है कि मनुष्य को अपने धर्मों की ईश्वर की प्रतिष्ठित करने अपने मन और बुद्धि को पूर्ण रूप से सुदृढ़ करना चाहिए। नीति का परम नैतिक आदेश यह है कि मनुष्य व्यवसायिकता बुद्धि की प्राप्ति करने का प्रयत्न करे।

5 तिलक द्वारा की गयी नीति की व्याख्या के दोष

(1) मुझे नीति पहचान की आधारभूत दुःखता यह मान्य पड़ी है कि सम्भवतः तिलक ने नीति की मुख्य समस्या को बहुत स्पष्टता कर रखी है। इस की नैतिक प्रस्ताव की एक दूसरी से सुझाव करता है। (क) क्या कम नीति का प्रमुख भाग है अथवा नीति ? (ख) क्या निम्नतम के लिए जो अपने की कम के विरोधित करता आवश्यक है ? मेरे विचार के प्रथम सम्मति नीति की आधारभूत समस्या है। कुछ सम्मति का यह है कि ईश्वर का सम्मतिगत ज्ञान के द्वारा किया जा सकता है। उनका कहना है कि परम सत्य की सम्मतिगत करने का एकमात्र उपाय इस बात का ज्ञान है कि सम्पूर्ण सत्य के आधारभूत सत्य है, और परमज्ञ ही परम सत्य है। इस सम्मतिगत का यह हम बात पर है कि परमज्ञ का स्थान किया जाय और सम्मतिगत सम्मतिगत के नाम का अनुसरण किया जाय। नीति कि मैंने सम्मति है नीति बार-बार इस बात पर कह देती है कि निम्नतम कम परमज्ञ की सम्मतिगत करने का एक स्वतंत्र भाग है। सम्मतिगत का अनुसरण करने परम सत्य की जाया जा सकता है। मेरे विचार के नीति की मुख्य समस्या ईश्वर-सम्मतिगत की समस्या है। अर्थात् उस समय की सुझाव था। जो परम सत्य के लिए निम्नतम प्राप्त करती थी। इसलिए नीति का आग्रह है कि कम ही प्रतिष्ठित का भाग है। दूसरे धर्मों में नीति की समस्या सम्मतिगतनीय है अर्थात् परम सत्य का सम्मतिगत करना। नीति में बार-बार कहा गया है कि इस सत्य की प्रतिष्ठित के लिए निम्नतम कम का भाग प्रत्यक्ष ही प्रतिष्ठित और सम्मतिगत है तिलक कि सम्मतिगत और चिन्तन का नाम, और कभी कभी नीति का सम्मतिगत का कम सम्मतिगत के प्रतिष्ठित कलावाय गया है। तिलक ने नीति की इस आधारभूत समस्या को उलट दिया है। उन्होंने नीति का आधारनीति (नीतिवाद) का भाग माना है और कहा है कि आध्यात्मिक भाग की समस्या नैतिक सम्मतिगत की सुझाव में नीति है। ये नीति की आध्यात्मिक आधारनीति की सुझाव मानते हैं। उनके अनुसार उसम इस बात पर यह दिया गया है कि निम्नतम के लिए लोक-सम्मतिगत कम करना आवश्यक है। तिलक ने अपने इस दृष्टिकोण को अत्यधिक उच्च बढ़ाकर प्रस्तुत किया है और कहा तक यह दिया है कि नैतिक कम की आधारभूत आवश्यकता साम्य बुद्धि (व्यवसायिकता बुद्धि) की प्राप्ति करना है। दूसरे धर्मों में तिलक की दृष्टि में आध्यात्मिक चिन्तन परम लक्ष्य नहीं है बल्कि यह सम्मतिगत की सम्मतिगत करने की एक प्रणाली है। मेरे विचार में यह कहना कि नीति आध्यात्मिक अथवा सम्मतिगत आधारनीति का भाग है, उस सुझाव की प्रमुख भावना का प्रतिष्ठित सुझाव नहीं है। यह पुनः आग्रह है कि नीति की आधारभूत समस्या यह नहीं है कि निम्नतम का कम करना चाहिए अथवा नहीं, बल्कि उसनी मुख्य सम्मतिगत यह है कि कम ईश्वर-सम्मतिगत का एक स्वतंत्र भाग हो सकता है अथवा नहीं। यह परम आधारभूत और मुख्य है। मेरे विचार के नीति की आधारभूत समस्या की स्पष्ट रूप से समझ देना आवश्यक

आवश्यक है। यदि हम गीता की महाभारत की परम्परा के वाद में सम्भले का जमल करें तो यह अधिक भुक्तिमत्त ज्ञान पड़ेगा कि गीता में इसी ज्ञान की विवेचना की गयी है कि प्रकृति परम सिद्धि का स्वतः व माय है अथवा नहीं। मेरे हृदय में तिलक के चरित्र तथा पाण्डित्य ने लिए सम्मोह खड़ा है, फिर भी मुझे विचार होकर बहुत पड़ता है कि उन पर टी एच डीन की पद्धति का अतिशय प्रभाव था, और इसलिए एक अथ व उन्होंने गीता की शिक्षाओं को एक गलत दिशा दे दी है। डीन की समस्या यह थी कि एक अतीव आध्यात्मिक चेतना की धारणा के आधार पर एक आचारनीति का विरूपण किया जाय। इस प्रकार उसकी समस्या आचारनीतिक (नैतिक) थी। किन्तु गीता की प्रमुख समस्या कुछ वर्षों के द्वारा पुरोहितता का साक्षात्कार करना है। इस प्रकार उसकी समस्या आध्यात्मिक है। दूसरे पक्ष में ईश्वर साक्षात्कार केवल नैतिक बल का आधार नहीं है, अपितु यह धर्म कर्मों की परिपक्व है। इसलिए मेरा विचार है कि गीता आध्यात्मिक आचारनीति का ग्रन्थ नहीं है। यह मुख्य आध्यात्मिक तत्त्वज्ञान का ग्रन्थ है। नैतिक बल बहुत महत्वपूर्ण है, किन्तु उसे परमार्थ के साक्षात्कार का साधन मान मानना चाहिए।

(2) वेदाङ्ग दशन के अनुयायी होने के नाते तिलक यह तथा अमर्त् (हय अमर्त्) का जेद स्वीकार करते हैं। वे आद्यावाद के सिद्धांत की भी मानते हैं। किन्तु उन्होंने यह सिद्ध करने के लिए कोई मौलिक तर्क नहीं दिये हैं कि विश्व प्रतीति (आवास) माय है। वे हैनल और कार्टर के सिद्धांतों से परिचित थे। तिलक जैसे विस्तेपन्नात्मक बुद्धि तथा प्रकाश पाण्डित्य वाले व्यक्ति से अपेक्षा की जाती थी कि वे मौलिकवाद और परमाणुवाद के सिद्धांत का खण्डन करने के लिए कुछ मौलिक तर्क प्रस्तुत करेंगे। तिलक को इस विवरण में विवशता या जिसका दशन कृष्ण ने अर्जुन की बगल था। ब्रह्मसं-दशन की इस बात की विश्वास के रूप में स्वीकार करता सम्भव है। यह कहना भी सम्भव है कि यह सम्पूर्ण विषय पराबौद्धिक (परमानन्दिक) है और अतः प्रज्ञात्मक रहस्यात्मक साक्षात्कार (समाधि) की अवस्था में उसका पुन अनुभव किया जा सकता है। किन्तु सत्यवादी और मौलिकवादी प्यारहर्ने अप्पाय के सम्पूर्ण विषय को आध्यात्मिक मान्यताओं की उच्च मानते हैं। उनके तर्कों का उत्तर देना आवश्यक है। तिलक ने सामाजिक के सिद्धांत की व्याख्या परम्परागत घाली में की है। उन्होंने उसके विपक्ष आधुनिक आलोचना की जो आपत्ति है वह उन्होंने तथा उनका उत्तर देने का प्रयत्न नहीं किया है।

(3) तिलक एक नविलास और प्रभावशाली विविधता थे। उनका दावा है कि उन्होंने निष्पक्ष भाव से गीता का अथ इस निष्कर्ष के प्रयत्न किया है। किन्तु मैं यह कह बिना नहीं कह सकता कि उन्होंने कभी कभी संचार-भाग में विचार कर घाली का उपहार करने के प्रयत्न किया है। नहीं-कहीं उनका हृदयों परभावपूर्ण भी है। उदाहरण के लिए, उनका कहना है कि गीता में अहाँ भी 'मोम' छन्द आया है यहाँ यह बचपन के सतिष्ठ रूप में ही प्रयुक्त किया गया है।

6 निष्कर्ष

गीता रहस्य एक विरलवादी ग्रन्थ है। यह मराठी भाषा में एक दुर्गातरकारी कृति है। हिन्दी के साहित्यिक साहित्य में भी उसका उठना ही महत्व है। उसमें उल्ला राष्ट्रीय समनता का तथा आचार्यों के चिन्तन को प्रभावित किया है। यह ग्रन्थ खेपी का साहित्यिक ग्रन्थ है। उसमें विचारों की सम्पीडता तथा टीकी की सरलता का सम्बन्ध है। उसकी आज्ञात्मक मय स्मृति तथा प्रेरणादायक है। आशा की जाती है कि आधुनिक भारतीय चिन्तन के विचारों तथा शिक्षा उसकी आर अधिकांश ध्यान देगे। किन्तु मैं इसे गीता पर अतिशय प्रभाव नहीं मानता।¹⁸ फिर भी यह बचपन की अवधिक प्रभावकारी व्याख्या है। मेरा विचार है कि हिन्दुओं के महान समग्र समग्रगीता के सम्पूर्ण महत्व की व्यक्त करने के लिए अधि रसीधरतन, व्याख्य तथा समक-साहित्यिक ग्रन्थ की धर्म की आवश्यकता है।

18 विमलक ज्ञान वर्षी 'Philosophy of History in the Bhagavadgita' *The Philosophical Quarterly* अक्टोबर दिव 30 वर्ष 2 जुलाई 1957, पृ. 93-114; पण्डित का सम्बन्धित दल की 'मानव के लिए दर्शन, जो की वर्षी *Studies in Hindu Political Thought and Its Metaphysical Foundations*, वाशिंगटन, 1954, पृ. 124-33

परिमिट ६ विवेकानन्द का शक्तियोग

स्वामी विवेकानन्द अद्वैत वेदांत के महान् प्रतिपादक थे। निर्विकल्प समाधि में अक्षर ब्रह्म का अनुभूतिकार होता है, ऐसा वे मानते थे और उनके शिष्या तथा अनुयायियों को ऐसी प्रेरणा है कि इस प्रकार की अनुभूति प्राप्त करने की अवस्था जीवन में कम-से कम दो बार उनकी परमहंस रास कृपा की वृत्ति से प्राप्त हुई थी। किन्तु ब्रह्मज्ञानी और जीवन-मुक्त महात्मा होने के बावजूद भी स्वामी की शक्ति की पूजा करते थे। वह कहता कि अपने अज्ञानी शिष्या के शरीर के लिए मैं ऐसा ब्रह्म दे, ठीक नहीं होता। स्वामीजी की निर्विकल्प प्राप्ति थी कि जब तक बहुवेला शरीर धारण कर रहा है तब तक उसे धार्मिक कृत्या का अनुष्ठान करना चाहिए। ब्रह्मज्ञानी माना के प्रथम में उन्होंने शरीर-मज्जा की मन्दिर में विनियोग के अनुष्ठान किया था। अपने मुत्तममान नाविक की पारियों की बन्धों का वे ऊपर के रूप में दुःख करते थे। अन्तर एव ब्रह्मज्ञान प्रकृत की छोटी लहरी का भी उमा कुमारी के रूप में वे दुःख दिया तब प्रति प्रातः काल पूजन करते थे। इन शक्ति-अनुष्ठानों को सम्मान करने में अपने शरीर की अत्यधिक चर्चा हुआ था।

विशुद्ध शक्ति की साधक में स्वामी ने उन्मत्तता की है। उनका पूरा विश्वास था कि वही साधुशक्ति अपने जीवन को परिवर्तित कर रही है। साधुशक्ति की दुर्बल दिया ब्रह्मज्ञानी की शक्ति कर अपनी एक कविता में लिखत है

‘स्वातन्त्र्य-सिद्धिमान् शक्ति मे

जितना वह शक्ति कर उमा उससे अधिक देता था,

कौन जानता है कि वह अज्ञानी की शक्ति कर

माता अपना सिद्धांत ब्रह्मज्ञानी ?

कौन विद्या स्वतन्त्रता की माय करता है ?

कौन पुत्र अपने (साधुशक्ति) ईश्वर की निर्विकल्प कर सकता है,

जितनी कहन्दा ही सर्वोत्तम नियम है,

जितना सत्य दुःख मानने है ?

उनके प्रतिष्ठित ‘अम्यान्तोन’ में भी साधुशक्ति का विशुद्ध स्वरूप है। अक्षर एकी में उनका द्वारा उन्नत तरंगों में प्रवर्तित (आधुनिक) है। अधिष्ठान शक्ति में वह ब्रह्मज्ञानी का विद्या कर रही है ब्रह्मज्ञानी ब्रह्मज्ञानी की धारिणी बही है। उनका स्वतन्त्र इच्छावादा में धर्म, अर्थ, ब्रह्मज्ञानी, अर्थ, नियम आदि सभी विषयों में रहते हैं। वह अन्तिम शक्ति-धारिणी है और ब्रह्म-मरण के प्रवाह की भी विद्या है। सभी नियम, ब्रह्मज्ञानी, अर्थवादा आदि में वह ब्रह्मज्ञानी रहती है। श्रुति और अनुष्ठान की उन्नती दया कर शक्ति है। वह अन्तिम की अन्तिम और अन्तिम की अन्तिम शक्ति है। उसी में शक्ति विद्या से मानव दुःखसागर का अन्तर्गत कर शक्ति का धर्म करता है। इस अन्तिममान में उनका अधिष्ठान सम्मान महाप्राण वृत्तवृत्त विवेकानन्द का अन्तिम अधुन शक्तिमान् प्रवर्तित है। अन्तिममान अधिष्ठान अन्तिममान के अन्तिम नियम में शक्ति अपने अन्तिमानी अन्तिम शक्ति शक्ति शक्ति, शक्ति-शक्ति-शक्ति और अन्तिममानानी हैं। शक्ति की उन्नतता के लिए विरचित स्वामी विवेकानन्द का अम्यान्तोन की अन्तिम अन्तिममानानी है।

काली की प्रत्यक्षकारिणी शक्ति के रूप में स्वामीजी ने एक कविता में मूल दिया है। काली के आठक से आठकारों तिरोहित हो गयी हैं। भेष सचन हो गये हैं, अथवा बहुत हो जाता है और अधिकांश भीषण रूप काली हुई मूषास वा रही हैं, वस्त्र उलझ गये हैं और जलपि नीलास रूप से प्रत्यक्ष अस्तित्व करने के लिए वास्तव हो रहा है। ऐसा प्रतीत हो रहा है मानवी भीषण विनाश करता हुआ कालमृत्यु चारी और नश्य कर रहा है। ऐसी करारा वेला में स्वामीजी मातृशक्ति का अह्वान करते हैं। मातृशक्ति विभूत है। अस्तव ही उल्लास नाम है, मृत्यु ही उल्लास वि शेष है और उसका प्रादप्रवेश अस्ती की प्रत्यक्ष कर रहा है। वह सत्तासविद्याविनी वरदा मातृशक्ति है। जो हृष्ट और संकट को मधुर भाव में स्वागत कर सक्ता है, जो मृत्यु के दुष्प, भीषण, रोगों सब करने वाले सब को अपने अंग में आस्तेय के लिए अपना सक्ता है उसी की मातृशक्ति काली अपना आश्रय प्रदान करती है।

“श्यामा का नमः” नामक एक दूसरी कविता में भी विवेकानन्द ने इसी आशय के भाव व्यक्त किए हैं। मृत्यु की अस्तित्व और भावीयता माया के विनाश है। इन वाक्यों को मानव मातृशक्ति के अनुग्रह से ही वाद सक्ता है। अस्तिमानि के मधुर सुगंध से अन्न शोध को सुवासित करने की मानव कल्पना करता है किन्तु कल्पनापन्न और वचमृता के भीषण बुद्ध की आशंका से ही वह काय उठता है। वैदिक मरिचों और भरता का प्रकाह सबे भ्रम है, किन्तु अथवा बहुत अथवा का उल्लास हो वह वहाँ नहीं रहता चाहता। मायाजी और उल्लास वा अस्तित्व विनाश मानव के लिए मनीहारी है किन्तु अहाँ अविद्याम गति से रक्तपात हो रहा हो और मर, हाथी और पैदल सेना दुर्वात मृत्यु के गम में प्रवेश कर रही हो, वह से वह हट जाता है। बुद्धी का स्वर्णम, दुष्मन्निष्ठ, कलमुक्ति रूप उसके मनोविनोद का साधन है किन्तु जब प्रत्यक्षशील परितो सत्ता की पैलाकार जलत हुए वास्तव की ओर प्रयाण करती है तब सत्तासत्त मनुष्य विचलित हो उठता है। विवेकानन्द की ऐसी शारदा इस कविता में व्यक्त हुई है कि इस प्रकार की विभवा-करण आशिक हृष्टि के अभावमय के कारण ही है। जब मानव एहिक योगवाक्यामा से ऊपर उठेगा तबो वह मातृशक्ति काली के स्वरूप की पहचानेगा।

स्वामीजी मानवीजी और अनासक्त वचमयी के किन्तु अपने शब्द “राजवीन” में उन्होंने शांतिव्य शक्तिपञ्चका के पञ्चन का उल्लेख और समर्थन किया है। यद्यपि यह है—मूलाधार, स्वाभिप्राय, मन्त्रिण, अनाहत, विमृष्ट और आश। इनके पर सहस्रार चक्र है जिसका ज्ञान जब अनासक्तमन कोन्मा को होता है तबको सुषुम्ना नाडी विमृष्ट और निष्पन्न होती है। शांतिव्य की शक्ति विवेकानन्द कुम्भलिनी शक्ति के नामकरण में भी आशपायान के।

शक्तिव्य विवेकी आलोचक शक्ति पूजा का उपहास करते हैं। विमृष्टन और मोनिवृष्टन पर इनका आरोप है कि ये प्रकल्पनैश्वर्य के पूजन हैं और सब दुषित हैं। यह सिद्ध करने के लिए कि मोनिवृष्टन अथ विवेकी का निन्दनीय पूजन है, विवेकी आलोचक यह भी कहते हैं कि मोनी और शक्त, मोनि के प्रतीक के रूप में, कई स्थानों में मिले जाते हैं। विवेकी आलोचना और उनके आलोचक अनासक्तमनियों का यह भी वचन है कि शक्ति शक्ति की पूजा अनासक्त अथवा इष्टि में प्रकल्पित की और उल्लास से आर्वा द्वारा अनासक्त गयी। स्वामी विवेकानन्द समस्त हिन्दु जनता के माने हुए आचार्य के और इन आचार्य का उन्होंने औरदार उत्तर दिया। देखिए मैं सन् 1900 में का विवेक-धर्म सम्मेलन हुआ था, वहाँ पाश्चात्य विद्वानिशारदों की सत्कारों हुए उन्होंने बताया कि शक्ति पूजन, प्रकल्पनैश्वर्य का उपहासस्पद पूजन में होकर वास्तव्य का पूजन है। उस सम्मेलन में जयन आन्ध्रविद्वानिद मुस्ताव शीषट ने कहा था कि शास्त्रप्राम की पूजा सभी के उत्साहन जग का पूजन है। स्वामी विवेकानन्द ने अवयवेद का हवाला दिया वहाँ सन्म या सन्म की अहम्पानीय माना गया है। अवयवेद के आशय की व्यक्त नहीं वाले प्रकरण लिखपुत्राण में भी हैं। काली की अनासक्त की पूरा, रतापिपामु देवी कहकर उल्लास करने वाले ईसाइयों का स्वामीजी ने कभी पटवार दी और कहा कि आलोचक सत्पति के प्रसार के रूप में सही काली आर उपा, ईश्वरीय की माता काली मेरी के रूप में पुजित हो रही है। अन्न और इष्टि के मस्त या प्रजाति (रिक्त) सम्पत्ती अथ को न पहन पर स्वामीजी सत्त हिन्दु की आश मानते थे, भले ही मेकडोलन, चक्र और अया को

इसमें सहमति न हो। ईसाइयों ने इस बात का जोरदार प्रचार किया कि उत्तरी भारत के हिन्दुओं के पूर्वज परिचयी दक्षिण या मध्य यूरान से आये। इसमें उनकी राजनीतिक चाल की सर्वाधिक इच्छा के हिन्दुओं की राजनीतिक दृष्टिकोण को चिपका करण चाहते थे। जब परिचयी विचारण एसा मागते हैं कि समस्त मानवी का उद्भव यनुरा से ही विकास हुआ है, तब उनकी दृष्टि में आर्य, द्रविड, कोल आदि के अन्तर का इतरा आग्रह नहीं रहता चाहिए। अपने ग्रन्थ "प्राच्य और पश्चिमाध्य" में विवेकानन्द ने मूल की दृष्टि से समस्त हिन्दुओं को एक ही माना है। स्वामीजी के प्रयत्न की महत्ता तब विदित होती है जब आज के आर्योन्मयी की तात्त्विक उन्नति की रूप देखते हैं। आधुनिक एडवर्ड बर्क नामक विद्वान ने अपने ग्रन्थ "हिन्दुस्तानी भाषा इ उपनिषद्" में विशा धारा कि शास्त्रियों ने आर्यों के अतिरिक्त मन्वन् तातारों और हम्मिन्गल (निगमाड) लोक का मत प्रकाशित हो रहा है। दक्षिण भारत में आर्य और द्रविड का वृषकर्मण इतरा पर कर गया है कि वे रसापात करने पर भी उन्नत है। हम कुछभूमि में स्वामीजी के वचन का अविष्ट हन्तारे ध्यान में आता है कि समस्त हिन्दु आज हैं और इनके प्राचीन ग्रन्थ इसी चरण की घोषणा करता है। विवेकानन्द की देश भावना की कि यूरोपीय लोग सारा के मूल है। सर्व अतिरिक्त आय बचीने को कहते हैं।

स्वामी विवेकानन्द सबसे यह चाहते थे कि विदेशियों की आलोचनाओं और आवरणों से समस्त हिन्दु जाति का समग्र दृष्टि में पाये। वे दुःखवाद के आश्रितन के करने आत्मविराग, आत्मनिवृत्ति और "स्वयमेव सुखेन्द्रा" के धर्मिण्यो के समर्थक थे। नीतिकवाद में समर्थ करने के करने आत्मनिवृत्ति के धर्म की शिक्षाओं की व्यावहारिक रूप देने का उनका जोरदार प्रस्ताव था। इन्हीं के प्रेरित और अपमानित हिन्दुओं की धर्मिण्यो के महामार्ग से दीक्षित करना ही स्वामीजी की शिक्षाओं और व्याख्याओं का उद्देश्य है। जब धर्मिण्यो की आराधना में हिन्दु जाति लगेगी तभी आर्य के अनेक वैदिकों ग्रन्थ समस्त हाग और एक स्वयं राष्ट्र की स्थापना हो सकेगी।

बहुत शक्तिशाली का सामाज्य या नीत्याचार के कोई सम्बन्ध नहीं है। धर्मिण्यो विमूर्ति का निमित्त भाग है। विवेकानन्द की ऐसी धारणा थी कि मूर लोगों ने स्पेन के उत्तर अन्त राज्यपाल में परिचयी सम्प्रदा में धर्मिण्यो का वृषपात किया। बाद में जब मूर लोगों ने धर्मिण्यो का छोड़ दिया तब उनका पतन हुआ। भारतीय संस्कृति में उषा, मीठा, काचिनी और दम मत्ती आदि दूध नारियल का जो महत्त्व स्थान दिया गया है वह यहाँ की देश-संस्कृति का आधार माना रहा है। जब-जब इस आधार की उपेक्षा हुई और विदेशियों का आक्रमण हुआ तब यह देश रसातल को पहुँचा। विराट साम्राज्य की व्यापकता का संभवतः वाला व्यक्ति ही लय और धम की महिमा की आनन्द इन्द्रज यह समझा है। जब की घोषणा का अर्थ बनाता यह भवति नहीं यह समझा। जो लय, धम और चिह्न की उद्गुष्टता व्यक्त कर सके और संवर्धित अन्त का संचार कर सके वही सच्चा धर्मिण्यो है। इस धर्मिण्यो की समझ ही राष्ट्रमन और स्वयं मानव-धर्म है।

विवेकानन्द . आधुनिक जगत के बीर-ऋषि

1 विवेकानन्द की व्यक्तित्व

स्वामी विवेकानन्द (1863-1902) का व्यक्तित्व इतिहासी, राजनीति तथा समाजसुधी था। महानि जनता के लिए शिक्षाओं की प्राप्ति पड़ी थी और दुष्ट का फिर भी उद्धार प्योटीनुस और सिनोका की भाँति रहस्यमय अनुभूति थी तथा उस परमात्मा शक्त (ब्रह्म) के साथ उनका सामन्तस्य या विमन्त विवेकनन्द अद्वैतवादी वेदांतियों ने किया है। साथ ही साथ वे एक सनीपी भी थे और अध्यात्मवादी वेदांत के रहस्यी, दूरपीय दयन तथा आधुनिक विज्ञान के मूल सिद्धांत से सभी भाँति परिचित थे तथा मनुष्य के कष्ट या निवारण करने के लिए उनके मन में उन्नत उत्साह था। जो व्यक्ति दलताद्वैतवादी विद्वानों की प्रथम प्याहल विद्या (बीस में से) पर अधिकार कर लेने का पराजय दिखला सक्ता था उनके मन में अस्मद्वैत परमानन्दमय विम अन्तर्मा का प्रत्यक्ष अनुभव करने तथा उत्तम विमन् होने की उत्कृष्ट अप्रता थी। बड़े इनाम बीस में प्रमाणित किया है कि विवेकानन्द प्रारम्भ से ही परम सत्य का साक्षात्कार करने के लिए वैश्व रहते थे। महानि स्वामीजी अद्वैत वेदांत के प्रतिष्ठित आचार्य थे फिर भी उनके व्यक्तित्व में महानि भावना का प्राधान्य था जसा कि माधव, यस्तन आदि वेदांत के पुरातन आचार्यों ने देखने की मिलता था। विश्व उद्धार एक ऐसी व्यक्ति के रूप में जानता है जिसकी बुद्धि ब्रह्माण्ड की सीर विमने अपनी प्रकण्ड दृष्ट्याशक्ति को भारत के पुनरुद्धार के काम में लगा दिया था।¹ वे विश्व, समाज का उन्नीहित करने वाले और मानव के भी लोकसुखक थे। जैसा कि वे स्वयं बहुत करते थे, उनकी दृष्टत हाँकी थी कि वे समाज पर प्रचनन की प्राप्ति दृष्ट पड़े। वे ईश्वरीय नगरी के लोकवादी और दलित के लिए सपन करने वाले महानि पांड्य थे। अतः स्वामीजी का व्यक्तित्व दो प्रकार से अद्वैत था— प्रथम उनकी प्रसिद्धा गवतोमुखी थी, दूसरे उनका मन देश के जीवन में व्याप्त सामाजिक, आर्थिक तथा नैतिक दुरावस्था को देखकर छटपटाया करता था। उद्धार समाज तथा समाजकेका बीना का उपदेश दिया। उनकी बौद्धिक दृष्टि बड़ी स्पष्ट थी और वे भारतीय इतिहास में व्यक्त विविध जीवनपारम्परा की महारह से देश और समाज सक्ते थे। उनकी बुद्धि इतनी प्रसर थी कि उनके मन में आनन्द में लेकर कानिदास, काट और सैंसर तक प्रत्येक वस्तु स्पष्ट एवं स्पष्ट प्रकाशित

- 1 विवेकानन्द का राष्ट्रवाद तथा देशपतिक उनकी इस पीनता से ज्ञात होती है "अच्छे पनास सय के लिए अथ सब व्यय में देखाया को अपन मन में निवास का। यही एकमात्र दयता है जो वापस है। सयय उसी के साथ, सनन उसी के पर सब उसी में पान है, और वह हर वस्तु की आच्छादित किया हुए है। अथ सब देवता ही रह है। हम अपन व दयताया का अनु पवन कर रह है, किन्तु उस दयता की, उस विराट की जो हम अपन पशुपति शिक्षा की देता है, हम पूजा नहीं करते। सक्ते पहली पूजा उस विराट की पूजा है—उनकी जो हमारे पास आर है। वे सब हमारे देवता हैं—वे मनुष्य तथा पशु—और पहले देवता जिसकी हम आराधना करती है हमारे सतासी है।" (*The Future of India*)

थी ।¹ उसका दावा था कि उन्होंने लोकतांत्रिक राज्य का साक्षात्कार कर लिया था, फिर भी वे सिद्ध थे वे पराक्रम के साथ काम करने के लिए जेदात रहते थे । उन्हें देखकर ऐसा नहीं लगता था कि उनकी आत्मा साम्य के 'गुरु' की प्रतिष्ठा रखती थी, अनिवार्य वैरोधिक के आत्मन और उपनिषदों के उस आत्मन के सहस्र सन्नित प्रतीत होती थी जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को इतृति और प्राण देने आता है । ऐसा लगता था कि उनके वैकली व्यक्तिगत में महाभारतावाली गुरमीरो और भीम तथा युध्द युगी के हिन्दू साक्षात्त्ववाद के प्रवर्तका के 'बीम' और 'आजल' तथा मद और वेदात के भारतीय कविओं के 'देवत' का सम्बन्ध था । यही कारण था कि राजनीति के के अर्थ लोकन में स्थानीय चरमकार कर दिखाने में समर्थ हो सके ।

इस 'हिन्दू सर्पेसिजन'—स्वाधी विवेकानन्द—ने अपनी ही महादीन और गुरीन में जो निज-वाचार्द की की उन्होंने नागा की दिक्का दिया कि हिन्दुत्व एक मात्र पुन उत्तिशाली हो गया है और यह विश्व में आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक-आत्मिक प्रचार करने के लिए परिबद्ध है । अमेरिका और यूरोप के कवीय साक्षात्त्ववाद की दृष्टि के इस प्रयासमय का मानना करना पडा । अतित के दृष्टि ने यूरोप का धम तथा संस्कृति के मूल तथा प्रदान किये थे (यहूदी धम, ईसाई धम, रोम का धम पर पुनार प्रभाव, आइयेरी अपर्डीन में इस्लाम, तथा युरोपी तथा इस्लाम पर वेदात का प्रभाव), और अब दृष्टि पुन यूरोप की नतिक प्रेरणा देना चाहता था । सितम्बर 1893 में शिन्नापो के विश्व धम सम्मेलन में विवेकानन्द ने की आकम्पी मानव दिव उन्होंने हुनादी मानधूम की एक तथा आत्मविश्वास प्रदान किया—ऐसा आत्मविश्वास स्वतः परराष्ट्र नीति का सच्चा पुनर्वाची हुना करता है । दृष्टि के इस दम का यूरोपीकरण करने की कुटिल चाल की एक महान् चुनौती का सामना करना पडा । अब विवेकानन्द भारत के सांस्कृतिक जीवन के निर्माण के एक गायतक, जीवनमय आध्यात्मिक उत्साह का पुन दम में सकल हुए ।² लुमर और फाल्मिन ने पश्चिमी यूरोप की की ओजसिता प्रदान की थी यह ओजसिता विवेकानन्द और दयानन्द के सरकारीय भारतीय सम्प्रदा के साथ साक्षात्करण में लूट दी थी ।³ इसमें लदेह नहीं कि बसाल के अरविन्द, मुन्नापत्र आदि नेताओं पर विवेकानन्द का प्रभाव बहुत गहरा था ।

2 हिन्दू धम का सामर्थ्य रूप

स्वाधी निवर्तन द के हिन्दू धम का दम आचार पर सम्पन्न किया कि यह नैतिक मानव-वाद और आध्यात्मिक आचरण का एक सम्पन्न लक्ष्य है । इस प्रकार उन्होंने विश्व धम के

- 2 डा की जन नील न 1907 में 'अनुद भारत' में प्रकाशित अपने एक लेख में लिखा था कि विवेकानन्द ने प्रारम्भ में ब्रह्मसमाज से जिस आलोचना की आतिशयता की पिता महान की यह मिल ने *Three Essays on Religion* (धम पर तीन विचार) के अन्वय में स सम्पन्न गयी थी । ने हूट के सम्पन्न की दमन से की परिचित थे । किन्तु दार्शनिकों की इस रचनाओं से की अर्थन प्रभाव उन पर पाली की 'ओह दू दि लिफ्ट ऑफ इटैलैन्सुल म्यूटी' का पडा था । (*The Life of Swami Vivekananda* जयमोहा, अदत भाष्य, 1933, पृ 92-93) । विवेकानन्द ने वाट और पीरारहावर, मिल तथा रीकर का की अध्ययन किया था । उन्होंने भारतीय अष्टानु सम्प्रदाय की रचनाओं का की सक्ताह्व किया था । युध्द मन्त्र के लिए उन्हें राज्य के प्रत्यनवाद (साक्षात्त्व, सत्त्वनिष्ठावाद) में गार्ति मिथी थी । (*Life of Swami Vivekananda*, जिल्द 1, 'The Man in the Making' पृ 87) । किन्तु विवेकानन्द की अंतिम कालीय न का पीरों के अर्चिवनकालीय प्रसंगी में पिता, न हेनेल के इ-आत्मन प्ररमपवाद में और न काय जोय मुद्रि न । अईनवादी वेदात ही उन्हें सच्ची शक्ति दे गया ।

- 3 अपनी इस पीररानुय प्रवर्ति तथा दमन करित के कारण के हिन्दू वैरोसिजन भी गहराये थे । पीरर पीरर न पिता है उनसे लोसिजन सिद्धि था । (*The Life of Vivekananda*,) पृ 19 ।
- 4 विवेकानन्द ने जन बार पापता का भी, 'असार जीवन है, सवाय मृत्यु है ।'—*Words*, जिल्द 4, पृ 311
- 5 आधुनिक भारतीय पुनर्जागरण के दयानन्द, विवेकानन्द आदि नेताओं के पीररानुय काय हम सब पार, सक्तीय उत्तर और साहित्य लुमर का सम्पन्न दिगाये हैं ।

क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योग दिया। ईसाई धर्म प्रचारकों ने हिन्दू धर्म के विरुद्ध अत्यन्त भ्रातृपूज्य धारणाएँ फैला रखी थीं, वे लोग साम्राज्यवादी भावधर्म के सिद्धांत के और समर्थन के लिए ईश्वर के नाम से तथा पीछे लोगों को सम्म बनाने का भार हमारे सिर पर रखा है, किन्तु वस्तुतः वे इस प्रकार के प्रचार के द्वारा एशिया तथा अफ्रीका के आदिम लोगों का मान प्रगत करना चाहते थे। 1870 के बाद आधुनिक साम्राज्यवाद का जो उदय हुआ उसने अल्पकाल से उक्त कथन की पुष्टि होती है। किन्तु विवेकानन्द ने लिए हिन्दू धर्म एक ऐसा व्यापक सार का जो 'चाप, सारंग और पेदा' के द्वारा अपने हृदय में सम्पूर्णतया दर्शाने प्रविष्टा की सारंग है सत्यता का, जो मनो-वैज्ञानिकों की राजकीय के मनोवैज्ञानिक ज्ञान का अन्तर्गत दे सत्यता का जो सामवेद के मन्त्रों तथा गुणसौदाग एवं दक्षिण के आसपास, नयनार सम्प्रदाय के सत्यता का जड़ना के द्वारा सत्यता की प्रेरणा दे सत्यता का, और जो और कम्योपिमा की गीता में श्रीकृष्ण द्वारा प्रतिपादित विज्ञान वन का सन्देश दे सत्यता का। विवेकानन्द की दृष्टि में हिन्दू धर्म उन दूरहूँ प्रयोग, वनवाणी अन्धविश्वासा, परम्परागत मतवाद और आदिम वनवाण्ड का पुन नहीं था किन्तु देहान्त के लिए पल्लववाही प्रयोगों आलोचन दुर्भाग्यवश गहन दृष्टि रहता है। उनकी विगाह में हिन्दू धर्म मानव जाति के उद्धार के लिए नित्य तथा आध्यात्मिक विद्या का और आदिवाद कालनिरपेक्ष विद्यया की संहिता था—एले जातिवैज्ञानिकसम्मानवर्धिता साधनोप महाकृत्य। (योगसूत्र, 2, 26)

स्वामीजी हिन्दू धर्म का धर्मों की प्रकृति मानते थे, और इस बात को कुछ सीमा तक इतिहास द्वारा प्रमाणित भी किया था सत्यता है। प्राचीन वैदिक धर्म न बौद्ध धर्म को प्रमाणित किया था और बौद्ध धर्म ईसाई धर्म के उदय में एक प्रतिस्पर्धी शक्ति था। वैदिक धर्म में ईशान और मोहिता के धर्मों को प्रमाणित किया था, और एही सत्यता ई पू के सृष्टि में जो सुधारवादी नैतिक आन्दोलन बना उनसे कुछ पहले पश्चिमी एशिया (ईरान और मारु) के धर्मों से प्रेरित हुए थे। इन धर्मों के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण जो उस समय जानकारी प्राप्त हुई थी जब वे बाबुल (बैबीलोनिया) में बहिष्कार के रूप में रहे थे। जिस तथा पश्चिमी एशिया के इतिहास में जो योग हो रही है उससे सिद्ध हो रहा है कि प्राचीन धर्म का उन दूरवर्ती प्रदेशों में प्रवेश हो चुका था। ईस-अल-अमर्नी में जो वर्ष (1380-1350 ई पू के लगभग) लगभग हुए हैं उनमें वैदिक नामों का उल्लेख है। उदाहरण के लिए 'अतमय' शब्द 'अतमय' का परिवर्तित रूप है। (ए बी बीन, 'इन्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली', 1936 पृ 573) पश्चात्प्राचीन भारतीय दर्शन की महत्त्वपूर्ण धारणा है। जिसकी देखावा के नाम निरपेक्ष हो वैदिक नाम है। इन नामों का 1400 ई पू के अन्तिमों में निक आता है।

विवेकानन्द वैदिक धर्म से लेकर वैष्णव धर्म तक सम्पूर्ण हिन्दुत्व के प्रतिनिधि थे। उन्होंने वैदिक उद्दिष्टात्मा पर सत्यता बत नहीं दिया जिसका वि स्वामी दयानन्द ने दिया था। उन पर अन्धविश्वास के आत्मकाण्ड का विशेष प्रभाव था। विवेकानन्द का साधनोपवाद अत्यधिक जो उद्धार प्रवृत्ति का स्वरूप दिखाता है। उनका पालन पोषण उनके गुरु रामकृष्ण के प्रभाव के अन्तर्गत हुआ था और रामकृष्ण का सम्पूर्ण व्यक्तिगत इस बात का योगदान और प्रमाण था कि सभी धर्मों में आध्यात्मिक सार विहित है। स्वामी विवेकानन्द ने हिन्दुओं में विपक्षियों को अपने धर्म में सम्मिलित करने की प्रथा अर्थात् पुन प्रारम्भ कर दी। यह प्रथा अनेक शाखाधर्मों से समाप्तप्रणय हो रही थी।

विवेकानन्द की परिभाषा के अनुसार धर्म यह नैतिक शक्ति है जो व्यक्ति और राष्ट्र की शक्ति प्रदान करता है।" उन्होंने परबल हुए शब्दों में कहा था "शक्ति शीघ्र है शीघ्रता मूल्य है।"

- 6 विवेकानन्द ने नीचतापूर्ण शब्दों में योगका की थी, "हमारे लिए यह समय रोने के लिए नहीं है हम आनन्द के आनन्द में नहीं बह सकते, हम बहुत रो चुके हैं, यह समय कोमल बनने का नहीं है। कोमलता हमारे जीवन में इतने लम्बे समय से नहीं आ रही है कि हम बड़े के डेर के लक्ष्य हो सके हैं। अब हमारे देश को जिन चीजों की आवश्यकता है वे हैं मोहि की भाव प्रेरणा, इस्पात की शक्ति, प्रमाण सत्यता जिसका कोई प्रतिरोध न कर सके, जो अपना

जवाहरलाल नेहरू ने अपनी 'भारत की खोज' में बतलाया है कि स्वामीजी की शिक्षाओं का सार समग्रता था। मुम्बईकोषनिपट में कहा गया है, "आत्ममाया वस्तुहीनेन लभ्यः।" विवेकानन्द स्वामी के पुण्यलं और काङ्ग्रेस की बौद्धिकता का समन्वय करना चाहते थे। उन्होंने अपने को मुख्य बनाने वाली सब रहस्यवादीय मान्यताओं से दूर रखा। वैतथ्य ने अपनी पुस्तक 'सिन्धु का बुद्ध' में यहूदी धर्म तथा हिन्दू धर्म का अंतर बतलाया है। उसका कहना है कि यहूदी धर्म व्यक्तिवादी, आर्थिक एवं व्यावसायी था और विश्व को आधुनिकीय मानता था। इसके विपरीत हिन्दू धर्म सामूहिकवादी, विनाशवादी, काङ्ग्रेसकीय तथा विश्व का निरर्थक करने वाला था। वे सामान्य निम्नमार्गीय इतिहास और राजन के अपने अध्ययन पर आधारित हैं। मौन शास्त्र तथा मराठा राजतन्त्र के निर्माता होने काबुल व्यक्ति नहीं थे। विवेकानन्द अद्वैतवादी होते हुए भी क्रोडिक क्षेत्र के अद्वैतवादी तथा साहसपूर्ण काम के सम्बन्ध में और उन्होंने औरसाधुनाम इस बात का आदेश दिया कि विशेषण धारण तथा हठ और साहसपूर्ण विश्वास इतिहास की हिमा बनता है।

3. वेदांत तथा आध्यात्मिक

करोधीय आलोचकों का आरोप है कि भारतीय दर्शन आध्यात्मिक (मैलिजिना) के प्रति उदासीन है। डा ए बी शीम ने कहने का दुस्ताहम किया है "काङ्ग्रेस के बौद्धिक आत्मनताप की तुलना के उपनिषदों का वैदिक एवं नव्य तथा धर्महीन है। वे (काङ्ग्रेस) यह समझने में पूर्णतः असमर्थ रहे कि वैदिकता दर्शन का सर्वाधिक कस्तुमक्ष और आधुनिक बन होती है।" किन्तु विवेकानन्द और रामलीय न अपने अमेरिका में दिये गये व्याख्याना में बतलाया है कि आध्यात्मिक आत्मनता की शिक्षा देने वाला वेदांती तत्त्वज्ञान ही बहुमुख्य अनुष्ठानों के लिए समानता के व्यवहार की सच्ची सारणी हो सकता है। भारत की नाति में स्वतन्त्रता तथा समानता की शिक्षा दी थी, किन्तु हमने बहुत हीकर मेनीलिजन प्रपन तथा मेनीलिजन कृतीय के साक्षात्परायण का रूप धारण कर लिया। ऐसा वे सचकार के अधिनायकत्व का कारण बताया गया, किन्तु अब हमने विक्रमवाक मुट के, जिसे 'अध्वन' कहा जाता है, अधिनायकत्व का रूप धारण कर लिया है क्योंकि इन आध्यात्मिकता के मूल में वैदिक धर्म का अभाव है। अतः आधुनिक आध्यात्मिकता तथा सामाजिक नैतिकता का प्रकीर्णन विश्व में सम्बन्ध आचरण एवं स्वतन्त्रता, अधिनायक, आध्यात्मिकता तथा धर्म का विकास करता है। वेदांती तत्त्वज्ञान (अध्यात्म) अपने आध्यात्म के कारण व्यक्ति की मनोमत्त नैतिक प्रवृत्ति का निर्देश नहीं करता, अस्तित्व यह वैदिक धर्म के लिए अद्वैतवाक आधार का निर्माण करते होते (नैतिक धर्म की) समझ बनाता है।

4. विश्व चिन्तन में विवेकानन्द का योगदान

विवेकानन्द के उपनिषदों के अद्वैतवाद का जिसे आदरार्थक और शक्ति ने पद्धतिबद्ध किया था, समर्थन किया। उनका कहना था कि सच्चिदानन्द ही परम तथा निरूप होता (परमात्मा तत्) और आधुनिक चिन्तन तथा जीवन के द्वारा उनका आत्मतत्त्व निरूपित जा सकता है। शक्ति ने

काम हर प्रकार के पुत्र कर के, चाहे उनके लिए महात्मावर के तब में जाकर धनु का आत्मना-मात्मना हो गया न करना पड़े। यह है जिसकी हमें आध्यात्मिकता है, और दूसरा हम सभी समझ कर सकते हैं, सभी स्वाध्याय कर सकते हैं और उस सभी आध्यात्मिकता का हमें सबके हैं जबकि हम अद्वैत के आदेश का आशाकार कर लें, सभी एकता के आदेश की अनुसृष्टि कर दें। अपने में विश्वास, विश्वास और विश्वास। यदि कुछ अपने वैदिक वीरों की शक्ति के आधार में तथा उन सब देवताओं में विश्वास है किन्तु विश्वास के सुन्दर और प्रतिष्ठित कर दिया है किन्तु फिर भी अपने में विश्वास नहीं है, तो सुम्भुषण अकार नहीं हो सकता। अपने में विश्वास रखी और उस विश्वास पर हस्ताशुभक नहीं रखी। क्या कारण है कि हम सभी वीरों की शक्ति पर विश्वास एवं हजार वर्ष से मुट्ठी भर किन्हीं आत्मक करते करते हैं? क्योंकि उन्हें अपने में विश्वास था और हम नहीं हैं। — *The Mission of Vedanta* नामक व्याख्यान से, *The Complete Works of Sri Sri Vivekananda*, विद् 3, पृ. 190।

मनानुसार जगत ब्रह्म का विवर्त है। किन्तु विवेकानन्द ने ब्रह्माण्ड की सत्ता की पूजा अस्वीकार नहीं किया, यद्यपि आधुनिक दृष्टि से उन्हें ऐसा करना चाहिए था। उन्हें अपने गुरु रामकृष्ण से प्रेरणा मिली थी और रामकृष्ण की विद्या के निष्ठावक रूप को सत्ता के रूप में देखते थे। यह विचार उन का मुख्य सिद्धांत है और बीच रूप में प्राचीन त्रिभु तथा पश्चिमी एशिया के धर्मों में देखने की मिलता है।⁸

विवेकानन्द ने विवेकानन्द का एक विशिष्ट सिद्धांत प्रतिपादित किया। विद्वानों का मत है कि स्वामीजी का सिद्धांत आधुनिक के सिद्धांत का पूरक है। "यद्यपि स्वामीजी ने स्वीकार किया कि आधुनिक का सिद्धांत कुछ सीमा तक समीचीन है, किन्तु उन्होंने उसका उलट भी स्पष्ट पक्षधर के 'प्रकृति प्रति' के सिद्धांत (आत्मतत्त्वपरिणाम प्रकृत्यापूरुष) के आधार पर खण्डन किया। उन्होंने ब्रह्मवाक्य कि ब्रह्म (सर्वज्ञता का सिद्धांत) विनाश के धारणी का अन्तिम समाधान प्रस्तुत करता है।"⁹ उनका नयन था कि आधुनिक का विवेकानन्द निम्न स्तर की दृष्टि से उपयुक्त है, किन्तु उच्चतर स्तर पर नैतिक उत्था का अधिक महत्व होता है और वे ही मनुष्य को पूरकता तथा आत्मतत्त्व मोक्ष, जो कि उनके आत्मसिद्ध अविचार है, दिला सकते हैं।

विवेकानन्द का आत्मतत्त्व परम्परागत वेदांत के निरूपण पर आधारित है। उन्होंने ब्रह्मवाक्य कि जो भी जान हूँ बाहर से मिलता है वह ब्रह्म का बाहर से प्राप्त नहीं मानी वस्तु नहीं होती। वह जो आधुनिक के निरूपण के लिए एक अवसर होता है जिससे कि ब्रह्म, ब्रह्म वेदना अपने पूरे धर्म एवं वेदांत के साथ अवधारणा सने।¹⁰

विशेषण वेदना ने इस बात का उल्लेख किया है कि विवेकानन्द ने आधुनिक मनोविज्ञान के 'अविचार' की धारणा का अभाव कर दिया है।¹¹ स्वामीजी के अनुसार धर्म का उद्भव तब होता है जबकि मनुष्य अपनी सामान्य सक्षमतात्मक क्षमता से ऊपर उठने का प्रयास करता है। गौतम बुद्ध ने भी कहा था कि उन्हें बोधि बुद्ध के नीचे लोकोत्तर तत्त्व का साक्षात्कार हुआ था। बाद में भी कहा है कि धर्म 'बुद्धि का आधारभूत तत्त्व है—बुद्धि के अभिप्राय व्यक्ति की मान-सिद्धि धर्म। यह मनुष्य ब्रह्माण्ड की आधुनिक धर्म है। वह आत्मतत्त्व, बाते और वेद का भी नयन है कि धार्मिक वेदना मनुष्य में निहित अस्मिता की वेदना के कारण उत्पन्न होती है। हेगेल के अनुसार ईसाइयों का अवधारणा का सिद्धांत—विश्वास अथवा आत्मतत्त्व तथा पदार्थ का समाधान—निरर्थक धर्म का उदाहरण है। किन्तु विवेकानन्द मनुष्यवाद का ब्रह्म की हेगेल के अवधारणा से स्पष्ट तत्त्व मानते थे। बाद और हेगेल मनुष्य ईश्वर तक पहुँचकर एक गये। हेगेल ने धर्म की वेदनात्मक धार्मिक परम्परा सह की धारणा का खण्डन किया और कहा कि यह जो 'विश्वास के निरर्थक हैं' गौतम के उद्भव है। "माधुसूदनजी ने तथा रामानुज की रचनाओं में निर्बुद्ध ब्रह्म का खण्डन किया गया है। किन्तु विवेकानन्द ब्रह्म आधुनिक की रूढ़िवादी अनुभूति का आधार पर ब्रह्म

8 राम कर्ण, धर्म, सिद्धांत परम्परात्मक।

विद्वत्परम्परात्मक म धर्मसिद्धि धर्मसिद्धि।

मधु कर्ण, मधु कर्णसिद्धांतपरम्परात्मक।

न हिमालयपरम्परात्मक तत्त्व धर्मसिद्धि। (पौंडा, 13, 27-28)

9 बोरे के लिए देखिये *Life of Vivekananda*, विद्वत् 2, पृ 747।

10 यह सिद्धांत आधुनिक के सिद्धांत से मिलता जुलता है। ब्रह्म रमल मिलते हैं, 'आधुनिक' ने ब्रह्मवाक्य कि वह ब्रह्म है कि ब्रह्म के मधु (नैतिक) है जो उसका अर्थ केवल यह नहीं है कि मन में उसकी जान देने की क्षमता है, यही उसमें उस (सर्व) धर्म में ब्रह्म निवास की क्षमता है। जो बुद्ध की हृदय जानते हैं वह हमारी प्रकृति में ही प्रकट होता है, अर्थात् वह चित्त के द्वारा प्राप्त होता है, उन अनुभवों का संचय ब्रह्म में होता है जो पहले वेदनात्मक है।" *Philosophy of Vedanta*, पृ 158।

11 आर जी रामानुज, *A Constructive Survey of Upanishadic Philosophy*, पृ 139 (पूना, 1926)।

म उद्गृहीते ब्राह्मणो तथा क्षत्रियो के बीच दीपनालीन समय की ओर ध्यान आकृष्ट किया। यद्यपि अनेक उप सामाजिक विचारणा पर मानव के मन समय तथा संवहारा के अधिनायकत्व का गहरा प्रभाव पड़ा है, फिर भी दयानन्द, विवेकानन्द, सरस्विक, जगन्नाथसह आदि न हिन्दुओं की कम-अपमर्यादा पर आधारित सामभूतन सामाजिक समझ का समर्थन किया है। इस सम्बन्ध में इन विचारणा का मत है कि कम-अपमर्यादा ही मनुष्यों के साम्प्रदायिक-बौद्धिक, रसात्मक, आर्थिक तथा सामाजिक नायकत्व का समय बन सकती है। विवेकानन्द ने हमारे सामने कोई स्पष्ट और दो टूक सामाजिक नायकत्व नहीं रखा।¹⁸ फिर भी उन्होंने व्यक्ति व्यवस्था और असुरक्षता की कटु जायना की। यह स्पष्ट है कि यदि वे देश की महान उपलब्धि के देखने की ओरित रहते तो उनके मन में ओरित जनता के उद्धार के लिए का प्रवेश मानवार्थ भी वे उद्गृह्य सामाजिक पुनर्निर्माण की दिशा में अग्रसर होने के लिए अवश्य बाध्य करती।¹⁹ किन्तु यह निश्चित है कि पश्चिम में तथा साम्प्रदायी चीन में स्वतन्त्रता के नाम पर की सामाजिक उच्छल जनता फली हुई थी उसको वे कभी सहन न करते। उस सीमा तक वे मुरादमन की हो सकते थे। सम्भाव्यता काका विश्वास था कि समाज का मुद्धार करने से पहले व्यक्ति का बन्धन बचना तथा उसे मुक्ति दिताना आवश्यक है।²⁰ इससे विपरीत, साम्प्रदायी और साम्प्रदायी रूप का अधिनायकवादी विचारण मनुष्य की सज्जामन प्रवृत्तियों की कट कर देता है, और सम्प्रदायी हिंसामूलक समष्टिवाद व्यक्ति के सामाजिक अवस्था विनाश का विरोध करता है। विद्वत् का निश्चित इतिहास बताता है कि अब तक इतिहास बोले से व्यक्ति की और स्पष्ट दुःस्था का जीवनकाल रहा है, इसलिए अब मेरा आग्रह है कि बहुलव्यक्त समाज की प्रतिनिधि ओरितम की व्यवस्था के द्वारा अपने की प्रभावकारी बनाना चाहिए। यह बात विवेकानन्द के वैदिक तथा साम्प्रदायिक अदृष्टवाद के अनुकूल होगी।

6 विवेकानन्द एक और शूद्र के रूप में

विवेकानन्द ने बीरछात्रुय मर्देस का सारास्य उनके निम्नलिखित कथन में निहित है और इनसे उनके आरम्भी व्यक्तित्व के प्रमाण तथ्यों का भी पता चलता है। "मैं जानता हूँ कि वेबल शर्म जीवन देता है, और शूद्र की ओर अग्रसर होने के अतिरिक्त अब कोई बात होने दक्षिणानी

- 18 एक बार विवेकानन्द ने घोषणा की थी कि मैं 'समाजवादी' हूँ, और उन्होंने व्यक्तियों तथा पुरुषों के व्यक्तिगत विद्वेप की मर्यादा की थी।—वी एन दत्त, *Sri Sri Vivekananda, Patriot Prophet*, प 369-70।
- 19 विवेकानन्द के मन में दक्षिण के उद्धार के लिए जो अवसर उत्पन्न था वह इन व्यक्तियों से प्रेरित होता है, "मुझे इस बात की चिन्ता नहीं है कि वे हिन्दू हैं या मुसलमान अथवा ईसाई किन्तु जिन्हें ईश्वर सौंपे है उनकी सेवा के लिए मैं सर्वत्र उत्तर दूँगा। मेरे बन्धों 'अग्नि' के बूढ़ जाओ। यदि तुम्हें विश्वास है तो तुम्हें सब कुछ मिल जायगा। हमन से प्रत्येक को दिन रात आग्रह के उन करोड़ों व्यक्तियों के लिए आशना करनी चाहिए जो दरिद्रता, पुरोहितों के लज्जा तथा लज्जाचार में जकड़े हुए हैं—दिन रात उनके लिए आशना करो। मैं न उपवासशी हूँ, न धार्मिक, और मैं शक्त भी नहीं हूँ। मैं दक्षिण हूँ। मुझे दक्षिण से प्रेम है। भारत में चीन देखा है किन्तु मन में उन चीन करोड़ स्त्री पुरुषों के लिए सहानुभूति हो जो गद्दी दरिद्रता और लज्जा में डूबे हुए हैं? जवाब क्या है? उनके जीवन में प्रकाश कौन ला सकता है? इन्हो बीमों की अपना देखल लवणों। मैं उसी की महत्ता पहचान हूँ किन्तु हृदय दक्षिण के लिए दक्षिण होता है। जब तक करोड़ों लोग मुखमरी और अज्ञान के शिकार हैं तब तक मैं उन प्रत्येक व्यक्ति को विश्वासघाती समझता हूँ जो उनके मन से क्षिप्ता पाकर उनकी ओर दृष्टि नहीं देता।" (*The Life of Sri Sri Vivekananda*, अध्याय 83)
- 20 1895 की शरद ऋतु में उन्होंने जगन्नाथसह को लिखा था, "व्यक्तिगत मेरा आग्रह बाध्य है, व्यक्तिता की प्रतिष्ठित करने के अतिरिक्त मेरी जग कोई आनन्दता नहीं है।" (रेमा रीता द्वारा उद्धृत, *The Life of Vivekananda*, प 790)। एक बार उन्होंने यह भी घोषणा की थी, "प्रत्येक एक व्यक्ति में सम्पूर्ण विश्व निहित होता है।" (परी)

नहीं बना सकती, और कोई व्यक्ति तब तक रहम की प्राप्ति नहीं कर सकता जब तक कि वह बलवान नहीं बनता। यदि यह मोक्ष है जिसका सेवा पतिव्रत के आध्यात्मिक है पीछे दृष्टि की बनना चाहिए। अद्वैतवाद के दशन की शीघ्रतर अन्त कोई वस्तु रूप शक्ति नहीं दे सकती। अपन कोई वस्तु हमें चलना पैरिन नहीं बना सकती जिसमें कि अद्वैतवाद का विचार।²¹ इसीलिए हम देखते हैं कि भारत में अनेक महापुरुषों पर विवेकानन्द के व्यक्तिगत और विचारों का प्रभाव पड़ा है। गीत-प्रेमाल के सदैववाहन स्वामी रामलील की जिज्ञास मित्र आपन और अमेरिका में बनना की भी, उनसे बहरी प्रेरणा मिली थी। गुणवत्तवद सोल विवेकानन्द को अपना आध्यात्मिक गुण मानते थे। अर्थात् उनसे महान प्रभाव के और अपनी निजीप्रवृत्ति में उन्होंने स्वामीजी के प्रयोग का अध्ययन किया था। स्वामी रामदेव उनसे भक्त थे। रामदेवजी के विचार हैं कि हिन्दू धर्म के सम्मेलन के विवेकानन्द के जिस उत्साह और मान-भाव का परिणत दिया था उसका उन पर बड़ा प्रभाव पड़ा था।²² महाराष्ट्र का भी उत्तम मिलने के लिए वैलुर मठ पर थे किन्तु वे उनके दशन में कर सके क्योंकि वे उस समय अस्वस्थ थे। उस समय 1901 के आसपास गांधीजी एक चरम व्यक्ति थे। अन्तर्गतान के अपनी सुलभ 'भारत की धर्म' में स्वामीजी की प्रतीति प्रकाश की है।

स्वामीजी के व्यक्तिगत की सम्मोचना अतिथि है। 'संसारो पर पीठ बनामिया की वादविल है। यह उस सत्य, रहस्यवादी, योगी तथा देवमन्त्र का दाव है। स्वामीजी जगद्गुरु थे, किन्तु आप ही आप से भारत माता के सङ्गत भी थे। उनकी उत्तम देवमन्त्र की सुलभ वालीभी, विस्मयक अन्तर्गतान की सावधान से की थी सकती है। अन्तर्गतान की अन्त में उन्होंने जो सम्मेलन किया वह अद्वैतीय था।²³ 'वाल्मीकी से अन्तर्गतान तक व्याख्या' बलवान बन की गीता है। अन्तर्गतान अन्तर्गतान अन्तर्गतान की अन्तर्गतान के लिए अन्तर्गतान तथा अन्तर्गतान की अन्तर्गतान करना था।

21 *Complete Works of Swami Vivekananda*, हिस्स 2 :

22 पतिव्रत *Religion in Transition* में उनका लेख।

23 रामा रोषा लिखत है, 'उनकी पिता भक्त थे भारत की अन्तर्गतान की प्रकार उत्तम निबन्धी जिस प्रकार कि बुरागा अन्तर्गतान (पीनिनस) अपनी पिता भक्त से उठ गया हुआ था— उस जादू के पक्षों की पक्षि बल (भारत की अन्तर्गतान) अपनी पक्षि और अपने उस महान सुलभ में विचारित लेकर उठी जिस पर उसकी अन्तर्गतान के स्वप्नवादी अन्तर्गतान सुलभ और मनन करत था, और जिस अन्तर्गतान के लिए उसे विश्व में सम्मेलन उत्तर देना है।' (*Life of Vivekananda* अन्तर्गतान, 1953, पृ. 7)।

विवेकानन्द का समाजशास्त्र¹

1 भारत के सामाजिक विकास का इष्ट विषय

विवेकानन्द ने भारत के सामाजिक तथा राजनीतिक पतन के कारण का आशय किया और सामाजिक विपन्नता के उपमूल के उपाय बतलाए। विषय यह एक वैदेशी के रूप में जानता है, भारत उनसे एक प्रथम बौद्धिक तथा नैतिक पथ प्रदर्शक के रूप में परिचित है, किन्तु हम अपने जीवन की भारतीय इतिहास तथा राजनीति के अर्थों के रूप में भी समझना चाहिए।² एक शिक्षानेता के नाते उन्होंने एशियाई तथा यूरोपीय संस्कृतियों की आत्माओं के बीच भेद किया।³ एशिया के महान देवा ने ईश्वर के प्रकृत तथा उसके शास्त्र विषयों का अधिक महत्व दिया है। मरीच व विज्ञान, व पंचांग, वाणिज्य, व्यवसाय, नागरिकशासन तथा राजनीति की सफलताओं का उच्च प्रचार किया है। उन्होंने कहा था, "यदि यूरोप, जो कि नैतिक शक्ति की अविद्यमान है, अपनी स्थिति को नहीं समझता, अपनी स्थिति को परिचित नहीं करता और आध्यात्मिकता का अर्थ जीवन का आधार नहीं बनाता तो वह बचत वष के भीतर खल हो जाएगा।" विवेकानन्द ने एशियाई जनता की राजनीतिक समझ का "दून प्रस्तावित किया है। उनका कथन है, "एशिया की पुनरुत्थान वष की पुनरुत्थान है, यूरोप की पुनरुत्थान विज्ञान की पुनरुत्थान है।" इस दृष्टि में उनका आध्यात्मिक-सुखी समाजशास्त्र अनुपम ज्ञान पट्टा है। फिर भी कदापि विवेकानन्द सामाजिक दृष्टि से नैतिक जनता की प्रतीति (आत्मा) का मानते थे, वेता वि

- 1 यह सम्पादित लेख के "Vivekananda and Marx as Sociologists" का, जो *The Vedanta Review* (वृद्धा, जनवरी 1959) के पृ 479-81 पर छपा था, परिचित और सम्पादित रूप है।
- 2 विवेकानन्द ने पूर्व के पुनरुत्थान की तथा एक सामाजिक विपन्न व आशय की अभिव्यक्तियों की थी। उन्होंने कहा था, "यूरोप का यह उपाय नहीं करने में और फिर भी न होना। उसके उपरांत भारत का उत्थान होना और वह सभी विश्व के निर्माण में अत्यन्त अधिक अर्थ करेगा।" की एन एन द्वारा *Vivekananda, Patriot Prophet* में पृ 335 पर उद्धृत।
- 3 "एक और अधिकारी समाजों की स्थापना पर आधारित स्वतन्त्रता है, दूसरी बार आन अनुवाद का अधिकार अधिकार है। यदि हम हिंस्रता के अर्थ में भारत की ऊपर और नीचे उठाया जाय तो क्या इसमें कोई आशय की बात है? यदि यह बात सत्य है वैज्ञानिक स्वतन्त्रता, माया, अथकरी विद्या और साधन है राजनीति, भारत का उद्यम है मुक्ति, माया है वेद, और साधन है उपाय।"—स्वामी विवेकानन्द *"Modern India"*, *Complete Works* खंड 4, पृ 409।
- 4 स्वामी विवेकानन्द, *India and Her Problems* पृ 39।
- 5 विवेकानन्द का कथन था कि हम का "राजनीति से अधिक महत्त्व" है, क्योंकि वह हम तक पहुँचाता है और अधिक आशय में सम्भव रहता है। (*Complete Works*, खंड 5, पृ 129)। इसलिए उन्होंने पोषण की की "भारत का समाजवादी अथवा राजनीतिक विचारों से व्यापित करने में पूर्व उस आध्यात्मिक विचारों में स्थापित करेगा।" वही, खंड 3, पृ 221।

वेदान्त में प्रतिपादित किया गया है, किन्तु सामाजिक स्तर पर वे उत्पीड़न तथा अत्याचार की दृष्टिगत वा दृष्टिकर्मा सामान्य करने की चेष्टाएं करते थे। उनकी पीर आराम सामाजिक पावन के साथ किसी प्रकार का समन्वित होना नहीं कर सकी थी।

स्वामीजी आधुनिक प्रत्यक्षवादी थे। फिर भी उन्होंने अपने धार्मिक प्रवचन आधुनिक विचार की परिधि-विधिया की रचना में रत कर दिये। वे साक्षात्गो थे तथा उन्हें बहुस्वाम्यत्व योजना की अन्तर्गत मनोवैधानिक आवश्यकता थी, किन्तु साथ ही साथ वे देशभक्त भी थे और नष्टनीति जनता की दुःखता की दृष्टिकर्मा अत्यधिक व्यक्त होती थे। इसमें से वे निराली थे, इसलिए उन्होंने आत्मसुख पापना की वि जातिगत भेदभाव काटने के आधिकार हैं। स्वामीजी चाहते थे कि भारतीय समाज के सभी वर्गों की जीवन में अति करने के लिए समाज व्यवस्था विकसित चाहिए।

विश्वनाथ के सामाजिक तथा राजनीतिक विचार का अंत उनकी यह वैधानी धारणा थी कि आत्मता तथा सत्तात्मिकता तथा सर्वोच्च है। इसलिए उन्होंने पीड़ित जनता की समस्या, एकात्म तथा सत्ता का वास्तविकी सदैव दिया। वे उन समस्या तथा जातिगत भेदभाव व विचारों तथा अत्याचार का उन्मूलन करना चाहते थे किन्तु समाज का विचार, स्वतंत्रता तथा विचारिता बन दिया है। उन्होंने अनुसूचितों की पुरानी की कटु सत्ताओं की और पावनता तथा पावनता पर आधारित धर्म-धर्म की निराला थी। वे समाज का आलोचना समानता करना चाहते थे, किन्तु उनका आग्रह था कि यह सब कुछ आधुनिक आधार पर किया जाए। उन्हें वैधानिक सेन तथा बहुदेव की विचारों रचना के लिए उन समाज सुधारकों की कार्य सभी के अनुसूचित नहीं थी जो समाज का सुवर्णकरण करने के पक्ष में थे। वे कुछ सीमा तक समाज सुधारक थे, किन्तु यह निश्चय है कि वे अंत में पूजा सम्मान विचारों करने व पक्ष में नहीं थे।

एक सिद्धांतकार के नाते उन्होंने वन विचारों की बुद्धिमत्ता सिद्ध करने का प्रयत्न किया, "जिस प्रकार हर व्यक्ति व सत्ता, राजस्व और समय में स कोई न कोई गुण 'युनाथि' भाषा में विद्यमान रहता है, सभी प्रकार अवैक व्यक्ति में उन गुणों में से कोई न कोई 'युनाथि' भाषा में पाया जाता है जिसके बाहुल्य, अतिव्य, वर्य अवस्था घट करती है। किन्तु सभी वर्गों समान रूप से किसी एक गुण का विचार असा में पाया जाता है और तदनुसार उनकी अतिव्यक्ति होती है। किसी मनुष्य की उसके विचारों सभी की दृष्टि से देखिए। उदाहरण के लिए जब वह बैतन के लिए किसी व्यक्ति की सेवा करता है तो वह पूरा है, जब वह स्वयं नाम के लिए कोई व्यवसाय करता है तो उस समय वह वैध है, जब वह अर्थ का अर्थ करते धर्म की स्थापना करने के लिए लक्ष्य करता है तो उस व्यक्ति में उसमें धर्म के गुणों की अतिव्यक्ति होती है, और जब वह ईश्वर का स्मरण करता है अथवा ईश्वरविषयक वादालास व सत्य होता है तो उस समय वह बाहुल्य बन जाता है। अतः किसी व्यक्ति के लिए एक व्यक्ति के दूसरी व्यक्ति में परिवर्तित होना सम्भव है। अथवा विचारों के बाहुल्य और परंपरागत धर्मिक कथे बन जाते हैं व्यक्ति का अनुसूचित करना आवश्यक नहीं है, व्यक्ति अपने परिधि-विधिया के अनुसूचित बना लेना चाहिए।" पुरानी व्यवस्था में इतना जीवन है कि समाज से जो जो नवीन व्यवस्थाओं का सज्जन विचार जा सकता है। व्यक्ति-व्यवस्था के अनुसूचित की वाचना करना कीटी व्यवस्था है। व्यक्ति अन्तर्गत चीज है। जीवन की समस्याओं को हल करने का यही एकमात्र साधन है। मनुष्य के लिए मनुष्य बनाना स्वाभाविक है, तुम उत्पत्ति वन नहीं सकते। तुम नहीं कहें भी आलोचने नहीं तुम्हें व्यक्ति देखने की निराली।"

विश्वनाथ के अनुसार समाज का चार वर्गों में विभाजन आदेश समाज व्यवस्था का अंतर्गत है। बाहुल्य पुरोहित स्तर में धर्म और विद्या की प्रवृत्ति के लिए है। धर्म का नाम

6 विश्वनाथ मानते थे कि अपने मूल रूप में व्यक्ति "सबसे पीछे सामाजिक व्यवस्था" की, किन्तु वे व्यक्ति के विचारों वन के निरचय ही निराली थे। वे चाहते थे कि भारत 'वैधानिक विचारों' की अवस्था कर ले।—विश्वनाथ, *Complete Works*, खंड 5, पृ 128-29।

7 *Sri Sri Vachananda, On India and Her Problems*, अर्थ आधार, अन्तर्गत, अनुसूचित, 1946, पृ 77-78 तथा 80।

व्यवस्था बनाये रखना है। वैश्य व्यापिक का प्रतिनिधि है और व्यापार के द्वारा ज्ञान के प्रसार में योग देता है। क्षत्र समता की विषय का साक्षक है। यदि इन चार प्रमुख तत्वों का समन्वय किया जा सके तो वह आदर्श स्थिति होगी, क्योंकि ज्ञान, रक्षा, व्यापिक व्यवस्थापन तथा समाजता निरन्तर ही सापेक्षीय हैं। किन्तु इस प्रकार का समाज स्वस्थित करना कठिन है, क्योंकि हर एक व्यक्ति को अपने हाथों से केंद्रित करना चाहता है, और यही चेतन का कारण है। आह्वान न जान पर एकधिकार स्थापित कर लिया और अन्य वर्गों को संस्कृति के क्षेत्र में सहिम्बृत कर दिया। शक्ति शूर तथा अत्याचारी हो गये। वैश्य "सर्वोत्तम कृषक और रक्त पुत्र की शक्ति" की दृष्टि से अत्यन्त मजबूत है।

इसलिए विवेकानन्द ने उत्तम जातिवादी द्वारा किये गये उत्पीड़न और दमन के विरुद्ध विद्रोह किया। उनका कथन था, "किन्तु हमला अब यह नहीं है कि वे विरोधाधिकार विद्यमान रहे। यह कुचल दिया जाना चाहिए।"⁸ यह सत्य है कि हम कार्यात्मक समाज के लिए कितने ही उत्तुंग क्या न हों। यह व्यवस्था के अवसृष्टीय सामाजिक परिणाम अवश्य होगी। हम देखते हैं कि 10वीं शताब्दी ई पू से छठी शताब्दी ई पू तक ब्राह्मण ने अपनी सामाजिक श्रेष्ठता की मुद्रा बनाने के लिए विस्तृत धार्मिक और कमकाण्डी व्यवस्था की विवक्षित कर लिया था जिसका मुद्रा में छन्दन दिया। कई हजार वर्ष उत्तरात् पुनः जब महात् के ब्राह्मणों ने यह कहने का दुस्साहस किया कि स्वामी विवेकानन्द की अशास्त्र्य होने के कारण ए वर्गों का धर्म धारण करने का अधिकार नहीं है तो स्वामीजी ने उन्हें 'परिमज्जा का परिणाम' कहा।

समाज सुधारक के रूप में स्वामीजी में दो प्रवृत्तियाँ देखने की मिलती हैं। जिस समय वे बहुत ही प्रबुद्ध और अनुप्रेरित होते उस समय वे जाति-व्यवस्था के उन्मूलन की बात करते थे। किन्तु अन्य अवसरों पर विरोधकर जबकि वे परम्परावादी श्रोत्रियों के समझ बोलते ही समाज के अव्यवस्थी विकास के विद्रोह का प्रतिपादन करते थे। बालुड ने दोनों प्रवृत्तियाँ परस्पर विरोधी नहीं हैं। वे केवल इस बात की साक्षक हैं कि जबकि विवेकानन्द जाति व्यवस्था के उत्पीड़नकारी रूप तथा उसके नाम पर किये गये कुटिल कृत्यों के खोर धनु थे, फिर भी सामाजिक सामाजिक कामचम के ठोस कदम के रूप में वे पूज्यता की ओर जान के लिए विवशतात्मक शक्ति का उपदेश देकर ही संतुष्ट थे।

ऐतिहासिक परम्पराओं को नष्ट करना बर्जित होता है, और जब तक वैदिक समाजशास्त्र के चार घट्टे रहने तक वह सामाजिक शोषण और उत्पीड़न की दुःखद ऐतिहासिक स्वस्थिती की कल्पना रहनी। मेरा विश्वास है कि भारत के लिए सम्पूर्ण सामाजिक शांति की आवश्यकता है। मेरा यह विश्वास अब और हृद ही जाता है जब मैं देखता हूँ कि राष्ट्रीय जनता जिन व्यक्तियों की जन्म की जाति का आधार मानते थे। इसलिए स्वामीजी ने गये सामाजिक शांतिवादी थे, क्योंकि उनका विचार था कि गुल तथा प्रकृति क्या का निर्धारण करते हैं। मैं मानता हूँ कि आदर्श रूप में भारत का इस भवोपनिषद कायदा पर आधारित थे कि मनुष्य की योग्यताओं में अंतर होता है, जल्दा उद्देश्य प्रतिबोधिता का उन्मूलन करना तथा कम के विरोधी-करण के द्वारा समाज की सेवा करना था, किन्तु व्यवहार में जो परावर्ती चली आ रही है जहाँ मूल में मजबूत हो दुःखद ऐतिहासिक स्वस्थिती दिखी हुई है अतः उनको पुनः मूल दिया जाना चाहिए। जाति-व्यवस्था कुप्राचलवादी चिन्तन का समझ भला बुरा सिद्ध हुई है। "जब तक अद्वैत वादिका न थी, जिन्होंने परमाद्वैतवादी के समुप ब्रह्म का भी भाषा नहीं दिया था, जाति-व्यवस्था का समर्थन किया। विवेकानन्द शहर से नहीं अग्रिम उग्र थे। फिर भी स्पष्ट है कि विवेकानन्द सामाजिक सङ्घर्ष तथा पादसमर्थिता में समर्थन के", क्योंकि समाज में सामाजिक "पुनः, ज्ञान,

8 यही।

9 विवेकानन्द ने "सुश्रुतानुसंग अग्रविचारों पर आवश्यक करने की ता अनुमान की किन्तु 'वर्तमान में हिंस्रक सुधारों का उन्मूलन देने के पक्ष में नहीं थे। उन्होंने लिखा था, "की सामाजिक गुति तथा समाजता के उग्र पुनर्जन आधारों पर पुनर्जीवन करने का

2 विवेकानन्द समाजसेवकों के रूप में

[illegible]

करी जिनका प्रतिपादन कनकाशाम, रामानुज, वेङ्कय साहिब पुराने जापाणी ने किया था।'
The Complete Works of Swami Vivekananda, जिल्द 4, पृ. 314।
 10 *Complete Works*, जिल्द 5, पृ. 45।

राजनीतिक तथा आर्थिक व्यवस्था की नींव मजबूत करने लगे, क्योंकि वह व्यवस्था उन्हें अपने कम मायावादी वाधुभा का उत्पीड़न करने की छूट देती थी। विवेकानन्द ने उन तथाकथित उच्च वर्गों, उन आधुनिक भारतीय नवजातियों के विरुद्ध, जो अपने स्वार्थियों की जीवन प्रणाली का अनुकरण करत तथा देश की गरिष्ठ तथा अवस्थागत अवस्था पर सब प्रकार के अत्याचार करत, अपनी दली हुई पूर्वा, बहुता और नीच की निम्नलिखित छटा में व्यक्त किया

‘भारत के उच्च वर्गों, क्या तुम अपने की नीमित समझते हो? तुम तो केवल इस हजार वर्ष पुरानी ममिता हो। भारत में यदि किसी न ठीक की प्रायश्चित्त होय रह गयी है या वह उन जाति में है जिन्हें तुम्हारे पुत्र पतली फिरती लाश समझकर पूजा करते थे। पतली फिरती लाश को मास्त्रन में तुम हो, भारत के उच्च वर्गों! माया के इस जगत में असली माया तुम हो, तुम्हीं पूरा बहुते और मरिक्का की मरमरीयिका हो। तुम स्वर्णाल के प्रतिनिधि हो, तुम मरीत के विभिन्न स्था के अन्वयनिकत जगद हो, मोक्ष की तुम बरमान न भी हन्दिमोकर प्रतीत होते हो, यह तो मन्त्रानि न जगद दुम्भ्य है। तुम भूच हो तुम भविष्य भी साधहीन नगण बस्तु हो। स्वप्न-लोक के निवासियों, तुम अब भी क्या लक्ष्यजाले हुए पृथ रहते हो? तुम पुरातन भारत के शत्रु के मास्त्र-हीन और रत्नहीन अधिपतिज हो, तुम भीषण हो राधा बनकर हवा में विलीन क्या नहीं हो जात? तुम अपने की धुप में विलीन कर दो और तिरोहित हो जाओ और अपने स्थान पर नई भारत का उदय होने दो। उठे (नम भारत को, अनु) उठने दो, हम की बुद्ध पकड़े हुए, किसान की कुटिया में से, मछुओं, मोक्षिया और मरिया की भवविद्या में से। उठने दो उस परपुत्री वाले की कुतान से और बर्गीही देने वाले की मरही से। उठने दो उठे कारलापी से, हाहा से और मायाप से। उठे कुली, बना, वहाद्वी और वयो से उठने दो। इन साधारण वर्गों ने हमारे वर्गों तक उत्पीड़न बहुत किया है और बिना विचारित किये और दहमकाये रहन किया है, जिसने परिणामस्वरूप हमने आधुनिकजनक सहनशक्ति उत्पन्न हो गयी है। वे अनन्त दुःखों को सहते आये हैं जिसने उन्हें अविचल शक्ति प्रदान कर दी है। मुरही नर शाना पर जीवित रहकर वे सशर की भक्तभोर सकते हैं। उन्हें रोटी का आधा टुकड़ा ही दे दीजिए, और फिर तुम देखोग कि सारा विश्व जो उनकी शक्ति की सम्मानने के लिए पमान्त नहीं होगा। उन्हें रक्तहीन की अलाय शक्ति विद्यमान है। इसके अतिरिक्त उनमें आधुनिकजनक शक्ति है जो कुछ तथा नैतिक जीवन में उपलब्ध होती है, और जो ससार में आचर कही देखने की नहीं मिलती। ऐसी आधिपुत्रता, ऐसा शरीर, ऐसा श्रेय, शक्ति-पुत्र तथा निरन्तर नाम करते रहने की ऐसी शक्ति औरकष के समय ऐसे सिंहपुत्र शीघ्र का प्रदान—यह सब तुम्हें कहा मिलेगा? अन्त में अन्तिमजरी! यहा तुम्हारे समक्ष तुम्हारे उत्तराधिकारी लगे हैं जो भविष्य का भारत है। अपनी जिजोरिया की और अपनी उन रत्नजित्त पुत्र-रिमा की उनके बीच, जितनी घोष हो सके, फेंक दो, और तुम हवा में विलीन हो जाओ जिससे तुम्हें भविष्य में कोई देख न सके—तुम केवल अपने पान खुले रहो। जिस सब तुम तिरोहित हो जाओगे उसी क्षण तुम नवजात भारत का उदघाटन-घोष सुनोगे।’¹¹

इस प्रकरण के अन्त है कि विवेकानन्द निम्न और उत्साह के साथ विवर्णन करते थे कि पुनर्जात भारत ने भविष्य का निम्न “सामान्य जनता” की छोड़ नीच पर ही होया और पुनः अन्तिमजर्गीय तथा सामाजी अन्तिमजर्गीय की कक्षा पर बोरवपुष ऐतिहासिक पिछासत का उदय और विवर्णन होया।

विवेकानन्द भारत के बहुते विचारक के जिह्म भारतीय इतिहास की समाजवादीम हन्दि के वधापवादी आन्ध्र की। उन्होंने राजनीतिक उपाय पुत्र के प्रत्यक्षकारी विचारों के वृत्त में सामाजिक सभ्यता का निरन्तर पुत्र दृष्ट निम्नता।¹² उन्होंने भारतीय की या धारणा की यह

11 वही, निम्न 7, पृ 326-28।

12 अवकाश-द ने अपने लेख ‘Modern India’ (Complete Works, खण्ड 4, पृ 39) में साधक यह तथा सामान्य जनता के बीच सभ्यता का उत्प्रेषण किया है। ‘इतिहास करता है कि प्रत्येक समाज किसी समय परिपक्व अवस्था की प्राप्ति करता है।’

रचनाओं में सामाजिक समानता या जो समर्थन देने की भित्ति है वह प्रबल पुरातनवाद तथा ब्राह्मणों की स्मृतिओं में स्थान सामाजिक ऊँच-नीच के सिद्धांत का सबसे प्रतिपाद है, उनका सामाजिक समानता का सिद्धांत जलत सम्राज्यवादी है।

दूसरे, विवेकानन्द सम्राज्यवादी इसलिए थे कि उन्होंने देश के सब निवासियों के लिए 'ममान अवतार' के सिद्धांत का समर्थन किया। उन्होंने लिखा, "यदि प्रकृति में असमानता है, तो भी हमने लिए समान अवतार होना चाहिए—जबकि यदि कुछ को अधिक और कुछ को कम अवतार दिया जाय तो दुखों को समाप्त से अधिक अवतार दिया जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में, ब्राह्मण को शिक्षा भी उतनी आवश्यकता नहीं है जिसकी विचारणा को। यदि ब्राह्मण को एक अवतार की आवश्यकता है तो पाण्डवों की भी है, क्योंकि जिसने प्रकृति ने जन्म में मूल्य प्रदान नहीं की है उसे अधिक सहृदयता दी जानी चाहिए। यह मनुष्य वाक्य है जो शरीर बर्तनी की है जाता है। परन्तु, अरि और अज्ञानी इहो की अपना देवता समझो।" ¹⁵ समान अवतार का सिद्धांत निश्चय ही समाजवादी विचार का बीजक है। विवेकानन्द इस सिद्धांत का समर्थन करते समाज के निम्न वर्गों का उत्थान करना चाहते हैं। यह हमें लोकतांत्रिक समाजवाद के विभिन्न सम्प्रदायों में प्रतिपादित अन्तर की समानता की धारणा का समर्थन करता है।

जिन्हु स्वामी विवेकानन्द पश्चिम के समाजवाद तथा अराजकवाद के आदर्शों की दुमलता को समझते थे। वे समाजवाद के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए हिंस्रतापूर्ण सामाजिक क्रान्ति का समर्थन करने के लिए तैयार नहीं थे। उन्हें अवश्यी विकास में विवशता था। जिन्हु यह निश्चित है कि वे महान् सामाजिक समाजवादी थे, वे भारतीय समाज में प्रचलित जातिगत उत्पीड़न से बली शक्ति परिचित थे, और वे जीवन तथा मृत्यु की समस्या का समाधान करने की तात्कालिक आवश्यकता को समझते थे। इसलिए वे चाहते थे कि समाजवाद को भी एक बार परख लिया जाय, "यदि और किसी लिए नहीं तो उसकी नवीयता के लिए ही नहीं," और इसलिए भी कि मुक्त और दुःख का पुनर्वितरण इसके सदैव अधिक अच्छा है कि मुक्त पर ममान के कुछ वर्गों का अनधिकार हो।

मानव की व्यवस्था में औद्योगिकी तथा अन्तर्गत की जि सामाजिक व्यवस्था का निष्कर्ष दीना है, राजनीति के उत्तरी इति की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण है। एक क्षण में वह राजनीतिक परिस्थितियों का विचारक माना जाता है। ¹⁶ वाक्य पूर्वोक्त महत्व की बली मानि समझता था। जिन्हु विवेकानन्द का मान्यता थी और उनका लक्ष्य प्राप्त और कथन पर विचार प्राप्त करना था इसलिए वहान पत्र के सामाजिक तथा आर्थिक मूल्यों को तथा ऐतिहासिक निष्कर्षों के आर्थिक कारणों की उतनी महत्व नहीं दिया जिसमें वि आर्थिक निश्चिन्ताओं तथा ऐतिहासिक भौतिकवादी होते हैं। जिन्हु पश्चिम के भौतव के बाद में सामाजिक संकट के महत्व को समर्थन लग और कहा करते थे कि यदि मैं लोग बराबर कथा एकत्र कर सब तो भारतीय जनता का उद्धार किया जा सकता है। भौतिकवादी पश्चिम के अनुभवों ने इस निश्चितता समाधि के साथ-के समर्थन में मुख मरी तथा दृष्टिकोण को जोड़ने की मान में महत्व को स्पष्ट कर दिया। एक बार उन्होंने लिखा था, "परिद के लिए राज उत्पन्न करने हेतु भौतिक सम्पत्ति अधिक विनाशिता भी आवश्यक है। रोटी! रोटी! मुझे उस ईश्वर के विश्वास नहीं है जो मुझे महा राखी नहीं दे सकता और स्वयं में धारण आनंद बता है। बंदू! बारा का उठाना है, मुझे मरीचों की मान्य देना है, शिक्षा का प्रसार करना है और पोषणीयता का उत्पन्न करना है। पोषणीयता का उत्पन्न ही सामाजिक अन्धकार का नाश हो। अधिक रोटी, अल्पे के लिए अधिक अवतार।" ¹⁷ वाक्य के जाने वाली सामाजिक शक्ति की सकलता के लिए सबलता के समर्थन वन की आवश्यकता पर मत दिया।

15 वही, पृ 321।

16 बी पी वर्मा, *Critique of Marxian Sociology*, *The Calcutta Review*, मार्च जून 1955।

17 *Complete Works*, खंड 4, पृ 313।

उपने विपरीत विवेकानन्द भारत के सामाजिक उद्धार के लिए व्यक्तिगत कार्यप्रदर्शना को प्रोत्साहित करता पावृत थे । उसी प्रकारवादी आचारनीति तथा वर्गों के हित की व्यावहारिक अनिर्णय इस बात में प्रबल होती है कि उन्होंने सामाजिक आन्दोलन के प्रकारान्वित, आत्मरहित, आत्मतृप्त, व्यक्तिवादी तथा ध्यानाभ्यासी सदस्या की एक परीक्षणार्थी तथ्या के रूप में स्मरित करके विमोक्षार्थ बना दिया । विवेकानन्द के केन्द्रीय समाजवाद तथा साम्यवाद में आधारभूत अंतर यह है कि यद्यपि विवेकानन्द ने समाज के गुप्तार पर बल दिया, किन्तु उनका इस बात पर और भी अधिक बल था कि मनुष्य की आत्मा उठ कर देश के उद्धार के उद्देश्य के लिए जागृत हो । समाज एक महान् मन्त्रालयानी तथा द्वाइत्यक्ष भौतिकवादी था, इसलिए उसी द्विआत्मक सामाजिक वास्तविकता का सम्मेलन किया । किन्तु समाज के सिद्धांतों के सम्बन्ध में एक बात अनिवार्य है । उनका स्वल्प एक ठोके दण्ड का है शिवाय पुनः, विस्मय और ईर्ष्या का प्रभाव दर्शन का निराला है । समाजवाद एक अर्थ में सम्मोह तथा साक्षिक दर्शन नहीं है जिसमें प्लेटोवाद, वेदांत, बौद्ध दर्शन मन्त्रवादी हेमेलवाद है । उसका काम औद्योगिक वास्तविकता में उत्पन्न विपरीत तथा अज्ञानमय के समुक्त परि-स्थितिका में दृष्टा का । वह पूँजीवाद के अन्तर्विरोधी की द्विआत्मक कामप्रणाली के द्वारा मन्द कर देना चाहता है, किन्तु यह मनुष्य की सम्पूर्ण समाजवादी का समाधान करने का प्रयत्न नहीं करता । इससे विपरीत विवेकानन्द ने सामाजिकवाद का जूल आध्यात्मिकता है । उसमें चरित्र की सुद्धता तथा भावार्थ पर अधिक बल दिया गया है । इस प्रकार वह 'पश्य, धैर्य तथा सामाजिक कल्याण के प्राप्तता सन्देश का ही पुनः प्रतिपादन है ।

निम्नलिखित बिन्दुओं के सम्बन्ध में मनुष्य की समझ में यह अज्ञातता का रहस्य है कि नीतिगत कड़ी समाजवादी, प्राकृतिक आचारनीति तथा साम्यवादी तत्त्वज्ञान निरन्तर हैं । विवेकानन्द के सामाजिक निष्पक्ष अग्रिमता का और कविता के सामाजिक आध्यात्मिक अनुभवों पर आधारित है । उन्होंने मन्त्रवादी विचार, राष्ट्रीय उत्पत्ति तथा सामाजिक और आध्यात्मिक स्वतन्त्रता पर बल दिया । ऐसा विश्वास है कि इस समय समाज के अधिक व्यापक सामाजिक और राजनीति दर्शन की आवश्यकता है ।¹⁸ नीतिगत कर्म की उद्देश्य नहीं की जा सकती । पूँजीवादी साम्य का अर्थ हुआ आर्थिक और आर्थिक समानता का समाज का अर्थ बनाया जाना चाहिए । किन्तु आर्थिक सुखा की प्राप्ति के उपरांत विपरीत की सम्पत्ति और उसकी अर्थता के अधिक बल विकास के लिए तथा सामाजिक-सम्बन्धों की अधिक समुचित रूप में नीतिक क्षेत्र पर स्थापित करने के लिए हम वेदांत की एक शिक्षा में प्रेरणा लेनी चाहेंगी जिसने आधुनिक प्रतिपादक स्वामी विवेकानन्द के ।

18. विवेकानन्दवाद तथा 'Gandhi and Marx' *The Indian Journal of Political Science*, जून 1954 *Marxism and Vedant*, *The Purnokhar Quarterly*, दस, 1954 :

परिशिष्ट २

महात्मा गान्धी का समाज-दर्शन

महात्मा गान्धी के समाज-दर्शन पर सामोपार्थक्य विवेचना करने का अभी अवसर नहीं है। इस विषय पर विस्तार से मिले अपनी पुस्तक 'द पोलिटिकल थिंकिंग्स ऑफ महात्मा गान्धी एण्ड सर्वोदय' में विवेचना की है। अभी सिर्फ समाज-व्यवस्था पर उनके विचार का दिग्दर्शन करना चाहिये।

महात्मा गान्धी अपने जीवन के प्रारम्भ से ही परम्परावादी थे और वर्णाश्रम में विश्वास करते थे। वर्णाश्रम का तात्पर्य उस वैदिक व्यवस्था से है जिसमें मनुष्य के गुण, कम और स्वभाव के अनुसार उसके धर्म का नियम दिया जाता है। किंतु परम्परावादी होने के कारण गान्धीजी धर्म से बच मानते थे। इस दृष्टि से अवलम्बन करने के कारण या धीमी का कम व्यवस्थावाद स्वामी समाज के विचार की अपेक्षा अधिक सीमित है। स्वामी समाज का निर्धारण धर्म से विशुद्ध नहीं मानते थे। गुण, कम और स्वभाव की ही वे मूल्य मानते थे। आवश्यक है कि विलास में शिक्षा प्राप्त करने के अवसर और उदारप्रेता हिन्दू होने पर भी महात्माजी धर्म से बच विचार स्विकार करते थे। ऐसा मानना पड़ता है कि उनकी दृष्टि में विदुर आदि सत्ता का उदाहरण रहा होगा और समझते होंगे कि वहाँ नहीं भी मनुष्य रहे अपने विगत धर्म के द्वारा वह मोक्ष प्राप्त कर सकता है। अनासक्तियों नामक बीज पर अपने पाप्य व भी गान्धीजी ने जन्ममूलक वर्णाश्रम धर्म का ही समर्थन किया है। यह किशुल श्रेक है कि महात्मा का भी के वर्णाश्रम में नहीं भी जैव-जीव के पाप की वष नहीं पायी जाती है, तथापि वा मोक्ष धर्म से समाप्तमित छोटे वर्णों में पैदा होते हैं उनकी दृष्टि में धर्म के आधार पर वल व्यवस्था की मानने का तात्पर्य यह होगा कि समाजगत व्यवस्था वर्णों में उन्नति प्राप्त करने के लिए उनके पास कोई अवसर नहीं रहेगा। यदि गान्धीजी की विचारधारा लागू की जाती तब तो अव्यवहार की चाल का विधि नहीं नहीं बनना चाहिए या और न समाज की कावेक का व्यवस्था।

वैदिक वर्णाश्रम के समर्थक होने के कारण समाज चरम में भी जातिगत लोचनता है उसका गान्धीजी ने बल औरकार व्यवस्था किया है, और जाति प्रथा की कुरीतियों और दुस्वहारी के प्रति बल ही प्रबल आलोचना किया है। उस क्षेत्र में अपने आलोचना मानन, कथीर, राधा और राममोहन राय के आलोचनों के भी जाने बल मय। केव भी बात है कि महात्माजी के परम्परागत करने चलाये हुए आलोचना व भी जातिवाद का मित बल रहा है। जिस तरह गुण नावि-दमित न मितनी व है जातिवाद सार्व किया, उसी तरह व्यापक आलोचना द्वारा महात्माजी ने व्यवस्थित मान केने वाले कावेकी और सर्वोदयी की चाल से जातिवाद मिटाना चाहिए। जीवन के अन्तिम दिना में महात्माजी के सामाजिक विचार अवधि-व उप ही मय। यद्यपि सैद्धांतिक दृष्टि से सहान वर्णाश्रम का विरोध नहीं किया और न इसके समर्थन में किते कते अपन केने का समापन ही किन्तु तथापि वे वर्णहीन, जातिविहीन समाज के समर्थक ही मय। पीछे उनकी उपमतिता महा उन बल यकी कि वे हरिजन और लक्ष्यों के विवाह का समर्थन करने लगे और ऐश विवाहों के विचार

पर ही वे अपना आशीर्वाद देते थे। गांधीजी की यह उपवासिता उनकी आध्यात्मिक परम्परावादिता के बहुत माने हैं।

महात्माजी के समाज-संसार का अंतिम प्रतिपाद यही माना जायगा कि भारत में कहीं रहित हिन्दू समाज नये। साम्प्रदायिक भगवा की भी गांधीजी सैद्धांतिक, नैतिक, आर्थिक और राजनीतिक आकाश पर दूर बरफा चाहते थे। किसी भी सम्प्रदाय के लिए उनमें द्वेष नहीं था। वैविध आन्तरिकसाम्प्रदायिक विवादों की अन्तर्गामी नीति का कहीं समर्थन चाहते नहीं किया।

विश्वसम्मान के गांधीजी समस्त दुष्टिग्न संशय की दूर कर अधिसाधन कोषन रचित नीतिमूलक समाज की स्थापना करना चाहते थे। इस समाज के नित्य आधारा पर आधुनिक जल चाहते प्रदान किया है। उनका हृदय विश्वास था कि जल और अधिसा की नीर साधन बनने से जो आर्थिक और राजनीतिक विषयमात्र हैं वे स्वतः दूर होने लगेंगे। जब मनुष्य की ईश्वरीय पक्ष का अधिक बनने का रस मिलने लगेगा तो सामाजिक दुःख, समय और मुद्र दूर होत आनेगे। यह कृतक पक्ष का अधिक बनेगा और दुष्टों के अधिकारों की रक्षा के लिए अपने अधिकारों का त्याग करेगा। इस प्रकार विश्व-भार पर महात्माजी आदेश समाज की स्थापना करना चाहते थे।

हिन्दू समाज, भारतीय समाज और विश्व समाज के उद्देश्य की पूर्ति के लिए गांधीजी सदा सत्य और सत्य का ही आदर करना चाहते थे। सामाजिक गैरसत्य के प्रति हिंसात्मक सत्य उद्देश्य अनेकाल नहीं था। सामाजिक सत्ताधारिता और दुष्टिग्न के पक्ष का प्रेम, दया, करुणा और नील के द्वारा परिवर्तन करने के उद्देश्य बहुत विश्वास था। इस प्रकार मनवान बुद्ध ने जो बरफा का सदैव सत्ता की विषय उद्देश्य के लिए वे गांधीजी स्थापक बनाने पर उपोपस्थित कर रहे थे। गांधीजी का सामाजिक सत्य स्वतन्त्रता, समानता, अधिकार और निर्विकल्पा का दर्शन है। समाज के यदि आचार्य और अध्यापक हैं तो एक व्यक्ति भी सत्य का आक्षेप करने पर इसका विरोध कर सकता है, ऐसा गांधीजी मानते थे। सत्य पर उनका उत्तम बल नहीं था जितना आध्यात्मिक और नैतिक बलपूर्ण कर। आज समस्त जल में हिंसा सत्य, द्वेष, निष्ठा, दम्भ, राजनीतिक अधि-कारवाद और सत्तावाद की सत्ति जल रही है। जब से एक राजनीतिक और आर्थिक सत्ताधारी सामाजिक दुष्टमा की विस्तृतता कर रहे हैं। गांधीजी यह चाहते थे कि व्यक्ति अपनी मातृसं-ज्ञा की क्षम में कम कर निर्विकल्पा अन्तर्गत अधिसाधन पद्धति के सामाजिक आचार्य का विरोध कर। गांधीजी की यह पद्धति नहीं ही नैतिकारी सिद्ध हुई है। आचार्य की अपरता का उद्देश्य सदैव सत्य हुआ है।

राजाओं का विचार था कि सामाजिक सुधारों के बिना राजनीतिक स्वतन्त्रता की प्राप्ति असम्भव है। दुष्टों और लोकमान्य तिलक ऐसे मानते थे कि राजनीतिक स्वतन्त्रता के बाद ही उपयुक्त परिस्थिति में सामाजिक सुधार हो लेंगे। गांधीजी राजनीतिक स्वतन्त्रता और स्वसाधन तथा सामाजिक आधुनिक इन दोनों की साथ साथ लेकर चलते थे। स्वराज्य की प्राप्ति उनके जीवन का उद्देश्य था। किन्तु मनुष्य के बीच व्याप्त जो अन्तर और विषमताएँ हैं, उन्हें दूर करने का यत्न जोरदार सदैव उन्होंने किया है। उनकी ऐसी धारणा थी कि भय, अन्तर और नील की गन्तव्य केवल जितना चाहिए। ऐसा मानक पकड़ा है कि इस प्रकार की धारणा के उद्देश्यसमर्थन बल अवस्था है और सत्ताधारी कम कमजोर है। किन्तु इस धारणा के पीछे भी गांधीजी का सत्यार्थ बाद प्रकट हो रहा है। यह स्पष्ट है कि जब तक आर्थिक विषमताओं को दूर नहीं किया जायगा तब तक समाज में समानता नहीं स्थापित हो सकती है। जब राजनीतिक स्वराज्य की प्राप्ति के बाद गांधीवादी समाज-संसार का यह आदेश बल उद्देश्य है कि सामाजिक समानता के साथ न जो आर्थिक सत्ताएँ हैं, उनका गैर दूर किया जाय। मजदूर राज्य काल में जो बाद सामाजिक सत्य है वे गांधीजी की दृष्टि में पौष थे। वे सामाजिक आचार्य के और इस दृष्टि में सामाजिक कोषन उनकी दृष्टि में ईश्वरीय सत्ता का विस्तार करने के समर्थन था।

पूछते बहाने यह बुझा है कि गांधीजी एक परम्परावादी हिन्दू थे। उनके विचार पर सामर्थ्यमानक, परम्परावादी और पक्षक कवि बरहिदु मेहता का उद्देश्य प्रमाण था। यद्यपि

गांधीजी विज्ञात म रहे थे और मुद्रास्वभा के प्रारम्भिक दिना म विज्ञातही समाज म रह थे, तथापि परिचयी समाज की सामाजिक स्वभावता उन्हें विस्तृत अज्ञि थी । वे सरलता के पक्षपाती थे और बहुमत म उनका विश्वास था कि परिचयी सामाजिक दार्शनिक, चाहे वे पूँजीवाद के समर्थन ह। या समाजवाद के, दोनों ही अवसरजन्यताओं को अवधिष्य करता और फिर एक पेशीदोषपूर्ण आविष्य नाम के द्वारा उनकी पुनि अपना समीष्ट मानत है । जीवन-स्तर को जँबा फल के लिए कृत्रिम गतिविधि निरूप ही वे हीन मानत है । महत्समाजी की दृष्टि म मनुष्य का परम धर्म ह कि वह आवश्यकताओं की सीमित करे, अपनी दृष्टिमा पर स्वच्छापूर्वक नियंत्रण करे और बहुमत के द्वारा गतिविधि निरूप करे । उपवासम स्थितियों के लिए यह साधन हीन है । किन्तु मांस और पीन इन की विज्ञान देना की बड़ोई हर्द जनसामान्यता का यानी ज्ञान हमला की कोई आवश्यकता नपाय गोजना हाम ।

साधनेता की दृष्टि म गांधीजी राज्य की अनेक समाज की अधिक महत्वपूर्ण मानत थे । राज्य उनका अनुसार एक कृत्रिम धर्म है या हिंस और गतिविधि के अपने समय की प्रति करता है । राज्य की मुद्रास्वभा व विश्वास म गांधीजी व सामाजिक या महान् आत्म प्रदान किया । राज्य उनके अनुसार एक जमी मता के केन्द्रित रूप म प्रतीत हुआ जिसका विश्वास करता जम्बरी है, मते ही यह प्रतीय अहिंसकत्व इस म ह । किन्तु समाज का यह व उहान महान् माना और सामाजिक समीष्ट और उपवास पर उनका महान् भार रहा । किन्तु राज्य की अवस्था समाज की महत्वपूर्ण मानत हुए भी समाज का एक स्वतन्त्र इकाई मानना गांधीजी का समीष्ट नहीं था । उनकी दृष्टि म स्थितियों के समूह का ही नाम समाज है । अतः स्थितियों के समीष्टन पर ही उनका मुख्य आधार है । वे ऐसा नहीं मानत थे कि सामाजिक गतिविधि द्वारा सुधार हो सकता है । नवी उनकी ऐसी समझ थी कि स्थितियों के सुधार का द्वारा ही समाज का सुधार हो सकता है । इस अर्थ म यह मानत है कि गांधीजी स्थितियों के और मानव दुरवस्थापन आदि समूह के महत्समाभिन्नता का उनकी अपना स्थितिवाद का आधार गांधीजी का परम समीष्ट है ।

गांधीजी के स्थितिवाद म भी कुछ दूर तक हिन्दू धर्म का प्रभाव दीक्ष पड़ता है । गांधी ऐसा कदापि नहीं मान सकते कि विभिन्न सामाजिक तत्त्व और चरित्र की प्रतिस्पर्धि ही स्थिति है । हिन्दू धर्म और बौद्ध धर्म के पुनर्नववाद और सत्सारावाद म विश्वास रखने के कारण गांधीजी यह मानत थे कि अनेक जन्म के अन्धे और गुरे सत्सारा स्थिति के जीवन में रहत है और स्थिति का हम सब चाहें बौद्ध बौद्ध नहीं सकते । प्रत्येक स्थिति का अपना एक आंतरिक सत्साराधारित धर्म होता है और उसी के अनुसार यह आगे बढ़ सकता है ।

महत्समा गांधी के सामाजिक दर्शन पर एक आर यदि परम्परागत हिन्दू धर्म और बौद्ध का महत्समा प्रभाव है तो दूसरी ओर आधुनिक विचार म जो समाजवाद और स्वतन्त्रतावाद की गहरा प्रभाव हो रही है उसका भी काफी प्रभाव है ।

प्रत्यक्ष के द्वारा समाज में परिवर्तन किया जा सकता है, यह विश्वास आधुनिक प्रमाण का सूचक है । स्मृति-समी के जो व्यवस्था के ही गयी है उसका जो व्यवस्था कर्मगत है, उनको अर्थ दिया जा सम्भन करता महत्समाजी का उद्देश्य था । यदि समीष्टवस्थापन और पुनर्नववाद गांधीजी का परम्परागत विरासत के सूचक हैं तो समाजवाद और सामाजिक परिचयीवाद उनकी आधुनिकता का सूचक है ।

आज परिचय के समय ही सामाजिक परिवर्तन और सामाजिक समाजता की पुनर्नववाद है । स्थिति के भी आज सब सामाजिक विच्छेद हो रहा है । बौद्ध समाज के लिए समाजता समाज बनकर अविच्छेद नहीं रह सकते हैं । जब 1914 में गांधीजी आया तो वे कहा था कि यह समाजता का ईश्वरीय दण्ड है । उस समय कुछ लोग भी थे, जिन्होंने गांधीजी को समझाया कि यह समाजता का ईश्वरीय दण्ड है कि प्रत्यक्ष प्रमाणों का सामाजिक समीष्टन का नहीं होता । किन्तु महत्समा गांधी के चरित्र का प्रभाव उन्हें नहीं माना था ।

उनके हृदय की जो पीड़ा थी, उसका निवेदन होता है। जो अन्य सामाजिक सुराइया हमारे समान न रही हैं उनसे प्रति भी महान्ता गांधी अधिक जागरूक थे। गांधीजी के प्रति हमारे मन की प्रतिक्रिया यही होती कि अपना देश में स्थापित सामाजिक असमानताओं और कुपरीतियों का एक निराकरण कर दें। उससे भी किसी भी देश में स्थापित दूसरी सामाजिक असमानता नहीं है जिसकी भारत में। यह भी स्मरण रखने की बात है कि राजनीति इन्डि से जितने बदलित हिंदू किये गये हैं, स्थापित उसकी अपेक्षा कोई जाति नहीं की गयी। अतः इतिहास से हम शिक्षा ग्रहण करें और गांधीजी के संतानों हुए मात्र पर चलकर लोकसहित, जातिरहित, सुखी समाज का निर्माण करें।

परिशिष्ट 10 राजेन्द्रप्रसाद

सबसे पहले सन् 1930 के सर्वप्रथम आदर्शपूर्ण राजेन्द्र बाबू का नाम सुनाई पड़ा जब मैं छात्रा सौम्य स्कूल का छात्र था। सम्भवतः 1934 के भूकम्प के बाद आयोजित सेवा-भाषी के मिलनित में मधुबनी चली। सच में आयोजित समारोह में उनका प्रथम प्रदर्शन हुआ था। सन् 1938 में प्रस्ताव विद्यार्थि-संस्थान के छात्रों के संमेलन में "राष्ट्रीय का अन्वेषण" विषय पर उनका प्रतिष्ठित भाषण सुनने का अवसर मिला। ऐसा वाद आता है कि हमारे के बीच के कारण यह भाषण बोध में ही आता हो गया।

सन् 1939 में गांधी सेवा सच के सम्मेलन जिले के अन्तर्गत बुधवार स्थान पर आयोजित प्रथम राष्ट्रीय अधिवेशन के प्रथम प्राधान्य राजेन्द्र बाबू को देश के पुनः संस्थापन मिला। अपार जनसमूह उपस्थित था। साक्षर वृद्ध भी प्रत्यक्ष में भी अधिक जनता उपस्थित थी। राजेन्द्र बाबू मोहनपुरी भाषा में जनसमूह को समझा रहे थे— "साईं सोवनी, परिचय के प्रथम भाषण (समा. म., परिचय) विद्या में बड़े बुद्धि लोग सोचने पर आते हैं। अपने जीवन का रहस्य तो गांधीजी का भाषण।"

मोतीहारी शहर के बहुमानाल मुहल्ले में स्थित हरिजन होस्टल के उद्घाटन के अवसर पर, सन् 1942 के प्रतिष्ठित आदर्शपूर्ण के प्राप्त की भाषा पूरा, राजेन्द्र बाबू का प्रथम प्रदर्शन का और उनका स्वागत सुनने का सुयोग मिला। उस अवसर पर मोहन भाषण में अन्तः उनका पूरा स्वागत हम सब सुन सके।

एक बार सन् 1946 में बहुमानाल होस्टल पर राजेन्द्र बाबू को घेरे देना। के बावजूद भी घेरे हुए थे और उनके चारों तरफ एक बाली लोई (बम्बल) बनी थी। उनकी लादनी उनकी बहुता को और परिष्कृत कर रही थी।

सन् 1949 में विद्यार्थी विद्यार्थि-संस्थान के अन्तर्गत बुद्ध (इन्टरनेशनल) में भारतीय स्वातंत्र्य दिवस मनाया जा रहा था। उस अवसर पर ऐसा प्रस्ताव किया गया कि विभिन्न भारतीय भाषाओं के बोलने वाले विद्यार्थी अपनी-अपनी भाषा के बुद्ध भाषण करें जिसमें उपस्थित अन्तः समूह कम से कम भारतीय भाषाओं की ध्वनि सुन लें। उस अवसर पर स्वामी महाराज परिभाषा विरचित 'राष्ट्रीय भाषा' के राजेन्द्र बाबू के विषय में विभिन्न भाषा-भाषा बोलनी बोल पड़ी थी। उनका प्रथम भाषण सुनने नहीं थी वाद है— "हमारी राजेन्द्र को बोल रही जानता।"

जब मैं अमरीका के सीडर माउन्ट आया तो सन् 1950 का अक्टूबर मास में दिल्ली में उनसे मिलना। उनके बारी यह प्रथम प्रदर्शन थी। आय. 40-45 मिनट। उनका भाषण हुआ। जब उन्हें यह पता हुआ कि वेरा पर प्रदर्शन जिले में है। उन्हें मुझ से माझपुरी में ही प्रदर्शन आरम्भ कर दिया। उसी वर्ष उन्हें अन्तिम भारतीय इतिहास बोलने का उद्घाटन करता था। अन्तर्गत उन्हें इतिहास की सामाजिक विवेचना पर एक विचार विमर्श का प्रस्ताव मिला। दिल्ली में प्रार्थना इतिहास का सम्मेलन' विषय पर एक विचार प्रयोग कर बोल उनके विषयी अधिक प्रभाव पड़ा। जब सन् 1951 में जून माह में मैं पुनः दिल्ली में उनसे मिलना तो उन विचारों की प्रार्थना उन्होंने स्वयं की। उन्होंने यह भी कहा कि उन्हें उद्घाटन भाषण प्रस्ताव करने में मैं।

सहायता मिली थी। मैंने उनका उद्घाटन भाषण देखा था, कि तु यह उनकी पूरी स्वतन्त्र कृति थी, बेरे निबन्ध की कोई भी बात उसमें नहीं थी। किन्तु इस लोभोत्तर महात्माजी का कथित उच्चारण था कि मेरे उद्घाटन की बोलने के लिए उन्होंने कह दिया कि मेरा निबन्ध बड़ा अच्छा लगा और उन्होंने उससे मदद ली। मई 1951 में बड़ी देर तक उनके बार्तालाप का अवसर मिला था। उनसे मिलकर कुछ देखा ही अखिलीय हुआ जो बर्मा के विद्रो में कटा-कटाते से होता है। राखेन्द्र बाबू महात्मा की उस अखिलीय सीमा पर आधीन के जहाँ पर विद्रोह कुछ की विविधताओं की अविभाज्य रूप नहीं रह जाता। विभिन्न ही भारतीय राजनीति के ये भ्रष्ट थे।

विद्रोह राष्ट्रवादों के अखिलीयता पर हीन और इस महात्माजी के दायन हुए। सन् 1954 में उन्होंने गांधीजी के चित्र का अवलोकन किया। सन् 1956 में जब का सम्पूर्णान्त द्वारा विद्रोही सेवक पुरस्कार दिये और साथ पुरस्कार दूने लोगों की प्रधान निये बने थे उस नाम के अखिलीयता पर भी रामचन्द्र पर राखेन्द्र बाबू सम्पादित थे। जब सन् 1958 में राखेन्द्र बाबू की अखिलीय का बर्मापक्ष पुरस्कार दिया गया था, यह भी एक ऐतिहासिक विचाररूपीय रूप था। मैक्सिमिलियन गुल्ल की उस अवसर पर विद्रोह रूप में आत्मनिष्ठ थे।

राष्ट्रपति के योग्यपूर्ण पर भार की निरंतर बारह वर्षों तक महान् कर मई 1962 में जब राखेन्द्र बाबू बटना बधारे तक गांधीजी के दायन में उनका अखिलीय स्वतन्त्र हुआ। उस अवसर पर अपने भाषण में उन्होंने अनु-मुद्र के प्रत्येक कर की ओर उनका का ध्यान आकृष्ट किया। सीनेट हाउस के भी एक महती सभा में उन्होंने विचार से अनु-मुद्र की विविधता का विचार दिया।

गांधी-आक्रमण के समय राखेन्द्र बाबू का रीढ़ बच प्रकट हुआ। गांधी महान् में एक पात्र के अधिक प्रवृत्ति उपस्थित थी। पौराणिकता विद्रोही आत्मता का सुझावला करने के लिए उन्होंने देन की जनता का आग्रह किया। उस अवसर पर उन्होंने विद्रोह की राजनीतिक मुक्ति की ओर हीन स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए आग्रहक बलमा। इस अवसर विद्रोह की स्वतन्त्रता, भारतीयों के लिए, राखेन्द्र बाबू का बर्मापक्षीय है, ऐसा मान सकते हैं।

सन् 1962 के अक्टूबर में अखिलीय विद्रोह उनके अखिलीय निवास स्थान पर हीनरी बार उनका बार्तालाप करने का मुख्यकार मिला। अपनी कुछ वृत्तों में मैंने उन्हें अवगत की। उन्होंने बताया कि वे उस समय अखिलीय में बस से पीड़ित हैं समय मिलने पर वेरी वृत्तों की बर्मा। जब मैं उनके मिला था उस समय बार्मा मरणा ही बर्मा थी। उस बार्मापक्ष में राखेन्द्र बाबू की देन के बेरे हृदय पर कुछ बर्मा छद्म का चित्र उपस्थित हुआ जो एक विज्ञान किन्तु जीव बर्माजी की देन के होता है। एक जीव हृदय रूप का विद्रोह ऐतिहासिक स्वतन्त्र के रूप में वे प्रकट हुए।

एक रूप में अपने गुरु की अपेक्षा भी राखेन्द्र बाबू अधिक बलमा थे। गांधीजी की तुलना में आत्म प्रचार की भाषा राखेन्द्र बाबू में बहुत कम थी। यह रीढ़ है कि अखिलीय साहित्यकारों का अनुसरण कर बोना ने ही अपनी-अपनी आत्मकथाएँ लिखी हैं किन्तु गांधीजी की प्रायः समस्त रचनाएँ ही आत्मकथात्मक ही बर्मा हैं। इस प्रकार की गैरी की विविधता है कि इस बार्माजी के नाम 'आत्मकथा' आत्मकथा अखिलीय बर्मा में बलमा मिलाती है, किन्तु यह सेवक आत्मकथा का प्रवृत्ति के नाम पर बलमा बलमा की बर्मा का बलमापक्ष करता है सब आत्मकथा की जीव भाषा का देन मरती है। साहित्य में जीव के प्रयोग का बलमापक्ष अखिलीय हीन है, साहित्य जीव को आत्मकथा की बलमा नहीं है। गांधीजी की आत्मकथात्मक बर्मा बलमा-बलमा आत्मकथा आत्मकथा रूप प्रारण कर लेती है और बलमापक्ष का बलमापक्ष लेना ऐसी बात का भी उल्लेख कर मरती है जिनका कह बिना भी नाम कम मरता था। किन्तु बर्माजी की जीव में बलमा के बर्मा "पुत्र" राखेन्द्र बाबू न बर्मा की आत्म उच्चार के नाम का बलमापक्ष नहीं मिला।

राखेन्द्र बाबू अखिलीय थे, इसका कोई छद्म नहीं। यदि कुछ राजनीति में नहीं रहते तो बलमापक्ष नहूँ की प्रतिकृति और विद्रोह के बलमापक्ष पुर बारह वर्ष तक स्वतन्त्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति के अग्रत गौरवपूर्ण और सम्मान की कृति से सर्वोच्च स्थान पर नहीं आधीन होता। सन् 1920 से 1946 तक बर्माजी जब तक विचाररूप राजनीति का उनका सेवक विद्रोह में रहा, वे सर्वोच्च बलमापक्ष मरता रहे। किसी न की उनकी अखिलीय बलमापक्ष करने की विविधता नहीं की।

यह ठीक है कि उनका निरह्वार होना उनके स्वातन्त्र्य की रक्षा करता था, किन्तु एक अन्तर उसकी अवह्वलित उनकी राजनीति महत्ता का मर्मस्थल करती थी और साथ ही उनके महान बन को भी व्यक्त करती थी, जो दुसरी ओर हम इस बात का अन्तर्गोचर रहता है कि यदि राजे वास्तु अभिन राजसिन्ध प्रकृति के रहते तो साम्प्रदायिकता की राजनीति पर उनका सर्वाधिक जोर प्रम रहता । यह निर्विवाद है कि दक्षिणपंथी नेताओं में (जिनमें सरदार पटेल, कृपलानी, टण्डन, सरदार पटेलमि सीताराम्या आदि का महत्वपूर्ण स्थान है) सरदार पटेल के काद ही राजेन्द्र वास्तु का सा जाता है, किन्तु फिर भी भारतीय इतिहास और राजनीति में विदेशी भी दृष्टि से मेरे हृदय एवं प्रसन्न रह जाती है कि प्रचण्ड पारिवर्तन और निम्नकारिणी मुक्ति के वास्तव्य भी क्या न राजेन्द्र वास्तु का और अभिन प्रभावशाली राजनीति स्थान हुआ । सम्भवतः इसका कारण यह है कि राजेन्द्र वास्तु कुछ सदाय प्रति ने थे जोरदार क्रांति में अपनी नीति का प्रकाशन उद्घाटन नहीं था, वे महत्ता साधने का एवं सच्चा अनुयायी होना एवं स्वतः न राजनी राजनीति में नेता हो भी अवस्था अभिन कर्तव्य करत थे ।

बमजोर रागवन्त शरीर रखन पर भी परिश्रम करने की झूठ समझा उनमें थी । ग. वा. के, बिहार का 1934 का भूकम्प तथा रामनट कावेस के अवसर पर घोर जिवासीलता में हुए उदात्त सहाय प्रस्तुत किया । वै. टी. सरकार के साक्ष्य-मालम की सम्पन्नता, सविद्या बन्त की सम्पन्नता, अखिल भारतीय कांग्रेस का तीन बार का राष्ट्रपतित्व (उस समय कांग्रेस अध्यक्ष को राष्ट्रपति कहा जाता था), हिन्दी साहित्य सम्मेलन की सम्पन्नता आदि अलङ्कारणीय पदों में कार्यो का सम्पादन जिस अथक परिश्रमशीलता के माध्यम किया वह आपके समक्षी व्यक्तित्व में झूठतर घोषित करता है । साथ ही बमजोर और आदिशिवत शरीर की सज्जि के आपने सुन्दर सफल बन को भी घोषणा करता है ।

उत्तम ही राजेन्द्र बापू का परमात्मिकाहित श्रेष्ठ था। प्रेम और सद्गुह की भावने लिए कर्म भी सर्वोत्थित नहीं रह। विद्यार्थी अवस्था में ही गोपालकृष्ण पोखरे की सेवा में अपना वस्तुमय कर्म का उत्तम समर्पण यद्यपि धार्मिकारिक बाधना की दृष्टि के कारण साकार न हो सका तथापि उत्तम मानसिक बलि का अवशेष सूचक है। विष्णु तुना के सत्र (अर्थात् पोखरे महीष्य) के समस्त ज्ञान समर्पण में अवरोध होने पर भी, साधरमसी के सत्र के लक्ष्मी पुन आत्मसमर्पण करने में राजेन्द्र बापू सफल हुए। अपने जीवन के उत्तीर्ण्ये वय में उ होने पर प्राप्ति का मान छोड़ दिया और स्वयं में प्रेम के अधिकार था। राजेन्द्र बापू का स्वयं किसी भी प्रथम श्रेणी के भारतीय राजनीतिक नेता में स्थापित हो गया नहीं है।

भारतीय इतिहास, विधिराज्य (कानून) और राजनीति के के महान पण्डित थे । सरस्वत नाहित्य और कानून का उनका ज्ञान ज्यादातरसाल नेहरू की अपक्षा अधिका था, वर्यपि नेहरूजी विरर इतिहास और भारतवाद के अनुश्रीसुत म उनसे काफी आगे थे ।

राजेन्द्र बाबू परम 'शार्मिष्ठा' थे। इस कविग्रन्थ के लेखीपिच्छा में। सन् 1946 में उनकी सम्पादन में जयकान्त कुश का 'श्रीपिच्छा' पिच्छा मॉडर, बट्ठा में सन्ताना जाने वाला था। हम लोग समय में कुश पुन ही सम्पादन कर चले गये थे। उस समय मकवान राम की मुक्ति के सामने अज्ञातमयित मकवान राजेन्द्र बाबू का श्री २५ गीते देखा था वह आज भी दूधत गुमे स्मरण है और स्वातन्त्र्यार्थि कविग्रन्थों का जयकान्त जयकान्त के रूप में मेरे हृदय पर अंकित है।

जबनी सरल सुघीष झुंझी उनवे व्यक्तित्व का प्रतिबिम्ब है। उनके व्यक्तित्व पर विचार करने पर ऐसा वास्तव पड़ता है कि उनके जीवन में कुच्छा, कष्टमय, राग द्वेष, आदि विकार समाप्त हो गए थे। यहाँ की भूमिन्द्रा स्थित निम्न-स्थच्छा धारा ने अपना उनका जीवन बर्षित था। व्यावहारिक पथ और वैज्ञानिक राजकीयता का आचरण समाज पर प्रस्थित कर उहाँन जागर, भविक, हृषयधन और प्रियकर हो काटि स अपना व्यापक मरुस्थित कर दिया है।

परिशिष्ट 11 जवाहरलाल नेहरू

1. सम्मरनात्मक

अदम्य उत्साह और अखण्ड जीवन शक्ति के प्रतीक जवाहरलाल नेहरू के साथ "स्वर्गीय" शब्द जुलाना पड़ सकता है, इस कल्पना ने साथ सामंजस्य करने के लिए मन और हृदय बढ़ाए बिना नहीं हो सकता था। किंतु कराल बाल की पूर मति के विधान की जब राग, कृप्य और बुद्ध जैसे लोकेश्वर मानकी की भी मानना पड़ा तब अन्त जनों की क्या क्या ?

सन् 1930 के सम्मर सम्प्रदाय जैसे जवाहरलाल का नाम गुप्त। तब में छत्र में सीखर स्कूल का छात्र था। जवाहरलाल युवक हृदय-मोहक ही चुके थे। उस समय "जात का क्या आलम में बजबाबा और जवाहर ने", यह बीज गुप्त पड़ता था। गांधीलाल और जवाहरलाल, व काल का भी प्रसिद्ध हो चुके थे। उस समय हम छात्र मुख्यतः चार राजनीतिक नेताओं का नाम जानते थे—महात्मा गांधी, मोतीलाल, जवाहरलाल और राजेन्द्रप्रसाद।

सन् 1934 के प्रथम में सम्मर में जवाहरलाल और राजेन्द्रप्रसाद। सम्मर जवाहरलाल वही माने। सम्मर जवाहरलाल एक उदीय अन्विष्ट के सदस्य प्रतीत होते थे। हम छात्रवृत्ति उस समय में नसिष्ठ में जवाहरलाल एक उदीय अन्विष्ट के सदस्य प्रतीत होते थे। हम छात्रवृत्ति मानते लगे थे कि वे एक "नरम" बुद्धिमान नेता हैं।

मुझे सम्मर सम्प्रदाय का दर्शन हुआ। हम सभी की इतरकीयता की वरीला चल रही मिल सका है बाद जवाहरलाल का दर्शन हुआ। हम सभी की इतरकीयता की वरीला चल रही थी। किंतु हम सभी गांधीजी और अन्त नेताओं की देख में बड़ा प्रभावित हुआ। उसी अवसर पर अन्त में बड़े जवाहरलाल के नेतृत्व में युवक-मंडल की देख में बड़ा प्रभावित हुआ। उसी अवसर पर अन्त में हम इस्लामिया हाल में युवकी की समा में उनका भाषण मुझे की मिला। राष्ट्रीयता नामक ने उस समा की अवस्था की थी।

सन् 1942 के "जात छोड़ो" आन्दोलन ने निर्वाचित में जवाहरलाल विरमवार वर अहमदनगर जिले में बंद थे। देश की जनता बंद पुन जने वीच माने के लिए वेचन की। सन् 1945 के विम्वर में अन्त में कदमचुमा राष्ट्रीय मैदान में विचारियों की समा में भाषण करने का रहे वे सब बहू बचड़ी तरह देखने का मुख्यतर प्राप्त हुआ। उनके बने हुए बुद्धिमंडल और बड़ी-बड़ी प्रभाव छाती वाली ने युवक पर एक अक्षिप्त छात्र छोड़ी। उन दिन गांधी मैदान में एक बंद छात्र अनुष्ठा की नहरी समा में उनका भाषण हुआ। समा आरम्भ होने के प्राय 15 मिनट पूरा ही मैदान का काफी हिस्सा अन्त में जनतापुष्ट से भर चुका था।

सन् 1946 में पटना मौरीपुर लीन में (जिसका नाम अब गांधी मैदान ही गया है) हिंदू युवाधर्म बने में सम्मर एवं ही बन से राजेन्द्र बाबू और जवाहरलाल के व्याख्यान हुए। बने में बारका की बीमारी का बने हुए बहू बचड़ी मौल दी। उन्होंने कहा कि गांधीजी ने हम लोग का बड़ी बहू बचड़ी मौल दी, जो नहने और मुल में बहू बचड़ी मौल है (नेहरूजी ने अपने मौल के तिलकित में जिसका शब्द का प्रभाव दिया था) कहाँ कि "हरी मन"। दन अधिकतर और

मध्य के कारण ही होते हैं। उसी भाषा में छोटतर सीनेट हाउस में भी नेहरूजी ने विचारविमर्श की समानता साधने का यत्न किया। विचारविमर्श नेहरूजी से नारायण देव साहब पटना सिटी कलेज कलेज स्थापना से उन्होंने बहुत आशा की कि यदि बिहार में क्या बात न हुआ तो कम बिहार सरकार (तब नेहरूजी अंतरिम सरकार के उपाध्यक्ष थे) उन्हें दयागर्भी। सीनेट हाउस में क्या बात हुआ और लोक चार चार प्रत्यक्ष करने पर भी कुछ विचारविमर्श द्वारा किया गया होइलता जारी रहा और नेहरूजी ध्यातमान न थे तब।

सन् 1947 के प्रारम्भ में पटना विश्वविद्यालय में एक विशेष शिक्षात्मक समारोह का आयोजन कर साइंस के डॉक्टर की सम्मानित उपाधि उन्हें प्रदान की। राज्याधी ने दीक्षात साधन किया था। अपने साधन में नेहरूजी ने उच्च स्तर का योगदान करने वाले विद्वानों और वेदा निको का बहुत स्वीकार किया। बदलित समाज आधुनिक करने की अपनी योजना का भी उन्होंने उल्लेख किया। कृष्णकुमार ने महावैज्ञानिक धारा सम्मान का भी उन्होंने उसी अवसर पर उद्घाटन किया। पहा पर कुछ मिनटों तक मुझे बहुत नजदीक से उन्हें देखने का मौका मिला।

सन् 1949 में अवाहृतगत समारोह गये। शिक्षाधी विश्वविद्यालय के राफेनर निरन्तर पर म उनका उत्तर-नवहृत्तर मित्रता तब साधन हुआ। तब हिन्दुस्तान विद्यार्थी तब की शिक्षाधी शाखा के अध्यक्ष के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय निवासगृह में उनका स्वागत करने का अवसर मुझे मिला था। जब इतरगतगत हाउस के बड़े नेट पर मैं अपना और स्वागत-समिति के सदस्यों का परिचय कराने लगा तब सीनेट ही परिचितजी ने मुझ से कहा—“अच्छा बलिष्”। तब मैं अधिक आत्मविश्वास और शिक्षणों की सम्मान की उनकी बड़ी बिकराल थी। एक ऐसा हुआ स्वागत सामन भी मैं पटा था। नेहरूजी के सम्मान में हिन्दुस्तानी व्यवस्था का आयोजन किया गया था। हिन्दुस्तानी बनीते और मित्राभा बड़े परिचित थे नवाबी बनी थी। साधन के बाद जब नेहरूजी बसने तब तब उन्होंने मुझ से कहा “ये सबतमाके के लिए रती है, सारे बनी बनी” मैंने कहा “परिचितजी” जब आप शुरू करें”। तब उन्होंने नाममात्र की बात सा दुकान से लिया। उनके सिर्फ एक दुकान बहन करने का बहुत बेरी समझ में तब आया जब उनके “विश्व इतिहास की भत्ता” में मेमोरियल कर किया हुआ अध्याय मैंने पटा। मेमोरियल की किमार्गता मजहूर थी। निरन्तर नाम करते रहने की उनकी समझा मन-यसाधारण थी। इस प्रकार शारीरिकशक्ति का रहस्य उनके अन्तःहृदय में था। वह कहा करता था कि कोई मनुष्य कितना भी अपने घर में समझे कि वह कम था रहता है, तथापि वह अधिक ही धारा है। सम्भव है, परिचितजी ने अधिकतम वाचक रहने की शक्ति का भी रहस्य उनके अन्तः हृदय में ही हो। भारत विभाजन के दोष बाव, अन्तरीनी बनी मु, भारत विपन्न हुआ और आम मुद्रता के दोष का सम्मान कम करने वाले समारोह, बहुत अप्रति थे। इनसे पाकिस्तान का नाम धनका था। तब 1947 के आखिरी भाग में मेरे मित्र डॉ. समुदाय उपाध्यक्ष और मैंने नेहरूजी के नाम “दुपान” में एक केसुल (सामुदायिक तार) भेजा था, जिसमें दिल्ली में अन्तरीनी पत्रकार द्वारा भेजे जाने वाले इन अधिकतम समारोहों की वाद-वरण का आग्रह था। जब भी बनी के बाद नेहरूजी ने गिराया में परिचय हुआ तब जब केसुल के बारे में मैंने उनसे पूछा। उन्होंने बताया कि वह केसुल उद्घाटित था। किन्तु मेरा अपना समझ है कि परिचितजी की वाचक वह बात बिलकुल थी किन्तु मेरे सारा में लिए उन्होंने यह दिया कि वह केसुल उद्घाटित था।

भारत कोटने पर अक्टूबर 1950 में उनके जातिव में उनके मित्र का अवसर मिला। मिलते ही उन्होंने कहा “बनी साहब” मैं तो बहुत (बहुत) बिजी (busy) हूँ। फिर भी 12-15 मिनटों तक इससे आनंदित हूँ। कोटने के समय परिचितजी अपनी कुर्सी से उठकर आगे और अपने आसित के बड़े बन्दे की पार कर दरवाजे तक मुझे पहुँचा बाव। दरवाजा भी उन्होंने खुलवाया। इस महापुरुष के सौजन्य से मैं बड़ा प्रभावित हुआ।

सन् 1958 में “राजनीति और वार्ता” की एक प्रति उन्हें भिजवाने का अवसर मिला। यह भी कुछ मिनटों तक समय पर आने—“बनी नेहरू आने की है।” इस बात का सम्मान वाले वार्ता की (यह बात मैंने अपने दूरवर्ती

पिता को समर्पित किया है) प्रायः पीया मिनटा एक घड़ते रहे। मैं चुपचाप उनके कमरी मुताकटन, उनकी प्रभावशाली गलत और उनकी चिन्ता की आवाजों की ओर देव रहा था।

1949 और 1950 के वर्ष में पश्चिमाञ्चल से विजा था, उनकी तुलना में मई 1958 वाली इस मुलाकात में उनकी बातचीत में उनके अधिकांश अन्तर्निहित भावनात्मक प्रभाव था। कारण स्पष्ट है। उस समय तक उनके राजनीतिक प्रमुख या भाषाएं अधिक दृढ़ हो चुकी थी और अन्तर्निहित प्रतिभा भी उनकी सुवर्धित हो रही थी।

मई 1962 के अक्टूबर में मैं दिल्ली में भारतीय जन प्रशासन संस्थान के कार्यक्रम पर उनकी आतिथ्य दक्षण हुआ। उनके घणन में तो उनकी पुत्राजी कुवकोक्ति बरती थी किन्तु उनके भाषण में उनकी आवाज से उनकी भाषण भावना प्रकट था। स्मरण रहे कि बार-पीपी ओम्पन का यह काल था।

2 विवेकवादीत्व

इसमें कोई संदेह नहीं कि नेहरूजी एक महात्मात्मा मानव थे। उनमें अनेक गुण थे। मोक्षा की माथा में उन्हें 'विभूति' की गता दे सकते हैं। अतः हमें अनेक जीवन की बेटरी का उस विद्वत्-वंश से गहरा "चाप" कण्ठ रहेता चाहिए जिससे हमारे प्रभाव, परिणाम, महात्मन्युति आदि कम जीवित दण्ड हावी रहे। उनके अनेक महत्गुणों में उनकी निर्मलता ही मुझे सबसे अधिक प्रभावित करती है। सचता से सोचने में उन्हें सदा शोक था। देश-सत्ता के विषय में कोई भी उत्तर उनके लिए माधुरी बात थी। अन्तर्गत मोक्ष लेने से वे कतराते नहीं थे। विज्ञान सम्पत्ति वाले माथा पिता का इकलौता पुत्र मोक्षदण्डप्रसाद की ओरकर साधना कर्मोत्तर के बहिष्कार के समय माटी का मार में प्राप्त बेटों पर दिया काम और बेट की मार में प्राप्त अपनी कमर तुलना देने, इसमें बहुरा निर्मलता का क्या उत्तरात्म हो सकता है। पीपी ओम्पन के विचारों में यह भावना प्रतिस्था नहीं बनाये गये और प्रधान मंत्री से मिलन के एक अन्तर्गताल का कहा हुआ एक वाक्य मुझे सबसे प्रभावित करता है—'I easily lose my temper but not my nerves' (मुझे गुस्सा जरूरी आ जाता है किन्तु मजबूरी का वह नहीं परक सकता)। भारत के कुवकों की उनकी कलाह थी कि वे पश्चिम उत्तरा सीमे। सदियों की कुलाजी के कारण हमारे जीवन में साहसिकता का अभाव हो गया है। कुछ इन्हीं के अन्त में ही भाषुनिष कुवकोक्ति का परमोद्देश्य मान बँडता है। अन्तर्गताल गुवकों का अन्तर्गताल परमोद्देश्य के अन्तर्गताल के लिए सबसे आह्वान करते थे। अन्तर्गताल की भूत जाने कि जीवन में विविधता और सदा का अनुमोक्ष हो जाता है। अतः अन्तर्गताल अन्तर्गताल है।

नेहरूजी मोक्षाल के बड़े प्रभाव सम्पन्न थे। वैयक्तिक जीवन में स्वतन्त्रता की ओर सदा-सदा एक होते हुए भी मोक्षाल के वे प्रभाव दिखावटी थे। देश की गरीबी, अविज्ञान और सामाजिक दुःस्थिति का मोक्ष महात्मन्युति न आह्वान म में देनाते थे। पराजयप्रभाव के आह्वान में माक्ष हुए भी वे सदा मानव की एक सत्य, साधन कदापि नहीं, मानते थे। सामाजिक विविध गुवकों और गजदुर्गों की उत्पत्तियों का वे अन्तर करते थे और उनके जीवन-मार्ग को सुधार कर एक उद्-बुद्ध मुनी जीवन का मण्डल करने लिए साधारण बरता चाहते थे। समाजिक धर्म के अन्तर्गताल गुवकों से वे जनता को मान देना चाहते थे। विविध धर्मावलम्बियों में बीच किसी प्रकार का अन्तर्गताल उन्हें सदा अधिक था। अन्तर्गताल अन्तर्गताल पदल की यह उक्ति कि "भारत में एक ही राष्ट्रीय मुक्तमान है और यह है अन्तर्गताल नहुँ" अन्तर्गताल बड़ी गयी है अन्तर्गताल नेहरूजी की अन्तर्गताल और अन्तर्गताल के अन्तर्गताल विविध हमदर्दी का ही अन्तर्गताल है।

अन्तर्गताल राष्ट्रवाद में हिमावती थे। अन्तर्गताल अन्तर्गताल-मण्डल में उन्हें अन्तर्गताल हिमा दिया था। राष्ट्र के ऐतिहासिक अन्तर्गताल और अन्तर्गताल प्रभाव से उनका गहरा अन्तर्गताल प्रेम था। प्रधान मुक्त की प्रतिष्ठा करने लिए अन्तर्गताल का पात्र थी। विविध सोम में माक्षियों का अन्तर्गताल अन्तर्गताल में अन्तर्गताल अन्तर्गताल का गुवकों था। "अन्तर्गताल" की अन्तर्गताल अन्तर्गताल उन्हें माक्षिनीय बर देती थी। अन्तर्गताल राष्ट्रवाद के विविध प्रकार के अन्तर्गताल की अन्तर्गताल और अन्तर्गताल

सामयिता दूर नहीं होती, ऐसा वे मानते थे। किंतु कोई राष्ट्र शक्ति के मद में दूर हो विस्फोटकारी "गुम और तोह" की नीति या अत्यन्तव्यवहार, यह वह हमदा अनुशील था। अतः भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद विश्व के अन्य देशों से उपनिवेशवाद के अन्तिमरण के लिए उन्होंने महत्तम उत्तम किया।

नेहरूजी अपने विद्यार्थी जीवन-काल में विज्ञान के विद्यार्थी थे। रसायनशास्त्र भूगर्भशास्त्र और प्राणि विद्या का उन्होंने अध्ययन किया था। उनका रुचिकीय वैज्ञानिक था। मरुति उनका हृदय काफी असा तब बाल्ययुग का तथापि स्वातन्त्र्यसंग्राम समाप्ता का समाधान खोजने में उनका वैज्ञानिक दृष्टिकोण ही काम करता था। विज्ञान उष्मा की प्रशंसा देता है और इस प्रकार समाधानवाद का बोध करता है। भारतीय इतिहास की धारा की वादचार्य विज्ञान की मानक अन्तुद्वारा की धारा से मिलान के एक ऐक्यी अन्तिम का निर्माण करना चाहते थे।

प्राच्य और पाश्चात्य का समन्वय उपरिष्ठ वर्ण में नेहरूजी मल्लान थे। अन्तिम का विचारयोग, "वैज्ञानिक मानववाद", मार्गिक अन्तुद्वय, रसिशीलता आदि उक्त की विमयी। किंतु साथ ही पुनः के हृदय (सोपान) और स्वयं के आदर्श की वह अन्तिम रचिकर थे। और कष्ट और विपदाओं के समय व्यवस्थित चित रहने की उनकी वृत्ति, उनकी व्यवसायिकता बुद्धि सम्पत्ता की मूर्धित करती है। रवीन्द्रनाथ और महात्मा गांधी ने भी पुनः और परिचय के समन्वय का प्रयास किया। किंतु उनके अपने जीवन में उनके समन्वय पर पुनः का ही प्रभाव अधिक हो गया। देश की भी पुनः के अन्तिम की वाली में ही जगत की प्राप्ति प्रदान करने वाला मन सुनाई पड़ा। गांधीजी की गरीबी गरीबी और समन्वितमानस में ही आदर्शमय पान लगे। किंतु नेहरू जी के ऊपर अन्तिम की विज्ञान और राजनीतिक दशन का पड़ा महत्ता रस था। गीता और उपनिषद् उन्होंने पढ़ा था किंतु मार्क्स और वैनिंग उन्हें अन्तिम करते थे। "भारत की योजना" का म अन्तिम अनुच्छेद में अपने जीवन-दशन का उपन्यास स्वतः करते हुए उन्होंने किया है कि जीवन का महत्त्व नहीं समझ सकता है और जीवन रस को नहीं ग्रहण कर सकता है जो अपने आदर्शों को विचारित करने के लिए पुरुष का आतिगम कर सकता है। विज्ञानपुनः और विश्व-वाधाओं से कलकल निरन्तर वाली नीति उन्हें अन्तिम पसन्द नहीं थी। आज देश और समाज पर पाया और अन्तरे के बाधन महत्ता रहे हैं। जवाहरलाल के वीर जीवन से होने कमकीय और निर्मिता का सादेश ग्रहण करना है। उनके जीवन-काल के पत्र पत्र गुड का आह्वान करता था तब उनके तुमुन द्वारा से यह आचरित हो उठता था। आज हम महत्त्व-माहित्य का अनुशीलन करना चाहिए और उनके अन्तिमों को विचारित करने का सतत यत्न करना चाहिए।

जवाहरलाल का इतना बड़ा अन्तिम वंश बना ? सपनों की जगि में तप कर ही वे इतने विचार महत्तामय बन लगे। महात्मा गांधी की श्रेष्ठ साधन ही कोई अन्य विश्व-मेता महत्ता के समान परिश्रम करने की प्राप्ति रखता ही। वह ही महत्ता पसन्द तक काय करने पर भी अपने स्वास्थ्य की रक्षा रखना एक अनशीली बात थी। देश की अन्तिम-मय पर आने बढ़ने की जो जगता उनके हृदय में भी नहीं वह इस महत्ता पर परिश्रम के लिए उसे बना देती थी। विज्ञानी की तरह जवाहरलाल देश के एक काने के दूसरे कोने तक पक्षीय अपों से रोज रहे थे। इस अन्तिम कमकीय को अनुशीलन करने वाला उरका आदर्शवाद निरन्तर महत्ता और प्रकाश रहे होना इतनी कल्पना कर ही उनके प्रति हमारी निष्ठा दुःख हो जाती है।

भारत में लोकमत तथा नेतृत्व

आधुनिक सामाजिक विज्ञानों की प्रकृति के साथ-साथ लोकमत की धारणा की बहुत कुछ विवेचना हुई गयी है।¹ नरस तथा नाथपत के बीच सम्बंध का भी अध्ययन किया गया है, किंतु इस प्रकार का अध्ययन परिचय के महत्त्ववादी व्यक्तियों के सहाय में ही किया गया है। इस अध्ययन के ही साफल्य तथा नेतृत्व के बीच सम्बंध का अध्ययन भारत की उन चार महान विपत्तियों के सहाय में कई बार जिनका आधुनिक भारत के इतिहास में शीघ्र स्थान है—“पान-ड विवेकानन्द, सित्तवा तथा गांधी। ये लोकमत का राजनीतिक मन में अधिक व्यापक वस्तु मानता है और इसलिए लोकमत के अंतर्गत में सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक मत को सम्मिलित कर लेता है। म 'मन' शब्द का भी प्रयोग व्यापक अर्थ में कर रहा है। उसमें अतन्त्रिहित अभिव्यक्ति, ऐतिहासिक वस्तुसमर्थ विद्वां अभिव्यक्ति तथा के चिंतन तथा चिंतक के स्वीकार कर लिया जाता है और जो जनता की मानसिक रचना के अंतर्गत अब बन गयी है, और ऐसे मत भी सम्मिलित होते हैं जिन्हें स्पष्ट रूप से व्यक्त नहीं किया गया है।² अभिव्यक्ति को स्पष्ट और औपचारिक अभिव्यक्ति को मत कहते हैं। सामाजिकवाद का कहना है कि मनुष्य की मानसिक प्रक्रियाओं की कई सामान्य ऐतिहासिक वातावरण में हुआ करती है और उस वातावरण के चिंतन का इन तथा नवी निर्धारित होती है इसलिए यदि मनो के विश्लेषण में अभिव्यक्ति के अध्ययन तथा ऐतिहासिक दृष्टिकोण को भी सम्मिलित कर लिया है।

यह एक ऐसी चीज है जिसमें भारी उत्तर जवाब और परिवर्तन होता रहता है इसलिए उसमें व्यक्ति को सहाय्य की भी निरिच्छता तथा अपात्रता देखने की नहीं मिलती।³ म उन सामाजिक, प्रणियाओं और प्रतीकों का विश्लेषण कई बार जिनका भार भारतीय नेताओं ने जनता पर अपना प्रभाव बनाने रखने के लिए बहुत अपवाद अभिव्यक्ति रूप से प्रयोग किया है। हम उन प्रमुख परम्पराओं और पौराणिक गाथाओं का भी विश्लेषण करते जो भारतीय राष्ट्रीय मानस के निर्माण में ऐतिहासिक कार्य रही हैं। कुछ रोमांटिक इन के विचारकों का कहना है कि हर व्यक्ति और राष्ट्र का अपना एक प्रत्यक्ष और स्वतंत्र मानस (आत्मा) होता है और उस मानस की वे

1. राइसी लानेन अपनी विषय, मन, जलियन और पेंडुल की रचनाएँ इसके उदाहरण हैं। लोकमत की धारणा के इतिहास के लिए देखिए जस्टिस बोयल का लेख *Public Opinion*, *Encyclopedia of Social Sciences* में प्रकाशित।
2. *Encyclopedia of Social Sciences* में प्रकाशित *Political Power*, 'Authority', 'Leadership' शीघ्र लेख।
3. अभिव्यक्ति तथा मत के बीच फेद के लिए देखिए जस्टिस, *Public Opinion* (प्रकाशित हिंदू क. नूपाक, 1939) पृ. 178-80।
4. जनता तथा सत्तारूपाधी लोकमत के बीच फेद के लिए देखिए, की सी बर्मा, *Public Opinion and Democracy* *The Journal of Political Science*, दिसम्बर 1956 में प्रकाशित।

एक शास्त्रस्तु मानते हैं।⁵ मैं उन विचारकों के सहमत नहीं हूँ। फिर भी हर सांस्कृतिक लोक-चार के मुख्य तत्वों को हम पहचान सकते हैं, और इस तरह विभिन्न सांस्कृतिक समुदायों को प्रभारों में विभक्त कर सकते हैं। राष्ट्र एक इसी प्रकार का सांस्कृतिक समुदाय है। बायीं और दायीं तरफ़ भारत और इस में ही फल फूल सकते हैं। दयानंद को फास की जनता स्वीकार न करती और न कब्रबंद भीत में सपना हो सकता है। महान नरक में कुछ महत्वपूर्ण भौतिक मूल्यवस्तुएं विशेषताएँ होती हैं, जिन्हु साथ ही साथ वह ऐतिहासिक तथा सामाजिक वास्तविकता के प्रमुख तत्वों का भी प्रतिनिधित्व करता है। नरक में तो कोई विश्र्वास अविमान्य होता है उसी वि रैनम और भीतों की कल्पना है, और न वह उत्साहन की शक्ति तथा उत्साहन के सम्बन्ध का प्रतिनिधित्व पाय हुआ करता है। नेता के मूल्यवस्तुएं जगह-स्थिति का हानन आवश्यक है उसी वह अपने समय के लक्षणा को समझने में समर्थ हो सकता है। यदि वह ऐसा नहीं कर सकता तो वह किसी महान विचार के लिए शहीद भले ही हो पाय, जिन्हु वह सकल नेता नहीं बन सकता, क्योंकि अविश्वसनीय भी ऐसी शक्ति, साहस तथा सत्यार्थता समता होती चाहिए जिससे कि वह उन शक्तियों का मूल्य कर सके जो उसके पास में सर्वोच्चता के लिए सपन करती हैं। आधुनिक भारत के नेताओं की सपन की एक महान चुनौती का सामना करना पड़ा है। इस सपन में एक और भारत की धार्मिक, पुष्पात्मक सामाजिक संस्कृति है और दूसरी ओर पश्चिम की आनामक राजनीतिक सम्पत्ता है। जिस पार नेताओं का भी अध्ययन करते आ रहा हूँ उन सब की प्राचीन परम्पराओं में गहरी अन्वेषी है। उन्हें तकलता इसलिए मिली कि उन्होंने विदेशी चुनौती का स्वीकार किया।

1. दयानंद दयानंद सरस्वती

दयानंद (1824-1883) का जीवनपरिचय बहुत ही महत्वपूर्ण है, क्योंकि उसने उस व्यक्ति के नेतृत्व की महानता का पता लगाया है जिसने अपनी जनता को चिरप्रेमित धारणाओं, दुर्भावों, तथा के नईपन तथा बुद्धिहीनता का विषम रूप में सम्मिश्रित किया। दयानंद ने अपने प्रवक्ता का घर धारण कर आत्मा की शोक में और मृत्यु के बचन में मुक्ति पाने के लिए प्रोत्साहन पा।⁶ सपन कुछ दृष्टान्तों की प्रकाश में उनके लिए कोई दार्शनिक अवस्था संवेगात्मक आकर्षण नहीं रह गया था। दयानंद अपने जीवन में मूर्तिपूजा को बनी सहन न कर सके। वे उसे सर्वप्रथम मानते थे।

दयानंद उस लोकतांत्रिक नेता के सहचर नहीं थे जिसने अन्तर्गत समझौते करने की शक्ती होती है। उन्हें एक राजनीतिक सिद्धान्त के रूप में लोकतांत्रिक में विश्वास था, जिन्हु उनकी मानसिक रचना सत्तावादी नेता की रचना के सहचर थी। उनकी आवश्यकता के कारण, उनका उद्देश्य तथा शक्तिशाली नेतृत्व का प्रदर्शन के विरुद्ध सपन में उनका प्रतिपक्षी बन पा, और उनकी अपने विचारों की कल्पना में विशेष वास्तव—वे सब चीजें हम धूम्र और वास्तव का समर्थन दिखाती हैं न कि विरुद्ध और अक्षय्य था। मध्ययुगीन तथा आधुनिक भारत में वे अपने ऐसे नेता हुए हैं जिन्होंने जनता के अनेक सामाजिक तथा धार्मिक अक्षय्यवस्तुओं की कल्पना की, जिन्हु मूर्ति पूजा तथा अन्य कुरीतियों का अक्षय्य रूप में सम्मिश्रण करते थे दयानंद

5. रमणानादिना (Romantism) तथा हेमन के लोक वास्तव (Volksgut) की एक सादृश्य मान लिया था। सर्वोच्चतम तथ में कब्रबंद की कल्पना ऐसी ही मात्रा समुह मानस एक स्वभाव पता हो।

6. देखिए दयानंद का जीवनपरिचय (हिन्दी), आर्य साहित्य मण्डल, अजमेर द्वारा 2 खंडों में प्रकाशित और देखिए मुल्लोकाव्यास द्वारा संकलित साक्ष्यों पर आधारित। दयानंद अतिरिक्त देखिए दयानंद, 'दयानंद प्रकाश'। दयानंद के जीवन, व्यवस्था तथा जनता के सम्बन्ध में अन्तर्गतवास्तव रचनाओं के लिए देखिए *Dayananda Commemorative Volume* (दयानंद की स्मृति के लिए समर्पित संग्रह द्वारा सम्पादित अजमेर, 1933), श्री एन वल्लभाजी, *The Torch-Bearer*, वाला साहित्यप्रकाश, *The Arya Samaj* (लण्डन, भारत द्वारा प्रकाशित 1915)।

अद्वितीय थे। 1869 में दाराशमी ने दार्शनिक दृष्टि। उनका विचार का मुख्य विषय या धृति-पूज तथा उसकी यदिर उत्पत्ति। दयानन्द ने विख्यात पण्डितों के साथ दार्शनिक विचार। उन्होंने कुछ मानों और ईश्वरशा के धर्मशास्त्रीय विचारों का भी निम्न रूप से खण्डन किया।⁷ किन्तु उन्होंने परम्परागत हिन्दू धर्म का भी विरोध किया उनका धर्मनिरपेक्ष दर्शन के माधिन केताका और विद्वानों से सुनी प्रशंसा हो गयी और अनेक बार उन्हें दुखान्त भी गया, उनका पिताजी भी क्या गया और उन्हें तन किया गया। भारत के राष्ट्रीय मानस में यह एक महत्त्वपूर्ण बात है कि जिस व्यक्ति ने पुरातनतन्त्री भारत के परम्परागत सामाजिक और धार्मिक विचारों का मुखर विरोध किया उनके व्यक्तित्व और सन्देश को महत्ता को देश ने धीरे धीरे स्वीकार कर लिया।

दयानन्द ने अनेक गुणों में विद्वान् उन्हें पण्डितों की सामाजिक तथा धार्मिक नेता बना दिया। उनका विचारों के साथ जीवन का घोर का, उन्होंने अनेक बार अपने धार्मिक पराक्रम का प्रदर्शन करने जनता का जयजयकार प्राप्त किया। देश के लोकमानस में उनके इन पराक्रमपूर्ण वादों को प्रत्यक्ष या प्रत्याय समझा, और लोग मन ही मन उनका आदर करते रहे। दयानन्द यही ही मूर्खवादी नैतिकता थे, और उनकी बुद्धि-आयत्त बुद्धिवाद तथा विलक्षण थी। उनका संस्कृत भाषा पर अधिभार था और वैदिक साहित्य के वे प्रवक्ता पण्डित थे। उन्होंने संस्कृत व्याकरण का सम्पूर्ण अध्ययन किया था। उन्होंने पुराणों का अध्ययन करने के लिए वेदों को, या कि भारतीय मन्त्रों और संस्कृति का सुगम अध्ययन और बात यह है, आधार बनाया। उनके इस वेदवाद ने भारतीय जनता को बहुत आकर्षित किया। दयानन्द का साधारण प्रयत्न उनके वेदमार्ग को सही ही न समझने, किन्तु वेदों की महत्ता पर बल देकर दयानन्द ने प्रवक्ता धार्मिक पण्डित के साहित्यिक क्षेत्र के साथ जनता पराक्रम स्थापित कर लिया। हिन्दू भारत पर वेदों का सर्व ही सामाजी और रहस्यमय प्रभाव पड़ा है। अब दयानन्द के धार्मिक अनुभव का रहस्य यह था कि यद्यपि उन्होंने परम्परागत धार्मिकों का खण्डन किया, किन्तु उनके दर्शन का आधार कुछ आध्यात्मिक बुद्धिवाद नहीं था यद्यपि उनका आधार वेद थे जो कि परम्परागत श्रद्धा की ही नींव रहे हैं।⁸

दयानन्द की आत्मा की सर्वोच्चता में विश्वास था। वे ईश्वरवादी थे। उन्होंने मृत्यु के समय की अंतिम वाक्य कहे उनके आध्यात्मिक व्यक्तित्व का परिचय मिलता है। वे योगाभ्यास भी करते थे। व्यासजी के गुरुत्व, भट्टानन्द जी के कुछ महात्म्य अनुवादी बनने और इसलिए आकर्षण हुए थे कि वे उन्हें एक महान् योगी मानते थे।⁹ यद्यपि दयानन्द न विपुल धार्मिक-विचार और प्रवक्ता विचारों का स्रोत उनकी आध्यात्मिक अनुभूति थी, किन्तु जनता उनकी आत्मा उनके मन की विपुल बोद्धिक क्षमता के कारण आकर्षित हुई थी, न कि उनके भाषा, योग-युग्म और कथन व्यक्तित्व के कारण। किन्तु यह भी सत्य है कि दयानन्द का जनता पर भी प्रभाव पड़ा उनका एक कारण यह भी था कि वे आध्यात्मिक थे, उन्होंने धर्म और धर्म का परिचय कर दिया था और करतार धारण कर लिया था—हिन्दू परम्परा में ऐसा सामाजी ही आदर्श मुख्य माना गया है।

दयानन्द के विचारों और आदर्शों का बुलाधार प्राचीन वैदिक परम्परा थी। वे वेदों की सामाजिकता का स्वीकार करते थे और उस समय जब परिचय के विद्वान् वैदिक स्वताका की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनुविवादी विद्वान् का प्रतिपादन करते न मन हुए थे स्वामीजी ने घोषणा की कि वेद ईश्वरीय ज्ञान का आधार है। जिस समय वेद में पराक्रम आध्यात्मिकता और ईसाई धर्म का बोधभाव था उस समय दयानन्द एक अत्यन्त धार्मिक पुनरुत्थान के संस्कृत के रूप में प्रवृत्त हुए। पुनरुत्थानवाद न दयानन्द थे, और बाद में जितक थे, व्यक्तित्व तथा सामाजिक प्रवक्ता

7 स्वामी दयानन्द के सत्याय प्रकाश' ने तरुणों और धीमेजुने अभ्यास।

8 डी पी वर्मा, *Buddha and Dayananda*, *The Spark* (पटना), मई 27, 1951 में प्रकाशित।

9 स्वामी आनन्द, 'पदार्थ का धर्म का पण्डित', दाराशमी, 1915, दाराशमी, 'आत्मसत्ता'।

म भारी वृद्धि की। अतः यदि एक ओर स्वामी दयानन्द ने हिन्दुओं के सामाजिक तथा धार्मिक अवविश्रुतों को बहुत आलोचना की तो दूसरी ओर उन्होंने ईसाई धर्म और इस्लाम का भी तीव्र कथन किया जिसके कारण हिन्दु लोकमत उनके पास हा गया। इसलिए हिन्दुओं ने उनकी तुलना गकर से की जिन्होंने यीशु के बौद्धिक आनयन से बधिक और बदायती धर्मों की रक्षा की थी।

दयानन्द की भारत के ऐतिहासिक विचारों के सम्बन्ध में बड़ी आशावादी कल्पना थी। उनके विचारों ने महाभारत के समय से भारत का पराक्रम और पतन बारम्बार दृष्टा था। दयानन्द ने दुःखी तथा भूमिगत जनता का एक दया सादित और नया दृष्टि प्रदान की। उन्होंने भारतवासीयों को स्मरण दिलाया कि तुम्हारा ध्येय विश्व में वैदिक सभ्यता का प्रचार करना है। तात्का पर उनके पम्भीर आशावाद का महान् प्रभाव पड़ा। दयानन्द के जीवन के स्पष्ट है कि सफल नेता यही हो सकता है जो जनता की आशा और धर्म का सदेव दे।¹⁰ विश्व की निश्चिन्ता और निराशा का सदेव कुछ दायित्वों को भले ही अच्छा धरे, किन्तु बहुसंख्यक लोग की अनुयायी बनाने के लिए जनता की अधिपतित्व और विचारों को बलि और स्फूर्ति प्रदान करना आवस्यक आवश्यक है।

दयानन्द की आत्मा साहस और शूरत्व से जोतप्रोत थी। राष्ट्रीय, जन तथा आत्मा की प्रवृत्ति उनके व्यक्तित्व का गार थी और वही उनके मूल्य का आधार थी। उनके वैतुल का अर्थ विनय, मुदितता अथवा सनिक बल नहीं था। जनता केवल बस्तुतः उस चीज का उदाहरण था जिसे बचने बचर में भयलारपूर्ण चर्चित बड़ा है। जब चलकर दयानन्द ने एक धार्मिक धर्म की स्थापना की जिसने उनके मत का सम्वागत आधार प्रदान किया। किन्तु प्रार्थनिकधर्मों में जनता केवल केवल उनकी व्यक्तित्व उपलब्धियों पर आधारित था।

दयानन्द का जीवनचरित तथा उनके सदेश की धीरे धीरे यह मानकर स्वीकार कर लिया जाना कि उसका उद्देश्य भारतीय राष्ट्रवाद तथा हिन्दुओं की एकता की अभिवृद्धि करना है, इस बात का उदाहरण है कि भारतीय लोकमत परिवर्तनशील तथा गतगतक रहा है। भारत में स्वाधीनता की धमकीही कहा गया और उनकी मरणा की बड़ी। उनके सहपानियों ने उन्हें अनेक बार मरच्युत मानकर मिया दिया। किन्तु धीरे धीरे गुराजतवादी हिन्दु लोकमत ने उन्हें समाज का हितधी तथा अमाधारण योग्यता और 'गुरुत्व' के सम्बन्ध धार्मिक विभूति के रूप में स्वीकार कर लिया। यह इस बात का साक्ष्य है कि लोकमत मनीम तथा परिवर्तनशील है, और उपदेश तथा प्रचार का उस पर प्रभाव बढता है।

2. स्वामी विवेकानन्द

विवेकानन्द (1863-1902) का जीवनचरित कथितक उत्कृष्टतया पर आधारित वैतुल का एक महत्वपूर्ण उदाहरण है। विवेकानन्द की आत्मा चित्तवशील थी और वे पम्भीर आत्मोचितता केवल और आकाशवादी से पीडित रहा करते थे। किन्तु दयानन्द की भाँति वे भी बाह्य जगत में कुछ मायात्मक काम करता चाहते थे। दयानन्द के वंश की आत्मा संरत और स्पष्ट है। विवेकानन्द की माया अधिन अनुप्रेरित और ओन्मुख है। यह विवेकानन्द सत्य है कि विवेकानन्द की कथिता से पुनका की मानसिध रचना के निर्माण में सतिशायी प्रभाव का काम किया, विशेषकर बचन में, किन्तु आभासत सम्पूर्ण भारत में।¹¹

दयानन्द की भाँति विवेकानन्द भी स आशी से और दोन ने ही स्वाग के द्वारा सति आश की थी। नवनि दोन ने साक्षात्क वर और सपुद्धि की दृष्टि का परिधान धर्म की धर्म की थी, किन्तु दोन ने सर्वशुद्ध दयानि उपलब्ध की। विवेकानन्द ने हिन्दु धर्म का ना साक्षात्क निवचन किया अपने वह लक्ष्यगुरु क पद पर प्रतिष्ठित कर दिया। परिचय में आज वह 'हिन्दु नवसिद्ध' कहते थे। वे सति से और उनका दावा था कि वेन निविकल्प समाधि की अवस्था

10 स्वामी सदादेव, 'सर्वत' तथा की धर्म में आत्मगुरु 1951।

11 श्री अरविन्द घोष तथा मुनासम्भर बोस पर विवेकानन्द का महान् प्रभाव पड़ा था। विवेकानन्द की वपासी राष्ट्रवाद का आध्यात्मिक जनक माना गया है। देखिए, लालन राम, *Young India*

में अभिषेक (परमहंस) का शाखास्वरूप बर बिना है। अपने गुरुमाइया व से इसीलिए वेष्ट मात्र मय कि उन्होंने ईश्वरीयता का सा सागर बनाया है। किन्तु पश्चिम तथा पूर्व व विभिन्न रूप विभिन्नतर उनकी प्रकटता कोटिगत गतिता पर मोटित है। एक वेष्टमाइया कायाली वर का बीसी से अकेली व व्यावसायिक के मन्ता का इस बात के कोटिगत रूप को विभिन्न कर दिया। विवेकानन्द का इनको श्रोतमा पर दुःसमीचीन प्रभाव पडा, इसका अर्थ कारण यह था कि दशानन्द की नीति उन्हें भी सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि कायी हिन्दू धर्म आधुनिक विज्ञान के अर्थ तथा के पैल साता है। उन्हें आधुनिक दर्शन, विज्ञान और इतिहास का अच्छा पान था।¹²

मन्त्री-मन्त्री तल्लिष्ट शरीर नेता व लिए बहुत सहायक होता है, वनामय तथा विवेकानन्द कोना ही इस बात के प्रभाव है।¹³ किन्तु दशानन्द व कला की इसीलिए प्रभावित किया कि उन्होंने अपरिमित शारीरिक शक्ति अर्जित कर ली थी। इनके विपरीत, विवेकानन्द अपने श्रोतामा का अपन शरीर के साध्य और आश्चर्य के कारण सम्भावित करने व सफल होते थे। उनका शरीर दशानन्द की नीति विचारिता सेना बनी नहीं था। किन्तु उनको शरीर व एक आश्चर्य साध्य का जितना सोचा पर सत्य प्रभाव पड़ता था। इसीलिए लोका व यह धारणा बन गयी कि योग की शक्ति ने उनके शरीर को प्रदीप्त कर दिया है।

विवेकानन्द के नेतृत्व का प्रभावशालीत्व बनाने वाला एक अन्य तत्व यह था कि उन्होंने हिन्दुत्व का उस समय समस्त विश्व का पाश्चात्य साम्राज्यवाद और ईसाई धर्म बर्धनीयता के विचार पर बहुत चुके थे। दशानन्द व वेचन केरी को अपना आधार बनाया और गुरुमा की आलाचना करने हिन्दू लोकमत को अपने विरुद्ध बन लिया। इसके विपरीत, विवेकानन्द ने मन्त्री हिन्दू धर्मशास्त्र के अर्थ का समझा दिया और उनको इसका साध्य था कि उन्होंने वैज्ञानिक पश्चिम के वैज्ञानिकता और आधुनिकतात्मक महानगरी की जनता के सामने उनकी श्रेष्ठता की घोषणा की।¹⁴ इस बात ने विवेकानन्द को हिन्दुत्व के पामित जनता का नता बना दिया। वरुण अपनी पश्चिम की आशा के बीचा उन्होंने कायाली के बाह्य आचरण कायाली विषयी का मर्दक बर्धनीयता के साथ साध्य नहीं किया फिर भी इस के लीटर स्वयं अपने ही उतरा एक महान् आचरण के रूप में ललितान किया गया। इससे सिद्ध होता है कि यदि नेता किसी सामन्तीय बाध व श्रेष्ठता का पश्चिम व ही लोकमत पामित रूप से अपनी आचार सम्बन्धी शक्तिता की सहाय कर लेता है।

दशानन्द व हिन्दुत्व की अर्थक गुरुतिता का खण्डन किया। किन्तु विवेकानन्द बहुत अर्थ के सुधारक नहीं थे। उन्होंने आलोचना पर नहीं अवितु चलाया व बन दिया। उनका दावा था कि वे उस समय हिन्दुत्व के प्रतिनिधि थे का अपन ऐतिहासिक विकास की अर्थक साक्ष्यिता में कि सिद्ध हो चुका था।¹⁵ इसलिए दशानन्द की नीति उनका नेतृत्व का बनी चुनौती नहीं दी गयी। लोकमत ने उनके नेतृत्व के प्रति उनकी गुरुता प्रकट नहीं की जिसकी नि दशानन्द ने प्रति की थी।

दशानन्द और विवेकानन्द दोनों ही दुःख से लड़ रहे और उन्हें नेतृत्व से सम्बन्धित प्रभाव हल और हलचल पमच नहीं थी। व अपन व्यक्तित्व की लोकमत की समझ, सुमति और आदेश के अनुसार नहीं बालता चाहते थे। दशानन्द ने अपने विचारको ने हेतु ललितान का लुप्त कर विरोध

12 विवेकानन्दप्रसाद तथा, *Vivekananda: The Hero Prophet of the Modern World*, *The Patna College Magazine* के सितम्बर 1946 के अंक में प्रकाशित।

13 ई एम बीरान्द, एक एक समवेत और एक एक बनाइ सुन्दर शरीर अपना शारीरिक रूप अपना आकृति की नता का लुप्त करने हे, दम्पु सारित्रय, *Public Opinion*, पन्ना 1023।

14 बलिनी विवेकानन्द, *The Master as I Saw Him* जेना रोना, *The Life of Ramkrishna* तथा *The Life of Vivekananda*

15 *The Complete Works of Swami Vivekananda*, पाठ किया व, पंडित आचरण, अन्तर्गत हाथ प्रकाशित।

विद्या । दयानन्द तथा विवेकानन्द दोनों का मन अपने आध्यात्मिक व्यक्तित्व की पूजा करने की काम-विधि में ही अधिक लगता था । नेतृत्व का साधन-साधन जुड़ाने में उनकी रुचि नहीं थी । फिर भी आर्य समाज तथा रामकृष्ण मिशन में उन दोनों ने नेतृत्व के लिए सत्पाठमय आधार प्रदान किया । इस प्रकार दयानन्द तथा विवेकानन्द दोनों ने दिया दिया कि एक व्यक्ति धार्मिक सन्देशवाहक तथा सामाजिक नेता दोनों का काम साथ साथ कर सकता है ।

विवेकानन्द अनपेक्षित रूप से स्वतन्त्रता के सन्देशवाहक थे । उनके मत इस बात पर था कि मनुष्य को पूरा विश्वास प्राप्त होना चाहिए । उन्होंने राजनीति में मान नहीं लिया, फिर भी स्वतन्त्रता के लिए उनके मन में उत्पन्न अभिलाषा थी । समाज की नींव धार्मिक अपनी कथिता में उन्होंने स्थापना की धारणा को ओवरलैप माया में प्रतिष्ठित और पवित्रीकृत किया है । विवेकानन्द स्वतन्त्रता के मूलनात्मक पक्ष में प्रति अपनी इस उदात्त चर्चा के कारण उत्साह की स्वामी शक्ति के साथ मन गये । आध्यात्मिक अद्वैतवादी होने के नाते विवेकानन्द अन्तरात्मवादी थे । किन्तु भारत माता के लिए भी उनके मन में बहुत अनुराग था । अपनी उदात्त देशभक्ति के कारण वे भारतीय जनता के लोहभाजन बन गये ।

विवेकानन्द की सफलता का मुख्य कारण यह था कि उन्होंने पश्चिम में देशांत दयानन्द की व्याख्या की बहु आश्चर्यजनक थी । वे वैष्णव, शैव, मूलर, पौनः दीव्य और रॉबर्ट से मिले तथा आध्यात्मिक अद्वैतवाद की महत्ता पर विचार विमल किया । वे इस बात में विचित्र मान्यता की थे कि वह पश्चिम में कुछ प्रतिमादाओं तथा निष्ठावान सिद्ध मिल गये । वह पश्चिम में भारत के पक्ष में बहुत लोकमत का निर्माण करने में सफलता मिली । दूसरी ओर वह शिक्षाओं के सम्मेलन में तथा अन्य स्थानों में भी सफलता उपलब्ध हुईं उनमें भारतीय लोकमत आश्लेषित हो गया ।¹⁶

3 लोकमत सिलक

दयानन्द और विवेकानन्द की सामाजिक और धार्मिक विचारों में अधिक रुचि थी, किन्तु तिलक (1858-1920) पहले नेता थे जिन्होंने जनता के राजनीतिक विचारों में रुचि दिखायी । तिलक की प्रतिभा बहुमुखी थी और वे उत्तुंग राजनीतिक नेता थे । उनके जीवन तथा कामकाज में हमें भारत में लोकमत के स्वभाव और महत्ता के सम्बन्ध में नवीन दृष्टि मिलती है ।

भारतीय जीवन में तिलक का शरीर बलिष्ठ तथा शक्तिशाली था ।¹⁷ किन्तु शरीर के जीवन की कठोरता तथा बीमारी ने उनके शरीर का तोड़ दिया । अतः जब वे अपने राजनीतिक मूल की पराकाष्ठा पर थे उस समय जनता पर उनकी बोद्धि चर्चा का प्रभाव पड़ता था कि पारितोषिक पराजय अथवा व्योमता का । इसलिए तिलक के नेतृत्व में शारीरिक तत्व का उठना महत्त्व नहीं था बल्कि कि दयानन्द और विवेकानन्द के नेतृत्व के रूप देखने को मिलता है । तिलक संस्कृत-के विद्वान् तथा वेदा के प्रणाल्य पण्डित थे । अपने अधिक अनुसंधानों तथा पीछे रहस्य के कारण वे हिन्दू जनता के प्रेमभाजन बन गये थे । इससे उनके राजनीतिक नेतृत्व का ठोस आधार उभार हुआ क्योंकि जनता उनका राजनीतिक रूप में ही नहीं बल्कि ऐसे बुद्धिजीवी के रूप में भी सम्मान करती थी जो विधि, दण्ड, धर्म, इतिहास तथा ज्योतिष के पारंगत थे ।¹⁸

तिलक ने जीवन में सबसे बड़ी वृद्धि उनका नीति-परिचय था । उनकी वैयक्तिक स्वतन्त्रता की धारणा बड़ी प्रबल थी और वे पूर्णतः निर्भीक थे । भारतीय जनता उन्हें कुदमनीय साहस तथा

16 *The Life of Swami Vivekananda*, जिल्द 2 ।

17 1955 में पूजा में एम.एस. अर्जे ने भारतीयों के जीवन-चरित्र कहा था कि 1905 में अन्धराष्ट्र कांग्रेस के सम्मेलन पर तिलक ने दिसम्बर के ठगने बहाने में बोली गयी की धार पर लिया था ।

18 विवेकानन्दसदस्य अन्ना, *The Achievements of Lokamanya Tilak*, *The Maharashtra* (पूना) अगस्त 5, 1953 में प्रकाशित । स्वामी अन्नान्द तिलक की ओर इसलिए आकर्षित हुए थे कि उन्होंने *The Green* नामक महान् ग्रन्थ की रचना की थी ।

उदात्त वैभवशक्ति का मुक्त रूप मानती थी। लोकसत्ताही के जन पर 1897, 1908 और 1916 में अधिवोध बनाने और जनते द्वारा जनते भारतीय जनता के उनके प्रति समुदाय का मात्र उत्तर करने का प्रयत्न किया, किन्तु उसने सब उपाय विफल सिद्ध हुए। वे निःस्वार्थ के और उदात्त भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सम्पादन पद की सभी अधिकारता नहीं थी। किन्तु उनकी हिमालय जैसी दृढ़ता, अनमनीय दृष्टिवाचक और धर्म के उदात्त भारतीय जनता तथा विविध अधिकारिता की दृष्टि में देश का सर्वाधिक अधिकारिता राजनेता सिद्ध कर दिया था।¹⁹ भारतीय विद्रोह के जनक, आधुनिक भारत के अग्रणी निर्माता तथा दक्षिण व विना मुक्त के राजा के रूप में तिलक की सबसे बड़ी सेवा यह थी कि उन्होंने देश में प्रथम तथा अनमनीय राष्ट्रीय लोकमत का निर्माण किया।²⁰

एक राजनीतिज्ञ तथा राजनेता के रूप में तिलक विश्वासता सोचता-उत्पादी था।²¹ उन्होंने श्रद्धा बहुमत का अनुपमन किया। सिलासन तथा अग्रहवाप के प्रस्ताव पर उन्होंने बहुकरनका के विचार की अतीतपर कर दिया था।²² एक देश के रूप में तिलक लोकमत की एक राजनीति कायपद्धति ही नहीं समझते थे, अधिक के उसे एक जीवन दान के रूप में स्वीकार करते थे। उदात्त जनता के प्रेम था। उनके लिए जनता अपने नेतृत्व का प्रयोग करने का साधन मान रही थी। निम्न से निम्न व्यक्ति उनके पास सरलता में पहुँच सकता था।²³ उनका जीवन सदा सादा तथा मित्रव्यतिरापुन था। वे जनोत्तक नहीं थे। उन्होंने जनता की नहीं और कुतिलत घातनाश की उच्चारण का सभी प्रयत्न नहीं किया। तिलक ने स्वराज्य के पक्ष में समस्त लोकमत का निर्माण करने के लिए विविध समप्रकारितियों का प्रयोग किया। उन्होंने गुना 'यु दमित्रा स्कूल', कामुलन कानिज तथा समस्त विद्यालय की स्थापना की। उन्होंने 'मराठा' तथा 'बंगाली राजम की वर शास्त्र' जिनके जिहाने महाप्राप्त की जनता का उदात्त राजनीतिक विचार दी। 'केन्द्री' लोकसत्ताही के विरुद्ध बुद्धिमान लोकमत का मुक्त पत्र था। तिलक पर तीन बार राजकोट का मुकदमा चलाया गया और 1897 तथा 1908 में उन्हें 'केन्द्री' में सम्पादनकेन गैर प्रकाशित करने के लिए दण्ड दिया गया। 'पादितपर', 'दि स्टेडुशन', 'दि इस्टम आन इण्डिया सरकारी नीति के सम्पक थे, इसके विपरीत 'केन्द्री' तथा 'बंगाली राष्ट्रीय लोकमत का सम्पन करने वाले थे। तिलक ने जीवन भर स्वराज्य के पक्ष में प्रतिजानी लोकमत तैयार करने का प्रयत्न किया।

दशम'द, शिवेकान'द और तिलक का नेतृत्व मुक्त बोद्धि था। उन्होंने देश की नैतिक तथा आध्यात्मिक परम्पराओं के नाम पर की जाता के अनुपम किया। किन्तु लोकमत की जन पक्ष के करने के लिए उन्होंने मुक्त रूप से बोद्धि साधना का ही प्रयोग किया। तिलक मराठी भाषा के प्रकाशक बनित थे।²⁴ उनकी लोकसत्ताही संस्था की नीति के रचनाओं का स्वरूप विशाली है। उन्होंने मराठी में नीति प्रकाश किया। तिलक ने कांग्रेस आन्दोलन का निश्चित रूप में भारतीयजनन किया। उन्होंने 'लोकमत उल्लस' तथा 'विवाही जनन' शास्त्र विष और इस प्रकार जनता की भावनाओं, परम्पराओं और विचारों तथा राष्ट्रीय आन्दोलन में बीच अवस्थी

19 यह मत 2 जनवरी, 1920 की *Amrita Bazar Patrika* का ही नहीं था, बल्कि एडमिन मोटन ने भी अपनी *An Indian Diary* में यही मत व्यक्त किया था।

20 मा'सीही ने 4 जनवरी, 1920 और 23 फरवरी, 1922 की *Young India* में प्रकाशित गैर।

21 तिलक ने अपने विरोधी का पराजय व की मुक्त से 1955 में मुक्त में कहा था कि महाप्राप्त ने तिलक की देशता माना जाता था।

22 विरमराजप्रसाद शर्मा, *The Foundations of Lokamanya's Political Thought, The Statesman* जुलाई 24, 1956 में प्रकाशित।

23 राजनीतिज्ञ नाल व प्रमाद'प्राप्तकी अध्ययन के लिए देगिए मनन केवर, *Politics as a Vocation, Essays in Sociology*, पृ. 77-78।

24 दमिए विरम की मराठी रचनाओं की बार लिखें मुक्त 'बंगाली' में प्रकाशित।

सम्बन्ध स्थापित किया।²⁵ पहले उन्होंने राष्ट्रीय एगेंडा के पक्ष में सबसे लोकमत का निर्माण किया और फिर उसका साम्राज्य विरोधी अर्थ के रूप में प्रयोग किया। भारत में राजनीति की और उन्मुख लोकमत का निर्माण करने में शिलक का जीवन बृण प्रयत्नक है।

4 महात्मा गांधी

शिलक और गांधी (1869-1948) के जीवनचरित का अध्ययन करने से हमें आधुनिक भारत में लोकमत का स्पष्ट राजनीतिक रूप देखने की मिलता है। मौलानास करमचन्द गांधी ने उस समय नेतृत्व ग्रहण किया जब देश का लोकमत मुख्यतः ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध था। शिलक तथा कैपेंट की होन सीमा के द्वार ने देश में स्वराज्य के लिए उत्कट आवाजा उठाते कर दी थी। जनिवावाला हत्याकाण्ड ने जनता की मुख्य ब्रिटिश साम्राज्य का शत्रु बना दिया था। अंग्रेज शासन ने प्रथम विश्व युद्ध के दौरान दमनकारी नीति का प्रयोग किया था जिसके फलस्वरूप जनता में भारी असंतोष फैल गया था। गांधीजी भारत की उचित राजनीतिक आवाजाओं के रूप में बनकर प्रकट हुए। शिलक ने जनता को राजनीति में लाने का काम आरम्भ कर दिया था, गांधीजी ने उसे पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया। वे अपने को किसान और जुलाहा कहते रहते थे। उन्होंने कांग्रेस को एक बड़े जनसमूह का रूप दे दिया, यद्यपि उसका नेतृत्व नव्य वर्ग के ही हाथ में बना रहा।

गांधीजी ने नेतृत्व के लिए आवश्यक धारोरिक गुण नहीं थे। ऐसा कि हमें दयानन्द और विवेकानन्द के सम्बन्ध में देखने की मिलता है। उन्हें प्राचीन साहित्य का ज्ञान गम्भीर ज्ञान नहीं था। ऐसा कि दयानन्द और शिलक को था। गांधीजी की सफलता शक्ति भी बहुत कुछ सीमित थी। फिर भी उन्होंने भारतीय लोकमत पर आवश्यकतानुसार आधिपत्य स्थापित कर लिया। भारतीय लोकमत उनकी पूजा करता था, और वह अतिशयोक्ति नहीं है कि एक चौथाई सताव्वी से अधिक समय तक वे ही भारत के लोकमत थे।

गांधीजी चम्पारन सत्याग्रह (1917), असहयोग आन्दोलन (1920-22) जिनका अन्त आन्दोलन (1930-34) और भारत छोड़ो आन्दोलन में नेतृत्व करके भारतीय राष्ट्रवाद के उच्च समयक बन गये। उनके नेतृत्व का आधार यह था कि वे भारत के राष्ट्रीय सत्त्व के सबसे महत्वपूर्ण प्रतीक थे। उनके आध्यात्मिक व्यक्तित्व ने उनके नेतृत्व को और भी अधिक बल प्रदान कर दिया। उनका आग्रह था कि राजनीति में नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों को समाविष्ट किया जाय।²⁶ वे निरन्तर ईश्वर तथा वाचस्पती का उल्लेख किया करते थे, प्रार्थना करना उनका दैनिक काम था और उन्होंने बहुचर्चा का दृष्ट से रखा था—इन सब बातों ने उन्हें एक महान् सत्त्व और शक्ति बना दिया, और भारतीय जनता उनकी मार्गदर्श करने लगी। गांधीजी का नेतृत्व अद्वय था, क्योंकि अपने महान् राजनीतिक प्रभाव के अतिरिक्त उनमें एक सत्त्व की महानता और गम्भीरता भी थी। नैतिकवादिओं और समनिरपेक्षवादियों की दृष्टि में उनके नेतृत्व में अक्षोक्षिता का लाल हो सकता था, किन्तु भारतीय जनता उन्हें सत्यमय देव मुख्य मानती थी।

गांधीजी ने अपने नेतृत्व को अल्प प्रभावकारी बनाने के लिए परवर्धित की शक्ति का प्रयोग किया। उल्लेख अन्वीक में आते 'दि इन्डियन पब्लिक ओपिनिऑन' नामक पत्र का सम्पादन किया। उनकी 'पत्र इन्डिया उद्योगजाल भारतीय राष्ट्रवाद को वादित बन गयी। उनके 'हरिजन' में अनेक वर्षों तक भारतीय राष्ट्रवादी राजनीति का पत्र निर्धारित किया। गांधीजी ने लोकमत का निर्माण करने के लिए प्रेस के अन्तर्गत शक्तिशाली साधन का प्रयोग किया। उनके अपने पत्रों के अतिरिक्त भारत के राष्ट्रीय प्रेस के एक बड़े अंश ने भी गांधीजी के नेतृत्व को बल देने में सहायता दी।

एक नैतिक व्यक्ति तथा राजनीतिज्ञ नेता के रूप में गांधीजी ने लोकमत को उत्तेजित करते

25 विनिमयचन्द वाल, *Students and Society*, (बल्लारता, 1954), पृ. 73-83।

26 पी पी वर्मा, 'Gandhi and Marx' *The Indian Journal of Political Science*, जून 1954।

तथा उसे नाटकीय रूप देने की विशेष क्षमता थी। 1920-21 में उन्होंने एक वर्ष में स्वराज्य प्राप्त करने का वचन दिया। यद्यपि वह वचन बेसिरपट्ट का सिद्ध हुआ कि तु उनके कारण उनके नेतृत्व का सर्वभारतक प्रभाव बहुत बढ़ गया। 1930 में उनकी छोटी यात्रा ने भारतीय लोकमत का प्रथम उत्तेजना प्रदान की। उनके प्रसिद्ध वाच 'नया या नहीं' ने भी जनता की जागृतावा तत्वा कल्पना को प्रत्यक्ष किया।

गांधीजी अनेक हो गये थे, स्वीडिश दमनवाद, बिस्माराद और तिनक की भाँति उनका नेतृत्व भी आत्मत्याग पर आधारित था। चूँकि वे सदा और सम्पत्ति की इच्छा का त्याग कर चुके थे इसलिए न कोई प्रलोभन उन्हें पचभ्रष्ट कर सकता था और न कोई धमकी उन्हें अतंकित कर सकती थी। वे एक ईश्वर-मूर्त के रूप में खड़ा और आदर का केंद्र बन गये। गांधीजी की सत्ता का आधार कोई सरकारी पद नहीं था। वह वैयक्तिक गुरुत्वा पर आधारित थी। उनमें वैयक्तिक जमानदार (परिष्ठा) की शक्ति थी,²⁷ इसलिए वे भारतीय समाज के निरक्षर वर्गों में कुछ इसी प्रकार की खड़ा उत्पन्न कर सकते थे जैसी बि लोपो के रूप में अवतारों के लिए हुआ करती थी। गांधीजी ज़रि के से नेतृत्व के प्रतीक थे। उनका शाब्द महत्वा उनका निराभिय चीजन, उनके हाथ में डण्डा और चापण देने के समय उनके बहने की मुद्रा—इन सब बातों ने गुरुतन्त्रापी धार्मिक विचारों के लोगों को उनके पास में कर दिया। उन्होंने 1924, 1932, 1933, 1943 तथा अन्य अवसरों पर जो उपवास किए उनका जनता के हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा और लोकमत की उनके पास में गुरुता और उत्काल प्रतिनिधा हुई।

गांधीजी की सत्य में निरपेक्ष निष्ठा थी, और चूँकि वे निरंतर अपनी भूमी की स्वीकार करते रहते थे, इसलिए लोकमत सदैव उनके पास में बनता रहा। 1919 में उन्होंने स्वीकार किया कि मैंने हिंसात्मक के सहित महान भूल की है, फिर भी भारतीय लोकमत उनका विरोधी नहीं हुआ। इस प्रकार हम देखते हैं कि गांधीजी ने राजनीतिन नेतृत्व के क्षेत्र में अगस्त्यन और सभी की भाँति स्वीकारोक्ति की पद्धति का प्रयोग किया।

कुछ ऐसे ही अवसर थे जब गांधीजी को अनुत्तरात्म जीवनमत का सामना करना पड़ा। उनका अल्पवयस के निरक्षर धर्मगुरु, उनका एक छात्रों की चारी धार्मिक नेतृता की अवस्था में होती मार देने की अनुमति देता, और उनकी मुक्तमानों के प्रति नीति जिसे परमात्मत्वं माना जाता था—इन बातों ने गुरुतन्त्रापी हिन्दू लोकमत को अवश्य उनके निरक्षर कर दिया था, किन्तु जनता की गम्भीर भावनाएँ हमेशा उनके पास में बनी रही।

ईसाई लोकमत भारत में तथा बाहर, गांधीजी के पास में रहा। कुछ लोगों का गांधीजी सर्वव्यापी के अनुवासी प्रतीक होते थे। गांधीजी की जीवनी विद्यने वाले सबप्रथम व्यक्तिमा में जोह नामन ईसाई था। रोसा रोसा, होम्स आदि उनके सबसे बड़े पाश्चात्य प्रशंसक निष्ठावान ईसाई थे। गांधीजी पर वाइलिन की सिखावा का प्रभाव पड़ा था और चारों की रचनाओं में उन्हें अपने सत्यग्रह सत्यपी सिद्धांता के लिए समर्थन मिल गया था। 1931 में उन्होंने मोतिलाल नेहरूजीन में मान लिया, इसलिए दण्डमूर्ध का लोकमत कुछ हद तक उनके पास में ही गया। उन्होंने जज्जन के पूर्वी छोर (मजदूरों की दस्ती) में निवास किया, मजदूरों के साथ भाईपारी का अभाव किया, अपनी दैनिक आयना सतिपूर्वक करते रहे और सम्राट से अपनी वादा मोलाक के बेट की। उन्होंने अपनी गम्भीर मज्जा और सरलता से हमला की अवता को चाहित कर लिया।²⁸ कुछ हद तक पाश्चात्य ईसाई लोकमत उन्हें इसा मसीह के वाद सबसे बड़ा ईसाई मानता था।

27 मैक्स वेबर ने सत्ता के तीन केन्द्र बताये हैं (क) परम्परागत, (ख) मोक्षन अपना विधि, तथा (ग) चमत्कारपूर्ण। 'उस नेतृ की सत्ता हुआ करती है जिसमें धर्मधारन व्यक्तिता थी, निरपेक्ष व्यक्तिगत निष्ठा तथा ईश्वरीय ज्ञान में व्यक्तिगत विश्वास, गुरुत्व अन्य व्यक्तिगत नेतृत्व के साथ गुप्त होता है।' मैक्स वेबर *Essays in Sociology* (अनुवादीत, 1946), पृष्ठ 78-79।

28 भूरिवात सिस्टर Gandhi: Her World Career, विनायक महन इलाहाबाद, 1945, पृ 72।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गांधीजी के नेतृत्व के इतने शक्तिशाली होने का मुख्य कारण यह था कि उन्होंने राजनीतिक नेताओं तथा ऋषियों, दासों की कायप्रणाली का प्रयोग किया था। किसी भी राजनीतिक नेता या अपने जीवन काल में लोकमत पर इतना आधिपत्य नहीं रहा जिसका गांधीजी का था।

5 निष्पत्ति

आधुनिक भारत के चार प्रमुख नेताओं के समयों से निम्नलिखित अस्थायी निष्पत्ति निकलती है।

(1) वज्रोत्पत्ति शास्त्री में आधुनिक भारतीय लोकमत की अभिव्यक्ति मुख्यतः सामाजिक तथा धार्मिक समस्याओं के क्षेत्र में होती थी, किन्तु अर्धशताब्दी के अन्त में उसका स्वरूप स्पष्टतः राजनीतिक हो गया है। फिर भी विले राजनीतिक नेताओं का स्वरूप धार्मिक होता है उनका सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है।

(2) धार्मिक परम्पराएँ तथा मान्यताएँ बड़ी विपरीत सामाजिक शक्ति हुआ करती हैं। दयानन्द, बिबेकानन्द, तिलक और गांधी के नेतृत्व से प्रभावित होता है कि भारत में लोकमत को निर्मित करने में नैतिक तथा आध्यात्मिक हस्तों का महत्त्व प्रभाव रहता है।

(3) दयानन्द, बिबेकानन्द, तिलक और गांधी का नेतृत्व लोकमत के समय पर आधारित था न कि अधिवासवादी कायप्रणाली के प्रयोग पर। किन्तु भारत में अभी तक राजनीति-अनुसंधान शक्तिशाली लोकमत का विकास नहीं हुआ है। शक्तिशाली व्यक्तित्व के नेता की सामर्थ्य समय-समय पर निर्मित करना पड़ता है।

स्वतन्त्र भारत में हमारे देश के अध्यापकों को भी दुर्गुण, जेड, परिसर में नाइवर, लासरी, लासरीज आदि विज्ञान। वे वैज्ञानिक राजनीति विज्ञान के सम्बन्ध में टक्कर लेना है। यह सब हम दूसरा है विचार का क्या लेते रहने? यदि प्राचीन बात में ध्यान, नोटिस तथा मनु जैसे राजनीति विज्ञान के विचार हो सके तो निश्चित ही आज भी हो सके हैं।

भारतवर्ष की साहित्यिक परम्परा बड़ी पुरानी है। 'हमारे और अन्य परम्परा समस्त सभ्यता के प्राचीनतम रूप हैं। संस्कृत तथा अथवा नाट्यीय भाषाभाषा में बहुत बड़ा साहित्य संरक्षित है। अथवा वे केवल गापी और अरविन्द ता जो विज्ञान हुआ है उसका योगदान और मानव स्वतन्त्रता की दृष्टि में समीक्षा करना है। अथवा वे भी कहा जा कि हमारे आदि के प्रतिष्ठित साहित्य का भी विचारों के मानव की उत्पत्ति का ज्ञान की दृष्टि में समीक्षा करना चाहिए। अथवा वे केवल नहुआ गापी का जो हमारा साहित्य है उसका केवल पूजन ही नहीं करना है अपितु आज के वर्तमान के आदर्शों को सम्मुख करने में भी उसका उपयोग करना है। समानवाद, मौलिक अधिकार, मानव, 'आदि' पुनर्विचार आदि मूलभूत परिसरों के समीक्षा के हमने उपाय लिये हैं। इन्हें भी भारतीय परम्परा में निहित करना है। हमारी परम्परा समग्रमानविकी रही है। जब इस प्रकार का समीक्षण करने में, जिसमें प्राचीन और मध्यकालीन साहित्यिक अवस्थाओं से व्यापक ज्ञान प्राप्त हो सके, हमें लाभ करता है। स्वतन्त्रता, समानता, 'मान और मानव भावना के जो आदर्श हमारे समीक्षा के प्रारम्भ में उपस्थित हुए हैं, उनकी जो साहित्यिक परम्परा प्राप्त करे वह अनिवार्य है और जो परम्परा उनका विरोध कर वह सबका स्वतन्त्र और शिरस्तरणीय है। कुछ बात का कहना करना चाहिए कि हम आदर्श नाट्यीय मानविकी को समुचित 'मान' दिलाते के लिए उपयोग करना होगा। स्पष्ट है कि भारत के नृत्त निर्माण में राजनीति विज्ञान का विज्ञान बड़ा महत्व है।

राजनीति विज्ञान का दूसरा पक्ष प्रक्रियात्मक है। राजनीति प्रक्रियाओं का अध्ययन अन्विष्ट है। राजनीतिक संस्थाओं के क्या आधार हैं इसका विविधतापूर्ण अध्ययन ही होना ही चाहिए। विज्ञानशास्त्रों में भी मानव दृष्टिकोण है उन दृष्टिकोणों तथा उनकी बात निम्नोक्तों तथा अन्तर्गत शास्त्रों का भी व्याख्यात्मक और आधुनिकवादी अनुशीलन अन्विष्ट है। जिस प्रकार अन्तर्गत शास्त्रों के दृष्टि, भावना, विचार, मान और बुद्धि के सम्बन्ध में व्याख्यात्मक और प्रयोगात्मक अध्ययन कर, निमित्त की शास्त्रों में अन्विष्टमन्वीय विज्ञान का निम्नोक्त कर अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाई है उसी प्रकार का काम राजनीति विज्ञान विज्ञानों को भी करना है।

नाट्यीय और अन्य में जनता और प्रशासक तथा राजनीतिज्ञों के क्या चेष्टित और आचरण है तथा 'मानव, साक्षरता आदि की क्या अवस्था है, इनका भी अध्ययन एवं निम्नोक्त अनुशीलन अन्विष्ट है। लोकतन्त्र और समाजवाद की अपना मूल उद्देश्य मानने से आज भारतवर्ष में निम्नोक्तों को का विचारोत्प्रेरण हो रहा है। लोकजीवन को प्रभावित करने वाले स्थल बढ़ रहे हैं। अब इन क्षेत्रों के निम्नोक्तों का भी अध्ययन अन्विष्ट है। अब प्रक्रियाओं, अन्तर्गत शास्त्रों और व्यवहारों के विषय में पर्याप्त ज्ञान की उत्पत्ति होगी तब उनके आधार पर नीतिनिर्माण और निमित्त नीतिज्ञ के विचारों में मदद मिलेगी।

राजनीति विज्ञानों के द्वारा हमें ज्ञान है और सत्ता के प्रकटीकरण के लिए के नीति प्रणयन करते हैं। नीति विज्ञान के क्षेत्र में इन बातों की रूप में भी जानी चाहिए विज्ञानों में तब शास्त्रात्मक रूप में इन विषयों का अनुशीलन किया है। जिस प्रकार विषयगत राजनीतिज्ञों को राजनीति विज्ञान विज्ञानों के साहाय्य की आवश्यकता है उसी प्रकार प्रशासकों को भी। प्रशासकों की बात है कि देश में ऐसे लोक प्रशासन सम्मानों की स्थापना हो रही है जहाँ प्रशासक और राजनीति विज्ञान का मानव में विचार विमर्श करें और इस वैज्ञानिक संस्था में अन्तर्गत 'मानव' जीवन पर पड़े। लोक, हिंस्र, गृह्य शास्त्र और शास्त्र केरिधम आदि राजनीति विज्ञान के अन्तर्गत विज्ञानों में व्याख्यात्मक राजनीति और शास्त्रात्मक जीवन के ज्ञान का सम्बन्ध कर मानव व्यवहारों के विषय में मूल्य अन्तर्गत मानव की और इनका मानव अपने व सा के अन्तर्गत विज्ञान। राजनीतिक ज्ञान की धारा में सम्बन्ध होकर ही मानव संश्लेष करता है और मानविक ज्ञान ही लोकजीवनकारी करता है।

राजनीति विज्ञान के अध्यापन में अलग-अलग तरीकों की रचना कर भारतीय स्वराज्य में बौद्धिक और नैतिक परिवर्तन को संभव बनाया है। भारतीय विपदा पर शोध की जा परम्परा प्रथमतः पन्नी बेनट गिब्राम वैबीप्रसाद, रीनडरमैया, मुन्मुल निहलानिह, बीरेन्द्रनाथ बनर्जी, मधुदेव प्रसाद वर्मा, दीरवाना विमान बिहारी मन्मथार, कृष्णप्रसाद मुखर्जी, के एन वी दासजी, परमल मिह मुद्गार, गोपीनाथ शर्मा आदि ने चलायी यह आज जनक प्रसार के पुष्ट होकर देश के बौद्धिक जीवन को मजबूत कर रही है। अनेक शोध पराम्परा का प्रथमन भी विशिष्ट गया है। ऐसी आशीर्वादम्, अन्धकारोद्धार, महादेव प्रसाद वर्मा राजन्यामी, ज्योतिषप्रसाद मुख, बन्नीहल शर्मा, नन्देया चाल शर्मा मुन्मथेश्वर, कृष्णराय, विमान बिहारी मन्मथार आदि ने परम मुन्मथ का प्रथमन कर न वेबल विद्यार्थी जगत का उपहार किया है अर्थात् अपने शोध में स्वतन्त्रता, समानता और भाव की संतुष्टि कर भारतीय स्वराज्य के परिवर्तन को मजबूत बनाया है। भारतीय प्रजातन्त्र सम्प्रदाय जन्मग्रन्थ और शोध की पुष्ट करने में भी के नन्देय शर्मा जे एन रायचन्द्र, आर मास्तरन् न अन्धकार भाव सम्पादित किया है। विप्लव के रूप में लोचन द, आशीर्वादम्, सीबी, मुन्मुल बिहारीप्रसाद चालो आदि ने विद्यार्थियों का प्रभावित किया और इस प्रकार भारतीयता की सेवा की है। आज मैत्रता की संस्था में अध्यापन और शोध का भारतीय स्वराज्य, राजनीतिक विचार, तबि पाल आदि विषयों का अनुशीलन कर रहे हैं जिसकी सेवा का महत्त्वपूर्ण स्थान होगा।

आज राजनीति विज्ञान के शिक्षकों की सहज उत्तरदायित्व निम्नलिखित है। उच्च स्तर के राष्ट्र सम्मत राजनीतिक नेताओं का अर्थ अन्वेषण है। आधुनिक राजनीतिक नेताओं की भी दुर्भाग्यपूर्ण संज्ञाएँ हो रही हैं। अर्थ दसगत और जालिगत समाज का कुछ ही रहा है। प्रश्न यह है कि जन-मन का निर्देशन कहां से होगा? इस कार्य में राजनीति विज्ञान के अतिरिक्त अध्यापकों का नैतिक उत्तरदायित्व है। आज हमारे बीच अनेक राजनीति विज्ञान के आचार्य हैं जिनके छात्र माफी और उप-माफी होते हैं। क्या ये आचार्य अपने मुक्त-मुक्त छात्रों की प्रेरणा नहीं दे सकते? हम राजनीतिक कार्यकर्ताओं की भी नियामक दृष्टि है कि ये राजनीति विज्ञान के अध्यापन से मैत्रता बढ़ाव। व्यावहारिक राजनीति के समता और स्वतन्त्रता की निष्पत्ति करने में जो कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं उन्हें वह न ही अध्यापन के छात्रों पर। दूसरी और अध्यापन की राष्ट्र-मुक्ति का समर्पण तथा अपने चिन्तन से विस्तृत विचार का कार्यकर्ताओं के जीवन में व्यावहारिक जीवन के प्रयोग करें। अमेरिका में कॉन्ग्रेस कमेटी तथा बनेबी अपने मान राजनीति शास्त्र और अर्थ शास्त्र के दशों और जवरी की यही छात्रों में रखते हैं और अपनी कठिनाइयाँ का अपने समाधान प्रस्तुत हैं। विश्वविद्यालयों में जो राजनीति विज्ञान का विस्तार हो रहा है उसका पूरा लाभ इस प्रकार के पारस्परिक सम्बन्ध-व्यवस्था के राष्ट्र को मिलना ही चाहिए।

समाचार पत्रों के प्रकाशन में भी एक पैरा निवेदन है। ये कृपया राजनीतिक नेताओं का ही प्रशस्ति करना बंद करें। किन्तु अध्यापकों के जीवन के अनेक वर्ष राजनीतिक प्रकाश के चिन्तन पर ही व्यतीत किये हैं उनके विचारों को भी प्रकाशित करें। जो स्थान भाषण भीष, हैरान्त लासकी आदि अध्यापकों के विचारों को निवेदन के प्रतिष्ठित समाचार पत्रों द्वारा दिया जाता या उसी प्रकार की परम्परा हमारे देश में भी बननी चाहिए। प्रतिष्ठित और प्रति सम्पादक एक ही प्रकार का सम्मान बतित चरण और निष्ठप्रेम जनता के सम्मान रखना ठीक नहीं है। समाचार-पत्र जनता के सर्वोच्च ज्ञानवर्धन के लिए जिम्मेदार हैं। राजनीतिक परिवर्तन के युग में स्वराज्य के नेताओं की संतुष्टि की जो परम्परा चली उसको बंद कर देना चाहिए। एक नया देशतन्त्र नया अब प्राय नहीं रहा। दूसरी आर स्वतन्त्र देश की बौद्धिक विकासप्रकाश के जो अनेक पक्ष हैं उनका प्रकटीकरण आवश्यक है।

ग्रन्थ-सूची

अध्याय 1—भारत में पुनर्जागरण तथा राष्ट्रवाद

अम्बेडकर, बी आर Pakistan or Partition of India (बम्बई, वैकर एण्ड क, 1945)।

—What Congress and Gandhi Have Done to the Untouchables (बम्बई, वैकर एण्ड क, 1945)।

आगा ख़ाँ India in Transition (बम्बई, रादक्लॉड और इन्डियन, 1918)।

आज़ाद, अबुल क़ासिम India Wins Freedom (कलकत्ता, ओरिएण्ट लायन्स, 1959)।

एम्बेड, सी एच The Renaissance in India

नॉटन हेनरी New India or India in Transition (लन्दन, पीपल पॉइन्ट, 1907)।

—Indian Speeches and Addresses (कलकत्ता, एच के लाहिरी एण्ड क, 1903, पृष्ठ 136)।

बीव, ए सी The Constitutional History of India

बेल्मर, एन सी Pleasures and Privileges of the Pen

बोइलर, हेन A History of Nationalism in the East

—Nationalism and Imperialism in the Hither East

—Western Civilization in the Near East

गुप्ता, के एन Life and Work of Ramesh Chunder Dutt (लन्दन, के एच ईस्ट एण्ड सन, 1911)।

गोपालकृष्णन, सी के Development of Economic Ideas in India (1880-1950)।

ग्राफेनबेर्ग, एच Religious Reformbewegungen in Heutigen Indien (बोननिम, 1928)।

ग्रन्थर्ली, ए Humanism and Indian Thought, प्रिन्सिपल लिबर मापमसाला 1935 (महात्मा विश्वविद्यालय, 1937, पृष्ठ 29)।

गुप्तारकर, एन सी Speeches and Writings (बम्बई, मनोरञ्जक प्रेस प्रकाशक मण्डली, 1911)।

गिन्टानिनी सी बार्ड Indian Politics since the Mutiny (लन्दन, ऑक्सिडेंट एण्ड अमेरिका, 1940)।

गोपालकृष्णन, एच सी ई Renascent India (लन्दन, ऑक्सिडेंट एण्ड अमेरिका, 1933)।

गोवर, एम आर The Story of My Life, बी विल्डे

गोविन्द, एच एच Sketch of the History of India from 1859 to 1918

दल, आर सी India Today

दत्तात्रय, एम A Century of Social Reform in India (बम्बई, एशिया पब्लिशिंग हाउस 1958)।

दामोदर, के एम Asia and Western Dominance (लन्दन, ऑक्सिडेंट एण्ड अमेरिका, 1955)।

- पराजय, आर पी The Crisis of the Indian Problem (मद्रास, वाटस एण्ड क , 1931) ।
 ———Rationalism in Practice, 1934 के बमला बादन (कलकत्ता विश्वविद्यालय, 1935) ।
 पात्र, डी डी The British Connection with India
 प्रमान, आर जी India's Struggle for Swaraj (मद्रास, जी ए वटेसन एण्ड क , 1930) ।
 पराहार, डे एन Modern Religious Movements in India (दुबान, मैकमिलन एण्ड क 1918) ।
 परर आनय ए Non Cooperation in Other Lands (मद्रास, डैवीर एण्ड क , 1921) ।
 The Indian Crisis (मद्रास बिस्टर मोनमन, 1930) ।
 ———A Week in India (मद्रास, 1928) ।
 ———India and Its Government (मद्रास, डैवीर एण्ड क , 1921) ।
 रघु, डी डी Commentary on the Constitution of India, 3 हिस्से (5 बिल्दी बाकबा) ।
 राय, ए The Religions of India, एवरट डे बुक बा अधिभूत अनुवाद, छाया संस्करण (मद्रास, बीकन पॉल, ट्रुथ टुवर एण्ड क , 1932) ।
 रवीश्वर The Hindu Muslim Questions (लाहोर, मिर्सा पब्लिशिंग, 1943) ।
 रत्नकोश, एच एन Subject India (बम्बई, बीरा एण्ड क , 1946) ।
 रत्नाम एच Individual and Social Progress, त्रितीय मितर सापनमाला, 1938 (मद्रास विश्वविद्यालय, 1939, पन् 50) ।
 रघुमदार, बी बी History of Political Thought from Ram Mohan to Dayanand (कलकत्ता युनिवर्सिटी प्रेस, 1934) ।
 मुवातिनर, ए आर An Indian Federation (मद्रास विश्वविद्यालय, 1933) ।
 सुहार, बी एन Perspectives of Contemporary Political Thought in India (इण्डियन विश्वविद्यालय न बी एच डी सोसिटी, 1933, बमलाहित) ।
 मूर, वास ए (सम्पादित) Philosophy—East and West (हिमटन युनिवर्सिटी प्रेस, 1946) ।
 महता, धनोक्त न पदमन्य The Communal Triangle in India (इलाहाबाद, किराबिसाल, 1942) ।
 मैकडाल्ड, डे रैन्डे The Government of India (मद्रास, स्वाथमोर प्रेस, 1923) ।
 ———The Awakening of India (मद्रास, हाउर एण्ड एडरसन) ।
 मैकमिलन, एन The Making of Modern India (ऑक्सफोर्ड, 1924) ।
 राजासामी एन The Political Theory of the Government of India (मद्रास चोमन एण्ड क 1928) ।
 राजेश्वरदास आत्मकथा (पटना, 1946) ।
 ———Autobiography (बम्बई, एशिया पब्लिशिंग हाउस, 1938) ।
 रायड क, पी ई History of Modern India
 राममोहन Indian Muslims (1858-1947) (बम्बई, एशिया पब्लिशिंग हाउस, 1959) ।
 रोमान्स्को, अल आर The Life of Lord Curzon, 3 हिस्से (मद्रास, अर्नेस्ट बन लि , 1928) ।
 ———India (बमिगन युनिवर्सिटी प्रेस, 1926) ।
 ———The Heart of Aryavarta (मद्रास वासुदेवन एण्ड क लि , 1925) ।
 रबोट, डेरिगटन History of the Indian Nationalist Movement
 राया, डी ई Speeches and Writings (मद्रास जी ए वटेसन एण्ड क) ।
 राशिदा, ए आर Civilization as a Cooperative Adventure, त्रितीय मितर सापनमाला 1935 (मद्रास विश्वविद्यालय 1933, प 51) ।

- समस्या, टी. एन. India in Chains (बंगाल, एन. ए. ए. 1921) ।
 विलियम, एम्. ए. Life of A. O. Hume
 मनास अहमद साँ The Indian Federation
 साता, हरिप्रसाद Speeches and Writings (अजमेर, वैदिक प्रकाशक, 1935) ।
 सिता, ईश्वरदास The Indian Unrest (1910) ।
 —India, Old and New
 —India (1926) ।
 सीताराम, पद्मानि The History of the Indian National Congress, 2 खिल्दें (बम्बई, एन. ए. ए. प्रकाशक) ।
 Life and Works of Jatinendra Mohan Sen Gupta (बलराम, मदन मुख ए. ए. सी, 1933, पृष्ठ 158) ।
 The Cultural Heritage of India, 3 खिल्दें ।
 The Indian Nation Builders, 3 खिल्दें (बंगाल, एन. ए. ए. 1921) ।
 The Speeches of President Rajendra Prasad, 2 खिल्दें (बलराम साह इण्डिया प्रिन्टिंग प्रेस, दिल्ली, 1957-58) ।

अध्याय 2—ब्रह्म समाज

- राममोहन रोय Ram Mohan Roy, खिल्द 1 (बम्बई, एन. ए. ए. प्रकाशक, 1958) ।
 रोय, केशव चन्द्रा साँ Keshav Chandra Sen's English Vaid (बंगाल, एन. ए. ए. 1871) ।
 रोय, ईश्वरदास Autobiography
 रोय, मनिमोहन साँ The Brahmo Samaj (बलराम, एन. ए. ए. प्रकाशक, 1929) ।
 —Rajarshi Ram Mohan Roy
 —Brahmarshi Keshav Chandra Sen
 रोय, एन. ए. साँ Ram Mohan Roy A Study of His Life Works and Thoughts (बलराम, ए. ए. ए. प्रकाशक, 1933) ।
 रोय, एन. ए. साँ The Life and Teachings of Keshav Chandra Sen (बलराम, एन. ए. ए. प्रकाशक, 1887, दूसरी संस्करण, बलराम, एन. ए. ए. प्रकाशक, 1931) ।
 —The Faith and Progress of the Brahmo Samaj (बलराम, 1883) ।
 रोय, एन. ए. साँ The English Works of Raja Ram Mohan Roy, एन. ए. ए. प्रकाशक, बंगाल (बलराम, एन. ए. ए. प्रकाशक, 1901, खिल्द 1, 2, 3) ।
 रोय, एन. ए. साँ History of the Brahmo Samaj (बलराम, एन. ए. ए. प्रकाशक, 1911, खिल्द 2, 1912) ।
 Ram Mohan Roy His Life, Writings and Speeches (बंगाल, एन. ए. ए. प्रकाशक, 1933) ।
 The Father of Modern India, एन. ए. ए. प्रकाशक, बंगाल (बलराम, 1935) ।

अध्याय 3—दयानन्द सरस्वती

- दयानन्द, सरस्वती सरस्वती प्रकाशक ।
 —दयानन्द सरस्वती प्रकाशक ।
 —दयानन्द सरस्वती प्रकाशक ।
 दयानन्द, सरस्वती Life of Dayananda Saraswati, 2 खिल्दें ।

गोखले, हरबिलाल *Life of Dnyananda Saraswati* (अनवर, 1946)

—तत्त्व और दयालव (अनवर, 1944) ।

लक्ष्मण विद्यालंकार राष्ट्रवादी दयालव (नई दिल्ली, 1941) ।

सत्यानन्द दयालव प्रकाश (मथुरा) ।

अध्याय 4—एनी बेसेंट तथा भगवानूदास

एनी बेसेंट *Ancient Ideals in Modern Life*

—A Bird's Eye view of India's Past as the Foundation for India's Future

—Britain's Place in the Great Plan

—Children of the Motherland

—England, India and Afghanistan (अपन राफ लन्दन में 1879 में वुडिष्ठ) (मद्रास, विचारविमर्श पब्लिशिंग हाउस (वि ए ह), 1931, पृ 123) ।

—The Future of Indian Politics (मद्रास, वि ए ह, 1922, पृ 351) ।

—Higher Education in India, Past and Present Hindu Ideals

—How India Wrought for Freedom (मद्रास, वि ए ह, 1951) ।

—In Defence of Hinduism

—India A Nation (मद्रास, वि ए ह, 1930, बहुच सस्करण) ।

—Indian Ideals in Education, Religion, Philosophies, Art, कर्मका भाष्यमाला 1924-25, मद्रास, वि ए ह, 1930) ।

—India's Struggle to Achieve Dominion Status

—The Inner Government of the World

—The New Civilization

—Problems of Reconstruction

—Wake up India (मद्रास, वि ए ह, पृ 131) ।

—World Problems of Today

—Lectures on Political Science (मद्रास, दि कामनवेल्थ आरिज, अन्वय, 1919, पृ 117) ।

—Shall India Live or Die ? (मद्रास होम ब्ल सीय, 1925) ।

—Hints on the Studies of the Bhagavadgita

—English Translation of the Bhagavadgita

—Popular Lectures on Theosophy

—Autobiography (मद्रास, वि ए ह, तृतीय सस्करण, 1939, पृ 653) ।

—The Schoolboy as Citizen (मद्रास, वि ए ह, 1942) ।

—India (गिरध तथा भाष्य जिल्ह 4, लन्दन, विचारविमर्श पब्लिशिंग सोसाइटी, 1913, पृ 328) ।

—The India that Shall Be (*New India* में एनी बेसेंट के हस्ताक्षरपुस्तक से—मद्रास वि ए ह, 1940) ।

—Civilization's Deadlocks and the Keys (मद्रास, वि ए ह, 1925) ।

—Ancient Wisdom

—India and the Empire (लन्दन, वि ए सी, 1914, पृ 153) ।

—The Wisdom of the Upanishads (1907, पृ 115) ।

—An Introduction to Yoga (पृ 135) ।

- एनी बेसेन्ट Congress Speeches of Annie Besant (मद्रास, दि कमनवीस आफिस, 1917, पृ 138) ।
- The Besant Spirit, 4 खिल्दे (मद्रास, पि ए हा, 1938, 1939) ।
- For India's Uplift, आर्यभट्ट तथा वेदों का समर्थ, द्वितीय सम्स्करण (मद्रास, श्री ए स्टेमन एण्ड क) ।
- Brahmavidya (मद्रास, पि ए हा 1923, पृ 113) ।
- The Masters, प्रथम सम्स्करण, 1912, पृ 65 (मद्रास पि ए हा, 1932) ।
- 'The Basic Truths of the World Religion'—*The Three World Movements* में उल्लिखित (मद्रास, पि ए हा, 1926) ।
- (सम्पादित) Our Elder Brethren (मद्रास, पि ए हा, 1934) ।
- The Universal Text Book of Religion and Morals (मद्रास, पि ए हा, 1910) ।
- पाण, श्री श्री Mrs Annie Besant A Psychological Study (मद्रास, एनीस एण्ड क) ।
- रामानुजम् Ancient versus Modern 'Scientific Socialism or Theosophy and Capitalism, Fascism or Communism' (मद्रास, पि ए हा, 1934, पृ 209) ।
- Social Reconstruction (बाराणसी, आर्यभट्ट का आर्यभट्ट, 1920, पृ 130) ।
- Krishna (मद्रास, पि ए हा, 1929, पृ 300) ।
- The Science of Emotions
- The Science of Peace and Adhyatma Vidya
- The Science of Social Organization of the Laws of Manu in the Light of Atma Vidya (मद्रास, पि ए हा, 1932 पृ 394) ।
- The Science of Sacred Word or Pranava Vada, 3 खिल्दे ।
- The Science of Religion
- The Philosophy of Non Cooperation
- Mystic Experiences or Tales from Yoga Vasistha
- सर्वज्ञ (बाराणसी, आर्यभट्ट का आर्यभट्ट) ।
- World War and Its Only Cure—World Order and World Religion (बाराणसी, 1941, वेल्स द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ 544) ।
- रश्मि का प्रकाश ।
- सुप्ता ।
- श्री प्रकाश Annie Besant (बम्बई, भारतीय विज्ञान भवन, 1954) ।
- अध्याय 5—रवीन्द्रनाथ ठाकुर
- चरनी, आर (ग) The Golden Book of Tagore (1931) ।
- श्री रवीन्द्रनाथ The Crescent Moon
- Gitanjali
- Sadhana
- The Religion of Man
- Nationalism
- Personality
- Creative Unity
- Stray Birds
- The Gardener

साधुजिह भारतीय राजनीतिज्ञ विज्ञान

हैनोर *Lover's Gift and Crossing*
 —Fruit Gathering

दास, डा वारनराय *Rabindranath Tagore His Religious, Social and Political Ideal* (नववत्तार सारवती साहसिरी 1932) ।
 रासलन एडवड *Rabindranath Tagore* (नववत्तार, एकातिएसन प्रेष, 1928) ।
 रीय, बर्नेट *Rabindranath Tagore* (नववत्तार, मैकमिलन एण्ड क, 1915) ।
 रैस्ली बी *Rabindranath Tagore* (नववत्तार, रॉय ऐसन एण्ड अनविन लि, 1939) ।
 सन, सविन *Political Philosophy of Rabindranath Tagore* (नववत्तार, एसर एण्ड क, 1929)

अध्याय 6—स्वामी विवेकानन्द तथा स्वामी रामलीष
 । स्वामी विवेकानन्द

दास, प्रुपेडराय *Vivekananda Patriot Prophet* (नववत्तार, पबलिसर नवितिस, 1954) ।
 निवेदित, मिस्टर *The Master as I Saw Him* (नववत्तार, एडवोडयन आरिफ, पबलिसर, 1939) ।
 बक मरी सुई *Swami Vivekananda in America New Discoveries* (नववत्तार, बडन
 आधन, 1958) ।
 बडन सुवर, एड *Ramakrishna*
 रीका रीला *Life of Ramakrishna* (वतीव सस्करण 1944) ।

—Life of Vivekananda (अनोरा, बडन आधन चतुष सस्करण, 1953) ।
Life of Ramakrishna (अनोरा, बडन आधन 1936, द्वितीय सस्करण) ।
 आधन, 1933, द्वितीय सस्करण) ।
The Complete Works of Swami Vivekananda, 8 वल (अनोरा, बडन आधन) ।

2 स्वामी रामलीष

नारायण स्वामी, आर एड *स्वामी रामलीष की जीवनी* ।
 प्रुपेडरिड *Swami Rama The Poet Monk of the Punjab*
 बर्न विवराय प्रसाद *स्वामी रामलीष क बुद्ध विचार* (नववत्तार, कियोर 1946) ।
 बर्न बरनाय *The Legacy of Swami Rama*
In Woods of God Realization or the Complete Works of Swami Ramatirtha
 8 वल (नववत्तार, राजनीतिज्ञ एमिलकसन लीक) ।
Poems of Swami Rama (नववत्तार, राजनीतिज्ञ एमिलकसन लीक) ।

अध्याय 7—दादाभाई नौरोजी

नौरोजी, दादाभाई *Poverty and Un British Rule in India* (नववत्तार, स्वान सानसनीय
 एण्ड क 1901) ।
 नारंग बी एड (न) *Essays Speeches, Addresses and Writings of Dadabhai Naoroji* (नववत्तार, क्लेयन प्रिन्टिंग प्रस 1887) ।
 नाराजी बर बी *Dadabhai Naoroji The Grand Old Man of India* (नववत्तार, बर
 एसन एण्ड अनविन लि 1939) ।
Speeches and Writings of Dadabhai Naoroji, द्वितीय सस्करण (नववत्तार, बी ए क्लेयन
 एण्ड क 1917) ।

अध्याय 8—महादेव गोविन्द रानाडे

कर्वे, डी जी Ranade The Prophet of Liberated India (दुबई, वाय प्रेस प्रेस 1942) ।
गोखले, जी के तथा बाबा, डी ई Ranade and Telang (मद्रास, जी ए नेशन एज क) ।
बिहामणि, सी वाई (स) Indian Social Reform, 4 खण्ड (मद्रास, गोविन्द एज क ,
1901) ।

फर्रुख, एन आर रानाडे की जीवनी (मराठी मे) 1924 ।

मानवर, डी ए Mahadev Govinda Ranade 2 खिले (बम्बई, 1902) ।

रानाडे, एम जी एम पर व्याख्यान (मराठी मे), Essays in Indian Economics

—Rise of the Maratha Power

—Essays in Religious and Social Reforms (एन सी गोखलेकर द्वारा सम्पादित) ।

रानाडे, श्रीमती रमाबाई गववरण (मराठी मे) ।

—The Miscellaneous Writings of M G Ranade, श्रीमती रमाबाई रानाडे द्वारा
सम्पादित (बम्बई, मनोरञ्जन प्रेस, 1915, पृ 380) ।

अध्याय 9—श्रीरोजशाह मेहता तथा सुदेन्द्रनाथ बनर्जी

बिहामणि, सी वाई (स) Speeches and Writings of Sir Pherozeshah Mehta
(इलाहाबाद, इन्डियन प्रेस, 1905) ।

बनर्जी, एस एन A Nation in Making

—Speeches and Writings (मद्रास, जी ए नेशन एज क) ।

—Speeches (1876-1884), राजेश्वर द पणित द्वारा सम्पादित, खिल 1 व 2, द्वितीय
संस्करण (बलरक्षा, एस के साहिरो एज क , 1891) ।

—Speeches (1886-1890), राज गोपेक्षर मिश्र द्वारा सम्पादित (बलरक्षा, के एन
मिश्र, 1890) ।

मोरी, एस सी Sir Pherozeshah Mehta A Political Biography, 2 खिले ।

अध्याय 10—गोपालकृष्ण गोखले

गले, जी जी Gokhale and Economic Reforms

गोखले, जी के Speeches and Writings (मद्रास, जी ए नेशन एज क) ।

गोखले, जी के Speeches and Writings of G K Gokhale, खिल 1—अध्यात्मजीव
(दुबई दक्कन तथा 1962) ।

गोखले, आर जी Gopal Krishna Gokhale

कर्वे टी जी Gopal Krishna Gokhale (अनुवाद, नवजीवन परिभाषित हाउस, 1959) ।

बाबा, डी ई Reminiscences of the Late Mr G K Gokhale

गोखले, श्रीनिवास Gopal Krishna Gokhale

—My Master Gokhale

—Sastri Speaks (पीटरमैरिक्सन, 1931) ।

—Letters of V S Srinivasa Sastri (मद्रास, रोमाञ्ज एज क , 1944) ।

—Speeches and Writings of V S Srinivasa Sastri (मद्रास, जी ए नेशन एज क)

साहनी, टी के Gopal Krishna Gokhale (बम्बई, आर के मोरी 1929) ।

हीमसेन्द्र, जे एस Gopal Krishna Gokhale

अध्याय 11—बाळ गंगाधर तिलक

संक्षेप, डी पी Life of Lokamanya Tilak

अरविन्द ग्रन्थि लिखन-दशमस्कन्ध ।

आनन्दकर, जी जी आनन्दकर की सहायित रचनाएँ, 3 खिस्ते (मराठी म) ।

—'केसरी' के प्रकाशित लेख, 2 खिस्ते (मराठी म) ।

—'केसरी' के लेख के सम्मरण (मराठी म) ।

कुलकर्णी, एन सी तिलक की जीवनी, 3 खण्ड (मराठी म) ।

केसवरा, एन सी आत्मचरित्र (मराठी म) ।

—'इंग्लैण्ड के पत्र' (मराठी म) ।

—'लोकमान्य तिलक की जीवनी, 3 खिस्ते—तिलक की जीवनी पर मराठी के हबसेल्स लाठीय कृति, मद्रास 2000 पृष्ठ म ।

—Sketches of Chiploankar

—The Case for Indian Home Rule

—A Passing Phase of Politics

—The Tilak Trial of 1908

—Life and Times of Lokmanya Tilak (मल्लर द्वारा Life of Tilak की पहली खिस्ते का डी पी दिवाकर द्वारा मसिन्ता बनेली अनुवाद) ।

मैसकर, एन सी (म) लोकमान्य तिलक के जीवन के घातिव पहलू पर लेख (मराठी मे) ।

महाशिवर, के पी सहायित लेख, 2 खिस्ते (मराठी मे) ।

मामकोडे 'केसरी' म प्रकाशित लेख (दिनांक 23-26 फरवरी तथा 28 सितम्बर, 1954) ।

मुरली, के ए तिलक की जीवनी (मराठी म) ।

पीमले, डी पी The Tilak Case of 1916

पाट, जी टीके लगले के विषय पर लोकमान्य तिलक के विवाद (मराठी म) ।

विमलमकर, जी के तिलकमाना (मराठी म) ।

बापी A Gist of Tilak's Gita Rahasya

तिलक, बाळ गंगाधर कीर्तन-रत्न (मूल मराठी मे, छत्रे द्वारा हिन्दी मे तथा मुकुण्डनकर द्वारा अंग्रेजी मे अनुवादित) ।

—स्वदेशी आन्दोलन के समय लिखे गये भाषण (मराठी म, करदिकर द्वारा सम्पादित) ।

—महात्मा, मन्त्र और वर्मा यात्रा म दिव मत्र भाषण (मराठी म) ।

—'केसरी' म हास्य म तिलक के लेख, 4 खिस्ते ।

—अर्वाचनवादी सोचले द्वारा महात्मा गांधी की जीवनी की प्रस्तावना (मराठी म) ।

—The Arctic Home in the Vedas

—Orion

—Vedic Chronology and Vedanga Jyotisha

—Speeches and Writings

—Tilak's Speeches (सिधमणि एन्ड म) ।

—Speeches of Tilak (एन आर भावरात द्वारा सम्पादित) ।

—Speeches of Tilak (पीमल्लकर द्वारा सम्पादित, कैलाश) ।

—Tilak's Campaign of Swarajya, 4 खण्ड ।

—स्वामीजी कृष्ण वर्मा की लिखे गये तिलक के पत्र (Alphatone म प्रकाशित, दिनांक 16, 23 फरवरी, 1 भाग 26 जुलाई, 1936) ।

- तिलक, बाळ गंगाधर हिंदुत्व ('विषयम अखत' मे जनवरी 1915 मे प्रकाशित लेख) ।
 नेविसन, एच डब्लू The New Spirit in India
 पाठन, मातासिंहक लोकमान्य तिलक की जीवनी ।
 बापट, एच बी लोकमान्य तिलक के सम्मरण तथा कथाएँ, 3 खिल्दे (मराठी मे) ।
 ——तिलक श्रुति सङ्ग्रह (मराठी मे) ।
 साईं शंकर और काया The Tilak Case of 1897
 मराठे तिलक की जीवनी (मराठी मे) ।
 राधाकृष्णन, एच "Tilak as an Orientalist" *Eminent Orientalists* मे प्रकाशित (मद्रास, नटेशन एण्ड क) ।
 रमा, विश्वनाथ प्रसाद 'Achievements of Tilak (*Searchlight* मे 30-1-55 को तथा *Mahratta* मे 5 8 1955 को प्रकाशित) ।
 राधामुरारिकम, टी Life of Lokmanya Tilak (Row Publisher Bros)
 रमा, ईश्वरीप्रसाद लोकमान्य तिलक की जीवनी ।
 रमा, योक्तेश्वर तपस्वी तिलक ।
 रमा, नन्दुमार देव लोकमान्य तिलक की जीवनी ।
 रास्वसु All about Lokmanya Tilak
 सखट तथा भण्डारी तिलक-वचन ।
 सेठपुर, एच एच और देशपाण्डे, के बी The Tilak Case of 1897
 सन निहालचिह्न Tilak's Work in England (*Modern Review* में लेख, अक्टूबर 1919) ।
 सैन्धी, वन्दित Charge to Jury in the Tilak Case of 1897
 'झपा बसा-नाला', अगस्त 1920 का विशेषांक ।
 'जहाजि' का तिलक विशेषांक, अगस्त 1935 ।
 A Nation in Mourning (लोकमान्य के निधन पर श्रद्धाश्रितियाँ) ।
 A Step in the Steamer (मैगनस ग्युरी) ।
 'बैलरी' की खिल्दे, 1881-1920 ।
Mahratta की खिल्दे, 1881-1920 ।
 Life of Bal Gangadhar Tilak (मद्रास, नटेशन एण्ड क) ।
 Life of Lokmanya Tilak (मद्रास, रमेश एण्ड क) ।
 The Bombay High Court Decision in the Tai Maharaj Case (1920) ।
 The Lesser Prosecution of 1908 (मद्रास, रमेश एण्ड क) ।
 Tilak is Chisol, 2 खिल्दे (अन्तिमकोट पुनिर्माणी प्रेस) ।
 अध्याय 12—विपिनचन्द्र पाल तथा लाला लाजपत राम
 जोशी, बी बी (न) Autobiographical Writings of Lajpat Rai (दिल्ली, मुनिबिन्दी
 पब्लिशर, 1963) ।
 पाल, बी बी Responsible Government (जनकता, नयी दान एण्ड क, 1917,
 पृ 149) ।
 ——The Soul of India (जनकता, बीपी एण्ड बीपी, 1911, पृ 316) ।
 ——Nationalism and the British Empire
 ——Annie Besant (मद्रास, रमेश एण्ड क, 1917) ।
 ——Nationality and Empire (जनकता, बीपी एण्ड क, 1916 पृ 416) ।
 ——Indian Nationalism Its Personalities and Principles (मद्रास, एच गार डी
 एण्ड क, 1918, पृ 238) ।

सांस्कृतिक भारतीय राजनीतिक विचार

- शाल, बी बी The Spirit of Indian Nationalism (नन्दन, दि हिन्दू नेशनलिस्ट एक्सप्रेस, 140, सिनसेन्ट्रल रोड, वेस्ट केनसिंग्टन, पृ 141) ।
- Memories of My Life and Times (1858 1885), जिल्द 1 (कलकत्ता, मॉडर्न बुक प्रकाशक, 1951) ।
- Memories of My Life and Times (1885 1900), जिल्द 2 (कलकत्ता, युगवाणी प्रकाशक, 1951) ।
- The New Economic Menace to India (मद्रास, मनेस एण्ड क, 1920, पृ 250) ।
- An Introduction to the Study of Hinduism (कलकत्ता, कानवासिंस स्टूडेंट्स, 1908, पृ 237) ।
- Swaraj (सम्बर्द्ध, वापवाणी एण्ड क, 1922, पृ 42) ।
- Beginnings of Freedom Movement in Modern India (कलकत्ता, युगवाणी प्रकाशक, 1954, पृ 61) ।
- Sri Krishna (मद्रास, टेंडोर एण्ड क, पृ 182) ।
- Life and Utterances of Bipin Chandra Pal (मद्रास, मनेस एण्ड क, पृ 181) ।
- साहा साहयचरण साहयकर (साहूँर, राजवाह एण्ड क) ।
- सवाईस एहिब (हिंदी और उर्दू में) ।
- मल्लोनी बी बीबी (उर्दू में, 1892) ।
- दीर्घाहरी बी बीबी (उर्दू में, 1893) ।
- Life of Pt. Gurudatta Vidyarthi (साहूँर, विद्यानन्द प्रेस) ।
- Life of Swami Dayananda
- Life of Mahatma Sri Krishna
- Chhatrapati Shivaji (1896) ।
- The Political Future of India (पुष्पाक, बी डब्ल्यू ह्यूम्स, 1919) ।
- The Call to Young India (मद्रास, मनेस एण्ड क, 1921) ।
- India's Will to Freedom (मद्रास, मनेस एण्ड क, 1921) ।
- Young India (पुष्पाक, बी डब्ल्यू ह्यूम्स, 1917) ।
- The Story of My Deportation
- National Education in India (नन्दन, जान ऐसन एण्ड अर्बिन, 1920) ।
- England's Debt to India (पुष्पाक, बी डब्ल्यू ह्यूम्स, 1917) ।
- An Open Letter to Lloyd George
- Self Determination for India
- The Arya Samaj (साहयचरण, प्रीन एण्ड क, 1915) ।
- The United States of America A Hindu's Impression and a Study (कलकत्ता, नार चटर्जी, 1916) ।
- The Evolution of Japan and Other Papers (कलकत्ता, नार चटर्जी, 1919)
- Unhappy India (कलकत्ता, नारा चटर्जी, 1928) ।
- A Speech on Depressed Classes
- The Depressed Classes (साहूँर, माय ट्रेड सोसाइटी) ।
- साहय, अलपुराव (अनु) साहा साहयचरण (हिन्दी, लोकसभा मण्डल, 1951) ।

अध्याय 13—श्री अरविन्द

श्री अरविन्द Bandemmatram, The Arya, और Dharma की विरह ।

—'New Lamps for Old' (*Indu Prakash* व 7 विषय) ।

—The Life Divine

—Essay on the Gita

—On the Veda

—The Synthesis of Yoga

—The Human Cycle

—The Ideal of Human Unity

—The Spirit and Form of India Polity

—The Doctrine of Passive Resistance

—The Ideal of the Karma-yogin

—War and Self Determination

[श्री अरविन्द की दृष्टि में वीर्यवान् सुखी मरी पुस्तक Political Philosophy of Sri Aurobindo (एगिना रविन्दगिन् हाउस बम्बई) व दी है ।]

अध्याय 14—महामा मोहनदास करमचन्द गांधी

एगूज, श्री एगू Mahatma Gandhi's Ideals

—Mahatma Gandhi His Own Story

गांधी, एगू के Autobiography

—अनामसिवाग ।

—बीता बीता ।

—बचत प्रकाश ।

—महादिव ।

—Satyagraha in South Africa

—Hind Swaraj

—Young India, 3 विरह ।

—Non Violence in Peace and War, 2 विरह ।

—Community Unity

—Satyagraha

—Speeches and Writings of M. K. Gandhi

—Towards Non Violent Socialism

एग, रिचर्ड The Power of Non Violence

एग, डी एग The Philosophy of Mahatma Gandhi

निगार, एग The Life of Mahatma Gandhi

बीक, एग के Selections from Gandhi

सामन्त और Mahatma Gandhi

बना, बी बी 'Philosophical and Sociological Foundations of Gandhism' (*Gandhian Concept of State* पुस्तक व) ।

—'Gandhi and Marx' (*Indian Journal of Political Science*, जन 1954)

—The Political Philosophy of Mahatma Gandhi and Sarvodaya (आनरा, सस्वीनारायण अपराध) ।

अध्याय 15—हिन्दू पुनरुत्थानवाद तथा दार्शनिक आदर्शवाद

करभिकर, एस एन सावरकर की जीवनी (बराडी में) ।

कीर, पवनम् *Life and Times of Savarkar*

सोमवत्कर, एन एच *We or Our Nationhood Defined* (वास्तुकर, भागत प्रकाशन) ।

चतुर्वेदी, सोमरायन महात्मना सम्बन्धित ।

विजयगुप्त *Life of Barrister Savarkar*—इन्द्रजयचन्द्र द्वारा सम्पादित तथा परिचालित (नई दिल्ली हिन्दू विश्वविद्यालय, 1939, पृ 259) ।

मूय, ए वी (ए) *Malaviya Commemoration Volume* (मनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, 1932) ।

महात्मा, के सी 'The Concept of Philosophy', *Contemporary Indian Philosophy*, राधाकृष्णन और म्युन्स्टेड द्वारा सम्पादित (नन्दन जॉन्स ऐन एण्ड क, द्वितीय संस्करण, पृ 103-25) ।

—'Swaraj in Ideas' (*The Vinabhavati Quarterly*, 1934) ।

—*Studies in Vedantism*

—*The Subject as Freedom*

—*Studies in Philosophy*, 2 विस्दे (कलकत्ता, प्रोफेसियर पब्लिशर्स, 1956) ।

शर्मा परमानन्द हिन्दू संरक्षण (साहोदर, केन्द्रीय हिन्दू युवक सभा, 1936) ।

—बीर ईश्वरी (साहोदर, राजपाल एण्ड सन्स) ।

—यूरोप का इतिहास ।

राधाकृष्णन, एस *The Philosophy of Rabindranath Tagore*

—*The Reign of Religion in Contemporary Philosophy*

—*Indian Philosophy*, 2 विस्दे ।

—*An Idealist View of Life*

—*The Hindu View of Life*

—*Eastern Religions and Western Thought*

—*East and West in Religion*

—*East and West*

—*Kalki or The Future of Civilization*

—*The Recovery of Faith*

—*India and China*

—*Is This Peace ?*

—*Religion and Society*

—*Gautama the Buddha*

—*The Heart of Hindustan*

—*Great Indians*

—*Education, Politics and War*

[राधाकृष्णन की अधिकांश महत्वपूर्ण पुस्तकें जॉन्स ऐन एण्ड सन्सद्वारा लि, नन्दन द्वारा सम्पादित की गयी हैं ।]

नास हल्डवाल *Hints for Self Culture* (बम्बई, जैको पब्लिशिंग क, 1961) ।

विद्यालकर, एस सी स्वामी चट्टानन्द की जीवनी ।

अज्ञानन्द और रामदेव *The Arya Samaj and Its Detractors*

लाली बहादुर कल्याण भाग का पहिल (बाराणसी, ज्ञानमन्त्र, 1932) ।

—Inside Congress

सावरकर, बी डी हिंदुत्व ।

—हिंदू-बुद्ध-महासाही (हिंदी अनुवाद) (लाहौर, राजप्राय एण्ड सन्) ।

—सन्तनवी मातामिनेन (मराठी मे) ।

—माभी बमयेन (मराठी मे) ।

विषाडी, आर एन तीस दिन मलबीपदी के साथ ।

उपनिषद् का अंग्रेजी अनुवाद ।

बम्मपद का अंग्रेजी अनुवाद

मयवर्गीला का अंग्रेजी अनुवाद (1943) ।

परम पूजनीय डा हेडवेयर (बामपुर, बी आर शिंदे, पृ 141) ।

Justice on Trial—एम एन बीनबलकर बीर माला सरकार के बीच हुआ पत्र-व्यवहार (1943 49) (बराणसी, राष्ट्रीय स्वयंसेवक सभ) ।

Writings of Lala Hardayal (बनारस, स्वराज पब्लिशिंग हाउस, 1922, पृ 228) ।

अध्याय 16—मुसलिम राजनीतिक चिन्तन

बफजल, इकबाल (य) My Life A Fragment—मुहम्मद अली की जालकयातक बीकरी (लाहौर, डेल मुहम्मद करीक, 1942, पृ 273) ।

अल-बन्नी, ए एन Makers of Pakistan and Modern Muslim India (लाहौर, 1950) ।

अली, रहमत The Mallet and the Mission (कन्निर, 1942, पृ 21) ।

अहमद, चान ए The Founder of Pakistan (लन्दन, मुजाब एण्ड क, 1942, पृ 33) ।

आना आ India in Transition

बीराल, बी डी Jinnah The Gentleman (बामपुर, मोयल एण्ड मोयल, 1940) ।

बीरिश, बी डी The House that Jinnah Built (बम्बई, कमा पब्लिकेशन, 1944) ।

बाइन, बी एक लाई The Life and Work of Sir Syed Ahmad Khan (लन्दन, हॉरर एण्ड स्टारसन, 1909, पृ 296) ।

जिना, एम ए Speeches and Writings (1912-1917) (लार्सन, कवेन एण्ड क) ।

जुमल, एन आर Jinnah The Mufti-Azam (लाहौर) ।

बीलिबी, हेक्टर Jinnah (लन्दन, जॉन मरे, 1954) ।

बीपद अहमद आ The Causes of the Indian Revolt

—Transcript and Analysis of the Regulations

—Archaeological History of the Ruins of Delhi (1844) ।

—The Loyal Mohammedans of India

—Essays on the Life of Muhammad

बीपद, एम एन Mohammed Ali Jinnah Political Study (लाहौर, मुहम्मद अहमद, 1945) ।

Jinnah-Gandhi Talks (सितम्बर 1944) (बिन्नीय कार्यालय, आन इन्डिया मुवन्तिम मीन, 1944) ।

Select Writings and Speeches of Maulana Mohammad Ali (लाहौर, मुहम्मद अहमद, 1944, पृ 485) ।

भाष्य 17—मुहम्मद इब्न अली

अली, एम ए Iqbal His Poetry and Message (लाहौर, मुहम्मद अली, 1932) ;
इब्न अली, मुहम्मद Six Lectures on the Reconstruction of Religious Thought in Islam (लाहौर, मुहम्मद अली, 1934) ;

—Reconstruction of Religious Thought in Islam (अलीगढ़ मुस्लिम विद्यापीठ, 1934) ;
—The Development of Metaphysics in Persia (मोहम्मद अली, 1908) ;

इब्न अली की कविताएँ

अली अली (इब्न अली का कविता) ;
अली अली (इब्न अली का कविता) ;
अली अली (इब्न अली का कविता) ;
अली अली (इब्न अली का कविता) ;
अली अली (इब्न अली का कविता) ;
अली अली (इब्न अली का कविता) ;
अली अली (इब्न अली का कविता) ;
अली अली (इब्न अली का कविता) ;

इब्न अली की कविताएँ

अली अली (इब्न अली का कविता) ;
अली अली (इब्न अली का कविता) ;
अली अली (इब्न अली का कविता) ;
अली अली (इब्न अली का कविता) ;
अली अली (इब्न अली का कविता) ;

अली अली (इब्न अली का कविता) ;
अली अली (इब्न अली का कविता) ;
अली अली (इब्न अली का कविता) ;
अली अली (इब्न अली का कविता) ;
अली अली (इब्न अली का कविता) ;

—Iqbal as a Thinker (लाहौर, मुहम्मद अली, 1939) ;
—Iqbal the Poet and His Message (लाहौर, मुहम्मद अली, 1944) ;

—Iqbal the Poet and His Message (लाहौर, मुहम्मद अली, 1944) ;
—Iqbal the Poet and His Message (लाहौर, मुहम्मद अली, 1944) ;
—Iqbal the Poet and His Message (लाहौर, मुहम्मद अली, 1944) ;

भाष्य 18—मोतीलाल नेहरू तथा निरंजन दास

निरंजन दास, एम ए Life and Works of Pt Motilal Nehru (लाहौर, मुहम्मद अली, 1931, पृ 181) ;
मोतीलाल नेहरू, एम ए Pt Motilal Nehru (लाहौर, मुहम्मद अली, 1919, पृ 147) ;

—A Life Sketch of Pt Motilal Nehru (लाहौर, मुहम्मद अली, 1919, पृ 25) ;
—Life and Times of C R Das (लाहौर, मुहम्मद अली, 1927, पृ 313) ;
—Speeches of Mr C R Das (लाहौर, मुहम्मद अली, 1918, पृ 293) ;

अध्याय 19—जवाहरलाल नेहरू

- जवाहरलाल, रवीन्द्र (ए) A Study of Nehru (बम्बई, टाइटन आर इण्डिया पब्लिशिंग, पृ 478) ।
- नेहरू, जवाहरलाल India's Foreign Policy (1946-1961) (पब्लिशिंग हाउस ऑफ इण्डिया, नया दिल्ली, 1961) ।
- Soviet Russia
- Letters from a Father to His Daughter (इलाहाबाद, किताबिस्तान, 1928) ।
- Glances of World History (नयाँ दिल्ली, लिटिल बुक्स, 1938) ।
- Autobiography (लंदन, जॉन लेन, दि बॉटमी प्रेस, 1936) ।
- The Discovery of India (कलकत्ता, दि सिमल्ट प्रेस, 1946) ।
- The Unity of India (लंदन, लिटिल बुक्स, 1941) ।
- संक्षेपशायी दुनिया ।
- हर्बर, माइकेल Nehru A Political Bibliography (मास्सचुसेट्स यूनिवर्सिटी प्रेस, 1959) ।
- भारत, जवाहरलाल Jawaharlal Nehru (बम्बई, टाइटन ऑर इण्डिया प्रेस, 1956) ।
- गंगा, जे एन A Descriptive Bibliography of Nehru (दिल्ली, एस एच एन प्रेस, 1955) ।
- विष्णु, सवित्रदास A Short Life Sketch of Jawaharlal Nehru (वटना, का प्रेस, 1936, पृ 13) ।
- सिन्घ, बीनरस यूजीव Nehru and Democracy (कलकत्ता, श्रीरामदास लाइब्रेरी, 1958, पृ 194) ।
- Jawaharlal Nehru's Speeches (1946-1949) (नई दिल्ली, पब्लिशिंग हाउस ऑफ इण्डिया) ।
- Jawaharlal Nehru's Speeches (1949-1953) (नई दिल्ली, पब्लिशिंग हाउस ऑफ इण्डिया) ।
- Jawaharlal Nehru's Speeches (1953-1957) (नई दिल्ली, पब्लिशिंग हाउस ऑफ इण्डिया) ।

अध्याय 20—सुभाषचन्द्र बोस

- टीप, ह्यू The Springing Tiger (बम्बई, एलाइट पब्लिशिंग, 1959) ।
- बोस, एन सी An Indian Pilgrim—आत्मकथा—1897-1920 (कलकत्ता, वेंकर, लिबर एण्ड क, 1948) ।
- The Indian Struggle (1920-1934) (कलकत्ता, वेंकर, लिबर एण्ड क) ।
- The Indian Struggle (1934-1942) (कलकत्ता, चक्रवर्ती, चटर्जी एण्ड क, 1952) ।
- एन सी स्वरूप ।

अध्याय 21—मानवेन्द्रनाथ राय

- राय, एन एन Planning in India (कलकत्ता, रेखा पब्लिशिंग, 1944) ।
- India's Problem and Its Solution (1922) ।
- From Savagery to Civilization (कलकत्ता, 1940) ।
- War and Revolution (रक्तिक्रम समाजिक क्रांति, 1942) ।
- National Government or People's Government ? (राष्ट्रिय शासन या जनशासन, 1943) ।
- New Humanism (कलकत्ता, रेखा पब्लिशिंग, 1947) ।
- Fragments of a Prisoner's Diary, Part 2, The Ideal of Indian Womenhood (दुर्गमकालीन इण्डियन महिला आदर्शिका, 1941) ।

राम, एन एन The Communist International

——Materialism, द्वितीय संस्करण, 1951 ।

——Science and Philosophy

——The Russian Revolution

——Scientific Politics

——New Orientation

——Fascism

——Reason, Romanticism and Revolution, 2 किर्ते, विन्द 1, 1952 और विन्द 2, 1955 ।

——Jawaharlal Nehru (दिल्ली, रैडिकल डेमोक्रेटिक पार्टी, 1943, पृ 61) ।

——India in Transition—ब्रह्मर्षि मुकुन्द के सहयोग के लिखित, बेनारस, 1922, पृ 241) ।

——Heresies of the 20th Century—साधुनिक विचार (मुद्रादाकार, इन्दौर बाजीव, 1940, पृ 206) ।

——My Experience of China

——Revolution and Counter Revolution in China (मुद्रात जयन काया न लिखित और 1931 में प्रकाशित) (बलरघा, बेनारस बलिग्राम, 1946, पृ 689) ।

——The Future of Indian Politics (बलरघा, भार विचार, 1926, पृ 118) ।

——An Open Letter to the Rt Hon J R Macdonald

——The Aftermath of Non Cooperation

——The Alternative (ब्रह्मर्षि, बोर एन्ड न, 1940 पृ 83) ।

——Nationalism (ब्रह्मर्षि, रैडिकल डेमोक्रेटिक पार्टी, 1942, पृ 84) ।

——Indian Labour and Post War Reconstruction (दिल्ली, रैडिकल डेमोक्रेटिक पार्टी 1943, पृ 58) ।

——Problem of Freedom (बलरघा, बेनारस बलिग्राम, 1945, पृ 140) ।

——What Do We Want ?

——Freedom or Fascism (दिसम्बर 1942, पृ 110) ।

——Poverty or Plenty ? (पृ 156) ।

——Nationalism and Democracy

——Freedom and Democracy

——Library of a Revolutionary

——What is Marxism ?

——Historical Role of Islam

——Our Differences

——Politics, Power and Parties (बलरघा, बेनारस बलिग्राम 1960) ।

राम एन एन तथा बाल India and War (दिसम्बर 1942) ।

राम, एन एन तथा बलिग्र, बी बी Our Problems (बलरघा, बारड साइदेरी 1938, पृ 274) ।

राम एन एन तथा राम, एन्विन One Year of Non-cooperation From Ahmedabad to Gaya (ब्रह्मर्षि पार्टी-बेनारस 1923, पृ 184) ।

अध्याय 22—भारत में समाजवादी चिन्तन

अशोक मेहता *Studies in Asian Socialism* (बम्बई, भारतीय विद्या नवन, 1959) ।

—*Democratic Socialism*

जयप्रकाश नारायण *Towards Struggle* (बम्बई, पद्मा पब्लिकेशन्स 1946) ।

नरेन्द्रदेव *Socialism and the National Revolution* (बम्बई, पद्मा पब्लिकेशन्स, 1946) ।

—राष्ट्रीयता और समाजवाद (राजकली, जालनगर, 1949) ।

नरनारायण *History of the Congress Socialist Party* (लाहौर, 1946) ।

सोहिया, राम मनोहर *The Mystery of Sir Stafford Cripps* (बम्बई, पद्मा पब्लिकेशन्स, 1942) ।

टेड, एन एन *The Ted Fugitive* *Jaya Prakash Narayan* (लाहौर, इण्डियन प्रिंटिंग प्रेस) ।

टेड, एन के *A History of the Praja Socialist Party* (नसनगर, 1959) ।

अध्याय 23—सर्वोदय

जयप्रकाश नारायण *From Socialism to Sarvodaya*

—*A Reconstruction of Indian Polity*

बाबा भगवन्दासजी सर्वोदय दर्शन ।

बर्मा, जी पी *Political Philosophy of Mahatma Gandhi and Sarvodaya* (आगरा, लक्ष्मीनारायण प्रकाश) ।

बिर्गोवा माडे *स्वराज्य शास्त्र* ।

—भूदान कथा, 7 खंडे ।

अध्याय 24—भारत में साम्यवादी आन्दोलन तथा चिन्तन

बीयरसलीर, जी पी तथा किंगमिलर, एन *Communism in India* (कॉलंबोविया यूनिवर्सिटी प्रेस, 1958) ।

बाद, सेविल *Communism in India* (दिल्ली, पब्लिकेशन्स ऑफ इण्डिया प्रेस, 1926) ।

कोरसनी, जॉन एच *Moscow and the Communist Party of India* (न्यूयार्क, जॉन जेम्स, 1936) ।

पोप, जयज *Articles and Speeches* (बाराको, पब्लिशिंग हाउस फॉर कोरिपुब्लिश रिजर्नेयर, 1962) ।

—*The Communist Party of India in Struggle for Freedom and Democracy*

—*Theories and Practices of the Socialist Party of India*

जयप्रकाश नारायण *Socialist Unity and the Congress Socialist Party, 1941*

अरो, एन ए *India From Primitive Communism to Slavery*

ब्रुके, सेविल एन *Soviet Russia and Indian Communism* (न्यूयार्क, नुनमन एन्सोर्गिस्टर, 1959) ।

मधु मिश्रे *Communist Party Facts and Fiction*

महानी, एन आर *The Communist Party of India* (नया, डेरर प्रोड्यूस, 1954) ।

मुक्तेश्वर महमद *The Communist Party of India and Its Formation Abroad—पूरा*

प्रकाश बा एच *मुक्तेश्वर इन्डियन सोवियत युनियन* (नसनगर, नारायण बुक एजेंसी, 1962) ।

राहुल साहूवाहन *साम्यवाद ही क्या ?*

—मानव समाज ।

राहुल साह्रन्यायन इन्द्रात्मक मौलिनवाद ।

———दशम विद्रोह ।

———जीसमी सदी ।

———मेरी जीवन-यात्रा (2 खिल्दे) ।

हेरिजन, जॉन एच India The Most Dangerous Decades

REPORTS

- 1 Congress Village Panchayat Committee Report (1954)
- 2 Local Finance Enquiry Commission Report (1951)
- 3 Taxation Enquiry Commission Report, 3 Vols (1953)
- 4 Report of the Team for the Study of Community Development and National Extension Service, 3 Vols (Balwant Rai Mehta Committee Report)
- 5 Indian Statutory Commission Report (Simon Commission)
- 6 Nehru Report (with Supplement)
- 7 Montague Chelmsford Report
- 8 Muddiman Committee Report
- 9 Decentralization Commission (1909) Report
- 10 Civil Disobedience Enquiry Committee Report
- 11 University Education Commission (Radhakrishnan Commission) Report, 3 Parts
- 12 Welby Commission Report

